निष्काम साधना

श्री यशपाल जैन अभिनन्दन

श्री यशपाल जैन अभिनंदन ग्रंथ
समारोह समिति की ओर से
सादर भेंट

म साधक

मानवीय मूल्यों के उपासक
श्री यशपाल जैन की
बहत्तरवीं वर्षगांठ पर
समर्पित

ग्रंथ समारोह समिति द्वारा प्रकाशि
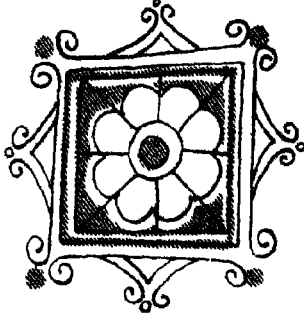
डा लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
अध्यक्ष

☐

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
प्रधान संपादक

☐

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'
संपादक

☐

श्री वीरेन्द्र प्रभाकर
संयोजक

☐

पहली बार

☐

प्रकाशक
श्री यशपाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ समारोह समिति
द्वारा सस्ता साहित्य मंडल, कनॉट सरकस, नई दिल्ली

मूल्य
रु २५१ ००

मुद्रक
रूपाभ प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली
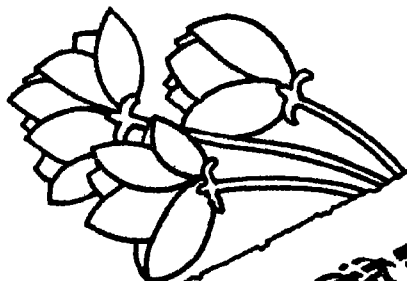
जिन्होंने मानवीय मूल्यों में अडिग
आस्था रख कर निस्पृह भाव से
साहित्य, संस्कृति, समाज और कला
की आजीवन अथक सेवा की है, उन
श्री यशपाल जैन
को

१ सितम्बर १९८४

साधना

आराधना

सहधर्मिणी के साथ
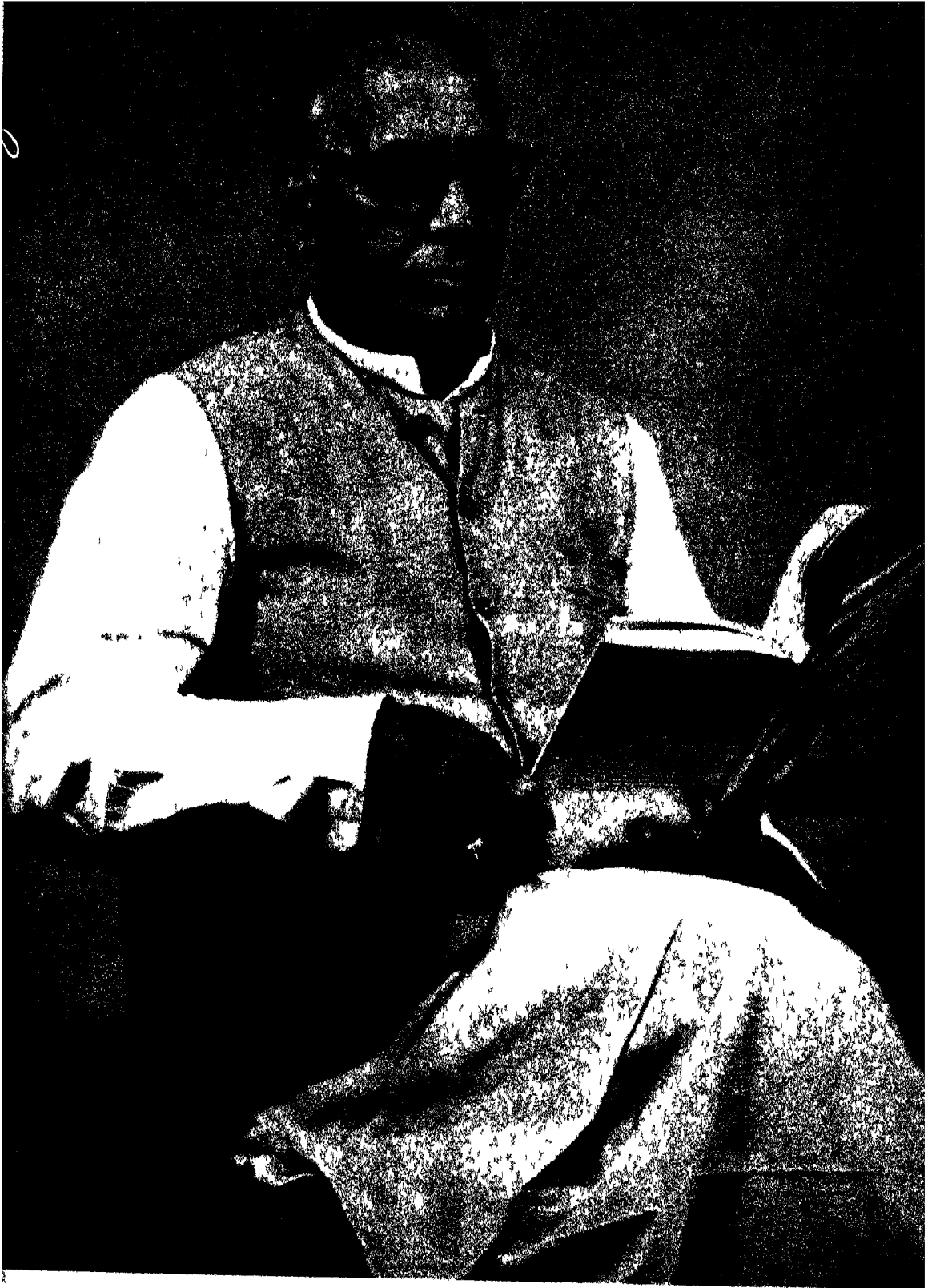
अध्यक्षीय

प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकाशन एक ऐसे व्यक्ति को सम्मानित करने के लिए हुआ है, जिसने निस्पृह भाव से अपने को साहित्य, सस्कृति, कला और समाज की सेवा के लिए समर्पित किया और जिसकी जीवन-साधना अर्धशती से अनवरत चल रही है।

आदरणीय भाई श्री यशपाल जैन से मेरा सबध बहुत वर्षों का रहा है। मुझे उन्हे निकट से देखने का सयोग और सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनका यशस्वी व्यक्तित्व और कृतित्व सहज-सस्कारी मान्यता का कीर्तिमान है। मानवीय मूल्यो के प्रति उनकीग हरी आस्था है। वह आस्था उनके जीवन और स्वभाव का अभिन्न अग है। वे उन मानवीय मूल्यो का उद्घोष ही नही करते, उन्हे जीते भी हैं। वे एक उत्कृष्ट लेखक ही नहीं, एक श्रेष्ठ मनुष्य भी हैं। उन्होंने भरपूर लिखा है, हर आयु और वर्ग के पाठक के लिए लिखा है और साहित्य की हर विधा मे लिखा है। आज ७२ वर्ष पूर्ण हो जाने पर भी उनकी लेखनी ने विराम नही लिया है।

समाज और देश के लिए उनके हृदय मे अगाध-अबाध प्रेम है और उनकी आतरिक इच्छा रहती है कि दूसरो के हित के लिए वे जो कुछ कर सकते हैं, करें, और अथक, अविराम और अनायास यही करते रहे। वे सुस्मित सदाशयता के मूर्त रूप हैं। उनका व्यक्तित्व सीधा, सरल, सहज और पारदर्शी है। कोई वक्रता, आडम्बर या अभिमान उन्हे कही छू नही गया। न द्वेष, न ईर्ष्या, न दलबन्दी। सत्ता की भागदौड से कोसो दूर और उसके अकगणित से अपरिचित। यशपालजी का व्यक्तित्व उस पुरातन भारतीय प्रार्थना का साकार स्वरूप है, जिसमे सब सुखी, स्वस्थ और निरामय हो तथा सब जन भली, भद्र दृष्टि से देखें, यह शुभकामना और सद्भावना सस्वर होती रही है। 'मित्ति मे सव्वभूयेसु' अर्थात् मेरी सब प्राणियो से मित्रता है, इस मत्र को चिन्तित और चरितार्थ करता हुआ उनका जीवन है।

यशपालजी लेखनी के ही नही, वाणी के भी धनी हैं। अनेक अवसरो पर मुझे उनके व्याख्यान सुनने

का सुयोग मिला है। वे अपने विचार बड़े प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करते हैं। उनके विचारो में कोई उलझन नहीं होती है, न भाषा मे किसी प्रकार की अस्पष्टता होती है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी बात को लिखकर और कह कर सहज ही दूसरो तक पहुचा देते हैं। संप्रेषण की कला मे उनकी उपलब्धि वाक्चातुर्य और वाग्विलास के आधार पर न होकर उनके हृदय की सहज अभिव्यक्ति और उनके व्यक्तित्व मे अन्तर्निहित निष्ठा और आर्जव के कारण है। उनके प्रवचन मे कोई प्रवचना नहीं होती, 'परोपदेशे पाण्डित्यम्' की अविश्वसनीयता और कृत्रिमता नही होती। वे सच्चाई और ईमानदारी से जो सोचते हैं, वही कहते हैं और वही करते हैं। इसीलिए उनकी बात मे वजन होता है।

यशपालजी का व्यक्तित्व जितना यशस्वी है, उतना ही व्यापक उनका कृतित्व है। उन्होंने अनेक बार अपने देश की परिक्रमा की है और विश्व के लगभग ४३ देशो मे भ्रमण किया है। देश-विदेश मे उनके मित्रो, परिचितो, प्रशसको और हितैषियो की सख्या बहुत बडी है। ग्रथ की योजना के लिए चारो ओर से हमे जो हार्दिक समर्थन और उत्साहपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ, वह उनकी लोकप्रियता का जीवन्त प्रमाण है।

जीवन-दशन की दृष्टि से यशपालजी आपेक्षिक रूप से बहुत अपरिग्रही हैं, किन्तु लेखन, सपादन और सकलन के हिसाब मे या मैत्री भाव बनाने और बढाने मे उन पर सचय और परिग्रह का गभीर अभियोग बहुत आसानी से सिद्ध होता है। हिन्दी गद्य की अधिकाश विधाओ मे यशपालजी ने विपुल साहित्य की सरचना की है। मेरा अनुमान है कि तीन सौ से अधिक पुस्तको के साथ उनका नाम लेखक, अनुवादक या सपादक के रूप मे जुडा हुआ है। साहित्यिक अभिव्यक्ति और सृजन की अलग-अलग विधाओ को उन्होंने समृद्ध किया है। यात्रा-साहित्य के अतिरिक्त, निबध, सस्मरण, जीवन-वृत्त, कहानी और बाल-साहित्य मे उनकी देन एक अद्वितीय मानक है। आज भी वे कई अधूरी पाडुलिपिया पूरी कर रहे हैं, नई कृतियो और पुस्तको की परिकल्पना और उनका सयोजन, सकलन, सपादन और प्रणयन कर रहे है। साहित्य और जीवन की यात्रा मे 'चरैवेति चरैवेति' के मत्र का अद्भुत निर्वाह उन्होंने किया है।

यशपालजी एक जिज्ञासु यात्री हैं, यायावर नही। यायावर का मन कही एक जगह नही लगता वह किसी स्थान से जुडता नही। यशपालजी जहा भी होते हैं, वहा सहज रहने की क्षमता उनमे है वे उस स्थान के साथ ऐसे जुडने की प्रकृति और प्रवृत्ति रखते हैं, जैसे अपने ही घर मे हो। उनकी यात्रा सप्रयोजन, सार्थक और मनुष्यमात्र के प्रति अपनेपन की भावना से परिपूर्ण होती है। वे बोलते हैं तो खुलकर, हृदय से हृदय तक। वे देखते हैं तो पूरी तबियत से। सुनते हैं तो पूरे मनोयोग से, आत्मसात करते हुए। मिलते हैं तो हृदय खोल कर। कही भी उदासीनता या अन्यमनस्कता उनको घेर नही पाती। एक फूल की तरह खिलना, अपनी सुगध बांटना उनका सहज स्वभाव है। वही उनकी सही पहचान भी है। लगता है, वे सारे भारत को अपना घर और पूरी धरती को अपना गाव मानते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्बोधन उनकी यात्राओं मे साकार होता है। समूचे विश्व मे उन्होंने सद्भावना के प्रबुद्ध प्रसार का निरतर यत्न किया है। हर देश म प्रवासी भारतीय तथा भारतवशी उन्हें प्रगाढ रूप मे अपना मानते हैं। प्रेम, आदर और आत्मीयता की इस विपुल सम्पदा ने जो समृद्धि यशपालजी को दी है, वह अनन्य है।

मैं यशपालजी के यात्रा-साहित्य को हिन्दी साहित्य की उत्कृष्ट उपलब्धि मानता हू। इसमें मनोरम वृत्तान्त, बहुआयामी कलात्मक चित्राकन और व्याख्या का, सजीव, सकरुण, सस्पद, मानवीय अनुभूतियो और अनुभवों का, व्यापक सदर्भों और मनुष्य जीवन की अन्तर्भूत मार्मिक समानताओ का बेजोड़ समन्वय और सतुलन हुआ है। यदि इस साहित्य को देश, कला और सस्कृतियो के बीच श्रेष्ठ और चिरस्थायी समन्वय-सेतु की सज्ञा दी जाय, तो उसे इस अभिनदन के अवसर की अतिरजित अत्युक्ति न समझा जाय।

हिन्दी-लेखकों की परंपरा में महापंडित राहुल साकृत्यायन और भारतीयता के अप्रतिम अन्वेषक आचार्य रघुवीर के बाद और उनके पद-चिह्नों में देश-विदेश की अविराम अगणित यात्राओं में यशपालजी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन यात्राओं मे यशपालजी के गन्तव्य वही रहे होंगे, किन्तु उनका मन्तव्य, उनकी गति और उनकी विधि अलग थी। वे पुरातत्व-दर्शन, साहित्य और भाषा की बारीकियों की छानबीन करने नही गए, बल्कि उन्होंने एक साहित्यकर्मी यात्री की आंखो से दुनिया को देखा-भाला। साहित्यकार की सहानुभूति और मनुष्य की मनुष्यता का पाथेय लेकर ही वे चले और सतत चलते रहे। इसीलिए उनका यात्रा-साहित्य विशुद्ध यात्रा-साहित्य का उत्तम उदाहरण है।

वस्तुत भाई यशपालजी के अभिनदन का और उनके प्रति सम्मान और स्नेह-शसा के प्रतीक इस उत्सव-ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्यक्रम बहुत पहले हो जाना चाहिए था। सन् १९७२ मे जब यशपालजी का षष्टिपूर्ति-समारोह किया गया था तब 'समन्वयी साधु साहित्यकार' नामक हस्तलिखित ग्रन्थ समर्पित करके ही सयोजकों को सतोष कर लेना पडा था। तभी से यह बात उनके मित्रो और प्रशसको के मन मे बनी हुई थी कि अब भी सभव हो, यशपालजी के लिए एक ग्रन्थ तैयार करना ही है। हमारा यह विनम्र उपक्रम उसी अभिलाषा की पूर्ति है।

हमे यह देखकर बडा आनद प्राप्त होता है कि यशपालजी निरतर गतिशील हैं। वह मानते हैं कि गति मे ही प्रगति है। इसलिए वह रुकते नही। उनका आत्म-चैतन्य सतत बढता ही जाता है। वही उनके पैरो को गति और जीवन को गति प्रदान करता है।

हमारी कामना है कि यशपालजी शतजीवी हो, स्वस्थ रहे और उनकी कार्य-क्षमता मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे।

इस ग्रन्थ की तैयारी मे जिन महानुभावो ने योगदान दिया है, उन सबका हम हृदय से आभार मानते हैं। जिन-जिन सज्जनों को हमने लिखा, सम्पर्क किया, उन्होंने न केवल इस अनुष्ठान का अनुमोदन किया, अपितु मुक्तभाव से सहायता भी दी। यह इस बात का प्रमाण है कि उन सबके अतर मे यशपालजी के लिए कितना गहरा स्थान है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा हमने सामाजिक मर्यादा और सस्कार को सम्पुष्ट करने का एक विनीत प्रयास किया है। वास्तव मे इस प्रयास के उपलक्ष्य से अभिनदन-समिति स्वय गौरवान्वित हुई है, जो सराह-नीय और अभिनदनीय है। उनकी सराहना और उनका अभिनदन सामाजिक मर्यादा और सस्कार का परिचायक है।

अध्यक्ष, श्री यशपाल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ समारोह समिति

नई दिल्ली
सितम्बर १, १९८४

बन्धुवर यशपालजी से मेरा ४४ वर्ष पुराना सबध है। कुण्डेश्वर मे वह छह वर्ष तक मेरे साथ रहे हैं और 'मधुकर' के प्रकाशन में सहयोगी होने के साथ-साथ मेरे प्राय सभी यज्ञो मे उन्होंने अपना भव्य सहयोग अर्पित किया है। मैंने उनके विषय मे विस्तार से लिखा है, जो इसी ग्रथ मे अन्यत्र छपा है। वास्तव मे वह मेरे दाहिने हाथ रहे हैं और आज भी दिल्ली मे बैठे हुए भी वह मेरे कामो मे जितनी सहायता कर सकते हैं, करते रहते हैं।

यशपालजी ने जो कुछ सेवा की है, वह मूक भाव से की है और उसी मे उन्होंने सतोष और आनन्द अनुभव किया है। प्रचार से वह कोसो दूर रहे हैं। यश और कीर्ति की उन्होने कभी आकाक्षा नही की। यह नही कि उन्हे यश मिला नही, देश-विदेश मे उनके प्रशसको की सख्या कम नहीं, पर जो कुछ उन्हे मिला है, वह सहज भाव से ही मिला है। उसके लिए उन्होंने न कभी कामना की और न कोई प्रयास।

सन् १९७२ मे जब उनके जीवन के साठ वर्ष पूरे हुए तो उनके हितैषियो ने उन्हें एक ग्रथ भेंट करने का विचार किया। यशपालजी से पूछा तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। जब बहुत आग्रह हुआ तो उन्होंने एक रास्ता सुझाया। कहा कि मेरे निकट के व्यक्तियो को एक-एक कोरा कागज भेज दीजिए और उनकी शुभ-कामनाए मगाकर, इकट्ठी करके मुझे दे दीजिए। मेरे लिए मुद्रित ग्रथ की अपेक्षा उसका कही अधिक मूल्य होगा। यही किया गया। षष्टिपूर्ति के अवसर पर देश-विदेश से प्राप्त उन मगल कामनाओ को 'समन्वयी साधु साहित्यकार' ग्रथ के रूप मे उन्हे तत्कालीन केन्द्रीय रक्षा मत्री ने समारोहपूर्वक अर्पित किया। वह हस्त-लिखित ग्रथ अपने ढग का निराला ग्रथ था। राजनैतिक, साहित्यिक, सास्कृतिक, शैक्षिक, धार्मिक आदि-आदि क्षेत्रो के विशिष्ट व्यक्तियो की हस्तलिपि का इतना विशाल संग्रह किसी अभिलेखागार मे भी शायद ही मिले।

'जननी जन्म भूमिश्च' खण्ड के अतर्गत कई रचनाएं ब्रज के सबध मे दी गई हैं।

यशपालजी जैन-कुल मे उत्पन्न हुए हैं। जैन धर्मावलम्बी हैं। भगवान महावीर के सिद्धान्तों में उनकी गहरी आस्था है। जैन धर्म, सस्कृति आदि के विषय में पाठकों को बड़ी मूल्यवान सामग्री इस ग्रथ मे प्राप्त होगी।

जैन धर्म ने यशपालजी को व्यापक दृष्टि प्रदान की है, सब धर्मों के प्रति समभाव रखने को प्रेरित किया है। इसलिए यह उचित ही है कि एक खण्ड भारतीय सस्कृति और दर्शन आदि के विषय मे रहे।

फिर कुछ सामग्री हिन्दी साहित्य के विषय मे भी रहनी ही थी, क्योकि यशपालजी ने समाज और राष्ट्र की जो सेवा की है और कर रहे हैं, वह मुख्यत साहित्य के माध्यम से ही की है। अन्त मे उनके जीवन की प्रमुख घटनाओ तथा साहित्य की जानकारी दी गई है।

ग्रन्थ मे क्या है, यह तो पाठक स्वय ही उसे पढ़कर जान सकेंगे, हमने तो केवल उसके ऊपरी रूप पर प्रकाश डाला है। लेकिन इतना हम निवेदन कर देना चाहते हैं कि इस ग्रथ मे बहुत-कुछ ऐसा है, जो पाठको को प्रेरणा दे सकता है। यशपालजी के जीवन मे बडे उतार-चढ़ाव आए हैं, उन्होंने अच्छे-बुरे दोनो तरह के दिन देखे है, किन्तु उनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होंने नीति के मार्ग को कभी नही छोड़ा। इतना ही नही, जिसे उन्होने ठीक माना, उस पर दृढ़तापूर्वक चलते भी रहे हैं। उनकी व्यक्तिगत गुणवत्ता पर हमने अपने सस्मरणो मे विस्तार से चर्चा की है। उसे दोहराना नही चाहते, लेकिन इतना हम निस्सकोच कह सकते है कि यशपालजी मे कुछ ऐसी विशेषताए हैं, जो सामान्यतया दूसरो मे नहीं मिलती। वह परिश्रमशील हैं, मुक्तभाव से लिखते हैं और मुक्त भाव से अपनी बात भी कहते हैं। अपनी लेखनी और अपनी वाणी पर उन्होंने कभी कोई अकुश स्वीकार नही किया।

वर्तमान युग मे जबकि मूल्यो का सकट उपस्थित हो गया है, यह काम आसान नहीं कि व्यक्ति जो चाहे, वह कहे और जो चाहे, वह लिखे। पर यशपालजी ने वह रास्ता आरभ से ही चुना है और अब भी उसी रास्ते पर निर्भीकतापूर्वक चले जा रहे है। इसमे जो खतरे हैं, उनकी उन्होने कभी परवा नही की।

यशपालजी की एक खूबी और है, जिस पर इस ग्रन्थ मे बहुत-कुछ कहा गया है। वह अतीत में जो कुछ हो चुका है, उसकी चिन्ता नही करते, भविष्य मे जो होने वाला है, उसके सोच-विचार मे भी अपना समय नष्ट नही करते, वर्तमान मे जो कार्य उनके सामने है, उसी पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं और अपने फर्ज को ईमानदारी से निभाते हैं।

यशपालजी ने हजारो-लाखो मील की यात्राए की हैं। वह अपने देश मे कई बार घूमे हैं और विश्व के भी अधिकांश देशो मे हो आए हैं। अपनी इन यात्राओ मे उन्होने इस बात का प्रयत्न किया है कि वह दूसरो की अच्छाइया देखें और अपने समाज और राष्ट्र की अच्छाइया उन्हे दिखावे। भाई विष्णु प्रभाकर ने उन्हें ठीक ही 'चिरयात्री' कहा है और श्रद्धेय काकासाहब ने भी बडे पते की बात कही थी कि यशपालजी ने विदेशो मे जो अच्छाइयां देखी हैं, उन्हे कृपण की भाति अपने तक ही सीमित नही रखखा, मुक्तभाव से दूसरो को दिया भी है। देश-विदेश की यात्राओ के विषय मे उन्होंने जितना लिखा है, उतना बहुत कम लेखक लिख पाए हैं। रेडियो तथा दूरदर्शन के द्वारा भी उन्होने भारत और दूसरे देशो के बीच सांस्कृतिक सेतु निर्माण करने का प्रयत्न किया है। वह जिन-जिन देशो मे गए हैं, उनमे से कुछ के विवरण इस ग्रथ मे दिये गए हैं। उनसे पाठको को पता चलेगा कि विदेशो में यशपालजी का योगदान कितना महत्वपूर्ण रहा है।

हिन्दी मे बहुत-से अभिनदन-ग्रथ निकले हैं। अब भी निकलते रहते हैं। स्वय यशपालजी ने ऐसे कई ग्रन्थ 'सस्ता साहित्य मडल' तथा अन्य सस्थाओ से प्रकाशित किए हैं। उन ग्रन्थो की सामग्री का सग्रह और सम्पादन

इस ग्रथ को यशपालजी को भेंट कर तो दिया, पर उतने से उनके हितैषियों को सन्तोष नही हुआ। उन्होंने लगभग एक वर्ष पूर्व अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए चतुराई से काम लिया। उन्होंने ग्रथ का कार्य चुपचाप आरम्भ कर दिया। यशपालजी को कानोकान खबर नही होने दी और जब वह अपने प्रयत्न मे इतना आगे बढ़ गए कि पीछे लौटना सभव नही था तो उन्होंने यशपालजी से चर्चा की। यशपालजी ने उसका स्वागत नहीं किया। उनका कहना था कि मैंने कोई ऐसा कार्य नहीं किया कि मेरे लिए इस प्रकार के सम्मान की व्यवस्था की जाय। मुझसे कही अधिक सेवा करने वाले असख्य व्यक्ति हमारे बीच विद्यमान हैं। उनके लिए कुछ किया जाय तो उसकी सार्थकता होगी। पर जब उन्होंने सयोजको की विवशता देखी तो सुझाया कि यदि आपको ग्रथ तैयार करना ही है तो उसे व्यक्ति-परक न बनाकर उन मूल्यों को समर्पित कीजिए, जिन्हे मैंने अपने जीवन मे सबसे अधिक महत्व दिया है। व्यक्ति आता है, चला जाता है, लेकिन मूल्यो का महत्व तो सदा रहता है। सयोजको ने इस बात को मान लिया।

प्रस्तुत ग्रथ के पीछे यही भावना है। यशपालजी ने मानवीय मूल्यो को सदा सर्वोपरि माना है। ग्रथ की अधिकाश सामग्री मानवीय मूल्यो की ओर ही सकेत करती है। ग्रथ के बहुत-से पृष्ठ यशपालजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय मे हैं, किन्तु उनसे भी वही ध्वनि निकलती है।

यशपालजी के मित्रो, साथियो, सम्बन्धियो आदि का समुदाय बहुत बडा है, वे यशपालजी के प्रति गहरा अनुराग रखते हैं। उनके अभिनदन-ग्रथ के लिए मगल कामनाए और सस्मरण बडी सख्या मे प्राप्त होना स्वाभाविक है। इन मगल कामनाओ और सस्मरणो का सग्रह प्रथम खड मे कर दिया गया है। सस्मरण हमारा मुख्य विषय है और हम कह सकते हैं कि इस ग्रथ मे जो सस्मरण दिये गये हैं, उनमे अत्यन्त हार्दिकता है, कुछ सस्मरण तो बहुत ही मार्मिक है। यशपालजी के परिवार के सदस्यो के लिखे सस्मरण तो विशेष रूप से रोचक और मधुर बन पडे हैं।

यशपालजी का जीवन-पटल बडा ही विस्तृत है। उनका कर्म-क्षेत्र मुख्य रूप से साहित्य रहा है। उन्होंने अनेक विधाओ मे साहित्य का निर्माण किया है। कहानियां, कविताए, सस्मरण, निबध, यात्रा-वृत्तान्त आदि न जाने क्या-क्या लिखा है। कई पत्रों का सम्पादन भी किया है। उनमे सामयिक समस्याओ पर बडी निर्भीकता से टिप्पणिया लिखी हैं। उनकी रचनाओ मे से चुनी हुई कृतिया इस ग्रथ मे दी गई हैं।

लेकिन उससे पहले के एक खण्ड की ओर मैं पाठको का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहता हू। वह खण्ड है, 'जीवन के विविध सोपान।' यह खण्ड आत्मकथात्मक है, जिसे यशपालजी से इस ग्रथ के लिए आग्रहपूर्वक लिखवाया गया है। इसमे उन्होंने बताया है कि उनके जीवन पर कब और किस प्रकार के सस्कार पडे और उनके पीछे किस-किसका हाथ रहा। यशपालजी का प्रमुख गुण कृतज्ञता है। वह दूसरो के उपकार को, चाहे वह उनके सबधियों द्वारा किया गया हो या मित्रों द्वारा अथवा किसी विरोधी द्वारा, कभी भूलते नही और उसका बडी सहृदयता से स्मरण भी करते हैं। इस खंड की सामग्री मे जहा उन्होंने अपने पूज्य माता-पिता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है, वहा अपने अनेक छोटे-बडे उपकार-कर्ताओ को भी बडे आदर से याद किया है।

जिस प्रकार व्यक्ति अपने जनक और जननी का चिर-ऋणी होता है, उसी प्रकार वह उस पवित्र भूमि का भी ऋणी होता है, जो उसे जन्म देती है। यशपालजी का जन्म ब्रज मे हुआ है। धर्म-अध्यात्म, साहित्य-सस्कृति, कला-इतिहास तथा अन्य दृष्टियो से ब्रज की भूमि महान है। यद्यपि यशपालजी के दोनों बच्चो (सुपुत्री सौ अन्नदा और आयु सुधीर) का जन्म विध्य-भूमि मे हुआ है और वे उस पावन भूमि को बडा सम्मान देते हैं, फिर भी ब्रज की भूमि उन्हे कभी विस्मृत नही हो पाती। उस ऋण को ध्यान मे रखकर

उन्होंने स्वयं ही किया है। बड़े आकार के मेरे ६२० पृष्ठ के ग्रंथ 'प्रेरक साधक' की अधिकांश सामग्री एकत्र करने से लेकर सम्पादन करने, यहां तक कि प्रूफ देखने तक का, सारा कार्य उन्होंने स्वयं अकेले ही किया था।

मुझे विस्मय होता है कि एक व्यक्ति इतना काम कैसे कर लेता है। यशपालजी पर 'सस्ता साहित्य मंडल' जैसी विशाल राष्ट्रीय प्रकाशन-संस्था की पूरी जिम्मेदारी है, वह 'जीवन साहित्य' का सम्पादन करते हैं, नैतिक धरातल के कुछ अन्य पत्रों के सम्पादन में योग देते हैं, देश-विदेश की यात्राए करते हैं, अनेक संस्थाओं से सक्रिय रूप से सम्बद्ध हैं, सभाओं और गोष्ठियों में भाग लेने जाते हैं और इसके साथ-ही-साथ विभिन्न पत्रों में लिखते हैं और खूब लिखते हैं।

मैं उनसे प्राय कहता रहता हू कि इतनी भाग-दौड़ मत करो, सहज भाव से बन पड़े, उतना काम करो, पर वह मानते कहा हैं?

उनके एक साथ इतना काम कर लेने का रहस्य मुझे यह दिखाई देता है कि वह काम को कभी बोझ मानकर नहीं करते और जो भी काम करते हैं, उसे रस-पूर्वक करते है। समय का मूल्य वह अच्छी तरह जानते हैं। प्रमाद को पास नही फटकने देते। बापू कहा करते थे कि हमारे सामने जो काम है, उसे करने की भगवान शक्ति भी देता है। यदि हम अपने काम को नही निबटाते तो भगवान की दी हुई शक्ति का उपयोग नही करते। बंधुवर वासुदेवसरण अग्रवाल का कथन था कि जो काम करना हो, तत्काल कर डालो। हममे से बहुत से लोग जीवन के सर्वोत्तम क्षणो को आलस मे खो देते हैं। यशपालजी के लिए एक क्षण भी व्यर्थ जाने देना संभव नही है। यही कारण है कि वह बहुत से काम आसानी से निबटा लेते हैं।

यशपालजी को अनेक महापुरुषो के निकट सम्पर्क मे आने का अवसर मिला है। उनके कुछ संस्मरण, उनकी 'आलोक की रेखाए', 'राष्ट्र की विभूतिया' और 'सेतु-निर्माता' पुस्तको मे छपे है। 'सेतु निर्माता' मे उन्होंने विदेशी विद्वानो, लेखको, सामाजिक कार्यकर्ताओ, इतिहासज्ञो, भाषाविदो के बड़े ही रोचक और रोमांचकारी संस्मरण लिखे हैं। उस पुस्तक पर उन्हे दूसरी बार 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' मिला था। पहली बार 'रूस मे छियालीस दिन' पर मिला था।

यशपालजी ने सारी दुनिया छान डाली है। यूरोप, अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया, कैनेडा, अमरीका, दक्षिण अमरीका कोई भी देश तो उनसे नही छटा है। पिछले दिनो जापान और चीन भी घूम आए है। उनकी खासियत यह है कि वह जहा कहीं जाते हैं, आखें खोलकर जाते हैं कोई पूर्वाग्रह साथ नही ले जाते। इसलिए जहां भी जाते हैं, वही उनके हाथ रत्न पड जाते है।

एक बात और भी है। यशपालजी मे व्यर्थाभिमान नही है। अपने देश को, अपनी भाषा को वह गौरव प्रदान करते हैं, लेकिन उतना ही आदर वह दूसरे देशो और दूसरी भाषाओ को भी देते हैं।

[इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता ही यह है कि इसमे एक परम आस्थावान, आशावादी, मूक और मुक्त व्यक्ति की कहानी है। इस ग्रंथ को जो भी पढ़ेगा, उसे कुछ-न-कुछ अवश्य प्राप्त होगा।]

यशपालजी अपने जीवन के बहत्तर वसंत देख चुके हैं। उम्र मे वह मुझसे २० वर्ष छोटे हैं। मेरे प्रति वह बड़ी आत्मीयता रखते हैं। मेरे दिल मे भी उनके प्रति बड़ा स्नेह है। मैं उन्हे आशीर्वाद देता हू कि वह अभी और बहुत वसंत देखें और उनकी कार्य-क्षमता मे उत्तरोत्तर वृद्धि भी होती रहे।

चौबों का मोहल्ला,
फीरोजाबाद

—बनारसीदास चतुर्वेदी

सम्पादकीय

हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार और चिन्तक श्री यशपाल जैन के प्रति सम्मान अर्पित करने की पुनीत भावना से एक ऐसा अभिनदन-ग्रन्थ प्रकाशित करने का सकल्प बहुत समय से था, जिसमे उनके बहुमुखी व्यक्तित्व तथा कृतित्व की विशद जानकारी प्रस्तुत करने के साथ-साथ उन क्षेत्रो और विषयो का भी प्रामाणिक सदर्भ समाविष्ट हो, जिनमे यशपालजी ने अनवरत अपनी निष्ठा और तत्परता से उल्लेखनीय योगदान दिया है।

लेकिन जब-जब यशपालजी से इस सकल्प की चर्चा की जाती थी, तब-तब वे इन्कार कर देते थे। परिणामस्वरूप यह निश्चय विलम्बित होता गया। इस बार हमने अपने उस सकल्प की सम्पूर्ति की दिशा मे चुपचाप आगे कदम बढ़ा दिया, किन्तु जब यशपालजी को मालूम हुआ तो उन्होने अत्यन्त अन्यमनस्क भाव से कहा, "ठीक है, जब आप पीछे नही हट सकते तो मत हटिये, लेकिन कृपा करके ग्रथ को मेरे प्रति नही, उन जीवन-मूल्यो के प्रति समर्पित कीजिये, जिन्हे मैंने सर्वोपरि माना है।"

उनकी इस इच्छा का हम पूरी तरह तो पालन नही कर पाये, फिर भी हमने इस बात का विशेष प्रयत्न किया है कि ग्रथ मे जो भी सामग्री दे, वह मानवीय मूल्यो को ही प्रतिष्ठापित करे। इस दृष्टि से ग्रथ को हमने १ 'सदेश और शुभकामनाए', २ 'अशेष आशीष', ३ 'जीवेम शरद शतम्', ४ 'व्यक्तित्व और कृतित्व', ५ 'प्रवासी भारतीयो के बीच', ६ 'जीवन के विविध सोपान', ७ 'रचना-ससार', ८ 'जननी जन्म भूमिश्च', ९ 'जैन सस्कृति', १० 'भारतीय सस्कृति' और ११ 'हिन्दी का वैभव' आदि खण्डो मे विभाजित करके अत्यन्त उपादेय और प्रामाणिक सामग्री देने का विनम्र प्रयास किया है।

इसके 'व्यक्तित्व और कृतित्व' खण्ड मे जहां कुछ दिवगत विभूतियो के सस्मरण 'पुण्य पुरुषो की कलम से' शीर्षक के अन्तर्गत दिये है, वहा अनेक समकालीन महानुभावो की बहुविध अनुभूतियो से परिपूर्ण सस्मरण भी 'समकालीनो की दृष्टि मे' शीर्षक से समाविष्ट किये है। यशपालजी की पारिवारिक परिधि मे आने वाले

अनेक महानुभावो के सस्मरण इसमे 'पारिवारिक परिवेश' शीर्षक से सम्मिलित किये गए हैं।

ग्रथ का 'रचना-ससार' खण्ड अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे यशपालजी के बहुआयामी कृतित्व के कुछ प्रामाणिक सदभ प्रस्तुत किये गए हैं। सदर्भों मे समाविष्ट सामग्री को देखकर हमारे पाठक अवश्य ही चकित तथा विस्मित होगे कि इतनी व्यस्तताओ मे रहते हुए भी यशपालजी ने अपनी लेखनी से कितना उज्ज्वल अवदान दिया है।

इस ग्रथ का 'जीवन के विविध सोपान' नामक खण्ड हमनेय शपालजी से अत्यन्त आग्रह तथा अनुरोध-पूर्वक लिखवाया है। इस आत्मकथात्मक विवरण मे उनके जीवन के विविध सोपानो का बडा ही सजीव वर्णन है। यह कहने मे अतिशयोक्ति नही होगी कि यह खण्ड ग्रन्थ का प्रमुख आकर्षण बन गया है।

अन्त मे परिशिष्ट शीषक के अन्तर्गत जहा यशपालजी के 'वश वृक्ष' को प्रस्तुत किया है, वहा उनके जीवन की प्रमुख घटनाओ और रचनाओ की भी विशद जानकारी प्रस्तुत की गई है।

सबसे अधिक कठिनाई हमे 'रचना-ससार' खण्ड के लिए यशपालजी के विपुल साहित्य मे से सामग्री का चयन करने म हुई। उनके द्वारा लिखित कहानियो, कविताओ, सस्मरणो और यात्रा-वृत्तान्तो आदि सभी का भण्डार अत्यन्त समृद्ध था। यह निर्णय करना बडा कठिन था कि किस रचना को ले और किसे छोडें। हमने ग्रथ के पृष्ठो की अधिकतम सीमा ६५० निर्धारित की थी, लेकिन बाद मे उसे बढाकर ८०० से कुछ ऊपर करना पडा। इतना होते हुए भी हमे 'जननी जन्म भूमिश्च', 'जैन सस्कृति', 'भारतीय सस्कृति' तथा 'हिन्दी का वैभव' खण्डो के अनेक लेखो को अनिच्छापूवक छोडने के लिए विवश होना पडा, जिसके लिए हम उनके लेखको से क्षमाप्रार्थी हैं।

हमारे अनुरोध पर जिन बधुओ ने अपनी रचनाए भेजने की महती कृपा की, उन सबके हम अत्यत आभारी हैं। सामान्य पुस्तको की अपेक्षा ग्रथ के लिए लिखना अधिक परिश्रम-साध्य होता है। हमे यह लिखते हुए बडी प्रसन्नता हो रही है कि ग्रथ की सभी रचनाओ को प्रस्तुत करने मे लेखक बधुओ ने बडा परिश्रम किया है, विशेषत ब्रज भूमि, हिन्दी साहित्य तथा जैन और भारतीय सस्कृति से सबधित रचनाओ मे। य सभी रचनाए एक प्रकार से शोध-प्रबधो के समान हैं।

ग्रथ के सबध मे इससे अधिक कुछ कहना अनावश्यक होगा। पाठक ग्रथ को पढेगे तो स्वय अनुभव करेगे कि उसके प्रत्येक खण्ड की सामग्री कितनी मूल्यवान है। इसके पढने से पता चलता है कि मानवीय मूल्यो का बडा ही महत्व है और जो उनकी आराधना करता है, वह न केवल स्वय धन्य होता है, प्रत्युत दूसरो के लिए भी एक प्रेरक शक्ति बन जाता है।

अभिनदन-ग्रथो की परम्परा बहुत पुरानी है। जो समाज की सेवा करते हैं, समाज उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता ही है। उसी मे से अभिनदन-ग्रथो की परम्परा का उदय हुआ। विगत वर्षों मे बहुत-से अभिनदन-ग्रथो का प्रकाशन हुआ है, किन्तु हमारी ऐसी मान्यता है कि सामग्री की उपादेयता की दृष्टि से प्रस्तुत ग्रथ का विशेष महत्व है, क्योकि इसके द्वारा वे मूल्य उजागर होते हैं, जो आज सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए स्पृहणीय हैं।

हम आशा करते हैं कि इस ग्रथ को सभी क्षेत्रो और सभी वर्गों के बीच आदर प्राप्त होगा।

अजय निवास, दिलशाद कालोनी
शाहदरा, दिल्ली-३२

–क्षेमचन्द्र 'सुमन'

सदेश और शुभकामनाएं

उद्बोधन और मगलाकांक्षा

अशेष-आशीष

जीवेम शरदः शतम्

व्यक्तित्व और कृतित्व

अ। पुण्य पुरुषों की कलम से

136 समकालीनो की दृष्टि में

29 पारिवारिक परिवेश

16 प्रवासी भारतीयो के बीच

15 जीवन के विविध सोपान

रचना-ससार

7 कहानियां

संस्मरण

निबन्ध

बोध-कथाए

यात्रा-वृत्तांत

सामयिक टिप्पणियां

सूक्तियां ५३८

कविताए

17 जननी जन्म भूमिश्च

6 जैन सस्कृति

18 भारतीय सस्कृति

४ हिन्दी का वैभव

३ परिशिष्ट

इस खण्ड में अनेक महापुरुषों के उद्बोधक विचार और वरिष्ठ जनों के मगल-वचन तथा देश-विदेश से प्राप्त शुभकामनाए सग्रहीत की गई है। सन् १९७२ मे षष्टि-पूर्ति के अवसर पर श्री यशपालजी को एक विशाल हस्त-लिखित ग्रथ 'समन्वयी साधु साहित्यकार' भेंट किया गया था। उसके लिए मगल कामनाए भेजने वाले महानुभावों में से जो हमारे बीच नहीं रहे, उनके उद्गार 'अशेष आशीष' उप खण्ड में दे दिये गए है। शेष तथा अन्य 'जीवेम शरदः शतम्' उपखण्ड में सम्मिलित किये गए है।

इन भावोद्गारो को पढकर पता चलता है कि यशपालजी के प्रति देश-विदेश में कितनी आत्मीयता है।

उद्बोधन और मंगलाकांक्षा

मैं महसूस कर रहा हू कि लोकमान्य तिलक और महात्मा गाधी जैसे जो महानुभाव हिन्दी भाषी प्रान्तो मे पैदा नही हुए थे, इन सबने आजादी की लडाई हिन्दी के द्वारा ही लडी थी। यह हिन्दी इतनी प्रचलित है कि प्रान्तीय भाषाओ के शब्दो को भी हजम करती है। भारत के निवासियो को यह समझ लेना चाहिए कि हिन्दी के बिना हमारी आजादी अधूरी है। हिन्दी भाषा न तो पजाबी को मारना चाहती है, न गुजराती को, न मराठी को और न तमिल, तेलुगु और बगला को ही। वह तो सबको जिन्दा रखने के लिए तैयार है। हिन्दी ही हमे जिन्दा रख सकती है। जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओ ने इसी भाषा के द्वारा सारे देश को अग्रेजो के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार किया था। इसी भाषा से हम आगे बढ़े हैं और यही भाषा हमको आगे बढा सकती है।

—ज्ञानी जैलसिंह
राष्ट्रपति, भारत

यह भारी परिवर्तन का जमाना है। हम सबका कर्त्तव्य है कि दृढ़ता से, एक होकर, देखें कि हममे क्या बुराइया हैं और उन्हे दूर करें। जो कदम हमको उठाने हैं, उनको एक एक कर मजबूती से उठावेंगे तो कोई ताकत नही, जो हमको कमजोर बना सके और पीछे हटा सके। इसके लिए सब अपने-आप से प्रतिदिन प्रश्न पूछें कि मैंने अपने देश के लिए क्या किया और जो काम किया, क्या वह परिश्रम और ईमानदारी से किया ? अगर इसका ठीक जवाब अपनी तरफ से दे पाएगे तो आप देखेंगे कि हमारी प्रगति कितनी तेज रफ्तार से होती चली जायगी। हजारो वर्ष हुए महात्मा बुद्ध ने कहा था कि मुझे इससे वास्ता नही कि दूसरे क्या कर रहे हैं और क्या नही कर रहे है, मेरी चिन्ता तो यह है कि मैं क्या करता हू और क्या नही करता हू। यही धारणा प्रत्येक नागरिक को आज रखनी है। हर एक देखे कि हम ठीक रास्ते पर चले, देश की सेवा करे, समाज की सेवा करे, उससे यह समाज मजबूत होगा।

हमे बहुत तेजी से चलना है। उसके लिए हमारे पास शक्ति भी है, जानकारी भी है। उसका पूरा उपयोग करना है।

—इंदिरा गाधी
प्रधानमत्री, भारत
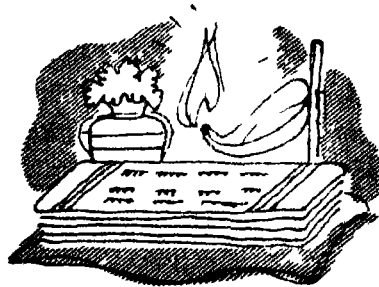
कोई असत्य से सत्य को नही पा सकता। सत्य को पाने के लिए हमेशा सत्य का आचरण करना ही होगा। अहिंसा और सत्य की तो जोडी है न ! सत्य मे अहिंसा छिपी हुई है और अहिंसा मे सत्य। इसीलिए मैंने कहा कि सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो रूप हैं। दोनो की कीमत एक ही है। केवल पढ़ने मे ही फर्क है। एक तरफ अहिंसा है, दूसरी तरफ सत्य। सम्पूर्ण पवित्रता के बिना अहिंसा और सत्य निभ ही नही सकते। शरीर या मन की अपवित्रता को छिपाने से असत्य और हिंसा ही पैदा होगी।

इसलिए केवल सत्यवादी, अहिंसक और पवित्र समाजवादी ही दुनिया मे या हिन्दुस्तान मे समाजवाद फैला सकता है।

—मो क गाधी
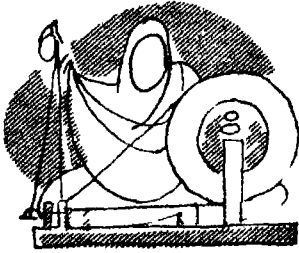
साहित्य का विचार करते समय हमें दो बातों पर विचार करना पड़ता है। प्रथम, लेखक के हृदय का ससार के ऊपर कितना अधिकार है। द्वितीय, यह स्थायी रूप से कितना व्यक्त हुआ है। किन्तु रचना-शक्ति की निपुणता भी साहित्य मे मूल्यवान है, क्योंकि जिसका सहारा लेकर वह शक्ति व्यक्त होती है, उसके अपेक्षाकृत तुच्छ होने पर भी यह शक्ति सर्वथा नष्ट नही होती। यह भाषा तथा साहित्य मे इकट्ठी होती रहती है। इसके द्वारा मनुष्य की प्रकाश करने की क्षमता बढ़ जाती है।

हमारी इन सब बातो को कहने का मतलब यही है कि हमारे भावो की सृष्टि कोई कपोल-कल्पित चेष्टा नही है। वह वस्तु-सृष्टि के समान ही अमोघ नियमो के अधीन है। प्रकाश के जिस आवेग को हम बाह्यजगत् के समस्त अणु-परमाणुओ के अन्दर देखते हैं, चाहे एक ही आवेग हमारी मनोवृत्तियो के अन्दर प्रबल रूप से कार्य कर रहा है। इसलिए जिन आखो से हम पर्वत, जगल, नद-नदी, मरुभूमि और समुद्र को देखते हैं, साहित्य को भी उन्ही आखो से देखना पडेगा—यह भी हमारा-तुम्हारा नही है—यह भी निखिल सृष्टि का एक भाव है।

सत्य को जहा मनुष्य स्थूल रूप मे अर्थात् आनन्द रूप मे, अमृत रूप मे प्राप्त करता है, वही अपने एक चिह्न को खोद देता है। वह चिह्न ही कही मूर्ति, कही मदिर, कही तीर्थ और कही राजधानी हो जाता है। साहित्य भी यही चिह्न है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

यदि तुम दिव्य कर्मों के सच्चे कर्ता बनना चाहते हो तो तुम्हारा पहला लक्ष्य यह होना चाहिए कि तुम सारी कामनाओ से और अपने आपको ही सर्वस्व मानने वाले अहकार से सर्वथा मुक्त हो जाओ। तुम्हारा समस्त जीवन भगवान के प्रति अर्पण और उनके लिए यज्ञ हो। कर्म में तुम्हारा एकमात्र लक्ष्य ही हो भगवती शक्ति की सेवा करना, स्वागत करना, परिपूर्ण करना, उनको प्रकट करने वाला यत्र बनना। तुम्हे भागवत चेतना मे तबतक विकसित होते जाना है, जबतक तुम्हारी इच्छा और उनकी इच्छा मे भेद न रह जाय, तुम्हारे अन्दर उनकी प्रेरणा के अतिरिक्त और प्रेरक हेतु न रहे, कोई कर्म ऐसा न हो, जो तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे द्वारा होने वाला उन्ही का सचेतन कर्म न हो।

जबतक तुम इस सम्पूर्ण सक्रिय एकत्व के योग्य नहीं हो जाते तबतक तुम्हे यही मानना चाहिए कि तुम्हारी देह और आत्मा भगवती मा की सेवा करने के लिए ही बनी है, जो सब कुछ उन्ही के लिए करती है।

—श्रीअरविन्द

धर्म का सबसे बडा सिद्धान्त है कि हमे हर दशा मे अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। परन्तु केवल भोग अथवा स्वार्थ की भावना से नही। यह सिद्धान्त गीता मे कई बार प्रतिपादित हुआ है और ऐसा ही एतद्विषयक उपनिषद आदि वैदिक ग्रन्थो मे मिलता है। जो व्यक्ति निस्वार्थ भाव से परम तत्व के निमित्त अपने समग्र कार्य अर्पित कर अपना कार्य करता है, वह तृष्णा के उस बन्धन से नही बधता, जिससे 'पुनर्जन्म' का उसे भागी बनना पडे। धर्म के सब सम्प्रदाय ऐसा मानते हैं कि कर्म-फल का त्याग करके कम को कतव्य मानकर करना ही सर्वोपयोगी है।

ससार के सभी धर्मों मे ईश्वर को महत् अदृश्य शक्ति माना गया है। हिन्दू भी यही मानते है। सभी धर्म ईश्वर को सर्वव्यापी और अन्तर्यामी मानते है। हिन्दू धम इस मत का सबसे बडा समर्थक है। अत हिन्दू जाति इस मत को सिद्धान्त रूप मे मानती है। ईश्वर की आराधना करते समय, उसे कुछ अर्पित करने मे, यही भाव है कि वह प्राणिमात्र के भीतर निवास करता है और सबकी सुनता है। इस विश्वास ने ससार की किसी भी वस्तु के भीतर प्रतीक रूप मे श्रद्धा और विनय के साथ ईश्वर को प्राप्त करने की पद्धति ढूढ निकाली है। इसे समझाने के लिए पूजा, अर्चन और विविध सन्ध्योपासना की प्रक्रियाए प्रयुक्त होती हैं, जिनके द्वारा किसी मूर्ति के भीतर ईश्वर का आधान किया जाता है, मूर्ति पत्थर की हो या काष्ठ की, अथवा केवल मुट्ठीभर घास, ईश्वर की सगुणो-पासना के लिए पर्याप्त है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

कोई भी शिक्षा-प्रणाली सफल नही मानी जानी चाहिए, यदि वह पूर्ण मानव के विकास मे सहायक न हो, अर्थात जिस प्रणाली के अनुसार व्यक्ति अपने जीवन में, अपने प्रति, अपने समाज के प्रति, देश के प्रति और आज तो विश्व के प्रति अपनी पूरी-पूरी भूमिका अदा न कर सके, क्योंकि हम देख रहे हैं कि विश्व के सारे देश उत्तरोत्तर और धीरे-धीरे, फिर भी निश्चित रूप मे, 'एक विश्व' की ओर बढ़ रहे हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए छात्रो को अपनी ओर से काफी योगदान करना होगा। अध्यापक तो बीज बो देगा, परतु जिसमें यह बीज बोया जाता है, उसमे यह शक्ति होनी चाहिए कि बीज मे अकुर उगे, पनपे, फूले और फले। शिक्षक तो एक माली मात्र है। वह अच्छा बीज या अपने प्रमाद, आलस्य और अज्ञान या बुरी आदतो से बुरा बीज बो देता है। प्राचीन काल मे गुरु अपने आचरण से शिष्य के जीवन और आचरण को बहुत अधिक प्रभावित करता था। गुरु बहुत सम्पन्न व्यक्ति नही होता था, परतु उसे उच्चतम सम्मान मिलता था। उसकी सबसे बडी सम्पत्ति थी ज्ञान और चारित्र्य।

शिक्षक मे वे सारे गुण होने चाहिए, जिन्हे वह अपने छात्रो को देना चाहता है।

आज की एकमात्र आवश्यकता है उत्तम चरित्र के मानदण्ड की स्थापना की और यह सही ढग की शिक्षा से ही सभव हो सकता है।

—राजेन्द्र प्रसाद

यदि धर्मों मे आपसी सघर्ष है तो उसका कारण यह है कि हम रहस्य से दूर भागते हैं और धार्मिक सत्य को बौद्धिक भाषा मे व्यक्त करते है। परम सत्य वाक्यो मे व्यक्त नही किया जा सकता। वास्तव मे हम इसे केवल कल्पना-मूलक प्रतीको द्वारा ही व्यक्त कर सकते हैं। सिद्धान्तो के सबध मे विवादो का परिणाम लोगो मे उन्माद और नेताओ मे सकीर्ण कट्टरता के उदय के रूप मे हुआ है। यदि हमे सत्य के दर्शन करने हैं तो सिद्धान्तो से ऊपर उठना होगा और अपने मानस की गहरी परतो को सूक्ष्म दृष्टि से देखना होगा। धार्मिक अनुभूति के अभाव मे धार्मिक उपकरण मानव की धार्मिक पिपासा को तृप्त नही कर सकते। सच्चे धर्म का अथ है पूण हृदय से आत्म-समर्पण। भक्ति के समय हम अपने आपको सम्पूर्ण रूप से एक समन्वित के प्रति किसी पुरस्कार की आशा किये बिना समर्पित करते है। धार्मिक अनुभूति पृथक करने के बजाय मिलाती है। विलगता की भावना इसमे अतिक्रांत हो जाती है।

नैतिक और सामाजिक प्रगति का आधार हमारे निजी प्रतिकूल स्वभाव तत्वो के बीच सामजस्य और अन्य लोगो के लिए सहानुभूति स्थापित करना है। हमे आतरिक ऐक्य की भावना को प्रोत्साहित करना चाहिए। जिसे योग कहते हैं, वह ऐसा अनुशासन है, जिससे हम इद्रियो की पुकार को और बुद्धि के रूपो को शान्त करते हैं और भीतरी आध्यात्मिक शक्ति को जगाते हैं। आध्यात्मिक पक्ष का उद्‌बोधन उन्ही के लिए है, जिनमे सूझबूझ, दया और प्रेम है।

—सर्वपल्ली राधाकृष्णन

प्यारे नौजवानो, नये हिन्दुस्तान के बनाने के काम मे तुमसे जहां तक बन पडे, हाथ बटाना। मगर याद रहे कि अगर तुम्हारे स्वभाव मे आतुरता है तो तुम इस काम को अच्छी तरह नहीं कर सकते। इस काम मे बडी देर लगती है। अगर तुम्हारी तबियत मे जल्दबाजी है, तो भी तुम काम बिगाड दोगे।

तुम्हारे सामने अपने जौहर दिखाने का अद्भुत अवसर है। मगर इस अवसर का उपभोग करने के लिए बहुत बडे नैतिक बल की आवश्यकता है। जैसे मैमार होगे, वैसी ही इमारत होगी। तुम्हारी पीढ़ी के सारे हिन्दुस्तानी नौजवान अगर अपना सारा जीवन इसी एक धुन मे बितावे, तब कही यह नाव पार लगेगी।

मेरा दिल यही गवाही देता है कि थोडे दिन धक्के खाने के बाद इस देश के नौजवान देश की सेवा के लिए एकदिल हो जाएगे। बलिदानो के लिए तैयार रहने की जरूरत है, अपने इरादे को मजबूत करने और अपने मन की इच्छाओ पर नियन्त्रण करने की जरूरत है। अगर तुममे और तुम्हारे साथी नौजवानो मे ये विशेषताए न हुई और आज ही तुम्हे किसी महात्मा के चमत्कार से राजनैतिक और सास्कृतिक जीवन की अच्छी-से-अच्छी सुविधाए बैठे-बिठाए मुफ्त मे ही प्रकृति की ओर से उपहार मे मिल गई, तो भी याद रखो कि यह उपहार तुम्हारे लिए व्यर्थ होगा।

—ज़ाकिर हुसैन

किसी देश की असल जाग्रति उसके साहित्य से मालूम होती है, क्योंकि उसमें जनता के नये-नये विचार और उमगे निकलती हैं

साहित्य का अर्थ हम कुछ दूसरा ही लगाते हैं। साहित्य किसके लिए होता है? क्या वह थोडे-से ऊपर के पढ़े-लिखे आदमियो के लिए होता है या जनता के लिए? जबतक हम इस सवाल का जवाब न दें, उस समय तक हमे साहित्य के भविष्य का रास्ता ठीक तरह से नही दीखता। हम आम जनता के लिए अपना साहित्य तैयार करे और जनता को हमेशा अपने दिमाग के सामने रखकर लिखें

हर लिखने वाले को अपने से पूछना है, "मैं किसके लिए लिखता हू?"

साहित्य फूल की तरह खिलता है और उस पर दबाव डालने से मुरझा जाता है

हम अपनी नई सस्कृति की ऐसी बुनियाद रक्खें, जिसमे आजकल की दुनिया के विचार जम सके और जब हमारे सामने पेचीदा मसले आवे तो हम बहके-बहके न फिरे।

सस्कृति को एक ऐसा पारस पत्थर होना चाहिए, जिससे हर चीज की आजमाइश हो सके। अगर किसी जाति के पास यह नही है तो वह दूर तक नही जा सकती।

हमे अपने सास्कृतिक मूल्य कायम करने हैं और उनको अपने साहित्य की और सभी कामो की बुनियाद बनाना है।

—जवाहरलाल नेहरू
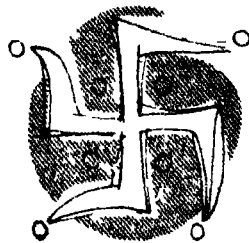
हम सदा से परमाणु हथियारो पर नियंत्रण के पक्ष में रहे हैं। हमारा विचार है कि मानवता को विनाश से बचाने के लिए विश्व के सब राष्ट्रो को मिलकर प्रयत्न करना चाहिए। यूरोप, एशिया और अफ्रीका आदि के जिन देशो के पास परमाणु हथियार नही हैं, उन्हे मिलकर दुनिया के लोगो को परमाणु हथियारों के खतरे को समझाना चाहिए और उसके खिलाफ जनमत तैयार करना चाहिए। इसका असर उन देशो पर भी पडेगा, जिनके पास परमाणु अस्त्र हैं। मैं जानता हू कि हम बड़े कठिन समय से गुजर रहे हैं और हमे बडी समझदारी तथा परस्पर सहयोग से काम करना होगा।

आज मनुष्य-जाति के सामने मूल समस्या शांति और निरस्त्रीकरण की है। जाने कितनी पीढियो से मनुष्य-जाति शाति के लिए व्याकुल रही है। सयुक्त राष्ट्र-सघ के सामने सबसे बडा काम यही है कि ससार से युद्ध का नाम-निशान मिट जाय और युद्ध असम्भव हो जाय। ससार से युद्ध की काली छाया दूर हो जाय। विश्व के अन्य शाति-प्रेमी राष्ट्रों के साथ मिलकर हम इसी लक्ष्य के लिए काम करने का संकल्प करते हैं।

—लालबहादुर शास्त्री

कला के मानी मानव के अन्तरग अस्तित्व की वह सास है, जिसे मृत्यु कभी पराजित नही कर सकती। कला अपनी दशा, अपने देश, और अपने काल की प्रतिनिधि बनकर अपना प्रतिनिधित्व आप करती है। वह एक अन्त करण की मसोस को दूसरे अन्त करण मे पहुचाने की क्षमता रखती है। माना कि कला को तिरस्कृत करने वालो की भी एक पीढ़ी होती है, किन्तु युगो-युगो को भेदती हुई कला आज भी जीवित है।

कला श्रम को माधुर्य से मिलाने और इस तरह अस्तित्व को अमर बनाने का साधन है। कला पर इतिहास की बेलिया, शताब्दिया लिखी होती हैं। इसलिए उसे नष्ट करना, मानव द्वारा अपने सम्पूर्ण विकास की अमर स्मृतियो को नष्ट कर देने के समान है।

कला मे अमीर और गरीब का भेद नही है, पूजा-भावना मे द्वेष नही है, जीवन के स्नेह को दान करते समय भेद-बुद्धि नही है। अत कला द्वारा किया गया प्रचार शाश्वत होता है, बे-रोक-टोक होता है, दिवस और काल को भेदकर होता है, स्थायी होता है।

—माखनलाल चतुर्वेदी

हम यह जानते हैं कि दुनिया का पहला ग्रथ ऋग्वेद है। इसके पहले का कोई लिखित ग्रंथ हमको अबतक नहीं मिला। इसलिए ऋग्वेद ही हमारे लिए एक बहुत प्राचीन प्रामाणिक कृति के रूप मे है। हिन्दुस्तान की एकता का खयाल ऋग्वेद मे भी मौजूद है। ऋग्वेद का एक मत्र कहता है कि इस देश मे दो तरफ से—दो बाजुओ से—दो हवाए बह रही हैं। एक समुद्र की तरफ से आती है, दूसरी पर्वत की तरफ से। जिस समुद्र की तरफ से हवा आती है, उसको हम हिन्द महासागर कहते हैं। मैं देख रहा हू कि हिमालय की गहन गुफाओ से एक हवा आती है और दूसरी सिन्धु से बहती है। इस खयाल से हिन्दुस्तान समुद्र से लेकर हिमालय तक एक है। इसका आध्यात्मिक अर्थ भी है। हम जो श्वासोच्छ्वास लेते है, उसकी उपमा वे ऋषि दे रहे हैं। वे कहते हैं कि प्राणायाम करने वाले योगी अन्दर एक हवा लेते हैं और बाहर दूसरी हवा छोडते हैं। जैसे योगी के अन्दर की गुफा और बाहर का अन्तरिक्ष दो भाग हैं, वैसे ही भारत का हिमालय और समुद्र है। भारत-भूमि भी इसी तरह प्राणायाम कर रही है। हिमालय से वायु छोडती है और समुद्र से लेती है। अब जो अर्थ निकला, उससे यह साफ है कि हिन्दुस्तान की एकता अभी की नही है, बल्कि हजारो वर्ष पहले की है।

—विनोबा

सस्कृति की प्रवृत्ति महाफल देने वाली होती है। सास्कृतिक कार्य के छोटे-से बीज से बहुत फल देने वाला बडा वृक्ष बन जाता है। सास्कृतिक कार्य कल्पवृक्ष की तरह फलदायी होते हैं। अपने ही जीवन की उन्नति, विकास और आनन्द के लिए हमे अपनी सस्कृति की सुध लेनी चाहिए। आर्थिक कार्यक्रम जितने आवश्यक हैं उनसे कम महत्व सस्कृति-सबधी कार्यों का नही है। दोनो एक ही रथ के दो पहिए हैं, एक-दूसरे के पूरक हैं, एक के बिना दूसरे की कुशल नही रहती। जो उन्नत देश हैं, वे दोनो कार्यों को एक साथ सम्हालते हैं। वस्तुत उन्नति करने का यही एक माग है। मन को भुलाकर केवल शरीर की रक्षा पर्याप्त नही है।

सस्कृति मनुष्य के भूत, वतमान और भावी जीवन का सर्वांगपूण प्रकार है। हमारे जीवन का ढग हमारी सस्कृति है। सस्कृति हवा मे नही रहती, उसका मूर्तिमान रूप होता है। जीवन के नानाविध रूपो का समुदाय ही सस्कृति है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

मैं उस दर्शन को हृदयगम नहीं कर सका हू, जो मानव की ज्ञान-उपलब्धि को केवल इन्द्रियोपकरण-जन्य मानता है। पदार्थवादी पण्डित, बाह्य जगत् की, मानवेन्द्रियो पर होने वाली प्रतिक्रिया मे, ज्ञान का आरम्भ देखते हैं। हम सब बाह्य पदार्थों की प्रतिक्रिया, अपनी इन्द्रियो पर होने वाली प्रतिक्रिया से पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। शीत-उष्ण, मधु-कटु, दूर-निकट, घन-तरल, अन्धकार-प्रकाश आदि का ज्ञान नि सन्देह सस्पर्शज है, अर्थात् इन्द्रिय-जन्य है, पर इस ज्ञान को केवल इन्द्रिय कम्पन-जन्य मान लेना इसलिए भ्रमात्मक है कि इस प्रकार के ज्ञान मे मानव ने जो एकसूत्र-बद्धता तथा कार्य-कारणता विकसित की है, वह केवल ऐन्द्रिक प्रतिक्रिया द्वारा उपलब्ध नही होती। मेरी यह सैद्धान्तिक मान्यता इसलिए है कि मैं कला-साहित्य-समीक्षा के उस मानदण्ड को भ्रामक मानता हू, जो प्रत्येक साहित्यिक कृति अथवा कला-कृति को सामाजिक परिस्थिति के ऊपर आत्यन्तिक रूप से आधारित कर देता है।

विचारको मे कई प्रकार का आग्रह होता है। यदि ऐतिहासिक क्रम से हम मानव की कर्म-प्रेरणाओ के सम्बन्ध मे समय समय पर दिये गए कारणो पर विचार करें तो हम यह देखेंगे कि कुछ काल तक एक सिद्धान्त बहुत बल-पूर्वक चलाया जाता है और फिर वह जैसे सामाजिक अचेतन स्तर पर उठाकर रख दिया जाता है, पर कुछ काल तक तो वही सिद्धान्त ध्रुव सत्य के रूप मे प्रतिष्ठित किया जाता है। मानव-कर्म-प्रेरणाओ और मानव के तात्विक विचारो के सम्बन्ध मे यही क्रम दिखलाई देता है।

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
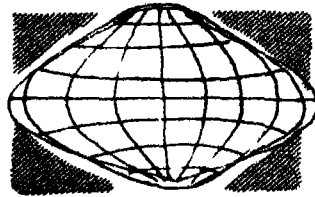
प्रत्येक व्यक्ति या राष्ट्र का उत्थान और पतन उसके आदर्श के अनुसार होता है। आदर्श ही व्यक्ति या राष्ट्र का नेता होता है। उसी व्यक्ति को राष्ट्र अपना नेता मानता है, जो स्वय आदर्श का भक्त हो, जो स्वय आदर्श-रूप हो। आदर्श अतिम गतव्य स्थान है—व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रीय जीवन-रूपी रेलगाडी का आखिरी स्टेशन है। दरमियानी स्टेशनो की तरह आदर्श की यात्रा मे भी अनेक मजिले हैं, परतु रेल के स्टेशन के विपरीत, ज्यो-ज्यो हम उसके नजदीक पहुचने का प्रयत्न करते हैं, त्यो-त्यो वह आगे बढ़ता जाता है। इसी कारण कुछ लोग उसे पाना असभव समझकर छोड देते हैं और निराश होकर अपने पिछले मुकाम पर लौट आते हैं। जीवन के आरम्भ से लेकर आदर्श तक पहुचने की यात्रा को ही व्यवहार या अमल कहते है। व्यवहार आदर्श का साधन है, पोषक है। व्यवहार आदर्श के लिए है, आदर्श व्यवहार के लिए नही है। रेलगाडी हमे अपने अभीष्ट स्थान तक पहुचाने के लिए है। स्टेशन-हीन रेलगाडी की जो दुर्दशा हो सकती है, वही आदर्शहीन व्यक्ति या राष्ट्र की होती है। जो लोग आदर्श का उपहास करके केवल व्यवहार को ही सबकुछ मानते हैं, वे मानो प्राणो की अवहेलना करके शरीर को ही उसका राजा मानने की मूर्खता करते हैं।

—हरिभाऊ उपाध्याय

हम जो प्रेम के कार्य करते हैं, वे और कुछ नही हैं, शान्ति के कार्य हैं। उन्हें हमें और अधिक प्रेम से और अधिक कुशलता से, अपने ढग पर दैनिक जीवन मे, अपने घर मे, अपने पडोस मे, करना चाहिए। प्रभु यीशु ने सदा कहा है

मैं भूखा था, केवल भोजन के लिए नही, बल्कि उस शान्ति के लिए, जो निर्मल हृदय से उत्पन्न होती है।

मैं प्यासा था, पानी के लिए नही, बल्कि उस शान्ति के लिए, जो युद्ध के लिए उन्माद की गहरी प्यास को बुझा देती है।

मैं नगा था, कपडो के लिए नही, बल्कि पुरषो और स्त्रियो की उस सुन्दर गरिमा के लिए, जिसकी वे अपने शरीर के लिए आकाक्षा करते है।

मैं बेघर था, ईंट-चने के घर के लिए नही, बल्कि उस हृदय के लिए, जिसमे समझ है, जो सरक्षण देता है, जो प्रेम करता है।

हम यही करे और प्रभु की शान्ति को आलोकित करे।

ईश्वर प्रेम है और वह तुमसे प्रेम करता है। तुम दूसरो को वैसे ही प्रेम करो, जैसे ईश्वर तुमसे करता है, और इस प्रेम के द्वारा पवित्र बन जाओ, क्योकि जिसने तुम्हे पैदा किया है, वह पवित्र है।

—मदर टैरेसा
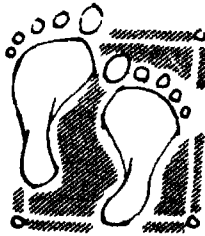
वास्तविकता का यथार्थ दर्शन ही उसका आकलन है। उसीमे से अक्षय प्रेम का, मार्दव का और नम्रता का उदय होता है। शायद आप इसी की शोध मे हो। लेकिन वह शोध के द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है। आप कितना ही प्रयत्न करें, वह प्रयत्नो से नहीं मिलने की। जब सारा शोध समाप्त हो जाता है, तब वह वही पर दिखाई देने लगती है। आपको वस्तुत जो कुछ पूर्वज्ञात होता है, उसी का शोध किया जाता है, लेकिन इस शोध का अर्थ है अधिकाधिक सतोष के पीछे लगना। शोध करना और केवल निस्तब्धतापूर्वक निरीक्षण करना, ये दोनो सर्वथा भिन्न क्रियाएं हैं। एक मनुष्य को बद्ध कर डालती है तो दूसरी उसे सत्य वस्तुदर्शन कराती है। कोई भी शोध किसी साध्य को सामने रखकर किया जाता है। अत वह हमेशा बधन मे डालने वाला होता है, उल्टे अक्रिय निरीक्षण से जो है उसका प्रतिक्षण नया-नया आकलन होता रहता है। जो है, उसका हर घडी निरीक्षण करते हुए, क्षण-क्षण होने का और अत होने का साक्षात्कार होता है। इसके विपरीत शोध करने मे वह नूतन कभी भी उपलब्ध नही होना। सातत्य भग होने पर और समाप्त होने पर ही वह नूतन उदित होता है। यह नूतन ही वह अक्षय, अनत है। इस अनत के दर्शन से प्रेम प्रति-क्षण नव-नूतनता प्राप्त करता है।

—जे कृष्णमूर्ति

संसार मे प्रत्येक सुन्दर वस्तु उसी समय तक सुन्दर है, जिस सीमा तक वह जीवन की विविधता के साथ सामजस्य की स्थिति बनाए हुए है और प्रत्येक विरूप वस्तु उसी अश तक विरूप है, जिस अश तक वह जीवन-व्यापी सामजस्य को छिन्न-भिन्न करती है। अत यथार्थ का द्रष्टा जीवन की विविधता मे व्याप्त सामजस्य को बिना जाने अपना निर्णय उपस्थित नही कर पाता, और करे भी तो उसे जीवन की स्वीकृति नही मिलती, और जीवन के सजीव स्पर्श के बिना केवल कुरूप और केवल सुन्दर को एकत्र कर देने का वही परिणाम अवश्यम्भावी है, जो नरक-स्वर्ग की सृष्टि का हुआ।

यथार्थ यदि सुन्दर है तो यह पृष्ठभूमि तरल जल के समान इसे सौ-सौ पुलको मे झुलाती है और यदि विरूप है तो वह तरल कोमलता हिम का ऐसा स्थिर और उज्ज्वल विस्तार बन जाती है, जिसकी अनन्त स्वच्छता मे एक छोटा-सा धब्बा भी असह्य हो उठता है। इस आधार-भित्ति पर जीवन की कुत्सा देखकर हमारा हृदय काप जाता है, पर एक अतृप्त लिप्सा से नही भर आता।

—महादेवी वर्मा
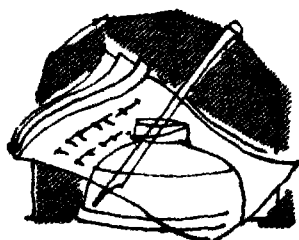
अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि हिन्दी के जाने-माने लेखक तथा भारतीय सस्कृति के उपासक श्री यशपाल जैन को उनके ७३वे वष मे प्रवेश करने के मगल अवसर पर अभिनन्दन ग्रथ समर्पित किया जा रहा है।

श्री यशपाल जैन हिन्दी के उन लब्धप्रतिष्ठ लेखको मे से एक रहे है, जिन्होंने हिन्दी को समृद्ध करने तथा उसका प्रचार-प्रसार करने मे अपना समस्त जीवन समर्पित कर रखा है। उन्होने अपने यौवनकाल मे लेखक के रूप मे स्वतत्रता-सग्राम मे भाग लिया तथा अपने लेखन से राष्ट्र मे चेतना का सचार किया। अभी भी वह इस उद्देश्य की पूर्ति मे लगे है कि भारत की भावी पीढ़ी एकता, सदभाव तथा शाति से मिल-जुल कर देश का भविष्य उज्ज्वल बनाये।

मैं उनके शतायु होने की कामना करता हू तथा ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि श्री यशपाल जैन अनेक वर्षों तक हिन्दी तथा जनमानस की सेवा मे लगे रह।

'श्री यशपाल जैन अभिनन्दन ग्रथ समारोह समिति' को उनके इस प्रयास के लिए मेरी शुभ-कामनायें।

—बलराम जाखड

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री यशपाल जैन ने अपने यशस्वी जीवन के ७२ वर्ष १ सितम्बर, १९८४ को पूर्ण करके ७३वें वर्ष में प्रवेश किया है। यह उचित ही है कि भारतीय सस्कृति और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे उनकी सेवाओ को देखते हुए उन्हे अभिनन्दन-ग्रथ समर्पित किया जाए।

मैं इस अवसर पर अपनी हार्दिक शुभकामनाए प्रेषित करता हू।

—पी वी नरसिंह राव
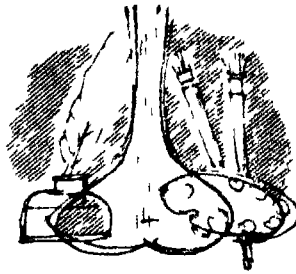
मुझे यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ कि हिन्दी के लेखक और भारतीय संस्कृति के उन्नायक श्री यशपाल जैन के यशस्वी जीवन के ७२ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य मे उन्हे एक अभिनदन-ग्रन्थ समर्पित किया जा रहा है, जिसमे श्री यशपाल जैन के व्यक्तित्व के अतिरिक्त भारतीय दर्शन और हिन्दी साहित्य आदि विभिन्न खण्डो मे स्थायी महत्व की सामग्री का सकलन किया जावेगा।

मैं इस शुभ अवसर पर भगवान से प्रार्थना करता हू कि श्री यशपाल जैन दीर्घायु हो और इसी तरह साहित्य और राष्ट्र की सेवा करते रहें।

अभिनन्दन-ग्रन्थ की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाए।

—वसत साठे

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि हिन्दी के लेखक तथा भारतीय सस्कृति के उपासक श्री यशपाल जैन ने अपने यशस्वी जीवन के ७२ वर्ष पूर्ण करके ७३वें वर्ष मे प्रवेश किया है और उनके लिए एक अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

श्री यशपाल जैन ने हिन्दी साहित्य की सेवा करने के साथ-साथ भारतीय सस्कृति के मूल्यो को भी अपने पाठको तक पहुचाया है। मैं आशा करता हू कि श्री जैन के आदर्शों और सिद्धान्तो पर आधारित यह अभिनन्दन-ग्रन्थ पाठको के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

इस अवसर पर मैं अपनी शुभकामनाए भेजता हू।

—हरिकिशन लाल भगत
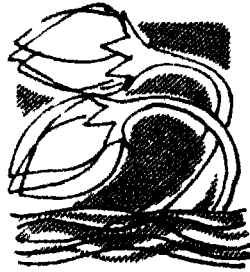
यह जानकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्री यशपाल जैन को उनकी आयु के ७२ वर्ष पूरे होने पर उनकी सेवाओ के उपलक्ष्य मे एक अभिनदन-ग्रन्थ समर्पित करने का निश्चय किया गया है। यह और भी हर्ष की बात है कि इस अभिनदन ग्रन्थ मे उनके स्थायी महत्व की रचनाओ का भी सकलन किया जाएगा।

श्री यशपाल जैन एक उच्च कोटि के लेखक तो हैं ही, उनके सरल व्यक्तित्व, भारतीय सस्कृति मे उनकी गहरी निष्ठा और गाधीजी के विचारो और आदर्शों के प्रति उनके समर्पण के कारण जो भी उनके सम्पक मे आया, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नही रहा। श्री यशपाल जैन आचार्य विनोबा भावे के भी निकट सम्पर्क मे रहे। अत आचार्यजी के विचारों और मानवीय सेवाओं की भी उन पर अमिट छाप है। यह हमारा सौभाग्य ही है कि हमे ऐसे व्यक्ति का सत्सग मिलता रहे, जो विनोबाजी के साथ बहुत दिनों तक रहे हैं।

वह ७२ वर्ष के हो गए, यह तो मेरे लिए आश्चर्य की बात है। मैं तो समझता था वह मुश्किल से साठ वर्ष के हुए होंगे। जो हो, मैं चाहूगा कि वह दीर्घजीवी हो—कम-से-कम सौ वर्ष के जरूर हो, ताकि उनकी सेवाओ का लाभ न केवल हिन्दी साहित्य को, बल्कि समस्त समाज और भारतीय सस्कृति को मिलता रहे। मेरी शुभकामनाए उनके साथ है और रहेंगी।

—चन्दूलाल चन्द्राकर

प्रिय भाई यशपाल जैन से मेरी पहली भेट, जहा तक याद पडता है, सन् '३५ मे आदरणीय जैनेन्द्रजी के दरियागज वाले घर मे हुई थी। लखनऊ से मेरे साथ भाई ज्ञानचन्द जैन भी गए थे। तब हम तीनो ही नवयुवक कहानीकार थे। यशपालजी की सरल और सहज मुस्कान जो उस समय मैंने देखी थी, वह आज तक उनके चेहरे पर वैसी ही नजर आती है, यानी कि उनकी काया ही बूढ़ी हुई है, मन नही। यशपालजी का व्यक्तित्व गाधीवाद और स्याद्वाद की द्विधातुओ से ढला है। वह सदाचरण, सद्व्यवहार, सैद्धान्तिक निष्ठा, कर्तव्यशीलता और कर्मठता आदि दिव्य गुणो से विभूषित है।

यशपालजी के ७३वे जन्मदिवस के शुभ अवसर पर मैं उनकी सौ जीवनसगिनी को सप्रणाम अपनी शत्-शत् बधाइया अर्पित करता हू। उनका सौभाग्य अभी अनेकानेक वर्षों तक भाई यशपालजी की मुस्कान जैसा ही तरोताजा बना रहे। कुर्यात् सदा मगलम्।

—अमृतलाल नागर
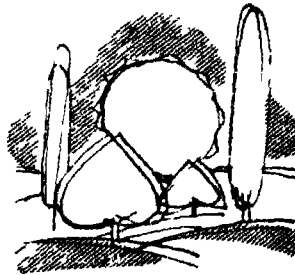
षष्टि-पूर्ति के अवसर पर, १९७२ में
प्राप्त आशीष-वचन और मंगलकामनाए

जब से, लगभग दो साल से, श्री यशपालजी जैन मेरे परिचय मे आये हैं तभी से हमारा घनिष्ठ, गाढ़ प्रेम का सम्बन्ध हो गया है। आप एक बहुत अच्छे और सुप्रसिद्ध साहित्यकार तो हैं ही और निरभिमानी समाजसेवी भी, परन्तु इससे भी बढकर आप एक सच्चे, निष्ठावान् आध्यात्मिक जिज्ञासु हैं, ध्यानयोग के उच्च साधक हैं। साहित्यकार होना बहुत अच्छी बात है, परन्तु यदि साहित्यकार बाह्य ससार और अन्तरचित्त के सकल्पो, विकल्पो, वासनाओ और सस्कारो मे ही उलझा रह जाये, यदि उसकी पहुच चित्त से परे, चित्त के दृष्टा, चित्त को चेतित करने वाले, मन के मता, मन को मनन-शक्ति प्रदान करने वाले, शुद्ध अतर साक्षी, आत्मदेव तक न हो तो वह साहित्यकार समाज का मार्गदर्शन नही कर सकता। वह समाज को केवल अधकार से अन्धकार मे, भय से भय मे, मृत्यु से मृत्यु मे ही ले जा सकता है। उसका साहित्य जीवनदायक, आनन्दप्रद, अमृततत्व से वचित रह जाता है। यशपालजी जैसे ही मेरे सम्पर्क मे आये, उनकी अन्तरशक्ति जाग्रत हो गई। वे ध्यान द्वारा स्वत की अन्तर गहराइयो मे उतरे और उन्हे आन्तरिक जगत के अद्भुत दर्शन एव चमत्कारी अनुभव हुए।

यशपालजी इतने प्रतिष्ठित होने पर भी गर्वरहित, सरल, गुणग्राही और गुणीजनो का सम्मान करने वाले है। आज के युग मे जबकि ईर्ष्या, मात्सर्य, द्वेष और अहकार लोगो को इतने जल्दी आ दबोच लेते हैं, यशपालजी इन दोषो से मुक्त रहे हैं। आप मे शिष्यभाव, गुरुभक्ति भाव, छोटे होके सीखने का भाव कूट-कूट कर भरा हुआ है।

आप दीर्घायु हो, आप ध्यानयोग मे उत्तरोत्तर अन्तर भूमिकाओ को प्राप्त करते चलें, आपके जीवन, व्यक्तित्व तथा साहित्य मे आत्म-प्रभा का तेज झलके, आत्मस्फूर्ति स्फुरित हो, आत्मरस प्रवाहित हो—यही मेरा आपको आशीर्वाद है।

यशपालजी,

आपको ध्यावो, आपको पूजो,
आपको वन्दो, आपको जपो
आप मे ही आप होके रम रहो।

—(स्वामी) मुक्तानंद परमहस
गणेशपुरी

भैया श्रीयशपाल जैन का सबसे पहला परिचय मुझे हमारे दिल्ली चातुर्मास के निमित्त से ही हुआ। दिल्ली चातुर्मास मे चारित्र्य-शुद्धि समिति (जो कि श्रीमन् नारायणजी के सुझाव से शुरू हुई थी) के सन्दर्भ मे यशपालजी ने स्वय उल्लेखयोग्य सहयोग दिया और अपने मामाजी (श्री जैनेन्द्रकुमार) आदि का भी सहयोग दिलाया। उस समय दिल्ली के मसाला-व्यापार से सबधित व्यापारियो के नैतिक सगठन का काफी प्रयत्न हुआ था। आचार्य तुलसी के साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओ ने भी मिलावट निवारण की प्रतिज्ञाए दिलाने मे और बिना मिलावट की दुकानें लगवाने मे अच्छा योगदान दिया था। और मुझे कहना पड़ेगा कि भाई यशपालजी ने आचार्य तुलसी के समुदाय का अनुसन्धान हमारे साथ कराने मे भी अच्छा सहयोग दिया था।

यो समाजसेवी प्रकृति के यशपालजी साहित्यिक क्षेत्र मे भी विशेष पुरुषार्थी रहते आए हैं। साहित्यिक सेवा और जन सेवा दोनो का सुगम मिलन श्री यशपालजी के जीवन मे होने से उनके साहित्य में सजीवता उभरती हुई दिखाई देती है और प्रकृतिगत समाजसेवी होते हुए और सहज अच्छे साहित्यकार भी होने से उनकी समाजसेवा रस से परिपूर्ण रहती है। जैन आगमो मे 'ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष' जो कहा गया है, वह अनुभवगत सत्य भाई यशपालजी की लेखनी और जीवन के साथ ओतप्रोत बनने से सार्थक हो उठता है।

ऐसे प्रेरणापात्र व्यक्तियों के गुणानुवाद करने की क्षमता हमारे समाज मे दिन-ब-दिन बढ़ती जाय, ऐसी उम्मीद रखता हू। गुण पूजा ही जैन धर्म की असली बुनियाद है। उस बुनियाद के ऊपर ही जैन धर्म टिकेगा और विकसेगा। सख्या ज्यादा हो या कम हो वह कभी जैन धर्म की बुनियाद न भतकाल मे बनी थी, न भविष्य मे बनने वाली है।

मैं श्री यशपालजी जैन की दीर्घायु और स्वास्थ्ययुक्त जीवन की शुभ प्रार्थना करता हू। मुझे आशा ही नही अपितु पूर्ण विश्वास है कि श्री यशपालजी जैन दिन-ब-दिन अपने व्यक्तिगत और समाजगत जीवन की उन्नति ही करते रहेगे।

—(मुनि) सतबाल
चिचणी

यशपालजी ने रचनात्मक क्षेत्र मे अच्छा काम किया है, बढ़िया साहित्य निकाला है। दिल्ली मे रहते हैं, फिर भी उनकी अकल खराब नही हुई।

—विनोबा
पवनार

रचनात्मक क्षेत्र मे यशपालजी ने जो कार्य किया है, उसका अपना महत्त्व है। उन्होने अपने साहित्य के द्वारा बापू, बिनोबा आदि के विचारो को देश-विदेश मे फैलाने का जो प्रयत्न किया है, वह प्रेरणादायक है।

मैं उनकी उन्नति एव दीर्घायु की कामना करता हू।

—जयप्रकाश नारायण
पटना

हमारे चिरतरुण यशपाल जैन की साहित्य-सेवा और इतर राष्ट्र सेवा बड़ी समृद्ध है।

गांधी-युग के सर्वकल्याणकारी विचारों का प्रचार करने में यशपालजी ने असाधारण सफलता प्राप्त की है और अच्छे-अच्छे साहित्य-सेवकों की और राष्ट्र-सेवकों की उन्होंने मुक्त-कंठ से कदर भी की है। अब उनकी सेवा की वैसी ही कदर करने का मौका हमें मिला है। यह खुशी की बात है।

ऐसी ही सेवा करते हमारे यशपालजी दीर्घायु बनें और चिरतरुण रहें, यही आज हम हार्दिक प्रार्थना करते हैं।

—काका कालेलकर
नई दिल्ली

यशपालजी से हमारे परिवार का पुराना परिचय है। उनके कर्मनिष्ठ और सरल स्वभाव के कारण उनके लिए देश-विदेश मे अनेक मित्र बने हैं।

ईश्वर से प्रार्थना करती हू कि वह यशपालजी को लम्बी आयु और उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करे, जिससे उनकी साहित्यिक तथा सामाजिक सेवाओं का लाभ हम सबको मिलता रहे।

—लक्ष्मी देवदास गांधी
मद्रास

भाई यशपालजी से मेरा बहुत वर्षों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वे केवल एक उच्चकोटि के साहित्य-कार ही नहीं, किन्तु एक मजे हुए समाज-सेवक और रचनात्मक कार्यकर्ता हैं, जिनकी राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी की विचार-धारा मे अटूट श्रद्धा है। वे एक बहुत कुशल सम्पादक और शिक्षा-शास्त्री भी हैं। अपने दृष्टिकोण को सबल भाषा मे व्यक्त करना उनको अच्छी तरह सध गया है।

उनकी वर्षगांठ के सुअवसर पर अपने हार्दिक अभिनन्दन भेज रहा हू।

—श्रीमन्नारायण
नई दिल्ली

यशपालजी की तरफ से चला आ रहा 'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र मैं देख लेता हू, उस पर से और 'सस्ता साहित्य मडल' की स्थापना करते हुए हिन्दी साहित्य क्षेत्र मे जो उनकी सेवा समाज को मिल रही है, उस पर से उनके बारे मे मन मे जो आदर भाव पैदा होता है, वह इस पवित्र प्रसग पर व्यक्त करते हुए मुझे हर्ष होता है।

इस 'जीवन-साहित्य' मासिक के अलावा उनके 'सस्ता साहित्य मडल' की तरफ से अनेक मौलिक किताबें छप कर प्रकाशित हो चुकी हैं और अभी भी हो रही हैं, यह भी उनकी अमूल्य सेवा समाज को मिल रही है। उसका स्मरण इस शुभ अवसर पर करते हुए समाधान होता है।

१६७१ के साल में उनकी तरफ से पू विनोबाजी के सम्बन्ध मे 'विनोबा व्यक्तित्व और विचार' नाम का ६७० पृष्ठों का बड़ा मौलिक ग्रथ निकला है। इस ग्रथ पर मैं मुग्ध हू। उन्होने इस ग्रथ को तैयार करने में कितना कष्ट उठाया है और ग्रंथ में किसी प्रकार की न्यूनता न रहने पावे, इसके लिए कितनी दक्षता रखी है, देखकर चकित रह जाता हू। पू विनोबा जी के सम्बन्ध मे अब तक जितनी किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं, उनमें इस ग्रथ को सर्वश्रेष्ठ समझता हू।

इस अवसर पर मेरी शुभकामनाए स्वीकार हो।

—बालकोबा भावे
उरुली कांचन

श्रीयुत यशपालजी का जीवन कार्यकारी तथा प्रसन्न रहे, यह मेरी कामना है। पर अब वे अपनी बाह्य-आतर परिस्थिति का विचार कर किसी कर्मयोग मे लग जाय, यह वाछनीय है। देश और समाज के हर एक क्षेत्र मे निष्क्रियता स्पष्ट है। उसका अशत भी निवारण जो कर सकेगा, उसका जीवन मगलमय बन सकता है।

—(प) सुखलाल सिघवी
अहमदाबाद

श्री यशपाल जैन की वर्षगाठ पर हार्दिक मगलकामनाए।

—सर्वपल्ली राधाकृष्णन
नई दिल्ली

सांस्कृतिक एव साहित्यिक क्षेत्र मे यशपालजी की सेवाए सराहनीय हैं। उनकी वर्षगाठ के शुभ अवसर पर श्री यशपालजी की दीर्घायु के लिए मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाए भेजता हू और आशा करता हू कि वह भविष्य मे भी लोक-सेवा मे अपने प्रयास निरन्तर जारी रखेंगे।

—व वे गिरि
बोलारम (आध्रप्रदेश)

श्री यशपालजी उन मूर्धन्य व्यक्तियो मे से हैं जिन्होंने अनेक रूपो मे भारतवासियो की सेवा की है। पत्रकार के रूप मे उन्होने अपनी शक्तिशाली कलम का उपयोग ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लोगों के उत्साह को बढाने मे किया है। वह उन विरल व्यक्तियो मे से हैं, जो सार्वजनिक जीवन मे नैतिक मूल्यो को बनाये रखने के लिए बराबर सघर्ष करते रहे हैं। वह पत्रकारिता को एक पवित्र धरोहर मानते हैं, मुझे उनके सम्पर्क मे आने और अनेक प्रसगो मे सार्वजनिक मसलो को सुलझाते देखने का अवसर मिला है। वह हर काम को पूर्णता से करने वाले निर्भीक पत्रकार हैं और विवरणो मे अत्यन्त प्रामाणिक हैं। वह बीच का रास्ता पसन्द नही करते और न बहानेबाजी में विश्वास करते हैं, अपने व्यवहार मे वह साफ हैं, मित्रो के प्रति ईमानदार हैं और समस्याओ को चतुराई तथा विद्वत्तापूर्ण ढग से सुलझाते हैं।

उनकी वर्षगाठ पर मैं अपनी आतरिक मगलकामनाए भेजता हू और ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि वह उन्हें भारत की सेवा के लिए चिरायु करे।

—के के शाह

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री यशपालजी जैन अपने जीवन के सुखद ५६ वर्ष पूर्ण कर साठवे वर्ष मे प्रविष्ट हो रहे हैं। उनका हमारा सम्बन्ध तो पहले से ही था, लेकिन जब से वे हमारे समधी बने, हम और भी निकट आ गए। वे एक उच्चकोटि के साहित्यकार हैं और हिन्दी की जो उन्होने सेवाए की हैं, उससे वे काफी लोकप्रिय भी हुए हैं, वे समय-समय पर वर्धा आते हैं और उनकी सादगी, कर्त्तव्यनिष्ठा और सरलता का हम पर बहुत ही प्रभाव पडता है।

श्री यशपालजी जैन ने विदेशो का काफी भ्रमण किया है और उन्होने हिन्दी के पाठकों के लिए अनेको पुस्तकें बडी ही रोचक शैली मे लिखी हैं।

इस मंगल अवसर पर मैं परमपिता परमात्मा से यही प्रार्थना करता हू कि श्री यशपालजी जैन शतायु हो और उनके द्वारा साहित्य की निरन्तर सेवा होती रहे।

—एम एम शाह
वर्धा

भाई यशपालजी जैन से मेरा सम्बन्ध लगभग तीस वर्षों से अधिक का है। मैं जब से लोकसभा का सदस्य था तब से दिल्ली या नई दिल्ली मे साहित्यिक और जैन-समाज के मुख्य-मुख्य समारोहों मे देखता था कि श्री यशपालजी का किसी-न-किसी रूप मे अवश्य ही हाथ रहता है।

वह एक उच्चकोटि के साहित्यकार और समाज-सेवी हैं, उनकी कार्यशैली अद्भुत है। वह कार्य को बड़े अच्छे ढग से कुशलतापूर्वक करना जानते हैं।

वह एक स्पष्ट और निर्भीक वक्ता भी हैं। मुझे याद है कि ९ अगस्त '७२ को शास्त्री-भवन मे भगवान महावीर की निर्वाण-शताब्दी राष्ट्रीय समिति की कार्यकारिणी की बैठक मे सबने अपने-अपने विचार रखे थे, लेकिन सबकी बात काट कर राज्यमत्री प्रो नूरुल हसन ने कहा कि शताब्दी के कार्य को किस प्रकार बढ़ाया जाय, इस सम्बन्ध में एक महीने बाद फिर विचार किया जाय। समस्त सदस्य चुप रहे, लेकिन मैंने देखा कि भाई यशपालजी ने तपाक से जोरदार शब्दो मे कहा कि यह समिति भविष्य के कार्यक्रम को निश्चित कर चुकी है, तब क्यो नही उसके अनुसार तत्काल कार्य किया जाता? क्यो समय बरबाद किया जा रहा है?

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह दीर्घायु हों तथा समाज और राष्ट्र की निरन्तर सेवा करते रहे।

—अचल सिह
आगरा

भाई यशपालजी के साथ मेरा बहुत पुराना सबध है। साहित्य जगत मे तो उनका नाम है ही, लेकिन मैं उन्हे एक सहृदय मित्र के रूप मे अपने अधिक निकट पाता हू। हिन्दी के सवर्द्धन के लिए उनकी सेवाए अत्यत सराहनीय हैं। विश्व हिन्दी सम्मेलन के नागपुर तथा मॉरिशस के अधिवेशनो मे उन्होने जो योगदान दिया, वह कभी भुलाया नही जा सकता। मैं उनके दीर्घायुष्य की कामना करता हू।

—अनतगोपाल शेवड़े
नागपुर

यशपालजी की साहित्यिक और समाज-सेवा से हम सभी गौरवान्वित हैं, साहित्यकार का जीवन एक ऐसे साधक का जीवन होता है, जो समाज को सतत कुछ-न-कुछ देता रहता है, उससे प्राप्ति की, लेने की चाह नहीं करता, यशपालजी का जीवन एक ऐसे ही साहित्यकार, एक ऐसे ही साधक का जीवन है। उनकी कोई आकांक्षा नही है, उन्हे कुछ लेना नही है और हम दे भी क्या सकते हैं, अपनी सद्भावना, शुभकामना और श्रद्धा सुमन के सिवा हमारे पास है ही क्या?

परमात्मा से प्रार्थना है कि यशपालजी सौ वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर साहित्य और समाज की सेवा करते रहे।

—गोविन्ददास
जबलपुर

भाई यशपाल जैन की वर्षगांठ के अवसर पर मेरी हार्दिक मंगलकामना और बधाई स्वीकार हो। आशा करता हू वे अधिकाधिक सार्थक प्रयत्नों द्वारा उत्तरोत्तर यश अर्जन करते रहेंगे।

—यशपाल
लखनऊ

मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई, बड़ा सुख मिला कि शील-सौजन्य की मूर्ति, एक निष्ठावान कृतिकार, वरिष्ठ-कथा शिल्पी तथा सम्पादन कला के अनुभवी लेखक भाई यशपाल जैन को, उनकी वर्षगांठ पर उनकी साहित्यिक और सामाजिक सेवाओ के सन्दर्भ मे, एक ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। यद्यपि इधर अनेक वर्षों से यशपालजी से भेंट करने का अवसर नही मिला, तथापि साहित्य और कला विषयक उनके शिष्ट, उत्कृष्ट, वैचारिक वार्ता-विनोद और चारु रुचि-वैशिष्टता की जो छाप मेरे मानस पर अकित है, वह सदा मुखरित रहेगी।

इस पावन अवसर पर मैं अपने अनुज यशपालजी को अन्त करण से बधाई देता हू। भगवान करे वे स्वस्थ और सानन्द रहकर शताधिक वसन्त पार करते हुए इसी प्रकार मा भारती की सेवा मे हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़ाते रहे।

—भगवती प्रसाद वाजपेयी
दतिया

भाई यशपालजी के प्रचुर कार्यों को देखकर एक ओर लगता रहा है कि वह बहुत वर्षो के हैं—दूसरी ओर उनका उत्साह, स्फूर्ति और लगन नवयुवको को लजाने वाली है। यशपालजी अपने लुभावने और हसमुख स्वभाव तथा अत्यन्त सतुलित विवेक के कारण हम सबके निकट प्रिय हैं। बहुतो के व्यक्तित्व को हम लोग उदारतावश सस्था की सज्ञा से अभिहित कर देते हैं, पर वस्तुत ऐसे पात्र विरले होते हैं, और निश्चय ही हमारे प्रिय यशपालजी ऐसे ही व्यक्तित्व के व्यक्ति हैं।

मेरी हार्दिक बधाई और शुभकामना उनके लिए है।

—वाचस्पति पाठक
वाराणसी

अपने अग्रज और वरिष्ठ मित्र श्री यशपाल जैन की वर्षगाठ पर मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हू और अपनी अनन्त शुभकामनाए अर्पित करता हू।

यशपालजी से मेरा पहला परिचय भाई श्री माचवे और श्री नेमिचन्द्र जैन की कृपा से सन् १६३६ मे हुआ था। तब वे 'जीवन सुधा' के सम्पादक थे और शायद उसमे उन्होंने मेरी एक कविता छापने की भी कृपा की थी। तब से आज तक मैं उनका कृपापूर्ण स्नेह और आशीर्वाद पाता रहा हू, यह मेरा परम सौभाग्य है।

भाई यशपालजी और मेरे बीच कभी कोई स्वार्थ का प्रसग नही आया, तथापि उनके सात्विक व्यक्तित्व और स्नेही हृदय का मैं मौन प्रशसक रहा हू। आज के जटिल और उलझन भरे जीवन में ऐसा निर्लिप्त और नि स्वार्थ भाव बनाये रखना कितना विरल और कठिन है, यह सहज ही पहचाना जा सकता है। भगवान करे, वे दीर्घायु हो।

—भारतभूषण अग्रवाल
नई दिल्ली

लगभग २६ वर्षों से मैं श्री यशपाल जैन तथा उनकी धर्मपत्नी को निकट से जानता हू। विद्यार्थी दशा से ही समाजसेवक के रूप मे उन्होंने राष्ट्र-निर्माण के कार्यक्रमो में भाग लिया और समाज सेवा के प्रति अपनी अकुंठित दीक्षा का परिचय दिया। उन्होंने उसी समय अपने अदम्य उत्साह, सेवाभाव तथा देशभक्ति के प्रमाण प्रस्तुत किए थे। समाज सेवक के रूप में ही नही, लेखक के रूप मे भी उन्होने अपना स्थान बना लिया, अपनी धारणाओ तथा आदर्शों को दृढ़चित्त हो प्रकट करते रहे।

मुझे बडी प्रसन्नता है कि कालगति के साथ वे श्रेष्ठ लेखक तथा अद्वितीय समाज सेवक के रूप मे लब्ध-प्रतिष्ठ हो गए है।

भगवान से प्रार्थना है कि वे भाई यशपाल जैन को दीर्घायु प्रदान करे, जिससे वे अपने विशिष्ट क्षेत्र मे काम करते हुए, देश की अधिकाधिक सेवा कर सकें। मेरी हार्दिक कामना है कि श्री जैन, उनकी धर्मपत्नी तथा परिवार के अन्य सभी सदस्यो को चिरकाल तक सुख-शान्ति, स्वास्थ्य और सम्पन्नता प्राप्त हो।

—डी एल आनदराव
हैदराबाद

एक नोजवान जितना सजग होता है उतने ही सजग श्री यशपाल जैन आज हैं। रोज किसी-न-किसी नये काम की कल्पना करते रहते हैं और जो काम हाथ मे लेते हैं, उसे बहुत ही दक्षतापूर्वक अंजाम देते हैं। शारीरिक दृष्टि से देखें तो वे बराबर नये-नये देशों की यात्रा करते रहते हैं, भारतवर्ष की यात्रा तो वे एक सिरे से दूसरे सिरे तक कई बार कर चुके हैं। काका कालेलकर को छोडकर भाई यशपालजी ने जितनी यात्राए की हैं, उतनी यात्रा करने वाले दूसरे किसी व्यक्ति को मैं नही जानता। वे यात्रा महज यात्रा के लिए नहीं करते, बल्कि जहां भी जाते हैं, वहा की सस्कृति की, वहा के साहित्य की, वहा के जन-जीवन की, वहां के दर्शनीय स्थलो की और वहा अतीत में जो बडे लोग हुए हैं, उनकी ब्योरेवार जानकारी हासिल करते हैं।

यशपालजी के साथ मेरा सम्बन्ध काफी पुराना है और हर मिलन पर वह सम्बन्ध गहरे से अधिक गहरा होता गया है। उन्होने अपना जीवन एक सार्थक जीवन बिताया है। साहित्य और सस्कृति के प्रचार-प्रसार मे उनकी सेवायें श्लाघनीय हैं। उन्होने अपनी लेखनी द्वारा साहित्य को समृद्ध किया है। स्वभाव के वे बहुत ही मृदु और विनोदप्रिय हैं। ईश्वर उन्हें स्वस्थ रखे, दीर्घायु करे। आज तक वे जिस लगन, तत्परता और दक्षता से समाज, साहित्य और सस्कृति की सेवा करते आये हैं, उससे और भी अधिक तीव्र गति से वे भविष्य मे कर सकें, यही मेरी मगलकामना है।

—भागीरथ कानोडिया
कलकत्ता

यशपालजी एक महान विचारक हैं, बहुत ही मिलनसार, मिष्ठभाषी तथा हर आदमी के मन को भाने वाले हैं। ये गुण हर आदमी मे नही पाये जाते।

ईश्वर उन्हें लम्बी आयु दे। उन्होने न मालूम कितनो का भला किया होगा। उनका जीवन ही इसका उदाहरण स्वरूप है।

—रामकुमार भुवालका
कलकत्ता

अगर यशपालजी के बाल सफेद नही हो जाते तो विश्वास ही नही होता कि वे साठी पार कर रहे हैं। वे जैसे देखने मे सुन्दर हैं, वैसे ही सुरुचिपूर्ण और स्वस्थ विचार अपनी पुस्तको, 'जीवन साहित्य' और लेखों द्वारा जनता को बहुत समय से देते आ रहे हैं। वे श्रेय का उद्देश्य लेकर लिखते रहे हैं, वरना आजकल के कामोत्तेजक और बाजारू उपन्यास लिखकर लाखो रुपये कमा सकते थे, किन्तु साहित्य-साधना उनका धर्म और कर्म है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह चिरायु हो।

—रामेश्वर टांटिया
कलकत्ता

श्री यशपाल जैन उन कतिपय समाज-सेवियो मे से हैं, जो निरन्तर किसी भी प्रतिदान की आकांक्षा किये बिना समाज की सेवा मे लगे रहते हैं। वे गाधीवादी दर्शन के गहरे अध्येता और भारतीय सस्कृति के मर्मज्ञ हैं। उनके अपने कोई आग्रह नही हैं। सबके लिए उनका उदार हृदय अपना स्नेह देने को तत्पर रहता है। उनका सद् और सरल व्यक्तित्व बडा ही मधुर है। उनके सम्पर्क मे आने वाले व्यक्ति शीघ्र ही उनकी सरलता और विद्वत्ता से प्रभावित हो जाते हैं। वे एक ऊचे स्तर के कर्मठ व्यक्ति हैं।

उनकी वर्षगाठ के अवसर पर भगवान से प्रार्थना करता हू कि वह उन्हे मानव-सेवा के लिए स्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करे।

—गिरधारीलाल सराफ
नई दिल्ली

श्री यशपाल जैन बडे सुलझे हुए व्यक्ति हैं, जिनके सौम्य स्वभाव और जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का प्रभाव पडे बिना नही रहता। देश-विदेश मे उन्होने जो यात्राए की है, उनसे भी उनके जीवन-विषयक अनुभवो का कोश समृद्ध हुआ है। वे पारिवारिक व्यवहार मे मृदुल और शिष्ट हैं। आध्यात्मिक विषयो मे भी उनकी अच्छी दिलचस्पी जान पडती है, जिससे इह लोक और परलोक मे समन्वय स्थापित करना उनके लिए सहज ही सभव हो जाता है। 'जीवन साहित्य' के सम्पादक के रूप मे भी उन्होने अच्छी ख्याति प्राप्त की है।

मेरी कामना है कि समाज और साहित्य की सेवा करते हुए वे शताधिक वर्षों तक जीवित रहते हुए जीवन को सार्थक बनावें।

—कन्हैयालाल सहल
पिलानी
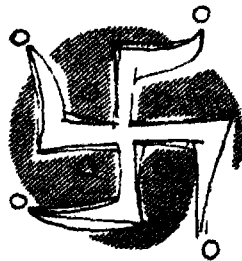
यह जानकर प्रसन्नता हुई कि परोपकार परायण श्री यशपालजी के ७३वें जन्म-दिन पर एक ग्रंथ भेंट किया जा रहा है, उन जैसे मनीषी विद्वान का जितना भी सत्कार हो, उतना ही भारतवर्ष का गौरव है।

—(स्वामी) गंगेश्वरानंद
नासिक

यशपालजी ने रचनात्मक साहित्य के सृजन द्वारा देश की प्रशंसनीय सेवा की है और अपने परिपक्व विचारो द्वारा देश के विभिन्न वर्गों मे सौहार्द का वातावरण बनाने मे योग दिया है। उनकी कृतिया भावी पीढ़ी को प्रकाश और आदर्श चरित्र पर अग्रसर होने में आधार बनेंगी, ऐसी मेरी अपेक्षा है। वे चिरायु हो और अपने बहु-व्यक्तित्व के माध्यम से राष्ट्र और समाज की सेवा सतत् करते रहे, यही मेरा आशीर्वाद है।

—विद्यानन्द मुनि
पड़ाव श्रीमहावीरजी

श्री यशपाल जैन को मैं परिचय के प्रथम दिन से अब तक प्रसन्न और स्मित मुद्रा मे देख रहा हू। यह उनके निश्छल व्यक्तित्व का परिणाम है। एक सस्कृत कवि ने कहा है कि सज्जन पुरुष नारियल जैसा होता है। बाहरी आकार अमनोहर, भीतर मे मनोहर। असज्जन पुरुष बेर जैसा होता है। बाहरी आकार मनोहर और भीतर मे अमनोहर

नारिकेलसमाना हि दृश्यन्ते सज्जना जना।
अन्येतु बदराकारा, बहिरेव मनोहरा॥

यशपालजी को सामने रखकर मैं कह सकता हू कि सज्जन बाहर और भीतर दोनो मे ही मनोहर होता है। तीन दशक से अधिक समय का सम्पर्क है। मैंने आज तक उन्हें बाहर और भीतर तथा प्रत्यक्ष और परोक्ष मे एकरूप पाया है। यह एकरूपता भगवान् महावीर के समतासूत्र का साक्षात्कार है। उसके सन्दर्भ मे मैं उन्हे जैन कहने मे गौरव का अनुभव करता हू। वे अणुव्रत-आन्दोलन के प्रारम्भ से ही समर्थक और सहयोगी रहे हैं। आन्दोलन ने उनके सुझावो का सदा स्वागत किया है।

भाई यशपालजी की साहित्यिक सेवाए विशिष्ट हैं। और भी अनेक क्षेत्रो मे उनकी विशिष्टता है। पर मुझे सर्वाधिक आकर्षित करने वाली उनकी विशिष्टता है सज्जनता। ऐसे सज्जन और धार्मिक व्यक्ति के लिए मेरे मन में बहुत आदर का भाव है। मुझे विश्वास है कि उनका सहज धर्मनिष्ठ जीवन उत्तरोत्तर विकासशील होगा।

—(आचार्य) तुलसी
पड़ाव चूरू

एक शान्त, शीतल निर्झर ! स्वच्छ इतना कि स्फटिक-सा पारदर्शी ! अन्दर की हर चीज ऐसे लगे कि जैसे जल की सतह पर ही तैर रही है। कल-कल छल-छल की इतनी मीठी मन को छूती ध्वनि कि सुनने वाला और सब कुछ भूल जाए ! ऊपर से उड़कर आती हवा के इतने सुखद शीतल झोंके कि तन ही नहीं, मन भी गुदगुदा जाए।

एक विराटकाय आकाश को छूता-सा ऊचा वृक्ष ! हरा-भरा, फूलो से महकता और फलो से लटकता। बहुत गहरी, साथ ही इतनी शीतल छाया कि दूर का थका और हारा यात्री एक बार बैठ जाए आकर तो आनन्द-विभोर हो जाए ! जल्दी ही उठने का नाम न ले !

श्री यशपालजी का मेरी अनुभूति मे, ऐसा ही कुछ प्रीति से भरा-पूरा मधुर व्यक्तित्व है। न प्रतिष्ठा का चक्र, न दभ, न अहकार। मन दर्पणतल-सा साफ, अन्दर मे कोई साठ-गाठ नही। जैसा बाहर वैसा अन्दर। और जैसा अन्दर वैसा बाहर ! तीर्थंकर महावीर के शब्दो मे—'जहां अतो तहा बाहिं, जहां बाहिं तहा अतो।'

काल की नाप से लबा परिचय तो नही, पर जितना भी है, गहरा है। मैंने देखा है, उनके पास मानव का तन है तो मन भी मानव का है। इतने सहृदय कि पूछो मत। उनकी सहज मानवता काफी दूर तक जाती है।

यशपालजी साहित्यकार हैं, पत्रकार भी हैं। अन्य भी कितने ही 'कार' हैं वे। पर, सबसे बढ़कर वे मानव-हृदय के परिष्कार-कार हैं। उनकी बौद्धिक चेतना मधु रस मे डूबी रहती है। अत उनके लेखन और भाषण दोनो ही पाठक के हृदय को धीरे से स्पर्श करते हैं और बडे प्यार से उसे बदलने को प्रेरित करते हैं।

श्री यशपालजी यथा नाम तथा गुण हैं। प्रस्तुत षष्टि-पूर्ति के मगल प्रसग पर मेरा साधु हृदय कहता है—उनकी जीवन धारा चिरायु हो, सतत प्रवहणशील एव सतत गतिशील ! साथ ही बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, बहुजनकल्याणाय भी !

—उपाध्याय अमरमुनि

राजगृह

भाई यशपालजी मेरे स्नेह पात्रों मे से हैं। पिछले पैंतालीस वर्षों से सम्पर्क है। कई बार वे मेरे आश्रम मे भी आये हैं। उनकी प्रगति से मैं परिचित रहा हू और उससे मुझे प्रसन्नता होती रही है। साहित्य के क्षेत्र मे उन्होने अच्छी साधना की है, और अनुभव भी प्राप्त किये हैं। वे बहत्तर वर्ष पूरे कर रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है, परन्तु साधना की प्रगति इससे घटेगी नही, बढेगी ही। सरस्वती के साधको के लिए सरस्वती देवी का कहना है

मेरे साधक के लिए जीवन भर है काम।
रात्रि-दिवस फुरसत नही, मरना है विश्राम ॥

जीवन के अन्त तक उन्हे बुढापा न आये यही मेरी शुभकामना है। सरस्वती साधक का कर्म और विश्राम साथ-साथ चलते हैं। उनका अन्तस्तल सदा यही गुनगुनाता रहे

जीवन भर तक रहे जवानी, कृति हो आठो याम।
जब हम पाए मुक्ति, जगत हो स्वर्ग समान ललाम।
चाहिए मुझको यह विश्राम ॥

—(स्वामी) सत्यभक्त

वर्धा

मैं यशपालजी को भगवान के भक्त के रूप में जानता हू, वह एक महान लेखक, उच्च साधक तथा निःस्वार्थ समाज-सेवक हैं। लोकोपकार के लिए उनका हृदय एक अनुपम भण्डार है।

—(स्वामी) चिद्‌विलासानंद

गणेशपुरी

भाई यशपालजी से मेरा लगभग ३५ वर्षों का सम्पर्क रहा। सम्पर्क भी बहुत निकट का। शारीरिक देखाव से और अपनी कार्यतत्परता से जैसे वे ३० वर्ष पूर्व प्रतीत होते थे, लगभग वैसे ही अब प्रतीत हो रहे हैं। उनके जीवन की यह विरल त्रिविधता सचमुच ही प्रभावित करने वाली है।

भाई यशपालजी को एक कुशल सम्पादक के रूप में हम 'जीवन-साहित्य' में और एक कुशल साहित्य-कार के रूप में उनकी अपनी नाना कृतियो में और नाना पत्र-पत्रिकाओ मे देख रहे हैं। एक अहिंसानिष्ठ के रूप मे वे गाधीवाद और सर्वोदय के अचल मे तथा नैतिक मूल्यो के प्रति एक ऊर्जाशील आस्थावान के रूप मे वे अणुव्रत के आयतन में देखे जाते हैं। नाना सामाजिक और साहित्यिक सस्थाओ मे उनकी अग्रगण्यता उनके मेधावीपन और उनकी कार्य-कुशलता की परिचायक है ही। उनका यह बहुमुखी व्यक्तित्व और कर्तृत्व समाज के ऊर्ध्व सचार में उत्तरोत्तर अधिक हेतुभूत बनता रहे, ऐसी आशसा है।

—(मुनि) नगराज

दिल्ली

श्री यशपालजी जिस लगन और निष्ठा से साहित्यिक तथा सामाजिक सेवा के कार्य में लगे हुए हैं, उनसे सब भली-भाति परिचित हैं। सादगी, मेहनत, ईमानदारी और लगन के वह शुरू से ही पोषक रहे हैं। यही कारण है, कि वह साहित्य और समाज-सेवा के कार्य मे अत्यधिक सफल हैं। मुझे शास्त्रीजी के बाद उनकी (श्री लाल बहादुर शास्त्रीजी) पुण्य स्मृति मे 'चित्रकला सगम' द्वारा आयोजित तथा अन्य कार्यक्रमो में मिलने का अवसर मिला। धीरे-धीरे अब तो वह काफी जाने-पहचाने से हो गये हैं।

मैं इस अवसर पर उनके दीर्घायु और अच्छे स्वास्थ्य की कामना करती हू।

—ललिता शास्त्री

(श्रीमती लालबहादुर शास्त्री)

नई दिल्ली

आपके काम मे मेरी शुभेच्छा हमेशा रही है।

—मोरारजी देसाई

श्री यशपाल जैन दिल्ली के विख्यात हिन्दी-सेवी, पत्रकार और समाज-सेवी हैं। वह मृदुभाषी, समाज और देश-सेवी हैं और साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होने सराहनीय सेवा की है।

श्री यशपाल जैन दीर्घायु हों और सदा देश, राष्ट्र और साहित्य की सेवा में रत रहे।

—जगजीवन राम

नई दिल्ली

श्री यशपाल जैन की वर्षगांठ पर मैं अपनी शुभकामनाएं भेजता हू ।

—(डा) कर्ण सिंह
नई दिल्ली

स्नेहभाजन यशपालजी को एक उत्साही कर्मठ युवक के रूप मे सदा देखा है, और चाहता हू कि आगे भी उनको इसी रूप मे देखता रहू ।

वे अच्छे साहित्यकार हैं । लेखनी के धनी हैं । जो भी लिखते हैं विचारपूर्वक लिखते हैं । दृष्टि सत् साहित्य पर रहती है । प्रेरणा मूलत गांधीजी से मिली है, जिसे वे अपने अन्तर मे अक्षय निधि के रूप में सजोये रहते हैं ।

शैली सरल और हृदयग्राही होती है । भाषा में कही भी कृत्रिमता नही आने पाती । अनुवादक तथा सपादक के रूप मे भी उन्होने यश कमाया है ।

दुनिया के अनेक देशो का उन्होंने भ्रमण किया है और अनुभव प्राप्त किया है ।

किन्तु मैंने यशपालजी को एक दूसरे ही रूप मे देखा और शील-सम्पदा से युक्त मानव के रूप मे, जो सत्-साहित्य के सृजन के लिए आवश्यक है ।

मेरी कामना है कि यशपालजी ने अब तक जो यशोपार्जन किया है, उसमे निरन्तर वृद्धि होती रहे ।

—वियोगी हरि
दिल्ली

यह जानकर खुशी हुई कि श्री यशपाल जैन ने ७३वें वर्ष मे प्रवेश किया है । यशपालजी अच्छे लेखक हैं और विश्व-भ्रमण का भी उन्हें अच्छा अनुभव है । इस विषय पर उन्होने कई लेख भी लिखे हैं । सत्-साहित्य के प्रति उनकी जो अभिरुचि है, वह नये साहित्यकारो के लिए अनुकरणीय है । वे मिलनसार और उत्साही भी हैं । मेरी शुभकामनाए हैं कि वे दीर्घकाल तक साहित्य की सेवा करते रहे ।

—लक्ष्मीनिवास बिरला
कलकत्ता

साहित्य और समाज की यशपालजी ने जो सेवा की है, वह प्रशसनीय है । आशा है भविष्य मे भी उनके द्वारा साहित्य और समाज की सेवा इसी प्रकार होती रहेगी । इस शुभ अवसर पर मैं श्री यशपालजी के स्वस्थ, दीर्घ और सुखी जीवन की कामना करता हू ।

—कृष्णकुमार बिरला
कलकत्ता

श्री यशपाल जैन की वर्षगाठ के अवसर पर उनके दीर्घायु तथा सार्थक जीवन के लिए मैं अपनी हार्दिक बधाई और मगलकामनाए भेजता हू ।

—उमाशकर जोशी
अहमदाबाद

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि श्री यशपाल जैन की आगामी वर्षगांठ के अवसर पर उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का सकल्प लिया गया है। उनका सार्थक जीवन सही अर्थों मे अभिनन्दन के योग्य ही है। अपनी क्षमताओं का सदुपयोग वस्तुत जीवन की सार्थकता है। यशपालजी ने साहित्य के माध्यम से व्यष्टि और समष्टि की जो सेवा की है, वह अभिनन्दनीय है।

मैं उनके सुदीर्घ जीवन की कामना करता हू।

—रामकिंकर उपाध्याय
पडाव इलाहाबाद

यशपालजी ने धीरे-धीरे परिश्रम से साहित्यिक क्षेत्र मे अपने लिए प्रतिष्ठित स्थान बना लिया है। बडे मीठे और हसमुख स्वभाव से बात करते हैं। साथ मे चतुराई की भी कमी नही है। जो चीज पसद आती है उसी को हाथ मे लेते हैं और जिसे लेते हैं, उसे पूरी दिलचस्पी और लगन के साथ सरलतम बनाते हैं। जो चीज उन्हे ठीक नहीं लगती, उसे होशियारी से अस्वीकार कर देते हैं।

वह साहित्य की हरदम सेवा करने रहे हैं। उनका जीवन और चिन्तन साहित्यमय ही लगता है। नया-नया साहित्य रोज निर्मित हो, इसी मे उनको असली रस है। खासकर गाधीवादी साहित्य के लेखन और सम्पादन मे उन्होंने जो कार्य किया है, उसे सब जानते हैं।

पर्यटन का उन्हे शौक है। विदेशो मे जहां भी वह घूमते हैं, वहा से नया-नया मसाला इकट्ठा करके उन देशो तथा वहा बसने वाले भारतीयों के बारे मे हमारे देश के निवासियो को जानकारी देना मानो उनकी सर्व-प्रिय अभिरुचि बन गयी है। किसी भी विषय पर कुछ लिखना तो उनके लिए सहज और स्वाभाविक हो गया है। स्पष्ट दिमाग से, सुन्दर शैली मे अपने भाव सरलता से व्यक्त करते हैं, जिससे पाठक उनकी रचनाओ को बडे चाव से पढ़ते हैं।

—रामकृष्ण बजाज
बबई

श्री यशपाल जैन से मेरा प्रथम साक्षात्कार एक प्रकाशक के रूप मे हुआ, जबकि 'सस्ता साहित्य मडल' ने मेरी 'गाधीजी की जीवनी' के हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करने का काम अपने हाथ मे लिया। यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई कि यशपालजी विद्वान हैं और जितना गाधीजी के प्रति उनका समर्पण भाव है, उतना ही हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए भी है। उसके बाद जितने वर्ष बीते हैं, उनमे उनके प्रति मेरे आदर में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। श्री यशपालजी के बहुआयामी अनुभव, देश-विदेश मे उनके भ्रमण और उनकी सूक्ष्म अन्वेषक दृष्टि ने उन्हे बातचीत मे बडा ही निपुण बना दिया है। हाल के वर्षों मे मैंने पाया है कि उनकी रुचि आत्मा और चित्त से सम्बन्धित विषयो मे भी है। इससे उसी मार्ग का एक पथिक होने के कारण, मेरा स्नेह उनके प्रति और भी गहरा हो गया है।

यशपालजी की वर्षगांठ पर मैं उन्हे हार्दिक बधाई देता हू और कामना करता हू कि अभी वह बहुत वर्षों तक पुरुषार्थ करते रहें।

—बी आर नन्दा
नई दिल्ली

भाई यशपालजी को वर्षगाठ पर उन्हे बधाई और उनके स्वस्थ-प्रसन्न रहते हुए सौ वर्ष जीने की कामना करता हू ।

• "जिव विषच्छत समा
सजीव शरद शतम ।

—बच्चन
नई दिल्ली

श्री यशपाल जैन ने हिन्दी की प्रचुर सेवा की है । स्वभाव से वह मीठा बोलने वाले, हसमुख और स्नेही हैं, वह दीर्घ जीवी हो, शतायु हो, यही परमेश्वर से प्रार्थना है ।

—बाबूराम सक्सेना
इलाहाबाद

यशपालजी के दो गुणो ने मुझे प्रभावित किया है सेवा-भावना और विचारगत स्थिरता । गाधी-नीति मे उनकी आस्था अविचल रही है और वे निरतर उसी मार्ग पर चलकर समाज और साहित्य की सेवा करते रहे हैं । वर्तमान जीवन में इस प्रकार की निष्ठा विरल होती जा रही है और कौन कह सकता है कि न जाने कब लोग गांधी-दर्शन को जड सिद्धान्त कहकर एकदम छोड दें ! ऐसी परिस्थिति मे स्थिर गति से जीवन के नैतिक मूल्यो के प्रति आस्थावान् रहना अपने आप मे एक उपलब्धि है ।

मैं बहत्तर वर्ष की पूर्ति के इस शुभ अवसर पर यशपालजी का अभिनदन करता हू और उनके सुख सौभाग्यमय दीर्घ जीवन के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हू ।

—नगेन्द्र
दिल्ली

श्री यशपाल जैन की प्रसन्न मुख छवि सामने है । उस प्रसन्नता मे उत्तरोत्तर वृद्धि हो, वे अपना अधिकाधिक समय सवेरे घूमने और मित्रो के साथ गप लगाने मे बितावें, यही कामना है ।

—रामविलास शर्मा
आगरा

सभी चाहते हैं कि वे जीवन के हर क्षेत्र मे सफल हो, पर जो लक्ष्य तक पहुच पाते हैं, वे जन विरले ही होते हैं । यशपालजी उन्ही विरल जनों मे से हैं, जो पाने की कामना को मरन कामना नही रहने देते । सकल्प में परिवर्तित कर देते हैं । मार्ग उन्हे कभी नही डरा पाया है, झिझक उन्हें छू भी नही गई है, वे जो पाना चाहते हैं, जब तक पा नही लेते, कोई तर्क-वितर्क उन्हे परेशान नहीं करता ।

उनकी सफलता का यही रहस्य है । अक्सर मुझे आश्चर्य हुआ है कि वे कही बहुत ऊपर क्यो नही हैं ?

वह बहत्तर वर्ष के हो गए हैं लेकिन इससे क्या उनकी गति रुकेगी ? मेरी हार्दिक कामना है कि इन वर्षों का सचित अनुभव उन्हें सच्चा बल दे और सफलता सार्थक होकर उनके और पास खिच आवे । उनकी प्रतिभा और निखरे ।

यह शुभ दिन बार-बार उनके जीवन में आता रहे और ढेरो खुशियां बिखेरता रहे ।

—विष्णु प्रभाकर
दिल्ली

श्री यशपालजी की सहज आत्मीयता और जीवन के उच्चतर मूल्यों के प्रति निष्ठा ने मुझे सदा प्रभावित किया है। आदर्शवाद उनके लेखन मे ही नहीं, आचरण में भी प्रतिफलित होता है।

मेरी सादर प्रणति और कर्मरत रहते हुए शतायु होने की मगलकामना।

—विष्णुकान्त शास्त्री

कलकत्ता

श्री यशपाल जैन के सौम्य हसमुख व्यक्तित्व के प्रति मेरे मन मे गहरा आदर भाव रहा है। उनकी वर्षगांठ के अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाए।

—धर्मवीर भारती

बबई

देश में, राष्ट्र में जब अन्याय होता है, अत्याचार होता है, शोषण से मनुष्य का मेरुदण्ड हिल उठता है, तब जीवन मे क्रांति की लहर फैल उठती है। अन्याय से छुटकारा पाने के लिए त्याग और बलिदान की होड लगती है। नेतृत्व शक्तिशाली चाहिए, सफलता निश्चय ही है।

भारत भूमि में ऐसी ही परपरा चली आ रही है। सदियों से स्वतन्त्रता-सग्राम का इतिहास भारत के कोने-कोने मे गूंज रहा है। अग्रेज साम्राज्यवाद और शोषण से मुक्त होकर स्वतन्त्र देश का अधिकार पाने के लिए देश मे आए शक्तिशाली नेता—श्री अरविन्द, बालगगाधर तिलक, महात्मा गाधी, नेताजी सुभाषचद्र बोस, प जवाहरलाल नेहरू आदि के रास्ते पर चलने मे हजारो का बलिदान, लाखो का त्याग, करोड़ों की प्रेरणा से भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की।

श्री यशपाल जैन ऐसे ही एक सेनानी है क्राति के भीतर से जिनका उदय हुआ। जीवन, देश और समाज की सेवा मे अर्पित हैं। मुझे कई बार उनसे मिलने का मौका मिला, कलकत्ता मे और दिल्ली में। सदा हास्यवदन, स्नेही, एक सादे-सीधे चितक और साहित्यिक। उनके साथ जो मिलता है, उसे एक बार में ही अपना बना लेते हैं। 'सस्ता साहित्य मडल' द्वारा समाज सेवा और साहित्य के प्रसार को उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बना रखा है। साहित्य-प्रकाशन योजना भी नये आधुनिक ढग से करते हैं और बराबर सफलता प्राप्त कर रहे हैं।

यशपालजी अनेक वर्षों तक स्वस्थ जीवन मे देश, समाज और साहित्य की सेवा करते रहें, यही कामना करता हूं। शतायु भवेत् सुखी भवेत्।

—विजयसिंह नाहर

कलकत्ता

हमारे सूरीनाम देश मे जब यह समाचार मिला कि मेरे मित्र श्री यशपालजी जैन के जन्मदिन के उपलक्ष्य मे एक ग्रन्थ प्रकाशित करने का कार्यक्रम बनाया गया है, तब मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

जून १९७२ में यशपालजी हमारे देश मे आये थे और भारतीय सस्कृति और साहित्य की बात सुनाकर तथा अपनी भारत के पड़ोसी देशों की यात्रा का वर्णन करके उन्होंने यहा के लोगों को अत्यन्त प्रभावित किया था।

यह मैं भूल नहीं सकता कि कैसे यशपालजी चकित से हो गये थे, जब उन्होंने यह सुना कि १९५२-

१९५३ मे, जब मैं भारत मे अध्ययन करता था, मैं दिल्ली के 'शनिवार समाज' की गोष्ठियों में भाग लिया करता था।

श्री यशपालजी के जन्म दिन के शुभ अवसर पर मेरी ओर से भी बधाई तथा शुभकामनाए।

—अर्धीन
पारामारीबो (सूरीनाम)

जिस व्यक्ति मे ज्ञान है, पर सादगी है, जो सम्माननीय है, पर विनम्र है, जिसमे महानता है, लेकिन जो अबोध बच्चो से भी मित्रता करता है, वह ईश्वर का आदमी है। ऐसी पवित्र आत्मा से, जिसके अन्तर में प्रभु बसते हैं, मिलना एक महान सौभाग्य है। भाग्य ने मुझे ऐसे ही एक व्यक्ति से मिलाया और वह थे श्री यशपाल जैन।

उनकी वर्षगाठ पर हार्दिक बधाई। ईश्वर करे वह दीर्घायु प्राप्त करें और मानव-जाति पर अपनी सूर्य जैसी आभा फैलाते रहें, विशेषकर नयी पीढ़ी पर। हमारी कामना है कि नई पीढ़ी सच्चा जीवन बिताकर प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ती रहे। यशपालजी का स्वय का जीवन भी तो इसकी एक जीती-जागती मिसाल है। वह परिश्रमणशील तथा पक्के इरादे के व्यक्ति हैं और उनकी कामना रहती है कि समाज का प्रत्येक सदस्य जीवन के नाटक मे अपनी भूमिका पूरी क्षमता से अदा करे।

ईश्वर करे उनके पदचिह्न युग-युगो तक जमाने की चट्टानो पर बने रहें और भावी पीढ़ियो को लाभ पहुचाते रहे। वह स्वस्थ रहें, सुखी रहें और बहुत-बहुत वर्षों तक समृद्धि उनके इर्द-गिर्द चक्कर लगाती रहे।

—तारा विष्णुदयाल सिह
ट्रिनीडाड

श्री यशपाल जैन जब हमारे देश मे पधारे तो हम लोगो की स्वाभाविक इच्छा हुई कि उनका जितना आदर सत्कार कर सकें, करें। वे इसके सर्वथा योग्य हैं।

उन्होने गाधीजी के विषय मे जो भाषण दिए, उन्हे जिन्होने भी सुना, उन्होने अपने को बडा सौभाग्य शाली माना। हम चाहते थे कि उनके और भाषणो की व्यवस्था करें, जिससे हमारा सारा देश लाभ उठा सके, पर उनके पास समय का अभाव था और हम वैसा नहीं कर सके। उनके प्रति हमारी हार्दिक मगलकामनाए।

—इन्द्राणी श्याम अवतार
ट्रिनीडाड

श्री यशपाल जैन से मेरा परिचय लगभग पचास वर्ष से है। जीवन मे मुझे उनके लम्बे सहकार का अवसर नही मिला है, फिर भी उनके प्रति सहज और घनिष्ठ आत्मीयता अनुभव होती है। यशपालजी शान्त, सौम्य, कर्मठ और दक्ष पुरुष हैं। वे उनमे से हैं, जिनसे समाज ठहरता है। वे शतायु हो, ऐसी मेरी हार्दिक कामना है।

—रामचन्द्र तिवारी
दिल्ली

यशपालजी ने हिन्दी के लिए अब तक बहुत-कुछ किया है। अब मैं चाहूंगा कि वे इस क्षेत्र से सम्पूर्णत निवृत्त हों और अपनी परिपक्व शेष आयु दूसरी देशी भाषाओ मे से किसी एक की सेवा मे खर्च करें।

महाराष्ट्र के एक कालेलकर 'सवाई गुजराती' बन सकते हैं। एक पराडकर 'सवाई हिन्दी' बन सकते हैं। किन्तु मैंने अभी तक किसी हिन्दी भाषा-भाषी को दूसरी किसी देशी भाषा की सेवा करता हुआ नही देखा है।

यह परम्परा तोड़नी ही होगी। मैं चाहूंगा कि यशपाल जैन इस नयी सास्कृतिक क्राति के प्रणेता हो। इस काम के लिए उनको ईश्वर प्रेरणा दे और कम-से-कम चालीस वर्ष की और आयु दे, यही मेरी प्रार्थना है।

—रवीन्द्र केलेकर

गोवा

गांधीवादी आदर्शों को जिन साहित्यकारो ने अपने जीवन मे उतारने का सजग प्रयत्न किया है, उनमें मेरे प्रिय बन्धु श्री यशपाल जैन निश्चय ही अग्रगण्य हैं और इसीलिए अवस्था से लगभग तीन वर्ष छोटे होते हुए भी वह मेरे लिए श्रद्धास्पद हैं।

कहने को कहा जा सकता है कि यशपालजी अब बूढे हो रहे हैं। बूढा होना मेरी समझ मे कोई अपराध अथवा पाप नही है। यह दुर्लभ स्थिति तो बडे सौभाग्यशालियो को ही प्राप्त हो पाती है।

किन्तु बुढ़ापे का जो अर्थ मैं लेता हू, वह भिन्न है। मैं बुढापे को अनुभवो की परिपक्वता, राग-द्वेष के विनाश और जीवन की सुलझी दिशा का पर्यायवाची मानता हू। यदि यशपालजी भी ऐसा ही मानेंगे तो उन्हें अपने बुढ़ापे पर कभी पश्चात्ताप नहीं होगा।

उनका आत्म-बल प्रबल और उनकी कर्म-शक्ति अपराजेय है, इसलिए लौकिक अर्थों मे यशपालजी कभी बूढ़े नही हो सकते।

भगवान उन्हे स्वस्थ, सुखी तथा दीर्घ जीवन प्रदान करे।

—आकेबिहारी भटनागर

नई दिल्ली

प्रख्यात पत्रकार और लेखक के रूप मे श्री यशपाल जैन से सभी परिचित हैं, लेकिन वह एक सहृदय मनुष्य हैं, और सभी के आत्मीय भी हैं। सरल-सहज स्वभाव तथा मधुर व्यवहार सम्भवतया उनको सस्कारो में मिले हैं।

उनके साथ अनेक बार मैंने यात्राए की हैं। वह अपना बड़प्पन किसी पर थोपते नही, वह एक विशिष्ट नागरिक हैं—ऐसा कभी प्रकट नहीं करते।

अनेक छोटे-बडे समारोहों मे उनके भाषण सुने हैं। उन भाषणो मे वह आत्म प्रशस्ति करते हो, या अपने व्यक्तित्व को उजागर करते हो, ऐसा मुझे कभी नही लगा, यद्यपि आजकल ऐसा ही प्राय वक्ता करते हैं। उन्हें नये तथा सामान्य लेखको से भी उसी तरह बातें करते देखा जा सकता है, जैसे प्रमुख तथा नामधारी लेखकों-साहित्यकारों से घुल-मिलकर बातें करते हैं।

मैं उनका पुराना पाठक हूं, और प्रशसक भी हू। उन्होने अनेक पुस्तकें लिखी हैं, बहुत-सी पुस्तको का सम्पादन किया है, 'जीवन साहित्य' का बरसो से सम्पादन कर रहे हैं। इतना काम कोई लगनशील और समर्पित व्यक्ति ही कर सकता है।

मैं उन्हें अग्रज मानता हू और उनका स्नेह मुझ पर सदा रहा है। उनकी बहत्तरवीं वर्षगांठ पर मेरी हार्दिक मगलकामनाए।

—जयप्रकाश भारती
नई दिल्ली

श्री यशपालजी सरलता से भी सरल हैं। उनका व्यक्तित्व सत्पुरुष और लेखन सत्साहित्यकार होने की गवाही देता है।

दिल्ली के सांस्कृतिक जगत की वे एक ऐसी धुरी हैं, जिससे विदेशो की परिधि भी जुड़ी है। आज भी वे लम्बी-लम्बी यात्राए जिस युवकोचित उत्साह से करते हैं, वह बहुतो के लिए स्पृहणीय हैं।

मैं उनकी दीर्घायु की कामना करता हू।

—रमेश कौशिक
दिल्ली

पिछले अनेक वर्षों से भाई यशपालजी के साथ मेरा स्नेह-सम्बन्ध रहा है। उनका प्रसन्न व्यक्तित्व, सौजन्य, शिष्टाचार, मैत्रीपूर्ण व्यवहार ऐसा है कि एक बार सम्पर्क मे आने पर कोई भी व्यक्ति चिर-मित्र बन जाता है।

मैं जब कभी दिल्ली जाता हू, उनसे मिलने की इच्छा को रोक नही सकता। प्रत्यक्ष मिलने का अवसर नही होता तो दूरभाष पर सम्पर्क-साधन हो ही जाता है। हमारे भाई यशपालजी सज्जनता की साक्षात मूर्ति हैं।

मेरी मगल कामना।

—गो प नेने
पूना

हमारे महान् देश मे महान् व्यक्तिया का मान-सम्मान करना सदैव से एक महानता रही है। सही है कि महानता की सूची मे यशपालजी का नाम काफ़ी मोटे अक्षरो मे लिखा जायगा।

मैं उनकी महानता के सम्मुख नतमस्तक हू।

—रामावतार त्यागी
नई दिल्ली

श्री यशपाल जैन सदैव ही मेरे लिए बहुत स्नेहिल रहे हैं। जिन्दगी के बहुत वर्ष उनके मीठे स्वभाव के साथ काटे हैं और कम-से-कम चालीस वर्ष और काटने की कामना है।

उनकी लेखनी द्वारा हिन्दी भाषा का गद्य-साहित्य पुष्पित हुआ है और आशा है अब वह लेखनी और भी द्रुतगति से चलेगी।

—देवराज दिनेश
नई दिल्ली

यशपालजी बहत्तर वर्ष के हो गये हैं, यह जानकर मुझे कुछ अचम्भा हुआ। उनका सतेज स्वस्थ शरीर, सस्मित चेहरा, बातचीत का ढंग, चाल-ढाल और हर काम में स्फूर्ति को देखकर मैं तो उन्हें नौजवान ही समझता था। 'सस्ता साहित्य मण्डल' से मेरा शुरू से ही सम्बन्ध रहा है, इसलिए जब से वह 'मण्डल' में आये, तभी से मेरा उनसे परिचय है।

आज के युग मे एक तो बहत्तर वर्ष की उम्र तक पहुचना ही बड़ी बात है, दूसरे इस उम्र पर पहुच कर भी शारीरिक तथा मानसिक ताजगी बनाये रखना और भी बडी बात है। यशपालजी ने इन दोनो बातों को साधा है, इसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हू।

मेरी कामना है कि उनके परिजन और मित्रों को उनकी बहत्तरवी तो क्या, सौवीं वर्षगांठ मनाने का सुअवसर प्राप्त हो ताकि हिन्दी साहित्य और समाज सेवा के क्षेत्र मे उनका उल्लेखनीय तथा प्रशसनीय योग-दान उत्तरोत्तर बढ़ता रहे।

— चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय
जयपुर

भाई यशपालजी उज्ज्वल चरित्र और उदार स्वभाव के यशस्वी साहित्यकार और कर्मठ समाज-सेवी हैं। उनकी गाधीवादी विचारधारा ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को गरिमा प्रदान की है। जो व्यक्ति उनके सम्पर्क मे आता है, वह उनकी सहज आत्मीयता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। मेरा उनसे बहुत पुराना मैत्री सम्बन्ध है। उनका स्मरण होते ही मुझे आनन्द की अनुभूति होती है।

यह बडे हर्ष की बात है कि उन्होंने अपने यशस्वी जीवन के ७२ वर्ष पूरे कर लिये हैं। भगवान से प्रार्थना है कि उन्हें सुन्दर स्वास्थ्य और दीर्घ आयु प्रदान करे, ताकि वे देश, समाज और साहित्य की उन्नति के कार्यों मे अधिकाधिक योग देते रहे।

—प्रभुदयाल मित्तल
मथुरा

यशपालजी ७२ साल के हो गये हैं, उन्हे शुभकामनाए कि अभी वे अपना अधिक-से-अधिक समय लिखने मे लगावे। उनसे मिलकर यह नही लगता कि किसी बडी उम्र के व्यक्ति से मिल रहे हैं, क्योकि उनमे लेखक की सहजता है।

—रमेश बक्षी
नई दिल्ली

श्री यशपाल जैन से मेरा परिचय पचास वर्ष पुराना है। दिल्ली मे हम लोग पडोसी थे। उन दिनो हम कुछ लोग हिन्दी और हिन्दुस्तान की सेवा का व्रत लिए घूमते थे। भाई यशपाल हम सब मे बडे थे, अत उनसे उत्साह, स्नेह और साहस भी मिलता था। उनका सरल स्वभाव, सादा जीवन, दृढ़ साहसी मन उन कठिन क्षणो में जबकि हिन्दी भाषा की सेवा करने के पथ मे कटक-ही-कटक दीख पडते थे, हमे बहुत कुछ हिम्मत दिलाता था।

यशपालजी बहत्तर वर्ष पूरे कर रहे हैं सोचकर भी न जाने कैसा लगता है। एक दीर्घ कर्मठ जीवन का चित्र सामने आ खडा होता है। भगवान उन्हें भाभी सहित शताब्दी पूरी करा दें। यह मेरी प्रभु से प्रार्थना है। वे शतायु होंगे, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास भी है।

—कंचनलता सब्बरवाल
लखनऊ

श्री यशपालजी जीवन के ७२ वर्ष पूरे कर रहे हैं, इस शुभ अवसर पर मैं अपनी ओर से हार्दिक शुभ-कामनाए अर्पित करता हू। मेरी कामना है कि वे शताधिक आयु प्राप्त कर तथा हिन्दी और गांधीवादी सिद्धान्तो की बराबर सेवा करते रहे।

—वेदप्रताप 'वैदिक'
नई दिल्ली

यशपालजी की विनम्रता और कर्मठता का मैं प्रशसक हू। आयुवृद्धि के साथ-साथ उनमे इन गुणों का और भी अधिक विकास होता चले तथा उनके ज्ञान और अनुभव से अनेक दशको तक समाज और देश लाभान्वित होता रहे, यही मेरी स्वाभाविक कामना है।

—लल्लनप्रसाद व्यास
नई दिल्ली

हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार बधुवर यशपालजी जैन का बुदेलखण्ड क्षेत्र विशेष ऋणी है। वह वहां लगातार छ वर्ष रहे हैं और उस क्षेत्र की उन्होने बहुविध सेवा की है।

उनके बहत्तर वर्ष पूरे होने के मगलमय अवसर पर मैं बुदेलखण्ड की ओर से उनका अभिनन्दन करता हू और मगल कामना करता हू कि यशपालजी शतायु हो तथा उनकी लेखनी अबाध गति से सृजनशील रहे।

—हरिमोहनलाल श्रीवास्तव
दतिया

भाई यशपालजी ने अपनी लेखनी और प्रत्यक्ष समाज-सेवा के माध्यम से अपने नाम की सार्थकता सिद्ध कर दी है। इस देश मे ही नही, अपितु विदेशो मे भी उनका सत्साहित्य प्रबुद्ध पाठको को चिंतन के लिए बाध्य करता है। समस्याओ के प्रति जागरूक और भारतीय सस्कृति की पृष्ठभूमि पर आधारित समाधान खोजने की उनकी दृष्टि ने अनेक समकालीन साहित्यकारो और समाज-सेवियो को दिशा प्रदान की है।

राजधानी के जन-जीवन मे तो भाईजी इतने घुल-मिल चुके हैं कि उनके लिए क्या कहा जाय, यह सोच पाना कठिन है। अपने सरल, हसमुख व्यक्तित्व, मिलनसारिता तथा मृदु भाषा मे वे अपने मन की बात इतने सहज ढग से लोगो के मन मे उतार देते हैं कि आश्चर्यचकित होना पडता है।

मेरी प्रभु से मगलकामना है कि वे दीर्घजीवी हो, उनका यश दिगदिगन्त मे फैले और भावी पीढ़ी उनसे सद्मार्ग पर चलने का मार्ग-दर्शन प्राप्त करती रहे।

—केदारनाथ साहनी
नई दिल्ली

भाई यशपालजी उच्चकोटि के साहित्यकार होते हुए भी साहित्य-सेवा के अतिरिक्त समाज की बहुमुखी कल्याणकारी प्रवृत्तियो मे सतत् सहयोग करते रहते हैं। यह उनकी विशेषता है।

उनकी हसमुखता, कार्यनिष्ठा, तत्परता और उनकी कुशाग्र बुद्धि अनुकरणीय है।

उनके पूरे परिवार का विद्वत्ता और सात्त्विकता से पूर्ण होना समाज के लिए अत्यन्त प्रेरणादायी है।

भाई यशपालजी से मेरा घनिष्ठ स्नेह-सम्बन्ध होने के नाते मैं अपने इस छोटे भाई की प्रशंसा करना आत्म-प्रशसा जैसा ही मानता हूं।

मैं केवल यही कामना करता हूं कि यशपालजी अपनी अद्वितीय सेवाओं के लिए अपनी शतवार्षिकी और अधिक उत्साह के साथ मनाने का शुभ अवसर मित्रों को प्रदान करें।

—मोहनलाल कठौतिया
नई दिल्ली

श्री यशपालजी को मैं अपना बड़ा भाई मानता हू। इतना ही नहीं, वे उन इने-गिने व्यक्तियों मे से हैं, जिन्हें मैं प्रेम भी करता हू और आदर भी। उन्होने भी मुझे सदा सहोदर का-सा प्यार दिया है।

मेरी कामना है कि वह युवा हृदय के समान कम-से-कम सौ वर्ष तक साहित्य की सेवा करते रहें।

—ई कुमारिल स्वामी
दिल्ली

मैं श्री यशपाल जैन को निजी तौर पर ३०-३५ वर्ष से जानता हू। वह लोकप्रिय लेखक हैं और गाधी विचारधारा के प्रति बड़े ही आस्थावान हैं। जब-जब उनसे मिलने का शुभ अवसर मिलता है मैं उन्हें अत्यन्त मिलनसार पाता हू। उनका व्यवहार बहुत ही मधुर होता है उनसे जब-जब चर्चा होती है, वह बापूजी के विचारो को ऊचा स्थान देते हैं। समाज-सेवा में उनकी गहरी अभिरुचि है। उनकी हिन्दी साहित्य की सेवाओ को हिन्दी प्रेमी भली प्रकार जानते हैं। उनका पारिवारिक जीवन सतुष्ट और आदर्श है।

मैं उन्हे हार्दिक बधाई देता हू। उनका अभिनदन करता हू और देश-सेवा तथा समाज-सेवा के लिए उनके सुखी और समृद्ध जीवन की कामना करता हू।

—सी के नायर
दिल्ली

श्री यशपाल जैन से मेरा असाहित्यिक सम्बन्ध काफी पुराना है। वे पहाड़ो मे घूमने के शौकीन हैं और मुझे भी पहाडो मे घूमने का कुछ शौक है। उनकी यात्रा-सम्बन्धी पुस्तको से मैंने प्रेरणा ली है। उनसे अनेक विषयो पर चर्चा का आनन्द मैंने प्राप्त किया है। उनको सदा मैंने प्रसन्नचित्त और उत्साहपूर्ण ही देखा है। कभी ऐसा अवसर याद नही आता, जब यशपालजी को उदास या निरुत्साहित पाया हो।

ईश्वर उन्हे शतायु करे, यही मेरी मगलकामना उनके ७२ वर्ष पूरे करने के अवसर पर है।

—लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला
नई दिल्ली

भाई यशपालजी ७२ वर्ष के पूरे हो गए हैं, यह बहुत आनन्द की बात है। उतनी उम्रवाले वे लगते नहीं हैं। स्वभाव के विनोदी और मिलनसार, कर्मठ तथा स्फूर्तिवान होने के कारण उनकी इतनी उम्र हो जाने का अन्दाज नही होता। सिर के बालो की कमी और सफेदी साथ-ही लेखनी की प्रौढ़ता, प्राजलता और उसका गतिशील प्रवाह जरूर बताते हैं कि अच्छी खासी साहित्य-साधना उनकी चेली है। वे खूब स्वस्थ, सुखी और ज्ञान-जगत मे समृद्ध हो, सौवा वर्ष पार करने पर भी अखण्ड साहित्य-सेवा करते रहें, यही मेरी हार्दिक कामना है।

—पूर्णचंद्र जैन
जयपुर

हिन्दी के जाने-माने गाधीवादी लेखक श्री यशपाल जैन की वर्षगांठ के शुभ सवर्भ पर 'युग प्रभात' पाक्षिक की समृद्ध शुभकामनाए।

भारत की राजधानी मे रहने पर भी सुदूर केरल के 'युग प्रभात' के लिए श्री जैन निकट सहयोगी हैं, शुभचिन्तक हैं और इस तरह घनिष्ठ बने है। उनकी अनेक रचनाए 'युग प्रभात' मे प्रकाशित हुई, जिनसे पत्र के पाठक लाभान्वित हुए हैं।

भगवान करे, श्री जैन को दीर्घायु और स्वस्थ जीवन प्राप्त हो।

—रवि वर्मा

दिल्ली

याद नही, किस काम से सस्ता साहित्य मडल पहुचा, मगर इतना जरूर हुआ कि यशपालजी से मुलाकात हो गई और दिन-प्रति-दिन हम एक-दूसरे के निकट आते गए। पिछले बाईस सालो मे हम कई बार मिलते रहे हैं, और हर बार यशपालजी की नम्रता और सरल स्वभाव ने मुझे प्रभावित किया है। मेरी कला की प्रगति के बारे मे यशपालजी मेरे शुभचिन्तको मे से हैं और अक्सर मौको पर उन्होने मेरा उत्साह बढ़ाया है। आज उनकी वषगाठ पर मुझे उन्हे बधाई और शुभकामनाए देते हुए बहुत प्रसन्नता हो रही है। परमात्मा उन्हें समाज और साहित्य की सेवा करने के लिए लम्बी आयु दे।

—रामनाथ पसरीचा

नई दिल्ली

राजधानी की साहित्यिक और सास्कृतिक प्रवृत्तियो से सबध रखने वाला ऐसा बिरला ही व्यक्ति होगा जो भाई यशपाल जैन के सम्पर्क मे न आया हो, और जो एक बार सम्पर्क मे आया, उसे सदा के लिए अपना बना लेने की विलक्षण क्षमता उनमे है। नि स्वार्थ सेवा-भाव, विनम्र व्यवहार तथा आनदी स्वभाव के कारण उन्हे अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

भगवान से प्रार्थना है कि उन्हे पूण स्वास्थ्य सम्पन्न चिरायु प्रदान करें तथा भविष्य मे उनके हाथो समाज की अधिकाधिक सेवा हो।

—विनयचन्द मौद्गल्य

नई दिल्ली

यशपालजी की याद आते-ही एक ऐसा सौम्य व्यक्तित्व आखो के सामने उभरता है, जो सम्पूर्ण है, निष्कपट है और अपने भोलेपन से सबको शीघ्र ही अपना लेता है। सबको ऐसा लगता है कि उनके वे अपने ही है। अपने-आपको हर कोई उन पर उडेल सकता है। उनमे धीरज है, समुद्र की-सी गहनता और गम्भीरता है। चाहे कितने-ही दिन बाद आप उनमे मिलें, कभी दूरी महसूम नही होती। वही मुस्कराता चेहरा, वही ताजगी, वही प्रेरणात्मक अपनापन जो अपनी ओर खीचता रहता है।

उनके सान्निध्य मे लगता है, हम प्रेम, सरलता और महानता के निकट हैं और इससे सुख मिलता है।

भगवान से प्रार्थना है कि उन्हे दीर्घायु करे, जिससे हम उनसे चिर-काल तक प्रेरित होते रहे।

—एस पी गोविल

नई दिल्ली

आज की परिवर्तित परिस्थितियों मे ७२ तक पहुच कर भी यशपालजी अपने व्रत से विरत नहीं हुए, यह विस्मय की, विचारने की बात है।

उनकी कर्मठता और दीर्घायु की शुभाशा के साथ उनका अभिनन्दन करता हू।

सौम्य, सरल, सहृदय, सुधी बन्धुवर्य यशपाल।
शतजीवी कर्मठ बनो सस्कृति कृत-व्रत पाल ।।

—हरगोविन्द गुप्त
चिरगांव

सन् १९२८-२९ के आसपास एक बार दिल्ली जाने पर श्री जैनेन्द्रजी के यहा यशपालजी से मेरा प्रथम परिचय हुआ। इसके पश्चात फिर टीकमगढ़ मे तो हम लोग लगभग ६ वर्ष तक एक साथ रहे। मैं उनकी सहज विनम्रता, सहृदयता और सुजनता से सदैव अत्यधिक प्रभावित रहा हू। उनसे मेरे घर जैसे सम्बन्ध हैं। उनकी साहित्यिक और अन्य क्षेत्रो में की गई सेवाए बहुत मूल्यवान हैं। अपने यात्रा-सम्बन्धी रोचक तथा ज्ञान-वर्द्धक साहित्य की देन के लिए हिन्दी जगत मे वे सदैव बहुत सम्मान के साथ स्मरण किये जाएगे।

भगवान से मेरी प्रार्थना है कि वे चिरायु हो और उनके हाथो मे इतनी शक्ति बनी रहे कि जीवन के अतिम क्षण तक पूर्ण स्वस्थ और सुखी रहकर साहित्य की सेवा करते रहें, सपरिवार सुखी रहे।

—कृष्णानद गुप्त
गरौठा (झांसी)

मेरा श्री यशपालजी से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और मैं उनसे अवसर मिलता रहता हू। इसी से मैं साधिकार कह सकता हू कि वे स्वभाव से बहुत ही विनम्र हैं और जिस कार्य को सभाल लेते हैं, उसे बहुत ही सुव्यवस्थित ढग से करते हैं। उनके सम्पर्क मे आकर मैंने देखा है कि उनका जीवन-विकास बहुत ही गौरवपूर्ण रहा है।

मैं मगलमय भगवान से प्रार्थना करता हू कि यशपालजी जैसे कर्मण्य समाज-सेवी बहुत समय तक सही दिशा प्रदान करते रहे।

—मुरलीधर डालमिया
नई दिल्ली

यदि कोई ऐसा व्यक्ति है, जिसने अपने सौम्य स्वभाव, आकर्षक व्यक्तित्व और साहित्यिक प्रतिभा से मेरे मन पर गहरी छाप डाली है तो वह श्री यशपाल जैन हैं। मेरा यह सौभाग्य रहा है कि मैं उन्हे ३० वष से भी अधिक समय से जानता हू।

मैं यशपालजी की वर्षगाठ पर उन्हे अपनी हार्दिक मगलकामनाए भेजता हू और आशा करता हू कि उनकी सौवी वर्षगाठ पर लिखने का मुझे फिर अवसर मिलेगा।

—जे कामथ
बबई

अभिनदन-ग्रथ की योजना पूर्णत उपयुक्त है। हार्दिक शुभकामनाए और बधाई।

—(डा) दौलतसिंह कोठारी
दिल्ली

यशपालजी का अभिनदन मुझे अभीष्ट है। वह मेरे प्राचीन सुहृद हैं। ऐसे मंगलमय अवसर पर मेरी आतरिक शुभकामनाए।

—(डा) बलदेव उपाध्याय
वाराणसी

यह हार्दिक प्रसन्नता की बात है कि श्री यशपालजी जैन की साहित्यिक सेवाओ के उपलक्ष्य मे अभिनदन-ग्रथ भेट किया जा रहा है। वस्तुत यह उचित और आवश्यक था। उन्होने स्वतंत्र लेखन तथा 'सस्ता साहित्य मण्डल' के माध्यम से जनता को जो अहिंसक विचार से लाभान्वित किया है, वह उसे कभी भूलेगी नही, उनका 'जीवन साहित्य' मासिक पत्र तथा 'मण्डल' के प्रकाशनो ने निश्चय ही प्रबुद्ध वर्ग के लिए सदा मार्ग-दर्शक का कार्य किया है। अहिंसक समाज-रचना उसका उद्देश्य रहा है और इस उद्देश्य की पूर्ति मे यशपालजी को तीन-चार दशक तक प्रशस्य योगदान रहा है और आज भी वह उसी मे सलग्न हैं।

मेरी मगलकामनाए है कि वह शतायु हो और भारतीय जनता और विश्व के लोगो को अधिकाधिक लाभ पहुचाते रहे।

—दरबारीलाल कोठिया
वाराणसी

यह जानकर बडा हर्ष हुआ कि भाई यशपाल जैन को सम्मानित करने के लिए एक अभिनदन-ग्रथ तैयार किया जा रहा है। गाधी चिन्तन को अपने जीवन मे व्यावहारिक रूप देने वाले यशस्वी साहित्यकार यशपालजी का अभिनदन वास्तव मे अपेक्षित है। मैं उनके दीर्घायु की कामना करता हू।

—कृष्णदत्त वाजपेयी
सागर

आदरणीय यशपालजी हमारे ब्रज क्षेत्र की विभूति है और अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा उन्होने विभिन्न क्षेत्रो मे जो सेवा की है, वह सराहनीय है। उनका सौम्य स्वभाव और मृदुल व्यवहार उनके व्यक्तित्व का ऐसा आकर्षण है, जो व्यक्ति को चुम्बक की भाति खीच लेता है। हमारी हार्दिक बधाई और अभिनदन।

—रामनारायण अग्रवाल
मथुरा

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि श्री यशपालजी का एक अभिनदन-ग्रथ समर्पित किया जा रहा है। यशपालजी ने समाज, साहित्य और सस्कृति के क्षेत्र मे जो सेवाए की है, वे निश्चय ही महत्त्वपूर्ण और रचनात्मक हैं।

मैं उनके दीर्घायुष्य की हृदय से कामना करता हू।

—(डा) नरेन्द्र भानावत
जयपुर

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भाई यशपाल जैन अपने जीवन के बहत्तर वर्ष पूरे कर चुके हैं और उनके लिए एक अभिनदन-ग्रथ प्रकाशित किया जा रहा है। ग्रथ की सफलता और यशपाल की लम्बी उम्र, स्वस्थ और क्रियाशील वार्द्धक्य की शुभ कामना करता हू। भगवान से मनाता हू कि जैसे वे सदैव अपने चेहरे पर भोलापन, आखो मे अजीब-सा चकित करने वाला भाव और होठो पर मुस्कान लिए जीवन के इतने सम-विषम वर्ष गुजार आए हैं, वैसे ही जीवन के शेष वर्ष गुजारे।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
इलाहाबाद
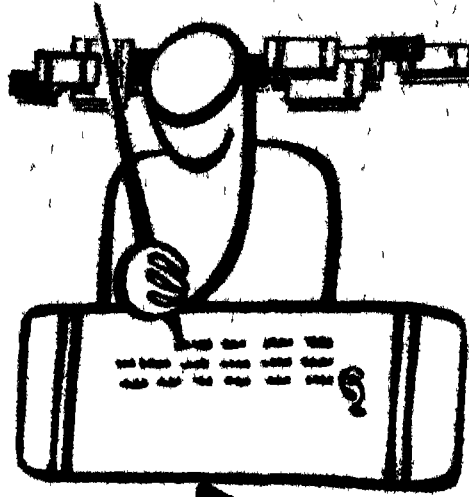
इन पृष्ठों में भारत तथा अन्य देशों के उन व्यक्तियों के संस्मरण दिये गए हैं, जिन्हें यशपालजी के सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। इन संस्मरणों को तीन उप-खण्डों में विभाजित किया गया है। 'पुण्य पुरुषों की कलम से' की सामग्री 'समन्वयी साधु साहित्यकार' हस्तलिखित ग्रंथ के उन हितैषियों की है, जिनका निधन हो गया। अन्य संस्मरणों को 'समकालीनों की दृष्टि में' दिया गया है। 'पारिवारिक परिवेश' उपखण्ड में परिवार के सदस्यों की भावनाएं संकलित हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि सारे संस्मरण यशपालजी की मानवीय मूल्यता तथा उनके द्वारा की गई मानवीय मूल्यों की उपासना पर प्रकाश डालते हैं।

पुण्य पुरुषों की कलम से

साहित्य-सेवा के सागर[1]

काका कालेलकर

□□

श्री यशपाल जैन को किसी ने 'कीर्ति के गौरीशकर' कहा है। उनका अभिनन्दन करते, मैं उनको 'साहित्य-सेवा के मागर' कहना अधिक पसन्द करूगा। 'सागते सर्व तीर्थानि' इस न्याय से असख्य नदिया सागर की आर दौडती हैं। इसी तरह जिन्होने अपनी षष्ठि अभी-अभी पूरी की है, ऐसे यशपाल जैन अनेकानेक नवयुवको को, लेखको को और सेवको को अपनी ओर खीचते है और उनको प्रेरणा देकर साहित्य-क्षेत्र की समृद्धि बढ़ाते हैं।

यशपालजी की तरफ मेरा आकर्षण एक विशेष कारण से है। मैं हू एक चिरयात्री। केवल भारत की नही, किन्तु दुनिया के सब खण्डो की, यात्रा मैंने की है। इस प्रवृत्ति मे यशपालजी मुझसे बहुत आगे बढे हैं।

'जीवन साहित्य' जैसे अपने मासिक की सेवा यशपालजी २५-३० वर्ष से करें, इसमे आश्चय नहीं। किन्तु हिन्दी के अनेकानेक नियतकालिको को यशपालजी के पास से साहित्यिक पोषण उत्तम ढग का मिलता रहता है, यह उनकी विशेषता मानता हू।

यशपालजी ने देश-विदेश की जो यात्राए की हैं, उनके वर्णन उन्होंने लिखे ही हैं। लेकिन यह सारा साहित्य एकत्र करके मानव-जीवन की विविधता और सस्कृति की परिपुष्टि का एक साहित्यिक चित्र अब हमे मिलना चाहिए। ऐसा ग्रन्थ या तो वे स्वयं दे दें, अथवा उनके साथियो मे से अथवा शिष्यो मे से बनी हुई एक छोटी सी समिति, यह काम करे। यशपालजी को 'कीर्ति के गौरीशकर' कहे या 'साहित्य-सेवा के सागर' कहें,

१ वीर निर्वाण भारती द्वारा सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री यशपाल जैन को 'वीर निर्वाण भारती' पुरस्कार से १३ अप्रैल १९७५ को सम्मानित किये जाने के अवसर पर मुख्य अतिथि काका साहेब कालेलकर द्वारा दिये गए भाषण का अश। सम्पा

यह हमारे अपने सन्तोष की बात है। विश्व की मानवता के लिए उन्होंने जो प्रेरणा दी है, उसे ग्रन्थबद्ध कराने की प्रवृत्ति ही उनकी सच्ची कदर होगी। साहित्य-सेवा तो उनका 'जीवन-व्रत' ही है, किन्तु विश्व-मानवता को परिपुष्ट करने के लिए भिन्न देशवासियो को एक-दूसरे के निकट लाने की उनकी प्रवृत्ति मेरे मन में सबसे अधिक महत्त्व की है।

यशपालजी के साथ मेरी गहरी आत्मीयता है। गांधी-युग का साहित्य-क्षेत्र ऐसे समर्थ लेखको के हाथ मे ही सुरक्षित है। सुरक्षित क्या, विकसित होने वाला है।

मैं तो यशपालजी को गांधी-युग का एक सच्चा और समर्थ प्रतिनिधि मानता हू और इसीलिए यह पुरस्कार दाताओ की ओर से उनको अर्पण करता हू।

एक जागरूक साहित्य-सेवी

रामभक्त कर्पीन्द्र

□□

ध्येय सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोह-तीर्थास्पद शिवविरचिनुत शरण्यम्।
भृत्यार्तिह प्रणात पालभवाब्धिपोत वन्दे महापुरुषते चरणारविन्दम्॥
सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ।
कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥

कैसी अच्छी और अनोखी बात आप सबने सोची है कि यशपाल भैया जैसे पवित्र, कर्मठ-साहित्य के उपासक को ग्रन्थ भेंट करने की, मैं इस विचार का आदर करता हू। मैं यशपालजी के सम्बन्ध मे क्या-क्या लिखू, यह मेरी लेखनी और वाणी के बाहर की बात है। मुझे अनेकानेक सस्मरण याद हैं। मेरे ही विचारो से एक ग्रन्थ बन जाएगा।

यशपालजी से मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध श्रीरामायण के माध्यम से है। उनकी सूझ-बूझ से प्रभावित हुआ हू। वह बहुत दूरदर्शी हैं और सदैव भूले-भटके भ्रान्त पथिको का मार्ग-दर्शन उन्हें रुचिकर है। यशपाल जी तो मानवता के पुजारी हैं। देश के जागरूक साहित्यिक हैं। उन्हे हर जाति के, हर देश के, मानव-समाज से स्नेह है।

मेरा अनुमान है कि साहित्यिक बनना सरल है, अपेक्षाकृत एक शुद्ध-बुद्ध मानव के। ऐसा अनुभव होता है कि मानव को बनाने वाली काई अपरोक्ष शक्ति है, अन्यथा मानव के रूप मे हमे दानव भी देखने मे आते हैं। अत यशपालजी को भी किसी दैवी शक्ति ने बनाया है, और वह एक पवित्र मानव हैं। मैं उनका आदर

करता हू। उनके प्रति मेरा शुद्ध नि स्वार्थ प्रेम है यशपालजी प्रत्येक समाज में आदरणीय हैं। उनके मिलने मे बात करने मे आत्मीयता है। उनके वातावरण में छल-कपट, द्वेष, ईर्ष्या, अभिमान की दुर्गन्ध नही है। वह प्रत्येक मानव के उत्थान को देखकर प्रसन्न होते हैं।

एक साहित्यिक इतना चरित्रवान हो, यह साधारण बात नहीं है। चरित्रवान व्यक्ति को देखकर मुझे अयोध्या के श्रीराम की स्मृति होती है, क्यो न हो, जबकि मानवता का ढाचा ही चरित्र पर टिका हुआ है। चरित्र बिना तो मानव बेसींग-पूछ का पशु है।

माया के विकारो से पृथक रहने के कारण ही तो यशपालजी को देश-देशान्तर के विद्वानों का-ऊचे-से-ऊचे अधिकारी का आदर प्राप्त है।

यशपालजी गुणग्राही हैं। मैंने कभी भी उनके मुख से किसी की निन्दा नही सुनी, वह सदा सबकी प्रशसा मे ही रत रहते है। उनके हसते-खिलते मुख से आदर के शब्द निकलते ही रहते हैं। मैंने उनको किसी पर कटाक्ष करते नही देखा। वह अपने जीवन मे आये हुए मित्रो को भूलते नही है, अपितु बुला-बुलाकर उन्हें सम्मान देते रहते हैं। कवियो की छोटी-छोटी कविताओं पर प्रसन्न होते रहते हैं। उनको अकेलापन अच्छा नही लगता, अन्यथा ऐसे लोग अकेला अच्छा समझते होगे, जैसे—

चरण धरत चिन्ता करत, नीद न भावे शोर।
सुवरण को खोजत फिरै, कवि व्यभिचारी चोर॥

परन्तु यशपालजी इस दोहे के कवियो से पृथक हैं, और शोर-शराबे मे भी आप काम करते रहते हैं। जब भला परमात्मा अकेला नही रह सका और कहना पडा कि एकोह बहुस्याम्, तो यशपालजी भला अकेले कैसे रह सकते हैं? सदा ही सस्ता साहित्य मडल मे, चित्रकला सभा मे, रामायण की कथाओ मे, रामलीलाओ मे, अधिकारियो मे, पत्रकारो मे, विद्वानो मे, सभाओं में, उनका दर्शन हो ही जाता है।

मैं यशस्वी यशपालजी के लिए अपनी मगल-कामना इन शब्दो के साथ भेजता हू।

सुफल मनोरथ होइ तुम्हारे।
जियउ सुखी सौं लाख बरीसा॥

मानव-मूल्यों के अटल विश्वासी

रामधारी सिंह 'दिनकर'

□□

दिल्ली के साहित्यिक और सास्कृतिक जीवन को जो अनेक मणिया आलोकित करती हैं उनमे से एक मणि का नाम श्री यशपाल जैन है। जब मैं दिल्ली मे था, वहा भाषा, सस्कृति, साहित्य और धर्म से सबधित जितनी भी सभाए होती थी, उनमे यशपालजी अवश्य दिखायी देते थे—केवल दिखायी ही नही देते थे, बल्कि बोलते थे और जनता उनके भाषणो को चाव से सुनती थी।

यशपालजी की रुचि विद्या के अनेक विषयो मे है। पढ़-लिखकर उन्होंने जितना ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया है, देश-विदेश घूम कर भी उन्होने उतना ही ज्ञान और अनुभव हासिल किया है। हर बरस-दो-बरस के बाद वे विदेश जाते ही रहते हैं।

यशपालजी बडे ही मिलनसार और विनम्र व्यक्ति हैं। यही कारण है कि दिल्ली मे और दिल्ली से बाहर ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो यशपालजी को अपना निश्छल मित्र समझते हैं।

यशपालजी भारत और मानवता के उन मूल्यो मे विश्वास करते हैं, जिन पर अब खतरे मडरा रहे हैं। लेकिन उनका विश्वास है कि ये मूल्य मरेंगे नही। वे परिष्कृत होकर जीवित रहेगे और एक समय आएगा जब भारत इन्ही मूल्यो के द्वारा सारी मानवता की सेवा करने मे समर्थ होगा।

यशपालजी की वर्षगांठ के अवसर पर मैं उन्हे अभिनन्दन, शुभकामना और हृदय का प्यार भेंट करता हू।

नयी दृष्टि के विवेकवान व्यक्ति

बेचरदास दोशी-अजवाली पडित

□□

रात के दस बज रहे हैं। मेरी आखें भी कमजोर हैं, पर भाई यशपालजी के साथ हम दोनो का विशेष स्नेह-सम्बन्ध अधिक समय से चला आता है। इस दृष्टि से मैं उनके सम्बन्ध मे अपनी शुभकामना थोडे शब्दो मे भेज रहा हू।

सन् १६३४ मे जब मैं मुनिराज श्री अमरमुनि को पढाने के लिए दिल्ली आया था तब हमारे स्नेही मित्र भाई गुलाबचद जैन ने श्री जैनेन्द्र कुमारजी से मेरा परिचय कराया था। जैनेन्द्रजी उस समय उदीयमान लेखक थे, पर अब तो वे एक सिद्धहस्त उत्तम कोटि के प्रतिष्ठित लेखक बन चुके हैं। उनके साथ परिचय होने के बाद मैं कई बार उनके घर गया। भाई जैनेन्द्रजी यशपालजी के सम्बन्धी होते है। उनके साथ विशेष परिचय होने से सन् १६३७ मे यशपालजी से हमारा परिचय सहज ही हो गया, जो अखण्ड रूप से चलता रहा।

उस समय यशपालजी 'सस्ता साहित्य मण्डल' को अपनी सेवाए दे रहे थे। उनके परिचय से जो मेरे मन पर छाप पडी वह यह थी कि यशपालजी नयी दृष्टि से विवेकवान तथा विचारशील व्यक्ति हैं। वैसे तो उनका जन्म दिगम्बर जैन कुटुम्ब मे हुआ है, पर उनकी दृष्टि विशाल है और उसमे सब धर्मों के प्रति बडा सम्मान है, विशेष आदर है। पूज्य गाधीजी द्वारा प्रचारित 'सर्व धम समभाव' की भावना उनके समदर्शी चित्त मे सदा रममाण है।

यशपालजी नम्र हैं, बड़े ही विनीत हैं, मितभाषी हैं, उत्तम लेखक तो वे हैं ही, फिर भी उनके सामने ज्यों-ज्यों सामाजिक तथा राष्ट्रीय प्रवृत्तियां आती रही हैं, त्यो-त्यो उनमे वे दिलचस्पी लेते हुए, अपनी शक्ति को बिना छिपाये सोत्साह प्रयत्न करते रहे हैं, साथ ही राष्ट्रीय प्रवृत्ति के हेतु वे हर प्रकार का कष्ट भी बिना हिचकिचाहट के सहते रहे हैं।

यशपालजी इतने मिलनसार हैं कि मेरे घर से भी वह स्नेह की गाठ बांधे हुए हैं। मुझे वह अपना आत्मीय मानते हैं तथा मेरी गृहिणी श्री अनवाली के प्रति भी उनकी वैसी ही भावना रही है। जब-जब हम दिल्ली गए, उनसे बिना मिले संतोष नही हुआ तथा जब-जब वे अहमदाबाद आये तो हमारे घर आए बिना नहीं रहे। उनसे मिलने पर ऐसा लगा मानो हम किसी लावण्यपूर्ण राजकुमार से मिल रहे हैं। ऐसा सौन्दर्य विधाता ने उनको बख्शा है। इधर जब सत्याग्रहाश्रम मे हमारे स्नेही भाई हरिभाऊ उपाध्याय रहते थे, तब से उनके भाई मार्तण्डजी से भी हमारा परिचय हुआ। यशपालजी और मार्तण्डजी का स्निग्ध परिचय हम कभी भूल नही सकते। सस्ता साहित्य मण्डल ने हमारी 'महावीर वाणी' पुस्तक प्रकाशित करके वह परिचय विशेष घनिष्ट बना दिया।

परमात्मा से हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि वे भाई यशपालजी को आरोग्यमय जीवन के साथ शतायु करें, साथ ही श्री जिनेन्द्रदेव से यह प्रार्थना करते हैं कि यशपालजी जिन मार्गानुसारी भावना रखते हुए आत्मिक दृष्टि से सब क्षेत्रों म अधिकाधिक विजयवन्त बनें।

मगलम् भगवान वीरो, मगलम् गौतम प्रभु।
मगलम् स्थूलभद्राद्या जैनो धर्मोऽस्तु मगलम्॥

सच्चे अनेकान्ती

(डा) आदिनाथ उपाध्ये

□□

याद नही पडता कि भाई यशपालजी से मेरी पहले-पहल कब भेंट हुई थी। शायद निश्चित तिथि के लिए मुझे अपनी डायरियो को टटोलना होगा। एक बात तय है। हम दोनो ही स्व नाथूरामजी प्रेमी के प्रति बडा आदर-भाव रखते थे, और 'प्रेमी अभिनन्दनग्रथ' था जो हमे एक-दूसरे के निकट लाया। उसका यशपालजी ने बडी योग्यता से सम्पादन किया था। प्रेमीजी के पौत्र के विवाह के अवसर पर घनिष्ठ मित्र के रूप में हमने जो समय इटारसी मे साथ-साथ व्यतीत किया, वह कमाल का था। भयकर गर्मी का मौसम था। हम सब नदी मे स्नान करने गये। मैं नदी के किनारे के बिल्कुल पास था। मुझे अब भी याद है कि किस प्रकार यशपालजी ने जुगल किशोर मुख्तार को जलधारा के बीच मे बह जाने से बचाया। एक बडी दुर्घटना टल गई इसका श्रेय यशपालजी को है।

भाई यशपालजी के मित्रों और साहित्यिक सहयोगियो का क्षेत्र बडा व्यापक है। मैं जब-जब दिल्ली गया, अनिवार्यत उनके पास पहुचा। जो उनसे मिला है वह उन्हें प्यार किये बिना नहीं रह सकता। बिना किसी दु ख के वह अपनी मधुर विवरणात्मक शैली मे आपको अपने अनुभवो, अपनी भावनाओ और अपने आदर्शवादी विचारो मे भागीदार बना लेते हैं। उनका दृष्टिकोण विश्व नागरिक का दृष्टिकोण है। विदेश-प्रवासो के उनके अनुभव सबसे अधिक शिक्षाप्रद और मनोरजक हैं। उनके पीछे एक सच्चा अनेकान्ती विद्यमान रहता है। जो भी सामने आता है, उसकी ओर वह ध्यान देते हैं, और उस सबको वह अपना लेते हैं, जो उचित और स्वस्थ है।

डा हीरालालजी, श्री अक्षयकुमारजी और श्री जगदीशचद्र माथुर के सान्निध्य मे मैंने प्राय मौन भाव से विचारो की दावत का आनद लिया है।

पिछली बार मैं यशपालजी से मिला था, मैंने सोचा भी नही था कि वह अपने जीवन के इतने वर्ष पूर्ण कर चुके हैं। उनका व्यक्तित्व बडा सौहादपूर्ण है। मेरी प्रार्थना है कि वह सदा स्वस्थ रहें, मानसिक चैन और आध्यात्मिक शान्ति अनुभव करते रहें।

'यत्राकृतिस्तत्र गुणावसन्ति'

(डा) हीरालाल जैन

□□

मैं कार्य-व्यस्त था। अकस्मात् किसी ने कमरे मे प्रवेश करते-करते ही कहा, "भले ही आपने हमे अब तक अपने सहयोग से वचित रखा हो, किन्तु अब तो बहुत कुछ प्रबन्ध आपको ही करना है। मैं यही जानने के लिए आया हू कि अब अपने को क्या कुछ और करना है।" यह कहते-कहते ही वे अपने आप सामने की कुर्सी पर आ बैठे। मैंने उनकी ओर देखा, किन्तु पहचान न सका। तथापि उनके बोलने की शैली से और बात के ढग से यह स्पष्ट हो गया कि वे मेरे खूब परिचित हैं। मैंने कुछ लज्जित होते हुए प्रश्नात्मक ढग से कहा, "आप ?" वे झट से बोले, "मैं यशपाल जैन हू और टीकमगढ से आया हू। प्रेमीजी को अभिनन्दन ग्रथ भेंट करना है न !"

यशपालजी से यह मेरा प्रथम साक्षात् परिचय था। परोक्ष मे तो बहुत पूर्व ही से मैं उनको जानने लगा था। उन दिनो वे बनारसीदासजी चतुर्वेदी के साथ 'मधुकर' पत्रिका निकालते थे, जिसके पढने मे आदि से मुझे बहुत रस आता था और हर अगले अक की उत्कण्ठा से प्रतीक्षा करता था। अत उनके नाम से तो मैं खूब परिचित ही था और यह परोक्ष परिचय तब और बढ गया जब उन्होने नाथूरामजी प्रेमी के सम्मान हेतु अभिनन्दन ग्रथ की योजना बनाई और आदि से ही उसमे मेरा सहयोग चाहा। किन्तु मुझे बडा दु ख रहा कि

उनके बार-बार आग्रह करने पर भी मैं अपने परम श्रद्धेय प्रेमीजी के उस अभिनन्दन ग्रंथ के लिए विशेष सहयोग नहीं भेज सका। इसका कारण यह था कि उसी वर्ष अर्थात् १९४६ में नागपुर में ही अखिल भारतवर्षीय प्राच्य विद्या सम्मेलन (आल इंडिया ओरियंटल कान्फरेंस) का तेरहवां सम्मेलन होने जा रहा था और मेरे ही सिर पर उसके स्थानीय सचिव (लोकल सेक्रेटरी) के पद का भार आ पडा था, जिसके कारण कालेज के अध्यापन और सम्मेलन सबधी पत्राचारादि के अतिरिक्त अन्य कुछ काम करने के लिए अवकाश ही नहीं निकाल पाता था। इसी सम्मेलन की तीन दिन की अवधि में उक्त अभिनन्दन-ग्रथ को समारोहपूर्वक प्रेमीजी को समर्पित करने का निश्चय हुआ था, जिसके लिए मैं स्थानादि की व्यवस्था कर चुका था तथा प्रेमीजी आकर मेरे पास ही ठहरे हुए थे।

यशपालजी का व्यक्तित्व पहली बार मेरे सम्मुख आया और उसने मुझे बहुत प्रभावित किया। मैंने संस्कृत सुभाषितो मे पढ तो बहुत पहले रखा था कि 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति' जहा रूप तहा गुण भी निवास करते हैं। किन्तु अनुभव से यह बात सिद्ध नही हो पा रही थी, क्योंकि तुलसीदासजी के वचनानुसार 'विष रस भरा कनक घट जैसे' (स्वर्ण के कलश मे जैसे विष भरा हो) ऐसे व्यक्तियो की कमी नही थी। यशपालजी के व्यक्तित्व मे शारीरिक सौन्दर्य, रूप-रग का निखार, हसमुख आकृति, मधुर और सरस वाणी, मृदुल और सरल स्वभाव तथा अकारण मैत्री की भावना और अनवरत साहित्य-साधना आदि गुणो का समावेश पाकर भला कौन ऐसा है, जो उनकी ओर आकर्षित न हो और उक्त सुभाषित की सार्थकता को अस्वीकार करे?

यशपालजी की काय-कुशलता और पैनी दृष्टि का मुझे तत्काल परिचय मिलने लगा। उन्होंने राज्यपाल और मत्रियो से लेकर प्रमुख शासन अधिकारियो और नागरिको की तत्काल सूची बनाई और मोटर कार लेकर तुरन्त उन सबको स्वय आमत्रित करने के लिए रवाना हो गए। मुझे उन्होंने स्वय ही यह कहकर छोड दिया कि आपको और भी बहुत से काम करने हैं। जब यथासमय नियत स्थान पर पहुचे तो हम सब प्रबन्धकर्ता आश्चर्यचकित हो गए, क्योंकि वहा एक से एक बडे अभ्यागत चले आ रहे थे, जिनकी वहा आने की हम सबने कल्पना भी नही की थी। गृहमत्री प. द्वारकाप्रसादजी मिश्र को यशपालजी ने सम्बोधन के लिए राजी कर लिया था तथा अन्य प्राय सभी मत्री भी आ उपस्थित हुए थे। वर्धा से आचार्य काका साहेब कालेलकर ग्रथ समपण के लिए अध्यक्षता करने आए थे। बडे ठाठ से अभिनन्दन समारोह सम्पन्न हुआ। लोग उस सफलता के लिए मेरा अभिनन्दन कर रहे थे, किन्तु मैं जानता था कि उसका असली अधिकारी कौन था।

परोक्ष परिचय अब गाढ़ मैत्री मे परिणत हो गया। कालान्तर मे यशपालजी दिल्ली पहुच गए और जब-जब मुझे दिल्ली पहुचने का अवसर मिलता तब-तब वहा का आधा आकर्षण तो मुझे यशपालजी से मिलने के सुख का रहता था। सन् १९५५ मे मुझे वहा महावीर जयन्ती के उत्सव हेतु जाना पडा। उस अवसर पर यशपालजी ने केदारनाथ की यात्रा का प्रस्ताव कर दिया। वहा मेरे आतिथेय श्री राधाकृष्ण जैन थे। वे भी इस यात्रा के लिए महमत हो गए। यह दूसरा ऐसा अवसर था जब मुझे आठ-दस दिन यशपालजी के अत्यन्त सन्निकट रह कर उनकी बहुमुखी प्रतिभा से परिचित होने का सुयोग मिला। अनेक कठिनाइयो को वे सरलता से सुलझा देते, थकावट को अपने विनोद से भगा देते, तथा विवादो का हसकर शमन कर देते। कोई बीस-पच्चीस मित्रो का दल था, जिनमे चार-पाच महिलाए भी थीं। कोई-कोई किन्ही को 'भाभी' कहने लगे थे। किन्तु समस्या थी, उनमे भेद कैसे किया जाय। यशपालजी ने मिनटो मे समस्या हल कर दी। उस समय जो महिला लाल साड़ी पहने थी, उन्हें लाल भाभी, जो पीली पहने थीं वे पीली भाभी तथा जो हरी पहने थी उन्हें हरी भाभी की सज्ञा दे दी गयी और फिर वे यात्रा भर इन्हीं नामो से सम्बोधित की जाती रहीं। अन्य दो अपेक्षाकृत अल्प-

वयस्क थीं, अत वे बहन सहित उनके नामो से ही सम्बोधित होती रही। जब कभी दलटुकड़ियों में बंटकर यशपालजी से पृथक् पड जाता या उस टुकडी मे कुछ मनोमालिन्य या सुस्ती और अनुत्साह आ जाता तब यशपालजी उसे सम्पर्क के अभाव से उत्पन्न एक व्याधि कहते और फिर उसे अपने चटपटे विनोदों द्वारा दूर कर आगे सम्पर्काधिकारी की भूमिका अदा किया करते। इस प्रकार वह कठिन यात्रा बडी सुखदायी रही।

निश्चय किया गया कि अब से प्रति वर्ष ही ऐसी लम्बी यात्रा का आयोजन किया जाय और इसके लिए हमारा पयटक सघ भी बनाया गया। मैं बड़े उत्साह से उसका सदस्य बना, किन्तु मेरा दुर्भाग्य कि यशपालजी का भरसक आग्रह होते हुए भी मैं फिर किसी यात्रा मे उनकी सत्सगति का सुखानुभव न कर सका, तथापि हमारे परस्पर स्नेह मे कोई शिथिलता नही आई। अनेक अवसरो पर उनसे भेंट होती रही और मैंने उनके हृदय और कर्मशीलता मे कोई शिथिलता नही देखी। सदैव उनकी वही नवयुवकता की मूर्ति सम्मुख आयी।

मैं उन्हे नव युवा के सिवाय अन्य रूप मे देख नहीं पाता। ध्यान हटाकर मैं उनके सबध की इन स्मृतियो को बटोरने मे लग गया। उनके अनेकानेक गुणो की याद आयी, उनमे से कुछ का ही मैंने यहां उल्लेख किया है और वह उन्हें अभिनन्दन भेजने मात्र का बहाना है। वे शतायु हो, यही कामना और भावना है।

मेरी मंगल-कामना

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

□□

लगभग ३५-३६ वर्ष की बात है, लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्य-सेवी भाई जैनेन्द्रजी के यहा जाना हुआ तो एक युवक को उनके परिवार मे घुले-मिले हुए बहुत शिष्टतापूर्वक धीमे-धीमे वार्तालाप करते हुए देखा।

खादी का स्वच्छ धवल परिधान, गौरवर्ण, उन्नत ललाट, आंखें बकौल मीर—"सारी मस्ती शराब की-सी है।" चौडा चकला सीना, स्वस्थ और आकर्षक युवक को बैठे हुए देखा तो मैंने समझा कि यह जैनेन्द्रजी के परिवार का ही कोई सदस्य है।

थोडी देर बाद जैनेन्द्रजी से मालूम हुआ कि ये श्री यशपाल जैन हैं, बी ए, एल एल बी की परीक्षा देकर आए हैं और किसी साहित्यिक सस्था मे काम करने के अभिलाषी है।

कुछ वर्षों के बाद पता चला कि वह टीकमगढ राज्य मे श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी के सहयोगी के रूप मे 'मधुकर' का सपादन और साहित्य-सृजन कर रहे हैं। उन्होने प्रसिद्ध जैन इतिहासज्ञ और हिन्दी के सुरुचिपूर्ण ख्यातिप्राप्त प्रकाशक पडित नाथूरामजी प्रेमी और श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी के अभिनन्दन-ग्रथो के सम्पादन और प्रकाशन का दायित्व लेकर हिन्दी-ससार को अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

जब भी यशपालजी से मुलाकात का अवसर मिला, सदैव शिष्ट, सौम्य और प्रसन्नचित्त पाया। वह बहुत नपे-तुले शब्दों में वार्तालाप करते हैं। भाषण भी बहुत विचारोत्तेजक और प्रभावशाली देते हैं।

यथाशक्य दूसरों की सेवा के लिए तत्पर रहते हैं और 'सस्ता साहित्य मडल' की उन्नति में चार चाद लगा रहे हैं।

श्री यशपालजी उत्तरोत्तर यश-प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए निराकुल और स्वस्थ दीर्घजीवन व्यतीत करें—यही मेरी मगल कामना है।

वीतराग व्यक्ति

प्रकाशवीर शास्त्री

□□

कुछ लोग भगवान के घर से अमर जीवन का वरदान लेकर आते हैं। समय का प्रवाह भी उनसे बच कर निकलता है। यशपालजी की वही सात्विक हसी, वही स्निग्ध बातें और वही मस्तानी चाल, जो दसो-बीसो साल पहले थी, आज भी उनकी है। कही कोई इच भर भी परिवर्तन उसमें नजर नही आता। कभी-कभी यह जन्मदिन मनाने वाले भी अन्याय करते हैं। जबर्दस्ती क्यो किसी को दस आदमियो मे बिठाकर यह सोचने पर मजबूर करते हैं—बुढापा तुम्हारी देहली मे झाकने लगा है। किसी को ऐसे शौक हो तो भी बात दूसरी है। पर यशपालजी को तो वह क्या, कोई भी शौक नही है। वीतराग व्यक्ति क्या शौक करेगा ?

हा ! एक शौक उन्हे जरूर रहा, जो शायद उनके सुन्दर स्वास्थ्य का भी रहस्य हो। हर समय मस्त रहो और व्यस्त रहो। किसी को बढता देखकर उन्हे खुशी तो होती है, पर डाह नही। समय का प्रवाह भी उन्हें ही जल्दी घेरता है, जो हर समय कुढ़ते रहते हैं, अथवा अकारण ही किसी का अनिष्ट चिन्तन करते रहते हैं। जीवन मे बहुत बडी आवश्यकताएं भी उन्होने सजोकर नही रखी। जहा मन मे आया, धोती-कुर्ता बगल मे दबाया और चल पडे। आज देश मे तो कल विदेश मे, मन बनाने भर की देर है

दई कमरिया काख मे साधु गगा पार।

ऊपर से नीचे तक शुद्ध, धवल वेशभूषा और उसी तरह का शुद्ध मन। यही है भाई यशपालजी के व्यक्तित्व की पहचान। साहित्यिक साधना मे अविरत लगे रहने वाले इस निश्छल साधु को 'अज्ञेय' कह कर ही एक शब्द मे अपना सम्मान प्रदर्शित करना चाहता हू।

एक इच्छा उनकी और मेरी समान है। पर अभी पता नहीं, उसे मूर्तरूप लेने मे कितना समय और लगे ? स्वाधीन भारत मे प्रवासी भारतीयो की ओर उतना ध्यान नही दिया जा सका, जितना अपेक्षित था। प्रारम्भ

से ही हमारी वैदेशिक नीति मे यह कमजोरी रही। उसी का परिणाम है जो लंका, बर्मा और अफ्रीका के छोटे-छोटे देशो मे उनको रहना भारी हो रहा है। उनका अपमान तो उस महान राष्ट्र का अपमान भी है, जहां के वे मूल निवासी हैं, अथवा जहा से कभी उन्हे जगल मे मगल करने के लिए ले जाया गया था। गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गाधी और भवानीदयाल सन्यासी ने पराधीन भारत मे प्रवासी भारतीयो के हितो की देखरेख के लिए कुछ सगठन भी बनाये थे, पर स्वतन्त्रता के बाद उस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। अब भी उस दिशा मे कुछ हो जाय तो भी अच्छा है। जहा अभी उनके हित सुरक्षित हैं, वहां तो कम-से-कम कोई आच न आये। यह प्रवासी भारत के सास्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक दूत का भी काम उन देशो में करते हैं। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी अपनी कलम और वाणी दोनो से इस सम्बन्ध मे कुछ प्रयास किये थे। देश-वासियो के सोये स्वाभिमान को झिझोडा भी था, पर अभी कोई विशेष परिणाम निकला नही।

अभी कुछ मित्रों और सहयोगियो ने मिलकर 'प्रवासी भारतीय सगम' नाम से एक सगठन की दाग बेल तो डाली है। इच्छा है, उसे एक सजीव और सशक्त सगठन बनाया जाय। इसमे जहा-जहा भी प्रवासी भारतीय हैं, उन देशो के पृथक-पृथक विभाग रखे जायेंगे, जो भारत सरकार और उनके मध्य मे शृखला का काम करेंगे। कुछ साहित्यिक, सास्कृतिक गतिविधिया भी उसके साथ जोडने की इच्छा है। देखें कब बेल मढे चढ़ती है? कभी-कभी तो यशपालजी जैसे व्यक्तियो को कहने को मन चाहता है—अपनी गतिविधियो का मुह इधर ही कुछ दिनों को मोड दें।

परमात्मा उन्हें सदैव स्वस्थ, सानन्द और सक्रिय रखे।

उन्हे सरस्वती की विजय देखनी है

कालिदास कपूर

□□

जीविका के लिए मैंने शिक्षण किया और शौकिया पत्रकारिता अपनाई। बनारसीदासजी चतुर्वेदी शिक्षण छोडकर पत्रकारिता और पत्राचार अपनाये हुए हैं। यशपालजी विशुद्ध पत्रकार तथा साहित्यिक हैं। इनकी निष्ठा हम दोनो से बढी हुई है।

देश को स्वतन्त्रता और हिन्दी को राष्ट्र-भाषा की वैधानिक मान्यता तब मिली जब हम दोनो जीवन-यात्रा की उस मजिल पर थे, जिस पर आज यशपालजी हैं। हम इस वैधानिक मान्यता को अभी तक वास्तविक नही बना पाये हैं। तो हमे आशा है कि यशपालजी और उनके साहित्यिक सहयोगी उस सेवा मे सफल होगे, जिसमे हम दोनो विफल हुए हैं।

पिछले समय एक वियोग से व्यथित हूं, जिससे यशपालजी को भी प्रभावित होना चाहिए। परन्तु व्यथा क्षणिक ही है। गुरुभाई हरिभाऊजी की जीवनयात्रा पुण्यमय रही, और उनके पद-चिह्न सुरक्षित हैं। दशरथ-निधन पर वसिष्ठ के उनके स्वजनों के प्रति वचन हमें भी सांत्वना देते हैं।

जब भी दिल्ली-यात्रा होती है, यशपालजी तथा जैनेन्द्रजी के साथ प्रातःकाल शांतिवन की सैर होती है और 'सस्ता साहित्य मडल' के दफ्तर में चाय-चक्रम् चलता है।

हमारी बिरादरी बुद्धिवादियों की है। देश के स्वतन्त्र होने पर हमने आशा लगाई थी कि हमारी कदर होगी। अभी तक तो सरस्वती-लक्ष्मी सघर्ष में लक्ष्मीजी की विजय हुई है, तो यशपालजी को सरस्वती की विजय देखनी है।

यशपालजी को मेरे हार्दिक आशीर्वाद।

बचपन के साथी

जगदीशचन्द्र माथुर

□□

यद्यपि यशपालजी आयु मे मुझसे चार-पाच वर्ष बडे हैं तथापि मेरा और उनका बचपन से साथ है और बराबरी का नाता। यह तब की बात है जब शायद उनकी हिन्दी साहित्य मे रुचि पैदा नही हुई थी, लेकिन मेरे साहित्यिक बालदन्त निकल चले थे। सन् १९३१ मे हम दोनो पडित श्रीराम वाजपेयी की सेवा समिति स्काउट्स एसोसिएशन के अन्तर्गत ऋषिकेश के निकट निर्मलवन कैम्प मे शामिल हुए थे। जहां तक मुझे याद है, हम दोनो ने एक दिन पन्द्रह मील की पैदल-यात्रा साथ-साथ की थी। उस समय यशपालजी अत्यन्त प्रियदर्शी और आकर्षक चाल-ढाल के किशोर थे। इसीलिए शायद अलीगढ़ मे उनकी खासी धूमधाम थी, जैसा उन दिनो मैंने सुना था।

इलाहाबाद मे, मैं और वह एक ही विश्वविद्यालय मे पढ़ते थे, लेकिन ताज्जुब की बात है कि पुराना परिचय होते हुए भी उन दिनो हम लोगो का निकट-सम्पर्क कायम नही रहा। मेरा अनुमान है कि इलाहाबाद के वे दिन उन्होने मनन-चिंतन मे गुजारे।

दुबारा यह सूत्र हम लोगो ने पकडा, अनेक वर्ष बाद, शायद सन् १९५३ या १९५४ मे। मैं उन दिनो बिहार सरकार मे शिक्षा सचिव था। उच्च कोटि की हिन्दी पुस्तको को बिहार के पुस्तकालयो और विद्यालयो तक पहुचाने की एक योजना भी चला रहा था। उसी सदर्भ मे यशपालजी बिहार आये। तबसे हम लोग एक-दूसरे के बहुत निकट रहे हैं, और हमारे परिवार भी।

मेरे दोस्तों मे नाना प्रकार की मनोवृत्ति के जीव हैं ! यह विविधता मेरे लिए अत्यन्त स्फूर्तिदायिनी है। मेरे कुछ बन्धु तो लहराती हुई पहाडी नदियों की भांति हैं, और कुछ विशाल गहरे चक्करदार आवर्तों से भरपूर महानदो की याद दिलाते हैं। यशपालजी एक ऐसे मदमद कलकल ध्वनि वाले रमणीक स्रोत के समान हैं, जो नन्ही शिलाओ से टकराते भी सकुचाता है कि कहीं उन्हें आहत न कर दे। हम दोनो ने ऋषिकेश के निकट निर्मलवन मे ऐसे अनेक स्रोत देखे थे !

यशपाल जैन का सरल, सौम्य स्वभाव, उनकी सहिष्णुता, विविध रुचि और महापुरुषो के प्रति उनका श्रद्धाभाव—ये ऐसी प्रवृत्तिया हैं, जो आजकल के कुछ नौजवानो को शायद चमत्कारविहीन जान पड़ें, किन्तु मेरे जैसे बहुधधी प्रौढ को यशपालजी के इन्ही गुणो के फलस्वरूप उनके सत्सग मे जीवन के अनुभवो से क्षत-विक्षत मनोदेह के लिए मरहम मिलता है।

आत्मीय बन्धु

सूर्यनारायण व्यास

□□

श्री भाई यशपालजी मेरे लिए परमप्रिय बन्धु के समान परम स्नेही रहे हैं। वर्षों से उनकी साहित्य सेवा से मैं सुपरिचित रहा हू। वे सिद्धान्तवादी पुरुष हैं। उन्होने देश-विदेश की अनगिनत यात्राए की हैं और अनुभव प्राप्त किया है। वे अनुभवी तथा निष्ठावान लेखक रहे हैं। हिन्दी मे जिस आस्था से और अनुभव से उन्होने सतत् लिखा है, वह वास्तव मे सदैव जनता का प्रेरक और उद्‌बोधक रहेगा।

उनके देश-विदेश के प्रवासो का रोचक और सजीव वर्णन अनेको को प्रेरित करने वाला रहा है। इसके साथ ही वे हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओ पर भी निरन्तर अपनी लेखनी चलाते रहे हैं। व्यक्तियो के चित्र अकित करने मे तो वह बेजोड हैं। वास्तव मे वह स्वय सजीव साहित्य हैं। मेरे साथ वर्षों उनका निजत्व रहा है।

भाई यशपालजी के विषय मे बहुत-कुछ लिखना चाहते हुए भी अपनी अस्वस्थता के कारण विवश हू, परन्तु मैं यह लोभ सवरण नही कर सकता कि मैं अपने परम स्नेही बन्धु के विषय मे कुछ विचार व्यक्त न करू। मेरी इस बीमारी मे वे मुझसे मिलने आये, घटे भर रहे और जिस आत्मीयता से स्नेह दिया, उसे मैं भूल नही सकता। जीवन-भर मैंने लिखने का कार्य ही किया, पर मेरे हृदय मे यशपालजी के प्रति गहरी सद्‌भावना और आत्मीयता होने पर भी आज ठीक तरह लिख नहीं पा रहा हू। अगर लिख पाता तो अनेक सुखद अनुभूतियां व्यक्त करता। यशपालजी वय मे मुझसे २१ वर्ष छोटे हैं, पर उन्हें मैं अपने आत्मीय जन की तरह मानता आ रहा हू।'

ईश्वर भाई यशपालजी को शतायु करे और साहित्य-सेवा की शक्ति प्रदान करे।

लोकोपकारी कार्यों में उनका योगदान

(साहू) शान्तिप्रसाद जैन

□□

[भाई यशपालजी के अभिनन्दन-आयोजन मे सम्मिलित होने और उनके सम्बन्ध मे अपनी स्नेह-भावनाए व्यक्त करने के इस अवसर का मैं स्वागत करता हू ।]

यशपालजी को मैं अनेक वर्षों से जानता हू। किन्तु पिछले कुछ वर्षों मे, जब से मैं स्थायी रूप से दिल्ली मे रहने लगा, उनसे विशेष सम्पर्क के अवसर आए। उनमे अनेक गुण ऐसे हैं, जो प्रभावित करते हैं, आकृष्ट करते हैं। उन्होंने राजधानी के सामाजिक जीवन मे, विशेषकर साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक क्षेत्र में, अपने लिए आदर का स्थान बनाया है। उनके विचार सुलझे हुए और सतुलित हैं। सबके साथ मिलकर काम करने और अपनी योजनाओ मे सबका हार्दिक सहयोग प्राप्त करने की उनकी क्षमता प्रशसनीय है।

अपनी विदेश-यात्राओ के प्रत्येक अवसर को उन्होंने अधिक-से-अधिक साथक बनाने का प्रयत्न किया है—अर्थात् एक ओर विदेशो के प्रगतिशील जीवन की कार्य-पद्धतिया और जीवन-गतियो का दिग्दर्शन और दूसरी ओर भारतीय सस्कृति की मूल भावनाओ तथा यहा की साहित्यिक-सास्कृतिक गतिविधियो का परिचय और मूल्याकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

दिल्ली के सास्कृतिक शोध सस्थान 'वीर सेवा मन्दिर' से वह अनेक वर्षों तक सबद्ध रहे। सस्था की प्रगति के उद्देश्य से विचारी गई योजनाओं मे यशपालजी का निरन्तर सहयोग प्राप्त हुआ। उनकी दृष्टि की व्यापकता विकास-कार्यों मे अधिकाधिक सहायक होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव की राष्ट्रीय समिति के सदस्य के नाते यशपालजी ने विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों की परि-कल्पना मे सक्रिय सहयोग दिया। इन कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने की दिशा मे सरकार की ओर से अपेक्षित सहयोग मे जो ढील दिखाई दी, या जैन समाज द्वारा प्रस्तुत सव-सम्मत कायक्रम की उपेक्षा का भाव जब दृष्टिगोचर हुआ तो यशपालजी ने जिस प्रभावकारी ढग से अपनी बात समिति के सामने रखी, उससे हम सब बहुत प्रभावित हुए।

भाई यशपालजी ने अपने जीवन के वर्षों को जिस सरल साहसिकता और क्रियाशीलता से अब तक निभाया है, उससे, लगता है, इन्हे तरुण से तरुणतर बनाया है। अगले वर्ष इनके जीवन को इससे भी अधिक कर्मठ और सफल प्रमाणित करें तथा यशपालजी का जीवन स्वास्थ्य, आनन्द और पारिवारिक सुख से ओत-प्रोत रहे, इन शुभकामनाओ के साथ मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हू।

महत्तर मूल्यों के साधक

रमा जैन

□□

श्री यशपालजी ने जो ख्याति अर्जित की है, समाज के जितने बडे वर्ग से उनका निजी सम्बन्ध है और जो आदर तथा स्नेह उन्हे प्राप्त है, वह अपने-आप मे उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यह मैं जानती हू कि इस उपलब्धि को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को स्वय कितना सच्चा और निष्ठावान होना होता है। किस प्रकार महत्तर मूल्यो को सामने रखकर उनके लिए सतत प्रयत्न करना होता है, साधना करनी होती है और सेवा-भावना को निरन्तर जागृत रखना पडता है। ये सब विशेषताए श्री यशपालजी के अपने स्वभाव की अग बन गई हैं।

उन्होने साहित्य के क्षेत्र को अपनी अभिव्यक्ति और आजीविका के लिए चुना। सास्कृतिक आयोजना को अपनी रुचि का विषय बनाया और सामाजिक परिष्कार के माध्यम के रूप मे उसका उपयोग किया। मानव-सपर्क की साधना और विचारो के आदान प्रदान को विकास का अग बनाया—और इन सबमे उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। 'सस्ता साहित्य मडल' के विकास मे यशपालजी का योगदान विशेष स्थान रखता है। 'जीवन साहित्य' की सपादकीय परपरा के सरक्षण और सवर्द्धन के श्रेय के वे सहभागी है।

इस हर्षमय अवसर पर मैं अपनी मगल कामनाए अकित करती हू और कामना करती हू कि श्री यशपालजी दीर्घजीवी हो, उनकी कर्मठता अक्षुण्ण रहे, और वह सपरिवार सानन्द रहते हुए लोकसेवा का अधिक-से-अधिक आत्मसुख प्राप्त करें।

सूझ-बूझ के व्यक्ति

सीताराम सेक्सरिया

□□

भाई यशपालजी के नाम से मेरा परिचय तब हुआ था जब उन्होने नाथूरामजी प्रेमी के अभिनन्दन मे एक ग्रथ का आयोजन किया था। इस ग्रथ का प्रकाशन यशपालजी की योग्यता, कार्यदक्षता और लोक सहजता का प्रमाण सिद्ध हुआ। इसके बाद तो उनसे स्नेहभरी बन्धुता का नाता जुड गया। 'सस्ता साहित्य मडल' मे वे आए तब से उन्होने इस सस्था का एक प्रकार से पूरा भार सम्हाल लिया। एक हजार रुपये के एक हजार स्थाई ग्राहक बनाने की कल्पना उनकी विशेष कल्पना थी, जो मडल के प्रकाशन में हिन्दी साहित्य और खासकर गाधी साहित्य के प्रकाशन मे बहुत ही सहायक सिद्ध हुई, साथ ही अनेक घरो मे उच्च साहित्य का प्रवेश इस योजना

द्वारा हुआ। 'मंडल' के प्रकाशन द्वारा उन्होंने अनेक भारतीय विद्वानों, साधकों, चितको के अभिनन्दन ग्रंथों और उनके सम्पर्क मे आने वाले, उनके प्रभाव से प्रभावित होने वाले, उनसे प्रेरणा लेने वालों से सम्पर्क करके उन सस्मरणो को प्रकाशित किया, जो सहज ही प्रकाशन मे नही आ सकते थे। 'मडल' का प्रकाशन ऐसा प्रकाशन है, जो हिन्दी वाङ्मय की शोभा और श्रीवृद्धि मे सहायक हो सका है।

यशपालजी सूझ-बूझ वाले आदमी हैं, कर्मठ और नम्र हैं।

अधिक से अधिक समय तक हम लोगो के बीच में रहे और हिन्दी की तथा साहित्य की सेवा करते रहे, यही भगवान से प्रार्थना है।

स्वस्थ साहित्य के निर्माता

जीतमल लूणिया

□□

श्री यशपालजी से मेरा परिचय लगभग ५० वर्षों से रहा है। इनकी साहित्य-सेवा तथा साहित्यिक प्रतिभा के सबध मे तो थोडा-बहुत पहले सुन रखा था, पर जब से ये 'सस्ता साहित्य मडल' मे स्थाई रूप से आए हैं, तब से इनसे विशेष सपर्क हुआ। 'मडल' से जो इन ४० वर्षों मे सैकडो महत्वपूर्ण पुस्तकें निकली है, उनके चुनाव तथा सपादन के सबध मे इनका मुख्य रूप से हाथ रहा है। इन्होने स्वय भी कई पुस्तकें चरित्र निर्माण, यात्रा, जीवनी आदि विषयो पर लिखी है, जिनका हिन्दी-ससार मे अच्छा स्वागत हुआ है।

'मडल' के मासिक मुखपत्र 'जीवन साहित्य' का तो ये लगभग ३८ वर्षों से बडे सुचारु रूप से संपादन कर रहे है और इस पत्र के अब तक अनेक विशेषाक भी निकल चुके हैं।

यशपालजी बडे मिलनसार, हसमुख और सामने आई हुई कठिनाइयो से न घबराकर उनको दूर करने मे बडे कुशल हैं। इनका स्वभाव भी बडा सेवाभावी है। जो कोई अपनी कठिनाई लेकर इनसे परामर्श लेने जाता है, उसे यथाशक्ति सहयोग देकर उसका मार्ग-दर्शन करते हैं।

सौभाग्य से इन्हे अपने अनुकूल ही धर्मपत्नी भी श्रीमती आदर्श बहिन मिल गई हैं, जो स्वय विदुषी (एम ए) हैं, साहित्य मे बडी रुचि रखती हैं। कुछ मौलिक पुस्तकें लिखी हैं। तथा कुछ के अनुवाद किये है। इनके हर एक काम मे सहयोग देती रहती हैं। यह बडी प्रसन्नता की बात है कि अब इनके जीवन का झुकाव कुछ आध्यात्मिकता की ओर हो रहा है। पिछले दिनो आपसी बातचीत मे इन्होने बताया कि अब मेरी एक तरह से तो औसत आयु पूरी हो चुकी है, अब तो जितने दिन ससार मे और रहूगा, वह एक तरह ब्याज के रूप मे समझिए, इसलिए अदर से मन यही कहता है कि जो कुछ आवश्यक काम अधूरे और बिखरे हुए हैं, उन्हे जल्दी-से-जल्दी समेट लिया जाय और नई सासारिक प्रवृत्तियां न बढ़ाकर अपना आगे का जीवन सेवा और आध्यात्मिकता मे विशेष रूप से लगाया जाय। इनका यह विचार बडा प्रेरणादायक है। ईश्वर से प्रार्थना है कि इस विचार को अपने जीवन में कार्यरूप मे परिणत करने मे सफल हो और आगे आने वाले अनेक वर्षों तक यह कार्य करते हुए शतायु हो।

मेरे आत्मीय

परमेष्ठीदास जैन

□□

मैं गत ५० वर्ष से यशपालजी की व्यापक गतिविधियो से परिचित रहा हू, तथापि उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को देखकर मेरे मन मे यह कभी नही आया कि वे वार्धक्य की ओर जा रहे हैं। वे कम-से-कम शतायु हों, यह कामना है।

श्री यशपालजी ने अभिनन्दन ग्रथ भेंट किए जाने का निषेध किया और वे इस आयोजन से बेचैन हैं, किन्तु वे यह क्यों भूल जाते हैं कि —'जो जैसा करेगा वैसा भरेगा।'

श्री यशपालजी ने ही आदरणीय प नाथूराम प्रेमी के अभिनन्दन ग्रथ समर्पण का आयोजन सन् १९४२ मे किया था और वे ही उस समिति के मत्री थे। तब श्री प्रेमीजी ने दिनाक ४-२-४४ को उन्हे अपने पत्र मे लिखा था—

"आप चौबेजी को समझाकर मुझे अभिनन्दन ग्रथ की असह्य वेदना से मुक्त करा दें। मैं हाथ जोडता हू और गिडगिडाता हू, मुझे इस कष्ट से बचाइए।"

किन्तु यशपालजी ने श्री प्रेमीजी की गिडगिडाहट पर कोई ध्यान नही दिया और करीब ८०० पृष्ठ का 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रथ' तैयार करके समर्पित करवाया था। अब उनकी बारी है, तो सकोच क्यो?

श्री यशपालजी की चतुर्मुखी सेवाए हैं। वह जब ४४ वष पूव दादाजी (प बनारसीदास चतुर्वेदी) के साथ कुण्डेश्वर (टीकमगढ, बुन्देलखण्ड) मे रहते थे तब 'मधुकर' का सम्पादन करते हुए उन्होने बुन्देलखण्ड क्षेत्र की अविस्मरणीय सेवा की थी। उन्होने ही सन् '४४ मे बुन्देलखण्ड परिषद का आयोजन करके श्री वृन्दावनलालजी वर्मा का यह प्रस्ताव पारित करवाया कि बुन्देलखण्ड प्रात का निर्माण हो। यद्यपि आज इतनी राजनैतिक चेतना के बाद भी यह प्रश्न यो ही चर्चा का विषय बना हुआ है।

व्यक्तिगत रूप से मेरे ऊपर यशपालजी का सहज ही स्नेह भाव रहा। मुझे भी उनके व्यवहार से ऐसा लगता रहा है कि मेरा एक भाई और है जिसकी समाज मे, देश मे और विदेशो मे भी ख्याति है।

मैंने जब श्री जैनेन्द्रजी के साथ 'लोक जीवन' पत्र का (सन् '४४ मे) सम्पादन प्रारम्भ किया था तब उन्होंने अपने लेखो और विचारो मे मेरी काफी सहायता की थी। मेरे 'वीर' पत्र के ३५ वर्ष के सम्पादन काल मे यशपालजी ने मुझे अविस्मरणीय सहयोग दिया। जब भी मैंने उनसे लेख आदि भेजने का निवेदन किया, उन्होने कभी नही टाला। वे धार्मिक, सामाजिक पत्र के लिए तदनुरूप अपनी रचना भेज दिया करते थे। 'वीर' के दिनाक १०-११-४५ मे प्रकाशित उनकी शानदार कहानी 'महायज्ञ का पुरस्कार' मुझे अभी तक याद है। एक साधारण-सी धर्मकथा को उन्होने मोहक और सुन्दर रूप देकर यह कहानी लिखी थी।

ललितपुर मे २५ दिसम्बर १९६७ को श्री यशपालजी की अध्यक्षता मे 'भारतवर्षीय जैन शिक्षा सम्मेलन' का अधिवेशन हुआ था। उस समय के विद्वत्तापूर्ण, सर्वांगीण अध्यक्षीय भाषण को लोग आज भी गौरवपूर्वक याद करते हैं। ललितपुर के लिए वह अभूतपूर्व अवसर था।

दिगम्बर जैन परिषद के अधिवेशनों में भी जब-जब मैंने उन्हे देखा सुना तो मन आह्लादित हो गया।

जब जो विषय सामने आता है, तब वह उस विषय पर इतना अच्छा बोलते हैं, जैसे वह इसी विषय के महान ज्ञाता और प्रवक्ता हैं।

मुझे वह दिन याद है, जब दिगम्बर जैन परिषद के दिल्ली अधिवेशन में मेरे द्वारा हरिजन मंदिर प्रवेश संबंधी प्रस्ताव रखने पर कट्टरपंथी जैन भाइयों ने मंच से नीचे गिराकर मेरी अच्छी पिटाई की थी, और तब श्री यशपालजी ने मेरे प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए अदम्य साहस दिखाया था।

सचमुच ही मेरे प्रति उनकी सहज ममता और स्नेहभाव रहा है। मुझे जब दिल का दौरा पड़ा और मेरा उपचार अस्पताल मे चल रहा था तब उन्होने मुझे अपने एक पत्र मे लिखा था—"आपकी बीमारी के समाचार जानकर बुरा लगा। हम लोग बीमार पडेगे तो कैसे काम चलेगा। खूब आराम कीजिए और काम की चिन्ता को ईश्वर पर छोडिए। आखिर हम कब तक जुए मे जुतते रहेंगे?" उनके इस पत्र ने मुझे काफी बल प्रदान किया।

श्री यशपालजी सचमुच ही यशस्वी व्यक्ति हैं। परोक्ष में भी लोग उनका यशोवर्णन करते रहते हैं। एक बार स्व प नाथूरामजी प्रेमी ने मेरे साथ श्री यशपालजी की कुछ विशेषताओ की चर्चा करते हुए एक मजेदार बात कही थी, "यशपालजी की परख ऊची है। विवाह के मामले मे भी वह चमकार नही निकले।" मैं जब ठीक से नही समझा तो बोले, "प्रत्येक युवक अपनी जीवनसगिनी के चुनाव के समय सबसे पहले लडकी की चमडी देखता है। चमडी की परख करना चमार का काम है। यशपालजी सुन्दर, स्वस्थ, आकर्षक युवक है, किन्तु उन्होने अपनी पत्नी—आदर्श कुमारी का अतरग रूप ही परखा, बाह्य शरीर का रग नही।"

मुझे आज भी वह चर्चा ज्यो-की-त्यो याद है। सचमुच ही यशपालजी का आचरण अनुकरणीय है। उन्होने अपने जीवन-काल मे सभी क्षेत्रो मे अविस्मरणीय सेवाए की हैं। उनकी वर्षगाठ के शुभावसर पर मैं उन्हे और उनकी 'आदर्श' पत्नी को भी बधाई देता हू।

सच्चे मित्र

(डा) युद्धवीर सिंह

□□

भाई यशपालजी की साहित्यिक सेवाओ के सबध मे कुछ लिखने की आवश्यकता नही है, क्योकि हर हिन्दी प्रेमी उनसे भलीभाति परिचित है।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के प्रकाशनो मे उनका जो हाथ योजना बनाने और फिर उस योजना को कार्यान्वित करने मे है, वह किसी से छिपा नही है। ईश्वर ने उन्हें प्रतिभा तो दी ही है, साथ ही चुस्ती-फुर्ती दौड-भाग करने की शक्ति भी अद्भुत प्रदान की है।

साहित्य के क्षेत्र के अतिरिक्त वह पक्के देशभक्त और उन थोड़े से व्यक्तियो में से हैं, जिन्हें अभी तक पूज्य गांधीजी और उनकी विचार-धारा पर श्रद्धा और विश्वास है। वह हवा के साथ बहने वाले नहीं हैं, बल्कि तूफान का मुकाबला करने वालो मे हैं।

विनोबाजी पर यशपालजी की अटल श्रद्धा है। मन, वचन, कर्म से अहिंसक सत्यनिष्ठ, सत्याचरण मे विश्वास रखने वाले चद व्यक्तियो मे उनकी गणना है। जहां तक उनके व्यक्तित्व का सबध है, सब जानते हैं कि वह सीधे-सादे, अहकारशून्य, मधुर-भाषी, दु ख-सुख मे मदद करने वाले सच्चे मित्र हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि वह कर्म मे विश्वास रखते हैं। हर समय काम मे लगे रहना, फिर नतीजा कुछ भी हो, अपना कर्त्तव्य करते जाना यही उनका मुख्य गुण है।

कर्मठ समाजसेवी और जागरूक पत्रकार

रामलाल पुरी

□□

श्री यशपाल जैन को मैं काफी समय से जानता हू। वह अपने अपूर्व उत्साह, अटूट लगन और अनुपम कार्य-कर्मठता से परिपूर्ण एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो अपने आकर्षक व्यक्तित्व के लिए सभी मे समान रूप से सराहे जाते हैं।

गाधीवादी विचारधारा से ओतप्रोत श्री यशपाल जैन की लेखनी से नि सृत सत्साहित्य, वर्तमान भौतिकवादी युग के विविध सदर्भों मे व्याप्त जनजीवन की आम समस्याओ पर नवचेतना से युक्त दृष्टि प्रदान करता है।

एक जागरूक पत्रकार के रूप मे भी श्री यशपालजी का जो सम्मान आज हिन्दी जगत मे है, वह निश्चय ही उनकी समाज-सेवी भावनाओ का प्रतिफल है।

अलीगढ जिले के विजयगढ कस्बे मे जन्मे श्री यशपाल जैन ने सन् १९३७ मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एल-एल बी पास किया और वकालत का विचार त्याग कर वह समाज-सेवा का कठोर व्रत ले बैठे, जिस का पालन सच्चाई के साथ उनके द्वारा आज भी सफलतापूर्वक हो रहा है। उनकी साहित्यिक अभिरुचि भी इसी बीच मुखरित हुई । और आरम्भ मे टीकमगढ़ आदि क्षेत्रो से पत्र-सचालन कर उन्होने अपनी प्रतिभा के जिस नूतन रूप का परिचय दिया, वह अद्वितीय है। तदुपरान्त सन् १९४६ मे वे देश की सुप्रसिद्ध प्रकाशन सस्था 'सस्ता साहित्य मण्डल' से एक ट्रस्टी के रूप मे सम्बद्ध हुए और आज अपनी अमूल्य सेवाओ के आधार पर उन्हें 'सस्ता साहित्य मण्डल' का सर्वाधिक सम्मानित सदस्य होने का गौरव प्राप्त है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' से प्रकाशित 'जीवन साहित्य' नामक पत्रिका का सम्पादन, हिन्दी पत्रकारिता जगत को उनकी विशिष्ट देन है।

यही नहीं, यदि यह कहा जाय कि समय-समय पर विदेश-यात्राओं के माध्यम से श्री यशपाल जैन ने लगभग सम्पूर्ण विश्व को अपनी आंखों से देखकर, जो यात्रा साहित्य लिखा,वह हिन्दी जगत की श्रेष्ठ उपलब्धि है, तो इसमे अतिशयोक्ति नही होगी।

मुझे अपार हर्ष है कि वे अपने जीवन के ६० वर्ष पूरे करके ६१वें वसन्त मे मधु घोलने के लिए ससार-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। वे चिरायु हो, मेरी शुभकामनाए हैं।

अपरिचितों के भी परम स्नेही

मथुरादत्त पाण्डे शास्त्री

□□

दुर्भाग्यवश मैं पिछले नौ वर्षों से निरन्तर रोगग्रस्त रहने के कारण अपग स्थिति मे आ गया। चलना-फिरना तो दूर, अपनी जगह पर खडा भी नही हो सकता था। रोग की ऐसी अवस्था मे जब मैं आगरा के एक अस्पताल मे भर्ती था तो कुछ समाज-सेवी सस्थाओ से अपील के रूप मे लिखी गयी अपनी एक छोटी-सी पुस्तिका मे भूमिका के रूप मे दो शब्द लिख देने के लिए मैंने वयोवृद्ध साहित्यकार प बनारसीदासजी चतुर्वेदी से निवेदन किया। चतुर्वेदीजी ने कुछ समय बाद मेरी स्थिति के बारे मे श्री यशपालजी जैन को बताया और मेरे लिए 'गाधी डायरी' तथा कुछ अन्य पुस्तकें भेज देने को लिखा। बस यहीं से मुझे यशपालजी का पत्रात्मक सान्निध्य प्राप्त हुआ।

मुझे उनके प्रत्यक्ष दर्शन करने का कभी सौभाग्य प्राप्त नही हुआ, लेकिन पत्रो द्वारा उनका सहज कृपा-भाव और स्नेह मुझे निरन्तर मिलता रहा, 'गांधी डायरी' तो वे मेरे लिए ठीक समय पर प्रति वर्ष भेज ही देते है, इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की प्रेरणास्पद और पठनीय पुस्तकें भी। एक नितान्त अपरिचित और अदृष्ट व्यक्ति के प्रति उनका निरन्तर बना रहने वाला स्नेह-भाव मुझे अत्यन्त बल प्रदान करता रहा। उनके किसी पत्र से ऐसा नही लगता कि मैं उनसे बहुत दूर हू। उन्होने मुझे कभी नही देखा। उनके पत्र की प्रत्येक पक्ति परम स्नेह और आत्मीयता से भरी होती थी और ऐसा लगता, मैं वर्षों तक उनके सान्निध्य मे रहा हू।

अपने समकक्ष व अन्य किसी प्रकार की विशेषता युक्त व्यक्तियो के प्रति सद्भाव प्राय सभी रखते हैं, परन्तु एक नितान्त साधारण श्रेणी के अपाहिज और नगण्य व्यक्ति के प्रति इतना सद्भाव रखना महान आत्मा की ही विशेषता है। मेरी दृष्टि मे यशपालजी का अन्य गुणो के साथ यह एक ऐसा श्लाघनीय गुण है, जिसके कारण वे सबके श्रद्धा-भाजन बने हैं। उनका यह गुण सभी के लिए अनुकरणीय है।

मैं उनकी वर्षगाठ के मगलमय अवसर पर परमपिता परमात्मा से विनम्र प्रार्थना करता हू कि उनका यह दैवी गुण सदैव बढता रहे। वे शतायु हो और उनके इस गुण से हम सभी प्रेरणा लेते रहे। उनका यश उत्तरोत्तर बढ़ता रहे तथा उनकी उपयोगी सेवाओ से साहित्य और समाज चिरकाल तक अभिवृद्ध और लाभान्वित होते रहे।

सबके मित्र

सीताचरण दीक्षित

□□

'यशपाल जैन'—यह नाम किसी भी लेख या पुस्तक मे देखें तो उसे अवश्य पढ़ जाइये। यदि आप सत्साहित्य के प्रेमी हैं तो उसमे आपको आनन्द आयेगा, कुछ नवीनता मिलेगी, मन को ताजगी देने वाला सोम-रस मिल जायेगा।

यशपालजी गाधीजी के आश्रम मे नहीं रहे। गाधीजी के सान्निध्य मे भी जब-तब ही रहे हैं। हा, आचार्य विनोबा के निकट सम्पक मे आने का उन्हे अवसर मिला। श्रद्धेय हरिभाऊजी उपाध्याय का वरद हस्त उनके सिर पर अवश्य रहा। पूज्य काका साहेब कालेलकर का स्नेह भी उन्हे प्राप्त रहा दीर्घ काल से। बस, इस शिष्य-परम्परा से ही उन्होंने गाधीजी की विचारधारा को आत्मसात् किया है। अब गाधी-निष्ठो मे शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा होगा, जिससे उनका प्रगाढ़ परिचय न हो।

बोल-चाल मे इतनी हार्दिकता, मन मे इतना सन्तुलन, दृष्टि मे इतना विवेक और जीवन मे इतनी सरलता अन्यत्र भी देखी जा सकती है, परन्तु गाधी-दशन को जीवन मे उतार लेना बुद्धि और हृदय की एकता, सयम और नियम मे दृढता, सेवा और कम मे सहज तथा अखण्ड निष्ठा के बिना सम्भव नही है।

यशपालजी मे यह सब एक साथ देखकर आनन्द होता है। उनके पास से उठने को मन नही करता। गाधीजी की शिक्षा की व्यावहारिकता पर आस्था पुष्ट होती है।

यशपालजी का कोई शत्रु न होगा। स्वय वे सबके मित्र हैं। उनके सद्गुण अधिक लोगो मे नही मिलेंगे और यदि उनमे कोई दुबलता हो तो उसे देखना हमारा काम नही है।

भगवान से हमारी प्रार्थना है कि वे दीर्घजीवी हो।

सद्गुण-सम्पन्न

रामधन शर्मा शास्त्री

□□

यशपालजी मेरे परम स्नेही मित्रो मे से हैं और मैं उन्हे अपना छोटा भाई मानता हू। आज से लगभग ४५ वर्ष पहले भाई जैनेन्द्रकुमारजी के द्वारा मेरा उनसे परिचय हुआ था और तब से मैं निरन्तर उनकी साहित्यिक और सास्कृतिक गतिविधियो से अवगत रहा हू। वे एक अच्छे लेखक, विचारक और सुवक्ता हैं तथा हिन्दी

के प्रति उनकी अगाध निष्ठा और प्रेम है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के द्वारा प्रकाशित साहित्य में उनका विशेष योगदान रहा है। अहिन्दी-भाषी भारतीयो मे हिन्दी के प्रचार और प्रसार मे भी उन्होने बहुत काम किया है। पिछले कुछ समय मे उन्होंने अपनी देश-विदेश यात्रा के अनेक संस्मरण और कुछ विशिष्ट व्यक्तियो के सम्बन्ध में भी कई संस्मरण लिखे हैं, जो बड़े ही रोचक और ज्ञानवर्धक हैं।

साहित्यिक होने के अतिरिक्त यशपालजी एक उत्कृष्ट समाज-सेवी भी हैं और दिल्ली की अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं से उनका सम्बन्ध है तथा दिल्ली के नागरिक जीवन मे उन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। 'चित्र-कला-सगम' जैसी सस्थाओ मे अभिरुचि उनके कला-प्रेम का परिचायक है। एक सच्चे समाज-सेवी मे निश्छलता, उदारता, परोपकारिता और निरभिमानिता आदि जिन विशेष गुणो की अपेक्षा की जाती है, वे यशपालजी मे पर्याप्त मात्रा मे पाये जाते हैं। मैंने उन्हे सदा एक सच्चे और हितैषी मित्र के रूप मे देखा है, जो दूसरों के सुख-दु ख मे सदा सहयोग देने मे तत्पर रहते हैं। ऐसा सद्गुण-सम्पन्न व्यक्ति निश्चय ही अभिनन्दनीय है।

इन थोड़े से शब्दो मे ही मैं यशपालजी को अपनी शुभकामनाए देता हू कि व शतायु हो और इसी प्रकार साहित्य, समाज और देश की सेवा करते हुए उत्तरोत्तर यश के भागी बनकर अपने नाम की सार्थकता बनाए रखें।

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई'

श्यामाचरण बिष्ठ

□□

श्री यशपाल जैन के नाम से मुझे प्रेरणा मिलती है। यह उनकी मुझे पर अकारण कृपा का फल है। ऐसी कृपा का बदला भला मैं गरीब क्या दे पाता। अपनी आत्मकथा 'प्रिजनर आफ राम जी' मे—जिसका प्रकाशन हो या न भी हो—मैं निम्नलिखित टूटे-फूटे शब्दो मे उन्हे अपनी श्रद्धा भर चढ़ा पाया हू। यही मेरे लिए बहुत है।

"अपनी बीमारी के दौरान बिस्तर पर लेटे-लेटे मैं एक कापी मे, जो मेरे पास रख दी गई थी, पेंसिल से लगातार उन विचारो को अंकित करता रहा, जो सौभाग्य से राम जी के विषय मे मेरे मन मे उठते थे। उन रचनाओ का संग्रह पुस्तक के रूप मे दिल्ली के श्री यशपाल जैन ने किया और उस पुस्तक का उन्होने नामकरण किया 'राम नाम की सम्पदा'। मैं श्री यशपाल जैन को कभी जानता नही था, न कभी उनसे मिला था। अभी तक उनसे मेरी भेंट नही हुई। मैंने प्रभु की प्रेरणा से अपनी पाण्डुलिपि उन्हें डाक से भेज दी। श्री यशपाल जैन ने जो किया, उससे मुझे यह विश्वास करने का अवसर मिला कि स्वार्थ-परायण व्यक्तियो की भीड मे अभी ऐसे

लोग हैं, जो दूसरों को सहारा देने के लिए तैयार हैं। इसलिए मैंने अपने हृदय मे न केवल श्री यशपाल जैन को धन्यवाद दिया, बल्कि उन्हें प्यार भी किया।"

यशपालजी अब तक अपने जीवन के अनेक वर्ष पर-हित जी चुके हैं। मेरी कामना है कि वे स्वस्थ और सुस्थिर रह कर कई और वर्ष वैसा करे। यही प्रार्थना मैं राम जी से मन-ही-मन करता रहा हू, और करता रहूगा।

परहित सरिस धर्म नहिं भाई,
पर पीडा सम अघ नहिं भाई।

उनकी हिन्दी-सेवा

अगरचन्द नाहटा

□□

बन्धुवर यशपालजी जैन की हिन्दी साहित्य-सेवा सर्वविदित है। उनका अभिनन्दन किया जा रहा है, यह जानकर बहुत ही प्रसन्नता हुई।

श्री यशपाल जैन से मेरा परिचय काफी पुराना है, जब वे 'सस्ता साहित्य मण्डल' मे नही आए, उससे पहले का। वे बहुत अच्छे लेखक और कुशल सम्पादक हैं। साहित्य की अनेक विधाओ मे उन्होने बहुत ही सुन्दर लिखा है। हिन्दी साहित्य की गौरव-वृद्धि की है।

व्यक्तिगत रूप से दिल्ली मे उनसे अनेक बार मिलना हुआ। उनके सौजन्य से मैं बहुत प्रभावित हुआ हू। 'जीवन-साहित्य' मे बहुत अच्छी सामग्री वे पाठको को देते रहे है और मैं 'जीवन साहित्य' के लिए वर्षों से नियमित लेख भेजता रहा हू। इस सम्बन्ध से उनसे काफी पत्राचार होता रहा है। वे पत्रो का उत्तर बहुत शीघ्र और नियमित देते हैं और प्राय अपने हाथ से ही लिख कर देते हैं। यह विशेषता बहुत कम व्यक्तियो मे पाई जाती है। उनके सम्पादित किए हुए कई लेख मैंने देखे हैं। उनके सम्पादन मे वे कितना परिश्रम करते हैं, यह सहज ही ज्ञात हो जाता है।

देश-विदेश मे वे काफी घूमे हैं, और अपनी यात्रा का विवरण लिख कर उन्होने विदेशो-सम्बन्धी अच्छी जानकारी अपने ग्रथो म दी है। अनेक समारोहो मे भी उनसे मिलना होता रहा है। इससे वे कितने लोकप्रिय हैं, इसका भी पता चल जाता है।

मैं उनके दीर्घायु और उत्तरोत्तर सफल होने की शुभकामना करता हू। हिन्दी साहित्य का भडार वे बराबर भरते रहें, जैन साहित्य की भी विशेष सेवा करते रहें, यही मेरी मगलकामना है।

स्नेही मित्र

विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी'

□□

साहित्य और समाज की सेवा मे रत श्री यशपाल जैन मेरे उन स्नेही मित्रो मे से हैं, जिनकी मुझ पर और मेरे परिवार पर वर्षों से बडी कृपा रही है। उनसे मेरा ऐसा सम्बन्ध जुड गया है, जिसमे मैं बन्धुत्व और प्रेम की भावना का अनुभव करता हू। 'सस्ता साहित्य मण्डल', नई दिल्ली के साथ मेरा पुराना सम्बन्ध है। 'मंडल' के मंत्री स्व मार्तण्डजी उपाध्याय से भी मेरा वर्षों से सम्बन्ध चला आ रहा था। उन्ही के साथ मेरा श्री यशपालजी से परिचय हुआ, जिसने पारिवारिक रूप ग्रहण कर लिया। मुझे उन्हें कई बार मेरठ के साहित्यिक आयोजनो मे भी आमन्त्रित करने का अवसर मिला। सम्भवत उनकी ५६वीं वर्षगाठ मेरठ के पुरुषोत्तम दास टडन हिन्दी भवन मे मनाई गई थी। वह अपनेपन के साथ मेरे स्थान पर आये थे और हिन्दी भवन मे मेरठ के साहित्यकारो ने उनका अभिनन्दन किया था।

एक बार हिमालय के उन्नत शिखर पर श्री बदरीनाथ पुरी मे भी उनके साथ रहने और मदिर दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह यात्रा बडी स्मरणीय यात्रा थी। उस वर्ष हरिजन बस्ती, नई दिल्ली के कुछ कार्यकर्ताओ ने श्री बदरीनाथ मदिर मे प्रवेश भी किया था। उस समय के प्रबन्धक श्री पुरुषोत्तम बागडी ने इन सबके निवास आदि की समुचित व्यवस्था की थी।

श्री यशपालजी के यात्रा-साहित्य को मैं बडी उत्सुकता के साथ पढ़ता रहा हू और मुझे उससे काफी प्रेरणा मिली है। उन्होने केवल भारत के प्रमुख तीर्थस्थानो, ऐतिहासिक नगरो, सांस्कृतिक केन्द्रों और साहित्यिक सस्थानो की ही यात्रा नही की, बल्कि वे विश्व के अनेक देशो की भी यात्रा कर चुके हैं। उनके वहा के अनुभव और विचार इस बात को प्रकट करते हैं कि उन्होंने बडी गहराई के साथ वहा के जन-जीवन और वहा की सस्कृति का अध्ययन किया है।

यशपालजी एक कुशल सम्पादक है। उन्होने नेहरूजी, आचार्य विनोबा भावे, श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी आदि के सम्बन्ध मे जिन ग्रथो का सम्पादन किया है, वे राष्ट्र और साहित्य की एक प्रकार से अमूल्य निधि हैं।

यशपालजी गाधी आदर्श का पालन करने वाले एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो आरम्भ से अब तक अपने आदर्श से नही डिगे। उनका सरल, शुद्ध और सात्विक जीवन इस बात को प्रकट करता है कि मनुष्य अपने परिश्रम के बल पर ऊचा उठ सकता है।

यशपालजी के धार्मिक विचारो के सम्बन्ध मे मुझे पिछले कुछ वर्षों मे विशेष रूप से जानने का अवसर प्राप्त हुआ। दिगम्बर जैन मुनि श्री विद्यानन्द जी मेरठ पधारे थे। उनसे भेंट करने का मुझे प्राय अवसर मिलता था। मुनिजी महाराज की मुझ पर विशेष कृपा रही। उनके प्रवचनों का सम्पादन करने का भी मुझे अवसर मिला। उनके सम्बन्ध मे मैंने दो पुस्तकें लिखी, जिनमे से एक पुस्तक की भूमिका भाई यशपाल जैन ने लिखी है। इस प्रकार यशपालजी के साथ मुझे मुनिजी महाराज से अनेक बार भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ। यशपालजी ने जैन धर्म पर अपने विचार प्रकट करते हुए हमेशा यही कहा कि हमे रूढ़िवाद से हटकर अपने धर्म के दार्शनिक स्वरूप को जानने का यत्न करना चाहिए। यशपालजी मुनिजी के इस विचार का स्वागत करते हैं कि हमें विश्व धर्म की भावना उत्पन्न करनी चाहिए।

यशपालजी धार्मिक दृष्टि से इस बात पर विशेष बल देते है कि हम मानवता की रक्षा के लिए मनुष्य मात्र मे प्रेम की भावना जागृत करें। इस दृष्टि से वे समाज-सेवा के कामो को विशेष महत्व देते रहे हैं। उनका कहना है कि मदिरो की पूजा के साथ-साथ हमारा समाज-सेवा का काम भी चलना चाहिए।

यशपालजी भारतीय सस्कृति के प्रबल पोषक रहे हैं। उन्होने विदेशो मे भी, जहां भी उन्हे अवसर मिला, भारतीय सस्कृति के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट किए। दक्षिण-पूर्व एशियाई देशो की यात्रा के पश्चात् उन्होने भारत और उन देशो की सस्कृति का जो तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया, उससे यह प्रकट होता है कि वह भारतीय सस्कृति को विश्व की सर्वोपरि सस्कृति मानते हैं। उनके इस प्रकार के विचारो के प्रकाशन की मैं बडी आवश्यकता समझता हू। आज की नई पीढ़ी को उनके विचार अपने देश की सस्कृति के प्रति प्रेम रखने की प्रेरणा देने वाले हैं।

यशपालजी हिन्दी के प्रबल समर्थक रहे हैं। उन्होने अपने साहित्य द्वारा हिन्दी-साहित्य की बडी सेवा की है, और उन्होने हिन्दी साहित्य के भडार को अपने रत्नो से पूरित करने का प्रशसनीय काम किया है।

अपने लोक-सेवा के कार्यों और साहित्यिक रचनाओ के द्वारा उन्होने हिन्दी के क्षेत्र मे बडा गौरवपूर्ण स्थान तो प्राप्त किया ही है, परन्तु इसी के साथ-साथ उन्होने अपने देश के बडे-बडे राजनीतिज्ञ, शासको और समाज-सुधारको को भी बडा प्रभावित किया है। इनमे से वे जिनके भी सम्पर्क मे आते रहे हैं, वे सभी इनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए है। जहा तक मेरी जानकारी है, भारत के राष्ट्रपति स्व डा राजेन्द्रप्रसाद इनके साहित्यिक काय से बडे प्रभावित थे।

यहा स्वर्गीय श्रद्धेय हरिभाऊजी उपाध्याय के नाम की कुछ चर्चा करना आवश्यक समझता हू। 'सस्ता साहित्य मण्डल' से श्री हरिभाऊजी का घनिष्ठ सम्बन्ध था। मण्डल से प्रकाशित होने वाले 'जीवन-साहित्य' मासिक पत्र के वे सम्पादक थे। इस प्रकार यशपालजी उनके परिवार के एक रत्न ही समझे जाते है। यशपालजी को वे बडे सम्मान की दृष्टि से देखते थे, और समझते थे कि यशपालजी उनके विचारो के अनुकूल साहित्य की बडी सेवा कर रहे है।

यशपालजी दिल्ली के प्रत्येक क्षेत्र मे बडे ही लोकप्रिय हैं। किसी भी व्यक्ति से व कभी नाराज नही हुए और दिल्ली का कोई व्यक्ति भी उनसे नाराज नही है। सभी साहित्यकार, राजनैतिक कायकर्ता और नेता, कवि और समाज-सवी यशपालजी को अपना समझते है। वे किसी के प्रति कोई दुर्भावना नही रखते। एक बार मैंने उनसे प्रश्न किया कि दिल्ली वाले आप से इतने खुश क्यो रहते है? उन्होने यही उत्तर दिया, "मेरे लिए सब समान हैं। जब मैं किसी के प्रति द्वेष नही रखता तो फिर मेरे लिए कोई दुर्भावना क्यो रखेगा?" मै उनके इस विचार से बराबर प्रेरणा लेता रहा हू। मेरा विश्वास है कि यदि हम दूसरो के प्रति सद्भावना रखे और व्यथ की आलोचना करना बन्द कर दे, तो हमारे सामाजिक जीवन की विषमता कम हो सकती है।

भाई यशपालजी का सारा जीवन बडा प्रेरणादायक रहा है। उनके जीवन का अमृत-रस जितना भी मानव-जीवन को सुखी बनाएगा, उतना ही देश और समाज उन्नत होगा।

जीवन के कलाकार

रामचन्द्र शर्मा 'महारथी'

□□

बहुत से लोग देखने मे प्रिय लगते हैं, अनेक व्यवहार मे शिष्ट होते हैं और कुछेक सगत करने पर आदर के पात्र सिद्ध होते हैं। परन्तु सन्त तुलसीदास की उक्ति

सिमिटि सिमिटि जल भरउ तलावा।
जिमि सद्गुण सज्जन पहं आवा॥

के अनुसार भाई यशपालजी को मानवीय सद्गुण सहज प्राप्त हो गए हैं।

कोई घर-द्वार के बल पर आगे बढ़ता है, किसी का सम्बल पुरखो की धन-सम्पदा होती है और ऐसे भी होते हैं, जो राजनीति की रेल-पेल मे धिकल कर आगे पहुच जाते हैं। परन्तु यशपालजी इन सबसे कुछ अलग हैं।

विधिवेत्ता की उपाधि मिलने पर परिजनो ने सोचा होगा कि उनके यशपाल बाबू वकालत की अधी कमाई से घर भर देंगे और समय पाकर कभी न्यायाधीश के रूप मे जाति-बिरादरी को यश दिलाएंगे, पर उन्होने तो अपनी मौज मे, चुपके से साहित्य का उपेक्षित मार्ग पकड लिया। वहा उनकी छिपी प्रतिभा ने चमत्कार दिखाया और नई पीढ़ी के प्रबुद्ध वर्ग को भी इसी क्षेत्र की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी।

छुटपन मे यशपालजी का सैर करना और घूमना-फिरना भले ही उनके प्रियजनो को अच्छा न लगा हो, पर अब तो घर-बाहर, राज तथा समाज के पहरुए उन्हे यात्राओ के लिए निरन्तर उत्साहित व आमन्त्रित करते रहते हैं। और धन्य हैं, हमारे यशपालजी जो व्यवसायी कमीशन एजेन्ट की-सी निष्ठा से दूर-पास की सस्कृति, साहित्य और कला का मधु सचय कर अपनी रचनाओ द्वारा समाज और राष्ट्र को पचामृत रूप मे वितरण कर देते हैं।

श्रद्धेय बनारसीदासजी चतुर्वेदी और श्री हरिभाऊजी उपाध्याय सरीखे मजे-तपे, यशस्वी पत्रकारो के निर्देशन और चिर सहयोग से पाठको को 'मधुकर', 'जीवन-साहित्य' का अलभ्य वरदान दिलाने का श्रेय बहुत कुछ यशपालजी को भी है।

यशपालजी का सरल जीवन, सादा वेश, परिपक्व अनुभव, मधुर भाषण और स्मित वदन किसी भी सौम्य प्राणी को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। राजधानी की कोई भी समाज-सेवी सस्था अपने कार्य का सम्पादन इन्हें सौंप कर कृतकृत्य हो जाती है।

भगवान करे, वे चिरकाल पर्यन्त सुख-चैन भोगते हुए अपने चारो ओर के वातावरण मे उत्कृष्ट मानव-कल्याण की महक सरसाते रहे!

बुन्देलखण्ड को उनकी देन

गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

□□

चालीस वर्ष पूर्व जब पडित श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी कुण्डेश्वर (टीकमगढ) मे निवास कर रहे थे तब पाक्षिक 'मधुकर' के सम्पादकीय कार्यों मे योग देने के लिए श्री यशपाल जैन को आमन्त्रित किया गया था।

श्री यशपालजी ने बुन्देलखण्ड की जागृति के लिए तो सतत प्रयत्न किया ही, साथ ही यहां के अहार क्षेत्र को प्रकाश मे लाने का महत्वपूर्ण काय किया।

अक्तूबर १९४६ ई मे प्रकाशित 'प्रेमी अभिनन्दन-ग्रन्थ' की सफलता का श्रेय मुख्यत श्री यशपालजी को ही है।

इसी प्रकार सन् १९४९ मे प्रकाशित वर्णी-अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता मे उनका भरपूर योगदान रहा।

श्री वर्णीजी तथा बुन्देलखण्ड के प्रति अपनी भावनाए व्यक्त करते हुए यशपालजी ने बहुत कुछ लिखा था। उसमे से एक अश उद्धत करने का लोभ सवरण नही कर पा रहा हू

'वर्णीजी को प्रकृति से बडा प्रेम है और यह स्वाभाविक ही है। बुन्देलखण्ड की शस्य श्यामला भूमि उसके हरे-भरे ऊचे पहाड, विस्तृत सरोवर और सतत प्रवाहित सरिताए किसी भी शुष्क व्यक्ति को भी प्रकृति प्रेमी बना सकती है। इसी सौभाग्यशाली प्रान्त को वर्णीजी को जन्म देने का गौरव प्राप्त हुआ है।"

आगे वह कहते हैं।

"अहार के लम्बे-चौडे महासागर के बाध पर जब हम लोग खडे हुए तो सरोवर के निमल जल और उसके इर्द-गिर्द की हरी-भरी पहाडियो और वनो को देखकर वर्णीजी बोले, "देखो तो कैसा सुन्दर स्थान है। सब चीज बना लोगे, लेकिन मैं पूछता हू कि ऐसा तालाब, ऐसे पहाड और ऐसे वन कहा से लाओगे ?"

उक्त ग्रथो के सम्पादन करने और साहित्य एकत्र करने मे यशपालजी ने अकथनीय परिश्रम किया था, जिसकी मुक्त कण्ठ से प्रशसा की गई थी।

श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य-परिषद्, बुन्देलखण्ड साहित्य-मण्डल, टीकमगढ और 'मधुकर' को लोकप्रिय बनाने मे यशपालजी ने जो श्रम किया था, वह सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

कुण्डेश्वर से प्रस्थान करने के पश्चात 'सस्ता साहित्य मण्डल' तथा 'जीवन-साहित्य' द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा कर रहे है।

श्रीरामनवमी के अवसर पर कुछ वर्ष पहले राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रथमाचार्य कवीन्द्र केशव के जन्म-स्थल ओरछा (म प्र) मे मुख्य अतिथि के रूप मे केशव जयन्ती पर यशपालजी ने अपने विदेश भ्रमण के सस्मरण सुनाकर उपस्थित जनता को आनन्दविभोर कर दिया था।

समय-समय पर यशपालजी ने विविध विषयो पर दर्जनो लेख लिखे है। वह अब दिल्ली मे हैं, पर बुन्देलखण्ड उनकी याद करता है। वह बुन्देलखण्ड को बहुत कुछ दे गए हैं। अब भी देते रहते हैं।

बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी

माईदयाल जैन

□□

श्री यशपाल जैन से मेरा सर्वप्रथम परिचय सन् १९४५ के लगभग चांदनी चौक में फव्वारे के पास हुआ, जब हम दोनो ट्राम से उतरे। उस समय वे 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' के सम्पादन मे व्यस्त थे। उन्होंने मुझे 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' के लिए एक लेख देने को कहा। कुछ और इधर-उधर की बातें हुईं। उस समय वह टीकमगढ़ रहते थे और किसी काम से दिल्ली आये थे। सन् १९४६ से वह पुन दिल्ली आ गये।

इन पच्चीस वर्षों मे यशपालजी को निकट से देखने के बराबर अवसर मिलते रहे और आज मैं जो कुछ लिख रहा हू, वह उस दीर्घ परिचय के आधार पर ही लिख रहा हू। इसमे मुझे उस इन्टरव्यू से भी सहायता मिली है, जो मैंने १७ मई सन् १९६७ को उनसे ली थी।

श्री यशपालजी का जन्म १ सितम्बर १९१२ को उत्तर प्रदेश के विजयगढ़ नामक कस्बे के एक सम्भ्रान्त जैन परिवार मे हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने कस्बे मे हुई, फिर वह अलीगढ़ पढने चले गये। बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् १९३५ मे बी. ए और १९३७ मे एल एल बी की परीक्षा पास की। मेरे यह पूछने पर कि उन्होने वकालत न करके साहित्यिक जीवन क्यो अपनाया, उन्होने बताया, "वकालत की अपेक्षा मेरे साहित्यिक क्षेत्र मे प्रविष्ट होने के तीन प्रमुख कारण थे। पहला यह कि वकालत पास करने के समय तक साहित्यिक जगत मे मेरी पर्याप्त गति हो गयी थी। मेरी कहानिया, गद्यगीत आदि प्रतिष्ठित पत्रो में प्रकाशित होते थे। दूसरे मामा जी (श्री जैनेन्द्र कुमारजी) की प्रेरणा थी कि वकालत मे धन कमाया जा सकता है, पर यदि जीवन मे प्रयोग का आनन्द लेना है तो वह साहित्य के माध्यम से मिलेगा। तीसरी बात यह थी कि वकालत को चलाने के लिए जिस प्रकार की बुद्धि की आवश्यकता होती है, वह मुझ मे नहीं थी।"

यशपालजी के निष्कपट, मायाचार-हीन चरित्र को देखते हुए आज यह नि सकोच कहा जा सकता है कि यदि उन्होने वकालत की होती तो उसमे इतने सफल कदापि न हुए होते तथा देश की उतनी सेवा न कर पाते, जितनी कि उन्होने अब तक की है और कर रहे हैं।

यशपालजी साहित्यकार के साथ-साथ शुरू से ही सुधारक भावना से भरपूर हैं, जिसका प्रमाण उनका आदर्शकुमारीजी से सन् १९४२ मे अन्तरजातीय विवाह करना है। कहने की आवश्यकता नही कि आदर्श-कुमारी एक उच्च शिक्षित परिवार की हैं और इनके पिता सुविख्यात एडवोकेट थे। कुछ समय डिप्टी कलक्टर भी रहे। आदर्शकुमारीजी भी वर्षों से साहित्य-सेवा तथा शिक्षा के प्रसार मे लगी हुई है। डेनमार्क की सरकार ने उन्हे प्रौढ शिक्षा के अन्वेषण के लिए आठ महीने डेनमार्क मे रखा था। वहा से स्वीडन, इग्लैण्ड, फ्रास आदि देशो की उन्होने यात्रा की। फिर दिल्ली के कालिन्दी कालेज मे प्राध्यापक हो गईं। चरित्र, स्वभाव, शिक्षा और साहित्यिक प्रवृत्ति की दृष्टि से दोनो समानुकूल हैं।

आज यशपालजी, दिल्ली के ही नही, समस्त भारत के चोटी के एक दर्जन हिन्दी साहित्यकारो मे स्थान रखते हैं। यह मेरा ही नही, बल्कि श्रद्धेय प बनारसीदासजी चतुर्वेदी का भी मत है, जिनके साथ यशपालजी को कुण्डेश्वर (टीकमगढ) मे छ वर्ष 'मधुकर' पत्रिका का सम्पादन करने का अवसर मिला था।

यशपालजी के जीवन की चार बातें मुझे विशेष रूप से उल्लेखनीय लगती हैं। ये बातें एक ही नदी की

साथ-साथ मिलकर बहने वाली चार धाराओ के समान हैं। वे हैं १ उनका उज्ज्वल चरित्र, २ साहित्य-से
३ देश-विदेश का भ्रमण और, ४ कार्यकुशलता। इन्ही बातो पर सक्षेप मे मैं प्रकाश डालूगा।

यशपालजी के चरित्र मे सौजन्य, सहृदयता, मिलनसारिता, मधुरभाषिता, परिश्रमशीलता और स
का सदुपयोग करना मुख्य हैं। बनारसीदासजी के कथनानुसार "वे विनम्र हैं, सौम्य स्वभाव के हैं और आ
कारी भी।" घुलमिलकर बातचीत करना यशपालजी के स्वभाव का एक अग ही है। यशपालजी अपने साथ क
करने वालो तथा दूसरो से काम लेने मे बडे कुशल है। अपने अधीन काम करन वालो को वे अपने बराबर
समझते है तथा कभी उनसे क्रुद्ध होते मैंने उन्हे नही देखा। उनके आदेशो मे दृढता तथा स्पष्टता होती है और
सक्षिप्त तथा नपे तुले होते हैं। जहा तक समय के सदुपयोग की बात है, वे अपना एक क्षण भी व्यथ नही ज
देते। जब देखो, उन्हे आप कुछ-न-कुछ करते पाएगे। कभी डाक निबटा रहे है, कभी पुस्तक का सम्पादन
रहे है, कभी प्रूफ देख रहे है और कभी लिखने मे लगे हैं। यदि यह कहा जाए कि उनकी सफलता का मुख्य रह
उनका समय का सदुपयोग और परिश्रमशीलता है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। महत्वाकाक्षा उनमे नाम
नही है, वरना अपनी शिक्षा, मेल-जोल और साहित्य साधना के बल पर उनके लिए ससद सदस्य या राज
बन जाना मामूली बात थी।

उनकी दूसरी विशेषता उनकी साहित्य-साधना है। वह सिद्धहस्त लेखक हैं और सन् १९३८ से अबत
उनकी इक्कीस मौलिक पुस्तकें निकल चुकी हैं। दो-सौ से अधिक पुस्तको का सम्पादन कर चुके हैं। कई पुस्त
के अनुवाद किये है। चार बडे कहानी सग्रह 'नवप्रसून', 'मैं मरूगा नही', दायरे और इन्सान' और 'मुखौटे
पीछे' है। देश-विदेश मे जो भ्रमण इन्होंने किया है, उसका सुन्दर वृत्तान्त इनकी यात्रा-सम्बन्धी आठ रचना
मे है। हिन्दी जगत को इनका यात्रा-सम्बन्धी साहित्य तो एक अमूल्य देन मानी जा सकती है। इन पुस्तको
पढ़कर पाठक भारत के विभिन्न भागो तथा देश-विदेश की यात्रा का आनन्द घर बैठे पा सकते हैं। 'पडो
देशो मे' पुस्तक उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत भी हो चुकी है। इनके द्वारा सम्पादित पुस्तको मे 'प्रेमी-अ
नन्दन ग्रन्थ', 'राजेन्द्र बाबू व्यक्तित्व और दशन', 'नेहरू व्यक्तित्व और विचार', 'गाधी व्यक्तित्व, विचा
और प्रभाव', 'सस्कृति के परिव्राजक', 'प्रेरक साधक', 'समन्वय के साधक' आदि ग्रन्थ है और पौने दो-सौ पुस्त
समाज विकास माला' से सम्बन्धित हैं। जहा पहली पुस्तके सन्दभ ग्रन्थो का काम देती हैं, वहा समाज विका
माला की पुस्तकें भारत के करोडो प्रौढ साक्षरो को सरल भाषा मे भारतीय सस्कृति का ज्ञान कराती है। ये पुस्त
सभी क्षेत्रो मे लोकप्रिय हुई हैं। यशपालजी के अनुवादो मे सुप्रसिद्ध जर्मन लेखक स्टीफन ज्विग के दो उपन्या
'विराट' और 'जिन्दगी दाव पर' है। इनकी पत्नी आदशकुमारीजी ने भी स्टीफन ज्विग के एक उपन्यास 'भा
की विडम्बना' का अनुवाद किया है। इस प्रकार ज्विग के साहित्य को हिन्दी जगत को देने मे इन दम्पति क
विशेष हाथ रहा है। 'मधुकर' तथा 'जीवन साहित्य' के सम्पादन के अतिरिक्त यशपालजी हिन्दी की पत्र
पत्रिकाओ मे बराबर लिखते रहते हैं। रेडियो तथा टेलीविजन के द्वारा भी वह अपने साहित्यिक अनुभवो
जनता को देते रहते हैं। उनकी भाषा सरल और शैली सरस होती है।

यशपालजी का तीसरा गुण भारत के विभिन्न भागा तथा विदेशो का भ्रमण है। विधाता ने उनक
सरस्वती पुत्र बनाने के अलावा उदारता के साथ एक अच्छा घुमक्कड या पयटक भी बनाया है। उनके पैरो
कुछ ऐसा चक्र है कि कभी चैन से नही बैठते। भारत के सब भागा मे घूमने के अतिरिक्त हिमालय मे केदार
नाथ, बदरीनाथ, गगोत्री, यमुनोत्री, गोमुख, लद्दाख आदि मे खूब घूमे है। विदेशा मे उन्होने अदन, सूडान
इथोपिया, केनिया, युगाण्डा, तजानिया, जजीबार, मलावी, रोडेशिया, जाम्बिया, मैडेगास्कर, मारीशस, आस्ट्रे
लिया, न्यूजीलैण्ड आदि का प्रवास किया। यूरोप, अमरीका, कैनेडा आदि देशो मे यह पहले ही हो आये है

इन पर्यटनों में उन्होने भारतीय सस्कृति का बराबर प्रचार किया है। साथ ही वहा जो देखा है, उसे अपने देश-वासियो को देने मे उन्होने उदारता से काम लिया है। उनका दृष्टिकोण मानवीय है। यह दृष्टिकोण उनके प्रवास तथा साहित्य मे स्पष्ट दिखाई देता है। उनके चित्रण बडे ही सजीव तथा प्रभावशाली होते हैं। देश-विदेश भ्रमण का इतना सौभाग्य भारत के बहुत कम लेखको को प्राप्त हुआ है।

हिमालय-प्रवास के बारे मे पूछने पर उन्होने बताया, "हिमालय मे घूमने का मेरा ध्येय तीर्थ-दर्शन से अधिक वहा के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सास्कृतिक महिमा के दर्शन करने का था। मेरा यह निश्चित मत है कि बिना हिमालय के दर्शन किये कोई भी व्यक्ति भारतीय सस्कृति को नही समझ सकता। हिमालय की गोद में ही भारतीय सस्कृति पोषित हुई है।"

"भारत के बाहर के प्रवास मे आपको कौन-सा देश अच्छा लगा?" इस प्रश्न के उत्तर मे उन्होंने कहा, "जीवन के सघर्ष और परिश्रम की दृष्टि से मुझे रूस और जर्मनी अच्छे लगे। हम उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। प्राचीनता की दृष्टि से चेकोस्लोवेकिया, प्राकृत सौन्दर्य की दृष्टि से स्विटजरलैंड, कला की दृष्टि से इटली, अन्तर्राष्ट्रीय सस्कृति की दृष्टि से फ्रास, लोकतन्त्रीय परम्पराओ के लिए इगलैण्ड और छोटे देश होने पर भी स्वावलम्बन की दृष्टि से डेनमाक और फिनलैण्ड ने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया। यदि व्यक्ति आख खोल-कर जाए तो बाहर बहुत कुछ देख और जान सकता है।"

आगे उन्होने बताया, "भारतीय सस्कृति की महान निधियो के लिए दक्षिण-पूर्वी एशियाई देश, राष्ट्रीय चेतना के लिए अफ्रीका के देश और भारतीयो के बाहुल्य के लिए मारीशस और फीजी की मेरे मन मे बडी सुखद स्मृति है।"

मेरे यह पूछने पर कि विदेशो मे भारतीयो के बारे मे लोगो की क्या राय है, वे कुछ गम्भीर होकर बोले, "विदेशो मे तीन भारतीय नेताओ के नाम अत्यन्त लोकप्रिय है। ये हैं गाधी, नेहरू और रवीन्द्रनाथ। भारतीय सस्कृति के लिए प्रत्येक देश मे बडा मान है। लेकिन व्यापार-व्यवसाय मे भारतीयो की अनैतिकता के प्रति उनमे बडा असन्तोष है।" आगे उन्होने कहा, "भारत से जो लोग वहा जाते है, उनमे बहुतो का आचरण अच्छा नही होता। मेरी राय मे विदेशो मे जाने वाले तथा वहां रहने वाले प्रत्येक भारतीय को अपने को भारत का प्रतिनिधि समझ कर व्यवहार करना चाहिए और भारतीय सस्कृति के उज्ज्वल पक्ष की छाप विदेशियो पर डालनी चाहिए।"

यशपालजी की काय-पटुता देखने योग्य है। अपने कार्यालय मे वह बराबर काम मे जुटे रहते है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के अशुद्धिहीन, सुरुचिपूर्ण तथा उपयोगी साहित्य के प्रकाशन मे जहां 'मण्डल' की अपनी परम्पराए है, वहा बहुत कुछ हाथ यशपालजी का भी है। मैंने उन्हे एक क्षण को भी आराम करते नही देखा। अपने काम को अच्छे ढग से निबटाना वे खूब जानते है। जो लेख और पुस्तके सम्पादन के लिए उनके हाथ मे होती हैं, उनमे अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करने मे वे कभी नही हिचकते।

साहित्य के साथ-साथ जैन-समाज के सम्बन्ध मे उनकी सेवाओ का उल्लेख करना भी अप्रासगिक न होगा। जैन-समाज के सभी सम्प्रदायो मे मेल-जोल बढ़ाना तथा उनकी उन्नति मे योग देना उन्हे प्रिय है। अतिशय क्षेत्र अहार की प्राचीन मूर्तियो की सुरक्षा के लिए एक विशाल सग्रहालय की स्थापना करके उन्होने समाज की महान सेवा की है। जैन समाज की साहित्यिक तथा सास्कृतिक उन्नति के लिए वे सदा यत्नशील रहते हैं। साम्प्रदायिकता की गध तक भी उनमे नही है।

हमे आशा ही नही, पूर्ण विश्वास है कि भविष्य मे यशपालजी द्वारा हिन्दी जगत की और अधिक सेवा होगी। साथ ही यह अभिलाषा भी है कि वह कमठता और लगन से मानव-समाज को जो कुछ दे सकते है, देते रहे।

सरल और स्नेहिल

मोहिनी सिंघवी

□□

श्री यशपाल जैन आज के युग के महान् और कुछ गिने-चुने साहित्यकारो मे से एक हैं। उनका जीवन अत्यन्त सरल और सादा है। इसके साथ-साथ उनके साहित्य मे भी सरलता और गहनता का सम्मिश्रण मिलता है। आज के युग को देखते हुए, ऐसे सरल साहित्य की आवश्यकता है, जिसे पढकर अधिकतर लोग लाभ उठा सके। वैसा ही साहित्य यशपालजी से हमे प्राप्त है। वह एक सुलझे हुए विचारक हैं। उनको समझने मे अन्य उच्च-कोटि के विचारको की तरह कठिनाई का सामना नही करना पडता। साहित्य के क्षेत्र मे उन्होने बहुत से पुरस्कार प्राप्त किये हैं। उनमे से एक 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' है, जो कि रूस की ओर से उन्हें एक बार नही, दो बार मिला है, वह एक अनोखी उपलब्धि है।

कई बार यशपालजी विदेश-भ्रमण को भी जाते हैं और वहा के लोगो पर अपनी एक ऐसी अमिट स्नेहमयी छाप छोड कर आते हैं, जो कि वो भुलाने पर भी नही भूल सकते। वैसे तो उनमे बहुत से गुण हैं, पर सबसे प्रमुख गुण जिसका मुझ पर गहरा प्रभाव पडा है, उनका सबसे स्नेह और मिलनसारिता है, जोकि लोगो को इस महान हस्ती की ओर खीचे लिए जा रही है। अगर वह किसी से मिलते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे वास्तव मे ही हमारे पिता और भाई हो।

उनके व्यक्तित्व का एक और महान् परिचायक है, प्रसन्न चेहरा और होठो की मुस्कान, जोकि सुख और दुःख हर स्थिति मे एक समान रहती है। और तो और, उनसे मिलकर या बात करके दूसरे भी, चाहे वे कितने दुखित क्यो न हो, शान्ति, प्रसन्नता और धैर्य को प्राप्त करते है।

यशपालजी को अभिमान ने कही भी छुआ नही है। स्नेह से उनको कोई कडवी रोटी दे दे, चाहे अपने टूटे झोपडे मे बुलाये तो वह सहष निमन्त्रण स्वीकार कर लेते है।

सुयोग्य सम्पादक

शिवचरण दास

□□

प्रिय यशपालजी को मैं लगभग २५ वर्षों से जानता हू। इनके छोटे भाई एक वर्ष मेरे साथ रहे हैं। यशपालजी से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है और म्युनिसिपल कमेटी के चुनाव मे इन्होंने मेरे लिए परिश्रम कर मुझे सफलता दिलायी थी।

इनकी पत्नी 'आदर्श' मेरी पुत्रवधू के साथ कालिन्दी कॉलेज में अध्यापिका हैं और अक्सर वह मेरे घर आती रहती हैं।

यशपालजी बड़े कुशल साहित्य-सेवी हैं। 'सस्ता साहित्य मंडल' के सचालक हैं। दिल्ली के भूतपूर्व महापौर और प्रसिद्ध समाजसेवी लाला हसराज गुप्त के अभिनन्दन-ग्रन्थ के सम्पादन से उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि वे एक योग्य सम्पादक हैं। प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आयोजनो में वे अपने अमूल्य सुझाव देते रहे हैं और कई प्रेरणास्पद नाटक इनके परिश्रम से रगमच पर प्रस्तुत किये गये हैं, जिनके द्वारा दिल्ली के सामाजिक जीवन मे प्रगतिशील और सास्कृतिक विचारधाराओ का विकास हुआ है।

यशपालजी नियमित रूप से सवेरे घूमने जाते हैं, और जब भी मुझे मिलते हैं, इनका प्रफुल्लित पुष्प जैसा मुख देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है।

अपने देश मे ही नही विदेशो मे भी इन्होने बहुत भ्रमण किया है। यशपालजी का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली और आकर्षक है कि प्रथम साक्षात्कार मे ही वह अपने सम्पर्क मे आने वाले व्यक्ति पर अपनी मधुरता की छाप छोड देते हैं।

यशपालजी को उनके जन्मदिन पर अनेकानेक शुभकामनाए।

भारतीय संस्कृति और साहित्य को उनका अवदान

धर्मचन्द गोयल

□□

यशपालजी के मृदुभाषी स्वभाव, उदार वृत्ति, सरल चित्त और सौम्य आकृति के कारण उनके सम्पर्क मे आकर ऐसा कौन व्यक्ति है, जो उनके व्यक्तित्व से प्रभावित नही होगा? मेरे जैसे व्यक्ति को तो उनसे प्रेरणा और मार्ग-दर्शन भी मिलता रहा है।

समाज-सेवा, साहित्य-सृजन और पत्रकारिता के क्षेत्र मे साधारण रुचि रखने वाला व्यक्ति भी उनसे अपरिचित नही है। भारतीय सस्कृति के पुजारी, गाधीवादी विचारो से ओतप्रोत, गहन विचारक और सिद्धहस्त लेखक तो ये हैं ही, विदेश-भ्रमण भी इनके जीवन की उल्लेखनीय घटना है। इनके विदेश-भ्रमण का मुख्य उद्देश्य वहां की सामाजिक, सास्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियो की जानकारी प्राप्त करना और चिन्तन की कसौटी पर परख कर उसे देशवासियो के उद्बोधन और मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत करना रहा है।

साथ ही अपने देश की सस्कृति, सभ्यता और समाज की छाप इन्होंने अपने व्यक्तित्व और व्यवहार के द्वारा विदेशो मे छोडी है। इनके विदेश-भ्रमण मे प्राप्त अनुभव के सस्मरणो से देश के आबाल वृद्ध सभी लाभान्वित होते रहे हैं। वास्तव मे ये मात्र मनोरजन के लिए विदेश-यात्रा पर नही जाते, बल्कि इन्होने अपनी गहन अन्वेषण शक्ति का उपयोग करके विदेशो की सभ्यता, सस्कृति, शिक्षा और आचार-विचार आदि का

सूक्ष्म अध्ययन भी किया है। मनोरजन तो इनका गौण ध्येय है। कोई भी देशभक्त और अपनी सस्कृति का प्रेमी विदेश में जाकर अपने देश की इससे बढ़कर और क्या सेवा कर सकता है कि वह देश की भाषा, साहित्य, सस्कृति तथा परम्पराओ का सही प्रतिनिधित्व करे। श्री यशपालजी ने ऐसा ही किया।

इतना ही नही, इन्होने अपने सस्मरणो को लेखबद्ध करके यात्रा-साहित्य की अभिवृद्धि की है और हिन्दी साहित्य को बहुमूल्य निधि प्रदान की है। इनके यात्रा-साहित्य से हिन्दी और हिन्दीतर-भाषी पाठक अत्यन्त लाभान्वित हुए हैं।

मेरी भगवान से प्रार्थना है कि यशपालजी शतायु हो और देश, समाज तथा राष्ट्र की सेवा मे सदा रत रहे।

सरस्वती के वरद पुत्र

कमलेन्द्र सक्सेना

□□

सरस्वती के वरद पुत्र,
गाधी-युगीन साहित्य के सृजक,
राष्ट्रीय जीवन, भारतीय आदर्श के प्रतीक,
देश-विदेशो का भ्रमण करने वाले,
लगता है,
जैसे, इस विज्ञान के अन्तरिक्ष युग मे
नूतन अनुभवो के सुमन बटोर रहे हो
और
भारत की स्वर्णिम सस्कृति को
अपने ढग से चलकर
देश-विदेश की धरती पर बिखेर रहे हो।
कहू कि
ओ मेरे भाई यशपालजी,
तुम इस प्रतिद्वद्विता के युग मे,
अनेक विभिन्नताओ के रहते हुए भी,

स्वार्थ के पर्दे को चीरकर,
यश की ज्योति जलाते आ रहे हो।
कर्त्तव्यों का सागर छलकता है,
और
तुम्हारे अन्तर मे
स्नेह और ममता का सागर लहराता है।
सागर सागर है,
सदा चचल रहना है
और कहता है—
जीवन मात्र उसका है
जो जी सके,
जो सासो का मूल्य चुका सके।
मेरे स्नेही भाई!
तुमने अपने जीवन की लौ
ऊची की है,
यही नही,
आज तो ऐसा लगता है,
तुम्हारे चेहरे पर
उत्साह के सूरज का सोना,
उमग की चादनी की चांदी,
दृष्टिगोचर हो रही है।
यो तो चेहरा,
नन्दन-वन के फूल की तरह
खिला रहता है,
आशाओ के अक्षय रस का पान,
करता रहता है,
नैतिक मान्यताओ मे,
विकसित जीवन के उन्मेष मे,
प्रदीप—प्रतिभा—ने जो प्रकाश भरा है,
उससे सर्वदा साहित्य, समाज, देश,
कृतज्ञता ही अनुभव कर
भावी आशा की तस्वीर देखता रहेगा।
नित्य उगता रहेगा प्रभात,
सदा तुमसे मिलती रहेगी राहत।
प्रगतिशील, उच्च व्यक्तित्व
सस्कारो की व्यापकता, खादी के वस्त्र,

तुमने इसी भारतवर्ष मे गांधी के
गाए हैं गद्य-गीत,
जिनमे नवीन विधाए
मूर्त रूप मे
पुष्पित—पल्लवित देख,
कृतज्ञता अनुभव कर,
अभिनन्दन करने,
जिसने जगती के उपवन मे
खिला दिये अनेक सुमन,
सस्मरण की पृष्ठभूमि,
भरती है मन मे अनुभूतिया ।
बरौनियो की चिलमन से
मैंने जब-जब झाका है,
लगा, जैसे विश्व
एक रगीन सपना है,
जो
अचानक ही बिखर जायेगा ।
सभलते सभलते
परतु उसमे
सुरभि-सुधा सचित
नवोदित प्रतिभाए,
विकसित होती रहेगी,
मिटते-मिटते,
आवेशो की
सुनहली श्रृखला मे बध कर,
आत्मसात किया,
कटुताओ का विषपान किया, पिया
और हम देखते रहे,
हर्षित होते रहे,
जिज्ञासा भरे नेत्रो से,
वर्ष-पर-वर्ष गिनते रहे
हाथो के पारो पर
उल्लास से ।
और अब हमारे बन्धु,
आशाओ के सौ वर्ष
आएगे सहज । □

अंतर्द्रष्टा साहित्यकार

सत्यनारायण गोयनका

□□

कुशल साहित्यकार की कुशलता इसी मे है कि उसकी रचना मे सौंदर्य हो, कला हो ! परन्तु सुन्दर और कलापूर्ण रचना मे लोक-मगल का भाव न समाया हो तो वह सफल, सार्थक नही होती।

रचना मे सच्चाई हो। कल्पना का सहारा हो तो भी आधार जीवन-जगत की सच्चाई का ही हो। परन्तु सच्चाई पर आधारित रचना मे भी लोक-मगल का भाव न समाया हो तो वह सफल, सार्थक नही होती।

सफल सार्थक रचना वही है, जो कि सुन्दर और कलापूर्ण भी हो, सच्चाई पर आधारित भी हो तथा जन-जन कल्याणकारिणी भी हो।

यशस्वी लेखक यशपाल जैन ऐसी ही कुशल रचनाओ के कुशल साहित्यकार हैं। मैंने उनकी सभी रचनाए नही पढ़ीं, लेकिन जितनी भी पढी हैं, उनमे त्रिवेणी सगम की यह विशेषता सर्वत्र देखने को मिली है। चाहे कोई कहानी हो या यात्रा-विवरण या निबध उनकी रचनाओ मे सर्वत्र मानवीय सहृदयता झलकती है। सहज भाव से आतरिक सवेदनशीलता की ऊष्मा प्रस्फुटित होती है। उनकी रचनाओ मे यह हृदयग्राही तत्त्व इसलिए है कि लेखक विषय को केवल ऊपरी-ऊपरी स्तर तक ही देख-दिखाकर नही रह जाता। वह एक अतर्द्रष्टा साहित्यकार होने के कारण अन्तरतम तक पैठने का प्रयत्न करता है। सदा मानवमन की गहराइयो मे झाकने का प्रयत्न करता है, वही चिरतन सत्य ढूढ़ने का प्रयास करता है और उन्हे शब्द-शिल्प द्वारा प्रकट करता है। इसीलिए उनकी रचनाओ मे कही थोथे शब्द-जाल का मिथ्याडबर नही, दिखावा नही। सहज भाव से सच्चाई की अभिव्यजना होती है। वह अपनी सभी रचनाओ मे अपने आपके प्रति, अपने पाठको के प्रति और अपने विषय के प्रति पूरी ईमानदारी बरतता है।

लगभग २५ वर्ष पूर्व श्री यशपाल जैन श्री विष्णु प्रभाकर के साथ जब बर्मा आए तो कई दिनो तक घर पर ही साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ। तब से यह निकट सपर्क और स्नेह-सबध दिनो-दिन बढ़ता ही

गया। पिछले १५ वर्षों से वह विपश्यना साधना के भी सपर्क मे आए हैं। अत उन्हें बहुत निकट से जान पाया हू। इनका स्वभाव बहुत ही सरलता, स्वच्छता और सौम्यता से भरा हुआ है। देखता हू, इसी कारण इनकी रचनाए भी सरल, सुबोध, सयत और प्राजल हैं। हृदय की सहज सौम्यता साहित्य मे सहजता से उतर आयी है और कृतिया स्वभावत मगलमयी हो गयी है।

यशपालजी दीर्घायु हो! सुखी हो! स्वस्थ प्रसन्न हो! स्वस्थ तन और मन से जीवन-पर्यन्त मगलमय स्वस्थ साहित्य का सृजन करते रहे, जिससे कि बहुजन का हित-सुख सधे! यही कल्याण कामना है।

एक जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी प्रज्ञानद (अम्मा)

□□

श्री यशपालजी हमारे गुरुदेव पूज्य मुक्तानद बाबा के कृपापात्र और आत्मीय जनो मे से है। दिल्ली के हमारे 'सिद्ध योग धाम' और श्री गुरुदेव आश्रम (भाटी) के साथ वे एक शुभेच्छुक के रूप मे निकट से सबधित रहे हैं। एक लेखक, पत्रकार और चितक के नाते वह बाबाजी के साथ अनेक जागतिक तथा आध्यात्मिक विषयो पर प्रश्नोत्तर चर्चा और विचार-विमर्श करते थे। बातचीत उन दोनो के बीच होती थी, लेकिन उसके फलस्वरूप आनद मुझे मिलता रहता था। बाबाजी के सान्निध्य मे ऐसे प्रसगो पर उनके वचनो द्वारा जो नया-नया बोध मिलता था, उसका आनद अपूर्व था। श्रवण द्वारा प्राप्त यही बोध आगे मननात्मक बनकर आध्यात्मिक रहस्य को प्रकट करता था।

जब बाबाजी सन् १९८० मे अमरीका मे थे तो वहा पर भी यशपालजी हमारे साउथ फॉलसवर्ग के नित्यानद आश्रम मे अठारह दिन रहे थे। इस दौरान उन्होने एक दिन बाबाजी से दो-तीन प्रश्न पूछे थे। उनमे एक प्रश्न यह था, "आपकी विश्व-यात्रा के दौरान आपको क्या अनुमान हुआ है कि आधुनिक विध्वसक युग मे लोगो का झुकाव आध्यात्मिकता के प्रति कम होता जा रहा है या बढ रहा है?" बाबाजी का उत्तर था "मुझे तो वह बढता हुआ ही दिखाई देता है। वास्तव मे एक ओर जगत मे विध्वसात्मक वृत्तिया और प्रवृत्तिया बढती जा रही हैं तो दूसरी ओर समानान्तर से उतनी ही गति से, आध्यात्मिकता के प्रति लोगो की जिज्ञासा और झुकाव बढ़ता जा रहा है। सत्य तो यह है कि मनुष्य हमेशा अध्यात्म याने आत्मा के प्रति मुडा हुआ ही रहता है।"

यह सुनकर मेरे मन मे प्रश्न उठा, मनुष्य आत्मा के प्रति हमेशा कैसे मुडा हुआ रहता है, उत्तर मिला कि मनुष्य की सुख और आनद की खोज उसकी आत्मा की ही खोज है। जाने-अनजाने जगत का हरेक मानव जो कुछ करता है, उसमे वह सुख और आनद की प्राप्ति के पीछे ही लगा हुआ रहता है, चाहे वह ससारी

हो या सन्यासी, नास्तिक हो या आस्तिक, भोगी हो या त्यागी। प्रत्येक मानव सुख की अपनी व्याख्या और कल्पना के अनुसार अनेक दिशाओ से सुख-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता रहता है, जैसे कि सम्पत्ति, सत्ता, सबध, खेल-कूद, कला, टी वी, सिनेमा, नाटक, पर्यटन इत्यादि मे। पश्चिम मे तो लोग नये-नये आनद की उपलब्धि के लिए अपने सुख के साधन बदलते रहते हैं, जैसे कि घर, स्थान, गाडी, पति-पत्नी। इतना ही नही, वे अपने को सुखी भी मानते हैं। लेकिन वास्तव मे वे कहा तक अपने को सुखी अनुभव करते हैं यह विचारणीय प्रश्न है।

एक बार एक युवा विदेशी लड़की ने बाबाजी से पूछा, "आपके आश्रम मे इतने लोग रहने के लिए क्यो आते हैं? ध्यान-भजन करते हुए अनुशासन-युक्त जीवन क्यो बिताते हैं?" बाबाजी ने उत्तर दिया, "सुख प्राप्ति के लिए।" सुनकर लडकी ने कहा, 'ऐसी बात है तो मुझे यहा आने की जरूरत नही है।" बाबाजी ने पूछा, "क्यो?"

उसने जवाब दिया, "मैं सुखी हू, इसलिए।" बाबाजी ने कहा, "हां ठीक है, ऐसा होने से तुमको यहा आने की जरूरत नही है, लेकिन दस वर्ष के बाद मुझे फिर से मिलना और बताना कि आज का तुम्हारा सुख का अनुभव उस समय भी वही है क्या?" कहने का तात्पर्य यह है कि हम सामान्य लोग ससार मे जिसको सुख मानते हैं, वह सुख लम्बे समय तक नही टिकता। उदाहरणार्थ, वर्षा-ऋतु मे पानी से भरे हुए छोटे-से नाले मे एक युवा मेढक बहुत मौज से खेलकूद करके तैरता है और 'ड्राउ-ड्राउ' करता है। वह कहता है, "वाह इससे बढ़कर कोई आनद है ही नही। यही जीवन की प्राप्ति है।" लेकिन ग्रीष्म-ऋतु मे जब पानी सूख गया तो उसके आनद का अत आ गया। इतना ही नही कभी-कभी आनद शोक मे परिणत होता है, जैसे कि आनद की दृष्टि से पर्यटन के लिए जाती हुई बस दुघटना-ग्रस्त हो जाय और कुछ लोग घायल हो जाय। मानव जीवन मे कब, क्या होगा, इसका कोई भरोसा नही है। जिस सुख का भग होना सभव है, वह कृत्रिम सुख है।

ससार का सुख सतत क्यो नही टिकता? इसका कारण यह है कि यह सुख सापेक्ष है, याने बाहर की किसी वस्तु पर आधारित है। आधार टूट जाता है तो सुख भी नष्ट हो जाता है। धन, सुविधा के साधन, नौकरी, अच्छी परिस्थिति इत्यादि जब चली जाती है तो उनसे सबधित खुशी भी चली जाती है। कभी ऐसा भी होता है कि जो व्यक्ति आज हमे सुख दे रहा है, वह हमारे विरुद्ध हो जाय तो वही व्यक्ति दु ख देने वाला हो जाता है।

मनुष्य इस बात को अवश्य जानता है, फिर भी वह इनके पीछे क्यो लगा रहता है? मनुष्य अनतस्वरूप है इसलिए आनद की खोज करता ही रहेगा। जैसा हमारा रग होता है वैसा ही सग हमे अच्छा लगता है। जो जिस भूमिका मे है वहा रहने से ही उसको सुख मिलता है। जिस प्रकार मछली पानी मे आनद से तैरती है, लेकिन वहा से बाहर निकालने से तडफडाने लगती है और वापस पानी मे जाना चाहती है, वैसे ही मनुष्य जहा से आया है, वहा वापस जाने का मार्ग ढूढ़ता रहता है। उपनिषद कहता है कि मनुष्य का मूल आनन्द है—"आनन्दात् इमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देव जानानि जीवन्ति।" आनद स्वातत्र्य की स्थिति है। इसलिए तो मनुष्य को दु ख, दबाव या परतत्रता की स्थिति अच्छी नही लगती, और इसको दूर करने का वह सतत प्रयत्न करता रहता है। चाहे उसे मालूम हो या न हो, मनुष्य जैसा है वैसा ही होने की इच्छा करता है। अपने असली घर मे वापस जाना चाहता है। जो है ब्रह्मस्वरूप हमारे बाबाजी भोले बाबा का एक काव्य गाया करते थे

मानव तुझे याद नहीं क्या? तू ब्रह्म का ही अश है,
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, सद्ब्रह्म तेरा वश है।

चैतन्य है तू अज अमल है, सहज ही सुख राशि है,
जन्मे नही, मरता नही, कूटस्थ है, अविनाशी है ।।

खोजने पर भी मनुष्य को अपना घर नही मिलता है और आखिर खोज का नही परतु जीवन का अत आ जाता है। इसका कारण यह है कि वह आनद की खोज मे दिशा भूल करता है। आनद को अतर मे ढूढने के बजाय, बाहर ढूढता है। जब बुनियाद कच्ची है तो इमारत गिर ही जाएगी। आनद का मूल स्रोत अपने अदर है। अदर से स्फुरित होने वाला आनद स्वयभू है, निरपेक्ष है। यदि वह प्राप्त हो जाय तो वह शाश्वत रहेगा, क्योकि वह आत्मा से प्रसूत होता है, जो नित्य है। अनित्य से उठा हुआ सापेक्ष आनद अनित्य ही होता है। वह नित्य आनद की झलक मात्र है, प्रतिबिम्ब है।

नित्य आनद को वह जहा है, वहा उसे ढूढना चाहिए। वह बहुत दूर नही है। उसे खोजने के लिए मन और इन्द्रियो के वशीभूत होकर दूर जाने की आवश्यकता नही है। हम जहां है, वहा ही उसे प्राप्त कर सकते हैं। मात्र बहिर्मुखी मन और इन्द्रियो की भटकने की दिशा बदलनी होती है। बाह्य जगत मे से उन्हें खीचकर स्थिर करके अदर की ओर मुडना चाहिए। तभी सच्चे आनद का पता मिलता है। बाबाजी ने 'मुक्तेश्वरी' मे अपना यही अनुभव बताया है

"उसे ढूढते-ढूढते बहुत दूर गया, बहुत दूर आ गया, सभी से पूछा, किसी ने नही बताया। जब वापस लौटा तो उसे अदर विराजमान सहज मे देखा।"

मन को अतर्मुख करने से परम आनद की प्राप्ति होती है। आनद इच्छापूर्ति नही है, न वह सापेक्ष सुख है। सच्चा आनद तो वह है, जो प्रत्येक परिस्थिति मे जैसे-का-तैसा रहता है। सुख-दुख मे भी वह न घटता है न बढता है। अदर गोता लगाकर आत्मा को आनद के मूल को पकडकर शाति, सतोष और समाधान का अनुभव करना, यही सच्चा सुख है। मनुष्य अपने कर्म मे सतत उसे ही खोजता रहता है। यही आध्यात्मिकता के प्रति उसका झुकाव है। मात्र उसकी खोज की दिशा उलटी है। इसलिए हमारे बाबाजी ने कहा है

"अरे प्यारे जनो, कहा आगे-आगे, इधर-उधर को जाते हो? वापस फिरो, अपने अदर तुम पीयूषपूर्ण परमानद देखोगे।'

यह है किंचित चिंतन, जो यशपालजी के प्रश्न ने प्रेरित किया।

यशपालजी के साथ मेरा व्यक्तिगत सबध भी रहा है। जब हम मिलते हैं तब अनेक प्रकार की रसप्रद ज्ञानगोष्ठी हुआ करती है। मुझे आनद आता है। यशपालजी की कुछ मौलिक चिंतनात्मक वाक्य-रचना मुझे इतनी अच्छी लगती है कि मै इसको अपनी डायरी मे लिख लेती हू, और उससे मुझे बडा लाभ मिलता है।

मैं यशपालजी को तिहत्तरवें जन्मदिन पर अनेक मगल कामनाए करती हू कि वह शत वर्ष जीए और मुझे उनकी सगति का लाभ बराबर मिलता रहे।

सबके प्रिय

(स्वामी) सुन्दरानन्द

□□

मत्र सत्य पूजा सत्य सत्य देव निरजनम्।

गुर्रोवारण्य सदा सत्य, सत्यमेव परम् पदम् ॥

गायन्ति देवा किलगीतकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।

स्वर्गाय वर्ग स्पद मार्ग भूते, भवन्ति भूय पुरुष सुरत्वात् ॥

सर्व-गुण-सम्पन्न तथा विरुदावलियो से शोभित हमारे श्री यशपालजी के विषय मे क्या लिखू, वे तो स्वय ही एक आदर्शमय सस्था हैं।

सन् १९५८ मे परिचय ही नही हुआ तथापि दिव्याति-दिव्य सुषमाभासुर अलौकिक सौन्दर्य आभा से सुशोभित गोमुख-यात्रा उनके साथ-साथ करने का सौभाग्य हुआ। तबसे ही दो शरीर न होकर परिवार के अभिन्न अग बन गए। तब से लेकर अब तक सुख-दु ख के अनेक अवसरो पर साथ रहे। परिवार का सदस्य होने के नाते पति-पत्नी का इनका जो आदर्श और अनुकरणीय जीवन की झलकिया प्रत्यक्ष देखने को मिली, उससे मैं अत्यन्त प्रभावित हुए बिना न रह सका। सभवत इनके अतरग वार्तालाप तथा तर्क-वितर्क का रसास्वादन कतिपय व्यक्ति ही कर पाए होगे, क्योकि दोनो ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि से युक्त हैं।

आदर्श तो स्वादिष्ट बहुविध-व्यजन बनाने मे सिद्धहस्त हैं, तथापि यशपालजी का स्वभाव भोजन के लिए किसी-न-किसी को सम्मिलित करना तो है ही, उन भोज्य व्यजनो को विशेषणो से युक्त करके आतिथेय मात्रा से अधिक खाने के लिए प्रलोभित करने मे भी वह दक्ष हैं।

राह चलते-चलते पराये बच्चो को भी, पितृ-वात्सल्य पुत्र स्नेह-स्निग्ध भोली-भाली तोतली भाषा मे बातें करके इतना मोह लेते है कि अन्तोगत्वा उन्हे अपनाकर अगुलिया पकडकर, साथ ले लेते हैं। बच्चो को छोटी-छोटी प्रेरणादायक कहानिया ही नही सुनाते, बल्कि उनसे प्राय पूछ बैठते हैं कि अकल बडी या भैस? व इस अजीब प्रश्न को सुनकर अचरज से उनका मुह ताकने लग जाते हैं। छोटे-छोटे बच्चो को इनकी पीठ पर गोद मे और कन्धो पर चढ़कर खेलना तथा इनके बालो को पकडे देखकर एकबारगी साथी दर्शक आश्चर्य से एकटक देखने लग जाते हैं और द्विविधा मे पड जाते हैं कि क्या यही सचमुच गाधीवादी चिन्तक और विशुद्ध सात्विक साहित्यिक हैं?

दूसरो का उपकार करने और उनके साथ सहयोग करने मे वे अपने अत्यावश्यक कार्य को भी भुलाकर आगे आ जाते हैं। जन्म-जात स्वभाव से आदर्श (इनकी पत्नी) कभी-कभी विनोद मे व्यग्य-प्रहार कर जाती हैं और कह उठती हैं कि स्वामीजी, ये अच्छे गांधीवादी नेता और साहित्यकार बने हैं कि अपने शरीर तक का ध्यान नही रखते हैं। इन्हे तो सन्यास ले लेना चाहिए। साथ ही वह यह भी कहती हैं कि चाहे कैसे ही कठिन-से-कठिन कार्य क्यो न हो, इनके मस्तक पर ऐसी रेखा है कि कार्य-सिद्धि कर ही लाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये पूर्वजन्म के ही नही, अपितु इस जन्म के भी योगी हैं। महर्षि द्वैपायनजी का कथन इनके इस महान् गुण का साक्षी है

'परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम्।'

ये दूसरो के दु ख को देख ही नही सकते हैं।

इनके साहित्यिक तथा लोकोपयोगी सेवा-कार्यों से कौन परिचित नही है। इन पर तो सरस्वती का वरद हस्त है। मेरी भी साहित्यिक प्रेरणा का स्रोत ये ही हैं।

'पूर्णमायु रारोग्य' धर्मार्थ-काम मोक्ष के लिए प्रभु से सतत प्रार्थना करता हू

शुभ करोतु कल्याण आरोग्य सुख सम्पदम्।

यशपालस्य जीवन समोज्वलाय मगल प्रार्थन करोम्यहम्॥

मेरे दाहिने हाथ

बनारसीदास चतुर्वेदी

□□

सन् १९३५ की बात है। मैं उन दिनो 'विशाल भारत' का सम्पादक था। उस समय इलाहाबाद से किसी नवयुवक ने एक कहानी प्रकाशनार्थ मुझे भेजी। अक्षर बहुत सुन्दर थे। कहानी भी वैसे अच्छी थी, पर दुखान्त थी, जैसाकि प्रारम्भिक लेखक किया करते है। कहानी के पात्रो का यथा-विधि चरित्र-चित्रण न कर सकने पर किसी-न-किसी प्रकार से पात्र का अन्त दिखला देते हैं। उस कहानी मे भी यही किया गया था। मैंने वह कहानी लौटा दी और साथ ही यह भी लिख दिया कि आप कहानी को दुखान्त न बनाते तो अच्छा होता। उस समय मुझे स्वप्न मे भी इसकी कल्पना नही थी कि उन कहानी-लेखक यशपाल जैन से आगे चलकर मेरा घनिष्ठ सबध हो जायगा और वे मेरे दाहिने हाथ ही हो जायगे। यह भी बडे आकस्मिक ढग से हुआ।

सन् १९३८-३९ मे दरियागज मे यशपाल जैन हिन्दी विद्यापीठ का सचालन कर रहे थ। मै सयोगवश दिल्ली गया हुआ था और बहन सत्यवती मल्लिक के निवास पर ठहरा हुआ था। जैनेन्द्र कुमारजी ने मुझे विद्यापीठ मे आमन्त्रित करने के लिए यशपालजी से कहा और स्वय मुझसे स्वीकृति ले आने का आश्वासन दिया। लेकिन जब जैनेन्द्रजी मेरे पास आये तो मैंने स्पष्ट मना कर दिया। जैनेन्द्रजी निराश लौट गए। यशपालजी बडे असमजस मे पडे, क्योकि वे अखबारो मे मेरे आने की घोषणा कर चुके थे। यशपालजी को तब एक तरकीब सूझी। विद्यापीठ की प्राचार्या और उनकी बूढी माताजी को लेकर वे सत्यवतीजी के मकान पर पधारे और मुझसे कहा "आपको चलना ही है, नही तो हमारी बडी बदनामी होगी।" उन्होने बडे शान्त भाव से अखबारो की कतरनें मुझे दिखाईं, जिनमे मेरे आने की सूचना छपी थी। यशपालजी के मधुर व्यवहार को और बूढ़ी दादी को देखकर मैं चकित रह गया और मैंने मुस्कराकर कहा, "आपने मिठाई का भी कुछ प्रबन्ध किया है?" यशपालजी बोले, "उसकी आप चिन्ता न करें। उसका तो भरपूर प्रबन्ध कर दिया गया है। आप खूब खाइये और साथ ले आइये।" तब मैंने वहा जाना स्वीकार कर लिया। सहर्ष गया। छात्राओ के सम्मुख मैंने भाषण दिया और मिष्ठान के साथ न्याय भी किया। उसी दिन से मैं यशपालजी की सहज बुद्धि का कायल हो गया।

आज उस घटना को लगभग ४५-४६ वर्ष से ऊपर बीत चुके हैं। इस बीच १८ वर्ष तो यशपालजी से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा—६ वर्ष कुण्डेश्वर में और १२ वर्ष दिल्ली में।

जब मुझे 'मधुकर' मे सहायक की आवश्यकता हुई तो कुल जमा ५० रु मासिक पर यशपालजी को बुला लिया। यशपालजी ने पूछा, "टीकमगढ़ मे क्या-क्या साग-तरकारिया मिलती हैं?" मैंने उत्तर दिया, "आप खुद यहां आकर देखें और प्रयोग के तौर पर रहें। यदि जगह पसन्द आवे तो रह जाय, नही तो दिल्ली लौट जाय।" मेरी बात मानकर वे चले आये। वह स्थान उनको इतना पसन्द आया कि ६ वर्ष मेरे पास रहे।

जब १८ अक्तूबर १६३७ को मैं कुण्डेश्वर पहुचा था, उस सुनसान जगह तथा विशाल महल मे अकेला ही था। केवल जगन्नाथ धीमर मेरी सेवा के लिए रहता था। यशपालजी, जगदीशजी और प्रेमनारायण खरे इत्यादि के आने पर बढते-बढ़ते हमारा बहुत बडा परिवार बन गया।

यशपालजी से अपने घनिष्ठ सम्बन्ध के आधार पर बिना किसी सकोच के हम कह सकते हैं कि यदि हिन्दी-साहित्य के एक दर्जन मूक साधको की गणना की जाय तो यशपालजी का नाम उनमे काफी ऊचा रहेगा। 'मूक' शब्द का प्रयोग हमने जान-बूझकर किया है। यद्यपि यशपालजी का नाम पत्रो मे बराबर आता रहता है, उनके अनेक मौलिक, अनूदित और सम्पादित ग्रन्थ भी निकले हैं, सभाओ और सम्मेलनो मे भी वह दीख पडते हैं पर उनका अधिकाश कार्य ऐसा होता है, जिसका परिचय पाठको को मिल ही नही पाता।

अक्तूबर सन् १६४० से दिसम्बर सन् १६४६ तक ओरछा राज्य (बुन्देलखण्ड) मे जो भी साहित्यिक कार्य हुआ, उसका ८० फीसदी यशपालजी द्वारा ही किया गया था। 'मधुकर' के साढ़े तीन हजार पृष्ठो का सम्पादन, 'प्रेमी अभिनन्दन-ग्रन्थ' का सम्पूर्ण कार्य, श्रीमान ओरछेश को समर्पित दो हस्तलिखित अभिनन्दन-ग्रन्थो का सम्पादन, स्व हेमचन्द के सस्मरणो का सकलन, सम्पादन और प्रकाशन, अहार तथा पपौरा क्षेत्र विषयक पुस्तको का सम्पादन, प्रातीय साहित्य सम्मेलन तथा प्रात-निर्माण-आन्दोलन, इन सभी यज्ञो मे यशपालजी का प्रमुख हाथ रहा था।

ईमानदारी के साथ हमे यह बात स्वीकार करनी पडेगी कि हमारे बुन्देलखण्ड-प्रवास को आनन्दमय बनाने मे यशपालजी का बहुत बडा हाथ रहा है। वे विनम्र हैं, सौम्य स्वभाव के हैं और आज्ञाकारी भी और उनके इन गुणो से हमने काफी लाभ उठाया है। चाय पीना, गप्पे लडाना, चिट्ठिया लिखना और वन मे घूमना, इस चतुर्मुखी कार्यक्रम को पूरा करने मे हमे यशपालजी से बहुत सहायता मिली है। किसी लेख का सम्पादन करना तो दूर रहा, स्वय अपने लेख का अन्तिम प्रूफ भी शायद ही हमने कभी देखा हो।

वन-भ्रमण का हमे शौक था और यशपालजी जैसे आज्ञाकारी व्यक्ति साथ मे थे। जब भी मन मे उमग उठी, हम कह देते, "यशपालजी, आप भी अजीब आदमी है। वन ने निमन्त्रण दिया है, झरबेरियो का आतिथ्य ग्रहण करना है और स्वर्णमृगो के दर्शन और आप कमरे मे बैठे सम्पादन तथा प्रूफरीडिंग का मक्खीमारा काम कर रहे हैं। छोडिए इसे। जरा बाहर चलिये, चाहे प्रात काल हो या दोपहर अथवा सध्या, यशपालजी को जोर देकर हम साथ मे ले ही लेते। स्वय वे भी भ्रमण के अत्यन्त प्रेमी रहे हैं। कुण्डेश्वर के निकटस्थ वन मे हम लोग घण्टो घूमते। कभी-कभी जगली सूअर, साभर इत्यादि मिल जाते थे, पर स्वर्णमृगो या चीतलो के झुण्ड-के-झुण्ड हमने बीसियो बार देखे हैं। कभी-कभी यशपालजी के अनुज वीरेन्द्र और राजेन्द्र भी साथ-साथ हो लेते, यशपालजी की पत्नी श्रीमती आदर्श कुमारी (बहूरानी) तो साथ रहती ही थी और मोती कुत्ता भी। हम सब पर जगलीपन सवार हो जाता और चीतलो का पीछा करते-करते हम बहुत दूर निकल जाते। हमारी वन्य प्रकृति उस समय जाग्रत हो जाती थी और तब हमे यही प्रतीत होता था कि स्वणमृगो के अत्यन्त निकट पहुचकर उनका दर्शन करना ही हमारा मुख्य कार्य है।

जब हमारी यह वन्य प्रकृति बहुत बढ़कर सीमा का उल्लंघन कर गई और अनेक प्रातःकाल उसी में बीतने लगे तो यशपालजी ने एक दिन कहा, "देखिये दादाजी, एक समझौता कर लीजिये। सवेरे से बारह बजे तक हमे 'मधुकर' के तथा दूसरे काम करने हैं। शाम को आप जहां कहे, मैं चलूगा।" यशपालजी का यह कथन जिसके मूल मे उनकी कर्त्तव्य-प्रियता का 'दुर्गुण' था, हमें खटका तो बहुत, पर मजबूरन हमे समझौता करना पडा, यद्यपि उस समझौते को तोड़ने मे भी हम अनेक बार सफल हुए, खासतौर से वसन्त ऋतु मे। जब पलाश के सुन्दर पुष्पों से मधुवन लद जाता था, इस समझौते पर कभी भी अमल नही हुआ।

पर हम लोगो के ये वन-भ्रमण सासारिक दृष्टि से भी सर्वथा निरर्थक रहे हों, ऐसा हम नही मानते। उनमे विशेषाको के निकालने की आयोजना बनी, पत्रकार-विद्यालय की चर्चा हुई, अभिनन्दन-ग्रन्थों की स्कीम सोची गई और कितने ही लेखो के लिए मसाला भी प्राप्त हुआ।

"अब की बार हमने आगरा मे आचार्य रामलोचनशरणजी को दिया गया अभिनन्दन-ग्रन्थ देखा। ऐसा ग्रन्थ तो प्रेमीजी (नाथूरामजी प्रेमी) को भी मिलना चाहिए। मैंने एक दिन टहलते हुए कहा। यशपालजी ने उत्तर दिया, "हम लोग इस यश को कर सकते हैं। आप इस कार्य को हाथ मे ले लीजिये। पूरा हो जायगा।"

बस इस छोटी-सी बातचीत का शुभ परिणाम साढे सात सौ पृष्ठो का वह अभिनन्दन ग्रन्थ है, जिसकी प्रशसा अनेक विद्वानो ने की थी। उसकी तैयारी मे यशपालजी के दो वर्ष लग गये। उन्हे सैकडो ही पत्र लिखने पडे, लम्बी-लम्बी यात्राए करनी पडी, लेखो का सग्रह और सम्पादन करना पडा, समस्त ग्रन्थ के प्रूफ देखने पडे और उत्सव मे भाग लेने के लिए नागपुर भी जाना पडा। यशपालजी और बधुवर वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने सारा काय किया।

अहार-क्षेत्र की यात्रा पर हम लोग गये हुए थे। जैनो के लिए तो वह तीर्थ स्थान है ही, पुरातत्व की दृष्टि से भी उसका बडा महत्व है और समीपस्थ प्राकृतिक दृश्यो तथा वनश्री का क्या कहना। मैं तो एक बार उस तीर्थ की यात्रा पहले भी कर चुका था, पर यशपालजी वहा प्रथम बार ही गये थे। घुलमिलकर बातचीत करना यशपालजी के स्वभाव का एक अग ही है। उन्होने वहा के छात्रालय के विद्यार्थियो से बडी सहृदयता-पूर्वक पूछा, "क्यो भई, तुम्हे दूध मिलता है ?"

बच्चो ने भोलेपन से कहा, "नही।"

"और घी ?"

उसका भी उत्तर मिला, "नही।"

"साग-तरकारी तो मिलती ही होगी।"

उसका भी जवाब था, "नही।"

मैं पास ही खडा था। मुझे अपनी हृदयहीनता पर बडी लज्जा आई, क्योकि अपनी यात्रा मे मैंने इन विद्यार्थियो से निकट सम्पर्क कायम करने का कोई प्रयत्न ही नही किया था। पर यशपालजी की आखो मे आसू झलक गये। थोडी दूर आगे चले तो बीसियो खण्डित मूर्तिया जमीन पर पडी हुई दीख पडी। आगन्तुको के चरण उन पर पडते थे। इस बार यशपालजी की धार्मिक प्रवृत्ति और सौन्दर्य-भावना जाग्रत हो गई और उन्होने वहा के कार्यकर्त्ताओ को आडे हाथो लिया। उपयुक्त अवसर समझकर मैंने यशपालजी से कहा, "ये लोग तो निरपराध हैं। न इन्हे प्राचीन निर्जीव मूर्तियो का महत्व ज्ञात है और न नवीन सजीव मूर्तियो के गौरव को ये समझते हैं। ये तो अशिक्षित हैं। पर आप तो शिक्षित हैं, जैन भी हैं और सौन्दय-प्रेमी भी। आप इस आन्दोलन को उठा लीजिये और यहा एक सग्रहालय बनवा दीजिये।"

आज अहार क्षेत्र मे तीन-चार लाख रुपये का जो सग्रहालय दीख पडता है, उसके पीछे यशपालजी की कई वर्ष की साधना छिपी हुई है। अनेकों बार अहार की यात्रा उन्हें करनी पड़ी है। घर की हारी-बीमारी में भी उन्हें वहां १६-१७ मील दूर जाना पड़ा है। यद्यपि रुपयो के एकत्र करने का काम मुख्यत ब्रह्मचारी फतेहचन्दजी को करना पडा था, तथापि उस सग्रहालय मे आत्मा की प्रतिष्ठा यशपालजी ने ही की थी जो सहस्रो यात्री उस सुन्दर भवन को वहा देखते हैं, वे इसकी कल्पना भी नही कर पाते कि एक साधक को इसके निर्माण के लिए कितनी तपस्या करनी पडी थी। आज भी यशपालजी को दिल्ली मे बैठे इस बात की चिंता रहती है कि सग्रहालय मे मूर्तिया विधिवत रूप से प्रतिष्ठित होनी हैं और उनके चित्र भी लिए जाने हैं, आदि-आदि।

इसी प्रकार हेमचन्द्र सस्मरण पुस्तक भी एक दिन साथ-साथ टहलने का परिणाम है। स्वतन्त्र आकाश के नीचे मुक्त वातावरण मे और एकान्त मे टहलते हुए सैकडो विचार आते हैं और जहां-के-तहां विलीन हो जाते हैं। काश हम उन प्रेरणाप्रद क्षणो को स्थाई बना कर उनसे काम ले सकते! यशपालजी मे यह अद्भुत गुण है कि वे क्षणो को बाध लेना और आयोजनाओ को कार्य रूप मे परिणत कर देना जानते हैं। कल्पना-जगत की चीजो को वे साक्षात करके दिखला सकते हैं। स्वच्छन्द आदमियो से काम लेने का नुस्खा भी उन्हें मालूम है।

इस ससार मे जो असुन्दरता दीख पडती है, उसका मुख्य कारण यह है कि हम लोग देते कम हैं और लेते अधिक। एक पैसा लेकर दो पैसे का काम करने वाले बिरले ही होते हैं। यशपालजी उन्ही अल्पसख्यक व्यक्तियो मे हैं। अपने छ वर्षों के कुण्डेश्वर-निवास मे उन्होंने छ हजार रुपये से अधिक वेतन मे नही लिया होगा, पर उन्होने काम किया पचास हजार का, और अपने सरल हास्यमय स्वभाव तथा निस्स्वार्थ सेवा-भावना से आनन्द का जो वितरण उन्होने किया, उसका मूल्य तो आंका ही नही जा सकता।

छोटे-छोटे कार्य ही वास्तविक योग्यता की कसौटी हैं और इन तथाकथित छोटे-छोटे कार्यों मे ही यशपालजी के महत्त्व का दर्शन होता है। उदाहरणार्थ प्रूफ देखने का ही काम लीजिये। यशपालजी उसके विशेषज्ञ है। क्या मजाल कि एक भी अशुद्धि उनसे छूट जाय। प्रूफ-सशोधको को कितना श्रम करना पडता है, उसकी कल्पना साधारण पाठक कर ही नही सकते। जब-जब सुयोग्य लेखक 'सस्ता साहित्य मण्डल' के ग्रन्थों के शुद्ध पाठ की प्रशसा करते हैं तब-तब हमे यशपालजी की परिश्रमशीलता का स्मरण हो आता है। चाहे घर मे कैसी ही भयकर बीमारी हो, कोई भी जरूरी काम पडा हो, पर यशपालजी 'मधुकर' के प्रूफ-सशोधन का काम कभी भी नही छोडते थे। मुझे ऐसे मौको पर बडी झझलाहट होती थी। फेंकिए इस चीज को! दो-चार अशुद्धिया रह भी जायगी तो उससे पाठको की कौन-सी भयकर हानि हो जायगी।" मैं कहता। पर यशपालजी को यह तर्क कभी भी स्वीकृत नही हुआ। वे पाठको के प्रति वफादार ही रहना चाहते हैं। जिस क्षण में जो काम हमे करना है, उसे ईमानदारी से करना है। यह उनका तर्क है और भरसक वे इस पर चलने का प्रयत्न करते हैं।

एक घटना का हमे खास तौर से स्मरण है। टीकमगढ के जैन-समाज मे पारस्परिक कलह थी। यशपालजी विरोधियो मे समझौता कराने के लिए प्रयत्नशील थे। हम दोनो चार मील दूर टीकमगढ़ गये हुए थे। दुर्भाग्यवश उन्ही दिनों उनकी धर्मपत्नी श्रीमती आदर्शकुमारी अत्यन्त बीमार थी। यशपालजी शांतिपूर्वक उन लोगो को समझा रहे थे। न उनके चेहरे पर कोई शिकन थी, न चिंता का भाव और मैं अत्यन्त चिंतित अवस्था मे कभी उनकी ओर देख रहा था तो कभी उन अज्ञानी जैनी-भाइयो की ओर, जिन्होने कोई बात न समझने की मानो प्रतिज्ञा-सी कर ली थी। जैसे-तैसे बातचीत बद कराके मैंने यशपालजी से कहा, "आप भी बडे हृदयहीन आदमी हैं। वहां बहूरानी मरणासन्न हैं और आप यहा इन लोगो से सिरपच्ची कर रहे हैं!"

यशपालजी ने विनम्रतापूर्वक इतना ही कहा, "डाक्टर कोठारी जैसे सुयोग्य व्यक्ति इलाज कर रहे हैं। मेरे चिंता करने से क्या होगा ! इन लोगो मे मेल कराने का जो काम हाथ मे लिया है, फिक्र करने से वह बिगड ही सकता है। इसलिए इस अवसर पर तो मुझे निश्चित होकर इन्हे समझाना ही था।" रास्ते भर मैंने यशपालजी को उनकी हृदयहीनता पर खासी डाट बतलाई, पर पीछे मैंने सोचा तो यशपालजी के तर्क मे सार प्रतीत हुआ। महात्माजी ने एक पत्र मे लिखा था, "जिस कार्य मे लगे हुए हो, उसी को तन्मयतापूर्वक करना, यही ब्रह्मचर्य है न ?" यशपालजी ने ब्रह्मचर्य की यह परिभाषा भले ही न पढी हो, पर तदनुसार कार्य वे अवश्य करते रहे हैं। कुण्डेश्वर छोडने के बाद चार वर्ष मे उन्हे जिन भयकर गार्हस्थिक झझटो में, बीमारियो और तीमारदारियो मे फसना पडा है, उनमे कोई साधारण व्यक्ति तो अपने मस्तिस्क का सतुलन खो बैठता। पर अपना कर्त्तव्य-पालन करके शेष परिणाम ईश्वर पर छोड देने मे यशपालजी का विश्वास है और इसी मे उनकी परिश्रमशीलता तथा सफलता का रहस्य छिपा हुआ है।

यशपालजी कोई तेजस्वी पत्रकार नही हैं और न विशेष प्रतिभाशाली लेखक ही, पर अनेक तेजस्वियों तथा प्रतिभाशालियो को वे उतना ही पीछे छोड गए हैं, जितना सुप्रसिद्ध कहानी का वह कछुआ उस खरगोश को पीछे छोड गया था और यदि प्रतिभा की यह परिभाषा ठीक है—प्रतिभा के माने हैं ९० फीसदी पसीना बहाना और १० फीसदी प्रेरणा, तो यशपालजी प्रतिभाशाली माने जा सकते है। वस्तुत वे उन हिमखण्डो की तरह हैं, जिनका ९/१० हिस्सा जल के भीतर ही रहता है। यशपालजी का अधिकाश कार्य ऐसा होता है, जो प्रकाश मे आ ही नही सकता। वे नेता नही बनना चाहते। जिन तिकडमो से मनुष्य आगे बढकर उच्च पदो को ग्रहण करते हैं, उनसे वे परिचित नही। साहित्य-मदिर के प्रधान पुजारी बनने की भी उन्हे आकाक्षा नही। हा, उस मदिर को स्वच्छ रखने और यात्रियो तथा पुजारियो के मार्ग को प्रशस्त करने मे ही वे अपना कल्याण मानते हैं। दूसरो के यश की रक्षा करते हुए ही ये अपने नाम 'यशपाल' को सार्थक करते रहे है। इजीनियर कोई भी बन जाय, वे नीव के पत्थर ही बनना चाहते हैं। यदि महत्वाकाक्षा का कोई इजेक्शन निकल आवे और उसका प्रयोग यशपालजी पर कर दिया जाय तो निस्सदेह वह एक सुयोग्य एम पी बन सकते हैं। तदनुरूप उनका रूप भी है, व्यक्तित्व और योग्यता भी। पर यशपालजी महत्वाकाक्षा से कोसो दूर हैं। यशपालजी तो एक घरेलू प्राणी हैं। वे किसी के अनुज बन सकते है तो किसी के अग्रज, किसी के मामा तो किसी के भानजे, और शिष्य तो वे सभी के बन सकते हैं—शिष्यत्व की भावना उनमे इतनी प्रबल है—पर वे नेता किसी के भी नही बन सकते।

नागरिक सभ्यता का यह अभिशाप है कि जिन्हे आश्रम बनाकर प्रकृति के निकट रहना चाहिए था वे जनाकीर्ण स्थानो पर रहे हैं। विध्यप्रदेश अब भी यशपालजी की प्रतीक्षा कर रहा है। वे स्वय बुन्देलखण्डी नही, ब्रजवासी हैं, पर दो बुन्देलखण्डियो (पुत्री अन्नदा और चि सुधीर) के पिता अवश्य है। अपने जीवन के सर्वोत्तम छ वर्ष बुन्देलखण्ड को प्रदान करके उन्होने अपने जनपद ब्रज का गौरव ही बढाया है।

कुण्डेश्वर मे माता जमडार नदी उनकी याद करती है, जिसकी गोद मे वे बहुत खेले है। जलप्रपात षडानन कभी गभीर गर्जन से तो कभी कलकल निनाद से उन्हे बुलाता है। उसके नीचे बैठकर और फिर कधो पर तीव्र धार लेकर उठते हुए वे अनेक बार शिव बने हैं। जामनेर के तट पर 'ऊषा-विहार' का वह मनोहर दृश्य उनके लिए उत्कठित है, जिसका नामकरण-सस्कार उनकी उपस्थिति मे हुआ था और मधुवन के चारो-धाम उषाकुज, कुमारी अन्तरीप, बरीघाट और सगम—अपने तट पर उन्हे निमत्रण दे रहे हैं। इस महादेश मे प्रातीयता की महामारी को न फैलने देने का एकमात्र उपाय यही है कि जिस प्रात मे हमे रहना पडे, उससे अपने प्रात के समान ही प्रेम करें। यशपालजी ने अपने को पूर्णरूप से बुन्देलखण्डी ही बना लिया था और वहां के

कार्यकर्ता अब भी अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक उनकी सेवाओं तथा उपकारों का स्मरण करते हैं।

अपने एकाकी वन भ्रमण मे हमे भी यशपालजी की निरतर याद आती रहती थी और बसन्त ऋतु में तो उनकी अनुपस्थिति हमें खास तौर पर खटकती थी।

पलाश फिर फूले, वन मे मानो जगह्-जगह होली का दृश्य उपस्थित हो गया और उस मनोहर वनश्री की छटा ने जीवन मे एक बार फिर आशा का सचार किया, पर जिनके साथ हमने वन-भ्रमण के सर्वोत्तम क्षणो का आनन्द लिया था, वे दिल्ली में साहित्य-सेवा के नीरस काम मे डूबे थे।

पर हम जानते हैं कि दुनिया के काम वन-भ्रमण से नही चला करते। यशपालजी ने तो साहित्य-उपवन की सेवा का कर्त्तव्य अपने ऊपर ले लिया है। लेकिन हमने अब भी यह आशा नहीं छोड़ी है कि यशपालजी किसी मशीन के पुर्जे न रहकर अपनी स्वतत्र कुटी का निर्माण किसी सुन्दर प्राकृतिक स्थल मे—किसी तपोवन के निकट—करेगे और तब हमें उनके साथ वन-भ्रमण का आनन्द एक बार फिर प्राप्त होगा। तथास्तु।

पुनश्च

अपना काम करते हुए ९२वें वर्ष मे मुझे यशपालजी की अक्सर याद आ जाती है। एक बार मैंने उन्हे मजाक मे लिखा, "जगह अब भी खाली है। पचास रुपये महीने देने को अब भी तैयार हू। चाहे जब चले आओ।" इसका उत्तर देते हुए यशपालजी ने लिखा, "मैं बडी खुशी के साथ चला आऊगा, पर एक शर्त है। आप चीजो के वही भाव करा दीजिए, जो सन् १९४० में थे, यानी एक रुपये के १४ सेर गेहू, रुपये सेर घी और दस सेर के चावल और ८-१० सेर का दूध।"

मैं निरुत्तर हो गया, फिर भी यशपालजी दिल्ली मे बैठे हुए मेरा जो काम कर सकते हैं, करते रहते हैं।

वहा बैठकर उन्होने अपना मौलिक लेखन भी खूब किया है और अब भी कर रहे हैं। उनको दो बार 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' मिला है। उनकी मौलिक, अनूदित, सम्पादित और सकलित पुस्तको की सख्या २५० से ऊपर है। भारत की प्रमुख प्रकाशन सस्था 'सस्ता साहित्य मडल' के सचालन मे लगभग चालीस साल से योगदान करते रहे हैं और अब तो कोई दस वर्ष से सस्था के मत्री हैं और उसके मासिक पत्र 'जीवन साहित्य' के सन् १९४६ से सम्पादक हैं। उनकी अनेक पुस्तकें भारत सरकार तथा प्रादेशिक सरकारो द्वारा पुरस्कृत हुई है। उनकी बहुत-सी रचनाओ के अनुवाद भारतीय तथा विदेशी भाषाओ मे हुए हैं। सबसे बडी बात यह है कि उन्होने दूसरे लेखको को निरतर बढावा दिया है और आज भी दे रहे हैं। जितने अभिनदन ग्रथो का सम्पादन उन्होने किया है, उतना शायद ही किसी अन्य हिन्दी लेखक ने किया हो।

यशपालजी ही एकमात्र ऐसे लेखक हैं, जिन्हे मैं 'आप' न लिखकर 'तुम' ही लिखता हू। उन्होने बहुत सी विदेश-यात्राए की है और हर यात्रा मे वे मुझे याद कर लेते है। मैं विदेश-यात्राए अधिक नही कर सका, पर मुझे सन्तोष है कि यशपालजी को यह सुअवसर बीसियो बार मिला है। जहा प्रवासी भारतीय बडी सख्या मे बसते है, उन देशो मे वह गए हैं और उनके लिए जो कुछ कर सकते हैं, उन्होने किया है। प राहुल साकृत्यायन तथा डा रघुवीर के बाद वह तीसरे हिन्दी लेखक हैं, जिन्होने देश-विदेश की सबसे अधिक यात्राए की हैं। वह उच्चकोटि के लेखक, कुशल ग्रथ सम्पादक और जागरूक पत्रकार हैं।

यशपालजी मे आदर्शवाद है और व्यावहारिकता भी। आदर्शवाद और व्यावहारिकता का ऐसा विचित्र सम्मिश्रण आसानी से नही मिल सकता।

शिवसाहित्य के प्रणेता

श्रीनारायण चतुर्वेदी

□□

मेरे लिए श्री यशपालजी जैन के अभिनदन ग्रन्थ मे कुछ लिखना बडा कठिन काम है। मेरी यह एक बडी कमजोरी है कि जिनसे मेरी आत्मीयता हो जाती है उनके सम्बन्ध मे लिखने मे बडा सकोच होता है। उदाहरण के लिए मैंने भाई सोहन लाल द्विवेदी के अभिनदन-ग्रन्थ का सम्पादन तो कर दिया, किन्तु उसमे स्वय उनके व्यक्तित्व या कृतित्व पर कुछ नहीं लिख सका। आत्मीयजनो की प्रशसा करना मुझे स्वय अपनी आरती करने की तरह मालूम होता है।

मुझे ठीक-ठीक याद नही पडता कि मैं उन्हे कितने दिनो से जानता हू। इतनी याद अवश्य है कि मैं उन्हें उनके प्रेम-विवाह के पहले से जानता हू, क्योकि विवाह के पूव उनकी पत्नी आगरा टीचर्स ट्रेनिंग कालिज मे प्रशिक्षण ले रही थी, तब उनसे मेरा परिचय हुआ था और उसके बाद जब मैंने सुना कि उनका विवाह यशपालजी से हुआ तब मुझे साश्चर्य प्रसन्नता हुई थी। यह प्रेम विवाह उनकी प्रगतिशीलता का प्रमाण है, क्योकि दोनों भिन्न जातियो मे उत्पन्न हुए थे। उन दिनो ऐसे प्रगतिशील विचारो को कार्यान्वित करना बडे साहस का काम था। इस विवाह ने उनके चरित्र की एक दुर्लभ विशेषता भी स्पष्ट कर दी कि उनके विचार और विश्वास केवल कथनी तक सीमित नही रह जाते, प्रत्युत वे उनके अनुसार आचरण भी करते है। उनकी कथनी और करनी मे अन्तर नही है। यह इस देश मे बडा दुर्लभ गुण है।

मेरे लिए यह कहना कठिन है कि वे गाधीवादी अधिक है या मानवतावादी। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यजी ने एक बार कहा था कि यदि ज्ञान भक्ति मे परिणत नही होता तो वह बन्ध्या है, उसी प्रकार गाधीवाद की भी परिणति मानवतावाद मे होना अनिवार्य है। कितने ही गाधीवादियो मे यह विकास नही हो पाता। भाई यशपालजी मेरे परिचित उन मुठ्ठी भर गाधीवादियो मे हैं, जिनमे यह परिणति हुई है। यही कारण है कि उनका साहित्य चयन, और साहित्य मानवतावाद प्रधान है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के साहित्य के प्रकाशनो मे उनकी यह विशेषता देखी जा सकती है, जिसके कारण हिन्दी को ऐसा साहित्य मिला, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मानवतावादी है। उसका चयन उनके विवेक और सुरुचि का प्रमाण है। चयन करते समय सारे ससार का मानवतावादी साहित्य उनकी निगाह मे रहता है, क्योकि उनकी दृष्टि विशाल है।

'सस्ता साहित्य मण्डल' जिस महान उद्देश्य से स्थापित किया गया था, उसको प्राप्त करने का आरम्भ तो स्व श्री मार्तण्डजी उपाध्याय के समय ही हो गया था, किन्तु यशपालजी ने उसे बडी कुशलता पूवक और सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया। मेरे आरम्भिक जीवन मे मेरे कितने ही बुजुर्ग इस बात पर जोर दिया करते थे कि जनता को 'शिव-साहित्य' पढना चाहिए और उन्हे इस बात की शिकायत थी कि वैसा साहित्य मिलना कठिन है। यशपालजी के सचालन मे जितना 'शिव साहित्य' हिन्दी को मिला उतना और किसी सस्था ने नही दिया। उसके प्रकाशन 'शिव' तो होते ही हैं, साथ ही रोचक और उपयोगी भी होते हैं। उन्होंने बालको और किशोरो के लिए ऐसा साहित्य उपलब्ध कराने मे अनोखा प्रयत्न किया।

उनका दूसरा कृतित्व उनकी भ्रमणशीलता हैं। वे हिन्दी के उन थोडे-से लेखको मे है, जिन्होने 'ससार देखा है।' ससार देखना इतना महत्त्वपूर्ण नही है, जितना वह दृष्टिकोण, जिससे वह देखा जाय। उन्होंने

अपने भ्रमण-वृत्तान्तों में जो वर्णन किए हैं, उनसे हम आश्वस्त हो जाते हैं कि उनकी दृष्टि पैनी ही नहीं, उदारता और सहृदयतापूर्ण भी है, ऐसे भ्रमण वृत्तान्तो से उन्होंने हिन्दी के भ्रमण साहित्य की श्रीवृद्धि करके उसकी उल्लेखनीय सेवा की है।

वे सम्पादक भी हैं। वे कितने ही वर्षों से 'जीवन साहित्य' का सम्पादन कर रहे हैं। उन्होंने अपने कुशल सम्पादन से उसे वास्तव मे जीवनोपयोगी साहित्य का वाहक बना दिया है। उनकी सम्पादकीय टिप्पणियां बड़ी संतुलित और विचारोत्तेजक होती हैं।

वे हिन्दी के साहित्यकार ही नहीं, प्रचारक भी हैं, और उन्होने राजधानी मे हिन्दी के प्रचार आंदोलन मे जो महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उसका सही मूल्याकन करना सम्भव नही है। क्योंकि अभी इनके क्रियाशील जीवन का बहुत कुछ भाग शेष है। जब वे उससे विश्राम लेंगे तभी उसके मूल्याकन का समय आएगा।

मैं उनके व्यक्तित्व के बारे मे कुछ न कहूगा। मैं चौबे हू और वे इतनी खातिरदारी करते हैं और मुझे इतनी मिठाई खिलाते हैं कि लोग कही यह न कहने लगें कि "मृदगमुखलेपेन करोति मधुर ध्वनिम्।"

यशपालजी ने अपने अध्यापन, अध्यवसाय, लेखन और सम्पादन से हिन्दी जगत मे अपना एक विशिष्ट और सम्माननीय स्थान बना लिया है। भले ही उनकी वय इतनी हो गयी हो कि लोगो ने उन्हे 'अभिनन्दन-ग्रन्थ' भेट करने की उम्र का समझा हो, किन्तु मैं उन्हें अभी युवक ही समझता हू, क्योकि उनमे युवा-सुलभ उत्साह, कर्मठता और भविष्य की योजनाए बनाने का दुर्लभ गुण है। गुणो का अभिनन्दन वय पर निर्भर नही होता। भगवान शकराचार्यजी तो इस धराधाम मे केवल ३२ वर्ष ही रहे। किन्तु वे उस समय ही नही, आज तक पूज्य वन्दनीय और अभिनन्दनीय हैं। इसलिए मैं आयोजको को इस सत्कार्य के लिए हार्दिक बधाई देता हू और भगवान से प्रार्थना करता हू कि भाई यशपालजी की कर्मठता अनेक दशको ऐसी ही बनी रहे, जिससे हिन्दी साहित्य को शिव-साहित्य अधिकाधिक मात्रा मे प्राप्त होता रहे।

टेक के पक्के

जैनेन्द्र कुमार

□□

यशपाल वैसे मुझे 'मामा' कहते हैं, पर मैंने उन्हें जाना जब वह प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे। दो-तीन बार वहीं भेट हुई, और हर बार उनका चित्र मन पर उज्जवलतर होता गया। अन्तिम भेट शायद तब हुई जब वह लॉ की पढ़ाई कर रहे थे। उनके चेहरे की प्रसन्नता और व्यवहार की तत्परता का मुझ पर विशेष प्रभाव पडा, खास कर स्काउट के पहनावे मे वह बहुत सलोने और भव्य दीखते थे। वह मनोहर चित्र अब तक स्मृति मे अकित है।

पारिवारिक सम्बन्ध तो बाद में बनने में आया। उससे पहले ही उनका पत्र मिला कि वह मेरे पास रहने को आ रहे हैं। मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने उन्हे इस मूर्खता से विरत करना चाहा। कल्पना न होगी लोगो को कि मैं तब कैसे रहता था। जगह छोटी और मैं एकदम बे-सरो-सामान। घर मे बत्ती तक नही, मिट्टी के तेल की लालटेन या कडवे तेल के दिये से काम चला करता। सब काम-धाम अपने हाथों होता, जिसमे मेरा भाग होता लगभग सिफर और बोझ श्रीमती पर। इस स्थिति की जिम्मेदारी कुछ तो थी मेरी जिद पर, कुछ परिस्थिति की विवशता पर भी। यह समझा कर लिखा, पर यशपाल थे, कि इन सब असुविधाओं की धमकी पर तनिक पीछे नही हटे और सचमुच आ धमके।

वह परीक्षा निश्चय ही बडी कठिन और क्लिष्ट रही होगी। दूसरा कोई भी उसमे टिक न सकता था। श्रीमती जी का पूरा नही तो आधे से भी अधिक भार उन्होने अपने कधो और हाथो सम्भाल लिया। और एकाएक किसी को पता न चलने दिया कि वह बी ए एल-एल बी हो सकते हैं।

लेखन मेरे लिए तो बेबसी का काम था। किसी और लायक मैं था ही नही। पर यशपालजी की योग्यताए कही अधिक थी। लोक-व्यवहार का उत्साह उनमे अमिट था। उनकी स्फूर्ति और परायणता मुझे दग करती थी। फिर भी कलम उन्होने थामी और शनै शनै सम्पादन के काम मे वह कुशलता सिद्ध की कि तुलना मे कम ही उनके साथ ठहर सकते हैं।

तब से लगातार उनका विकास और फैलाव होता गया है। वह बेधडक हैं और अपरिचित से अपरिचित यात्रा के लिए उद्यत। वह सब कही अपना मार्ग बना ले जाते हैं, और जरा मे हर किसी को अपना हमजोली बना लेते हैं। सदा तैयार और सब झिझक से छुट्टी। अपनी टेक के पक्के, यो सबके मित्र।

सुनता हू, वह बहत्तर वष पार कर गए हैं। दीखते तो जवान है। भगवान करे उनका सेवा परायण जीवन उत्कर्ष पाता जाए और वह हमे चिरकाल उपलब्ध रहे।

वे मुझे पसन्द हैं

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिह

□□

खत लिखेगे, गर्चे मतलब कुछ न हो।
हम तो आशिक हैं, तुम्हारे नाम के।

इस शेर मे यदि खत के स्थान पर लेख लिख दिया जाए, तो जहा तक भाई यशपालजी पर कुछ लिखने का प्रश्न है, यह मेरी भावना को पूरी तरह व्यक्त कर पायेगा। यशपालजी के मैं श्रद्धेय श्री बनारसी

दास चतुर्वेदी के जरिए सम्पर्क मे आया और उनका प्रशसक बन गया। पर उनसे मेरी कभी भी इतनी घनिष्ठता नहीं हुई कि मैं बहुत सारी बातें उनके सम्बन्ध मे लिख सकू। हा, इतना अवश्य कहूगा कि वे मुझे बहुत पसन्द पड़ते हैं, उनके लिए मेरे हृदय में गहरी श्रद्धा के भाव हैं। उनके नाम का मैं आशिक हू। और शायद वे भी मुझे पसन्द करते हैं, चूकि जहा कही भी—और दिल्ली मे रहते हुए ऐसे अवसर बहुत आते हैं—हम दोनों मिलते हैं। वे बड़े स्नेह के साथ मिलते हैं।

यशपालजी ने बहुत-से देशो का भ्रमण विगत बरसो मे किया है और उन पर लेख भी लिखे है। मैं बड़े चाव से उन लेखो को पढ़ता रहा हू। वे मुझे बड़े अच्छे लगे। वे जो कुछ भी लिखते हैं, रोचक ढग से लिखते है, उनकी शैली मे प्रवाह है, और जोर है। आशा है, अभी वे बहुत कुछ लिखेंगे। भाई यशपालजी ने बहत्तर वर्ष पूरे किये है। प्रकुतित उनसे मैं ऐसी आशा रखता हू और एक आस्तिक होने के नाते, परमात्मा से प्रार्थना करता हू कि वह उन्हे शतायु करे।

उनका व्यक्तित्व और कृतित्व

सोहनलाल द्विवेदी

□□

भाई यशपाल जैन से प्रथम बार मेरी भेट कुण्डेश्वर (टीकमगढ) मे हुई, पूज्य पडित बनारसीदास चतुर्वेदी के सान्निध्य मे। उस समय 'मधुकर' पत्र के वे सहयोगी सम्पादक थे। कुण्डेश्वर तब तो साहित्यकारो का तीर्थ-स्थल था। यशपालजी का व्यक्तित्व उस समय भी दूज के चाद के समान चमक रहा था। जो भी उनके सम्पर्क मे आता था, उनकी विनम्रता, शालीनता से प्रभावित हुए बिना न रहता था।

यशपालजी को भगवान ने ऐसा व्यक्तित्व ही दिया है, जो सहज ही अपनी ओर आकर्षित करता है, कोई उनका कृतित्व न भी जाने, तो भी वे अपनी ओर खीच लेते है, इसलिए कि जब भी वे किसी से मिलते है, मन से मिलते हैं। मुझे अनेक साहित्यकारो से मिलने का सौभाग्य मिला है, किन्तु, जिनसे एक बार मिल कर भूल न सकू, वे यशपालजी हैं।

कुण्डेश्वर के बाद, वे दिल्ली आ गए और पूज्य हरिभाऊजी उपाध्याय के सान्निध्य मे 'जीवन साहित्य' का सम्पादन करने लगे। हिन्दी की इन दो महान् विभूतियो के सम्पर्क मे रह कर, अपनी मौलिक साहित्य-सर्जना के कारण, आज यशपालजी भी स्वय हिन्दी की एक विभूति बन गए है। 'चित्रकला सगम' के माध्यम से उनका एक अभिनव समाज-सेवा का आलोक फैल रहा है।

अभी कुछ ही दिन हुए, मुझे उनके घर जाने का भी सुअवसर मिला, उनका अध्ययन कक्ष भी देखा,

और अनेक ग्रथो से सजी अल्मारिया, जो अध्येता की जीवनकथा कह रही थीं, किन्तु सर्वाधिक प्रभावित करने वाला मुझे उनका पूजागृह देखने को मिला, जिसे उन्होंने बड़े ही उल्लास के साथ दिखाया।

मैं आस्तिक हू और मानता हू, जो कुछ हम करते हैं, उसमे भगवत्प्रेरणा होती है और बडी उपलब्धिया बिना दैवी अनुकम्पा के सम्भव नही। उस दिन से उनके प्रति मेरी धारणा कुछ अधिक ऊंची हो गई है। उनकी सफलता का रहस्य भी मुझे उनके पूजागृह मे मिला जो उनके जीवन के विकास मे अनन्त प्रेरणा का स्रोत है।

यहां मैं उनके कृतित्व की चर्चा नही करूगा, वह तो अलग ही एक चर्चा का अध्याय होगा। उनके व्यक्तित्व के आत्मस्पर्शी प्रभाव का एक प्रसग ही उपस्थित कर रहा हू। ऐसा व्यक्तित्व जब कृतित्व मे ढलता है, तब उसका स्वरूप कैसा होगा, लिखने की आवश्यकता नही।

उनकी रचनाए देश मे ही नही, विदेशो मे भी कितनी लोकप्रिय है, यह उन्हे ज्ञात है, जो बाहर गए हैं। अनेक बार वे विदेश-यात्रा पर गए है और जाते रहते हैं। उनकी जयती के मगल पर्व पर मैं भगवान से प्राथना करता हू कि वे शतायु हो और राष्ट्रभाषा की निरन्तर श्रीवृद्धि करते रहे।

चिरयात्री

विष्णु प्रभाकर

□□

आचाय काका कालेलकर ने यात्रा करने के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए एक बहुत सुन्दर बात कही है, "जिस मनुष्य की वृत्तिया विकृत नही हो जाती, उसके लिए यात्रा की प्रेरणा स्वाभाविक है। जिस प्रकार वर्षा के शुरू होते ही साड अपने सीगो से जमीन खोद कर उसे सूघने लगता है, उसी तरह यात्रा का अवसर प्राप्त होते ही मनुष्य के पैर अपने आप बिना पूछे चलने लगते है। यदि कोई उससे पूछता है, कहा चले, तो वह कह देता है। मैं कुछ नही जानता। जहा तक जा सकूगा चला जाऊगा। जाना, चलना, नयी अनुभूतिया प्राप्त करना बस, इतना ही मैं जानता हू। आखें प्यासी हैं, शरीर भूखा है, इसलिए पैर चलते हैं, इससे अधिक मैं कुछ नही जानता। अर्थात कालोह्य निरवधि मानकर विपुला पृथ्वी की परिक्रमा पर निकल पडना ही मेरा उद्देश्य है।"

यशपाल जैन ने इस बात के मर्म को जैसे आत्मसात कर लिया है। वह न केवल अवसर प्राप्त होते ही चल पडते हैं, बल्कि अवसर पैदा करते हैं। एक यात्री मे जिस साहस(दुस्साहस तो मैं नही कहूगा)सूझबूझ, पहल और नेतृत्व की आवश्यकता हो सकती है, वह उनमे प्रचुर मात्रा में है। मुझे उनके साथ दक्षिण-पूर्व एशिया के छ

देशों (बर्मा, थाईलैण्ड, कम्पूचिया, वियतनाम, मलाया और सिंगापुर) नेपाल, उत्तराखण्ड (यमुनोत्री, गगोत्री केदारनाथ और बदरीनाथ) और दक्षिण भारत (तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक) में घूमने का सुयोग मिला है। मैंने पाया है कि वे न तो पीछे मुड कर देखते हैं और न उनकी जिज्ञासा का कोई अन्त है। यद्यपि यह प्रवृत्ति बहिर्मुखी अधिक है, फिर भी तद्रूप होने की चाह उनमे निरन्तर बनी रहती है।

कितने देश, हिमालय में स्थित कितने सुरम्य और अगम्य तीर्थ, देश के विभिन्न भागो के कितने-कितने छोटे-बडे ऐतिहासिक और औद्योगिक नगर, धार्मिक तीर्थ, नदी, नद, झील, समुद्र और पर्वत कुछ भी तो नही छूटा उनसे। एशिया मे दक्षिण पूर्व एशिया के छ देशो के अतिरिक्त नेपाल, जापान, चीन और अफगानिस्तान भी हो आये हैं। कही-कही तो एक से अधिक बार गये हैं।

अफ्रीका मे सूडान, इथियोपिया, केनिया, युगाण्डा, तजानिया, जजीबार, मलावी, दक्षिणी रोडेशिया, जाबिया, मेडेगास्कर के अतिरिक्त मॉरीशस, कोकोज आइलैंड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और फीजी की यात्रा भी उन्होने की है। यूरोप की परिक्रमा मे चैकोस्लोवाकिया, स्विट्जरलैण्ड, इटली, फास, इगलैण्ड, जमनी, डेन्मार्क और फिनलैण्ड शामिल हैं। रूस, अमेरिका, केनाडा, दक्षिण अमेरिका के देश भी नही छूटे उनसे।

हिमालय मे पवित्र तीर्थों के अतिरिक्त चीन के आक्रमण के बाद प्रधानमत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के सुझाव पर उन्होने लद्दाख की यात्रा की थी। दारबुक और चुशूल तक गये थे।

एक तरह विश्व का बहुत बडा भूभाग खूद डाला है। उन्होने लिखा भी बहुत है। समाचार-पत्रो मे उनकी अनेक लेखमालाए प्रकाशित हुईं, जैसे 'यूरोप की परिक्रमा', 'सागर के पार', 'लद्दाख मे आठ दिन', 'दक्षिण भारत मे','गगोत्री-जमनोत्री के अचल मे' उनमे कुछ प्रमुख हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन से भी अनेक वार्ताए प्रसारित हुई हैं।

दुर्भाग्य से यह सब साहित्य पुस्तक रूप मे उपलब्ध नही है, लेकिन जितना कुछ उपलब्ध है, वह भी कम महत्वपूर्ण नही है। चार पुस्तकें हमारे सामने हैं

१ जय अमरनाथ, २ उत्तराखण्ड के पथ पर, ३ पडोसी देशो मे और ४ रूस मे छियालीस दिन।

इसके अतिरिक्त उन्होने कुछ लघु पुस्तिकाए भी प्रौढो के लिए लिखी हैं

१ अजन्ता एलोरा, २ गोमुख, ३ अमरनाथ, ४ कोणाक और ५ जगन्नाथपुरी।

परिमाण की दृष्टि से यशपाल जैन की यात्राए महापण्डित राहुल साकृत्यायन और डा रघुवीर से कम नही हैं, परन्तु इन दोनो महान् पर्यटको की यात्राओ की तरह वे साहित्य और सस्कृति की खोज मे की गइ शोध-यात्राए नही हैं। वे राहुल जी और डा सत्यनारायण की तरह दुस्साहसी भी नही हैं। उनकी सारी यात्राए सुनियोजित हैं, पर उनका महत्व इस बात मे है, कि वे सहज-सुगम शैली और भाषा मे एक ऐसे ससार को हमारे सामने प्रस्तुत कर देते है, जिससे या तो हम परिचित नही थे, या कुछ दूसरे ही रूप मे थे। उसका नया रूप हमे चकित कर देता है और हमे प्रेरित करता है कि हम स्वय उन प्रदेशो की यात्रा करें।

इस दृष्टि से उनके यात्रा-वृतान्तो मे इतिवृत्तात्मकता और सरसता का सहज समन्वय हुआ है। लेकिन यात्राए मात्र इसी जीवन से साक्षात्कार नही करती, उन अज्ञात स्थानो की ओर भी ले जाती हैं जो हमारे भीतर हैं। यशपाल जैन को भीतर के उन अज्ञात स्थानो की चिन्ता नही है, लेकिन वे मात्र धार्मिक या व्यापारी या राजनेता भी नही हैं, जो अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार स्थान विशेष के महत्व से आतकित रहते हैं और उसके अतिरजित और अस्वाभाविक वर्णन मे ही अपनी सारी शक्ति खर्च कर देते हैं। यशपाल जैन प्रकृति को उसके सभी बदलते रूपो मे देखते हैं, मुग्ध होते हैं, आतकित भी होते है कभी-कभी, पर भयातुर कभी नही होते।

एक और विशेषता है उनकी। वही उनकी पहचान भी है। यात्रा मे मिलने वाले व्यक्तियों के प्रति उनकी सवेदना का पार नही। उनसे तादात्म्य स्थापित करने को वह सदा आतुर रहते हैं, और सहज भाव से किसी को अपना बना लेना उन्हे बखूबी आता है। इस गुण के बिना नयी-नयी अनुभूतिया प्राप्त हो ही नही सकती। जटिल मानव-चरित्र को समझने के लिए उसकी भाषा मे ही बात करना आवश्यक है, और यशपालजी इस बात को अपने सीमित दायरे मे अच्छी तरह जानते और परखते हैं। उनके यात्रा-विवरणो मे बडे अद्भुत और बडे करुण और बडे साहसिक व्यक्ति-चरित्र बिखरे पडे हैं।

अमरनाथ की यात्रा मे जानकारी देने लगते हैं, तो पूरी तफसील प्रस्तुत कर देते है, "छोटा-सा बाजार है, जिसमे जरूरत की सब चीजे मिल जाती हैं। खाने-पीने के लिए कई ढाबे हैं, साग-सब्जी, फलो, गरम कपडे, दवाइयो, फोटो वगैरा की कई दुकानें हैं। तार घर और डाकखाना है। चार-पाच अच्छे होटल है। सरकारी अस्पताल है। नदी के किनारे यात्रियो के लिए, कुछ कोठरिया भी बनी हैं, लेकिन ठहरने के लिए सबसे आनन्द-दायक चीज तम्बू हैं, जो बाजार से किराये पर मिल जाते है। कोई साहसी युवती मिल जाती है मुस्करा कर यह कहती हुई, "मैं तो इस गोद के बालक को लेकर गयी थी," तो पिस्सू घाटी पार करते हुए पाच वर्ष के बच्चे के साथ एक और नारी मिलती है। वह दूसरी बार यात्रा कर आई है और यह कहने का साहस रखती है, "मौका आवे तो तीसरी बार फिर कर सकती हू।"

इसके विपरीत ऐसे युवक भी मिले, जो किसी भी तरह का जोखिम उठाने को तैयार नही हुए, और बीच मार्ग से लौट आये। लौटे तो एक डाक्टर भी। यात्रा के अन्त तक वे सबकी सहायता करते रहे और ढाढ़स बधाते रहे, पर अचानक रक्तचाप बढ गया। यशपालजी ने उनकी विवशता को अनुभव किया। फिर भी कहा, "डाक्टर, अब तो यात्रा का अन्त है। थोडी हिम्मत और कीजिए ?"

बडे अनुराग से आभार प्रकट करते हुए, डाक्टर ने कहा, "आप लोग जाइए और अच्छी तरह से दर्शन कीजिये।"

डाक्टर ठेठ दार्जिलिग से आये थे। इतने निकट आकर भी अमरनाथ के दर्शन से वचित रह गये!

यशपालजी इस घटना से बडे विचलित होते है। विचलित तो वह प्रकृति के अलौकिक सौन्दय के बीच मानव के याचक रूप को देख कर भी होते हैं। पर शीघ्र ही प्रकृति के भयोत्पादक विराट सौंदर्य से अभिभूत भी हो उठते हैं और श्रद्धा तथा विवेक मे सामजस्य स्थापित करने की चेष्टा करते है, "वहा की निस्तब्धता और जनाकीर्णता मे ऐसा कुछ है, जो आदमी के हृदय को सुख देता है और उसे कृतार्थता की अनुभूति होती है। अन्धविश्वासो मे मेरी आस्था नही है और न हजारो-लाखो व्यक्तियो की भाति मुझमे अन्धश्रद्धा ही है, पर अनेक अवसरो पर अनुभव होता है कि जीवन मे श्रद्धा बहुत बडी चीज है और मानव को जितनी शक्ति विवेक से मिलती है, उससे कही अधिक बल कभी कभी श्रद्धा से प्राप्त होता है।"

असहमत होते हुए भी असहमति प्रकट करने को मन नही होता, क्योकि उन दुर्गम प्रदेशो मे अनावृष्टि और हिमपात जब तन-मन को तोड देते हैं, तब यह श्रद्धा ही तो जीवित रहने की प्रेरणा देती है और प्रकृति का रूप-जाल मन को ऊष्मा से भर देता है, "तबीयत बडी गिरी-सी थी। दिन भर की टट्टू की सवारी और चढ़ाई की थकान के कारण देह टूट रही थी, पर बाहर जो देखा, उससे तबीयत खिल उठी चादनी छिटकी हुई थी और चारो ओर बिछी बर्फ चादी-सी चमक रही थी। दूर-पास सब कुछ सफेद नजर आता था। तम्बू के चारो ओर बर्फ की मोटी-सी तह लगी थी। ऊपर से दूध-सी चादनी छिटकी थी और शुभ्राकाश मे गोलाकार चाद अपनी आभा खुले हाथो बिखेर रहा था। सप्तऋषि मुस्करा रहे थे। जीवन का वह अपूर्व अनुभव था ।"

'जय अमरनाथ' में अमरनाथ की यात्रा का वर्णन है, तो 'उत्तरा खण्ड के पथ पर' में बद्री-केदार की यात्रा का। इतिवृत्तात्मकता इसमे पूर्ववत है, परन्तु यहा प्रकृति उन्हें कुछ मथन करने को विवश करती है। उन्हीं के शब्दों में, "कहीं-कही तो रास्ता इतना भयावना है कि पैर डगमगाने लगते हैं, कही-कही बेहद सकरा। यह सब होते हुए भी हजारो श्रद्धालु नर-नारी आगे बढ़ जाते हैं। परिचित दुनिया पीछे छूट जाती है, पर उसका मलाल नही होता। नये लोक से नाता जो जुड जाता है। ऐसा जान पड़ता है, अपने चारो ओर जो कुछ है, उसमे गहरी आत्मीयता है। वही आत्मीयता यात्रियो के दिल को ऊचा उठाती है, एक अभिवंचनीय उमग से भर देती है। मदाकिनी मे दिल का कलुष बह जाता है, एक प्रकार की धन्यता अनुभव होती है।"

बार-बार ये प्रश्न उन्हे परेशान करते हैं। बार-बार प्रकृति का सौंदर्य उन्हे आश्वस्त करता है और कही-कही वह भावुक कवि की तरह पौराणिक कथाओ को अपने आस-पास साकार रूप मे देखते हैं, "सामने महात्मा उपमन्यु तपस्या कर रहे हैं। उधर देखिये, गोत्र-हत्या का पाप दूर करने के लिए पांडव भगवान शकर का दशन करने चले आ रहे है। प्रवासी घी और मक्खन लिये कितनी भक्ति से उनका स्वागत कर रहे हैं। ब्रह्म-हत्या के पाप का प्रायश्चित करने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपने भाई भरत और लक्ष्मण तथा सीता के साथ चले आ रहे हैं। पर वह युवक कौन है, जिसका मुख-मण्डल तेज से दीप्त हो रहा है? ओहो, यह तो आदि गुरु शकराचाय है! वह देखिए, पवतो के उत्तुग शिखरो पर पर्वतराज और प्रकृति-देवी किस प्रकार आनन्द से चहल कदमी कर रहे हैं।"

लेखक ने और भी अनेक रोमाचकारी अनुभवो का वर्णन किया है, लेकिन आज सब कुछ बदल गया है। बद्रीनाथ ठेठ मन्दिर तक बस जाती है। अब कहा वह प्रकृति-दशन, कहा गिरने-उठने के रोमाचकारी अनुभव, कहा नाना प्रान्तो के नानारूप स्त्री पुरुषो से भेट। अब तो ऐसे यात्रा-विवरणो के माध्यम से ही उस युग की याद आयेगी, इसीलिए इनका महत्व और भी बढ जाता है।

विदेश-यात्राओ को लेकर दो पुस्तके मेरे सामने है १ रूस मे छियालीस दिन और २ पडोसी देशो मे।

रूस की यात्रा वे दो बार कर चुके है। इस पुस्तक मे मात्र पहली यात्रा का वर्णन है जो उन्होंने १९५७ मे युवक-समारोह मे भाग लेने के उद्देश्य से की थी। लेखक ने उस युग के रूस का मुह-बोला वणन किया है। शैली वही है हिमालय-यात्राओ जैसी। इतिवृत्तात्मकता के साथ सरसता और मानवीय धडकनों का सहज समन्वय। वह मूलत गाधीवादी हैं, पर रूस की प्रगति को तटस्थ दृष्टि से देखकर उसे सराहना उन्हे आता है। कुछ वणन इतने सजीव है कि उनके साथ-साथ पाठक भी यात्रा करता चलता है। रूसी सरकार की शकित दृष्टि की भी चर्चा उन्होने खुलकर की है, 'हिन्दुस्तानी समाज' की स्थापना करने की अनुमति देने से उसने इसलिए इन्कार कर दिया था कि शुरू मे उसकी गतिविधिया सास्कृतिक रह सकती है, किन्तु मान्यता मिल जाने पर यदि आगे चल कर अन्य प्रवृत्तिया भी चलाई गयी तो कैसे रोका जा सकेगा?"

जानकारी खूब है। सग्रहालय, चच, आर्ट गैलरी, स्मारक, प्रदर्शिनी सभी का विशद और सजीव चित्रण किया है। वाणी की स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, आर्थिक स्थिति, ग्राम्य जीवन, सबका लेखक ने खूब अध्ययन किया है और खुलकर लिखा है, "इसमे कोई सन्देह नही कि रूस का सामाजिक जीवन जितना उन्मुक्त और आर्थिक जीवन जितना सन्तोषप्रद है, राजनैतिक जीवन उतना ही अनिश्चित और बन्धन-युक्त है। सामान्यत वहा के लोग राजनीति पर बात ही नही करते। खेद है, आपने जो बात पूछी है मुझे उसकी जानकारी नही है।"

यह उसका बधा-बधाया उत्तर होता है। ताल्सताय के गाव यास्नाया पोलियाना और उनके मास्को-वाले घर का विस्तृत वर्णन करने के बाद वे दर्द-भरे दिल से लिखते हैं, "काल कितना क्रूर है। वह सब कुछ लील जाता है। इस हरे-भरे घर को उसने कितना सूना कर डाला। आने-जाने वाले यात्री तक भीतर सावधानी से

पैर रखते हैं कि कहीं वहां की समाधि भग न हो जाय। भोजन की मेजें खाने वालों की राह देखती हैं। पियानों अपनी मधुर ध्वनि सुनाने के लिए तडपता है। हसरत से आज भी बयार बहती है, पर उसके स्पर्श से आनन्दित होने वाला हृदय कहा है। पुष्प आज भी खिलते हैं, पर उन्हे दुलारने वाले हाथ और प्यार से उन्हे देखने वाली आखें कहा हैं।

"जब मैं इन विचारो मे डूब रहा था, उद्यान के किसी वृक्ष पर पक्षी चहचहा उठा, मानो कह रहा हो—यह घर आज जितना समृद्ध है, उतना शायद ही कभी रहा हो। उसका कोना-कोना आज उस भावना से परिपूर्ण है जो कभी मरती नही और जो इन्सान को हमेशा जीवित रखती है।"

लोगो से मिलने की उनकी प्रवृत्ति यहां भी वैसी ही प्रबल है। प्रसिद्ध व्यक्तियो मे सुप्रसिद्ध कृतिकार इलिया एहरनबुग और इतिहासकार प्रो द्योकोव से उनकी भेट कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यशपालजी मानवीय सवेदना को कही याद नही देते, इलिया ने गुलाबो की क्यारी मे जाकर जेब से कैंची निकाली और दो फूल बडी सावधानी से काटे। मैंने कहा, "इस अवसर पर मुझे गांधीजी का स्मरण हो आया है। वह भी फूल कैंची से काटते थे। फूलो को हाथ से ऐंठ कर तोडने मे उन्हे क्रूरता दिखाई देती थी।"

इसी तरह प्रो द्योकोव का एक बड़ा ही मनोहारी चित्र उन्होने प्रस्तुत किया है। "प्रो द्योकोव को चिडिया पालने का बडा शौक था। सात पिंजरे थे उनके छोटे-से कमरे मे। मैंने विनोद मे पूछा, "ये बोलती हैं।"

'वह हसकर बोले, "जी हा, खूब बात करती हैं। चर्चाओ मे आपने उनकी बात नही सुनी। वे बराबर अपनी बात कह रही थी।"

विनोद को जारी रखते हुए मैंने कहा, "ये कौन सी भाषा बोलती है ? रूसी ?"

'वह जोर से हस पडे, बोले, "नही, रूसी नही बोलती, उनकी अपनी भाषा है, पर मैं उसे समझ लेता हू।"

इनसे भी महत्त्वपूर्ण है राह चलते व्यक्तियो से मेल-मुलाकात, जो रूस के साधारण जन के भीतर झांकने और उनको पहचानने की कुजी है। ऐसे अनेक चित्र हैं और सभी बहुत मार्मिक हैं। एक अपरिचित नारी के घर जाकर बातो-बातो मे पूछ लिया, "आपके घर मैं कौन-कौन हैं ?"

पास बैठे बालक के कन्धे पर हाथ रखकर उन्होने कहा, "यह मेरा लडका है। दूसरा लडका फौजी ट्रेनिंग मे गया है। वह कभी-कभी आता है।"

"और ?"

"बस !"

इतना कहकर उस महिला ने एक लम्बी सास ली, फिर कुछ ठहर कर बोली, "मेरे पति बडे अच्छे थे। वह भी प्रोफेसर थे। क्रीमिया की लडाई मे मारे गये। उनके जाने का मुझे इतना दु ख नही है, क्योकि जब देश पर मुसीबत आई तो हर आदमी का कत्तव्य था कि देश की रक्षा करे, पर मुझे बडा भारी दु ख अपने आठ बरस के मासूम बालक का है, जो बमबारी मे हमेशा के लिए चला गया। मैं नही जानती, बडे होने पर वह क्या बनता, पर सच कहती हू वह बडा होनहार था।"

उनकी मानसिकता का एक और चित्र देखिये। किसी बालक को सोविनियर के रूप मे इकन्नी देने पर एक महिला ने उसे मेज पर पटक दिया जैसे वह कोई अस्पृश्य अथवा अवाछनीय वस्तु हो। बोली, "इस पर देखते हो, किसकी तस्वीर है ? सम्राट जार्ज की। वह साम्राज्यवाद के द्योतक थे। फिर इन लोगो ने आप पर

कितने दिन हुकूमत की। आपने उसे बर्दाश्त किया, लेकिन स्वतन्त्र होने के बाद आप ऐसी चीजो को कैसे सहन करते हैं, यह हमारी समझ में नही आता।''

इस यात्रा-विवरण का सबसे महत्त्वपूर्ण अध्याय है, 'रूस में मैंने क्या नहीं देखा'। उसमें वह लिखते हैं, ''प्राय सभी परिवारों में से कोई-न-कोई आदमी द्वितीय महायुद्ध मे मारा गया, लेकिन इसका दु ख होते हुए भी वे लोग व्यर्थ के विलाप अथवा दोषारोपण में अपनी शक्ति और समय की बरबादी नही करते, खुलेआम या एकान्त मे अपने नेताओ अथवा शासकों को नही कोसते। अपने भाग्य को भी दोष नहीं देते।'' इससे भी बडी बात यह है कि मैंने यहां किसी को भी अपने देश की शान मे बट्टा लगाते या धोखा देते नहीं देखा। किसी भी व्यक्ति को बिना टिकट सफर करते नही पाया। अपने काम मे ढिलाई करते या काम से जी चुराते नहीं देखा। वे लोग बात न करते हो, सो नही, लेकिन काम के घण्टो का उपयोग वे काम मे ही करते हैं। अपने अज्ञान को वे नही छिपाते, अपने घर की गन्दगी दूसरो के घरो के सामने फेंकते मैंने किसी को नहीं देखा। बाहर के लोगो की वे उपेक्षा नहीं करते। उनका बडा मान करते हैं। किसी भी काम को छोटा या बडा मानकर उसी हिसाब से महत्व देते मैंने उन्हे नही देखा। धक्का-मुक्की के नजारे वहा देखने को नहीं मिलते। हर व्यक्ति अपनी बारी की प्रतीक्षा करता है। शराब का प्रचलन वहा खूब है, पर दारू के नशे में उच्छृ खलता दिखाते हुए मैंने किसी को नही पाया।''

इस प्रकार यशपाल जैन की दृष्टि से हम रूस को देख सकते हैं। बहुत से मुद्दो पर बहस हो सकती है, लेकिन लेखक की नियत पर शक नहीं कर सकते। यथासम्भव निरपेक्ष दृष्टि से उसने मूल्यांकन किया है। यही बात 'पडोसी देशो मे' के सम्बन्ध मे कही जा सकती है। इसमे आठ देशो की यात्रा का वर्णन हुआ है। लेखक ने खुली दृष्टि से इन देशो को देखा, परखा और समझा है। इन यात्राओ मे अफगानिस्तान को छोडकर मैं निरन्तर लेखक के साथ रहा हू और उस सबका साक्षी हू, जो लेखक ने लिखा है। जीवन के सभी पहलुओ को तो लेखक ने पूरे सवेदन के साथ चित्रित किया ही है, हर देश के इतिहास और उसकी सस्कृति को भी समझने की चेष्टा पूरी ईमानदारी से की है। नाना रूप व्यक्ति-चरित्रो के कारण उनके विवरण उबाते नहीं, बल्कि रस-विभोर करते हैं। हमे लगता है कि हम ज्यादा समझदार बन रहे हैं। माडले जाते हुए हम पाते हैं, ''सारे रास्ते, गांवो और शहरो मे, कही-कही निर्जन मे भी, पगोडाओ तथा फुगियो की भरमार दिखाई दी। इससे प्रतीत होता था कि वहा के, क्या शहरी और क्या ग्रामीण, सारे जीवन मे धर्म का प्रमुख स्थान है। किसी-किसी गांव के रेल से सटे पगोडा और उसकी मूर्तियो को देखकर लगता था कि लोग जैसे-तैसे उन्हे खडे करके सन्तोष नही मान लेते। उन्हे सुन्दर और कलापूर्ण बनाने का भी प्रयास करते हैं।''

बर्मा प्रवास मे लेखक बहादुर शाह जफर, लोकमान्य तिलक और सुभाषचन्द्र बोस के स्मारको को नहीं भूलता। वहा के जलोत्सव (हमारी होली की तरह) के उल्लास सयम और पवित्रता पर वह मुग्ध हो उठता है। साधारण जन और विशिष्ट जन सभी से वह समान भाव से भेंट करता है। बर्मा के लोक-जीवन की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए वह इस निश्चय पर पहुचता है, ''यहां के नर-नारी अपने को अधिकाधिक सुखी बनाना चाहते हैं, भौतिक वस्तुओ को सग्रह करके नही, बल्कि छोटी-से-छोटी चीजो मे रस पैदा करके।''

थाइलैंड मे भारतीय-सस्कृति की चर्चा करते हुए प रघुनाथ शर्मा ने कहा था, ''हम लोग भारतीय सस्कृति के बारे मे बातें तो बहुत करते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान से वह तेजी से गायब होती जा रही है। पर इधर के देशो में आप देखेंगे कि हमारी सस्कृति की कितनी मूल्यवान चीजें आज भी सुरक्षित हैं, वैष्णव और शैव देवी देवताओ की एक-से-एक बढ़कर मूर्तिया यहां मिलती हैं। यहां की भाषा मे ८० फीसदी सस्कृत के शब्द हैं। रामायण का तो इतना प्रभाव है कि अपने देश में भी नहीं मिलेगा। वर्तमान राजा का नाम राम अष्टम है।''

थाईलैंड ही क्यो, कम्बोडिया के हिन्दू मंदिर तो विश्व-विख्यात है। वहा की संस्कृति पर भारत और भारत की रामायण का प्रचुर प्रभाव है। बैंकाक के बौद्ध मन्दिर मे जो देवता प्रतिष्ठित हैं, वह भी तो भारत का ही है। भगवान बुद्ध (एमराल्ड बुद्धा) के विशाल मन्दिर के एक झील के परकोटे की दीवार पर पूरी रामायण चित्रित है। इन सारी बातो को पुस्तक पढकर ही जाना जा सकता है। थाईलैण्ड मे भी लेखक वहां के विद्वानो से भेंट करता है तो लोक-जीवन की झाकी प्रस्तुत करना भी नही भूलता, "सामाजिक जीवन मे दो चीजें साफ दिखाई देती हैं—भोग और धर्म। थाई लोग अच्छा खाते है, अच्छा पहनते हैं। वे स्वभावत उत्सवप्रिय होते हैं। वे घरो मे बन्द होकर बैठने के आदी नही होते। साथ ही धम का उनके जीवन मे ऊंचा स्थान है। कुछ समय के लिए थाई लोग भिक्षु अवश्य बनते हैं।"

मानवीय सवेदना विश्व-व्यापी है। इसके उदाहरण थाईलैण्ड मे भी लेखक को प्रचुर मात्रा मे मिल जाते हैं। "हमारे आतिथेय के घर एक स्यामी स्त्री काम करती थी। वह स्त्री सामने आई। बडे प्यार से खाना खिलाया। खीर बनाई थी। वह हमे आग्रह करके खिलाई। खाना खाकर हम चले आये। उस स्त्री से मिलने की एक बार फिर इच्छा हुई, पर भाग-दौड मे समय नही मिला। जिस दिन सवेरे हम बैंकाक से चलने वाले थे, उसकी पिछली रात को मुनीश्वर सिंह आये। उनके हाथ मे एक पैकेट था। उसे हमे देते हुए बोले, 'यह उसी स्यामी औरत ने भेजा है।' उसने खूब घी डाल कर हलुआ बना कर भेजा था। कहा था, 'मुझे हलुआ बनाना नही आता। अच्छा न बना हो तो बुरा न माने।'

"हम लोग स्तब्ध रह गये। उस स्त्री का वात्सल्य से छलछलाता चेहरा आखो के सामने आ गया। मातृत्व की रेखाए और गहरी हो उठी।"

कम्बोडिया मे जहां एक ओर कला के अद्भुत देवालयो का लेखक ने विशद वणन किया है, वही मानवीय सवेदना के चित्र भी उकेरे हैं। कम्बोडिया के हिन्दू मन्दिर, अकोरवाट और अकोरथाम के हिन्दू मन्दिर विश्व-विश्रुत हैं। सेगाँव मे हम सिन्धी परिवार मे बडे आराम से ठहरे थे। यशपालजी ने यहा के बारे मे लिखा है, "नेताजी की स्मृति से जुडी कोई भी चीज हमे उस नगर मे दिखाई नही दी। न यहा के भारतीयो मे नेताजी के प्रति किसी प्रकार का उत्साह दिखाई दिया। थाईलैण्ड मे एक भी भारतीय ऐसा नही मिला, जिसकी आखें नेताजी की चर्चा करते समय चमक न आई हो, पर यहा तो किसी ने उनका नाम तक नही लिया। बात यह है कि यहा का भारतीय समाज कमाई के विचार से यहा आया है और सब अपने अपने धधो मे लगे है। यहा के लोग भी आराम से जीवन-यापन करने वाले प्राणी है। खच के लिए पैसा मिल जाय, यही उनके लिये बहुत है। दुकानो पर ज्यादातर लडकिया काम करती है। उनमे फुर्ती अवश्य है, पर फ्रेंच शासन काल मे उनमे से बहुतो मे पेरिस की-सी नजाकत और विलासिता आ गई है। वे अपनी सजावट और सौंदय के बारे मे बराबर सजग दिखाई देती हैं।"

सिंगापुर मे लेखक को इमीग्रेशन आफिस मे काफी परेशानी होती है, पर उसके सौन्दर्य सर वह मुग्ध है, "सिंगापुर छोटा-सा द्वीप है, पर प्रकृति का वरदान उसे भरपूर मिला है। व्यापार का बडा केन्द्र होने के कारण धनपतियो ने भी उसे सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है। उसकी सडकें, उसके मकान, उसके पार्क, उसके मैदान, सागर के किनारे उसके रास्ते, वहा की हरियाली आदि उस नगर को सैलानियो के लिए बडा मोहक बना देती हैं।"

वहा के घिनौने जीवन की झाकी देना भी लेखक नही भूलता। मलाया मे लेखक भारतीय संस्कृति के प्रचुर प्रभाव को खोज लेता है। रामायण का यहा इतना प्रभाव है कि मुसलमान शासक की प्रथम उपाधि 'श्रीपादुका' है। प्राकृतिक और मानवीय सौंदर्य का केन्द्र पिनाग तो लेखक को मुग्ध कर देता है, "पूरे द्वीप

की परिक्रमा करके और राजधानी के सारे दर्शनीय स्थलों को देख कर हृदय बड़ा प्रफुल्लित हुआ, लेकिन उससे भी अधिक प्रसन्नता वहाँ के मानवीय सौदर्य को देख कर हुई। नर-नारी बड़े ही स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण रहन-सहन के जान पड़े। व्यवहार मे उनकी-सी मिठास और कही मुश्किल से मिलेगी। मुस्कराहट का तो उनके पास अनन्त भण्डार है।"

अफगानिस्तान और नेपाल की यात्राए भी ऐसे ही अनुभवो से मालामाल हैं।

कोई अन्त नही यशपाल जैन के यात्रा-सस्मरणो का। यह तो झाकी मात्र है। यात्राए मनुष्य को बहुत कुछ सिखाती हैं। उसकी दृष्टि को व्यापकता देती है। उसके चिंतन को धार। यशपालजी के यात्रा-साहित्य को पढ कर हम समझ पाते हैं कि मनुष्य सब कही एक है। उसकी शक्ति, उसकी दुर्बलता, सब समान है। वह विराट का एक अश मात्र है। यह अनुभव अपनत्व की भावना से तो भरता ही है, मन की सकीर्णता को भी दूर करता है।

समन्वय साधु साहित्यकार

ब भ बोरकर

□□

यशपालजी के प्रथम परिचय मे ही हम दोनो घनिष्ठ स्नेही बने। हम मिलते हैं बहुत कम और एक-दूसरे को लिखते भी है क्वचित्, फिर भी जब भेट होती है तब प्रतीत होता है कि हमारा स्नेह गगौघ की तरह शुभ्रतर, चौडा और गहरा बन चुका है। मेरा मानना है कि इसका रहस्य यशपालजी के स्वभाव मे ही निहित है। उद्दड जीवनोत्साह, अकृत्रिम निरागसता, 'सत्य शिव सुदर' के प्रति प्रगाढ प्रीति, नर्म विनोद से सुफलित रसीली वाणी और प्रियजनो के हरेक सुख-दु ख मे उनकी सहायता करने की प्रसन्न उदारता इन कई गुणो का जितना मधुर मिलाप उनके स्वभाव मे दृष्टिगोचर होता है, उतना आजकल के जमाने मे बहुत कम देखने को मिलता है।

सुभग साहित्य का आविष्कार, पुरस्कार और प्रसार के कार्य मे वह हमेशा अग्रगामी रहे हैं। सभी साहित्य वृत्तियो मे स्नेह का वायुमडल निर्माण करना और उनमे सजीव समन्वय स्थापित करने मे सहाय्यकर होना यह हमेशा रही है उनकी विशेषता। तत्व का आग्रह जरूर रखते हैं, लेकिन उनको स्वार्थ या अहता का स्पर्श भी नही होने देते हैं। मैं तो उन्हे समन्वय-साधु साहित्यकार मानता हू। इसी वैशिष्ट्य के कारण वह आज तक युवक ही रहे हैं। उनकी सुललित स्मित रेखा ही उनकी भाग्य रेखा है। उसकी ताजगी कण मात्र भी क्षीण न हो और उनकी सुषमा वय वृद्धि के साथ दिन-दिन बढती जाय, यही है इस शुभ समय की मेरी कामना और प्रार्थना।

साहित्य-जगत के सच्चे सेवक

बलदेव उपाध्याय

□□

श्री यशपालजी के सम्पर्क मे आने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है तथा उनकी कतिपय रचनाओ और लेखो को पढने का भी सुयोग मिला है। उनके आधार पर मैं कह सकता हू कि वे भारतीय साहित्य तथा समाज दोनो के निष्ठावान् सेवक हैं। समाज को वे उदात्त गुणो से सम्पन्न तथा सात्त्विक भावो से मडित देखना चाहते हैं और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होने अपने लेखो मे पर्याप्त उद्बोधन की सामग्री हमे प्रदान की है। उन्होने विश्व के नाना देशो मे भ्रमण किया है और उन देशो के आचार और विचार को, साहित्य और समाज को, अतीत और वर्तमान को गहरी पैनी दृष्टि से देखने का पूरा प्रयत्न किया है। यात्रा-विषयक ग्रन्थो मे उन्होने उन-उन देशो मे स्वानुभूत तथ्यो का विवरण बडी विषद सरस-सुबोध भाषा मे देने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। इन ग्रन्थो के अनुशीलन से हिन्दी पाठकों का दृष्टिकोण विशाल तथा व्यापक होता है। वे वहा के इतिहास, राजनीति तथा साहित्य से सम्बद्ध समस्याओ के समझने मे सर्वथा कृतहार्य होते हैं तथा अनेक भ्रान्तियो के निराकरण के निमित्त समर्थ भी बनते हैं।

ऐसे समाज के सच्चे सेवक और सरस्वती के वरद पुत्र को मेरा शुभ अभिवादन स्वीकार हो।

विनयी और कर्मठ

हसराज गुप्त

□□

भाई यशपालजी आयु मे भले ही मेरे से छोटे हो परन्तु उनके साथ रहने के और काय करने के जो अवसर मुझे प्राप्त हुए इसमे मेरा यह विश्वास दृढ हुआ है कि आयु का और व्यक्ति के परिपक्व विचारो अथवा उसके गुणों के विकास का कोई तालमेल नही है। मैंने तो उनसे बहुत कुछ सीखा है।

उन्होने योजना बनाई कि ताशकद मे स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्रीजी की एक प्रतिमा उस ही कक्ष मे स्थापित की जावे, जहा उनकी मृत्यु हुई। मेरे ऊपर भी कृपा कर उन्होने मुझे साथ ले लिया। उस प्रवास मे हिन्दी भाषा के प्रति उनका प्रेम उल्लेखनीय था। सारी यात्रा मे हमने हिन्दी का ही प्रयोग किया। विदेशियो

को भी उनके गुणो से व्यक्तित्व, विनयशील व्यवहार से मुग्ध होते मैंने देखा। और फिर मुझे भी प्रोत्साहन देकर अपने ही अनुसार बोलने और व्यवहार करने की कला का अभ्यास करा दिया।

वास्तव मे भाई यशपालजी का एक बड़ा गुण है कि भले उन्हे स्वय कितना ही कार्य करना पडे, उनके सहयोगियो को पूरा श्रेय मिले, और उनका कार्य करने मे उत्साह की वृद्धि ही होती रहे। यही कारण है, कि उनका एक ऐसा मित्र-मडल बन गया है, जो उन्हे आदर और स्नेह से देखता है। और उनके मार्ग-दर्शन मे कार्य करने से आनन्द प्राप्त करता है। आज हिन्दी के सारे ही समाज-सेवियो का विश्वास है कि यशपालजी अथवा उनके किसी भी साथी ने कोई भी जनहित का अथवा जन-रुचि के परिमार्जन का कोई भी काम हाथ मे ले लिया तो वह निश्चित ही सुन्दर रीति से पूरा होगा, और पूरा मित्र-मडल ही उस कार्य मे जुट जाएगा।

उनकी सदा प्रसन्न मुख मुद्रा मे बड़े-छोटे सब से एक समान मृदु व्यवहार, सबको ही वश मे कर लेता है। उनके सारे जीवन की साधना उनके सद्गुणो से तो प्रकट होती ही है, उनसे थोडी देर भी बात करने पर उनके विस्तृत ज्ञान और अध्ययन का भी नमूना प्राप्त हो जाता है।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे उनकी सेवाओ के सम्बन्ध मे मैं कुछ कहने का साहस ही नही कर सकता परन्तु 'चित्र कला सगम' के माध्यम से देश के सभी हिन्दी लेखको को उत्साहित करने का जो कार्य उन्होने किया है, उससे उनका हिन्दी के प्रति प्रेम तथा हृदय की विशालता दोनो का ही परिचय मिल जाता है। और वैसे तो किसी भी क्षेत्र मे देश का कार्य करने मे कोई जुटा हो, भाई यशपालजी की यही इच्छा रहती है कि किसी तरह से उसे आदर दिया जाए। जनता के सामने उसका नाम लाया जाए, जिससे और भी देश के सेवको को उत्साह मिले। 'चित्र कला सगम ने अपने जीवन मे ऐसे कितने ही कार्यक्रम किये हैं। और इन सबके प्रेरणा-स्रोत श्री यशपालजी रहे है।

आज उनकी वर्षगाठ के अवसर पर भगवान से उन्हे चिरायु करने की प्रार्थना करते हुए यही इच्छा रखता हू कि जीवन के अन्त तक वरदान रूप मे उनका स्नेह हम सबको मिलता रहे।

उनके व्यक्तित्व के विभिन्न रूप

चन्द्रगुप्त विद्यालकार

□□

श्री यशपालजी को मैं लगभग ४० वर्षों से जानता हू। (मैं उन्हे 'यशपाल जैन' कहना पसन्द नहीं करूगा। मेरा ख्याल था कि उन्हे सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री यशपाल से पृथक करने के उद्देश्य ही से 'यशपाल जैन' कहा जाता है। पर वह अपने क्षेत्र मे अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, इससे मैं उन्हे दिल्ली वाले यशपाल कहना अधिक पसन्द करूगा। 'यशपाल जैन' कहना लगभग वैसा ही है, जैसा किसी को 'सूर्य प्रकाश हिन्दू' कहना।) इन ४० वर्षों मे यशपालजी के कितने ही रूप पनपे हैं पत्रकार, लेखक, एक प्रकाशन सस्था के व्यवस्थापक,

समाज-सेवक, कितनी ही संस्थाओं के प्रमुख कार्यकर्त्ता आदि। कुछ संस्थाओ मे मैंने उनके साथ काम भी किया है और इस तरह उन्हें निकट से देखने का अवसर मुझे मिला है।

आज जब मैं यशपालजी के सम्बन्ध मे संस्मरण लिखने की इच्छा से बैठा हू, तो एक भी ऐसी बात याद नही आ रही, जिसे 'घटना' कहा जा सके। पिछले २० वर्षों मे मैं कितनी ही बार उनके कार्यालय मे भी गया हू। कभी किसी सभा-समिति की बैठक मे और कभी-कभार उनसे तथा श्री विष्णु प्रभाकर से मिलने। कनॉट सर्कस के पुराने जमाने के बने हुए छोटे-बडे कमरे मुझे पसन्द नही हैं। सस्ता साहित्य मण्डल का दफ्तर एक ऐसे ही बडे कमरे, उसके पीछे एक छोटा-सा कमरा है, जिसमे ३ छोटी मेजो के पास बैठे श्री यशपालजी विष्णु प्रभाकर और श्री मार्तण्ड उपाध्याय से कितनी ही बार मैं मिला हू। और हर बार मैंने पाया कि यशपालजी पूरी तन्मयता से किसी काम मे व्यस्त हैं। यह काम मडल का भी हो सकता है और यह काम किसी सभा-समिति का भी हो सकता है। यह काम किसी अभ्यागत के कार्य की चिन्ता भी हो सकती है। बहरहाल यशपालजी कभी मुझको निश्चिन्त नही दिखाई देते। मुझ पर यह प्रभाव पडा कि जीवन के सभी कार्यों को बडी गभीरता से लेते हैं, और उसी गम्भीरता से उन्हे निभाते है।

यशपालजी के एक गुण की ओर मेरा ध्यान निरन्तर गया है। वह है, परिस्थितियो तथा अवसर से लाभ उठाना। सार्वजनिक या सामाजिक कार्यों मे भाग लने वाला व्यक्ति इस गुण द्वारा अधिक उपयोगी सिद्ध होता है, यह मेरी धारणा है।

यशपालजी अपने जीवन की दसो दशाब्दिया देखे, यही मेरी कामना है।

समजस व्यक्तित्व

भवानी प्रसाद मिश्र

□□

भाई यशपाल जैन अपने तमाम गुणो के साथ-साथ एक वस्तुनिष्ठ व्यक्ति हाने के नाते यह जानते है कि शरीर का धम धीरे-धीरे एक विशिष्ट परिणति प्राप्त कर लेने का है। उन्हे मालूम है कि वे धीरे धीरे इस परम परिणति की ओर बढ रहे हैं—वे पक चुके है। उनका बाह्य किसी भी रसवान पक्व फल की तरह कोमल और तेजस्वी और प्रियदर्शन है, किन्तु अ तर मे बीज की शक्ति आती जा रही है। कभी-न-कभी हर मृदुल को मजबूत बनना पडता है। उन्हे इस बात की भी अकलाना प्रतीति है कि आज उनका बाह्य जैसा है, आगे चलकर वैसा भी नहीं रहेगा और इसके पीछे का मशा क्या है, सो भी वे जानते हैं, इसलिए न अनावश्यक रूप से वे असार का झरना बने फिरते हैं और न उदासी को ही किसी क्षण अपने ऊपर हावी होने देते हैं। कामो को वे तत्परता से निपटाने हैं और अवकाश को ऐसे भाव से बिताते है जैसे जीवन चार दिन का न हो, अनन्त

हो। ऐसा कोई बरस नही बीतता जब वे सारे काम-काजों की पुकार को अनसुनी करके किसी लंबे अरसे के लिए लगभग निरुद्देश्य पर्यटन पर नही निकल जाते।

उनका यह पर्यटन चूकि लगभग निरुद्देश्य होता है, वह सम्यक उद्देश्यो का सहज साधक बन जाता है। वे इन लबी और कठिन यात्राओ से लौटते है तो मैंने उन्हे थका हुआ, गुम-सुम या विचारमग्न नहीं देखा—प्रसन्न, उच्छल और हर्ष को विकीर्ण करते पाया है। जीवन के प्रति कलाकारों की-सी दृष्टि उन्हें किन-किन परशु-प्रसगों मे से गुजर कर मिली होगी, कौन कह सकता है। शायद वे भी नही! कुछ भी हो, सम्यक जीवन के सूत्र जिनके हाथ लग चुके है, ऐसे अपने इन अग्रज को मैं नमस्कार करता हू।

नेता के वेश में जनता के प्रतीक

विजयेन्द्र स्नातक

□□

भाई यशपाल जैन को मैंने जिस रूप मे आज से पैंतीस वर्ष पूर्व देखा था, उसी रूप मे मैं उन्हे आज भी देख रहा हू। यशपालजी मे परिवतन नही हुआ क्या? जो व्यक्ति पहली जान पहचान के दिन पैंतीस वर्ष का था वह आज पूरे बहत्तर वर्ष का है। इतने वष बीत जाने पर भी कोई परिवर्तन नही हुआ है क्या यशपालजी मे? नही, मेरा ऐसा सोचना सही नही हो सकता, परिवर्तन अवश्य हुआ होगा, वय वृद्धि के साथ ज्ञान और अनुभव की गौरव गरिमा से आज यशपालजी मडित है। देश विदेश का अनुभव उनके पास है। राष्ट्र के राजनीतिक और सास्कृतिक जीवन के साथ उनका गहरा सम्बन्ध रहा है और उसके निर्माण मे योगदान भी। लेकिन उनके शील-स्वभाव की सहजता के कारण मुझे यही लगता है कि जैसे यशपालजी वही हैं, जो पैंतीस वर्ष पहले थे।

मैंने यशपालजी को कभी विक्षुब्ध, बेचैन या असन्तुष्ट नही देखा। एकाध बार हल्के आक्रोश की मुद्रा देखी भी तो उसमे सात्विक भाव अधिक पाया। तामस क्रोध की मुद्रा यशपालजी की नही होती, ऐसा मैं नही कहता, किन्तु सौम्यता के आवरण मे वे तमोगुण को सभवत छिपा जाते हैं। गाधीजी के सिद्धान्तो मे आस्था के कारण भी शायद वे शान्त बने रहना और दृढ़ता से अपनी बात कहने मे विश्वास रखते हैं। दृढ़ता और हठधर्मिता पर्याय नही है। हठधर्मिता मूढ़ाग्रह के समीप होती है और दृढ़ता सकल्प की स्पष्टता का प्रमाण है। मुझे स्मरण है कि एक बार वार्तालाप के प्रसग मे काग्रेस-विघटन पर गभीर चर्चा हो रही थी। यशपालजी कांग्रेस-विघटन से खिन्न थे। गाधी और नेहरू के आदर्शों की कांग्रेस को टूटते देखना अप्रिय लग रहा था, किन्तु सत्ता या व्यवस्था मे कही न होने से वे इस विघटन को बचा नही सकते थे। फलत रोष और विषाद के मिश्रित स्वर मे वे काग्रेस के उन कर्णधारो को सात्विक भाषा मे कोस रहे थे। गाधी जी का नाम बार-बार लेते थे और देश की स्थिति का आकलन करते थे। मैं उनके विश्लेषण को सुन रहा था और मुझे लग

रहा था कि खादी के श्वेत वस्त्रो मे यशपालजी नेता नही, जनता हैं और जनता की वाणी ही उनकी वाणी है। वे प्रतिध्वनि नही, समाज की ध्वनि हैं।

यशपालजी सैलानी तबियत के आदमी है। सैलानी मे सहिष्णुता और तितिक्षा अनिवार्य है। सभी परिस्थितियो मे शान्त-सौम्य बने रहना सैलानी का धर्म बन जाता है। यशपालजी ने बहत्तर सालो मे इन गुणो को सहेजा-सवाँरा है। लिखने-पढ़ने मे उनकी स्वाभाविक रुचि है। पत्रकारिता उनकी आनुषगिक जीविका भी है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप मे वे देखना चाहते हैं, किन्तु उस ध्येय के लिए मन-परिवर्तन की बात करते हैं। कहते हैं कि दक्षिण और पूर्वी भारत के व्यक्ति ही हिन्दी का प्रचार-प्रसार करें, हिन्दी वाले मूक रहकर सहयोग करे। बात सुनने मे अच्छी है, लेकिन व्यावहारिक नही। व्यावहारिकता का अभाव यशपालजी में नही है, किन्तु हिन्दी के प्रश्न पर वे कुछ अव्यवहार्य भी कहते है। लेकिन यशपालजी सीधे-सच्चे व्यक्ति लगते हैं। इसलिए उनकी बात सुननी पडती है।

मैं उनके स्वस्थ, शान्त और सुखी दीर्घायुष्य की कामना करता हू।

मधु के छत्ते

रतनलाल जोशी

□□

यशपालजी बहत्तर बरस के हो गये, मेरा मन यह मानने को तैयार नही है, क्योकि कम से ही नही, हृदय से भी वे जवानी की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा का परिचय देते है। छत्ते मे शहद-ही-शहद भरा है, लेकिन उनके मन की मधुमक्खी नये-नये बगीचे खोजती है और फिर छत्ते से जो मधु-स्रवण होता है उसके आस्वाद के क्या कहने!

यशपालजी सिद्धातो से यति हैं, अभिव्यक्ति मे भी जब वे उपदेश के मोह मे आ जाते है तो उनका यति-धर्म उन्हें ढक लेता है, किंतु जब वे साहित्य के सुमन बटोरने लगते है तो स्वय सौरभित होकर हर कठघरे से बाहर नजर आते हैं और यही उनकी असलियत का भेद खुलता है कि सत के कमडल मे आकाश नही, रसार्णव भरा हुआ है।

यशपालजी आजीवन यात्री रहे है और यात्रा-प्रेम आदमी को स्वभाव से यायावर बना देता है। दुनिया के लिए यह वृत्ति अच्छी नही बतायी जाती। लेकिन यशपालजी तो उस पक्ति मे खड हैं, जहाँ दुनिया के सामने भौतिकता नही मनुष्यता है। यहा पेड के पेट मे बीज नही रहते, बीज के पेट मे पेड रहते हैं।

वैसे, यशपालजी बहुत बडे आदमी नही हैं जो उनकी कमिया भी गुणो मे शुमार हो जाए। आप-हम जैसे आम आदमियो मे ही उनकी गिनती की जानी चाहिए। किंतु जैसे हर आम आदमी एक-जैसा नही होता, वैसे यशपालजी भी अपनी उपलब्धियो और गुणो के कारण भिन्न है, विशिष्ट हैं। और, इनमे सबसे

बड़ी विशेषता है, उनकी समन्वय-प्रवृत्ति। समन्वय 'कल्चर' के क्षेत्र की सिद्धि है और जैसे-जैसे व्यक्ति उसकी सीढ़िया चढ़ने मे सफलता प्राप्त करता जाता है, वैसे-वैसे वह देश, काल और स्थिति के साथ मनुष्य का भी सही मूल्यांकन करने मे सिद्धहस्त होता जाता है। जर्मन कवि-मनीषी गेटे साठ बरस का हो गया तो उसने लिखा कि अब मैं मनुष्य को पहचानना सीख गया हू, अब बाकी उम्र मनुष्य से प्रेम करने मे सार्थक हो जायेगी। मेरी कामना है कि यशपालजी भी सौ वर्ष की उम्र तक पहुचकर गेटे-जैसी ही सार्थकता का अनुभव करें।

कर्मठ और सेवा-व्रती

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

□□

शायद जनवरी १९४१ की बात है। दिल्ली मे प्रथम हिन्दी पत्रकार सम्मेलन हुआ था। मैं उन दिनो मथुरा मे था और वकालत के साथ-साथ पत्रकार-कला के क्षेत्र मे प्रतिष्ठ हो चुका था। एक मासिक 'जागृति' का श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी के साथ सम्पादन कर रहा था और मथुरा से ही यू पी आई समाचार समिति तथा 'लीडर' पत्र के सवाददाता का कार्य भी शुरु कर दिया था। आगरा से उन दिनो 'साधना' नामक मासिक पत्रिका निकल रही थी, जिसके सम्पादक हमारे गुरुवर सत्येन्द्र जी थे, जो बाद में डा सत्येन्द्र हो गये। उनकी इच्छा थी कि 'साधना' का एक 'परिचयाक' निकाला जाय, जिसमे हिन्दी के लेखको का परिचय हो और जब इस सम्मेलन का पता लगा तो उन्होने मुझे यह काम सौंपा कि उसमे दिल्ली जाकर मैं 'साधना' के लिए कुछ पत्रकार-लेखको का परिचय प्राप्त करू। सम्मेलन के अध्यक्ष श्री मूलचन्द अग्रवाल स्कूल मे मेरे चाचा श्री रामसेवक चतुर्वेदी के सहपाठी रहे थे, और उन्होने भी मुझे यह काम सौंप दिया कि मैं दिल्ली जाकर मूलचन्द जी को मथुरा ले आऊ, जहा वह और हम रहते थे।

इस प्रकार हिन्दी पत्रकार सम्मेलन मे मेरा जाना हुआ। यहा पर मैंने जैनेन्द्रजी और भदन्त आनन्द कौसत्यायन के इन्टरव्यू लिय, जो 'परिचयाक' मे छपे और यही पर जब पत्रकार-सघ के प्रतिनिधियो को 'सस्ता साहित्य मण्डल' की ओर से चाय-पान के लिए आमन्त्रित किया गया तो मेरी श्री यशपाल जैन से भेंट हुई। श्री यशपाल जैन का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था और उनकी वाणी मे बडा मिठास था। मेरा जिन हिन्दी लेखको से परिचय हुआ, उनमे से अनेक अपने को बडा स्पष्टवक्ता समझते थे और उनकी वाणी मे लोच कम, कठोरता अधिक थी। यशपालजी की यह विशेषता उनको औरो से अलग कर रही थी और आज भी यशपालजी की वाणी मे मिठास तो है ही, जब कभी भी वे नाराज होते हैं, तो सिवा यह कहने के कि यह बड़ी अजब बात है, और अधिक कठोर शब्द का इस्तेमाल नही करते। लोकसग्रह की कला का यह बडा गुण है, जिसे यशपालजी ने सम्भवत विरासत मे प्राप्त किया, क्योकि उनके अन्य भाइयो मे भी यह गुण पर्याप्त मात्रा मे है, और एक लम्बे अतराल के जीवन सघर्ष के बावजूद यशपालजी इसे कायम रख सके हैं, यह अत्यन्त श्लाघनीय है।

कुछ ऐसा प्रसग हुआ कि पहली मुलाकात के बाद मुलाकातें जल्दी होने लगी। यशपालजी कुण्डेश्वर

(टीकमगढ़) श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के पास गए और 'मधुकर' के सम्पादन मे उनके सहयोगी हो गए। उन्हीं दिनों 'मधुकर' के एक लेख से प्रेरित होकर मैंने एक पत्र लिखा, जिसे 'मधुकर' मे 'बुन्देलखण्ड मे जमना' शीर्षक के नाम से छापा। वैसे श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी से पुराना परिचय था और उनकी प्रेरणा से मैंने अनेक मित्रो की सहायता से मथुरा मे 'ब्रज साहित्य मण्डल' की स्थापना की थी और उनसे पत्र-व्यवहार भी चलता था। परन्तु उस पत्र के बाद श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने कुण्डेश्वर मे बसन्तोत्सव के अवसर पर मुझे बुला लिया। उन चार दिनो मैंने यशपालजी के साहचर्य का और भी लाभ प्राप्त किया। इसके बाद गर्मियो मे कुण्डेश्वर मे १५ दिन का एक स्वाध्याय-मण्डल आयोजित हुआ। उसमे भी मैं सम्मिलित हुआ। उस स्वाध्याय-मण्डल मे श्री जैनेन्द्र कुमार जी, महात्मा भगवानदीनजी, श्री हरगोविन्द गुप्त और श्री कृष्णानन्द गुप्त सम्मिलित हुए थे। तब तक यशपालजी का विवाह हो चुका था और यशपालजी ने इन १५ दिनो मे मेरे साथ बहुत ही मधुर व्यवहार किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि जब दिसम्बर १९४२ मे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुझे टीकमगढ मे ४० रुपये मासिक पर एक साल की नौकरी के लिए आमन्त्रित किया तो मुझे दिल्ली के 'नेशनल काल' की ६० रु मासिक की नौकरी छोडने मे कोई झिझक नही हुई, क्योंकि मैंने यह अनुभव किया कि टीकमगढ मे जो साहित्यिक परिवार था, उसका एक वष का सत्सग दिल्ली की नौकरी से ज्यादा आनन्ददायक होगा।

और वह हुआ भी। कुण्डेश्वर मे जो हमारे चार वष बीते, उस समय मै यशपालजी का साथी ही नही था, निकटतम पडौसी था। हमारा कमरा उनके कमरे से मिला हुआ था। सवेरे हम लोगो के यहा काम होता था और भोजन के बाद मेरे कमरे के सामने लगे अशोक के पेड के चबूतरे पर दोपहर को हम चारो यानी दोनो पति-पत्नी मिलकर ताश खेलते थे। दोपहर बीतने पर जब दादा बनारसीदासजी सोकर उठते तो हम और यशपालजी उनकी बैठक मे चाय पीने और आई हुई डाक देखने के लिए चले जाते, जहा कभी सदेश और कभी पेडो के साथ बनारसीदासजी की मनोरजक वार्ताए और अनेको सस्मरण सुनने को मिलते। सवेरे हम लोग साथ-साथ रक्षित वन मे सैर करते, इसके बाद कुण्डेश्वर के प्रपात मे, जमडार नदी मे स्नान करते और तैरते। सायकाल भी घूमने का क्रम रहता। इस बीच यदि कोई महमान आ जाता, और वे आते ही रहते थे, तो वे हमारे लिए उत्सव रहता था। जगल का वातावरण था, रेलवे स्टेशन से ३२ मील और शहर से चार मील दूर हम रहते थे और ससार से हमारा सम्बन्ध या तो डाक द्वारा होता था या फिर किसी मेहमान द्वारा। टीकमगढ मे कुछ-न-कुछ कायक्रम रहते थे, जहा हम आते-जाते रहते थे। सब साथ जाते, साथ कार्यक्रमो मे शामिल होते। कुण्डेश्वर के तीन-चार परिवारो का वास्तव मे एक बृहद परिवार था। इसके नेता श्री बनारसीदास चतुर्वेदी और मत्री श्री यशपाल जैन थे। यशपालजी के साथ-साथ मैने अहार और पपोरा जैसे प्रसिद्ध और सुन्दर जैन-तीर्थों की यात्रा भी की। तीर्थ तो सुन्दर थे, परन्तु आधुनिक जैन समाज मे उनको प्रतिष्ठा श्री बनारसीदास चतुर्वेदी और श्री यशपाल जैन के द्वारा ही हुई। यशपालजी ने 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' का सम्पादन किया और इसके बाद तो न जाने कितने अभिनदन-ग्रथो का काम किया। कसकर काम करने की उनमे बडी क्षमता है और प्रूफ रीडिंग जैसे नीरस काम को भी वे बडे आनन्द से सजोते हैं।

एक बार ओरछा राज्य मे ही ओरछा राज्य के दीवान कर्नल सज्जन सिंह के साथ यशपालजी और मैं तथा हमारे परिवार पनियाराखेरा की शिकार-यात्रा के लिए गए और रास्ते मे जतारा के उद्यान देखे। पनियाराखेरा एक बहुत ही सुन्दर प्राकृतिक दृश्य है और उसे देखकर ऐसी तृप्ति हुई कि इस बात का कोई मलाल नही रहा कि जिस शेर के शिकार के लिए हम गए थे, उस शेर के कही दर्शन नही हुए। वह यात्रा स्मरणीय बन गई।

हरिद्वार के 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के अधिवेशन में श्री यशपालजी के साथ मुझे जाने का अवसर मिला। इस सम्मेलन के अध्यक्ष श्री माखनलाल चतुर्वेदी थे और यशपालजी के उनके साथ बड़े अच्छे सबध थे। यहा पर ही प्रसिद्ध जनपद प्रस्ताव पारित हुआ और एक समिति की नियुक्ति हुई। इसके बाद जयपुर मे गोस्वामी गणेशदत्त की अध्यक्षता मे होने वाले 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' मे भी यशपालजी के नेतृत्व मे हम सम्मिलित हुए और झांसी मे होने वाले बुदेलखण्ड साहित्य सम्मेलन मे भी।

कहावत है कि जहा चार बर्तन होते हैं, खटकते भी है। हम लोग साथ साथ काम करते थे और उद्देश्य समान होते हुए भी हमारी कार्यशैली भिन्न थी। सभवत इसके लिए हम लोगो के पारिवारिक वातावरण उत्तरदायी रहे होगे। मैं उन दिनो अब से अधिक उग्र था। बाद मे तो मुझे भी काफी हानि-लाभ उठाकर यह समझ मे आ गया कि यशपालजी की रचनात्मक कार्यशैली ही अधिक लाभप्रद होती है, पर तब आतिशजवा था और जो बात गले नही उतरती थी, उसका प्रतिवाद करना मैं नैतिक कर्तव्य समझता था, पर यशपालजी सदैव रचनात्मक गांधीवादी रहे और जैसा मैं लिख चुका हू, कठोर शब्द न वह स्वय बोलते थे और न पसद करते थे। परन्तु इन सब विचारभेदो के बाद भी हम लोगो मे व्यक्तिगत ही नही, पारिवारिक मित्रता थी और वह इतनी दृढ थी कि यद्यपि कुडेश्वर छोडे मुझे ३८ साल हो चुके हैं और आजकल यह भी सभव नही है कि रोज-रोज मिलना हो, परन्तु हम लोगो के सम्बन्धो मे कोई परिवर्तन नही आया है।

मेरे कुण्डेश्वर छोडने के थोडे दिन बाद यशपालजी भी दिल्ली आ गए और फिर बनारसीदास चतुर्वेदी भी १२ वष यहां रहे। उस समय उनके साथ और हिन्दी भवन मे साथ-साथ काम करने का अवसर मिला। यशपालजी 'सस्ता साहित्य मण्डल' मे पुन आ गए थे और मैंने १९५५ तक दैनिक हिन्दुस्तान की सेवा की थी। उस समय 'सस्ता साहित्य मण्डल' मे मातण्डजी, यशपालजी और विष्णुजी के साथ करीब-करीब रोज ही बैठकें होती थी और उन दिनो भी हम लोगो ने मिलजुलकर बहुत से काम किये। यशपालजी की मेहनत से श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी का अभिनन्दन ग्रन्थ 'प्रेरक साधक' तैयार हुआ और उसका समारोह भी बडा शानदार था।

यशपालजी सुरुचि और सफाई मे विश्वास करते हैं और उन्होने अनेक साहित्यिक और सामाजिक कार्यक्रमो को दिशा प्रदान की है। उनके छोटे भाई श्री वीरेन्द्र प्रभाकर द्वारा सचालित 'चित्रकला सगम' राजधानी मे सास्कृतिक चेतना और सुरुचि उत्पन्न करने मे बडा महत्वपूर्ण काय करता रहा है। उस सगठन का नतृत्व यशपालजी के ही हाथो मे रहा। यशपालजी ने उन देशो मे, जहा प्रवासी भारतीय विद्यमान हैं, हिन्दी और भारत के प्रति चेतना जगाने मे महत्वपूण काय किया है और आज भी उनके भारत से बाहर बसे हुए भारतीयो के साथ बडे मित्रतापूर्ण सबध है।

यशपालजी ने न जाने कितने व्यक्तियो का अभिनन्दन किया है या अभिनन्दन ग्रथो का सम्पादन किया है। उनका अभिनन्दन बहुत पहले होना चाहिए था। श्री यशपाल जैन मेरे अग्रज हैं और उनका सदैव अग्रज की तरह मेरे ऊपर आशीर्वाद का हाथ रहा है। मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि यशपालजी पूर्ण स्वस्थ और सामर्थ्यवान रहकर अनवरत अपनी साधना और समाजसेवा के काम मे अग्रसर रहे।

स्वयं में एक संस्था

आशारानी व्होरा

□□

शायद सन् १९५७। महू, मध्यप्रदेश स्थित मेरे निवास पर अचानक एक दिन भाई विष्णु प्रभाकर के साथ एक सज्जन पधारे। विष्णुजी ने ही परिचय दिया, "यशपालजी हैं।" विष्णुजी यशपालजी के साथ मांडवे-यात्रा पर निकले थे कि बीच मे थोडा समय निकालकर मेरे घर आ गए थे। इसके पूर्व विष्णुजी से भी मेरा थोडा ही परिचय हो पाया था—कुछ पाठक के नाते पत्र-व्यवहार से और एक बार दिल्ली आकर उनसे भेंट द्वारा। पर यशपालजी से यह मेरी पहली भेंट थी। महू के सामाजिक कार्य क्षेत्र मे काय करते हुए कभी-कभी मैं बीच में कुछ लिख-छप भी लेती थी, पर लेखिका के रूप मे तब विशेष जानी नही जाती थी। अचानक इन महत्वपूण अतिथियो को अपने घर पाकर मैं अपने मे सिमट-सी आई थी। उसी सकोच भरे वातावरण मे जैसा-तैसा थोडा आतिथ्य, थोडी बातचीत, फिर वे अपनी यात्रा के पडाव से आगे निकल गए थे और मैं सोचती रह गई थी, "यह यशपालजी कौन से है ? झूठा-सच वाले या 'सस्ता साहित्य मडल' वाले ?"

१९५९ मे मेरे दिल्ली आ जाने के बाद तो भाई यशपाल जैन अक्सर सम्पर्क मे आते रहे। उन दिनो विष्णु प्रभाकरजी से भी कभी-कभार 'सस्ता साहित्य मडल' मे ही मिलना होता था, क्योकि काम के लिए आते-जाते उनके घर अजमेरी गेट के बजाय कनाट सर्कस स्थित कार्यालय ही मुझे अधिक अनुकूल पडता था। इस तरह भाई विष्णुजी के माध्यम से कब यशपालजी भी मेरे बडे भाई जैसे हो गए, यह पता ही नही चला। निरन्तर सम्पर्क न रहने पर भी अक्सर सस्थाओ मे, गोष्ठियो मे भेंट हो जाती, एक-दो बार घर भी आए—वही आत्मीयता, वही बडे भाई का सा स्नेहपूण व्यवहार। यही नही, अक्सर देखा, हर किसी से मिलते समय वह उन्हे बरसो के परिचित का-सा व्यवहार देते हैं। सीधे, सहज, सामने वाले व्यक्ति से उसी के धरातल पर खडे होकर मिलते हुए इतने वर्षों से 'सस्ता साहित्य मडल' जैसी सस्था को सफलता से चलाते वह स्वय मे एक सस्था बन चुके हैं, तो इसके पीछे भी शायद यही राज है—उनकी मिलनसारिता और लगभग हर सभा, गोष्ठी मे उनकी उपस्थिति।

सस्ता साहित्य मडल के प्रारम्भ और इस सस्था के साथ उनके जुडने के बारे मे पूछने पर यशपालजी बताते है, "मडल की स्थापना १९२५ मे गाधीजी के आशीर्वाद और श्री जमनालाल बजाज की प्रेरणा और प्रयत्न से अजमेर मे हुई थी। 'तिलक स्वराज्य फड' से जमनालालजी ने २५ हजार रुपए दान-स्वरूप दिलवाए थे। बाद मे श्री घनश्याम दास बिडला आदि दाताओ से कुछ राशिया और मिली। कुल मिलाकर ८० हजार का कोष स्थापित हो गया। इस प्रारभिक राशि को छोडकर, फिर 'मडल' ने जनता से या किसी सरकार से कोई आर्थिक सहायता नही ली। उद्देश्य था जनसाधारण के लिए सस्ते-से-सस्ते मूल्य मे हिन्दी मे उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण और प्रकाशन। इस प्रकाशन काय मे मुनाफे की भावना को कोई स्थान न तब था, न अब है। इसे लोकहितार्थ सस्था के रूप मे ही पजीकृत कराया गया था और अब तक सस्था के इस स्वरूप को बनाए रखने का भरसक प्रयत्न किया गया है।

'मडल' द्वारा अब तक सभी प्रमुख राष्ट्रीय नेताओ की रचनाए, जीवनिया, सस्मरण छापे जा चुके हैं। अन्य साहित्य भी वही छापा जाता है, जो जीवन-निर्माण के लिए प्रेरणा बन सके। मडल ने अपना पहला

प्रकाशन १६२५ मे गांधीजी की पुस्तक 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' से आरम्भ किया। गांधीजी की और नेहरूजी की लगभग सभी प्रसिद्ध पुस्तकें यहीं से प्रकाशित हुईं। श्री राजगोपालाचार्य, आचार्य विनोबा भावे, काका साहेब कालेलकर, श्री घनश्यामदास बिडला, हरिभाऊ उपाध्याय, वियोगी हरि, हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा अन्य प्रसिद्ध लेखको, नेताओ और विचारको की पुस्तकें प्रकाशित करने के साथ, अनुवाद के माध्यम से पश्चिम विद्वानो, विचारको को हिन्दी मे प्रस्तुत करने का गौरव भी 'मडल' को प्राप्त है। १६३४ मे मडल का कार्यालय दिल्ली आया और १६३७ से आज तक मैं इसके साथ जुड़ा हू।'

"उस समय आपकी उम्र तो अधिक नही रही होगी, क्या आप लेखक या सम्पादक के रूप मे जाने जा चुके थे ? इस सस्था के साथ कैसे जुडे ?" मेरी इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए उन्होने कहा, "मेरा जन्म सितम्बर, १६१२ को उत्तर प्रदेश मे अलीगढ़ जिले के अतर्गत विजयगढ़ कस्बे में हुआ। साहित्यिक परिवेश मुझे अपने घर से ही मिला। पिता श्री श्यामलाल जैन उर्दू-फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। दादा भी इन्हीं भाषाओ मे काव्य मे रुचि रखते थे। मा लक्ष्मीदेवी से मुझे धार्मिक, नैतिक सस्कार मिले, कहानिया लिखने की प्रेरणा भी। छात्र जीवन से ही मैं लिखने लगा था। १६३४ मे स्नातक बना। १६३६ मे कानून की परीक्षा पास की। तब तक लेखक के रूप मे स्थापित हो चुका था।

"१६३८-३६ मे मैंने दिल्ली मे 'हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना की। श्री मोहनसिंह सेंगर, श्री जैनेन्द्र कुमार, नगेन्द्र जैसे लोग विद्यापीठ से जुडे थे। एक-डेढ वर्ष तक विद्यापीठ का सचालन करने के दौरान १६४० मे एक विद्यापीठ समारोह मे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी पधारे और मेरे स्वभाव तथा कार्य से प्रभावित होकर मुझे एक महीने के लिए कुडेश्वर (टीकमगढ) आने का निमत्रण दे गए। बहुत आग्रह हुआ तो मैं गया और कुडेश्वर के प्राकृतिक सौदय मे बधा ६ वर्ष तक वही जम गया। १६४६ मे दिल्ली लौटा और फिर मडल से जुडा। तब से आज तक कभी मडल से अलग नही हुआ। इस बीच की अवधि मे भी १६३८ मे मैंने दिल्ली की 'जीवन सुधा' पत्रिका का भी सपादन किया। १६३८ मे ही मेरा पहला कहानी-सग्रह 'नव प्रसून' आया, जो मैट्रिक के पाठ्य-क्रम मे निर्धारित रहा। मिलाप, प्रभात, दैनिक भारत, माया, चित्रपट, सचित्र दरबार आदि पत्रिकाओ मे छपता रहता था। १६४० मे 'मडल' से मासिक पत्रिका 'जीवन साहित्य' आरभ कर दी गई थी। समाज का अहिंसा के आधार पर नवनिर्माण करना इस पत्रिका का उद्देश्य था और इसी उद्देश्य को लेकर पत्रिका आज तक चल रही है। श्री हरिभाऊ उपाध्याय इसके सम्पादक थे बाद मे हिन्दी के विख्यात कवि स्व सुधीन्द्र जुडे, सन् १६४६ मे कुडेश्वर से दिल्ली आने पर और सुधीन्द्र के सरकारी नौकरी मे चले जाने पर मैं सम्बद्ध हुआ। पत्रिका के सम्पादन का सारा भार मुझ पर ही रहा। आज तक है। 'मण्डल' की सचालक समिति मे मैं अनेक वर्ष से हू, और अब १६७५ से मैं उसका मत्री हू। बहुत उतार-चढाव देखे हैं।

"आज जबकि कागज, छपाई आदि के मूल्यो मे भारी वृद्धि हो गई है, मडल की पुस्तको का मूल्य कम रख पाने, कमीशन दरो आदि को देखते अन्य प्रकाशको के साथ बिक्री प्रतियोगिता मे कैसे टिक पाते हैं ? क्या बडे लोगो और राष्ट्रीय नेताओ के प्रभाव से 'मडल' का कार्य आसान हो जाता है या अन्य कोई कारण भी है, इस सफलता के पीछे ? वैचारिक और आर्थिक दोनो दृष्टियो से आप 'मडल' के उद्देश्यो मे कहा तक सफल हैं ?" मैंने जिज्ञासा की।

यशपालजी ने कहा, "मैं तो क्या, 'मडल' अपने उद्देश्यो मे बहुत हद तक सफल है। इसके कई कारण हैं। पर मुख्य बात यह है कि 'मडल' ने कभी व्यावसायिक दृष्टि नही अपनाई। हम व्यवस्था पर बहुत खर्च-भार नही डालते। हमारे अधिकाश कार्यकर्ता पुराने हैं और वे वैतनिक कर्मचारी की भावना से नही, सस्था के प्रति प्रतिबद्ध होकर मिशनरी भावना से काम करते है। यदि मैं प्रकाशन सस्थान से अधिक सुविधाए, अधिक

पैसा लेने लगूं तो नीचे की भी अधिक वेतन-सुविधाओं की मांग को कैसे रोका जा सकता है ? यह व्यावसायिक प्रकाशन नही, प्रकाशन सस्था है और सस्था की भावना से ही यहा काम होता है। विख्यात उद्योगपति श्री घनश्यामदास बिडला इसके आरम्भ से ही अध्यक्ष रहे, फिर श्री भागीरथ कनोडिया और अब श्री लक्ष्मीनिवास बिडला अध्यक्ष हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति डा राजेन्द्र बाबू 'मडल' के सरक्षक रहे और नेहरूजी, बिनोबाजी, काका साहेब कालेलकर, राजाजी, जैसे महानुभावो का साथ-सहयोग और गाधीजी का निर्देशन मडल को मिलता रहा। यह ठीक है पर यह भी सच है कि मडल ने न तो शासन से, न इन लोगो के माध्यम से किन्ही सस्थाओ से अनुदान लिया। पुस्तक-प्रेमी किसी विशेष पुस्तक के लिए कभी-कभी कागज की व्यवस्था कर देते रहे है। इसके अलावा, हमने एक हजार की धरोहर-राशि की एक योजना भी सत्साहित्य के प्रसार की भावना से चलाई थी। पाच वर्ष के लिए यह राशि रखकर सदस्यो को 'मडल' के प्रकाशनो का पूरा सेट भेंट मे दे दिया जाता था और उस अवधि मे प्रकाशित सभी नई पुस्तकें भी भेजी जाती थी। आप सुनकर हैरान होगी कि धरोहर रखने वाले ऐसे ४५० पुस्तक प्रेमियो मे से बाद मे काफी लोगो ने अपनी धरोहर राशि वापस ही नही ली। इस तरह मडल के प्रकाशनो का कम मूल्य रखना सभव हो पाया। यह बात भी आपको बता दू कि हमारी इस प्रकाशन सस्था मे आज तक रायल्टी को लेकर किसी लेखक के साथ किसी तरह का झगडा नही हुआ, इसलिए कि सस्था के आदर्श ऊपरी नही, ऊपर से नीचे, कार्य से लेकर लेखको और कर्मचारियो से व्यवहार तक फैले हैं।

"जहां तक प्रकाशनो की बिक्री और बडी पाठक-सख्या का प्रश्न है, वहा भी मडल अपने उद्देश्य मे असफल नही है। सस्ते बाजारू साहित्य की दिनोदिन बढती माग के बावजूद, एक सस्कारी पाठक-वर्ग आज भी है, जो हल्के साहित्य से सतुष्ट नही, सत् साहित्य पढ़ना चाहता है और अपने बच्चो को प्रेरक साहित्य देना चाहता है। सस्ते मूल्य की दृष्टि से भी और नैतिक, आध्यात्मिक (साम्प्रदायिक नही) दृष्टि से भी, मडल के प्रकाशन घरो और शिक्षा-सस्थाओ मे खरीदे जाते है। आज बढ़-चढ कर कमीशन देने की होड मे अन्य प्रकाशक भले ही अपनी महगी पुस्तके खपा ले, कही-कही कम कमीशन देने के कारण मडल की खरीद को इन्कार भी कर दिया जाए, फिर भी मडल की पुस्तकें अपनी गुणवत्ता के कारण खरीदी ही जाती हैं। पैसे की कमी से हम चाहकर भी अधिक पुस्तका का प्रकाशन नही कर पाते, न बडे परिमाण मे पुस्तको के सस्करण ही कर पाते हैं, लेकिन हमे यह सतोष तो है कि हमारी पुस्तकें न तो पाठक की जेब पर डाका डालती है, न उसे गुमराह करती है। वे जितना मूल्य पाठक से लेती हैं, प्रेरणा के रूप मे उससे अधिक उसे देती है। यदि पाठको के मन मे देश प्रेम और स्वाभिमान की भावना जगाने और उन्हे मानवीय मूल्यो की आर उन्मुख करने मे कुछ भी सफल होती हैं तो हमारा प्राप्य हमे मिल जाता है।

"आपको गाधीवादी चिंतक लेखक माना जाता है। आजादी के बाद समाज और साहित्य को गाधीवादियो और बुद्धजीवियो की देन पर आप कुछ कहेगे ?"

यह प्रश्न मैंने कुछ झिझकते हुए उनके सामने रखा था, पर यशपालजी का बेझिझक उत्तर मिला, "स्वराज्य मिलने के बाद गाधीवादी और बुद्धिजीवियो ने देश को जितना धोखा दिया है, उतना शायद अन्य किसी वर्ग ने नही। उससे अधिक क्या कहू, आप जानती ही है।"

मैंने फिर कुरेदा, "लेकिन आप स्वय भी तो गाधीवादी है।" उसी सहज भाव से उत्तर मिला, मैं तो जहां से चला था, आज भी वही हू। 'मडल' के माध्यम से और मेरे लेखन के माध्यम से भी सभी जानते हैं मुझे। फिर भी आज के माहौल मे कठिनाई नही लगती, ऐसा कहना गलत होगा। गाधीवादी कहलाता हू, इसलिए यह कठिनाई बाहर कम है, आतरिक अधिक। सघर्ष काल, साधना काल पीछे छूट गया है। आज तो भोग-काल है। लेकिन एक समय बाद इससे भी वितृष्णा होगी। तब बदलाव भी आयेगा। पर अंग्रेजियत के रहते

नहीं, मूल्यो का बदलाव हिन्दी के माध्यम से ही आयेगा, क्योंकि वही जन-जन की वाणी है। नीतियां-रीतिया बदले तो दिशा बदल सकती हैं, बात कुछ हाल ही के 'तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन' के दिनो पर आ गई थी। इस सदर्भ मे उनकी यह प्रतिक्रिया बहुत सार्थक लगी।

देश के लगभग सभी वरिष्ठ नेताओ, साहित्यकारो और हिन्दी सेवियो के सम्पर्क मे रहने और देश-विदेश की अनेक यात्राए करने वाले श्री यशपाल जैन अनेक सस्थाओ से भी जुड़े हैं। इस नाते उनके सम्पर्क-सूत्र व्यापक हैं। इसका भी लाभ मडल को मिलता होगा। उनका जीवन अध्ययन बहुत गहरा है। चिरयात्री के रूप मे उनके पास पर्यटन-अनुभव भी बहुत हैं, जिन्हे समय-समय पर वह धारावाहिक संस्मरण-मालाओ द्वारा पाठको के सम्मुख लाते रहे हैं। उनकी यात्रा-पुस्तक 'रूस मे छियालिस दिन' पर उन्हें सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार मिल चुका है यही पुरस्कार उन्हे 'सेतु-निर्माण' नामक उनकी सस्मरण पुस्तक पर पुन मिला। इसके अलावा उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इन्हे 'साहित्य वारिधि' की ओर नई दिल्ली जैन समाज ने 'साहित्यरत्न' की उपाधि देकर सम्मानित किया। मेरठ की 'वीर निर्वाण भारती' की ओर से 'वीर निर्वाण भारती' पुरस्कार भी उन्हें मिला। लेकिन लगता है, उनके कार्य का मूल्याकन अभी ठीक से हो नही पाया है। शायद इसीलिए उनके सत्तर वष पूरे करने के बाद उन्हे अभिनदन ग्रथ भेंट कर इस भूल को सुधारा जा रहा है, जबकि यह काय उनकी षष्ठिपूर्ति के अवसर पर ही किया जाना था। वस्तुत ग्रथ की बात उस समय उठी थी, पर यशपालजी ने उसे स्वीकार नही किया। बडे सुन्दर रूप मे एक विशाल हस्तलिखित ग्रथ तैयार हुआ, जिसे समारोह पूर्वक एक विराट सभा मे उन्हे श्री जगजीवन राम द्वारा समर्पित किया गया। अब भी यह सारा काय यशपालजी की निगाह से बचा कर किया जा रहा है।

यशपालजी ने अपने आप को अपनी प्रकाशन-सस्था मे खपाने के साथ अन्य सस्थाओ और कार्य कलापो मे भी इतना सलग्न कर लिया कि आश्चर्य होता है कि वह लेखन-कार्य कब और कैसे करते हैं। 'जीवन-साहित्य' की महत्वपूर्ण सपादकीय रचनाओ से लेकर कथा-साहित्य, निबन्ध, सस्मरण, शब्दचित्र, यात्रा वर्णन, जीवनी, साहित्य, अनुवाद, भूमिका-लेखन आदि रूपो मे उन्होने बहुत कुछ लिखा है। उनका यात्रा-साहित्य तो ऐतिहासिक महत्व का है। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है कि राहुल साकृत्यायन तथा डॉ रघुवीर के बाद यशपालजी ही तीसरे हिन्दी लेखक है, जिन्होने देश-विदेश की इतनी यात्राए की हैं। उनकी लगभग तीन दर्जन मौलिक पुस्तकें हैं, जिनमे से कुछ विश्वविद्यालय के पाठ्य-क्रम मे हैं। अनुवादित तथा सम्पादित पुस्तकें तो सैकडो हैं।

अपने लेखन मे मानवीय मूल्यो की स्थापना के लिए वह निरतर सचेष्ट रहे हैं और 'मडल' के माध्यम से भी जीवन-निर्माण हेतु प्रेरक साहित्य को सीचते रहे हैं। इस नाते भारतीय समाज और साहित्य को उनकी देन कम नही है। पर एक भुक्त भोगी के नाते कह सकती हू कि मिशनरी भावना से उद्देश्यपूर्ण लेखन के समर्पित लेखको की शायद नियति है कि वे लेखक समुदाय (पाठक समुदाय नही) की उपेक्षा के शिकार हो। फिर भी मेरी मान्यता है कि वर्तमान सक्रांति काल के बाद समाज को दिशा देने वाले प्रेरक साहित्य की फिर से कद्र होगी और कद्रदान ऐसे लेखको के उद्देश्यपूर्ण लेखन पर शोध भी करेंगे।

सौम्य कर्मयोगी

(डा) ओदोलेन स्मेकल

□□

जहा तक मुझे स्मरण है, भारत के महान अभियता मोक्षगुदम विश्वेश्वरयैया, जिन्होने मैसूर मे अनेको दशक पहले विशाल कृष्णराज सागर बाध बनवाया, कहा करते थे, "यदि व्यक्ति अच्छे और महान नही होगे तो देश भी अच्छा और महान नही होगा।" यही बात मैं हिन्दी के सन्दर्भ मे अवश्य कहना चाहूगा कि यदि हिन्दी जगत मे व्यक्ति अच्छे और महान नही होंगे तो हिन्दी कभी भारत की वास्तविक राष्ट्रभाषा नही बनेगी।

यह कहते हुए मुझे अत्यंत हर्ष का अनुभव होता है कि श्री यशपाल जैन हिन्दी के उन सच्चे कर्मयोगियो मे से एक हैं जिन्होंने हिन्दी की अमूल्य सेवा न केवल अपनी जादू भरी लेखनी से की, अपितु अपने आदर्श चरित्रबल द्वारा भी। भाई यशपालजी के मैने कई बार दर्शन किये—उनके कार्यालय मे, निवास-गृह मे, जहा उनकी धर्मपत्नी ने मुझको सदा सप्रेम खिलाया, सार्वजनिक बैठको मे तथा विभिन्न कला प्रदर्शनियो मे। यद्यपि दिल्ली को मैं भली भाति जानता हू, फिर भी आमन्त्रित होकर भाई जैन जी जैसे मित्र के साथ कोई नाटक देखने जाना इसके बाद मुझे होटल तक रात मे पहुचाने का कष्ट उठाना, यह अतिप्रिय अनुभव है। किसी विदेशी हिन्दी सेवी के प्रति सद्भावना दर्शाना स्वय हिन्दी भाषा के प्रति सच्चे और निष्कपट सबध दर्शाने के बराबर है।

आजकल भारत मे बहुत ऐसे लोग हैं, जो हिन्दी की रोटी खाते हैं, जिनके लिए हिन्दी कर्मक्षेत्र बन गई है। वे भूल जाते हैं कि हिन्दी के प्रति अपना वास्तविक सबध उनको कर्म द्वारा ही व्यक्त करना है। कर्म द्वारा ही वे दिखा देते है कि उनकी हिन्दी के प्रति पहुच क्या है, कितनी सच्ची है। कर्म द्वारा यानी दूसरे देशवासियो के प्रति सेवा द्वारा, इतर हिन्दी-भाषियो के साथ शिष्ट, सौम्य व्यवहार द्वारा वे हिन्दी के प्रति अपना वास्तविक प्रेम, प्रेम की गहराई और शक्ति दर्शा सकते हैं। शब्दो-नारो द्वारा नही, कर्म और कार्यकुशलता द्वारा वे सार्वजनिक जीवन मे हिन्दी को या तो अधिक प्रिय, लोकप्रिय, सर्वप्रिय बना सकते है या इसके विपरीत अप्रिय, अलोकप्रिय, अभागी बना सकते हैं। खेद की बात है कि हिन्दी की रोटी खाने वाले अनेक व्यक्ति इस देश मे अभी तक हैं, जिनमे आत्मसुधार की शक्ति नही, बल्कि जो अपने अभद्र व्यवहार से राजभाषा की छवि लगातार धूमिल कर देते हैं।

सौभाग्यवश यशपालजी मेरे हिन्दी के अच्छे-से-अच्छे मित्रो मे से एक हैं जो बडे भद्र, शात तथा गभीर हैं, जो सुचारु रूप से 'सस्ता साहित्य मडल' को हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य के लिए चलाते आ रहे है। जब कभी उनसे मिलता हू, उनके व्यक्तित्व पर सदा मुग्ध रह जाता हू। उनसे मिलने पर मुझ में हिन्दी मे अधिक, और अधिक, काम करने का प्रोत्साहन जागृत हो जाता है। मिलने पर उनसे फिर मिलने की मन मे गुप्त कामना होती है।

काश इस प्रकार के सौम्य, प्रतिभावान तथा उदार देशभाषा भक्त व्यक्ति आजकल के हिन्दी जगत को घी-दूध के नद प्रवाह जैसे आप्लावित कर देते!

जो चाहा वह सब हो गया

(डा) दागमार मारकोवा

□□

श्री यशपाल जैन से मेरा सम्पर्क स्मेकल भाई (डॉ ओदोलेन स्मेकल) ने स्थापित करवाया। सन् १६७८ की बात है। तब स्मेकल भाई ने भारत-यात्रा से लौटकर बताया कि श्री यशपाल जैन 'सस्ता साहित्य मडल' से किसी चेक लघु उपन्यास का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की बात सोचते हैं। क्या तुम यह काम अपने ऊपर लेना पसन्द नही करोगी ? मेरी पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि अरे, मुझे इतनी हिन्दी कहा आती है! लेकिन कुछ सोच-विचार के बाद मैंने हामी भर दी। सकोच इस बात का था कि यह काम मेरे बस का होगा या नही। लेकिन कुछ ही समय पहले मैंने एक चेक लेखिका हेलेना होदायोवा का लघु उपन्यास पढ़ा था, जिसका मुझ पर गहरा प्रभाव पडा था। मा-बच्ची की दु खात कहानी थी। ऐसी एक दु खभरी घटना दुनिया मे कही भी घट सकती है। मैंने यशपाल भाई को पहला पत्र लिखा। कुछ देर बाद उनका मैत्रीपूर्ण उत्तर पाकर मैंने अनुवाद का काम शुरू किया। काम बहुत धीरे-धीरे चल रहा था, क्योंकि जितनी व्यस्त आजकल रहती हू, उतनी तब भी रहती थी लेकिन साथ-साथ यशपाल भाई से पत्र व्यवहार चल रहा था, और वह कोई साढे चार वष तक। बिना एक बार भी व्यक्तिगत रूप से मिले बहुत से पत्रो का विनिमय हुआ। जान-पहचान बढ़ती गयी और मुझे प्रोत्साहन मिलता रहा। हमारे पत्र-व्यवहार के चौथे वष मे 'अतहीन अत' नामक अनुवाद प्रकाशित हुआ।

इसी वर्ष मे तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन दिल्ली मे होने वाला था। सम्मेलन शुरू होने से दो-तीन सप्ताह पहले तक मेरा भाग लेना अनिश्चित-सा रहा और जब आखिर यह समस्या हल हुई तब दिल्ली पहुचने का समय अनिश्चित था। प्राहा से रवाना होने से ठीक एक दिन पहले यशपालजी की पत्नी आदशकुमारी बहन का स्नेहभरा पत्र प्राप्त हुआ, जिसमे लिखा था कि जब भी आओ हमारे घर मे स्वागत है। मिलने का दिन करीब आ रहा था। लेकिन हुआ यह कि जिस सुबह को सम्मेलन का उद्घाटन होने वाला था, उसी सुबह दिल्ली पहुच पायी। सम्मेलन के प्रथम दिन से ही मैं यशपाल भाई की तलाश करने लगी और उ होने मेरी तलाश करना शुरू किया। इतनी भीड मे तलाश ! मुझे ऐसा लगा कि भाग्य का खेल है, जो नही चाहता कि दो पुराने पत्र-मित्र मिलें। आखिर सम्मेलन के दूसरे दिन के बाद रात को होटल मे उनका फोन आया। हा, यहा एक बात कहनी चाहिए सम्मेलन के दूसरे दिन के दौरान मुलाकात अवश्य हो जाती यदि मैं हॉल से न टलती। अपनी वापसी का प्रबध कराने निकली और बाहर सडके घूमते-घूमते मेरी प्रिय दिल्ली की चहल-पहल ने मुझे अपनी ओर आकर्षित करके वापस जाने नही दिया। दोष मेरा था या उस रग-बिरगे जीवन का, जो दिल्ली की सडको पर ही देखने को मिलता है ? जो हो, रात को यशपाल भाई ने बताया कि मैं कल भी वहा हूगा, तुम्हारी तलाश करूगा, तुम भी जरा इधर-उधर देखना। मैं धोती-कुर्ता पहने हूगा, क्योंकि मैं कुछ और पहनता ही नहीं हू।

खैर, अगले दिन एक दूसरे को बहुत ढूढ़ने पर मुलाकात हो गयी। सहायता फिर से स्मेकल भाई ने की। आदर्शकुमारी बहन भी थी। दोनो जिस स्नेह और उदारता से मुझसे मिले, वह मुझे नही भूलती। फिर अगले दिन के लिए 'सस्ता साहित्य मडल' मे मेरा आना तय कर लिया गया। हा, जो पता मैंने बीसो बार लिफाफे पर लिखा था, वह मिलने मे अब कोई विशेष कठिनाई नही हुई। फिर मुझे घर बुलाया। वह शाम

भी नही भूलती । एक तो उन लोगो का स्नेहभरा आतिथ्य, दूसरे, दरियागज मे उनका घर। दरियागज का इलाका मुझे वैसे भी सदा से बहुत पसन्द है और फिर वह अच्छा पुराना घर ! वह कितना पुराना होगा, क्या-क्या देखा होगा उसने ! तीसरे, पुस्तकें। मेरा अपना प्राहावाला मकान भी पुस्तको से भरा हुआ है, लेकिन जितनी पुस्तकें यशपाल भाई के कमरे मे इकट्ठी हैं, उतनी मैंने किसी और के मकान में शायद ही देखी हो ! पुस्तको द्वारा या पुस्तको की सहायता से कितनी आसानी से मित्रता हो जाती है ! शायद हम सब लोग जो पुस्तको के कीडे हैं, किसी अदृश्य डोरे से जुडे हुए हैं या किसी अनजान रूप से सबधी हैं। चौथे, आखिर उन लोगो के रहने-सहने का ढग। मुझे ऐसा लगा कि उसमे मुझे सच्ची आधुनिक भारतीयता मिली या भारतीय आधुनिकता, जो दिल चाहे कहिये, या ऐसा समझे कि भारतीय परपराओ मे से जो आधुनिक जीवन के साथ मेल खाती हैं, वही उनके घर मे जीवित हैं।

मेरी यह कहानी बहुत मामूली है, लेकिन मुझे प्रतीतात्मक-सी लगती है। जब मैंने अनुवाद का काम शुरू किया था तब कभी-कभी ऐसा लगता था कि उसे पूरा नही कर पाऊगी। उसी प्रकार से कभी-कभी लगता था कि श्री यशपाल जैन कोई अवास्तविक काल्पनिक व्यक्ति हैं, जिनसे पत्र व्यवहार तो हो सकता है, मुलाकात नही हो सकती। आरभ से अत तक रुकावटें-ही-रुकावटें, छोटी-मोटी ही सही। ऐसा लगता था कि सब अपनी पहुच के बाहर है। फिर भी यह धारणा वहम ही निकली और जो चाहा, वह सब हो गया। क्या जीवन-लीला मे बार-बार ऐसा नही होता ? बस, आशा नही हारनी चाहिए।

उनका निश्छल प्रेम

(डा) ओम प्रकाश

□□

मैं श्री यशपाल जैन से गत तीस-पैंतीस वर्षों से परिचित हू। पहला सम्पर्क तो 'जीवन साहित्य' के पाठक और सम्पादक के सम्बन्ध का ही रहा। उनके दर्शन होने के पूर्व ही मैं उनका भक्त बन चुका था। उनके सुलझे हुए, स्पष्ट तथा ठोस विचारो तथा गाधीवादी नीति का मैं सदैव से कायल रहा हू। इसके पश्चात एक बार भारत जाना हुआ तो बन्धुवर श्री विष्णु प्रभाकरजी द्वारा उनके व्यक्तिगत सम्पक मे आया। शनै-शनै नही, बडी ही तीव्रता से यह सम्पर्क घनिष्टता मे बढ़ गया। अप्रैल सन् १९६० मे वे तथा श्री विष्णु प्रभाकरजी 'बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के निमत्रण पर ब्रह्मदेश पधारे। इस अवसर पर उन्हें नजदीक से देखने और सुनने का अवसर तथा सौभाग्य प्राप्त हुआ। तब से आज तक उनसे नियमित रूप से पत्र व्यवहार होता रहा है। उनके प्रत्येक पत्र मे एक ही व्यथा रहती है कि भारत ने असली गाधी को भुला दिया है। अपने एक पत्र मे, जो उन्होने उत्तर और दक्षिण अमेरिका के भ्रमण के बाद मुझे लिखा था, वे लिखते हैं, 'दक्षिण अमरीका मे

भारत मूलक लोगों मे अपनी भारतीय संस्कृति के प्रति जो प्रेम तथा पूज्य बापू के प्रति जो आस्था, प्रेम तथा भक्ति देखी, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। भारत मे तो हमने गाधी को मार दिया।'

साहित्यकार और लेखक के रूप मे उनका मूल्यांकन करना मेरे बस की बात नही। मैं एक साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति हू और परिस्थितियो के कारण हिन्दी साहित्य का विशेष अध्ययन नही कर पा रहा हू। हा, एक पाठक के रूप मे अवश्य कह सकता हू कि यात्रा-विवरण तथा सस्मरण लिखने मे उनका स्थान बहुत ही ऊचा है। यात्रा-विवरण मे वे पाठक को मानो हाथ पकड़ कर साथ लिये चलते हैं और प्रत्येक दृश्य दिखाते और उसके बारे मे समझाते चलते हैं। उसको और फिर कुछ जानने को शेष नही रह जाता। उनकी दृष्टि बडी पैनी और गहरी है। किसी भी वस्तु, व्यक्ति या स्थान को बडे ध्यान से देखकर, उसे अपने एक विशेष ढग से प्रस्तुत करते हैं। कई बार एक साधारण-सी घटना या दृश्य को ही एक नया रूप दे कर वे उसका मूल्य कई गुणा बढ़ा देते हैं। उनकी यात्रा-पुस्तकें, जैसे 'पडोसी देशो मे' इस तथ्य को प्रमाणित करती है।

उनका व्यक्तिगत जीवन, भारत की सस्कृति तथा गांधी विचार-धारा का एक जीता-जागता नमूना है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वे बडे मायूस या गभीर प्रकृति के मानव है। नही, वे सदैव प्रसन्नचित्त रहने वाले, कदम-कदम पर चुटकुले कहने वाले, हसने और हसाने वाले व्यक्ति हैं। ब्रह्मदेश मे लिया गया उनका तथा श्री विष्णु प्रभाकरजी का एक चित्र मेरे पास है। उसमे दोनो कितनी उन्मुक्त हसी की फुलझडिया उडा रहे हैं।

मैं व्यक्ति रूप मे उनके निश्छल प्रेम, स्पष्टवादिता और सात्विक जीवन से बहुत प्रभावित रहा हू। उनकी बहत्तरवी वर्षगाठ के शुभ अवसर पर अपनी मगलकामनाए भेज रहा हू तथा ईश्वर से प्रार्थना करता हू—वह इन्हे अत्यन्त यशस्वी बनावे तथा वे इसी प्रकार साहित्य, समाज तथा सस्कृति की सेवा करते हुए 'यश के पातक' हो और 'जीवेम शरद शतम्' की उक्ति को चरितार्थ करें।

साहित्य और संस्कृति के संवर्द्धक

हरिशकर आदेश

□□

यो तो मुझे जीवन में अनेक कवि, लेखको तथा अन्य क्षेत्रीय महान विभूतियो से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, किन्तु श्री यशपालजी के उदार, नम्र, सहिष्णु तथा ओजस्वी व्यक्तित्व ने मेरे मानस को जितना प्रभावित किया है, उतना कम ही व्यक्ति कर पाये हैं।

श्री यशपालजी से मेरा परिमित परोक्ष परिचय केवल उनके साहित्य द्वारा ही था। परन्तु प्रत्यक्ष

परिचय, जो अल्प घडियो में ही घनिष्टता में परिवर्तित हो गया, वह तब हुआ जब वे सन् '७२ मे ट्रिनिडाड आये थे। विधि के अविदित पूर्वायोजन ने उन्हे अकस्मात मेरा अतिथि बना कर मुझे स्वय को सौभाग्यशाली समझने पर विवश कर दिया। तब मुझे भगवान कृष्ण और उनके अकिंचन भक्त विदुर की कथा पर अक्षरश विश्वास करना ही पडा।

यशपालजी की सहज तथा समरस प्रवृत्ति का परिचय इसी से मिल जाता है कि जब हम 'पियाको इण्टरनेशनल एअरपोर्ट' ट्रिनिडाड पर प्रथम बार मिले तो उन्होने ऐसा गले लगाया कि हम अपरिचित नही हैं और पन्द्रह मिनट का रास्ता तय कर घर पहुचते-पहुचते तो हम लोग एक-दूसरे को युग-युग का परिचित समझने लगे। सबसे अधिक विस्मय तो तब हुआ जब मेरी पत्नी निर्मला को उन्होने बेटी का वात्सल्य दिया। वह भी उन्हे पितृवत् प्यार करने लगी। उनकी विनोद-प्रियता तथा बच्चो के प्रति प्रेम ने मेरे अष्टवर्षीय पुत्र विवेक तथा छह वर्षीय पुत्री सुरभि का स्नेह भी स्वयमेव जीत लिया। इन सरल हृदय बच्चो के वे आज भी अपने हैं। यदि उनसे आज भी यह पूछा जाय कि भारत मे तुम्हारा कौन है तो मेरे दो तीन शिष्यो के अतिरिक्त, जो इस समय भारत मे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, वे पहला नाम यशपालजी का ही बताते हैं।

जब वह ट्रिनिडाड आये तो मेरे विशाल सास्कृतिक परिवार (भारतीय विद्या सस्थान ट्रिनिडाड--टुबैगो के सदस्यगण) को उत्तम वक्ता और परामर्शदाता मिल गया। उनके मानवतावादी दृष्टिकोण के सम्पक मे आनेवाले व्यक्तियो मे आत्मीयता का बीजारोपण कर भारतीय सस्कृति को पर्याप्त बल प्रदान किया है। उनकी मधुर वाणी और चिरस्मितमय आकषक व्यक्तित्व ने मेरे ही नही, यहा सबके हृदयो पर अपनी स्पष्ट छाप अकित कर दी है। इसमे रचमात्र भी अतिशयोक्ति नही है कि उनके मधुर सान्निध्य मे व्यतीत हुए वे इने-गिने क्षण हमारे लिए चिरस्मरणीय बन गये हैं। ट्रिनिडाड देश के लगभग समस्त मूधन्य भारतीय (सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक तथा राजनैतिक) नेताओ से हुई उनकी भेट भारतीय सस्कृति के प्रचार तथा प्रसार मे पर्याप्त उपयोगी सिद्ध हुई है।

'भारतीय विद्या सस्थान ट्रिनिडाड—टुबैगो' द्वारा आयोजित स्वागत-समारोहो मे उनकी वक्तृता ने उपस्थित जन-समूह को आत्मविभोर कर दिया था। हिन्दी के साथ-साथ आग्ल भाषा पर भी उनका पर्याप्त अधिकार है, इसीलिए वह यहा अधिक लोकप्रिय हुए। सनातन धर्म के सवश्रेष्ठ मन्दिर सेण्ट जेम्स मे तो उनका भाषण सराहा ही गया, गाधी सेवा सघ के विशाल भवन मे महात्मा गाधी तथा विश्व को उनकी देन' विषय पर दिया गया उनका सारगर्भित व्याख्यान उस देश के लिए एक अभूतपूव अनुभव था।

'भारतीय विद्या सस्थान की लोकप्रिय हिन्दी-इगलिश मासिक पत्रिका 'ज्योति' ने 'श्री यशपाल जैन स्वागताक' नामक एक विशेशांक प्रकाशित कर जनता मे नि शुल्क वितरित किया। यहाँ के राजकीय आकाशवाणी केन्द्र ६१० रेडियो गार्जियन पर श्री हस हनुमान सिंह द्वारा किये गये साक्षात्कार ने श्रोताओ को नवीन दिशा प्रदान की। यह साक्षात्कार खण्डत दो दिन मे 'कल्चरल ट्रैडीशन्स' नामक कायक्रम मे प्रसारित किया गया, जो केवल ट्रिनिडाड—टुबैगो ही नही, सूरिनाम, गयाना, वारवेडोस तथा जमैका मे भी ध्यान से सुना गया।

यद्यपि यशपालजी यहा पाच-छ दिन ही रह सके, परन्तु वे अपने पीछे यहा इतनी सुखद स्मृतिया छोड गये हैं कि सब लोग उनसे पुन भेंट करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। हि दी यात्रा साहित्य मे अनुपमेय लेखक श्री यशपालजी जैन भारतीय सस्कृति के सच्चे दूत माने जा सकते हैं।

परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह इस महान विश्व-यात्री, सरस्वती-साधक, महामानव को दीर्घायु प्रदान करे, जिससे वह भारत तथा भारती मा की अमर सेवा कर सके।

सत्साहित्य के प्रणेता और प्रसारक

प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

□□

सुलभ मूल्य पर हिन्दी मे सत्साहित्य के प्रकाशन और प्रसारण मे यशपालजी का बडा योगदान रहा है। उनके आचार-विचार, रहन-सहन और व्यक्तित्व मे गाधीवादी भावनाओ का सामजस्य है, और 'सस्ता साहित्य मडल' का मुख्य प्रकाशन गाधी और विनोबा-साहित्य ही है। यशपालजी कुशल लेखक और सिद्धहस्त पत्र-कार हैं। उनकी लेखनी सरल और सारगर्भित होती है। सीधी-सादी भाषा मे वह अपनी भावनाओ का विन्यास इस प्रकार कर देते हैं, जो अनायास ही दिल को छूता-सा प्रतीत होता है। उनके द्वारा भिन्न-भिन्न विषयो पर मालाओ के रूप मे प्रकाशित छोटी छोटी पुस्तकें मुझे बहुत पसन्द आईं।' इन पुस्तको को खरीदकर मैंने कई पुस्तकालयो और स्कूलो मे भेटस्वरूप भिजवाया, बिहार के कुछ पुस्तकालयो और स्कूलो मे 'सस्ता साहित्य मडल' द्वारा प्रकाशित पुस्तको को बिना मूल्य पर वितरित करने की योजना जब मैंने उनके सामने रखी तो उनको मेरा विचार बहुत पसन्द आया और उन्होने मडल की ओर से विशेष रियायत दिलवाकर साहित्य के प्रसार मे सहयोग दिया।

जब भी कोई सुझाव दिया गया, उन्होने बडे हर्ष के साथ उसका पालन किया।

'मडल' के आजीवन सदस्य बनाने की योजना को लेकर वे और मार्तण्डजी कई बार कलकत्ता आये। उनकी योजना लोगो को बहुत पसन्द आयी और उसके कई ग्राहक बनें।

ससद के अपने सदस्यकाल मे जब मैं दिल्ली रहता था, यशपालजी आकर मिलते थे। कई विषयो पर विचारो का आदान-प्रदान होता। मैं प्राकृतिक चिकित्सा का प्रेमी हू। यशपालजी भी प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी हैं। इनके सम्पादन मे प्राकृतिक चिकित्सा पर कई पुस्तके प्रकाशित हुई हैं। इस दृष्टि से एक तरह से हम सहपाठी है।

उनके यहा भोजन कर उनका आतिथ्य पाकर घर का-सा आनन्द मिला है।

लगता है, उनके जीवन के अनुभव परिपक्व हो गये हैं, और भविष्य मे उनकी साहित्य-सेवा मे और भी अधिक मौलिकता और अनूठापन आएगा। ऐसी शुभकामना उनकी वषगाठ पर प्रकट करते हुए मैं भगवान से प्रार्थना करता हू कि वे स्वस्थ और सुखी रहकर साहित्य की निरन्तर सेवा करते रहे।

उनके जीवन के केन्द्र-बिन्दु

त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी

□□

मेरा परिचय श्री यशपाल जैन से १९७० से काफी निकट का है। जब मैं दिल्ली मे मुख्य सचिव के पद पर नियुक्त हुआ, उससे पहले से भी उनके नाम और उनकी साहित्यिक गतिविधियो से मेरी जानकारी थी। जहां तक मुझे याद है, जयपुर मे एक बार उनसे मुलाकात भी हुई थी। दिल्ली मे और दिल्ली के बाहर भी यद्यपि मैं रहा, फिर भी उनसे सम्पर्क का सूत्र टूटा नही। श्री यशपाल जैन अपनी धुन के पक्के है, वे विचारो और भावनाओ के जगत मे विचरते हैं, पर उनकी व्यावहारिक बुद्धि और प्रबन्ध-कुशलता से भी मै सदा प्रभावित रहा हू। जिन दिनो मैं भारतीय प्रशासनिक सस्था का निदेशक था, प्रात भ्रमण के समय उनसे मुलाकात हो जाती थी और मुझे स्मरण है, उस समय प्रशासन के विषय मे उनके विचार सुनने मे आनन्द आता था। इसका एक कारण तो यह था कि उनमे जनता की आकाक्षाओ को पहचानने की दृष्टि है, दूसरी उनके गाधी-वादी-विचार प्रतिलक्षित होते थे। जिन दिनो मै भारत सरकार के शिक्षा सचिव के पद पर था, उस समय किस प्रकार प्रौढ-शिक्षा तथा महिला-शिक्षा को बढावा दिया जाए, किस प्रकार पुस्तकालय-आन्दोलन को बल मिले और किस प्रकार सरकार अच्छी पुस्तके छापने मे योग दे सकती है, इसके विषय मे भी मुझको समय-समय पर उनके विचार सुनने को मिले। उनके विचारो मे मौलिकता है, पर क्रियात्मक पक्ष की भी कभी वे अवेहलना नही करते हैं। यही नही, उनको जीवन के विभिन्न क्षेत्रो का दीर्घकालीन और विस्तृत अनुभव है और अनेक महापुरुषो से वे मिलते रहे है। उनके सस्मरण बडे रुचिकर होते है।

श्री यशपाल जैन का व्यक्तित्व बडा सौम्य है। साहित्य से उनका कितना लगाव है और कितनी देन है सब जानते हैं। वे नैतिक मूल्यो के सदा प्रेरक और प्रचारक रहे है। भारतीय सस्कृति की जो हमारी स्वस्थ धरोहर है, वे उसके पोषक रहे है। साथ ही उनके दृष्टिकोण मे आधुनिकता है। जब भी कभी उनसे मिलने का मौका मिलता है, उनका निश्छल और मिलनसार स्वभाव फूट पडता है। समाज और साहित्य के विभि न पक्षो की उनकी सेवा सवविदित है। पत्रकारिता, रचनात्मक काय और स्वस्थ साहित्य की रचना और प्रसार भी उनके जीवन के मुख्य ध्येय रहे है। उनके जीवन मे कही कोई कटुता दिखाई नही पडती है। विचारो के दृढ और साथ ही वे व्यवहार मे नम्र और मिलनसार है। उनसे मिलने मे मुझे न केवल सदैव प्रसन्नता होती है, वरन् कुछ-न-कुछ जानकारी भी प्राप्त होती है। ऐसी मान्यताओ और आदर्शों के व्यक्ति ही समाज को गति और दिशा देते हैं।

उनके सरल स्वभाव, मृदुभाषिता और आत्मीयता का प्रभाव मेरे ऊपर सदैव पडा। साथ ही मैंने देखा कि वे बडी लगन से किसी कार्य को अपने हाथ मे लेते है और बडे धैय और परिश्रम से उसका पूरा करने की चेष्टा करते है। स्पष्टवादिता भी उनका अपना एक विशेष गुण है। अपनी जीवन-यात्रा मे सम्भवत साधना और बहुमुखी प्रतिभा ही उनके सम्बल हैं। वे चिन्तनशील समाजसेवी है। हमारे सास्कृतिक मूल्यो और परम्पराओ के साथ नवजीवन और नवमूल्यो का सामजस्य स्थापित करने की वे कामना रखते हैं। साहित्य-सेवा के साथ-साथ सर्वोदय और मानवकल्याण उनके जीवन के केन्द्र-बिन्दु हैं। समाजसेवा का भी उनका

अपना क्षेत्र और दृष्टिकोण है। अच्छे किसी भी काम मे सभी को प्रोत्साहित करने और सहयोग देने की उनमे स्वाभाविक प्रवृत्ति और क्षमता है।

श्री यशपालजी की बहत्तरवी वर्षगांठ के शुभ अवसर पर उनके मित्र और प्रशसक, जिनमे मैं अपने को भी मानता हूं, उनके सम्मान मे एक अभिनदन ग्रन्थ भेंट करना चाहते हैं। उनके उदारचेता व्यक्तित्व और आदर्शों के प्रति हमारी आस्था और आदर-भावना का वह समवेत प्रतीक है। श्री यशपाल जैन आत्मज्ञापन से दूर रहने की चेष्टा करते रहे हैं, पर इस प्रकार के अभिनन्दन का प्रयास व्यक्ति-विशेष का ही सम्मान नही है, वरन् उन आदर्शों और मूल्यो का है जो कि हम सबके लिए सदैव अभिनन्दनीय हैं। मैं उनका श्रद्धाभिभूत अभिनन्दन करता हू और ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि उन्हें चिरायु करे ताकि वे देश, समाज और साहित्य की यथावत सेवा निरन्तर करते रहे।

जैसी कथनी वैसी करनी

विनय मोहन शर्मा

□□

बीस वर्ष पूर्व की घटना है। एक दिन नागपुर मे मेरे निवासस्थान पर सबेरे-सबेरे किसी ने आवाज दी, "शर्माजी हैं।" देखा, गौरवपूर्ण, दूधिया खादीधारी गठीले एक व्यक्ति खडे हैं। बोले, "मैं यशपाल जैन हू।" मैंने कहा "आइए, बैठिए।" हम लोग कुछ समय तक साहित्य की इधर उधर की चर्चाएं करते रहे। मैं 'मधुकर' के माध्यम से उनके कृतित्व से परिचित था। प बनारसीदासजी चतुर्वेदी के साथ उसका सपादन कर रहे थे। उस समय मैं प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग कर रहा था—टब-बाथ, मिट्टी की पट्टी, एनीमा आदि के दैनिक प्रयोग चल रहे थे। पर ये प्रयोग थे पुस्तको के आधार पर, मैंने यशपालजी की भी रुचि इसमे देखी। मैं प्राकृतिक चिकित्सालय मे कुछ समय रहकर अपने पुस्तकी ज्ञान का प्रत्यक्ष समर्थन चाहता था। उन्होने तुरन्त कहा, "विट्ठलदास मोदी के 'आरोग्य मदिर' मे जाइए। वहा वह आपको सभी सुविधाएं देंगे।" उन्होने अपने ठडे-गरम जल मे स्नान के स्फूर्तिप्रद अनुभव भी सुनाए। उनसे प्रेरित होकर मैं गोरखपुर गया और वहा श्री मोदीजी ने मुझे सभी प्रकार की सुविधाए भी दी।

नागपुर के बाद कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय मे जाने पर दिल्ली मे यदा-कदा यशपालजी से भेंट हो जाती थी। पर दिल्ली भागती हुई नगरी है, उसमे लोग जाते हैं, भागते-भागते अपना कार्य करते हैं और भाग जाते हैं। मैं भी दिल्ली भाग-दौड़ मे ही जाता था। अत अपने आत्मीय बन्धुओ के साथ अधिक समय नही बिता पाता था। यशपालजी से 'सस्ता साहित्य मडल' मे मैं भागते-भागते ही मिला। पर जब भी मिला, उनके मुस्कराते चेहरे और स्नेहिल व्यवहार से मुझे सदा सुख मिला। 'जीवन-साहित्य' ही एक ऐसा पत्र है जो गाधी-विचार धारा का प्रचार करता है और उसका सपादक (यशपाल जैन) उसी के अनुसार आचरण भी करता

है । पत्र के विचारो के साथ पत्रकार-सम्पादक का तादात्म्य बहुत कम देखा जाता है। यशपालजी गांधीजी के विचारो का प्रतिपादन करने की दृष्टि से ही 'जीवन साहित्य' के सामान्य अको तथा विशेषांको का प्रकाशन करते रहते हैं। उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओ मे अपनी लेखनी का चमत्कार दर्शित किया है। उनमे आध्यात्मिक रुचि का जागरण भी गाधी प्रवृत्ति के अनुरूप है। वे जैन है, पर वैष्णवजन सर्वोपरि हैं। उनका धर्म व्यापक है, सबको अपने मे समाये हुए हैं। उनका विचार साहित्य तो पुष्ट हुआ है, पर ललित साहित्य का सृजन करने वाली प्रतिभा को वह पूरा अवसर नही दे पाए हैं। उनकी कहानियां आदि की वैसे कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, फिर भी उनकी प्रतिभा को और भी गतिशील करने की आवश्यकता है।

यशपालजी अच्छे कहानीकार हैं, पर अब मैं उनकी कहानी विस्तार से कहना नही चाहता, सुनना चाहता हू। परमात्मा उन्हे उसे सुनाने के लिए गाधीजी की इच्छा के अनुसार दीर्घजीवी बनावे।

'विरलः सरलोजन'

(डा) दशरथ ओझा

□□

गाधी विचारधारा के प्रचार मे देश की जिन सस्थाओ ने काय किया, उनमे 'सस्ता साहित्य मडल' का प्रमुख स्थान है। इस सस्था के साथ श्री यशपाल जैन का अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। गाधी जीवन-दर्शन को सामान्य जनता तक पहुचाने का श्रेय यशपालजी को है। उन्होने अपना जीवन ही इस सस्था को समर्पित कर दिया है। यशपालजी साहित्यकारो की उस परम्परा मे हैं, जो विचारक और प्रचारक रूपो मे एक साथ कार्य कर सकते हैं। इन्होने तपे हुए पत्रकार प बनारसीदासजी चतुर्वेदी से पत्रकारिता की शिक्षा प्राप्त की और 'जीवन साहित्य' के द्वारा दूर-दूर तक गाधी विचारधारा को पहुचा दिया। भारत-प्रवासियो के लिए इन्होने आवाज बुलन्द की। उनकी दु ख गाथाए भारतीयो को सुनाईं। देशवासियो ने उन भाइयो के कष्ट निवारण का बीडा उठाया। भारतीय जनता की आवाज को देश-विदेश मे पहुचाने वाले व्यक्तियो की आवश्यकता थी। यशपालजी का यश विदेशो मे पहुचा। अत उनके पास विदेशो से निमत्रण पत्र आने लगे। एक कवि ने ठीक ही कहा है—"गुण कुवन्ति दूतत्व दूरेऽपि वसता सताम्। केतकीगन्धमाघ्राय स्वयमायान्ति षट् पदा।"

यशपालजी का जीवन ही मित्रो की सहायता के लिए है। किसी कार्यवश मैं प्रथम बार 'सस्ता साहित्य मडल' मे उनसे मिलने गया। चारो ओर पुस्तको और पत्र-पत्रिकाओ के अम्बार के बीच श्वेत खादी पहने एक व्यक्ति कुछ लिखते हुए दिखाई पडा। उनका दिव्य रूप ऐसा सुन्दर प्रतीत होता था, मानो श्वेत सरोवर मे अरुण कमल खिला हो। प्रथम साक्षात्कार मे ही उनकी विद्वत्ता और विनम्रता का मेरे हृदय पर स्थायी प्रभाव पडा। तभी से आज तक हम लोगो की मैत्री दृढ से दृढतर होती गई।

यशपालजी ने अपना जीवन गांधी जीवन-दर्शन के ढांचे मे ढाल रखा है। इनका सारा परिवार गांधी-वादी है। मैं जितना अधिक निकट सम्पर्क मे आता गया, उतना ही इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होता गया। इनकी मृदु मुस्कान मे जादू का असर है। वाणी का माधुर्य विचारो के गाम्भीर्य से मिलकर इनके भाषणों को हृदयग्राही बना देता है। कभी-कभी सोचता हू कि यह व्यक्ति जनप्रिय कैसे बन गया। बहुत सोचने पर प्रतीत हुआ कि जैन धर्म की प्रसिद्ध स्तुति 'नमो लोए सव्व साहूण' को आत्मसात् कर लिया है।

मेरे कई साथियो ने इनका भाषण जैन मन्दिरो मे भी सुना है। यशपालजी न जाने कितनी हित-कारिणी सस्थाओ से सम्बद्ध हैं। सबका कल्याण, सबकी सेवा इनका लक्ष्य है।

अन्त मे इतना ही कहकर समाप्त करता हू कि जिस प्रकार आज के युग मे गाधीवादी विचारधारा विरल है, उसी प्रकार आज ऐसा 'गुणी च गुण रागी च विरल सरलो जन ।'

उनके गुण

मन्मथनाथ गुप्त

□□

जब से मैं दिल्ली आया, तब से भाई यशपाल जैन से परिचय हुआ। उनमे सबसे अधिक जो बात आते ही पसन्द आई वह यह कि यद्यपि वह एक गाधीवादी सस्था से सम्बद्ध थे, वह क्रान्तिकारियो को भी स्नेह की दृष्टि से देखते थे। यह एक ऐसा गुण है, जो गाधीवादियो मे दुर्लभ है। इस कारण उनके साथ बार-बार जब भेट होती, मेरा प्रेम बढता गया।

जब मैंने एक के बाद एक 'बाल भारती', 'योजना' और 'आजकल' का सम्पादन किया, तो उनका सहयोग एक लेखक तथा परामर्शदाता के रूप मे बराबर मिला। वह व्यावहारिक व्यक्ति हैं, लेखक के रूप मे भी मैंने उनमे यही गुण पाया। सपादक के रूप मे भी उनके पत्र मे यह गुण सर्वत्र अपना जौहर दिखाता रहा।

वह कई बार विदेश यात्रा कर चुके है और हर बार वह कुछ सीख कर आ गए। कई पर्यटक हीनता बोध लेकर लौट आते हैं, कई और भी कट्टर हो जाते हैं, वह इन दोनो दुर्गुणो से बचते रहे। इसी कारण हर भ्रमण से उनका व्यक्तित्व अधिक चमक उठा।

वह बहुत सुन्दर सरल भाषा मे लिखते हैं। भ्रमण वृत्तान्त लिखकर हिन्दी भारती के भण्डार को जिन लोगो ने भरा है, उनमे वह एक सफल व्यक्ति है।

मुझे बहुत खुशी है कि उनके ७२ साल पूरे हो रहे है। आशा है कि वह और कई दशको तक जीवित रहकर हिन्दी की सेवा करेंगे। इस अवसर पर उनकी श्रीमती का भी अभिनन्दन करना चाहिए जो उनकी योग्य जीवन साथी हैं। इन दोनो की उपस्थिति मे जिस आत्मीयता का अनुभव होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

अच्छे मित्र

(डा) प्रभाकर माचवे

□□

श्री यशपाल जैन को मैं गत चालीस पैंतालिस वर्षों से जानता हू। दिल्ली से 'जीवनसुधा' पत्रिका निकलती थी, उसमे और बाद मे बुदेलखण्ड से 'मधुकर' मे और 'जीवन साहित्य' मे वे कुशल सपादक-लेखक का कार्य कर चुके हैं। कहानियां उन्होने लिखी हैं, प्रसिद्ध जैनेन्द्रकुमार के कदम-ब-कदम। गाधीवादी, समाज-सुधारक, सामाजिक कार्यकर्ता, उत्तम वक्ता, मिलनसार, प्रवासी भारतीयो के बनारसीदास चतुर्वेदीजी की ही तरह विशेष अध्ययनकर्ता, विनोबा के आत्मीय, कितने कितने विशेषणो से उनका बखान, गुणगान करू! सबसे बडी बात यह है कि वे एक बहुत अच्छे मित्र और सहायता करने मे तत्पर मानवतावादी सहृदय सुहृद है। मैंने उन्हे सदा हसमुख और आशावादी देखा है। अनेक बडे बडे आयोजन उन्होने किये, अनेक सस्थाओ से वे सबद्ध रहे, पर कभी चिन्ता की रेखाए उनके मुह पर नही देखी। बडे ही खुशमिजाज, हाजिर जवाब, विनोद-परिहास की सुष्ठु सुरुचि वाले, सौम्य सज्जन हैं यशपालजी। यह विश्वास ही नही होता कि इतने उछलते-कूदते, ज़िंदादिल दोस्त अब बहत्तर वर्ष के हो जाएगे। उनके चेहरे से तो वार्धक्य की कोई शिकन या थकन का निशान नजर नही आता। वह क्या राज है, जो आपको सदा चिर प्रसन्न, चिर प्रफुल्ल गुलाब के ताजा फूल की तरह टटका आनन्दमय, उल्लास दोनो हाथो से बटोरता और लुटाता हुआ रखता है? मैंने यशपाल जैन को कभी नाराज होते हुए नही देखा, न कभी कोई कडुआ शब्द कहते हुए। अहिंसा उनके मन, वचन, कर्म मे जैसे रच गई है। गाधी की रचनाओ का प्रकाशन करते करते उस 'प्रकाश' ने इस इन्सान को भी ज्योतिर्मय बना दिया हो जैसे।

चिरायु हो मित्र। 'आदर्श' उनके साथ रहे। और ऐसे ही उम्र के आगे आने वाले कठिन कोस, कटक-मय वर्ष, भावी के सारे अधेरे कल्लष और आशका-सत्रासो का जजाल काटते हुए वह आगे बढते रहे। महावीर ने वह मार्ग हजारो वर्ष पहले प्रशस्त कर दिया था। "आशा भीतर से बाहर फैलती है प्रकाश-स्तभ की तरह।"

'स मे प्रिय'

(प्रो) कल्याणमल लोढा

□□

जहा तक मुझे स्मरण है भाई यशपालजी से मेरा प्रथम परिचय आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व मेरे अभिन्न मित्र स्वर्गीय मोहन सिंह सेंगर के माध्यम से कलकत्ता मे हुआ था। शुभ्र खादी वेश, गौर वर्ण,

मितभाषी और उनके सरल स्निग्ध व्यवहार ने मुझे आकृष्ट ही नही किया वरन् उनके निकट आने व मैत्री-भाव स्थापित करने के लिए अभिप्रेरित भी। उनकी सरलता, गम्भीरता व आंतरिक शुचिता ने मुझे निरन्तर प्रभावित किया। ज्यो-ज्यों मैं उनके निकट आता गया, मैंने उनमें एक ऐसा व्यक्तित्व पाया, जिसका भीतर और बाहर एक है, जिसका साहित्यिक बोध मानवीय मूल्यो से ग्रथित है और जिसका सांस्कृतिक लगाव जितना आधुनिक है उतना ही प्राचीन भी—उन्होने भारतीय सस्कृति के उच्चतम मूल्यो को अपने जीवन और व्यक्तित्व में रूपायित किया है—इमी अर्थ मे वे पूर्णत गांधीवादी हैं। गाधीवाद मानवतावाद और स्वस्थ मानसिकता का ही तो चरम और आदर्श रूप है।

मैंने उन्हे सदैव 'युवा' ही पाया, मन और कर्म से। वही लगन, वही तत्परता, वही श्रम प्रियता और वही शक्ति आज मैं समझ रहा हू कि जीवन को भरपूर और समर्पित भाव से जीने वाला कर्मयोगी क्यो कभी वृद्ध नही होता। स्नेह, सद्भाव, सौमनस्य और सौहार्द जुटाने वाली अक्षय मजूषा हैं यशपालजी, उनके लिए कोई अनजाना नही, कोई पराया नही, सभी अपने हैं, सगे हैं, स्वजन हैं, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु '

यशपालजी की समाज-सेवा और साहित्य-साधना भी अद्भुत है। प्रचार और प्रकाशन के इस युग मे, जहा कुछ भी न करने वाले व्यक्ति सब कुछ करने का श्रेय प्राप्त करने के लिए लोलुप और अग्रसर रहते हैं, यशपालजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन ही समाज और साहित्य को समर्पित करके भी कुछ नही चाहा, न यश, न लाभ, न श्रेय—कुछ भी नही। उनका जीवन साहित्य, समाज और सस्कृति की साधना का समर्पित जीवन है। उन्हे देखकर मुझे स्ट्रेची का कथन बराबर याद आता रहा है कि महान व्यक्तित्व विचार से उदात्त, व्यवहार से सरल, कम से नि स्पृह और भाव से सहज होते हैं। वे महात्माजी के आदर्शों के प्रतीक हैं।

भाई यशपालजी जैन है। वे जन्म से ही नही, कर्म से भी जैन है। सत्य उनका सबल है, अहिंसा उनका बल, तप और सयम, अपरिग्रह और समता उनकी शक्ति। वे भीतर और बाहर दोनो से विशुद्ध भारतीय हैं। उसकी गौरवपूण परम्परा और सस्कृति उनमे मूर्त हुई है। वे सर्व-धम-समन्वय और सर्व-धर्म-समभाव मे अटूट विश्वास रखते है। जैन धम की, श्रावक धर्म की व्रत-साधना उनमे मूर्त हुई है। केवल जन्मना ही नही, कर्मणा भी वे जैन हैं। जैन धर्म मे आचार और विचार की, सयम और नियम की, विनय और वैयावृत्ति की जो महत्ता है, वह यशपालजी मे स्वत सिद्ध है। 'मित्ति मे सव्व भूयेषु' ही उनका मूलमत्र है। भीतर और बाहर दानो से वे साधक है। उनका जीवन और व्यक्तित्व विविध आयामी है। वे एक दृष्टि से सर्वोदयी हैं तो दूसरी दृष्टि से विशुद्ध साहित्यिक। यायावरी वृत्ति कोई उनसे सीखे। वे कहां नही गए? दर्शन और चिन्तन की विवेक सगति उनके व्यापक अध्ययन का पुष्ट प्रमाण है। वे पत्रकार हैं, तो प्रकाशक भी। समाज सेवा मे अग्रणी हैं तो सास्कृतिक सस्थाओ से भी उनका उतना ही लगाव है। उनके लिए पराया कोई नही पर यह अपनापन केवल शाब्दिक स्वीकारोक्ति न होकर, आचारिक परिपक्वता और आतरिकता है। उनका लेखन उनके वैदुष्य का प्रमाण है तो उनकी वक्तता शक्ति वाक नैपुण्य और चातुर्य की।

मुझे एक घटना याद हो आयी है। यशपालजी कलकत्ता आए हुए थे और स्वर्गीय भागीरथजी कानोडिया के यहा ठहरे थे। 'सस्ता साहित्य मडल' की बैठक थी। भागीरथ डिंगल की कुछ कविताए और राजस्थानी वार्ताए या बोधकथाए सुना रहे थे। यशपालजी ने भी उसमे योगदान देना प्रारम्भ किया। मुझे आश्चर्य हुआ कि इन्हे राजिया के सोरठे कैसे कठस्थ है? 'राजस्थानी बाता' उन्होने कहा पढ़ी। साहित्य साधना जिस व्यापक मानवीय अर्थवत्ता के साथ जुडकर जीवन के मूल्यो का निष्पादन और प्रतिपादन करती है, वह केवल उपजीविका, पाडित्य प्रदर्शन और आत्म श्लाघा न होकर, मानवीय चेतना की उच्चतम स्थिति को

छूने मे समर्थ बन जाती है। ताओ दर्शन की भांति येन और यॅग का समन्वय करती है। यशपालजी की साहित्य साधना इसी भूमि की उपज है, क्योकि उसमे जितनी वैचारिकता है, उतनी ही प्रतिभा प्रज्ञा भी। भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के राष्ट्रीय पव मे मुझे उनसे कधे से कधा मिलाकर कार्य करना पडा। वे राष्ट्रीय समिति, कार्य समिति और जैन महासभा तीनो के प्रभावी सदस्य थे। किसी भी सभा या बैठक में उनका मत प्राय सर्वमान्य होता था, क्योकि उसमे पूर्वाग्राहिता या सकीर्ण साम्प्रदायिकता के स्थान पर तर्कपूर्ण विवेक-विवृति विद्यमान रहती थी। निर्वाण महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित समण सुत' की सगीति मे चारो अ म्नायो द्वारा उस ग्रथ की सहमति और स्वीकृति मे उनका बहुत अधिक योगदान ~हा। 'नवभारत टाइम्स' मे प्रकाशित उनका लेख इस सदर्भ मे बहुत ही चर्चित हुआ। साहित्य समिति के सयोजक के रूप मे उन्होंने, जो रचनात्मक और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाया, उसकी प्रशसा सभी ने की। स्वर्गीय शाति प्रसादजी जैन और स्वर्गीय कस्तूरभाई लालभाई ने कई बार उनकी कार्यदक्षता की भूरि-भूरि प्रशसा की। अनेक अवसरो पर मैंने उनकी दृढता, निर्भीकता और स्पष्टवादिता भी देखी। आत्मविश्वास के साथ, किसी सकोच, भ्राति या कटुता के बिना, अपने मत को स्थापित कर, उसे प्रमाणित और प्रतिपादित किया था। मैंने देखा, अपनी बात के साथ-साथ दूसरो के मत को भी उन्मुक्तता के साथ खुले दिल और दिमाग से वे सहज और सहर्ष स्वीकार करते थे। इसे ही व्यक्ति की 'अखडित पूर्णता' कहा है, क्योकि न्याय भास्कर के अनुसार 'मिथ्या प्रतिपत्ति लक्षणो मोह।'

आचार्य हरिभद्र सूरि का दीपादृष्टि के प्रसग मे एक प्रसिद्ध श्लोक है

'पर पीडेह सूक्ष्माऽपि वर्जनीया प्रयत्नत
तद्वत्तदुपकारेयति तव्य सदैवहि।'

किसी को जरा भी पीडा न पहुचे और सदा दूसरो का उपकार करने का प्रयत्न ही मनुष्य को दीप्रा दृष्टि की, अर्न्तग्राह्यता की ओर ले जाता है और वही मनुष्य को सत्वस्थ बनाता हुआ उसे वृहत् चैतन्य से समन्वित करता है। अपने जीवन-प्रवाह मे जो व्यक्ति इस ओर अग्रसरित है, उसे किसी प्रलोभन, किसी सत्ता या किसी भी वैभव-वाछा की प्रतीति नही होती। वह कत्तव्यनिष्ठ होकर जीवन जीता है—अपने लिए कम, औरो के लिए अधिक। उसमे न तो अधिकार की महत्वाकाक्षा रहती है और न लोकप्रिय बनने की अभिलाषा। उसका चित्त लोकचित्त मे समाहित होकर लोकोदय का कारण बन जाता है। वही उसके जीवन की रति, गति और मति बन जाती है। यशपालजी ने जीवन की यही भूमिका, प्रक्रिया या पद्धति अपनाई है, जिसका माप-दण्ड सत्ता या प्रभुता नही होती, वरन् वह साकल्पिक शक्ति और क्षमता रहती है, जो जीवन को अपेक्षित पूर्णता प्रदान कर, उसे 'एकोधम परम श्रेय' का उदाहरण बना देती है। वस्तुत यही परम श्रेय है और प्रेय भी। यशपालजी इसी के प्रमाण है और इसी मे उनकी प्रभुविष्णुता है और आज की पीढ़ी के लिए प्रेरणा भी। गाधी और जैन-दशन और नीतिमत्ता उनके कृतित्व मे घुल-मिल गए है। उन्हे देखकर, उनसे सभाषण कर, उन्हे समझकर, गीता का श्लोक सहसा स्मरण हो आता है, और यह अन्यथा भी नही है

सतुष्ट सतत योगी यतात्मा दृढ निश्चय
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्योतमद्भक्त स मे प्रिय ॥

(गीता १२—१४)

अर्थात् जो सदा सतोषी, योगयुक्त, इद्रिय-निग्रही और दृढ़ निश्चयी है और मुझमे जिसने अपनी बुद्धि और मन अपण कर दिया है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।

हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा उनका व्रत और सकल्प है। उन्होने उसे श्रीवृद्ध किया है।

गांधी-विचार-धारा के व्याख्याता

श्रीपाद जोशी

श्री यशपाल जैन से मेरा परिचय कब हुआ, इसका स्मरण मुझे नही हो रहा है। ऐसा लगता है, मानो मैं बचपन से ही उन्हें जानता हू। यह भी याद नही आ रहा है कि किस सिलसिले मे मैं उनसे पहले-पहल मिला था। एक तरह से यह स्वाभाविक ही समझना चाहिए, क्योकि हम दोनो एक विशाल परिवार के हमेशा से सदस्य रहे हैं। वह है गाधी परिवार। सन् १६३८ मे मैं पूज्य काका साहेब का अतेवासी बनकर वर्धा गया और गाधी परिवार में शामिल हो गया। सन् १६३६-४० मे एक साल के लिए मैं उर्दू की शिक्षा प्राप्त करने के लिए दिल्ली रहा। पूज्य श्री वियोगी हरिजी की छत्र छाया मे बिताया हुआ वह एक वर्ष मेरे जीवन मे बहुत महत्व रखता है। एक तरह से मेरे साहित्य और सामाजिक जीवन का श्रीगणेश वहीं हुआ। उस समय हरिजन छात्रावास के अपने सहयोगियो—जैसे श्री कुमारिल स्वामी, श्री विष्णु आदि के साथ कभी-कभार सस्ता साहित्य मडल मे भी जाना होता था। पर उन दिनो यशपालजी वहां नही थे स्व मार्तण्डजी से परिचय हुआ था। उसके बाद सभवत १६४६ के करीब 'सस्ता साहित्य मडल' के साथ लेखक-अनुवादक के नाते मेरा सबध प्रस्थापित हुआ। काका साहेब के साहित्य-विषयक लेखो का जो सकलन 'जीवन साहित्य' के शीषक से सन् १६४८ मे प्रकाशित हुआ, उसका अनुवाद-सपादन मैंने किया था। उसके बाद सन् १६५० मे काका साहेब की दूसरी पुस्तक 'लोक जीवन' मडल की ओर से प्रकाशित हुई, जिसका अनुवाद मैंने किया था। सभवत इन्ही दिनो यशपालजी से मेरा परिचय हुआ, जो दिन-प्रति-दिन बढता ही गया। उसके बाद 'मडल' की ओर से मेरी छोटी-मोटी अनेक पुस्तकें समय-समय पर प्रकाशित होती रही, जिनके प्रेरणास्रोत श्री यशपालजी रहे। दरअसल अनेक छोटी-छोटी पुस्तकें उन्होने मुझसे न लिखवा ली होती तो सभवत मैं उन्हे न लिखता।

यशपालजी से परिचय होने के बाद जिस बात ने मेरे मन पर विशेष रूप से छाप डाली, वह यह थी कि यशपालजी स्वभाव से ही गाधी-विचारधारा के समर्थक हैं। कुछ लोग शुरू मे किसी अन्य विचार-धारा मे बह जाने के बाद गाधीमार्ग की ओर आकर्षित हुए थे। आचार्य काका साहेब कालेलकर और जीवत राम-कृपलानी गाधी जी के पास आने से पहले आतकवादी गुटो से सम्बद्ध थे। विनोबा, दादा धर्माधिकारी, आचार्य स ज भागवत, डा जाकिर हुसैन, डा आबिद हुसैन जैसे विद्वान शिक्षाशास्त्र मे या दर्शन मे प्रवीण हो गये थे। हम जैसे कुछ युवक 'राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ' मे रह चुके थे। सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, वियोगी हरि, उमाशकर-जोशी जैसे साहित्यिक मूलत देवी सरस्वती के उपासक थे। इन सबका गाधी-विचार-धारा मे प्रविष्ट होना एक प्रकार से जीवन मे एक नया मोड लाना था। मगर यशपालजी के बारे मे मुझे ऐसा लगता है कि वे गाधीवादी बनने के लिए ही पैदा हुए थे। उनकी बोलचाल में, आचरण मे जो सहज, स्वाभाविक शालीनता प्रतीत होती है, वही उनके गांधीवादी होने की ओर इशारा करती है। उनके साथ मैंने घटो बातें की हैं, मगर किसी व्यक्ति के सबध मे उनके मुह से कोई अभद्र शब्द मैंने कभी नही सुना। इसका मतलब यह नही कि वे बिलकुल भोले-भाले हैं और लोक व्यवहार की बारीकियों से अनजान हैं। जी, नही। दुनियादारी के गोरखधधे से वे खूब परिचित हैं। व्यक्तियो के गुण-दोषो को भी अच्छी तरह जानते हैं। पर किसी की बुराई करना उनके

स्वभाव में ही नही है। यह बात परिश्रम से प्राप्त की जा सकती है, पर यशपालजी में वह स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। उनके जैसे गाधी-विचार-धारा के व्याख्याता के लिए यह ईश्वरीय देन समझी जानी चाहिए।

जब मन की विशालता स्वाभाव से ही मिल गयी हो तब गाधी-विचार धारा की अन्य बातो के बारे मे विशेष कुछ कहना बाकी नही रहता। मसलन् उनके जीवन की सादगी, उनका राष्ट्रभाषा प्रेम, सर्वधर्म समभाव की प्रवृत्ति आदि बाते अपने आप सामने आ जाती हैं। इनके कारण देश या विदेश मे उन्हें लोगो के दिलो मे प्रेमपूर्ण स्थान मिला है। हमारे देश मे धर्म,जाति, सप्रदाय, पथ आदि का प्रभाव इतना जबदस्त होता है कि उससे छुटकारा पाना लगभग असभव सा होता है। ब्राह्मण अपने ब्राह्मण्य को नही भुला पाता। वैश्य अपनी बनियेगिरी से बाज नही आता। हिंदू का हिंदुत्व और मुसलमान का इस्लामत्व छिप नही सकता। इसलिए सर्वधर्म समभाव की कल्पना निरी कल्पना ही रह जाती है। यशपालजी के सबध मे यह बात नही कही जा सकती। उनके नाम के साथ जैन शब्द का प्रयोग न किया जाय तो कोई यह नही कह सकता कि वह जैन हैं। न उनकी बातो से, न उनके आचरण से उनका जैनत्व प्रकट होता हैं, बल्कि अमरनाथ, बद्री, केदार जैसे जैनेतर हिंदू तीर्थ स्थानो के जो यात्रा वर्णन उन्होने लिखे हैं, उन्हे पढने पर अनेक बार ऐसा लगता है कि इनका लेखक जरूर कोई श्रद्धालु, मुर्तिपूजक हिंदू होगा। हिंदू देवी-देवताओ से वह इतने एकरूप हो जाते है कि उनके जैन होने की शका तक पाठको को नही होती। मुस्लिम और ईसाई धर्मस्थानो का भी उन्होने इसी आत्मीयता के साथ अपने पाठको को परिचय कराया है। गाधीजी के सर्वधम समभाव के सिद्धात को इतनी अच्छी तरह अपने जीवन मे चरितार्थ करने वाले लोग बहुत कम मिलते हैं।

श्री यशपालजी स्वयसिद्ध लेखक हैं। अत उनके साहित्य मे गाधी-विचार-धारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक है। प आश्चय की बात है कि उन्होने गाधी विचार-धारा पर अलग से कोई पुस्तक नही लिखी है। हो सकता है, इस प्रकार की तत्वचर्चात्मक पुस्तक लिखने की उनकी प्रवृत्ति ही न हो, मगर जीवन साहित्य' और इधर कुछ दिनो से 'मगल प्रभात' मे उनके जोलेख और खास करके सपादकीय टिप्पणिया प्रकाशित होती रहती हैं, उनसे उनके गाधी-विचार-धारा के सशक्त व्याख्याता होने का अच्छा प्रमाण मिलता है। मगर वह तो बाद की बात है। यशपालजी शुरू मे ही गाधीवादी जीवन मूल्यो मे श्रद्धा रखकर लिखते रहे है। जनवरी १९५१ मे 'मैं मरूगा नही' शीर्षक से उनकी प्रकाशित 'जीवन की हृदयस्पर्शी मौलिक कहानियो का सग्रह इसका सबूत है। इन कहानियो ने स्वय मुझे इतना प्रभावित किया था कि उनमे से 'मैं मरूगा नही,' 'प्यार की नीव', 'फकीर की दुआ' जैसी कुछ कहानियो का अनुवाद मैने मराठी मे प्रकाशित कराया था। बत्तीस साल पहले साहित्य सृजन के बारे मे यशपालजी ने इस कहानी सग्रह के प्राक्कथन मे जो कहा था, वह गाधीवादी विचार ही था। उन्होने लिखा था

"कला के नाम पर आजतक जाने कितना लिखा गया है। यद्यपि हमारे स्थायी साहित्य का वह भी एक आवश्यक अग है तथापि उन रचनाओ तथा उनके प्रणेताओ की उपयोगिता गिनेचुने लोगो के लिए ही सीमित होती है। किंतु जिस साहित्य मे मानव के हृदय का स्पदन और मानव की आत्मा की पुकार होती है, वह प्राणवान् साहित्य सदा जीवित रहता है, और सतत प्रवाहिनी गगामाता की निमल जल-धारा के समान कोटि-कोटि जन के लिए जीवनदायी होता है। प्रस्तुत सग्रह की कहानिया इस कसौटी पर कसी जाय या कसी जाने पर खरी उतरेगी, ऐसा दावा करना लेखक की धृष्टता होगी। हा इतना वह अवश्य विनम्रतापूर्वक निवेदन कर देना चाहता है कि इस पुस्तक की अधिकाश कहानिया कोरी कल्पना के आधार पर नही लिखी गयी है। उनके पीछे जीवन का यथाथ है और है लेखक की अनुभतिया। मानवी कुरूपता मे, जिससे इस ससार का कोई भी प्राणी पूर्णतया मुक्त नही है, यदि हमने उसकी सुरूपता के दशन करने की दृष्टि नही पैदा की है तो हमारो

रचनाएं मानव-समाज का विशेष हित नही कर सकेंगी। साहित्यकार युग प्रवर्तक होता है, युग की धाराओ को मोड़ता है। अपने राष्ट्र के असख्य पाठको को स्वस्थ मानसिक भोजन देने की जिम्मेदारी उसी पर होती है, यदि वह अपने इस दायित्व को सचाई के साथ नही निभाता तो उससे समूचे समाज और राष्ट्र का अहित होता है। इसलिए साहित्य-सृजन का कार्य किसी भी राजनैतिक अथवा अन्य वैसे ही महत्वपूर्ण माने जाने वाले कार्य की अपेक्षा कम महत्व का नही है। हमारे पास अपनी साधना और प्रतिभा का जितना भी प्रकाश है, उससे हम उसी मार्ग को प्रशस्त करें, जो सत्य है, शिव है और सुदर है, अर्थात् मानव के लिए हितकारी है। कुछ लोगो का कहना है कि सोद्देश्य रचनाए कला की दृष्टि से उत्कृष्ट नही होती, उनमे प्रचार की गध आती है। इन पक्तियो का लेखक ऐसा नही मानता। यदि हमारी रचनाओ के पीछे मानव-समाज को अधिक उन्नत बनाने का ध्येय परिलक्षित होता है तो उसी काल उन रचनाओ को उत्कृष्ट न माना जाना उचित नही है।"

यशपालजी की इस मूल्यकल्पना को ही हम गाधी-विचार-धारा मानते हैं। खुद हम भी इस विचारधारा को प्रमाण मानते रहे हैं। इसलिए केवल कला की कसौटी पर साहित्य को परखने वाले साहित्य-पारखियो ने हमारे साहित्य को हमेशा घटिया ही करार दिया। पर उससे हम उद्विग्न नही हुए क्योकि हमे विश्वास था कि जिस माग पर हम चल रहे हैं वही अततोगत्वा समाज के हित का साबित होगा। यशपालजी की भी सभवत यही भमिका रही है। इसलिए उनसे एक विशेष प्रकार का बधुभाव हमारे मन मे पैदा हुआ।

इसी कहानी सग्रह के प्रारभ मे ज्येष्ठ एव श्रेष्ठ साहित्यसेवी प बनारसीदास चतुर्वेदी ने यशपालजी के बारे मे चार शब्द लिखे हैं। उनके द्वारा किया गया यह मूल्याकन गाधी विचारधारा की दृष्टि से कितना यथाथ था—"यशपालजी कोई तेजस्वी पत्रकार नही है और न विशेष प्रतिभाशाली लेखक ही, पर अनेक तेजस्वियो तथा प्रतिभाशालियो को वे उतना ही पीछे छोड गये है, जितना सुप्रसिद्ध कहानी का वह कछुआ उस खरगोश को पीछे छोड गया था, और यदि प्रतिभा की वह परिभाषा ठीक है—'प्रतिभा के मानी हैं ९० फीसदी पसीना बहाना और १० फीसदी प्रेरणा'—तो यशपालजी प्रतिभाशाली भी माने जा सकते हैं। जिन तिकडमो मे मनुष्य आगे बढकर उच्च पदो को ग्रहण करते है, उनसे वे परिचित नही हैं, साहित्य-मदिर के प्रधान पुजारी बनने की भी उन्हे आकाक्षा नही। हा, उस मदिर को स्वच्छ रखने और यात्रियो तथा पुजारियो के मार्ग का प्रशस्त करने मे ही वे अपना कल्याण मानते है। दूसरो के यश की रक्षा करते हुए ही वे अपने नाम 'यशपाल' को सार्थक करते रहे है। यशपालजी तो एक घरेलू प्राणी हैं। वे किसी के अनुज बन सकते हैं तो किसी के अग्रज, किसी के मामा तो किसी के भानजे, और शिष्य तो वे सभी के बन सकते है पर वे नेता किसी के भी नही बन सकते।"

इन पक्तियो को हम जब-जब पढते हैं तब-तब हमारे मन मे यह विचार आता है कि पडित बनारसी दासजी से हमारा परिचय होता और हमारे विषय मे लिखने की वे कृपा करते तो लगभग इन्ही शब्दो मे वे हमारा मूल्याकन करते। हालाकि यशपालजी की और हमारी मूल प्रवृत्ति मे बहुत बडा फक यह है कि वे सात्त्विक वृत्ति के हैं जबकि हम राजस हो नही बल्कि तामस वृत्ति के हैं। वे महत्वाकाक्षा से कोसो दूर रहे है जबकि हम महत्वाकाक्षा के बल पर ही जीवन भर भागदौड करते रहे है। फिर भी हम दोनो मे कई समानताए हैं। गाधी मार्ग को हम दोनो ने सर्वश्रेष्ठ मार्ग के तौर पर स्वीकार किया है तथा जीवन और साहित्य मे उसे चरितार्थ करने की सतत् चेष्टा करते रहे हैं।

स्वभाव और वृत्ति से गाधीवादी होते हुए भी यशपालजी ने गाधी विचारधारा के सम्बन्ध मे कोई विशेष ग्रन्थ नही लिखा, पर अपने अनेकानेक लेखो और सपादकीय टिप्पणियो मे उनके अदर का गाधीवादी बार-बार झाकता है। बरसो से 'जीवन साहित्य' मे और इधर कुछ दिनो से 'मगल प्रभात' मे क्रमश 'क्या व

कैसे ?' तथा 'प्रासगिक टिप्पणिया' शीर्षक से वे अपने जो विचार प्रकट करते हैं उनसे उनके गांधी विचार-धारा के व्याख्याता होने का बड़ा सबल प्रमाण मिलता है।

'जीवन साहित्य' के जून, १९८३ के अक में 'हिंसा को मिटाने का मार्ग' शीर्षक टिप्पणी मे यशपालजी लिखते हैं, "आज का सपूर्ण विश्व शाति के लिए भटक रहा है और अनुभव कर रहा है कि उसका एकमात्र मार्ग अहिंसा है। लेकिन वह उस माग पर चल नही पा रहा है। हिंसा को दबाने के लिए अहिंसा को तेजस्वी बनाना होगा। यह तब और तभी सभव होगा जबकि मनुष्य अपनी आत्मा को पहचाने और अपनी आत्मिक शक्ति को उत्तरोत्तर विकसित करे। जिस प्रकार युद्ध का उद्भव मैदानो मे लडे जाने से पहले विचारो मे होता है, उसी प्रकार हिंसा का जन्म भी पहले आदमी के मन मे होता है। •

"स्वतन्त्रता मिलने के बाद ३५ वर्षों मे हमारे प्रयत्न देश की गरीबी और गुरबत को दूर करने के लिए हुए है। उसका परिणाम हम देख चुके हैं। विज्ञान और प्राविधि के क्षेत्र मे, निस्सदेह, असामान्य उन्नति हुई है, किंतु यह निर्विवाद सत्य है कि मानवीय धरातल पर मनुष्य बहुत दरिद्र और मुफलिस हो गया है।

"अब समय आ गया है कि मानवीय मूल्यो की स्थापना के लिए हम अहिसा के अमोघ अस्त्र को हाथ मे लेकर नई दिशा मे अपनी यात्रा आरभ करे। यदि मनुष्य मर जायगा तो देश भी जीवित नही रहेगा। अहिंसा का शक्तिशाली अचूक अस्त्र जिस दिन हाथ मे आ जायगा, उस दिन अणुबम, न्यूट्रोन बम, प्रक्षेपास्त्र सब फीके पड जाएगे और उनके कारखाने अपने आप बन्द हो जाएगे। आत्मिक शक्ति से उत्पन्न व्यक्ति का अभय ही हिसा की दावाग्नि का शमन कर सकेगा।"

इसी अक मे 'मूल्यो का ह्रास हमारा दायित्व' शीर्षक से उन्होने एक बडी ही सुन्दर टिप्पणी लिखी है। उसमे वे कहते हैं

" राजनेता कुछ भी दावे करे, जननेता कुछ भी आश्वासन दे, सत पुरुष कितनी भी आध्यात्मिक बाते कहे, यह सत्य है कि आज देश अनीति के फदे मे बुरी तरह फस गया है और वह फदा और भी कसता जा रहा है। यह सब एक दिन मे नही हुआ है। स्वराज्य मिलने के बाद इस स्थिति को लाने के लिए प्रत्येक क्षेत्र मे प्रयत्न हुए हैं। मूल्यो का यह ह्रास अपने आप नही हुआ है, जान बूझकर किया गया है। हर आदमी आज अपना स्वार्थ देखता है। प्रश्न यह उठता है कि इस स्थिति मे सुधार कैसे हो ? इस प्रश्न का उत्तर आसान नही है। जब अवा का अवा ही बिगड जाता है तब हालत को सुधारने के लिए भगीरथ प्रयत्न की आवश्यकता होती है। वस्तुत जिन्होने यह स्थिति उत्पन्न की है, वे ही इसे सुधार सकेगे। राजनैतिक, औद्योगिक धार्मिक, सास्कृतिक, साहित्यिक सभी क्षेत्रो के सगठित प्रयास की आवश्यकता है। साहित्यकार गदा साहित्य रचे और पाठक चरित्रवान् बने, यह हो नही सकता। धम पुरुष पाखड का जीवन जिये और उनके अनुयायी सच्चे धम का पालन करे, यह कैसे सभव हो सकता है ? व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन से सयुक्त जितनी इकाइया और प्रवृत्तिया है उनके परिशोधन के बिना वर्तमान सकट को दूर नही किया जा सकता। इस अधकार को दूर करने के लिए सबको ज्योति जलानी होगी, सबको अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार साधना करनी होगी।"

इसी प्रकार के विचार 'भ्रष्टाचार उन्मूलन का उपाय' शीर्षक टिप्पणी ('मगल प्रभात' अप्रैल, १९८३) मे पाए जाते है। वहा यशपालजी लिखते है, "पर यह व्यवस्था सदा नही रहेगी। कहावत है, कूडे के ढेर का भी भाग्य बदलता है, देश का भी बदलेगा। उस समय तक हम हाथ-पर हाथ रखे न बैठे रहे। अपने से आरभ कर दे। हम अपने को जितना कषाय मुक्त करेगे, उतना ही हमे लाभ होगा। हम ही क्यो ? सबको, क्योकि बुरे कामो की तरह अच्छे कामो का भी समाज पर असर पडता है, भ्रष्टाचार को मिटाने की दिशा मे पहला कदम

यह है कि हम अपने से भ्रष्टाचार के खिलाफ युद्ध करने की शुरुआत फौरन कर दें, साथ ही नई पीढ़ी को जल्दी-से-जल्दी जगा देने की कोशिश करें।"

मैं समझता हू कि गांधी विचारधारा का यही हार्द है।

अक्टूबर १६८३ के 'जीवन साहित्य' मे 'सरकारी चेतना जाग्रत हो' शीर्षक टिप्पणी मे यशपालजी लिखते हैं

"आज ऐसा जान पड़ता है कि शासन-व्यवस्था कुठित हो गयी है, यही कारण है कि इन दिनो दिन-दहाड़े डाके पड़ रहे हैं, कत्ल हो रहे हैं और भ्रष्टाचार खुलेआम चल रहा है। इसके लिए कौन जिम्मेदार है? सरकार? पुलिस? कानून के अधिकारी? जनता? हमारा उत्तर है—एक सिरे से सब। अब समय आ गया है कि इस दिशा मे गभीर चिंतन किया जाए और गभीर कदम उठाए जाए। सरकार गाधीजी का नाम लेती है तो उनके सिद्धान्तो को भी देखना चाहिए। जब-जब गाधीजी के आश्रम मे कोई अपराध हुआ, उसके लिए उन्होंने अपने को दोषी ठहराया और उसका प्रायश्चित किया। सरकार को भी वही नीति अपनानी चाहिए, अन्यथा गाधीजी का नाम लेना छोड देना चाहिए। आज तो उसकी चेतना लुप्त है।"

इस प्रकार के अनेकानेक उद्धरण दिए जा सकते है जिनसे श्री यशपालजी के गाधी-विचार-धारा के सशक्त व्याख्याता होने का प्रमाण मिलता है। इन टिप्पणियो का सकलन एक-दो ग्रथो मे किया जाय तो गाधी-विचार-धारा के छात्रो और चितको को उनसे बहुत मदद मिलेगी।

हिन्दी के दूत

रामेश्वरदयाल दुबे

□□

भारत का यह सौभाग्य रहा कि बीसवी सदी के प्रारभ मे उसे एक ऐसा महान पुरुष मिला, जिसने सदियो से बने गुलाम भारत को मात्र स्वतत्र ही नही बनाया, जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नही छोडा, जिस पर उसने प्रकाश न डाला हो। राष्ट्रीय गौरव की भावना के सचार के साथ-साथ गाधीजी ने भारतीय सस्कृति के महत्व को भी प्रतिपादित किया। यह सब कुछ करने मे गांधीजी को ऐसे निष्ठावान, त्यागी, देशभक्त अनेक व्यक्ति मिले, जिन्होंने तन, मन, धन से अपना सहयोग देकर उनके कार्यों को आगे बढ़ाया। भारत मे एक नये जीवन का सचार हुआ। भारत के प्रत्येक प्रदेश मे ऐसे एक-दो महान व्यक्तियो का उस समय होना भी भारत का सौभाग्य कहा जायेगा।

कालचक्र तो रुकता नही, गाधीजी गए, उनके अनुयायी वयोवृद्ध नेता भी एक के बाद एक ससार से

बिदा होते गये। उन महान व्यक्तियो मे से अब बहुत थोड़े व्यक्ति रह गये हैं। कुशल यह हुई कि महात्मा गाधी का कुछ ऐसा प्रभाव तत्कालीन युवको पर पडा था कि जो अपने भावी जीवन की महत्वाकांक्षाओं को एक ओर रख कर, स्वतत्रता-आन्दोलन मे वे कूद पड़े थे, अथवा गाधीजी द्वारा चलाये रचनात्मक कार्यों मे अपने को लगा दिया था। उस समय के इन निष्ठावान युवको का त्याग कम महत्व का नहीं है परन्तु उस समय के ये कर्मठ युवक वतमान समय मे अपने जीवन के उत्तरकाल मे पहुच रहे हैं और कार्य की दृष्टि से उतने समथ नही रहे हैं, जितने समथ वे गाधी युग मे थे। इस युवक दल मे से अधिकांश बदलती हुई परिस्थितियो मे राजनीति के चक्कर मे फस गये और इसलिए वे जनता से, रचनात्मक कार्यों से, दूर हो गये।

फिर भी कुशल है कि कुछ पुराने निष्ठावान नेताओ का मार्गदर्शन आज भी प्राप्त हो रहा है और तत्कालीन युवक आज साठ वर्ष पूर्ण कर जाने के बाद भी उत्साह और लगन के साथ निष्ठापूर्वक अपने क्षेत्र मे देश की सेवा कर रहे हैं। उन्ही मे से एक हैं श्री यशपाल जैन।

उपमाओ के द्वारा किसी बात को समझने-समझाने मे सरलता होती है।

मनुष्यो को चार वर्गों मे बाटा गया है

१ एक वे, जो ऊपर से कठोर होते है, भीतर से मृदु—जैसे नारियल।

२ दूसरे वे, जो ऊपर से मृदु होते हैं, भीतर से कठोर—जैसे बेर।

३ तीसरे वे, जो ऊपर से भी कठोर होते हैं और भीतर से भी कठोर—जैसे सुपाडी।

४ और चौथे वे, जो ऊपर से भी मृदु होते हैं और भीतर से भी मृदु—जैसे द्राक्ष।

मेरा विचार है श्री यशपाल जैन की गणना इस चौथी श्रेणी मे होनी चाहिए।

यशपालजी का-सा लुभावना व्यक्तित्व बहुत कम देखने को मिलता है। वह सच्चे अर्थों मे एक सहृदय मानव हैं। उनके हृदय की मिठास वाणी मे छलकती रहती है।

वह एक जाने-माने साहित्यकार है। उनके यात्रा-वर्णन हिन्दी के यात्रा साहित्य की अच्छी पूर्ति करते हैं। सरल शैली मे उच्च भावो से समन्वित उनके लेख पाठको को अपनी ओर सहज ही आकर्षित कर लेते हैं। बहुतो को इस बात का पता न होगा कि यशपालजी कवि भी हैं। उन्होने कविता के साथ ही साहित्य के क्षेत्र मे पदापण किया था।

जीवन साहित्य जैसी सस्कारी मासिक पत्रिका के सम्पादक के रूप मे उन्होने अपनी सम्पादन-कला का अच्छा परिचय दिया है।

भारतीय जनता मे पुस्तक-प्रकाशन के माध्यम से राष्ट्रीय भावनाओ को भरने वाली सम्माननीय सस्था—'सस्ता साहित्य मडल' के वह एक स्तम्भ हैं। उसके कार्यों को आगे बढ़ाने मे यशपालजी का विशेष हाथ रहा है।

सौभाग्य से उन्हे सम्पूर्ण विश्व मे घूमने का अच्छा मौका मिला है। प्राप्त अनुभव का लाभ उन्होने हिन्दी को दिया है।

उनके निकट पहुचना आत्मीयता का आलिंगन करना होता है। उनकी मैत्री-मधुरिमा पाकर इन पक्तियो का लेखक अपने को धन्य मानता है।

पता नही, किसके लिए कहा गया था, किन्तु वह कथन श्री यशपालजी के लिए अक्षरश ठीक बैठता है कि जब वे लिखते हैं तो लगता है बोल रहे हैं, और जब बोलते हैं तो लगता है फूल झडते है। आकषक व्यक्तित्व और विनम्र स्वभाव किसी को भी आकर्षित किया ही करता है। श्री यशपालजी को ये दोनो गुण

सहज प्राप्त हुए हैं। उनका कर्मठ जीवन कहां-कैसे बीता, क्या-क्या काम किए, इसे सब जानते हैं, यहां मैं राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनके प्रेम के बारे में कुछ लिखना चाहता हू।

अपने विद्यार्थी-काल से ही यशपालजी ने अपने हिन्दी-प्रेम का परिचय दिया था। अब तक के जीवन-काल मे उन्होंने किस-किस विधा में क्या-क्या लिखा है, उससे हिन्दी जगत परिचित है, क्योंकि उनका प्राय समस्त लेखन 'सस्ता साहित्य मडल' जैसी प्रसिद्ध संस्था तथा कुछ अन्य विख्यात संस्थाओ के द्वारा प्रकाश में आ चुका है। उनकी लेखनी आज भी गतिशील है और ऐसी आशा की जा सकती है कि वे हिन्दी के भडार को अनेक वर्षों तक भरते रहेंगे।

साहित्यकार की दृष्टि से यशपालजी का बडा भारी महत्त्व है, किन्तु मैं तो उनके राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति प्रेम पर मुग्ध हू। इन पक्तियो के लेखक के पूरे चालीस वर्ष भारत के हिन्दीतर प्रदेशो और विदेशो मे हिन्दी प्रचार के कार्य मे बीते हैं। यह मेरे जीवन का काय रहा है, इसीलिए जो भी व्यक्ति जहां भी हिन्दी-प्रचार मे सहायक रहा है, या सहायक हो रहा है, उसके प्रति श्रद्धा से मेरा मस्तक नत हो जाता है। यशपालजी राष्ट्रभाषा हिन्दी के मात्र समर्थक नही, उसकी रक्षा के लिए प्रखर प्रहरी का काम भी करते रहे हैं। 'जीवन-साहित्य' मे, 'लोक-शिक्षक' मे, जिन्होने भी राष्ट्रभाषा हिन्दी सम्बन्धी उनकी टिप्पणिया पढ़ी होगी, वे निश्चय ही प्रभावित हुए होगे।

घटना पुरानी है। एक दिन नित्य की डाक मे एक पत्र मुझे गयाना (दक्षिण अमरीका) से मिला। पत्र द्वारा जानकारी यह दी गई थी कि 'जीवन-साहित्य' के सम्पादक श्री यशपाल जैन यहा पधारे थे। उन्होने हिन्दी प्रचार के लिए काफी प्रेरणा दी है। इसलिए हिन्दी प्रचार के क्षेत्र मे हम सब कुछ करना चाहते है। उन्होने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा का परिचय दिया, उसी आधार पर यह पत्र लिखा जा रहा है।"

यशपालजी विदेशो मे काफी घूमे हैं। वे जहा भी गये, विशेषत उन देशो मे, जहा भारतमूल के निवासी अधिक सख्या मे रहते है, उन्होने हिन्दी की बात की और हिन्दी-प्रचार के लिए क्षेत्र तैयार किया। इसलिए यदि मैं उन्हे 'हिन्दी के दूत' कहू, तो उचित ही होगा।

यशपालजी जब-जब वर्धा पधारे, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को भेट देना न भूले। समिति के साथ उनका आत्मीय सम्बन्ध रहा है।

गाधी विचारधारा के यशपालजी पक्के अनुयायी हैं। 'सस्ता साहित्य मडल' जैसी विशाल प्रकाशन-सस्था को वह सुचारु रूप से तो चला ही रहे हैं, 'जीवन साहित्य' जैसी सुन्दर मासिक पत्रिका का सम्पादन भी करके प्रति मास बडी सात्विक सामग्री पाठको को भेंट करते रहे हैं।

यशपालजी का आदशमय जीवन सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत है। उनके द्वारा जनता-जनादन की चिरकाल तक सेवा होती रहे, यही मगलकामना है।

उनकी प्रेरणा

देवेन्द्र सत्यार्थी

□□

अगर मैं भूलता नही तो सन १९४१ का जमाना था, जब टीकमगढ़-यात्रा मे श्रद्धेय बनारसीदास चतुर्वेदीजी ने एक साथ श्री कृष्णानन्द गुप्त और श्री यशपाल जैन से मेरा परिचय कराया। तब शायद यशपाल जैन मेरे लिए 'दूर के आदमी' ही रहे।

फिर १९४३ मे हरिद्वार मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उत्सव मे यशपाल जैन से मुलाकात हुई, जब श्रीमती जैन भी उनके साथ थी। हम ने मिलकर देहरादून और मसूरी यात्रा का प्रोग्राम बनाया। उसी दौरान सहस्र धारा की यात्रा मे यशपालजी की जिन्दादिली मेरे लिए ड्राइग रूम की खिडकी की तरह खुल गयी। मुझे लगा, हजार साल से हम एक साथ रहते आ रहे हैं। जैसे एक ही परिवार मे हमारा जन्म हुआ हो। फिर १९४६ मे भाई यशपालजी ने 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' का सम्पादन किया, जिसके लिए मैंने 'बुन्देलखण्ड मूक नहीं' शीर्षक से एक निबन्ध लिखा।

१९४६ मे ही मुझे लाहौर से दिल्ली आ जाना पडा और भाई यशपालजी भी दिल्ली आ गये—टीकमगढ छोडकर।

वह दिन और आज का दिन!—ये अडतिस साल, मुझे लगता है, दिल्ली मे मैंने यशपालजी के साथ ही गुजारे। इसी दौरान मुझे आठ साल के करीब हिन्दी 'आजकल' के सम्पादक के रूप मे कार्य करने का अवसर मिला। अपने सम्पादन-काल मे मैंने यशपालजी से अनेक अवसरो पर मार्ग-दर्शन प्राप्त किया।

सरकारी नौकरी से मुक्त होकर मैंने हिन्दी भाषा की गहराई मे उतरने की प्रेरणा जिस कदर भाई यशपालजी से प्राप्त की, उतनी और किसी से नही।

मैं जब भी भाई यशपालजी से मिला, उन्हे जिन्दादिल ही पाया। सहानुभूति और सवेदना मे भी वे कभी पीछे नही रहे।

मेरी 'लोक गीत-यात्रा' भारत, लका और बर्मा तक सीमित रही। भाई यशपालजी जाने दुनिया के किस-किस देश की यात्रा कब कर आये। उनकी विदेश यात्रा को कल्पना मे मैंने अपनी ही यात्रा पाया। लिखित रूप मे और मौखिक रूप मे उनकी यात्रा का ज्ञान और विवेक मुझे सदा उपलब्ध रहा।

भाई यशपालजी मुझसे चार साल छोटे हैं। लेकिन इस विवेक मे वे मुझसे हजार साल बडे है।

एक उज्ज्वल चरित्र

विट्ठलदास मोदी

□□

यशपालजी मेरे लिए एक मधुर, सुगंधित कविता की तरह हैं। उस कविता को गुनगुनाकर मैं आनदित होता हू और उसकी सुगध से आप्लावित।

इस सुदर्शन कोमल से व्यक्तित्व के धनी से मेरा परिचय सन् १६४५ के करीब हुआ था। ये और पर दु खकातर भाई मार्तण्डजी उपाध्याय गोरखपुर पूज्य महावीर प्रसादजी पोद्दार से सस्ता साहित्य मडल-सबधी कार्यों के परामर्श के लिए छठे-छमाहे गोरखपुर आया करते थे। उस समय उनके आतिथ्य का दायित्व मुझ पर रहता था। इसी नाते भाई यशपालजी से परिचय हुआ, सान्निध्य बढ़ा और हम अभिन्न हो गये। अभिन्न यह नही कि मैं उन जैसा बन गया, बस इतना ही कि उनके मानस और उनके कार्य मे प्रवेश हो गया और मेरे लिए यशपालजी प्रेरणा के स्रोत बन गये।

मेरे जीवन पर यशपालजी का जो प्रभाव पडा, उसका विश्लेषण करना तो कठिन है, पर मेरे लिए इनकी सहायता मुक्तहस्त रही।

यशपालजी ने मुझे सत्साहित्य के प्रकाशन, भाषा के सरलीकरण, लेखन और सपादन मे ईमानदारी का मापदड दिया और कठिन परिस्थितियो मे भी इनका निर्वाह कैसे होता रहे, यह बताते रहे।

लक्ष्य और साधन दोनो की पवित्रता मे विश्वास करनेवाले यशपालजी स्वय मे एक सस्था हैं, एक नही, अनेक। विशुद्ध गाधीवादी होने के कारण गाधीजी की सभी प्रवृत्तिया हरिजन, गौसेवा, खादी, ग्राम-सेवा, प्राकृतिक चिकित्सा आदि मे लगे रहे और इनमे प्रवृत्त सस्थाओ से जुडे रहे। इस सबध मे जो साहित्य और जिस स्तर का साहित्य निकाला, वह सबके सामने है। वह सब इनके जीवन मे तो उतरा ही, पर ये प्रकाशन से ही सतुष्ट नही रहे, इन प्रवृत्तियो मे लगे व्यक्तियो को जब भी जैसी सहायता की जरूरत हुई, उसमे हाथ बढाते रहे।

विचारो के व्यक्त करने की यशपालजी की अपनी मधुर सरल शैली है। यह जब मच से बोलते हैं या किसी गोष्ठी मे अपने विचार प्रकट करने लगते हैं तो लगता है कि कितने विचार-मथन का सार हम पा रहे है। कई बार तो इनकी पत्नी भी इनकी वक्तृता सुनकर प्रभावित होने लगती हैं और सोचने लगती हैं कि इस आदमी को मैंने कितना जाना है, और जितना जाना है, उससे यह बहुत विस्तृत है।

बोलने और लिखने मे यशपालजी का हिंदी और अग्रेजी पर समान अधिकार है। इसका उपयोग ये किसी भी शुभकार्य मे होने देते हैं। कभी स्वामी मुक्तानदजी के भाषण की उनके ही मच से व्याख्या कर रहे हैं तो कभी किसी विचारक के विचारो को सरल सक्षिप्त करने मे लगे हैं। इस कारण इन्हे जगह-जगह बोलना पडता है। साहित्यिक गोष्ठियो मे तो ये बुलाये ही जाते हैं, स्कूल-कालेज यहां तक कि स्काउट रैलियों मे भी इनको बोलना पडता है।

इतना सार्वजनिक जीवन होने के कारण इन्हे जाननेवालो की सख्या बहुत अधिक है। परिणाम यह है कि इन्हे सहायता के लिए लोग बराबर घेरे रहते हैं। सबेरे से ही फ़ोन आने लगते हैं और लोगो का आना-जाना शुरू हो जाता है। कोई अध्यापिका बहन आ रही हैं कि मेरे पैर खराब हैं और जहा बस मुझे छोड़ती

है वहां से स्कूल एक किलोमीटर दूर है, किसी सडक के पास के स्कूल मे मेरी बदली करा दीजिए। कोई विद्यार्थी आकर कहता है कि आज ही मुझे फीस जमा करनी है और मेरे पास पैसा है नही। कोई मां आकर कहती है कि मेरी लडकी की सगाई नही हो रही है, आप अमुक से कह दीजिए, और यशपालजी इन छोटे-छोटे कार्यों को भी उतना ही महत्व देते हैं, जितना किसी बडे काय को और उसे किसी बाहरी का काम समझकर नहीं करते, उसमे इस प्रकार लग जाते हैं जैसे ये इनके सगे भाई-बहन हो।

यह न समझा जाये कि भाई यशपालजी कोई आर्थिक दृष्टि से सपन्न व्यक्ति हैं। आर्थिक सकट तो इन्हे बराबर झेलने पडे। पर कोई गलत आकर्षण इन्हे कभी भटका नही सका। सरकार की ओर से विदेश मे सास्कृतिक अधिकारी के कार्य के लिए प्रस्ताव आया तो उसे ठुकरा दिया। कहा, मैं और मेरी भाषा मेरे देश की सेवा के लिए हैं। मित्रो ने समझाया कि तीन वर्ष की तो बात है। कर आओ। आर्थिक दृष्टि से अच्छा रहेगा, पर यशपालजी टस-से-मस नही हुए। परिणाम-स्वरूप इनकी पत्नी आदर्शजी को प्रशिक्षण का काय सभालना पडा और आज भी वे कालेज मे पढाती हैं।

यशपालजी को जो जानते हैं, वे उनके प्रिय भी हैं। गली के खेलते बच्चे भी खेल छोडकर उन्हें नमस्कार करने लगते है और बडे इनसे बराबर परामर्श लेते हैं। इनका पूरा मोहल्ला जैसे इनका घर है। रास्ते मे मिलनेवाले परिचित बिना दो-एक शब्द कहे आगे नही जाने देते। ये टोकते भी रहते हैं कि 'अरे भाई डाक्टर, लगता है तुम सिगरेट ज्यादा पीने लगे हो।" डाक्टर मुह चुराने की कोशिश करता है। फिर कहता है कि 'मेरे चिकित्सक भी कहते हैं कि अब दिल का दौरा पडा तो बचोगे नही, सिगरेट छोड दो। उसके कहने से तो नही छोडी, पर अब नही पीऊगा।"

यशपालजी को इनके पिताजी ने स्वास्थ्य के सबध मे बराबर कुछ सीख दी थी, "सात्विक भोजन करो और उतावली मे नही। जल्दी हो तो कम खाओ।" साथ ही यह भी शिक्षा दी, "सवेरे नियमित रूप से टहलने जाओ।" यह सब प्राकृतिक जीवन है, और यशपालजी प्राकृतिक चिकित्सा से अधिक, प्राकृतिक जीवन मे, बीमार न पडने मे विश्वास करते हैं। विश्वास तो करते है, पर कार्याधिक्य से बच नही पाते। ऐसे मे शरीर, मन और मस्तिष्क जब थक जाता है तो प्रकृति की ओर दौडते हैं। पहाड की ओर भागते है। इसके लिए कितनी ही बार हिमालय की यात्रा की, देश-दर्शन किया और दर्जनो बाहर के देशो की यात्रा की। यात्रा से जब तरोताजा होकर लौटते हैं तो दुगुने उत्साह से काम मे लग जाते हैं।

यशपालजी जैन हैं। जैन धर्म का इन्हे पूरा और गहरा ज्ञान है और उसके प्रति मन मे अगाध श्रद्धा है। पर ये किसी धर्म या दशन से बधे नही है। कभी दिखाई देता है कि इन पर अरविंद का प्रभाव है तो कभी उनका झुकाव स्वामी मुक्तानद की ओर है। कभी बुद्ध की विपश्यना की साधना करते है। पर यह सब दिखाई ही देता है। सबको यह पूरी तरह से जानने की कोशिश करते है और जो जहा अच्छा मिल जाता है, उसे अपने दर्शन की धारा मे सम्मिलित कर लेते हैं। वास्तव मे यशपालजी स्वय एक निर्मल, पवित्र दर्शन हैं। आज जिस आदमी की माग है, जरूरत है, उसके प्रतीक हैं।

मैं इस उज्ज्वल चरित्र, साकार मधुरता, कर्मठ व्यक्तित्व के इस धनी को उनकी ७२वी वर्षगाठ पर प्रणाम करता हू और जो इनसे मुझे मिला है, उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हू।

सुमन की जयमाला

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

भाई यशपालजी के बहत्तर वर्ष होने के समाचार से आह्लादित भी हुआ और विस्मय-विमुग्ध भी, क्योंकि मुझे तो वे बहुत कुछ वैसे ही लगे जैसे ४०-४२ वर्ष पूर्व लगे थे, जब डा सुधीन्द्र के साथ मुझे भी वे दादा हरिभाऊजी उपाध्याय के पास घसीट ले गए थे। शायद हम लोग शिमला हिन्दी साहित्य सम्मेलन से वापस आ रहे थे, रास्ते भर श्री श्रीमन्नारायणजी अग्रवाल से काव्य-चर्चा होती रही थी और यशपालजी संबध-सूत्र की भाति सब मणियो को एक मे गूथने के लिए व्यस्त दिखाई पडते थे। हम लोगो को जैनेन्द्रजी के घर की तीर्थयात्रा भी उन्होने कराई थी। 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' से भी जीवत सपर्क का मेरे लिए वह पहला ही अवसर था। उस दिन की गोष्ठी मे हरिभाऊजी की विदग्धता से परिचित होने के साथ-साथ उनकी स्नेह-स्निग्ध-आत्मीयता से उपकृत हो सकने का सुयोग भी कम उपलब्धि न थी, जिसका मूल्य समय बीतने के साथ-साथ चढ़ता ही गया, बल्कि आज तो वह बहुमूल्य हो गया है। उसी समय यशपालजी ने अपनी रचनाओं के साथ एक 'गांधी डायरी' भी मुझे दी। तब तो इसमे कुछ असाधारण बात नही लगी, पर इस सहज सौजन्य ने मुझे डायरी लिखना सिखा दिया, जो कई बार मुझे छोटे मोटे सकटो से उबार चुका है। एक बार गाधी डायरी के प्रयोग की लत लग जाती है तो फिर वह जीवन भर नहीं जाती है। उनकी कृपा का उपहार नियमित रूप से नेपाल के पाच वर्षों मे भी सुलभ होता रहा। इस छोटी सी घटना के माध्यम से वर्ष में एक बार यशपालजी को याद कर लेना मेरे लिए अनिवार्य हो गया। इसका प्रतिफल स्वय मे एक उपन्यास नहीं तो लबी कहानी की सामग्री तो जुटा ही सकता है। उसी के प्रतिबिम्ब रूप मे यशपालजी की गौर मुखाकृति, उन्नत ललाट, विरल श्वेत केश और लाल आखे मेरी स्मृति मे सदा सजीव होती रही हैं। अपनी मीठी मुस्कान के द्वारा वे जीवन की परेशानियो को ऐसी सहजता से सहला देते हैं कि निकट से निकटतम व्यक्ति भी उनकी अतव्यथा की थाह नहीं लगा सकता। उनकी सहज आत्मीयता बड़े-से-बडे विरोधी को पराजित करने में समर्थ हैं।

आस्थावान भाई यशपालजी के गले में सुमन की यह जयमाला समर्पित है।

हमारा यश-पाल

लक्ष्मीचंद्र जैन

□□

यशपालजी ने कितने ही मित्रों की जयन्तियो का आयोजन किया है। इस प्रकार के आयोजनो मे सक्रिय भाग लिया है, स्नेहाजलिया और श्रद्धा-सुमन भेंट किये हैं—और इस प्रकार कितने ही हृदयो मे परितोष के स्नेह-दीप प्रोद्भासित किये हैं। वे सब, हम सब कृतार्थ हैं। उनके अपने अभिनदन के ब्याज से कलियो की ऊपरी परतो के पार का सौरभ छलक पडा है! यह अभिनदन हमारे लिए है, और हम प्रमुदित हैं।

यह राजधानी यशपालजी के और हमारे देखते-देखते क्या से क्या हो गई है! हमारी अपनी यह नगरी जिसके गली कूचे हमारे स्वतन्त्र सुखद विहार के लिए कभी इतने विस्तृत और खुले हुए थे और हर घर परिचित तथा प्राय हर जन अपना था वहा हम आज स्वय प्रवासी और अजनबी-से हो गए हैं। यशपालजी इस स्थिति से त्रस्त तो हुए पर भयाक्रान्त नही। उन्होने मित्रो की मडली गठित की और इस बीहड मे साहित्य की, सस्कृति की, कला की कुछ क्यारिया रोपी। साहस और श्रम से उनका सरक्षण किया। आज जो कुछ लताए झूम रही हैं, जो कुछ फूल खिल रहे हैं, और मरुभूमि मे एक शाद्वल लहराता दिखाई दे रहा है, इस दृश्य के निर्माण मे यशपालजी का विशेष योगदान है। सरकारी तन्त्र से हटकर, इस सामाजिक भूमिका का अन्यतम महत्व है। एक प्रमुख साहित्यिक सस्थान का इतना बडा दायित्व, सास्कृतिक गतिविधियो का इतना व्यापक विस्तार, विदेशो की इतनी यात्राए, अनेक सस्थाओ की अनेक अपेक्षाए—इन सब के बीच अपने निजी लेखन का इतना प्रचुर परिमाण—सब आश्चर्यकारक है। इतनी क्षमताओ की शलाका जिनको जहा उपलब्ध है, उनका पथ सदा उज्ज्वल है, प्रशस्त है।

इसीलिए मैं कहता हू कि हम मित्रो का यह अभिनन्दन-आयोजन कृतज्ञता ज्ञापन का प्रतीक है।

मेरे पास सुरक्षित है वह भोज-पत्र जो बहुत बरसो पहले यशपालजी ने पुण्य-सलिला गगोत्री के तट पर बैठ कर मेरे लिए लिखा था और मेरे पास कलकत्ता भेजा था। आत्मीयता और स्नेह का वह उपहार मेरी स्मृति मे अमर हो गया है।

अपनो के यश का सवर्धन करने वाला व्यक्ति अपना नही, हमारा यश-पाल है।

यशपालजी का यश इसी प्रकार भासमान रहे, उनका तारुण्य अक्षय रहे, साफल्य उनकी मनोकामनाओ का अनुगमन करे, यही मेरी शुभकामनाए हैं।

यह अप्रत्यक्ष रिश्ता

कमलेश्वर

□□

दिल्ली मेरे लिए भयानक सघर्ष की जगह रही है। उन दिनो को न कभी भूल सकूगा, न भूलना चाहूगा। यातना और तकलीफ के दिन ही तो हमे जिंदगी से जोडे रखते हैं! तब तक मुझे तकलीफ बर्दाश्त करना नहीं आता था। अपनी तकलीफ को दुनिया की तकलीफ से जोडना नहीं आता था और अपने समय की तकलीफो को समझने की तमीज तब शायद आती है, जब व्यक्ति खुद अपनी तकलीफो को शालीनता से बर्दाश्त करना सीख लेता है।

दिल्ली के सघर्षमय दिनो को इसी समझने और बर्दाश्त करने के पहले दौर से गुजर रहा था कि एक दिन मेरे दोस्त नरेश वेदी ने कहा —"सस्ता साहित्य मंडल चलो, मुझे वहा एक काम है।"

'सस्ता साहित्य मडल' एक गांधीवादी प्रकाशन-सस्था है, यह जानकारी थी, अत मैं वहा जाने के लिए अपने को तैयार नही कर रहा था, क्योकि गांधीवाद से मेरी वैचारिक पटरी नही बैठती थी। दोस्त ने कहा, इसलिए चला गया। वहा तीन अग्रजो को देखा। पहला आकर्षण थे विष्णु प्रभाकर, दूसरे यशपाल जैन और तीसरे मार्तण्ड उपाध्याय। पाच-सात मिनट की निहायत टूटी-फूटी मुलाकात के बाद, धीरे-धीरे अन्य चलती-फिरती मुलाकातो के दौरान एक अनुभव निरन्तर प्रगाढ़ होता गया कि 'तकलीफों को शालीनता से बर्दाश्त करना और अपने सघर्ष के केंद्र से न हटना' यदि सीखना है तो गांधीवादियो से सीखा जा सकता है। तकलीफ-दर-तकलीफ की कडियों की इतिहासगत जानकारी की दृष्टि गांधीवाद नही देता, पर उस तकलीफ को अविचलित होकर सहने वाले सक्रिय आदमियो की एक अद्भुत जमात वह जरूर देता है।

और यही से यशपालजी से एक अप्रत्यक्ष रिश्ता जुडा, जो भाई, मित्र या साथी बनने से ज्यादा महत्व-पूर्ण था। चलती-फिरती लबी-छोटी मुलाकातो के दौरान मैंने यह जाना कि अपनी तकलीफो को कैसे बर्दाश्त किया जाता है। उन्ही तकलीफो के बीच रहकर उनसे ज्यादा बडी तकलीफों से कैसे जुडा जाता है। अपने भीतर छुपी सघर्ष की शक्ति को क्षय से कैसे बचाया जा सकता है।

मुझे यह अप्रत्यक्ष रिश्ता बहुत महत्वपूर्ण लगता है—मैं इस रिश्ते को प्रणाम करता हू और मुझे मालूम है कि यह सहज प्रणाम यशपालजी तक पहुचता है।

स्वस्थतम परम्पराओं के पुष्टकर्ता

देवेन्द्र कुमार गुप्त

□□

समाज की स्वस्थ भावनाओ को पुष्ट करने के लिए साहित्य एक आवश्यक भोजन भी है और दवा भी। यद्यपि आज जिन्हे साहित्यिक की सज्ञा दी जाती है, वे उसे धधा बनाकर नशे की जगह बेचने वाले भी हो सकते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिन्हे आत्म-प्रसिद्धि का नशा हो जाता है। थोडे-से सच्चे साहित्यिक हैं, जो उसे साधना बनाकर समाजोत्थान की दिशा मे काम करते हैं। यशपालजी ने अपनी प्रतिभा और कलम का उपयोग साहित्य-जगत की स्वस्थतम परम्पराओ को पुष्ट करने मे लगाया है और लगा रहे हैं।

मानवता जिन आधारो पर अग्रसर होती है वे सत्य, प्रेम और करुणा के तत्व है। जहा-जहा और जैसे-जैसे भी ये प्रकट हो, इनको फैलाना और गहरे ले जाने मे मदद करना, यह साहित्यिक का काम है। साहित्य-कार प्रवृत्ति-कर्त्ता नही, परन्तु समाज को सही दिशा में प्रवृत्त करने वाला है। इसी प्रकार का प्रोत्साहन, आश्वासन और सहारा हर भले काम में देने का जिम्मा जिन साहित्य-सेवियो ने उठाया है, उनमे यशपालजी की गिनती है।

जीवन के ७२ वर्ष पूरे करना कोई कम बात नही है, किन्तु आज हमारे सामने राजाजी, कुजरुजी, काका साहेब, विनोबा जैसे मूर्धन्य बुजुर्गों के नब्बे और सौ के पास पहुचकर जाज्वल्यमान प्रतिभा का कीर्तिमान स्थापित करने के प्रमाण हैं, और आज उन बुजुर्गों मे मोरारजी भाई हमारे सामने हैं। मानना चाहिए कि यशपालजी ने अभी आधी उम्र पूरी की है। उनकी साधना और प्रतिभा का लाभ उत्तरोत्तर समाज को अधिकाधिक प्राप्त हो, इस कामना के साथ उन्हें अनेकानेक बधाई।

उनकी विरल विशेषता

भंवरमल सिंघी

□□

भाई यशपालजी को मैं कितने वर्षों से जानता हू, यह बता पाना बहुत कठिन होगा। कब, कहा और किस प्रसग मे उनसे पहले-पहल मिला, इसका भी स्मरण नही है। बस, यही जानता हू कि वर्षों से उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस घनिष्ठता को कायम रखने वाला उनका स्वभाव है।

मेरे मन पर उनके बारे मे यह छाप बराबर अंकित रही है कि वे बडी निष्ठा और लगन वाले सेवा-

भावी साहित्यिक हैं। साहित्य और दूसरी तमाम प्रवृत्तियों के माध्यम से वे सदैव ही समाज के प्रति अर्पित होकर रहे हैं। वे समाज के माध्यम से साहित्य के हैं और साहित्य के माध्यम से समाज के हैं। बड़े भाग्यशाली हैं कि जिन आदर्शों, विचारों और मूल्यों को लेकर उनकी जीवन-भूमिका बनी, उसके अनुसार ही जीवन की सारी यात्रा चलती रही।

वे जैन हैं। स्याद्‌वादाश्रयी चिंतन पद्धति उनके लेखन और आचरण दोनों में चिरंतन दिखाई देती रही है। जितनी स्पष्टता और सच्चाई के साथ वे अपनी बात कहते हैं, उतनी ही सच्चाई और समझ के साथ वे दूसरो की बात भी सुनते हैं। वे आग्रही हो सकते हैं, दुराग्रही कभी नही। और एक बात, मत का भेद उनके जीवन मे कही, कभी मन का भेद नही बना। इस बात का मुझे कई अवसरों पर अनुभव हुआ। यह उनकी विशेषता है, जो विरल ही होती है।

उनके विचार और व्यवहार में बहुत दूरी नही है। वे सादगी और सरलता के जीवन-पथिक हैं।

भारतीय परम्परा के साहित्यकार

जयदयाल डालमिया

□□

सौम्य व्यक्तित्व, मुख पर सदा हास्य, श्वेत धवल परिधान, जिसमे हमेशा खादी कुर्ता और धोती ही होती है—हिन्दी के सुप्रसिद्ध गाधीवादी साहित्य की प्रकाशन-सस्था के मत्री और उसकी मासिक पत्रिका 'जीवन-साहित्य' के सम्पादक श्री यशपालजी जैन से मेरा सम्पर्क बहुत पुराना है। स्नेह के नाते वे मुझे 'भाईजी' मानते और पुकारते हैं। उनके विशुद्ध भारतीय सस्कारो और विचारों से सहज प्रभावित होना स्वाभाविक है।

हिन्दी साहित्य का क्षेत्र वैसे तो बहुत व्यापक और विशाल है। उसमे अनेकानेक प्रकार की पुस्तको के लेखक हैं, जिनमे से अनेको की पुस्तकें पढने का मन भी नही होता, परन्तु श्री यशपालजी के विशुद्ध मानवीय विचार उनके लेखो, यात्रा-सस्मरणो और उनकी अन्य पुस्तको को पढ़ने की प्रेरणा देते हैं। यदि यह कहा जाए कि वे भारतीय परम्परा के पृष्ठपोषक साहित्यकार हैं तो अतिशयोक्ति नही होगी।

मेरे बचपन के परम मित्र थे मोहनलाल गोयनका, जो गीता प्रेस के सस्थापक सेठ श्री जयदयालजी गोयनका के छोटे भाई होने के साथ-साथ उनके गोद लिए हुए पुत्र भी थे। स्वतन्त्रता आन्दोलन मे उन्होंने सक्रिय भाग लिया था। पीछे मानसिक रोग के कारण वे अधेड उम्र मे काल-कवलित हो गये। श्री यशपालजी से भी उनका निकट का परिचय था। उनकी प्रथम वर्षी के अवसर पर उनके प्रथम श्राद्ध के रूप मे एक ग्रन्थ निकालने का विचार हुआ। समय कम था, फिर भी श्री यशपालजी ने मोहनलाल गोयनका के जीवन के यशस्वी कृत्यो और प्रेरक जीवन से सबधित सामग्री का सम्पादन मेरे अनुरोध पर इतनी शीघ्र करके उसे

'जीवन के धनी' के नाम से प्रकाशित करवाया, जिसके लिए मेरे मन मे उनके प्रति जो स्नेह था, वह और भी बढ़ गया। इस ग्रन्थ की बड़ी प्रशसा है।

लगभग २२ वर्ष पूर्व दिल्ली में रामायण सम्मेलन के नाम से पं श्री कपीन्द्रजी ने पहले वर्ष तो नौ दिन का और दूसरे वर्ष एक मास का एक धार्मिक आयोजन कोटला-फिरोजशाह मैदान मे किया, जिसमे हम सब लोगो का सहयोग था। श्री यशपालजी ने अपने अथक परिश्रम से इस सम्मेलन को बहुत सफल बनाया। इस सम्मेलन मे देश के अनेक प्रख्यात सतो के अतिरिक्त राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू और अन्यान्य मत्रीगण पधारे। तत्कालीन लोकसभाध्यक्ष श्री अनन्तशयन आयगरजी ने भी बडे भक्तिभाव-पूर्वक इस सम्मेलन मे भाग लिया।

श्री यशपालजी ने अनेक देशो की यात्राए की हैं। यात्रा मे उनको आनन्द आता है। मुझे तो कभी उनके साथ यात्रा का अवसर नही मिला, पर मेरे ज्येष्ठ पुत्र विष्णुहरि डालमिया तथा अन्य लोगो ने उनके साथ अमरनाथजी की यात्रा की, जो स्मरणीय रहेगी।

जीवन मे प्रसन्नता और आह्लाद का अपना अद्भुत अस्तित्व है। जीवन की अनेक प्रकार की समस्याओ के बीच उनसे जूझते हुए सदा खुश रहना और अपनी खुशी—प्रसन्नतापूर्ण हसी की छाप दूसरो पर छोडते रहना—यह प्रकृति समय के साथ-साथ कम देखने मे आती है। हमारे श्री यशपालजी इसके विरल उदाहरण हैं। वे सदा खुश रहते हैं और अपने निर्मल हास्य से दूसरो को भी खुश रखते हैं। राजधानी दिल्ली के साहित्य-सेवियो मे उनका प्रमुख स्थान है।

श्री यशपालजी अपने ही हैं। जिनसे आत्मीयता होती है और जो अति निकट होते हैं, उनके सम्बन्ध मे अधिक लिखा नही जा सकता। इसलिए मैं और तो क्या लिखू ? वे एक उदार व्यक्तित्व, सरल मन और निश्छल आत्मीयता से सम्पन्न व्यक्तित्व के धनी हैं। देश, साहित्य और समाज के प्रति उनकी सेवाओ से दिल्ली ही नही अपितु भारत के अग्रगण्य व्यक्ति अवगत हैं।

जीयात् चिर श्री यशपाल जैनः

वैजनाथ महोदय

□□

मुझे ठीक स्मरण नही कि श्री यशपालजी से पहले-पहल कब मिलना हुआ था। तीस-पैंतीस वर्ष तो अवश्य हो गए हैं। मिलना बना होगा एक साहित्यिक के रूप मे, परन्तु उसकी परिणति हो गई मित्रता मे। और अब कम-से-कम मेरे नजदीक तो वे एक साहित्यिक की अपेक्षा एक स्नेहशील मित्र ही अधिक हैं। श्री जैनेन्द्रजी, श्री विष्णु प्रभाकरजी, श्री मुकुटजी और श्री यशपालजी का स्नेह मेरे लिए तो एक निधि के रूप मे ही है।

यशपालजी ने काफी साहित्य-सृजन किया है। 'जीवन साहित्य' के निमित्त से यों हर महीने अप्रत्यक्ष मिलना हो ही जाता है, परन्तु जब कभी मैं दिल्ली जाता, लोकसभा के सदस्य काल मे मैं दिल्ली मे रहा अथवा जब-जब भी वे किसी प्रसग से दिल्ली से इन्दौर आते हैं, वे अवश्य ही अपने स्नेह से मुझे नहला जाते हैं।

अपनी लेखनी के द्वारा उन्होंने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, वह प्रसिद्ध ही है। उनकी भाषा सहज, सरल, स्वाभाविक और विशद होती है। उसमें विद्वत्ता का बोझ जताने वाली कृत्रिमता कही नहीं। वे अपने आप को जैन लिखते हैं, परन्तु यह सज्ञा केवल सज्ञा है, अन्यथा उनकी दृष्टि विशाल, अनुकूल गहन और कथ्य तथा प्रतिपादन हृदय-स्पर्शी है।

पिछली बार वे इदौर आए थे, तब स्वामी मुक्तानदजी की भेंट का और उस भेंट मे उनको जो अद्‌भुत दर्शन हुआ उसका हाल सुना रहे थे। आश्चर्य और आनद हुआ।

बडे आनंद की बात है कि आज हमारे ये मित्र बहत्तर वर्ष के हो रहे हैं। मैं निर्णय नही कर पा रहा हू कि इस सुखावसर पर उन्हें बधाई दू या सौभाग्यवती आदर्श बहन को। परन्तु असल मे दोनों पात्र हैं बधाई के। सौ आदर्श बहन विदुषी तो हैं ही, परन्तु उन्होंने यशपालजी के स्वास्थ्य की सभाल द्वारा अपने गृहिणी पद को मडित किया है।

परमात्मा इस विद्वद्दपत्ति को पुत्र-पौत्रादि सहित सुखी सम्पन्न दीर्घायु प्रदान करें।

हिन्दी और भारतीय संस्कृति के संवाहक

वृन्दावन दास

□□

बन्धुवर यशपाल जैन शुद्ध साहित्यिक वृत्ति के महानुभाव हैं। उन्हें यदि कोई भी व्यसन है तो वह साहित्य के अनुशीलन और उसकी चर्चा का है। वे प्रसन्न वदन और मिष्टभाषी हैं। कोई भी व्यक्ति उनसे भेंट कर उनकी मृदुभासिता और सहृदयता से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। यशपालजी से हमारा लगभग दो दशको से भी अधिक पुराना और घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमे उनसे अनेक बार मिलने और वार्तालाप करने के अवसर मिले हैं। हमारी धारणा है कि उनके हृदय में मित्रो और साहित्य-सेवियो के लिए अपार स्नेह का सागर लहलहाता रहता है। उनके व्यवहार मे कृत्रिमता लेशमात्र भी नही। वे जो कुछ कहते हैं उसे स्वय करने को उद्यत हैं, बनावट और नाटकीयता उनसे सौ-सौ कोस दूर है। यशपालजी के व्यवहार मे चुम्बकीय शक्ति है। जो उनसे मिला, उनका होकर रह गया। अनेक गुणो से अलकृत यशपालजी वस्तुत समाज की एक निधि हैं।

यशपालजी ने देश और विदेशों मे खूब भ्रमण किया है और इससे हिन्दी की दीप्ति-शिखा ही

प्रज्वलित हुई है। विदेश-भ्रमण ने यशपालजी की हिन्दी-सेवा में सोने में सुहागे का काम किया है। वे विदेशी विद्वानो से भारतीय सस्कृति के सवाहक के रूप मे मिले। उन्होंने भारतीय सस्कृति, साहित्य और कला का जो मनोरम रूप विदेशी विद्वानो के सम्मुख रखा, उससे उनके सपर्क मे आने वाले लोग अत्यधिक प्रभावित हुए। वस्तुत: यशपालजी ने हिन्दी की ध्वजा को विदेशो में फहराया। उनकी विदेश-यात्राएं अपने मनोरजन के लिए नही, हिन्दी के और भारतीय सस्कृति के हित सवर्द्धन के लिए हुई थी।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के पदाधिकारी होने के कारण यशपालजी को नित्य नैमित्तिक कार्य तो करना ही पडता है, परन्तु इस कारण उन्होने अपनी साहित्य-साधना मे कोई व्यवधान उपस्थित होने नही दिया। साहित्यानुशीलन और लेखन उनके जीवन का मुख्य अग बना रहा। यही कारण है कि वे अनेक ग्रन्थरत्न हिन्दी ससार को देने मे समर्थ हुए। वे लगभग चालीस वर्षों से 'जीवन साहित्य' का निरन्तर सपादन करते रहे हैं। यह 'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र है।

यशपालजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है और यही कारण है कि उनका रचित साहित्य विविध विधा-सम्पन्न है। उन्होने कविताए और कहानिया दोनो ही लिखी हैं और उनकी सख्या भी बहुत बडी है। जहां इन्होने सपादन कार्य करके प्रचुर साहित्य दिया है, वहां सकलन और अनुवाद द्वारा भी पर्याप्त साहित्य की सृष्टि की है। प्रकाशित ग्रन्थो मे उनके अनेक कहानी-सग्रह, जीवनियां, रूपक-सग्रह, यात्रा-पुस्तकें, अनूदित उपन्यास तथा सकलित और सपादित ग्रन्थ तथा पुस्तकें हैं, जो कुल मिलाकर एक विपुल साहित्य संग्रह हो जाता है। यशपालजी ने जैन-साहित्य पर भी अनेक लेख और पुस्तकें लिखी है। 'जीवन साहित्य' के अतिरिक्त आपने 'मिलन', 'जीवन सुधा' और 'मधुकर' आदि पत्रो का सम्पादन अनेक वर्षों तक किया है।

यशपालजी का चिन्तन सुस्पष्ट और उनके विचार परिपक्व हैं। उन्होने अपने कृतित्व द्वारा नई पीढ़ी के साहित्यिको को एक दिशा बोध दिया है। यशपालजी की अनेक कृतियो के भारतीय तथा विदेशी भाषाओ मे अनुवाद हुए हैं। सम्पादक के रूप मे भी यशपालजी ने प्रभूत सफलता प्राप्त की है। उनके सम्पादित सभी ग्रथ और पत्र-पत्रिकाए उच्चकोटि की हैं और उच्चतम साहित्यिक सामग्री से विभूषित हैं।

यशपालजी ने मा भारती पर अति सुवासित पुष्प चढ़ाए हैं उन्होंने बडी निष्ठा और अध्यवसाय से हिन्दी की सेवा की है। वे इसी प्रकार हिन्दी का हित सवर्द्धन करते हुए शतजीवी हो, यही हमारी मगल-कामना है।

एक व्यापक व्यक्तित्व

जगन्नाथ प्रभाकर

□□

श्री यशपाल जैन का नाम जबान पर आते ही मेरी याददाश्त मुझे लगभग तीन दशक की वादियों में से पीछे लौटा ले जाती हुई विगत के एक रगमच पर उपस्थित कर देती है। दिल्ली चांदनी चौक के एक कारोबारी भवन के ऊपर की मजिल के कमरे के सामने एक कुर्सी पर मैं बैठा हू और मेरे सामने एक अन्य कुर्सी पर एक अपरिचित महानुभाव विराजमान हैं। मेरे हाथ मे एक छोटी-सी पुस्तिका है। अपरिचित महानुभाव वह पुस्तिका अपने हाथ मे ले लेते हैं। उसके आकर्षक रगीन आवरण पर लेखक के रूप मे मेरा नाम लिखा है—'जगन्नाथ प्रभाकर'। देखते ही वह कह उठते हैं, "अच्छा! तो आप विख्यात लेखक श्री विष्णु प्रभाकर के 'प्रभाकर' की कलगी अपने सिर पर सजाकर चमकने का प्रयास कर रहे हैं।"

"जी नहीं," मैं तुरन्त सकोच भरे स्वर मे उत्तर देता हू, "प्रभाकर ब्राह्मणो की एक जानी-मानी उपजाति है, मैं उसी उपजाति का होने के कारण 'प्रभाकर' शब्द को अपने विद्यार्थी जीवन से अपने नाम के सयुक्त किए हुए हू।"

यह यशपालजी से मेरी पहली जान-पहचान थी, एक क्षणिक झांकी—धुधली-सी।

फिर कुछ वर्षों के पश्चात।

अकस्मात एक दिन प्रात काल महात्मा गाधी की समाधि पर पुन उन्ही अपरिचित महानुभाव से भेंट हो गयी।

मेरे एक मित्र हैं, श्री हसराज 'रहबर'। हिन्दी-उर्दू के जाने-माने लेखक हैं। देश के आजाद होने के पहले लाहौर से एक दैनिक उर्दू समाचार-पत्र 'वीर भारत' के सम्पादक मण्डल में 'रहबर' साहब और दैनिक हिन्दी 'विश्व-बन्धु' के सम्पादक मण्डल मे मैं काम करता था। ये दोनो समाचार पत्र एक ही प्रबन्ध व्यवस्था और एक ही ट्रस्ट के स्वामित्व मे, एक ही भवन से प्रकाशित होते थे। यहां उन्ही 'रहबर' महोदय के सौजन्य से श्री यशपाल जैन और श्री विष्णु प्रभाकर से मेरा परिचय हुआ। यह परिचय विकसित और प्रगाढ होता चला गया। कुछ ही दिनो मे हम तीनो स्वय और हमारे जानने वाले अन्य सभी सज्जन अनुभव करने लगे कि हम तीनो मानो एक ही परिवार के सदस्य हैं।

उन दिनो महात्मा गाधी की समाधि की रूपरेखा ऐसी न थी, जैसी आज है। तब समाधि के गिर्द समतल चौकोर हरा-भरा क्षेत्र फैला हुआ था। उस क्षेत्र की सीमाओं पर लाल बजरी का लगभग चार-पांच फुट चौडा मार्ग था। उसी मार्ग पर समाधि के गिर्द और बहुत से प्रात परिभ्रमण अभिलाषियो की तरह हम तीनों साथी नित्य घूमा करते थे और बाद को एक निश्चित समय तक बैठकर सुस्ता लेते। गपशप भी करते। फिर निश्चित समय पर उठकर अपने-अपने घरो को लौट जाते। इस निश्चित समय का लेखा-जोखा श्री विष्णु प्रभाकर रखते। क्या मजाल जो घूमने-सुस्ताने और लौटने के समय में एक सैकिण्ड भी इधर-उधर हो जाय!

सुस्ताने के समय में निरर्थक गपशप नही चलती थी—समाज नीति, राजनीति, साहित्य और भाषा आदि विषयो पर बातचीत हुआ करती। कई बार मतभेद की उत्तेजना से गर्मागर्मी भी हो जाती, परन्तु कभी

बहादुरी का कोई कारनामा न हो पाता। कुछ क्षण तक चेहरे तमतमाते रहते, भौंहें तनी-सी रहतीं और बाद को तुरन्त फिर एक शान्त और आत्मीय भाव शीरीनिया बांटने लगता। ऐसे अवसरो पर यशपालजी की यह विशेषता अपना सिक्का जमाकर रहती कि उनके चेहरे पर आवेश या रोष की लहरें ज्यो-ही उभरने लगती तुरन्त मुस्कराहटें बढ़कर उन्हे अपनी विस्तृत और गम्भीर गोदी में खींच लेती और मधुर भाव अपनी विजय की खुशी मे नाच उठता। इस प्रकार के सक्षम भाव ने यशपालजी को मुस्कराहटो का बादशाह बना डाला है।

लगभग साढे पाच फुट के शरीरधारी यशपाल जैन का व्यक्तित्व केवल उनके बराबर गली मुहल्ले या अपने कार्यालय 'सस्ता साहित्य मण्डल' की सीमाओ मे ही सकुचित होकर नही रह गया है। इन महोदय का व्यक्तित्व वास्तव मे बहुत फैला हुआ है।

सयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) के अलीगढ जिले का एक कस्बा विजयगढ़। इसी साधारण से कस्बे मे सन् १६१२ मे यशपालजी का जन्म हुआ। उन दिनो उस कस्बे के माहौल मे वे तत्त्व और साधन मौजूद नही थे, जो आज वैज्ञानिक उन्नति के युग म व्यक्तित्व और विकास के लिए बच्चो को स्वत ही उपलब्ध है। यशपालजी बचपन मे इन तत्त्वो और साधनो से वचित रहे होगे, फिर भी यह बात सतोषजनक है, जैसा कि स्वय यशपालजी कहते हैं कि उनके जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव उनकी माता के वात्सल्य और पिता की प्रखरता का पडा। यशपालजी की प्रकृति के आचल मे सवत्र स्नेह, सहिष्णुता, कोमलता, प्रसन्नता, सहानुभूति, आत्मीयता, सर्वप्रियता आदि सद्गुणो के जो सदाबहार फूल खिले रहते हैं, यह उनकी माता के वात्सल्य का ही चमत्कार है। पिता की प्रखरता से इन्हे अद्भुत बुद्धि कौशल मिला, जिससे इन्होने अपने जीवन की सारी कठिनाइयो को जीत लिया।

उन्होंने अपने देश भारत की पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक तो यात्रा कर ही डाली, इसके अतिरिक्त ससार का शायद ही कोई देश बचा होगा, जहा यशपालजी न पहुचे हो और सम्बन्धित क्षेत्रो मे अपनी छाप न छोड आए हो। साथ ही अपने देश भारत का कोई भी नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, धार्मिक आदि क्षेत्र ऐसा न होगा, जहा यशपालजी की सरगर्मी न दिखाई देती हो। आए-दिन जैन समाज तथा कई अन्य सस्थाओ से इनके विचार सुनने के लिए निमत्रण आते रहते हैं। यशपालजी प्रभावशाली वक्ता हैं और धाराप्रवाह बोलते हैं।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने जन्मस्थान मे ही हुई। इसके बाद अलीगढ़ और इलाहाबाद से मैट्रिक से लेकर बी ए, एल एल बी तक की शिक्षा सम्पन्न की। एल एल बी करने के बाद एक सरकारी बडे अधिकारी ने नायब तहसीलदार के लिए सीधी नियुक्ति करा देने का वचन दिया पर यशपालजी ने यह नौकरी नही की। और इस पद को ग्रहण कर लेते तो कुछ ही दिनो मे वह बहुत ऊचे पद पर पहुचकर सेवा-निवृत्त होते और भारी-भरकम धनराशि बैंक मे होती तथा आजीवन पेन्शन का लाभ उठाते।

लिखने का शौक या प्रवृत्ति बुनियादी तौर पर स्वय यशपालजी की प्रकृति मे मौजूद थी। उन्होने हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओ मे लिखने का काम अपने विद्यार्थी जीवन से ही आरम्भ कर दिया था। पढ़ाई पूरी करके लेखन के सघर्षपूर्ण मार्ग को ग्रहण कर लिया, जिस पर बडी लगन, दृढता और सफलता के साथ चल रहे हैं। इनमे विशेषता यह है कि (१) लेखन मे निर्भीकता का दामन कभी नही छोडते, (२) किसी के प्रति दुर्भावना नही रखते। (३) वाणी और लेखनी द्वारा दिलो और दलों को जोडने का काम करते हैं। यो कहिए कि अपनी इस कला के माध्यम से सर्जनात्मक भावो और सद्विचारो के फूलो को खिलाते हैं। (४) साहित्य की सभी विधाओ मे लिखते हैं। (५) लेखनी और वाणी से लोकनीति का समथन करते है और मानवीय मूल्यो के उपासक है। (६) राजनैतिक तौर पर वह अपने आपको किसी सस्था या दल विशेष से सम्बन्धित नही

करते तो भी जहां कहीं मानवीय सिद्धान्तो की स्थापना या रक्षा की चर्चा होती है, वहां इनकी सहानुभूति और सहयोग क्रियाशील हो उठती है, वाणी मुखरित हुए बिना नही रहती, लेखनी सक्रिय हो उठती है और अपनी औलानिया दिखाती है।

सम्भवत इनकी इसी लेखन-कला ने इनको विख्यात प्रकाशन सस्थान 'सस्ता साहित्य मण्डल' के व्यवस्थापक और सम्पादक की कुर्सी पर बिठा दिया। 'सस्ता साहित्य मण्डल' को मैं यदि 'सद् साहित्य मण्डल' के नाम से याद करू तो असगत नही होगा, क्योंकि इस सस्थान द्वारा जो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, उनके मूल्य अन्य प्रकाशन संस्थाओं के मूल्यों की अपेक्षा बहुत सस्ते तो होते ही हैं, साथ ही विषय-वस्तु भी बहुत उच्च कोटि की, प्रेरणा-दायक, शालीन, चरित्र निर्माणकारी, मनोबलवर्द्धक और रुचिकर होती है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' की इस कुर्सी पर बैठ कर यशपालजी ने बड़े-बड़े नेताओ और चिन्तको—राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, विनोबा भावे, काका कालेलकर, राजगोपालाचार्य प्रभृति—प्रभावशाली लोगों तथा लेखको से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर लिया। इन सबका साहित्य 'मण्डल' से प्रकाशित हुआ।

बडी-बडी पुस्तको के अतिरिक्त यशपालजी ने बाल-किशोर और नव साक्षर लोगो के लिए उपयोगी छोटी-छोटी पुस्तिकाए भी प्रकाशित की। इस श्रेणी की पुस्तको की योजना के अधीन यशपालजी की प्रेरणा से मैंने भी एक पुस्तिका लिखी—'समय का मोड', जिस पर केन्द्रीय शिक्षा विभाग की ओर से मुझे पुरस्कार मिला। इस तरह और भी अनेक पुस्तकें पुरस्कृत हुईं। यशपालजी ने स्वय भी कई बडी-बडी और छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं, जो बहुत ही लोकप्रिय हुई हैं।

सत विनोबा भावे के साथ परिचय तथा उनके प्रति यशपालजी की भावना उल्लेखनीय है। यशपालजी ने न केवल उनकी अनेक पुस्तके 'मण्डल' से प्रकाशित की, अपितु उनकी प्रवृत्तियो विशेषकर भूदान यज्ञ मे महत्वपूण योगदान किया। वह उनकी पद-यात्राओ मे साथ रहे और स्वय वाणी तथा लेखनी से अहिंसक क्रान्ति के उस महान अनुष्ठान को सफल बनाने मे सहायक बने। बाद मे उन्होने 'विनोबा का व्यक्तित्व और विचार' नाम से एक विशाल ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ के लिए सामग्री के सग्रह, सम्पादन और प्रकाशन का काम मुख्यत यशपालजी ने ही किया। यशपालजी के हृदय मे विनोबाजी के प्रति कितना सम्मान और कितनी आत्मीयता थी, इसका पता उनके इन शब्दो से चलता है, "हजारो वर्षों मे विनोबा जैसा कोई ज्ञानी और अध्यात्म पुरुष हमारे देश मे शायद ही पैदा हो सके।" उनके इन शब्दो से मेरे मन मे शायर 'इकबाल' का एक शेर गूज उठता है।

'हजारो साल नर्गिस अपनी बेनूरी पै रोती है, बडी मुश्किल से होता है, जहा में दीदावर पैदा।'

इसी प्रकार काका कालेलकर के साथ भी यशपालजी के सम्बन्ध बडे घनिष्ठ थे। १६३७ ई मे 'हिन्दी परिषद' का एक सम्मेलन दिल्ली मे हुआ। उस सम्मेलन मे काका साहेब के साथ यशपालजी की पहली भेंट हुई। इसके बाद उनसे वह बराबर मिलते रहे। काका साहेब की सरलता और विचारो की उदात्तता की गहरी छाप यशपालजी के हृदय पर पडी। काका साहेब की कई पुस्तको का प्रकाशन किया। दो ग्रन्थ उनके जीवन काल मे निकाले, सस्कृति के परिव्राजक और समन्वय के साधक। काका साहेब के निधन के पश्चात 'आचार्य काका कालेलकर स्मारक निधि' की स्थापना की गयी और इस निधि के मत्री पद को स्वय यशपालजी ने सभाला।

यशपालजी की 'जय अमरनाथ' नामक पुस्तक की भूमिका काका साहेब ने ही लिखी है।

यशपालजी की सेवाओ से प्रभावित होकर मेरठ की 'महावीर निर्वाण भारती' सस्था की ओर से उन्हें नयी दिल्ली के विज्ञान भवन मे पुरस्कृत किया गया। पुरस्कार प्रदान करते हुए काका साहेब तथा जैन

समाज के विख्यात सत उपाध्याय मुनि विद्यानन्दजी ने यशपालजी की सेवाओ की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

विदेशों की यात्राए करना कोई आसान काम नही है, परन्तु यशपालजी ने सारी दुनिया लांघ डाली। लगभग ४२-४३ देशो की यात्रा की है। जिस भी देश मे वह गए, वहा यथोचित सम्मान पाया। वहा के प्रेस, प्लेट फार्म, रेडियो, टेलीविजन पर उन्हे अपने विचार प्रस्तुत करने के अवसर मिले और उन्होंने इन प्रचार और प्रसार के माध्यमो द्वारा अपने देश भारत की सस्कृति और साहित्य की महिमा को खूब उजागर किया।

जब वह पहली बार मारीशस गए तो वहा के विशिष्ट लेखक सोमदत्त बखोरी ने यशपालजी का परिचय 'भारत के साहित्यिक तथा सांस्कृतिक राजदूत' के रूप मे दिया। यशपालजी ने इस समय तक इतनी यात्राए कर डाली हैं कि इस तथ्य को महत्व प्रदान करने के लिए हिन्दी के मूर्धन्य लेखक और पत्रकार-शिरोमणि श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक लेख मे लिखा, 'राहुल साकृत्यायन और डाक्टर रघुबीर के बाद तीसरा हिन्दी लेखक, जिसने देश विदेश की इतनी यात्राए की, यशपाल जैन हैं। ईश्वर की कृपा से यशपालजी अब भी नौजवानो जैसी शारीरिक स्फूर्ति और सामर्थ्य से सम्पन्न हैं और अब भी बहुत-सी विदेश यात्राए कर सकते हैं। हमारी कामना है कि देश और जाति की सुदीर्घ काल तक भरपूर सेवा करने के लिए विधाता उनको लम्बी आयु दे।

उनकी साहित्य-साधना

आशा शिरोमणि

□□

श्री यशपालजी से मेरा प्रथम परिचय इन्द्रप्रस्थ कालिज की छात्राओ द्वारा आयोजित एक वाद विवाद प्रतियोगिता मे हुआ था। यशपालजी जिसमे निर्णायक के रूप मे आमन्त्रित थे। साहित्य से सम्बन्धित होने के कारण मुझे अन्य साहित्यिक गोष्ठियो मे उनसे मिलने का अवसर मिला और सर्वत्र ही उन्होने अपने सहज स्नेह, सद्व्यवहार और कर्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया।

यशपालजी के व्यक्तित्व मे साहित्यकार और समाज सेवक की विशिष्टताओ का मणिकाचन समन्वय है। वैसे तो प्राय दोनो ही अपने लिए पृथक क्षेत्रो को चुन कर चलते हैं—साहित्यकार जिन सामाजिक समस्याओ को सकेतित करके चलता है अथवा जिन आदर्शों की स्थापना को अपना लक्ष्य बनाता है, अनिवार्यत जीवन मे उनका पालन करने के लिए बाधित नही रहता अर्थात् समाज-विषयक समस्याओ को उठाकर भी व्यक्तिगत रूप मे उनके निराकरण की ओर वह क्रियात्मक कदम नही बढ़ाता। इसके अतिरिक्त मानव और समाज के प्रति उनकी मान्यताए अथवा आदर्श उसके वैयक्तिक जीवन से सदा मेल नहीं खाते।

पर यशपालजी का जीवन और साहित्य एक-दूसरे के पूरक हैं। साहित्यकार के रूप मे उनकी आस्थाए जीवन में सदैव अभिव्यक्ति पाती रहती हैं, फलत समाज-सेवा उनके जीवन का अनिवार्य अंग बन गई है।

भाई यशपालजी के साहित्यिक जीवन का आरम्भ किशोर अवस्था में ही हो गया था। जब वे नवी कक्षा में थे, तभी से सामाजिक विषमताओ का अध्ययन करने लगे थे और उन पर एक सामाजिक उपन्यास की रचना की। यह उनके साहित्यिक जीवन का आरम्भ काल था। इसके बाद उन्होंने 'निराश्रिता' उपन्यास लिखा, जो 'जीवन सुधा' पत्रिका में धारावाहिक रूप से सन् १९३८ मे छपा। 'नवप्रसून' इनका प्रथम कहानी सग्रह था, जो इसी सन् मे प्रकाशित हुआ। सन् १९६४ मे यशपालजी का व्यक्तिपरक तथा प्रेरणादायक कहानी सग्रह 'मैं मरूगा नही' प्रकाश में आया तथा उसके बाद 'एक थी चिडिया', 'सेवा करे सो मेवा पावें' लिखे और हिन्दी मे सस्कृत की 'सिहासन बतीसी' और 'बैताल पचीसी' के आधार पर कहानिया लिखी, जिनमे परिधान लेखक का ही रहा है। बाद मे उनके 'दायरे और इसान' तथा 'मुखौटे के पीछे' आदि-आदि कहानी सग्रह निकले।

सस्मरणात्मक साहित्य की रचना मे यशपालजी की विशेष रुचि रही है। यात्रा करना इन्हें बहुत प्रिय है। देश विदेश की यात्रा करके उन्होने अपने अनुभवो को इतना व्यापक बना लिया है कि उनके सस्मरणो में वर्णित पात्र, घटना, वातावरण और परिस्थिति प्रत्यक्ष का आभास देने लगते हैं। छोटी-से-छोटी वस्तु पर उनकी दृष्टि गई है और नवीन रूप, नवीन खोज लेकर आई है। यशपालजी ने विश्व के अधिकांश देशो की यात्रा की है, एक बार नही, अनेक बार। यूरोप, दक्षिण-पूर्व एशिया, रूस, अफ्रीका, अमरीका, दक्षिणी अमेरिका, कैनेडा, मारीशस, फीजी आदि-आदि देशो की उनकी यात्रा उल्लेख योग्य हैं। 'जय अमरनाथ', 'उत्तराखड के पथ पर', 'पडोसी देशो मे', 'रूस मे छियालिस दिन', 'कोणार्क', 'जगन्नाथपुरी', 'अजन्ता-अलोरा' आदि उनकी यात्रा-विषयक कृतिया हैं, जिसमे स्थान, समय, धर्म और परिवेश की भिन्नता मे मानव-एकता के सूत्रो को स्थान-स्थान पर जोडा गया है। इन स्थलो की सभ्यता और सस्कृति सर्वत्र उभर कर आई है। लेखक की सूक्ष्म और तीक्ष्ण पर्यवेक्षण-शक्ति, वर्णन-प्रतिभा और वागवैदग्ध्य सर्वत्र अभिव्यजित रहते हैं। 'रूस मे छियालिस दिन' पर वे 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित हुए थे। उनकी दूसरी पुस्तक 'सेतु निर्माता' पर उन्हे यही पुरस्कार पुन मिला। नेपाल यात्रा से सम्बन्धित उनके सस्मरण भी एक पुस्तक म सग्रहीत है।

'हारिए न हिम्मत' यशपालजी की चरित्र-निर्माण सम्बन्धी कृति है, जिस पर उन्हे भारत सरकार ने पुरस्कृत किया था।

यशपालजी का अनुवादक रूप भी कम महत्वपूर्ण नही है। व्यक्तिगत रूप मे स्टीफन ज्विग के तीन उपन्यासो 'विराट', 'अपरिचिता का पत्र' और 'जिन्दगी दाव पर' का उन्होने रूपान्तर किया है। ये तीनो ही उपन्यास पहले धारावाहिक रूप से एक साप्ताहिक पत्रिका मे प्रकाशित हुए फिर पुस्तक रूप मे आये। 'जीवन साहित्य' तथा 'सस्ता साहित्य मडल' के तत्वावधान मे प्रकाशित गांधी, नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, खलील जिब्रन, तुर्गनेव तथा टालस्टाय आदि के साहित्य के भी अनुवाद को उन्होने सवारा है।

'सब जन एक समान' रेडियो रूपको का सग्रह है, जिसके रूपक समय-समय पर रेडियो से प्रसारित होते रहे हैं।

यशपालजी ने सम्पादन और सकलन का भी महत्वपूर्ण कार्य किया है। 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ', गांधी, नेहरू, विनोबा, राजेन्द्र प्रसाद, काका कालेलकर, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि से सम्बन्धित सामग्री का सकलन और सम्पादन किया। उनके विशाल ग्रथ हिन्दी साहित्य की महान निधि हैं। पत्रकारिता तो एक

प्रकार से उनके जीवन का अभिन्न अग बन गई है। वे 'जीवन साहित्य' के सम्पादक हैं, उसके साथ ही हिन्दी के प्रमुख पत्रों मे खूब लिखते रहते हैं।

वे हिन्दी भवन, दिल्ली राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा चित्र कला सगम के सस्थापक सदस्य हैं और इस समय उनके उप-प्रधान हैं। वे भारतीय साहित्य परिषद-दिल्ली के अध्यक्ष रहे हैं। राष्ट्रीय महत्व की सभी योजनाओ मे वे तत्परता से सहयोग देते हैं। सन् १९६६ मे चित्रकला सगम की ओर से एक प्रतिनिधि मडल का नेतृत्व करते हुए श्री लाल बहादुर शास्त्री की प्रतिमा भेंट करने रूस गए थे। यह रूस की उनकी तीसरी यात्रा थी।

यशपालजी का कार्य-क्षेत्र यही तक सीमित नही है। कही कोई ऐसा सामाजिक कार्य-क्रम नही होता जहां उनकी उपस्थिति अनिवार्य न होती हो अथवा कोई ऐसा मित्र नही, जिसे अपनी समस्या का समाधान ढूढने के लिए यशपालजी के पास न जाना पडता हो और न ऐसी कोई छात्र सभा, जिसके लिए अपेक्षित सहायता की व्यवस्था उन्होने न कराई हो। किसी से परिचय मात्र उन्हें शीघ्र ही मित्रता के सूत्र मे बांध देता है, वह उनका आत्मीय बन जाता है। उनके अनुसार वह परिचय ही क्या, जो मित्रता मे न बदल जाय और सहायता-सहयोग तो अनिवायत इस सम्बन्ध के साथ बधे ही रहते हैं।

वस्तुत यशपालजी एक व्यापक और अटूट मानव-प्रेम के सूत्र मे बधना ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं। जैन-धर्मावलम्बी होने पर भी वे धार्मिक कट्टरता से मुक्त हैं, तभी तो जब स्वामी मुक्तानन्द परमहस के उन्हें दर्शन हुए तो वे पूण निष्ठा से उनके प्रति झुक गए। यशपालजी की दृष्टि मे धम मानव ऐक्य का सूत्र है, उम सूत्र के टूटने पर धर्म की स्थिति डावाडोल हो जाती है। भौतिकवादी स्थूल दृष्टि मनुष्य को मानव-विमुख बना देती है।

कर्म के प्रति यशपालजो की दृष्टि प्रवृत्तिपरक है। वे कर्मशून्य साधना करने वाले उन पुरुषो मे से नही है, जो पत्नी के ऊपर सब छोडकर पुस्तको के पढने मे ही अपने कर्त्तव्य की पूर्ति कर लेते है। घर के सब छोटे-बडे कामो मे वे सहयोग देते हैं। बच्चो के साथ मनोरजन करने से लेकर बडी-से-बडी समस्या पर विचार करते हुए वे मिलते हैं। सब के प्रति आत्मीयतापूर्ण व्यवहार, हरेक की समस्या के लिए समाधान ढूढना और नि स्व सेवा करना यशपालजी के कतिपय ऐसे गुण है, जो आज के बौद्धिक व्यक्ति के निकट आने से प्राय डरते हैं। जो माग उन्होने उचित समझा, उसे अपनाया। समाज या धर्म उसके विषय मे क्या कहेगे, इसकी उन्होने चिन्ता नही की। उनमे राग-तत्त्व तो प्रबल है, पर द्वेष का नाम नही है, उनम क्रोध है पर वैमनस्य नही, उनमे निष्ठा है पर अधभक्ति नही। मानव-प्रेम और कर्म का योग उनकी जीवन-साधना का चरम लक्ष्य है।

हिन्दी के प्रबल पोषक

मोहनलाल भट्ट

□□

श्री यशपालजी से मेरा सम्बन्ध दो प्रकार से हुआ। एक तो वे 'सस्ता साहित्य मण्डल' के सचालको में से हैं, दूसरे वे दिल्ली की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सस्थापक और उपाध्यक्ष हैं। 'सस्ता साहित्य मण्डल' सत्साहित्य की रचना करवाता है, उसे प्रकाशित करवाता है और उसका प्रचार भी करता है। इस 'मण्डल' के साथ स्वर्गीय हरिभाऊजी उपाध्याय के कारण मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की दिल्ली शाखा राजधानी मे हिन्दी के प्रचार का काम कर रही है। उस काम मे भी यशपालजी शुरू से ही सक्रिय योगदान देते आये हैं। आज भी वे राष्ट्रभाषा के काम को महत्वपूर्ण मानकर उसमे अपने से जितना शक्य होता है, उसका कार्यभार अपने ऊपर उठा लेते हैं। परन्तु उनकी सौम्य प्रकृति से मैं अधिक प्रभावित हुआ हू। जो भी कार्य हो, वे बडी शान्ति और धीरज से करते हैं और सार्वजनिक क्षेत्र मे यही उनकी सफलता की चाबी है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे उन्होने अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। वे केवल प्रकाशक नहीं, वे तो स्वय साहित्य के रसिया तथा निर्माता भी हैं। उनका 'जीवन-साहित्य' मासिक है, जो कद मे छोटा होते हुए भी काफी ऊची तथा गम्भीर साहित्य-सामग्री पाठको तक पहुचाने का प्रयत्न करता है।

यशपालजी ने प्रवास भी बहुत किया है, भारत ही नही, विदेशो का भी। यह प्रवास उनके लिए केवल मनोरजन का विषय नही रहा। वह अधिकतर साहित्य और हिन्दी की सेवा के उद्देश्य से होता है और वे अपने अनुभवो का दोनो क्षेत्रो मे समाज के हित और लाभ के लिए उपयोग करते हैं।

उनकी वर्षगाठ के अवसर पर मैं उनका हृदय से अभिनन्दन करता हू। वे दीर्घायु हो और साहित्य, हिन्दी तथा राष्ट्र की सेवा मे उनका जीवन अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो। भावनाओ तथा सस्कृति के स्तर पर ऊपर उठने के लिए आज मानव समाज जो प्रयत्न कर रहा है, उसमे भी उनका योगदान हो।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में उनका योगदान

राजलक्ष्मी राघवन

□□

मानव कही पैदा होता है, कही पलता है, कही जीवन बिताता है। इस बीच मे वह कई मील के पत्थरों को पार करता है। देश के एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा करता है। कितने लोगों से, कितनी भिन्न-भिन्न भाषाओ से परिचित होता है। अपने परिवार के लोगो से बिछुड कर, हजारो मील बाहर अपने गांव से आये

मानव पराये देश में अपने लिए मित्रों को ढूढता है। कभी सफल होता है, कभी विफल। कुछ दिन बीतते, उसे स्नेहभाजन हितैषी मिलते ही वह तृप्त हो जाता हैं। यहा हमे सच ही सत तिरुवल्लुवर के समरसवाद के इस वचन की याद आती है, "यावुदुम् ऊरे यावरुम् केकीर।" ठीक उस मत्र का स्मरण कराता है, जो कहता है—"वसुधैव कुटुम्बकम्।" भारत की एकता का साम्य हरेक भाषा मे मिलता है। उसका सादृश तो मानव दिखाता रहता है।

इस तरह भाई यशपालजी और मेरे पति का स्नेह एक सर्वभाषा सम्मेलन के द्वारा १९४६ मे प्रारम्भ हुआ। श्री जैनेन्द्र कुमार, यशपालजी, मेरे पति और कई भाषाप्रिय लोगो सहित इसका श्रीगणेश हुआ। सर्वभाषा सम्मेलन तो किसी कारणवश अकाल मृत्यु का ग्रास बना। मगर हमारा और भाई यशपाल-दम्पत्ति के साथ जुडा आत्मीय सबध बढ़ता ही गया।

मेरी समाज-सेवा १९३७ मे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के प्रचार-कार्य के साथ प्रारभ हुई। वहा सात महिलाओ के साथ मैंने प्रारभिक कक्षा को पढाना शुरू किया। एक महिला-सगठन भी बनाया, 'दी साउथ-इण्डियन लेडीज एसोसियेशन', उसमे सास्कृतिक शिक्षण, हिन्दी वर्ग, सिलाई, कटाई, बुनाई, कढाई आदि अनेक कार्यक्रम रखे गये। हिन्दी वर्ग तो बडे जोर से चला था। हम तीन-चार व्यक्ति वग चला रहे थे। भाई कमलेश भारतीय थे जो आजकल वृन्दावन मे राजा महेन्द्र के स्कूल मे काम कर रहे है। दूसरे एक जैन भाई थे। श्रीमती काति बेन और मैं वर्ग चलाया करते थे। पढने-पढाने वालो मे इतनी खुशी थी, मानो हिन्दी प्रचार-कार्य से ही स्वराज्य प्राप्ति हो जायगी।

दिसम्बर १९४१ मे मैं और मेरे पति दिल्ली आये। आते ही हिन्दी के प्रचार-काय मे भागीदार बनने का मुझे सुअवसर नही मिला। मैंने दक्षिण भारत प्रचार सभा से पत्र-व्यवहार किया। उत्तर मिला कि दिल्ली तो हिन्दी का गढ है। वहा हिन्दी-प्रचार की क्या आवश्यकता है? फिर मैंने हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा से दिल्ली मे हिन्दी प्रचार के लिए अनुमति मागी। उन्होने अनुमति दे दी। जब लोगो से इस बात पर चर्चा हुई तो उन्होने पढने का प्रस्ताव तो स्वीकार किया, मगर उर्दू पढने को तैयार नही हुए। उर्दू का पढना हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के लिए अनिवार्य था। इस तरह हमारा सारा प्रयत्न व्यथ हुआ।

एक दिन भाई यशपालजी और हम लोग बैठ कर वार्तालाप कर रहे थे, उस समय मरे पति ने कहा "यशपालजी राजलक्ष्मी के लिए हिन्दी प्रचार की दिल्ली मे कोई गुजाइश नही है क्या, जहा अहिन्दी जनता आकर बसी हुई है? वह दुखी होती है। बबई मे दिनभर सेवावृत्ति मे लगी रहती थी, यहा उसे बैठे-बैठे दिन काटना होता है।" भाई यशपालजी ने तुरत कहा, "राघवनजी, मेरे मित्र प्रोफेसर रजन दिल्ली आये हुए है। वे वर्धा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रमुख अधिकारी है। कल मैं उनको यहा लिवा लाऊगा। देखे वे क्या कहते हैं। चिंता मत कीजिये। काम बन जायगा। शुभ कार्यों म कभी-कभी विलम्ब होता ही है।"

दूसरे दिन प्रोफेसर रजनजी को लेकर मध्याह्न भोजन के लिए भाई यशपालजी हमारे घर आये। भोजनोपरात हम लोगो ने दिल्ली मे समिति का एक केन्द्र खोलने के बारे मे बात की। निणय हुआ कि दिल्ली मे एक केन्द्र खोला जाय। उसके लिए एक आवेदन-पत्र भेजने का तय हुआ। रजनजी उसी दिन वर्धा चले गये। आवेदन-पत्र भेजा गया। लेकिन एक समस्या उत्पन्न हुई। वह यह कि केन्द्र-व्यवस्थापक किसको बनाया जाय। तब तक मैंने कोविद उत्तीण नही किया था। मेरे पति सरकारी नौकर थे। अतत भाई यशपालजी को ही केन्द्र-व्यवस्थापक बनाया गया। उनकी शर्त यह थी कि मै उसी सत्र मे कोविद कर लू। मैंने उनकी बात मानी। हमारा स्नेह-बधन और दृढ हो गया। रफी माग पर स्थित कास्टीट्यूशन क्लब मे स्वर्गीय पट्टाभिसीतारामय्या की अध्यक्षता मे आचाय विनोबा भावे के करकमलो द्वारा केन्द्र का उद्घाटन हुआ। चार वष तक केन्द्र के रूप

मे ही कार्य चलता रहा तब तक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के एक केन्द्र के रूप में ही कार्य होता रहा। मेरे पति, भाई यशपालजी, श्री विष्णु प्रभाकर और मैं सारी व्यवस्था करते रहे। परीक्षाएं होती और प्रात १० बजे से लेकर सध्या के ६ बजे तक हम लोग उत्तर-पुस्तको को सील करने तक रहते। यह पद्धति वर्षों तक चलती रही।

विद्यार्थियों की सख्या बढती गई। सद्य प्राप्त स्वतंत्रता का उत्साह लोगो के दिलों मे उमडता रहा। उपनगरों मे केन्द्रो की व्यवस्था और सचालन करना पडा। एक प्रातीय समिति का गठन करने की आवश्यकता को हम महसूस करने लगे। १९५२ के अगस्त की ३ तारीख को स्व राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के तत्वाबधान मे, श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित ने 'दिल्ली प्रातीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' का उद्घाटन किया। कार्य समिति का गठन किया गया। श्री के सी रेड्डी अध्यक्ष, श्रीमती रेड्डी उपाध्यक्ष, श्री अनत शयनम् आयगर कार्यवाहक अध्यक्ष, मैं प्रांतीय सचालक मत्री, मेरे पति कोषाध्यक्ष, श्री यशपालजी, विष्णु प्रभाकरजी, जी एस इन्दूरकर, वर्धा समिति के मत्री श्री मोहनलाल भट्ट, सेठ गोविन्द दास, श्री मौलिचद्र शर्मा आदि को लेकर काय समिति का गठन हुआ। बाद मे उसमे अनेक फेर-बदल हुई है लेकिन भाई यशपालजी अब तक उसके साथ सक्रिय रूप मे सम्बद्ध हैं। इस समय वह सम्मिति के उपाध्यक्ष हैं।

भाई यशपालजी के स्वभाव और बातचीत मे बडी सौम्यता है। इसी से लोगो का स्नेह उनके प्रति बढता जाता है। समिति का कोई काम हो, यशपालजी से पूछे बिना मैं नही करती। वे भी कितनी ही बार टेलीफोन करू, थकते नही, सलाह देने मे सकुचाते नही। पैंतीस-छत्तीस साल के हमारे सम्बन्ध हैं।

समिति के कार्य-कलापो मे अनेक परिवर्तन हुए हैं। लेकिन हमारी आत्मीयता मे कभी कोई अतर नही आया। इस तरह सीढी-दर-सीढी बढ़ कर समिति ने अपने जीवन-काल के बत्तीस वर्ष पूर्ण कर लिये हैं। भगवान से प्रार्थना करती हू कि भाई यशपालजी की शती मनायी जाय और वे आरोग्यवान और सदा की भाति सबके स्नेहभाजन बने रहे।

पारदर्शी व्यक्तित्व

वासवदत्ता

□□

गाधी शताब्दी के अवसर पर मेरी प्रबल इच्छा हुई कि मैं किसी गाधीवादी सिद्धान्त से सम्बन्धित तमिल पुस्तक का हिंदी मे अनुवाद करू। तभी श्री अजितकुमारजी ने श्रद्धेय यशपालजी का नाम सुझाया और पत्र-व्यवहार कर जानकारी प्राप्त करने के लिए सलाह दी। मैंने पत्र लिखकर तत्सबधी उनके अमूल्य विचार मांगे। पत्रोत्तर इतना शीघ्र मिला कि मैं उनके यथासमय पत्रोत्तर देने के गुण से अभिभूत हुई और उनसे मिलने की उत्सुकता होने लगी। आखिरकार दूरभाष से पूछा, "मैं आप से मिलकर अनुवाद कार्य सबंधी कुछ

आवश्यक बातें करना चाहती हू आपके पास जब सुविधाजनक समय हो, कृपया बताइए।" व्यस्त रहते हुए भी उन्होंने कहा, "अभी चली आओ।" बस, फिर क्या था ! मैं तो यही चाहती थी। आधे घंटे के ही अदर उनसे मिलने 'सस्ता साहित्य मडल' चली गई। सहमते-सहमते उनसे बात करने के लिए विचारो को मन मे सजोले हुए मैंने उनके कमरे मे प्रवेश किया। सामने ही यशपालजी बैठे हुए थे। बडे स्नेह से उन्होंने मुझे बैठने के लिए कहा। सफेद धोती-कुर्ता, बडी-बडी आंखें, सोचने की मुद्रा और बीच-बीच मे कुछ लिखने के क्रम को जारी रखते हुए उन्होने पूछा, "आप क्या अनुवाद करना चाहती हैं ?" उनके उस वाक्य मे इतनी आत्मीयता थी कि मैं अपनी सारी बाते कह सुनाने के लिए विवश हो गई।" तब उन्होने अनुवाद सबधी अनेक कठिनाइयो, उसके नियमो तथा अन्य भाषाओ से आजकल अनूदित पुस्तको की बिक्री की समस्या के बारे मे और तत्सबधी सामान्य जनता की रुचि की अभाव की बाते अत्यत सुलझे हुए ढग से और स्पष्ट रूप से की। कार्यालय मे व्यस्त रहते हुए भी आतिथ्य मे किसी प्रकार की कमी न हुई। उनकी बातो मे सरलता, स्पष्टता, उदारता, सादगी, अपने विचारो पर दृढ होते हुए भी दूसरो के विचारो का अनादर न करना, उस सक्षिप्त वार्तालाप के बीच अनेक शिक्षाप्रद बाते मैंने ग्रहण की, जो आज तक मेरे मन-पटल पर आच्छादित हैं। उन्होने प्रथम बार ही मेरे जैसे साधारण व्यक्ति को तुरन्त ही पत्रोत्तर देकर यथा खुले मन से बातचीत कर जितना प्रभावित किया, उससे मन गद्‌गद् हो उठा।

इस प्रथम भेंट के पश्चात कई बार अनेक समारोहो तथा उनके घर पर भी मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। जब वे मुझसे मिलते हैं तभी पूछते है, "कहोवासव दत्ता कैसी हो ?" इस वाक्य मात्र से उनके हृदय का स्नेह प्रकट होता है। मुझे उनके पारदर्शी व्यक्तित्व मे जो गुण पहली बार दिखाई दिए थे, उन्ही गुणो को मैंने उनके व्यवहार मे हर बार पाया। यही विशेषता उन्हे महान बनाती है।

ऐसे प्रसन्नचित्त, सरल, कर्मठ, सुयोग्य, लगनशील व्यक्ति से समाज और देश को बडी-बडी आशाए हैं।

गांधीवादी सन्त

शिवानद शर्मा

□□

बीसवी शताब्दी मे भारत के आकाश पर एक दिव्यज्योतिर्मय नक्षत्र चमका और उसने पृथ्वी भर के अधकार को निरस्त कर दिया तथा वह भटकते हुए प्राणियो के लिए एक स्थायी प्रकाश-पुञ्ज बन गया। महात्मा गाधी मानवता के लिए एक अमरज्योति है और उनका यशोगान धरती पर सदैव होता रहेगा।

कदाचित् भारत की यह विशेषता है कि यहा ऐसे दिव्य सन्तो का आविर्भाव होता ही रहता है, तथापि स्वतत्रता की प्राप्ति के बाद ही भारत मे एक ऐसा युग आ गया है कि जहां एक ओर भौतिक उन्नति होती जा

रही है, वहां दूसरी ओर नैतिक सकट भी विषम और भयावह होकर सामने आ गया है।

किन्तु हर्ष की बात है कि अभी कुछ व्यक्ति गांधी के मार्ग पर चलकर गाधी के सिद्धान्तों की सार्थकता को चरितार्थ कर रहे हैं। विनोबा भावे, काका कालेलकर, जयप्रकाश नारायण की पक्ति में ही खडे हैं श्री यशपालजी। इनके आचरण मे गांधीवाद भरा पड़ा है, इन पर गांधीजी की गहरी छाप है। पुस्तकों के द्वारा गांधीजी को समझने की अपेक्षा इन महापुरुषो के जीवन से अमर गांधी को समझना सुगम है।

यशपालजी गांधीजी के यश-पाल हैं। अपने त्यागपूर्ण आदर्श जीवन का ज्वलत उदाहरण प्रस्तुत कर यशपालजी मानो गाधी-गुरु के यश का रक्षण, पालन-पोषण कर रहे हैं। वेश-भूषा में सरल, विचार में सात्विक आचरण मे पवित्र, परम विद्वान होकर भी परम विनम्र, यशस्वी होकर भी निराभिमान, चतुर होकर भी सरल यशपालजी हमारे सामने एक नमूना हैं।

उन्होंने हिन्दी जगत की अनूठी सेवा की है। हिन्दी साहित्य के भण्डार का भरण ही नही अलकरण भी किया है। सरल, सुबोध और सुगम शैली उनके सरल व्यक्तित्व की परिचायक है। उनकी कृतियो की सरलता का कारण उनके मधुर व्यक्तित्व मे ओतप्रोत सन्त गुण है। यशपालजी साहित्य-सेवी होने से पूर्व सन्त हैं। उनका साहित्य भी सोद्देश्य है।

यशपालजी ने राष्ट्र और मानवता की जो ठोस सेवा की है। उससे भारत के एक बड़े भाग में ही नहीं, अपितु विश्व मे उनके प्रति स्नेह और आत्मीयता का वातावरण बन गया है।

"सबहि मानप्रद अपु अमानी," यह सन्त की विशेषता होती है।

अपना ही बोझ ढोने वाले तो असख्य व्यक्ति हैं किन्तु समाज भर का, दलित का, पीडित वर्ग का बोझ अपने सिर पर ले लेने वाले सन्त विरले ही होते हैं। "सन्त सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असन्त अभागी।" सन्त नवनीत से भी बढकर कोमल हृदय होते हैं। अत 'सन्त हृदय नवनीत समाना' कहना उपयुक्त नही है। नवनीत तो अपनी ऊष्णता से द्रवीभूत होता है, किन्तु सन्त परदुख कातर होते हैं। "पर दुख द्रवै सत सुपुनीता।" सन्त तो सृष्टि के श्रृगार होते हैं।

यशपालजी से मेरी भेट आकस्मिक हुई। मैं अपने प्रिय स्नेही शिष्य श्री बाके बिहारी के पास दरियागज दिल्ली मे मोटर से गुजर रहा था जब उन्होने मुझे बताया कि यशपालजी सडक पर खडे हैं। मैंने गाड़ी रुकवा कर एक दौड लगाई और यशपालजी के समीप आ खडा हुआ। मैंने श्रद्धापूरित होकर उन्हे अपना परिचय दिया और निवेदन किया कि मैं अपने लेख 'जीवन साहित्य' के लिए भेजता रहूगा। इससे पूर्व मैं 'कल्याण' आदि पत्रो के लिए लिखता था। यशपालजी ने जिस आत्मीयता से मेरा प्रथम परिचय होने पर भी मुझसे स्नेह वार्ता की मै उसे कभी भुला नही सकूगा। लगा कि मैं किसी विशेष व्यक्ति के साथ बाते कर रहा हू। अनुभव कर रहा था कि उनके दीप्तिमय व्यक्तित्व से सौम्यता, मधुरता और सरसता की अगणित किरणें फूटकर चारो ओर एक वातावरण बना रही हैं और मैं उनसे आह्लादित और आवृत्त-सा हो गया। उनके व्यक्तित्व का एक विचित्र जादू था, जिसने मुझे जकड लिया। मैं अधिक सभाषण न कर पाया और शीघ्र ही विदा लेकर चला गया, किन्तु मुझे लगा जैसे मैं मन्त्र-मुग्ध हो गया था। बाद मे उनसे कई बार मिलने का अवसर हुआ।

वस्तुत प्रचुर ज्ञान, विज्ञान, विवेक का वैसा प्रभाव मनुष्य के भीतरी मानस पर नही होता, जैसाकि सरल, शुद्ध, सुपुनीत व्यक्ति—सन्त—के व्यक्तित्व का होता है। आज के युग को भाषणो और वाग्जाल की आवश्यकता नही है। आवश्यकता है नेक व्यक्तित्व की, जो परोपकार, सेवा, त्याग और कर्मठता से सभलकृत हो।

यशपालजी ने विदेश मे जाकर गांधी-विचार सरित् प्रवाहित कर मानवता का उपकार किया है।

राजनयिक जन जो विदेशो मे कूटनीति, वाह्य आडम्बर, औपचारिकता, राजनीति के पाश मे बद्ध होकर व्यवहार करते हैं, भाषण करते हैं, अन्य क्रिया-कलाप करते हैं, वे भारत की आत्मा को प्रस्तुत नही कर सकते। यशपालजी भारतीय सस्कृति के श्रेष्ठ दूत हैं, गाधी के सच्चे सदेश वाहक है और मानवता के उदात्त पुजारी हैं। ऐसे ही लोग देश मे नही, विश्व मे भी शाति की स्थापना कर सकते है। ऐसे ही महापुरुष सत्य और न्याय के दीपक को बुझने नही देते, उसकी लौ को अपने त्याग और बलिदान से प्रज्ज्वलित रखते हैं। भगवान उन्हे चिरायु करे, स्वास्थ्य दे, यश दे, कीर्ति दे और उनके साधना मार्ग को प्रशस्त करे।

वह सदा युवा रहें

प्रभुदास गाधी

□□

श्री यशपालजी के व्यक्तित्व का मुझ पर ऐसा प्रभाव है कि बरसो से उनको मै मन-ही-मन अपना निकटवर्ती सन्मित्र अनुभव करता रहा हू। गत बाईस वर्षों से 'सस्ता साहित्य मडल' ने जो प्रतिवष 'गाधी डायरी' प्रकाशित की है, इसका श्रेय मडल के ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध अनेक सदस्यो को है ही, किन्तु मेरी समझ से इस 'गाधी डायरी' की रचना मे यशपालजी का श्रम सविशेप रहा है। डायरी मे प्रत्येक तिथि पर गाधीजी की बडी मूल्यवान पक्तिया हैं। उनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि प्रत्येक सूक्ति उसी तिथि की बोली या लिखी है।

विपुल गाधी साहित्य मे से उन्हे चुन लेना, यह समुद्र की गहराई मे गोता लगाकर मोती निकाल लाने जैसी तपश्चर्या और कुशलता का कार्य है। 'गाधी डायरी' के माध्यम से गाधी वाणी के अति उज्ज्वल तथा अनमोल मोतियो की जो माला हमारी अजलि मे रख दी गई है वह विशेषत यशपालजी के पुरुषार्थ का सुपरिणाम है, ऐसा मै समझता हू। इसलिए जब कभी गाधी डायरी के भिन्न-भिन्न मोतियो पर चित्त एकाग्र बनता है, तब यशपालजी की प्रसन्न गभीर मुखमुद्रा मेरे मन चक्षु के समक्ष प्रकट हो जाती है और उनके प्रति आदर से मन भर जाता है।

'मडल' द्वारा सचालित मासिक पत्र 'जीवन साहित्य' से बडी सख्या मे उच्च सात्विक साहित्य के ग्रन्थ और गाधीजी, नेहरूजी, विनोबा, काका साहेब कालेलकर के व्यक्तित्व और विचार के महाग्रन्थ आदि बहुत बडा साहित्योद्यान हमे प्राप्त हुआ है। इस उद्यान का सयोजन-सगोपन करने वालो मे यशपालजी ने अपना जीवन खपा दिया है। अमलिन, चित्ताकर्षक और सात्विक साहित्य को देखकर श्री यशपालजी के सुदीर्घ तथा कठिन परिश्रम की और उनकी सतत प्रकाश देने वाली प्रतिभा की झलक हमे मिलती है। अत दूर रहते हुए भी इनकी सन्मित्रता का लाभ हमे प्राप्त होता रहता है।

पूज्य विनोबा का एक विनोदमय वचन इस समय याद आ रहा है। उनकी आयु के साठ वर्ष हुए तब

कोई उन्हें थका-मांदा वृद्ध न समझ बैठे, इस आशय से उन्होंने मनुष्य की आयुर्मर्यादा के सबध मे विश्लेषण करते हुए जो कहा था, उसका सारांश यह था कि साठ वर्ष तक मनुष्य बालक रहता है। इतने समय मे जाकर वह अपने आहार-विहार का सही सतुलन प्राप्त कर पाता है। तन-मन के पूर्ण स्वास्थ्य बनाने की क्षमता मनुष्य को दीर्घ अनुभव से प्राप्त होती है। साठ वर्ष में परिपक्वता आने पर वह समाज के लिए अधिक ठोस काम कर सकता है।

अपने इस उद्गार को बिनोबा ने चरितार्थ कर दिखाया। बूढ़े शरीर से पैदल-ही-पैदल हजारो गांवो में पहुचे और लाखो लोगो को आध्यात्मिक सन्देश सुनाया।

लोग सामान्यत बूढ़े के बारे मे कहा करते हैं, 'यह तो अब सठिया गया।' समाज मे और घर मे भी वृद्ध व्यक्ति बोझ रूप समझा जाता है। लेकिन यशपालजी जैसे मनीषी और सत्कर्मी का व्यक्तित्व समाज के लिए और भी स्वागतार्ह सिद्ध होगा।

एक बार अपने जन्मदिन के निमित्त प्रात काल जाकर मैंने अपने गुरुजी काका साहेब कालेलकर के चरणो मे प्रणाम किया। उस समय बोल बैठा, "आधी गई, थोडी रही।" इस पर काका साहेब ने जरा क्रुद्ध होकर मुझे कडी चेतावनी दी, "भूलकर एक दिन भी यह बात मत सोचो कि मैं अब बुड्ढा हुआ। अपने शरीर और मन को इस प्रकार कभी शिथिल मत बनाओ।"

काका साहेब के इस आदेश मे हमारे यहा के प्राचीनतम परम पावन मत्र की गूज थी कि

"जीवेम शरद शतम् शृणुयाम शरद शतम्, प्रब्रवाम् शरद शतम्, अदीना स्याम शरद शतम्।"

बापूजी की बात का स्मरण भी इस समय होता है। बापूजी बुढ़ापे के द्वार पर पहुचे, तब किशोर आयु वाले हम लोगो को समझा-बुझाकर कहते थे, "देखो, छोटी आयु मे तन-मन को सावधानी से कसना सीख लो। अभी से यह आदत बनाओगे, तभी बुढापे मे जाकर शिथिलता से बच पाओगे। ज्यो-ज्यो बरस बीतते चले जाते है, त्यो-त्यो अपने को मीठे छुहारे या पके आम की तरह अधिक रसभरित बनाना चाहिए।"

श्री यशपालजी भी वर्षों के बीतने के साथ-साथ अधिक यशस्वी, स्फूर्तिदायी तथा रसमय बनेंगे, ऐसी श्रद्धा हम सब रखे।

मांगल्य के उपासक

काशिनाथ त्रिवेदी

□□

मांगल्य भारतीय सस्कृति का मूल आधार रहा है। चराचर सृष्टि के स्रष्टा और स्वामी को हमने उसके मगल-मय रूप मे जाना और माना है। अपने मानव जीवन को भी हमने मगलमयता का ही आधार दिया है। हम अपने चारो ओर मगलमयता के ही दर्शन करना चाहते हैं। अमगल हमें कभी इष्ट रहा नही। सबका सदा

मंगल ही हमारे जप-तप का, हमारे चिन्तन-मनन का और हमारे पुरुषार्थ का विषय रहा। इसी में से सर्वोदय का विचार आया। इसी की उत्तम परिणति के रूप में हमें नीचा लिखा उपासना-मत्र मिला

सर्वेऽत्र सुखिन सन्तु, सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चित् दु खमाप्नुयात् ॥

अर्थात्, सब सुखी हो, सब नीरोग हो, सब मगल-ही-मगल देखें, कोई कभी दु ख का अनुभव न करे ! इस सबमे अकेले, मानव-कुल का ही नही समूची चराचर सृष्टि का चिन्तन समाया।

मागल्य की उपासना का यह जो महान् उत्तराधिकार हमे हजारो वर्षों की परिपुष्ट परम्परा से मिलता रहा है, भाई यशपालजी ने अपने यशस्वी जीवन के माध्यम से मागल्य की इस धारा को बहुत उज्ज्वल, प्रखर और पुष्ट किया है। इसके लिए साहित्य-सेवा को उन्होने अपना मूल आधार माना है। अपनी कहानियो, कविताओ, लेखो, अनुवादो और देश-विदेश की अपनी यात्राओ के सस्मरणो के द्वारा उन्होने जीवन भर बडे सातत्य के साथ मानवीय जीवन की मगलमयता को ही उजागर किया है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' जैसी एक-सन्निष्ठ प्रकाशन-सस्था के साथ जुडकर उन्होने उसके माध्यम से हिन्दी-जगत के अध्ययन मनन के लिए जिन ग्रन्थ-रत्नो को सम्पादित, अनुवादित और प्रकाशित किया है, जिनकी स्वय रचना की है, उन सबके मूल में भी मांगल्य की उनकी अविरल उपासना ही निरन्तर काम करती रही है। 'जीवन साहित्य' के सम्पादक के रूप में वे हर महीने अपने पाठको के चिन्तन-मनन के लिए जो लेख-सामग्री प्रस्तुत करते आ रहे हैं, उसमे भी मागल्य की उनकी भावना ही विशेष रूप से मुखरित होती रहती है। 'जीवन साहित्य' के हर अक के पहले पृष्ठ पर छपने वाली उनकी रोचक और उदबोधक बोध-कथाए भी मागल्य के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा को उजागर करती रहती है।

अपनी लेखनी के साथ ही अपनी वाणी के द्वारा भी भाई यशपालजी मागल्य की अपनी उपासना को सतत पुष्ट और समृद्ध बनाते रहते हैं। अपने सृजनहार से उन्हे यह विशेष वरदान मिला है। वे इस दृष्टि से 'सव्य साची' कहे जा सकते हैं। लेखनी और वाणी का समान सामर्थ्य विरल ही होता है। जो अच्छा लिख लेता है, बोल नही पाता है। जो अच्छा बोल लेता है, वह अच्छा लिख नही पाता। किन्तु भाई यशपाल इसके अपवाद हैं। मागल्य की उनकी उपासना मे लेखनी और वाणी दोनो उनकी अनुचरी-सी बनी हुई हैं। इसे हम उनके जीवन का एक विशेष वैभव ही मानते है। लगता है कि वेद के इस वचन को उन्होने अपना उपासना-मत्र ही बना लिया है

तन्मे मन शिव सकल्प मस्तु !

अर्थात् मेरा मन मगल सकल्पो का आगार बने !

जन-साधारण के लिए इससे ऊंची जीवन-साधना और क्या हो सकती है ?

मागल्य के एक उपासक के रूप में भाई यशपालजी के विषय मे मैं इससे अधिक और क्या लिखू ? क्या कहू ?

भाई यशपालजी जैन आज अपने यश के शिखर पर हैं। उनके यशस्वी जीवन का कीर्तन करने के लिए हमने सार्वजनिक रूप से उनका अभिनन्दन करने का शुभ सकल्प किया है और अपनी स्नेहावलि के रूप मे हम उनको एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी समर्पित करने वाले हैं। ७२ सालो के अपने लम्बे और कर्मनिष्ठ जीवन मे उन्होने यश की कई सीढिया चढ ली है। यशस्विता को उसके कई रूपो में भोग लिया है। उनके माता-पिता ने बहुत सोच-समझकर, दूर दृष्टि से, उनका नाम 'यशपाल' रखा है। पहले यश को नाना प्रकार के प्रयत्नों

और पुरुषार्थों से कमा लेना, और फिर कमाए हुए यश का पूरी खबरदारी और चौकसाई के साथ पालन-पोषण, सगोपन और संवर्द्धन करते रहना, हर किसी के बस की बात नही होती। भाई यशपालजी के बस में यह बात आ गई लगती है। शायद इसी कारण जीवन के अनेकानेक क्षेत्रो में यश उनके पास दौडकर पहुचता रहा है।

इस जन्म के समवेत पुण्यो और पुरुषार्थों के साथ पूर्वजन्म के पुण्यो और पुरुषार्थों का तालमेल बैठ जाने से घर में, घर के बाहर, देश मे, विदेश में, साहित्यिक क्षेत्र में, सम्पादन-प्रकाशन के क्षेत्र में, सस्था सचालन के क्षेत्र में, पर्यटन के क्षेत्र में, नित नए चित्रण और लेखन आदि के क्षेत्र में भाई यशपालजी को आज तक जितना और जैसा यश मिला है, उसे हम विरल ही कह सकते हैं।

किन्तु इसका मतलब यह नही है कि भाई यशपालजी अपने आप में एक पूर्ण पुरुष बन चुके हैं। पूर्णत्व का वैभव तो परब्रह्म परमात्मा को ही अपनी एक विभूति है। देहधारी मनुष्य के हिस्से पूर्णत्व कभी आया नही। आएगा भी नही। अपूर्णता ही मनुष्य की नियति रही है। आगे भी रहेगी। पर वह मनुष्य का दोष नहीं। उसकी मर्यादा है। भाई यशपालजी इस मर्यादा से मुक्त नही है। यह उनकी शक्ति है।

हम मानवो के जीवन में जिस तरह साधारण का अपना एक मूल्य और महत्व होता है, उसी तरह असाधारण की भी अपनी कुछ विशेषताए होती हैं। असाधारणता बिरली चीज है। पर उसका महत्व इसी में है कि वह साधारणो के बीच जीना और निभना सीख लेती है। असाधारणो की छोटी-सी दुनिया के साथ साधारणो की विशालतम दुनिया न जुडे, तो असाधारणता का अपना न तो कोई स्वाद रह जाय, और न कोई रस ही रह जाए। यशस्वियो की जमात में अयशस्वियो का डेरा इसलिए जरूरी है कि उनके बिना यशस्वियो के यश का कोई महत्व और मूल्य नही बन पाता। पूनम की उजली चादनी और अमावस की अधेरी रात, सृष्टि के इस सनातन चक्र में, इन दोनो की अपनी-अपनी प्रतिष्ठा रही है, और रहेगी।

साहित्य के और लोक-जीवन के अन्य अनेकानेक क्षेत्रो में भाई यशपालजी ने जो विपुल यश अर्जित किया है, उसके वे पूरे अधिकारी हैं। सार्वजनिक रूप से उनका अभिनन्दन करके हम अपने जाने-माने किसी एक साथी का नही, बल्कि उस साथी के लम्बे जीवन के साथ जुडी उसकी गहरी साधना का, व्यापक सेवा का, कठिन तपस्या का और प्रगल्भ कार्यकुशलता का ही अभिनन्दन करते हैं और जिसको हमने अपने अन्तर की प्रेरणा से अभिनन्दनीय माना है, उसके लिए अपने अनन्तर का सारा हर्ष उल्लास और आनन्द व्यक्त करके हम सामूहिक रूप से धन्यता का अनुभव कर लेना चाहते है।

जो यश भाई यशपालजी को मिला है, वह उनका अकेले का यश नही है। घर-परिवार से लेकर समाज सगठन, सस्था, देश-विदेश के साथी, सहयोगी, इष्ट-मित्र, सभी इस यश के हिस्सेदार है। इनमे से हर एक ने उनको यशस्वी बनाने में मदद की है। इसलिए उनका यश हम सबका यश भी है। उनका अभिनन्दन करके हम अपना ही अभिनन्दन कर रहे हैं। इस अभिनन्दन-प्रथा की यही खूबी है।

हम सब भलीभाति जानते है कि एक यशपाल जैन से तो न भारतमाता का ही दुख-दैन्य और दारिद्र्य दूर हो सकेगा और न विश्वात्मा को ही कोई ठोस आधार मिल सकेगा। इसलिए आज की इस मगल घडी में हमारे अन्तरतर की भावना तो यही बनी रहेगी कि अपने इस देश के लिए और अपने समय की मानवता के लिए अनगिनत सवाई यशपालो की एक बड़ी जमात इस धरती पर आवे और वह इसको इस पर भारी बोझ से मुक्त करा देने में अपना सारा सामर्थ्य सहर्ष होम दे।

मगल वर्षा करते जाओ
मगल वर्षा करते जाओ।
मगलमय मगल बन जाओ,
अमृतमय अमृत बरसाओ।
चिन्मय चेतन नित प्रकटाओ
जन-जीवन जगमग कर जाओ।
आनंदमय आनद उमगाओ,
करुणामय करुणा सरसाओ।

आशा और अभिलाषा

मदालसा नारायण

□□

यशपाल भाई शुरू से ही जीवन-विकास गाधी-विचारधारा को जन-जन तक पहुचाने की दृष्टि से ही साहित्य-सृजन करते रहे और अभी भी उनकी रचनाए भारतीय समाज को गाधी, नेहरू और विनोबा आदि अपने राष्ट्र के महान शुभचिन्तको का सन्देश पहुचाने का माध्यम बनी हुई है। उन्हे अपने सन्मित्रो और स्वजनो के साथ परिभ्रमण का भी शौक रहा है। उसके साथ समाज-जीवन का सूक्ष्म अवलोकन करने मे उन्हे बडा आनन्द मिलता है। ऐसे अनमोल अनुभवो को अभिव्यक्त करने की उनकी शैली बडी मनमोहक और आकर्षक है। इसी से वे लोकप्रिय साहित्यकार बने है।

पूज्य पिताजी जमनालालजी बजाज के प्रोत्साहन से ही दिल्ली मे 'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना हुई थी। सूय-मण्डल की भाति 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने भारत मे राष्ट्रीय भावना को फैलाने का अखण्ड रूप से धाराप्रवाही प्रयास किया है। श्रद्धेय पूज्य हरिभाऊजी उपाध्याय की राष्ट्रीय सस्कारो से परिपूर्ण जीवन-साधना सम्पन्न हुई। पूज्य काकाजी जमनालालजी के साथ उनकी घनिष्ट आत्मीयता थी। 'त्यागभूमि' से 'जीवन-साहित्य' तक सतत उन्होने भारतीय साहित्य को अपने साधनामय योगदान से नये युग के अनुरूप समृद्ध किया है। उनके अनन्य अनुज भाई श्री मार्तण्डजी उपाध्याय ने अपना सारा जीवन 'सस्ता साहित्य मण्डल' के प्रकाशन मे समर्पित किया है। श्री यशपाल भाई उन्ही के अत्यन्त और अभिन्न स्नेही, साथी और सहयोगी रहे। अत मण्डल के सचालन मे शुरू से उनकी गहरी अभिरुचि और पूरा सहयोग रहा है।

भारत के श्रेष्ठतम राष्ट्रीय नेता, सेवक, सहायक, अभिभावक और शुभचितको से यशपालजी का

परिचय और घनिष्टता बराबर बढ़ती रही है। श्रद्धेय कमलनयन भाई के साथ भी उनका बड़ा गहरा सख्यभाव था। उनके जीवन मे सत्साहित्य-प्रचार के साथ सद्विचार और सदाचार का सुन्दर सुमेल है। उनकी जीवन-संगिनी धर्मपत्नी सौ आदर्शबहन सचमुच यथानाम तथास्वरूपा ही हैं। इन्ही सब बातो की वजह से भाई यशपालजी के घर-परिवार के साथ बड़ी आत्मीयता अनुभव होती रही है। स्नेहभरी राखी की मगलभावनाओ को उन्होंने सदा सहर्ष स्वीकार किया है।

मेरी कामना है कि ऐसे सद्भावी भाई यशपालजी का यश दिनोदिन संवर्धित हो तथा वे अपने जीवन के अनमोल अनुभवों के आधार पर अपनी राष्ट्रीय सस्कार-परम्परा को जन-जन के जीवन मे प्रवाहित करने मे खूब सफल हो, जिससे नवयुग के अभिजात बालको का जीवन सद्गुण-सुमनो से सदा फलता-फूलता रहे और सुमधुर सुगंध से घर-घर मे माता-पिता का मन प्रसन्न और समाज का वातावरण सदा सुरभित बना रहे। यही आशा और यही अभिलाषा भाई श्री यशपालजी की वर्षगाठ के शुभ अवसर पर सहज रूप से अभिव्यक्त हो रही है।

हमारे स्वजन

विष्णुहरि डालमिया

□□

भाई यशपालजी के साथ हमारे परिवार के बहुत पुराने सम्बन्ध है। उनके व्यक्तित्व मे इतना आकर्षण है कि अनजाना व्यक्ति भी प्रथम परिचय पर उनसे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। उनका हसमुख स्वभाव, स्पष्टवादिता और मिलनसारिता आदि गुण उनके व्यक्तित्व को और भी गरिमामय बनाते हैं। धैर्य तो उनका भूषण ही है।

साहित्यिक क्षेत्र उनकी रचनाओ से उनका ऋणी है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के द्वारा गाधीवादी साहित्य का ही नही, वरन् नैतिक साहित्य का प्रचार-प्रसार हुआ है। आजादी की लडाई जिन मान और मूल्यो के लिए लडी गयी, जनता को उससे अवगत होना बहुत आवश्यक था। समय की इस माग की पूर्ति 'सस्ता साहित्य मडल' द्वारा उपयुक्त समय पर की गयी। श्री यशपालजी का इसमे विशेष हाथ रहा। उनके सम्पादकत्व मे 'मण्डल' से निकलने वाले मासिक पत्र 'जीवन साहित्य' का भी इस दिशा मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

यशपालजी मे एक और गुण है। उसकी चर्चा यहा न करने से बात अधूरी हो रह जायगी। वे बहुत भ्रमणशील व्यक्ति हैं। फोन करने पर बहुधा यह सुनाई देता है कि वे अमुक यात्रा पर गये हैं। इन यात्राओ मे देश-विदेश दोनों की यात्राए सम्मिलित रहती हैं। यदि यह कहा जाय कि उन्होने दुनिया देखी है तो अति-

मुक्ति नहीं होगी। इस यात्रा-अनुभव को वे अपने तक ही सीमित नही रखते, अपितु यात्रा-सस्मरण लिख कर शीघ्र-ही अपने इष्ट मित्रो और पाठको तक पहुचा देते हैं।

हम सपरिवार अमरनाथ की यात्रा पर गये थे और भाई मार्तण्डजी और यशपालजी भी उसी समय अपने परिवार के साथ उस यात्रा पर गये थे। रास्ते मे एक स्थान पर हम लोग मिल गये। मार्ग अत्यन्त दुर्गम था। ऊपर वर्षा हो गई। बर्फ गिर गई। इन सारी कठिनाइयो से घबराकर मैं किसी प्रकार भी आगे जाने को तैयार नही था। यशपालजी की टोली चल पडी। लेकिन यशपालजी मुझे उत्साहित करने के लिए हमारे साथ रुक गये और हम सबको खीचकर ले ही गये। सच बात तो यह है कि हमारी अमरनाथ-यात्रा पूर्ण कराने का श्रेय उन्ही को है।

भाई यशपालजी अपने स्वजन और आत्मीय हैं। आत्मीयजन के लिए तो सदैव ही कल्याण-कामना बनी रहती है। फिर भी उनकी आयु के ७२ वर्ष पूरे होने पर मैं उनकी वषगाठ के अवसर पर मगलमय प्रभु से प्राथना करता हू कि उन्हे वे सदैव स्वस्थ, सुखी और शतायु बनाये, जिससे साहित्य, समाज और देश की सेवा मे वे सदैव अग्रसर रहे।

परम गांधी-भक्त

प्रेमचन्द गुप्ता

□□

श्री यशपालजी की साहित्यिक और सामाजिक सेवाओ से कौन ऐसा सावजनिक कार्यकर्ता होगा, जो परिचित न हो। वह एक अलमस्त तबियत के महानुभाव हैं। सदा प्रसन्नचित्त रहने वाले यशपालजी के हृदय मे साहित्य, सस्कृति और समाज की सेवा करने का सकल्प कट-कूट कर भरा है। उनके सान्निध्य मे रहने वाला कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना ही बडा या छोटा क्यो न हो, अपने-आप को धन्य मानता है।

श्री यशपालजी स्वभाव से घुमक्कड प्रकृति के हैं। जहा उन्होने देश और विदेश की कई बार यात्राए की, वहा उत्तराखण्ड की तपोभूमि की यात्रा से भी वह वचित नही रहे।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के वरिष्ठ सहयोगी और मत्री के रूप मे उन्होने देशवासियो को सस्ता, सुन्दर, श्रेष्ठ गाधीवादी साहित्य प्रदान करने मे अत्यन्त कमठता से कार्य किया है। देश और विदेश मे ख्याति प्राप्त 'चित्रकला सगम' के तो वह प्राण ही हैं। उन्ही की सूझ-बूझ से ताशकद मे भारतीयता के प्रतीक स्वर्गीय प्रधानमत्री श्री लालबहादुर शास्त्री की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गयी। यशपालजी मन, वचन कर्म, भाषा तथा वेशभूषा से पूण भारतीय है। उनके दर्शन मात्र से हृदय को प्रफुल्लता होती है।

यशपालजी परम गांधी-भक्त और पूज्य विनोबा भावे के प्रबल समर्थकों मे से हैं। वर्तमान समय में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति हो रहा खिलवाड, नशाबन्दी मे ढील तथा खादी पहनने की अनिवार्यता को समाप्त किये जाने की प्रक्रिया को देखकर यशपालजी का हृदय द्रवित हो उठता है।

बहत्तर वर्ष पूरे करने के शुभ दिन पर मगलकामनाए और बधाई।

उनकी आत्मा भारतीय है

राधाकृष्ण नेवटिया

□□

बन्धुवर यशपालजी आज बहत्तर वर्ष पूरे कर चुके है और ये वर्ष साधनापूर्ण तथा चिन्तनपूर्ण रहे हैं। उनका साहित्य लोकहितार्थ है, क्योकि उनकी आत्मा भारतीय है, जो परम्परा से शाश्वत रही है।

यशपालजी से मेरा परिचय आज से ३२ वर्ष पूर्व हुआ था, जब वे 'सस्ता साहित्य मण्डल' के कार्य से कलकत्ता आये थे। 'मण्डल' ने जो ज्ञान के क्षेत्र मे कार्य किये हैं, उसका श्रेय यशपालजी की नि स्वार्थ साहित्य-सस्कृति की सेवा को है।

यशपालजी योग, प्राकृतिक चिकित्सा और सर्वोदय के समर्थक रहे हैं। 'जीवन साहित्य' मे उनकी इस निष्ठा का परिचय मिलता है। शायद मुझसे उनकी घनिष्ठता मे योग और प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति उनकी रुचि ने हो काय किया है। योग-सम्बन्धी मेरी पुस्तको को उन्होंने सवदा ही प्रोत्साहन प्रदान किया है।

आज कला का उद्देश्य केवल कला के लिए माना जाता है और इस क्रान्ति ने कला को जीवन से एक प्रकार से विलग कर दिया है। कुछ मनीषी, जो भारतीय साहित्य-दर्शन के अनुयायी हैं, वे जीवन को ही कला का उद्देश्य मानते हैं और उनकी साधना स-हित होती है। कहना नही होगा कि यशपालजी की साधना 'सत्य शिव और सुन्दरम्' से ओतप्रोत है तथा गाधीवादी होने के नाते गाधीजी के इस विचार की अनुगामिनी है कि "मैं जीवन को कला से भी बडा मानता हू।"

मैं श्री यशपालजी के दीर्घायु होने की कामना करता हू।

भारतीय संस्कृति के प्रेरक

रुक्मिणी अभिलाख माड़े

□□

पूज्य यशपालजी का नाम मैंने सुना था, परन्तु उनके दर्शन का सौभाग्य उस समय मिला जब वे हमारे देश सूरीनाम के हवाई अड्डे पर पहुंचे। उनके दर्शन से मुझे विशेष प्रसन्नता हुई।

मैंने यह भी सुना था कि यशपालजी बहुत ही अच्छे वक्ता तथा लेखक हैं। उनके भाषण से सचमुच यह अनुभव हुआ कि मानव-रूप मे वह एक महान पुस्तक है। बिना हिचक के वे शुद्ध भाषा मे श्रेष्ठ भावो को जिस तरह व्यक्त करते हैं, सुनने वाले मुग्ध रह जाते हैं। उनके शब्दो मे मिठास तथा दिल को खीच लेने वाली नम्रता है।

भारतीय सस्कृति के वे प्रेरक हैं। वे मानव का आदर करते हैं तथा आध्यात्मिक उन्नति को ही प्रमुख स्थान देते है। ईश्वर करे कि उनकी सौ वर्ष की आयु हो और उनका यश चिरकाल तक फैलता रहे।

वह कभी किसी को निराश नही करते

हरिबाबू कंसल

□□

श्री यशपाल जैन से जिन व्यक्तियो को मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे उनके व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए है। हिन्दी-जगत मे उनकी साहित्य-सेवा से सभी परिचित हैं। सुदूर पूर्व यूरोप, अमरीका आदि देशो मे भ्रमण कर उन्होने जो अनुभव प्राप्त किये है, उन्हे कई बार सुनने का अवसर मिला है। उनका सरल स्वभाव उनकी विद्वत्ता की कान्ति को और भी बढ़ा देता है। यशपालजी मृदुभाषी तथा गम्भीर हैं। वह केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद के कई कार्यक्रमो मे पधारे हैं। हमारा यह सुखद अनुभव है कि यशपालजी किसी भी कायकर्ता को कभी निराश नही करते। वह जहा जाते है, वक्ता और श्रोता के बीच सामान्यत विद्यमान दूरी नही दिखाई पडती। नये व्यक्तियो को भी वह चिरपरिचित जैसे लगने लगते हैं।

यशपालजी का राजधानी के अनेक साहित्यिक, सास्कृतिक तथा सामाजिक कार्यों मे महत्वपूर्ण योग-दान रहा है, किन्तु उसका उपयोग उन्होने कभी कोई निजी लाभ प्राप्त करने अथवा व्यक्तिगत यश कमाने

के लिए नहीं किया। उनकी निःस्पृह और ठोस सेवाएं, उनकी विद्वत्ता तथा उनका सरल स्वभाव स्वयं ही उनका यश फैलाते रहे हैं।

भगवान से प्रार्थना है कि श्री यशपालजी दीर्घायु हों तथा पूर्ण स्वस्थ रह कर नि स्पृह रूप से देश और समाज की सेवा करते हुए साथियों का मार्ग-दर्शन करते रहें।

उनका प्रबुद्ध रूप

(डा) गोपाल शर्मा

□□

श्री यशपालजी जैन से मेरी प्रथम भेंट कुण्डेश्वर (टीकमगढ—मध्य प्रदेश) मे हुई थी। उस समय ये तरुण हिन्दी लेखक और पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध थे। प बनारसीदास चतुर्वेदी के सान्निध्य मे आश्रमवासी की तरह इन्होने कई वर्षों तक साहित्य-साधना की। दोबारा जब मैं दिल्ली मे मिला, तब वे अपनी ख्याति के शिखर पर थे और उनके लेखन और व्यक्तित्व मे गहराई तक राष्ट्रपिता गाधीजी के दर्शन का प्रभाव पैठ चुका था। आज वे 'सस्ता साहित्य मण्डल' जैसी आदशवादी प्रकाशन सस्था के स्तभ हैं और स्वय भी गांधी-दर्शन के क्रियात्मक रूप का प्रभावी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने विदेश-यात्राए भी बहुत की हैं और जहां भी गये हैं, सादगी और भारतीय सस्कृति का प्रबुद्ध और निखरा रूप प्रस्तुत किया है।

श्री यशपालजी जैन को बहत्तर वर्ष पूरे होने के अवसर पर मैं अपना अभिनन्दन और मगल कामनाए प्रेषित करता हू। उनकी सादगी, अपरिग्रह और प्रतिष्ठित वरिष्ठता हमे, हमारे सहयोगियो और मित्रों को सदा प्रेरणा देती रहे।

कीर्ति के गौरीशकर

(डा) महेन्द्र सागर प्रचडिया

□□

प्रभु का श्रेष्ठ ससारी सस्करण पुरुष है। कुछ पुरुष कुलीन कुल मे उत्पन्न होकर प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं और कतिपय ऐसे पुरुष होते हैं जो स्वार्जित पुरुषार्थ द्वारा जन-समुदाय और समाज मे यश अर्जन करते हैं। ऐसे ही

कतिपय पुरुषों में जैन कुल मे उत्पन्न यथा-नाम तथा गुणधारी भाई श्री यशपालजी का नाम सम्मिलित किया जा सकता है।

श्री यशपाल जैन का जन्म पहली सितम्बर १९१२ को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिलान्तर्गत विजयगढ नामक कस्बे मे हुआ था। आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त प्रसिद्ध शिक्षा-सस्थान—इलाहाबाद विश्व-विद्यालय से १९३५ मे बी ए उत्तीर्ण किया और कालान्तर मे १९३७ मे एल-एल बी की परीक्षा उत्तीर्ण की, किन्तु वकालत और बैरिस्टरी मे जी नही रम सका। बचपन से ही उनकी साहित्य के प्रति अभि-रुचि रही है और छात्र-जीवन से ही उनकी कविताए, कहानियां, गद्यगीत आदि हिन्दी के प्रतिष्ठित पत्रो मे प्रकाशित होते रहे हैं।

पढाई पूरी करके वह सीधे लेखन तथा पत्रकारिता के क्षेत्र मे आ गये। उन्होने कहानियां, निबन्ध तथा यात्रा-वृत्तान्त आदि लिखे हैं, जिनके अनेक सग्रह प्रकाशित हुए हैं। श्री जैन ने 'मिलन', 'जीवन-सुधा', 'मधुकर' आदि पत्रो का सम्पादन किया और अब वह सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली से प्रकाशित 'जीवन साहित्य' नामक मासिक पत्र का गत ३९ वर्षों से सम्पादन कर रहे हैं। वह मौलिक लेखन के साथ-साथ अनुवाद और सम्पादन कार्य मे सिद्धहस्त है।

भारत की अनेक प्रसिद्ध सस्थाओ के साथ यशपालजी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वह भारतीय साहित्य परिषद (दिल्ली प्रदेश) के अध्यक्ष रहे हैं और हिन्दी-भवन, चित्रकला सगम तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के उपाध्यक्ष। भगवान महावीर के २५००वे निर्वाण महोत्सव की राष्ट्रीय समिति, कार्य समिति और जैन महासमिति के सदस्य है। उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हे 'साहित्य-वारिधि' और नई दिल्ली के जैन समाज ने 'साहित्य रत्न' की उपाधि से अलकृत किया था।

यशपालजी प्रकृष्ट पयटक है। महा पडित राहुलजी के उपरान्त विश्व की सर्वाधिक दूरी को नापने वाले प्रसिद्ध पर्यटक श्री यशपालजी का नाम महत्वपूण है। सारे भारत मे अनेक बार घूमने के साथ विश्व के लगभग ४२ देशो का प्रवास किया है। रूस, यूरोप, अमरीका, कैनेडा, अफ्रीका, दक्षिण-पूव एशिया, मारीशस, फीजी, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, सूरीनाम, गयाना, ट्रिनीडाड, जापान, चीन आदि देशो मे हो आये है। एक बार तो उन्होने एक शिष्ट-मडल का नेतृत्व किया था, जिसमे दिल्ली के भतपूव महापौर श्री हसराज गुप्त, नवभारत टाइम्स के सम्पादक श्री अक्षय कुमार जैन, स्व लालबहादुर शास्त्री के पुत्र तथा अन्य व्यक्ति थे।

इन देश-विदेशो की सस्कृति, साहित्य तथा कला का परिचय उन्होने बडी सुन्दरता से भारतवासियो को कराया है। अपनी सभी रचनाओ मे उन्होने विभिन्न देशो के निवासियो को एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न किया है। विदेशियो के मन मे भारतीय सस्कृति, साहित्य, कला तथा जैन दशन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करने का बेजोड काम किया है।

यशपालजी के लिबास मे भारतीयता, उनके विचारो मे महावीर की अहिंसा और गाधी की सर्वोदय प्रियता, उनके व्यवहार मे स्पष्टवादिता और सादगी विशेष आकषण रहे है। वाणी चरित्र की प्रतिध्वनि हुआ करती है। देशी-विदेशी कोई भी जन उनके ससग मे आने पर उनका मित्र हुए बिना नही रह सकता। भाई यशपालजी सच्ची और अच्छी मित्रता के प्रतिमान है।

यशपालजी ने बडे परिमाण मे मौलिक अनूदित तथा सम्पादित साहित्य का सृजन किया है। नव प्रसून, मैं मरूगा नही, एक थी चिडिया, सेवा करे सो मेवा पावे, बेताल पच्चीसी (दो खण्ड), सिंहासन बत्तीसी (दो खण्ड) दिव्य जीवन की झाकिया नामक उनके कहानी सग्रह दायरे और इसान, मुखौटे के पीछे है। 'जीवन-सुधा' मे धारावाहिक प्रकाशित उनका 'निराश्रिता' नामक उपन्यास बहुचर्चित रहा है।

रूस में छियालीस दिन, पड़ोसी देशों मे, उत्तराखण्ड के पथ पर, जय अमरनाथ, जगन्नाथपुरी, कोणार्क, अजंता-एलौरा, गोमुख आदि यात्रा-वृत्तान्त प्रकाशित हो चुके हैं। 'तीर्थंकर महावीर' और 'साबरमती का संत' नामक जीवनियां-ग्रन्थ रचे हैं, जो देश-विदेश मे समादृत हुए हैं। इसके अतिरिक्त 'सब जन एक समान' उनका बहुचर्चित रेडियो-रूपक संग्रह है।

अनूदित कृतियो मे 'जिन्दगी दांव पर' तथा 'विराट' (स्टीफनज्विग के उपन्यास), 'गांधी चिन्तन' (गांधी के लेखो का संग्रह) तथा जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय (खण्ड-३), लड़खड़ाती दुनिया, हिन्दुस्तान की समस्याए (जवाहरलाल नेहरू के निबन्धो के संग्रह) उल्लेखनीय हैं।

सम्पादन-कला मे भाई यशपालजी साकार अनन्वय अलकार हैं। उनके सम्पादन और सकलन रूप मे अनेक प्रसून प्रचलित हैं, जिनमे महात्मा गाधी, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, काका साहेब कालेलकर, विनोबा, बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिभाऊ उपाध्याय, नाथूराम प्रेमी स्मृति ग्रथ, गाधी की कहानियां, पचदशी, भारत विभाजन की कहानी तथा समाज-विकास-माला की १७४ पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं।

भाई यशपालजी की रचनाओ का मूल स्वर—सहज आत्मीयता और सरलता, मानवता का सम्पूर्ण आदर्श, मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा तथा भारतीय सस्कृति का संवर्द्धन मे प्रगुंजित है। उनकी अनेक कृतिया केन्द्रीय सरकार तथा राज्यीय सरकारो से पुरस्कृत हुई हैं। 'रूस मे छियालीस दिन' पर 'नेहरू सोवियत लैण्ड पुरस्कार' प्राप्त हुआ है। बाद मे यही पुरस्कार उन्हे उनकी 'सेतु-निर्माता' पुस्तक पर मिला। इसके अतिरिक्त धर्मयुग, नवभारत टाइम्स, दैनिक तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि पत्रो मे नियमित रूप से लिखते रहे हैं। आकाशवाणी से वार्ताए प्रसारित करते हैं तथा टेलीविजन से भी सम्बन्धित हैं।

सबसे विलक्षण गुण है भाई यशपालजी में सर्वदा सदाबहार की नाईं प्रफुल्लित रहना तथा सम्पादकाचार्य प महावीर प्रसाद द्विवेदी को भाति नये लेखको को आत्मीय पूर्वक प्रोत्साहन देते रहना और उन्हे दिशा दिखाते रहना। इस प्रकार यह सक्षेप मे साभिप्राय कहा जा सकता है कि वे विचारो के विश्वविद्यालय हैं और चरित्र के विद्यापीठ।

यशपालजी का सम्मान करना सस्था को सम्मानित करना है, पवित्र विचारो को सम्मानित करना है तथा भारतीय मनीषा को सम्मानित करना है। मा सरस्वती के वरदपुत्र श्री यशपालजी युवक की ऊर्जा लेकर शतायु हो, यही प्रभु से मगल कामना है।

सबके अपने

सावित्री स्वारा

□□

सन् १९४१ मे मैं और आदर्श (श्री यशपालजी की धर्मपत्नी) सयोगवश एक ही विद्यालय मे अध्यापन कार्य सहयोगी के रूप मे एक-दूसरे के सम्पर्क मे आये। छात्रावास मे अध्यापिकाओ के आवास की व्यवस्था

थी और मेरा और आदर्श का कमरा साथ-साथ था। पंजाबी अर्थात् भिन्न प्रान्त की होते हुए भी मेरी आदर्श के साथ विशेष घनिष्ठता अपने आप मे एक विशेष घटना ही कही जा सकती है और इसका श्रेय आदर्श को ही है। हम दोनो केवल एक वर्ष ही साथ रहे, परन्तु इतने समय मे जितना स्नेह मुझे आदर्श ने दिया, वह मेरी अमूल्य निधि है और उसकी याद इतने लम्बे समय के उपरात भी ताजा है जैसे कल की ही घटना हो। हम दोनों एक-दूसरे को अपने अतरग प्रसग बताने मे भी हिचकिचाते नही थे। इसी बीच यशपालजी से भी भेंट हुई और मुझे ज्ञात हुआ कि आदर्श और यशपालजी एक-दूसरे को जीवन-साथी के रूप मे अपनाने के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। परन्तु आदर्श के पिता (कामता प्रसाद, एडवोकेट) जाति विभिन्नता तथा पारिवारिक कारणो से इस सम्बन्ध के घोर विरोधी थे।

एक बार हम लोग दिल्ली मे श्री जैनेन्द्र कुमारजी के घर गए। वापसी पर यशपालजी हम लोगो को स्टेशन पर पहुचाने आए। उस दिन बात-ही-बात मे मैंने उनके विवाह का प्रसग छेडा। उत्तर मे यशपालजी ने कहा कि इस सम्बन्ध मे मेरी तो कोई दूसरी राय नही। बिलम्ब केवल आदर्श के अन्तिम निर्णय लेने का ही है। इनकी स्वीकृति मिलते ही मैं अदालत मे आवदन-पत्र दे दूगा। आदर्श सकोचवश कुछ बोल नही रही थी। मैंने स्वय कह दिया वह तैयार है और उसके बीस दिन बाद कुमारी आदश कुमारी कुल-श्रेष्ठ, श्रीमती यशपाल जैन हो गयी।

इस नात यशपालजी मेरे जीजा हुए, परन्तु अपने व्यवहार के कारण वह मेरे भाई कहे जा सकते हैं। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व विशिष्ट गुणो और अवगुणो का सम्मिश्रण होने के कारण एक विशिष्टता लिए हुए होता है, परन्तु यशपालजी के व्यक्तित्व को लेखनीबद्ध करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। आजकल भौतिकवाद का बोलबाला है। वर्तमान समय मे जो व्यक्ति पाश्चात्य देशो का भ्रमण कर आते हैं, वे अपने आपको अन्य भारतवासियो से श्रेष्ठ समझने लगते है और अपने सगे-सम्बन्धियो से भी अपने को अलग समझते है। यशपालजी को भ्रमण का बेहद शौक है और अब तक उन्होने चालीस से ज्यादा देशो की यात्राए की है। इतने पर भी उनमे अह नाम की कोई भावना नही है। उनका ज्ञान अनुभव द्वारा अर्जित होने के कारण वास्तविक ज्ञान है। अत उनकी लेखनी मौलिक होने के कारण बडी रोचक होती है। छोटी-से-छोटी घटना को वह इस ढग से प्रस्तुत करते या सुनाते है कि सुनने वाले को स्वत आभास होता है कि वह केवल सुन ही नही रहा, अपितु देख भी रहा है।

यशपालजी का सामाजिक क्षेत्र विशाल है। महात्मा गाधी का कथन है कि दूसरा के गुण ग्रहण करो, दुर्गुण छोड दो। यशपालजी अपने मिलने वालो के गुण को छीनकर सहेज लेते है और अवगुणो की आर से सदा उदासीन रहते है। कारणवश प्रत्येक मिलने वाले को ऐसा लगता है कि वह यशपालजी के निकटतम हैं। जीवन मे उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं। तदर्थ सवेगा का प्रदशन भी स्वाभाविक है, परन्तु मुझे जब कभी भी यशपालजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है मैंने सदैव उनको प्रसन्न एकरस मुद्रा म पाया है। मिलने पर उन्होने इस प्रकार का स्वागत किया है कि मैं ऐसा महसूस करने लगती हू, जैसे वह मेरी राह देख रहे थे। मैं बहुत सकोची स्वभाव की हू, पर न जाने क्यो, उनके सामने आत ही मैं कहनी-अनकहनी समस्त समस्याए उनके सामने उडेल देती हू बिना यह सोचे कि वह अत्यधिक व्यस्त हैं और वह बडी तन्मयता से सुनकर यथा-सम्भव सुझाव देते हैं।

यशपालजी के विवाह के समय उनके ससुर उनसे बहुत नाराज थे, किन्तु यशपालजी की व्यवहार-कुशलता के कारण वह उनके प्रबल प्रशसक बन गए और अन्तरजातीय और अन्तरप्रान्तीय ही नहीं, अन्तर-राष्ट्रीय विवाह-सम्बन्धो को भी उदारतापूर्वक उनका आशीर्वाद प्राप्त होने लगा। सात पुत्रियों और दो पुत्रों

के सबसे अधिक विश्वसनीय, योग्य और शुभचिंतक दामाद और स्नेह भाजन यशपालजी ही बन गए। यही नहीं, आदर्श की बहनो को भी इतने सौहार्दपूर्ण जीजा की सालियां होने पर नाज है।

मैं तो यशपालजी के स्नेहपूर्ण और विशाल हृदय की कल्पना इस प्रकार करती हूं कि उनमें उनके मिलने वालो के निजी कक्ष बने हुए हैं, जिसमें आकर उनमें से प्रत्येक को विश्वास हो जाता है कि यह कक्ष उसका और केवल उसका ही है और वह जीवन भर इसमे बेखटके रह सकता है।

सैलानी साहित्यकार

राजदेव त्रिपाठी

□□

यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि आदरणीय भाई यशपालजी इसी सितम्बर मे बहत्तर वर्ष पूरे कर रहे हैं। आश्चर्य इसलिए कि अपने शारीरिक गठन और चेहरे-मोहरे से वह बहत्तर क्या पचास के भी नही लगते। निश्चय ही उनका यह तारुण्य उनकी साधना और सयमित सात्विक जीवन का परिचायक है। वस्तुत राजधानी के साहित्यकारो मे यशपालजी एव विष्णुप्रभाकरजी की जोडी ऐसी है जिनकी आयु के सम्बन्ध मे बहुतो को भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। जाने ये दोनो किस चक्की का आटा खाते है।

गाधीवादी लेखक के रूप मे मैं यशपालजी को बहुत दिनो से जानता रहा हू किन्तु उनके निकट आने का अवसर मुझे सन् १९६० मे हुआ जब 'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा मेरी एक पुस्तक का प्रकाशन हो रहा था। यशपालजी की वाणी मे माधुर्य, स्वभाव मे मृदुता और आखो मे आकर्षण है। बात करते समय उनके होठो पर एक स्मित-हास बिखरता जाता है, यह उनके मोहक व्यक्तित्व का प्रमाण है। स्वदेशी हो या विदेशी, किसी को भी अपना बना लेने के लिए यशपालजी मे एक पैनी पकड है।

यशपालजी के साथ गोष्ठियो, साहित्यिक समारोहो और हल्के-फुल्के पर्यटनो मे भाग लेने का अवसर मिलता रहा है। जिन्दादिली उनमे खूब है। जैन धर्मावलम्बी और शुद्ध गाधीवादी होने के नाते वह किसी का दिल दुखाना नही जानते, किन्तु कही भी, किसी प्रसग मे वह अन्याय अथवा अनुचित मत बर्दाश्त नहीं कर सकते। ऐसे अवसरो पर वह अपने हास्य और व्यग्यपूर्ण प्रहार से जो करारी चोट करते हैं, वह झेल पाना मुश्किल होता है।

जिस सस्था की बागडोर यशपालजी के हाथ मे है, उसके वह सजग प्रहरी हैं। 'सस्ता साहित्य मडल' के हिताहित का उन्हे हर क्षण ध्यान रहता है। गत वर्ष अपने पूज्य पिताजी के निधन का समाचार मैंने उन्हे दिया तो उन्होंने मुझे एक पुस्तक भेट की, जिसे उन्होने अपनी स्वर्गीया मातृश्री की पुण्य-स्मृति मे प्रकाशित

किया था। उनसे प्रेरणा पाकर मैंने पिताजी की प्रथम बरसी पर एक स्मारिका प्रकाशित करने का निश्चय किया, जिसके लिए मैंने यशपालजी से एक लेख की मांग की। यशपालजी के पास समयाभाव रहता है, किन्तु वह मुझे अपने स्नेह से वंचित नही करना चाहते थे। तत्काल वही बैठे-बैठे उन्होंने एक संक्षिप्त लेख लिख दिया।

यशपालजी एक साहित्यकार और समाज-सेवी के रूप में विख्यात हैं। अनेक पत्र-पत्रिकाओ ने उन्हें गाधीवादी साहित्यकार की उपाधि से विभूषित किया है। राजधानी की अनेक साहित्यिक और सामाजिक सस्थाओ मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। किन्तु उनका एक और रूप है जिसे उनके निकटवर्ती अधिक जानते हैं। वह स्वभाव से सैलानी हैं। भ्रमण और पर्यटन के प्रति उनके मन मे अत्यधिक आकर्षण है। विश्व के प्राय सभी महत्वपूर्ण देशो की वह यात्रा कर चुके हैं। हर वर्ष कही-न-कहीं यात्रा पर निकल जाते हैं और अपने यात्रा-वर्णनो मे हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहते हैं। राजधानी की पर्यटक संस्था 'यात्रिक सघ' के वह सस्थापक और कर्मठ पदाधिकारी हैं।

चित्त-विस्तार और अवकाश के धनी

व्योहार राजेन्द्र सिंह

□□

आज के व्यस्त जीवन मे यदि कोई वस्तु सबसे दुर्लभ है तो वह है चित्तविस्तार और अवकाश। कामकाजी मनुष्य यह कहता पाया जाता है कि मुझे मरने तक की फुरसत नही है। दूसरे, युग मे अधिकाश मनुष्य इतना सकुचित और आत्मकेन्द्रित मनोवृत्ति के होते हैं कि अपने सिवा किसी को महत्व नही देते और अपने सिवा उन्हे किसी के लिए अवकाश नही है। यदि उनके लिए किसी का महत्व है तो अपनी शारीरिक आवश्यकताओ और मानसिक महत्वाकाक्षाओ का। अपनी उच्चतर वृत्तियो के लिए भी उनके पास कोई अवकाश नही हैं। इसके विपरीत लोक-सग्रह या व्यक्तिगत प्रेम के लिए चित्त-विस्तार और अवकाश भी नितान्त आवश्यक होता है।

श्री यशपाल जैन ऐसे व्यक्तियो मे से हैं, जिनके चित्त का इतना विस्तार है कि उसमे दैनिक आवश्यकताओ के अतिरिक्त स्थायी मूल्यो के लिए भी पूरा स्थान है, जिससे अपनी उच्चतर वृत्तियो के विकास को भी पूर्ण अवसर मिल जाता है। यशपालजी सामाजिक कार्यों के अतिरिक्त मित्रो से प्रेमालाप करने का भी समय निकाल लेते हैं। इसका कारण यही जान पडता है कि उनके शरीर पर कार्यभार होते हुए भी उनके मन पर कोई भार नही है।

महात्मा गांधी के लिए किसी विदेशी लेखक ने लिखा है कि मैंने इतना व्यस्त किन्तु साथ ही इतना भारमुक्त व्यक्ति दूसरा नही देखा। चित्तभार मुक्त हुए बिना कोई प्रसन्नचित्त और विनोदप्रिय हो नहीं सकता। यशपालजी मे मैंने यह दुर्लभ गुण पाया है, जिसके कारण उनका शरीर भी हल्का है और मन उससे भी अधिक हल्का है। इसी प्रसाद गुण के कारण मनुष्य अपने जीवन को जीने लायक और दूसरो के लिए आनन्ददायक बना सकता है और उसका प्रसाद दूसरों को बांट सकता है।

मेरी कामना है कि यशपालजी अपने चित्त-विस्तार तथा अवकाश में सबको समेटे रहें।

हमारे आत्मीयजन

रामगोपल चतुर्वेदी

□□

यह कलियुग है। जो करता है सो पाता है। यशपालजी ने अनेक अभिनन्दन-ग्रन्थो का आयोजन किया है, इसी का फल है उन्हे ही अब इसका निशाना बनाया जा रहा है। यह सर्वथा स्वाभाविक है।

यशपालजी ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। सैकडो पुस्तको का सम्पादन किया है और कोई यदि मुझसे पूछे तो मैं कहूगा कि अनेको लेखको को उन्होने प्रोत्साहन दिया है। कहानीकार वे हैं ही। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के मुख्य पत्र 'जीवन साहित्य' का उन्होने बडी लगन से सम्पादन किया है। सच बात तो यह है कि 'मण्डल' को इस उन्नत अवस्था मे पहुचाने मे उनका जबरदस्त हाथ है। योजनाबद्ध कार्य करना तो उनसे सीखा जा सकता है। चाहे पुस्तक व्यवसाय हो या अपने घर का काम-काज, वे नियोजित योजना से ही करते-कराते है।

उनकी निष्काम सेवा

वेंकट लाल ओझा

□□

बन्धुवर यशपाल जैन को सर्वप्रथम मैंने दिल्ली की मासिक पत्रिका 'जीवन सुधा' के सम्पादक के रूप मे जाना। उनके साक्षात्कार का अवसर मुझे १६४२ मे टीकमगढ मे मिला, जब वे वहा प्रेरक साधक और सम्पादकाचार्य प बनारसीदासजी चतुर्वेदी के निकट सम्पादन-कला का प्रशिक्षण ले रहे थे।

चतुर्वेदीजी महाराणा ओरछा के अनुरोध पर 'विशाल भारत' का सम्पादन छोड कर टीकमगढ़ आ गये थे और 'मधुकर' नामक पाक्षिक पत्र का सम्पादन करते थे। यशपालजी उसके सह-सम्पादक थे।

चतुर्वेदीजी के अनेक प्रिय कार्यों को यशपालजी ने खुशी-खुशी अपने ऊपर ले लिया था। उनमे प्रमुख हैं साहित्यकारो का सम्मान और उनकी कीर्तिरक्षा।

सन् १६४४ मे 'स्वर्गीय हेमचन्द्र' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। स्व हेमचन्द्र मोदी 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर' के सस्थापक श्री नाथरामजी प्रेमी की एकमात्र सन्तान थे। यशपालजी के सम्पादकत्व मे इस पुस्तक से प्रथम बार प्रेमीजी के आन्तरिक जीवन की झाकी हिन्दी-जगत को मिली।

इतना ही नही, १६४६ मे यशपालजी ने 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रथ' का अनुष्ठान प्रारम्भ किया, जबकि प्रेमीजी बराबर इसका विरोध कर रहे थे। यशपालजी के अथक परिश्रम से ही इस अनुष्ठान को सफलता मिली।

उस समय हिन्दी मे 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रथ' 'गौरीशकर हीराचद ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ', आचाय रामलोचन शरण बिहारी स्वर्ण जयन्ती और पुस्तक भण्डार रजत जयन्ती ग्रथ ही हिन्दी मे उल्लेखनीय अभिनन्दन ग्रथ थे। चौथा स्थान प्रेमी अभिनन्दन ग्रथ को मिला।

प्रेमीजी जैसे दलबन्दी आदि से मुक्त, मूक सरस्वती-साधक की सेवाओ का कौन सम्मान करता ? लोग तो उन्हे एक प्रकाशक के रूप मे ही जानते थे। इस ग्रन्थ के द्वारा उनकी सेवाओ का और साहित्य साधना का सही मूल्याकन हुआ।

देश की स्वतन्त्रता के आने के कुछ ही समय पूर्व टीकमगढ का साहित्य शिखर उजडने लगा और सभी पछी उड गये। यशपालजी दिल्ली चले आये और 'सस्ता साहित्य मण्डल' मे जम गये। दिल्ली के राजनैतिक वातावरण मे भी उनकी साहित्यिक वृत्ति और निखार पर आयी और अनेक अभिनन्दन ग्रथो का प्रकाशन हुआ—विनोबा, काका साहेब कालेलकर, प बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिभाऊजी उपाध्याय आदि के अभिनदन ग्रथो के मूक प्रेरक यशपालजी ही है। वे केवल प्रेरणा देकर ही चुप नही बैठ जाते, बल्कि अपना सक्रिय योग देकर इन अनुष्ठानो को सफल बनाने मे जुट जाते है।

इनके हृदय मे अपने बुजुर्गों के प्रति असीम श्रद्धा और सम्मान है। उनकी कीर्ति रक्षा के लिए वे सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। यह उनकी निष्काम सेवा का प्रतीक है।

'जीवन साहित्य' के कई श्रद्धाजलि विशेषाक यशपालजी को हिन्दी को अमर देन हैं। अभिनन्दनो की तरह उनका भी स्थायी महत्व है, इसमे कोई सन्देह नही है।

उनकी ७२वी वर्षगाठ के अवसर पर मैं यही प्रार्थना करता हू कि भगवान उन्हे दीर्घायु करे और स्वस्थ रखे, जिससे वे अपने जीवन-ध्येय मे दुगने उत्साह से कार्य करते रहे।

क्या-क्या याद करूं

जयती पंत

□□

जब आज यशपाल भैया के विषय मे कुछ संस्मरण पक्तिबद्ध करना चाहती हू तो जैसे बीता हुआ अतीत एक विशाल नीली झील के रूप मे सामने हिलोरें लेने लगता है —भव्य कुडादेव का मन्दिर है, नदी का पानी चारो ओर से घूमती चौडी सीढियो के पास से कलकल बहता जा रहा है, कुडादेव की अति प्राचीन तिमजिली कोठी का प्रतिबिम्ब पानी मे दीख रहा है—छोटे से बाध पर पानी एक कुड से निकलकर प्रपात के रूप मे रुपहली यवनिका बना शत शत धाराओ मे दूसरे कुड मे गिरता जा रहा है, बडी-बडी मछलिया छपाक से कूद कर छोटी मछलियो का पीछा कर रही हैं। छायादार इमली के पेडो की झलती शाखाओ पर पक्षियो के गीत कभी-कभी सुनाई देते थे। तब पहले-पहल नीलाभ जल के वक्ष मे फूल से तैरते भैया तथा भाभी को देखा। मुझे बताया किसी ने कि ये श्री यशपाल जैन और उनकी धर्मपत्नी हैं। इन्हे तैरने मे विशेष रुचि है। अच्छा लगता था उन लोगो का जलविहार देखना, जब कुडादेव के भक्त और यात्रियो के स्नान, अर्चना, सूर्यार्घ्यदान, कपडे धोने तथा लोटे और कलशो मे जल भर कर बुन्देलखडी गीत-गाते सीढ़िया चढ़ कर शिवजी पर जल चढ़ाने के लिए जन समुदाय बढ़ता ये दोनो दुनिया के कोलाहल से दूर सबकुछ भूले, बेसुध से, तैरते रहते। गतिशीलता और स्फूर्ति 'चरैवेति' का मन्त्र ही इनके जीवन की सफलता का रहस्य है शायद!

दूसरा रूप देखा इनकी ज्ञान के प्रति जागरूकता। श्री बनारसीदासजी की अमराई से घिरा प्राचीन आश्रम-सा मकान, जहा उनके अन्तेवासियो की भीड, सतत साहित्य-चर्चा होती रहती थी। मा शारदा का वरद हस्त बहुतो के ऊपर था। कोने मे चतुर्वेदीजी के अन्तेवासियो की भीड़ मे एक प्रसन्न मुख, हाथो मे कागज का पुलिन्दा और मन मे जिज्ञासा लिये दीखता है, तब भले ही 'भैया' यश-कीर्ति, ख्याति से दूर रहे हो, किन्तु 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। जितनी बार चतुर्वेदीजी से मिलने जाती, 'भैया' को साहित्यिक साधना मे रत देखती थी। अपने जीवन को जिस साधना मे ढालना चाहा, गढना चाहा, उसके बीजो का वपन जैसे उसी आश्रम-स्थली मे हो रहा था। अभ्यास, वैराग्य और तप से जो कुछ दूर था, दुराराध्य था, जो कुछ दूर मे व्यवस्थित था, वह सब साध्य की परिधि मे आ गया और वास्तव मे कीर्ति से जो दूर भागना चाहते थे, कीर्ति स्वय छाया सी उनके पीछे लगी। यह सब लम्बी कहानी है कि कैसे धीरे-धीरे हम लोगो का परिचय हुआ और हमारे परिवार मे वे घुल-मिल गये और मेरे हृदय मे यशपाल भैया का विशिष्ट स्थान बनता गया।

समय बडी तेजी से जा रहा था, और घर से आगन और आगन से आश्रम और फिर आश्रम से निकल कर साधक के रूप मे, कर्मठ योगी के रूप मे, 'सस्ता साहित्य मडल से' सबधित हो गये। साहित्य जगत मे इनकी रचनाए ज्ञान चर्चा, इनकी बढती ख्याति सामने आने लगी।

भैया के जीवन का एक और रूप उजागर होता है—भ्रमणशीलता। हाथ मे लाठी है, खद्दर के सफेद कपडे हैं, कभी बद्री-केदार गगोत्री-यमुनोत्री की चोटिया हैं, तो कभी गढ़वाल-कुमायू की रगीन पर्वतमालाए, अमरनाथ की ऊचाइयां हैं। भारत की पृष्ठभूमि मे यात्राओ के रोचक वर्णन से ही पता चलता है कि भैया कितना घूमे, कितना घूम सकते हैं और तदुपरान्त विदेश-भ्रमण चला। हम लोगो ने बडे उत्साह से रोचक वर्णन पढ़े।

इनके ज्ञान का भंडार दिन-पर-दिन विशद होता गया। ज्ञान की गागर भरती चली, अनुभूतियों का भण्डार भी विस्तीर्ण हुआ।

'भैया' की संगति मे आप क्षणभर के लिए सुस्ता लीजिए, आपको बहुत-कुछ जानने को मिलेगा, बहुत कुछ सुनने को मिलेगा। ऐसे लोगो का ससार ही तो 'वसुधैव कुटुम्बकम' होता है। वैसे 'भैया' को इतने निकट से जानती हू कि ये मेरे सहोदर न होते हुए भी ऐसा लगता है, मानो विगत जीवन मे, जीवन-चक्र मे सहोदर ही थे। मेरे राखी-बन्ध भाई के रूप मे जिस श्रद्धाममता के साथ मैं इन्हे राखी भेजती हू, तब लगता है कि कहां छुपे रहे आजतक ये। यदि कभी कोई उपाधियो का वितरण हो और मुझसे पूछ कर नाम सुझाए जाए तो 'भैया' को पदक मिलने चाहिए—प्रियवद् सुदर्शन, अजातशत्रु तथा वे जो विश्वमैत्री के द्योतक हो। वैसे देश-साहित्य की सेवा से भी ऊपर उठकर जो मानव की सेवा करता है, उसे क्या पदक दिया जाय ?

'सन्तिसन्त कियन्त परगुण परमाण्रपर्वतीकृत्य नित्य निजहृदि विकसन्त सन्ति सन्त विपन्त —आज *यह भावभीनी श्रद्धाजलि अर्पण करने मे वास्तव मे अपने को गौरवशालिनी समझती हू। मेरा वीर, मेरा भाई,* यशपाल भैया' शतायु हो !

विद्या और विनय की प्रतिमूर्ति

नरेन्द्र चंद्र चतुर्वेदी

□□

श्री यशपाल जैन के नाम से मेरा परिचय उस समय से है, जब वे कुण्डेश्वर मे श्रद्धेय दादाजी (प बनारसी-दासजी चतुर्वेदी) के सहयोगी बनकर 'मधुकर' का सम्पादन करते थे, किन्तु उनसे साक्षात्कार वर्षों बाद दिल्ली मे हुआ।

उनकी लेखनी का जादू स्टीफन ज्विग की कृतियो के अनुवाद पढकर जाना था। वैसे तो देशी-विदेशी भाषाओ की असख्य कृतियो के अनुवाद हिन्दी मे हुए और होते जा रहे हैं, परन्तु मूल कृति की आत्मा को अपनी भाषा मे उतार देना असाधारण काम है। किन्तु इस असाधारण प्रतिभा का परिचय बन्धुवर यशपालजी ने बडी खूबी के साथ दिया है। वे सफल अनुवादक के साथ-साथ उच्चकोटि के मौलिक लेखक भी हैं।

मुझे जब भी उनसे मिलने का अवसर मिलता है तब-तब उनकी मिलनसारिता से प्रभावित और सहज स्वभाव और सादगी के साथ एक सत्पुरुष से मिलने का सुख लेकर वापस लौटता हू। एक आन्तरिक आनन्द और स्फूर्ति प्राप्त होती है।

विद्या और विनय का उनमे अद्भुत सम्मिलन हुआ है।

सौमनस्य के प्रतीक

धर्मानंद केसरवानी

□□

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे दो यशपालो का विशेष स्थान है और दोनो ही यशपालो से मेरा बन्धुत्व का सम्बन्ध है। क्रान्तिकारी यशपाल मेरे बाल सखा और परम मित्रो मे से थे, परन्तु वे उद्दाम वामपथी थे और डाक्टर न होते हुए भी बडे-बडे महापुरुषो की शव-परीक्षा के कार्य मे निष्णात थे। गाधीवाद की शव परीक्षा उनकी एक विशिष्ट रचना थी। वैसे उनके उपन्यासो ने हिन्दी साहित्य को झकझोर दिया और विदेशो मे भी उनकी कृतियो को सम्मान मिला।

श्री यशपाल जैन से मेरा परिचय एक चिकित्सक के तौर पर हुआ और यह परिचय अनुदित प्रगाढ़ मैत्री मे पल्लवित होता गया। सन् १६४८ से मैं उनके व्यक्तित्व और कार्यकलाप को बारीकी से देख रहा हूं। उनके द्वारा सर्जित साहित्य को शौक से पढता हू। रेडियो पर दिये गए प्रवचनों को ध्यान से सुनता हू। पाता हू कि उनका जीवन साहित्यमय है। गाधीवाद मे उनका अटूट आस्था है। गाधीजी के जीवन-दर्शन और सिद्धान्तो के प्रचारक ही नही, अपितु उसके व्याख्याकार भी हैं। बहुत कम लोग सत्य और अहिंसा का मानवीयता के क्रियात्मक पहल के साथ तालमेल बैठाने मे समर्थ हुए हैं। साहित्य ही नही, बल्कि चित्रकला और सगीत भी यशपालजी के प्रिय विषय हैं और इनके सगम मे—त्रिवेणी मे—अवगाहन करने का वह बराबर आनन्द लेते रहते हैं। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के पच प्राणो मे उनका स्थान 'व्यान' के तुल्य है। "व्यान सर्वशरीरग"।

यशपालजी ने देश-विदेशो का पर्याप्त पर्यटन किया है। वहा की सभ्यता और सस्कृति का सूक्ष्म पर्य-वेक्षण किया है, परतु पश्चिम के उन्माद और प्रमाद के एक क्षण भी वे कायल नही हुए। उन्हें भारतीय सस्कृति की मूलधारा, भगवती गगा की पावनी शीतल धारा के समान मानवमात्र के लिए कल्याणदायिनी प्रतीत होती है। इसीलिए जब-तब गगोत्री की यात्रा करते रहते है, जहा की निर्मल हिमजल तरगें उनके अतरतभ की सास्कृतिक पृष्ठभूमि को प्रसाद-गुण से ओतप्रोत करती रहती हैं। वे दर्जनो से अधिक मनीषियो के अभि-नन्दन-ग्रन्थो का सम्पादन कर चुके है, जो कालान्तर मे, सहस्र वर्षों के बाद प्राप्त स्वातन्त्र्य के इतिहास के अध्ययन मे महान् योगदान करेंगे। सैकडो लेख, कहानिया और कुछ अन्य रचनाए उनकी प्रकाशित हो चुकी हैं, और सबमे उन्होंने मानव और समाज की स्वच्छ अनुभूतियो को प्रकाश मे लाने का यत्न किया है।

यशपालजी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'यत्र विश्व भवत्येक नीडम्' की भावनाओ के उपासक हैं। वे जात-पात की हीन मान्यताओ से ऊपर हैं। यद्यपि उनका जन्म दिगम्बर जैन समाज मे हुआ, परन्तु वे न तीन मे न तेरह मे हैं। जैन साधुओं और इतर महात्माओ के पारमार्थिक गुणो के आधार पर वे उनमे श्रद्धा-भक्ति रखते हैं। नाम के पीछे 'जैन' का प्रयोग भी उनको बलात् करना पडा है। दोनो यशपाल समकालीन लेखक हैं और दोनो की कृतियो मे जमीन-आसमान का अतर है। ५० वर्ष बाद किसी अनुसधानकर्ता अथवा समीक्षक को मतिभ्रम न हो जाय, अत नामो मे भेद-सूचकता की आवश्यकता थी। पारस्परिक समझ के उपरान्त ही ऐसा उन्होंने किया। गतानुगतिकता अथवा सडियल परिपाटी का भी वे अन्धानुकरण नही करते। सर्वदा तर्क की तुला पर बात को तोलने के लिए तैयार रहते हैं। तर्क और विश्वास का समन्वय ही श्रद्धा है। अत कहा जा

सकता है कि वे एक श्रद्धालु—सच्चे अर्थों में—व्यक्ति हैं। न्यायशास्त्र में स्नातक होना भी उनके व्यक्तित्व के एक और पहलू का निर्माण करता है।

निस्सन्देह वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। परन्तु हम उन्हें सौमनस्य का प्रतीक समझते हैं और यही उनका गुण हमें सबसे अधिक प्रभावित करता है। उनका मन सुन्दर और सरस है और सर्वहित मे रत है। इसी का निखार उनके चेहरे और कार्य-कलापो मे, स्वच्छ दर्पण मे, प्रतिबिम्ब की भाति, दिखाई पडता है।

अजातशत्रु

भानु कुमार जैन

□□

यशपालजी मेरे इतने निकट है कि उसका स्मरण आते ही अभिभूत हो जाता हू। यशपालजी मेरे पारिवारिक हैं। वह व्यवहार-कुशल, सतुलित मन और आचरण के व्यक्ति हैं, सहृदय और मानवीय सवेदना-युक्त। उसकी रचनाओ मे भी यह रस और अभिव्यक्ति मौजूद है। वह आदशवादी ही नही, सरल व्यक्ति भी हैं। उनके बारे मे सोचकर लिखू तो वह 'अजातशत्रु' लगते हैं। उन्होने दुनिया घमी है और जहा से जो कुछ सजोया है, वह लिखकर परोस भी दिया है।

कोई प्रसग याद नही आता जबकि उन्होने मेरे पत्रो का उत्तर न दिया हो। आज के व्यस्त जीवन मे यह आत्मीयता निभाना मन के सकल्प का परिचायक है।

यशपालजी मेरी समझ से सहज, सरल निष्पाप, निर्दोष और आडम्बरहीन व्यक्ति हैं। हमारे समाज और राष्ट्र मे ऐसे व्यक्ति अधिक सख्या मे मिल जाए तो सभ्यता और सस्कृति का थोथा राग नही अपनाना पडेगा। सभ्यता का परिवेश ही बदल जाएगा।

मेरी कामना है कि यशपालजी अधिकतम जिए, स्वस्थ रहे, थके नही।

मेरे भाई साहब

सुरेश राम

□□

यशपालजी को मैंने हमेशा अपने बड़े भाई के रूप मे ही देखा और समझा है। उम्र मे तो वह मुझसे लगभग दस बरस बड़े हैं ही, अन्य दृष्टियो से भी मुझसे बहुत बड़े हैं। और असली बड़ा भाई वह है, जो पिता का रूप ले ले। मेरे सौभाग्य से यशपालजी ने कम-से-कम मेरे प्रति वैसा व्यवहार हमेशा किया। इस सम्बन्ध मे मुझे दो प्रसंग याद आ रहे हैं।

एक बार उनके पास 'सस्ता साहित्य मण्डल' के कार्यालय मे बैठा हुआ था। अपनी कलम मे स्याही भरने लगा तो दवात उलट गई और सारी स्याही उनकी धोती पर गिर पड़ी। मैं बहुत शर्मिन्दा हुआ और खयाल आया कि अब भाई साहब गुस्सा होगे या डाटेगे। लेकिन मैं यह देखकर चकित रह गया कि वह मुस्कराने लगे और बोले कि मुझे एक घटना याद आ गई। बड़े मगन होकर उसे सुनाने लगे। मैं मन-ही-मन पछता रहा था। लेकिन उनकी प्रसन्न मुद्रा देख कर माफी मागना तक भूल गया।

दूसरा इससे भी ज्यादा भयंकर है। 'मण्डल' ने एक ग्रन्थ निकालने का निश्चय किया। सम्पादन का दायित्व भाई साहब पर सौंपा गया। उन्होने एक सम्पादन बोर्ड बनाया और मुझे भी उसमे रख लिया। मेरे सुपुर्द लगभग पचास पेज मैटर लिखना था। मैंने कुछ लिखा, उनको दिखाया, उन्होंने कुछ सुधार सुझाये और मैंने वादा किया कि जल्दी ही समय से भेज दूगा। लेकिन देर हो गई और देर होती चली गई। ग्रन्थ छपने का समय आ गया। मैं बहुत घबड़ाया कि क्या किया जाए। भाई साहब की चिट्ठी आई कि चिन्ता करने की कोई बात नही है। ग्रन्थ प्रेस मे दे दिया है और जिस खण्ड की मुझे जिम्मेदारी दी गई थी, उसको थोड़ा विस्तृत करके अलग पुस्तकाकार छाप देंगे। मैं दग रह गया। बदकिस्मती मेरी कि वह काम अब तक पूरा नही कर पाया और वह पुस्तक नही निकल पाई। लेकिन भाई साहब ने बड़ा ग्रन्थ समय पर प्रकाशित कर दिया और मेरा नाम भी उसमे कायम रखा, यद्यपि अपनी नालायकी से उसका कोई हक मुझे नही रह गया था।

भाईसाहब की उदारता और स्नेहशीलता का जो कर्ज मेरे ऊपर है, उसे कभी चुका नही सकता। उनकी निष्ठा, श्रम-साधना, कर्त्तव्य-परायणता और लोक-भक्ति को देख कर ईर्ष्या होती है। ईश्वर से बिनती है कि उनकी और भाभी आदर्शजी की जोड़ी सुख-शान्ति से रहे, उत्तरोत्तर पराक्रम करे और अपनी सेवाओ द्वारा देश का मस्तक ऊचा उठाये और सुयश प्राप्त करे।

पारस का स्पर्श

नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

□□

पत्रकार और कृतिकार के रूप मे भाई यशपालजी को वर्षों से जानता हू। 'जीवन साहित्य' के सम्पादक और 'सस्ता साहित्य मण्डल' के विविध ग्रन्थो के ग्रन्थकार तथा अनेक सस्मरणो और यात्रा-विवरणो के प्रणेता के नाते यशपालजी की जो छवि मेरे मानस-पटल पर उभरती है, उससे भी कही अधिक आकर्षक रूप उनके व्यक्तित्व का है, जो उनके सान्निध्य से मिलता है। सरल, मृदु, सौम्य स्वभाव और मधुर कोमल वाणी से वह अपना असर तुरन्त छोडते हैं।

लेखनी से उन्होने सन्तो, महात्माओ और महापुरुषो के अनमोल मोतियो और उपदेशो का नवनीत सजोने का प्रयत्न किया है, उसी सारतत्त्व को वह अपने जीवन मे सदा सार्थक करने के लिए प्रयत्नशील दीखते हैं। सम्भवत यही कारण है कि उनके पारस का स्पश तुरन्त आकर्षित करता है।

मेरी हार्दिक आकाक्षा है कि उनके लेखन के सौरभ के साथ उनकी इन्सानियत की सुरभि भी सदा आह्लादित करती रहे।

विनम्र और सुशील

मुकुट बिहारी वर्मा

□□

यह खुशी की बात है कि यशपालजी ७२ वष की उम्र मे भी बदस्तूर कार्यरत हैं, जबकि ६० वर्ष की वय हमारे यहा सेवावृत्ति यानी नौकरी से अवकाश की अधिकतम अवधि मानी जाती है। यात्राओ और लेखन का उनका क्रम बराबर जारी है। यही नही, बल्कि उनके बाह्य रूप और कार्य कलाप मे भी शिथिलता के कोई चिह्न नही हैं। वस्तुत ऐसा लगता है कि उनकी क्रियाशीलता का यही सर्वाधिक व्यस्त समय है। उनकी यह क्षमता बरकरार रहे और उनकी परिपक्व साहित्य सृष्टि पाठको का ज्ञानवर्द्धन करते हुए उन्हे सत्पथ की ओर अग्रसर होने मे सहायक हो, यही मेरा कामना और प्रार्थना है।

यशपालजी के साथ मेरी सम्पर्क सर्वप्रथम भाई जैनेन्द्रजी के यहा हुआ। उस समय आज जैसी ख्याति

और स्थिति नहीं थी, परन्तु प्रसन्नता की बात है कि इतनी ख्याति के पश्चात् भी उनका बाह्यावरण अभी भी वैसा ही विनम्र और सौजन्यपूर्ण है। लोक-व्यवहार में यह बहुत बड़ा गुण है। उनमे यह गुण बना ही नहीं रहे बल्कि उत्तरोत्तर उनके अन्तर बाह्य जीवन मे एकरस हो जाने तक सतत् विकसित होता रहे, यही उनकी बडी सफलता होगी। उनके प्रति अपने आत्मीय स्नेह-भाव के साथ मैं उनकी दीर्घायु और सफलता की कामना करता हू।

उनकी सबसे अच्छी बात

गोविन्द प्रसाद केजरीवाल

□□

श्री यशपाल जैन का कार्यालय मेरे कार्यालय से पास ही है। जब मन ऊबता है, उनके पास चला जाता हू। वे एक साथ दो काम करते रहते हैं—किसी पाडुलिपि का सशोधन और मुझ जैसे आगन्तुको से वार्त्तालाप का सूत जोडे रखने मे व जितने माहिर हैं, उतनी ही गुरुता से उनकी कलम पाडुलिपि के सशोधन या पत्राचार पर चलती है। शरीर, बुद्धि और मन से सशक्त यशपालजी की दिनचर्या बडी व्यस्त रहती है।

मैं तो उन्हे मात्र एक सफल गद्य-लेखक के रूप मे जानता था, 'लेकिन इधर वे कविता मे भी दखल रखने लगे है। उनके भक्ति-गीतो को मैंने ताल और लय मे बद्ध भी सुना है, जो एक विशेष सत-समाज मे बडे चाव से गाये जाते हैं।

यशपालजी चिरयात्री हैं। सारी दुनिया का चक्कर लगा चुके हैं। आगे भी और कितनी बार लगायेंगे यह वही बेहतर जानते है। यात्रा के प्रति उनके मन मे घोर उत्साह और उत्कट ललक है। मुझे उनके जीवन मे जो सबसे अच्छी बात लगती है, वह है उनका उत्साह और उमग। मैंने उन्हे कभी कुठित नही देखा। यही कारण है कि वे जीवन के एक-एक क्षण को बडी कर्मठता से जीते हैं। त्रास या आशका का कोई भाव मैंने उनके चेहरे पर कभी नही पढ़ा। प्रत्यक्ष व्यवहार मे उनका विश्वास है। शायद इसीलिए उनका जीवन रचनात्मक है। आज के त्रासद जीवन मे रचनात्मक होना बहुत बडी बात है और यशपालजी हैं इसके साक्षात प्रतीक।

मैं उनके ७२ वर्ष पूरे करने के शुभ दिन पर उनका सादर अभिनन्दन करता हू और कामना करता हू कि वे शतजीवी हो।

उनका मन कमलवत

पुरुषोत्तम दास मोदी

□□

भाई यशपालजी का स्मरण आते ही उनका उल्लासमय मुस्कराता चेहरा सामने आ जाता है। जब भी दिल्ली जाता हू, उनसे मिलता हू, अत्यन्त स्नेह पूर्वक वे स्वागत करते हैं, "आओ, कब आये ?" और फिर तो पारिवारिक वार्ता से प्रारम्भ होकर साहित्यिक, सास्कृतिक और राजनैतिक वार्ताए चलती रहती हैं। जीवन की विषम से विषम परिस्थिति मे भी उन्हे निराश नही पाया, बल्कि वे दूसरो की निराशा मे भी आशा का सचार करते हैं।

देश-विदेश का पर्याप्त भ्रमण कर उन्होने कितने ही बहुमूल्य सस्मरण सजोये हैं, जिन्हें वे जहा-तहां बिखेरते रहते हैं। उनका मन कमलवत है। कमल की भाति वे जीवन के उज्ज्वल सौन्दर्यमय और पवित्र रूप को अपनी लेखनी से अमरत्व प्रदान करते हैं। उनको वाणी मे ऐसा रस है, ऐसा विश्वास है, ऐसी साधना है, जो हर किसी के मन का स्पश कर लेती है।

यशपालजी द्वारा सम्पादित तथा प्रस्तुत अनेक अभिनन्दन-ग्रन्थ उनका अभिनदन करते हैं।

नटराज से कामना करता हू कि यशपालजी दीर्घजीवी हो और उनका सत्सग हमे चिरकाल तक मिलता रहे।

समय की रेत पर अमिट चिन्ह

राज बुद्धिराजा

□□

समय की रेत पर निशान ऐसे होते है, जिन पर और लोग चहलकदमी करते हुए बढ़ते हुए बहुत दूर तक निकल जाते है, मगर कुछ निशान ऐसे होते हैं, जिन्हे दूसरे लोग मिटा नही सकते। यशपालजी का ऐसा ही व्यक्तित्व है, जिसके अस्तित्व को नकारा नही जा सकता। सफेद खादी के वस्त्रो मे सुशोभित शुभ्र देहयष्टि मस्तक पर समय की आडी-तिरछी रेखाए, जब वे उन्मुक्त हसी बिखेरते हैं तो कोई भी उनसे आकर्षित हुए बिना नही रहता।

गांधीवादी लेखक के जीवन मे आज प्राय कथनी-करनी में अन्तर दिखाई देता है, पर यशपालजी ने उस अन्तर को मिटा देने का प्रयत्न किया है। जब अन्य साहित्यकार कार में सवार होकर निकलते हैं तब यशपालजो, पैदल फटफटिया या तिपहिया स्कूटर पर दिखाई देते हैं। अपना काम खुद करने की प्रवृत्ति इनमे कूट-कूट कर भरी हुई है। उसे देखकर मुझे बच्चनजी की ये पंक्तियां याद आ जाती हैं—

जीवित भी तू आज मरा-सा
पर मेरी तो यह अभिलाषा,
चिता निकट भी पहुच सकू मैं,
अपने पैरों-पैरो चलकर।
तू क्यो बैठ गया है पथ पर ?

यशपालजी की एक विशेषता यह है कि वे कहते नहीं, करके दिखाते हैं। प्रमाद उन्हे छू तक नहीं गया है। जिस कार्य को उठाते हैं, जी-जान एक कर देते हैं। भौतिक उपलब्धियो के प्रति उनमे कोई आकर्षषण नही है। अगर होता तो वे भी औरो की तरह बहुत-सी सुविधाएं जुटा लेते। ऐसा करना उनके लिए कोई कठिन काम नही था परन्तु उनका जीवन लक्ष्य ही दूसरा है, तभी उन्होने अपने आपको एक आदर्शवादी सस्था 'सस्ता साहित्य मडल' को समर्पित कर दिया। उनकी रुचि परिष्कृत है लेकिन उसके लिए वे कोई आग्रह नही रखते। हा, बस मे सवार होना उन्हे नही आता, उससे वे जरूर घबराते हैं।

यशापलजी मुक्त इतने है कि पहलो ही भेंट मे 'आप' से तुम पर उतर आते हैं। वे भावावेग मे स्त्री और पुरुष का भेद भूल कर भोलेपन से किसी भी महिला का हाथ अपने हाथ मे ले लेते हैं। उन्हे साथ मिलकर खाने का बहुत शौक है। इसके लिए वे कभी भो बिना पूर्व सूचना के किसी को भी खाने के समय अपने घर ले आते हैं और मजा तब आता है जब यह कहते है कि अब कुछ बनाने की जरूरत नही है, जो बना रखा है, ठीक है। अगर रोटी-पराठे कम पड़ेंगे तो डबल रोटी ले लेंगे। लेकिन वह गृहिणी की खीझ को कभी नही समझ पाते कि मेहमान को उल्टा-सीधा खिलाना उसको चोट पहुचाता है। वे दूसरो को खिलाकर बहुत ही आनन्दित होते हैं।

आज के भौतिकवादी युग मे जहा आत्मीयत ढूढे नही मिलती, वहां इनका मधुर स्नेह स्वत ही सबके लिए प्रवाहित होता रहता है। यहो कारण है कि वे सदा ही मित्रो प्रशसको (चाटुकारो नहीं) से घिरे रहते हैं। लोग इनसे मिलने के लिए अवसर ढूढते रहते हैं। युवा वर्ग मे तो वे विशेष रूप मे आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं।

नवोदित लेखको और लेखिकाओ को प्रोत्साहित करने मे उन्हे बडा आनन्द आता है, बुराई करने मे नही। कैसी भी कृति हो, वह सुझाव तो अवश्य देंगे, लेकिन उसकी प्रशसा इतनी कर देंगे कि कृतिकार को अपनी रचना पर गर्व होने लगे।

कुछ क्षण ऐसे होते है, जिन्हे चाहने पर भी जिंदगी से नही निकाला जा सकता। उनमे से एक क्षण है जब श्रद्धेय प बनारसीदास चतुर्वेदीजी का सदेश फीरोजाबाद से लेकर मैं यशपालजी के पास गया था और अनायास ही इस व्यक्तित्व ने मुझ पर अमिट छाप छोड दी थी। जितना ऊचा व्यक्तित्व है, लेखन उससे कम नही है और उनके जीवन की प्रौढ़ता के साथ-साथ लेखन भी प्रौढ़ और परिपक्व होता चला गया है। परिष्कार और निखार का यह सिलसिला भगवान करे सौ वर्षों नहीं अनन्तकाल तक चलता रहे। मैं उनके यशस्वी दीर्घ जीवन की कामना करती हू।

अभिनंदन का प्राथमिक चरण

रावी

□□

आयु के सत्तर वर्ष पूरे कर यशपालजी ने अन्तरग जीवन शाला की शैशव कक्षा पारकर तारुण्य की श्रेणी से आगे प्रवेश लिया है—मुझसे कल नौ-दस महीने पीछे। मानवीय आयु के सामान्य लोक प्रचलित माप-दण्ड से भिन्न, एक-दो और मापदण्ड हैं, जिनका प्रयोग चेतना और प्रगति के धरातलो पर अधिक व्यापक रूप मे होता है।

यशपालजी का सार्वजनिक अभिनन्दन हो रहा है। इतने जीवन काल मे उन्होंने व्यक्तित्व को कितना निखारा और समाज को क्या कितना दिया, यही लेखा-जोखा और इसी का मूल्याकन सामान्यतया अभिनन्दन की पृष्ठ-भूमि बनती है, पर क्या हम किसी के व्यक्तित्व और कृतित्व का लेखा-जोखा केवल उसके लोक-चर्चित कार्य और बाहरी साहित्यिक सामाजिक सजनाओ का सकलन करके पूरा प्रस्तुत कर सकते है? तथ्य यह है कि ऐसे सकलन द्वारा हम व्यक्ति के दशमाश की भी प्रस्तुति नही कर सकते, जैसे समुद्र मे तैरते हिम पर्वत को देखकर हम उसके अधिकाश प्रछन्न भाग के दर्शन से वचित रह जाते हैं।

मानवीय जीवन के ऐसे व्यापक दर्शन की भी एक दृष्टि है और वह हमारे लिए दुर्लभ नही है। प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व और कृतित्व का 'रिकाड' सृष्टि की बडी अकनशाला मे सुरक्षित है, और औसत से ऊपर उठे हुए व्यक्तियो का सुलभ उपलभ्य भी है। हर 'औसत के ऊपर' व्यक्ति की अपनी कुछ विशेषताए और आगे चलकर अपनी एक विशिष्ट अद्वितीयता भी सुदृश्य है। 'सौन्दर्य को भीतर की परतो म देखने-उपामने की क्षमता और जीवन की अजरता-अमरता' का आभास यशपालजी की उसी अतरग अकनशाला से प्रतिबिम्बित विशेषताए मैं पढ आया हू। जिस आयाम से भरी उनकी निकटता बनी है उसकी चर्चा साथ बैठकर मै अभी उनसे नही कर पाया हू—करूगा जब मै और वह मानवीय अभिन्नता के एक दो अगले पाठ और पढ लेगे।

मित्रो के साथ मैं भी आज उनका अभिनन्दन कर रहा हू—आग्रह करते हुए कि यह उनके अभिनन्दन का एक अति प्राथमिक पहला ही चरण है।

बहत्तर वर्ष का युवक

दयानन्द वर्मा

□□

कार्य और व्यवहार से युवक दिखने वाले यशपाल जैन बहत्तर के हो गए, यह जानकर जब मैंने उन्हें बधाई दी तो बोले, "क्यो मुझे बुजुग बनाने पर तुले हो!"

यशपालजी से मेरा व्यक्तिगत परिचय सत्रह-अठारह वर्ष पूर्व हुआ था, लेकिन 'जीवन साहित्य' के सम्पादक के रूप मे मैं उन्हे काफी अर्से से जानता था। उनके लिखे हुए भ्रमण-वृत्तान्तो के माध्यम से मैंने इनका परिव्राजक रूप देखा। इनकी रची पुस्तको और लेखो के सहारे मैंने अपने देश की और विदेशो की यात्रा का आनन्द घर बैठे प्राप्त कर लिया।

जब कभी यशपालजी से बात करने का अवसर मिला है, प्रवासी भारतीयो के प्रति उनके मन मे बसी अपार सद्भावना का परिचय पाया है। मारीशस की चर्चा करते हुए वे ऐसे भाव-विभोर हो जाते हैं, जैसे उन्हे अपना गाव याद आ रहा हो।

स्वभाव से सहयोगी हैं, इसलिए 'चित्रकला सगम' वाले इनसे हित साधन करते रहते हैं। अन्य जो सस्थाए इनके खुले आमत्रण से लाभान्वित होती रहती है, उनमे मैं भी एक हू। 'अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक सघ' के अधिवेशन के अवसर पर इनके व्यक्तितत्व को भुनाकर मैंने 'गाधी शान्ति प्रतिष्ठान' से अनेक सुविधाए प्राप्त कर ली थी।

यशपालजी की वर्षगाठ के अवसर पर उन्हे सम्मानित करना, उनकी सेवाओ के प्रति अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन करना है। इस ज्ञापन मात्र से भार मुक्ति हो सकेगी इसमे सशय है।

दंभ-रहित व्यक्तित्व

भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता

□□

श्री यशपालजी की देश विदेश यात्रा तथा साहित्यिक और समाज-सेवा से तो बहुत पूर्व से ही परिचित हू लेकिन सबसे अधिक आकर्षित करने वाली बात तो प्रत्यक्ष सम्पर्क के पश्चात् ही दीखी, वह है आपका सरल व्यक्तित्व।

१० जुलाई १६७१ की बात है। हरियाणा प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन की तैयारी हो रही थी। मुझे वहा की लेखक गोष्ठी का सयोजक और स्वागत समिति का उपाध्यक्ष बनाया गया था। इस सिलसिले मे कतिपय साहित्यकारो को आमन्त्रित करने मैं दिल्ली पहुचा। खुले अधिवेशन के प्रधान वक्ता के रूप मे श्रीमती कमला रत्नम और लेखक गोष्ठी की अध्यक्षता के निमित्त श्री विष्णु प्रभाकर की स्वीकृति मिल चुकी थी। उद्घाटनार्थ एक श्रेष्ठ साहित्यकार की और आवश्यकता थी। सर्वप्रथम दूरभाष से ही मैंने श्री यशपालजी से प्रार्थना की। बिना किसी हिचक के उन्होने मेरा निवेदन तो स्वीकार कर लिया, लेकिन उस पहली भेट मे ही उनकी स्पष्टवादिता का मुझ पर स्थायी प्रभाव पड़ा। रह-रह कर उनका यह वाक्य कानो मे गूजता रहता है, "क्या करेंगे इतने लोगो को बटोर कर? जो आ रहे हैं, वही क्या कम हैं! उनसे

आपका सम्मेलन अवश्य सफल होगा।" मैंने कहा, "आपका कहना ठीक है, पर आपके पधारने से सोना मे सुगंधि का सुयोग मिलेगा।" तब उन्होने कहा, 'जैसी इच्छा हो।' वहा पहुचने की व्यवस्था की उन्होने जिज्ञासा की और मैंने अपनत्व को अनुभव कर अन्य साहित्यकारो को टैक्सी से साथ लाने का दायित्व उन पर ही सौंप दिया।

२५ जुलाई, १९७१ की प्रात पूर्व निर्धारित समय पर कमला बहनजी, विष्णुजी और उनकी धर्मपत्नी तथा अपनी धमपत्नी के साथ यशपालजी हिसार पहुच गए। वहा के कोलाहलपूर्ण वातावरण की अपेक्षा उन्होंने सुशीला भवन का एक सामान्य कक्ष अपने आवास के लिए उपयुक्त समझा। खादी की वेशभूषा मे उनकी सादगी ने बरबस सबको आकृष्ट कर लिया।

अधिवेशन आरभ होते समय विशिष्ट साहित्यकारो को मच पर ले जाने की पूर्व योजना थी। तभी स्वागत-सचिव की शीघ्रता के कारण राजनैतिक क्षेत्र के मत्री और उनके सहयोगियो ने मच को आच्छादित कर लिया। उस समय यशपालजी की सौम्यता और विनम्रता देखते ही बनती थी। निस्सकोच वह नीचे श्रोताओ की पक्ति मे आकर बैठ गए। राजनेता मच पर छा गए। साहित्यकार अपने अस्तित्व को जमाए बैठे रहे। साहित्यकार राजनेता का पिछलग्गू नही होता, यह आपने सिद्ध कर दिया। अपने भाषण मे उन्होने यह भी स्पष्ट कर दिया कि देश को राजनीति की जितनी आवश्यकता है, उसमे अधिक आवश्यकता साहित्य की है। "जिन-जिन देशो मे क्रान्तिया हुई है, उनके पीछे मुख्य प्रेरणा चितको और साहित्यकारो की रही है।" ये थे उनके शब्द, जो आज भी उपस्थित व्यक्तियो के मानस पटल पर अकित है।

'बगला देश' नामक उपन्यास का विमोचन करते हुए उन्होने बताया, 'साहित्यकार समाज और राष्ट्र का मार्गदशक होता है। आज समाज मे मूल्यो का सकट है। सत्ता के व्यामोह ने लेखको को सामाजिक दायित्व से वचित किया है। सच्चा साहित्यकार ही समाज की चेतना को परिष्कृत और प्रेरित कर सकता है, क्योकि उसका चिंतन उसे शाश्वत मूल्यो की गहराई मे ले जाता है।"

प्रतिनिधियो की पक्ति मे ही आपने दोपहर का भोजन किया और क्षणिक विश्राम के समय को वार्तालाप मे बिताकर ठीक समय पर लेखक-गोष्ठी मे पधार कर अपनी कत्तव्यपरायणता कमकठोरता और समय के पालन का परिचय दिया। उद्घाटन के उनके सारगर्भित भाषण के शब्द नपे-तुले थे, 'साहित्यकार को समाज तथा राष्ट्र के निर्माण मे योगदान देना है।" यह सबको बोध कराया। युवा लेखको मे वार्तालाप करते हुए स्नेह का श्रोत उमडता-सा प्रतीत होता था। पडोसी दशो के सस्मरण सुनाते हुए उन्होने बताया, 'हमारी सस्कृति की जडे वहा इतनी नीचे तक गई हुई है कि राजनैतिक उतार चढाव उन्हे निर्मूल नही कर सके है।" इस समय भारतीय साहित्य और समाज सात्विक दप उनके मुखमडल पर उद्भासित हो रहा था।

एक बार उनसे 'सस्ता साहित्य मडल' मे वार्तालाप कर रहा था कि मध्यप्रदश के भू पू कृषि-मत्री पधारे। वह यूरोप की यात्रा पर जा रहे थे। यशपालजी ने यूरोप के दशनीय स्थानो का वणन आरभ किया। टालस्टाय की जन्मभूमि, जर्मनी की विभाजक रेखा स्विटजरलैंड मे जूरिक के इतलीबर्ग शिखर से दृष्टिगोचर होने वाली आल्पस गिरि-माला के सौदर्य की रोचक चर्चा करते हुए उन्होने इग्लैड के किग्सले हाल का भाव-विभोर होकर वर्णन किया। गोलमेज सम्मेलन के समय गाधीजी वही ठहरे थे। गाधी स्मृति के जीवन प्रतीक स्थलो का यशपालजी ने स्वय भी तीर्थ समझकर भ्रमण किया था। ब्रिटिश इण्डिया लाइब्रेरी के वर्णन मे भी अपूव राष्ट्र प्रेम छलकता दीखा। मुझे उन अनेक लोगो से मिलने का गौरव मिला है, जिन्हे लोग महान मानते हैं, लेकिन जब कभी सोचता हू कि यशपालजी जैसा सौम्य और सरल कोई है या नही तो उगली पर गिने जाने योग्य नजर आते हैं।

ओ मेरे 'तुम'!

बालकवि बैरागी

□□

मेरे प्रभु !

मुझे तुमसे न तो कोई विद्रोह है न कोई विवाद ! मैं तो उलाहना भी नही देता। रोष, आक्रोश, अनास्था और अनादर का तो प्रश्न ही नही है। तुम अपने करुणारे नेत्रो की करुणा क्यो बदलते हो ?

कल्प-कल्पान्तर और जन्म-जन्मान्तर की तपस्या के बाद बडे-बडे ऋषि-महर्षि और ज्ञानी परमहंस जो प्राप्त नही कर सके, वह मुझे तुमने सहज ही दे दिया है। अनमांगे, अयाचे। वे तुमसे लम्बी-लम्बी प्रार्थनाओ और गहन तपस्याओ मे क्या मागते है ? केवल एक दृष्टि—तुम्हारा एक कटाक्ष ! मात्र एक दीठि !

मुझे तो तुम निर्निमेष, निरन्तर और अपलक देख रहे हो। मेरा मोक्ष तो हो गया।

मेरे प्रभु !

देखो न ? तुमने किसी को भी एक साथ इतना नही दिया, जितना मुझे। किसी को तुमने मात्र वैभव दिया तो किसी को केवल प्रतिभा। किसी को सिर्फ पद तो किसी को प्रतिष्ठा। किसी को रूप तो किसी को सोना। किसी को यश तो किसी को यशोधरा। पर मुझे ! देखो न ? मुझे तुमने कितना दिया है ? अपमान, अप्रतिष्ठा, अभाव, अपयश, अवज्ञा, अवमानना, आलस्य, अवहेलना, अनय, उत्पीडन और और क्या-क्या गिनाऊ ? कितना गिनाऊ ?

मेरे दाता !

इतने दानो से मेरा कगाल आचल फटा जा रहा है। इतने वरदानो को सहेजते-सहेजते हसना और गाना मेरा सस्कार बन गया है। हा, तुम्हारी वन्दना मे और तुम्हारी अभ्यर्थना मे गाना।

यह सब देने के लिए तुमने मेरा चुनाव किया। तुम्हे मेरा कितना ध्यान रखना पडा होगा। मेरे सहोदर ! लम्बी कतार मे खडे हुए याचको को तुम एक-एक चीज—हा, केवल एक-एक झुनझुना—देकर निपटा रहे थे तब भी तुमने मेरा विशेष ध्यान रखा। मैंने देखा कि तुम्हारा दाया हाथ भले ही उन्हे देने मे लगा था, पर तुम्हारी आखे केवल मुझ पर लगी थी। लेने वाले बेचारे अपना-अपना 'भाग्य' लेकर चले जा रहे थे, पर तुम्हारी 'एक नजर' को तरस-तरस गए। आज तक वे कहते है कि तुमने उन्हे 'यह' दिया पर 'वह' नही।

पर मेरे मीत !

जब मेरा क्रम आया तो तुम कितने सक्रिय हो गए थे। तुमने मुझे भरपूर नजर से देखा। बार-बार देखा। मेरी आखो मे अपने कमल-नेत्र उलझाये। तुम मुस्कराये। मैं निहाल हो गया। तुमने अपना निचला ओठ अपने सुन्दर दातो से हल्का सा काटा। फिर तुम कुछ बोले—अधरो ही अधरो मे—और और दोनो हाथो से, हा, बाए से भी, तुमने वह सब मुझे दे दिया जो तुम किसी को नही दे सके थे। मैं लेता रहा लेता रहा। मेरी अकिंचित् झोली तुम्हारे चरणा से मेरे सिर तक पट गई। यू भी मैंने तुम्हारे चरणो का स्पर्श अपने माथे से कर लिया। तुम्हारे प्रतिदान मेरे और तुम्हारे बीच दीवार की तरह जुड गए। मैंने प्रतिदानो की अम्बार की खोखलो मे से झाक-झाककर देखा। तुम तब भी मेरी ओर अपलक देख रहे थे। देखते ही जा रहे

थे। शायद मुझमें अपनी सामर्थ्य अवलोक रहे थे। तुमने सोचा होगा कि मैं अपना पल्ला झटककर प्रतिवाद मे खड़ा हो जाऊगा। मचलूगा, रोऊगा और विवादी बन जाऊगा।

जब तुम मुझे इतना कुछ दे रहे थे तब मेरे आसपास और तुम्हारी सम्पूर्ण सृष्टि मे कितना सुखमय कोलाहल मचा था। तुम्हे याद है न ? सबने कहा, "यह तुम्हारी अकृपा है मुझ पर। कितना 'अशुभ' और 'अशोभन' तुमने मुझे दे दिया है ?"

वे शायद इसीलिए सुखी थे कि अब उनके लिए तुम्हारे पास देने को 'अशुभ' और 'अशोभन' कुछ नही बचा है। सब नि शेष हो गया है।

मेरे सखा !

मेरा भी यही सुख है। जो कुछ तुमने मुझे दिया है, उसम से एक का एक अश भी यदि तुम उनको दे देते तो वे उसे वहा का वहा तुम्हे लौटा देते। तुम्हारा कितना अपमान होता ? मैं कैसे सहता उस क्षण को। देखो न ? एक-एक 'अशुभ' और एक एक 'अशोभन' को पाकर ही वे जब तुम्हारे सामने से लौटते थे तो कितने इतराकर लौटते थे ? तुम्हारे दरबार की सभ्यता तक को वे भूल जाते थे। अपनी बारी समाप्त होते ही वे तुम्हे पीठ देकर चल पड़ते थे। तब से अब तक उनकी पीठ ही तुम्हारी तरफ है। उसी तरह।

और मैं ? मेरे पिता ! मैं इतनी सम्पन्न झोली वाला तुम्हे कैसे पीठ दे देता ! मैं तो तब भी उलटे पावो तुम्हारे सामने ही चला था। कही मेरा मुह उस दिशा मे न हो जाय, जिधर तुम्हारा था। तब तो मैं तुमसे 'विमुख' हो जाता। नही, मैंने ऐसा नही किया। मै ऐसा कर भी कैसे सकता था ? और मैं ? उसी तरह तुम्हारी तरफ अपना मुह करके तुम्हारी सृष्टि मे सचरण करता हू तो व 'शुभ' और 'शोभन' पाने वाले घुसुर-पुसुर करते हैं, "मैं उल्टा चल रहा हू। मैं पीछे चल रहा हू। उनके साथ नही चल रहा।"

कदम-कदम पर मैं सुनता हू कि जितना 'शुभ' और 'शोभन' तुमने दिया था, वह सब चुक गया। वह सब अपर्याप्त था। पता नही, तुम उनकी सुन भी रहे हो कि नही।

कितना भाग्यशाली हू मैं कि जब-जब मेरी झोली मे से तुम्हारा एक भी प्रतिदान इधर-उधर होकर खिसकने लगता है, छिटकने लगता है, गिरने लगता है तो तुम अपना सारा काम छोडकर उसे फिर से मेरी झोली मे यथा स्थान यथावत् रख देते हो, जैसे कोई गिरती हुई इटो को वापस चुन दे। कितना कष्ट दे रहा हू मैं तुम्हे ? कितना ख्याल रखते हो तुम मेरा ? एक पल तो तुमने अपनी दीठ नही हटाई मुझसे ?

मेरे लीलाधाम !

ऐसे ही कृपावन्त बने रहो। मेरा तो सारा सिगार ही यह है कि तुम मेरी ओर आकृष्ट रहो। मेरा तो पुण्य ही यह है कि अपने प्रतिदानो को तुम पल-पल अपने ही हाथो मेरे आचल म सहेजते रहो। मेरी तो तपस्या ही यह है कि तुम्हारी सृष्टि मुझे 'उल्टा चलने वाला' माने। शायद तुम जानना चाहोगे मेरे सर्वज्ञ ! कि मैं यह सब किसके बूते पर कर रहा हू। इतना सब मैंने कैसे सहेज रक्खा है ? चाहते हो न ?

तो सुनो मेरे अन्तर्यामी !

यह सामर्थ्य तुम्हारी है पर साहस मेरा है। यह विराट तो तुम्हारा है, पर विश्वास मेरा है। यह कृपा तो तुम्हारी है, पर करुणा मेरी है। यह पावन तो तुम्हारा है, पर प्रार्थना मेरी है। यह आलोक तो तुम्हारा है पर आस्था मेरी है। यह भावुक तो तुम्हारा है, पर अकिचनता मेरी है। यह कगन तुम्हारा है, पर कलाई मेरी है।

मेरे भाग्य !

जिसे तुम मेरा भ्रम कहते हो न वह भ्रम नही मेरा उद्घोष है—उद्भट उद्घोष—कि "तुम अशुभ दे

सकते हो पर अहित नहीं कर सकते। अकृपा कर सकते हो पर अकल्याण कभी नहीं कर सकते। कभी नहीं! कदापि नहीं।"

मेरा यह विश्वास डिगा दो तो जानू ?
इसी तरह मुझसे आमुख रहोगे तो एक न एक दिन
अपने आपकी जय बोलने लग जाओगे।
अच्छा अब मुस्करा दो।
बस।

जैसा मैंने उन्हें पाया

युगल किशोर चतुर्वेदी

□□

अपने व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक जीवन मे प्राय नित्यप्रति ही दस-बीस व्यक्तियो से मिलना-जुलना तथा सम्पर्क होता रहता है। उनमे से अधिकाश तो कालान्तर मे विस्मृति के गहरे गर्त मे चले जाते हैं, उनका कभी स्मरण भी नही होता, परन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो अपने व्यक्तित्व, कृतित्व, आचरण और व्यवहार की अमिट छाप हृदय-पटल पर अकित कर देते हैं और अपने साथ हुए सामान्य परिचय को प्रगाढ़ता मे परिवर्तित कर देते हैं, यहा तक कि समय का अन्तराल भी उसको कम नही कर सकता है। इस कोटि की विशिष्ट विभूतियो मे स्वनामधन्य श्री यशपालजी जैन सर्वोपरि आते हैं।

यशपालजी से मेरा सर्वप्रथम परिचय कब, कहा किस प्रकार और किस अवसर पर हुआ था, इसका ठीक-ठीक स्मरण नही हो रहा है, परन्तु जब कभी मैं उनके सपर्क मे आया, तभी मैं उनके प्रेम पूण व्यवहार तथा शिष्टता से इतना प्रभावित हुआ कि उनका प्रारम्भिक स्वल्प परिचय शनै-शनै प्रगाढ से प्रगाढ़तर होता चला गया। एक लब्धप्रतिष्ठ लेखक, प्रवीण पत्रकार तथा सफल साहित्यकार होते हुए भी वह इतने शिष्ट, विनीत, इतने मिष्टभाषी और इतने मिलनसार है कि जो कोई एक बार भी उनके निकट सम्पर्क मे आता है, वह सदैव के लिए उनका प्रेमी और प्रशसक बन जाता है।

उच्चकोटि के राष्ट्रीय ग्रन्थ प्रकाशन की सुप्रसिद्ध सस्था 'सस्ता साहित्य मण्डल', नई दिल्ली के मत्री-पद पर प्रतिष्ठित होने से पूर्व आप विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्रो मे अपनी योग्यता, कार्य-कुशलता, एकाग्रता और निष्ठा की अमिट छाप छोड चुके थे।

विशेषत पत्रकारिता के क्षेत्र मे यशपालजी ने पुरानी पीढी के प्रसिद्ध पत्रकार प बनारसीदासजी

चतुर्वेदी के साथ टीकमगढ़ से प्रकाशित 'मधुकर' तथा कतिपय अन्य पत्र-पत्रिकाओ का सपादन करने के अनन्तर वर्तमान मे 'जीवन साहित्य' तथा 'मगल मिलन' जैसे उच्चकोटि के साहित्यिक पत्रो का सफलतापूर्वक सपादन कर रहे हैं।

साहित्यकार के रूप मे भी यशपालजी की सेवाए कम महत्व की नहीं रही हैं। अपने देश और विदेशों मे भी समय-समय पर खूब यात्राए की है और अपने अनुभव के आधार पर वहा के विशद वर्णन लिखे हैं। उनमें से कुछ पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। कुछ लेख माला के रूप मे निकले है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से उपयोगी तथा गभीर ग्रन्थो की रचना की है।

विभिन्न ग्रन्थो के प्रणयन तथा पत्र-पत्रिकाओ के लिए लेख लिखने के साथ-साथ हमारे यशपालजी 'लोक शिक्षक' तथा अन्य अनेक दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओ को भी निरन्तर लेख लिखते रहते हैं। इस सबसे भी अधिक उनके व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार का क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। वह प्रतिदिन न मालूम कितने पत्र लिखते हैं, इसका सही अनुमान लगाना कठिन है।

अपने लगभग ३० वर्ष पुराने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हू कि मैंने उन्हे जब जो पत्र लिखा है, उन्होने उसका तत्काल उत्तर दिया है। यह सुप्रवृत्ति मैंने अन्य लेखको, पत्रकारो, साहित्यकारो तथा राजनेताओ मे बहुत कम पाई है।

गुण-ग्राह्यता की मात्रा यशपालजी मे इतनी कूट कटकर भरी है कि किसी की अकिचन से अकिचन सेवा अथवा जनोपयोगी कार्य की वह उतनी प्रशसा कर डालते हैं कि उसे अतिशयोक्ति की सज्ञा दी जा सकती है। कम-से-कम मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर उनकी इस विशेषता को शत-प्रतिशत सत्य सिद्ध कर सकता हू। मेरे दो-तीन अभिनन्दन समारोहो के अवसर पर उपस्थित होकर उन्होंने मेरी जो प्रशसा की थी, उसको सुनकर मैं लज्जित हो उठा था। इसी प्रकार मेरे पाक्षिक पत्र 'लोक शिक्षक' मे प्रकाशित लेखो और टिप्पणियो की वह जिस प्रकार सराहना करते रहे हैं उसके लिए मुझे उनको यह लिखना पडा था, "मेरे ऊपर कृपा तो अनेक वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध पत्रकार और साहित्यकार करते रहते है, परन्तु जितना प्रोत्साहन मुझे आपसे मिलता है, अन्य विद्वानो से प्राप्त नही होता।"

यशपालजी के और मेरे राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विचारो मे भी बहुत कुछ समानता है, जैसा उन्होने 'लोक शिक्षक' के विगत नेहरू जयन्ती विशेषाक पर अपनी सम्मति देते हुए स्वय स्वीकार किया है

"आपके लेखो को पढकर ऐसा लगा कि आपने मेरे ही मन की बात लिखी है।"

वैसे भी यशपालजी सत विनोबा और काका कालेलकर के गाधीवादी विचारो का मथन करते-करते पक्के गाधीवादी हो चुके है ऐसा ही वह मुझे मानते है और उसी दृष्टि से मेरे प्रत्येक विचार और कार्य-कलाप को देखते हैं।

वर्तमान समय मे देश की जो अश्रुनपूर्ण दुर्दशा हो रही है, उसमे सदैव क्षुब्ध और चिन्तित रहने वाले सहृदय देश-भक्तो मे से यशपालजी भी एक है और अपनी इस मनोव्यथा को अपने पत्रो तथा लेखो द्वारा व्यक्त करते रहते हैं।

यद्यपि यशपालजी अपनी निस्वार्थ सेवामय उपयोगी जीवन के ७२ वर्ष पूरे कर चुके है तथापि देश, समाज, साहित्य और सस्कृति की सेवा और रक्षा करते रहने की उनकी लगन, ललक, निष्ठा और उत्साह मे कोई कमी नही आई है। इतना ही नही वह उत्तरोत्तर बढती ही जा रही है।

हमारी हार्दिक कामना और प्रभु से प्रार्थना है कि यशपालजी वेदोक्त शत वर्ष की पूर्ण आयु प्राप्त करके मानव-जाति की पूर्ववत सेवा करते रहे।

उनकी स्फूर्ति

श्याम् संन्यासी

□□

यशपालजी बहत्तर बरस के हो गए, मानने को जी नही चाहता। यह उम्र आदमी की जो तसवीर पेश करती है उसका साचा यशपाल नाम के आदमी से फिट नही बैठता। न कमर झुकी, न खाल लटकी, न झुरिया पडीं, न कम दिखता है और न कम सुनाई देता है। यह दिल्लीवाल तो अभी भी चाक-चौबन्द है। धडधडाता हुआ जीने चढता है—एक, दो नही, पूरे तीन घण्टे मेज के सामने बैठकर कलम की मजदूरी करता है, रोज सवेरे जल्दी उठकर मित्र-मण्डली के साथ बिला नागा घूमने जाता है और हर दिन दिल्ली नगर परिवहन की भीड-भाड और धक्का-मुक्की को आराम से और आनन्द से झेलता है। मेरे यार की पेशानी पर एक शिकन भी नही। ओठो पर वही जवान मुस्कराहट, जो बरसो से मेरी जानी-पहचानी है।

शायद उन्ही दिनो के आसपास यशपालजी की एक पुस्तक 'मैं मरूगा नहीं' प्रकाशित हुई थी। उनमे परम्परागत सद्गुणो (शाश्वत मानव-मूल्यो) का उद्घाटन कहानी-कला के माध्यम से बडी ही कुशलता से किया गया था। यशपालजी को इस रूप मे पाकर भी मुझे बडी प्रसन्नता हुई थी।

इन ३०-३२ बरसो मे खूब पत्र-व्यवहार हुआ है, कई योजनाए बनाई और रद्द की और काफी-कुछ काम साथ करने के अवसर भी आए हैं। बहत्तर बरस लायक एक यही बात देखी और अनुभव की है कि इस आदमी मे धैर्य और सहिष्णुता गजब की है। यह नही कि गुस्सा न आता हो या झुझलाहट नाम को भी नही। सभी मानवीय कमजोरिया हैं, मगर अपनी जगह और अपने दायरे मे।

यशपालजी के पारिवारिक स्नेह का भी मैं कायल रहा। एक बार शामत का मारा महानगरी दिल्ली के घनघोर बियावान मे जा फसा था। आदमियो के उस अटाटूट जगल मे गिने-चुने मनुष्य ही खोजने पर मिल सके। आज जापान को उडा जा रहा है तो कल कनाडा को और परसो अफ्रीका, यूरोप, फ्रांस, सोवियत की सैर के मनसूबे कर रहा है। कैसे मान लू यह आदमी बहत्तर बरस का हो गया ?

आज से ३०-३२ बरस पहले इस आदमी से हैदराबाद मे भेट हुई थी। नाम और कृतित्व से हम दोनो एक-दूसरे को बहुत पहले से जानते थे। साहित्य की छोटी-सी दुनिया मे इस तरह का गौण परिचय सहज बात है। 'हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा' मे यशपालजी को आमन्त्रित किया गया था। पास ही शिवराम पल्ली मे सर्वोदय सम्मेलन हो रहा था और उसमे भाग लेने के लिए ये आए थे। मैंने 'अजन्ता' मासिक के लिए एक टिप्पणी उत्तम सम्मेलन पर लिखने का आग्रह किया औरय शपालजी ने उसी समय लिखकर दे दी। मुझे यह तत्परता बहुत अच्छी लगी। मन प्रसन्न हो गया कि इस आदमी मे लेखन-कार्य को लेकर कोई नखरा नही है। लिखना है, लिखा और छुट्टी पाई !

तब अकुलाये मन के लिए दरियागज के तिमजिले मकान मे यशपाल-दम्पति का घर मुझे बडा ढाढस बधाता रहा है। अपने सभी प्रकार के अतिथियो को साग्रह भोजन कराने से लेकर गमले मे उगाये हुए कैक्टसो की चिन्ता और पहाडी नौकर बच्चे के लिए सही नाप की चड्डिया सिलवाने की उद्विग्नता सभी का मैं साक्षी रहा हू।

लेखन मे तत्पर, शाश्वत मानव मूल्यो का परिपोषक, सक्रिय, सजग यशपाल अपने प्रौढ जीवन अनुभवो का सौरभ हमेशा की तरह निरन्तर बिखेरता-बगराता रहे, यही मगल कामना मैं आज करता हू।

जीवन और साहित्य के साधक

र गौरिराजन

□□

मुझे विश्वास नही होता कि स्वच्छ गाधीवादी, कर्मठ साहित्यसेवी, उन्साही, ज्ञानयात्री, सहृदय सुजन, उदारचेता श्री यशपाल जैन बहत्तर वष पूरे कर रहे है। मैं अपनी निजी धारणा को बदल लेना नही चाहूगा कि यह भव्य पुरुष पञ्चाश पूर्ति की ओर ही हैं। उनका वह सौम्य-स्वस्थ सुहृदय व्यक्तित्व का उनकी स्वय-स्फूर्त आकृति को निखार देना स्वाभाविक ही है।

श्री यशपाल जैन जीवन और साहित्य दोनो के अथक, सफल और प्रशस्त यात्री हैं, साथी हैं, साधक भी हैं। 'सस्ता साहित्य मण्डल' और 'जीवन साहित्य' के द्वारा उनकी की हुई सेवाए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अधिकाश भारती प्रजा यद्यपि इस अभिशाप से अब भी छटी नही है कि वह अच्छे उपादेय साहित्य और जीवन-साथी पत्र-पत्रिका से लाभान्वित होने और उन्हे अपनाने मे कृपणता और उदासीनता बरतती रहे, फिर भी श्री यशपाल जैन अपनी लगन और आशा कभी नही छोडते, नये-नये आयोजनो को रूपायित करते रहते हैं। 'गाधी सस्मरण और विचार' आदि बहुमूल्य ग्रथ वस्तुत उनके अभिनन्दन ग्रन्थ है। 'जीवन साहित्य' का प्रत्येक विशेषाक अत्यत उपयोगी और बहुमूल्य है। ये आपकी सम्पादकीय सुदक्षता के वचस्वी जीवत सस्मरण हैं। मेरी जानकारी मे ऐसे विशिष्ट और सपूर्ण विशेषाक 'जीवन साहित्य' को छोडकर और किसी भी पत्र-पत्रिका ने नही निकाले।

स्वास्थलाभ पर श्री यशपाल जैन की सलाहे बहुत ही सफल निकली हैं, सरलतया अनुकरणीय हैं। वे स्वय उनके प्रयोक्ता हैं, इसलिए आत्म विश्वास के साथ दूसरो को सुझाते है। आज के निरुद्देश्य, निस्सकल्प और निरकुश युवक वर्ग को उनसे कई अच्छी सलाहे मिल सकेगी।

जीवन्तु शरद शतम् !
मोदन्तु शरद शतम !
नन्दन्तु शरद शतम् !

उनका बहु-विध लेखन

कुलभूषण

□□

श्री यशपाल जैन को मैं बहुत दिनो मे जानता हू। कब से जानता हू, यह कहना कठिन ही नही, असभव है। लगता है, दिल्ली मे कोई समय शायद ऐसा नही था, जब मैं उन्हे न जानता होऊ।

पहली कई मुलाकातें उनसे 'सस्ता साहित्य मडल' के कार्यालय में हुई। कार्यालय के पीछे कमरे मे तीन मेजें। बाईं तरफ श्री मार्तंड उपाध्याय, दाईं तरफ श्री विष्णु प्रभाकर (उन दिनो शाम के समय विष्णुजी अक्सर उसी मेज पर बैठे मिलते थे) और सामने की खिडकी के सामने की मेज पर यशपालजी।

उन्हे जब-जब देखा, कलम लिये किसी पृष्ठ को रगते देखा। कभी ऐसा नही कि काम नहीं है, मेज साफ है, कुछ छपी पत्रिका पढ़ रहे हैं या पुस्तक उलट-पलट रहे हैं। कभी कोई टंकित पाडुलिपि की जांच कर रहे हैं, कभी प्रूफों का सशोधन कर रहे है, कभी कुछ लिख रहे हैं। ऐसी मेहनत और लगन बिरले ही देखी है। इसके बावजूद हमेशा अभ्यागत का मुस्करा कर स्वागत। उनके मोटे फ्रेम के चश्मे के पीछे आखें हमेशा सौहार्द से भरो, कहो, क्या लिख रहे हो ? बहुत दिन बाद इधर आए ?"

उनके घर पर जाने का भी मौका मिला। अध्ययन-कक्ष मे छत तक चली गई ऊची अलमारियो मे पुस्तकें ही पुस्तकें। और वही कार्य के प्रति आस्था, आदर, सर्वस्व समर्पित। मित्रो के प्रति वही स्नेह, उनका भरपूर सत्कार।

यशपालजी का लेखन बहुविध रहा है। कहानिया लिखते हैं, सस्मरण भी और हिंदी यात्रा-साहित्य के भडार मे तो इनका योगदान स्मरणीय रहा है। प्रकाशन-क्षेत्र मे कार्यरत रहकर लेखन भी लगातार करते रहना कम बात नही है। प्रकाशन मे पाडुलिपि परीक्षण, प्रूफ-सशोधन, मुद्रण, पुस्तको की रूप-सज्जा का निर्धारण, पुस्तको की बिक्री के प्रयत्न—कोई भी ऐसा विभाग नही, जिसमे उनका दखल न हो। फिर इन सब दैनंदिन कारोबार से उभर कर रेडियो के लिए वार्ताए भी लिखते है। पत्रो के लिए लेख भी लिखते हैं। देश-विदेश की यात्राओ पर जाते हैं,और यात्राओ से लौट कर उनके सस्मरण भी लिखते हैं। यह सब काम किसी सामान्य व्यक्ति के बूते का नही है।

मगर यशपालजी से मिलकर उनकी इस व्यस्तता का आभास मुझे कभी नही मिला। मैंने तो उन्हे हमेशा एक भाई की तरह पाया और ग्रहण किया है। अपने दु खसुख की बातें उन्हे सुनाई है, और उनकी गति-विधि की चर्चा उनसे सुनी है। इन सब बातो और मुलाकातो के बीच एक अपरिमित उत्साह—जीवन के प्रति, राजनीति के प्रति, मित्रो के प्रति। यह उत्साह ही यशपाल जैन है।

भगवान से प्रार्थना है कि उनका यह उत्साह सौ वर्ष तक चले और हम इस उत्साह की गरिमा मे स्वय भी उत्साहित होते रहे।

मानव-मन की गहराइयों के चितेरे

बालशौरि रेड्डी

□□

श्री यशपालजी जैन सादगी, सज्जनता एव सहृदयता की प्रतिमूर्ति है। वह स्वभाव से बडे ही स्नेही परोपकारी तथा एक आदश मानव है। साथ ही वह एक विशुद्ध गाधीवादी है। भाषा, वेष और व्यवहार मे भी उनकी सरलता दर्शनीय है।

मधुरभाषी तथा सरल स्वभाव के होने के कारण चन्द मिनटो मे ही वह दूसरो पर अपना प्रभाव डालते हैं। भाई यशपालजी के साथ मेरा परिचय पच्चीस वर्षों का है। इस अवधि मे मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा और समझा है। मैंने सदा उनके चेहरे पर मृदुल हास ही देखा, पर कभी उन्हे नाराज होते नही देखा। देश तथा वर्तमान समाज के प्रति जब भी उनके साथ मेरी चर्चा चली, उन्हे गभीर होते देखा। जहा इस व्यवस्था के प्रति उनके मन मे तीव्र असन्तोष व्याप्त है, वहा इस व्यवस्था को बदलने के लिए वे अपने ढग के निदान भी सुझाते है।

साहित्य के प्रति उनकी अपनी सुनिश्चित धारणा है। मानव-मन को उद्वेलित कर उसके हृदय मे परि-वर्तन लाने वाले साहित्य की सजना पर वे जोर देते है। उनकी मान्यता है कि साहित्य मे मानव-मन की गहराइयो का चित्रण हो, सौंदयबोध के साथ हृदय-सस्कार हो, यह वे नितात आवश्यक मानते है।

उनका अनुकरणीय स्वभाव

मधुर शास्त्री

□□

मैं श्री यशपालजी को आदश साहित्य सेवी और आदश पत्रकार मानता हू। उन्होने साहित्यकारो को एक साहि-त्यिक दृष्टि दी है और साहित्यिक सदाचार दिया है। वे एक मूक साधक की भाति गाधी वादी विचार-धारा को प्रबुद्ध जना के मन और मस्तिष्क तक पहुचाते आ रहे है। साहित्यिक कायक्रमो म मनोयोग से सम्मिलित होना, लाभप्रद परामश देना, हर प्रकार से सहयोग देना तथा शुद्ध साहित्य की हृदय से सराहना करना यश-पालजी का स्वभाव है, एतत्सबन्धित अनेक उदाहरण है। मैंने देखा है कि वे नये-से-नये रचनाकारो की

रचनाओं को बिना बड़े नाम के झमेले में पड़े बड़े ध्यान से सुनते और पढ़ते हैं। रचना पर विचार इस तथ्य के साक्षी हैं। एक सस्मरण उनके इस अनुकरणीय स्वभाव से परिचित कराने के लिए पर्याप्त होगा।

एक बार हरदुआगज मे कवि-सम्मेलन हुआ। अक्षयजी भी आ रहे थे। उसके साथ और भी आयोजन थे। यशपालजी भी उन्हीं मे से किसी गोष्ठी मे आमत्रित थे। दोनो के आगमन से हम लोग बहुत प्रसन्न हुए। रात को जब कवि सम्मेलन हुआ तो लगभग बारह बजे मैंने एक गीत सुनाया। यशपालजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। कुछ कवियो के बाद उन्होने मुझसे पुन एक गीत सुनने की इच्छा प्रकट की। मजे की बात यह कि माइक से उन्होंने नाम किसी और कवि का लिया। जब वे कवि पधारे तो यशपालजी ने मेरी ओर सकेत किया। मैं अचम्भे मे रह गया। उनके अनुरोध पर मैं माइक पर आया और गीत सुनाने से पहले अपना नाम बताया तो यशपालजी ने सहज भाव से कहा, "अरे भाई, नाम मे क्या रखा है? मुझे तो आपके गीत सुनने हैं। सुनाइये।"

इस वाक्य मे शुद्ध साहित्य के प्रति आत्मीयता, रागानुभूति तथा सहज शिष्टता की जो आह्लादक गध है, उसकी अमिट स्मृति आज भी मेरे एकान्त को कभी-कभी सुवासित कर जाती है।

ऐसे मनीषी साहित्यिक को मेरा हार्दिक प्रणाम। कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तु। समर्थ प्रभु उनकी गोदी मे शत-शत अनन्त वसन्त भर दे और उनकी सरल मुसकान की छाया मे हम उनसे प्रेरणा प्राप्त करते रहें। स्वस्त्यस्तु, कुशलमस्तु चिरायुरस्तु।

एक निर्लिप्त सांसारिक संन्यासी

सतोष आनद

□□

मुझे जिन लोगो से प्रेरणा मिली है, उनमे श्रद्धेय श्री यशपाल जैन का नाम अग्रिम पक्ति मे है। वे दिन मेरे शुरू के दिन थे। श्री यशपालजी को याद हो कि न हो, पर मेरे हृदय पर वह भडार आज तक तस्वीर बन कर खिचा है। मैं लालकिले के मच से कविता पाठ करके उतरा था कि सपत्नीक सामने बैठे एक सज्जन ने मुझे बधाई और शुभकामनाए दी। लोगो से मालूम हुआ कि वह प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री यशपाल जैन हैं। मैंने बडा गर्व अनुभव किया। जिन्दगी मे पहली बार किसी बडे आदमी ने मुक्त हृदय से मुझे आशीर्वाद दिया था।

आज से कोई पद्रह वर्ष पुरानी घटना है। मैं जबलपुर एक विराट कवि-सम्मेलन मे भाग लेने गया था। देश के कई प्रतिष्ठित कवि वहा मौजूद थे। जनता हजारो की सख्या मे चारो ओर फैली पडी थी। अध्यक्षता कर रहे थे श्री यशपाल जैन। चकाचक पटाखो का धमाका हुआ और अश्रु गैस जैसी कोई चीज आखो से टकराने

लगी। जनता में भगदड़ मच गई और प्राय सभी कवि बेहाल हो गए, हौसला छोड़ बैठे। फ़िल्मी, इल्मी सभी प्रकार के कवि थे, पर सभी मात खा बैठे। उस समय श्री यशपालजी ने मुझे चेताया, सुझाया, मेरे साहस को जगाया, जैसे कह रहे हो, उठो, वीर हनुमान और सचमुच मैं उठ बैठा। यशपालजी ने धीरे-से कहा, "एक साथ दो-तीन कविताए सुना दो।" पानी से भीगा रुमाल आखो पर रख कर मैंने ऊचे स्वर मे लगातार दो या तीन कविताए सुनाई। श्रोता जाते-जाते रुक गये। फिर तो और कवि-सम्मेलन जम रहा था। वह उजड़ा हुआ कवि-सम्मेलन सुबह ७ बजे तक चला। यह सब श्री यशपालजी की प्रेरणा और सूझ बूझ का फल था।

इसी प्रकार अनेको सस्मरण मेरे पास हैं। किन्तु यशपालजी तो इन सब से ऊपर है। एक निर्लिप्त सासारिक सन्यासी। उनकी बहत्तरवी वर्षगाठ पर मेरे लिए और मेरी पीढ़ी के लिए गर्व की बात है। मैं एक इकाई हू, वह स्वय मे एक सस्था हैं। मेरी हार्दिक कामना है कि वह अमर हो और हमे सदैव की भाति सदा-सदा प्रेरणा देते रहे।

एक अविस्मरणीय घटना

शिवानी

□□

यशपाल भैया स मेरा प्रथम परिचय, आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व टीकमगढ़ म हुआ था। मैं तब शाति निकेतन मे पढ़ती थी और गरमी की छुट्टिया मे टीकमगढ़ आई हुई थी। समय कितनी शीघ्रता से बीत जाता है, इसका आभास विशेष रूप से तब हुआ, जब अन्नदा (यशपाल भैया की बेटी) के विवाह का निमत्रण मिला। इसी अन्नदा के रस्टौन्न की पुडिया मैंन खाई ही नही, बेलो भी थी। यशपाल भैया की गृहस्थी तब एकदम नई थी, भाभी सौर मे थी और इसी से हम स्वय अतिथि बनी, अपना आतिथ्य भी निभा रही थी। अपनी विनम्र हसमुख आत्मीयता से यशपाल भैया थोड़े ही समय म हमारे निकट आत्मीय से ही प्रिय हो उठे थे। तब से आज तक उनका और भाभीजी का स्नेह मुझे सदा सुलभ रहा है। जब कभी किसी साहित्यिक उलझन मे फसती हू, उन्ही का द्वार खटखटाती हू। एक बार, कुछ वर्ष पूर्व वे मुझसे मिलने आए। उन दिनो वही के एक प्रकाशक ने, मुझे कई दिनो से रायल्टी न देकर, परेशान कर दिया था। मैं जानती थी कि यशपाल भैया का उक्त प्रकाशक से बहुत पुराना परिचय है। मैंने कहा तो बोले, "तुम बड़ी अजीब हो। आज तक मुझसे क्यो नही कहा? अपनी रॉयल्टी मागने मे कैसा सकोच? चलो, अभी मेरे साथ, देखू, कैसे नही देते।"

मै उनके साथ गई। प्रकाशक के गृह की विशिष्ट रूप से भड़कीली सज्जा देखकर मुझे आश्चर्य

हुआ कि ऐसे सुसज्जित गृह मे रहने वाले इस समृद्ध प्रकाशक को मेरी रॉयल्टी की सामान्य राशि चुकता करने मे इतना बिलम्ब कैसे हुआ ? बडी ही विनम्र हसी से उन्होंने हमारा स्वागत किया। मेरी नई कहानी की प्रशसा में अदृश्य पुष्पहारो से मुझे लाद दिया और मेरे उज्ज्वल भविष्य की गणना करने मे, किसी दैवज्ञ मार्तंड की-सी मुद्रा मे डूब गए। चाय आई, फिर शायद मुझे ही प्रभावित करने के लिए उन्होने अपनी सुन्दरी ऐंग्लो-इडियन सेक्रेटरी को बुलवाकर खटाखट कई पत्र भी टाइप करवाये, किन्तु कही भी मेरी रॉयल्टी का उल्लेख नही किया। तब यशपाल भैया ने ही प्रसग छेडा, "आज ये आपके पास अपनी रॉयल्टी लेने आई हैं, इन्हें रुपयो की सख्त जरूरत है। क्यो है न, गौरा बहन !" मैं चुप !

"अरे, आपको रुपयो की जरूरत थी तो आपने इतना कष्ट क्यो किया ? मुझे फोन कर दिया होता।" उनके कहने का ढग कुछ ऐसा था, जैसे मैं कोई समाज सेविका बनी उनसे अनावश्यक चदा मांग रही हू।

"जी नही," मैंने बडे प्रयत्न से ही अपने कठ स्वर को सयत किया था, "मुझे रुपयो की जरूरत न थी, न ईश्वर-कृपा से कभी होगी।"

"ओ , तब ठीक है। अभी आप ये चेक लीजिए। बाद मे हिसाब होता रहेगा।' उन्होने अपनी छतीली निपोडकर मुझे एक सक्षिप्त-सा चेक थमा दिया। यशपाल भैया साथ न होते तो शायद मैं उसी समय वह चेक उन्ही के मुह पर मार आती।

बाहर आई तो यशपाल भैया ने खूब लताडा, "मूर्ख कही की, यह क्यो कह दिया कि रुपयो की कभी जरूरत नही होगी ? अब वह घाघ कभी भी कुछ नही भेजेगा। ससार मे भला किसे रुपयो की जरूरत नहीं होती ?"

ठीक ही कहा था उन्होने, चेक फिर आज तक नही आया। उन्हे क्षुब्ध देखकर मैंने कहा, "यशपाल भैया मेरा व्रत था, वह भी पूर्णमासी का। उन्होने पूछा रुपयो की सख्त जरूरत है ? तो झूठ कैसे बोलती ? कही सत्य-कथा के बनिये की नाव के से ही लतापत्र रह जाते तब ?" यशपाल भैया एक ठहाका लगाकर हस पडे थे। पर दु ख तो इस बात का है कि मेरी सत्य-वादिता के बावजूद, मेरी नाव मे लतापत्र ही भरे रह गए !

वह समर्पित जीवन

विश्वम्भरनाथ पाडे

□□

भाई यशपाल जैन से मेरा प्रथम परिचय इलाहाबाद मे शायद सन् १९३५-३६ मे हुआ था। तब वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे कानन के विद्यार्थी थे। हमारे परम श्रद्धेय गुरुजन महात्मा भगवानदीनजी और मित्रवर श्री जैनेन्द्रकुमारजी के माध्यम से ही यशपालजी से यह परिचय हुआ था।

यशपालजी मे उस समय साहित्यिक प्रतिभा का उदय हो रहा था। जहा तक मुझे याद पड़ रहा है, साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश उन्होंने कहानिया लिखने से प्रारम्भ किया था। जब कभी कहानियां लिखकर पूरा करते, आकर पडित सुन्दरलालजी को सुनाते। मैं पडित सुन्दरलालजी के ही साथ रहता था, इसलिए मुझे भी अनायास कहानी सुनने का सुयोग मिलता जाता था। पडित सुन्दरलालजी बड़े मनोयोग से कहानी सुनते, अपने सुझाव देते और यशपालजी को यथेष्ट प्रोत्साहन देते।

यशपालजी अपने अध्ययनकाल के दिनो मे इलाहाबाद मे बाई के बाग मे रहते थे। मुझे याद है, दो-एक बार पडित सुन्दरलालजी के साथ हम लोग यशपालजी के डेरे पर भी पहुचे। पडितजी ने पूछा, "यशपाल, बहुत दिनो से तुम्हारी कोई रचना नही सुनी। तुम आए भी नही। क्या बात है ? क्या नई रचना लिखने का अवसर नही मिला ?" यशपालजी नाश्ते का प्रबन्ध करते। यदि नई रचना होती तो सुनाते। यदि नई रचना न होती तब लिओ तात्सताय, डेविड थोरो, एडवड कार्पेटर, प्रिंस क्रोपाट किण और महात्मा गाधी आदि के दर्शन और तत्त्वज्ञान पर चर्चा होती। घटे-डेढ़-घटे गोष्ठी चल जाती। यशपालजी मे उस समय से ही सिद्धान्तो के प्रति आस्था थी। आस्थाहीन और सिद्धान्त विहीन साहित्य मे उन्हे कोई रुचि न थी।

पडित सुन्दरलालजी और महात्मा भगवानदीनजी से मै अक्सर शिकायत करता कि आप लोग जिस दिशा मे यशपालजी को प्रोत्साहित कर रहे हैं, उससे तो ये बेचारे वकालत के काम के तो रहेंगे नहीं, और समर्पित साहित्यकार के लिए अपना और परिवार का भरण-पोषण भी कठिन हो जाता है। महात्माजी कहते, "यशपाल के दिल मे तो सिद्धान्तो के प्रति गहरी आस्था है। जिस दिन उसके दिमाग के साथ उसके दिल का तालमेल बैठ जाएगा, उसका जीवन समर्पित जीवन बन जायगा। वह वकालत पढ जरूर रहा है, मगर वह वकालत करेगा नही।"

महात्मा भगवानदीनजी की पेशीनगोई सही साबित हुई। बजाय अलीगढ की जिला कचहरी के वे टीकमगढ के 'मधुकर' कार्यालय मे पहुच गए। 'पचवटी' कुडेश्वर मे बैठकर यशपालजी ने पडित बनारसीदास चतुर्वेदी के मार्ग-दर्शन मे 'मधुकर' द्वारा साहित्य की जो सेवा की, वह हिन्दी साहित्य के जनपदीय इतिहास मे एक बेजोड अध्याय है। चतुर्वेदीजी के साथ अनेक वर्षों के सहवास से यशपालजी को क्रोपाट किन और गाधी का एक समन्वयवादी दृष्टिकोण मिला।

सन् १९४६ मे यशपालजी ने 'नाथूराम प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' का जिस योग्यता और अथक परिश्रम से अनुपम आयोजन और सफल सम्पादन किया, उसने उनकी सम्पादकीय प्रतिभा को चार चाद लगा दिए। छपाई-सफाई और साहित्यिक स्तर की दृष्टि से अभिनन्दन ग्रन्थो की श्रेणी मे 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' अपना एक ऊचा स्थान रखता है। ग्रन्थ की छपाई के सिलसिले मे यशपालजी को फिर काफी समय तक इलाहाबाद मे रहने का अवसर मिला। तब उनसे बहुधा भेट हो जाती थी।

सौभाग्य से यशपालजी का नाता हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रकाशन सस्था 'सस्ता साहित्य मडल' से जुडा। भाई मार्तण्ड उपाध्याय के साथ-साथ वे 'सस्ता साहित्य मडल' के सुदृढ स्तम्भ बन गए। उनकी सूझ-बूझ, रचनात्मक कल्पना और कार्य-क्षमता और मार्तण्डजी की व्यावसायिक कार्य कुशलता ने 'सस्ता साहित्य मडल' को राष्ट्रभाषा के भडार को स्वस्थ साहित्य से भरने का अनुपम सुयोग दिया।

भाई यशपाल जैन स्वस्थ दीर्घ जीवन प्राप्त कर साहित्य के माध्यम से भारत माता की चिरन्तन सेवा करते रहे, यही कामना है।

यायावर

कमला रत्नम्

□□

भाई यशपाल जैन के बहत्तर वर्ष इतनी जल्दी पूरे होने जा रहे हैं, इसका मुझे आभास नहीं था। जो आदमी गगोत्री, जमनोत्री, अमरनाथ, बदरी-केदार आदि-अनादि पर्वत शिखरो पर अनेकों बार चढ़कर उतर आया हो, वह बहत्तर वर्ष की आयु के पर्वत पर इतनी जल्दी अपने चरणचिह्न अकित कर देगा और फिर वहां से नीचे कभी नही उतरेगा, इसकी आशा हमे अभी नहीं थी। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि आयु की जिस सीमा पर आज भाई यशपाल खड़े है, साहित्य और सस्कृति के सौध पर भी वे सदा इसी प्रकार सदा विराजमान रहे।

भाई यशपालजी जाने-माने पदयात्री और पर्वतारोही हैं, यायावर हैं। काका साहेब और राहुलजी की पर्यटनशीलता और ज्ञानाजन एषणा उनमे समायी है, यद्यपि अपनी यात्राओ मे उन्होने भारतीय बुद्धि से अधिक भारतीय मन का अन्वेषण किया है और उसे वे अपने साथ ले आने मे सफल भी हुए हैं। ससार का ऐसा कोई स्थल नही, जहा यशपालजी गए हो और याद न किये जाते हो। उनकी यायावरता ही हमारे उनसे मिलने का कारण बनी। हम लोग जब मास्को मे थे, उसी समय बुलगानिन-ख्रुश्चेव की यात्रा के साथ सोवियत सघ की विश्वमैत्री के द्वार खुले थे। इस द्वार के प्रथम पट हिमालय की सीमा को पार कर भारत की ओर खुले, यह बड़े हर्ष की बात थी। १९५६ मे मास्को मे यूथ-फेस्टिवल हुआ और उसमे युवको के यूथ मे यशपालजी भी सम्मिलित हुए।

उस समय मास्को मे सौ के करीब भारतीय हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे अच्छे रूसी साहित्य का अनुवाद कर रहे थे। यशपालजी के आगमन की सूचना से सबसे अधिक प्रोत्साहित और प्रमुदित श्री सोमसुन्दरम् हुए थे। तमिल का यह पुत्र हिन्दी-अनुवादक के रूप मे रूस जाकर बाद मे राजनैतिक कारणो से हिन्दी का सबसे बडा विरोधी बन गया। फिर भी मैं समझती हू, यशपालजी उससे पूर्ववत् स्नेह करते रहे। बदलती परिस्थितियो मे न बदलना भी एक मानवीय गुण है, जो यशपालजी जैसे व्यक्तियो के माध्यम से दुर्लभ होते हुए भी अभी दुनिया से लुप्त नही हुआ है। यशपालजी भावुक आदर्शवादी और अत्यन्त स्वच्छ प्रकृति के मनुष्य हैं। कभी-कभी वे अपने कपडे भी खुद धो लेते हैं, जिससे उनकी पत्नी आदर्श के भारतीय नारी के आदर्श सम्बन्धी विचारो को चोट लगती है। आदर्श यशपालजी के सब काम खुद ही करना चाहती हैं, परन्तु अब तो समय तेजी से बदल रहा है, और समय के साथ बदलने का जो गुण भाई यशपालजी के भीतर है, वही उन्हे युवा-यूथ का सिरमौर बनाये हुए है।

यशपालजी अच्छे वक्ता, अच्छे चिन्तक और अच्छे लेखक हैं। उनके साथ घण्टो बैठकर बातो का भण्डार न कभी रिक्त होता है और न कभी तृप्त करता है। इच्छा होती है, समय का बीतना बन्द हो जाय और हम बातें सुनते रहे। प्रच्छन्न लोकरजकता की उनकी यह एक छोटी-सी कहानी पर्याप्त होगी कि अपनी हाल की कनाडा-यात्रा मे जब वे भारतीय समाज की सम्मिलन-गोष्ठी मे गए तो सभा के अन्त मे एक युवा किशोरी झिझक छोड उनके पास आई और बोली, "मैं तो आपको जानती हू, और बहुत दिनो से!" बात होने पर पता चला कि वह लडकी दरियागज मे उनके पडोस के घर मे रहती थी और प्रतिदिन प्रात उन्हें सैर के

लिए जाते देखती थी। दरियागज की सैर की तिजोड़ी—आज के कार और बस के धुए भरे युग मे स्वास्थ्य की तिजोरी भी!—विष्णु प्रभाकर, स्व मोहनसिंह सेंगर और यशपाल जैन की काफी प्रसिद्धि और आकर्षण का विषय थी। विवाहित होकर वही लडकी जब कुछ मास पूर्व कनाडा पहुची और वहा सभा मे सुप्रसिद्ध साहित्यिक होने के कारण दूर से ही जाने गए पडोसी को इतना निकट देखकर उनसे बात करने का लोभ तब वह सवरण न कर सकी। कहने का तात्पर्य यह कि यशपालजी की साहित्यिकता और यायावरता ने उन्हें पास के लिए दूर और दूर के लिए पास बना दिया है। यही उनके साहित्यकार और यायावर की अन्तिम सफलता है।

एक शब्द यशपालजी की भावुकता के विषय मे और कहना चाहती हू। एक अच्छे जैन होने के बावजूद वे सारे भारत के है और सारा भारत उनका है। बाबा मुक्तानन्द परमहस सम्बन्धी उनके लेख और सस्मरण हिन्दी लेखन की अविस्मरणीय निधि रहेगे। अपनी दिवगता माता के माध्यम से यशपालजी ने जीवनी साहित्य को नई दिशा दी है। माता को पुत्र से अधिक कौन पहचानता है? दैनिक जीवन की साधारण-सी घटना कितनी महत्त्वपूण हो सकती है, माता का मूक चरित्र सन्तति मे किन-किन गुणो का निर्माण करता है, इसे एक सहृदय लेखक ही पारिवारिक सदर्भ मे सजोकर पाठको के सामने प्रस्तुत कर सकता है। हर्ष का विषय है कि उनके द्वारा तैयार की गई इस पुस्तक से बहुत से नये लेखक अनुकरणीय प्रेरणा ले रहे हैं। मेरी और रत्नमजी तथा दोनो बच्चो की यही कामना है कि भाई यशपालजी दीघजीवी हो और उनके पयटन का अन्त कम-से-कम चन्द्रयात्रा तक अवश्य हा। पृथ्वी को तो वे अपने कनाडावासी पुत्र और पुत्रवधू के माध्यम से जीत ही चुके हैं, 'वसुधैव कुटम्बकम्' अब उनके लिए छोटा-सा नीड हो गया है। उनके चरणचिह्नो को अब चन्द्रतल को अवश्य छूना चाहिए। ७३वे जन्मदिवस पर उनका हार्दिक अभिनन्दन करती हू।

वह युवा बने रहें

राजेन्द्र अवस्थी

□□

यशपाल! जी नही, यशपाल जैन! दोनो नामो से हिंदी के पाठक भली प्रकार परिचित हैं। यशपाल जैन फक्कड तबियत के घुमक्कड व्यक्ति है। पहले देश मे घमते थे, अब विदेशो मे घूमते हैं। मैंने उन्हे दिल्ली मे घूमते देखा है—चलते है तो लगता है जैसे चलना सिफ वही जानते है। बोलते हैं तो धारा-प्रवाह। भाषण-बाजी का उन्हे शौक है। कही मौका मिल जाए तो वे चूकने वाले नही, आप सुनिए, न सुनिए, वे सुनाकर रहेगे। लेकिन आप सुनेगे कैसे नही। यशपालजी का बोलने का अपना लहजा है। चीनी की तरह वे शब्दो को बोलते है और फिर बाहर छोडते है।

यशपालजी एक मिशनरी स्प्रिट के आदमी हैं। इन्हे तो ईसाई मिशनरियो की सेवा करने के लिए भेजा जाना था। जो काम वे हाथ मे लेते हैं, पीछे पड जाते हैं और पूरा करके छोडते हैं। जब तक काम पूरा नहीं होता, वे बेचैन नजर आते हैं। यह एक ऐसा गुण है, जो कम लोगो मे मिलता है।

यशपालजी युवा हैं, उनका रक्त गरम है। उनमे ओज है, स्प्रिट है, आस्था है, आसक्ति है, भाग-दौड की ताकत है। उनके लेखन मे जोर है। जिस तरह जमकर वे कदम रखते हैं, उसी तरह जमकर लिखते भी हैं। मैं उनका प्रशसक हू।

यशपालजी खूब लिखे, खूब बोले और सदैव इतने युवा बने रहे कि आयु की सीमारेखा हमेशा धोखा देती रहे। वे मेरे शुभेच्छु हैं, इसलिए मेरे मन म उनके लिए आदर का स्थान है। वे—'देखे शत शारदो की शोभा, जिए सुखी वष'—ऋग्वेद की इस आदश कामना को मैं दोहराता हू, आदर्श इसलिए कि उनकी पत्नी भी एक 'आदर्श' है और दोनो अनुकरणीय हैं, वदनीय हैं।

एक स्मरणीय प्रसंग

राकेश जैन

□□

भाई यशपालजी की सज्जनता, सरलता और सहृदयता का मै शुरू से कायल रहा हू। उनके चेहरे पर सदा सहज मुस्कान खेलती रहती है, जो हर किसी को उनके निकट ला देती है। अनेक अवसर ऐसे आए हैं, जब उन्होने अपने व्यवहार से मेरा मन मोह लिया है। मैं यह अनुभव करता हू कि उनका मेरे प्रति काफी लगाव है। मैं ही नही, जो व्यक्ति भी उनके सम्पक मे आता है, वही ऐसा अनुभव करता है।

किसी के अनुरोध को यशपालजी सहज ही नही ठुकराते। मेरा-उनका सम्पर्क लेखक-सम्पादक के रूप मे भी हुआ है। मुझे जब कभी 'समाज कल्याण' के लिए विशेष ढग की रचनाओ की आवश्यकता हुई, तभी मैंने उनसे अनुरोध किया और उन्होने सदा ही मेरे अनुरोध को सहर्ष स्वीकार किया। यही नही, जब कभी मैंने किसी नए लेखक को भाई यशपालजी के पास भेजा तो न केवल उन्होने उसका स्वागत किया, अपितु अपना अमूल्य समय देकर उसका मागदर्शन किया।

बात १९६१-६२ को है। मुझे भारत सरकार की ओर से कुछ विदेशी पर्यटको के सम्मुख जैन धर्म पर अग्रेजी मे एक व्याख्यान देने के लिए निमत्रित किया गया था। उस समय मैं असमजस मे पड गया। जैन धर्म पर व्याख्यान देने योग्य मै अपने को नही मानता हू। जैन धर्म के अनेक विद्वानो के नाम मेरे सामने आए। चूकि भाषण अग्रेजी मे दिया जाना था, अत मेरे लिए तुरन्त निर्णय करना कठिन हो रहा था। यकायक भाई

यशपालजी का नाम मुझे याद आया। मैं जानता था कि वह विभिन्न देशो का भ्रमण कर चुके हैं और भारतीय जीवन, धर्म, दर्शन और संस्कृति के सम्बन्ध मे विदेशियो की जिज्ञासाओ को समझते हैं और उनका समाधान करने की पूरी क्षमता रखते हैं। साथ ही, जैन धर्म के विषय मे भी अधिकारपूर्वक बोल सकते हैं। मैंने तुरन्त टैलीफोन पर सम्पर्क स्थापित किया और समस्या उनके सामने रख दी। सब सुनने के बाद यशपालजी सदा की भांति बडी विनम्रता से बोले, "अच्छा तो ठीक है, जैसी आपकी इच्छा।" इस प्रकार यशपालजी ने मेरा भार अपने कधो पर लेकर मुझे सकट की स्थिति से उबार लिया और अपने व्यस्त क्षणो मे से कुछ समय इस महत्व-पूर्ण कार्य के लिए दिया और सफलतापूर्वक निभाया।

यशपालजी का हृदय बडा विशाल है। वह कभी किसी की सहायता करने मे नही सकुचाते। हिन्दी विद्वान और लेखक के रूप मे वह सर्वज्ञात है। उन्होने हिन्दी भाषा की विभिन्न प्रकार से सेवा की है। उनके यात्रा-सस्मरण हिन्दी साहित्य को उनकी विशेष देन है।

मेरी हार्दिक कामना है कि भाई यशपालजी शतायु हो और हिन्दी साहित्य तथा भारतीय सस्कृति और समाज के उन्नयन मे अधिक-से-अधिक योगदान करते रहे।

कलम का मजदूर

जमनालाल जैन

□□

भाई श्री यशपालजी का अभिनन्दन उन सबका अभिनन्दन है, जो कलम के मजदूर है। कलम का मजदूर कलम की इज्जत समझता है, इज्जत देता है और अपने से अधिक औरो की कलम को। भाई यशपालजी ने जिन्दगीभर औरो की कलमो को आदर दिया है, चमकाया है। 'मधुकर' और 'जीवन-साहित्य' जैसे सास्कृतिक और रचनात्मक पत्रो के द्वारा उन्होंने राष्ट्र-जीवन को कलम की मजदूरी का महत्व बताया है और आज भी वे अपनी कलम को घिस-घिस कर मजदूरी को चमका रहे हैं। लगभग चालीस वर्ष से मेरा उनका परिचय है। एक मजदूर के लिए और ईमानदार मजदूर के लिए यह अत्यन्त जरूरी है कि वह अपने शरीर को सृष्टि की, परमात्मा की या जनता की धरोहर समझे और उससे यथोचित काम लेते हुए उसे सम्हाल कर रखे। मैं कह सकता हू कि इस विषय मे यशपालजी बहुत जागरूक रहे है। वे शब्दो के ही सम्पादक नही, शरीर के भी सम्पादक हैं। उनसे दस वष छोटा होने पर भी महसूस करता हू कि शरीर के मामले मे उनसे भी दस वर्ष आगे बढ गया हू।

स्पष्ट और सुलझे विचार तथा मुक्त हास्य उनकी विशेषताए हैं। वे खादी-सर्वोदय वालो के बीच हो

बीच समाज के बीच, अपने विचार वे नि सकोच और साफ-साफ शब्दो मे रखते हैं और मैंने देखा है कि वे इतने व्यावहारिक, समयोचित होते हैं कि सामनेवाला समाधान की सास लेता है।

'सस्ता साहित्य मण्डल' को उन्होंने अपने प्राणो से सींचा है। विगत वर्षों मे मण्डल ने हिन्दी की जो सेवा की है, उसमे यशपालजी को नही भुलाया जा सकता। तिल-तिल घिसकर और पल-पल अपने को खपा कर साहित्य के अनेक हीरे-मोती देश को दिये हैं।

यह कलम का मजदूर ही होता है, जो अन्य साहित्यकारो, साहित्य-सेवियो, कलाकारो का सम्मान करता है। स्व नाथूरामजी प्रेमी के अभिनन्दन-ग्रन्थ से लेकर अब तक अनेक कलम-सेवियो का अभिनन्दन वे कर-करा चुके हैं। एक स्वर्णकार, एक राज, एक लुहार, एक बढई, एक बुनकर भी तो अपने श्रम-कणो को बहाकर औरों को समृद्ध बनाता है। दिल्ली जैसी विश्व-नगरी मे आप अपने दफ्तर के एक कोने मे, छोटी-सी जगह मे बैठा-बैठा यह मजदूर बाहरी प्रलोभनो से दूर रहकर जो तपस्या करता रहा है, उसका फल आज की तरुण पीढ़ी चख रही है।

उन्होने मुझे सदैव स्नेह दिया है और पारिवारिक आदर के साथ दिया है। एक यह भी बात है कि जब दो समान-व्यवसायी मिल जाते हैं तो आपसी सुख-दु ख की बातें करके जी हलका कर लिया करते हैं। मेरा और उनका काम एक-सा रहा है और आज भी है। एक प्रकाशन-सस्था मे कलम के मजदूर को सम्पादन, प्रूफ-सशोधन तथा प्रकाशन—तीनो काम एक साथ और निरतर करने पडते है। वह बेचारा कही नही होता। किसी को पता भी नही चलता, पता चलाने की कोशिश भी नही की जाती और मुश्किल तो तब होती है जब इस दिशा का ककहरा तक न जानने वाले लोग 'विधाता' बने रहते हैं। असल मे पुस्तक-व्यवसाय एक ऐसा व्यवसाय है, जिसे कोई व्यवसाय ही नहीं मानता।

भाई यशपालजी पुस्तक व्यवसाय के विषपायी हैं, इसीलिए व्यथाओ के बोझ से न दब कर मस्ती मे रहते हैं। काश, यह शिक्षा उनसे ले सकू।

श्वेत किरण के पीछे सातों रग

विद्यावती कोकिल

□□

यशपालजी के व्यक्तित्व की हृदय पर अमिट छाप है। खादी के कुर्ते मे वह गौरवर्ण काया तथा मुख-मडल मे बरसता हुआ आत्मा का निश्छल आह्लाद और वे चमकती हुई दो आखे, जो सब प्रकार के मनमुटावो को अपने तरल प्रेम से धो डालने को उतावली रहती हैं, यह सब सजोने योग्य एक सपदा है। उनका खादी का

कुर्ता भी एक छद्मावरण ही है, क्योकि वे काग्रेसी विचारधारा मे बधे नही हैं। जैसे श्वेत किरण अपने भीतर सातो रग छिपाए रहती है, वैसे ही उनके कुर्ते के नीचे का व्यक्तित्व अपने सातो रगो को छिपाए है। जैन धर्म भी उन्हे बाध नही पाया है। उनके भीतर एक विशाल मनमौजीपन है, जिसने उनके साहित्य मे—कहानियो और यात्रा सस्मरणो मे—कुछ पर फैलाए है। उनकी भाषा सरल, स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी होती है। जैसे उनका मन उन्मुक्त है, वैसे ही उनके पैर भी बधकर नही रहते, कुछ देने को, कुछ लेने को, देश-विदेश घूमते ही रहते हैं।

भाई यशपालजी से एक साहित्यिक और समाजसेवी के नाते थोडा-बहुत परिचय इलाहाबाद से ही था, पर जहा पर ये दोनो सीमाए अपने अह को तोड कर मिलती है, उस स्थान पर मिलने का सुख अद्भुत ही है। हम दोनो बहुत दिनो से उस बिन्दु पर मिलते चले आ रहे है, जिसने एक घनिष्ठता के बधन मे बाध दिया है। वे श्री अरविन्द आश्रम मे अक्सर आते रहे हैं और आश्रम के एक मनीषी साधक डा इन्द्रसेनजी के अभिन्न मित्र हैं और उन्ही के यहा ठहरते है, तभी भेंट हो जाती है, एक याद बन जाती है। भाई डा इन्द्रसेनजी ने ही मुझे एक कुजी पकडाई कि तुम्हे जब कोई दिल्ली का साहित्यिक ढग का काम हो तो तुम नि सकोच यशपालजी को लिखो और तुम्हारा काम हो जायगा। यह बात शत-प्रतिशत ठीक उतरी है, जब कभी मैंने उन्हे पत्र लिखा है, उनका उत्तर लौटती डाक से आया है। अब तक अपने किसी मित्र को मैंने ऐसा मुस्तैद नही पाया, मानो मेरा व्यक्तिगत कार्य भी वे आश्रम का ही कार्य समझ कर करते हो। यही नही कि उन्होने यहा का कुछ साहित्य पढ़ा है, अपितु मा और श्री अरविंद के प्रति पूरी श्रद्धा-भक्ति रखते हैं और भरसक जो सभव होता है, सहायता करते रहते है। वैसे मन और सस्कारो के पूर्वाग्रहो से ऊपर उठना बहुत कठिन है, पर यह गुण उनमे है। वे जो कुछ करते है, स्वाभाविक रूप से, मौन रहकर करते हैं। एक बार श्रीमा की कुछ कहानियो का जो बच्चो के लिए अत्यत उपयोगी हैं, सरल अनुवाद कर उन्होने 'सस्ता साहित्य मडल' की एक योजना मे सुन्दर उपयोग किया था।

उनके जीवन की इस सफलता पर उन्हे उनके परिवार सहित हार्दिक बधाई देती हू। यह प्रसन्नता की बात है कि उनमे आज भी युवको जैसी फुर्ती है, इसीलिए उनसे अभी मै बहुत आशा करती हू कि अपनी प्राप्तियो की सारी समृद्धियो को नीव बनाकर अब एक और भी ऊची चोटी पर चढने का उपक्रम करेंगे। जैसे जीवन की विशालताओ को उन्होने नापा है, वैसे ही उसकी अनदेखी गहराइया और ऊचाइयो मे डुबकी लेकर वे जीवन-स्वामी बनेगे।

"अनन्त की दिशि बढते निज चापा का
जो प्राथमिक फल है होता आया,
वह इतना ही है कि ज्यो चमत्कारी
एक किनारे पर केवल प्रभात का
हो शोभा माहात्म्य गया निरभाया,
जब कि अदृश्य भव्य महिमामय रवि तो
अभी पडा हो पीछे छिपा-छिपाया।
बस जो कुछ भावी मे आने को है,
देख रहे हैं हम उसकी इक छाया।"

(श्री अरविंद का 'सावित्री' महाकाव्य, पर्व १ सर्ग ४)

सहृदय मित्र

भरतसिंह उपाध्याय

□□

भाई श्री यशपालजी से मेरा सम्पर्क सन् '४६ से ही है। अनेक बार उनसे मिला हू, उनके घर पर भी गया हू और उनसे सहायता भी ली है। अब तक मैं यही समझता रहा कि वे मुझसे २-३ साल छोटे ही होंगे। अब मुझे यह बडी सुखद अनुभूति हो रही है कि वे मुझसे ३-४ साल बडे है। भगवत्कृपा से उनका स्वास्थ्य ऐसा ही अच्छा बना रहे, वे सुखी और चिरायु हो, ऐसी भगवान् से प्रार्थना है।

श्री यशपालजी बडे सुहृद् व्यक्ति है और दूसरो की सहायता मे सदा तत्पर रहते है। उनसे मिलने पर एक सच्चे मित्र से मिलने के सुख का अनुभव होता है। मैं जब कभी दिल्ली के वातावरण से ऊब कर किसी कल्याण मित्र के सग का लाभ उठाना चाहता हू, तो 'सस्ता साहित्य मण्डल' जाता। कभी यशपालजी मिलते कभी श्रद्धेय मार्तण्डजी और कभी श्री विष्णु प्रभाकरजी। कभी-कभी ऐसा भी सौभाग्य होता कि तीनो ही एक साथ मिल जाते। तब तो मुझे जैसे तीनो रत्नो की ही प्राप्ति हो जाती। वैसे एक-एक से भी मेरा काम बन जाता और मैं बहुत प्रमुदित मन होकर लौटता। वास्तव मे अपने इन तीनो श्रद्धेय मित्रो की स्मृति मेरे हृदय मे एक साथ जुडी हुई है और एक की याद आने पर अन्य दो की याद आ ही जाती है। जिसे सन्मित्रता का सुख कहना चाहिए, वह मुझे इन तीनो के अलग-अलग और सम्मिलित मिलने से मिलता रहा।

समाज-सेवा और साहित्य-सेवा के क्षेत्रो मे श्री यशपालजी की महत्त्वपूर्ण सेवाए है। यात्रा-साहित्य के क्षेत्र मे तो उनकी देने चिर स्मरणीय और अद्वितीय ही हैं। 'जीवन-साहित्य' के सम्पादक के रूप मे उन्होने गाधीवादी जीवन-दृष्टि की महत्त्वपूर्ण व्याख्याए की है और प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र मे उनका योगदान लक्षणीय रहा है। यशपालजी के व्यक्तित्व मे गति है और वे बहुत से कामो को अपने हाथो मे लेकर उन्हे सफलतापूवक निभा सकते है। सबसे अधिक अच्छी मुझे उनके व्यक्तित्व मे यही बात लगती है कि वे बडे अच्छे सहृदय मित्र है, उनमे दूसरो के लिए बडी सहानुभूति है, दूसरो के सुख-दु ख जानते है। जो सुखी हैं उनके साथ प्रसन्न होते हैं, और जो दु खी है, उन्हे सान्त्वना देते है। इससे अधिक मनुष्य से अपेक्षा भी क्या की जा सकती है ?

मनुष्यता के मंगलपुंज

नेमिचंद जैन

□□

श्री यशपाल जैन से, जिन्हे मैंने सदैव बडे आदर और सम्मान के साथ जाना-देखा है, हुई मेरी दो प्रारम्भिक मुलाकातो की स्मृति, आज भी ताजा है, और उनके ज्वलन्त सकेत आज भी मेरी चेतना पर उतने ही प्रभावशाली रूप मे उत्कीण है। पहली बार उनमे दिल्ली मे 'सस्ता साहित्य मण्डल' के दफ्तर मे ही मिला था। सभवत तब मैं किसी बैठक मे भाग लेने दिल्ली गया था। उनके दशन सयोगवश ही हो सके थे। मेरे साथ 'गाधी स्मारक निधि' के श्री प्रभाष जोशी भी थे। इसके पूव यशपालजी को लेकर मेरे मन मे जो बिम्ब था, वह बिलकुल भिन्न था। मैं उन्हे गाधीवादी तो मानता था, किन्तु एक अपटूडेट गाधीवादी' मानता था, किन्तु जब उन्हे दफ्तर मे कार्यरत देखा तो एकदम दूसरा ही आदमी दिखायी दिया—सर्वथा सरल, सहज, निष्कपट, अकृत्रिम। वे अत्याधुनिक हैं, ज्ञान और सौजन्य के सदभ मे। उनमे आधुनिकता की स्निग्धता के स्थान पर गाधीवादी खुरदरापन देखकर अच्छा लगा। ऐसे व्यक्ति विश्वसनीय और प्रामाणिक होते हैं। यशपालजी शत-प्रतिशत तपस्वी हैं, आदशवादी है, उत्सर्ग में वे सबसे आगे आने वाले व्यक्ति हैं।

मैंने देखा है, जमाने के चरण-चिह्न उनके व्यक्तित्व पर बहुत कम है। मेरा अनुमान है इसके विपरीत जमाने पर ही उनके चरण-चिह्न अधिक छूटने वाले हैं। उनका व्यक्तित्व दपण सा अनासक्त और वस्तुपरक है, जहा तक वर्ताव का प्रश्न है, वे अमराई-सी हरीतिमा और ठण्डक लिए हुए है। वे निरहकार है, बाहर-भीतर एक। मेरा जो भी पत्राचार उनसे हुआ है, उसमें यही बात सबसे अधिक सामने आयी है। प्राय लोग लिखने मे कुछ, बोलने मे कुछ, दूर कुछ, पास कुछ, परोक्ष कुछ, प्रत्यक्ष कुछ, आज कुछ, कल कुछ, होते है, किन्तु यशपालजी इन सबसे परे है और उनके चारा ओर एक अपरम्पार अद्वैत धडकन ले रहा है।

यह मुझ पर उनका सबसे पहला प्रभाव हुआ।

दूसरी बार इन्दौर मे मुनिश्री विद्यानन्दजी के सान्निध्य म कही उनसे मिलना हुआ। वे मुनिश्री के दर्शनार्थ आए थे, सयोग से मैं भी उसी समय वहा पहुचा था। मुझे लगा, यशपालजी भी सवस्त्र मुनि ही है। उनके व्यक्तित्व मे वैसी ही अपार निश्छलता और सत्यनिष्ठा है। यहा बहुत कम समय, किन्तु सबसे अधिक उन्हे चीन्ह सका। मैने देखा है, व कम-मे कम बालते है, किन्तु साथक और महत्व का बोलते है। कम और पुरुषाथ उनकी भाषा है। व मनीषी साहित्यकार तो है ही, अव्वल दर्जे के मनुष्य भी है। जिस मनुष्यता से आज का आदमी निरन्तर चूक रहा है, वे उसके मगल पुज है।

उनके स्वभाव की विशेषताएं

रवीन्द्र

□□

यशपालजी ने हिन्दी मे अभिनन्दन ग्रन्थो की एक बाढ़ सी ला दी है। हमारे यहां प्रथा रही है 'मरे बाबा की बडी-बडी अखिया' या और भी ज्यादा स्पष्ट शब्दो मे कहना हो तो 'जियत बाप से डडम डडा, मरे बाद पहुचाए गगा'। लेकिन यशपालजी ने इस प्रथा को तोडा है, जीते जागते लोगो के अभिनन्दन करके उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की प्रथा चलायी है। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण है 'बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रथ'।

यशपालजी के बारे मे क्या लिखू इस विषय पर सोचते ही चल-चित्र की भाति बहुत-सी बाते आखो के आगे घूम जाती है। आखो के आगे कौन-सी विशेषता कागज पर उतरने के लिए उत्सुक होकर खडी है? उनकी आवारागर्दी। कुछ समय पूर्व उनका पत्र आया था कि अमरीका और कैनेडा और भगवान् जाने कहा-कहा के चक्कर लगाकर लौटे है। दुनिया का शायद ही कोई देश बचा हो, जहा इनके चरण नही पडे। अब इस यात्रा को लेकर भी एक पुस्तक तैयार हो जाएगी, जिससे हम जैसे लोग भी दुनिया की सैर कर लेगे।

यशपालजी की दूसरी विशेषता, जो मुझे बहुत भाती है, उनकी जिन्दादिली है। एक बार वे पाडिचरी आए। पहले से कोई खबर तो थी नही, जो उनकी अगवानी की जाती। सबेरे-ही-सबेरे सात के आस-पास मेरे कमरे मे आ धमके। मैं वहा न था। एक ओर को आड मे होकर मेरे आने की प्रतीक्षा करने लगे। मैं आया तो झट बोले, "मैं देख रहा था कि तुम मुझे इतने वर्षों के बाद पहचानते हो या नही।" इतनी-सी बातचीत के बाद जो हसी के फव्वारे छूटे, उनकी साक्षी उनकी पत्नी आदर्शजी हैं।

यशपालजी की इस जिंदादिली का परिचय उनके हर पत्र मे मिल सकता है। गाधीजी से उन्होंने और कुछ सीखा हो या न सीखा हो, हसना और हसाना तो जरूर सीखा है।

यशपालजी बहत्तर वर्ष पूरे कर रहे है। प्राचीन भारत मे साठ वर्ष के बाद के लोग नवयुवक माने जाते थे, महाभारत मे वृद्ध केवल भीष्म पितामह को माना गया है।

हम सब मिलकर इस नवयुवक का अभिनन्दन करे और चचा गालिब के शब्दो मे कहे

तुम सलामत रहो हजार बरस
और हर बरस के दिन हो पचास हजार।

गांधी युग के सशक्त हस्ताक्षर

रामनारायण उपाध्याय

□□

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीजी की प्रेरणा से टीकमगढ से जब 'मधुकर' नामक पत्रिका निकल रही थी तो उसके माध्यम से भाई यशपाल जैन से मेरा पहला परिचय हुआ। जनपदीय साहित्य की वह पहली पत्रिका थी। उसके बाद जब यशपालजी दिल्ली चले गए 'सस्ता साहित्य मण्डल' से प्रकाशित 'जीवन साहित्य' के सपादक हो गए तो यह स्थिति बन गई है कि पिछले ४५ वर्षों से 'जीवन साहित्य' और यशपाल जैन का नाम एक दूसरे का पर्यायवाची बन गया है। मैंने सन् १९४१ मे लिखना शुरू किया और १९४२ मे मेरा पहला लेख 'जीवन साहित्य' मे छपा था। फिर तो मैं उसमे निरन्तर लिखता रहा हू और मेरे तथा उनके बीच एक पारिवारिक जन की तरह स्नेह की गाठ कसती चली जा रही है।

सत् साहित्य के प्रकाशन मे 'सस्ता साहित्य मण्डल' के योगदान को भुलाया नही जा सकता। गाधी, जवाहर, राजेन्द्रबाबू, राधाकृष्णन, मशरूबाला, काका कालेलकर, राजगोपालाचार्य वियोगी हरि, वासुदेव-शरण अग्रवाल, विष्णु प्रभाकर, टॉलस्टॉय, खलील जिब्रान और स्टीफन ज्विग की सुरुचिपूण रचनाओ को अपने नाम के अनुकूल कम-से-कम मूल्य मे जनता तक पहुचाने का श्रेय भाई मातण्ड उपाध्याय और यशपाल जैन को रहा।

आज देश मे जो अश्लील और अपराध-साहित्य की बाढ आई है, उसका मुकाबला करने का रचनात्मक दायित्व भी यशपालजी ने निभाया है। साहित्य उनके लिए महज मनोरजन का साधन नही वरन् अपना रक्त देकर चलने वाली जीवन की साधना है। लिखते तो बहुत लोग है लेकिन अपने लिखे प्रत्येक शब्द को भोगकर जीने वाले भाई यशपाल जैन जैसे व्यक्ति अब दुर्लभ होते जा रहे हैं। उनके विचारो मे हिमालय जैसी उदात्त भावना और गगा की तरह निमलता प्रवहमान रही है। मुझे उनके सान्निध्य मे आने का सौभाग्य मिला। वे गाधी-युग के ऐसे सहज, सरल व्यक्तित्व हैं, जिनके नजदीक जाने से मनुष्य अपने आप को ऊचा उठा हुआ अनुभव करता है।

महावीर जयन्ती के सिलसिले मे वे एक बार खण्डवा आए थ। उनके साथ परिवार के बीच बिताए क्षणो की याद मैं भल नही पाऊगा। अपनी खण्डवा यात्रा की याद मे उनके साथ लिया गया चित्र जब मैंने उन्हे भेजा तो उनका पत्र आया !

"चित्र ने उन क्षणो की स्मृति सजीव कर दी, जो खण्डवा मे आप सब के बीच व्यतीत किये थे। किसी महापुरुष ने कहा है, 'मैं अपने जीवन मे उन्ही क्षणो को याद रखूगा जो आनन्ददायक थे।" मैं भी यथा-सम्भव ऐसा प्रयत्न करता हू।"

'जीवन साहित्य' के एक विशेषाक के सम्बन्ध मे जब मैंने उन्हे बधाई भेजी तो उनका पत्र आया

"यह जानकर हष हुआ कि आपको 'जीवन साहित्य' का विशेषाक पसन्द आया। मैंने 'जीवन साहित्य' मे इस बात को बार-बार दोहराया है कि भारत के स्वतन्त्र होने के ३२ वर्ष बाद भी गम्भीर साहित्य पढ़ा नहीं जाता, पढवाया जाता है। मण्डल के प्रकाशन सस्ती रुचि की तुष्टि नही करते, इसलिए उनकी खपत भी बहुत सीमित होती है। यही हाल 'जीवन साहित्य' का है। आप तो बराबर उसके लेखक रहे हैं और जानते हैं कि

पत्र में हम किस प्रकार की सामग्री देते हैं लेकिन पाठक तो हल्की-फुल्की कहानियां और गुदगुदाने वाली कविताए चाहते हैं। हम लोग ऐसा नहीं कर सकते। इसलिए हमारा रास्ता हमेशा से साधना का रहा है और आगे भी हमे कठोर तपस्या ही करनी होगी।"

अपने विचारो के माध्यम से एक श्रमनिष्ठ शोषण विहीन अहिंसक समाज की नवरचना मे सलग्न गांधी-युग के ऐसे तेजस्वी पुंज के प्रति मैं अपना विनम्र प्रणाम निवेदन करता हू।

उनके विशेष गुण

अखिल विनय

□□

किसी साहित्यिक को दो बार 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' मिला, उनमे हमारे मित्र यशपाल जैन भी हैं, जिन्होने पहली सितम्बर को जीवन के बहत्तर वर्ष पूरे करके ७३वें वर्ष मे प्रवेश किया।

बात १९४६ की है, जब मैं स्वर्गीय प हरिशकर शर्मा के पास, आगरा से प्रकाशित 'कर्मयोग' पत्रिका मे कार्य करता था और वहा से पत्रकार प्रवर प बनारसीदासजी चतुर्वेदी से मिलने कुण्डेश्वर (टीकमगढ)गया था। वही यशपालजी 'मधुकर' के सहायक सम्पादक थे, और उनसे मेरा प्रथम परिचय हुआ। १९६४ मे जब मैं करीब डेढ वर्ष के लिए यूरोप गया, तब उन्होने 'पासपोर्ट' बनवाने मे मेरी बडी मदद की थी।

हिन्दी मे स्व राहुल साकृत्यायन तथा डा रघुवीर के बाद यशपालजी तीसरे पर्यटक हैं, जिन्होने न केवल अनेक बार अपने समूचे देश मे भ्रमण किया है, अपितु विश्व के करीब ४२ देशो की यात्रा की। और उन प्रवासो के विषय मे उन्होने विपुल साहित्य की रचना की। उन्हे उनकी 'रूस मे छियालीस दिन' पुस्तक पर ही 'सोवियत लैंड पुरस्कार' मिला था। सन् १९८१ मे वे जैन धर्म तथा गाधी विचारधारा के प्रतिनिधि के रूप मे जापान गए थे और उन्होने टोकियो मे 'विश्व शाति सम्मेलन' मे भाग लिया।

यशपालजी ने १९३० से लिखना आरम्भ किया और तबसे उनका लेखन-काय निरन्तर चलता रहा है। उनके कुल मिलाकर दस कहानी-सग्रह, दो जीवनिया, एक रूपक सग्रह, तीन संस्मरण सग्रह, दस यात्रा-पुस्तके, तीन अनूदित उपन्यास और लगभग २५० सकलित तथा सम्पादित ग्रन्थ और पुस्तके हैं। महात्मा गाधी और प जवाहरलाल नेहरू आदि की अनेक पुस्तको का उन्होने रूपान्तर किया है।

यशपालजी से प्रथम परिचय एक पत्रकार के रूप मे हुआ। कुण्डेश्वर (टीकमगढ) मे तब से वे अनेक पत्रो का सम्पादन कर चुके है। १९४६ के बाद 'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा प्रकाशित मासिक-पत्र

'जीवन साहित्य' का सम्पादन कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के विजयगढ नामक कस्बे में ७२ साल पहले उनका जन्म हुआ, बी ए (१९३५) और एल-एल बी (१९३७) इलाहाबाद विश्वविद्यालय से किया। लेखन मे रुचि विद्यार्थी जीवन से ही रही। पढाई पूरी करके सीधे लेखन और पत्रकारिता के क्षेत्र मे ही वे आ गए।

धवल धोती खादी की और ऊपर खादी का ही कुर्ता, यही उनका सादा लिबास है। उनसे कितनी ही बार मिला हू। हर बार वही आत्मीयता, उसी सौजन्यता के दर्शन हुए। १९४९ मे अपनी शादी के बाद, जब मैं अपनी पत्नी के साथ यशपालजी के घर (७/८ दरियागज, नई दिल्ली) गया था, तो उनके भाई वीरेन्द्र प्रभाकर (जिन्हे इस वर्ष समाज-सेवो के नाते 'पद्मश्री' की उपाधि मिली है।) हमारा चित्र लिया था। यशपालजी की सुपुत्री अन्नदा की भी अनूदित कृतिया हिन्दी मे छपी है।

काका साहेब कालेलकर ने यशपालजी की कर्मठता और कर्तृत्व शक्ति, सरलता, सादगी की भूरि-भूरि प्रशसा की थी। यशपालजी ने 'काकासाहेब कालेलकर अभिनन्दन ग्रन्थ', 'सस्कृति के परिव्राजक' तथा 'समन्वय के साधक' का सम्पादन किया और आज भी उनकी मासिक-पत्रिका 'मगल प्रभात' के सम्पादक हैं। सबसे पहले उन्होने 'नाथूराम प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' (१९४६) का सपादन किया, जिसने हिन्दी जगत मे धम मचा दी, और आज इतने सालो बाद भी वह ग्रन्थ अनेक दृष्टियो से अनूठा है।

यशपालजी चलते-फिरते विश्वकोश है। किसी भी विषय पर उनसे चर्चा करे, आपको अद्यतन जानकारी मिल जाएगी। वे अनेक सस्थाओ से सम्बद्ध है। हिन्दी भवन के वे सस्थापक सदस्य है। भारतीय साहित्य परिषद् (दिल्ली) तथा अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष रहे है, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और चित्र-कला सगम के उपाध्यक्ष है। नेशनल बुक ट्रस्ट के ट्रस्टी है। नेशनल बुक डवलपमेट के सदस्य है। प्रमुख गाधी-वादी प्रकाशन सस्था 'सस्ता साहित्य मण्डल' से वे १९३७ से १९४० तक, और सन् १९४६ से अब तक सम्बद्ध है और अनेक वर्षों से इस सस्था के मन्त्री है।

उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा, यशपालजी को 'साहित्य वारिधि' की उपाधि और मेरठ की 'वीर निर्माण भारती' द्वारा उन्हे 'विद्या वारिधि' की उपाधि प्रदान की गयी। यशपालजी के विचार अत्यन्त स्पष्ट और लेखन-शैली सरल और सुबोध है। उनकी भाषा म अपना प्रवाह और प्रभाव है, थोडे से शब्दो मे पाठको के सम्मुख सजीव चित्र प्रस्तुत करना उनकी अपनी विशिष्टता है। उनकी अनेक रचनाओ के अन्य भारतीय भाषाओ म अनुवाद हुए है। वे समाज मे मानवीय मूल्यो को प्रतिष्ठित करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है। अपन उदात्त विचारो और साहित्यिक लेखन के कारण वे देश-विदेश मे अत्यन्त लोकप्रिय है। ऐसे साहित्यकार पर हम गव है।

सबके प्यारे

महेन्द्र कुमार 'मानव'

□□

मेरा परिचय यशपालजी से उस समय हुआ जब वे श्रद्धेय बनारसीदासजी चतुर्वेदी के साथ कुण्डेश्वर मे 'मधुकर' का सम्पादन कर रहे थे। उन दिनो मै छतरपुर मे पढ़ता था। श्री रामदास गुप्त ने कुण्डेश्वर से लौटकर मुझे बताया कि दादाजी ने उनको कितने प्रेम और सम्मान के साथ अतिथि बनाया था। मेरे मन मे कुडेश्वर जाने की इच्छा पहले से ही थी। मित्र से आश्वासन पाकर मैं भी कुडेश्वर जा पहुचा। वहां दादाजी से पितृवत् स्नेह और भाई यशपालजी से अग्रज का स्नेह पाकर मे गद्‌गद् हो गया। फिर यशपालजी दिल्ली चले गए। बाद मे जब-जब दादाजी से भेट हुई, दादाजी बड़े फख्र से यशपालजी और जगदीशजी का जिक्र करते थे। इनके बारे मे जिक्र करते वक्त दादाजी के चेहरे पर ठीक उसी प्रकार का गर्व का भाव होता, जिस प्रकार का भाव एक पिता के चेहरे पर अपने योग्य पुत्र के गुणो का बखान करते वक्त होता है।

दिल्ली मे भाई यशपालजी ने 'जीवन साहित्य' का सम्पादन किया और आज भी कर रहे हैं। 'सस्ता साहित्य मण्डल' के हितो मे उन्होने अपना हित समाहित कर दिया है। सम्पादन, प्रूफ रीडिग, लेखन वे जिस लगन के साथ करते है, उसे देखकर मुझे आश्चर्य होता है। वे कलम की मजदूरी करते-करते कलम के धनी बन गए हैं। किताबी कीडा से उठकर वे विद्यारस के मधुकर बन गए हैं। ईमानदारी पूर्ण मेहनत के बल पर क्या कुछ पाया जा सकता है, इसके वे ज्वलत प्रमाण हैं। फिर उन्होने रूस की यात्रा की। रूस से उन्होने यूरोप के देशो की यात्रा की।

दिल्ली मे रहते हुए भी वे कुडेश्वर और अहार को नही भूले है। कुडेश्वर उनकी प्रथम पाठशाला थी। किसी भी व्यक्ति को अपनी प्रथम पाठशाला और प्रथम मार्ग-दर्शक विस्मृत नही होते। दादाजी की छत्रच्छाया मे रहकर यशपालजी ने कुडेश्वर मे अनेक साहित्यिक यज्ञ किए। 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' शुरू से आखिर तक तैयार किया।

केरल मे कालटी नामक स्थान पर सर्वोदय सम्मेलन हुआ था। हम लोग सम्मेलन मे मिले। उसके बाद मैंने उनके और उनकी टोली के साथ सारे दक्षिण भारत की यात्रा की। वह मेरे जीवन का एक सुखद अनुभव है, जिसे मैंने १२ निबन्धो मे लिपिबद्ध किया है।

जीवन मे यशपालजी ने जो कुछ पाया है, उसे देखकर मै उन पर रश्क करता हू।

सुलझे हुए व्यक्ति

सरला भटनागर

□□

श्री यशपाल जैन ने जो छाप मेरे ऊपर छोडी है, उसका मैं वर्णन नही कर सकती। श्वेत केशो से सुशोभित, गौरवर्णीय मुखारबिन्द, गम्भीर तथा शान्त आखे अनायास ही एकाग्र कर लेती है। उनका सहज और धीरे-धीरे बोलना, साहित्यिक गरिमा की निशानी है।

'सस्ता साहित्य मण्डल' को विभूति श्री यशपाल जैन से मेरी प्रथम बार टेलीफोन पर ही बात हुई थी। मेरे हाथ फोन को कसकर पकडे थे, मन मे दुविधा थी, क्या जवाब मिलेगा। पर 'हलो' के उपरान्त जैसे ही मैंने अपना परिचय दिया और अपना अभीष्ट बतलाया तो कहने लगे, "कहिए, कहिए, क्या परामर्श चाहिए आपको ? ' और मिनटो मे ही मेरी समस्या सुलझा दी। कुछ लोग बडे अधिकार पूर्ण ढग से सहज ही अपनी बात समझा देते है। उन्ही मे से श्री यशपाल जैन भी है।

इसके बाद एक और रोचक घटना घटी, जिसे मै भुला नही पाती। उपराष्ट्रपति श्री गोपाल स्वरूप पाठक के जन्मदिवस समारोह मे मैं, श्रीमती जैन तथा श्री यशपालजी कुछ क्षणो को साथ-साथ हो गए। कुछ देर कविता आदि की बात चलती रही। अनायास ही श्रीमती जैन कहने लगी, "आप तो सात देवरो की भाभी हैं। यह भी आपके देवर है।" मेरा मन शायद यह स्वीकारने को तैयार न था। उन्होने फौरन ही 'नही' कह कर मेरी भावनाओ को बल दिया। इसके बाद जब कभी मेरा उनका सामना हुआ तो बडे स्नेहपूर्ण ढग से पीठ थपथपाकर ही उन्होने बात की।

एक बार मैंने उनके घर जाने का वायदा किया। श्रीमती जैन ने काफी अनुरोध से मुझे बुलाया था, पर मैं जा न सकी। अगली बार जब वह मुझ मिली, तो मैं अपनी स्थिति साफ करने लगी, इस पर श्री जैन ने कहा, "कोई बात नही, अक्सर ऐसा हो जाया करता है।"

मेरे विचार से श्री यशपाल जैन अत्यन्त सुलझे हुए व्यक्ति है। उनका हमारे मध्य पूण सौ वष भी रहना कम होगा।

सेवा के लिए समर्पित

महेन्द्र कुलश्रेष्ठ

□□

श्री यशपाल जैन १ सितम्बर को अपने कर्मठ जीवन के ७२ वर्ष पूरे कर रहे हैं, यह हम सबके लिए बडी प्रसन्नता की बात है। मेरे लिए वे सम्बन्धी और बुजुर्ग हैं,—उनकी पत्नी मेरी मौसी हैं—इसलिए एक सीमा से अधिक न उनकी मैं आलोचना कर सकता हू, न ही प्रशसा। उनके लिए मेरे मन मे एक सहज आदर और श्रद्धा का भाव है। यद्यपि कई बार मैं उनसे झिक-झिक भी कर लेता हू, विशेषकर उस समय जब मैं और मौसी मिलकर उनसे किसी बात पर बहस करते हैं। उस समय हम सब प्राय खा-पीकर निश्चित इस तरह को चटपटी गपबाजी के मूड मे रहते हैं।

हम छोटे ही थे तब उनके इस अन्तर्जातीय विवाह के समाचार ने हम सबको बहुत उत्तेजित कर दिया था। मुझे याद है, यह घटना उस समय बडी क्रातिकारी समझी गई थी, शायद अब भी ऐसी घटनाए क्रातिकारी ही समझी जायेगी, क्योकि जाति-पाति के मामले मे समाज अभी भी वही ही है, जरा भी आगे नही बढ़ा है। लेकिन, कोई बुरा न माने मैं इसका पूरा श्रेय अपनी मौसी को ही देना चाहूगा।

श्री यशपालजी राष्ट्र के उन कार्यकर्ताओ म से हैं, जिन्होने सेवा का एक क्षेत्र चुन लिया और आजीवन उसी मे लगे हैं। वे चाहते तो कुछ ऊपर-नीचे करके विशेष लाभ उठा सकते थे, परतु वे जहा हैं, वही सतुष्ट हैं। मुझे पता है, उन्हे कई बार अच्छे प्रस्ताव भी मिले, परतु उन्होने इनको सदा अस्वीकार ही किया। इस बात का मेरे मन मे आदर रहा—यद्यपि कई बार मुझे यह गलत भी लगा और मैंने उन्हे समझाने की चेष्टा की कि आपकी सस्था यदि निर्जीव हो गई है तो आपको उससे बधे नही रहना चाहिए।

एक दफा मुझे भी उनसे एक पुस्तक लिखवाने की आवश्यकता पड गई—अपनी प्रकाशन सस्था के लिए। काम ज्यादा था, समय कम। परतु उन्होने तत्परता से काम कर दिया और समय से पुस्तक निकल गई।

इस पुनीत अवसर पर मैं उनकी दीर्घायु की कामना करता हू।

धवल वेश, उज्ज्वल आकृति, निर्मल हृदय

रामप्रकाश अग्रवाल

□□

भाई यशपालजी बहत्तर वर्ष पूरे कर प्रौढ़ आयु के शिखर पर चरण धर रहे हैं, यह प्रसन्नता की बात है।

इन वर्षों मे से प्रत्येक वर्ष की गागर कर्म के रस से भरपूर है। इस शैशव को जीवन की पहली पाठ-

शाला मे कर्म की बारहखड़ी बड़ी कुशलता से रटाई होगी, अन्यथा कर्म-कौशल का यह कल्पतरु इतना पुष्पित और पल्लवित कैसे होता ! आज, जब भाई बहत्तर वर्ष पूरे करने जा रहे हैं, तो चौंक कर उनकी तरफ देखता हू। लगता है, पहली बार देख रहा हू। अब तक तो ठीक से उन्हे देख भी नही पाया। वे इतने सहज और सुगम हैं कि अधिक देखने और परखने की आवश्यकता ही नही प्रतीत होती।

मैंने, अपने पिछले ३०-३५ वर्ष के परिचय मे उन्हे कभी चिन्तित, अधीर और अधिक गभीर भी नही देखा। उनकी गभीरता सहज और प्राकृतिक है। भीतर से गभीर होते हुए भी, बाहर से कोई आतक या जटिलता प्रतीत नही होती। उन्हे अनेक वार बोलते सुना, बातचीत मे सुना और भोजन की मेज पर सुना, सदा एक ही भाषा सुनने मे आई। उसे चाहे राष्ट्र भाषा कहे, चाहे मानक हिन्दी और चाहे भारत-भारती, वे भिन्न-भिन्न स्तरो की भाषा बोलते ही नही, क्योकि उनके जीवन का स्तर एक ही है। यही उनकी समत्व योग की सिद्धि है।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के साथ उनका जीवन एकाकार रहा है, जिस प्रकार 'साबरमती आश्रम' के साथ बापू का, 'शान्ति निकेतन' के साथ कविगुरु का और 'नागरी प्रचारिणी सभा, काशी' के साथ श्यामसुन्दर दास का था। 'मण्डल' का साहित्य मूल्य मे सस्ता रखकर भी, सन्देश मे अत्यन्त मूल्यवान बनाये रखना उनकी विचार-प्रसार की साधना है। बापू का सदेश, बापू के अनुयायियो का सन्देश और वर्तमान राष्ट्रीय जीवन का सन्देश शिक्षित साक्षर जनता के बीच सतत पहुचाते रहने मे, स्वाध्याय-चिन्तन-मनन का स्तर बनाये रखने मे और 'उज्ज्वल, स्वस्थ और मगल नागरिकता के प्रतिमान स्थापित करने मे 'मण्डल' को जो सफलता और लोकप्रियता प्राप्त हुई है, वह भाई यशपालजी के जीवन का प्रतीफलन ही तो है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' कोई सस्थान नही, सौहार्द के सूत्र मे बधा एक कुटुम्ब ही प्रतीत होता है।

उनका जीवन सफल परिव्राजक का जीवन रहा है। एक ओर 'चरैवेति' उनके जीवन का मत्र रहा है दूसरी ओर 'सगच्छध्वम् सवध्वम्' भी। वे साथ मिल कर चलना और साथ मिल कर बोलना जानते है। इस दृष्टि से उनकी विदेश-यात्राए अत्यन्त सफल रही है। प्रवासी भारतीय हो, भारतीय हो अथवा विदेशो के भाई हो सभी के बीच उन्होने भारतीय सस्कृति के वे स्वर बिखेरे हैं, जो एक देश के न होकर विश्व-मानवता के स्वर हैं। उन्होने भारतीय सस्कृति का समन्वय-सन्देश देश और विदेशो की भूमि पर समान भाव से पहुचाया है।

परिवार, स्वजन, सस्थान और समाज के बीच उन्हे एक ही गति से विचरण करते हुए मैंने देखा है। उनकी आसक्ति और अनासक्ति इन सभी परिधियो मे एक समान रही है। वे सभी के प्रतीत होते है, सभी के प्रति समर्पित, लेकिन सभी से मुक्त। उनका प्रत्येक क्षण प्रसन्नता का क्षण प्रतीत होता है। सहयोग, सेवा और सम्वेदना जैसे कि उनके श्वासो से प्रवाहित होते हैं। उनकी दिनचर्या किसी सभा की सुनियोजित कार्य-वाही के समान अनुशासित प्रतीत होती है। कुशल कोषाध्यक्ष के समान क्षण की एक-एक पाई का हिसाब रखना वे जानते है। इस जीवन-घट की एक बूद भी बेकार नही जाती, सीधी शिव के शीश पर ही पहुचती है।

जीवन की सफलता अन्तरग और बहिरग के एकीकरण मे है। फूल की गध उसके हृदय की सात्विकता का उद्गार होती है, वैश्वानर की लपट उसके तेजस् का प्रकाशन करती है और कवि की अलकृत वाणी उसके आनन्द की ही अभिव्यक्ति होती है। यशपालजी के जीवन मे भी ऐसी ही अन्तर्बाह्य की योग सिद्धि मैंने पाई है। वे स्वच्छ खादी और सादी चप्पल के वेश मे जितने धवल दीखते हैं, अपनी स्मितमयी वाणी मे भी उतने ही उज्ज्वल लगते है, और यह धवलता-उज्ज्वलता उनके निश्छल स्नेहिल मन का ही प्रतिबिम्ब है। विराग और राग का सुन्दर सगम उनके जीवन मे दिखाई पडता है।

उनका इर्द-गिर्द इसी प्रकार उनके व्यक्तित्व से आलोकित होता चले। उनके प्रत्येक दृष्टिपात मे मार्गनिर्देश हो, प्रत्येक श्वास मे स्फूर्ति हो और प्रत्येक बचन मे आशा का सकेत हो, यही मेरी कामना है।

तपः पूत साहित्यकार

उमाशंकर शुक्ल

□□

श्री यशपालजी जैन का और मेरा सम्बन्ध गत बयालीस वर्षों का है। वे शुरू-शुरू मे जब वर्धा आये थे तो हमने उनके सम्मान मे अपने यहा एक साहित्यिक गोष्ठी रखी थी। उस समय से ही हमारा उनका सम्बन्ध बढ गया। उनका मेरे ऊपर छोटे भाई की तरह प्यार रहा, यह मेरा सद्‌भाग्य है।

श्री यशपालजी ने हिन्दी साहित्य की वृद्धि के लिए जो परिश्रम और साधना की है, वह प्रशसनीय है। उनका काम करने का अपना ढग है। हर विषय पर वे बडी कुशलता के साथ लिखते हैं। नये-नये मित्र बनाना उनकी विशेषता है। उनकी सरस वाणी से मैं बहुत प्रभावित हू। वे जितने सुन्दर ढग से बोलते हैं, उतनी ही सुन्दरता और सरलता के साथ वे अपनी लेखनी से अपने भावो को उडेलते हैं।

उन्होने बहत्तर वर्ष पूरे कर लिये, इसका मतलब यह नही कि अब आराम करेंगे, बल्कि उससे दुगना काम करे, ऐसी हम भगवान से प्रार्थना करते हैं। उनकी वर्षगाठ के अवसर पर मैं उनको श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हू। भगवान उनको अधिक दिनो तक हिन्दो की सेवा करने का मौका दे, जिससे हिन्दी-साहित्य का भण्डार और भी समृद्ध और सम्पन्न बने।

सत्साहित्य के प्राणवन्त लेखक

दुर्गाशकर त्रिवेदी

□□

साहित्य की नारेबाजी, वादो की हगामेबाजी और साहित्यिक राजनीति की अडगेबाजी के बीच एक ऐसी अनेकता मे एकता के पोषक साहित्यसेवी श्री यशपाल जैन हैं। सत् साहित्य के प्राणवन्त लेखक के रूप मे श्री जैन की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बरसो से वे मूक साधक के रूप मे निरन्तर चुपचाप लिखते जा रहे हैं। कभी भी उन्हे मैंने शिकवा-शिकायत करते नही देखा है। निरन्तर साहित्य साधना उनका दैनन्दिन कर्म है, और कर्म भी निष्काम कर्म। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे वे निरन्तर लिखते रहे हैं। 'जीवन साहित्य' की उनकी उच्चस्तरीय सम्पादकीय टिप्पणिया उनके स्वस्थ पत्रकार का एक और प्राजल पक्ष उजागर करती है,

तो उनकी घुमक्कड वृत्ति ने 'यात्रा साहित्य' मे कई महत्वपूर्ण कृतियो को जोडा है। कहा जाता है कि महा-पडित राहुल साकृत्यायन के बाद हिन्दी मे ऐसा कोई घुमक्कड साहित्यकार नही है, जिसने श्री यशपाल जैन के बराबर देश-विदेश की यात्रा की हो।

उत्तर प्रदेश के विजयगढ़ (जिला अलीगढ़) नामक कस्बे मे १ सितम्बर १६१२ मे जन्मे यशपालजी ने १६३५ मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 'स्नातक' की उपाधि ली और १६३७ मे एल-एल बी करके पत्र-कारिता और साहित्य सृजन को जीवन का लक्ष्य बनाया, क्योकि इन दोनो मे ही आपका रुझान बचपन से ही था, जो बराबर चल रहा था। १६३८ मे उन्होने दिल्ली मे 'हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना की और दो वर्ष तक उसे व्यवस्थित रूप से सचालित करते रहे। इसी समय 'जीवन सुधा' नामक मासिक पत्रिका का भी सम्पादन किया। इस पत्रिका का एक विशाल विशेषाक 'लेखकाक' भी सम्पादित किया, जो अपनी तरह का एक विशिष्ट अक था, जिसमे लेखको का मूल्याकन, कृतित्व और व्यक्तित्व आदि व्यवस्थित रूप से पाठको के समक्ष रखा गया था। यह विशेषाक साहित्य जगत मे पर्याप्त चर्चित रहा।

१६४० मे प्रख्यात पत्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर वह 'टीकमगढ' (म प्र) मे चले गए, जहा उन्होने लगभग ६ वर्ष तक 'मधुकर' पाक्षिक का सम्पादन किया। इसी समय वह बुन्देलखण्ड के लोक-साहित्य अन्वेषण और जनपदीय साहित्य के सवर्धन मे लगे रहे।

१६४६ मे पुन दिल्ली आ गए और 'सस्ता साहित्य मण्डल' नामक प्रकाशन सस्थान के सचालक-मण्डल मे रहकर स्वस्थ-प्रेरक साहित्य के प्रकाशन मे अपनी महत्वपूण भूमिका अदा कर रहे है। दिल्ली की अनेक साहित्यिक तथा समाज-सेवी सस्थाओ की स्थापना और सचालन मे इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। हिन्दी भवन, चित्रकला सगम, दिल्ली राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भारत बर्मा साहित्य कला परिषद आदि मे उनका आत्मीयता-पूण सम्बन्ध बराबर बना हुआ है।

हिन्दी के यात्रा साहित्य की श्रीवृद्धि मे यशपालजी ने महत्वपूर्ण कृतिया प्रदान की है, क्योकि आप स्वय पर्यटन के शौकीन हैं। स्वदेश की अनेक यात्राए कर चुके है तथा यूरोप की दो-बार, दक्षिणपूव एशिया की दो बार, नेपाल की दो बार तथा अफ्रीका, मारीशस, न्यूजीलैन्ड, फीजी, आस्ट्रेलिया आदि देशो की भी यात्राए कर चुके है। उजबेकिस्तान द्वारा आमत्रित शिष्ट-मण्डल का उन्हाने नेतृत्व किया था। 'रूस मे छियालीस दिन', 'पडोसी देशो मे', 'उत्तराखण्ड के पथ पर', 'जय अमरनाथ', अजन्ता-एलोरा', 'कोणाक', 'जगन्नाथपुरी' आदि उनके यात्रा-वृत्तान्तो की प्रकाशित कृतिया है। 'दक्षिण के अचल मे', 'सागर के पार', 'गगा जमुना के उद्गम पर', 'यूरोप की परिक्रमा' आदि यात्रावृत्तान्त पुस्तक रूप मे आने को है। उनकी महत्वपूण कृति 'रूस मे छयालीस दिन' पर नेहरू-सोवियत लैण्ड पुरस्कार भी मिल चुका है। वही पुरस्कार पुन उनकी 'सेतु-निर्माता' पुस्तक पर मिला है।

यात्रा साहित्य के अलावा भी उनकी कई सृजनात्मक साहित्यिक पुस्तके पाठको के हाथो मे है, जिनमे ६ कहानी सग्रह, ५-६ अनूदित ग्रथ, ३ जीवनिया, एक रूपक सग्रह तथा अहिंसा की कहानी, दिव्य जीवन की झाकिया, हारिए न हिम्मत, सच्ची दौलत, अमर ज्योति आदि कृतिया हैं।

साहित्य सेवियो की सेवाओ को अभिनन्दित करने मे भी उन्होने महत्वपूण योग दिया है। प्रेमी अभि-नदन ग्रथ, वर्णी अभिनन्दन ग्रथ, गाधी व्यक्तित्व और विचार, गाधी सस्मरण और विचार, सस्कृति के परिव्राजक, विनोबा व्यक्तित्व और विचार, अजात शत्रु, डा जाकिर हुसैन आदि ग्रथो के सम्पादन मे उनकी विशिष्ट सेवाओ के लिए हिन्दी साहित्य जगत उनका चिर-ऋणी रहेगा।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे उनके चिन्तन-प्रधान लेख बराबर आते रहते हैं। रेडियो और टेलीविजन

को भी उन्होंने अपनी साहित्यिक सेवाओ से लाभान्वित किया है।

मेरे एक प्रश्न के उत्तर मे श्री जैन ने अपनी हार्दिक आकांक्षा बतलाते हुए कहा था, "त्रिवेदी ! मेरी एक ही आकांक्षा है कि साहित्य और सस्कृति की जड़ें राष्ट्रीय तथा अतर्राष्ट्रीय जीवन में गहरी तरह से जमे। भाषा, राष्ट्रीयता, धर्म, आचार-विचार आदि के भेद-भाव के रहते हुए भी मानव-जाति एक और नेक बने। हम भावनात्मक एकता के लिए सही अर्थो मे समर्पित हो, यही मेरी आकाक्षा है।"

सचमुच ही श्री जैन ने मानव-मूल्यो की पुन प्रतिष्ठा के लिए अपनी लेखनी और वाणी को समर्पित किया है। अहिंसक नवरचना के मासिक 'जीवन साहित्य' को वे इसी दृष्टि से सपादित करते हैं और पाठको की स्वस्थ परिष्कृत रुचि बनाये रखने के लिए लालायित रहते हैं।

गाधीवादी मूल्यो और आदर्शो को उन्होने काफी नजदीक से समझा और जीवन मे व्यवहृत भी किया है। उनकी मान्यता है कि मानवीय मूल्यो से बढ कर विश्व मे और कुछ भी नही है। विविधता मे एकता के सिद्धान्त के वह पोषक हैं और अपनी कृतियो के माध्यम से उन्होने यह सन्देश बराबर दिया है। विभिन्न देशो की साहित्यिक और सास्कृतिक गतिविधियो का उन्होने बड़े निकट से अध्ययन किया है। देश मे कई उभरते साहित्यकारो को दिशाबोध करवाने और प्रेरणा देने मे भी वह पीछे नही रहे हैं। निरन्तर कर्मरत रहना उनकी एक ऐसी विशेषता है, जो सहज ही उन्हे 'स्थितप्रज्ञ' की पक्ति मे खडा कर देती है।

१ सितम्बर को मानव मूल्यो को सहज वृत्ति से समर्पित यह साहित्य-साधक ७३वें वर्ष मे प्रवेश कर रहा है। इस मगलमय अवसर पर हम उनके दीर्घजीवी होने के लिए 'जीवेम शरद शतम्' की कामना रखते हुए उनके प्रति अपनी गहनतम प्रेममयी सद्‌भावना समर्पित करते हैं।

आशा है, स्वस्थ मानव-मूल्यो के लिए उनका सघर्षशील साहित्य-साधक और भी अधिक क्षमता से हीनतम मूल्यो के विरुद्ध उसी प्रकार लोहा लेता रहेगा।

पुण्य कामना

आसुतोष मजूमदार

□□

सरस्वती सेवा मे दत्तचित्त यशस्वी लेखक यशपालजी ७२ वर्ष पूरे कर रहे हैं। इससे परम सन्तोष हो रहा है और हृदय उल्लसित हो उठा है। मुझे उनके आध्यात्मिक पक्ष की झाकी समय-समय पर मिलती रही है। उनकी मधुरभाषिता बडी लोकप्रिय है और इस विशेष गुण के कारण उनका यश-सौरभ दिग्दिगन्त मे विस्तृत हुआ है।

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि' के वह प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। मातृभूमि और मातृभाषा के उन्नयन के लिए उन्होंने क्या नही किया ? अपने देशाटन और विदेश-यात्रा के अवसरो पर भी उन्होंने अपनी भूमि और भाषा को हृदय-पटल के सर्वोन्नत स्तर पर आसीन रखा।

'सस्ता साहित्य मण्डल' के प्रमुख अधिकारी के गरिमामय उत्तरदायित्व का निर्वाह जिस सफलता के साथ वह करते रहे हैं और कर रहे हैं, उसे उनके सुहृद वर्ग भली प्रकार जानते हैं। ऐसे सुकृतमय व्यक्ति दीर्घायु हो, यह पुण्य कामना सभी के अन्तस्तल से निकलती है।

श्री यशपालजी सुख और स्वास्थ्य का अनुभव करते हुए परमायु प्राप्त करे, यही मेरी प्रभु से प्रार्थना है।

मेरे आइने में वह

सत्यप्रकाश 'मिलिद

□□

क्या भाई यशपालजी एक सितम्बर को बहत्तर वर्ष के हो जायेगे ? मुझे तो विश्वास ही नही होता, क्योकि उनकी चुस्ती, क्रियाशीलता और तरोताजगी को देखकर मन यह स्वीकारता ही नही कि वे इतनी जल्दी ही बहत्तर की लक्ष्मण रेखा को लाघ सकेगे।

प्रारभ से ही मेरी अहिंसात्मक सेनानियो और हिन्दी सेवियो के प्रति अगाध आस्था रही है और इसी से मैं गाधीवादी विचारधारा के क्रातिकारो और साहित्यकारो के प्रति अधिकाधिक आकृष्ट होता रहा हू। ऐसे व्यक्तियो मे मेरे मन मे भाई यशपालजी जैन का स्थान बहुत ऊचा है।

कोई तीस बरस हुए होगे, मैं एक दिन नई दिल्ली स्थित 'सस्ता साहित्य मडल' के कार्यालय म घुस गया था। मुझे एक मेज के सहारे एक कोने मे बैठे एक सौम्य, सुस्थिर और शान्त व्यक्ति के दशनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बदन पर खादी का कुर्ता और धोती, पैरो मे चप्पल पहने और आखो पर चश्मा लगाए जिन महोदय से मेरा परिचय हुआ वही थे भाई यशपाल जैन, और आज तीस-पैतीस बरस बाद तो मैं यह कहने का पूण अधिकार रखता हू कि भाई यशपालजी का मुझ पर असीम स्नेह है और हम दोनो एक-दूसरे के बहुत ही निकट है। साहित्य के क्षेत्र मे वे निश्चय ही मेरे अग्रणी हैं तथा वैचारिक दृष्टि से विशुद्ध गाधीवादी होने के कारण वे मेरे जीवन को सदा प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं।

अलीगढ और बुलन्दशहर दोनो ही जिले एक-दूसरे से बिल्कुल सटे हुए हैं और विजयगढ़ तथा अनूपशहर मे कोई खास फासला भी नही है। फिर भाई जैनेन्द्रजी और अक्षयजी दोनो की ही मुझपर वर्षों से कृपा रही है। इस कारण भी यशपालजी के निकट सम्पर्क मे आने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हो सका है। याद पड़ता है

कि मेरा और उनका निकटतर सम्बन्ध हुआ उस समय जब कि मंडल के आदेश से मुझे 'श्रमदान' पर एक पुस्तिका लिखकर देनी थी। उसी विषय मे उनसे कई बार मिलना पड़ा था और अब तो 'चित्रकला संगम' और 'यशपाल जैन' मेरे विचार से पर्यायवाची से हो गए हैं। राजधानी की शायद ही ऐसी कोई साहित्यिक गोष्ठी या सांस्कृतिक गतिविधि हो, जिसमे भाई यशपालजी न हो और तभी सहज ही उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप हर उस व्यक्ति पर पड जाती है जो उनके सम्पर्क मे आता है।

बहुत बरस हुए, दरियागज-स्थित उनके निवास-स्थान पर एक दिन सुबह-ही-सुबह पहुच गया। देखा कि जिस कमरे मे वे बैठे थे, वह शायद बहुत बड़ा पुस्तकालय था। दीवारों में किताबें-ही-किताबें, जिसे देख कर सबसे पहले उनकी अध्ययनशीलता का इतने निकट से परिचय प्राप्त कर सका। उसके बाद तो वे चाहे अपने कार्यालय मे मिले हो या सप्रू हाउस के किसी आयोजन मे अथवा मेरे घर पर या जैनेंद्रजी के यहां, उनकी विद्वत्ता, उनके सुलझे हुए विचारो, उनके औदार्य, उनकी सृजनता, उनकी सद्वृत्ति और उनकी आनन्दमयी मुस्कान सदैव ही मुझे उनकी ओर खीचती रही है। जब भी मैं उनसे मिलता हू, मुझे तो हर बार एक विचित्र-सी आत्मीयता की उपलब्धि होती है।

वे कई बार विदेशो मे हो आए हैं। पिछली बार जब वह कनाडा, अमरीका और कैरेबियन देशो से लौटे तो उनसे मिलकर कितनी प्रसन्नता हुई, यह जानकर कि वे कनाडा मे भी भारतीय सस्कृति, हिन्दी भाषा और गाधीवादी विचारधारा को सर्वोपरि रखकर गए थे। उन्होने बताया, "सूरीनाम मे सौ से ऊपर स्कूल हिन्दी माध्यम से चलाए जाते है और वहा गाधीजी तथा भारतीय सस्कृति का बहुत रुझान है।" उनसे मिलकर इस बार मुझे ऐसा लगा कि यदि भाई यशपालजी को हिन्दी, गाधीवाद और भारतीय सस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए विश्व भर मे 'रोमिंग अम्बैसैडर' बना दिया जाए तो इस कार्य के लिए उनसे अच्छा व्यक्ति शायद ही कोई मिले।

उनके यात्रा-संस्मरणो, कहानी-सकलनो आदि की तो बात ही और है। 'जीवन-साहित्य' के जिस किसी भी अक को आप पलटकर देखे, आप पर भी यशपालजी के गहन अध्ययन का, भाषा के माधुर्य का, शब्दो की अद्भुत पकड का और कुशल सम्पादन का प्रभाव पडे बिना नही रह सकता। पाठक और श्रोता दोनो ही उनकी मनमोहक शैली मे बध से जाते है।

वे निश्चय ही स्वाभिमान से लबालब भरे है पर अहम् उनको छू भी नही गया है। इसी से हर छोटे और बडे, नये और पुराने के प्रति उनके हृदय मे अजस्र उदारता और स्नेह भरा पड़ा है।

ऐसे श्री यशपालजी शतजीवी हो, यही मेरी हार्दिकतम कामना है।

सहज मानव

रामप्रताप मिश्र

□□

भाई यशपालजी के सम्बन्ध मे कुछ लिखना इसलिए कठिन है कि वह साहित्यकार, समाज-सेवी, राष्ट्र-सेवी के अतिरिक्त सहज मानव अधिक हैं। सहज मानव से मेरा अभिप्राय है, जो मनसा, वाचा, कर्मणा बिना किसी बनावट और दिखावट के मानवता का पुजारी हो। भाई यशपालजी ने कई पत्रो का सम्पादन किया है और आज भी 'जीवन साहित्य' नामक मासिक का सम्पादन कर रहे है। दर्जनो पुस्तके लिखी हैं, उनसे उन्हे पुरस्कार मिला, सम्मान मिला। वह साहित्यकार हैं या नही, यह साहित्य-मर्मज्ञ जानें, पर वह मानव हैं, यह सभी जानते हैं। अथर्ववेद मे एक जगह आया है 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनो।

प्रश्न उठता है कि परमेश्वर की इस सुन्दर रचना को देखने के बाद भी वेद के ऋषि ने 'मनुर्भव' क्यो कहा? ऋषि की भावना जो भी रही हो किन्तु आज साधारण दृष्टि से चारो ओर आख फाडकर देखें तो ससार मे मनुष्य का स्वरूप तो दिखाई देता है, पर वह मानवता से अछूता और मानवता की खिल्ली उडाता दिखाई देता है।

भाई यशपालजी को मिलने और उन्हे जानने के बाद लगता है, वह सही अर्थों मे मानव हैं। उनका व्यक्तिगत जीवन इतना सादा और सरल है कि उतना निभा पाना सबके लिए कठिन है। किसी की बीमारी अथवा आर्थिक कठिनाई को सुनकर वह विचलित हो जाते है। लगता है, जैसे वह स्वय उस कठिनाई मे डूब गए हैं। व्यक्ति विशेष को और कुछ नही तो पत्र लिखकर उसमे आत्म-विश्वास पैदा करते रहते है। अहकार-उन्हे छू तक नही गया है। मृदुभाषी तो हैं ही, पर सत्य को स्पष्ट कहने पर भी कम लोग मृदुभाषी रह पाते हैं। यशपालजी मे यह विशेष गुण है कि वह स्पष्टवादी होते हुए भी मृदु बने रहते है और सुनने वाले के मन को कडवा नही होने देते। लगभग तीस-पैंतीस वर्षों के सम्पर्क मे मैंने उन्हे जोर से बोलते नही सुना। अपनी नाराजगी को भी मुस्कराते हुए प्रकट करते हैं। इन पक्तियो के लेखक से किसी बात पर नाराज हो गए। मिला तो प्रणाम के उत्तर मे कहा, 'मैं तुमसे नाराज हू'। मेरा माथा ठनका, क्या बात हो गई? कुछ देर चुप रहे। मेरी परेशानी देखी तो खुद ही बता दिया कि यह बात है। मैंने स्थिति स्पष्ट की तो हसने लगे। बोले, "समझता तो मैं भी था, पर मुझे जो कहा गया उससे नाराज होना स्वाभाविक था।" क्या उत्तर देता! बात बता चुका था, फिर भी क्षमा मागी तो मेरी पीठ पर हाथ रखकर बोले, "क्षमा की कोई बात नही, तुमने तो गलती की ही नही, फिर नाराजगी अपनो से ही तो की जाती है। बात साफ हो गई। अब कोई बात नही है। देखो, पूछ लेने से कितना हुआ, नही तो मैं न जाने तुम्हारे बारे मे क्या-क्या सोचता रहता!"

यशपालजी मिलने वालो का इतना ध्यान रखते हैं कि कोई किसी कारणवश कुछ समय तक न मिले तो दूसरो से पूछेंगे कि क्या बात है अमुक व्यक्ति नही मिला? उसके मिलते ही बडे स्नेह-पूर्वक शिकायत करेंगे। उसकी कठिनाई को सुनकर सान्त्वना देगे और यदि उनके योग्य कोई काम हुआ तो कर देंगे।

यशपालजी अपने लेखो तथा भाषणो मे हर जगह नैतिक मूल्यो को प्रधानता देते हैं। वह कहते हैं, "मेरी एक आकाक्षा है और वह यह कि समाज और राष्ट्र की नीव इन्ही मूल्यो पर रखी जाए। यह मेरा निश्चित मत है कि यह कार्य राजनीति द्वारा कदापि सम्भव नही हो सकता, इस उद्देश्य की पूर्ति साहित्य,

सस्कृति और कला के द्वारा ही सम्भव हो सकती है। मैं चाहता हूं कि हमारे देश के प्रबुद्ध नागरिक इस विषय पर गभीरता से सोचें और निष्ठापूर्वक कदम उठाए। मैं समझता हू कि मानवीय मूल्यो से बढ़कर संसार मे और कुछ नही हैं।"

मानवता के पुजारी ऐसे सहज मानव को मेरा शत-शत प्रणाम्।

मानवीय मूल्यों के उपासक

गोविन्दसहाय वर्मा

□□

यशपालजी से जब मैं पहली बार उनके निवास-स्थान पर मिला, तब यह देखकर चकित रह गया कि हिन्दी की जो सेवा यह 'मूक साधक' कर रहा है, वह सबके द्वारा सभव नही। उनका-सा अध्यवसाय, लगन, नई प्रतिभाओ को आगे लाने की प्रवृत्ति और मानवता मे गहरी निष्ठा मुझे बहुत कम देखने को मिली है।

यशपालजी ने पहला उपन्यास लिखा, जब वह मैट्रिक मे पढते थे। उपन्यास का विषय एक वेश्या के जीवन से सम्बन्धित था। उसके जीवन के अकल्पित परिवर्तन को उन्होने दिखाया था। उस पहले उपन्यास मे ही उनका वह दृष्टिकोण था, जो आगे विकसित हुआ। इसके बाद यशपालजी कहानिया, गद्य काव्य और लेख लिखते रहे, पहली कहानी १९३४ मे प्रेमचन्दजी ने 'हस' मे छापी थी।

यशपालजी की अब तक दो-ढाई सौ कहानिया प्रकाशित हो चुकी हैं। 'जीवन सुधा' (मासिक) दिल्ली मे एक उपन्यास धारावाहिक रूप से छपा था। पहला कहानी-सग्रह 'नव प्रसून' था। फिर 'मैं मरूगा नही' निकला। 'निरतर दायरे और इसान' तथा 'मुखौटे के भीरू' निकले। यशपालजी की कहानियो की अपनी विशेषता होती है। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण हर कहानी के पीछे होता है। उन्ही के शब्दो मे—"ऐसी घटनाए जिनमे मानव मे स्पन्दनशीलता दिखाई देती है, मुझे आकर्षित करती हैं।" 'मैं मरूगा नही' मे 'प्यार' की नीव, 'अपनी अपनी चोट' और 'चोरी' कुछ ऐसी ही घटनाओ पर आधारित है। आज के वासना और उत्तेजना से भरे कहानी-साहित्य के बीच ऐसे प्रयास निश्चय ही स्तुत्य हैं।

कथा-साहित्य के बाद उनकी दूसरे प्रकार की रचनाए 'यात्रा-साहित्य' के अन्तर्गत आती हैं। इस दिशा मे उनकी 'जय अमरनाथ' पुस्तक निकल चुकी है और 'दक्षिण प्रवास के अनुभव', 'दक्षिण के अचल मे' लेखमाला के रूप मे निकल चुके हैं। 'उत्तराखण्ड के पथ पर' पुस्तक मे उन्होने अपनी बदरी-केदारनाथ की यात्रा का बडा ही रोमाचकारी चित्र दिया है। उनकी रूस तथा यूरोप के अन्य देशो की यात्रा सम्बन्धी लेख-माला 'नवभारत टाइम्स' मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई, फिर पुस्तको के रूप मे आई। इस सम्बन्ध मे

उन्होंने मुझे बतलाया—"घुमक्कड मैं बचपन से ही हू। खूब यात्रा कर चुका हू। उत्तर से कश्मीर से लेकर दक्षिण मे कन्याकुमारी तक घूम आया हू। प्रकृति मे मुझे अनोखा आनन्द आता है। प्रकृति मे भी दो चीजें ऐसी हैं जिन्होने मेरे जीवन को सबसे ज्यादा प्रभावित किया है—एक तो पर्वत और दूसरे समुद्र। हिमालय को जब देखता हू तो मुझे ऐसी गुदगुदी होती है, जैसी किसी बच्चे को होती है। मेरा मन कह उठता है कि ऐसी ऊचाई सबमे आए, ऐसी ही विशालता सबके जीवन मे हो। और समुद्र से मुझे आन्तरिक आनन्द मिलता है, उसकी गहनता मेरे मन पर अनदेखी छाप छोडती है।"

यशपालजी ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थो का सम्पादन किया है। उनमे सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' का सम्पादन है। अभिनन्दन-ग्रन्थो की नई परम्परा इसके द्वारा प्रारम्भ हुई है। जितनी स्थायी महत्व की सामग्री इस ग्रन्थ मे व्यवस्थित रूप मे एकत्र की गई है, उसके लिए हिन्दी-जगत यशपालजी का सदा कृतज्ञ रहेगा। यह उनके ढाई वर्ष के कठिन श्रम का फल है। प्रकाशन, सामग्री का सकलन, सपादन सभी उन्होने किया। इसके अतिरिक्त १९४२ के शहीद 'रमेशचन्द आय' पर एक पुस्तक तथा स्वर्गीय हेमचन्द्र के सस्मरणो का भी सपादन किया।

एक सम्पादक के रूप मे, यशपालजी का हिन्दी पत्रकारिता मे अपना स्थान है। उन्होंने अपने लिए कम किया है, दूसरो को प्रोत्साहन देना और आगे लाना उनका उद्देश्य रहा है। १९३८ से वह सपादन-कार्य करते आए हैं। 'जीवन सुधा' (दिल्ली), 'मधुकर' (टीकमगढ) और 'जीवन साहित्य' (दिल्ली) मे उन्होने कार्य किया। उनके सम्पादन की अवधि कोई छोटी अवधि नही है। इस लम्बी अवधि मे आज तक उन्होने कोई भी रचना बिना पढे नही लौटाई। किसी भी रचना मे यदि पाच प्रतिशत भी तत्व होता है, तो उसे वह सशोधित करके छापते, चाहे रचना को दूसरी बार ही लिखना क्यो न पडा हो। शिवसहाय चतुर्वेदी ने कुछ लोक कहानिया लिखी थी। वे प्रकाशन के लिए श्री नाथूरामजी प्रेमी के पास बरसो रखी रही। बाद मे यशपालजी ने उन्हे फिर से लिखा और 'मधुकर' मे छापा। उन कहानियो का रूप अब इतना बदल गया था कि प्रेमीजी उन्हे पुस्तक के रूप मे छापने के लिए तैयार हो गए।

अनुवाद-कार्य भी यशपालजी ने काफी किया है। उनके छ अनदित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। स्टीफन ज्विग के 'विराट' उपन्यास का रूपान्तर तो बहुत ही लोकप्रिय हुआ है।

मैंने यशपालजी से पूछा—"आपने खूब यात्राएं की हैं और यात्रा-सम्बन्धी कई पुस्तके लिखी हैं। आप बतायेगे कि यात्रा-सम्बन्धी पुस्तक कैसी होनी चाहिए। उनके लेखक को किन बातो का ध्यान रखना चाहिए?"

यशपालजी ने सरस भाव से कहा, "ऐसी पुस्तको मे चार बातो का ध्यान रखना चाहिए। एक तो दृश्य को तटस्थ होकर देखे। दूसरे, दूसरो को उसमे बहने दें, खुद न बहे। फिर उसमे अतिरजन न हो। तीसरे, कल्पना का भार यथार्थ पर न पडे और चौथी बात यह कि वह रोचक और मनोरजक हो।"

यशपालजी से मैं पहली बार मिला था। परन्तु पहली बार मे ही मैं उनके सौम्य व्यक्तित्व, सेवा-वृत्ति और मिलनसार स्वभाव से बडा प्रभावित हुआ। उन-जैसे परोपकार-रत और सेवाभावी व्यक्ति आज कितने है? आत्म-विज्ञापन और भाग-दौड के इस जमाने मे यशपालजी एक कोने मे बैठे हिन्दी की ठोस सेवा कर रहे हैं। उनकी अपनी कोई अभिलाषा नही है। मानवीय गुणो मे उनकी अटूट निष्ठा है।

प्रसिद्ध कथाकार, आलोचक तथा दार्शनिक

सुन्दरसिंह ध्यानी

□□

आखों पर मोटा चश्मा, उन्नत ललाट, खादी की सफेद धोती, कुर्ता तथा जवाहरकटप हिने, पैरों में साधारण चप्पल डाले, हर रोज नौ बजे के लगभग वे हमारे होटल के सामने से गुजरते थे। ये कौन हैं? यह प्रश्न कई बार मेरे मन मे उठा था। एकाएक किसी सज्जन को रास्ते मे रोक कर पूछ भी तो नही सकता था। मन की बात मन मे ही रह जाती थी। आखिर सौभाग्य का दिन भी आ गया। 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक श्री अक्षय कुमार जैन, उन दिनो हमारे होटल की दूसरी मजिल पर रहते थे। सोचा, जैनजी से ही क्यो न पूछ लू। दूसरे दिन उठते ही मैं जैनजी के पास गया। वे अखबार मे उलझे थे। मैं तपाक से पूछ बैठा, "बाबूजी, आप उन साहब को जानते है?"

उन्होने मुझसे उनके नाम के विषय मे पूछा। मैं नाम कहा से बताता! नाम ही जानता तो उनसे पूछता ही क्यो? मैंने उन्हे पूरा हुलिया बता दिया। वे हसते हुए बोले—अब समझा, शायद मामाजी! (उनका इशारा जैनेन्द्रजी की ओर था)। मैंने चट से जबाब दिया, "मैं जैनेन्द्रजी को जानता हू। वे कोई दूसरे ही सज्जन है।" कुछ सोचते हुए वे खडे हुए और एक पुस्तक उठा लाये। मुझे दिखाते हुए उन्होने एक चित्र की ओर सकेत किया। देखते ही मैं खुशी से उछल पडा, "ये ही हैं वे सज्जन।"

"अरे, यह तो श्री यशपाल जैन हैं।"

पता तो लग ही चुका था और मेरी उस दार्शनिक, आलोचक तथा प्रसिद्ध कथाकार से सडक पर भेट हो गई। मेरे शिष्टतापूवक उन्हे नमस्कार करने पर उन्होने प्यार से मेरी पीठ थपथपाई। बात-चीत करते वे आगे बढते रहे और उन्होंने इस थोडे से समय मे ही मुझसे सबकुछ पूछ लिया। अन्त मे उन्होने मुझे घर आने का निमत्रण दिया। मैं तो यह चाहता ही था।

मेरी इच्छा पूरी हो गई। मैं कई लेखकों के सपर्क मे आ चुका था। राहुल, जैनेन्द्रकुमार जैसे उच्चकोटि के साहित्यकारो से कई बार मिला, लेकिन जो स्नेह श्री यशपालजी जैन से मिला, वह मुझे किसी दूसरे लेखक से नही मिला।

एक-दो बार बाबूजी से घर मे मुलाकात हुई। उसके पश्चात् वे विदेश-यात्रा पर चले गए। एक साल की चिर प्रतीक्षा के बाद एक दिन उनके अध्ययन-कक्ष मे दर्शन हुए। हमे देखते ही वे उठ खडे हुए और मुस्कराते हुए बोले, "आओ भाई, बडे दिनो मे मिले!" हम बाबूजी की अनुकरणीय उदारता के सामने झुक गये। बाबूजी की इस उदारता को देखकर लगता है कि इस महान साहित्यकार ने दूसरो को कथा-साहित्य ही नही दिया, बल्कि एक अपूर्व स्नेह भी दिया है। वे श्री सुमेरचन्दजी से बात-चीत मे उलझ गए। मैं उनके अध्ययन-कक्ष को टटोलने लगा। इनके इस विशाल पुस्तक-भण्डार मे विश्व साहित्य की लगभग सभी महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। बाबूजी का कला-प्रेम कम नही है। अपने अध्ययन-कक्ष मे उन्होने दस्तकारी के मूल्यवान नमूने एकत्र किए हैं। मैं बाबूजी से कुछ पूछना चाहता था, लेकिन मुझे सकोच हो रहा था। वे फौरन ताड गए और बोले, "तुम कुछ पूछना चाहते हो?" मैं 'चरित्र-हीन' पुस्तक को कई बार पढ चुका था। मुझे उस उपन्यास की जटिलता कुछ अखर रही थी। मैं पूछ ही बैठा, "आपकी दृष्टि मे शरतबाबू का साहित्य कैसा है?" वे बोले, "शरत-

साहित्य को बार-बार पढ़ो। जैसे हिन्दी साहित्य मे मुन्शी प्रेमचन्द हैं, वैसे ही बग साहित्य मे शरतबाबू का नम्बर आता है।" फिर साधारण लहजे मे बोले, "हा, एक-दो उपन्यास उनके कुछ जटिल अवश्य हैं, पर उससे क्या! उनके साहित्य ने ही भारत के अनेक लोगो को साहित्यिक बना दिया है। मैं तो यही कहूंगा कि कहानीकार को तभी सच्ची प्रेरणा मिल सकती है जब वह शरत और प्रेमचन्द को पढ ले। रहा सवाल 'चरित्रहीन' का, उसमे जटिलता के साथ नवीनता भी है। यदि समझ न आए तो फिर पढो, याने कई बार पढो, समझ मे अवश्य आएगा।"

मेरी पहली रचना प्रकाशित हुई थी। 'आभा' की प्रति लेकर मैं बाबूजी के पास गया। मैंने उस तुच्छ वस्तु को उन्हे भेंट किया। वे पुस्तक को खोलकर पढने लगे और लगभग एक घटे तक पढ़ते रहे। मेरी उस तुच्छ भेंट की प्रशसा करते हुए मुझे बधाई दी। इस महान साधक के शब्द आज भी मेरे कानो मे गूजते हैं

"ईंट बनाने के लिए साचा तुम्हारा मस्तिष्क है, मिट्टी समाज से लो, याने अपने मस्तिष्क मे थोथी कल्पना का साचा तैयार मत करो। सामाजिक स्थिति का पहले खूब अध्ययन करो और बाद को उसे मस्तिष्क के साचे मे ढालो। पहले अपने लिए लिखो, फिर समाज के लिए लिखो। ऐसा लिखने से दिनो-दिन तुम्हारी उन्नति का द्वार खुलता जायगा और एक दिन तुम अपने को तथा अपने समाज को पहचान जाओगे। कहानियो के कथानक हमारे सामने बिखरे हुए हैं, दामन फैलाने की देर है, जितने समेट सको, समेटो।"

इस महान दार्शनिक कथाकार के ये शब्द हमेशा मेरे कानो मे गूजते रहेगे। क्या इस वाणी का प्रभाव उन लोगो पर भी पडेगा, जो कि आज केवल पैसे के लिए लिखते हैं ?

उदारमना व्यक्तित्व

लक्ष्मण सिंह जैन

□□

जीवन मे बहुत सी घटनाए घटित होती हैं और एक-एक करके उन्हे हम भूलते जाते है। परन्तु कुछ घटनाए ऐसी भी होती हैं जिन्हे हम कभी नही भूल पाते। ऐसी ही एक घटना मुझे याद है। जब मुझे हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री यशपाल जैन के दर्शन करने का सौभाग्य मिला था। वह अपनी माताजी को देखने इर्विन हस्पताल आए हुए थे। डाक्टर लोग अपने ड्यूटी रूम मे बैठे थे। जब उन्होने वहा भीड देखी तो हम सभी को बाहर निकाल दिया। थोडी देर बाद यशपालजी आए और उन्होने हमारे बाहर खडे रहने का कारण पूछा। तत्पश्चात् उन्होने डाक्टर से बात की और डाक्टर ने हम सभी को अन्दर बुला लिया। इतना ही नही रात को ठहरने के लिए व्यवस्था भी करा दी। बाद मे पता चला कि वह डाक्टर श्री यशपालजी के यात्रा-वृत्तान्तो का नियमित पाठक था और विशेषकर 'रूस मे छियालिस दिन' सस्मरण उसने बडे चाव

से पढ़े थे। वह डाक्टर तकनीकी लाइन में होने पर भी श्री यशपाल जैन का अनन्य भक्त था।

वस्तुत यशपालजी का व्यक्तित्व है ही ऐसा। उनसे जो भी एक बार मिल लेता है, अनायास ही उनकी ओर खिचता चला जाता है। उनमे आत्मीयता इतनी है जो कि बहुत कम व्यक्तियों मे मिलती है।

एक दूसरी घटना जो मुझे याद आ रही है वह मेरे पी-एच डी के विषय से सम्बन्धित है। मैंने अपने पी-एच डी में प्रवेश करने के लिए जब यशपालजी से बातचीत की थी तो उन्होंने मेरी इतनी सहायता की कि मुझे पी-एच डी में प्रवेश मिलने मे कोई कठिनाई नहीं आई। मेरे विषय के सम्बन्ध मे उन्होने इतनी क्रमबद्धता से मेरा मार्ग-दर्शन किया कि मैं उसे कभी नही भुला सकता।

श्री यशपाल जैन इतने मिलनसार हैं और दूसरे की बात इतने ध्यानपूर्वक सुनते हैं कि दूसरे को अपनी कठिनाई उन्हे बताने मे कोई सकोच नही होता। यही कारण है कि उनके पास हर समय, चाहे घर हो अथवा कार्यालय मे, कोई-न-कोई आता ही रहता है और शायद ही ऐसा कोई मामला हो, जिसमे समस्या का समाधान न मिला हो।

अपने साहित्यिक जीवन मे श्री यशपालजी जितनी प्रसिद्धि अर्जित कर चुके हैं, धार्मिक क्षेत्र मे भी उनका उतना ही मान है। किसी भी धर्म का कोई उत्सव हो, श्री यशपालजी बड़े चाव से उसमे सम्मिलित होते हैं। उनकी धार्मिक प्रवृत्ति के बारे मे मैं मुनिश्री सुशील कुमारजी से कई बार सुन चुका हू।

ससार मे कुछ ही ऐसे लोग होते हैं जो दूसरो की कठिनाइयो को समझने और सुलझाने मे उतना ही परिश्रम करते है,जितना कि अपनी कठिनाइयो के बारे मे। श्री यशपालजी उन्ही मे से एक हैं। वह मुझ से बहुत बड़े हैं। मैं अधिक तो कुछ नही कह सकता। केवल यही कह सकता हू कि मैंने जो कुछ उनके बारे में सुना था, उससे अधिक उन्हे पाया।

वह शतायु हो, यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

यशस्वी शब्द-शिल्पी

(वैद्य) शान्तिप्रसाद जैन

□□

सन् १९३७ की बात है, जब श्री यशपालजी का राजवैद्य परिवार के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ। उस समय इनकी आयु लगभग २५ वर्ष की थी। ग्रैजुएट होने के अनन्तर इन्होने उसी वर्ष प्रयाग विश्वविद्यालय से एल-एल बी की परीक्षा उत्तीर्ण की थी, किन्तु आपको वकालत करना अभिप्रेत नही था। इनका ध्येय तो मां भारती की अविरत उपासना रहा और इस साधना के हेतु वे दिल्ली चले आये और हिन्दी के दार्शनिक

लेखक श्री जैनेन्द्र कुमारजी के साथ रहने लगे। प्राचीन आयुर्वेदिक सस्थान राजवैद्य शीतल प्रसाद एण्ड सस के सस्थापक दिल्ली के सुप्रसिद्ध चिकित्सक मेरे पितामह राजवैद्य श्री शीतल प्रसादजी रसायन शास्त्री ने आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार हेतु 'जीवन सुधा' आयुर्वेदिक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था। तत्पश्चात मेरे पूज्य पिता जी राजवैद्य श्री महावीर प्रसाद जी ने 'शीतल स्मृति स्तम्भ' के रूप मे 'जीवन सुधा' का सचालन किया।

यद्यपि वश परम्परागत चिकित्सा क्षेत्रो में प्रवेश करने के लिए मैं आयुर्वेद का अध्ययन करता रहा, किन्तु इसके साथ-ही-साथ रुचि मे साहित्यिक पुट भी था। इस अभिरुचि को सक्रिय रूप देने के अभिप्राय से मेरे मन मे विचार हुआ कि 'जीवन सुधा' मे आयुर्वेदिक विषयो के प्रतिपादन के साथ उत्कृष्ट साहित्यिक सामग्री का भी समावेश किया जाए। पूज्य पिता जी ने इस विचार को प्रोत्साहन दिया और उपयुक्त सपादक के चयन हेतु अपने सुपरिचित श्री जैनेन्द्र कुमारजी के सम्मुख अपना प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होने श्री यशपालजी को 'जीवन सुधा' के सम्पादन का भार देने का सद् परामर्श दिया।

इस प्रकार श्री यशपालजी हमारे निकट आये। आरम्भ मे ही उनके सुलझे हुए विचार, धीर-गम्भीर मधुर व्यक्तित्व की मेरे मन पर गहरी छाप पडी।

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' की लोकोक्ति को समय की गति के साथ चरितार्थ करने वाले श्री यशपाल जैन सफल कहानी लेखक, कुशल सम्पादक और सुकवि के रूप मे हमारे बीच उपस्थित हुए और 'जीवन सुधा' का सपादन करने लगे।'जीवन सुधा' का विशेषाक 'लेखकाक' इनकी सम्पादन कला की उत्कृष्ट और सफल कृति रहा, जिसका सर्वत्र स्वागत हुआ। इसका सम्पूर्ण श्रेय श्री यशपाल जैन को है, जिनकी लगन और कर्त्तव्यनिष्ठा से यह सब कुछ सम्भव हो सका था।

'जीवन सुधा' के माध्यम से श्री यशपाल जैन की काव्य-प्रतिभा और उपन्यास-कला का सफल और परिमार्जित रूप साहित्य क्षेत्र मे सामने आया। 'जीवन राग' शीर्षक कविता के अन्तर्गत 'सुना दे एक बार फिर आज प्रिये! जीवन का मुझको राग' वाली पक्तिया इनकी आरम्भिक काव्य-शक्ति का ज्वलन्त उदाहरण है।

आज उनकी बहत्तरवी वर्ष गाठ के मगल अवसर पर हमे सगौरव-सोल्लास उन पुरातन सस्मरणो का स्मरण हो रहा है। इस परितुष्टि का विशेष कारण यह भी है कि अब से लगभग ४७ वर्ष पूर्व मेरे मन मे जो सभावनाए जगी थी, उनका मूर्तरूप आज सामने देख रहा हू।

श्री यशपालजी द्वारा राष्ट्र भाषा हिन्दी की जो सेवा सपन्न हुई है, वह हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उनके लिए शीर्षस्थ स्थान उपलब्ध करेगी।

मैं वीर प्रभु से प्रार्थना करता हू कि यशपालजी दीर्घायु हो और सबल सुन्दर स्वास्थ्य के साथ राष्ट्र-भाषा हिन्दी के भण्डार की उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि के लिए प्रयास करते रहे।

वह मेरे मामाजी

(डा) कृष्णप्रकाश अग्रवाल

□

सन् साठ की बात है। अनिल (डा अनिल प्रसाद) मेरठ होकर आया था। आते ही तपाक से पूछा, "यशपाल जैन का नाम सुना है ?" मैंने कहा, "हा।" फिर उसने एक फोटो निकाला और बोला, "यह रश्मि है, यशपालजी की भानजी। सारा परिवार बडी साहित्यिक रुचि का है" और अन्त मे बताया कि रश्मि के साथ किस प्रकार उसकी शादी पक्की हो गई है।

मुझ पर तो उन दिनो गीत लिखने का भूत सवार था। एक प्रसिद्ध साहित्यकार से निकट का सपर्क होगा यह सोचकर ही मन प्रसन्न हो गया। ऊपर से अनिल ने यह भी कह दिया, "अब तो तुम्हारे गीत आसानी से छप जाएगे।"

मिलने के अवसर की प्रतीक्षा होने लगी। अनिल की शादी हुई और मैं कुछ कारणवश उसमे सम्मिलित न हो सका। मौका टलने की कसक मन मे बनी रही। हा, इस बीच मेरी एक कविता (जो कि वास्तव मे यशपाली की बहन श्री प्रभाजी को लिखा गया एक पत्र था) 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' मे अवश्य छप गई। मिलने की साध और बढ़ गई।

सन् १९६४ मे जब मैं दिल्ली आया, तो यशपालजी से मिलना हुआ। यकायक रश्मि भाभी के मामाजी मेरे भी मामाजी बन गये। तब से अब तक कितनी ही साहित्यिक गोष्ठियो मे अपना परिचय यशपालजी के भानजे के रूप मे देकर गर्व से अपना सिर ऊचा कर सका हू।

भेंट-वार्ता

सेवा के लिए समर्पित

सोमेश पुरी

□□

१ सितम्बर, १९१२ को उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के विजयगढ़ नामक कस्बे मे जन्मे श्री यशपालजी जैन, गांधीवाद के प्रबल समर्थक हैं। बेहद सीधे, सच्चे, हर किसी से उसी के धरातल पर मिलने वाले, पहली ही भेंट मे हर किसी को बरसो के परिचित मालूम होते हैं। देश के अग्रिम पक्ति के बुद्धिजीवियो मे उनकी गिनती होती

है। 'उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने उन्हें 'साहित्य वारिधि' की उपाधि दे स्वयं को सम्मानित किया। नई दिल्ली के जैन-समाज ने 'साहित्य-रत्न' की उपाधि दे अपना कर्तव्य पूरा किया, वीर निर्वाण भारती (मेरठ) की ओर से इन्हे 'वीर निर्वाण भारती पुरस्कार' दिया गया। श्री जैन स्वय मे एक सस्था हैं—वह सस्था जो अपने जीवन के ७२ वर्ष पूरे करने पर भी अनुभव करती है, "सैकडो पुस्तको का सपादन और सकलन किया, अनेक साहित्यिक तथा सास्कृतिक सस्थानो मे सक्रिय भाग लिया, लेकिन मैंने कभी यह अनुभव नही किया कि इतने लम्बे अरसे मे इतना काम कर चुका हू कि अब मुझे अवकाश ग्रहण कर लेना चाहिए। मेरी सदा से धारणा रही है और इतने दिनो के अनुभव से वह अब और भी पुष्ट हो गयी है कि जब तक आदमी की सास चलती है, उसे रसपूवक काम करते रहना चाहिए।"

वे उस परिवार से सम्बन्ध रखते है, जो पीढी-दर-पीढ़ी साहित्य-प्रेम मे रमा रहा है। पिता श्री श्याम-लाल जैन उर्दू-फारसी के अच्छे ज्ञाता थे (इन्ही भाषाओ मे इनके बाबा भी रुचि रखते थे)। माता (श्रीमती लक्ष्मी देवी) से ही यशपालजी को कहानिया लिखने और धार्मिक कार्यों मे अभिरुचि लेने की प्रेरणा प्राप्त हुई। माताजी के सस्मरणो की पुस्तक 'दिव्य ज्योति' छप चुकी है और उनकी निर्वाण-तिथि पर प्रत्येक वष जैन हायर सैकेडरी स्कूल, दरियागज, नई दिल्ली, द्वारा १८ नवम्बर को एक वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन भी किया जाता है। शादी के बीस वर्ष बाद, पत्नी श्रीमती आदर्श कुमारी ने आई पी कालिज (दिल्ली विश्व-विद्यालय) मे दाखिला लिया और बी ए (आनर्स) और एम ए, दोनो परीक्षाओ मे प्रथम श्रेणी और विश्व-विद्यालय मे द्वितीय स्थान प्राप्त कर डैनिश सरकार से छात्रवृत्ति पायी। आठ महीने डेनमाक मे बिताकर वे सम्प्रति कालिन्दी कालिज, नई दिल्ली मे प्राध्यापिका हैं। लोक-साहित्य मे गहरी रुचि लेती है। एक लोक-कथाओ का सग्रह 'पुण्य की जड हरी' एक जमन महिला द्वारा, जर्मन भाषा मे, लाइपजिग विश्वविद्यालय द्वारा छापा जा रहा है। तीन सग्रह हिन्दी मे छप चुके हैं।

एक भाई श्री वीरेन्द्र प्रभाकर, इन दिनो 'हिन्दुस्तान टाइम्स' मे कार्यरत है। उन्हे १९८१ मे पद्मश्री से सम्मानित किया जा चुका है। एक भाई डा राजेन्द्रपाल जैन 'टाइम्स आफ इडिया' मे है। पुत्री श्रीमती अन्नदा पाटनी इन दिनो बिरलाग्राम (नागदा, मध्यप्रदेश) से 'सजना' पत्रिका निकालती है और उसके माध्यम से स्थानीय प्रतिभाओ को प्रकाश मे ला रही है। जब वे आई पी कालिज मे छात्रा थी, उन्होने सुप्रसिद्ध लेखक आद्रे जीद के उपन्यास 'टू सिम्फनीज' का हिन्दी मे अनुवाद किया, जो 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' मे उन दिनो धारावाहिक रूप मे छपा।

मैंने बाउजी (श्री यशपाल जैन को मै इसी नाम से सबोधित करता हू) से भेटवार्ता के दौरान जो प्रश्न किए, वे उत्तर-सहित यहा प्रस्तुत हैं।

प्रश्न—आपने लिखना कब से प्रारम्भ किया ?

उत्तर—छात्र-जीवन से ही लिखता रहा हू। १९३७ मे कानून की परीक्षा पास की, तब तक एक लेखक के रूप मे स्थापित हो चुका था।

प्रश्न उस समय की किन्ही विशेष पत्रिकाओ के बारे मे कहना चाहेगे ?

उत्तर—इलाहाबाद मे 'मिलाप' छपता था। उसके मैं, श्री नरेन्द्र शर्मा और श्री प्रभात विद्यार्थी सम्पादक थे। इलाहाबाद के दैनिक 'भारत' और मासिक 'माया' मे भी खूब लिखा। दिल्ली के 'चित्रपट' और 'सचित्र दरबार' के अनेक अको मे रचनाए प्रकाशित होती थी।

प्रश्न—प्रारम्भिक जीवन किस प्रकार आरम्भ हुआ और उसका विकास किस प्रकार हुआ ?

उत्तर—१९३७ मे दिल्ली आया। आते ही 'सस्ता साहित्य मण्डल' मे काम शुरू कर दिया। यह सस्था गाधीजी

ने १९२५ मे स्थापित की थी। अब तक इसके द्वारा सभी प्रमुख राष्ट्रीय नेताओ की जीवनियां, संस्मरण तथा अन्य रचनाए छापी जा चुकी हैं। इस सस्था से प्रेरक और स्वस्थ जीवन के निर्माण मे सहायक साहित्य ही निकाला जाता है। १९४० में मैं टीकमगढ़ गया और वहां से प बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ मिलकर 'मधुकर' नाम से पाक्षिक पत्र निकाला। टीकमगढ़ के समीप एक विख्यात तीर्थस्थान है, कुण्डेश्वर, जहा महादेव का विशाल मन्दिर है। वही से प्रकाशित यह पत्रिका बुन्देली जनपदीय साहित्य से सम्बन्धित थी। कार्यालय था—नदी के किनारे एक बियाबान जगल मे। वैसे १९३८ में दिल्ली मे 'जीवन सुधा' का भी सम्पादन किया, जिसका 'लेखकांक' ऐसा विशेषांक था कि वैसा अक आज तक हिन्दी की किसी पत्रिका ने नही छापा। उससे पहले १९३७ मे ही दिल्ली मे हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना की थी। इसके द्वारा रत्न, भूषण, प्रभाकर, हाईस्कूल, इण्टर आदि परीक्षाओं की पढ़ाई की व्यवस्था की गई थी। १९४६ मे टीकमगढ़ से दिल्ली लौट आया। तब से अब तक यही हू। 'सस्ता साहित्य मण्डल' का मन्त्री हू और 'जीवन साहित्य' (मासिक) का सम्पादक हू।

प्रश्न—काका कालेलकरजी ने आपको जहा 'कीर्ति के गौरीशकर', 'साहित्यिक सेवा के सागर', 'गाधी युग के सच्चे-समर्थ प्रतिनिधि' इत्यादि कहा, वही यह भी कहा, "मैं हू एक चिरयात्री। केवल भारत की ही नही, दुनिया के सब खडो की यात्रा मैंने की है। इस प्रवृत्ति मे यशपालजी मुझसे बहुत आगे बढ गए हैं।" इस घुमक्कड स्वभाव और विदेश-यात्राओ के बारे मे कुछ बताने की कृपा करें।

उत्तर—छात्र-जीवन मे स्काउट था, अत घूमना पडता था। घुमक्कड बन गया। पूरा हिमालय छान डाला। उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक, पूरे भारतवर्ष की चार-पाच बार परिक्रमा की है। १९५७ मे पहली बार रूस गया। तभी रूस, चेकोस्लोवाकिया, स्विटजरलैंड, इटली, फ्रास, इग्लैंड, जमनी, डेनमार्क, फिनलैंड और अफगानिस्तान भी गया। १९६० मे बर्मा, थाईलैंड, कम्बोडिया, दक्षिण, वियतनाम, सिगापुर और मलाया की यात्रा की। १९६५ मे अदन, सूडान, इथोपिया, केनिया, युगाडा तजानिया, मलावा, दक्षिण रोडेशिया, जाम्बिया, मेडागास्कर, मारीशस, कोकोज, आईलैंड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, फीजी आदि देशो मे गया। उन्ही दिनो सिंगापुर, मलाया और थाईलैंड इत्यादि का पुन दौरा किया। १९७२ मे कनाडा, अमरीका, सूरीनाम, गयाना और ट्रिनिडाड गया। १९७६ मे द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन मे भाग लेने दूसरी बार मारीशस गया। १९८१ मे कनाडा, अमरीका, इग्लैंड गया। १९८१ मे जापान की यात्रा की। १९८३ मे चीन की।

प्रश्न—इन विदेश-यात्राओ के सस्मरण लिखे हैं क्या ?

उत्तर—हा, लिखे, ढेरो पुस्तकें छप चुकी हैं। 'नवभारत टाइम्स' मे ये सस्मरण पूरे वर्ष भर यानी ५२ रविवारीय अको मे धारावाहिक रूप से छपे। 'रूस मे छियालीस दिन' पुस्तक पर 'सोवियत नेहरू एवार्ड' मिला, यही एवार्ड पुन 'सेतु-निर्माता' पुस्तक पर मिला। १९६० मे बर्मा मे 'अखिल बर्मा हिन्दी सम्मेलन' का उद्घाटन किया और १९७९ मे इसी सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए पुन वहा गया।

प्रश्न—इन देशो मे भारत की छवि कैसी है ?

उत्तर—मारीशस और फीजी मे अच्छी है, शेष बहुत देशो मे खराब है। इसके दो कारण हैं। पहला, जो भारतीय वहा जाकर बस गए हैं, वे भारत की सच्चाई और ईमानदारी वाली तस्वीर पेश नही कर रहे हैं। दूसरा कारण यह है कि भारत ने अन्य देशो के साथ जो निजी व्यापार समझौते किए हैं, उनको पूरा करने मे हमारे देश ने ईमानदारी नही बरती। इसके अतिरिक्त हमारे अधिकांश भारतीय राजदूत भी अपने दायित्व के प्रति पूरी तरह सजग नहीं हैं।

प्रश्न—भारतीय साहित्य और सस्कृति के प्रति कितना लगाव है विदेशियों को ?

उत्तर—भारतीय साहित्य विभिन्न देशो में बड़ा लोकप्रिय है। भारतीय सस्कृति के प्रति आदर है। बहुत से ग्रन्थो के विदेशी भाषाओ मे अनुवाद हुए हैं। रामायण, महाभारत और गीता की तो बेहद मांग है।

प्रश्न—आपने हिन्दी साहित्य वहा उपलब्ध कराने के लिए क्या किया ?

उत्तर—मारीशस गया तो वहा के लोगो मे हिन्दी के प्रति गहरी अभिरुचि देखी। वापस आया तो वहा की 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' को पत्र लिखा कि हम 'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तकों का पूरा सेट आप द्वारा प्रस्तावित और प्रमाणित सस्था को नि शुल्क भेंट करेंगे। पचास प्रतिशत कमीशन हमने अपनी ओर से दे दिया, शेष पचास प्रतिशत मूल्य का भुगतान कलकत्ता के हिन्दी-प्रेमियो से कराकर उन्हीं की ओर से पूरा सैट मारीशस मे भेट स्वरूप भेजा। लगभग सवा सौ सैट भेजे। कनाडा गया तो वहां एक धार्मिक सस्था 'हिन्दू प्रार्थना समाज' ने आमन्त्रित किया। देखकर घोर आश्चर्य हुआ कि वहां कोई मन्दिर नही था। एक गिरिजाघर मे सलीब पर पर्दा डाल दिया जाता और उसी के आगे कुछ भारतीय देवी-देवताओ के चित्र रखकर पूजा-कीर्तन किया जाता। मुझे बुरा लगा। मैंने उन लोगो से कहा, "तुम लोग इतने पैसे वाले हो। अपने मन्दिर का निर्माण करो।" कुछ समय बाद ही 'हिन्दू प्रार्थना समाज' की ओर से मन्दिर बनवा दिया गया। फिर उन लोगो का पत्र आया कि हमारे पाच सौ सदस्य हैं। सस्था के रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर प्रत्येक सदस्य को भेट मे देने के लिए भारत से पांच सौ रामायण और पाच सौ गीता की प्रतिया भिजवाने की व्यवस्था कर दें। मैंने 'डालमिया ट्रस्ट' से अनुरोध किया तो उन्होंने ये प्रतिया अपने धन से गीता प्रेस से ले दी और सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी उन्हें बिना भाडा लिए कनाडा पहुचाने पर सहमत हो गयी। लेकिन इस यात्रा मे समय अधिक लगता और मन्दिर का समारोह करीब था। अत एयर-इंडिया से अनुरोध किया गया तो वे तुरन्त सहर्ष तैयार हो गए और नि शुल्क सभी प्रतिया कनाडा पहुचा दी। ये प्रतिया सस्था की २५वी वर्षगाठ पर भेट की गयी। सन् १९८१ मे जब मैं पुन कनाडा गया तो वे लोग मन्दिर मे ले गए। वहा मेरा भाषण कराया। मैंने देखा कि उस मन्दिर मे हिन्दू देवी-देवताओ के ही चित्र लगे हैं अथवा उन्ही की बहुत छोटी मूर्तिया हैं। मैं उस मन्दिर को एक 'सवधम मन्दिर' का रूप देने को इच्छुक हू। वे लोग सहमत हैं। अत सभी मतो और धर्मों के देवी-देवताओ की विशाल मूर्तिया नि शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करूगा। इस व्यवस्था के लिए मैं प्रयत्नशील हू।

प्रश्न—विभिन्न देश परस्पर लडते क्यो हैं ?

उत्तर—सभी मानव (चाहे वे किसी भी देश के निवासी हों) एक ही तरह के होते हैं। सभी की आकाक्षाए एक-सी होती हैं, सभी के सीने मे एक ही तरह से हृदय धडकता है लेकिन भूगोल अथवा भाषा अथवा धर्म इत्यादि के नाम पर कृत्रिम रेखाए खीचकर हमे अलग कर दिया गया है। ये रेखाए एकदम कृत्रिम हैं, प्रकृति द्वारा नही खीची गयी हैं। इन्ही के कारण मानवीय मूल्य आहत होते हैं, तनाव उत्पन्न होता है।

प्रश्न—इस तनाव से बचने का उपाय क्या है ?

उत्तर—मेरे विचार मे एक ही उपाय है कि हम गाधीजी के दिखाए रास्ते को अपनाए। बापू ने मानवीय मूल्यो की स्थापना के लिए अपना पूरा जीवन लगा दिया था। उन्ही के सद्प्रयत्नो से विश्व मे भारत की छवि निखरी। वे आज भी विश्व भर मे 'करुणा और प्रेम के देवता' के रूप मे वन्दनीय माने जाते हैं हमे इस तनाव को हटाने अथवा घटाने के लिए हृदयो की भाषा समझनी होगी। भौतिक स्तर पर

ऐसा नहीं किया जा सकेगा। आणविक अस्त्रो की होड़ का मोह त्यागना होगा और यह तभी सम्भव होगा, जब हम अहिंसा को तेजस्वी करें। अहिंसा को गांधीजी ने 'अमोघ-अस्त्र' कहा था।

प्रश्न—आज युवा लेखक-वर्ग द्वारा हिन्दी साहित्य मे घुटन, कुंठा, सत्रास आदि शब्दो का बेहद प्रयोग किया जा रहा है। नये साहित्य को आदोलनो, वादो और नारो के घेरो मे कैद किया जा रहा है। ऐसा क्यों ?

उत्तर—ऐसा होना स्वाभाविक है। यह विद्रोह मात्र साहित्य मे नहीं है, राजनीति और धर्म के क्षेत्र मे भी है। वह हर तरफ लक्षित हो रहा है। विद्रोह बुरा नही है। लेकिन मात्र पुरानी दीवार को गिराना ही लक्ष्य नही होना चाहिए। उसके स्थान पर नई, ज्यादा मजबूत और ज्यादा बेहतर, दीवार भी बने, तभी परिवर्तन सार्थक है। नया साहित्य शब्दो की अजीब-सी उलझन प्रस्तुत कर रहा है। पहले का साहित्य काफी प्रेरक है।

प्रश्न—आप अपनी पत्रिका 'जीवन-साहित्य' मे मात्र प्रेरक साहित्य ही छापते हैं, लेकिन क्या आप स्वीकार करेंगे कि ऐसे साहित्य के पाठक बहुत कम हैं ?

उत्तर—आपकी बात ठीक है।

प्रश्न—ऐसा क्यो है ?

उत्तर—मेरी मान्यता है कि आजादी के बाद देश का सबसे अधिक अहित बुद्धिजीवियो और गाधीवादियो ने ही किया। धोखा देकर ठगा है इन लोगो ने देश को। आजादी के बाद बुजुर्ग बुद्धिजीवियो ने देश की युवा पीढी को कोई दिशा प्रदान नही की। गाधीवादियो के ही कारण अहिंसा निस्तेज हो गयी। बुद्धिजीवियो ने मूल्यो का ह्रास कर दिया। यही कारण है कि नये-साहित्य के नाम पर अधिकांशत ऐसी अजीबोगरीब रचनाए सामने आ रही है, जिनका न सिर है, न पैर है। उनका अर्थ ही समझ मे नही आता।

प्रश्न—अगर आप 'मण्डल' जैसी सस्था से सम्बद्ध न होते और आपकी एक बधी हुई मासिक आमदनी न होती तो भी क्या आप मात्र हिन्दी पत्रकारिता अथवा लेखन के सहारे जीवन जी पाते ?

उत्तर—नही। आज फ्री लास (आकाश वृत्ति के) लेखक बनकर जी पाना हिन्दी में सम्भव नही है। जो कही नौकरी मे नही है, उन्हे भी रेडियो, टेलीविजन, अखबार इत्यादि सभाले हुए है। जो इनसे नही जुड पाते और फ्री लासर बनकर जी रहे हैं, उन्होने अपनी इच्छाए बहुत सीमित कर दी है, एक तपस्वी का-सा जीवन जीना पडता है उन्हे। जैसा लिखते है, वैसे ही बन भी जाते हैं।

प्रश्न—आपकी कोई विशेष इच्छा अथवा आकाक्षा है ?

उत्तर—जी हा, एक नही तीन इच्छाए हैं

१ जब तक जिऊ दूसरो का जितना हित कर सकू करता रहू।

२ प्रयत्न करता रहू कि विश्व के सभी देश एक दूसरे के निकट आए और परस्पर गहरे मानवीय सबध स्थापित हो।

३ चाहता हू कि जब हमारी सरकार दूसरे देशो में अपने राजदूतो की नियुक्ति करे तो ऐसे व्यक्ति चुने जाए, जिनकी सास्कृतिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि सुदृढ़ हो। वे विदेशो में हिन्दी और अग्रेजी दोनो मे अपने देश की सास्कृतिक निधियो के बारे में विस्तार से बता सके। वे भारत के प्रेरक तथा दिशा दर्शक साहित्य का प्रचार-प्रसार कर सकें। मात्र राजनीति में उच्च स्थान रखने वाले अथवा सरकारी कार्यालयो में उच्च पद पर नियुक्त अधिकारी ही न चुने जाए।

प्रश्न—आपके नेहरूजी से घनिष्ठ सम्बन्ध रहे। उस युग की कोई महत्वपूर्ण घटना बताए ?

उत्तर—१६६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया था। लडाई समाप्त होने के बाद १६६३ में एक दल पंडितजी ने अग्रिम मोर्चे पर स्थिति के अध्ययन के लिए लद्दाख भेजा था। उसमें मैं भी था। हम लोग लद्दाख की हर चौकी पर घूमे बाद मे नेहरूजी को एक गोपनीय रिपोर्ट दी थी।

एक घटना याद आती है। मैं उन दिनो अक्सर ससद मे चला जाता था। एक बार नेहरूजी ने ससद मे कहा, "हमारे देश में आम भारतीय की औसत आमदनी १२ आने प्रतिदिन है।" तुरन्त विपक्ष के डा राम मनोहर लोहिया खडे हो गए, "सिद्ध कर दें तो मैं ससद की सदस्यता त्याग दूगा, अन्यथा आप प्रधानमत्री का पद छोड दे।" आगे उन्होने कहा, "हमारे देश का दुर्भाग्य है कि हमारे मन्त्री मात्र सरकारी फाइलो मे दिए गए आकडो पर ही निभर करते हैं।" उनकी बात सही थी। आज भी देश की आम जनता की सही स्थिति जानने वाले नेता या मजबूत विपक्ष के सदस्य इने-गिने हैं।

मैं काफी देर मत्रमुग्ध बैठा रहा और सोचता रहा बाऊजी की स्पष्टवादिता के बारे मे। उन्होंने १६६३ की उस लद्दाख-यात्रा के बाद लद्दाख के बारे में आठ लेख लिखे, जो 'नवभारत टाइम्स' मे प्रकाशित हुए।

बाऊजी 'भारतीय साहित्य परिषद' के दिल्ली प्रदेश शाखा के अध्यक्ष और 'हिन्दी-भवन' के उपाध्यक्ष रहे हैं। आजकल 'चित्रकला सगम' और 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के उपाध्यक्ष हैं, 'नेशनल बुक ट्रस्ट' के ट्रस्टी हैं। 'नेशनल बुक डेवलपमेंट कौंसिल' के सदस्य है। भगवान् महावीर के २५००वे निर्वाण-महोत्सव की राष्ट्रीय समिति, कार्य समिति और जैन-महासमिति के सक्रिय सदस्य रह चुके है। महापडित राहुल साकृत्यायन तथा डा रघुबीर के बाद भारत और विश्व की सर्वाधिक दूरी इन्होने ही नापी है। भारत के बाहर जब भी जाते हैं, मानव-धर्म और अहिसा के दूत के रूप मे जाते है और विश्व-मैत्री के इच्छुक रहते है। बाऊजी ने महात्मा गाधी, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, काका साहेब कालेलकर, नाथूराम प्रेमी, विनोबा भावे, बनारसीदास चतुर्वेदी, हरिभाऊ उपाध्याय आदि के अभिनन्दन-ग्रन्थो का सम्पादन किया है। बाऊजी की मौलिक, अनूदित तथा सपादित लगभग २०० पुस्तके छप चुकी है।

मिलनसार, सहज आत्मीय, मानवता के उपासक महावीर की अहिसा और गाधी की स्पष्टवादिता के प्रतीक, भारतोय साहित्य और सस्कृति के दूत श्री यशपाल जैन शतायु हो, यही कामना है।

उनके सान्निध्य में

पवन कुमार जैन

□□

सुप्रसिद्ध यात्रा-साहित्य लेखक, पत्रकार तथा समाज-सेवी श्री यशपाल जैन के सम्बन्ध मे डाक्टर सुरेन्द्र माथुर ने अपने शोध-प्रबन्ध मे लिखा है, "यशपालजी को हिन्दी से विशेष प्रेम है। वे बहुत-सी साहित्यिक सस्थाओ से सम्बद्ध है। वह सदैव इस बात के अभिलाषी रहते है कि उनके द्वारा समाज को कुछ-न-कुछ लाभ पहुचता रहे। वह सिद्ध हस्त लेखक हैं। साहित्य-सेवा के लिए ही उन्होने अपना जीवन अर्पण किया है।"

यशपालजी के सम्बन्ध मे बहुत कुछ पढ़ा था और सुना भी था, किन्तु उस दिन ऐसा लगा कि वह बहुत कम था, वह तो उससे बहुत आगे हैं। दरियागज मे अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् की बैठक हो रही थी। अक्षयकुमारजी अपना भाषण दे रहे थे। गाडी देर से पहुचने के कारण मैं समय पर नही पहुच पाया। सभा मे फर्श पर बैठे एक व्यक्ति पर मेरी निगाह अटक गई। निगाह हटाए नहीं हट रही थी। उत्सुकता इस सीमा तक बढी कि मैंने अपने पास बैठे परिषद के मत्री से पूछा, 'ये कौन है।"

उन्होने कहा, "इन्हे नही जानते ! अपने यशपालजी हैं।"

मैं सुनकर अवाक रह गया। मुझे स्वप्न मे भी आशा नही थी कि यशपालजी से मेरी भेट इस प्रकार होगी। दूसरी भेट एक भोज के अवसर पर हुई। हम दोनो साथ बैठे थे। पत्तलें सामने थी। भोजन परोसे जाने का इन्तजार हो रहा था। यशपालजी एक सज्जन से बात कर रहे थे। कभी-कभी मेरी ओर देखकर अपनी बातो की प्रतिक्रिया जानने का प्रयत्न कर रहे थे। मैं मन-ही-मन बहुत खुश था कि आज मुझे एक प्रसिद्ध साहित्यकार का नैकट्य प्राप्त हो रहा है। मन करता था कि भोज चलता ही रहे।

यशपालजी रुडकी पधारे। उस समय गुलाबी ठण्ड पड रही थी। मैं पैण्ट-शर्ट पहने सारे दिन उनके साथ रहा। सध्या समय जब मैं धोती-कुरता पहनकर उनके पास पहुचा तो उन्होंने मेरी बाह पकड ली और पूछा, "नीचे कुछ पहन रखा है या नही ?" मै तो गद्‌गद हो गया।

यशपालजी से मिले बहुत दिन हो गए थे। सोचा भूल गए होगे, अत अपना परिचय देते हुए कहा "मेरा नाम पवन कुमार जैन है, शायद आपको याद हो ।" इतना ही कह पाया था कि उन्होने बात काटते हुए कहा, "भूल सकता हू तुम्हे ! तुम्हारे लेख 'वीर' मे पढता रहता हू।" यह कहकर उन्होने मेरा नाम डिग्री सहित बता दिया।

लगभग दस वर्ष बाद अचानक यशपालजी का पत्र पाकर आत्म-विभोर हो गया। सुखद आश्चर्य हुआ। अग-अग नाच उठा, जैसे कोई बडी निधि मिल गई हो। दस वर्ष का लम्बा अतराल और उसके बाद इतना प्यार-भरा आशीर्वाद पाकर कौन ऐसा होगा, जो झूम न उठे ? मेरा झूम उठना भी स्वाभाविक ही था। पत्र एक बार नही, कई बार पढ़ा और जितनी बार पढा उतना ही प्रेरित होता चला गया। फिर तो अपने को रोकना कठिन हो गया और तुरन्त दिल्ली जाने का कार्यक्रम बना लिया। दिल्ली पहुच कर सीधा उनके घर गया। सीढ़िया चढ़कर ऊपर पहुचा, बटन पर अगुली रखते ही घटी बज उठी। दरवाजा स्वय यशपालजी ने खोला। नमस्कार करते ही उन्होंने अपने अक मे समेट लिया और बडी आत्मीयता से मुस्कराकर बडे जोर से पीठ पर प्यार भरी थपकी लगा दी। रोकते-रोकते भी आखें गीली हो गईं।

घर लौटकर यशपालजी के पत्र को तकिये के नीचे रखकर सो गया। रात भर सपने मे दबा रहा और यशपालजी से बाते करता रहा। स्वप्न मे स्मृतियो के बादल-ही-बादल छाते जा रहे थे, सफेद धुनी हुई रूई के फाहो जैसे। देखता हू एक बहुत बडा बादल मेरी आखो के सामने से धीरे-धीरे खिसकता जा रहा है और जैसे-जैसे खिसक रहा है, वैसे-वैसे ही उसके पीछे एक मच दिखाई देता जा रहा है। मच पर चिरपरिचित चेहरे देख कर चौंक उठा। बीच मे श्री यशपालजी और उनके बराबर श्री जैनेन्द्रकुमार जी बैठे हुए हैं। चारो ओर हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि। जैनेन्द्रजी सम्मेलन का उद्घाटन करने खडे होते है। कहते हैं मेरा गला ठीक नही। प्रकृति नही चाहती कि कुछ कहू। मैं खुशी से सम्मेलन का उद्घाटन करता हू। यशपालजी अध्यक्षता कर रहे हैं। वह अध्यक्षीय भाषण देते हैं, जमकर बोलते है। अनतर देवराज दिनेश कविता पाठ करते है। कविता-पाठ के बाद अपने स्थान पर बैठने के लिए मुडते हैं कि भीड से खचाखच भरे पडाल के पीछे खडे नवयुवक, जो देखने मे रुडकी विश्वविद्यालय के विद्यार्थी लग रहे थे, चिल्ला उठते हैं, "वन्स मोर, वन्स मोर! भारत मां की लोरी सुनवाइए।" तभी यशपालजी मच पर खडे हो गए। माइक पर उनकी आवाज गूज उठी, "जो आप सुनना चाहेगे, वही सुनवाया जाएगा, लेकिन १२ बजे के बाद। बारह बजे तक मैं कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता करूगा। उसके बाद आप अध्यक्षता करेंगे। जो सुनना चाहेगे वही सुनवाया जाएगा। किंतु बारह बजे तक मेरी अध्यक्षता का मतलब है कि जो मैं चाहूगा, वही आपको सुनना होगा।" पडाल मे ऐसी शाति हो गई कि सूई भी गिरे तो उसकी आवाज सुनाई दे जाय। मच पर एक कोने मे बैठा हुआ मैं यह सब सुन रहा हू और देख रहा हू। मच से गगा नहर का जल साफ दिखाई दे रहा है। उस पर सूय की लालिमा तैरने लगी। धुध का बादल आखो के सामने फिर छा गया, जिसमे सम्पूर्ण मच, कवि-सम्मेलन का पडाल और रुडकी की गगा नहर का पुल सभी कुछ लुप्त हो गया।

मेरी आख खुल गई! वास्तव मे वह स्वप्न नही था। सन् १९६५ के आसपास की वास्तविक घटना थी, जब यशपालजी रुडकी मे एक कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिए पधारे थे। यह कवि-सम्मेलन स्थानीय राजहस कला मदिर द्वारा नगर पालिका के प्रागण मे आयोजित किया गया था और हजारो श्रोताओ ने हिंदी के अनेक छोटे-बडे कवियो की वाणी का आनद लिया था।

सोने का प्रयत्न किया। आख लगते ही स्वप्न लोक मे खो गया। धुध के बादल फिर छटने लगे। देखता हू, खतौली मे जानसठ रोड के तिराहे पर खडा हू। किसी के इतजार मे हू। खडे खडे थक गया हू। पास मे पेट्रोल पप पर जाकर बैठ जाता हू, किंतु मन मे आकुलता है। अधिक देर बैठ नही पाता। फिर जी टी रोड पर दिल्ली की ओर मुह करके खडा हो जाता हू। तभी सामने से एक नीली कार आती दिखाई देती है। कार मेरे निकट आकर रुक जाती है। मैं खुशी से उछल पडता हू। अरे ये तो यशपालजी और अक्षयकुमारजी आ गए। इतजार की थकावट इन्हे देखते ही मिट गई। मै भी उनके साथ कार मे बैठ जाता हू। कार के के जैन डिग्री कालेज के मुख्य द्वार पर रुकती है। सामने पडाल है और पडाल पर भगवान महावीर २५००वा निर्वाण-महोत्सव का विशाल बोर्ड लगा है। पडाल के सामने ऊचे स्तम्भ पर ध्वज है। यशपालजी डोरिया खीचकर पचरग बधे ध्वज को मुक्त आकाश मे फहरा देते है। फिर वह समारोह की अध्यक्षता करते है। मुख्य अतिथि का भाषण अध्यक्षजी देते हैं। चित्रपट का दृश्य, स्वप्न मे बदलता है। यशपालजी प्राचीन जैन-ग्रन्थ प्रदर्शनी का फीता काटकर उदघाटन कर रहे है। दृश्य फिर बदला। मैं प्रदशनी के कक्ष के सामने इतनी भीड को पीछे हटाकर, यशपालजी और अक्षयजी के लिए माग बना रहा हू। बडी उत्सुकता के साथ, तन्मय होकर, यशपालजी भगवान महावीर के जीवन और दशन पर आधारित एक विशाल रगीन चित्र देख रहे हैं। फिर समारोह मे बोलते हुए यशपालजी कह रहे हैं, "भगवान महावीर का निर्वाण-महोत्सव मनाना तभी सार्थक हो सकता है,

जब महावीर को जैन समाज के सकीर्ण दायरे से निकालकर, विश्व-स्तर पर स्थापित किया जाय। महावीर केवल जैनियो के नही, समस्त विश्व के हैं। उनकी अहिसा, उनका प्रेम, उनकी करुणा मानव ही तक नही, समस्त जीवधारियों तक फैली है।

यह भी स्वप्न नही, वास्तविक घटना है सन् १६७२ की।

सपना टूटा। आख खुली। पर अभी तो घडी मे बारह बजे थे। फिर सोने का प्रयत्न किया। कुछ ही देर मे नीद आ गई। सपने तैरने लगे। बादल का परदा हटने लगा। मच पर विशेष चोगा पहने मेरठ विश्व-विद्यालय के उपकुलपति प्रो बी एस माथुर के साथ और बहुत से लोग काले चोगे मे बैठे हैं। मैं भी लाल चोगा पहने हुए हू। मच के सामने सभ्रांत नागरिक और विद्यार्थी बैठे हुए हैं। मच पर प्रो माथुर के बराबर वाली कुर्सी पर धोती कुरते पर चोगा पहने ये चश्माधारी कौन सज्जन है? देखता हू, ध्यान से देखता हू। ओ हो, यह तो हमारे यशपालजी है। वह स्नातको को दीक्षात-भाषण देते हैं। वह भाषण अपने रूस-यात्रा के एक सस्मरण से प्रारम्भ करते हैं और फिर आगे कहते हैं, "स्नातको को अच्छा नागरिक बनने का प्रयत्न करना चाहिए। अपना शारीरिक, बौद्धिक, कलात्मक और आत्मिक अर्थात समग्र विकास करना चाहिए, जिससे ससार मे प्रवेश करके आप अपनी भूमिका अच्छी तरह निभा सके। याद रखिए, देश सर्वोपरि है। मनुष्य आता है, चला जाता है, पर देश अपनी जगह रहता है। वह हम सबका है।"

यशपालजी छात्र-छात्राओ को सम्बोधित करके कहते हैं, "जिन विद्यार्थियो ने आज उपाधिया प्राप्त की हैं, उनसे मैं आशा करता हू कि वे अच्छे और सच्चे नागरिक बनेगे और समाज तथा राष्ट्र की जी-जान से सेवा करेगे।" बडी हार्दिकता से वे उन्हे बधाई देते है। और उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करते है।

यह है सन् १६७३-७४ की घटना, जब यशपालजी हमारे के के जैन डिग्री कालेज मे दीक्षान्त भाषण देने आए थे।

सन् १६७५ मे मुजफ्फरनगर के दो मचो पर भी मेरा और यशपालजी का साथ रहा। मुझे उन्हें बहुत निकटता से देखने और जानने का अवसर मिला। उसके आधार पर मैं कह सकता हू कि यशपालजी का व्यक्तित्व एक खुली किताब हे, जिसे जब जो चाहे पढ सकता है। वह मन मे किसी प्रकार की गाठ रखना सबसे बडी हिसा समझते है। उनके जीवन का मूल मत्र है, अपने अतर को साफ-सुथरा रखो, सबको प्रेम करो और अपने हाथो स जितनी दूसरो की भलाई हो सके, करो।

उनकी व्यवहार-बुद्धि

टी के महादेवन

□□

श्री यशपाल जैन को मैं अनेक वर्षों से जानता हू। बहुत-से राष्ट्रीय मसलो पर, जिनमे कुछ साहित्यिक मसले भी शामिल है, हमे विचार-विमर्श के अवसर मिले है। मुझे एक घटना बार-बार याद आती है।

जैनाचार्य तुलसी की 'अग्नि-परीक्षा' पुस्तक को लेकर जो आदोलन हुआ, उससे मुझे बडी हैरानी हुई उसके पीछे मुझे भारतीय समाज की व्यापक असहिष्णुता की झाकी दिखाई दी। स्वाभाविक रूप से यशपालजी की राय पूछी।

उनका रुख सच्चे जैन के नाते एकदम अहिंसा-परक था। यह वैसा ही था, जैसा कि अहिंसा को धर्म मानकर चलने वाले व्यक्ति का होता है। मैंने उनसे उस सबध मे कहा कि आखिर ईमानदारी का भी तकाजा होता है। मुझे अहिंसा की अपेक्षा व्यक्ति की ईमानदारी सदा अधिक महत्वपर्ण लगती है। मेरी मान्यता थी कि पुस्तक को किसी भी कारण से वापस नही लिया जाना चाहिए था। आखिर वह पुस्तक 'उर-रामायण' के आधार पर लिखी गई थी। मुझे लगा कि राष्ट्र के लिए अपनी प्राचीन परम्पराओ को केवल भीड को खुश करने के लिए बदलना अनर्थकारी होगा।

बहुत देर तक हमारी बहस चली, लेकिन यशपालजी अपने इस दृष्टिकोण पर डटे रहे कि आचार्य तुलसी ईमानदारी का आग्रह रखकर अपने 'अणुव्रत' आदोलन को जोखिम मे डालेगे और फायदा कुछ होगा नही।

अत मे मैंने उनकी व्यवहार-बुद्धि के आगे पराजय स्वीकार कर ली, हालाकि मुझे अब भी इस बात की हैरानी है कि हमारे देश मे असहिष्णुता व्याप्त चली आती है।

उनका उपकार

जगदीशचन्द्र ढींगरा

□□

श्री यशपालजी ने साहित्यकारो, जैन समाज तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियो, मे तो अपनी लेखनी और सेवाओ के कारण प्रमुख स्थान प्राप्त किया ही है, साथ-ही उन्होने अपने सम्पर्क मे आए सामान्य वर्ग के व्यक्तियो के भी

हृदय मे आदर पाया है। मैं अपना बड़ा सौभाग्य मानता हू कि मुझे उनके निकट सम्पर्क मे आने का सुअवसर मिला।

वैसे तो सद्गुणी तथा आदर्श व्यक्ति के प्रत्येक अवसर का मिलाप एक सस्मरण होता है, परन्तु यशपालजी से मिली प्रेरणाए ऐसी होती हैं, जो दूसरे के जीवन में साकार बनकर सामने आती हैं।

यशपालजी श्रद्धा के पात्र हैं। उनसे मिली सीख, प्रबल भावनाए, उत्साह हमारी दुर्बल अवस्थाओं मे एक प्रहरी बनकर हमारा मार्गदर्शन करते रहते हैं। उनका उपकार मैं और मेरा कुटुम्ब कभी नहीं भूल सकता। कई वर्ष पूर्व हमारा उनसे सम्पर्क हुआ। उनकी यात्राओ के सस्मरण बडे रुचिकर लगे। उनके इस विचार से कि जहा भोजन से शारीरिक बल मिलता है, वहा भ्रमण से और प्रकृति की अलौकिक छटा को निहारने से मानसिक बल प्राप्त होता है। मुझे इस बात से बडा उत्साह मिला। जब-जब ये मिलते, अपनी यात्राओं के सस्मरण सुनाते। श्री विष्णु प्रभाकर के सहयोग से इन्होने एक 'यात्रिक सघ' की स्थापना की जिसका उद्देश्य लोगो मे यात्रा के लिए अभिरुचि उत्पन्न करना था।

यशपालजी ने लेखो तथा पुस्तको मे विदेश की यात्राओ के बारे मे बहुत कुछ लिखा है। वह मुझे भी किसी-न-किसी यात्रा के लिए प्रेरित करते रहे है और प्रमुख पर्वतो तथा तीर्थ-स्थानो के मानचित्र और मार्ग-चित्र दिखा कर हम लोगो की जिज्ञासा को और भी बढाते रहे है।

उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप हम लोगो ने बदरीनाथ और केदारनाथ की यात्राए की। कई स्थानो को पत्र लिखकर उन्होने हमारे रहने का सुभीता करा दिया। उन सुखद यात्राओ को हम कभी भूल नही सकते।

बदरी-केदार की यात्रा के बाद उन्होने हमे गगोत्री तथा गोमुख जाने के लिए तैयार किया और आग्रह किया कि हम अपने छोटे बच्चो को भी साथ ले जाए। हम सोच भी नही सकते थे कि छोटे-छोटे बच्चे इतने ऊचे पहाडो पर पैदल चल सकेंगे, लेकिन उनके आग्रह पर हम बच्चो को ले गये और हमारी वह यात्रा बहुत-ही आनन्द के साथ सम्पन्न हुई। उसके बाद तो प्रतिवर्ष किसी न-किसी स्थान की यात्रा करने की लालसा पैदा हो गई।

यशपालजी का मेरे और मेरे परिवार वालो पर यह एक ऐसा उपकार है, जिससे हमे शारीरिक और मानसिक बल मिला है।

हम परमपिता से उनके दीर्घायु तथा अच्छे स्वास्थ्य की प्रार्थना और कामना करते हैं।

मेरे सहृदय भाई

कैलाशचन्द्र अग्रवाल

□□

यशपालभाई की वर्षगाठ मनाने के समाचार से मुझे लगभग ५० वर्ष पहले की एक घटना याद हो आई। मेरे दादाजी के पास एक पडोसी आए और अपने परिवार की कुछ समस्याओ के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श करके

जाने लगे तो उठते समय कुछ कराह उठे। दादाजी बोले, 'अरे, क्या बात है? आज तुम थके-थके-से लग रहे हो।' वह सज्जन बोले, 'साठ पार कर चुका हू, अब तो जिन्दगी ढलान पर है।' दादाजी एकदम बोल पड़े 'तुम्हारी यह धारणा गलत है। यह जिन्दगी का ढलान नहीं, शुरुआत है। साठ के बाद तो मनुष्य की असली जिन्दगी शुरू होती है। स्वय ही नही, दूसरो मे भी इस आयु मे जीने की नई राह बनाने की सामर्थ्य पैदा कर दी जाती है।'

यह घटना यशपालभाई पर एकदम सही बैठती है। उनमे शक्ति है, जीवट है, सामर्थ्य है और है भरपूर साहस। मैंने उन्हे कभी थका हुआ नही देखा। न कभी हार मानते हुए देखा। वह कमठ है। चलते रहने मे विश्वास रखते है। साहित्य मे जीते हैं, सामाजिक क्षेत्र मे सक्रिय है और राजनीति मे उनकी अच्छी गति है। धार्मिक कार्यों मे उन्हे किसी प्रकार का भेदभाव स्वीकार नही है। बढती हुई उम्र उन्हे रोक नही सकी और मेरा पूरा विश्वास है कि वह रुकेंगे भी नही। गति मे जीवन है, इसका वह भूत्ति मन्त दृष्टान्त है।

मैं छोटा हू, वह बडे है। उनका मुझे सदैव स्नेह मिला रहे। पिछले ४०-५० वर्षों से विष्णुभाई के सहारे उनके निकट सम्पक मे आने का अवसर मिला है। प्रारम्भ के व्यवहार से आजतक उनके प्यार मे कभी अन्तर नही आया। जब भी मैं कोई कार्य लेकर उनके पास गया हू, बडी ही सहानुभूति से उन्होने मेरी समस्या को सुना है और मुस्कराहट के साथ मेरी मुश्किल को आसान कर दिया है।

ऐसे सहृदय भाई के लिए मेरा मन सदैव यही कामना करता है कि वह शतायु हो और मैं बहुत वर्षों तक उनकी मुस्कराहट बटोरता रहू।

सभी क्षेत्रों में उनकी लोकप्रियता

रा चिन्तामणि शास्त्री

□□

भाई यशपालजी से लगभग ४५ वष पहले परिचय हुआ, जब उन्होने दिल्ली को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया था। उसके बाद उनसे मिलने-भेटने के और साथ रहने के अनेक अवसर आए। मैंने उन्हे सदैव स्फत, सक्रिय, हसमुख और बातचीत-व्यवहार मे सौम्य, शिष्ट और कुशल पाया। उनके सम्पर्क मे आने वाला व्यक्ति उनसे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। साहित्यिक, सामाजिक तथा राजनयिक सभी क्षेत्रो के यशस्वी लोगो से उनके स्नेह-सम्बन्धो का मैं साक्षी रहा हू, यद्यपि बहुत घनिष्ठता का दावा मेरा नही है, फिर भी उनकी लोक-सग्रह की भावना और बातचीत की आकषक शैली ने मुझे सदैव मुग्ध किया है।

उनकी पारिवारिक परिधि और रिश्तेदारी के दायरो से भी बधा हू और उस सम्बन्ध मे बहुत मधुर अनुभव पाए हैं।

भाई यशपालजी की दिलचस्प यात्राओं की दास्तानें मैंने चाव से पढ़ी हैं और सुनी हैं और इच्छा भी रही है कि उनकी ऐसी यात्राओ मे सहयात्री बनू। 'सस्ता साहित्य मण्डल' और 'जीवन साहित्य' के माध्यम से सत्साहित्य और गाधी-सर्वोदय-विचार को समाज मे फैलाने मे श्री यशपालजी का अवदान अपना वैशिष्ट्य रखता है। सत साहित्य, जैन वाङ्मय, कथा-साहित्य और बाल साहित्य आदि विधाओ मे श्री यशपालजी ने अपनी सफल कलम का योगदान दिया है। अनेक अभिनन्दन ग्रन्थो और पावन-स्मरण पुस्तको मे उनकी सकलन-सपादन प्रतिभा का सुन्दर परिचय मिलता है।

भाई यशपालजी ने अपनी एक विशिष्ट मित्र-मण्डली बनाई है। उनकी यह खूबी सर्वोपरि है कि सभी क्षेत्रो के विशिष्ट व्यक्तियो से उनका गहरा सम्बन्ध है। प बनारसीदास चतुर्वेदी, स्व नाथूराम प्रेमी, स्व हरिभाऊ उपाध्याय, स्व कमलनयन बजाज, स्व छोटेलाल जैन, श्री जैनेन्द्र कुमार, विष्णु प्रभाकर आदि अनेक नाम भाई यशपालजी के साथ जुड गए हैं।

मैं यशपालजी के दीर्घायुष्य, मगलमय सुन्दर भविष्य के लिए कामनाओ के साथ उन्हे अपनी शुभ-कामनाए समर्पित करता हू।

इनसे मिलिये

शान्ता जैन

□□

आपसे एक छोटा-सा प्रश्न पूछू ? आपको बहुत जोर की भूख लगी हो और आपको लगे कि बस कैसा ही मामूली-से-मामूली खाना मिल जाय, लेकिन उस समय आपको मिले आपकी बेहद पसद वाला बढिया खाना, जो आपकी क्षुधा और मन दोनो को तृप्त कर दे तो आपको कितना सतोष होगा ?

अच्छा, इस बात को भी रहने दीजिए। आपको जीवन मे निराशा-ही-निराशा हो और आपको कोई माग न सूझ रहा हो। ऐसे समय मे यदि कोई अपने उदात्त विचारो से आशा की नई ज्योति जला दे और आपका जीवन जगमग कर दे तो आपको कैसा लगेगा ?

जीवन मे विभिन्न प्रकार के व्यक्तियो से मिलने के अवसर आते रहते हैं, लेकिन हर कोई अपनी छाप नही छोड पाता। लेकिन कुछ बिरले इन्सान होते हैं, जो अपने विचारो से, अपने जीवन से दूसरो पर गहरा प्रभाव डाल जाते है। वे छोटी-से-छोटी बात को भी इस प्रकार समझाते हैं कि उसमे छिपा बडा अर्थ सामने आ जाता है।

स्वाभाविक है कि ऐसा व्यक्ति मिलने पर आप सकोच से भर उठे कि उससे बात क्या करे ? उसके साथ तो बौद्धिक स्तर पर गहन विषयो पर विचार-विमर्श होना चाहिए।

लेकिन ठहरिए, आप चिन्ता न करे और ऐसे व्यक्ति से मिलें, जिससे आप फिल्मी साहित्य की, फिल्मी अभिनेता अमिताभ की चर्चा कर सकते है। आप पाएगे कि आपको उत्कृष्ट विचारो को खुराक मिल रही है। ऐसा व्यक्ति हर क्षण, हर पल अपनी विद्वत्ता के साथ अपनी ममता से सबको सराबोर करता रहता है। वह बच्चो की उछल-कूद मे स्वय बच्चा दिखाई देता है। ऐसे व्यक्ति को आप किस सबोधन से पुकारेंगे ? उसके विषय मे क्या कहेगे ?

आप जानना चाहेगे कि आखिर ऐसा व्यक्ति है कौन ? मैं कहना चाहती हू कि उन जैसे व्यक्ति को शायद मुझ जैसी अनेक वेटिया मिल जाएगी, मगर मुझे वैसा पिता-तुल्य व्यक्ति शायद ही मिले। मुझे पूरा विश्वास है कि आपके सामने वह नाम आएगा तो आप स्वय श्रद्धा से नतमस्तक हो जाएगे।

वह व्यक्ति है हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक, विचारक और वक्ता श्री यशपाल जैन।

मेरे भाई, साथी और मित्र

अक्षय कुमार जैन

□□

जिस प्रकार अपने बारे मे लिखने मे सकोच होता है, उसी प्रकार भाई यशपालजी के सम्बन्ध मे लिखने मे कठिनाई हो रही है। वे मेरे ममेरे भाई तो है ही, उसमे भी अधिक मित्र और साथी रहे हैं। हम दोनो का विद्यारभ लगभग एक ही साथ हुआ। स्कूल मे साथ थे, पर उच्च शिक्षा के लिए वे इलाहाबाद गए और मैं बनारस। आयु मे वे मुझसे तीन साढे तीन वष बडे है। पढाई मे जब उन्होने बी ए पास किया तब मैं बी ए मे पहुचा। फिर उन्होने एल-एल बी पास किया, पर वकालत नही की।

यह भी एक सयोग है कि वे भी साहित्यकार, पत्रकार बने और मैं भी उसी क्षेत्र मे चला गया। बचपन की कितनी ही स्मृतिया हैं। किस प्रकार हम लोग शैतानी करते थे, लडते-झगडते थे और फिर एक हो जाते थे। लडने-झगडने का यह क्रम बचपन मे ही समाप्त हो गया। भाभी आदश कुमारी के साथ उन्होने अन्तर्जातीय विवाह करके एक आदश प्रस्तुत किया।

मैं जब दिसम्बर, १९४६ मे स्थायी रूप से दिल्ली आया तब वे भी आ चुके थे और सुप्रसिद्ध प्रकाशन-सस्था 'सस्ता साहित्य मण्डल' मे जुड गए थे, जिसके आज वे मत्री हैं। पिछले ३८ वर्ष दिल्ली मे कैसे गुजर गए, इसका पता न चला। भाई यशपालजी का वरद् हस्त सदा मेरे सिर पर रहा है। दिल्ली के सामाजिक, सास्कृतिक जीवन मे वे आगे बढे और जैसा उन्होने चाहा, मैं सहयोग करता रहा।

वे गाधीवादी लेखक है और कथाकार भी। उनकी पिछले दिनो जो सस्मरण पर पुस्तक निकली,

उसमें उनकी प्रतिभा का पूरा विकास हुआ है। उनके सम्पादकत्व मे 'जीवन साहित्य' मासिक पत्र गत कई दशाब्दियो से सफलतापूर्वक निकल रहा है और गाधीवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाला एकमात्र मासिक रह गया है।

निर्बल स्वास्थ्य और अशक्यता के कारण मेरे लिए बहुत लम्बे सस्मरण लिखना शक्य नहीं है। यशपालजी का अभिनन्दन बहुत पहले हो जाना चाहिए था, पर जैसा होता रहा है, देर से ही सही, यह कार्य अब सम्पन्न हो रहा है। मैं भाई की हैसियत से उनके दीर्घ और स्वस्थ जीवन की कामना तो करता ही हू, छोटा होने के नाते उन्हें प्रणाम भी निवेदित करता हू।

दो झांकियां

लीलावती

□□

व्यक्ति के जीवन की झाकिया कभी-कभी जीवन के ऐसे पहलुओ को उजागर कर देती हैं, जो साधारणतया अदर ही सिमटे पडे रहते है। कभी-कभी तो व्यक्ति स्वय उन पहलुओ से अनभिज्ञ रहता है, क्योकि वे उसकी प्रकृति के लिए इतने सहज-स्वाभाविक होते हैं कि वह उन्हे अधिक महत्व नही देता। इस प्रकार की झाकिया जितनी स्पष्टता से व्यक्ति के चरित्र को उभार कर सामने लाती हैं, उतनी और कोई वस्तु नही।

यहा यशपालजी की ऐसी दो झाकिया प्रस्तुत करने की इच्छा हो रही है। बहुत पहले की बात है। यशपालजी पाडिचेरी आए थे और हमारे यहा ही ठहरे थे। उनके साथ मदालसा बहन और दो-एक सज्जन और भी थे। स्वभावतया हमारी यही इच्छा थी कि हमारे ये सम्मानित अतिथि अच्छी तरह आश्रम देखें, यहा की शैली को गहराई से समझे-बूझे जिसके लिए वस्तुत वे यहा आए थे। मैं इस बात का भी विशेष प्रयास करती थी कि उनके आतिथ्य-सत्कार मे कोई त्रुटि न रह जाय, वे आराम से रहे-सहे और अपना पूरा समय, निश्चितता से, अपने यहा आने के प्रयोजन मे लगाए।

यशपालजी क साथ हमारे सबध मे कोई औपचारिकता तो थी नही। मुझे जब कभी अपने अतिथियो की भोजन-विषयक रुचि आदि का पता लगाना होता था, मैं चुपके से उनसे पूछ लेती थी। वे भी निस्सकोच मुझे बता दिया करते थे। एक दिन मदालसा बहन भाप गई। वे यशपालजी से कुछ तेजी के साथ बोली, "आपको लीलावतीजी की हैरानी का ख्याल नही आता, नित नई फरमाइशें करते रहते हैं। यह नही कि उनका काम कम करें, उल्टा और बढ़ा देते है।" यशपालजी का मुह उस समय देखने लायक था। मैंने वैसी बच्चो जैसी मासूमियत इतने बडे आदमी के मुह पर पहले कभी नही देखी थी। मदालसा बहन के स्वभाव को यशपालजी

अच्छी तरह जानते थे। फिर भी वह बडे भोलेपन से मुझसे बोले, "सच, आपको हैरानी होती है !" मुझे हसी आ गई। मैंने कहा, "नही तो मुझे कोई हैरानी नही हो रही।" कह कर मैंने उन्हे निश्चिंत कर दिया, पर उनकी वह मासूमियत मेरे दिल को छू गई। कितने लोगो मे ऐसी मासूमियत, ऐसी बालसुलभ सरलता और सादगी होती है।

एक बात और याद आ रही है। मैं दिल्ली मे थी। मैंने यशपालजी को फोन किया कि मैं उनसे मिलना चाहती हू। उन्होने मुझे अपने घर आने का नियत्रण दिया, पर मैं नई दिल्ली मे रहती थी और वह पुरानी दिल्ली मे थे। मैंने कहा, "यशपालजी, नई दिल्ली मे ही कोई स्थान बताइए, जहा हम मिल सकें।" उन्होने मुझे 'सस्ता साहित्य मडल' मे आने को कहा और मैंने सहष स्वीकार कर लिया। क्योकि वह हमारे घर के निकट ही था। हम वहा बैठे बहुत-सी बाते करते रहे। वे पाडिचेरी आश्रम और माताजी के विषय मे बहुत-सी बातें पूछते रहे। अत में मैंने उनका तथा उनके बच्चो का हालचाल पूछा। उन्होने बताया कि उनका लडका कनाडा में है और वहा उसने किसी परीक्षा मे—परीक्षा का नाम मुझे याद नही आ रहा—विशिष्टता प्राप्त की है। मैंने अत्यत प्रसन्नता प्रकट की। इतने मे एक सज्जन जो पास ही बैठे थे और हमारा वार्तालाप ध्यान से सुन रहे थे, बोल उठ, "वही न, जिसे पिछले वर्ष यहा असफलता मिली थी ?" अब मुझे ठीक शब्द याद नही, पर कुछ ऐसा ही उन्होने कहा था। मैं एकदम सकते में आ गई। यह कौनसा अवसर है इस तरह की बात कहने का ! मैंने डरते हुए यशपालजी के मुह की ओर देखा पर वहा वही शात भाव विद्यमान था, मानो उसकी कोई प्रतिक्रिया ही उन पर न हुई हो। क्रोध की एक हल्की सी छाया भी मुझे वहा दिखाई न दी। उन्होने उन महानुभाव से धीरे-से कहा, "आपको गलतफहमी हुई है मेरे लडके को कभी असफलता नही मिली।" मैंने एक दृष्टि उन सज्जन के मुह की ओर डाली और एक यशपालजी की ओर, और हम पुन बातचीत मे निमग्न हो गए।

इन दो झाकियो ने मेरे सामने अनायास ही उनके चरित्र के ऐसे दो पहलुओ को उजागर कर दिया, जो वस्तुत दैवी गुण कहलाते है।

उनके जन्मदिवस पर मेरी यही शुभकामना है कि प्रभु उनके इन गुणो को उत्तरोत्तर विकसित करे।

कर्मठ और सेवानिष्ठ व्यक्तित्व

सत्यवती मल्लिक

□□

श्री यशपालजी जैन और 'हिन्दी भक्त' की बात कहने मे पूर्व और पीछे के अनेक प्रसग बरबस मन मे उठ आते है । अब से लगभग ४० वर्ष पूर्व दिल्ली मे विशेष राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन होने जा रहे थे। उसमे प्रमुख समस्या यह थी कि किस प्रकार दिल्ली के साहित्यिक और सास्कृतिक जीवन मे प्राण ढाले जाए, वायुमडल रुचिकर तथा चेतनशील बनाया जाए ? समस्त उन्नत बिखरी शक्तियो व और प्रतिभाओ को एकत्र कर एक मच पर लाया जाए ?

परिणाम-स्वरूप दिल्ली मे एक वृहत 'भारतीय साहित्य परिषद' का आयोजन करने का विचार हुआ । उसमे प्राय सभी भारतीय भाषाओ के विद्वान लेखक-लेखिकाए, कवि, सम्पादक और प्रकाशक सम्मिलित होने वाले थे । दिल्ली के सभी सम्मानित नागरिको ने भरपूर सहयोग दिया ।

इस परिषद् के सचालक थे श्री जैनेन्द्र कुमारजी । उन्होने ही जाने कैसे मुझे और भाई यशपालजी को दिल्ली के प्रमुख नागरिको के पास जाकर अर्थ और स्थान आदि कार्यों के लिए सहायता मागने के लिए चुना और हम लोग साथ-साथ घूमे । वे दिन याद आते हैं, जब हम दोनो कभी-कभी भूखे-प्यासे भी तागे मे बैठकर, नई-पुरानी और न जाने कहा-कहा दिल्ली के गली-मुहल्लो मे गए। हमे यह देखकर प्रसन्नता होती थी कि दिल्ली के नागरिको के अतिरिक्त प्राय सभी कालेजो के प्राचार्यों, अध्यापको, छात्रो आदि ने कितने उत्साह और उदारता के साथ सभी प्रकार से इस परिषद् को गौरवमय तथा सफल बनाने के लिए योग दिया। फलत ट्रावनकोर हाऊस मे इस स्थायी रूप देने के लिए एक कार्यालय भी खोला गया। पर देश के विभाजन से उत्पन्न समस्याओ के कारण उसे स्थगित करना पडा ।

यशपालजी कुछ वर्ष के लिए श्रद्धेय बनारसीदासजी के साथ 'मधुकर' के सम्पादन के हेतु टीकमगढ (मध्यप्रदेश) चले गए, किन्तु उनके दिल्ली लौटने पर हम लोग पुन सभाओ और समाज निर्माण की योजनाओ मे लग गए। अब आवश्यकता पडी कि कैसे इन सभी छोटी-मोटी सभाओ और गोष्ठियो को वृहत रूप दिया जाए और स्वराज्य प्राप्ति के बाद यह था भी अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य। सोचा गया कि रोमा रोला क्लब, शनिवार समाज, चित्रकला सगम आदि सबको शामिल कर 'हिन्दी भवन' नामक एक वृहत-सस्था दिल्ली के प्रमुख केन्द्र कनाट सर्कस मे स्थापित की जाए, जिसमे सभी भाषाओ का सुन्दर पुस्तकालय, वाचनालय, सग्रहालय हो और समय-समय पर उसमे व्याख्यान, प्रवचन, काव्यपाठ आदि होते रहे। डा राजेन्द्र प्रसादजी के आशीर्वाद और प्रेरणा से स्थानीय थियेटर कम्यूनिकेशन बिल्डिग मे नई दिल्ली नगर पालिका के अतर्गत दो कमरे मिल जाने पर यह स्वप्न पूरा हुआ। जब मुझे पूज्य दादाजी (प बनारसीदासजी चतुर्वेदी, एम पी) के आदेश से इसके मुख्य सचिव का भार सौंपा गया तो कायकारिणी के सदस्यो मे से भाई यशपालजी के सह-सचिव निर्वाचित होने पर मुझे बडा सहारा और आश्वासन मिला, क्योकि आगे चलकर कार्य का निरतर विस्तार होता जा रहा था। वे तथा स्व श्री मार्तंडजी उपाध्याय यहा से बहुत समीप थे। जरा सी देर मे जब भी मुझे कठिनाई और सलाह-मशविरे की जरूरत होती तो 'सस्ता साहित्य मण्डल' से दोनो ही बधु तुरन्त

पहुच जाते और उचित व्यवस्था कर देते। यशपालजी से बजट गोष्ठियो, फाइलो मे आदि सहायता मिलती, मार्तंडजी से आर्थिक मामलो मे।

'हिन्दी भवन' के युग की कई प्रवृत्तिया, स्मृतिया, बैठके चिरस्मरणीय थी। उनके विषय मे विस्तार से कुछ कहना इस समय सभव नही है। जिस ध्येय को लेकर हमने इसे आरम्भ किया, वह पूरा हुआ। देश-विदेश के लेखक, विद्वान, कवि, चित्रकार वहा समय-समय पर आते रहे। थियेटर कम्यूनिकेशन बिल्डिंग मे उनके उदात्त स्वर वर्षों तक गूजते रहे।

भाई यशपालजी को उनके मित्र बधुओ द्वारा अभिनदन-ग्रन्थ समर्पित किया जाना समस्त दिल्ली के लिए परम हर्ष और गौरव की वस्तु है, क्योकि यशपालजी के द्वारा ही अत्यन्त परिश्रम और कौशल से सम्पादित दर्जनो अभिनदन ग्रन्थ, जिनमे प्रमुख विभूतियो के महान चरित्र और प्रान्त-प्रान्त की भाषाओ का अनोखा सरस साहित्य निहित है, सहसा मन मे उभर आता है। इन ग्रन्थो मे नाथरामजी प्रेमी, गाधीजी, विनोबाजी, राजेन्द्र प्रसाद, नेहरू, बनारसीदासजी प्रभृति के ग्रन्थ भारतीय जीवन की अनमोल निधि हैं।

मुझे उन दिनो की आज भी याद आती है जब 'प्रेमी अभिनदन ग्रन्थ' की योजना बनी तो आदरणीय चतुर्वेदीजी और स्वय यशपालजी ने आग्रहपूर्वक मुझे उसमे महिला मण्डल खण्ड के सम्पादन तथा उसके अतर्गत कई लेख एकत्र करने के लिए निमत्रित किया। उस सदभ मे जहा एक ओर 'भारतीय वाड्मय मे महिलाओ की बौद्धिक देन' के लिए कभी दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय और पुरातत्व विभाग मे घूमती तो दूसरी ओर श्रीनगर (कश्मीर) जाकर कश्मीरी भाषा मे वहा की कवयित्रियो के सुभाषित और कविताए सकलित करती। कश्मीर मे मुझे प्राय एक मास ठहरना पडा और प्राचीन कश्मीरी घरानो मे जाकर विशिष्ट महिलाओ से मिलने का अवसर मिला। कितना अमूल्य, अद्वितीय भडार स्त्रियो द्वारा विरचित है, वैदिक, सस्कृत, प्राकृत, पाली, जैन, बौद्ध साहित्य मे — इस सबका ज्ञान मुझे उन्ही दिनो हुआ।

टीकमगढ से प्रकाशित होने वाले 'मधुकर' पत्र का सम्पादन करते हुए यशपालजी मुझे सदा ही कुछ लिखने के लिए प्रेरणादायक पत्र भेजते रहते थे। जब तब मैं उसमे लिखती भी थी, किन्तु लिखने से अधिक दिल्ली मे बैठे-बैठे मैं उस छोटे से पत्र मे प्रकृति की उन्मुक्त छटा का आनद लेती। बुन्देलखण्डी भाषा मे जनपदो पर अनेक रोचक लेख, शिकार, वन-भ्रमण, नदियो के सगम के विवरण मन को मुग्ध कर देते थे। आज किसी भी पत्र मे वैसी रचनाए नही मिलती। दु ख है कि 'मधुकर' की पूरी फाइल मेरे पास नही है।

यशपालजी ने जब से 'सस्ता साहित्य मडल' का दायित्व सम्भाला है, तब से उनके द्वारा सम्पादित और प्रकाशित सहस्रो उच्चकोटि की पुस्तके निकली है। उन सब पुस्तको का विवरण देना मेरे बस का नही है, किन्तु प्रसाद रूप मे प्रति वर्ष गाधी डायरी तथा प्रतिमास 'जीवन साहित्य' मुझे मिल जाता है। उनसे मुझे बहुत प्रेरणा मिलती है। आत्मिक तथा आध्यात्मिक रूप से ही नही, शारीरिक आदि-व्याधियो के उपचार और उपाय पढकर भी मुझे बडा लाभ होता है। उससे भी अधिक यशपालजी की पैनी समीक्षाए और सामाजिक विषयो पर सम्पादकीय टिप्पणिया आदि मुझे आश्चर्य मे डाल देती हैं। कैसे वे इतनी बडी सस्था का प्रबन्ध और भार सम्हालते हुए कभी तो गगोत्री, कभी गोमुख, कभी केदार तो कभी बदरी, कभी जमुनोत्री तो कभी अमरनाथजी के गिरि शृगो पर, कभी भारत से बाहर मारीशस, फिजी, बर्मा, अफ्रीका, अमरीका

कनाडा, रूस मे विचरते दिखाई देते हैं। हाल ही मे उन्होंने चीन देश की लम्बी यात्रा के सस्मरण सुनाए। वे देश-विदेश के सर्वश्रेष्ठ विद्वानो और साहित्य-सेवियो से परिचित हैं। उनका क्षेत्र और जीवन-दर्शन इतना विस्तृत है कि मेरे लिए उसे शब्दो मे बांधना असम्भव है। साथ हैं उनकी सहधर्मिणी श्रीमती आदर्श कुमारीजी, जो अत्यन्त संतुलित और सुसस्कृत महिला तथा सफल लेखिका हैं।

उनका पारिवारिक परिवेश मीजो सुपुत्र चि सुधीर, सुपुत्री अन्नदा तथा कलाकार भाई-बहनो से प्रेम बंधन मे गुथा और सुखमय है।

वास्तव मे इन सबके मूल मे है उनकी स्व पूज्यनीया माताजी का साधनामय जीवन, जिनकी मजुल छवि जब भी मैं प्रतिवर्ष दरियागज नई दिल्ली मे उनकी स्मृति मे आयोजित प्रतियोगिता के अवसर पर उन्हें श्रद्धाजलि अर्पित करने जाती हू, चित्र पर अकित हो जाती है। वे एक आदश जैन महिला थी। उनके दिए गए सस्कार ही इस घर मे प्रवाहित हो रहे हैं।

ऐसे हैं उच्चकोटि के जागरूक व्यक्ति, नागरिक, पत्रकार-साहित्यिक स्तम्भ, और परम स्नेह-शील, जिनसे हमारे परिवार का वर्षों से सम्बन्ध रहा है। इस मगलमय अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाए। वे सदा ऐसे ही प्रफुल्लित-आनन्दित रहे और हमारे मधुर सम्बन्ध भविष्य मे और भी प्रगाढ़ होते रहे।

सतुलित जीवन के साधक

मुरलीधर दिनोदिया

□□

उन दिनो की बात है जब प बनारसीदास चतुर्वेदी ओरछा (टीकमगढ) नरेश की कुण्डेश्वर-स्थित कोठी मे रहते हुए वहा से 'मधुकर' पाक्षिक पत्र का सम्पादन करते थे। तब मैं सयोगवशात् उधर से गुजरते हुए ललितपुर स्टेशन पर उतरा और उनके दर्शनार्थ कुण्डेश्वर पहुच गया। उनसे मेरा सम्पर्क पत्र-व्यवहार द्वारा ही चला आ रहा था। मैं उनके द्वारा कलकत्ता से सम्पादित 'विशाल भारत' मासिक का आरम्भ से अन्त तक पाठक रहा हू। लम्बे पत्र लिखने की बीमारी से हम दोनो समान रूप से पीडित रहे हैं। उन दिनो वह चतुर्वेदी जी के सहयोगी के रूप मे भाई यशपाल जैन कार्यरत थे और 'मधुकर' के अतिरिक्त 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ' की सारी व्यवस्था वही सम्भाले हुए थे। सन् १९४६ मे नागपुर मे श्री नाथूराम प्रेमी को काका कालेलकर द्वारा वह ग्रन्थ समर्पित किया गया। यह ग्रन्थ बहुत सुन्दर और उपयोगी है।

कुण्डेश्वर से यशपालजी दिल्ली आने पर 'सस्ता साहित्य मण्डल' में कार्यरत हो गये तो यहा से भी उन्होने अनेक अभिनन्दन ग्रन्थो का सम्पादन किया। गाधीजी, विनोबाजी, राजेन्द्र बाबू, नेहरू, काका

कालेलकर के ग्रन्थ यशपालजी के ही परिश्रम का परिणाम हैं। प बनारसीदास चतुर्वेदी को समर्पित अभि-नन्दन 'प्रेरक साधक' का भी उन्होंने ही सकलन-सम्पादन किया। ग्रन्थ अत्यन्त मूल्यवान है।

यशपालजी की लेखन मे रुचि-रुझान अपने स्कूल जीवन से ही हो गया था। उन्होंने इसे अपनी जीवन-वृत्ति ही बना लिया। उस समय उन्होने कलम पकडी तो उसे आज तक मजबूती से थामे हुए हैं। अनेक पत्र-पत्रिकाओ का सम्पादन किया है कर रहे हैं। अनेक अभिनन्दन-ग्रन्थो का सम्पादन किया है। साहित्य की अनेक विधाओ मे लगभग चालीस मौलिक पुस्तको का सृजन किया है, जिनमे से अनेक कृतियां पुरस्कृत हुई हैं। अनेक सस्थाओ ने यशपालजी को अलकारो से विभूषित किया है। इन्होने स्वदेश मे पर्याप्त भ्रमण किया है और विदेशो मे तो शायद ही अन्य किसी हिन्दी साहित्यकार ने इतना पर्यटन किया हो। अमेरिका, यूरोप, कनाडा, जापान, चीन, रूस, मारीशस आदि लगभग ४२ छोटे-बडे देशो मे वह हो आये हैं। कई देशो मे तो वह एका-धिक बार गये हैं।

साहित्य के अतिरिक्त सामान्य सास्कृतिक गतिविधियो मे उनका योगदान बराबर रहा है। जैनाचार्य तुलसी गणी के अणुव्रत आन्दोलन, सन्त बिनोबा भावे के सर्वोदय और भूदान आन्दोलन के साथ वह जुडे रहे हैं। ब्रह्मलीन मुक्तानन्द परमहस के प्रति वह विशेष आकर्षित रहे है। श्री सत्यनारायण गोयन्का की विपश्यन-साधना मे वर्षों से रुचि ले रहे हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति उनका सदा लगाव रहा है। गाधीवादी साहित्य-कारो मे यह अपना प्रमुख स्थान रखते हैं।

देश के अनेक साहित्यिक और सामाजिक सभा-सम्मेलनो-गोष्ठियो मे उनका सक्रिय योग रहता है। आकाशवाणी से उनकी वार्ताएं सुनने को मिलती हैं। पत्र-पत्रिकाओ मे वह बराबर लिखते रहते है। 'चित्रकला सगम' आदि कई स्थानीय सस्थाओ के साथ उनका घनिष्ठ सहयोग है।

यशपालजी सक्रिय राजनीति से सदा दूर ही रहते है। यह हिन्दी के लिए अच्छा ही है, अन्यथा राज नैतिक दलदल मे धसकर वह हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे इतना कहा कर पाते! गाधीवाद मे उनकी गहरी आस्था है। जातिवाद, साम्प्रदायिकता आदि से उनका तनिक भी लगाव नही है। हिन्दी साहित्यकारो मे प्राय गुटबन्दी चलती आयी है, पर वह इस कुप्रवृत्ति से सर्वथा मुक्त है। न किसी के मुह-देखा स्वय बने और न किसी को अपना मुह देखा बनाया।

यशपालजी के लेखन मे कही भी कोई अशिष्ट, असभ्य, असस्कृत, अशोभन, अरुचिकर प्रसग नही मिलेगा। उसमे एक स्वच्छन्द, निर्मल, पवित्र अन्तर्धारा-सी बहती चलती है। इधर हमारे देश मे राजनैतिक, साहित्यिक, शासकीय, शैक्षिक, वाणिज्य व्यावसायिक, सामाजिक आदि क्षेत्रो के मूल्यो मे जो भारी गिरावट आयी है, उसके प्रति यशपालजी के मन मे बडा क्षोभ है असतोष है, आक्रोश है। उनकी सम्पादकीय टिप्पणियो मे इस अवमूल्यन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया का परिचय भली-भाति मिलता है, जो कभी-कभी तो पाठक को झकझोर देता है।

'सस्ता साहित्य मण्डल' जैसी पुरानी, प्रतिष्ठित प्रकाशन-सस्था की व्यवस्था 'जीवन-साहित्य' पत्रिका का सम्पादन, देश-विदेशो मे इतना पर्यटन, इस सबके कारण भारी व्यस्तता के होते हुए भी वह इतना अधिक लेखन कैसे कर पाते हैं? मैं तो इसका भेद यह समझता हू कि बहन आदर्श कुमारी के रूप मे अत्यन्त अनुकूल गृहिणी उन्होने पायी है। एक पुत्र है सुधीर, जो कनाडा मे है और एक पुत्री अन्नदा है, जो बिरला ग्राम (नागदा) मे है। दोनो अपनी-अपनी गृहस्थी मे सुखपूर्वक रह रहे है। 'छोटा परिवार सदा सुखी' का मन्त्र यशपालजी ने बहुत पहले ही प्राप्त कर लिया था। वह नियमित, व्यवस्थित रूप मे काम करने वाले हैं, मित-भाषी है, कटु प्रसगो को टालना जानते हैं, दूसरो के पचडो मे टाग नही अडाते। कलहकारी प्रसगो से बचते

हैं। धन-माया की वृथा हाय-हाय मे नही पडते। सम्पर्क सूत्रों को उनके पुराने पड़ जाने पर भी टूटने नही देते। उद्विग्नता उनको विचलित नही कर पाती। दूसरे का अनिष्ट नही करते। सादा रहन-सहन है। कोई व्यसन नही पाला। इसी से इस वय मे भी वह तन मन से स्वस्थ हैं।

मैं कुण्डेश्वर गया तब उनके साथ मेरा सम्पर्क बना। उन दिनो मैं गाव मे था। खूब पत्र-व्यवहार चलता था। मुझे याद है, 'मधुकर' मे छपे मेरे एक लेख का कुछ अश गांधीजी के पत्रो मे छपा था। यशपालजी ने इस पर अपना हर्ष प्रकट करते हुए गाधीजी के साप्ताहिक पत्र की कतरन मुझे भेजी। अब तो बहुत वर्षों से मैं भी दिल्लीवासी बना हुआ हू। उनसे बराबर मुलाकात होती रहती है और पत्रो का आदान-प्रदान भी चलता रहता है।

भाई यशपाल जैन ने अपनी योग्यता लगन, कार्यकुशलता, श्रमशीलता और दीर्घकालीन, सन्तुलित जीवन की साधना के बल पर जो, यशोपार्जन किया है, उस पर हम सभी मित्रो को बडा गर्व है, हर्ष है।

प्रवासी भारतीयों के मार्ग-दर्शक

महातम सिंह

श्री यशपाल जैन जी से मेरा सम्पक सन १६६४ मे पूज्य काका साहेब कालेलकर के लिए समर्पण-ग्रथ के निर्माण के अवसर पर हुआ। नई दिल्ली स्थित भारतीय सास्कृतिक सबध के अधिकारियो से चर्चा के व्यस्त अवसर पर भी एक सुयोग्य सम्पादक के नाते किस तरह उन्होने उक्त ग्रथ के लिए एक सस्मरण मुझसे लिखवा लिया था, आज भी मुझे याद है।

यह आकस्मिक परिचय घनिष्ठता मे परिणत होता गया और हम लोगो के लिये अतीव प्रसन्नता की बात हुई जब २६ जून, १६७२ को यशपालजी सूरीनाम पधारे तथा यहा से गियाना और ट्रिनीडाड भी गए। दीनबधु एण्डरूज, हृदय नाथ कजरू और आचार्य काका साहेब कालेलकर की तरह ही उनकी यात्रा से भारतीय साकृतिक के समन्वयात्मक आधार को सबलता प्राप्त हुई। हिंदी के नवोदित कवियो और लेखको को नवीन प्रेरणा मिली।

साहित्य, सास्कृतिक और समाज-सेवा के लिए समर्पित यशपालजी जैस व्यक्ति की बहत्तरवी वर्ष गाठ के अवसर पर हम सबकी मगल कामनाए। हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि वे एक लम्बी अवधि तक स्वस्थ और शक्ति सम्पन्न रहते हुए भारतीयो तथा प्रवासी भारतीयो का मार्ग-दर्शन करते रहे।

मेरा आत्मीय

भगवती जैन

□□

यशपाल इलाहाबाद मे पढता था। एल-एल बी पास करने के बाद उसकी चिट्ठी इनके (जैनेन्द्रकुमार) पास आई कि मैं आपके पास आना चाहता हू। मैं उस समय काम कर रही थी। मुझे उन्होने इस पत्र मे जो लिखा था बताया तो मैं कुछ झुझला उठी। हमारे अपने घर की ही समस्याए थी, किसी दूसरे को घर मे बुलाकर क्यो परेशानी मे डाले ? इन्होने सबकुछ खोलकर लिख दिया, लेकिन इतने पर भी यशपाल हमारे घर आ गए। घर मे आकर यशपाल ने मेरे बच्चो को अपने सगे भाई-बहनो का क्या, बल्कि उससे भी ज्यादा प्यार दिया। दूसरे के घर को इतना ज्यादा अपना बना लेना, यह यशपाल का गुण है। मुझे जबतक यह मेरे पास रहा, कभी यह नही लगा कि यह मेरा अपना नही है। अपने घर मे चाहे उसने कुछ भी नही किया था, लेकिन मेरे हर काम मे उसने हाथ बटाया और यद्यपि मेरी उसकी उम्र मे एकाध वर्ष का ही अन्तर होगा, लेकिन मुझे सदा यही आभास होता था कि मैं उसकी सगी मा हू।

यशपाल हमारे ही कमरे मे सोता था। एक बार मैंने देखा कि वह बहुत रात गए तक सोया नही है। मैंने कहा, "यशपाल, क्या बात है, नीद नही आ रही ?" उसने टालते हुए कहा, "कुछ नही, सिर मे दर्द हो रहा है।"

मैं उठी और सिर पर तेल की मालिश की और फिर कहा, "आखिर बात क्या है ? मुझे भी नही बताएगा ?"

उसने कहा, "भाभी, मुझे आपको इतना ज्यादा काम करते हुए देखकर अच्छा नही लगता, लेकिन एक आप हैं कि चाहे कितना काम हो, पर माथे पर शिकन नही आती।"

मुझे बडी सान्त्वना मिली कि कोई इस घर मे मेरा इतना हमदर्द है। मेरा गला भर आया और कहा, "अरे, शिकन किस बात की ? मेरा जीवन तुम लोगो के लिए ही तो है।"

आज यद्यपि उसकी गृहस्थी और घर अलग है, पर हम लोगो की आत्मीयता और घनिष्टता मे कोई कमी नही आई है। आज भी दोनो परिवार एक ही है।

जीवन के ७२ वर्ष पूरे करने के मगलमय अवसर पर मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि बेटे यशपाल का उत्तम स्वास्थ्य और कर्मठता सदा बनी रहे और उसका यश हिमालय की ऊचाइयो तक पहुचे।

मेरे सम्बन्धी

सुभद्र कुमार पाटनी

□□

यों तो श्री यशपाल जी जैन को, एक साहित्यकार के रूप मे एक अरसे से जानता था, पर मिला कभी नहीं था। पूज्य दा साहब (स्व हरिभाऊजी उपाध्याय) के यहा एक विवाह मे सम्मिलित होने वह सपरिवार जयपुर आये हुए थे। उन्ही के यहा सबसे पहली बार उनसे साक्षात्कार हुआ। उस दिन यह कल्पना भी नही की थी कि तीन दिन के भीतर वह परिचय एक रिश्तेदारी मे बदल जायेगा। उनकी पुत्री अन्नदा को हम लोगो ने छोटे भाई कमल के लिए पसन्द कर लिया। श्री यशपाल जी का व्यक्तित्व इस पसन्द मे हमारा सहायक रहा।

इस शादी के बाद हम लोग बहुत निकट आ गये। एक-दूसरे को जानने और पहचानने का ज्यो-ज्यों मौका मिला, मैंने पाया कि श्री यशपाल जी एक बहुत सरस व्यक्ति हैं, अभिमान और बनावट से मुक्त, सीधे-सच्चे। विचारधारा और प्रकृति मे बहुत कुछ समानता के कारण हमारे बीच सम्बन्धियो जैसा औपचारिक रिश्ता कभी नही रहा।

श्री यशपालजी एक कुशल लेखक और अनुवादक तो है ही, साथ मे सुलझे हुए विचारक भी हैं। सभी विषयो मे उनकी रुचि मैं देखता हू। सैर-सपाटे का शौक भी बहुत है। विश्वभर मे घूम-फिर कर उन्होंने बहुत-कुछ देखा-सीखा है, यात्राओ का वर्णन बहुत ही रोचक ढग से करते मैंने उनको सुना है। सुनने वालो मे वे बडी उत्सुकता और दिलचस्पी पैदा कर देते हैं। उनका आत्मीयतापूर्ण व्यवहार कुशलता से शीघ्र ही दूसरो को अपनी ओर आकर्षित करने की अद्भुत योग्यता का अनुभव न केवल मैंने किया है, बल्कि मेरे कारण इनके सम्पर्क मे आने वाले कई मित्रो ने भी इसे स्वीकार किया है। उनकी लोकप्रियता का यही रहस्य है। आतिथ्य मे दोनो पति-पत्नी बेमिसाल है। ऐसी मोहब्बत के साथ दोनो पीछे पडते हैं कि कोई छुटकारा नही पा सकता। खाने का शौक कम है, पर दूसरो को खूब खिलाकर आनन्द लेते हैं। सीखने लायक कितने ही गुण मैं उनमे पाता हू।

श्री यशपाल जी के भरे हुए हसमुख चेहरे और स्वस्थ शरीर को देखकर नही लगता कि वह ७२ वर्ष के हो गये। युवको जैसी स्फूर्ति और चेतना इनमे मौजूद है। मेरी यही शुभकामना है कि वह सदा ऐसे ही बने रहे।

पुरुषार्थ और सूझ-बूझ के धनी

रंजीत प्रसाद जैन

□□

श्री यशपालजी से मेरा प्रथम परिचय सन १९३५ की गर्मियो मे हुआ। उन दिनों वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी ए की परीक्षा पास करके आए थे। इनके गाव बीझलपुर (विजयगढ़) मे दो सप्ताह बिताने का भी मुझे सुयोग मिला।

सन् १९३६ तक इनसे मेरा पत्र व्यवहार और यदा-कदा विचारो का आदान-प्रदान भी चलता रहा। सन् १९३७ मे इन्होने एल-एल बी पास किया। वकालत मे रुचि तो नही थी, पर अपने होने वाले ससुर बाबू कामता प्रसाद का प्रोत्साहन मिला, जो उन दिनो इलाहाबाद हाईकोट मे एडवोकेट थे।

सन् १९३७ मे इनकी छोटी बहन का मेरे बडे भाई के साथ विवाह हुआ और तभी ये हमारे मामाजी श्री जैनेन्द्र कुमार के सम्पर्क म आए। यह सम्पक ऐसा रहा कि हमारे मामाजी हम से बढकर उनके 'मामाजी' बन गए। आज भी लोग मामाजी को इनके ही सगे मामाजी समझते है। मामाजी के कहने पर दिल्ली मे उन्होंने 'जीवन सुधा' पत्र का सम्पादन भार सभाल लिया और उस पत्रिका का जब 'लेखकाक' विशेषाक निकला तो सभी ने उसकी मुक्त कण्ठ से सराहना की।

गाव के रूढिवादी जैन परिवार मे पालन-पोषण होने पर भी न जाने कैसे उनमे इतनी निर्भीकता विकसित हो गई कि परिवार और समाज से टक्कर लेकर उन्होने कुलश्रेष्ठ कायस्थ परिवार के बाबू कामता प्रसाद एडवोकेट की ज्यष्ठ पुत्री आदर्श कुमारी के साथ दिल्ली मे सिविल मैरिज की। इसी बीच ये दिल्ली मे नही, वरन् टीकमगढ़ मे प बनारसीदास चतुर्वेदी के पास रह कर 'मधुकर' का सम्पादन कर रहे थे।

टीकमगढ से निकलने वाला पाक्षिक पत्र 'मधुकर' बन्द होने को था, अत सन् १९४७ मे यशपालजी फिर दिल्ली आ गए। मुशी प्रेमचद की स्मृति मे भारत की सभी भाषाओ के साहित्यकारो की एक परिषद बुलाने का आयोजन करने का निश्चय किया गया था और उसकी सारी व्यवस्था का भार यशपालजी को सौंपा गया। योजना सफलतापूवक बढ रही थी तभी भारत विभाजन की महान दुघटना ने यह काय ठप्प कर दिया। व्यवस्था गुण-सम्पन्न, अनुभवी और सूझबूझ के धनी व्यक्ति को 'सस्ता साहित्य मण्डल' के मत्री श्री मातण्ड (अब स्वर्गीय) उपाध्याय ने पहले ही भाप लिया था जब वह दिल्ली आने पर तीन वष 'सस्ता साहित्य मण्डल' के साथ जुडे रहे थे, अब यशपाल जी फिर 'मण्डल' मे आ गय और अपने परिश्रम, लगन और सच्चाई से वह 'मण्डल' पर छा गए और मार्तण्डजी अपने कार्यकाल मे इन पर बराबर निर्भर रहे।

अपनी नि स्वार्थ सेवा और त्याग-भावना से इन्होने 'मण्डल' को जो प्रतिष्ठा दिलाई है, वह आज प्रकाशक-जगत से छिपी नही है। यशपालजी का जीवन सीधा-सादा और आडम्बर-विहीन है। कोई व्यक्ति इनसे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। दूसरो के काम आने के लिए सदा तत्पर रहते है। इनकी उन्नति मे इनकी निर्मल हृदया, स्पष्ट भाषी एव कुशल भार्या श्रीमती आदर्श कुमारी का भी बहुत बडा योग रहा है।

भाई यशपाल जी के ७२ वर्ष पूरे होने के अवसर पर मैं कामना करता हू कि वह स्वस्थ रहे, शतायु हो और चिरकाल तक साहित्य और समाज की सेवा करते रहे।

श्रेष्ठ साहित्यकार

देववती शर्मा

□□

श्री यशपालजी श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। मातृभाषा, मातृभूमि और भारतीय सस्कृति—तीनो को उन्होंने अपना कर्मक्षेत्र चुना है और इस अनुष्ठान मे अपनी दृढ संकल्प शक्ति, आत्मीयता और शिष्टता को सम्बल बनाकर निरन्तर जीवन-पथ पर अग्रसर होते रहे हैं।

'सादा जीवन, उच्च विचार' के सिद्धान्त को सदा इन्होंने अपने सामने रक्खा है। गाधी और उनकी विचारधारा के यह सच्चे अनुयायी हैं। इसीलिए जब-जब मैंने स्कूल, कालेज और छोटी-बडी अनेक सस्थाओं और सभाओ मे उनके प्रेरणादायक भाषणो को सुना है, मैं मुग्ध रह गई हू। आज जब युवा वर्ग के पैर पश्चिम की सभ्यता के अधड मे उखड रहे हैं, वह उन्हे नैतिक आचरण पर बल देकर सदा सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करते हैं। उनकी वाणी मे इतनी सच्चाई और इतना ओज है कि भविष्य मे विद्यार्थी उनकी बातो को मानें या न माने, लेकिन भाषण सुनते समय उनके हृदय सद्‌भावो से भर जाते हैं और क्या मजाल कि कोई चू तक कर जाए। यह उनकी वाक शक्ति का ही आकर्षण है। वह जिस सादगी और नैतिकता की बात कहते हैं, उस पर चलकर युवा वर्ग के सामने अपना आदर्श भी प्रस्तुत करते हैं। उनकी कथनी और करनी मे कोई भेद नही है। उनका जीवन सरल, सादा और आडम्बर विहीन है। छोटे-बडे, गरीब-अमीर सबके साथ बहुत मधुर व्यवहार करते हैं। मैं तो कहूगी कि वह मधुरता, मृदुलता और आत्मीयता के प्रतीक है।

उनके व्यक्तित्व मे साहित्यकार और एक सहृदय का मणिकाचन सयोग है। इतने बडे साहित्यकार होते हुए भी उन्हें घमन्ड छ भी नही गया है। क्या कहानी, क्या निबन्ध, क्या यात्रा सम्बन्धी लेख, सभी मे इनके निमल और सवेदनशील हृदय की झाकी मिल जाती है। 'साबरमती के सत' मे श्री यशपालजी ने गांधी जी का पूरा चित्र और सिद्धान्तो का समावेश करके गागर मे सागर भर दिया है। यात्रा साहित्य तो इनका अनूठा है। 'जय अमरनाथ' पढकर लगता है कि हम भी उनके साथ-साथ यात्रा कर रहे हैं। यह उनकी सशक्त लेखनी और सक्षम शैली का ही चमत्कार है।

यशपालजी कुशल लेखक के साथ-साथ प्रतिभाशाली सम्पादक भी हैं। कैसी ही रचना उनके पास पहुच जाय, वह लेखक या लेखिका का दिल नही दुखाना चाहते, इसीलिए बडे परिश्रमपूर्वक उस लेख की आत्मा को सुरक्षित रखकर उसकी शब्दावली को परिवर्तित करके उसे नया कलेवर दे देते हैं और वही लेख जो कूडेदान मे फेकने वाला था, वह सराहनीय और प्रशसनीय बन जाता है। वह लेखक है और इसीलिए प्रारम्भिक, अधकचरे, अनुभवहीन लेखक के दर्द को जानते है। जब लेख के साथ लेखक का नाम किसी पत्र-पत्रिका मे छप जाता है तो देखकर वह उछल पडता है और भूल जाता है कि यह लेख ऐसा तो उसने नही लिखा था। अगर यशपालजी के अन्दर ऐसी प्रबल भावना न होती तो क्या यह सम्भव हो सकता ? बहुत से उदीयमान लेखको की प्रतिभा सूख जाती।

अभिनन्दन-ग्रन्थो के सम्पादन मे तो यशपालजी को विशेषज्ञ माना जा सकता है। इसके प्रमाण हैं नाथूरामजी का 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ'। गाधीजी, विनोबा, राजेन्द्रबाबू, नेहरूजी, काका कालेलकर और बनारसीदास चतुर्वेदी के अभिनन्दन-ग्रन्थो के सम्पादन का भी पूरा-पूरा श्रेय यशपालजी को है।

यशपालजी का ध्यान बच्चो की ओर विशेष रूप से जाता है, क्योंकि वे मानते हैं कि किसी भी देश का भविष्य उसके बच्चो पर निर्भर करता है। यही कारण है कि 'सस्ता साहित्य मण्डल' से जिसके वह मत्री हैं, उन्होंने बाल-साहित्य की बहुत-सी छोटी-छोटी पुस्तके सस्ते दामो पर निकाली हैं। एक ओर वह मण्डल से गम्भीर सामग्री वाली पुस्तकें तथा मासिक पत्र 'जीवन साहित्य' निकालते हैं, दूसरी ओर बच्चो का मनोरजन करने वाली लोक कथाओ की पुस्तके बाल पाठको को देते हैं। मनोरजन ही क्यों, बच्चो के ज्ञान-वर्धन के लिए वह 'धर्मयुग' में बोध कथाए लिखते रहते हैं और उनकी बोध कथाओ के कई सग्रह उपलब्ध हैं।

यशपालजी चालीस से अधिक देशो की यात्रा कर चुके है। यायावरी मे स्व राहुल साकृत्यायन के बाद यशपालजी का हिन्दी के लेखको मे नम्बर है। सीमित आय और साधनो में किस प्रकार वह विदेश यात्राओ की योजना बना लेते है, यह आश्चर्य की बात है। पहली बार रूस गए तो कुछ ज्यादा पैसा पास नही था, लेकिन वहा रेडियो-वार्ता आदि से जो पैसा मिला, उससे उन्होने पूरे यूरोप की यात्रा कर डाली। मित्रो के पास ठहरने की व्यवस्था हो जाती है और यात्राओ का कुछ खर्च उनकी वार्ताओ से निकल जाता है। इस प्रकार बिना पैसे के यात्रा करना कम साहस का कार्य नही है। भारत लौटकर जब वह इन यात्राओ के सस्मरण सभाओ में सुनाते हैं तो रोचक शैली में वे सस्मरण सुनते ही बनते हैं। वह जहा भी जाते हैं, अपनी गहरी छाप छोड आते हैं और वहा के लोगो का हृदय जीत लेते है। उनका व्यक्तित्व जितना सरल है, उनकी वाणी भी वैसी ही स्पष्ट और सरल है।

यशपालजी का ध्येय एक-दूसरे को जोडना रहा है, तोडना उन्होने सीखा ही नही है। यह कारण है कि यशपालजी सबके अपने हैं और सब यशपालजी के अपने हैं। यशपालजी के प्रति अगर किसी को दुर्भावना है (जो असम्भव है) तो उसके इसान होने में मुझे शका होगी।

मुझे गर्व है कि मैं यशपालजी जैसे भाई के निकट सम्पर्क मे आई और उनकी स्नेहभाजन बन सकी।

मैं उनके ७२ वर्ष पूरे करने के उपलक्ष्य मे परमात्मा से यही प्रार्थना करती हू कि वह मा सरस्वती की आराधना करते हुए साहित्य की विभिन्न विधाओ से उसके मदिर को समृद्ध करते रहे और जीवन के हजार वसन्त देखे।

एक यशस्वी जीवन

गोकुल भाई भट्ट

□□

जिनका नाम ही 'यशपाल' है, वे अपने जीवन के ७२ वर्ष समाप्त करके ७३वे वर्ष मे प्रवेश करने जा रहे हैं। ऐसे अवसर पर स्नेही भाई यशपालजी को अभिनन्दन-पुष्प देने का अवसर कौन चूकेगा !

यशपालजी ने न सिर्फ लेखन द्वारा, अपितु रचनात्मक कार्य द्वारा गांधी, विनोबा, जयप्रकाश के विचारो को आगे बढाने मे अच्छा योगदान दिया है। 'सस्ता साहित्य मडल' की उनकी सेवाए भी कौन भूल सकता है ? श्री मार्तण्डजी उपाध्याय के आधार-स्तम्भ वे ही रहे। 'सस्ता साहित्य मडल' ने अपने उद्देश्य के अनुसार जो प्रकाशन किया है, उसके पीछे यशपालजी दिखाई देते हैं।

सकोचशील वृत्ति के होते हुए भी जटिल समस्याओ का सामना करते समय वे बडे वीर मालूम देते हैं। जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क मे आता है, वह उनका स्मित-भरा चेहरा भूल नही सकता। उनका आकर्षण उनके वाह्य रूप मे भी है, परन्तु विशेषत उनके अन्तर मे जो मृदुता, स्नेह और सद्‌भाव भरा पडा है, वह उनके आकषक गुण है।

वैसे भाई यशपालजी को मेरे अनेक अभिनन्दन हैं, तथा कामना है कि वे २८ वर्ष और जीवन के सफलतापूर्वक यापन करके शतायु बने। भगवान उन्हे उस कक्षा तक पहुचाए, यही प्रार्थना है। शुभम् भवतु।

उनके सान्निध्य से प्रेरणा

टैन हैगपिंग

□□

दो सप्ताह चीन मे रहकर मि यशपाल जैन भारत लौट गए, किन्तु उनके प्रवास की मधुर स्मृति अब भी हमारे मन पर ताजी बनी हुई है। सबसे अधिक अविस्मरणीय समय तो वह है, जब कि वह हमारे देश की महान दीवार पर चढ़े थे। मुझे अब भी पूरी तरह याद है कि दीवार के सबसे ऊचे स्थान पर पहुचकर उन्होने कहा था, "इसकी ऊचाई का आभास तभी होता है, जब कि हम मनोवैज्ञानिक रूप से ऐसा अनुभव करते हैं। सच यह है कि यदि हम एक बार आत्म-विश्वास उत्पन्न कर लें तो अजेय कुछ भी नही है।" मैंने देखा था कि

अपने जीवन की आकांक्षाओ को पूर्ण करने के लिए उनमे बडी प्रबल इच्छा-शक्ति है। तब और तभी मैंने अपने आप से कहा था कि आगे अपने माग मे आने वाली कठिनाइयो पर विजय पाने के लिए मुझे भी वही भावना और आत्म-विश्वास उनसे सीखना चाहिए।

मुझे 'एम के गाधी' फिल्म देखने का सौभाग्य मिला था। उससे मुझे भारत, उसके इतिहास और धर्म के बारे मे बहुत-सी जानकारी मिली। मि यशपाल जैन ने एक बार मुझसे कहा था, "ईश्वर होना आसान है, मगर इसान होना कठिन है।" मेरे विचार से एम के गांधी इसान थे। उनकी पूर्ण निस्वार्थता और अपने देशवासियो तथा स्वतत्रता के लिए उनके अगाध प्रेम ने उन्हे ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता से मुक्त होने के न्याय्य ध्येय के लिए भारतवासियो का रहनुमा बना दिया। मुझे यह देखकर बडी पीडा हुई कि अहिंसा के इतने कट्टर सेनानी को हिंसा द्वारा गोली का निशाना बनाया गया। कहने की आवश्यकता नही कि इससे मुझे सोचने के लिए बहुत-सी सामग्री मिली।

मैं मि यशपाल जैन की वर्षगाठ के लिए अपनी हार्दिक शुभ कामनाए भेजती हू।

उदार और सदाशय व्यक्तित्व

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

□□

भाई यशपाल जैन से मेरा परिचय वर्षों पुराना है। सबसे पहले हम दोनो उस समय मिले थे जब १९४१ के जनवरी मास मे 'विश्वमित्र' के सचालक श्री मूलचन्द अग्रवाल की अध्यक्षता मे दिल्ली मे 'हिन्दी पत्रकार सम्मेलन' हुआ था। श्री विष्णु प्रभाकर, डा ब्रजमोहन गुप्त, जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, कान्तिचन्द्र सोनरेक्सा और शम्भूनाथ सक्सेना उनके साथ थे। सुधीन्द्रजी भी हमारी इस मडली के एक शालीन और मूक सदस्य थे। सुधीन्द्रजी उन दिनो सस्ता साहित्य मडल की ओर से प्रकाशित होने वाले, इसी 'जीवन साहित्य' के सम्पादक थे, जो आजकल यशपालजी के सम्पादन मे सफलतापूर्वक प्रकाशित हो रहा है।

यह स्वल्प-सा परिचय इतना प्रगाढ हो जायगा कि यशपालजी मेरे अभिन्न तथा अनन्य स्नेही बन जायगे, इसकी मैंने कभी कल्पना भी न की थी। वैसे इस परिचय से पूर्व मैं उनकी सम्पादन-कला का लोहा मान चुका था। दिल्ली से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'जीवन सुधा' के दिसम्बर १९३७ मे प्रकाशित विशालकाय 'लेखकाक' को देखकर उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे मैंने जो कल्पना अपने मन मे की थी, वह अक्षरश सही चरितार्थ हुई और उनकी सहज मुस्कान तथा सौम्य मुख की छाप मेरे हृदय पर उस समय जो पडी थी, वह आज भी ज्यो-की-त्यो अक्षुण्ण है।

कालान्तर मे वे सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के सहयोगी बनकर टीकमगढ़ चले गए

और मैं दैनिक 'हिन्दी मिलाप' के सम्पादकीय विभाग मे कार्य करने लाहौर चला गया। वहां पर 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के सिलसिले मे मुझे फीरोजपुर जेल में नजरबन्द कर दिया गया और नजरबन्दी के उन दो वर्षों मे मुझे भाई यशपालजी का कोई समाचार नही मिला। जेल से मुक्ति के बाद मैं लगभग १० महीने गाव मे नजरबन्द रहा। गाव मे रहते हुए भी उनकी मण्डली टीकमगढ़ मे जो कार्य कर रही थी, उसकी पूरी जानकारी मुझे मिलती रही। उन दिनो श्री बनारसीदास चतुर्वेदी 'मधुकर' के माध्यम से साहित्य मे 'जनपद आन्दोलन' का धुआंधार प्रचार कर रहे थे और उनके इस आन्दोलन मे भाई यशपाल जैन एक प्रमुख अध्वर्यु थे।

नजरबन्दी की पाबन्दी हटने पर मैं जुलाई १९४५ मे दिल्ली आकर जम गया। क्योकि पजाब मे प्रवेश करने का मुझ पर उन दिनो भी प्रतिबन्ध था। उन दिनो मैं राजहस प्रेस मे कार्य करता था और सस्ता साहित्य मडल की अधिकाश पुस्तकें इसी प्रेस मे छपती थी। भारत-विभाजन से पूव एक दिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब भाई यशपालजी मण्डल के मन्त्री श्री मातण्ड उपाध्याय के साथ प्रेस में आए और उनसे मालूम हुआ कि वे अब स्थायी रूप से दिल्ली मे ही आ गए है। भाई जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी भी उनके साथ ही थे। चतुर्वेदीजी और यशपालजी की युगल जोडी मण्डल मे ही जम गई और उन्होने मण्डल के प्रकाशन-काय को आगे बढ़ाया। बाद में श्री चतुर्वेदीजी तो स्वतन्त्र पत्रकार के रूप मे प्रतिष्ठित हुए और यशपालजी ने अपने को सर्वात्मना मण्डल की सेवा मे ही समर्पित कर दिया।

राजधानी-निवास के इन ३९ वर्षों मे यशपालजी से मेरी घनिष्ठता इतनी हो गई कि मुझे ऐसा कोई अवसर याद नही आता जबकि मैंने उन्हे अपने से दूर पाया हो। उन्होने मुझे इतना ममत्व और स्नेह दिया कि कोई भी, और कैसा भी कठिन कार्य मुझे नि सकोच सौंपने मे वे कभी नही हिचकिचाए। अब तो स्थिति यह है कि जब कभी मैं कोई साहित्यिक योजना अपने हाथ मे लेता हू तो उनसे अवश्य परामर्श करता हू और वे कोई काम अपने ऊपर ओटते है जो मुझे भी उसमे बराबर का भागीदार बनाने का गौरव प्रदान करते हैं। किसी का अभिनन्दन हो अथवा किसी की विदाई, किसी का जन्मदिन हो या किसी का स्वागत समारोह, मुझे ऐसा कोई अवसर याद नही आता, जबकि उन्होने मुझे अपने पास बुलाकर उसके सम्बन्ध मे विचार-विमश न किया हो। यह उनके व्यक्तित्व की सदाशयता और उदारता ही है कि उन्होने मेरे-जैसे अकिचन व्यक्ति को इतना महत्त्व ।

वास्तव मे यशपालजी को एक सच्चे मित्र, साथी और हितैषी के रूप मे ही मैंने अब तक देखा है और उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता ही उनके जीवन की सबसे बडी कसौटी है। सहज और सरल मुस्कान बिखेरते हुए वे किसी भी और कैसे भी कठिन काम मे इस प्रकार तल्लीन हो जाते है, जैसे यह उनका स्वभाव ही बन गया हो। उनके स्वभाव की यह सिद्धि ही उन्हे निरन्तर कर्म-रत रहने को विवश करती आई है। अपने कर्म-रत जीवन के ७२ वर्ष पूरे करने के बाद भी ऐसा युवकोचित उत्साह रखते है जो किसी के लिए भी ईर्ष्या की वस्तु है। भगवान् करे वे अपनी इस अदम्य उत्साह भावना को ज्यो-का-त्यो बनाए रखकर शताब्दी को छू ले और हमारे समक्ष कम-तत्परता का एक उदात्त आदर्श प्रस्तुत करने मे सर्वथा सफल हो।

जननी जीवन धन्य

कोई तो सुखपाल है, कोई है धनपाल,
जननी जीवन धन्य है, जिसका सुत यशपाल।

जीवित है जग मे वही, जिसका सुयश अमद,
यश जीवो हैं जी रहे, राम कृष्ण हरिचद।

यश भी कैसा हो विमल, जैसे निर्मल चन्द,
लाख-लाख नक्षत्र भी, चमकें पा आनद।

जियो शत शरद ऋतु, फिर जियो,
और शत शरद ऋतु बधु।

सज्जन सुकृति देखि कै,
बाढे जैसे सिन्धु॥

□ सोहनलाल द्विवेदी

लीजे मगल कामना

लीजे मगल-कामना, जय हो श्री यशपाल,
षष्टिपूर्ति मे क्या धरा, जियो सवा-सौ साल।
जियो सवा सौ साल, बन्दना करते काका,
मस्तक तुमने ऊचा किया राष्ट्रभाषा का।
रहो स्वस्थ अलमस्त दिनोदिन आगे बढिए,
देकर निज साहित्य गोद हिन्दी की भरिए।

□ काका हाथरसी

अग्रज के प्रति

निशि भर जल कर पहुच गया जो
दीप उषा के द्वार पर,
तुम ही हो वह, उपमा द् क्या
इस से सुन्दर हे प्रियवर !

सतत साधना अविचल निष्ठा
तनमयता साकार हुई,
शिखा अकम्पित रही तुम्हारो—
शत झझाए हार गईं,
क्षण क्षण किया तिमिर को उजला
अपनी जीवन-ज्वाल से,
बहत्तर मणिया छीन हुए तुम
जयी काल के ब्याल से,

शत बसन्त, शत शरद तुम्हारे
प्राण भुवन मे दीप्ति भरें,
मात्र कामना पूरी मेरी—
वीतराग भगवन्त करें।

□ **कन्हैयालाल सेठिया**

एक प्रणाम

१९६२ की एक शाम,
"सग्रहालय की स्थापना कराई है
बाबू यशपालजी ने,
और आजकल उनका निवास है दिल्ली।"

श्री शान्तिनाथ सग्रहालय अहार,
(जिला—टीकमगढ) म० प्र०
के उस अर्द्ध ग्रामीण रखवारे के
इन शब्दो को सुनकर
सहसा तो हम समझ ही न पाए कि
यह यशपालजी की प्रशस्ति है
या शिकायत।

हिन्दी साहित्य के शिल्पी यशपाल,
आधी दुनिया के परिक्रमी यशपाल,
चिन्तक और अध्येता यशपाल,
अतिशय व्यस्त नेता यशपाल,
के कृतित्व की सुरभि,
बुन्देलखण्ड के उस निर्जन वन मे भी
व्याप्त मिलेगी,
इसकी न आशा थी, न आशका।
सुनकर दङ्ग रह जाना पडा।
देश यदि अपने गरिमामय इतिहास के प्रति
जागरूक और ईमानदार होता
तो, अहार के सग्रहालय मे बटोरे गए
गडे मुर्दों के अस्थि-अवशेष (या शिल्पावशेष्ठ)
यशपाल जी के लिये
कौन-सा राष्ट्रीय-सम्मान नही ला सक्ते थे?
१९७२ की एक शाम,
बखत बली शाह की नगरी से
बहादुर शाह की दिल्ली तक की यात्रा,
कुछ दौड-धूप कर, ठण्ड मे सिकुडकर,
कुछ धरती पर, कुछ उडकर,
उनके साथ गुजारने का सौभाग्य मिला।
थोडा-सा समय, भारी-भरकम व्यक्तित्व,
जैसे रोशनदान मे से झाककर,
आकी जाए ड्राइग रूम की महत्ता।
फिर भी मोहक लगी उनकी सत्ता।

जीवन को साधना की तरह साधकर
समय की सरकती रसरी के

हर एक रेशे का स्पर्श करते हुए
अग्रज यशपाल
बन्दनीय पीछे हैं, अनुकरणीय पहिले।
उनके शताब्दी-समारोह पर
माला पहिना पाने की आकांक्षा है।

□ नीरज जैन

साहित्य के साधक

निज चिन्तन में नही, राष्ट्र के नव-चिन्तन मे सलग्न।
निज सरजन में नही, राष्ट्र के नव-सरजन में मग्न।
निज जीवन का नही, राष्ट्र के नव-जीवन का ध्यान।
निज 'यश-पाल' नही, स्वराष्ट्र पालन का गाते गान।

इसी सुकृत से इनको मनचाहा 'आदर्श' मिला है।
जिसके अमृत सिंचन से इनका उद्यान खिला है।
सात दशक में मा चरणो पर जितने सुमन चढ़ाए।
वे साहित्यिक गणना मे अब प्रतिभा बनकर आए।

ओ गाधी के अमर पुजारी, सत्य, शान्ति, व्रतधारी।
तेरे मन-मानस की प्रफुल्लित रहे सदा फुलवारी।
उसकी मोहक गध राष्ट्र की भरदे क्यारी-क्यारी।
'मित्र' तुम्हारा बना रहेगा यह भारत आभारी।

□ रामचरण ह्यारण 'मित्र'

दिल से दुआ

बरस, आते हैं, जाते हैं,
लेकिन हम और आप,
न कुछ कर पाते हैं,
झमेले जो दुनिया के,
आदमी ने बना रक्खे हैं,
निकल न उसमें से,
हम कभी पाते हैं
फिर भी इस सबके बीच
कुछ लोग,
निगाह ऐसी रख पाते हैं,
जिससे पीछे, अब, और आगे का,
सार समझ पाते है
इसे कह लो इतिहास,
साहित्य या दर्शन,
बहुत थोड़े है,
जो इस सबका
राज परख पाते हैं
लिखना भी कला है,
जो सबको नही हासिल
लेकिन 'यशपाल',
इसे खूब सरस पाते है
बेहद सादे हैं, दिल है प्यार-भरा
'भाई साहब' जीओ,
प्यार लुटा के जीओ, खुद को दे के जीओ,
बस यही हम दोनो
दिल से चाह पाते है।

□ कमल और मिश्रीलाल

धरा के हंस

उस हेमन्त निशा में
भारत की धवल दिशा में—
कही हिमालय के शृगों से
हस उतरते होंगे।
किन्ही घाटियो के अपने
कलरव से वे भरते होंगे।
कितने वे उछास
सग लाते होंगे।
अतल वेदना मानव की
गाते होंगे।
तो तुम भी
उडो धरा के हस
पख अपने फैलाओ!
वृद्ध हिमालय की करुणा को
हिम अराल यूराल प्रान्त तक
जा बिखराओ।
वही कही तुषार गात्री
वह बोल्गा भी बहती होगी
ओबी एन्सी लीना भी
कुछ पूर्व कथा कहती होगी।
उनको देना आज यहा की गगा का सदेश।
कहना उन्हे याद करता है कालिदास का देश॥

विदेश आते समय
१८ जनवरी, १९६५

□ निर्मला माथुर

युग-युग जियो

अधरो पर मुस्कान मनोहर,
अन्तर में है निश्छलता,
मुख पर है आलोक अरुण सा,
नयनो में है निर्मलता ।।

वाणी में पीयूष भरा है,
वचनो में है कोमलता,
सच पूछो इनके जीवन से,
धन्य हुई है मानवता ।

कोई नही पराया इनका
सबके प्रति है इनका प्यार
इनका जीवन लक्ष्य यही है
सबको दे - ले प्यार - दुलार ।

बालक, वृद्ध, तरुण सबका ही
हृदय - विजय कर लेते है,
कठिन समस्याओ को भी
पल में हल कर देते है ।

निर्भय विनयशील जनसेवक,
गाधी - भक्त साहसी वीर ।
अति विनोद प्रिय, विश्व पयटक,
लेखक सरल विचारक धीर ।।

वर्ष गाठ पर उन्हे बधाई,
देते युवा वृद्ध और बाल
भारत मा का भाल उच्च कर
युग - युग जिए जैन यशपाल ।

□ हरिशकर आदेश

पारिवारिक परिवेश

मेरा लाड़ला बेटा

लक्ष्मीदेवी जैन (माता)

□□

यशपाल मेरा लाडला बेटा है। हर मा अपने बच्चे को आगे बढते देखकर खुश होती है। मुझे भी खुशी है कि मेरा बेटा अपनी जिन्दगी मे बराबर आगे बढ़ रहा है। उसने सब जगह अपना नाम ऊचा किया है और हम लोगो का नाम भी बढाया है।

मुझे याद आता है कि यशपाल जब छोटा था तो कहा करता था, "अम्मा, मैं खूब पढ़ूगा।" उसकी यह बात सुनकर मुझे अच्छा लगता था। उसने जो कहा, वह उसने अपनी मेहनत से पूरा किया। हम लोगो का आशीर्वाद तो उसके साथ रहा ही, भगवान ने भी उसकी हमेशा मदद की। जो सच्चाई के रास्ते पर चलता है, भगवान उसका साथ देता है।

यशपाल की बचपन मे आदत थी कि रात को कितनी भी देर हो जाए, मुझसे कहानी सुने बिना नही मानता था। कभी-कभी कहता था, "अम्मा, खूब लम्बी कहानी सुनाओ।" मैं लम्बी कहानी सुनाती थी और वह खूब खुश होता था। अब जब वह खुद बच्चो को कहानी सुनाता है और बच्चे बडे चाव से सुनते हैं तो मुझे बडा अच्छा लगता है। एक बार तो टेपरिकार्डर लेकर वह मेरे पीछे पड गया कि अम्मा, एक कहानी सुनाओ। मैंने सुना दी। वह कहानी टेप मे भर गई।

मुझे याद नही आता कि यशपाल पर मैंने कभी हाथ उठाया हो। उसकी आदत थी कि आंगन मे खडी चारपाई पर चढकर ऊपर पाए पर बैठ जाता था और कई बार वह पाया टट जाता था। उसे पेड पर चढ़ने का बडा शौक था। कभी चढ़ने मे टागो मे खरोंच आ जाती थी। कभी कबड्डी के खेल मे पैर मुड जाता था। अपने बाप से वह डरता था, पर भली-बुरी जो भी बात होती थी, मुझसे कह देता था। मैं उसे समझा देती थी, पर उसे मारती नही थी।

मुझे लगा करता था कि मेरा यह बेटा बहुत तरक्की करेगा। मुझे बडा सतोष है कि भगवान ने मेरी इच्छा पूरी की। अभी वह और उन्नति करेगा, बहुत आगे बढ़ेगा।

(उद्गारों से)

उसने घर का नाम रौशन किया

श्यामलाल जैन (पिता)

□□

हमारे बच्चो मे यशपाल का दूसरा नम्बर है। उसकी जिन्दगी बचपन से ही कुछ और तरह की रही। वह खेल-कूद और पढने मे हमेशा आगे रहा। छुटपन से ही उसे घुडसवारी, कबड्डी, गिल्ली-डडा और तैराकी का शौक रहा। आगे चलकर वह स्काउट बना और फिर पढाई के साथ उसने फौजी तालीम ली। फुलवाडी उसे बडी अच्छी लगती थी। गांव मे हमारा आगन बहुत बडा था। उसके एक हिस्से मे वह तरह-तरह के फूल लगाता था और लौकी, तोरई, काशीफल आदि की बेले उगाकर छप्पर के ऊपर छत तक ले जाता था।

उन दिनो पढ़ाई के लिए गावो और कस्बो मे मिडिल तक के स्कूल थे। आगे की पढाई के लिए किसी शहर मे जाना पडता था। यशपाल ने मिडिल विजयगढ से पास किया, फिर ऊपर की पढ़ाई के लिए अलीगढ़ और बाद मे इलाहाबाद गया। इलाहाबाद से उसने वकालत पास की, लेकिन वकालत की नही। उसका रुझान लिखने की तरफ था। पढाई के दिनो से ही वह कविताए, लेख और कहानिया लिखता रहता था।

पढाई पूरी करके वह दिल्ली आ गया। तीन-चार साल दिल्ली मे रहकर कुछ साल के लिए कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) चला गया। उसके बाद दिल्ली लौटा तो अबतक यही है।

घूमने की लत उसमे छुटपन से ही थी, जो अबतक बनी है। अपने देश का उसने कोई कोना नही छोडा। देश के बाहर भी उसने खूब चक्कर लगाये। घूमना और लिखना-पढना, इन्ही चीजो से जिन्दगी मे उसने वास्ता रक्खा। सियासत मे इसकी दिलचस्पी महज उतनी रही, जितनी एक लेखक और अखबार-नवीस की होती है। ओहदा लेने की उसने कभी कोशिश नही की, बल्कि मौके आए तो उसने साफ इन्कार कर दिया।

उसने सादगी की जिन्दगी अपनाई। खादी एक बार शरीर पर आई तो फिर उतरी नही। कपडो का उसे कभी शौक नही रहा। धोती, कुरता, जाकेट यही उसका लिबास रहा और अब भी है। किसी बुराई को पास नही फटकने दिया। घर मे हम सब पान-तम्बाकू खाते हैं। बहुत छोटी उम्र मे उसने भी पान खाए, पर छोडे तो ऐसे छोडे कि बडी उम्र तक उनकी तरफ देखा ही नही।

हिन्दुस्तान का कोई तीथ उससे नही छूटा। हिमालय मे पैदल घूमा। सत-महात्माओ से मिला। आज भी वह सतो की सगत मे बडा सुख पाता है।

अपने बच्चो को उसने अच्छी तालीम दी। बेटी अन्नदा को बी ए आनर्स पास कराया। उसमे लिखने के लिए चाव पैदा किया और उसे पूरा बढावा दिया। बेटा सुधीर को इजीनियर बनाया और ईमानदारी और मेहनत से काम करने के लिए बाहर भेजा। अपने भाइयो का हौसला बढाने मे उसने कोई कसर नही छोडी। सबसे छोटे भाई राजेन्द्रपाल ने एम ए पास किया तो उसे डाक्टर बनवाने मे पूरी मदद की।

वैसे प्यार-मोहब्बत उसके दिल मे सबके लिए है, पर अपनी मा के लिए उसके मन मे सबसे ज्यादा झुकाव रहा। मा हिन्दुस्तान के जैन-तीर्थों के दशन करना चाहती थी। उसने इसका सुभीता किया। शिखरजी का तीर्थ छूट गया था। यहा वह हमे खुद लेकर गया। उसकी मा भी उसे बहुत चाहती थी। जब वह पहली मरतबा रूस गया तो वह उसे छोडने पालम गयी।

यशपाल ने साहित्य में खूब नाम कमाया, समाज मे इज्जत पाई, देस-परदेस में उसका यश फैला। इतना होने पर भी उसमें घमड नहीं आया। वह हमेशा झुककर चला। सबको आदर देता रहा, सबका आदर पाता रहा।

यशपाल की आगे और भी उन्नति हो। अबतक उसने जो भी सेवा की है, आगे और भी ज्यादा सेवा करे, और नाम पावे। हमें खुशी है कि उसने अपने घर का नाम रोशन किया।

भगवान सबको अच्छी औलाद दें।

(माताजी की स्मृति में लिखे सस्मरणों के आधार पर)

वो जियें हजार वर्ष

कामता प्रसाद (श्वसुर)

□□

अलीगढ शहर के पूव-दक्षिण में विजयगढ नाम का एक कस्बा है, जो अलीगढ से लगभग २० मील की दूरी पर स्थित है। यह ऐतिहासिक नगर है। किसी जमाने मे राजपूतो का वह गढ था। वास्तव में एक किला भी वहा था, जिसके अवशेष अब भी देखे जा सकते है। इस नगरी का उल्लेख बाबर के 'बाबरनामा' पुस्तक मे भी मिलता है। इस नगर की ख्याति वहा के प्रतिष्ठित वैद्यो के द्वारा भी चली आती है।

इसी नगर मे १ सितम्बर १९१२ को एक प्रतिष्ठित जैन परिवार मे एक बालक का जन्म हुआ। बालक का नाम 'यशपाल' रखा गया। बचपन से ही इस बालक का व्यक्तित्व दूसरे बच्चो की अपेक्षा विशेष आकर्षक था। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा विजयगढ मे ही हुई, फिर अलीगढ के स्कूलो मे और अन्त मे बी ए तथा एल-एल बी की परीक्षाए इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पास की। कानून की पढाई तो की, लेकिन भाग्य मे कुछ और ही बदा था।

लेखन की ओर रुचि विद्यार्थीकाल से ही थी, जो धीरे-धीरे बढती गई। कानून की पढाई पूरी करने के बाद सयोग से यशपाल दिल्ली आ गए और वही पर साहित्य तथा पत्रकारिता के क्षेत्र मे कार्य करने लगे। हिन्दी के विख्यात लेखक श्री जैनेन्द्रकुमारजी के सम्पर्क से उनकी साहित्यिक प्रतिभा मे और विकास हुआ। सन् '४० मे हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने उन्हे अपने पास टीकमगढ़ बुला लिया, जो ओरछा राज्य की राजधानी था। वहा से निकलने वाले 'मधुकर' पत्र का सम्पादन यशपाल ने बडी सफलता से किया। छ वर्ष वहा रहने के उपरान्त वह फिर दिल्ली आ गए और 'सस्ता साहित्य मण्डल' मे कार्य करने लगे। इस गाधी-विचारधारा की प्रकाशन-सस्था के साथ उनका पहले भी सम्बन्ध रहा था।

साहित्य-क्षेत्र इन्हें प्रिय था, उसी क्षेत्र मे अनुकूल अवसर मिल जाने से इनकी और अधिक सेवा करने की लगन में वृद्धि हुई। तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है

तुलसी जस भवितव्यता तैसी मिलै सहाय।
आप न आवै ताहि पै ताहि तहां लै जाय॥

दिल्ली मे यशपाल की प्रतिभा का दिन दूना रात चौगुना विकास हुआ। उनकी एक पुस्तक सन् '३८ मे निकली थी, लेकिन बाद के वर्षों मे तो बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हुई और लेखक के रूप में सब इन्हे जानने और मानने लगे। कई पुस्तको पर उन्हे भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारो के पुरस्कार भी मिले। 'रूस में छियालीस दिन' पर इन्हें 'नेहरू सोवियत लैण्ड' पुरस्कार मिला। इन पुस्तको के अध्ययन से इनकी निरीक्षक दृष्टि का पता चलता है। इनकी भाषा बडी ही सरल, रोचक तथा प्रभावशाली होती है। इनके विचार इतने स्पष्ट होते हैं कि जो कुछ यह कहना चाहते हैं, उसका चित्र आखो के सामने आ जाता है।

यशपाल ने अपने देश मे तथा बाहर बडी लम्बी-लम्बी यात्राए की हैं। यूरोप, अफ्रीका, कैनेडा अमरीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, मारीशस, फीजी, दक्षिण अमरीका—और न जाने कहा-कहा हो आए हैं। वहां की सभ्यता, सस्कृति, कला और साहित्य आदि को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। भारत तथा अन्य देशो मे सावजनिक सभाओ, रेडियो, टेलीविजन आदि के द्वारा भी इन्होने अपने विचार व्यक्त किए है।

यशपाल मे भाषण-शक्ति उच्च कोटि की है। यह अपनी बात बडी गम्भीरता और आत्मविश्वास के साथ कहते हैं। एक बार अलीगढ़ के धर्म समाज कालेज मे इन्होने दक्षिण-पूर्व एशियाई देशो के प्रवास के अपने अनुभव सुनाए थे। वहा के प्रिसिपल तथा छात्रो ने बताया कि उनका भाषण इतना सरल और हृदयग्राही था कि उनको पता ही नही चला कि एक घटे से अधिक का समय कैसे निकल गया।

हिन्दी साहित्य-जगत मे ख्याति अर्जित करने के साथ-साथ समाज मे भी इन्होने ऊचा स्थान प्राप्त किया है। अनेक सामाजिक तथा सास्कृतिक सस्थानो के साथ उनका निकट का सम्बन्ध है। उनके निर्माण तथा विकास मे इनका विशेष योगदान भी है।

वषगाठ के शुभ अवसर पर मै यशपाल को हार्दिक बधाई और आशीर्वाद देता हू। हमारी कामना है कि वह दीर्घायु हो और आगे और भी लगन तथा परिश्रम से समाज और देश की सेवा करते रहे। 'गालिब' के शब्दो मे

वो जीयें हज़ार बरस
और हर बरस के दिन हो पचास हज़ार।

मेरा अनुज

हजारीलाल जैन (अग्रज)

□□

यशपाल ने १९३५ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी ए तथा १९३७ मे वही से एल-एल बी की परीक्षा पास की। परीक्षा समाप्त होने के बाद वह दिल्ली श्री जैनेन्द्रकुमारजी से, जिन्हे हम 'मामाजी' कहते हैं और जो भारत के एक उच्च कोटि के साहित्यकार हैं, मिलने आए। यशपाल को विद्यार्थी-जीवन से ही कहानियां लिखने का शौक था और वह बराबर लिखते रहते थे। यह देन उन्हे हमारी अम्मा से मिली थी। इनकी कहानिया समय-समय पर अखबारो में छपती रहती थी। इससे इनका उत्साह और भी बढता था।

जब एल-एल बी का परीक्षा-फल आया तो यह अच्छे नम्बरो से उत्तीर्ण हुए। मैंने पूछा कि अब वकालत कहा शुरू करनी है तो उनका स्पष्ट उत्तर था कि मैं वकालत नही कर सकूगा। इसमें झूठ को सच और सच को झूठ साबित किया जाता है। सत्य सत्य ही है। फिर उसको असत्य कैसे कहा जाय? इससे उनकी मनोवृत्ति का पता चलता है।

इनकी पढाई अलीगढ से शुरू हुई। एफ ए प्रथम वष उन्होने अलीगढ से पास किया, फिर अगली साल मेरे पास इलाहाबाद आ गए। वहा उनको प्रथम वर्ष वाले विषय न मिल पाये तो इन्होने कुछ नए विषय ले लिये। इसका मतलब था कि दोनो वर्ष की पढ़ाई एक वर्ष मे पूरी करनी पडी।

१९३७ के बाद यह दिल्ली मे ही रहने लगे और लेखन-कार्य जारी रक्खा। श्री जैनेन्द्रकुमारजी के प्रारम्भिक मार्ग-दर्शन और प्रेरणा से यह दिनोदिन अपने क्षेत्र मे आगे बढते गए। इन्होंने स्वतत्र रूप से कई पत्रो का सम्पादन-कार्य बडी कुशलता से किया। बीच मे छ वष कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) रहे। अन्त में १९४६ में यह फिर सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली मे आए और आजतक वही पर हैं। इन्होने दर्जनो पुस्तके लिखी हैं। आजकल 'जीवन-साहित्य' पत्रिका के सम्पादक है। अपनी ओजस्वी लेखनी से आज यह भारत के उच्च साहित्यकारो मे गिने जाते है। इन्होने कई महापुरुषो के ग्रथो का सम्पादन किया है, जो बहुत ही लोकप्रिय रहे है।

इन्हे घूमने का बहुत शौक है। वर्ष मे एक बार एक-दो महीने यह घूमने में ही लगाते हैं। इन्होंने सारा भारत ही नही, सारा ससार घूम डाला है। अभी कुछ समय पहले कैनेडा, दक्षिण अमरीका आपान, चीन तथा अन्य कई देशो की यात्रा कर आए हैं।

यह पक्के गाधी विचारधारा के अनुयायी है। बहुत ही कोमल हृदय वाले है। बच्चो से विशेष प्रेम है। भगवान इन्हे दीर्घायु दे और यह अपने क्षेत्र मे दिनोदिन उन्नति करते रहें, यही हमारी कामना है।

मातृ-वत्सल भाई

श्रीप्रभा जैन (भगिनी)

□□

ऐसे तो हम छह भाई-बहन हैं, जिनमें पाच भाई और मैं एक बहन। दो मुझसे बडे भाई हैं, श्री हजारीलाल और श्री यशपाल। मुझसे छोटे तीन भाई कुशलपाल, वीरेन्द्र प्रभाकर, राजेन्द्रपाल हैं। मुझसे बडे होने के कारण और बडे भाई साहब से छोटे होने के कारण हम सब छोटे भाई-बहन भाई साहब को 'छोटे भाई साहब' कहते हैं।

मेरी अम्मा कहती थी कि छुटपन में छोटे भाई साहब बहुत क्रोधी स्वभाव के थे, पर जैसे-जैसे वह बडे होते गए, स्वभाव से शान्त और मधुर होते गए। अब तो एकदम शान्त और मधुर हो गए हैं।

देश-देशान्तर मे घूमते रहते हैं। छोटे भाई साहब के साथ अपने देश मे ही तीन बार यात्रा करने का मुझे भी अवसर मिला है। उनमें सर्वप्रथम १९५६ मे काजीवरम मे सर्वोदय सम्मेलन हो रहा था। उसमे भाई साहब अपनी टोली के साथ जा रहे थे। वह यात्रा २२ मई से २० जून तक थी। मैं भी उसमें गई। साथ में मेरा बेटा मनु था, जो कि लगभग तीन वष का रहा होगा। हमने मद्रास, काजीवरम, पाडिचेरी, मदुरा, त्रिचनापल्ली, तजोर, रामेश्वरम, धनुषकोटि, त्रिवेन्द्रम, कन्याकुमारी, अर्नाकुलम, त्रावनकोर, कोचीन, मैसूर, श्रवणवेलगोल, हैदरावाद आदि की यात्रा की। उस सारी यात्रा में छोटे भाई साहब ने हम सबका बहुत ही ध्यान रखा, खास तौर पर मेरे बेटे का, खाना, दूध, उसके लिए कुली आदि का। उनका व्यवहार ऐसा था, जैसा एक मा अपने बच्चे के प्रति रखती है।

सभी जगह घूमने और स्वच्छ भोजन आदि की व्यवस्था की। चाय का विशेष ध्यान रखते थे। यात्रा की सुविधाओ का भी भाई साहब को बहुत ध्यान रहता था।

मेरी दूसरी यात्रा उत्तर भारत की भाई साहब के साथ रही, जो कि २० मई सन् १९५८ से १८ जून १९५८ तक चली। उसमे हम यमुनोत्री, गगोत्री तथा गोमुख घूमे। यह प्रवास चूकि पहाडी था और अधिकतर पैदल चलना था, इसलिए यात्रा कठिन थी। पर भाई साहब ने उसे आसान बना दिया। भाई साहब स्वयं घूमने के साथ मुझे भी सब चीजे देखने के लिए प्रेरित करते रहते थे। यमुनोत्री की चढाई कठिन होने के कारण हम सब थक गए थे, पर भाई साहब के हिम्मत बधाते रहने के कारण ही यह यात्रा हम लोग कर सके। गगोत्री पहुचकर गोमुख जाने का कार्यक्रम बनने लगा। वहा स्वामी सुन्दरानन्दजी से भेंट हुई, जो कि कितनी ही बार गोमुख हो आए थे और उन्हे उस मार्ग का बहुत अनुभव था। वह गोमुख के पहाडी मार्ग से बदरीनारायण हो आए थे। वह माग बेहद बर्फीला और दुर्गम है। स्वामीजी ने हमारी टोली में जाने वाले व्यक्तियो की ओर सकेत किया। उनका सकेत मेरी ओर भी था। टोली के कुछ व्यक्तियो ने मना किया कि इसको नहीं जाना चाहिए, पर भाई साहब ने मुझे प्रोत्साहित किया कि तुझे अवश्य चलना चाहिए। भाई साहब के हिम्मत बढ़ाने पर मैं गोमुख गई। गोमुख जाने का मार्ग वास्तव मे दुर्गम था। रास्ते भर भाई साहब और स्वामीजी ने मेरा ध्यान रखा। इस प्रकार मैं भारत की अपूर्व प्रकृति के दर्शन कर सकी।

मेरी तीसरी यात्रा बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण और दु खद रही। वह ४ दिसम्बर १९६९ को हुई। वह यात्रा मेरी भाई साहब की गोद में हुई। मेरे पति ऑफिस के काम से भोपाल गए थे। वही उनके दिमाग की

नस फट गई। उनकी बीमारी का फोन आया। मेरठ से मेरे दामाद (डा अनिल प्रसाद) और मैं उनकी कार से दिल्ली पहुंचे। दिल्ली से छोटे भाई साहब और मेरे देवर भोपाल को कार से ही चले। सुबह के पाच बजे दिल्ली से चलकर शाम के सात बजे भोपाल पहुचे। सीधे अस्पताल गए। वहां पहुचने के कुछ देर बाद ही हमारे सामने मेरे पति का निधन हो गया। वहा से तुरन्त वापस दिल्ली के लिए लौटे। साथ में मेरे पति के शव को भी कार में लाये। भाई साहब किस प्रकार अपनी गोद में डालकर मुझे लाये, मैं नही जानती। दिल्ली भी १२ दिन भाई साहब बराबर मेरे साथ रहे और मुझे हिम्मत बधाते रहे।

मेरी मा भी १६ नवम्बर १६६६ को हम सबको छोड चली गई थी। मुझे मा की गोद चाहिए थी। वह भाई साहब की मिली।

ऐसे मातृ-वत्सल भाई की मन से चिरायु की भगवान से प्रार्थना करती हू और यह भी कि मेरे भाई सदा सुखी रहे।

पूजनीय भाई साहब

कुशलपाल जैन (अनुज)

□□

पूजनीय भाई साहब ! आप ७२ वर्ष के हुए, भगवान आपको शतायु करें, ताकि हम सबको आपका आशीर्वाद सदैव मिलता रहे। मन की भावनाए लम्बी-चौडी लिखकर ही नही, दो शब्दो में भी व्यक्त हो सकती हैं। कलाकार लिख नही सकता, पर रेखाओ मे अपनी भावना को व्यक्त तो कर ही सकता है।

आपके लिए श्रद्धा और प्यार तो जीवन भर रहेगा। हर सकट में आपका आशीर्वाद और स्नेह ही तो काम आया और आगे भी आता रहे, यही भगवान से प्रार्थना है।

जीवन में आप खूब स्वस्थ रहे, फलें-फूलें और आपकी ख्याति दिनो-दिन बढ़ती रहे, यही मेरे जीवन की साध है।

पिता-तुल्य भाई साहब

वीरेन्द्र प्रभाकर (अनुज)

□□

भाई साहब से मैं बहुत साल छोटा हू, पर उम्र का यह अन्तर उन्होने मुझे कभी अनुभव नही होने दिया। उनमे बडे होने का गुमान नही है। उनका दिल बडा खुला है और अपने परिवार के सदस्यो के ही नही, सबके साथ वह प्रेम का व्यवहार करते हैं।

हम सब भाइयो को उन्होने बचपन से ही खूब प्यार दिया है। मुझे याद है, जब मैं छोटा था तो मेरे पेट मे दर्द रहता था। वैद्य ने बताया कि कच्चा करेला खाओ। मुझे खिलाने के लिए भाई साहब स्वय पहले खाते थे। मेरे लिए कच्चा करेला खाना बडी भारी मुसीबत थी, लेकिन भाई साहब को उसे सहज भाव से खाते देखकर मेरी हैरानी बहुत कम हो जाती थी।

भाई साहब जब टीकमगढ़ रहे तो मैं और मेरा छोटा भाई राजेन्द्र कुछ दिन उनके पास रहे। बाद मे जब वह दिल्ली आ गए और मैं देहरादून मे फोटोग्राफी का अभ्यास करके 'हिन्दुस्तान' अखबार के साथ जुडा तो वह मुझे आगे बढ़ने को हमेशा प्रोत्साहित करते रहे।

जब सन् १९५१ मे हमने 'चित्रकला सगम' की स्थापना की तो इस सस्था की जडो को मजबूत बनाने और उसके विभिन्न कार्यक्रमो को सफल बनाने मे भाई साहब निरतर योग देते रहे। बाद मे सगम द्वारा जब हमने कुछ ग्रथ प्रकाशित किये तो उन ग्रथो को अच्छे-से-अच्छा और अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने मे भाई साहब ने जो सहायता की, उसे कभी भुलाया नही जा सकता।

हम लोग पढ़ा करते हैं कि अमुक चीज अठ-पहलू है, परन्तु भाई साहब के तो इससे भी कही अधिक पहलू हैं। उनके सामने साहित्य, सस्कृति और कला की न जाने कितने प्रकार की समस्याए आती रहती हैं और वे उन्हे निबटाने मे सदा तत्पर रहते है। जब मैं कुछ समस्याए लेकर उनके कमरे मे घुसता हू तो वह चाहे जितना जरूरी काम कर रहे हो, उसे छोडकर मेरी समस्याओ को बडी आत्मीयता से निपटा देते है। उन्होंने हमे बहुत बार रास्ता दिखाया है, लेकिन उस पर चलना न चलना हमारे ऊपर छोड दिया है।

भाई साहब दूसरो की खुशी मे शामिल होने मे विशेष आनन्द अनुभव करते हैं। मुझे याद है कि जब मुझको 'पद्मश्री' के लिए परिचय-पत्र आदि भेजना था तो उन्होने उसे बडे ही उत्साह से तैयार करवाया। हम सब भाइयो को आगे बढाने मे उन्होने सचमुच पिता के समान ही प्रोत्साहन दिया है। असल मे जो भी कोई अच्छा ध्येय उनके सामने आता है, वह उसमे सहयोगी बन जाते हैं। अपने देश की और देश के बाहर की जाने कितनी सस्थाए हैं, जिनके साथ भाई साहब घनिष्ठ रूप मे सम्बद्ध हैं और जिनके विकास मे उन्होने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से भाई साहब ने हम सब भाइयो और हमारे बच्चो को शिक्षा दी है कि खूब मेहनत से काम करो और सच्चाई के रास्ते पर चलो।

अपनी बात कहने की उन्होने हमे हमेशा छूट दी है और कभी-कभी हम अपनी बात बडी तेजी से कहते हैं। भूल जाते है कि हम किससे बात कर रहे हैं, लेकिन भाई साहब ने कभी इसका बुरा नही माना।

हम लोग आगे बढ़ते रहें, इसमें भाई साहब को ठीक वैसे ही आनन्द आता है, जैसे एक पिता को अपने बच्चों की प्रगति में आता है।

दिल्ली में स्थानाभाव के कारण हम सब भाई अलग-अलग घरो मे रहते हैं। हम सबके परिवारों को जोड़ने और जोड़े रखने का काम पहले अम्मा किया करती थीं। अब इस काम को दूसरे रूप मे भाई साहब करते हैं। जिस दिन भाई साहब आते हैं, सारा घर खुशी से भर जाता है। बच्चे बड़ी उमग से उनसे प्यार की चपत खाते हैं और उनके साथ खेलते हैं।

हमे जन्म देने वाले पिताजी चले गए, लेकिन हमारा सौभाग्य है कि हम पर अपने वात्सल्य की वर्षा करने वाले पिता-तुल्य भाई साहब हमारे बीच मौजूद हैं।

भाई साहब की वर्षगाठ पर हम भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि उनका साया अभी बहुत-बहुत दिनो तक हम पर बना रहे।

मेरे सच्चे गाइड

(डा) राजेन्द्रपाल जैन (अनुज)

□□

मैंने भाई साहब के आग्रह पर 'गाधीजी और हिन्दी' पर पी एच डी के लिए शोध-प्रबन्ध लिखने का सकल्प किया। जब मेरठ विश्वविद्यालय की शोध-समिति के सामने गया तो जो प्रश्न मुझसे किये गए, उनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भाई साहब का हिन्दो जगत मे कितना मान-सम्मान है।

"आप यशपालजी के भाई हैं ?"

"जी हा।"

"आपके गाइड कौन हैं ?"

"श्री हैं।"

"जो विषय आपने लेने का निश्चय किया है, उसके लिए आपके सच्चे गाइड आपके भाई साहब ही हो सकते हैं, लेकिन यह भी सही है कि शोध-प्रबन्ध के लिए औपचारिकता के लिए विश्वविद्यालय के गाइड को रखना ही होता है।"

साहित्यिक जगत में ही नही, समाज में भी भाई साहब का उतना ही मान है। जो भी उनके सम्पर्क में आता है, उन्हे भूल नही पाता। पिछले दिनो मैं एक मित्र के लडके की शादी मे गया था। दिल्ली के बहुत से गण्यमान्य व्यक्ति वहा आए हुए थे। लडके के पिता ने उनसे मेरा परिचय कराते हुए कहा, "यह यशपाल जैन के छोटे भाई हैं।" उन्होंने फिर आगे बताया कि वे सब ओर से निराश होकर अपने छोटे बेटे के प्रवेश

के सम्बन्ध में भाई साहब के पास गए। भाई साहब ने अपना काम छोडकर उसी समय स्कूल के प्रिन्सीपल को फोन किया और उनके लडके को तत्काल प्रवेश मिल जाने का आश्वासन प्राप्त हो गया। उन सज्जन ने भाई साहब के प्रति जिस प्रशसात्मक शब्दावली का प्रयोग किया, मैं सुनकर दग रह गया। अनुभव हुआ कि भाई साहब कितने बडे आदमी है, लेकिन अज्ञानवश जो मन में आता है, हम उन्हे कह डालते हैं। भाई साहब का यह बडप्पन है कि हमारी कठोर बात सुनकर भी कभी नाराज नही होते और मुस्करा कर टाल जाते हैं।

परोपकार के ऐसे एक नही, अनेक उदाहरण हैं, जब भाई साहब ने विभिन्न प्रकार की सहायता चाहने वालो की मदद स्वय की और दूसरो को भी प्रेरित किया। दु ख-कष्ट में भाई साहब ने जिनका साथ दिया है, वे लोग उनके बडे कृतज्ञ रहे है। भाई साहब बीतरागी और बुराई-भलाई में समरस रहते है।

भाई साहब ने स्वय पी-एच डी नही की, पर शोध-प्रबन्ध लिखने वालो को वह जितना विस्तृत ज्ञान देते हैं, वे तो सुनकर चकित हो जाते है। वे क्या, जब अपने वास्तविक गाइड को वे सब बताते है तो गाइड भी चमत्कृत हो जाते है। यह मेरा और मेरे एक मित्र का, जो पी-एच डी कर रहे थे, अनुभव है।

भाई साहब छोटी-छोटी बातो पर भी बहुत ध्यान देते है। पत्र लिखते समय अपना पता ढग से लिखना मैंने भाई साहब से ही सीखा है। एक बार मैंने उनसे कहा कि जब आपका पता सभी जानते हैं तो पूरा पता आप बार-बार पत्र के ऊपर के कोने में क्यो लिखते है? उन्होने कहा कि अगर हम पूरा पता नही लिखेगे तो पाठक को हमारा पता याद रखने का अनावश्यक बोझ उठाना पडेगा और अपने काम को दूसरो पर डालना एक प्रकार से उस पर अन्याय होगा। बात बडी छोटी है, लेकिन उसके पीछे सीख कितनी बडी है! अम्मा की मृत्यु के बाद भाई साहब से मुझे, सबसे छोटा भाई होने के नाते, सबसे ज्यादा दुलार मिला है।

भाई साहब में नम्रता कूट-कूट कर भरी है। मुझे उनको देखकर गाधीजी की बात याद आती है। उन्होंने कहा था, "ससार के विरुद्ध खडे रहने की शक्ति प्राप्त करने के लिए मगरूर या तुच्छ बनने की आवश्यकता नही है। ईसा दुनिया के खिलाफ खडा रहा, बुद्ध भी अपने जमाने के खिलाफ गया, प्रह्लाद ने भी वैसा ही किया। वे सभी नम्रता के पुतले थे।" सचमुच, भाई साहब अपनी नम्रता से ही सबको जीत लेते हैं।

भाई साहब इतनी ऊचाई पर पहुच गए है, फिर भी अहकार उनके जीवन और व्यवहार मे कही ढूढने पर भी नही मिलेगा। भाई साहब को बच्चो के साथ बच्चा बनना खूब आता है, इसीलिए घर के और बाहर के सभी बच्चे उनसे घुलमिल जाते हैं।

भाई साहब के ७२ वष पूरे करने के शुभ अवसर पर मैं ईश्वर से यही विनती करता हू कि मेरे भाई साहब सौ साल से भी अधिक जीये और हम सब उनकी छत्र-छाया के नीचे पल्लवित और पुष्पित होते रहे।

"बडे बडाई ना करे, बडे न बोलें बोल।
'रहिमन' हीरा कब कहै, लाख टका का मोल॥"

वह घर में

आदर्शकुमारी जैन (पत्नी)

□□

श्री क्षेमचन्द 'सुमन' ने मुझसे जब उपर्युक्त शीर्षक से एक लेख लिखने को कहा तो मैं असमजस मे पड गई कि क्या लिखू और क्या नही लिखू। सन् १६४२ के क्रान्तिकारी वर्ष मे मैं भी एक क्रान्तिकारी कदम उठाकर इनसे (श्री यशपालजी से) विवाह-बन्धन में बध गई। उम्र यो कोई बहुत छोटी नही थी, लेकिन पक्के सनातनी परिवार में मेरा लालन-पालन, घर मे पहली सन्तान होने के कारण, बडे लाड-प्यार से हुआ था। पिताजी का मुझपर अत्यधिक प्रेम-भाव था। लेकिन मेरे विवाह को लेकर उनके अपने मन में कोई विरोध न होते हुए भी अपने पिता का बिरादरी में जो मान-सम्मान था, उसकी रक्षा हेतु वे इस विवाह के लिए तैयार नही हुए। जो हो, यह सब अब एक बीती हुई बात हो गई। एक ज्योतिषी ने इनको बताया था कि जो तुमसे विरोध करता होगा, वह भी तुम्हारी सूरत देख कर तुम्हारी बात मान लेगा। औरो की मैं नही जानती, लेकिन वास्तविकता यही है कि पता नही, कौन से आकर्षण ने मुझे इनसे दूर नही होने दिया और मैं घर और समाज की सारी रूढियो को तोड कर हमेशा के लिए इनके साथ आ गई।

इनका परिवार भी कम दकियानूसी नही था, लेकिन मुझे बडा आश्चय हुआ कि गांव में पहली बार गई तो किसी प्रकार का भेदभाव मैंने नही देखा। घूघट निकालने का तो प्रश्न ही नही था, लेकिन अम्मा (मेरी सास) ने हम दोनो को एक ही थाली मे परोस कर अपने सामने खाना खिलाया। रात को सब लोग इकट्ठे बैठ कर ताश खेलते थे और कभी-कभी मुझसे भजन भी सुनते थे। इस तरह मुझे यह कभी महसूस नही हुआ कि मैं ससुराल में आई हू।

विवाह के बाद मैंने गाजियाबाद की अध्यापकी छोड दी और हम लोग कुण्डेश्वर(टीकमगढ़) चले गए। सस्ता जमाना था और वहा पूरा घर का काम करने के लिए नौकर आसानी से मिल जाते थे। अत मैं नही जानती कि गृहस्थी का बोझ क्या होता है। सवेरे चार-छ मील दादाजी (श्रद्धेय बनारसीदासजी चतुर्वेदी) के साथ वन-भ्रमण करना और नाश्ता आदि करके कुण्ड में तैरने के लिए जाना। ऐसी ही रोचक दिनचर्या थी कुण्डेश्वर में। शुरू मे तो हम लोग दादाजी के साथ ही खाना खाते थे। सन् १६४३ और १६४५ में कुण्डेश्वर में मेरे दोनो बच्चे हुए। जैसा कि इनका स्वभाव है, सबको अपना बना लेते है, टीकमगढ के डाक्टर कोठारी भी इनके मित्र बन गए और दोनो बच्चो के होने में पूरे दस-दस दिन तक अस्पताल की नर्स रात-दिन मेरे पास रही।

हम दोनो साथ रहते हैं, लेकिन मेरे-इनके स्वभाव में बडा अन्तर है। मुझे बडी जल्दी गुस्सा आ जाता है, पर पहले तो इन्हे गुस्सा आता नही और आता भी है तो एक क्षण में खत्म हो जाता है और फिर ऐसे ही बोलने लगते हैं, जैसे कुछ हुआ ही न हो। मेरा बोलने को मन नही होता था, लेकिन कुछ दिनो मे मैंने भी इनकी यह आदत सीख ली और अब किसी से भी कोई बात हो जाय, बोलना नही छोडती।

सहनशीलता की तो इनमे हद है। इसके कारण ही छोटे-बडे सब इनसे लाभ उठाने में नहीं हिचकिचाते, लेकिन इनके चेहरे पर कभी शिकन नहीं आती। कुछ दिनो हमारा सारा परिवार दरियागंज में ही हमारे साथ रहा था। सवेरे सभी को दफ्तर जाने की जल्दी रहती थी। जाडे के दिनो मे सभी को गर्म पानी की

जरूरत होती थी नहाने के लिए। बहुत बार यह होता कि गर्म पानी समय पर न मिलने के कारण इन्हें ठण्डे पानी से नहाना पडता था। मुझे बहुत बुरा लगता और जब मैं बडबड़ाती तो ये कहते, "अरे, आज तो मुझे गंगाजी में स्नान करने का आनन्द आ गया।"

अकेले खाना खाना इन्हें बहुत बुरा लगता है। चाहते हैं कि रोज मेहमान आते रहे। कुण्डेश्वर में ललितपुर से बारह-साढे बारह बजे बस पहुचती थी और उस बस के निकल जाने के बाद ही ये खाना खाते थे कि शायद कोई अतिथि आ जाय। दादाजी का घर तो धमशाला बना हुआ था। कोई भी वहा कितने ही दिन टिक सकता था और दादाजी के यहा जो भी मेहमान आते, उनको ये दो-एक बार जरूर अपने घर खाना खिलाते। मुझे खाने का शौक है और बनाने का भी। जो लोग मेरे हाथ का बना खाना खाते तो तारीफ करते और इससे मुझे बहुत अच्छा लगता। लेकिन बिना सोचे-समझे सीमित आय होने पर भी मैं खर्च उससे ज्यादा कर बैठती थी। गुस्सा मुझे तब आता जब ये कहते कि मेरे पास पैसे नही है। जब पैसे नही हैं तो क्यो रोज की मेहमानदारी पालते हैं! इससे इनको भी झुझलाहट होती थी कि मैं घर देख कर खर्च क्यो नही करती। लोग मिलने और बात करने आते हैं, न कि मुझे खाना बनाने का सर्टिफिकेट देने! लेकिन यह इनकी समझ में कभी नही आयेगा कि खर्च कम करने की भी कोई सीमा होती है। आज भी इनका वही हाल है, यद्यपि भगवान की कृपा से और अपने हाथ-पैर की मेहनत से अब हमें पैसे की कोई कठिनाई नही है।

मामाजी (श्री जैनेन्द्र कुमारजी) के साथ रहकर इन्होने खद्दर पहनना शुरू किया तो आजतक वही अपनाए हुए है। सादा जीवन इनका आदश है। अच्छी चीजे इन्हे पसन्द हैं, लेकिन आग्रह नही रखते। जो मिल जाय, वही ठीक है। सन् १९४८ की बात है। एक दिन खादी भण्डार गए और एक गर्म कपडा अपने कुर्ते के लिए पसन्द कर लिया। मैं हैरान थी कि इतना महगा कपडा कैसे लेने को तैयार हो गए। जब बात सामने आई तो मुझे हसी आ गई। ३५ रु गज का कपड़ा था और इन्होने समझा कि पूरा थान ३५ रु का है। अपने ऊपर कम-से-कम खच हो, यह भावना अब भी बनी हुई है। पहले मैं ही इनके कपडे सी देती थी, लेकिन अब मुझसे सिलाई नही होती। आज जब बनियान की सिलाई इन्हे छह रु प्रति बनियान देनी पडती है तो अखर जाती है।

हर आदमी काम करता है और आराम चाहता है, लेकिन ये काम से कभी थकते नही हैं। इनके लिए स्वर्गीय मातण्डजी कहा करते थे कि ये अपने लिए काम उपजाते रहते हैं। यही कारण है कि जब मैं कहती हू कि मैं थक जाती हू तो ये समझ नही पाते कि 'थकना' भी कुछ होता है। नेपोलियन के लिए 'असम्भव' शब्द कोश में नही था और इनके लिए 'थकना'। बहुत हुआ तो कह देंगे कि थक जाती हो तो मत करो काम। कौन कहता है तुमसे काम करने को! गृहस्थी मे कैसे हो सकता है कि मेहमान वक्त-बेवक्त घर आ जाय तो उन्हे खाना न खिलाया जाय, महरी न आए और नौकर न हो तो चौका-बर्तन न किया जाय, घर मे झाडू-पोछा न हो, बाजार से सब्जी-दूध न लाया जाय। वैसे काम से ये थकते नही, लेकिन क्या मजाल कि इन्होने कभी दूध या सब्जी लाकर दी हो! इसीलिए बडी आसानी से कह सकते है कि क्यो काम करती हो, मत करो।

ये अपने मन के राजा हैं और जब इनकी मर्जी होगी तभी घर में कुछ खरीदा जा सकता है। बडी गोदरेज की आलमारी खरीदनी है मुझे, पर ये कहेगे कि तुम्हारे पास है क्या बडी आलमारी में रखने को? इतना इनकी समझ मे नही आता कि कम कपडे हो तो वे बडी आलमारी मे खपाए जा सकते हैं, लेकिन ज्यादा कपडे छोटी में नही समा सकेगे। इसी प्रकार फ्रिज भी बडा नही लिया जा सका। उससे पहले तो कितनी ही बार कहने पर भी फ्रिज लेने को तैयार नही हुए थे, क्योकि इनको न ठण्डे पानी की जरूरत है, न बरफ की। लेकिन घर में केवल यही तो अकेले नही हैं। हमारा बेटा सुधीर जब कैनाडा से आया और उसके सामने भी मैंने यह बात रक्खी तो उसने कहा, "बाबूजी, आपको जरूरत नही है, लेकिन जब भी कोई आता है, शरबत या

लस्सी के लिए अम्मा को जीना उतर कर बरफ लाने के लिए दौड़ना पड़ता है।" उसके बाद ही फ्रिज आया। गैस के लिए इनका कहना था कि मैं बहुत लापरवाह हूं और गैस खुली रह गई तो मैं जल जाऊंगी। मैंने कहा, "मैं लिख कर दे सकती हू कि मेरी मौत जलने से नही होगी।" काफी दिनो तक बहस चलती रही और एक दिन देखती क्या हू कि ठीक मेरे जन्म-दिन पर घर मे गैस आ गई।

यों इनको किसी भी काम से परहेज नहीं है, लेकिन रसोईघर मे जाना जैसे किसी लक्ष्मण-रेखा से इनके लिए वर्जित कर दिया गया हो। इसपर मुझे एक बात याद आ रही है। मैं और बेटी अन्नदा बाजार चले गए थे और जो नौकर इन्होने अपने दफ्तर के चपरासी की सिफारिश पर रक्खा था, वह पेशगी रुपये लेकर अपने भाई को स्टेशन पहुचाने का बहाना बनाकर चम्पत हो गया। मैं इन नौकरो पर कभी विश्वास नही करती, पर दफ्तर से इनके फोन करने पर मुझे पैसे देने ही पड़े। शाम को जब ये लौटे तो रसोई मे जूठे बर्तनो का ढेर लगा हुआ था और नौकर गायब था। पड़ोसियो से इन्हें पता लगा कि हम लोग बाजार गए हैं तो इन्होने मेरी असुविधा को समझ कर सबसे पहला काम जो किया, वह यह कि बर्तन साफ करना शुरू कर दिया। हम जब लौटे तो यह दृश्य देखते ही मुझे बहुत गुस्सा आया, लेकिन ये मुस्करा कर बोले, "तो क्या हो गया ?"

यथासम्भव बच्चो को बहुत ही प्यार करते हैं, यहां तक कि उन्हे सब प्रकार का आराम देना चाहते हैं, उनकी हर जिद भरसक पूरी करते हैं, लेकिन बच्चो मे सादगी देखना सबसे पहले पसन्द करते हैं। इसीलिए बचपन मे उनके लिए भी खद्दर के कपड़ ही बनवाते थे और उनकी सख्या भी सीमित रहती थी। उनका कहना था कि फैशन के फेर मे अपनी जरूरतो को व्यर्थ मे नही बढ़ाना चाहिए। 'बहुत खायगा चुपरी तो बहुत करेगा पाप', इसमे इनका पक्का विश्वास है। बच्चो के प्यार की हद का यहा मैं केवल एक उदाहरण देना चाहूगी। एक शाम को दफ्तर से लौटे तो हमारी बेटी अन्नदा ने अपना फटा जूता दिखाते हुए कहा कि अम्मा ने इसे गठवाया नही। इन्होंने उसी समय मोटी सुई लेकर उसे ठीक करना आरभ कर दिया। आर्थिक कठिनाइयां होते हुए भी इन्होने बच्चो को छोटी-सी उम्र मे उत्तर मे अमरनाथ से लेकर दक्षिण मे कन्या कुमारी तक की यात्रा करा दी थी।

बच्चे जब कभी बीमार होते तो रात-दिन एक कर देते और उनका जितना भी काम होता, स्वय करके मुझे एकदम चिन्ता-मुक्त कर देते। लेकिन मैंने इन्हे घबराते कभी नही देखा और जो मुश्किले आयी, उन्हे बड़े धीरज के साथ सहते रहे। मेरी लम्बी बीमारी मे दोनो बच्चे इनसे दूर मेरे माता-पिता के पास अलीगढ़ मे रहे, लेकिन अपने घर के लोगो के प्रति इनके मन मे कोई शिकायत नही आई। यह अच्छी तरह जानते थे कि यहा अपने घर मे कोई बच्चो की देखभाल वाला नही है, फिर उन दिनो ये ज्यादातर दिल्ली से बाहर ही रहते थे। लेकिन अलीगढ़ मे अधिकाधिक लाड-प्यार मिलने पर भी इनके मन में टीस रहती कि बच्चो को अपने साथ नही रख सकते।

दसरो के लिए ज्यादा-से-ज्यादा करने मे इन्हे सुख मिलता है। फलत इनके पास अपने लिए अपना कोई समय नही है। जिसका जिस समय जी चाहे, इनका दरवाजा खटखटा सकता है।

पिता के लिए इनके मन मे बहुत आदर-भाव रहा है, लेकिन अम्मा के प्रति इनका प्यार हद से बाहर था। उनके हिसाब से अम्मा मे कोई दोष हो ही नही सकता था और अम्मा को भी अपने सारे बेटो से ज्यादा इन्ही पर भरोसा रहता था। अम्मा बेहद बीमार थी, अरविन अस्पताल में। बीस दिन तक रही। ८० वर्ष की उम्र भी थी। घर लौटते समय मैंने कहा कि अम्मा को जो प्यार करता होगा, वह यही दुआ करेगा कि भगवान जल्दी-से-जल्दी उन्हें मुक्ति दे। इस पर बड़े-ही दु खभरे स्वर में बोले, "तुम मेरी हिम्मत तो नही बधाती कि वह ठीक हो जायेगी, उलटे उनकी मुक्ति की प्रार्थना की बात कर रही हो !" अम्मा को भी अपनी घर-

घर-गृहस्थी में कुछ कम नही सहना पडा था और ये चाहते थे कि एक बार अम्मा ठीक होकर देख लें कि उनका बेटा उन्हे मौत के मुह मे से भी खीच कर ला सकता है। पर वह कहां होना था ! तब इनके पास फूट-फूट कर रोने के सिवाय और चारा ही क्या था।

मेरे इनके बीच मतभेद की कोई बडी बात नही होती, पर नौकरो को लेकर तो अक्सर कहासुनी हो जाती है। उसकी कमिया जानते हुए भी पक्ष उसका ही लेते रहे हैं। इसीलिए उनके लिए बाबूजी देवता हैं और बीबीजी सबसे बडी दुश्मन। लेकिन एक बार एक नौकर की चोरी और बेईमानी की कलई इस तरह खुली कि इनको उससे कहना पडा कि बीबीजी आदमी को पहचानती हैं और मैं नही। वह गिडगिडा कर इनसे माफी मागने लगा तो बोले, 'तुम्हे माफी मागनी है तो इनसे मागो, मुझसे नही।" बेचारा नौकर पानी-पानी हो गया और एक दिन चुपचाप चला गया। उसकी तनख्वाह और कपडे भी हमने बाद मे भिजवाए।

एक-दो घटनाए मुझे कभी नही भूलती। नई दिल्ली ग्रीनपार्क मे हमारा मकान बन रहा था। हम दोनो मे से किसी को देखभाल करने का अवकाश नही था। अत चौकीदार सीमेण्ट, बदरपुर, प्लाईवुड आदि चीजे चुरा-चुरा कर बेचता रहा। ठेकेदार ने इनसे शिकायत की और कहा कि आप इसे पुलिस मे दे दीजिए। हम तो आपको यह भी बता सकते हैं कि आपका सामान कहा-कहा गया है। लेकिन ये उसे पुलिस मे देने को तैयार नही हुए। चौकीदार को इन सब बातो का पता लगा तो वह कोई बहाना बना कर नौकरी छोड गया। मकान पूरा होने पर गृह-प्रवेश का मुहूर्त हुआ तो सबकुछ जानते हुए भी इन्होने उसे भी निमन्त्रित किया।

नौकरो के साथ इनकी हमदर्दी का जवाब नही है। अगर कभी मैं कह दू कि ये पलग के नीचे ठीक से सफाई नही करता तो मुझे सुनने को मिलता, "तुम भी तो कघे मे बाल लगे छोड देती हो।" पर मैंने यह देखा कि इनके गाधीवाद का रास्ता नौकरो के हृदय-परिवर्तन मे कभी सफल नही हो सका। इनकी सहृदयता उन्हे अधिक-से-अधिक धोखा देने के लिए उनका उत्साह बढाती रही। हम लोग टीकमगढ़ मे रहते थे। हमारा नौकर रोज ही चीजो पर हाथ साफ करता था। एक दिन मैंने काजू चुराते रगे हाथो पकड लिया तो अपनी ईमानदारी दिखाने के लिए वह तेजी से कमरे से बाहर भागा और काजू उसने घास मे फेक दिये और अपने खाली हाथ मुझे दिखा दिए। इसी बीच ये भी वहा आ गए। मेरी बात सुनकर इन्होने उससे कुछ नही कहा और बडे प्यार से उसे अन्दर लाये और दो मुट्ठी भर कर काजू उसके हाथ मे रख दिए और मुझसे बोले कि जब हम लोग खाते हैं तो इसका भी तो मन होता है।

मेरी उन्नति मे सदा इनकी रुचि रही है और इसीलिए मुझे रसोई आदि का काम करते देख कर इन्हें खुशी नही होती और तब हमेशा यही कहते हैं, "तुम करती क्या हो ! तीस रुपये महीने का काम करती हो।" यही कारण है कि घर की जिम्मेदारियो के कारण मेरे न चाहने पर भी पढाई छोडने के बीस वर्ष बाद इन्होने मेरा दाखिला इन्द्रप्रस्थ कॉलिज मे बी ए आनर्स के द्वितीय वर्ष मे करा दिया। एम ए मे दाखिला लेने की बात आई तो हमारा पुराना नौकर चला गया था, इसलिए मैंने जब कहा कि नौकर के बिना मैं पढाई नही कर सकूगी तो बोले, "नौकर तो कोई-न-कोई आ ही जाएगा, लेकिन दाखिला फिर नही मिल सकेगा।" और मुझे प्रवेश दिलवा दिया। सौभाग्य से एम ए मे भी मुझे प्रथम श्रेणी मिली, लेकिन विश्वविद्यालय के एक अधिकारी की स्वेच्छाचारिता के कारण मुझे नौकरी नही मिली। मेरे मन मे दु ख जरूर था कि मेरे साथ की द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण होने वाली लडकियो को तो नौकरी मिल गई और मैं केवल इसलिए रह गई कि अधिकारी चाहते थे कि यह उनसे कहे। पर इनकी अड थी कि नही कहेगे। हमारे जानने वाले लोगो से अधिकारी का यह व्यवहार छिपा नही रह सका, अत उनको इसके लिए काफी सुनना पडा। जहा तक मेरा सम्बन्ध है, मुझसे उन्हे कोई शिकायत भी नही थी। अचानक एक दिन फोन मिला कि मैं दस बजे विश्वविद्यालय पहुच जाऊ। मेरे लिए

काम की व्यवस्था हो गई है, लेकिन इन्होंने मेरे हाथ से फोन लेकर कह दिया, "आदर्श को नौकरी नहीं करनी।" इसी रवैये के कारण मैंने साक्षात्कार मे जाना छोड़ दिया और बाद मे आवेदन-पत्र भी कहीं नहीं दिया।

ये ही सब कारण हैं, जिनसे मुझे घर पर रहना पडा और नौकरी न पाने की टीस मेरे मन मे कभी-कभी उठती रही। मेरे अन्दर हीन-भावना न आए, इसलिए उन्होंने अपने-आप असुविधाए उठाकर भी आठ महीने के लिए मुझे फोक हाईस्कूल मूवमेण्ट का अध्ययन करने के लिए डेनमार्क ठेल कर भेज दिया। अकेले इतनी दूर, जहा की भाषा से भी मैं अपरिचित थी, वहा जाने का मेरा साहस नही था, लेकिन जैसा मैंने कहा कि ये अपनी ही बात रखते हैं, मुझे जाना ही पडा। जाने-आने का किराया और छात्र-वृत्ति मुझे डैनिश सरकार ने दी थी, लेकिन वहां जाने के लिए कपडो आदि की व्यवस्था करने मे भी कम खर्च नही आया। इन्होंने मेरे लिए जितनी खरीदारी की, उससे मुझे तो एसा लगा, जैसे मेरा दहेज तैयार हो रहा है। डेन्मार्क मे आठ महीने रहना मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ और मुझमें आत्मविश्वास पैदा हो गया कि मैं कहीं भी अपना स्थान बना सकती हू। इसके लगभग एक साल बाद ही मुझे कालिन्दी कॉलेज में नौकरी मिल गई। अपनी पढाई-लिखाई का पूरा श्रेय मैं इन्हे ही देती हू, यद्यपि मैं यह भी जानती हू कि अगर मुझमें उत्साह और लगन न होती तो कुछ भी न हो पाता।

सन् १९४२ से १९८४ तक इतना लम्बा समय बीत चुका है और इस बीच ऊपर से मैं इनमे चाहे कितने ही दोष देखती होऊ, लेकिन इतना मानती हू कि आज जो मैं हू, उसमे इनका बहुत बडा हाथ है।

चिन्ताओ को ये पास नही फटकने देते, सबके प्रति निर्मल प्रेमभाव रखते हैं, कसकर मेहनत करते हैं, सबका भला चाहते हैं और करते हैं बिना किसी फल की आशा से। इनके ये गुण मैं अनुकरणीय मानती हू, चाहे अपनी प्रकृतिवश इनका पूरी तरह अनुसरण करना मेरे लिए हमेशा सम्भव नही होता। पति के लिए जो मेरा अपना ही अग है, इन शब्दो से अधिक श्रद्धा के सामर्थ्यवान शब्द और क्या हो सकते हैं!

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि पूर्व जन्म मे ये अवश्य ही योगी होगे और योगभ्रष्ट होने के कारण इन्हे फिर से ससार मे आना पडा है। किसी के प्रति दुर्भावना या कटुता तो ये रख ही नही पाते। बदला लेने की इनकी प्रवृत्ति नही है। अपने साथ बुरा करने वालो की सहायता भी ये उतनी ही तत्परता से करने को तैयार रहते है, जितनी अपने मित्रो की। ऐसा अनूठा व्यक्तित्व है इनका। यही कारण है कि ७२ वष पूरे करने के बाद भी इनका चेहरा इनके हृदय की स्निग्धता से सदा दमकता रहता है। 'मीर' के शब्दो मे

जो आए बज्म मे
इतना तो 'मीर' ने देखा।
फिर उसके बाद चरागो
मे रोशनी न रही॥

मेरे जीवन पर प्रभाव

संतोष कुमारी जैन (पत्नी, कुशलपाल)

□□

मेरे मन में पूज्य भाई साहब के लिए जो भावना है, उसे शब्दों में प्रकट करना मेरे लिए सम्भव नही है। भाई साहब इतने मृदु-भाषी है कि उनसे थोडी देर बात करके भी मन को बडी राहत मिलती है। हमारा घर दूर है, इसलिए रोज मिलना नही हो सकता, लेकिन फोन पर उनसे लगभग रोज ही बात हो जाती है। अगर कभी फोन पर बात न कर सकू तो मुझे लगता है कि मेरा कोई बहुत बडा काम शेष रह गया है। भाई साहब दो महीने के लिए अपने बेटे सुधीर के पास कैनेडा गये थे, तब तो हम उनकी आवाज सुनने को तरस गये थे।

भाई साहब का व्यक्तित्व निराला है। वह सामान्य आदमी से बहुत ऊपर है। उन्हें मैंने कभी परेशान होते नही देखा। दूसरो के दु ख-सुख की बाते वह बडी आत्मीयता से सुनते है और आवश्यकतानुमार अच्छे सुझाव भी देते है। औरो के दोष वह कभी नही देखते और सदा कहते है कि अपने दोषो पर निगाह रखनी चाहिए।

हमारा घर रूढ़िवादी रहा है, लेकिन भाई साहब ने उन रूढियो को धैर्यपूर्वक तोडने का प्रयास किया है। सन् १६४४ में मेरी शादी हुई थी और सास-ननद के प्रभाव के कारण मुझे सबसे घूघट निकालना पडा था, जब कि मुझे शादी से पहले अच्छी तरह देखा था और सबने मुझसे खुल कर बातचीत की थी। लेकिन कुछ दिनो बाद जब भाई साहब हमारे घर दिल्ली आए तो घर मे मैं अकेली थी। भाई साहब के कहने से मैंने घूघट हटा दिया और मैं नि सकोच उनसे बातें करती रही और भल गई कि वे मेरे जेठ है। ऐसे स्नेहिल है मेरे भाई साहब। अब तो हम सब के बेटो की बहुए भी किसी से पर्दा नही करती।

भाई साहब जैसी सहृदयता मैंने कम ही लोगो मे देखी है। मेरा ऑपरेशन हुआ था और मुझे छह महीने अस्पताल मे रहना पडा था। भाई साहब ने मुझे इतनी दिलासा दी कि मैने वह दु ख हसते-हसते झल लिया। छह महीने की लम्बी अवधि मे वह बराबर मेरे पास आते रहे और अपनी मीठी-मीठी बातो से प्रयत्न करते कि मैं अपने कष्ट को भूल जाऊ। दु ख को दु ख न मानना और साहस से काम लेना, यह सीख मुझे भाई साहब ने ही दी है, जिससे मेरा जीवन अधिक शान्तिमय बन सका है। भाई साहब मेरे जेठ नही, मेरे बडे भाई के समान है, जिनसे मैं सबकुछ नि सकोच कह डालती हू।

उनकी ७२वी वर्षगाठ के मगलमय अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाए उनके साथ है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे चिरजीवी हो और उनका आशीर्वाद हमे सदैव मिलता रहे।

मेरे जेठ

कान्ता जैन (पत्नी, वीरेन्द्र प्रभाकर)

□□

पूज्य भाई साहब मेरे दूसरे नम्बर के जेठ हैं। मैं शादी के बाद एक साल तक दरियागज के मकान मे उनके साथ ही रही। भाई साहब के स्नेह के बारे में जब मैं याद करती हू तो कितनी ही बातें मेरे सामने आ जाती हैं। मेरी पहली सन्तान नीलम बेटी दरियागज में ही हुई थी। सब लोग जन्माष्टमी के अवसर पर मन्दिरो में झाकी देखने को जा रहे थे। मेरा भी बहुत मन था, पर छोटी बच्ची को साथ ले जाना मेरे लिए मुश्किल था, और घर पर उसे कौन रखता, क्योकि वह रोती बहुत थी। भाई साहब को जब मेरी स्थिति मालूम हुई तो वे उसे रखने को तैयार हो गए। जब हम लोग लौट कर आए तो देखते है कि भाई साहब उसे कधे से लगाए घुमा रहे हैं और वह गहरी नीद मे सो रही है। हमारे आते ही बोले, "तुम लोग बेकार ही लडकी को बदनाम करते हो।" बच्चो के प्रति तो भाई साहब को असीम प्यार है।

भाई साहब की सहनशीलता भी अकल्पनीय है। घर में रहते थे तो कभी किसी पर गुस्सा नही हुए। जो बन गया, खा लिया, कभी कोई शिकायत नही की। अपनी सुख-सुविधा की परवा उन्होने कभी नही की, हम सबका ख्याल सदा रखते थे।

भाई साहब रूढ़ियो में जकडे बिलकुल नही हैं, लेकिन माता-पिता की आज्ञा मानना सबसे बडा धर्म रहा है। उन लोगो की मर्जी थी कि मुझे भाई साहब से घूघट निकालना चाहिए और बात चीत नही करनी चाहिए, इसलिए मुझे भाई साहब से यह सब दकियानूसीपन बरतना पडा। इसका नतीजा यह हुआ कि आज भी वह मुझसे फोन पर भी बात नही करते। जब फोन करेगे तो मेरे 'हलो' कहते ही कहेगे, "किसी बच्चे को दे दो।" मेरा मन भाई साहब से बोलने को करता है, पर जब उनका यह रवैया है तो मैं भी चुप ही रहती हू, लेकिन मुझे आश्चर्य तब होता है कि हमारी ही बहुए उनके साथ नि सकोच मुह खोल कर बात कर लेती है और भाई साहब को स्वय भी यह बडा अच्छा लगता है।

हम सब लोग अलग-अलग रह रहे है, पर भाई साहब का सबके प्रति समान प्रेम है। वे सबके दु ख-सुख की बात सुनते हैं और यथासम्भव उनका समाधान भी कर देते है। भाई साहब की आदत सबमे अच्छाई देखने की है। यही कारण है कि किसी की बुरी बात सामने आ भी जाय तो वे अनदेखी कर देते है। मैं भी भाई साहब के दिखाए इस मार्ग का अनुसरण करने का प्रयत्न करती हू और मुझे लगता है कि इस प्रयत्न मे मैंने काफी सफलता भी प्राप्त कर ली है।

भाई साहब सबकी प्रगति देख कर फूले नही समाते। ईर्ष्या का भाव उन्हे छू तक नही गया। इसलिए सबका यही भ्रम रहता है कि भाई साहब उसे ही सबसे ज्यादा प्यार करते है। अद्भुत व्यक्ति हैं मेरे जेठ!

उनकी वर्षगाठ पर मेरा मन बहुत उल्लास से भरा हुआ है और मेरे हृदय से यही आवाज निकल रही है कि भगवान ऐसे जेठ सबको दें। वे सैकडो वर्ष जीयें, स्वस्थ और सुखी रहे और हमें सदा आशीर्वाद देते रहे।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात

प्रदीप कुमार जैन (पुत्र हजारीलाल जैन)

□□

मेरे लिए यह गर्व और गौरव का विषय है कि मेरे चाचाजी श्री यशपाल जैन हिन्दी के सुविख्यात लेखक और गाधीवादी विचारधारा के पोषक हैं। उनका रस-स्निग्ध व्यक्तित्व, गौरवर्ण, श्वेत दुग्ध धवल खादी की धोती-कुर्ता, चेहरे पर थिरकती मधुर मुस्कान सामने आते ही सबका मन हर लेती है।

चाचाजी हमारे परिवार मे पहले व्यक्ति हैं, जिन्होने सादगी को बखूबी अपनाया है। वह सबकी बात को आदर देना जानते हैं। हम उन्हे कोई छोटी-से-छोटी मामूली-सी चीज भी दिखाए तो वह कभी यह नही कहते कि क्या उठा लाये। वह सदा यह कह कर ही सबका मन रखते हैं कि बहुत बढिया चीज है।

चाचाजी के घर कोई भी पहुचे, वह आग्रहपूर्वक उसे कुछ-न-कुछ खिला कर ही छोडते हैं। चाची डेनमार्क गयी हुई थी, आठ महीने के लिए। घर में चाचाजी और उनका बेटा सुधीर था। मैं जब पहुचा और कुछ ही देर में चलने को हुआ तो उन्होने बडे प्यार से मेरे लिए तरबूज निकाला और बोले, "प्रदीप, तरबूज खाओ, बहुत ही मीठा है।" इस तरह चाचाजी के लिए यही कह सकता हू कि आवभगत करने का उन्हे बडा शौक है। घर-गृहस्थी मे रह कर भी वह जल मे कमलवत् रहते हैं।

चाचाजी स्कूल और कॉलेज की परीक्षा मे चाहे प्रथम न रहे हो, लेकिन साहित्यकार वे प्रथम श्रेणी के हैं। वैसे वे सदा ही सच्चे मेधावी छात्र रहे और अपने शिक्षको से बहुत प्यार और सम्मान पाते रहे। बाबाजी ने बताया कि एक बार स्कूल मे इस्पेक्टर निरीक्षण के लिए आए। उन्होंने एक ऐसा प्रश्न किया, जिसका उत्तर शिक्षक भी नही दे सके। चाचाजी ने खडे होकर उसका हल कर दिया। इस्पेक्टर बहुत खुश हुए और उन्होने चाचाजी को बहुत प्यार किया। मै सोचता हू कि कितना सुन्दर दृश्य रहा होगा वह।

अपने बडो का सम्मान करना और उनकी सेवा करना चाचाजी अपना सबसे बडा कर्तव्य मानते हैं। घर मे भाइयो मे दूसरे नम्बर पर होने पर भी उन्होने घर की जिम्मेदारियो को ऐसे उठाया, जैसे वही सबसे बडे हो। छोटे की बदतमीजियो को भी वह हस कर टाल देते है, कभी बुरा नही मानते। शायद यही कारण है कि घर मे पैसे मे चाहे कोई कितना बडा हो गया हो, लेकिन सम्मान पाने मे वह कभी इनसे आगे नही बढ सकता। इतने पर भी चाचाजी को घमड छू भी नही गया है।

हम बच्चे उनके बहत्तर वर्ष पूरे करने पर उन्हे यही आश्वासन दे सकते है कि हम उनके दिखाए सन्मार्ग पर चल कर उन्ही की तरह परिवार का नाम ऊचा करने का प्रयत्न करेंगे।

मेरे पितृ-तुल्य चाचाजी

मधु जैन (पत्नी, प्रदीप)

□□

पूज्य श्री यशपालजी मेरे चचिया ससुर हैं। मैंने उन्हे सबसे पहले अपनी शादी में उपराष्ट्रपति श्री गोपाल स्वरूप पाठक के साथ देखा था। वह उपराष्ट्रपति के साथ सोफे पर बैठे थे। उस समय मैं उन्हें जानती नहीं थी, लेकिन खादी की पोशाक मे उनकी सौम्यता ने मुझे विशेष रूप से आकर्षित किया था।

ससुराल पहुच कर जब परिचय हुआ और मैंने उनके चरण स्पर्श किए तो उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रक्खा और अशीर्वाद देते हुए कहा, "खूब खुश रहो। इस घर मे तुम बहू की तरह नही, बेटी की तरह रहना।" मुझे उस क्षण ऐसा लगा, जैसे मुझे जीवन की कोई निधि मिल गई हो।

चाचाजी दरियागज मे रहते है और जब-तब हमारे घर आते रहते हैं। वे हमेशा पूछते रहते हैं कि मुझे कोई तकलीफ तो नही है, किसी चीज की कमी तो नही है। वह जितनी देर यहा रहते हैं, बराबर हसते रहते है, और हम सबको भी हसाते रहते है। अच्छी-अच्छी कहानिया और चुटकुले सुना कर बच्चो का मनोरजन करना उनकी आदत है।

मैं जब उनके घर दरियागज गयी तो उनकी विशाल लाइब्रेरी को देख कर समझी कि चाचाजी कितने बडे साहित्यकार है। उनकी सादगी के रहन-सहन का मेरे मन पर बडा अच्छा प्रभाव पडा। कितने बड़े यशस्वी साहित्यकार और कितना सादा जीवन !

मेरी भगवान से प्राथना है कि वे शतायु हो, स्वस्थ रहे और उनका आशीर्वाद हमे सदा-सदा मिलता रहे।

अनेक गुणों के पुंज

कमल कुमार पाटनी (जामाता)

□□

बाबूजी के विषय मे क्या लिखू ! उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलू हैं। वह लेखक हैं। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं। वह सस्कृति के उपासक हैं। उन्होने सस्कृति का निरतर प्रचार किया है। वह पर्यटक हैं। उन्होने अपने देश का तो अनेक बार भ्रमण किया ही है, सारी दुनिया छान डाली है। वह हिन्दी के प्रबल पोषक है। उन्होने दूर-दूर तक हिन्दी का सदेश पहुचाया है। वह भारत से बाहर बसे भारतवासियो मे गहरी दिलचस्पी

रखते हैं। उनकी स्थिति का सही-सही अनुमान करने के लिए उन्होने विदेशो की हजारो मील की यात्राए की हैं।

इस सबका नतीजा यह है कि उनके मित्रो, हितैषियो और प्रशंसको का दायरा बहुत बडा बन गया है, वह दिल्ली मे तो घिरे ही रहते है, दिल्ली से बाहर जहा भी जाते हैं, लोग उनसे मिलने और चर्चाए करने के लिए उनके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो जाते है। सबसे बडी बात यह है कि सबके साथ वह बडे प्रेम और मुक्तभाव से व्यवहार करते हैं। उनके दिल मे छोटे-बडे सबके लिए स्थान रहता है।

यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है कि बाबूजी मे कितना चैतन्य है। वह जब कभी बिडलाग्राम (नागदा) हम लोगो के पास आते है तो कहा करते हैं, "यहा मैं छुट्टी मना रहा हू।" पर सच यह है कि वह छुट्टी मना ही नही सकते। सबमे मिलने-जुलने, गोष्ठियो आदि का सिलसिला लगा ही रहता है। एक बार वह यहा आए तो हमने कहा, "चलिए, कही घूम आवें।"

उन्होने पूछा, "कहा ?"

मैंने कहा, "उज्जैन, इन्दौर, धार, मांडव "

बीच मे अनन्दा बोल पडी, "इन सब जगहो पर तो हम जाते हो रहते हैं। बाबूजी के साथ और कही चलो।"

अन्नदा का इतना कहना था कि बाबूजी ने कहा, "ठीक है, चलो, माउण्ट आबू चलते हैं।"

फिर क्या था ! कार्यक्रम बना और हम सबने माउण्ट आबू, दिलवाडा, राणकपुर, काकरौली, एकनाथ नाथद्वारा, उदयपुर, चित्तौड और मदसौर की ऐसी यात्रा की कि उसे भूल नही पाते।

इसी प्रकार एक दिन दिल्ली मे बैठे-बैठे बाबूजी ने हरिद्वार, ऋषीकेश, बदरीनाथ का कायक्रम बना लिया, हालाकि वह बदरी-केदार, गगोत्री, जमुनोत्री और गोमुख की पहले पैदल-यात्रा कर आए थे। उस समय हमारा सबसे छोटा लडका पल्लव बहुत छोटा था, पर उससे क्या ! हम लोग बदरीनाथ गए और वहा के पवत, प्रपात, वन, नदी आदि को देखकर मुग्ध हो गए।

इससे पहले वह अन्नदा और पराग को लेकर देहरादून, मसूरी और गगोत्री घुमा लाये। असल मे यात्रा करना उनके लिए बहुत ही सहज हो गया है और इस उम्र मे भी यात्रा के लिए उनका उत्साह बराबर बना हुआ है। कहने की आवश्यकता नही कि वह जहा की यात्रा करते है, वहा खूब घूमते है और दूसरो को घुमाते हैं। अजता-एलौरा की यात्रा भी हम उनके साथ कर चुके हैं।

बाबूजी मे बच्चो जैसी सरलता है, पर स्वाभिमान भी बेहद है। वह मानवीय मूल्यो के पोषक हैं। जहां उन्हे इस प्रकार के मूल्य दिखाई देते हैं, वहा जाने मे उन्हे तनिक भी हिचकिचाहट नही होती, किन्तु जहा उन्हे बडप्पन के दर्प अथवा पैसे के मद का आभास होता है, वहा उन्हे कोई भी शक्ति नही ले जा सकती।

बाबूजी मे बडी सादगी है। कपडे, रहन-सहन, आचार-विचार सबमे सादगी सामने आ जाती है। आडम्बर उन्हे तनिक भी पसद नही है। इसके माने यह नही है कि वह कला के मूल्य को स्वीकार नही करते, किन्तु उनकी मान्यना है कि कला का सम्बन्ध जीवन के साथ होना चाहिए, अर्थात सादगी मे भी कला रहनी चाहिए।

जो मानवीय मूल्यो मे आस्था रखते है, वे मूलत धम-परायण होते हैं। बाबूजी मे धर्म के प्रति गहरी निष्ठा है, लेकिन उनके धर्म का दायरा बहुत बडा है। वह जैन कुल मे पैदा हुए है, लेकिन उनका आदर सब धर्मों के प्रति है। उनका धम मानव-धर्म है और मानव-धर्म मे सब धर्मों का समावेश हो जाता है।

बाबूजी की एक और विशेषता है। उनके विचार बडे स्पष्ट है। इसी से उनके लेखन मे कही उलझन

नहीं है। मन पर उनका बड़ा नियन्त्रण है। कैसी भी परिस्थिति हो, उनका मन सधा रहता है। उनके लेखन मे निराला सतुलन है।

हम लोगों की इच्छा होती है कि बीच-बीच मे बाबूजी कुछ दिनो के लिए हमारे पास आकर रहें, लेकिन वह आकर बैठते ही जाने की बात करने लगते हैं। हम जानते हैं कि उन पर एक बहुत बड़ी सस्था का दायित्व है, फिर भी हम अपने मन को रोक नही पाते। वास्तव मे जब वह आ जाते है तो घर में एक प्रकार से आनन्द की लहर दौड़ जाती है। पल्लव को, जो अब आठ वर्ष का है, ऐसा लगता है, जैसे उसका कोई साथी आ गया हो। वह उनके पास लेटकर खूब कहानिया सुनता है और स्वय उन्हे गीत, चुटकुले आदि सुनाता है।

मेरी तो सदा यही कामना रहती है कि बाबूजी बहुत वर्षों तक हमारे बीच रहे। उनकी वर्षगाठ पर भी मेरी यही कामना और प्रभु से प्रार्थना है।

मेरे बाबूजी

अन्नदा पाटनी (पुत्री)

□□

बाबूजी को देखती हू तो लगता है, पूर्व जन्म के किसी शाप से अभिशापित होकर एक देवता को मनुष्य रूप धारण करना पडा है। मैं जानती हू, एक बेटी होने के नाते मेरा यह कथन आपको अतिशयोक्ति-पूर्ण लगेगा, पर मैने जबसे होश सभाला है, यह बात मेरे दिलोदिमाग मे रह-रह कर गूजती रही है। मुझे एक जापानी महिला की याद आ रही है, जो भारतीय योग-साधना से प्रभावित होकर भारत आई थी। कुछ समय उन्होने हमारे साथ व्यतीत किया। इस अल्पकाल मे वह बाबूजी से किस कदर प्रभावित हुई, इसका अनुमान उनके इस वाक्य से लगाया जा सकता है। उन्होने मुझसे कहा, "तुम्हारे बाबूजी को तो साधु होना चाहिए था।" यह सुनकर मेरी खुशी का ठिकाना न रहा, क्योकि उनके इस उद्‌गार ने न केवल मेरे मन की बात छीनी थी, बल्कि मेरी धारणा की और भी पुष्टि की थी। एक अनजानी, अपरिचित, विदेशी महिला बिना कुछ अनुभव किए इतना बडा सम्मान योंही ऊपरी मन से तो नही दे सकती थी।

बाबूजी के व्यक्तित्व मे क्या आकर्षण है, यह उनके परिचित, अतरग मित्र, सम्बन्धी या उनके साहि-त्यिक भक्त ही बता सकते हैं। चादनी चौक के भीड भरे अत्यत व्यस्त फुटपाथ पर एक नवयुवक खिलौनो की एक दुकान फैलाए बैठा बडी तन्मयता से 'नवभारत-टाइम्स' अखबार पढ रहा था। हम लोग खरीदारी करते हुए उधर से गुजरे तो उस दुकान पर से कुछ लेने को मन हुआ। पर दुकानदार तो अखबार में खोया था। मैंने जरा जोर से पूछा, "यह गेंद कितने की है?" उसने कोई जवाब नही दिया, पढने मे लगा रहा। तब मैंने थोड़ा खीजकर कहा, "यह तुम पढ क्या रहे हो?" उस नौजवान ने कहा, "जरा ठहर जाइए।" पता चला कि वह बाबूजी की कहानी पढ रहा था। बोला, "वाह! क्या लेखक है!" मुझसे नही रहा गया। मैंने कहा, "हम

तुम्हें इस लेखक से मिला दें?" उसका चेहरा खुशी से दमक उठा, बोला, "मैं धन्य समझूंगा अपने आपको।" मैंने बाबूजी की तरफ इशारा करते हुए कहा, "यही हैं श्री यशपाल जैन।" उसने अभिभूत होकर बाबूजी के पैर छूने को हाथ बढ़ाया। बाबूजी ने उसे रोक दिया। उसके इस व्यवहार और चेहरे पर उठते भावों से उद्वेलित मेरे भावुक हृदय मे बसा वह चित्र आज भी धुधला नही हो पाया है।

आत्मीयता, स्नेह, ममता और सहानुभूति की नीव पर निर्मित बाबूजी का भव्य व्यक्तित्व हर किसी को अपनी ओर खीचता है। प्रेम का असीम भण्डार है उनके पास। यही कारण है कि वह कोई छोटा हो या बडा, गरीब हो या अमीर, नौकर हो या हरिजन, सबकी भावनाओ का ख्याल रखते हैं और उसे आदर देते हैं। कपडो, जूतो और किताबो जैसी बेजान वस्तुओ के लिए भी बाबूजी हमें हमेशा समझाते आए हैं, "यदि तुम इनका आदर करोगे तो ये भी तुम्हे आदर देगे।" गमलो को एक समय पानी नही मिला तो बडे दु ख भरे स्वर मे कहेगे, "देखो तो, बेचारे कितने प्यासे हैं।"

मेरे बचपन की हमजोलियाँ और आज गृहस्थी का भार ढोती हुई मेरी नई सहेलिया, बाबूजी का प्यार बडे यत्न से सजोए हुई हैं। कुछ का तो कहना है "तेरे बाबूजी ने हमे इतना प्यार दिया है कि हमारे स्वय के पिता ने नही दिया।" क्या यह अपने आप मे बडी बात नही है? उनकी प्यार भरी चपत के बिना लगता है, जैसे कुछ अधूरा छूट गया हो।

किसी को 'ना' कहना या निराश करना तो जैसे बाबूजी ने सीखा ही नही है। दिल्ली जैसा शहर, दफ्तर का काम, अनगिनत मीटिंगे और सभाए, कभी किसी पत्रिका के लिए लेख तो कभी रेडियो-वार्ता और ढेर सारे निमत्रण, बस घिरावट-ही-घिरावट, पर हम लोगो के बडबडाने के बाद भी वे सबका मन रखेगे और जरूर जाएगे। उस पर मजा यह कि हमने उन्हे कभी हडबडाहट मे नही देखा। आश्चर्य होता है कि हरेक बात को वह इतने सहज रूप मे कैसे ले लेते हैं और बिल्कुल विचलित नही होते! सकल्प के इतने धनी है कि आप उन्हे अपने ध्येय से रत्ती भर नही हिला सकते। एक मजेदार घटना याद आती है। हम लोग एक बार गर्मियो में देहरादून-मसूरी होकर ऋषिकेश पहुचे। वहा से हरिद्वार होकर हमे वापस दिल्ली आना था। एकाएक बाबूजी को ठन गई कि गगोत्री जाना है। न पहले से कोई निश्चित प्रोग्राम, न गम कपडो का उचित प्रबन्ध, अबतक की यात्रा की थकान, साथ मे मेरे छह वर्षीय पुत्र पराग के खाने-पीने की समस्या और ऋषिकेश की गदगी, बस हम और अम्मा तो बिगड गए। खूब झुझलाए, खूब बडबडाए, पर बाबूजी पर कोई असर नही। हम और भी चिढ गए और झल्ला कर कहा, "हम लोग परेशान हो गए हैं। अब कही नही जायेगे!" बाबूजी मुस्करा कर बोले, "अभी तो बहुत समय है दिल्ली की बस जाने मे। मैं तबतक एक नीद लिये लेता हू।" और बस, धूलधूसरित बिस्तर पर पड कर खर्राटे शुरू। आखिर हम गगोत्री गए और पूरी यात्रा इतनी आनन्द-दायक और सुखद रही कि हम कल्पना भी नही कर सकते थे। आज उस रोज की अपनी झुझलाहट सोच-सोच कर हसी आती है। अगर बाबूजी का दृढ़ सकल्प और अविचलित प्रकृति नही होती तो हम कितने बडे पुण्य और सुख से वचित रह गये होते!

वैसे यात्रा का आनद तो बाबूजी के साथ ही है। रास्ते भर खूब तो खिलाते-पिलाते है, खूब घुमाते है, न जाने कितने अनजानो को अपना बना लेते है, कितने ही पस्त लोगो को हौसला देते हैं। इसका अनुभव हमे अमरनाथ यात्रा में हुआ। तीन-चौथाई यात्रा पूरी करने पर एक टोली की हिम्मत बिल्कुल जवाब दे गई, पर बाबूजी ने उन्हे अपने साथ मिला लिया, उनका खूब उत्साह बढाया और रास्ते भर उनका ख्याल रखते हुए उनकी यात्रा पूर्ण कराई।

इसी सदर्भ में मुझे एक मार्मिक घटना का स्मरण हो आया है। इससे पहले यह स्पष्ट कर दू कि हमने

अपने शैशव से यौवन में प्रवेश करने तक कभी बाबूजी से डांट या मार नहीं खाई। हमें मारने या डाटने पर बेचारी अम्मा जरूर खूब डाट खा चुकी है (वैसे आज अम्मा ज्यादा सही नजर आती हैं।) तो हम एक-दो परिवारो के साथ काश्मीर गए। उस समय मैं और मेरा छोटा भाई सुधीर क्रमश नौ और दस वर्ष के थे। हमने पूरी यात्रा में इतना परेशान किया, जिसकी हद नहीं थी। कभी भूख, कभी प्यास, कभी पेट में दर्द, कभी पैर में दर्द, कभी गोद में लो, कभी यह जिद, कभी वह जिद। बाबूजी हंसते-हसाते, हमें बहलाते, हर बात का समाधान करते रहे, परेशान वे कम नही हुए, पर शांत रहे, लेकिन अम्मा गुस्से से चिल्लाकर बोली, "परेशान कर दिया इन बच्चो ने। अब इन्हे कभी साथ नही लायेगे।" उनकी यह बात मुझे लग गई। अगले दिन जब सब घूमने के लिए रवाना होने लगे तो मैं अड गई कि हम तो परेशान करते है, हम नही जायेंगे। अम्मा ने पहले प्यार से खूब समझाया, फिर डाटा, पर मैं टस-से-मस नही हुई। किसी दूसरे के घर में तमाशा खडा होता देख अम्मा झुझलाती हुई बाबूजी से शिकायत कर आईं। बाबूजी कमरे मे आए और मेरे कधो को दबाते हुए इतना भर बोले, "क्या बात है ? चलो।" मैने उनकी आवाज में छिपी खीज भांप ली और मेरे बाल-सुलभ मन पर उस अप्रत्याशित खीज का बडा गहरा असर हुआ। मै चल तो दी, पर बाबूजी से रूठी रही। रास्ते भर बाबूजी ने मुझे हर तरह से हसाने का प्रयत्न किया, लेकिन मैं गुमसुम बनी रही और जानबूझ कर अपनी उदासी जताती रही। बाद मे डल झील मे सैर की बारी आई। दो शिकारे किये गए। यू मैं हमेशा बाबूजी के साथ रहती थी, पर इस बार जान-बूझ कर अलग शिकारे मे बैठी। बाबूजी यह सब भाप रहे थे। थोडी देर मे बाबूजी वाला शिकारा हमारे शिकारे से सट कर चलने लगा और मैंने हैरत से बाबूजी को एकदम अपने सामने बैठे पाया। उनकी तरफ नजर पडी तो हक्की-बक्की रह गई। वे दोनो हाथो से अपने कान पकड कर मुझसे जैसे कह रहे थे, "मेरी गलती रही।" एक बच्ची का अनायास दिल दुखाने से उनकी पीडा स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। मेरी आखो से आसुओ की झडी लग गई। मुझे याद है, बाबूजी के षष्टि- पूर्ति समारोह मे विशिष्ट व्यक्तियो और श्री जैनेन्द्रकुमारजी जैसे लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारो के समक्ष मुझसे बाबूजी के विषय मे कुछ कहने का आदेश हुआ तो मैं सकुचाती-सी अपना यही सस्मरण सुनाते-सुनाते भावविह्वल हो गई थी। समारोह मे उपस्थित सभी महान हस्तियो की आखो मे आसू थे। स्व प्रकाशवीर शास्त्री मेरे पास आकर बोले, "बेटी, तूने तो सबको रुला दिया।" समारोह के अध्यक्ष तत्कालीन रक्षा-मत्री श्री जगजीवन रामजी रूमाल से अपनी आखे पोछते रहे थे।

अब भी जब नयी दिल्ली जाती हू कुछ आलस्यवश, कुछ भागदौड मे, अपने कपडे, साडिया आदि बिखरा देती हू। अम्मा हस कर बाबूजी से कहती है, "इतनी बडी हो गई, गृहस्थी सभालती है, पर यहा आकर वही की वही!" बाबूजी बडे दुलार से कहते है, "अरे, इतने दिनो के बाद बेटी आई है, उसे घर-घर तो लगे।" और यह सच है कि बाबूजी के सामने आज भी मैं स्वय को छोटी-सी बच्ची समझने लगती हू।

बाबूजी की सादगी, ईमानदारी, निस्स्वार्थता, उदारता और विनम्रता के बारे मे कुछ कहने की आवश्यकता नही है। इसका अनुभव मुझसे अधिक सबको समय-समय पर होता रहता है। इसमे संदेह नही कि इन सब गुणो और मेहनत से वे विषम-से-विषम परिस्थितियो से उबर कर आज समाज, देश और विदेश मे इतनी ख्याति, प्रतिष्ठा, श्रद्धा और सम्मान प्राप्त कर पाये हैं। बडे-से-बडे अवसर उन्हे मिले, पर 'सस्ता साहित्य मण्डल' के समर्पित सेवक के रूप में कार्य करते हुए उन्होने उन अवसरो को ठुकरा दिया। किसी तरह का आर्थिक या और कोई प्रलोभन उन्हे आजतक डिगा नही पाया। राजनीति और चाटुकारिता से वे सदा दूर रहे है।

बाबूजी ने जो कुछ देखा है, जाना है, कहा है और लिखा है, वह सब पुस्तको, भाषणो और वार्ताओ के रूप में सबके सामने है। एक बात का अचरज पहले भी होता था और अब भी होता है कि बिना तैयारी के,

बिना पूर्व सूचना के, वह किसी भी समय, किसी भी विषय पर इतने अधिकारपूर्वक कैसे बोल लेते हैं। क्या उनके अन्दर कोई मशीन लगी हुई है या कोई ईश्वरीय वरदान मिला हुआ है, जिससे उनके ज्ञान का विशाल भंडार कभी चुकता नही, बल्कि और बढता जाता है? रेडियो-वार्ता अधिकतर रिकार्डिंग के घंटे भर पहले लिखते उनको देखा है।

ऐसा नही है कि मुझे बाबूजी मे सब अच्छी बाते ही नजर आती हैं और उनमे मुझे कोई शिकायत नही। सबसे बडी शिकायत (हो सकता है वह भी आपको तारीफ ही लगे) यह है कि दूसरो की बुराइयो को जानते हुए भी वह उनकी तरफ से आखें बन्द रख कर अपने आपको भुलावे मे रक्खे रहते हैं। अपने विरोधियो को खूब सिर उठाने का मौका देते हैं और उनके बडे-से-बडे अपराधो को बडी सहजता से क्षमा कर देते हैं, चाहे वे बाद मे उनकी जड ही क्यो न खोदे। इसका कारण समझने की कोशिश करती हू तो यही समझ पाती हू कि किसी के प्रति दुर्भावना से उनका हृदय कलुषित नही होता।

बाबूजी ने हमे बहुत-कुछ दिया है, पर यह मेरा दुर्भाग्य है कि उनके गुणो के अमूल्य भण्डार से मैं कुछ भी नही ले पायी और कोरी रह गई। किन्तु अपने सौभाग्य पर इठलाती भी कम नही हू कि मैं ऐसे पिता की बेटी हू। मैं गर्व के साथ कह सकती हू कि ससार में मेरे बाबूजी जैसा व्यक्ति चिराग लेकर ढूढने पर भी नही मिलेगा। एक समारोह में हम सब खडे गपशप कर रहे थे। एक उभरते हुए, अनेको पुरस्कारो के विजेता कलाकार से बाबूजी का परिचय हुआ। दोनो की काफी देर बातचीत चलती रही। कुछ और परिचित दिखाई दिये तो बाबूजी उनकी ओर मुड गए और मैंने उनका स्थान ले लिया। मुझसे बात करते हुए भी वह कलाकार बाबूजी की ओर ही नजर गडाए रहे। फिर एकाएक मुझसे बोले, "यहा कितने भी लोग क्यो न आ जाय, खादी का कुर्त्ता-धोती, जाकेट और पैरो मे गाधी आश्रम की चप्पले पहने, सुन्दर, सौम्य, सादगी और विद्वत्ता से परिपूर्ण तेजस्वी चेहरा यहा एक ही है।" आदर और श्रद्धा मागी नही जाती, अपने आप मिलती है।

मेरे मन मे बाबूजी की जो तस्वीर है, उसे चित्रित करने की न मुझमे शक्ति है, न योग्यता। उनकी हर बात एक अमूल्य निधि के रूप मे मेरी झोली मे है। उसमे से क्या लू और क्या छोडू, समझ नही आ रहा।

हृदय के किसी गहरे कोने से बार-बार एक पुकार उठती है कि हे ईश्वर, बाबूजी दीर्घजीवी हो, खूब स्वस्थ और सुखी हो। उनका वरद हस्त और आशीर्वाद, जो हमारे जीवन का सबसे बडा सम्बल है, हम पर सदा बना रहे और सच्चे मन से निकली दुआ अवश्य फलती है, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है।

नानाजी का प्यार

परग पाटनी (ज्येष्ठ दौहित्र)

□□

नानाजी के सम्बन्ध मे इतना लिखने को है कि समझ मे नही आता कि क्या लिखू और क्या छोडू! उनके जीवन से हमे बहुत-कुछ सीखने को मिलता है और उनके साथ यात्रा करने का तो निराला ही आनन्द है। वह हमें

बहुत-से स्थानो की यात्रा करा चुके हैं। उन यात्राओं मे गगोत्री की यात्रा तो मैं कभी भूल नहीं सकता। उस समय मेरी उम्र कोई छह वर्ष की थी। बिना तैयारी के वह हमे देहरादून और मसूरी ले गए। लौटते समय ऋषिकेश मे रुके। फिर आना था दिल्ली, पहुच गए गगोत्री। बडा जाड़ा था। मेरे पास टागें ढकने को कुछ नही था। इसलिए मैं बार-बार नानाजी से कहता था कि मेरे शरीर को जाडा लग रहा है और नानाजी मुझे गोद मे लेकर अपने गर्म शाल से मेरी खुली टांगो को ढक लेते थे। मुझे उस समय यह सूझा ही नहीं कि मुझको गोद मे लेकर नानाजी थक जाते होगे। उन्होने ऐसा प्रकट भी नही होने दिया।

उसी यात्रा मे मुझे जाने क्या सूझा कि मैंने नानाजी से कहा, "नानाजी, वह देखिए अलकनन्दा हमारी जीप से 'रेस' लगा रही है, हवा गा रही है और बादल तबला बजा रहे हैं।" यह सुनकर नानाजी तो गद्‌गद् हो गए और मुझे कस कर चुपटा कर प्यार किया और बोले, "वाह बेटे, तुम तो कवि बन गए।"

बदरीनाथ की यात्रा भी कम रोमांचकारी नही रही। हमारी सुविधा के लिए वह यात्रा नानाजी ने टैक्सी से करायी और मेरे छोटे भाई पल्लव की तबीयत खराब हो जाने पर भी वह हमे बदरीनाथ से सरहद के माना गाव तक ले गए। इस यात्रा मे पापा भी साथ थे और उनको भी बहुत अच्छा लगा।

हम लोगो को नानाजी बेहद प्यार करते है। मेरी वषगाठ पर वह अक्सर अपने आशीर्वाद के रूप मे एक कविता लिख कर भेजा करते है। उनकी इन कविताओ से मुझे बहुत प्रेरणा मिलती है।

मजे की बात यह है कि पल्लव यह समझता है कि नानाजी उसे मुझसे ज्यादा प्यार करते है और मैं समझता हू कि नानाजी पल्लव से ज्यादा मुझे प्यार करते है। अब मुझे ऐसा लगता है कि नानाजी हम दोनो को ही नही, सारे बच्चो को ही वह बहुत प्यार करते है। वास्तव मे नानाजी का प्यार तो एक सागर की भाति है, जिसम से कोई कितना ही स्नेह-जल ले ले, वह कम नही होता।

नानाजी मुझसे बहुत बडे है, लेकिन उनका स्वभाव इतना मधुर है कि मुझे उनसे कभी डर नही लगता। बचपन मे जिस चीज के लिए मै पापा से कहने मे हिचकिचाता था, उसे नानाजी को नि सकोच कह देता था और वह अपने 'छोटे दोस्त' की उस माग को फौरन पूरा कर देते थे।

वह जब-जब विदेश गये है, मेरे लिए कुछ-न-कुछ बढ़िया-सी चीज लाये है। एक बार तो मास्को से बहुत बडा फायर ब्रिगेड ले आये, हालाकि उसे लाने मे उन्हे काफी हैरानी हुई होगी। मेरे पास विभिन्न प्रकार की जितनी विदेशी कारे, जीप, रेलगाडी आदि है, उनमे से ज्यादातर नानाजी की लाई हुई है।

अब तो मैं बडा हो गया हू, इजीनियरिंग की तीसरी साल मे पढ़ रहा हू, फिर भी नानाजी मुझे उतना ही छोटा मानते है, जितना मुझसे बारह साल छोटे भाई पल्लव को। उनका बराबर प्रयत्न रहता है कि मैं खूब आगे बढू और खूब उन्नति करू। जब मेरा दाखिला पिलानी मे हुआ तो पापा के रोकने पर भी नानाजी हमारे साथ वहा जाए बिना नही माने और अन्त मे मेरा प्रवेश आनन्द के इजीनियरिंग कॉलेज मे हुआ तो वह बडौदा से अहमदाबाद जाते हुए मुझसे मिलने मेरे कॉलेज मे आए।

हमारी इच्छा होती है कि नानाजी अपनी वर्षगांठ हम लोगो के बीच बितायें, लेकिन उन्हें इतना अवकाश कहां है कि वह वर्षगाँठ मनाने कही जायें!

अब जब वह अपने जीवन के ७२ वर्ष पूरे करके ७३वें वष मे प्रवेश कर रहे है, मेरी हार्दिक कामना है कि वह अभी बहुत-बहुत वर्षों तक हमारे बीच रहे, हम लोगो पर अपने प्रेम की वर्षा करते रहे और हमे सुमार्ग पर दृढता से आगे बढते रहने की प्रेरणा देते रहे।

नानाजी का जादू

पल्लव पाटनी (दौहित्र)

□□

अपने सारे घर वालो मे मुझे सबसे प्यारे नानाजी लगते हैं। मैं उनका लाडला बेटा हू। वह मुझे इतना प्यार करते हैं कि मेरा मन हमेशा उनके साथ रहने को करता है।

वह मेरी हर माग को पूरा कर देते है। मम्मी-पापा जब किसी चीज के लिए इन्कार कर देते हैं तो मैं चुपके-से नानाजी से कह देता हू और वह चीज मुझे मिल जाती है।

नानाजी कहानी बडी अच्छी तरह से सुनाते हैं। उन्हे बहुत-सी कहानिया याद हैं। ऐसा मन करता है कि उनसे कहानिया सुनते जाओ, सुनते जाओ। उनकी हर कहानी से कुछ-न-कुछ सीखने को मिलता है।

तीन साल पहले की बात है। मैं तब बहुत छोटा था। मेरी मम्मी ने मुझे महात्मा बुद्ध के बारे मे एक कहानी सुनाई। नानाजी उसके कुछ दिन बाद नागदा हमारे पास आए। एक दिन दोपहर को हम लोग खाना खाकर आराम कर रहे थे। मैंने नानाजी से कहा, "नानाजी, मुझे गाली दीजिए।" नानाजी बोले, "नही बेटे, ऐसी बात नही करते।" मैं फिर बोला, "आप दीजिए तो सही।" इस पर उन्होने कहा, "मुझे गाली देना आता ही नहीं है।" मैं पीछे पड गया। मैंने कहा, "आप बेवकूफ, पागल, गदहा बेशम कुछ भी कह दीजिए।" बेचारे नानाजी चक्कर मे पड गए। मेरा मन रखने के लिए उन्होने मुझे 'बेवकूफ' कह दिया। मैं एकदम उछल कर बोला, "मैंने आपकी गाली ली ही नही, अब तो आपको ही रखनी पडेगी।" मम्मी ने बताया है कि एक बार बुद्ध भगवान एक नगर में गए। वहा एक आदमी उन्हे जोर-जोर से गाली देने लगा। बुद्ध मुस्कराते हुए चुप-चाप खडे सुनते रहे, पर बिलकुल गुस्सा नही हुए। उस आदमी को बडा अचरज हुआ कि इतनी बुरी गालिया सुनने पर भी उन्होने कुछ नही कहा। वह शान्त हो गया। बुद्ध से उसने इस चुप्पी का कारण पूछा। बुद्ध ने उत्तर दिया, "भाई, अगर तुम मुझे कुछ दो और मैं उसे न लू तो वह चीज तुम्हारे पास ही तो रहेगी न ? तुमने मुझे गाली दी, मैंने वह ली ही नही।" उस समय मेरी समझ में यह नही आया कि वहा बैठे सब लोग हसते-हंसते लोटपोट क्यो हो गए। अब थोडा बडे होने पर मैं समझ पाया हू तो मुझे अपनी नादानी पर हसी आती है और आश्चर्य होता है कि बुद्ध की तरह नानाजी को गुस्सा क्यो नही आता।

मेरे सारे दोस्त नानाजी को घेर कर बैठ जाते हैं और खूब मस्ती करते है। उन्हे भी नानाजी बहुत अच्छे लगते हैं।

मैं सोचता हू, यह बात क्या है कि सभी को नानाजी इतने अच्छे लगते हैं। जरूर उनके पास कोई जादू है। मैं भी उनसे यह जादू सीख कर रहूगा।

हमारी प्रेरणा के स्रोत

सुधीर कुमार जैन (पुत्र)

□□

अतिशय परिश्रमशीलता, त्याग-तपस्या, सवेदनशीलता, सहनशीलता तथा प्यार से लबालब भरा हृदय है मेरे बाबूजी का, जो इन गुणो से घर के बाहर के छोटे-बडे, अमीर-गरीब, देशी-विदेशी, सबका दिल जीत लेते है। कभी कल्पना भी नही की थी कि मैं उनसे हजारो-हजारो मील दूर कैनेडा मे जा बसूगा। मुझे विदेश मे रहते लगभग बीस साल होने को हैं। बाहर भेजने का पूरा-पूरा श्रेय बाबूजी को है, लेकिन उन्होने भी नही सोचा था कि उनका प्यारा और इकलौता बेटा भारत छोडकर विदेश में जा बसेगा। किन्तु परिस्थितिया कुछ ऐसी बनती चली गयी कि चाह कर भी न मैं भारत मे बस पाया और न बाबूजी ने कभी जोर देकर मुझे भारत मे रहने के लिए विवश किया। बाबूजी दो बार हमारे पास रह कर देख चुके है कि कैनेडा मे मेहनत करने वाले आदमी की कद्र होती है, ईमानदारी का बडा महत्व होता है, जब कि भारत मे इन गुणो का केवल जिह्वा से गुणगान होता है, व्यवहार मे ऐसा आदमी सदा कष्ट हो पाता है। इसका उदाहरण स्वय उनका अपना जीवन है। रिश्वतखोर और भ्रष्टाचारी लोगो के पास अपार धन-सम्पत्ति है, मोटरें हैं, कोठियां हैं और कइयो को तो सरकारी उपाधियो से भी विभूषित किया गया है और आज बाबूजी ७२ वर्ष की उम्र में फटफटिया (फोर सीटर) मे अपने दफ्तर जाते हैं। अम्मा तो अधिकतर बस से ही कालेज जाती है। बाबूजी की आख किसी उपाधि या पुरस्कार पर कभी नही रही। उनका लगनपूर्वक किया गया कार्य ही उनकी उपाधि है, वही उनका पुरस्कार है। वह स्पष्ट-वक्ता है। जब और जहा उन्हे अवसर मिलता है, वह बिना लाग-लपेट के बडे-से-बडे नेता की स्वस्थ आलोचना कर डालते है। डरे वे, जिनका कोई स्वार्थ हो। लेकिन अपशब्द बाबूजी के मुह से कभी भी किसी के लिए नही निकलते। यही कारण है कि जैन-समाज से भी अधिक सम्मान उन्हे जैनेतर समाज और सस्थाओ से मिला है। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में तो उनकी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति है।

जब-जब मैं अपनी वातानुकूलित कार मे बैठकर दफ्तर या फैक्टरी जाता हू, मुझे बाबूजी का फैज बाजार से फटफटिया लेना याद आ जाता है (उससे पहले तो वह बस से दफ्तर ही जाते थे)। मेरी आखे गीली हो जाती है। मैं बार-बार उनसे कहता हू कि अब इस उम्र मे वह आकर हमारे साथ रहे, बहुत कर चुके भाग-दौड। लेकिन वह एक ही बात मुझसे कहते हैं, "तुम अगर मेरे लिए कुछ चाहते हो तो भगवान से यही प्रार्थना करो कि बाबूजी के हाथ-पैर सलामत रहे।" स्वावलम्बन की सीमा हैं मेरे बाबूजी। वह अपने उस बेटे से, जिसके लिए उन्होने इतना किया है, कुछ लेना नही चाहते।

बाबूजी का सदा यही प्रयत्न रहा है कि परिवार के सब लोग अपनी दृष्टि को ऊचा और व्यापक बनायें। रुपये-पैसे को बाबूजी ने कभी बडा नही समझा और सीमित आय होते हुए भी उन्होने हम बच्चो को तो शिक्षा दी ही, अम्मा को स्कूल की नौकरी नही करने दी। उनकी बीमारी पर बेहिसाब खर्च किया।

परेशानियो के बावजूद उन्हें बी ए (आनर्स) और एम ए इन्द्रप्रस्थ कालेज मे दाखिला दिलवाकर करवाया, वैसे यह अम्मा की साधना थी कि गृहस्थी का बोझ उठाते हुए उन्हे प्रथम श्रेणी मिली और दिल्ली विश्वविद्यालय मे तृतीय स्थान प्राप्त हुआ। इतना ही नही, उन्होंने अम्मा को जबरदस्ती आठ महीने के लिए

डेनमार्क भेज दिया और खुद अकेले दिल्ली के घर में असुविधाए झेलते रहे। परन्तु बाबूजी को अपनी व्यथा-कथा किसी को सुनाने की आदत नही है। वह चुपचाप सबकुछ सहते रहते हैं।

बाबूजी को यात्राए करने का बडा शौक है। वह सदा यही चाहते हैं कि हम ही नही, उनकी मित्र-मण्डली के लोग भी यात्राओ मे साथ रहें। हम सबको उन्होने काश्मीर से कन्याकुमारी तक की यात्राए छोटी-सी उम्र मे करा दी, जबकि पैसे वाले रह जाते हैं! प्यार बाबूजी बेहद करते हैं, पर वह हम बच्चो को निर्भीक और साहसी बनने के लिए प्रेरणा देते रहते है। जब हम लोग अमरनाथ गये तो मैं ९ वर्ष का था। पहलगाव मे पहुचकर मुझे बुखार आ गया और बहुत जोर की सर्दी-खासी का प्रकोप हो गया। अगले दिन हमारे आठ सदस्यो की टोली को टट्टुओ पर अमरनाथ के लिए चल देना था। शाम को बाबूजी ने अम्मा से कहा, "तुम चली जाओ, मैं सुधीर के पास यहा रह जाऊगा। मेरा क्या है, मैं तो कभी-भी जा सकता हू, तुम्हारा बार-बार आना मुश्किल होगा।" अम्मा ने कहा, "नही, मैं रह जाऊगी।"

इतना सुनते ही बाबूजी का निर्भीक बेटा, मैं, बोल पडा, "आप दोनो पहलगाव मे रह जाइए। मैं तो कल जरूर जाऊगा।"

मेरी दृढता देखकर मुझे बाबूजी ने डाक्टर को दिखाया। दवा देकर डाक्टर ने कहा कि चिन्ता की कोई बात नही है, अच्छी तरह कपडे पहनाकर ले जाइए। दूसरे दिन हम लोग टटटुओ पर सवार होकर अमरनाथ के लिए चल पडे। यात्रा मे मैं सबसे आगे रहता था और यदि किसी का टट्टू मुझसे आगे आने का प्रयत्न करता तो मैं लकडी से मारकर उसे पीछे कर देता था। बाबूजी को मुझे लेकर कोई घबराहट नही थी। रास्ते मे जब पचतरणी पर तेज बहाव वाली पहाडी नदी मे मैं अपना टट्टू ले गया तो अम्मा खूब जोर-जोर से चिल्लाने लगी और मेरे टट्टू वाले को पुकारने लगी, जो पीछे पैदल चला आ रहा था। पर बाबूजी तनिक भी विचलित नही हुए और सबके देखते-देखते नदी पार पहुच गया। पिछले अठारह वर्षों मे मेरे जीवन मे भी कठिन से-कठिन अवरोध आते रहे है, लेकिन बाबूजी की दृढता और सकल्प-शक्ति का सम्बल सदा मेरे साथ रहता है।

अध्यात्म की ओर बाबूजी का झुकाव शुरू से रहा है, किन्तु मन्दिर जाना या घर मे बैठकर भजन-पूजा करना आदि प्रदर्शन मे उनका विश्वास कभी नही रहा। अम्मा की बीमारी मे मुझे तीन साल नानाजी और नानीजी के साथ रहने को मिला। वहा पूजा की अलग कोठरी थी, जिसमे कुछ मूर्तिया और देवी-देवताओ की तस्वीरें थी। रामचरित-मानस, गीता और दुर्गा सप्तशती भी वहा थी। नानी रोज सुन्दरकाण्ड का पाठ करती थी, जो उन्हे कण्ठस्थ था। इस तरह पूजा करने का सस्कार मुझे ननसाल से मिला और दिल्ली आने पर मैने बाबूजी से कहकर अपने लिए एक पूजा की अलमारी बनवा ली। विद्वान साधु-सन्तो के प्रति बाबूजी बडा आदरभाव रखते हैं, जिनमे बाबा मुक्तानन्द परमहस प्रमुख थे। बाबूजी ने 'विपश्यना' के कई शिविरो मे भाग लिया। यही कारण है कि जिस कोठरी मे मेरी पूजा की अलमारी रक्खी हुई थी, आज वह पूजा-कक्ष बन गई है और बाबूजी नित्य-नियम से स्नान करने के बाद कुछ देर उसमें ध्यान के लिए बैठते हैं। मैं तो यही समझकर प्रसन्न होता हू कि उस पूजा-गृह में बैठकर बाबूजी मुझे भी रोज याद कर लेते होगे। जब बाबूजी कैनेडा आए थे, तो मुझे सपरिवार बाबा मुक्तानन्दजी के अमरीका के साउथ फाल्सबर्ग के आश्रम मे ले गए थे। जैसे एक मोम-बत्ती की लौ से दूसरी मोमबत्ती प्रज्ज्वलित की जाती है और दोनो का प्रकाश मिलकर दुगना हो जाता है, वैसे ही बाबा की कृपा से हमारे परिवार के प्रकाश मे भी वृद्धि हुई है। बाबूजी के प्रति बाबा का असीम स्नेह रहा और उन्ही के कारण मैं भी बाबा का विशेष कृपा-पात्र बन गया। बाबा ने मेरे लिए कहा था, "यह लडका बहुत उन्नति करेगा।"

बाबूजी मे एक विशेष गुण है उनकी चुम्बकीय शक्ति। आज समाज में और साहित्य के क्षेत्र मे जो

उनका मान-सम्मान है, उस सबसे वह लाभ उठाकर आर्थिक रूप से बहुत समृद्ध हो सकते थे, पर इस बिन्दु से अपनी निगाह उन्होंने दूर ही रक्खी और जो प्रलोभन सामने आए, उन्हे वे नकारते रहे। 'सस्ता साहित्य मण्डल' को जो उन्होंने पकडा तो आजतक तन-मन से उसी में लगे हुए हैं। आर्थिक कठिनाइयां उन्होंने खुद भले ही उठाई हो, लेकिन हम दोनो भाई-बहनो के लिए उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रक्खी। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि प्रारम्भ से ही उन्होने हमें ऐसी शिक्षा दी कि हमारे मन में यह भावना ही न आने पाए कि हमें कोई पैसे की तंगी है या हम किसी से हीन हैं। भरसक अच्छा कपडा पहनाया, सारे देश में घुमाया, अच्छे-अच्छे लोगो से मिलाया और बराबर यही कहा, "ईमानदारी से अपने कर्तव्य का पालन करो, अपनी निगाह को ऊचा रक्खो, अपने को बडा बनाओ।"

बाबूजी के प्यार की बात सोचकर मेरा मन गद्‌गद् हो उठता है। मारना तो दूर की बात है, कभी हमें डाट भी नहीं लगाई। अम्मा जब कभी नाराज होकर कुछ कहती थी तो हमेशा उनसे कहते थे, "जब तुम्हारे शब्द की कोई कीमत नहीं है तो मत कहो इन बच्चो से कुछ।" अम्मा की डांट का असर तो हम पर होता नही था, लेकिन बाबूजी के ये शब्द हमे पानी-पानी कर देते थे। हम दोनो बहन-भाई बाबूजी के दफ्तर लौटने से पहले कमरे मे फैली किताबें आदि ठीक करके रख देते थे। और भी बिखरी हुई चीजें करीने से लगा देते थे, क्योंकि बाबूजी का कहना था कि जब तुम घर में लौटकर आओ तो तुम्हे लगे कि घर तुम्हारा स्वागत कर रहा है। बाबूजी के प्रभाव मे आकर ही यह काम हमने अपने ऊपर ले लिया था।

बाबूजी के आशीर्वाद से आगे बढने के अवसर मुझे बराबर मिलते रहे हैं। उनकी यह शिक्षा मुझे बराबर प्रेरणा देती रहती है कि "जो साधना करता है, सिद्धि उसी को प्राप्त होती है। जो सच्चाई का जीवन जीता है, वह धरती के बोझ को हल्का करता है।"

बाबूजी ने हमेशा मुझे अपने दोस्त की तरह समझा। प्यार से वह मुझे पुकारा करते थे, "मेरे दोस्त"। इस दोस्ती मे छिपे हुए पिता के प्यार ने उसको और भी मजबूत बना दिया है। आज उनसे हजारो मील दूर बैठे हुए ये पक्तिया लिखते समय मेरा हृदय उस दुर्लभ दोस्ती के लिए लालायित हो रहा है।

मुझे गर्व है कि बाबूजी का अभिनन्दन हो रहा है। इस अवसर पर मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि बाबूजी दीर्घायु प्राप्त करे, खूब तन्दुरुस्त रहें और हम उनकी छाया के नीचे बहुत-बहुत वर्षों तक निरापद बने रहे।

बाबूजी का असीम प्यार

मीरा जैन (पुत्रवधू)

□□

बाबूजी के सम्पर्क मे मुझे एक पिता का असीम प्यार मिला है, एक संत की सहनशीलता मिली है और एक गुरु का ज्ञान मिला है। बाबूजी की दिनचर्या सदा बहुत ही व्यस्त रहती है, फिर भी वह सबकी बात सुनने के लिए

समय निकाल ही लेते हैं। कभी इन्कार नही करते। इसका मुख्य कारण यह है कि वह दूसरे की स्थिति में अपने को रखकर देखते हैं। दूसरे, जन सम्पर्क उन्हें बहुत प्रिय है। लोगो से मिलने मे उन्हे आनद आता है। सन् १९८० मे बाबूजी अम्मा सहित कैनेडा आए थे। एक महीने हमारे साथ रहे। उन्हें प्रतिदिन कहीं-न-कहीं से निमन्त्रण मिलता था और समय अत्यन्त सीमित होते हुए भी बाबूजी किसी को भी निराश नहीं करते थे। एक दिन हिन्दी-प्रेमियो की ओर से बाबूजी के सम्मान मे एक गोष्ठी आयोजित की गई। उस गोष्ठी मे बाबूजी ने हिन्दी और हिन्दी साहित्य के महत्व पर अपने विचार विस्तार से व्यक्त किए। प्रवासी भारतीयो के लिए उन्होंने जो कुछ कहा, वह आज भी सबकी स्मृति मे है और हमेशा रहेगा। एक दूसरी गोष्ठी तो रात को तीन बजे तक चली और बाबूजी बडी दिलचस्पी से उसमे रस लेते रहे। बडी उमग के साथ अनेक हिन्दी-प्रेमियो ने अपनी रचनाए सुनायी और बाबूजी ने उन्हे भरपूर प्रोत्साहन दिया।

बाबूजी सतत गतिशील रहते हैं। उनके स्वास्थ्य का रहस्य इसी मे छिपा हुआ है। हम लोग जब भी उनके पास भारत जाते हैं, वह अपने कार्यालय के काम के साथ-साथ हमारे लिए भी आवश्यक समय निकाल लेते हैं। हमारा आग्रह रहता है कि हम जहा भी जाए, बाबूजी हमारे साथ चलें। वह जाते है और कभी थकान अनुभव नही करते। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य की थकान का सबध मन से रहता है। बाबूजी अपने को इतना व्यस्त रखते हैं कि उन्हे मानसिक थकान अनुभव करने का अवसर ही नही मिलता। मन मे ताजगी रहती है तो शरीर के थकने का प्रश्न ही नही उठता।

वह इतना काम करते हैं कि देखकर विस्मय होता है। लिखना होता है, लिखते है, कही सभा मे जाकर बोलना है तो जाते है और बोलते है। फिर भी उनके चेहरे पर शिकन नही आती। सभवत ऐसा इसलिए होता है कि वह काम को भार नही मानते और उसे सहजता से करते हैं।

बच्चो का साथ बाबूजी को बहुत प्रिय होता है। वह उनके साथ खेलते हैं, उन्हे कहानिया सुनाते हैं और उनका खूब मनोरजन करते है। बच्चो के साथ वह एकाकार हो जाते है। इससे बच्चे उनके साथ बडे खुश रहते है।

बाबूजी मे और भी बहुत-से गुण हैं। उन सबका उल्लेख करना सभव नही है। सच यह है कि उनके सम्पर्क मे मैं अपने को बडा भाग्यशाली समझती हू। जो सुख व्यक्ति को मदिर मे या सतो की सगति मे प्राप्त होता है, वही सुख मुझे बाबूजी के सान्निध्य मे मिलता है।

वह मेरे ससुर है, पर उन्होने मुझे सदा अपनी बेटी माना है और अपनी ममता दी है। मेरी प्रभु से यही प्राथना है कि बाबूजी का वरदहस्त हम पर बहुत-बहुत वर्ष तक बना रहे और हम उनकी शीतल छाया मे अपना जीवन आनद-पूवक व्यतीत करते रहे।

मुझे बाबूजी की बहुत याद आती है

मोनिका जैन (पौत्री)

□□

बाबूजी मेरे लिए बहुत ही विशिष्ट व्यक्ति हैं, दूसरो के लिए भी वह वैसे ही है। वह न केवल मेरे पितामह हैं बल्कि मेरे मित्र भी है।

मुझे याद आता है कि जब मैं लगभग ७ वर्ष की थी, भारत गई थी। बाबूजी और मैंने जो समय साथ-साथ बिताया, वह बड़ा ही आनन्ददायक था। हम बहुत से दर्शनीय स्थान देखने गए, खेल खेले और एक-दूसरे से खूब बातें कीं।

पिछली बार बाबूजी को मैंने कुछ साल पहले देखा। गर्मियो मे यह टोरेंटो (कैनेडा) आए थे। हम साउथ फॉल्स-बर्ग (अमरीका) बाबा स्वामी मुक्तानन्द परमहंस से मिलने गए। वह समय बडे मजे में बीता। जब हमने बाबूजी को आश्रम मे छोडकर विदा ली तो मुझे उनसे बिछुडने मे बडा दु:ख हुआ। फिर जल्दी ही उनसे मिलने का अवसर नहीं मिला। मैं अपने पिताजी के साथ भारत नही जा सकी। मेरा स्कूल जो था। मेरे पिताजी जब घर लौटकर आए तो वह बाबूजी के भेजे बडे सुन्दर उपहार लाये, जैसे पोशाकें, मालाए, बुन्दे, चूडिया और बहुत-सी पुस्तकें। पिछली बार बाबूजी से मुझे जो उपहार मिला, वह थी मिट्टी के तेल से जलने वाली बडी ही मोहक पीतल की लैम्प।

यद्यपि बाबूजी बहुत ही व्यस्त रहते हैं, फिर भी वह अपने परिवार तथा मित्रमण्डली के लिए हमेशा समय निकाल लेते हैं। मेरे विचार से यह बडे कमाल की बात रही है।

मुझे बाबूजी की बहुत याद आती है। इच्छा होती है कि मैं उनसे जल्दी-जल्दी मिलती रहू। लेकिन कैनेडा और भारत एक-दूसरे से बहुत दूर हैं।

बाबूजी, मैं आपको बहुत-बहुत प्यार करती हू।

नये-पुराने मूल्यों के साधक

अशोक जैन (पुत्र, वीरेन्द्र प्रभाकर)

□□

जिन्होने हमे अपनी गोद मे खिलाया है, हमे उगली पकडकर चलाया है, उन ताऊजी के बारे मे क्या कहे! किन शब्दो मे अपनी भावना प्रकट करे! ताऊजी के सामने जाते है तो हमे आज भी ऐसा लगता है कि हम बच्चे हैं।

वसे ताऊजी के कामो का दायरा बहुत बडा है और बडे-बडे काम उन्हे करने होते है, लेकिन वह हम लोगो को अपना दुलार देना नही भूलते। जब हम उनके पैर छूते हैं तो वह हमारी पीठ प्यार से ऐसे थपथपाते हैं कि हम निहाल हो जाते हैं।

ताऊजी बहुत ही व्यस्त रहते हैं। लिखना-पढ़ना, गोष्ठियो और सभाओ मे जाना, देश-विदेश का भ्रमण करना, बीसियो काम उन्हे लगे रहते हैं। इतना होने पर भी वह हम लोगो की खोज-खबर लेने का बराबर ध्यान रखते हैं। घर मे कोई भी उत्सव होता है, अपने सारे काम छोडकर आ जाते हैं।

मैं जब इस बार महानगर परिषद के चुनाव के लिए खडा हुआ तो ताऊजी को बाहर जाना था। जाना उनका टल नही सकता था। वह गए और जल्दी-से-जल्दी अपना काम निबटा कर लौट आए। हालाकि राजनीति मे वह किसी भी दल से बधे नही हैं, किन्तु आरभ से ही उनका झुकाव काग्रेस की ओर रहा है। मेरे चुनाव मे जो भी सहायता उनसे हो सकती थी, की और मुझे विजयी बनवाया।

ताऊजी मे एक बात मैंने देखी। वह बडे सीधे और सच्चे हैं। उन्हें छल-कपट नही आता। सब पर विश्वास करते हैं और जब वह देखते हैं कि समाज मे ऐसे भी लोग हैं, जो साफ-सुथरे नही हैं तो उन्हें बडी चोट लगती है।

उन्होने आजादी की लडाई का जमाना देखा है, जो आज के जमाने से भिन्न था। उनका सारा मानस उसी जमाने के आदर्शों से प्रभावित है। वह उसी त्याग और तपस्या की सबसे आशा करते हैं, पर जमाना हमेशा एक-सा कहा रहता है! मूल्य बदलते रहते हैं। आज भी उनका प्रयत्न यही रहता है कि देश के निवासी पुरानी तपस्या के सिद्धान्तो और आदर्शों को सामने रखकर चले। अपने लेखो और भाषणो मे वह इसी बात पर जोर देते रहते हैं।

ताऊजी विदेशो मे खूब घूमे हैं, अब भी घूमते रहते हैं। वहा पर वह जो भी अच्छी बातें देखते है, हमे बताते रहते हैं। वह उन देशो मे भी गए हैं, जिनकी विचारधारा उनसे भिन्न है, किन्तु वहा भी उन्होने सब-कुछ आखें खोलकर देखा है और अच्छी बातो की चर्चा विस्तार से की है।

हमे यह देखकर बडी खुशी होती है कि ताऊजी का सभी वर्गों और क्षेत्रो मे मान है। चूकि किसी विचार-धारा का बिल्ला उन्होने नही लगाया है और सब विचारधाराओ को वह निष्पक्ष दृष्टि से देखते हैं, इसलिए सब जगह उनका आदर होता है।

उन्होंने कभी ऊचे पद की आकाक्षा नही की, न राजनीति मे, न अन्य क्षेत्रो मे और जब किसी पद का प्रस्ताव आया है तो उन्होने उसमे रस नही लिया, लेकिन जब वह देखते है कि आज लोग दूसरो को पीछे धकेलकर स्वय आगे बढने की चेष्टा करते हैं तो ताऊजी को बडा दु ख होता है।

वह पुराने युग के हैं, लेकिन उनकी विशेषता है कि वह नई पीढी के बीच बहुत ही लोकप्रिय है। कालेजो मे विशेष अवसरो पर जब वह भाषण देने जाते है तो छात्र-छात्राए उनकी बाते बडे ध्यान से सुनते हैं। वह छात्रो से यही कहते हैं कि पुरानी बातो को इसीलिए मत छोडो, क्योकि वे पुरानी है और नई बातो को इसीलिए मत ग्रहण करो, क्योकि वे नई है। नये और पुराने मे जो भी अच्छी चीजें हैं, उन्हे चुनो और उनको अगीकार करो। ताऊजी मे स्वय नये-पुराने का बडा सुन्दर मेल है!

ताऊजी जैसे व्यक्तियो की आज हमे और देश को बडी जरूरत है। उनकी शुभ वर्ष-गाठ पर हम ईश्वर से यही प्राथना करते है कि वह उन्हे लम्बी उम्र दें, जिससे वह आगे भी हमे और देश को सही रास्ता दिखाते रहे, उस पर चलने की प्रेरणा देते रहे।

ताऊजी के शौक

रवि जैन (पुत्र, वीरेन्द्र प्रभाकर)

□□

ताऊजी शुरू से ही दरियागज मे रहते है, इससे हम सभी भाई-बहन उन्हे 'दरियागज वाले ताऊजी' कहते हैं। हमारे बाबाजी बडे ही उग्र स्वभाव के थे, लेकिन हमारे ताऊजी बडे ही मधुर स्वभाव के है। हमे

बड़ा गर्व होता है यह सोचकर कि हिन्दी के इतने बड़े लेखक हमारे ताऊजी हैं, जिनकी गोद मे हम खेलते रहे हैं, कहानियां सुनते रहे हैं और प्यार से सिर पर चपत खाते रहे हैं। हमारे 'ताऊजी प्रणाम' कहते ही ताऊजी अपने आशीर्वादो की झड़ी लगा देते हैं, 'बड़ी उम्र हो, खूब पढ़ो-लिखो' आदि-आदि।

ताऊजी को ताश खेलने का भी शौक है, विशेषकर हम बच्चो के साथ। जब हम सब बच्चे दरियागज जाते थे तो कहानी-प्रतियोगिता होती थी और जो बच्चा प्रथम आता था, उसे कोई-न-कोई पुस्तक इनाम मे देते थे।

ताऊजी को यात्राओ का बेहद शौक है। दुनिया के लगभग सारे देशो की यात्राए उन्होने की हैं और उनके बारे मे लिखा है।

मैं भगवान से प्रार्थना करता हू कि हमारे ताऊजी अमर रहें और चपत लगाकर सदा हमे अपना आशीर्वाद देते रहे।

हमारे ताऊजी

पूनम जैन (पुत्री, राजेन्द्रपाल)

□□

हम बच्चो के लिए दरियागज वाले ताऊजी के बारे मे लिखना एक बहुत कठिन कार्य है। ताऊजी हम बच्चो को बहुत प्यार करते है। जब वह मिलते हैं तो कहते है, "आओ बच्चो, इधर आओ, एक चपत खा लो।" और पास बुलाकर सिर पर एक दुलार-भरी चपत लगा देते है। जब हम कहते है, "ताऊजी, नमस्ते।" तो वे जी भरकर आशीषे देते हुए कहत हैं, "खूब खुश रहो, खूब तन्दुरुस्त रहो, बड़ी उम्र हो, खूब पढ़ो-लिखो।" उनका यह आशीर्वाद मिलने पर ही नही, टेलीफोन पर बात करने पर भी मिलता है।

कोई भी बात हो, घर की कोई भी समस्या हो, ताऊजी हमेशा आगे रहते है। ताऊजी की एक और आदत बडी मजेदार है। जब वह खाना खा रहे होते हैं तो बच्चो को बुलाकर कहते हैं, "आओ, जल्दी इधर आओ! आख बन्द करो, मुह खोलो।" और उनके हाथ में जो भी होता है, हमारे मुह मे रख देते हैं।

दिवाली की रात को पूजन के लिए सब लोग बारी-बारी से सबके घर जाते है। हम लोग जब दरियागज जाते हैं तो चाहे कितना भी पेट क्यो न भरा हो, ताऊजी हमे खिलाए बिना नही मानते। पटाखे, फुलझडी आदि छोडने मे भी वह हमारे साथ बहुत रस लेते हैं। होली के अवसर पर तो हम बच्चे उनकी वह गति बनाते रहे है कि क्या कहे, लेकिन ताऊजी बड़े प्रेम से उसे सहते रहे हैं और हमें कभी मना नही किया।

ताऊजी जब भी विदेश-यात्रा पर गए हैं, हमारे सबके हवाई अड्डे पर जाने का प्रबन्ध करते रहे हैं। अगर कोई नही पहुचा तो फौरन पूछेंगे कि वह क्यो नही आया? बच्चो के प्रति तो उनका अनूठा प्रेम है।

उनके प्रेम के लिए हम बच्चे यही प्रार्थना करते हैं कि ताऊजी चिरायु हो और उनका वरद हस्त हमारे सिर पर सदा बना रहे। समय जाते देर नही लगती। अब ताऊजी के हम सब बच्चो के भी बच्चे हो गए हैं, जो हमारे स्वर मे स्वर मिलाकर ताऊजी के स्वस्थ और दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

मेरे प्यारे जीजाजी

(डा) ज्ञान कुलश्रेष्ठ (बहन, आदर्श कु)

□□

अपने जीजाजी श्री यशपाल जैन के लिए जी करता है कि दुनिया भर के शब्द शब्द-सागर से खोज-खोजकर जितने भी विशेषण मिले, चुनकर ले आऊ, पर मेरी वैसी सामथ्य कहा है ! अत सबसे उपयुक्त और सार्थक और सरल-सहज विशेषण जो मैं दे रही हू, वही ठीक लगता है। मेरा जीवन और मेरा व्यक्तित्व बनाने का बहुत कुछ श्रेय मेरे जीजाजी को है। उनके वात्सल्य मे मुझे मा की ममता, पिता का सरक्षण और मित्र की नि स्वार्थता की झाकी मिलती है।

जीजाजी से मेरा सम्पर्क लगभग पचास से भी अधिक वर्षों का है। उस समय मैं अबोध बालिका थी। उनके साथ स्काउटिंग के सम्बन्ध मे देवरिया जाने का अवसर मिला। मै तब पाच-छह वष की थी और जीजाजी पन्द्रह-सोलह के। मुझे आज भी याद है, सवेरे उठने से पहले मैं कहती थी, "भैया, अपने पेट पर सुला लो।" और यह कहकर मैं उनके पेट पर पन्द्रह-बीस मिनट लेटकर प्रात काल की दिनचर्या प्रारम्भ करती थी।

समय चलता रहा, जीवन की गति बदलती गई, भैया परिवार के अभिन्न अग बन गए और फिर भैया जीजाजी हो गए। तब से आजतक दिन-प्रतिदिन मेरी श्रद्धा उनके लिए बढती ही गई है। जीजाजी हमारे इतने अपने हैं और उन्होंने जो कुछ हमारे लिए किया है, उस सबकी गिनती करना मेरे लिए असम्भव ही होगा, फिर भी मैं अपनी भावनाओ को व्यक्त करना अपना कतव्य समझती हू, यद्यपि मैं अच्छी तरह जानती हू कि जीजाजी जैसे साहित्यकार के विस्तृत साहित्यकारो के जगत मे मेरी यह छोटी-सी सुमनाजलि कितनी फीकी लगेगी, पर शायद जुगनू की भाति ये पक्तिया उनके सस्मरणो मे यदा-कदा कुछ थोडी-सी भी चमक ला सके तो मैं अपने को धन्य मानूगी और इसीलिए इतना दु साहस कर रही हू।

यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि जीजाजी मे सरलता, त्याग, स्वावलम्बन, सहृदयता और नम्रता कूट-कूटकर भरी हुई है। मान-सम्मान का उनका अपना मापदण्ड रहा है। जीजाजी के पास कहानियो का खजाना है, कविता और सगीत के प्रेमी हैं। हसी-मजाक के भी कायल है। निर्भीकता मे तो उनका जोड नही है। जीवन की विकट परिस्थितियो मे भी उनका धैर्य और साहस अपार रहा है। ईश्वर पर असीम विश्वास है, इसीलिए एक दार्शनिक की तरह वह सभी सकटो मे अपनी समस्थिति मे रहते हैं।

भद्दे और असभ्य शब्दो से वे दूर ही रहते हैं और यही कारण है कि 'साली' शब्द भी उन्हे चुभता हुआ लगता है। इसीलिए जब भी कभी उन्होने मेरा परिचय दिया है, यही कह कर दिया है कि यह आदर्श की छोटी बहन है।

जीजाजी का जीवन 'सादा जीवन और उच्च विचार' का प्रतीक है, लेकिन उनकी सादगी में फूहड़ता नहीं है, ढिलमिलापन नहीं है। उनकी सादगी मे सुरुचि है, जिस पर किसी का भी मन मुग्ध हो उठता है।

जीजाजी ने अपने जीवन का स्वय निर्माण किया है, विरासत मे अगर मिला है तो केवल शरीर मिला है। सस्कार जो मिले, उनमे पूरा-पूरा परिष्कार लाना जीजाजी का अपना प्रयास है। यह उनके आत्मबल का ही परिणाम है कि विजयगढ़ जैसे कस्बे मे जन्म लेकर आज वह भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार के रूप मे विख्यात हैं। विदेशो मे भी उनकी ख्याति फैल चुकी है। वह गरीबी की टीस को अनुभव करते हैं और जो कोई अभाव-ग्रस्त स्थिति मे उनके पास आता है, रीता नही लौटता, चाहे वह स्कूल-कालेज की फीस न दे सकने वाला विद्यार्थी हो अथवा किसी आत्मीय का इलाज कराने मे असमर्थ कोई व्यक्ति हो। जीजाजी स्वय कुछ कर पाते हैं तो करते ही हैं, उससे ज्यादा वह अपनी सम्पन्न मित्र-मण्डली से भी करा देते हैं। दान-दहेज मे विश्वास न करने पर भी वह गरीब पिता की बेटी के विवाह के लिए भी कुछ सुविधाएं जुटा देना अपना कर्तव्य समझते हैं और इसमे उनका तर्क होता है कि बेचारे को समाज मे कुछ प्रतिष्ठा तो चाहिए, विशेषकर लडकी के ससुराल वालो के सामने।

जीजाजी एक कर्मठ व्यक्ति हैं। कितना ही काम हो, मैंने उन्हे यह कहते कभी नही सुना कि थक गया। सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक समारोहो मे जाने मे वह कभी आनाकानी नही करते और सभी जगह धाराप्रवाह भाषण देकर सबके मन मे श्रद्धा जगा देते हैं। उनमे लेखक और वक्ता का मणिकाचन सयोग है।

आज उनके बहत्तर वर्ष पूरे होने पर मेरा रोम-रोम उनके प्रति मगलकामनाए व्यक्त करने के लिए आतुर है। मैं और मेरा बेटा राहुल ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह स्वस्थ रहे और अनन्तकाल तक हिन्दी और हिन्दी-साहित्य की सेवा करते रहे।

ऐसे है वह

(डा) गायत्री कुलश्रेष्ठ, (बहन, आदश कु)

□□

श्री यशपाल जैन मेरे सगे जीजाजी हैं, पर मैंने उनमे सदैव एक बडे भाई का रूप देखा है और तद्रूप उनसे स्नेह भी भरपूर पाया है। उनके साथ जब भी चर्चाए होती हैं, उनसे मेरा ज्ञानवर्द्धन ही हुआ है। उनके सत्सग से मैं लाभान्वित ही होती रही हू। उनका भव्य व्यक्तित्व और कृतित्व दोनो ही सराहनीय हैं।

जीजाजी किसी के मन को ठेस नही पहुचाना चाहते। इसके कारण कभी-कभी उन्हे स्वय कठिनाइया झेलनी पडती हैं। एक बार का किस्सा है। मै उन दिनो दिल्ली मे उनके पास गई हुई थी। मैंने ओखला नही देखा था। जीजाजी ने छुट्टी के दिन हम लोगो को ओखला ले जाने का कार्यक्रम बनाया। वे हम लोगो को जामिया मिलिया भी दिखाना चाहते थे। दिन भर ओखला मे रहना था, इसलिए जीजी अपने साथ घर से खाना बनवाकर ले गई थी। ओखला पहुचने पर कुछ समय बाद जीजाजी के एक प्रशसक सिन्धी सज्जन मिले। वे बडे

आग्रहपूर्वक हम सब लोगो को अपने घर ले गए और खाना खिलाने के लिए जिद करने लगे। हम लोगों ने उनसे कहा भी कि हम अपने साथ खाना लाये हैं, वे हैरान न हो, पर श्रद्धालु सज्जन कहां मानने वाले थे ! उन्होंने कहा, "यह कैसे हो सकता है कि आप लोग हमारे घर अतिथि बन कर आए हैं और बिना घर का खाना खाए चले जाए !"

उनकी इच्छा को मानना ही पडा। जिस स्थान पर भोजन परोसा गया, वहां की अस्वच्छता देख कर हम लोगो की हालत खराब हो गई। एक तो भयकर गर्मी थी, दूसरे खाने की सभी चीजों पर मक्खिया पहले से ही डेरा डाले बैठी थी। गृहपति और गृहिणी ने जब खाने के लिए आग्रह किया तो समझ मे नही आ रहा था कि कैसे और क्या खाये। सामने मोटी-मोटी रोटिया और साग रक्खा था। विचित्र स्थिति थी। हम लोगो की परेशानी समझ कर जीजाजी ने तुरन्त अपने साथ लाया खाना सामने निकाल कर रख दिया और हम लोग स्वार्थी बन कर अपना खाना खाते रहे, लेकिन जीजाजी की स्थिति देखने लायक थी। वे गृहपति का दिल कैसे दुखाते ! सो उनका खाना खाते रहे। सिन्धी सज्जन उन्हे अपने घर खाना खिला कर बहुत प्रसन्न थे।

जबलपुर मे महावीर जयन्ती के अवसर पर जीजाजी को प्रमुख वक्ता के रूप मे जैन-समाज ने आमन्त्रित किया। जीजी भी साथ थी। शाम को साहित्यगोष्ठी के पश्चात रात्रि को जीजाजी को भाषण देना था। बीच मे ढाई-तीन घटे का समय था। दमोह के जैन समाज को पता लगा कि जीजाजी जबलपुर आ गए हैं तो उन्होंने एक सज्जन को कार से भेजा और जीजाजी से अनुरोध किया कि वे दमोह मे भी भाषण दें, और उन्होने वादा किया कि जबलपुर मे भाषण के लिए ठीक समय पर पहुचने की पूरी जिम्मेदारी उनकी है। जीजाजी दिल्ली से जबलपुर की लम्बी यात्रा करके थके हुए थे, लेकिन दमोह की जैन-समाज की अपने प्रति श्रद्धा के कारण वे उनके निमन्त्रण को अस्वीकार नही कर सके। अपनी थकान की परवा किए बिना वे हम लोगो को साथ लेकर लगभग ६० मील दमोह गए और अपने भाषण की अमिट छाप छोड कर ठीक समय पर जबलपुर लौट आए और आगे के सारे कार्यक्रमो मे भाग लिया।

सकट मे पडे व्यक्तियो की सहायता करने मे भी जीजाजी बडे तत्पर है। उनके एक मित्र का अचानक देहान्त हो गया। उनकी पत्नी अपने छोटे-छोटे दो बच्चो के साथ बडे आर्थिक सकट मे थी। जीजाजी ने अपने मित्र श्री जगदीशचन्द्र माथुर (तत्कालीन डाइरेक्टर जनरल, दिल्ली रेडियो) से आग्रह-पूर्वक कह कर उन्हे भोपाल मे रेडियो मे नौकरी दिलवा दी। उस समय मैं भोपाल मे गर्ल्स हॉस्टल की वाडन थी। जीजाजी ने मुझे लिखा कि उनके मित्र की पत्नी को अपने हॉस्टल मे रहने के लिए कमरा दे दू और मैंने उनके रहने की पूरी व्यवस्था करा दी, पर चूकि वहा रहने पर उन्हे कुछ नियमो का पालन करना पडता, इससे वे हॉस्टल मे रहन की सुविधा का लाभ लेने को तैयार नही हुईं।

जीजाजी बडे ही सौम्य, सहृदय और सरस्वती के वरदपुत्र है। वे प्रकृति-प्रेमी हैं और साहित्य के मर्मज्ञ हैं।

मैं श्रद्धेय जीजाजी की ७२वी वर्षगाठ के अवसर पर उनके दीर्घायु होने की कामना करती हू।

उनकी अविस्मरणीय शिक्षा

शारदा कुलश्रेष्ठ (बहन, आवर्स कु)

□□

जीजाजी (श्री यशपाल जैन) के साथ का एक छोटा-सा सस्मरण मेरे जीवन का दृढ़ सबल बन गया है। बात सन् १९५० की है। उस समय मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय की छात्रा के रूप मे सरोजिनी नायडू छात्रावास मे रहती थी। उन दिनो जीजाजी अपने दफ्तर के काम से प्राय प्रयाग आते रहते थे। जब कभी आते थे, मुझसे हॉस्टल मे मिलने आते थे और कभी-कभी हमे अपने साथ घुमाने ले जाते थे। जीजाजी के स्नेहिल और सहज स्वभाव से मेरी मित्र-मण्डली भी बडी प्रभावित थी। वह सबको समान मान कर हमे नीति की बातें समझाया करते थे।

एक दिन शाम को जब जीजाजी हॉस्टल आये तो हमने उनसे त्रिवेणी-सगम चलने का आग्रह किया। वह सहर्ष तैयार हो गये। अगले दिन चलने का कार्यक्रम बना।

दूसरे दिन छात्रावास से बनवाया हुआ भोजन साथ लेकर हम लोग सगम पर पिकनिक मनाने के लिए निकल पडे। मेरे साथ दो और छात्राए थी। सारे रास्ते हम जीजाजी के सत्सग और अनुभव का लाभ लेते गये, किन्तु तभी एक छोटी-सी घटना घटी। हम सब सगम से लौटने लगे तो इक्को के अलावा और कोई सवारी नही थी। हम लोगो को इक्के मे सवार होने मे हीनता का अनुभव होता था। सबसे ज्यादा डर यह था कि यदि यूनीवर्सिटी के किसी छात्र ने हमे देख लिया तो हमारी हसी उडाएगा। जब यह बात जीजाजी के सामने आयी तो सरल-सहज से दिखाई देने वाले जीजाजी बडे कठोर और दृढ़ स्वर मे बोले, "ऐसा है तब तो हमको इक्के पर ही जाना है। कैसा भी हीनभाव मन मे लाना अच्छा नही है। बुरा काम करने मे बुराई है। इक्के पर सवार होने मे शर्म की क्या बात है? इससे हम दूसरे लोगो की निगाह मे ओछे या बुरे नही बनेंगे।"

उनके इस वाक्य ने हम सबको एक नयी प्रेरणा दी। हम लोग इक्के मे बैठ कर ही लौटे। तबसे आज तक जब कभी मेरे जीवन मे इस तरह के क्षण आते हैं तब जीजाजी की बात याद आ जाती है और क्षणभर मे हीनता का भाव दूर हो जाता है। एक यही नही, उनके अनेक ऐसे सस्मरण हैं, जो मेरे जीवन के आधार-बिन्दु बने हैं और सदा बने रहेगे। वही शिक्षा मैं अपनी हजारो छात्राओं को दे चुकी हू, दे रही हू और देती रहूगी।

जीजाजी के व्यक्तित्व की सबसे बडी विशेषता उनका परिस्थितियो के साथ मेल साधना है। बच्चो के साथ वह बच्चे जैसे निश्छल और सरल हैं। बडो के साथ, विद्वानो के साथ, धीर-गम्भीर तथा हम-उम्र वालो के साथ आत्मीय हैं। उनका यह एक दुर्लभ गुण है।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मेरे जीजाजी पग-पग पर अपनी ज्ञान-ज्योति से भारत को ही नही, सारे विश्व को आलोकित करते रहे।

मेरे पथ-प्रदर्शक

कुसुम कुलश्रेष्ठ (बहन, आदर्श कु.)

□□

आदरणीय यशपालजी जैन पारिवारिक सम्बन्धो मे जहा मेरे जीजाजी हैं, वहा जीवन के हर मोड पर वे मेरे पथ-प्रदर्शक भी हैं। मेरी जैसी भौतिकता की चकाचौंध मे ग्रस्त एक अल्हड लडकी की जीवन-डगर को अध्यात्म की ओर ले जाने का श्रेय जीजाजी को ही है। अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान रहने, मुसीबतो मे मुस्कराने आदि जीजाजी के गुणो के मोतियो को अपने जीवन-सूत्र मे पिरोने का मैं सदा प्रयत्न करती रही हू। उच्च कोटि के साहित्यकार, मधुरभाषी, गाधीजी के अनन्य भक्त हमारे जीजाजी हर आयु के व्यक्ति के साथ उसकी रुचि के अनुसार अपना तालमेल बिठा लेते हैं। बच्चो के साथ बच्चा बन जाना उनका विरल गुण है।

जीजाजी ने बहुत-से देशो की यात्राए की हैं, अपने देश मे भी बहुत घूमे हैं, लेकिन घूमने के अलावा उन्होने कोई व्यसन अपने पास नही फटकने दिया। ऐसे जीजाजी के प्रति मेरा मन और हृदय श्रद्धा से गद्गद् हो उठता है।

उनकी बहत्तरवी वर्षगाठ के अवसर पर परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करती हू कि वह उ हे स्वास्थ्य, समृद्धि और शक्ति प्रदान करें, जिससे वह चिरकाल तक अपना सक्रिय जीवन बनाए रक्खे।

विशाल हृदय के व्यक्ति

राजीव कुमार (भाई, आदर्श कु.)

□□

लगता है, जीजाजी से मेरा परिचय सनातन काल से है। जीजाजी के जीवन मे मैंने कई उतार-चढाव देखे है, लेकिन कभी-भी मैने उन्हे उदास या उद्विग्न नही पाया, सदैव प्रसन्नचित्त और उत्साह से लबालब। जो भी कोई एक बार इनसे मिलता है, इन्हे भल नही सकता। ऐसा जादूभरा चुम्बकीय प्रभाव होता है इनका। यही कारण है कि भारी सख्या मे सभी व्यवसाय और वग के शीर्षस्थ व्यक्ति इनके मित्र और निकट के सहयोगी हो जाते हैं। साहित्यकार होने के नाते साहित्यिक वग का प्रभावित होना अस्वाभाविक नहीं है, लेकिन बडे-बडे नेता, व्यापारिक सस्थानो के मूर्धन्य व्यक्ति, कटनीतिज्ञ, पत्रकार, डाक्टर, इजीनियर, प्रशासक, अध्यापक, छात्र और साधु-सन्त जैसे विविध प्रकार के व्यक्तित्व उनसे अछूत नही रह सकते। छोटे स्तर के व्यक्तियो को भी उनका अगाध स्नेह प्राप्त है। सबके साथ सम्बन्धो मे बहुत-ही आत्मीयता और मधुरता रहती है। सभी को ऐसा लगता है कि वह हमारे घर के ही सदस्य हैं।

ऐसे विशाल हृदय व्यक्ति को सदा ही अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। अपना कोई समय ही नहीं रह पाता और घर मे आर्थिक परेशानिया भी हो जाती हैं। लेकिन दूसरों की खुशी के लिए वह अपने सुख का त्याग बिना किसी मलाल के करते हैं।

अपने पारिवारिक सम्बन्धो के बारे मे भी मैं कुछ कहना चाहूगा। जीजाजी से हम लोगों को जीजा के रिश्ते के अतिरिक्त ऐसा महसूस होता है कि बाबूजी (पिताजी) के बाद दूसरा नम्बर उन्ही का है। सफाई और सभी चीजो को सुव्यवस्थित रखना जीजाजी को पसद है। जब कभी वे हमारे घर अलीगढ़ आते तो उनको इस बात का कदापि ख्याल न होता कि वह उस घर के दामाद हैं। आते ही सफाई मे और सभी चीजो को ठीक करने मे लग जाते। उनके इस काम मे लगते ही हम भाई-बहनें भी सहज ही उनका हाथ बटाने लगते। जीजाजी का व्यक्तित्व ही ऐसा है कि बिना किसी दबाव के लोग इनका अनुसरण करने लगते हैं, क्या घर के क्या बाहर के।

अबतक चालीस से ऊपर देशो की यात्राए वे कर चुके हैं और उनका लोगो पर जो प्रभाव है, वह उनका स्वय का पैदा किया हुआ है। किसी व्यक्ति-विशेष की मदद उनको नही मिली। लेकिन इतना सब होने पर भी अहकार का बोझ वह अपने कधो पर लेकर नही चलते और इसीलिए सबके स्नेह और आदर के पात्र बन गए है। ७२ वर्ष पूरे करने के मगल अवसर पर मैं दुर्गा मा से जीजाजी के लिए यही प्रार्थना करता हू

'तुम जियो हजारो साल, साल के दिन हो पचास हजार।'

मौसाजी की विशेषता

नीलम कुलश्रेष्ठ (बहनौत, पत्नी)

□□

मेरे मौसाजी (श्री यशपालजी जैन) को एक प्रसिद्ध लेखक, पत्रकार और कुशल वक्ता के रूप मे बहुत लोग जानते हैं, लेकिन उनकी जिस बात से मैं प्रभावित हू, वह है उनके व्यक्तित्व की जीवन्तता। दिल्ली और बाहर के शहरो के व्यस्त कार्यक्रमो के बीच मैंने उन्हे कभी थकते नही देखा। बिना किसी विश्राम के वह कैसे इतने कार्यक्रमो का आमत्रण स्वीकार कर लेते हैं और उसमे उत्साह से हिस्सा भी लेते हैं, यह मैं आजतक नही जान पायी।

वे गाधीवादी हैं, यह तो सर्वविदित है, किन्तु गाधीजी के आदर्शों को मैंने उन्हें अपने जीवन मे उतारते भी देखा है। क्रोध पर उनका कितना नियत्रण है, यह मैं दस-ग्यारह वर्ष पूर्व जान पायी थी। मैं उन दिनो दिल्ली मे उनके घर पर थी। दिल्ली के बिडला मन्दिर मे प्रख्यात रामायण-व्याख्याता प रामकिंकरजी के प्रवचन चल रहे थे। एक दिन मौसाजी, मौसीजी और मैं उनके प्रवचन के बाद मन्दिर मे ही स्थित एक कमरे मे उनसे मिलने गये। वहा एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति जमीन पर बैठकर रामकिंकरजी के पैर दबा रहा था और वहा होने वाली बातचीत को बहुत ध्यान से सुन रहा था।

कुछ देर बाद हम लोग मदिर से बाहर आ गये। अचानक उसी पैर दबाने वाले व्यक्ति ने हमारा रास्ता रोक लिया और कुछ व्यग्यात्मक स्वर मे मौसाजी से बोला, "क्या आप ही यशपाल जैन हैं ?"

"जी हा !" मौसाजी ने उत्तर दिया।

"आपको मैं आपकी पुस्तको और लेखो के माध्यम से अच्छी तरह जानता हू। मैं गुप्तचर विभाग का वरिष्ठ अधिकारी हू।"

हम उस साधारण-से दिखाई देने वाले व्यक्ति का परिचय पाकर दग थे।

"आपसे मिलकर हम लोगो को बडी खुशी हुई।" मौसाजी ने कहा।

"लेकिन मुझे रामकिंकरजी या आप जैसे पूजीपतियो के पिट्ठुओ से मिलने मे कोई खुशी नही होती। मैं तो रामकिंकरजी की इसलिए सेवा कर रहा था कि उनके पाखण्ड की तह तक पहुच सकू।"

मैं हतप्रभ थी, लेकिन मौसाजी ने शान्त भाव से कहा, "लगता है, आपको कुछ गलतफहमी हुई है।"

"मुझे कोई गलतफहमी नही हुई है।" वह तलखी से बोला, "यदि आप पूजीपतियो का सहारा न ले तो कैसे इतने देशो की यात्रा कर सकते हैं ? 'नवभारत टाइम्स' मे मैं आपके लेखो को पढ़ता रहा हू। इस हिसाब से तो आपने पूजीपतियो के धन से जाने कितना विदेशी सामान खरीदकर विदेशी मुद्रा का अपव्यय किया होगा।"

उस व्यक्ति की इन बातो को सुनकर और कोई होता तो शायद क्रोध से लाल-पीला हो जाता, किन्तु मौसाजी की यह विशेषता ही थी कि उन्होने निर्विकार भाव से, बिना किसी उत्तेजना के, उसकी बात सुनी और उसे समझाते हुए कहा, "कोई राय बनाने से पहले आपको यह जान लेना चाहिए कि मेरी यात्राओ की व्यवस्था किस प्रकार से होती है और फिर यह भी समझ लेना चाहिए कि क्या कोई भी पैसे वाला किराये-भाडे के अतिरिक्त इतना पैसा दे देगा कि आप बाहर से ढेरो सामान ले आये ?"

वह व्यक्ति मौसाजी की ओर देखता रहा। मौसाजी ने आगे कहा, "सरकार द्वारा निश्चित की गयी विदेशी मुद्रा लेकर ही मैं विदेश जाता हू। प्राय सभी देशो मे मेरी मित्र-मण्डली है। वह मेरे खाने-पीने, रहने-घूमने की सुविधा कर देती है। इससे कभी-कभी विदेशी मुद्रा बचकर आ जाती है, जिसे मैं प्राय सरकार को लौटा देता हू। फिर विदेशी सामान मे मेरी कोई खास रुचि भी नही है। मैं तो स्वदेशी मे विश्वास रखने वाला व्यक्ति हू।"

मुझे याद है कि वह महानुभाव कोई पन्द्रह-बीस मिनट तक अपनी बात पर अडे रहे, जिरह करते रहे और मौसाजी सतुलित मस्तिष्क से उसकी शकाओ का समाधान करते रहे। अन्त मे उन गुप्तचर महोदय के क्रोध और शकाओ का समाधान हो गया और तब सतुष्ट होकर उन्होने मौसाजी को सम्मानपूर्वक नमस्कार करते हुए विदा ली।

यशपालजी को संसार के अनेक देशों में जाने का सुयोग मिला है। विभिन्न देशों में उनके योगदान के संबंध में हमें जो लेख प्राप्त हुए हैं, उन्हें इस खण्ड में दिया गया है। स्पष्ट है कि यशपालजी जहां कहीं गये हैं, भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन और हिन्दी साहित्य का संदेश लेकर गए हैं। इस संदेश का विभिन्न देशों के निवासियों, विशेषकर प्रवासी भारतीयों, पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा है, उसका अनुमान इस खण्ड की रचनाओं से किया जा सकता है।

प्रवासी भारतीयों के बीच

पैनी दृष्टि वाले सहृदय पर्यटक

सत्यनारायण गोयनका

□□

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार के रूप मे उनका नाम सुना था। कुछ रचनाए भी पढी थी उनकी। लेकिन जब वे विष्णुभाई के साथ बर्मा आए तो पहले-पहल उनसे मिलते ही लगा कि यह तो पूरे सैलानी हैं। चाल मे बेफिक्री की मस्ती, आखो मे सब कुछ एक साथ देख लेने की उत्सुकताभरी चमक, होठो पर कभी उन्मुक्त हास, कभी थिरकती मुस्कान और गले मे कैमरा। यह थे साहित्यकार श्री यशपाल जैन, जो कि पहली नजर मे ही मुझे पक्के पर्यटक लगे। उनका ध्यान आते ही मेरे मन मे उनका यह पर्यटक-स्वरूप ही अधिक उभरता है। जितने दिन बर्मा मे रहे, उनके इस स्वरूप मे कोई तब्दीली नही देखी और इतने वर्षों बाद आज भी जब उनसे मिलता हू तो कोई तब्दीली नही देखता।

चाहे श्वेदगोन स्तूप पर चलना है, चाहे बहादुरशाह जफर की मजार पर चलना है, चाहे काडोले या काडोजी झील की सैर के लिए चलना है, चाहे इरावदी पर नौका-विहार के लिए चलना है, चाहे दक्षिणी या उत्तरी बर्मा के मौलमीन, माडले, टौंजी, कलौ आदि शहरो की ओर चलना है, कही भी क्यो न चलना हो, पर्यटक यशपालजी सदा तैयार है। कभी कोई थकान का चिह्न नही। कही कोई आलस्य का नामोनिशान नही। 'आज तो सुस्ती मालूम होती है' या 'आज तो आराम करने को जी चाहता है'—ऐसे प्रमादभरे शब्द कभी उनके मुह से नही सुने। किशोरो और युवको का-सा उमडता हुआ उत्साह ही उनके स्वभाव का अविभाज्य अग देखा।

ऐसे गुण किसी-किसी सामान्य पर्यटक मे भी देखे जा सकते हैं, परन्तु इस पर्यटक की अपनी एक विशेषता और थी, और वह थी भारतीय सस्कृति के प्रति अगाध प्रेम। बर्मा के पुरातन ऐतिहासिक स्थलों मे अथवा वर्तमान बर्मी जन-जीवन मे जहा कही भारतीय सस्कृति का कोई प्रभाव देखते, वही इनकी आखो की चमक चौगुनी हो उठती थी।

विदेशो मे भारतीय सस्कृति के प्रति आकर्षित होना भी किसी-किसी भारतीय पर्यटक मे देखा जा सकता है। परन्तु इससे भी बडी एक और विशेषता इनमे देखी, और वह थी इतनी गहरी मानवीय सवेदनशीलता, जो कि सामान्य नही थी, साधारण नही थी। निश्चय ही यह पर्यटक सामान्य सैलानी टाइप पर्यटक नही था और न ही अतीत के सास्कृतिक वैभव का गुण गाने वाला चारण टाइप पर्यटक। यह था, भावावेश से दूर यथार्थ की ठोस धरती पर कदम रखकर चलने वाला, वर्तमान के प्रति पूर्ण जागरूक पर्यटक। न केवल प्रवासी भारतीयो की, बल्कि बर्मा के मूल निवासियो की समस्याओ के प्रति भी पूर्ण सचेतन और सवेदनशील। समस्याए चाहे आर्थिक हो, समाजिक हो अथवा राजनैतिक, इस सहृदय व्यक्ति ने उन्हे कभी छिछले तौर पर नही देखा। उनका खूब गभीरता के साथ अध्ययन किया और फिर इस सबध मे जहा कही, जो भी विचार प्रकट किए, वे एक ओर सहानुभूति और सद्भावनाओ से छलछलाते हुए थे और दूसरी ओर गभीर सर्वहितकारी नेक परामर्श से भरे हुए। प्रवासी भारतीयो के हित का पूरा ध्यान रखते हुए भी बर्मियो के प्रति मन मे कही द्वेष नही, दुर्भावना नही। यदि इनकी-सी पैनी दृष्टि वाले और सहृदय व्यक्तित्व वाले राजदूत पडोसी देशो को भेजे जाए तो इन देशो के साथ भारत के पारस्परिक सबधो का इतिहास ही बदल जाए।

यशपालजी चिरायु हो और चिरायु हो उनकी आखो की चमक, चिरायु हो उनके होठो की मुस्कान, चिरायु हो उनकी तथ्य-अन्वेषिणी तीक्ष्ण बुद्धि और चिरायु हो उनका प्यार तथा करुणा से छलकता हुआ सवेदनशील हृदय।

बर्मा प्रवास की यादे

(डा) ओमप्रकाश

□□

"ओ हो ! तो आप लोग आ गए ! अच्छा हुआ। मैं इस ऑफिसर से कह ही रहा था कि मुझे कहा ठहरना है, यह मैं नही जानता, परन्तु कोई-न-कोई तो मुझे लेने आएगा ही।" यह बात अभी यशपालजी ने अपनी विशेष मुद्रा मे कही, जिसमे बोलते समय उनका दक्षिण हाथ वक्ष तक उठा हुआ था, तर्जनी सीधे उठी हुई थी, शेष तीन उगलिया आधी मुडी हुई तथा अगुष्ठ उन उगलियो पर कुछ मुडा हुआ-सा था।

अप्रैल-मई, १९६० मे बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने वार्षिकोत्सव मे श्री यशपाल जैन और श्री विष्णु प्रभाकरजी को आमन्त्रित किया था। रगून के प्रसिद्ध व्यापारी तथा साहित्य सम्मेलन के प्रधान श्री सत्यनारायण गोइनकाजी के विज्ञान भवन मे उनके निवास का प्रबन्ध किया गया। फैलाव की दृष्टि से रगून कोई बहुत बडा नही है। वहा का भारत मूलक हिन्दी समाज आपस मे बहुत सम्बद्ध है। सो बात-की-बात मे खबर फैल गई कि भारत से कुछ मूर्धन्य साहित्यकार पधारे है। अनेक लोग भेट-वार्ता, दर्शन वार्त्तालाप करने पहुचने लगे। श्री विष्णु प्रभाकरजी तो एक विशेष मिशन पर आए थे। उनका उद्देश्य था शरत् चन्द्र की

जीवनी की सामग्री एकत्र करना। रगून मे उन्होंने घूम-घूमकर जहा शरत् रहते थे, जहा काम करते थे, उन स्थानो को देखा और शरत् के समकालीन लोगो से मिलकर उपयोगी सामग्री प्राप्त की, जो उनकी अमर पुस्तक 'अवारा मसीहा' के नाम से छपी।

उस देश मे बैसाखी पर्व के अवसर पर होली खेली जाती है। यह होली (तिञ्जा) ३ दिन चलती है। १३-१४-१५ अप्रैल को होती है। इसमे बर्मी बच्चे, किशोर, किशोरिया, युवक, युवतिया नये स्वच्छ परिधान पहनकर शरीर पर चन्दन, तनखा, पाउडर, क्रीम आदि लेपकर, गले मे सुन्दर, सुवासित पुष्पमालाओ से सुसज्जित होकर, पैदल, खुली छत की मोटरो मे बैठकर, एक-दूसरे के घरो, मुहल्लो मे जाकर एक-दूसरे पर शुद्ध, सुवासित जल फेंकते है। ऐसा करते हुए वे खूब नाचते-गाते परिहास तथा विनोद करते है। यशपालजी तथा साथियो सहित हमारी टोली एक खुली मोटर मे 'पानी खेलने' निकली। कई घण्टो तक खूब खेलकर, पानी से तर-बतर होकर, आनन्द-विभोर होकर हम सब वापस आये। इस अवसर पर वह पैंगूजी गये।

यशपालजी को यह अवसर सदा स्मरण रहता है और उन्होने कई बार इच्छा प्रकट की है कि दुबारा इसी प्रकार बर्मी होली मे भाग लेने का सुअवसर उन्हे प्राप्त हो।

इन तीन दिना के उत्सव मे आनद लेने के पश्चात् सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन का कार्यक्रम हुआ। श्री विष्णु प्रभाकरजी ने कहानी-कला पर प्रकाश डाला तथा हिन्दी कथा-साहित्य मे विकृत साहित्य की बढती हुई रुचि पर क्षोभ प्रकट किया। स्थानीय लोगो ने लेख, कविता, नाटक आदि प्रस्तुत किए। श्री यशपालजी ने सभापति के आसन से बोलते हुए हिन्दी तथा बर्मी साहित्य और सस्कृति के आपसी आदान-प्रदान को बढावा देने पर बल देते हुए कहा कि सास्कृतिक सम्बन्ध राजनैतिक सम्बन्धो से कही ज्यादा अटूट, प्रगाढ और स्थाई होते हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के हिन्दी प्रचार-प्रसार के कार्य को उन्होने सराहा।

सम्मेलन के अलावा उन्होने गाधी मेमोरियल ट्रस्ट, लक्ष्मीनारायण धर्मशाला, 'प्राची प्रकाश प्रेस', आर्यसमाज मन्दिर, जैन मदिर आदि स्थानो मे हुए समारोहो मे भाग लिया और अपने विचार प्रकट किए। इन सभी स्थानो मे उन्हे भली प्रकार समादृत किया गया।

रगून से निबटकर जियावडी जाना हुआ। जियावडी क्षेत्र मे १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारत के बिहार प्रान्त के अनपढ किसान एक जमीदार द्वारा लाकर बसाए गए। आज इनकी सख्या बढ़कर ३० हजार हो गई है। ये लोग अभी भी पुरानी परिपाटी के अनुसार रहते है। गावो मे उसी प्रकार की मिट्टी से लिपी-पुती झोपडिया आदि है। खेती-बाडी करते हुए, अत्यन्त सादा सात्विक जीवन यापन करते है। इस युग मे कुछ स्नातक हो गए हैं। कई एक डाक्टर और इजीनियर भी बने हैं। यहा भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन की शाखा है। सैकडो विद्यार्थी हिन्दी की शिक्षा प्राप्त करते है। जियावडी मे मुख्यतया प्रि श्रीरामजी, श्री रोमगोविन्द वर्माजी तक हीरा मास्टरजी के अनुरोध पर श्री यशपालजी तथा अन्य मित्र जियावडी पधारे। वहा पहुचने पर वहा की प्राचीन परिपाटी के अनुसार आगन्तुक अतिथियो का पूर्णत स्वागत करते हुए नीचे परात रखकर पद-प्रक्षालन की विधि पूरी की और फिर जलपान—पुष्पमालाओ से मण्डित किया।

जियावडी के बाद वह वर्मा की प्राचीन राजधानी माण्डले, जहां श्री लोकमान्य तिलक को बन्दी बनाकर रखा गया था, गए। पहाडी नगरी मेम्यो आदि नगरो मे गए तथा लोगो से भेट-वार्ता तथा साहित्य चर्चाए की। वहा से शान स्टेट के मुख्य नगर टाऊजी (बडा पहाड) गए, यहा का मार्ग बडा बीहड है। रास्ता कही तो व्योम विचुम्वित पर्वत पर होकर जाता है और कही नीचे घाटी मे धरातल तक उतर जाता है। मोटर-मार्ग साप की तरह टेढे-मेढे, ऊपर-नीचे होते हुए सुन्दर क्षेत्र मे जाता है। स्थान-स्थान पर प्रकृति की

छटा अत्यन्त सुन्दर और मनोहर है। लता, गुल्म प्रल्लवित तथा द्रुम-दल कुसुमित देखकर मन आह्लादित हो उठता है। इन सब स्थानो का भ्रमण कर दक्षिण की ओर समुद्र तट पर अवस्थित मोलमीन शहर गए। यहा कुछ राजस्थानी, कुछ गुजराती तथा बहुसख्यक तमिल लोग बसे हैं। तमिल लोग कई सदियों पहले दक्षिण भारत से व्यापार तथा खेती करने यहा आकर बस गए हैं। यशपालजी ने उन्हे ब्रह्मदेश को ही अपनी मातृभूमि मानकर इसकी समृद्धि बढाने की सलाह दी।

रंगून वापस आकर 'बर्मी लेखक सघ' के प्रमुख लोगो से मिले तथा प्रसिद्ध साहित्यकार तखिऊ को डो मिन तथा ऊ ह्लाचै पाइगू से मुलाकात की और साहित्यिक विषयो पर बात-चीत की। इस प्रकार सबमे मेल-मिलाप कर भारत वापस आए।

किसी ने कहा है कि खून के रिश्ते से यह दोस्ती का रिश्ता कही सच्चा होता है। यह बात यशपालजी पर खूब लागू होती है। भारत आते ही यहा के पत्रो मे आपने धारावाहिक रूप से यात्रा-विवरण प्रकाशित किया और बाद मे 'पडोसी देशो मे' पुस्तक भी प्रकाशित की। इसमे भी थाईलैण्ड (स्याम), कम्बोडिया, दक्षिण वियतनाम, मलाया, सिंगापुर, नेपाल और अफगानिस्तान के विवरण बहुत ही सुन्दर बन पडे हैं। वे जब भी देश के बाहर जाते हैं, कोई-न-कोई उपयोगी कार्य करके ही आते हैं। जब लन्दन गए थे तो वहा जार्ज एलन एण्ड रान विन द्वारा प्रकाशित डा सद्धा तिस्स की 'लाइफ आफ द बुद्ध' के अनुवाद तथा प्रकाशन करने की अनुमति भी लेते आए थे।

बर्मा की दूसरी यात्रा सन् १९७८ के पूर्वार्द्ध मे हुई। मेरे निवास पर ठहरे। प्रवास के एक सप्ताह के दौरान बर्मा साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व किया, अनेक युवा लेखको को मार्ग-दर्शन दिया। साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के पश्चात् श्री महावीर जयन्ती समारोह मे जैन मदिर गए। वहा महावीर के सिद्धातो पर विशेष प्रकाश डाला। आर्य समाज मदिर मे प्रवचन किया। सब सम्मोहित हुए। ऊ पारगूजी के प्रयत्न से बर्मी भाषा के लेखकों को एक जलपान गोष्ठी मे आमत्रित कर उनकी समस्याओ पर विचार-विनिमय हुआ। यशपालजी ने वहा के लेखको की सुविधाओ को सराहा, विशेषतया इस बात को कि लेखक को प्रकाशक उसका पारिश्रमिक पाण्डुलिपि लेते ही दे देता है। लेखक को प्रकाशक के पीछे दौडना नही पडता। यशपालजी ने जहा एक लेखक के रूप मे उन्हे अनेक उपयोगी सुझाव दिए, वहा एक प्रमुख प्रकाशक की हैसियत से लेखको को अनेक उचित परामर्श दिए।

इतनी अच्छी स्मृतियो को ताजा रखने के लिए यशपालजी समय-समय पर दक्षिण-पूर्वी एशिया वालो के लिए आकाशवाणी दिल्ली के प्रसारणो पर वार्ताए देते रहते हैं। उनकी वार्ताए बडी सुखद प्रतीत होती हैं। उनकी बोलने की विशिष्ट शैली, विशेष स्वराघात मानो उनसे प्रत्यक्ष मिलन का आनद देता है।

"यशपालजी, आप जियो हजारो साल।" यही हमारी मगल कामना है।

गंगा और इरावदी का मिलन

ऊ पारगू

□□

[प्रस्तुत लेख के लेखक बर्मी भाषा के विख्यात लेखक हैं। उन्होने हिंदी की अनेक उत्कृष्ट रचनाओ का बर्मी भाषा मे अनुवाद किया है। भारत, भारतीय सस्कृति तथा हिंदी साहित्य के वे बड़े प्रेमी हैं। उन्होंने राहुल सांकृत्यायन के उपन्यास 'सिंह सेनापति' का बर्मी भाषा मे अनुवाद किया है। यह लेख या यू कहिए बातचीत उस समय की है जब हिंदी लेखक यशपाल जैन बर्मा गए थे।

—सम्पादक]

भारत से पधारे हुए हिंदी के यशस्वी लेखक श्री यशपाल जैन का अपने मित्र बर्मी लेखको से परिचय कराने की जिम्मेदारी मुझे सौंपी गई है। यशपालजी १९३१ से ही लिख रहे हैं। १९६० मे एक बार वह और उनके लेखक मित्र विष्णु प्रभाकरजी बर्मा आए थे। उस बार भी स्वेबोदा (मुगल स्ट्रीट) के मकान मे कुछ बर्मी लेखको से भेंट हुई थी। उस बार हिंदी के दोनो लेखक सयातखिं कोडो म्हाई के घर जाकर उनसे मिले थे। दुभाषिये के रूप मे मैं भी साथ गया था।

सयाजी से अनेक प्रश्न पूछे गए थे, और सयाजी ने पान चबाते हुए उन प्रश्नो के उत्तर दिए थे। यशपालजी ने सयाजी से पूछा था, "आप अपनी कृति मे किस कृति को सबसे अधिक पसद करते हैं?" सयाजी ने बड़ी सहजता से उत्तर दिया, "अपनी सारी रचनाओ मे मुझे 'डम्मा सेटी बहु' सर्वाधिक पसद है।"

यशपालजी ने भारत लौटकर बर्मा पर कई लेख लिखे। लेख मे तखिं कोडो म्हाई के बारे मे लिखते समय उन्होने 'डम्मा सेटी' के सबध मे भी उल्लेख किया। सयोग से वह लेख मेरे पास भी पहुचा। मैंने उसका बर्मी मे अनुवाद करके एक पत्रिका को दे दिया। उस समय वह पत्रिका 'बवाते' (नवजीवन) कोओंब तथा नान्वे की देखरेख मे छपती थी। वह विद्यार्थियो की पत्रिका थी। उसी पत्रिका मे तबिटा ने यशपालजी के उस लेख को प्रकाशित किया।

यशपालजी कविता, कहानी, नाटक आदि लिखते हैं और उनके सग्रहो की अनेक पुस्तके प्रकाशित हुई है। एकाकी तथा रेडियो रूपक भी लिखते हैं। जीवनी, यात्रा-वृत्तात, सस्मरण आदि लिखते हैं। राहुल साकृत्यायन और डा रघुवीर के बाद यशपाल जैन हिंदी के प्रथम लेखक हैं, जिन्होंने देश-विदेशो का सर्वाधिक भ्रमण किया है। 'रूस मे छियालीस दिन' नामक कृति पर इन्हे 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' मिला है। एक दूसरी पुस्तक 'सेतु निर्माता' पर भी 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' मिला है। 'सेतु निर्माता' मे इन्होने विश्व के अपने प्रिय लेखको के बारे मे लिखा है। बर्मा के सया कोडो म्हाई के बारे मे इस पुस्तक मे उनके विस्तृत सस्मरण सम्मिलित हैं। इनकी अन्य कई पुस्तके केंद्रीय सरकार और राज्य-सरकारो द्वारा पुरस्कृत हुई हैं।

यशपालजी हिन्दी के शीर्ष लेखको मे प्रमुख स्थान रखते हैं। सोने मे सुगध की बात यह है कि नई दिल्ली स्थित एक प्रकाशन सस्था 'सस्ता साहित्य मण्डल' के वह मत्री हैं। उत्तम पुस्तको को सस्ते मूल्य मे उपलब्ध कराने के उद्देश्य से स्थापित और सचालित यह सस्था विगत ५२ वर्षों से काम कर रही है। अत प्रकाशन कार्य की भी यशपालजी को जानकारी है।

उस दिन अनौयठा और ४५वी गली के मोड पर भारतवशी डा ओमप्रकाश के घर पर अतिथि लेखक से कुछ बर्मी लेखक मिले थे। इनमे भामो टे औ, डागो टाया, च औ, मिन् च, डाक्टर मौ मौं न्यो, तांट, को ता न्हाईं, (मोवे) प्रभृति थे। बैठने की व्यवस्था प्राचीन भारतीय ढग की थी। उसे पुरातन बर्मी ढग की भी कह सकते हैं। घर मे बैठने के लिए सोफे और कुर्सिया थी, लेकिन हम लोगो की गोष्ठी दरी पर बिछे कालीनो पर बैठकर हुई।

उस दिन की बैठक मे एक ओर बर्मी लेखक बधु बैठे थे, दूसरी ओर अतिथि-लेखक तथा हिंदी साहित्य मे रुचि रखने वाले रगून के कुछ भारतीय बधु। उस दिन मुझे मन मे ऐसा लग रहा था, मानो भारतीय लेखक-जगत के प्रतिनिधि और बर्मी लेखक-जगत के प्रतिनिधि ही नही मिले हो, भारतीय और बर्मी दो सस्कृतियो का अथवा गगा और इरावदी का भी मिलन हुआ हो। मैंने यशपालजी के परिचय मे दो शब्द बोलकर उनसे कुछ कहने का अनुरोध किया। वह अपने आसन से खडे हो गए और उन्होने अपनी बात आरभ करते हुए ये शब्द कहे, "सन् १९६० मे मैं पिछली बार बर्मा आया था। इस देश के जल तथा भूमि को मैं बहुत ही आदर की दृष्टि से देखता हू। देश, भाषा और जाति की दृष्टि से हिंदी लेखक होते हुए भी मैं एक बर्मी लेखक बधु से अपने को भिन्न नही समझता हू।" यशपालजी वय मे काफी आगे बढ गए हैं, लेकिन ऐसा लगता है कि सदैव सौम्य रहने वाले मुख-मण्डल ने जरायु को ढक रखा है। वह हिंदी मे बोलते जाते थे और रगून के श्यामलाल भारती बर्मी मे अनुवाद करते जाते थे। यशपालजी ने आगे कहा

"पिछली बार जब मैं बर्मा मे आया था तो डेढ महीने यहा रहा। यहा की साहित्यिक तथा सास्कृतिक धाराओ के अध्ययन करने का सुयोग मिला। ब्रह्मदेश की प्रकृति और यहा के नर-नारियो ने मेरे मन को जीत लिया था। उसके बाद लबी अवधि हो गई फिर भी मेरे मन मे वह आकर्षण ज्यो-का-त्यो बना हुआ है। पहली बार की यात्रा के बाद बर्मा के बारे मे मैंने जो लेख लिखे, उनमे मैंने इस तथ्य पर विशेष बल दिया कि लेखक चाहे जिस किसी भी देश का हो, उसकी दृष्टि, उसके सिद्धान्त, स्वतत्र होते है। वे देश-काल की सीमा मे बधे नही होते। लेखक के मन मे सबके प्रति समत्व का भाव विद्यमान रहता है। मैंने अन्य देशो का भ्रमण किया है, आचार-विचार, रहन-सहन, भाषा आदि की भिन्नता साहित्यकारो मे पाई, किन्तु भाव-मूल पर उन सबमे अद्भुत एकता दिखाई दी। मैं बर्मी भाषा नही जानता, इसका मुझे बडा खेद है फिर भी बर्मी साहित्यिक बधुओ को मैं अपने परिवार के सदस्यो के सदृश ही समझता हू।

"साहित्यकार साहित्य तथा सस्कृति का नेतृत्व करने वाला व्यक्ति होता है। साहित्यकार अपनी रचनाओ के माध्यम से कभी पुराने न होने वाले रत्न पैदा करता है। हिंदी भाषा मे 'अक्षर' का अर्थ ही होता है वह बीज, जिसका कभी क्षर न हो अर्थात्, जो कभी समाप्त और नष्ट न हो। मनुष्य आता है, चला जाता है। जो आया है उसे जाना ही होना है, लेकिन साहित्य मे ऐसा नही है। साहित्य कभी नष्ट नही होता, साहित्य-सृजको को इसीलिए सदैव ऊचा स्थान दिया गया है।

"ब्रह्मदेश की मेरी यह यात्रा इस अभिलाषा पर आधारित है कि भारत की जनता और बर्मा की जनता के बीच अधिकाधिक सामीप्य हो।

"मैं समझता हू, बर्मी साहित्य की यह विशेषता है कि वह जिस प्रकार दूसरे देशो के साहित्य की ग्रहणीय चीजो को लेता है, उसी प्रकार दूसरो को साहित्यिक सामग्री भी प्रदान करता है। साहित्य तथा सस्कृति के माध्यम से अपनी घनिष्ठता को और बढाने के लिए साहित्यिक सेतु का निर्माण करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि दोनो देशो के साहित्यकार समय-समय पर अपने विचारो का आदान-प्रदान करें। एक भाषा के साहित्यकार दूसरी भाषा की उत्तमोत्तम रचनाओ के अनुवाद करके प्रगाढ़ भावात्मक एकता

स्थापित करें। भारत मे बर्मी साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओ के अनुवाद नही के बराबर हैं, विश्व की अन्य भाषाओ की रचनाओ के अनुवाद बडी सख्या मे उपलब्ध हैं। बर्मी साहित्य की चुनी हुई कृतियो के अनुवाद हिंदी मे हो, ऐसी मेरी हार्दिक इच्छा है। अगर हम मिल-जुलकर इस काम को करें तो इसमे हमे विशेष सफलता मिल सकती है।

"राजनीति मे उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, लेकिन साहित्य मे वैसी बात नहीं है। उसकी जडें एक बार गहरी चली जाती हैं तो उन्हे कोई उखाड नही सकता। उसमे शाश्वत तत्व होते हैं। धरती पर रेखा खींची जा सकती है, लेकिन पानी पर रेखा खींचना असभव है। दो देशो के बीच समुद्र ने हमे भौगोलिक दृष्टि से कुछ विलग किया है, फिर भी हमारे अतर मे बिलगाव नही है। हमारा एक ही उद्देश्य है, हम एक ही माता के पुत्र है।"

यशपालजी के वक्तव्य का बर्मी लेखको पर गहरा प्रभाव पडा। सबने मत्र-मुग्ध होकर उनकी बात सुनी। फिर हम सबने उनसे अनेक प्रश्न पूछे। उनके उत्तर सुने। चर्चा चल पडी। "यशपालजी, आपके यहा लेखक को पारिश्रमिक देने का क्या विधान है?"

यशपालजी ने कहा, "हमारे यहा पारिश्रमिक लेखक और प्रकाशक की आपसी सहमति से निर्धारित किया जाता है। कुछ लेखक दस प्रतिशत, कुछ पद्रह प्रतिशत, कुछ बीस-पचीस प्रतिशत रायल्टी पाते हैं। पर बीस-पचीस प्रतिशत पाने वाले लेखक बहुत कम हैं। वर्ष मे जितनी पुस्तकें बिकती है, उन पर हिसाब करके लेखक को रॉयल्टी का पैसा दे दिया जाता है। आपके यहा कितनी रॉयल्टी दी जाती है?"

बर्मी साहित्यकार बधुओ ने उत्तर दिया, "हमारे यहा भी लेखक को दस से तीस प्रतिशत तक रॉयल्टी मिलती है, लेकिन यहा पर साल भर मे बिकी पुस्तको पर हिसाब करके पारिश्रमिक देने की प्रथा नही है। पुस्तक छपते ही लेखक का हिसाब कर दिया जाता है। कुछ को तो एक बार मे ही पूरा पारिश्रमिक मिल जाता है। कुछ को दो-तीन किस्तो मे।"

"तब उन पुस्तको का क्या होता है, जो बिकती नही और प्रकाशक के गोदाम मे पडी रहती हैं? उसका भार प्रकाशक पर पडता है न!" यशपालजी ने प्रश्न किया।

बर्मी लेखको ने बताया, "पुस्तके बिके या न बिके, इसकी जिम्मेदारी लेखक पर नही होती। आखिर कागज, छपाई, जिल्दबदी आदि का पैसा प्रकाशक ही तो चुकाता है। किताबें न बिके तो इसका असर उन पर नही पडता। तब लेखक ही क्यो घाटे मे रहे?"

इस पर श्यामलाल भारती बीच मे बोले, "यहा जो पुस्तके दुकानो पर नही बिक पाती, उन्हे रास्तो पर ढेर लगाकर पुरानी पुस्तको के भाव बेच दिया जाता है।"

यह सुनकर यशपालजी को आश्चर्य-मिश्रित हर्ष हुआ। उन्होने कहा, "यह प्रथा बहुत अच्छी है, पर भारत मे नही है। अन्य किसी-किसी देश मे भी शायद ही हो।"

एक बर्मी लेखक ने कहा, "हमारे ब्रह्मदेश की यह विशेष प्रथा है। इस पर हम प्रत्येक देशवासी को गर्व होना चाहिए।"

"ब्रह्मदेश मे केवल लेखन से जीविका चलाने वाले साहित्यकारो की सख्या कितनी है?" यशपालजी ने उत्सुकता से पूछा।

उत्तर मिला, "यहा लगभग प्रत्येक असल लेखक की जीविका का साधन लेखन ही है। यहा उपस्थित आठ लेखको मे से चार ऐसे है, जिनकी लेखन से ही जीविका चल रही है।"

यशपालजी ने इस बात पर बडा सतोष व्यक्त किया कि भारतीय लेखको की अपेक्षा बर्मी लेखको की

आर्थिक स्थिति अच्छी है। उन्होंने कहा कि भारत मे मात्र लेखन से जीविकोपार्जन करने वाले लेखक इने-गिने हैं। नामी साहित्यकारो को भी लेखन के साथ कुछ काम करना पडता है।"

"यशपालजी, क्या आप नारायण, मुल्कराज आनद आदि लेखको से परिचित हैं? क्या प्रेमचद से आपका परिचय था?" बर्मी लेखक च औं ने पूछा। च औं अग्रेजी मे लिखने वाले भारतीय साहित्यकारो के बारे मे काफी जानकारी रखते हैं। उन्होने मुल्कराज आनद के 'कुली' नामक उपन्यास का बर्मी अनुवाद भी किया है। यशपालजी ने उत्तर दिया, "ये सब लेखक भारत मे बहुत लोकप्रिय हैं। प्रेमचद तो आज भी घर-घर पढ़े जाते हैं। आपको यह सुनकर खुशी होगी कि मेरी पहली कहानी प्रेमचद ने ही अपनी पत्रिका 'हस' मे छापी थी।"

बर्मी लेखक म्या ताट का परिचय मैं करा रहा था कि जिनके 'युद्ध और शाति' (से न्हे थाऊ छायू) नामक अनूदित ग्रथ की बात चल पडी। यशपालजी ने पूछा, "क्या आपने अविकल अनुवाद किया है या पुस्तक को सक्षिप्त कर दिया है? पूरी पुस्तक तो बहुत बडी है।"

अनुवादक ने उत्तर दिया, "मैंने सक्षिप्त नही किया।"

भारतीय लेखक और बर्मी लेखको की बातचीत गहरी हार्दिकता तथा सद्भावना से ओतप्रोत थी। समय की कमी के कारण इच्छा न होते हुए भी एक-दूसरे से विदा लेनी पडी।

यशपालजी का अगला प्रश्न था, "एक सस्करण बिकने मे कितना समय लग जाता है?"

"यह पुस्तक-पुस्तक पर निभर करता है," एक बर्मी लेखक ने कहा, "वार एण्ड पीस' के अनुवाद के बिकने मे कोई डेढ़ वर्ष समय लग गया।"

यशपालजी के लिए यह भी सुखद आश्चर्य था।

को ता न्हाइ (वे मो वे) के परिचय की बारी आई तो मैंने कहा, "यह 'मोवे' पत्रिका के सपादक हैं।"

यशपालजी ने पूछा, "आपकी पत्रिका कब से निकल रही है? कितनी प्रतिया छापते है?"

प्रतिया बताते हुए उन्हे सकोच हुआ, क्योकि प्रतिया कम छपती थी। साढे तीन-चार हजार की सख्या बताने पर कही पत्रिका के प्रति हीनभावना पैदा न हो जाय, इसलिए वे चुप रहे। यशपालजी उनकी मन स्थिति ताड गए। बोले, "हम लोग भी गाधी विचारधारा की एक पत्रिका निकालते है 'जीवन साहित्य'। उसकी तो और भी कम प्रतिया छपती है। पाठक सलाह देते है कि हलकी-फुलकी कहानिया और कविताए छापो तो पत्र का प्रसार बढ जाएगा। लेकिन हम अपने सिद्धात मे कोई परिवर्तन नही कर सकते। विचार-पूर्ण रचनाए छापते है। यह पत्रिका विगत ३८ वर्षों से निकल रही है।"

भारतीय लेखक और बर्मी लेखको की बातचीत गहरी हार्दिकता तथा सद्भावना से ओतप्रोत थी। दोनो ओर से निस्सकोच प्रश्न किए गए और उत्तर दिए गए। समय कम था। यशपालजी को किसी दूसरे कार्यक्रम मे जाना था। अत न चाहते हुए भी हमे अपनी चर्चाए समाप्त करनी पडी इच्छा न होते हुए भी एक-दूसरे से विदा लेनी पडी।

यशपालजी बर्मा मे केवल एक सप्ताह रहकर अपने देश वापस चले गए। वहा जाकर उनका एक लेख 'ब्रह्मदेश मे सात दिन' 'नवभारत टाइम्स' के २८ मई, १९७८ के अक मे प्रकाशित हुआ। उस लेख का उपसहार इस प्रकार था

"बर्मा एक धर्मनिष्ठ देश है। बर्मा के नर-नारी बहुत ही मिलनसार हैं। उनमे लालच-लोभ नही है। दैनिक आवश्यकता की चीजो की कठिनाइया हैं, फिर भी चीजो के सचय की वृत्ति मैंने उनमे नही पाई। उनका रहन-सहन बडा कलात्मक है। मोहक परिधान, दान-वृत्ति आदि पहले की तरह ही हैं। धार्मिक और

सांस्कृतिक समारोह वे अब भी उत्साह से मनाते हैं। ब्रह्मदेश मे पुरुषो मे ६४ प्रतिशत और स्त्रियो मे ६६ प्रतिशत साक्षर हैं, यह मेरे लिए बहुत ही उत्साहप्रद और आश्चर्यजनक बात थी। उनकी इस व्यापक साक्षरता के कारण ही बर्मी साहित्य बहुत विकसित हुआ है। ऐसी अवस्था मे बर्मी लेखक यदि केवल लेखन से अपनी जीविका चलाते हैं तो यह कोई आश्चर्य की बात नही हो सकती।

"ब्रह्मदेश के स्त्री-पुरुषो का जीवन सादा है। रहन-सहन सरल है। लेकिन उनका जीवन नीरस नहीं है। स्त्री-पुरुष सभी सुन्दर और सुरुचिपूर्ण वस्त्र पहनते हैं। उनके घरो की साज-सज्जा बडी ही कलात्मक होती है।

"मुझे ब्रह्मदेश मे केवल एक सप्ताह रहने का अवसर मिला। वे सात दिन कैसे निकल गए, पता ही नही चला। ब्रह्मदेशवासियो की बधुत्व-भावना, उनका प्रेम, उनकी मिलनसारिता, उस भूमि का प्राकृतिक सौदर्य, धर्म और सस्कृति के प्रति वहा के निवासियो का अनुराग, दृष्टिकोण, साहित्यिक अभिरुचि—इन सारी चीजो के चित्र आज भी याद करके मैं पुलकित हो जाता हू। मुझे लगता है, ब्रह्मदेश मुझे हाथ हिला-हिलाकर फिर अपनी ओर बुला रहा है।"

यशपालजी, आपका यह कहना सत्य है। हम आपको मुक्त हृदय से बुला रहे हैं। मान्यवर यशपालजी, आप फिर एक बार यहा पधारने की कृपा कीजिए।

दूर-पास से

राम प्रसाद यादव

□□

श्री यशपाल जैन तिजान (होली) के अवसर पर रगून आए। कलकत्ता मे ही मौसम की प्रतिकूलता से उनका गला बैठ गया था। रगून पहुचे तो बडी मुश्किल से बोल पा रहे थे। रगून मे बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान डा ओमप्रकाश के यहा ठहरे। रंगून के हिन्दी-प्रेमी लोगो का उनसे मिलने के लिए ताता-सा लग गया। कई बैठके औपचारिक तथा अनौपचारिक हुई। श्री जैन की इच्छा थी कि जियावडी, चौटगा तथा अन्य उन स्थानो का भ्रमण करते, जहा हिन्दी-प्रेमी लोग बडी सख्या मे बसते हैं, लेकिन कई कारणो से यह सभव नही हो सका। हमे लगा, यशपालजी इस बार रगून मे बैठे-बैठे ऊब जाएगे और इनकी इस यात्रा से बर्मा-वासी हिन्दी प्रेमियो को जितना चाहिए था, उतना लाभ नही मिल सकेगा, लेकिन एक के बाद दूसरा कार्यक्रम बनता गया और बाद मे ऐसा प्रतीत हुआ कि एक सप्ताह का समय तो बहुत कम था।

यशपालजी की तबियत पूरी तरह ठीक नही हुई थी, लेकिन बाहर पानी-खेल के मस्तानो को देखकर इनका दिल बाहर निकलने को हुआ। फिर क्या था! कैमरा हाथ मे लिया और चल पडे। साथ मे मैं भी हो

लिया। पानो-खेल के अनेको मण्डपो को घूम-घूमकर हमने देखा और यशपालजी ने जलोत्सव की मस्ती मे उन्माद भरी कई टोलियो के चित्र उतारे। अपने पिछले प्रवास मे भी वह जलोत्सव का आनद ले चुके थे।

एक अनौपचारिक बैठक मे साहित्यिक चर्चा चल रही थी तो यशपालजी ने कहा, "क्या ही अच्छा होता यदि यहा के कुछ विद्वान एकजुट होकर बर्मा साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओ का अनुवाद हिन्दी मे करते, जिन्हे भारत मे हिन्दी पाठको तक पहुचाया जाता और बर्मी पाठको की रुचि के अनुकूल हिन्दी रचनाओ का अनुवाद बर्मी भाषा मे किया जाता। इससे दोनो देशो के साहित्यिक तथा भावनात्मक स्तर पर मैत्री का उत्तरोत्तर विकास होता।" सभी लोगो को यह विचार अच्छा लगा। इस सबध मे यशपालजी ने हिन्दी पुस्तको के सुविख्यात बर्मी अनुवादकर्ता ऊल्हा चाई (ऊ पारगू) के माध्यम से कई बर्मी लेखको से भेंट की। बडी आत्मीय तथा सद्भावनापूर्ण विचार-गोष्ठी हुई। रगून के हिन्दी के कुछ विद्वान, जो बर्मी-भाषा पर भी समान अधिकार रखते हैं, श्री जैन के इस प्रेरणाप्रद विचार से प्रेरित हुए है और भविष्य मे इस दिशा मे कुछ काम होने की आशा की जा सकती है।

श्री यशपाल जैन ने इन सात दिनो मे बारह धार्मिक और साहित्यिक सभाओ मे प्रवचन किया। बर्मी नव-वर्ष दिवस पर स्वेटिगो पगोडा के दर्शन किए। बो, जौ, औ, सा तथा अन्य शहीदो के स्मारक पर फूल चढाये। भारत के अन्तिम सम्राट बहादुर शाह जफर की मजार पर गए और अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की। रगून के कई पगोडाओ के दर्शन किए। गाधी मेमोरियल ट्रस्ट मे एक सभा को सबोधित किया। रगून-स्थित उ बा खिन साधना-केन्द्र मे गए वहा सयामा ड म्या त्वे से मिले और एक घण्टे विपश्यना भी की।

अब आपके सम्मुख श्री यशपाल जैन से हुए वार्तालाप के कुछ अश प्रस्तुत है। इसमे आप श्री जैन की ऐसी कई निजी बाते पाएगे, जो शायद ही एक साथ अन्यत्र मिल सकेगी। हिन्दी के यशस्वी लेखक श्री यशपाल जैन गत १५ अप्रैल, १६७८ को सात दिनो की यात्रा पर रगून आए। वह हिन्दी के लेखको मे अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। इन्होने अपनी रचनाओ मे मानवीय मूल्यो की स्थापना की है। एक ओर जहा सनातन मल्यो को प्रतिष्ठित किया है, वही वर्तमान की समस्याओ पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है।

इनकी रचनाओ, विशेषकर कहानियो का पटल बडा व्यापक है। इनकी कृतियो मे पाठको को विभिन्न रसो के आस्वादन का अवसर मिलता है। उन्हे पढते-पढते पाठक विभोर हो उठता है।

यशपालजी की भाषा सरल, सुबोध तथा प्राजल है, शैली ओजपूर्ण है। इनकी रचनाओ को पढते समय आपको लगेगा कि आप लेखक की रचना नही पढ रहे है, बल्कि उससे बातचीत कर रहे है। श्री जैन की रचनाओ मे आपको बडी स्वस्थ मानसिक खुराक मिलेगी, उन रचनाओ मे आप अपनी किसी-न-किसी अनुभूति का स्पन्दन सुनेगे। एक बात और है। श्री जैन की रचनाए पढने के बाद पाठक सोचने के लिए विवश हो जाता है। इससे बडी सफलता लेखक की और क्या हो सकती है!

यशपालजी का जन्म १ सितम्बर, १६१२ को विजयगढ, जिला अलीगढ (उत्तर प्रदेश, भारत) मे हुआ। इनकी माताजी का नाम श्रीमती लक्ष्मीदेवी था। वे अत्यन्त धार्मिक एव मानवीय मूल्यो की उपासिका थी। ८० वर्ष की अवस्था मे उनका सन् १६६६ मे देहान्त हो गया। श्री यशपालजी का कथन है, "अपने निर्माण मे मैं उनका (माताजी का) विशेष योगदान मानता हू।"

पिता श्री श्यामलालजी जैन बडे ही तेजस्वी स्वभाव के व्यक्ति थे। किसी से दबना तो वे जानते ही नही थे। "निर्भीकता का गुण मैंने पिताजी से पाया है।" यशपालजी कहते है।

एक प्रश्न के जवाब मे उन्होने बतलाया, "हम पाच भाई है। सभी भाइयो के अपने परिवार है। एक बहन भी थी, जिनका देहान्त हो गया।"

यशपालजी की प्रारंभिक शिक्षा अलीगढ़ मे हुई। अनन्तर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सन् १६३५ मे बी ए और सन् १६३७ मे कानून की पढ़ाई पूरी की।

लिखने का व्यसन विद्यार्थी-काल से ही था। सन् १६३० से लेखन आरभ किया। तब इनकी रचनाए उस समय के प्रमुख पत्रो मे छपती थी। एक प्रश्न के उत्तर मे यशपालजी ने कहा, "नही, मैंने कानून की पढ़ाई तो की, लेकिन कानून की परीक्षा पास करने के बाद सीधे लेखन के क्षेत्र मे आ गया। वकालत नही की।"

मेरे एक प्रश्न का उत्तर देते हुए यशपालजी ने मुस्कराकर कहा, "सन् १६४२ मे ३० वर्ष की अवस्था मे अलीगढ-निवासी श्री कामताप्रसाद एडवोकेट (डिप्टी कलक्टर) की पुत्री श्रीमती आदर्शकुमारी के साथ अन्तरजातीय विवाह हुआ।" स्वभावत मेरा दूसरा प्रश्न सामने था और यशपालजी ने बडी आत्मीयता से उत्तर दिया, "जिस समय विवाह हुआ, मेरी पत्नी इण्टर सी टी कर चुकी थी।" मैंने कहा, "तब तो आगे पढने की सुविधा भी प्रदान की होगी?" इस पर यशपालजी कुछ रुककर बोले, "दिल तो था, पर ऐसा शीघ्र ही नही हो सका। पर जहा चाह वहा राह। मेरी पत्नी का पढाई की ओर ध्यान था। उच्च शिक्षा पाने के अपने मोह को वे दिन-पर-दिन सबल पाती गयी। लिखने-पढने मे मेरी सदैव सहायता करती ही थी। अत मे वह दिन भी आ गया जब सन् १६५८ मे आदर्शकुमारी ने दिल्ली विश्वविद्यालय से बी ए आनर्स प्रथम श्रेणी मे उत्तीण किया। द्वितीय स्थान प्राप्त किया। उनका उत्साह बढ गया और सन् १६६० मे वही से एम ए प्रथम श्रेणी, द्वितीय स्थान पाकर उत्तीर्ण हुई। डेनमाक की सरकार ने उन्हे 'फैलोशिप' दी। आठ महीने डेनमाक मे रहकर दिल्ली लौट आईं।"

मेरे अगले प्रश्न के जवाब मे श्री जैन ने कहा, "आदर्श कुमारी ने स्वय भी कई पुस्तकें लिखी है और कई का अनुवाद किया है। सम्प्रनि वे दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्तगत कालिन्दी कालेज मे हिन्दी विभाग की प्राध्यापिका है।"

मैने कहा, "यशपालजी, बच्चे भी भारतीय परिवार-नियोजन की नीति की सीमा मे ही होगे।"

वे हस पडे। बोले, बिलकुल, बिलकुल। हमारे केवल दो बच्चे हैं। बडी पुत्री सन् १६४३ मे और छोटा बेटा सन १६५५ मे पैदा हुए। पुत्री सी अन्नदा पाटनी बी ए आनर्स है। अनुवादकला मे प्रवीण है। अच्छी लेखिका है। कहानी, कविता लिखती है। सजना' नाम की एक पत्रिका निकालती है। बेटी मेरी साहित्यिक उत्तराधिकारी है। पुत्र सुधीर कुमार जैन पिलाने से मेकैनिकल इजीनियर हुआ है। सन् १६६६ मे जर्मनी गया और वहा लगभग दो वष रहकर सन् १६६८ से कैनेडा मे है और सपरिवार वही बस गया है।" मेरी कई जिज्ञासाओ के उत्तर तो यशपालजी से प्रश्न पूछू, इसके पहले ही दे चुके थे।

राहुल साकृत्यायन और डा रघुवीर के बाद श्री यशपाल जैन पहले लेखक हैं, जिन्होने भारत और विश्व का सबसे अधिक भ्रमण किया है। मेरे एक प्रश्न के जवाब मे श्री जैन ने बडी सरलता से कहा, "मुझे बचपन से ही पर्यटन का शौक रहा है। पूरे भारतवष की कई बार परिक्रमा कर चुका हू, ससार के लगभग ४० देशो मे घूमा हू।"

मेरे अगले सवाल के जवाब मे उन्होने कहा, "भ्रमण ने मेरे हृदय मे कला और प्रकृति के लिए विशेष प्रेम उत्पन्न किया है।"

मैन कहा, "आपकी रचनाओ मे इतनी सारी सवेदनशीलता है और आप कला और प्रकृति को ही विशेष महत्त्व दे रहे हैं!"

उन्होने टोका, "नही, मैं कला के लिए कला का उपासक नही हू। मेरी कला जीवन के लिए है। कला

को मैं जीवन के सदर्भ मे देखता हू। जिस कला को देखकर जीवन मे उत्कर्ष की भावना पैदा हो, उसे मैं बहुत आदर देता हू। मेरा विश्वास मानवीय मूल्यो मे है।"

मैंने पूछा, "यशपालजी, आपने अनेक देशो का भ्रमण किया है। विभिन्न भाषाओ, धर्मों और राष्ट्रीय आस्थाओ के लोगो से मिले हैं। इस समूची यात्रा मे सर्वोपरि महत्त्व की कौन-सी चीज आपको दिखाई दी है?"

बहुत ही प्रसन्न होकर उन्होने कहा, "हा, ठीक पूछा आपने, मैं मानता हू कि भाषा, धर्म, राष्ट्रीयता आदि सब मनुष्य-निर्मित है। अत कृत्रिम हैं। समूची मनुष्य-जाति की आशाए और आकाक्षाए एक हैं। इसलिए हमे अनेकता मे एकता साधित करने का प्रयत्न करना चाहिए।"

श्री यशपालजी ने आगे बतलाया कि उनको प्रथम रचना मुशी प्रेमचद की 'हस' नामक पत्रिका मे छपी थी। 'नवप्रसून' एक कहानी-सग्रह सन् १९३८ मे निकला, जो कई वर्षों तक मैट्रिक के पाठ्यक्रम मे रहा।

श्री यशपाल जैन की मानव-मूल्यो मे गहरी आस्था है। यही आस्था इनके साहित्य मे मुखरित हुई है। कविताए, गद्यगीत, कहानिया, एकाकी, नाटक, निबध, रेडियो रूपक, यात्रा-वृत्तान्त बहुत-कुछ उन्होने लिखा है, और पुस्तको के रूप मे प्रकाशित हुआ है। 'रूस मे छियालीस दिन' पुस्तक पर सन् १९६६ मे और 'सेतु निर्माता' पुस्तक पर सन् १९७७ मे 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' दो बार प्राप्त हो चुका है। इनकी अन्य कई रचनाओ को भारत की राज्य सरकारो ने पुरस्कृत किया है। मौलिक लेखन के साथ-साथ सपादन तथा अनुवाद-कला मे भी श्री यशपाल जैन सिद्धहस्त हैं। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग (इलाहाबाद) ने इन्हे 'विद्या वारिधि' की उपाधि से सम्मानित किया है।

श्री यशपाल जैन आकाशवाणी और दूरदर्शन के माध्यम से अपनी रचनाओ को समय-समय पर प्रसारित करते है। 'धर्मयुग' मे बाल-जगत स्तभ के लिए बोध-कथाए लिखते रहते है।

श्री यशपालजी तथा श्री विष्णु प्रभाकरजी १७ वष पूव बर्मा आए थे। डेढ माह यहा रहकर इस देश के अनेक स्थानो का इन्होने भ्रमण किया। तखिन कोड म्याऊ पर लिखा श्री जैन का लेख बहुत सवेदनापूण बन पडा है। तब यशपालजी कुल ४८ वष के थे। जवान थे। सिर के बाल काले थे। अब वे ७२ वष के है। सिर पर सफेद बाल, वे भी सामने से पीछे की ओर हट गए हैं, चमकता हुआ भाल विशाल है तथा आकृति अति सौम्य और लुभावनी है। व्यक्तित्व इतना ऊचा है, पर बिलकुल सरल। अनुभव और विद्वत्ता की गरिमा ने मुखमण्डल को और भी गौरवशाली बना दिया है। प्रथम बार के परिचय मे ही आप अनुभव करेंगे कि यशपालजी जैन आपके आत्मीय जना मे से है। खादी की सफेद धोती, खादी का ही कुर्ता, ऊपर से सादी-सी जवाहर जाकेट ५ फुट ४ इच के स्वस्थ और गौरवण शरीर पर अच्छे लगते है।

श्री यशपालजी अनेक साहित्यिक, सास्कृतिक तथा सामाजिक सस्थाओ के अध्यक्ष है। सस्ता साहित्य मडल के मत्री है। 'जीवन-साहित्य' के सन् १९४६ से सम्पादक है। श्री जैन ने सैकडो पुस्तको का सम्पादन किया है।

बातचीत करने मे सेक्स साहित्य की बात चल पडी तो उन्होने कहा, "इस साहित्य के पाठक अधिकाशत टीन एजर (१३-१९ वष की अवस्था के) होते है। ऐसा साहित्य मानस को खुराक नही देता, बल्कि मानस मे उत्तेजना पैदा करता है। ऐसा साहित्य दीर्घजीवी नही हुआ करता।"

नयी ढग की रचनाओ के बारे मे अपना विचार प्रकट करते हुए उन्होने उत्तर दिया, "अति से बचकर की गई रचनाए पोषक तथा टिकाऊ होती हैं।"

श्री यशपालजी ने सात दिनो के अपने रंगून-वास मे कई धार्मिक और साहित्यिक सभाओं मे भाषण किए। धर्म और सदाचार के बारे में वह पूर्णतया गांधीवादी हैं। वे आत्म-शुद्धि और मन को प्रौढ़ बनाने के पक्षपाती हैं। मन को बाह्य दबावो द्वारा बस मे करने के विरोध मे अपना विचार दृष्टान्त सहित प्रस्तुत किया। जीवन मे सरलता और सहजता आए, द्वेष और ईर्ष्या से रहित जीवन बन सके, इसका प्रयत्न करना हर मनुष्य का कर्तव्य है। किसी भी कार्य या घटना के लिए प्रभु या परिस्थिति या अन्य किसी को दोषी ठहराने के विरोध मे उन्होने तकयुक्त विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने बतलाया, व्यक्ति जब तक अपनी जिम्मेदारी को नही समझेगा तथा मन मे बैठे विषमता के भाव को नही निकालेगा, तब तक पूरा मनुष्य-समाज दु ख, स्वार्थ और क्षोभ मे तपता रहेगा।

श्री यशपाल जैन की अब तक मौलिक, अनूदित तथा सम्पादित लगभग ३०० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जैनजी अभी भी लिखते जा रहे हैं। ईश्वर इन्हें दीर्घायु करे। हिन्दी के भण्डार को और अधिक समृद्ध करने मे इनका योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा।

मारीशस-प्रवास

सोमदत्त बखोरी

□□

श्री यशपाल जैन दो बार मारीशस आए, १९६५ मे और १९७६ मे। उनका प्रथम प्रवास इतना महत्वपूण सिद्ध हुआ कि मैं उसी पर बल देना चाहता हू। १९७६ मे वह अपनी पत्नी आदर्श कुमारीजी के साथ द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन मे भाग लेने आए थे।

याद रहे कि जब जैनजी पहली बार मारीशस आए थे तो मारीशस स्वतत्र नही हुआ था, पर स्वतत्रता की ओर जरूर बढ रहा था। उस समय मैं उनको नही जानता था, नाम से भी नही। मारीशस और भारत का सबध हरदम से गाढा रहा है और समय-समय पर तरह-तरह के लोग आते रहे हैं पर जहा तक मैं जानता हू, उन आने वालो मे जैनजी प्रथम आधुनिक हिन्दी लेखक थे। उनके आने के कुछ ही समय बाद रामधारीसिंह दिनकरजी और शिवमगल सुमनजी आने वाले थे, पर उनसे पहले न जाने क्यो, कोई लेखक नही आया था।

श्री यशपाल जैन मगलवार, १६ फरवरी, १९६५ को मारीशस पहुचे और शुक्रवार ता ५ मार्च को यहा से रवाना हुए। जब तक यहा रहे, यहा की स्थिति से परिचित होने की कोशिश की। उनका झुकाव सास्कृतिक बातो की ओर अधिक था। हिन्दी से सबधित लोगो और सस्थाओ की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुए थे।

यशपालजी रोजहिल नामक शहर मे एक परिवार के यहा ठहरे हुए थे। उनसे मेरी भेंट उनके यहां आने के दूसरे ही दिन हुई। और दो-चार हिन्दी प्रेमी उपस्थित थे। पहली ही मुलाकात मे वह हमसे एकदम घुलमिल गए थे। लगता था हमारे चिरपरिचित है। उनकी भारतीय वेष-भूषा और उनकी सादगी उल्लेखनीय थी। लॉन मे बैठे बातचीत हो रही थी। उनके सहवास मे हम भूल से गए थे कि मारीशस मे हैं। हमारे बीच बैठे-बैठे यशपालजी हमे भारत मे होने का आभास दे रहे थे।

शुक्रवार, १६ फरवरी की शाम को मोताईं लोग गाव मे स्थित हिन्दी भवन गए, जो हिन्दी प्रचारिणी सभा का केन्द्र है। तब सभा के प्रधान श्री जयराम राय और मत्री श्री सूर्यप्रसाद मगर भगत थे। मैं उपप्रधान था। सभा की देखरेख मे मारीशस भर मे प्राथमिक हिन्दी पाठशालाए चल रही थी। माध्यमिक शिक्षा का भी प्रबध हो गया था और इलाहाबाद के हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा परीक्षाए भी होती थी। यशपालजी का वहा जाना बिलकुल उचित था, क्योकि वहा जाने से उनका हिन्दी के प्रचार-प्रसार की एक अच्छी झाकी मिल गई थी।

दूसरे दिन शनिवार २० फरवरी को क्यूर्पिप नामक शहर मे उनका स्वागत था। इस स्वागत का आयोजन हिन्दी प्रचारिणी सभा द्वारा रायजी के कालेज (क्यूर्पिप कालेज) मे हुआ था। काफी लोग उपस्थित थे। औपचारिकता न होकर आत्मीयता थी। उस दिन मेरा भी भाषण हुआ था। मैंने उनका स्वागत समस्त भारतीय सस्कृति से प्रेम करने वालो की ओर से किया था। मारीशस और भारत के बीच आदान-प्रदान की आवश्यकता पर जोर दिया था और कहा था कि जैनजी एक कडी का काम कर सकते हैं। अपनी खुशी जाहिर करते हुए मैंने कहा था कि लेखक को लेखक से मिलकर उसी तरह से खुशी हुई जिस तरह शराबी को शराबी से मिलकर और गजेडी को गजेडी से मिलकर होती है। इस अवसर पर यशपालजी मुक्त भाव से बोले और उन्होने भारत तथा मारीशस के बीच सास्कृतिक तथा साहित्यिक सेतु निर्माण करने पर बल दिया।

बो बासे नामक शहर की 'त्रिवेणी' नामक सस्था मे मैं अप्रैल, १९६४ से एक हिन्दी क्लास चला रहा था। पढाई मगलवार को आठ बजे रात मे शुरू होती थी। यशपालजी क्लास देखने आए थे और देखकर दग रह गए थे। क्यो ? इसलिए कि खासकर डाक्टर, बैरिस्टर या दूसरे पेशेवर तथा उच्च सरकारी कर्मचारी पढने आते थे। कुछ पति अपनी पत्नी को साथ लाते थे और इनम श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ भी थे, जो आगे चलकर हमारे प्रधानमत्री बनने वाले थे। और कुछ लोग अपने बडे बच्चो को साथ लाते थे। इस क्लास को देखकर यशपालजी को इस बात का पता मिल गया था कि यहा के लोगो के दिल मे हिन्दी के लिए कितना अगाध-प्रेम है। एक शाम इन छात्रो की ओर से त्रिवेणी' मे यशपालजी के सम्मान मे एक स्वागत-समारोह का आयोजन भी हुआ था।

बृहस्पतिवार ता २५ फरवरी की रात म राजधानी पोर्ट लुई मे यशपालजी को पोट लुई हिन्दी परिषद की ओर से आयोजित एक समारोह मे भाग लेने का अवसर मिला। परिषद की नीव १९६३ मे डाली गई थी और मैं उसका प्रधान था। परिषद का ध्येय था हिन्दी जानने वाल लोगो को एक सूत्र मे बाधकर उनसे साहित्य-सृजन कराना। यशपालजी का स्वागत मैंने एक सास्कृतिक दूत के रूप मे किया था और कहा था कि हिन्दी साहित्य के इतिहास मे एक विशेष अध्याय भारत से बाहर वालो पर होना चाहिए। सदस्यो और सदस्याओ ने स्वरचित निबध, कहानी और कविता सुनाई थी। एक प्रहसन का मचन हुआ था। अत मे श्री जयनारायण राय और यशपालजी के भाषण हुए थे। उस रात यशपालजी को यह देखने का अच्छा अवसर मिला कि किस तरह हम भाषा के क्षेत्र से निकलकर साहित्य के क्षेत्र की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

शनिवार, ता २७ फरवरी को दिन के दस बजे यशपालजी बो बासे मे स्थित प्रशिक्षण महाविद्यालय

देखने गए। वहां पर वह उन लोगो से मिले, जो हिन्दी अध्यापक बनने के लिए प्रशिक्षण पा रहे थे। उस समय प्रशिक्षण का भार प्रो रामप्रकाश सभाल रहे थे। सरकारी पाठशालाओ मे प्राथमिक स्तर पर पढ़ाने के लिए प्रशिक्षण दिया जा रहा था। यशपालजी उस दिन देख सके कि हिन्दी की सुचारु पढ़ाई के लिए कितनी अच्छी व्यवस्था है।

यशपालजी हमारे बीच कोई एक ही सप्ताह रहकर चले जाने वाले थे, पर शिवरात्रि के लिए रुक गए थे। शिवरात्रि सोमवार, २ मार्च को पडी थी। मारीशस मे शिवरात्रि बहुत ही धूमधाम से मनाई जाती है, उसे देखे बिना वह कैसे जा सकते थे? देश के कोने-कोने से लोग सफेद वस्त्र धारण किए शिवालयो मे पूजा करने के लिए परी तालाब, जो अब गगा तालाब के नाम से भी जाना जाता है, जल लेने जाते हैं। कावरियो के जुलूस देखने योग्य होते हैं। परी तालाब पर यात्रियो की विशाल सभा मे यशपालजी का भाषण हुआ था और वह जुलूस मे शामिल हुए थे। हमारी शिवरात्रि से यशपालजी बहुत ही प्रभावित हुए थे।

एक दिन यशपालजी प वासुदेव विष्णुदयालजी से मिलने गए। मैं भी उनके साथ था। विष्णुदयालजी से मिले बिना यशपालजी का सास्कृतिक दौरा पूरा नही हो सकता था। राजधानी पोर्ट-लुई की एक सुनसान गली मे लकडी का एक मकान। यही उनका घर है, यही साधक की कुटिया है। विष्णुदयालजी अपने आप मे एक सस्था रहे है। १९३९ के अत मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम ए करके लौटे और तभी से धर्म, सस्कृति भाषा और साहित्य के क्षेत्रो मे सक्रिय रहे। उन्होने कही नौकरी नही की, देश और जाति को अपना जीवन समर्पित कर दिया। यशपालजी और उनके बीच खूब बाते हुई और मैंने देखा कि दोनो-के-दोनो ने एक दूसरे पर अच्छा प्रभाव डाला।

देश छोडने से पहले यशपालजी ने विष्णुदयालजी पर मुझसे एक लेख लिखने का आग्रह किया था और मैंने लेख लिखकर उनको भेज दिया था। यह लेख 'मारीशस मे हिन्दी के प्राण—प वासुदेव विष्णुदयाल' शीषक से १२ सितम्बर, १९६५ के साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के राष्ट्रभाषा विशेषाक मे छपा था।

अपने प्रवास-काल मे यशपालजी आर्य समाज के सम्पर्क मे भी आए और रेडियो टेलीविजन पर भी गए। पर सब कुछ करते हुए उन्होने एक ऐसा काम भी किया, जिसको हिन्दी-प्रेमी कभी नही भूलेंगे। उन्होने मारीशस के लिए एक पुस्तक-योजना बनाई थी जिसके अनुसार केवल डाक खर्च देकर यहा के पुस्तकालयो के लिए हिन्दी पुस्तको के सेट मगाए जा सकते थे। आगे चलकर वह लगभग १२५ सेट भेजने वाले थे।

जब तक यशपालजी यहा रहे, वह अपने समय का बहुत ही अच्छे ढग से उपयोग करते रहे। यहा की सास्कृतिक और धार्मिक गतिविधियो से प्रभावित तो हुए ही, पर मुझे कोई सदेह नही कि वह हमारे देश और हमारे देशवासियो से भी कम प्रभावित नही हुए।

हमारे देश को देखने के लिए न जाने कहा-कहा से लोग आते है। वह अफ्रीकी क्षेत्र मे होते हुए भी अफ्रीका नही है, बल्कि गागर मे सागर रूपी ससार है। इसीलिए मैं कहता हू कि मारीशस छोटा भारत ही नही छोटा भारत भी है। बहु-धर्मी और बहु-भाषी होने के साथ-साथ मारीशस अपनी प्राकृतिक छटा के लिए प्रसिद्ध है।

एक देश अपने निवासियो से भी बनता है। यहा आने पर भारतीयो को जिस बात से सबसे अधिक खुशी होती है वह यह है कि भारतीय मूल के लोगो मे अभी तक भारतीयता विद्यमान है। इससे उनको तुरत एक सुखद अपनेपन का अनुभव होने लगता है।

यशपालजी ने पूरे द्वीप का चक्कर लगाया था। क्या वह इन सभी बातो से अछूते रह सकते थे? वह जब यहा से गए तो अपने प्रवास की मधुर स्मृतियो को अपने हृदय मे सजोए हुए गए। ये ऐसी स्मृतिया थी,

जो आगे चलकर हमारे बीच सेतु का काम करती रही। इन स्मृतियो के कारण यशपालजी आज भी हमसे जुड़े हुए हैं, और जहा तक हमारी बात है, हम भी अपने को उनके अति निकट पाते हैं।

यशपालजी जब यहा से ५ मार्च, १९६५ को विमान द्वारा रवाना हुए तो उनको फीजी जाना था। फीजी से उन्होंने मुझे १५ मार्च को एक पत्र लिखा था, जिसमे और बातो के अलावा उन्होने यह कहा था, "मारीशस मे आप सब बधुओ ने मेरे लिए जो कुछ किया, उसे मैं कभी भूल नही सकता। आप लोगो ने न केवल मेरी सुविधाओ का ध्यान रखा, अपितु मेरे समय का उपयोग भी कराया। मारीशस की मेरे मन पर जो छाप पड़ी है, उसमे आप सबका निस्सदेह बड़ा हाथ है, कृपा करके मेरा आभार स्वीकार करें और भविष्य मे ऐसा ही स्नेह बनाए रखे।"

इस पत्र का उत्तर मैंने ५ मई को दिया था और मेरे पत्र के उत्तर मे उन्होने २६ मई को यह लिखा, "आपका ५ मई का स्नेहपूर्ण पत्र मिला। चित्र भी। चित्रो को देखकर मारीशस के बहुत से चित्र सामने आ गए। मेरी यात्रा वास्तव मे बहुत उपयोगी और महत्वपूर्ण रही। मुझे स्वय उससे बहुत लाभ हुआ। प्रवास पर एक लेखमाला 'नवभारत टाइम्स' मे चालू कर रहा हू। अवसर मिले तो पढिएगा।" अपनी ओर से मैं इतना जोड़ दू कि उन्होने दिल्ली की आकाशवाणी और दूरदर्शन के सहारे भी मारीशस की चर्चा की थी। लेख-माला तो लिखी ही थी।

१४ जून को यशपालजी को लिखते हुए मैंने अनेक बातो की चर्चा की थी, जैसे "आपकी यात्र के सुखद सस्मरणो मे मारीशस का जो स्थान है, वह हमारे लिए गर्व और हर्ष का विषय है। मुझे तो ऐसा लगता है कि आप प्रवासियो के लिए भारतीय सास्कृतिक प्रतिनिधि के रूप मे स्वीकार कर लिये गए हैं। आप जैसे लोगो से जो कुछ हो सकेगा, शायद सरकारी स्तर पर वैसा न हो पाए। प विष्णुदयाल के सबध मे आपने जो लेख भेजने का आग्रह किया था, उसे आज भेज रहा हू। पत्रो मे पुस्तकालय योजना के नाम से सूचनाए छप गई हैं। लोग योजना मे दिलचस्पी ले रहे हैं। अपनी पुस्तक Hindi in Mauritius मे आपके आगमन का भी मैंने उल्लेख किया है।"

Hindi in Mauritius का प्रकाशन १९६७ मे हुआ। जैनजी के बारे मे मैंने उसमे यह लिखा है

"In February, 1965 Mauritius was forturate enough to receive the visit of Mr Yashpal Jain, a Hindi writer and Journalist from India Mr Jain stayed only for a fortnight but his visit became a memorable one He had called here while he was on a tour as a literary and cutlural ambassador of India Mr Jain left a good impression behind and carried with him first hand experience of our small Hindi world What is more, he helped in establishing valuable contacts between his country and ours "

मेरे अलावा प विष्णुदयाल ने भी यशपालजी के आगमन पर लिखा। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' मे उनके बारे मे लेख छप जाने पर, २४ दिसम्बर, १९६५ को अपने पत्र 'जमाना' मे उन्होने एक लेख प्रकाशित किया था जिसका शीर्षक था 'प्रवास की सुध ली जाने लगी'। इस लेख मे, और बातो के अलावा, उन्होने यह लिखा

"हम शिवरात्रि मना रहे थे, जब श्री यशपाल जैन का पदार्पण हुआ था। वे जब तक यहा ठहरे, हम जान न सके कि उनका आगमन किस महत्व का था।

"यहा से वे अन्य देशो मे पहुचे, जिनमे फीजी द्वीप भी है।

"वे दिल्ली लौटे और हमे उत्तमोत्तम ग्रथ दान मे दिलवाने मे सफल हुए। इसी साल मे वे किताबें आईं। स्थानीय हिन्दी प्रचारिणी सभा ने उचित ढंग से वितरण किया। ऐसे कार्य मे सावधानी होनी चाहिए।

"लगता है कि श्री जैन ऐसे मित्रो का सहयोग भी आवश्यक समझते है, जो किसी-न-किसी तरह भारत और प्रवास मे जो मधुर सबंध है, उसे कायम रखने मे प्रयत्नशील हों।

"प्रवास जैनजी का कृपा भाजन हो गया है। वे स्वय हमारे विषय मे लिखते रहे और लिखते रहेंगे, पर पूरी हालत तभी मालूम हो सकेगी, जब खुद प्रवासी लिखेंगे। स्व पं तोताराम फीजी के बारे मे न लिखते, महात्मा गाधी और स्वामी भवानी दयाल दक्षिण अफ्रीका के बारे मे लिखने का कष्ट न करते तो भारत को इन देशो के सबध मे कुछ जान लेना मुश्किल हो जाता।

"मारीशस मे ऐसे युवक विद्यमान हैं, जो यशपालजी की मशा पूरी करेंगे।"

इतना कहकर विष्णुदयालजी ने मेरी चर्चा करने के साथ-साथ उन पर लिखे हुए मेरे लेख की चर्चा की थी।

श्री यशपाल जैन के मारीशस प्रवास के बारे मे तब प विष्णुदयाल क्या सोचते थे और मैं क्या सोचता था, इसका उल्लेख करने के बाद मैं अब इस बात का उल्लेख करना चाहता हू कि आज हम दोनो के विचार क्या है।

महात्मा गाधी सस्थान की पत्रिका 'वसत' के लिए मैंने एक लेखमाला तैयार की थी, जिसका शीर्षक 'मेरी हिन्दी यात्रा' था। जैनजी के बारे मे जो बाते १९६५ मे अग्रेजी मे कही थी, लगभग उन्ही बातो को १९८१ मे हिन्दी मे कहने से अपने आप को न रोक सका। लेख-माला के अपने एक लेख मे मैंने उनके प्रथम मारीशस-प्रवास पर यह लिखा

"फरवरी १९६५ मे श्री यशपाल जैन मारीशस आए थे। उनसे पहले कितने ही भारतीय मारीशस आ चुके थे, पर भाग्य से आने वालो मे, जहा तक मैं जानता हू, वह पहले लेखक और पत्रकार थे। यशपालजी लगभग दो ही सप्ताह ठहरे पर उनका प्रवासकाल चिरस्मरणीय साबित हुआ। वह एक सास्कृतिक दूत के रूप मे आए थे और जब लौटे तो प्रवासी भारतीयो की सामाजिक, धार्मिक और सास्कृतिक गतिविधियो से परिचित होकर लौटे। लौटने पर 'नवभारत टाइम्स' मे मारीशस सबधी कुछ लेख प्रकाशित किये थे, और केवल डाक खर्च लेकर यहा के पुस्तकालयो के लिए पुस्तके भेजी थी। यशपालजी के सम्पर्क मे आने का मुझे काफी मौका मिला था और उस समय हमारे बीच जो सबध स्थापित हुआ था वह दिनो-दिन बढ़ता ही गया है।"

जैसा कि देखा जा सकता है, यशपालजी के प्रथम मारीशस-प्रवास को मैंने मारीशस के हिन्दी इतिहास से जोड दिया है। इससे बढकर उनका और क्या अभिनदन करूं?

जहा तक प विष्णुदयालजी की बात है, यशपालजी पर यह लेख तैयार करते हुए मैं उनसे मिलने गया। विष्णुदयालजी ७७ वर्ष के हो चले हैं और कालातर मे वह 'साहित्य वाचस्पति' और 'आर्य रत्न' की उपाधियो से सम्मानित किए गए हैं। उन्होने अपना उद्‌गार इस प्रकार प्रकट किया है और इसी उद्‌गार के साथ मैं अपना लेख समाप्त करना चाहता हू

"मारीशस मे नवजागरण ने पदार्पण कर लिया था, जब यशपालजी का आगमन हुआ। इनकी पोशाक देखकर जागरण लाने वालो के आनद की सीमा न रही।"

तब वे 'जीवन साहित्य' के सम्पादक के रूप मे देखे जाते थे।

प्रवास का दौरा करने का जब इन्होने निश्चय किया, प्रवासियो के मित्र सम्पादकाचार्य प बनारसीदास चतुर्वेदी ने यही मत व्यक्त किया था कि प्रवासियो को एक सहायक मिलेगे जो अग्रेजी तथा हिन्दी का प्रयोग करके उनके बारे मे लेख लिखते रहेगे। इस कथन मे कोई अत्युक्ति न थी।

प्रवासियो मे से यशपालजी ने मारीशस प्रवासियो को प्राथमिकता दी। 'जीवन साहित्य' का एक प्रवासी विशेषांक निकला, जिसमे मारीशस सबधी अनेक लेख दिए गए थे। एक विशेषाक से सतुष्ट न हुए। जब दूसरा प्रकाशित हुआ, तो उसमे भी मारीशस को प्राथमिकता दी गई।

वे जब बोलने लगते है, उनके मित्र खुशी से घटो बिताकर उन्हे सुनते रहते है।

उनके हृदय मे आचार्य विनोबा के लिए अनन्य भक्ति है। अपने प्रथम मारीशस प्रवास के दिनो मे वे एक दिन बता रहे थे कि सत विनोबा के लेखो और भाषणो से किस तरह चयन किया जाता है। याद रहे कि आचार्यजी की वाणी को 'जीवन साहित्य' इतना महत्व देता है कि वह पत्रिका उससे भरी रहती है।

उन्होने चुने हुए शब्दो मे सुनाया कि सत विनोबा पेट के दर्द से पीडित थे। डाक्टरो ने उनकी जाच की, पर उनकी राय विनोबाजी ने नही मानी। डाक्टर चाहते थे कि वह पैदल चलना छोड दे, विश्राम करे और ऐसा भोजन ले, जिसमे कैलोरी अधिक हो, विनोबाजी राजी नही हुए तो वह निराश होकर चले गए। विनोबाजी ने तब पेट से पूछा, "मुझे क्यो हैरान करता है।"

पेट ने कहा, "तू अनाचार करता है। मैं जितना मेदा उठा सकता हू, उससे ज्यादा डालता है।" इसके बाद उन्होने किया क्या कि वे गीता के एक अध्याय का पारायण करते और उस ऊब की अवधि मे धीरे-धीरे दही की निर्धारित मात्रा लेते। पेट का दर्द अपने आप ठीक हो गया।

मारीशस मे जन-जन को प्रसन्नता हुई जब यह मालूम हुआ कि आचायजी जिन भाषाओ का ज्ञान रखते थे, उनमे फ्रेच भाषा सम्मिलित थी। श्री जैन ने सुनाया कि सत विनोबा ने एक बार कहा, "कोई इस बात की चिन्ता न करे कि जो मेरे नाम से छपा है, उसमे कितना मेरा है, कितना दूसरो का। फ्रेचभाषी एलेक्जेंडर ड्यूमा के नाम पर बहुत-सी किताबे निकल गई। उनमे कुछ उन्होने लिखी थी, कुछ उनके बेटे ने और कुछ पिता ने। अत मे यह भेद खुला। तब वह सारा साहित्य इकट्ठा किया गया और शैली तथा विचार-धारा के आधार पर ड्यूमा की वास्तविक कृतिया अलग कर दी गइ। मेरे विषय मे भी आगे ऐसा किया जा सकता है।"

जैनजी को बोलते हुए सुनकर सुननेवालो को इस परिणाम पर सोचना पडता है कि आप ही आचार्यजी के महादेव देसाई और प्यारेलाल है।

हम रह-रहकर इस बात से दुखी होते है कि जब युवा बैरिस्टर गाधी मारीशस पधारे थ, उनके साथ कोई प्यारेलाल क्यो नही थे ?

क्या सत्तर वर्षीय जैनजी जो बोला करते है, वह किसी-न-किसी तरह सुरक्षित रखा जा सकेगा ?

आजकल मारीशस से भेजी जाने वाली कविताए, कहानिया लेखादि सब प्रतिष्ठित पत्रिकाओ मे छपते हैं। नवोदित मारीशसीय साहित्य-सेवियो को लिखते रहने का प्रोत्साहन जहा 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'बाल भारती' 'आजकल' दे रहे है, वहा ऐसा काय करने मे 'जीवन साहित्य' पीछे नही है। 'जीवन साहित्य' का अवलोकन करते रहने वाले पाठक गलती नही करेगे यदि इस नतीजे पर आएगे कि श्री यशपाल जैन के मतानुसार आज बृहत्तर भारत मे मारीशस का वही स्थान है, जो दक्षिण अफ्रीका का रहा, जब गाधीजी जमकर २१ वष बैठे रहे।"

मारीशस-प्रवास की स्मृतियां

जयनारायण राय

□□

श्री यशपाल जैन से मेरा मिलन महज सयोग से हुआ। वह आस्ट्रेलिया और फीजी जा रहे थे और वहा जाते हुए कुछ समय के लिए यहा रुके थे। वह एक परिवार के साथ ठहरे थे। उन दिनो बहुत कम हवाई कम्पनियो के जहाज मारीशस आते थे। और पूर्व की ओर की यात्रा विशेष रूप से कठिन थी। यदि यशपालजी को जहाज मे स्थान मिल गया होता, जैसी कि उनकी योजना थी, तो सभव था कि हम कभी मिल ही न पाते। लेकिन उनका दुर्भाग्य हमारा सौभाग्य बन गया और उन्हे अपने बीच पाकर हमे बडा अच्छा लगा, हालाकि हमे अब भी अफसोस है कि उनके जहाज मे स्थान पाने के अनिश्चय के कारण हम उनका उतना स्वागत नही कर पाए, जितना कि करना हम पसद करते।

हमारे देश के उनके अनुभव बहुत उत्साहवर्द्धक नही हो सकते थे। उन्होने जहाज सबधी अपनी कठिनाइयो का वर्णन बडी उदारता के साथ किया है और उन्हे विनोद मे परिवर्तित कर दिया है। लेकिन शायद उन्होने इस बात का उल्लेख कभी नही किया कि पानी के जहाज से भेजने के लिए वह जो दो पार्सले, कपडो और किताबो की, यहा छोड गए थे, वे कभी नही पहुचे।

यशपालजी से मिलना मेरे लिए वास्तविक आनद की बात थी। हम दोनो एक ही सन् मे, एक ही महीने (सितम्बर) मे पैदा हुए थे। सन् १९३०-३५ के शानदार वर्षों मे मैं भी इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे था। हम दोनो के लिए याद करने को बहुत-सी चीजे सामान्य थी।

मैंने उन्हे ठोस, निष्कपट और सहज पाया और मुझे उनके योगदान, उनकी नि स्वार्थ कर्तव्यपरायणता और अपने देश की भाषा, सस्कृति और परम्परा के प्रसार के लिए उनकी मिशनरी लगन की सम्यक् जानकारी मिली। उनका आदर्शवाद आसानी से देखा जा सकता था। मैं उन्हे बहुत-से व्यक्तियो के पास ले गया, जो मारीशस मे हिन्दी को फैलाने के लिए सक्रिय रूप मे जुटे हुए थे। कुछ समारोहो मे भी हम सम्मिलित हुए। यह वह समय था, जबकि लगभग दो लाख हिन्दू शिवरात्रि के उत्सव के समय परीतालाब (अब गगा तालाब) स जल लेने जाते है। उनमे वृद्ध लोग होते हैं, कालेज के लडके-लडकिया होते है और छोटे बच्चे भी। वे रग-बिरगी, विभिन्न आकृतियो की कांवर ले जाते हैं। ये कावरे बास की बनी होती हैं।

मुझे उस साध्य कालीन बैठक की अच्छी तरह याद है, जिसमे हिन्दी प्रचारिणी सभा के महासचिव श्री सूरज मगर भगत के घर के सामने नारियल के पेड के नीचे कुछ उत्साही हिन्दी विद्वान यशपालजी से मिले थे। औपचारिक अभिवादन के बाद व्याकरण के हिन्दी रूप की कुछ विशेषताओ के बारे मे गभीर चर्चा चल पडी। यशपालजी की खुशी का ठिकाना न रहा और वापसी मे उन्होने कार मे मुझे बताया कि भारत मे भी ऐसे अवसर दुर्लभ होते हैं। यह सोचकर उन्हे बडी प्रसन्नता थी कि उनके मिशन के एक महत्वपूर्ण पहलू के बारे मे हमे अच्छी तरह से परिचय हो गया। उनका मिशन था प्रवासी भारतीयो के देशो मे हिन्दी के प्रसार का मूल्याकन करना।

मारीशस से जाने के बाद वह हमारे साथ पत्राचार करते रहे। उन्होने मारीशस के बारे मे पत्रो मे लिखा और हमारी सभा के काम मे सहयोग करने का लुभावना प्रस्ताव किया। उन्होने हमे बहुत-सी पुस्तकें

भेजीं और हमारे शाखा-सगठनो को उन पुस्तको के बहुत-से सेट देने को कहा। इस प्रकार हमे दर्जनो 'यशपाल जैन सेट' प्राप्त हुए। हमारे हिन्दी-प्रेमी उन पुस्तको को इसी नाम से पुकारते थे और अब भी पुकारते हैं। प्रत्येक सेट में कई सौ पुस्तकें थी। चूकि वे बहुत सरल भाषा मे लिखी हुई थी और उनके विषय अनेक थे, इसलिए मैं नि सकोच कह सकता हू कि 'यशपाल जैन-सेटो' ने हमारे हिन्दी-आन्दोलन को बल प्रदान किया। हजारो युवक और युवतियो ने उन पुस्तको को इस दृष्टि से पढा है कि उन्हे उनकी सस्कृति और परम्पराओ का स्पष्ट चित्र मिल सके और उनकी हिन्दी भी परिष्कृत हो सके।

यशपालजी ने हमारे उन युवको की प्रारम्भिक कृतिया भी बिना पैसे के छापी है, जिन्हे पुरस्कार प्राप्त हुए थे। हमारे बहुत-से देशवासियो और विद्यार्थियो का भारत मे उन्होंने स्वागत किया है और हमारे स्वतत्रता-दिवस-समारोह मे दिल्ली मे वे सम्मिलित हो चुके है।

हम दोनो हिन्दी के महान् पत्रकार बनारसीदास चतुर्वेदीजी से सम्बद्ध है। जब मै पढता था, चतुर्वेदीजी मेरे सरक्षक थे। यशपालजी और मैं प्राय एक दूसरे को लिखते रहते हैं। उनके पत्र मेरे लिए सदैव आनन्द दायक होते हैं।

वह द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन मे भाग लेने के लिए पुन मारीशस आए। इस बार उनकी पत्नी उनके साथ थी और हमने बहुत-सा समय खुशी-खुशी साथ बिताया। बाद मे मैं भारत गया और नयी दिल्ली के उनके कार्यालय मे उनसे मिला।

यशपालजी हिन्दी के ध्येय और राष्ट्र के प्रति समर्पित है। 'सस्ता साहित्य मण्डल' का सारा कार्य उन्ही के सचालन मे हो रहा है। 'मण्डल' बहुत अच्छी तरह से चल रहा है और मैं विश्वास के साथ कह सकता हू कि उसका बहुत-कुछ श्रेय यशपालजी को है।

यशपालजी निष्ठावान व्यक्ति है। उन्होंने अनेक विषयो पर बहुत-सी पुस्तके लिखी है। उनका जीवन सादा है और वह थोडे मे अपना निर्वाह कर लेते है। उन्होंने अपने सामने गाधी-युग की सर्वोत्तम परम्पराओ को रखा है और उन्ही पर वह चल रहे हैं। वह खादी पहनते हैं।

अनुभव करता हू कि इतनी उम्र पाकर व्यक्ति आगे देख सकता है और पीछे भी निगाह डाल सकता है। आगे इस भावनायुक्त आशा से कि अभी जो सर्वोत्तम और परिपक्व है वह सामने आएगा। पीछे इस सतोष से कि हमारा जीवन इस धरा पर एकदम व्यर्थ नही गया। इन दोनो के साथ-साथ पिता का यह आन्तरिक सतोष भी जुडा रहता है कि हमारे बच्चे सघष से भरे ससार मे बिना साधनो और गुणो के प्रवेश नही करेगे और उनके बच्चे नैतिक सतोष के साथ अपने पूवजो की सचित निधि मे भागीदार होगे। हम अपना जीवन जी चुके है, लेकिन अभी तक यह भावना नही आयी है कि हमारे जीवन का अब अन्त हो रहा है। आखिर हमने इस पागलपन-भरी दुनिया मे अनुभव और सतुलन प्राप्त करने मे अपना पसीना बहाया है, अपनी हड्डिया गलायी हैं और वे अनुभव और सतुलन विवेकहीनता के साथ कुए मे नही पटके जा सकते।

मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ बडा महत्वपूर्ण होगा। अग्रज के रूप मे मैं यशपालजी को अपनी शुभ-कामनाए भेजता हू और कामना करता हू कि वह जिस काय को इतनी योग्यता और निष्ठा से कर रहे है, उसे बहुत समय तक करते रहे।

मारीशसवासी उन्हें भूल नहीं सकेंगे

सूर्य मगर भगत

□□

बधुवर यशपालजी के सबध मे कुछ कहना या लिखना सहज सुलभ कार्य नही है। अहिंसा, गाधीवाद, हिन्दी भाषा और साहित्य, भारतीय सस्कृति के सक्रिय प्रचारक, हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक, सुवक्ता, देखने में सामान्य से लगते हैं, किन्तु जरा कुरेदने पर इनके हृदय से भारतीय सस्कृति और असल गाधीवाद का सागर उमडने लगता है। मेरे हृदय मे इनके लिए एक विशिष्ट स्थान है।

१९६५ के फरवरी मास मे यशपालजी मारीशस पधारे। उस समय मारीशस की सुनहरी धरती पर हरीतिमा छाई थी। हम कई दिनो तक साथ-साथ रहे, खाया, पिया। पहाडो, वादियो से गिरते-बहते झरनो से उठती हुई कलकल निनाद की ध्वनि अपने हृदय की धडकनो से मिलाते रहे। सागर की उत्ताल तरगो के साथ बच्चो की तरह खेलते रहे। यशपालजी बार-बार कहते नही अघाते थे, "कितना सुन्दर है आपका देश! यह सागर तट, ये वादिया, वनो की यह नीरवता, नगरो का वह कोलाहल, यह हरियाली, मौसम की विचित्रता, क्षण मे उष्ण, क्षण मे शीतल, फिर वर्षा, वाह रे देश!"

और मैं कहता, "बधुवर, यह सौदर्य, यह हरियाली, हमारे पसीने की खबी है।"

देश का यशपालजी ने दौरा किया। हिन्दी, अहिंसा, गाधीवाद, भारतीय सस्कृति का बेलाग व्यापक प्रचार किया।

मारीशस मे जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य किया, वह यह कि सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा पुस्तको के सेट प्रदान कर 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' को सौ से अधिक लघु हिन्दी पुस्तकालय देश के कोने-कोने मे स्थापित करने मे सहायता की। उनकी इस भेट से मारीशस मे सशक्त तथा प्राणवान हिन्दी भाषा और साहित्य को सक्रिय सम्बल प्राप्त हुआ।

दूसरा कार्य जो उन्होंने किया, वह श्री जयनारायण राय द्वारा लिखित 'मारीशस मे हिन्दी का इतिहास' के मुद्रण और प्रकाशन मे सक्रिय योगदान। इस ग्रथ के प्रकाशन से ससार को विदित हो गया कि मारीशस मे हिन्दी के क्षेत्र मे क्या कुछ हो रहा है।

स्नेह-सिक्त यशपालजी का झिलमिल चेहरा मेरी आखो के सामने आख-मिचौनी कर रहा है। ये पक्तिया लिखते समय मेरी आखे भीग आयी हैं। लेखनी काप रही है। उदासी का माहौल छा गया है। अतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विश्व परिव्राजक बधु से फिर मुलाकात होगी।

हा, हुई, भारत मे और फिर मारीशस मे। जब मैं सपत्नीक भारत गया तो एक दिन यशपालजी के यहा भोजन करते हुए मैंने कहा, "मेरी हार्दिक इच्छा है कि एक बार यशपालजी सपत्नीक मारीशस आए।" मेरी वह इच्छा पूर्ण हुई। द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर वह और उनकी पत्नी हमारे सम्मानित अतिथियो के रूप मे आए। मैंने बडी धन्यता अनुभव की। सम्मेलन के बाद कुछ दिन और ठहरे। इस देश को उन्होंने फिर उसी आत्मीयता से देखा, जैसे ग्यारह वर्ष पूर्व देखा था। मारीशसवासी उन्हे कभी भूल नही सकेंगे।

सूरीनाम के भारतीयों पर प्रभाव

भारती

□□

श्री यशपाल जैन वह व्यक्ति हैं, जिन्हे सब जानते हैं। वह सूरीनाम आए और हमारे साथ ठहरे। मैं यह बताना चाहती हू कि उनके आने से पहले क्या हुआ ! हमारे परिवार को एक बडा ही कटु अनुभव हुआ, जब कि भारत से एक महानुभाव सूरीनाम आए और हमारे साथ चौदह दिन ठहरे। जब वह चले गए तो उन्होने हमे धन्यवाद देने तक का शिष्टाचार नहीं दिखाया। इसलिए जब मेरे पिताजी ने घर आकर हमे यह समाचार दिया कि श्री यशपाल जैन आ रहे हैं तो मैंने उनसे पूछा कि क्या वह हमारे साथ ही ठहरेंगे ? उनके 'हा' कहने पर मुझे बडा गुस्सा आया। मैंने पिताजी से कहा, "क्या आपको अभी तक पूरा सबक नही मिला ?" मेरे पिताजी ने मेरी बात की ओर ध्यान नही दिया।

जब बाबूजी आए (हम उन्हे इसी नाम से सम्बोधित करते हैं) तो मुझे अपनी बात पर बहुत ही लज्जा अनुभव हुई। मैंने ऐसी बात क्यो सोची कि वह इतने स्वार्थी होगे। मुझे बडी प्रसन्नता है कि भारत मे मुझे उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला।

वह कुछ दिनो हमारे साथ ठहरे। हमने यह अनुभव ही नही किया कि वह बाहर के आदमी है। वह हमे अपने परिवार का अग जान पडे।

बहुत-सी सभाए हुईं, रेडियो के कार्यक्रम हुए। सूरीनाम के निवासी उनके आगमन से और उनके भाषणो से बहुत ही आनन्दित हुए और उन्होने इच्छा प्रकट की कि बाबूजी अधिक समय तक उनके बीच रहे।

सूरीनाम से चले आने के बाद कोई भी उन्हे भूल नही सका। ज्यो ही उनका नाम आता है, हर आदमी समझ लेता है कि वह कौन हैं। सूरीनाम के निवासी अपने देश मे बाबूजी को फिर से चाहते है।

उनकी वषगाठ पर मैं उनके प्रति अपना आदर व्यक्त करती हू और उनके दीर्घायु तथा सार्थक जीवन की कामना करती हू।

गयाना में यशपालजी

योगीराज शास्त्री

□□

यशपाल नाम हिन्दी मे दो रूपो मे आता है, केवल यशपाल (उपन्यास लेखक) और दूसरे यशपाल जैन साहित्यकार तथा समाजसेवी। हिन्दी के साहित्यकारो, लेखको तथा विद्वानो के दो वर्ग हैं, एक जो सस्कृत के माध्यम से प्रवेश पाते हैं, दूसरे वे जो हिन्दी प्रान्तीय होते हुए भी अग्रेजी के माध्यम से हिन्दी मे अपना सिक्का जमाते है। दोनो के मानस-धरातल मे एक बहुत बडा अन्तर है। प्राय अग्रेजी के माध्यम से हिन्दी मे आने वाला साहित्यकार दम्भी और अहकारी प्रवृत्ति का होता है, अभी तक यही मेरी धारणा थी। यही कारण है कि नाम से परिचित होते हुए भी श्री यशपाल जैन के गयाना-आगमन की सूचना पाकर भी मैंने कोई विशेष उत्साह नहीं दिखाया। न चाहते हुए भी सरकारी आदेशानुसार उनके स्वागत तथा अन्य कार्यक्रमो को आयोजित करने का भार मुझ पर पडा तो मन मे निश्चय किया कि अवश्य ही यह सज्जन दूसरे ही वग के साहित्यकार होगे। अत उनसे वही अन्यमनस्कता का व्यवहार करना पडेगा।

गयाना के हवाई अड्डे पर उतरने पर सामने जो देखा तो उस मूर्ति मे न तो कोई दम्भ था, न अहकार-मिश्रित बातचीत, अपितु मधुर मुस्कानयुक्त सौम्यमूर्ति के दर्शन हुए। मिलते ही कहा कि मुझे यशपाल जैन कहते हैं। हवाई अड्डे से जाजटाउन तक लम्बा मार्ग था। अन्य प्रसगो को छोडकर अपने आयोजित कार्यक्रम के विषय मे पूछताछ प्रारम्भ कर दी। जब उन्हे यह पता चला कि पूर्व नियोजित कार्यक्रम रद्द कर दिया गया है और वे केवल भ्रमणार्थी के रूप मे ही गयाना मे प्रवेश पा सके है तो उन्हे जो एक गहरी चोट लगनी चाहिए, उसका कोई चिह्न भी उनके मुह पर आभासित नही हुआ। हा, इतना अवश्य कहा कि यह तो और भी अच्छा हुआ कि सब जगह अपनी सुनाता आया हू, यहा कुछ औरो की सुनने का भी सौभाग्य मिलेगा। यद्यपि बाद मे उनके भाषणो का कायक्रम यथारूप मे ठीक सुनियोजित हुआ, पर उन्होने दूसरो के विचार की जो योजना जाजटाउन मे सहृदयता से प्रकट की, उसे पूरा किया। अपने समय का सदुपयोग करने की सहृदयता जो मैंने यशपालजी के सान्निध्य मे देखी, वह चिरस्मरणीय है। उनकी आत्मीयता, सरलता और धार्मिकता, सभी मे एक आकर्षण है।

भौगोलिक दृष्टि से गयाना दक्षिणी अमेरिका के धरातल पर एक छोटा-सा देश है। इसकी सीमाए ब्राजील, वेन्जुला और सूरीनाम देशो से मिलती है। सामाजिक और भाषा आदि की दृष्टि से इसका सबध वेस्ट-इडीज के जमेका, ट्रिनिडाड आदि देशो से है। क्षेत्रफल काफी है, पर जनसख्या केवल आठ लाख है। यहा के मूल निवासी जगलो मे पेडो पर रहने वाले अमेरिडियन लोग हैं। चौदहवी शताब्दी के लगभग यहा बाहर से लोगो का आगमन हुआ। शुरू मे डच, फ्रेंच, और अग्रेज जाति के लोग यहा आए। परस्पर कई झडपो के बाद बीहड जगलो और नदियो वाले इन प्रदेशो मे तीन उपनिवेश बने। अग्रेजी उपनिवेश ब्रिटिश गयाना, डच जाति का डच गयाना और फ्रेंच जाति का फ्रेंच गयाना कहलाया। आज ब्रिटिश और डच गयाना स्वतत्र हो चुके हैं और गयाना तथा सूरीनाम के नाम से जाने जाते हैं। इन दोनो देशो मे भारतीय मूल के लोगो की सख्या पचास प्रतिशत है। अत भारतीय संस्कृति, धर्म और भाषा का यहा बडा महत्व है। भारतीय मूल के लोग हिंदी को अपने धर्म की भाषा मानते हैं। वैसे भारतीय मूल के लोग मारीशस और फीजी मे भी बसे है, पर वहा भारत

के अनेक प्रातो से आने के कारण उन देशो मे केवल हिंदी ही नही, भारतीय भाषाओ को भी महत्व मिला है। १८४७ से १९१८ तक भारतीय यहा आए। ये लोग पाच वष के अनुबन्ध पर लौट जाने की शर्त के साथ खेतो पर काम करने के लिए लाये गए थे।

इन लोगो की भर्ती कलकत्ता के बन्दरगाह पर हुई। पर आने वाले ये लोग प्राय उत्तर प्रदेश और बिहार से आए हैं। इनमे कुछ मद्रासी अवश्य आए हैं, पर कलकत्ता से चलने वाले इन जहाजो मे कोई बगाली नही पहुचा। एकाध अपवाद को छोडकर कोई पजाबी भी यहा नही पहुचा। इसीलिए धर्म, सस्कृति, भाषा और खान पान आदि मे इन लोगो का सबध उत्तर प्रदेश और बिहार से है। इनके नामो के पीछे सिंह और प्रसाद शब्द भी इस बात के द्योतक हैं। भारत मे तो बिहार के सिंह अग्रेजी के हिज्जो के प्रभाव मे आकर सिन्हा बन गए, पर ये लोग सिंह से पजाब के सिंघ के रूप मे बदल गए, यद्यपि पजाब से या सिख सप्रदाय से इनका कोई सबध नही है।

हिंदी को ये लोग धर्म की भाषा मानते हैं। परपरागत सनातन धर्म वालो की सख्या अधिक है। बिहार और उत्तर प्रदेश की तरह ही यहा पौरोहित्य करने वाले पडित को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इन्ही लोगो ने धम को हिंदी भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया। वैसे भी आधुनिक पीढी के लोगो को छोड कर पिछली पीढी के लोग हिंदी ही बोलते थे। मूलत इनकी भाषा पूर्वी हिंदी और भोजपुरी का समिश्रण है ब्रिटिशराज के दिनो मे यहा का सारा तत्र अग्रेजो के हाथ मे था। उसे चलाने के लिए इन्होने अफ्रीकी जाति के लोगो को चुना। कारण वे लोग कई पीढियो पूर्व यहा दास-प्रथा के उन्मूलन के अधीन आए थे और अब दास प्रथा के उन्मूलन के अनन्तर भी वे लोग अपनी भाषा, धर्म आदि सब भूलकर अग्रेजी भाषा और ईसाई धर्म को स्वीकार कर चुके थे, अत शासनतत्र मे सरकारी नौकरियो, सेना और पुलिस मे वे अग्रेजो के पूरे सहयोगी बने।

इधर भारतीय मूल के लोगो ने खेती, व्यापार, डाक्टरी, वकालत आदि व्यवसाय चुने। यहा भारतीय मूल के लोगो की सख्या दूसरी जाति वाले लोगो से अधिक है। अग्रेजो ने इस देश को स्वतत्रता देते हुए आनुपातिक प्रतिनिधित्व (प्रोपोशनल रिप्रेजेंटेशन) की विधि द्वारा चुनाव का तरीका देकर इस देश की चुनाव-पद्धति को ऐसे बदल दिया कि भारतीय मूल के लोगो का प्रतिनिधित्व करने वाली पार्टी पीपुल्स् प्रोग्रेशिव पार्टी तथा उसके नेता डा छेदी जगन अपनी सरकार न बना पाये। जनसख्या मे अधिक होने पर भी भारतीय मूल के लोग यहा द्वितीय स्तर के नागरिक का जीवन बिता रहे है। ऐसी दशा वाले देश मे किसी भी भारतीय वक्ता को बडे सम्मान से देखा जाता है।

१९७२ के ग्रीष्म मे श्री यशपालजी ने गयाना की सास्कृतिक सद्भाव के रूप मे यात्रा की। गयाना मे भारत सरकार, गयाना की स्वतत्रता से पूर्व, १९५४ से, 'भारतीय सास्कृतिक सबध परिषद्' की ओर से हिंदी अध्ययन-अध्यापन के कायक्रम को चलाती आ रही है। श्री यशपालजी की यात्रा का प्रबध होना तो महात्मा-गाधी एसोसियेशन की ओर से था, उसी ने उनको आमत्रित किया था, किन्तु कतिपय कारणो से वह भारतीय उच्चायुक्त की ओर से सास्कृतिक सबध परिषद ने किया। यशपालजी ने गयाना मे लगभग एक सप्ताह बिताया। उनका पहला दिन हिंदी स्कूल और उनके अध्ययन-अध्यापन आदि को देखने मे बीता। दूसरे दिन प्रात उन्होने डा छेदी जगन से भेट की। डा छेदी जगन भारतीय मूल के लोगो का प्रतिनिधित्व करते आये हैं। यहा के वे एक मान्य नेता है। यशपालजी उनसे मिलकर यह जानना चाहते थे कि बहुसख्यक भारतीय मूल के लोगो का उन्हे पूर्ण प्रतिनिधित्व मिलने पर और सात वर्षों तक प्रधानमत्री रहने पर भी वे अपनी सरकार को बनाए रखन मे क्यो असफल रहे। यशपालजी ने उनसे कहा, "महात्मा गाधी के निर्देशन मे भारत ने जिस निर्भीकता से स्वतत्रता को प्राप्त कर अपना अधिकार हस्तगत किया, आपने गाधी विचारधारा या उनके मार्ग को क्यो नही

अपनाया ?" डा छेदी जगन साम्यवादी विचारधारा से अति प्रभावित हैं। फिर भी यशपालजी के प्रश्न को उन्होंने टाला नही, और स्पष्ट रूप से अपनी भूल को स्वीकार किया। डा छेदी जगन ने कहा, "गांधीजी के नेतृत्व मे कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार का गठन न करके, शासन को अपने हाथ मे न लेकर, पूर्ण स्वतन्त्रता के बाद ही चुनाव की शर्त रखकर जो बुद्धिमत्ता दिखाई, उसी मे हार गए। हमने पूर्ण स्वतन्त्रता के बिना ही अन्तरिम सरकार बनाकर जो भूल की, उसको अब तक सुधार नही सके। अतरिम सरकार के दिनो मे हमारे हाथ कुछ नही था, फिर भी हमने अपनी नीतिया घोषित कर दी, किन्तु उन्हे निभा नही सके।" डा छेदी जगन साम्यवादी विचारधारा के होते हुए भी गाधीवादी विचार और उनके नेतृत्व के प्रति कितनी आस्था रखते थे, उनके इन विचारो से यह स्पष्ट प्रकट होता था। यशपालजी की यह निजी वार्ता लगभग १ घटा २० मिनट चली। यशपालजी ने बहुत से प्रश्न पूछे, डा छेदी जगन ने बडी स्पष्टता से उनके उत्तर दिये। डा जगन अब विपक्षी नेता हैं। उनका कहना था कि अपने प्रधानमन्त्रित्व के सात वर्ष के काल मे उन्हे अपनी कुर्सी को सुरक्षित रखने का ध्यान मुख्य रूप से रहा। यही चूक हुई। उनकी अदूरदर्शिता ने व्यापक मसलो को निगाह से ओझल कर दिया। सारा वार्तालाप बडी हार्दिकता के बीच हुआ।

उस सध्या को यशपालजी का एक सार्वजनिक भाषण रक्खा गया। हाल खचाखच भरा था। सरकारी और सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रो से सभ्रान्त स्त्री-पुरुष उपस्थित थे। भारतीय उच्चायुक्त तथा सरकार के कई मत्री आये थे। कुर्त्ता, धोती और जाकेट पहने जब यशपालजी ने सभागार मे प्रवेश किया तो सारा हाल करतल-ध्वनि से बहुत देर तक गूजता रहा। यशपालजी का परिचय दिया गया, अनतर वह बोलने के लिए खडे हुए। उन्होने अपने भाषण का आरम्भ हिंदी मे किया। कुछ वाक्य हिंदी मे बोले, अनतर यह अनुभव करके कि हिंदी को श्रोता भला प्रकार समझ नही पाएगे, उन्होने अपना पूरा भाषण अग्रेजी मे दिया। लगभग सवा घटे बोले। अपन भाषण मे उन्होने भारतीय स्वतत्रता की पृष्टभूमि बताई और महात्मा गाधी के योगदान पर प्रकाश डाला। उन्होने कहा, "गाधीजी के लिए स्वतत्रता का अथ यह नही था कि शासको की कुर्सी पर से विदेशी लोग हट जाय और भारतीय बैठ जाये। यह तो होता ही, किन्तु गाधीजी की स्वराज्य की कल्पना यह थी कि भारत स्वतत्र होकर मानव-जाति के कल्याण के लिए काय करे। उन्होने स्पष्ट कहा कि यूरोप के पावो मे पडा हुआ अब तक भारत मानव-जाति को कोई आशा नही दे सकता, किन्तु जाग्रत और स्वतत्र भारत दद से कराहती दुनिया को शान्ति और सद्भाव का सदेश अवश्य देगा।"

उपस्थित नर-नारी उनके भाषण को अत्यन्त मनोयोगपूवक सुन रहे थे। यशपालजी ने गाधीजी के प्रेम और करुणा के अनेक दृष्टान्त दिये, उनके ध्येय को आगे बढाने वाले मनीषी विनोबा के जीवन की बहुत-सी घटनाए सुनाइ, भारतीय सस्कृति की विशेषताओ पर विशद प्रकाश डाला और अत मे पुन गाधीजी और उनके सिद्धान्तो की सावभौमिक सार्थकता को समझाते हुए कहा "गाधीजी ने सर्वोदय की कल्पना की। भारत की स्वतत्रता तो इस सर्वोदय की पहली कडी थी। वे इस सर्वोदयी विचार-धारा के कारण किसी एक देश के नेता न होकर समूची मानव-जाति के नेता थे। इस प्रकार गाधीजी को देश की स्वतत्रता तक सीमित नही रखना चाहिए। उनकी इस विचारधारा का सबध विश्व के सभी देशो और सभी पददलित जातियो के उत्थान और उनके उदय से है, चाहे वह अमेरिका के मार्टिन लूथर किंग के रूप मे सामने आये, चाहे आप मे से किसी के रूप मे आप के देश मे उभरे। गाधीजी की यह विचारधारा ससार के बडे देशो की पारस्परिक समरागण की प्रतिस्पर्धा को मिटाकर उन्हें शाति-समन्वय के साथ रहने का मार्ग दिखाती है।"

यशपालजी का यह भाषण वहां की तत्कालीन स्थिति के अनुकूल था। वह उन लोगो को शाति-समन्वय द्वारा अपने अधिकारो को मागने का मार्ग गाधीवादी विचारधारा द्वारा समझा रहे थे।

शेष दिनो मे और भी अनेक कार्यक्रम हुए। वहा के प्रमुख दैनिक पत्र ने उनका इटरव्यू लिया और सचित्र छापा। रेडियो से उनकी वार्ता प्रसारित हुई। अनेक सस्थाओ का निरीक्षण किया। नेताओं तथा कार्य-कर्ताओ से मिले। दर्शनीय स्थलो का भ्रमण किया।

भारतीय समाज का आग्रह था कि यशपालजी वहा कम-से-कम एक महीना रहे। एक सप्ताह के निवास मे यहा जो वातावरण बनाया, वह अत्यन्त मधुर और प्रेरणाप्रद था, पर यशपालजी को ट्रिनीडाड एण्ड टोबेगो जाना था, जहा उनके आगमन की बडी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा की जा रही थी।

यात्रा के अतिम दिन की सध्या को यशपालजी को एक अग्रेजी ऐतिहासिक फिल्म देखने के लिए आमत्रित किया गया। फिल्म का नाम तो अब स्मरण नही रहा, किन्तु उस फिल्म मे कैथोलिक धर्म की नन-प्रथा (ब्रह्मचारिणी प्रथा) पर आघात था, वैसे ही जैसे हमारे यहा देवदासी प्रथा को लेकर लिखे गये उपन्यासो मे चित्रण मिलता है। उसमे केवल इतना ही अन्तर था कि फिल्म दु खान्त थी। अत दर्शक पर एक गहरा प्रभाव छोड जाती है। कहने की आवश्यकता नही कि फिल्म यशपालजी को पसद आई। गयाना प्रवास ने वहा के भारतीय समाज पर गहरी छाप छोडी और जब हवाई अड्डे पर उन्हे विदाई दी गई तो लोगो के दिल भरे थे। उनका आग्रह था, कि यशपालजी, एक बार फिर आइये।

मेरी हार्दिक मगल-कामना है कि प्रभु ऐसी विभूतियो को हमारे बीच बनाये रखें, जिससे उनके सौरभ से हम जैसो को अपने पूर्वाग्रह बदलने का सुअवसर मिलता रहे। आत्मा के इसी विस्तार का काम कदाचित अद्वैत है।

उनके बहत्तर वर्ष पूरे करने की वर्षगाठ पर अनेकानेक शुभकामनाए। भगवान करें, वे शतजीवी हो।

ट्रिनीडाड की अविस्मरणीय स्मृतिया

हरिशकर आदेश

□□

जून १९७२ की बात है। भारतीय उच्चायुक्त महोदय के व्यक्तिगत सचिव ने दूरभाष पर सदेश दिया कि उच्चायुक्त महोदय आपसे तुरन्त मिलना चाहते है। दूसरे दिन प्रात काल मैं उनसे मिला। उन्होने मन्तव्य व्यक्त किया कि मैं शीघ्रातिशीघ्र आधिकारिक विवरण लिखित रूप मे प्रस्तुत करू कि यशपाल और यशपाल जैन एक ही व्यक्ति है या दो? और यशपाल जैन के विषय मे अपेक्षित सूचनाए अविलम्ब प्रस्तुत की जाए। मैंन भलीभाति अध्ययन करके विवरण प्रस्तुत किया कि यशपाल और यशपाल जैन दो पृथक व्यक्ति है। दोनो के रहन-सहन और आचार-विचार मे धरती-आकाश का अन्तर है। इनमे से प्रथम

साम्यवादी हैं, दूसरे गाधीवादी। मेरी सम्मति स्वीकार कर ली गई कि श्री यशपाल जैन गांधी विचारधारा के व्यक्ति हैं। राजनैतिक दृष्टिकोण से वे तटस्थ हैं। यथार्थ मे वे साहित्यकार हैं। उनका ट्रिनिडाड-आगमन भारत-ट्रिनिडाड के सम्बन्धो को पुष्ट ही करेगा।

बात यह थी कि श्री यशपाल जैन श्री महातर्मसिहजी के निमत्रण पर अपनी सास्कृतिक-सद्भावना यात्रा पर सूरीनाम आए हुए थे। वहां से उन्हे गयाना की यात्रा करते हुए ट्रिनिडाड आना था। किसी अज्ञानी अहितेच्छु स्रोत से प्राप्त सूचना के आधार पर गयाना सरकार ने उन्हे साम्यवादी कामरेड यशपाल समझकर उनके गयाना-प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। समाचार-पत्रो मे प्रकाशित इसी समाचार के आधार पर ट्रिनिडाड सरकार ने भारतीय उच्चायुक्त आयोग से इस बात की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता सम्बन्धित छान-बीन की थी। श्री यशपाल जैन स्वय ही बडे साहसी आत्म-विश्वासी, ईश्वर-विश्वासी तथा जीवट के व्यक्ति हैं। उनकी अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति तथा भारतीय उच्चायुक्त आयोग के प्रयत्न से ट्रिनिडाड ही नही, गयाना मे भी उन्हे विधिवत् प्रवेश की पूण राजकीय आज्ञा मिल गई। गयाना मे उनका भव्य स्वागत हुआ। महत्वपूर्ण स्थानो तथा सस्थाओ मे उनके व्याख्यान भी आयोजित किए गए। मेरी स्वय की इच्छा थी कि इस महान् विभूति के दशन करू। सशय था, इतना महान् पुरुष मुझ जैसे अकिचन व्यक्ति का आतिथ्य ग्रहण भी करेगा? इसी सकोच मे मैंने यशपालजी का कार्यक्रम निश्चित करते समय उनके ठहरने की व्यवस्था अपने स्थानीय धनाढ्य मित्रो के यहा की।

रविवार, ६ जुलाई, १९७२ का वह महत्वपूर्ण दिवस आ पहुचा, जब यशपालजी ट्रिनिडाड पधारे। उनका यान गयाना से ठीक नौ बजकर पचपन मिनट पर ट्रिनिडाड के पियार्को इन्टरनेशनल एयरपोर्ट पर आ पहुचा। एयरपोर्ट पर भारतीय विद्यासस्थान ट्रिनिडाड के शताधिक कर्मठ सदस्यो तथा उनके इष्ट मित्रो ने उनका हृदय से स्वागत किया। खादी के श्वेत कुर्ता, धोती और जाकेट से सज्जित, गौरवण, दिव्याभा से ज्योतिमान आनन तथा सर्वोपरि उनकी धुली-मजुल मुस्कान ने उनके व्यक्तित्व को अत्यधिक आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक बना रखा था। आते ही उन्होने मुझे हृदय से लगा लिया। प्रथम परिचय मे ही ऐसा अनुभव हुआ कि हमारा आज का नही, जन्म-जन्मातर का सम्बन्ध है। ट्रिनिडाड की धरती इस महान् व्यक्ति के चरण पडने से पुनीत हा गई। कु सुरभि तथा चि विवेक शङ्कर आदेश ने प्रथम माल्यापण किया। उनके स्वागत मे कुछ कहा गया। यशपालजी ने उसका उत्तर दिया और वहा आने पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की।

हवाई मोटर-कारो का जुलूस भारतीय सास्कृतिक सम्बन्ध परिषद नई दिल्ली (भारत) तथा भारतीय विद्या सस्थान के उत्तर क्षेत्रीय कार्यालय टुनापुना पहुचा। वहा सस्थान के कई अधिकारियो से भेंट करने के पश्चात् श्री यशपालजी मुझ अकिचन की कुटी पर पधारे, जहा मेरी धर्मपत्नी श्रीमती निमला आदेश ने उनके स्वागत मे एक विशाल मध्याह्न भोज की व्यवस्था कर रखी थी। इस भोज मे सस्थान के अधिकारियो के अतिरिक्त देश के अनेक गणमान्य सम्भ्रान्त व्यक्ति भी आमत्रित थे। सूरीनाम (पारामारीबो) के पुलिस कमिश्नर की पत्नी श्रीमती मृणालिनी भरोस तथा वही की एक अन्य सदस्या आय दिवाकर भी उन दिनो मेरी अतिथि होने के कारण इस भोज मे सम्मिलित थी। भोज के पश्चात् सगीत का कार्यक्रम आयोजित किया गया। भारत-प्रेम से ओत-प्रोत हिन्दी गीतो को शुद्ध स्वर, ताल, लय और उच्चारण के साथ सुनकर यशपाल-जी स्वयमेव आत्मविभोर हो उठे और सस्थान के छात्र-कलाकारो को अपना हार्दिक आशीर्वाद दिए बिना नही रह सके। इन कलाकारो मे सगीत-सारिका उमा, श्रीमती ताराविष्णुदयाल सिंह 'उषा', श्रीमती जिनोरा जोसेफ, मोहन श्यामलाल तथा कालीचरण दुखी के नाम उल्लेखनीय हैं।

ट्रिनिडाड की कई सस्थाओ के वरिष्ठ प्रतिनिधियो तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने यशपालजी से

अपने-अपने प्रासादवत् भवनो मे ठहरने के लिए सानुरोध निवेदन किया। यह भी सुझाव आया कि वे एक-एक दिन सबके यहा ठहरें। किन्तु यशपालजी ने कहा, "मैं तो अब यही भाई आदेश के यहां ही ठहरूंगा।" यशपाल-जी हमारे यहा ही ठहरे। इनके इस प्रेम-सिक्त निर्णय ने हमारा हृदय हमेशा के लिए जीत लिया। उनकी सादगी, सहृदयता, निश्छलता, सहिष्णुता और वात्सल्य ने हमे सदैव के लिए उनका बना दिया। उनके सम्पर्क मे जो भी आया, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नही रह सका।

९ जुलाई की रात्रि को ट्रिनिडाड के सर्वोत्तम और प्रख्यात हिन्दू मन्दिर ईथला स्ट्रीट सेंट जेम्स पोर्ट ऑफ स्पेन मे उनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा सारगर्भित भाषण हुआ। विषय था—"वर्तमान युग मे महाभारत का महत्त्व।"

१० जुलाई को प्रात वे भारत के तत्कालीन उच्चायुक्त महोदय श्री सैय्यद मुजफ्फर आगा तथा हाई कमीशन के अन्य वरिष्ठ अधिकारियो से मिले। तदुपरान्त हमने उन्हे सस्थान के परम शुभेच्छु ट्रिनिडाड के तत्कालीन विदेश मन्त्री कमालुद्दीन मोहम्मद (आजकल प्राय कार्यवाहक प्रधानमन्त्री भी रहते है) तथा अन्य ससद सदस्यो से मिलवाया। उसी दिन सायकाल सस्थान के एक मध्य ट्रिनिडाड स्थित मुख्य सास्कृतिक-शिक्षण-केन्द्र 'याकरन मेमोरियल कलचरल क्लासेज'-मान्ट्रोज वैदिक स्कूल शगुआनस मे उनके स्वागत मे एक विशेष कार्यक्रम आयोजित किया, जहा वे आयसमाज के कुछ सदस्यो से भी मिले।

११ जुलाई को सस्थान के दक्षिण-ट्रिनिडाड स्थित प्रमुख सास्कृतिक-शिक्षण केन्द्र गांधी टैगोर कालिज क्रास क्रासिग सैन फरनान्डो ने यशपालजी के स्वागत मे एक भव्य समारोह की व्यवस्था की। इस कायक्रम मे सस्थान के कुछ प्रमुख सुशिक्षित कलाकारो ने अपनी प्रतिभा का प्रदशन किया, जिनकी सराहना यशपालजी ने अपने व्याख्यान मे मुक्तकण्ठ से की। 'भारतीय सस्कृति के मूलतत्त्व' विषय पर उनका व्याख्यान अत्यन्त प्रभावशाली था।

१२ जुलाई, १९७२ की सध्या को उन्होने हैरिस प्रोमिनाड सैनफरनान्डो मे स्थित महात्मा गाधी की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया, भाषण दिया। यहा से चलकर गाधी सेवा सघ ई टाडस्ट्रीट सैनफरनान्डो मे उनके स्वागत और भाषण की व्यवस्था की गई थी, जिसमे दक्षिण ट्रिनिडाड के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियो के अतिरिक्त साधारण जनता भी बडी सख्या मे उपस्थित थी। यशपालजी का यह व्याख्यान सर्वाधिक रोचक, प्रभावोत्पादक तथा हृदयग्राही था। इस व्याख्यान मे उन्होने महात्मा गाधी के सस्मरण भी सुनाए। श्रोतागण महात्मा गाधी के जीवन की बडे ही मार्मिक छोटी-छोटी पर महान् घटनाओ को सुनकर विभोर हो उठे।

१२ जुलाई को भारतीय विद्या सस्थान ने यशपालजी की टुबेगो-यात्रा का प्रबन्ध किया। टुबेगो ट्रिनिडाड का ही एक अपेक्षाकृत बडा उपद्वीप है, जिसे प्रकृति ने अवकाश लेकर अपने हाथो से सजाया है। सस्थान के दो प्रमुख अधिकारी और चिरजीव विवेकशङ्कर आदेश के साथ हम लोगो ने अरावाक एयरलाइन्स से यात्रा की। निश्चित समय पर हमारा यान टुबेगो के हवाई अड्डे पर पहुचा, जहा सस्थान द्वारा पूर्वायोजित कायक्रम के अनुसार टुबेगो के प्रसिद्ध धनाढ्य व्यापारी श्री आर सत की कार हमारी प्रतीक्षा कर रही थी। उन्होंने अपने प्रसिद्ध होटल मे हमारे स्वागत तथा मध्याह्न भोज का प्रबध किया था। भोज के पश्चात् हम लोग कैरीबियन के आश्चय कुकोरीफ, और 'नाइलान पूल' देखने 'मोटरबोट' से गए। हमारा यह नौका-विहार तथा सागर-स्नान अविस्मरणीय बन गया। 'बुकोरीफ' के विविध आकार वाली रग-बिरगी मछलियो के समह तथा 'कोरल' का ससार देखकर विश्वयात्री यशपाल जी विस्मयान्वित हुए बिना नही रह सके।

समयाभाववश उसी सध्या को हमे ट्रिनिडाड वापस लौटना पडा। सध्या को उन्होने भारतीय विद्या सस्थान के मुख्य कार्यालय तथा वेस्टइडीज के एकमात्र हिन्दी पुस्तकालय का निरीक्षण किया। यहा पर

आयोजित विदाई-समारोह मे सस्थान के महानिदेशक (लेखक) को सस्थान के हिन्दी प्रकाशको को भेट करने का उत्तरदायित्व दिया गया। यशपालजी इन हिन्दी प्रकाशनो को देखकर आश्चर्यान्वित और आनन्दित हुए। उन्होने इन प्रकाशनो की बडी प्रशसा की। 'विजिटर्स बुक' पर हस्ताक्षर करते हुए उन्होने सस्थान के हिन्दी, सस्कृत, उर्दू तथा सगीत-शिक्षण और भारतीय सस्कृति के सर्वांगीण विकास प्रचार और प्रसार की दिशा मे उठाए गए ठोस कदमो की हृदय से सराहना की और दृढ़ शब्दो मे विश्वास दिलाया कि वे अपने स्तर पर जो भी सहायता कर सकते हैं, करेंगे। उनके सभी भाषण टेप रिकार्ड किए गए।

१३ जुलाई को विदा की घडी आ पहुची। बहुत अनुरोध करने पर भी यशपालजी का रुकना सभव नहीं हो सका। उन्हे उसी दिन न्यूयार्क पहुचना था। उन्होंने अपने इस सक्षिप्त आवास-काल मे ट्रिनिडाड के लगभग सभी पर्यटक-आकर्षण-स्थल देखे, जिनमे मराकस तट का भ्रमण अत्यन्त सुखद था। पहाडिया, स्थल और समुद्र तीनो एक स्थान पर पाकर वे प्रभु की लीला का अवलोकन कर विस्मित हो उठे। प शमुनाथ कपिलदेव, डा श्याम आर अवतार (अब स्वर्गीय) तथा भारतीय उच्चायुक्त महोदय के यहा भोज पर भी वे गए। अहिन्दीभाषी होते हुए भी हिन्दी-प्रेम की सजीव मूर्त्ति श्री एडवर्ड जोसेफ पिल्लई (अब स्वर्गीय) तथा दक्षिण ट्रिनिडाड के सच्चे भारतीय जन-सेवक श्री विश्राम गोपी से उनकी भेट भी महत्त्वपूर्ण थी। ट्रिनिडाड की नेशनल ब्राडकास्टिग सर्विस रेडियो गार्डियन के 'कल्चरल ट्रेडीशन्स' नामक निम्नलिखित भारतीय सास्कृतिक कार्यक्रम मे उनका साक्षात्कार प्रसारित किया गया। यह साक्षात्कार यहा के प्रसिद्ध सास्कृतिक कार्यकर्त्ता श्री हस हनुमान सिह ने लिया था। इसके अतिरिक्त इस अवसर पर ट्रिनिडाड की एकमात्र हिन्दी-इगलिश मासिक सास्कृतिक पत्रिका 'ज्योति' ने एक 'श्री यशपाल जैन' विशेषाक भी प्रकाशित किया था।

ट्रिनिडाड हवाई अड्डे पर उन्हे विदा करते समय उपस्थित सभी स्त्री-पुरुषों, के हृदय प्रेम-द्रवित तथा नयन स्नेहार्द्र थे। यशपालजी पराये बनकर आए थे, अब अपने बनकर और बनाकर जा रहे थे।

ऐसे लोग ससार मे कम ही पाए जाते है, जिनसे मिलकर प्रथम क्षण मे ही सच्ची प्रसन्नता होती है, और जो सदैव के लिए स्मृति-लोक मे अपना स्थान बना लेते हैं। यशपालजी ऐसे ही सच्चे गाधीवादी तथा मानवतावादी व्यक्ति है। वे केवल उच्चकोटि के साहित्यकार, कई पुस्तको के लेखक, चितक, सपादक तथा पत्रकार ही नही, प्रत्युत् विश्वप्रेम के अपार कोश हैं। उनसे जो भी मिलता है, वह उन्हे भूल नही पाता, न वे ही उसे भूल पाते है।

मैं जब जनवरी, १९७३ मे प्रथम बार भारत गया तो उनका प्रेम द्रष्टव्य था। १९७५, १९७६, १९७९, जितनी बार भी हम भारत गए, उनसे मिलकर कृतकृत्य हो गए। उनकी पत्नी श्रीमती आदश कुमारी भी ममता का अगाध समुद्र हैं। विगत वर्ष २४ जनवरी, १९८३ को मेरे भारतेतर प्रथम महाकाव्य 'अनुराग' के विमोचन-समारोह के अवसर पर भाषण देते समय उन्होने जो स्नेह-सिक्त एव प्रेरणास्पद उद्गार व्यक्त किए थे, उन्होन हम दम्पति का हृदय छू लिया था। उनका निश्छल प्रेम पाकर हम अपने को धन्य समझते है। मुझे स्मरण है कि ट्रिनिडाड मे मेरी कविताओ और कहानियो को पढ़कर उन्होने निमलाजी से कहा था "इस भावपूर्ण साहित्य को प्रकाश मे आना चाहिए।" मेरे अनुराग महाकाव्य तथा अन्य कहानियो के प्रकाशन के मूल मे उनकी प्रेरणा भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है।

यशपालजी के साथ अनुभवो का इतना अक्षय भडार है कि उनके साथ रहकर मनुष्य हर घडी कुछ-न-कुछ सीखता ही है। ईश्वर से प्रार्थना है कि यह तपस्वी साधक 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतम् समा' की भावना पूर्ण करता हुआ सक्रिय रहकर 'शरद शतम्' की सीढिया पार करने मे सफल हो।

सूर्योदय के देश में

नरेश मंत्री

□□

श्री यशपालजी का नाम लेते ही आखो के सामने उनकी बडी सात्विक आखे और प्यारभरा निर्मल हास्य खडा हो जाता है। श्री यशपालजी सात्विकता की मूर्ति हैं। 'सस्ता साहित्य मडल' मे और अन्यत्र सभा-सम्मेलनो मे जब भी उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनकी सात्विकता की सुगध से मेरा जीवन परिमलित हुआ है। उनका साहित्य भी इसी सात्विकता की सुगध से भरा हुआ है।

श्री यशपालजी एक सस्कारी यात्री भी हैं। देश-विदेश मे वे बहुत यात्राए कर चुके हैं और उनके मार्मिक वणन उन्होने हमे पुस्तको के रूप मे दिए है। वे जिस देश मे जाते है, वहा का बारीकी से निरीक्षण और अध्ययन तो करते ही हैं, साथ-साथ उन देशो को भारतीय सस्कृति का उत्तम परिचय भी करा देते हैं। वे भारतीय सस्कृति के एक सुयोग्य राजदूत है और अतर्राष्ट्रीय सास्कृतिक आदान-प्रदान मे उनका यह बडा योगदान है।

यशपालजी ने अपना सारा जीवन समाज, सस्कृति और साहित्य की सेवा के लिए अर्पित किया है। अभिनदन ग्रथ के द्वारा उनका सम्मान किया जाय, यह सवथा उचित ही है।

यशपालजी से मेरा परिचय बहुत पुराना है। जब सन् १६५७ मे आचाय काका साहेब कालेलकर 'गाधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा' की स्थापना के लिए मुझे वर्धा से दिल्ली ले आए, तब से बार-बार 'सस्ता साहित्य मडल' के दफ्तर मे मेरा आना-जाना आरभ हो गया और यशपालजी तथा उनके अन्य साथियो मे परिचय बढता गया। यशपालजी भी कई बार काका साहेब से मिलने आ जाते थे। उनके सदा प्रसन्न, दूसरे की सहायता करने के लिए सदा तत्पर और निष्कलक व्यक्तित्व का मुझ पर गहरा प्रभाव पडा है।

सन् १६६३ से मैं जापान मे हू। यशपालजी सन् १६८१ मे जापान पधारे। उन्हे जापान बुद्ध सघ ने विश्वशान्ति सम्मेलन मे गाधी विचार-धारा तथा जैन धम के प्रतिनिधि के रूप मे बुलाया था। सम्मेलन मे उन्होने अपना महत्वपूण योगदान दिया। सम्मेलन के बाद भी वह कई दिन यहा रहे। खूब घूमे। टोक्यिो, क्योती, याकोहामा, उसाका, हीरोशिमा तथा अन्य नगरो की यात्रा की। व्यस्तता के कारण मैं उनके साथ अधिक घूम नही पाया, किन्तु सुना कि यहा के लोग उनके उदात्त व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए थे। एक गाधीवादी के नाते उन्होने यहा शाति आन्दोलन चलाने वाले कार्यकर्ताओ के सामने गाधीजी की अहिसा का विचार रखा और उसकी विशेषता पर जोर दिया था। उन्होने स्पष्ट किया था कि विश्व मे सच्ची शाति केवल आन्दोलनो या प्रचार से नही किन्तु अपने जीवन को अहिसा के आधार पर बदल डालने से ही स्थापित होगी।

मेरा सौभाग्य है कि अपनी यात्रा के दौरान वे मेरे 'सर्वोदय जापान-भारत सस्कृति केन्द्र' मे पधारे थे। उस समय हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान स्व श्री क्यूया दोई, यशपालजी के एक पुराने स्नेही श्री श्यामू सन्यासी 'एशिया अफ्रीका-भाषा-विद्यापीठ' के श्री कोकी नागा आदि मित्र भी इकट्ठे हुए थे। विविध विषयो पर रोचक बातें हुई और हम क्षण भर भूल गए कि जापान मे हैं। यशपालजी केवल यात्रा के लिए यात्रा नही करते। हर यात्रा के पीछे उनका विशेष उद्देश्य होता है। जापान की यात्रा मे भी उन्होने जापान का सूक्ष्म निरीक्षण किया था और उसकी खूबियो और कमियो को पकड लिया था।

'जापान-भारत-सर्वोदय मित्र सघ' के सचालक तथा 'सर्वोदय' मासिक पत्रिका के प्रधान संपादक श्री के के ओकामोतो ने भोज के लिए अपने यहा यशपालजी को आमत्रित किया. उन्होने यशपालजी से और यशपालजी ने उनसे अनेक प्रश्न किए। यह विस्तृत भेट-वार्ता ओकामोतोजी ने अपनी पत्रिका 'सर्वोदय' मे प्रकाशित की। यशपालजी ने इस बात पर विशेष बल दिया कि जब तक अहिंसा तेजस्वी नही होगी तब तक स्थाई शान्ति स्थापित नही हो सकती और न निरस्त्रीकरण की आकाक्षा ही पूण हो सकती है।

उनका यह भी कहना था कि "हिसा की सबसे अधिक विभीषिका का सामना जापान को करना पडा है। हिरोशिमा और नागासाकी के विनाश का स्मरण करके मेरा हृदय चीत्कार करता है। भारत सदा से शान्तिप्रिय देश रहा है। दोनो देशो को मिलाकर अब आगे अहिंसा की शक्ति को बढाना है।"

ओकामोतोजी और उनकी पत्नी के अतिरिक्त उस भोज मे मैं भी शामिल हुआ था और बौद्ध भिक्षु आकिरानाकामूराजी भी।

यशपालजी जापान के निप्पोनजानम्योहोजी के सस्थापक पूज्य फ्यूजिइ गुरुजी से भी बराबर मिलते रहे।

शान्ति के लिए उन्होने विश्व मे जो प्रयास किये है और कर रहे हैं, उनसे यशपालजी बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होने गुरुजी से अहिंसा के विभिन्न पक्षो पर चर्चा की और आशा व्यक्त की कि एक दिन ऐसा अवश्य आएगा, जब मानव हिसा से थक जाएगा और तब वह स्वत ही अहिसा की ओर आकृष्ट होगा।

यशपालजी को इस बात से बडी प्रसन्नता थी कि 'सूर्योदय के देश' जापान ने विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र मे असामान्य उन्नति की है, फिर भी धर्म के प्रति अपनी आस्था पर आच नही आने दी। उन्होने अनेक मठो को देखा और शिबिया के मठ मे स्वय कुछ दिन रहकर वहा की धर्म-निष्ठा और अतिशय प्रेम का अनुभव किया।

काका साहब ने कई बार जापान की यात्रा की थी। वह यशपालजी से समय-समय पर जापान जाने का आग्रह करते रहते थे। यशपालजी के जापान प्रवास के पीछे काका साहेब की ही मुख्य प्रेरणा रही होगी। लेकिन यहा आकर यशपालजी को स्वय प्रतीति हुई कि जापान की ओर काका साहेब का झुकाव स्वाभाविक था। भविष्य मे विश्व शान्ति स्थापित करने मे जापान की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। होनी चाहिए, ऐसा यशपालजी का मत बना। यशपालजी लगभग पाच सप्ताह जापान मे रहे, लेकिन शिक्षा सस्थाओ की छुट्टिया होने के कारण कालेजो और विश्वविद्यालयो के निरीक्षण का उन्हे मौका नही मिला, फिर भी वह कई साहित्यकारो से मिले और साहित्य की वर्तमान धाराओ को समझने का प्रयत्न किया।

अभी-अभी पिछले वर्ष अक्तूबर मे तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर दिल्ली मे उनसे भेट हुई थी। उस समय भी जिस तत्परता से उन्होने मेरी सहायता की, उसे मै कभी भूल नही पाऊगा।

अब भी उनमे जीवन के प्रति युवक जैसा उत्साह है, और इस यौवनसुलभ उत्साह के साथ वे भविष्य मे भी ससार का भ्रमण करते रहेंगे और अपनी सरल प्रवाही शैली मे उसके यात्रा-वर्णन भी हमे देते रहेगे।

हिंदी साहित्य की सेवा के लिए और भारतीय सस्कृति की सेवा के लिए भी ईश्वर श्री यशपालजी को उत्तम आरोग्य और दीर्घायु प्रदान करे।

फीजी को उनका अवदान

(कप्तान) भगवानसिंह

□□

वैसे तो यशपाल जैन स्वस्थ परम्पराओ मे पले यशस्वी साहित्यिक पत्रकार हैं ही, परन्तु यशपालजी, बनारसी-दासजी चतुर्वेदी के विस्तृत परिवार के वरिष्ठ सदस्य भी है। अतएव इस नाते भी मुझे उनसे पारिवारिक निकटता का सौभाग्य उपलब्ध है।

मेरे उनसे कई और भिन्न प्रकार के भावात्मक सम्बन्ध भी है। उनका सौम्य कृतित्व और साधु वृत्ति, सरल स्वभाव, ज्योही किसी के सम्पर्क मे आया कि अपना स्वय ही विशेष सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। सम्पर्क ज्यो-ज्यो बढ़ता जाता है, यह रिश्ता भी प्रगाढ होता जाता है, जिसकी गहराई का अनुमान देखने और जानने से ही हो सकता है।

मैं तो उनके सर्वांगीण व्यक्तित्व की केवल एक विधा का यहा उल्लेख करना चाहता हू। यशपालजी जहा भी जाते हैं, देश-विदेश मे, और जिनसे भी मिलते हैं, उनपर अपने मधुर स्वभाव और सहज मुस्कान की अमिट छाप छोड आते हैं, और कायम कर आते है नये और सुदृढ रिश्ते।

कुछ ऐसा ही फीजी देश मे भी हुआ। यशपालजी फीजी गये। भारतीयता की सजीव तस्वीर। विचार, प्रकृति, स्वभाव, बोलचाल, वेशभूषा सभी कुछ तो भारतीय। सारा चोला उसी रग से भरपूर। वह भी एडी से चोटी तक—एडी सफेद समुद्री झागो जैसी सफेद, हाथ की बुनी, हाथ की कती खादी की धोती से ढकी और चोटी उदार हिन्दुत्व मे सजी और विद्वता के शिखर पर फैली। यशपालजी सरापा हिन्दुस्तानी है।

वैसे तो फीजी आने वाला प्रत्येक व्यक्ति या तो वहा के प्राकृतिक सौन्दय से आकर्षित होकर सैलानी के रूप मे आता है या बिना चुगी के (ड्यूटी फ्री) सामान खरीदने और सग्रहीत करने। हो सकता है, कोई विरला आगन्तुक अपने रिश्तेदारो से भेट करने भी आ भटकता हो। परन्तु गाधीवादी यशपालजी प्रवासी भारतीयो के पुरोहित बनारसीदास चतुर्वेदी के अखाडे के पट्ठा हैं। फीजी के वीती लेवू और वनुआसेवू टापुओ पर बसे सारे भारतीय समाज से परिचय प्राप्त करने गये थे। सनातन धर्म महासभा (फीजी) के सस्थापक सभापति प श्री-धर महाराज के सुरुचिपूर्ण, सुसज्जित भवन मे उनका निवास था और हर भारतीय सस्था से सम्बन्ध स्थापित करने का उनका प्रयास था। प्रारम्भ मे तो यह खादी के कुर्ते-धोतीवाला व्यक्ति लोगो के कौतूहल का विषय बना रहा, किन्तु शीघ्र ही वह आदरणीय और स्नेह-भाजन बन गया। अन्त मे एक ऐसा ऐतिहासिक साहित्य-कार, जो अपने साथ तो बहुत-कुछ लाया-ही, परन्तु पीछे छोड आया एक शुद्ध और सात्विक भारतीय व्यक्तित्व की छवि, जो अभी तक जिनसे भी वह मिला, उनकी आखो मे छायी हुई है। यशपालजी हर एक से मिले, दिल खोलकर मिले और बाहे फैलाकर समेट लाये।

उन्होने सारे द्वीप की परिक्रमा की, लोगो से मिले, साहित्यिक, सास्कृतिक, शैक्षिक सस्थाओ को देखा, उनमे भाषण दिये। फीजी की राजधानी सूवा के विशाल लायलक सभागार मे उनका सावजनिक सम्मान हुआ। हॉल मे तिल रखने की जगह नही रही। भीड मे आधे से अधिक फीजियन। अभिनन्दन का वह दृश्य आज भी वहा के निवासियो की आखो मे बसा है, यशपालजी के उद्‌गार आज भी लोगो के कानो मे गूजते हैं। जगह-जगह पर उनका सम्मान हुआ।

भारत लौटने पर 'जीवन साहित्य' मे वहा के बारे मे विस्तार से लिखा और खूब लिखा। दो विशेषांक प्रकाशित किए और फीजी के प्रवासी भारतीयो के वकील बन बैठे। 'सस्ता साहित्य मण्डल' की पुस्तको का एक सेट भेंट स्वरूप भेजा जो आज भी उनकी सदाशयता का स्मरण दिलाता है।

प्रवासी भारतीयो में उगते साहित्यकारो के सफल सम्बल यशपाल जैन ने फीजी के उदीयमान उपन्यासकार जोगेन्द्र सिंह 'कमल' को सहारा दिया। उनकी फीजी से मेरी विदाई पर हृदय से फूट पडी अभिव्यक्ति को कविता के सिंहासन पर आरूढ कर दिया। 'अलविदा मेरे दोस्त' भारतीय प्रवासी की अपने भारत लौटते स्नेही के प्रति गहरी भावनाओ से ओतप्रोत 'विदाई गीत' को अनेक पत्र-पत्रिकाओ में छपवाया और उस गीत को सारे प्रवासियो का मान-गीत बना दिया। जोगेन्द्र सिंह 'कमल' का लेखन कला मे यह प्रथम चरण था। आज कमलजी की अनेक पुस्तक-पुस्तिकाए प्रकाशित हो चुकी हैं।

सूबा मे जब यशपालजी को वहा के निवासियो ने विदाई दी तो उन्होने अपने अतर की गहराई से कहा 'यशपालजी, आपके आने से सबसे अधिक लाभ तो हमे हुआ। इस देश मे कुरता-धोती और हिन्दी का मान बढा।' इन शब्दो मे यशपालजी को वहां के भाइयो के हृदय की निश्छलता दिखाई दी थी और उनकी आखें छलछला आई थी।

उन्ही सम्बन्धो की अन्तिम कडी-स्वरूप यशपालजी और उनकी स्नेहमयी पत्नी पं श्रीधर महाराज की सुपुत्री शिरोमणी के, जो कि भारत मे दिल्ली विश्वविद्यालय से मिराडा हाउस मे बी ए पास करने आई थी स्थानीय सरक्षक (लाकल गार्जियन) बन गए, स्नेह और शिष्टाचार का सधा-स्वरूप बन कर।

कदाचित् यशपालजी ही अपने नये सम्बन्धो को मजबूत करने की शृखला मे एक और सम्बन्ध भी बना आए कि आज शिरोमणी महाराज, शिरोमणी सिंह के रूप मे मेरी पुत्र-वधू है।

परमात्मा करे, यशपालजी इसी प्रकार नये सम्बन्धो का मार्ग प्रशस्त करते रहे।

लदन में यशपालजी का सान्निध्य

लक्ष्मीप्रसाद रामयाद

□□

श्री यशपाल जैन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति हैं। मैं सबसे पहले उनसे सन् १९६५ मे मिला, जबकि वह हिन्दी प्रचारिणी सभा के निमत्रण पर मॉरीशस मे दो सप्ताह के लिए आए थे। उस समय मैं सभा का उपाध्यक्ष और उसके परीक्षा-बोर्ड का अध्यक्ष था। यशपालजी ने द्वीप के विभिन्न भागो मे कई भाषण दिए। वे मुख्यत हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य और भारतीय सस्कृति के विषय मे बोले। उनमे से कुछ वार्त्ताए रेडियो द्वारा प्रसारित की गई। उन्होंने मॉरीशस के हिन्दी-प्रेमियो तथा हिन्दी सस्थानो से निकट सम्पर्क स्थापित किया। इन सफल

सम्पर्कों का एक परिणाम यह निकला कि मारीशस मे हिन्दी पुस्तको के छोटे-छोटे अनेक पुस्तकालय स्थापित हो गए। ये पुस्तकें यशपालजी द्वारा भारत से भेजी गई थी और उनका वितरण अनेक स्वैच्छिक हिन्दी स्कूलो में किया गया, विशेषकर उन स्कूलो मे, जो 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' से सम्बद्ध थे।

यशपालजी के मारीशस के इस प्रथम प्रवास से सम्बन्धित एक स्मृति आज भी मेरे मन पर बनी हुई है। मैं उसे कभी भुला नही सकता। एक दिन यशपालजी कात्र बोर्न मे मेरे निवास पर आए। उनकी सादगी और विनम्रता की मुझ पर गहरी छाप पडी। मैं उस समय, और आज भी, प्रेमचद का बडा प्रशसक हू। मैंने उनसे निवेदन किया, "क्या आप प्रेमचद के बारे मे कुछ कहने की कृपा करेगे ?"

वह तत्काल मेरे टेप रिकार्डर के सामने बैठ गए और कई मिनट तक जबानी बोलते रहे। उन्होने प्रेमचद के उन महान गुणो पर सक्षेप मे प्रकाश डाला, जिन्होने उनको भारत और सारे विश्व मे प्रिय बना दिया है। ऐसा लगा, मानो इस रिकार्डिंग से पहले घटो उसकी तैयारी की गई हो। उसमे कही भी कोई कमी नही थी और न बीच मे कही कोई रुकावट ही आई थी। उनकी हिन्दी मे सहजता थी, प्रवाह था और वह मुहावरे-दार थी। मैं उससे बहुत ही प्रभावित हुआ। आगे आने वाले दिनो मे मेरे सामने यशपालजी की विद्वता और वक्ता तथा लेखक के रूप मे उनकी महान गुणवत्ता के और भी अनेक दृष्टान्त आए।

यशपालजी की कृतियो मे एक कृति है—'सेतु-निर्माता'। उसे पढने म मुझे सबसे अधिक आनन्द आया। वह यात्रा-वृत्तान्त है, जिसमे भारत से बाहर के उनके कुछ प्रवासो के सजीव विवरण प्रस्तुत किए गए है और इगलैंड तथा अन्य देशो के जिन विशिष्ट व्यक्तियो से उनका सम्पक हुआ था, उनका चित्रण किया गया है। पूर्वी तथा पश्चिमी रुझान के पाठको को इस कृति से सास्कृतिक आदान-प्रदान का लाभ मिलता है। इसके द्वारा पूर्व का पश्चिम से और पश्चिम का पूर्व से मिलन होता है।

सन् १९७० के वर्ष मे मैं मॉरीशस के लन्दन-स्थित उच्चायुक्तालय के राजनयिक विभाग मे काम करता था। उस दौरान मैंने यशपालजी के साथ अनेक बार पत्र-व्यवहार किया। वह सटीक और तत्काल उत्तर देते थे। इससे कुछ हद तक मेरा यह भ्रम दूर हुआ कि पत्रो के उत्तर देने मे भारतवासी प्रमाद करते है और कभी-कभी उत्तर देते ही नही है।

सन् १९७९ मे जब मै दिल्ली मे उनसे मिला तो मुझे यह ममझने मे देर नही लगी कि 'सस्ता साहित्य मण्डल' के मत्री के रूप मे वह अत्यन्त सक्रिय है और वह उस कोटि के व्यक्तियो मे से है जो आज का काम कल पर नही छोड सकते। कुछ-ही वर्षों मे 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने न केवल राष्ट्रीय हितो की बहुत अच्छी तरह से सेवा की है, बल्कि प्रवासी भारतीयो मे भारतीय सस्कृति के सवर्द्धन की दृष्टि से मूल्यवान योगदान भी दिया है। इसका श्रेय यशपालजी की त्वरित, बुद्धिमत्तापूण तथा सहानुभूतिजन्य कमठता को है।

यशपाल जैन के बहुत-से सस्मरण है। उनमे सबसे अधिक आनन्ददायक स्मृतिया उस एक सप्ताह की है, जो हमने सन् १९८२ के ग्रीष्मकाल मे साथ-साथ इगलैंड मे बिताया। वह अपनी पत्नी आदश कुमारी के साथ कैनेडा से भारत लौट रह थे। कैनेडा मे वह अपने पुत्र के पास गए थे। मैंने उन्हे मेरे और मेरे परिवार के साथ ठहरने का निमत्रण दिया और वे एक सप्ताह हमारे साथ व्यतीत करने के लिए राजी हो गए। इन दोनो साहित्यसेवियो के सान्निध्य मे हमने अपने जीवन के जो मधुर क्षण बिताए, वे मेरी पत्नी सरस्वती और मेरे लिए बडे ही सौभाग्य के क्षण थ। हमे उनके जीवन के तौर-तरीको को निकट से और सूक्ष्मता से देखने का विशेष अवसर मिला।

यशपाल जैन की मानवीय मूल्यो मे गहरी अभिरुचि है और उनकी सहानुभूति अपार है। जिस समय हम लोग साथ-साथ रह रहे थे, कुछ धनिक लोगो ने उनको अपने यहा ठहरने के लिए आमत्रित किया, लेकिन

यशपालजी ने मेरे गरीबखाने पर ही रहना पसद किया। हम लोगो ने अपना अधिकांश समय हिन्दी साहित्य और मानवीय मूल्यों के सम्बन्ध मे चर्चाए करते हुए बिताया। उस सप्ताह के बीच एक बहुत ही धनिक व्यक्ति ने उन्हें भोजन पर आने के लिए फोन किया। यशपालजी ने दृढ़ता से कहा, "मेरे पास समय नही है।" इस व्यक्ति ने कुछ समय पहले उनसे असत्य-भाषण किया था। मैंने बार-बार देखा कि उनके आचरण मे विनम्रता है, लेकिन साथ ही स्वाभिमान और गरिमा की उच्च भावना है। वस्तुत कभी-कभी मुझे उनके स्वाभिमानी स्वभाव को देखकर निराला के आत्माभिमानी दृष्टिकोण की याद हो आई। लेकिन यशपालजी के जिस गुण ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया, वह था, उनका विशाल ज्ञान और उनकी गहरी तथा पैनी तार्किकता। सारी चर्चाओ और सामान्य बातचीत मे उनके ये गुण बराबर उभरकर सामने आते रहे। इन गुणो की विशेष झाकी मुझे उस समय मिली, जबकि बी बी सी पर उनका इण्टरव्यू लिया गया। स्वभावत वह मौखिक रूप से बोले और मुझे विश्वास है कि उनका इण्टरव्यू लेने वाले को उनकी बातचीत से आनद की अनुभूति हुई और वह प्रभावित भी हुए।

लन्दन मे हम लोग खूब घूमे। हमने नगर के प्रमुख स्थान देखे। मदाम तुसौद का मोम के पुतलो का सग्रहालय देखा, ट्रागल्फर स्क्वायर मे कुछ समय बिताया, स्क्वायर का निकटवर्ती कलापूर्ण गिर्जाघर देखा, जेम्स पार्क के घने वृक्षो की शीतल छाया मे कुछ समय बिताया। इन तथा अन्य स्थानो को देखते हुए जो चर्चाए हुईं, वे निस्सन्देह बडी ही मूल्यवान थी।

हम लोग साथ-साथ आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय देखने गए, जो लन्दन शहर से लगभग साठ मील दूर है। वहा पर यशपालजी से गहरी दिलचस्पी के साथ विश्वविद्यालय के विभिन्न सकायों और उनसे सलग्न गिर्जाघरो को देखा। उन्हे देखते हुए शिक्षा के सम्बन्ध मे यशपालजी ने जो विचार व्यक्त किए, वे बडे ही महत्वपूर्ण थे। उन्होंने बताया कि शिक्षा की बुनियाद मे धर्म का होना आवश्यक है, तभी शिक्षा मानव-चरित्र के विकास मे सहायक होती है। धर्म से उनका अर्थ सकीण साम्प्रदायिकता से नही था, बल्कि उस धर्म से था, जो जीवन को धारण करता है।

हमने यशपालजी से अनुरोध किया कि वे इगलैण्ड मे हमारे साथ कुछ दिन और ठहरे, लेकिन भारत मे उनकी व्यस्तता के कारण वह ऐसा नही कर सके। मेरे परिवार ने और मैंने जब हवाई अड्डे पर उन्हे और आदश कुमारीजी को विदाई दी तो हमारी आखे डबडबा रही थी। अलग होते समय मैंने अनुभव किया कि मैं एक सप्ताह के भीतर पहले की अपेक्षा कही अधिक समृद्ध हो गया हू।

नेपाल में

खड्गमान सिंह

□□

मेरी भतीजी हटूण्डी (अजमेर) मे कन्या विद्यालय मे पढती थी। वार्षिकोत्सव के समारोह मे आने के लिए श्री हरिभाऊ उपाध्याय का निमन्त्रण पाया। १९५१ का दिसम्बर का महीना था। मैं हटूण्डी को चला। एक जक्शन पर जिस डिब्बे मे मैं चढ़ा, दो सज्जन उसी डिब्बे मे आए। वे खद्दरधारी थे और मैं भी वैसा ही। एक-दूसरे के प्रति आकर्षण उभर आया। पूछताछ शुरू हुई। वे भी हटूण्डी को ही जा रहे थे। तब हम एक ही मजिल के सहयात्री बने। उनमे से एक थे भाई श्री विष्णु प्रभाकर और दूसरे भाई श्री यशपाल जैन।

कहना न होगा कि साहित्यकारो की जिज्ञासा कभी शान्त नही होती। उनका ज्ञान हर क्षण—बिस्तर पर हो या यात्रा पर, घर पर या परदेश मे—बढने की ताक मे रहता है। कही भी हो, किसी से हो, साहित्यकार अपनी जानकारी का क्षेत्र विस्तार करने मे नही चूकेंगे। ये दोनो उच्च कोटि के साहित्यकार है। यह बात मुझे बाद मे मालूम हुई। और विश्व मे एकमात्र हिन्दू राज्य का नेपाल का नागरिक था मैं – स्वेच्छाचारी राणा—शासन के विरोध मे बीस बरस तक जेल-यातना पार कर तभी निकला हुआ विजयी सैनिक-सा। फिर क्या कहना ! दोनो महारथियो को मानो लघु नेपाल मिल गया। मुझ पर तब तक सवालो का प्रहार करते रहे, जब तक मुझसे जितना बन पडा, नेपाल के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक आदि परिचय नही लिया। यो रही हमारी जान-पहचान।

हटूण्डी मैं दो रोज ठहरा। वहा खासी भीड थी। कभी-कभी भेट होती रही और हम एक-दूसरे के मित्र बन गए। वहा से लौटने के बाद कभी-कभी पत्र-व्यवहार होता रहा। श्री यशपालजी नेपाल आए। नेपाली नर-नारियो से मिले, पहाड-पर्वत देखे, श्री पशुपति नाथ के दर्शन किए। मैं भी जब-जब दिल्ली पहुचता, उनसे मिलता अथवा फोन से ही दो शब्द आदान-प्रदान कर लेता। पिछले वर्षों मैं दिल्ली गया था। फोन से बात-चीत हुई। यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि भाई यशपालजी बहुत से पाश्चात्य देशो का भ्रमण कर आए और तमाम देशो मे गाधी-विचार-धारा बहाने का सौभाग्य उन्हे प्राप्त हुआ।

वह कई बार नेपाल आ चुके हैं। एक बार 'नेपाल-भारत मैत्रीसघ' द्वारा उनका सम्मान बडे उल्लास के साथ किया गया। उस समारोह मे उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए जिनका यहा के निवासियो पर अच्छा प्रभाव पडा। वह यहा के अनेक लेखको से मिले। यहा की रचनात्मक सस्थाओ मे उन्होने गहरी अभिरुचि दिखाई। नेपाल के लोक नेता श्री तुलसीमेहरजी के साथ उनके घनिष्ठ सबध थे।

यशपालजी ने यहा के विभिन्न नगरो का भ्रमण किया और उनके बारे मे 'नवभारत टाइम्स' मे बडे विस्तार से लिखा।

यद्यपि लम्बे अर्से तक यशपालजी के साथ रहने का मौका नही मिला, फिर भी, मैने उन्हे विनम्र, शिष्ट, शीलवान, साहित्यिक, मिलनसार पाया है। सबसे बडी विशेषता उनमे मैंने जो पाई है, वह है उनका अजातशत्रुपन। वाछनीय या अवाछनीय, रुचिकर अथवा क्षुब्धकारक, कैसा भी विषय क्यो न हो, उसमे उनकी दृष्टि सवदा सकारात्मक, रचनात्मक ही मैंने पाई। और मेरी समझ मे, यशपालजी का असली व्यक्तित्व यही है।

साहित्यिक, समाजसेवी तथा सरस्वती के सुपुत्र की वर्षगाठ के शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक मगलमय कामना है। आने वाले अनेक वर्षों तक उनकी सेवा समाज को मिलती रहे और विपुल यश के मालामाल हो श्री यशपाल।

संस्कृति के सेतु

महातम सिंह

□□

सन १९६५ मे जब मैं अपना सूरीनाम (दक्षिण अमरीका) मे ५ वर्ष का कार्यकाल समाप्त कर अवकाशकाल मे भारत-यात्रा की तैयारी मे लगा था, तभी भारतीय सास्कृतिक-सम्बन्ध-परिषद के मत्री स्व इनाम रहमान का पत्र मिला कि मैं अपने दिल्ली-प्रवास की अवधि मे परिषद की अतिथिशाला मे ठहरू। यही मैंने किया। प्रात लगभग ८ ३० बजे होंगे। किसी ने दरवाजा खटखटाया। मैंने उठकर दरवाजा खोला। देखा, विशुद्ध खादी-पोशाक मे, चेहरे पर स्वाभाविक मुस्कान बिखेरते हुए, नम्रता की प्रतिमूर्त्ति एक सज्जन खडे थे। वे और कोई नही सैकडो पुस्तको के लेखक, यशस्वी पत्रकार और सुप्रसिद्ध सम्पादक श्री यशपाल जैन थे, जिनके बारे मे सुन तो बहुत पहले से रखा था, पर साक्षात्कार का सुअवसर प्राप्त नही हुआ था।

प्रारम्भिक औपचारिकता के पश्चात् उन्होने सहज भाव से कहा, "हम लोग काका साहेब कालेलकर के सम्मानाथ 'सस्कृति के परिव्राजक' नामक एक ग्रन्थ तैयार कर रहे है। उसके लिए एक लेख अवश्य लिख दे।" देश-विदेश मे समन्वयात्मक सस्कृति के मान्य प्रणेता काका साहेब के प्रति आदराजलि अर्पित करने की उत्कट इच्छा होने पर भी समयाभाव के कारण मैंने अगले पडाव कलकत्ता से लेख भेजने की अनुमति चाही। पर यशपालजी नही माने। लेख लिखवा ही लिया। ग्रन्थ मे अपना लेख देखकर मन मे अतीव प्रसन्नता अनुभव हुई, साथ ही यशपालजी की दृढता और कार्य-कुशलता के प्रति मैं स्वाभाविक रूप से आकृष्ट हुआ।

यह आकस्मिक मिलन क्रमश घनिष्ठता की ओर बढता गया और हम लोगो के लिए बडे हर्ष की बात हुई, जब सन् १९७२ मे कैरिबियाई क्षेत्र के ट्रिनीडाड-गयाना और सूरीनाम मे, जहा भारतीय अनुवशी लोगो ने अपनी परिश्रमशीलता और सूझबूझ के कारण सास्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रो मे कल्याणकारी प्रभाव छोड रखा है, यशपालजी हमारे विशेष आमत्रण पर हम लोगो के बीच पधारे। उन्होंने हमे लिखा था, "आपके यहा तथा ट्रिनीडाड और गयाना मे भारतीय सस्कृति और साहित्य के सम्बन्ध मे सार्वजनिक व्याख्यान और गोष्ठियो का आयोजन हो सकता है, पर मैं एक-दो व्याख्यान गांधीजी और उनके सिद्धान्तो के विषय मे अवश्य देना चाहूगा। तीनो देशो के लिए मैं दस-बारह दिन निकाल लूगा।"

२९ जून, सन् १९७२ को यशपालजी अपने पुत्र सुधीर कुमार के पास कैनेडा होते हुए सुरीनाम आए। हवाई अड्डे पर प्रमुख भारतवासियो तथा तत्कालीन सरकार के प्रतिनिधि श्री अमत द्वारा उनका भव्य स्वागत हुआ। उपस्थित लोगो की भारतीयता और हिन्दी-प्रेम से प्रभावित होकर मुस्कराते हुए यशपालजी ने कहा, "यहा आने पर ऐसा लग रहा है मानो मेरा विमान भूल से कही भारत के किसी अन्य प्रान्त मे उतर गया है।"

स्वागत समिति का विचार था कि यशपालजी को किसी होटल मे ठहराया जाए, पर मेरे आग्रह पर वह हमारे यहा ठहरे। भारत लौटने पर अपनी शालीनता का परिचय देते हुए उन्होने लिखा, "आप लोगो के सान्निध्य मे जो समय बीता, वह बार-बार याद आता है। आपने और बहनजी ने अपने स्नेह और आत्मीयता से मुझे सराबोर कर दिया। प्रस्थान के समय बहनजी की आखो के आसू मेरे मन को न जाने कैसा कर देते हैं! पर ईश्वर ने जिन्हे यह वरदान दिया है, उनसे बढकर सौभाग्यशाली और कौन होगा? मेरी प्रभु से प्रार्थना है कि आप सदा सुखी रहे और सबकी दिन-दूनी-रात चौगुनी उन्नति हो।"

यशपालजी की इस अल्पकालीन पर महत्वपूण यात्रा से यह क्षेत्र लाभान्वित हो, इसके लिए प्रभावकारी योजना हमने बना ली थी। प्रसन्नता की बात यह थी कि ट्रिनीडाड और गयाना मे मेरे सहयोगी क्रमश श्री हरिशकर आदेश और श्री योगिराज के साथ ही इस क्षेत्र के प्रमुख भारतीय अनुवशी कणधारो का पूण सहयोग प्राप्त हुआ, जिनमे स्व डा श्याम अवतार (ट्रिनीडाड) डा बलवन्त सिह (गयाना) तथा डा ज्ञान अधीन, डा नन्दन पाण्डे, श्री अहमद अली, प शिवरतन, प जगदेव पराग, श्री लक्ष्मी प्रकाश मन्दू (सूरीनाम) आदि का नाम उल्लेख योग्य है। उन दिनो भारतीय हाई कमिश्नर श्री आगा (ट्रिनीडाड) और श्री हेजमदी (गयाना) के प्रतिनिधि और मागदशक भी प्राप्त हुए थे।

हम लोगो के सामने सबसे बडा प्रश्न यह था कि भारत और इस क्षत्र के अनुवशी लोगो के बीच प्रेम-भाव को सुदृढ करने मे समय-समय पर कौन-सी समस्याए उभरकर सामने आती है और उनके निवारण मे यशपालजी के सान्निध्य और प्रभाव का किस प्रकार उपयोग किया जाय। यह बात अच्छी तरह विदित हो चुकी थी कि महात्मा गाधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, दीनबन्धु एण्ड्रूज, काका साहेब कालेलकर और प बनारसीदास चतुर्वेदी के ही चरणचिह्नो पर चलकर अपनी लेखनी और यात्राओ द्वारा यशपालजी भारत और भारतवंशियो के बीच सेतु-निर्माता का शुभ काय कर रहे है।

भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् और प्रवासी भारतीयो के बीच सम्बन्ध को लेकर सवत्र चर्चा चल पडी थी। अपनी परराष्ट्र नीति मे भारत सरकार ने कहा, "हमारा इनसे कुछ लेना-देना नही है। जहा ये रह रहे है वहा की सरकार और बहुसख्यक जनता जाने कि इन्हे क्या करना है।" स्वभावत प्रवासी भारतीयो के मन मे इस तरह की आशका घर करने लगी थी, जबकि स्वतन्त्रता के पूव अखिल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस मे इनके रक्षार्थ एक विभाग की स्थापना हुई थी और यह बात उनके नेताओ को अच्छी तरह मालूम थी। साथ ही प जवाहरलाल नेहरू और मौलाना अबुल कलाम आजाद की प्रेरणा से सन् १९५० मे स्थापित भारतीय सास्कृतिक सम्बन्ध परिषद और उसके द्वारा उन-उन देशो मे, जहा प्रवासी भारतीय अत्यधिक सख्या मे बसते थे, सास्कृतिक केन्द्र खोलने की बात हमारे जैसे कार्यकर्ताओ के मन मे सदा प्रश्न बनकर खडी होती थी।

भारतवशियो के बीच एक लम्बी अवधि तक काय करने के पश्चात हमे यह स्पष्ट दिखाई पडने लगा था कि उनके राजनैतिक उत्तरदायित्व तथा सास्कृतिक आवश्यकताओ को निश्चित न कर, दो विभिन्न पहलुओ से देखना अधिक उचित होगा। सन् १९८२ मे कैरिबियाई देशो की यूनेस्को द्वारा सास्कृतिक तद्रूपता पर जमेका मे आयोजित एक समस्या-गोष्ठी मे विचार-मथन के पश्चात् जो विचार उभरकर सामने आया, वह यही था

कि किसी जाति के मौलिक विकास मे उसकी परम्परा, जीवन के प्रति उसकी मान्यताए, कलात्मक कृतियां, सामाजिक सरक्षण और भाषा आदि, उनका सम्बन्ध तब कितना भी क्षीण क्यो न हो, अपना सौष्ठव-प्रभाव छोडकर ही रहते हैं।

यशपालजी से चर्चा करके हम सब प जवाहरलाल नेहरू के अन्तिम दिनो मे लिखे उस पत्र के बारे मे जो उन्होंने अपने स्वर्गवास के दो दिन पहले लिखा था, यह जान पाए थे कि इस पत्र में उन्होने प्रवासी भारतीयो के प्रति शुभेच्छा व्यक्त करते हुए प्रवासी-भवन के लिए जमीन दिलवाने की बात कही थी। साथ ही 'अवर कण्ट्रीमैन अब्रॉड' नामक पुस्तक की भूमिका मे उन्होने लिखा था, "यह बात सत्य है कि भारत ने अपनी प्रवासी सन्तानो को कदापि भुलाया नही है, लेकिन साथ-ही-साथ यह भी सत्य है कि यह देश उनके बारे मे अधिक दिलचस्पी ले सकता था। महात्मा गाधी के उल्लेखयोग्य अपवाद को छोडकर हमारे देश के अनेक नेताओ का निजी ज्ञान प्रवासी भारतीयो के बारे मे न कुछ के बराबर है और जब कभी वे विदेश जाते हैं तो वे यूरोप तथा अमरीका की ही यात्रा करते हैं।" अब हमे स्पष्ट हो गया था कि पं जवाहरलालजी द्वारा भारत-वशियो को राजनैतिक सुदृढता के लिए दी गई सलाह के साथ ही सास्कृतिक तथा सामाजिक धरातल पर उन्हे शक्ति प्रदान करने की बात भी उनके मन मे सदा रही थी।

यशपालजी के सूरीनाम मे आगमन के दूसरे दिन 'रेडक्रॉस सोसायटी' के सभागार मे सास्कृतिक नारी-समाज द्वारा आयोजित सार्वजनिक समारोह मे उनका भारतीय सस्कृति पर भाषण हुआ। भारतवशियो को उद्‌बोधन करते हुए उन्होने कहा, "आपके पूर्वज जिन कठिन परिस्थितियो मे यहा लाये गए, और नाना प्रकार की मुसीबतो का सामना करते हुए उन्होने जिस प्रकार उस देश को सरसब्ज किया, यह सवविदित है। जाति, भाषा, धम और रग आदि के भेदो के होते हुए भी भारतीय सस्कृति के अमूल्य सन्देश 'अनेकता मे एकता' का अनुभव करते हुए वे जिस सद्‌भावना के साथ आगे बढ रहे है, वह किसी भी देश के लिए अनुकरणीय बन सकता है।" साथ ही भारतवशियो के प्रति भारत सरकार के उत्तरदायित्व का निर्देश करते हुए उन्होने कहा, "सच बात यह है कि आज विदेशो मे जो भारतीय सस्कृति दिखाई देती है, उसका मुख्य श्रेय प्रवासी भारतीयो को है। भारत सरकार को पूरी तरह उनकी सहायता करनी ही चाहिए। इस सहायता से हमारा मतलब यह नही है कि वह विभिन्न देशो की राजनीति मे भारतीयो को ऊचा स्थान दिलवाने के लिए सघष करे। हमारा आशय यह है कि वह कुछ ऐसा उपाय करे, जिससे भारतवशी अनुभव करे कि भारत सरकार उनकी समस्याओ के प्रति उदासीन नही है। उनके साथ सम्बन्ध बढाए और उनमे इन भावनाओ का विकास करे कि वे मानव-जाति को एक-दूसरे के निकट ला सके।"

बाद मे अनेक समारोहो और गोष्ठियो मे उन्होने इस बात पर बराबर जोर दिया कि प्रवासी भारतीयो को अपने मूल उद्‌गम के देश भारत के अधिकाधिक निकट आना चाहिए।

भाषणो और गोष्ठियो के साथ ही हमने सोचा कि यशपालजी को इस देश के आन्तरिक स्थलो का भी भ्रमण कराया जाए, जिससे वे यहा की प्राकृतिक शोभा के साथ ही वन्य जातियो के जीवन को भी देख सकें। १ जुलाई इस देश मे मुक्ति दिवस के रूप मे मनाई जाती है और उस दिन सार्वजनिक छुट्टी रहती है, क्योकि उस दिन ही सन् १८६३ मे दास-प्रथा का अन्त हुआ था। हम यात्रा पर निकले। सूरीनाम सरकार की ओर से सारा प्रबन्ध किया गया था। कुल मिलाकर लगभग २२० किलोमीटर की यात्रा की थी। उसी दिन हमे पारामारीबो लौटना था, अत मोटरो द्वारा हम सब प्रात काल ही निकल पडे। साथ मे एक द्विभाषिया भी था, जिससे भाषा का प्रश्न अडचन पैदा न कर सके।

लगभग ६० किलोमीटर की यात्रा के पश्चात् हम सब 'काका' नामक स्थान पर पहुचे। मुख्य सडक पर

मोटरगाडियो को छोडकर आधे घटे की पद-यात्रा के पश्चात् बुश-नीग्रो गाव मे पहुच गए। दास-प्रथा का अत होने के बाद गन्ने के खेत मे काम करने वाले अफ्रीकी दासो का एक भाग तो शहर चला गया, जिसके वशज आगे चलकर 'क्रियोल' के नाम से पुकारे जाने लगे। दूसरा भाग जगलो मे जाकर अफ्रीकी तौर-तरीके पर रहने लगा। इनके वशज बुश-नीग्रो के नाम से जाने जाने लगे। ये अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति शिकार और छोटी-मोटी खेती से करते है। लकडी पर इनके हाथ का काम बहुत ही कलात्मक होता है। देश-विदेश मे इनकी बडी माग है। इधर कुछ समय से इनके अन्दर शिक्षा का प्रचार और प्रसार हो रहा है।

पहले से सूचना भेज दी गई थी। अत गाव के प्रधान अपने साथियो सहित मिले और बहुत ही आव-भगत के साथ गाव मे ले गए। साथ चलने वाले लोगो मे एक नौजवान के हाथ पर बधी पट्टी को देखकर स्वभावत मन मे उत्सुकता उत्पन्न हुई कि उसका हाथ क्यो बधा है। पूछने पर पता चला कि इन लोगो को अपनी साधना पर बडा विश्वास है। साधना पूरी होने पर तीव्र शस्त्र-प्रहार से शरीर की कोई क्षति नही होती। इस धारणा की परीक्षा के लिए प्रहार किया और परिणाम यह हुआ कि नौजवान का हाथ कट गया। पर उसने यह मानकर सतोष कर लिया कि उसकी साधना मे अभी कमी रह गई है।

थोडे समय मे उनकी सास्कृतिक और सामाजिक गतिविधियो की झाकी लेकर हम विदाई के लिए उद्यत हुए। तभी देखते क्या है कि एक अधेड उम्र के व्यक्ति बहुत ही रोष मे आकर न जाने क्या-क्या कह रहे थे। उनके शान्त होने पर द्विभाषिये ने बताया कि शहर से आए हुए सरकारी कर्मचारियो को सबोधित कर उन सज्जन ने कहा था, "तुम सरकारी लोगो को दूर देश मे बसने वाले इन अतिथियो से शिक्षा लेनी चाहिए। ये कहा-कहा से आकर हमारे विषय मे सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं और एक तुम लोग हो जो उदासीनता के साथ बर्ताव करते हो।"

हम पुन उस स्थान पर आ गए, जहा हमने अपनी मोटरे छोडी थी। हमारे बैठते ही मोटरें तीव्र गति से चलने लगी। हमारी दायी ओर ऊची-ऊची तरगो द्वारा अट्टहास करता हुआ अतलातिक सागर था और बायी ओर भयकर जगल। १,६२,८०० वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र वाला इस देश का ८० प्रतिशत भू-भाग घने जगलो से, जिसमे बहुमूल्य लकडिया हैं आच्छादित है। यहा की कुल आबादी लगभग साढे चार लाख है, जिसमे से लगभग २५ प्रतिशत लोग सन् १९७५ मे स्वतत्रता के अवसर पर हालैण्ड चले गए। देश के अनिश्चित भविष्य और हालैण्ड मे आर्थिक सुख-सुविधाओ को ध्यान मे रखकर लोगो ने यह कदम उठाया। सूरीनाम मे रहते हुए भी हालैण्ड की नागरिकता को सभी सुविधाए प्राप्त है।

लगभग एक घटे की यात्रा के पश्चात् हम 'आफोबाका' नामक स्थान पर पहुच गए। यह सूरीनाम का एक बहुत ही रमणीय स्थान है। सूरीनाम नदी इस स्थान पर एक झील का निर्माण करती है। यहा पर एक बाध बाधकर जल-विद्युत की उत्पत्ति की जाती है और इसका कुछ भाग कल-कारखानो को चलाने मे तथा कुछ भाग नगरपालिका द्वारा उपयोग मे लाया जाता है। वहा के अधिकारियो ने लगभग दो घटे तक छोटी-मोटी अल्यूमिनियम की बनी नावो मे झील का भ्रमण कराया और विद्युत-केन्द्र के कल-पुर्जों का विस्तृत विवरण दिया। फिर हम शहर लौटे तो सूर्यदेव अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर चुके थे।

दूसरे दिन इन पक्तियो के लेखक द्वारा चलाई जाने वाली हिन्दी कक्षा को देखने यशपालजी गए। गयाना मे पाच वष का कार्यकाल समाप्त कर जब मैं १९६१ मे सूरीनाम पहुचा, तब हिन्दी प्रचार-प्रसार का कार्य धीमा पड गया था। यहा की प्रमुख सस्थाओ द्वारा प्रयत्न तो चल रहा था, पर व्यवस्थित पाठ्यक्रम के अभाव मे परिणाम नगण्य ही आ रहा था। गाव-गाव मे लगभग १३५ पाठशालाओ का प्रारम्भ हुआ और हिन्दी-सेवियो की एक शक्तिशाली जमात तैयार हुई, जो नि स्वार्थ भाव से हिन्दी साहित्य और भाषा के प्रसार

के कार्य को प्राणपण से समुचित दिशा मे ले जाने लगी। एक दशक के भीतर ही परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में लगभग ६० हजार व्यक्ति, जिनमे सभी जातियों के लोग थे, हिन्दी प्रचार के काम से लाभान्वित हुए। स्थानीय तथा भारतीय परीक्षाओ मे लोग हजारो की सख्या मे सम्मिलित होकर सफलता प्राप्त करने लगे।

हिन्दी की कक्षा के विद्यार्थियो को उद्बोधन करते हुए यशपालजी ने कहा, "हिन्दी की बडी सम्भावनाए हैं। वह भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, उसे आगे बढ़ाने के लिए अनेक देश प्रयत्नशील हैं। हिन्दी हृदय की भाषा है, प्रेम की भाषा है। वह दिलों को जोडती है। आप बधाई के पात्र हैं, जो हिन्दी का सवर्द्धन कर रहे हैं। आगे भी बराबर करते रहिए। आपका भारतीय सस्कृति से गहरा सम्बन्ध है। हिन्दी इस सम्बन्ध को और भी परिपुष्ट करेगी।" उन्होने उत्तीर्ण छात्रो को प्रमाण-पत्र और पुरस्कार वितरित किए।

लगभग एक सप्ताह की सूरीनाम की अपनी यात्रा समाप्त करके यशपालजी गयाना चले गए। उनकी इस यात्रा ने यहा के निवासियो, विशेषतया भारतवशियो के अन्दर उत्साह की अपूर्व लहर पैदा कर दी, जिसका उपयोग स्थायी रचनात्मक कार्यों मे भरपूर किया गया। प्रसन्नता की बात है कि सूरीनाम के एक भारतवशी स्व रघुनन्दन तिवारी ने अपने माता-पिता की पुण्य स्मृति मे जो भारत से शर्त बन्द मजदूर बनकर सूरीनाम आए थे, छह हजार वर्गमीटर जमीन का दान दिया। आज लगभग ४० लाख रुपये की लागत से 'माता गौरी सस्थान' का भवन निर्मित होकर मानवीय सद्भावना का परिपोषण करता हुआ विभिन्न साहित्यिक और सास्कृतिक गतिविधियो के एक शक्तिशाली केन्द्र-बिन्दु के रूप मे कार्यरत है।

यशपालजी आज दिल्ली मे बैठे हैं, किन्तु सूरीनाम के अनगिनत भाई-बहन उन्हे याद करते हैं और चाहते हैं कि वह फिर आए। उनकी वर्षगाठ पर हम सबकी आन्तरिक मगल कामनाए।

चीन मे चौदह दिन

याग क्विलियाग

□□

मुझे यह जानकर बेहद खुशी है कि श्री यशपाल जैन सितम्बर (१९८४) मे बहत्तर वर्ष पूरे कर रहे हैं। मैं उन्हे हार्दिक बधाई देता हू और अपनी मगल कामनाए भेजता हू। मैं लेखक नही हू, अच्छी तरह लिख भी नही सकता। लेकिन मित्र के रूप मे इस स्मरणीय अवसर पर कुछ शब्द लिखकर भेजने से अपने को रोक नही सकता। यह एक सक्षिप्त-सी रचना है, किन्तु इसमे मेरी वास्तविक भावना समाहित है।

आज की दुनिया मे लोगो मे दिन-प्रतिदिन सहयोग बढ रहा है, फिर भी विद्वेष आज भी बना हुआ है। ऐसी हालत मे विभिन्न देशो के निवासियो के बीच समझ और मैत्री का बडा मूल्य है और सब उसकी कामना करते हैं।

समझ और मैत्री थोडे ही समय मे अर्थात् दो सप्ताह के सक्षिप्त निवास मे भी स्थापित की जा सकती है। श्री यशपाल जैन चीन मे २५ सितम्बर से ७ अक्तूबर, १९८३ तक रहे। वह दिल्ली राज्य समिति की भारत-चीन परिषद के सद्भावना-प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप मे आए थे। इस मण्डल के अध्यक्ष श्री शिवचरण गुप्त थे। मुझे इस दौरे के दरमियान माग-दर्शक होने का सौभाग्य मिला। मैंने चौदह दिन श्री यशपाल जैन के साथ व्यतीत किये। हम लोग बीजिंग से दक्षिण दिशा मे नानचिंग गये। वहां से झील की नगरी वुसी की यात्रा की। फिर चीन के सबसे बडे, उद्योग और वाणिज्य नगर, शाघाई पहुचे, जो पूर्वीतट पर है, अत मे चीन के दक्षिणी द्वार गागज का कार्यक्रम रहा।

इस प्रवास मे श्री जैन ने फैक्टरिया देखी, देहात और वहा का जीवन देखा, शैक्षणिक सस्थान देखे, प्राकृतिक सौंदय के स्थल देखे, ऐतिहासिक स्मारक देखे और लेखको तथा पत्रकारो आदि से विचार-विमर्श किया। कह सकता हू, हमने एक-दूसरे को जाना और हमारे बीच समझ तथा मैत्री का सूत्र मजबूत हुआ।

जिनमे आयु का अतर है, जिनकी पृष्ठभूमि भिन्न है और जिनकी रुचियो मे भेद है, समझ और मैत्री उनके बीच भी सुदृढ़ हो सकती है। श्री जैन विद्वान है, सुशिक्षित है, सुसस्कृत और परिष्कृत है, और मजे-मजाए यात्री हैं। वय मे भी वह काफी आगे है, जबकि मैं किशोरावस्था मे हू, अनुभव भी मुझे नही है और मेरा ज्ञान भी सीमित है। फिर भी वह इतने कृपालु, भद्र और सबसे हिल-मिलकर चलने वाले व्यक्ति हैं कि मुझे न तो उनके साथ उम्र का अतर अनुभव हुआ और न यह कि मैं दूसरे धम को मानने वाला हू। हमारे बीच पूर्ण सौमनस्य रहा। हमने अनेक विषयो पर विचार-विनिमय किया, हमने अपनी पारस्परिक समझ को गहरा किया और अपने बीच हार्दिक मित्रता स्थापित की।

सच्ची दोस्ती स्थायी होती है। वह देश-काल और राजनैतिक विश्वासो से ऊपर होती है। श्री जैन के चीन-प्रवास को लगभग एक वष होने को आया है। इस अवधि मे हम लोगो ने पत्र-व्यवहार द्वारा सम्पक बनाए रखा है, किन्तु सबसे बडी बात यह है कि हमे एक-दूसरे की बराबर याद आती रहती है। मुझे विश्वास है कि हमारी मित्रता कम नही होगी, बल्कि ज्यो-ज्यो समय बीतेगा, वह और भी समृद्ध होती जाएगी।

एक पुरातन चीनी कहावत है, "आदमी के लिए सत्तर तक पहुचना दुलभ है।" अब समय बदल गया है और मनुष्य की आयु की सीमा बहुत बढ गयी है। श्री जैन जब चीन मे थे, वह ७१ के हो चुके थे, लेकिन उनमे उमग और ऊर्जा छलछला रही थी। वह महान् दीवार (ग्रेट वाल) के बादलिग खण्ड की अतिम और सबसे ऊची चौकी तक चढकर गए और नानचिंग मे डा सनयात सेन के मकबरे पर ३९० से अधिक सीढिया पार करके पहुचे।

अब श्री यशपाल जैन ७२ वर्ष पूरे कर रहे हैं। इस स्मरणीय अवसर पर मैं न केवल आतरिक बधाई देता हू, अपितु कामना करता हू कि यह मगल दिवस उनके जीवन मे बार-बार आए।

जीवन के विविध सोपान

हमारे विशेष आग्रह पर यशपालजी ने इस खण्ड की सामग्री को तैयार किया है। इसमें उन्होंने अपने जीवन के विकास की कहानी बड़े रोचक तथा प्रभावशाली ढंग से दी है। ग्रामीण परिवेश तथा परिवार से उन्हें जो संस्कार बचपन में प्राप्त हुए, उनको उन्होंने किस प्रकार सींचा और किस प्रकार उनमें निरन्तर वृद्धि की, उसका विशद वर्णन इसमें मिल जाता है। वस्तुत. यशपालजी के जीवन-विकास की यह एक ऐसी गाथा है, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पाठकों को अपने जीवन में सत् और असत् के बीच अंतर करके सत् को ग्रहण करने की प्रेरणा देती है।

जीवन के विविध सोपान

बाल्यकाल

मेरा बाल्यकाल देहात मे बीता। इसे मैं बहुत बडा वरदान मानता हू। हमारा देश चद शहरो मे नही, लाखो गावो मे बसता है, उसकी कल्पना तो बहुत बाद मे हुई, लेकिन ग्रामीण जीवन का जो सुखद चित्र मेरे मन पर उस समय अकित हुआ, वह कभी धुधला नही पडा। यह कहने मे तनिक भी अतिशयोक्ति न मानी जाय कि आज मैं जो कुछ हू, उसके पीछे बचपन के मेरे सस्कारो का बहुत बडा हाथ है। अलीगढ जिले का विजयगढ़ कस्बा उन दिनो बहुत छोटा था। उससे सटे बीझलपुर गाव मे, जहा मेरा जन्म हुआ था, मुश्किल से पाच-सात सौ घर रहे होगे, पर उसमे विभिन्न जातियो के लोग थे—ब्राह्मण, वैश्य, मुसलमान, हरिजन आदि-आदि। उनके अतिरिक्त गाव की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए जिन धधो की जरूरत थी, उन धधो को चलाने वाले भी वहा मौजूद थे। परचूनी की दो-तीन दुकानें थी, बढई, लुहार, जुलाहे, धोबी, नाई, धीमर इत्यादि थे। इस विविधता के बीच जबर्दस्त एकता थी। सारा गाव एक विशाल कुटुम्ब की तरह था। यह नही कि आपस मे कभी टकराहट नहीं होती थी। लडाइया होती थी, लाठिया तक चलने की नौबत आ जाती थी, लेकिन कुल मिलाकर गाव के लोगो मे सौमनस्य था। अमीर-गरीब और ऊच-नीच का भाव होते हुए भी वे एक-दूसरे के सुख-दु ख मे काम आते थे, मिलकर पर्व-त्योहार मनाते थे और हारी-बीमारी मे कभी किसी को अकेलापन या बेबसी अनुभव नही होती थी। हमारा परिवार जैन है, किन्तु हिन्दुओ के सारे व्रत और त्योहार हमारे यहा मनाये जाते थे।

सबके अपने-अपने काम-धधे थे। दिन भर लोग उनमे व्यस्त रहते थे और शाम को बुजुर्ग लोग हमारे या मुखिया के चबूतरे पर इकट्ठे हो जाते थे। रात को देर-गये तक घर-परिवार से लेकर जाने कहा-कहां तक की चर्चाए होती थी। यदि गाव मे कोई घटना हो जाती थी तो उसका भी सागोपांग विवेचन हो जाता था। अदालतें थी, पर उन तक जाने मे लोग प्राय सकोच करते थे, दहशत खाते थे। सगीन-से-संगीन मामला

भी बडे-बूढ़ों की उस बैठक मे निबटा दिया जाता था। फैसला करने वालो मे पढ़े-लिखे लोग बहुत थोडे थे, लेकिन उनमे इतनी सहज-बुद्धि थी कि समस्या की तह तक पहुच जाने मे उन्हे कठिनाई नही होती थी। फैसले मे महीनो या सालो नही लगते थे, तत्काल निर्णय दे दिया जाता था।

मेरे पिता उस गाव के पटवारी थे और पटवारी उन दिनो गाव का राजा होता था, शायद आज भी होता है। इसलिए बहुत से मामले उनके सामने आते रहते थे। मुझे याद है, शाम का और रात को ११-१२ बजे तक का उनका अधिकाश समय अक्सर ऐसे ही मामलो के निबटाने मे जाता था।

गाव के घर सादे थे और लोग भी सादे थे। सादगी से रहते थे। उनके जीवन में किसी प्रकार का आडम्बर नही था। चीजें सस्ती थी। थोडे मे गुजर हो जाती थी। बिजली नही थी। घरो के बाहर छायादार पेडो के नीचे चारपाई डालकर छोटे-बडे आराम से बैठते थे और वही सो जाते थे।

पुरुषो की भाति स्त्रियो का भी अपना मिलन-स्थल था और वह था पनघट। सबेरे-शाम, बडे घरो की स्त्रियो को छोडकर, शेष सब पानी के बतन लेकर निकटवर्ती कुए पर इकट्ठी हो जाती थी और आपस मे घर-बाहर की भली-बुरी सारी बाते कर लेती थी।

वस्तुत वह एक खुशगवार दुनिया थी, जिसमें सतोष था और प्यार-मोहब्बत थी। किसी के घर मे लडकी का विवाह होता था तो सारा गाव मदद के लिए दौड पडता था। उस घर की इज्जत सारे गाव की इज्जत होती थी। किसी के यहा गमी होती थी तो सारा गाव उसमे शरीक होता था।

यह चित्र आज भी मेरे मानस-पटल पर न केवल गहरा अकित है, अपितु मुझे प्रेरणा भी देता है। हिन्दू-मुसलमानो मे इतना मेल था कि यह पहचान करना कठिन था कि कौन हिन्दू है, कौन मुसलमान है। सब एक-दूसरे को 'चाचा', 'ताऊ' कहकर पुकारते थे। छुआ-छूत थी, हमारे आगन मे जमादार एक खास जगह तक ही आ सकता था, उससे आगे नही, नाई हमारे घडे नही छू सकता था, लेकिन उन अछूतो के प्रति सब लोगो मे आत्मीयता थी और अछूत लोग भी सवर्णों के प्रति आदर रखते थे।

इस प्रकार मानवीय मूल्यो के बीज मेरे भीतर उसी काल मे पडे और धीरे-धीरे पल्लवित होते गये। आज उन मल्यो मे मेरी जो गहन आस्था है, वह बचपन के सस्कारो का परिणाम है। सादगी का जीवन आज भी मुझे बेहद प्रिय है, और सर्व-धम-समभाव को मै बहुत ऊचा स्थान देता हू।

प्रकृति का आजन्म प्रेमी हू। इसकी प्रेरणा भी मुझे बचपन से ही मिली। गाव के हरे-भरे खेतो के बीच, मुक्त आकाश के नीचे, बरगद और नीम की घनी छाया मे मेरे जीवन के जो वष बीते, वे आज भी मुझे प्रकृति से जोडे हुए रखते है। वही प्रेरणा मुझे खीच कर बार-बार हिमालय मे ले गई है और उसी ने अनेक बार मुझसे देश की परिक्रमा कराई है। दिल्ली के कोलाहल-भरे वातावरण से जब मेरा मन ऊब जाता है तो हिमालय मुझे पुकारता है, हिन्द महासागर मुझे आवाज देता है, और मै वहा जाने के लिए छटपटा उठता हू। गाव के मधुर चित्र मेरी आखो के सामने आ जाते है।

बचपन की बहुत-सी घटनाए अब विस्मृत हो गई हैं, फिर भी कुछ घटनाए आज भी याद हैं। हम लोग बडे शैतान थे। पढने मैं मन कम लगता था, खेल-कूद मे अधिक। पास के गाव मे पढ़ने जाते थे। रास्ते मे पगडडी के इधर-उधर बहुत-से खेत बिछे होते थे। फसल के दिनो मे हमारी बाल टोली खूब हरे चने और मटर खाया करती थी। कभी-कभी देर हो जाती तो पाठशाला जाना गोल कर जाते थे और इधर-उधर मटरगश्ती करके शाम को घर लौट आते थे। उसके लिए कई बार मार भी खानी पडती थी, पर चने मटर के खेतो को देखते ही मन को रोका नही जा सकता था।

रास्ते का एक और आकर्षण थी झरबेरी की झाडियां। बेरो के मौसम मे वे पीले, लाल और हरे बेरो

से लद जाती थीं। पाठशाला से लौटते समय हमारा नित्य का काम होता था बस्ता, कलम, दवात और पट्टी को एक ओर पटक कर बेर खाना। कई बार ऐसा होता था कि कोई लडका चुपचाप दवात उठाकर ले जाता था। घर आकर मैं अम्मा से कह देता कि स्कूल मे दवात चोरी हो गई। मा पैसे दे देती और मैं नई दवात खरीद लाता।

जब बहुत बार ऐसा हो गया तो एक बार अम्मा ने खीज कर कहा, "क्यो रे, तेरे स्कूल मे सब चोर ही हैं क्या ? पर तू तो किसी की दवात उठाकर लाता नही !"

अम्मा ने यह बात सहज भाव से कही थी, पर मैंने उसका और ही अर्थ लगाया। एक-दो दिन दाव देखता रहा और फिर मौका मिलते ही कई दवातें उडा लाया। बडी बहादुरी से मा के सामने रखते हुए कहा, "अम्मा, तूने उस दिन कहा था कि तेरे स्कूल मे सब चोर ही हैं क्या ? पर तू तो कभी किसी की दवात उठाकर लाता नही, सो यह ले, आज इतनी दवातें ले आया हू !"

मेरा इतना कहना था कि अम्मा ने बडे जोर से अपने माथे पर हाथ मारा, फिर क्षण भर मेरी ओर देखकर रुधे गले से बोली, "कम्बखत, मैं नही सोचती थी कि तू इतना मूर्ख है और मेरी बात का यह मतलब लगा लेगा !" इतना कहते-कहते अम्मा की आखो से आंसू टपकने लगे। अपने बेटे की नालायकी से उन्हे जो दु ख हुआ, वह तो हुआ ही, पर उससे भी अधिक दु ख उन्हे यह सोचकर हुआ कि उन्होने ऐसी बात कही क्यो ?

मेरे सारे उत्साह पर पानी फिर गया। अम्मा की बात ने और उनके आसुओ ने मुझे हतप्रभ कर दिया।

थोडी देर मे अम्मा ने सभलकर कहा, "ये सारी दवातें लेकर तू अभी मुशीजी (पाठशाला के हैड मास्टर) के पास जा और लौटाकर माफी माग कर आ। अगर तेरे चाचाजी (पिताजी) को मालम हो गया तो तेरी खाल उधेडकर रख देंगे। जा, फौरन जा।"

पिताजी स्वभाव के बडे उग्र थे। उनसे हम सब भाई कापते थे। मारे डर के मैंने सारी दवाते उठाई और मील-डेढमील दौडकर पाठशाला पहुचा। सयोग से मुशीजी मिल गये। उन्हे देखते ही मेरी हिलकी वध गई। रोते-सुबकते मैंने उन्हे सारी बात कह सुनाई। मुशीजी भी बडे सख्त थे। झाऊ की कमची लेकर इतनी मार लगाते थे कि बेहाल कर देते थे। पटवारी का लडका होते हुए भी अपनी शरारतो के लिए मैंने जाने कितनी बार उनसे मार खाई थी।

पर उस दिन जाने क्या सोचकर मुशीजी ने मेरी पीठ पर हाथ फिराया और बोले, "कोई बात नही है। कभी-कभी बच्चो से गलती हो ही जाती है। आइदा ऐसा मत करना।"

पिताजी किसी दूसरे गाव गये थे। मुशीजी से छुट्टी पाकर मैं डरता-डरता घर आया कि कही पिताजी लौट न आये हो, पर मेरी खुशकिस्मती थी कि यह नही लौटे थे। अम्मा के पास जाकर मैंने सारी बात कही तो फिर उनकी आखें भर आईं। बोली, "बेटा, अच्छे लडके ऐसा नही करते।"

यह घटना यो देखने मे बडी सामान्य-सी थी, पर उसका मेरे मन पर इतना असर हुआ कि मैंने अपने जीवन मे फिर कभी किसी से बिना पूछे कोई चीज नही ली।

एक घटना और है, जिसने मेरे जीवन पर स्थायी प्रभाव डाला। मेरे पिताजी हुक्का पिया करते थे। बहुत बडी फर्शी थी, जिसमे एक लम्बी नगाली थी। ठीक वैसी ही थी जैसी नवाब लोग इस्तेमाल किया करते थे। मेरा ध्यान फर्शी की ओर कौतूहल-वश गया, फिर मन हुआ कि एक कश खीचकर देखा जाय। पिताजी जैसे ही पीकर बाहर गये कि मैंने नगाली हाथ मे लेकर एक कश लगाया। जैसे ही धुआ पेट मे गया

कि बुरी हालत हो गई। खासी आई, आखे लाल हो गईं, चेहरा तमतमा उठा और उल्टी होने को हुई। अम्मा ने यह सब देखा तो बोली, "तुझे हो क्या गया है ? ऐसे काम क्यो करता है ?"

अम्मा की बात मैंने अनसुनी कर दी। उसका डर तो हमे कभी लगा ही नही। फर्शी को फिर आजमाया। थोड़ा अनुभव हो गया था, इससे दूसरी बार हालत उतनी नही बिगडी। फिर तो अम्मा के मना करते-करते एकाध दम लगा ही लेता था। जब अम्मा ने देखा कि मैं नही मान रहा हू तो उन्होने पिताजी से इसकी शिकायत कर दी। तब पिताजी ने जो किया, वह मेरे लिए अप्रत्याशित तो था ही, उनके स्वभाव के सर्वथा विपरीत था। स्वय जाच करने के लिए फर्शी को पीकर खूब तेज किया और बाहर चले गये। मैं तो दाव देख ही रहा था। उनके जाते ही फर्शी पर पहुच गया और जोर से जो दम लगाया तो फौरन उल्टी हो गई। उसी समय पिताजी आ गये। बोले, "क्या हुआ ?" मुझे काटो तो खून नही! सदा की भाति अम्मा ढाल बनी। कह दिया, खाने मे कुछ ऐसी-वैसी चीज खा गया दीखता है।

पिताजी ने एक शब्द नही कहा। मुझ पर एक निगाह डालकर बाहर चले गये। मेरे खोये प्राण लौट आये। शाम हुई। चबूतरे पर लोगो की भीड इकट्ठी हुई। नौकर ने पिताजी के लिए फर्शी लगा दी। पिताजी ने मुझे बुलवाया। मैं बाहर आया। पिताजी ने एक खाली मूढे की ओर सकेत करके कहा, बैठ जाओ।" डरते-डरते मैं बैठ गया। पिताजी ने फर्शी की नगाली मेरी ओर बढ़ा दी और बोले, "अगर हुक्का पीते हो तो लो, सबके सामने पीओ। छिपाकर क्यो पीते हो ?"

मन हुआ कि धरती फट जाय तो उसमे समा जाऊ। गाव के बुजुर्गों ने सामने यह क्या हुआ ? इतना अपमान तो मैंने पहले कभी नही सहा था। मेरी हिलकी बध गई और मैं उठकर अदर चला गया। वह दिन था कि आज का दिन है, मैंने हुक्का या सिगरेट-बीडी छुई तक नही। पिताजी की मार से जो बात न होती, वह उनकी होशियारी ने कर डाली। पिताजी के निधन के उपरान्त उनके चरणो मे अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते समय मैंने इस घटना का उल्लेख बडी धन्यता अनुभव करते हुए किया था। आज भी वही धन्यता अनुभव हो रही है।

एक घटना का और उल्लेख करने का लोभ सवरण नही हो रहा है। यह घटना उस समय की है, जब मैं गाव की पढाई पूरी करके आगे की पढ़ाई के लिए विजयगढ चला गया था। मेरे माता-पिता पान और तम्बाकू खाया करते थे। मैंने तम्बाकू तो कभी नही खाया, पर पान खूब खाता था। उस समय आज की तरह दात साफ करने के लिए क्रीम-ब्रुश तो थे नही, योही मिट्टी से दाता को मल लेते थे। नतीजा यह कि दात पूरी तरह साफ नही होते थे, उन पर मैल जम जाता था। मेरे साथ भी वही हो गया था। मेरे दातो पर मैल जम गया था।

एक दिन स्कूल गया। एक मास्टर मुझे बहुत प्यार करते थे। पढाते-पढाते उन्हे जाने क्या सूझा कि उन्होंने मुझसे कहा, "बेच पर खडे हो जाओ।" मेरी कुछ भी समझ मे नही आया। आखिर मैंने ऐसी क्या गलती की है, जो मुझे यह सजा मिल रही है ? पर मास्टरजी के आदेश की अवहेलना करना सभव नही था। बैच पर खडा हो गया। मास्टरजी ने कहा, "दात दिखाओ।"

मैंने मुह खोलकर दात दिखा दिये। मास्टरजी ने वग के लडको को सम्बोधित करते हुए कहा, "जरा इन हजरत के दात देखो। कितना सुन्दर लडका है और दात !"

मारे शम के मेरा सिर नीचा हो गया। बडा बुरा लगा, पर उन मास्टरजी का मैं आभार माने बिना नही रह सकता। इस घटना के बाद मैंने तीस दशक तक पान नही छुआ। दिल्ली आने पर वह प्रतिज्ञा टूटी। अब महीनो मे किसी ने पान दे दिया तो खा लिया, अन्यथा नही।

बीझलपुर के घर का आंगन बहुत बडा था। वैसे गाव मे और विजयगढ मे हमारी बहुत सी खेती थी, पर मैंने शौकिया आंगन मे मक्का बोई। लौकी, तोरई, काशीफल आदि पैदा किये। कुछ फूल भी उगाये। हरियाली मन मे बस गई। आज भी दिल्ली मे जहां रहता हू, वहा मैंने बहुत से गमलो और ड्रमो मे पारिजात, मल्लिका, रात की रानी, मनीप्लांट आदि लगा रक्खे हैं। बिना हरियाली के जीवन अधूरा-सा लगता है। मुझे याद है, गाव मे हमारे घर के ठीक सामने एक बडा पेड था नीम का। उससे खूब छाया रहती थी। हमने चबूतरे के किनारे नीम का एक पौधा और लगाया। बहुत वर्ष बाद जब मैं अपनी जन्म-भूमि के दर्शन के लालच से गाव गया तो वहा सबकुछ बदल गया था। केवल हमारे लगाए नीम के उस पौधे से, जो अब बडा पेड हो गया था, अपने घर को पहचान सका।

ये तथा और दूसरी घटनाए याद आ जाती हैं तो पुराना जमाना आखो के आगे घूम जाता है। मेरा एक-मात्र बेटा सुधीर कैनेडा मे है। मैंने उसे प्रेरित किया कि वह खूब हरियाली के बीच कोठी खरीदे। उसने वही किया। जब मैं वहा गया तो देखा, ठीक वैसी ही कोठी है, जैसी मैं चाहता था। आज भी मेरा मन करता है कि हमारे देश के एक भी नागरिक को ऐसी कालकोठरी मे न रहना पडे, जहा न हवा और धूप पहुचती हो और न खुला आसमान दीखता हो। शहरो मे आबादी के जमाव से अधिकाश लोग ऐसा ही जीवन बिताते हैं। उसे देखकर मेरा मन चीत्कार कर उठता है।

हमारे नाना के कोई लडका नही था। वह पहले बरौली और बाद मे बाजगढ़ी की रियासतो मे दीवान थे। मेरे बडे भाई और मैं कुछ दिन नाना के साथ रहे। हमारे रहने की कोठी किले के अंदर ही थी। वहा के जीवन की एक बात याद करके आज हसी आती है। हमारे नाना, जब वहा दरबार लगता था, तो हमे अचकन, चूडीदार पायजामा, गुरगाबी जूता और सेला पहनाकर साथ ले जाते थे। मेरा दम घुटता था। वह सारा वैभव मुझे सुहाता नही था।

कुछ समय वहा रहने के बाद हम विजयगढ़ लौट आए, किन्तु नाना के स्वाभिमान और नानी के वात्सल्य से ओत-प्रोत जीवन को मैं कभी भुला नही पाया।

विजयगढ़ मे हमारे बहुत से सबधी थे। बीझलपुर और विजयगढ मे हमारे बहुत बडे घर थे। विजयगढ मे हम और हमारे निकट के ताऊ और चाचा अपने परिवार के साथ एक ही घर मे रहते थे। सबके चूल्हे अलग थे, पर कुटुम्ब एक था। कुछ ही कदम पर हमारे मौसा का घर था और उसी से सटी हमारे फूफा की विशाल हवेली थी। फूफा के पिताजी बहुत बडे जमीदार थे। उनका और हमारा घराना बडा समृद्ध था। बिरादरी मे बडे आदर की दृष्टि से देखा जाता था। बीझलपुर की तरह वहा भी हमारे बाग-बगीचे और खेती-बारी थी। असल मे हमारा पुश्तैनी घर तो विजयगढ मे ही था।

स्थान-परिवतन के साथ हमारी शैतानियां और बढ गईं। मेरी बुआ का लडका अक्षय कुमार जो बाद मे 'नवभारत टाइम्स' का सम्पादक हुआ, मेरा साथी बन गया। वह मुझसे उम्र मे थोडा छोटा था, पर शरारतो मे बराबर साथ देता था। उन दिनो क्रिकेट आदि खेलो का चलन नही था। कबड्डी और गिल्ली-डडा खूब चलते थे। हम लोग कबड्डी मे न जाने कितनी बार अपनी टांगें तोडते थे और गिल्ली-डडा से दूसरो की, लेकिन सयोग से आख या सिर किसी का भी नही फूटा।

उन दिनो शरारत के लिए मार पडने की कुछ घटनाए आजतक याद हैं। हमारे मदरसे के पास एक रास्ता था, जिससे अधिकांश लडके आया-जाया करते थे। एक दिन मैं और मेरे कुछ साथी उसी रास्ते पर

आकर खडे हो गए और लडको को यह कहकर लौटाते रहे कि आज स्कूल मे छुट्टी हो गई है। बहुत से लड़के वापस चले गए। जब स्कूल मे छात्रो की उपस्थिति बहुत कम दिखाई दी तो हैडमास्टर ने पता लगाया। भेद खुल गया। अगले दिन हैडमास्टर के कमरे मे मेरी और मेरे साथियो की पेशी हुई। हमारे पहुचते ही हैड-मास्टर ने दात पीसकर कहा, "क्यो स्कूल मे ताला डलवाने का इरादा है?" और फिर दोनो हाथो मे कम-चियां लेकर उन्होने हमारी इतनी धुनाई की कि कमचियो के निशान हमारी पीठ पर उभर आए और कई दिन तक उभरे रहे।

घर आकर जब मैंने अम्मा को सारी दास्तान सुनाई और अपनी पीठ दिखाई तो वह बडी दु खी हुई। बोली, "तेरे हेडमास्टर आदमी है या जल्लाद?"

एक दूसरी घटना बडी मनोरजक है। हमारे कुछ साथियो ने उडा दिया कि स्कूल के एक कमरे मे रात को परियो का नाच हुआ करता है। एक दिन हमने बहुत-से लडको को वह नाच देखने के लिए आमन्त्रित किया। रात मे स्कूल की देखभाल के लिए एक चौकीदार रहता था। उसने लडको को रोका, पर उसकी कौन सुनता? एक कमरे की किवाडो मे दरार थी। उसी दरार पर आखे सटाकर परियो का नाच देखने के लिए लडको मे खूब धक्का-मुक्की हुई। कमरे मे अधेरा था। दिखाई कुछ नही देता था, पर हम लोगो ने कहा, "ध्यान से देखोगे तो अधेरे मे छायाए घूमती दीख पडेगी और उनके पैरो के घुघरुओ की आवाज सुनाई देगी।"

रात को बडी देर तक यह तमाशा चलता रहा और हमारी टोली खब आनद लेती रही। परी-वरी तो क्या दिखाई देती थी!

अगले दिन चौकीदार ने हैडमास्टर को रात की घटना की रिपोट दी। हैडमास्टर ने हमे बुलाया और पूछताछ की। हम क्या जबाब देते? उन्होन उठकर हमारी पीठ पर जो मुक्के जमाये, उनका दर्द कई दिन तक बना रहा।

हम लोग शरारतो मे जितने तेज थे, उतने ही तेज पढने-लिखने मे भी थे। स्कल मे हमेशा हमारी धाक रही। उन दिनो उर्दू का चलन था। मैंने उर्दू सीखी, हिन्दी पढी। गणित मे मेरी बडी रुचि थी। दूसरे और विषय भी भारी नही लगते थे। इतिहास तो मुझे इतना प्रिय था कि बी ए तक मैंने उसे नही छोडा।

लेकिन स्कूल मे जितना पढा, उससे अधिक घर मे सीखा। मेरी अम्मा वैसे ज्यादा पढी-लिखी नही थी, लेकिन किताबे बहुत पढती थी। उसका यह स्वभाव अत तक रहा। जब आखे कमजोर हो गई तो वह किसी बच्चे से पुस्तकें पढवाकर सुना करती थी। अम्मा के पास कहानियो का अनत भण्डार था। रात को सोने से पहले हम उनके पास लेट जाते और वह हम बहन-भाइयो को खूब लम्बी-लम्बी कहानिया सुनाती।

इस सदर्भ मे मैं अपने फूफाजी (अक्षय के पिताजी) बाबू रूपकिशोर के ऋण को कभी नही भूल सकता। वह बडे ही प्रतिभाशाली थे। लेखन मे उनकी बडी गति थी। वह हिन्दी, अग्रेजी, फारसी और उर्दू अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने 'अलिफलैला' का मूल भाषा से हिन्दी मे अनुवाद किया, जो दुलारेलाल भार्गव ने अपनी 'गगा पुस्तक माला' से 'सहस्र मजरी' के नाम से प्रकाशित किया। हफ्ते मे एक-दो बार रात को हम उनके बिस्तर पर बैठ जाते और वह हमे बडे रस-पूर्वक कहानिया सुनाते।

इसके साथ ही वह हम सबको निबध लिखने के लिए प्रेरित करते। जिनके लेख बढिया होते, उन्हे पुरस्कार मे पेडे मिलते। उनका ज्यादातर जोर सुलेख पर होता था। उसके लिए वह १०० मे २५ अक रखते थे। फूफाजी और उनके छोटे भाई बाबू केशवदेव न हमको भरपूर बढावा दिया, आशीर्वाद भी। मे भूल नही पाता कि कितनी बार उन्होने बराबर के पलग पर लेटी फआ से कहा था, "देख लेना, एक दिन यह यशपाल

बहुत उन्नति करेगा।" उनके इस आशीष वचन ने मुझे एक नया हौसला दिया।

हम लोगो ने बहुत-से नाटक भी खेले। तख्त डालकर अक्षय की हवेली मे मच बना लेते थे और बिस्तर की चादरों और जनानी साडियो से पर्दे बना लेते थे। मोहल्ले के बच्चे और बडे लोगों की भीड जमा हो जाती थी और जरा-जरा सी बात पर तालियो की गडगडाहट होती थी।

उस समय तक के जीवन मे बहुत-से मीठे अनुभव हुए तो कडवे अनुभव भी कम नही हुए। जिस प्रकार श्वेत और श्याम रंगो से चित्र आकर्षक बनता है, उसी प्रकार जीवन मे मधुर और कटु दोनो प्रकार के अनुभवो का महत्व है। पर कटु अनुभवो की याद क्या करना।

यो खेल-कूद और पढ़ाई-लिखाई के बीच बचपन कब बीत गया, पता भी नही चला। मिडिल पास किया। आगे पढाई की व्यवस्था विजयगढ मे नही थी, अलीगढ़ मे थी। प्रश्न था कि या तो पढाई समाप्त करें या विजयगढ को छोडकर अलीगढ़ जाय। सोच-विचार के बाद अलीगढ़ जाने का निश्चय हुआ। उसके साथ ही जीवन-यात्रा के प्रथम चरण की समाप्ति हुई, दूसरा चरण आरभ हुआ।

शिक्षा-काल

अलीगढ मे मैं कायस्थ पाठशाला मे दाखिल हुआ। रहने की व्यवस्था होस्टल मे की गई, जो वहा के जैन मदिर से सटे कमरो मे था। स्कूल का पुराना नाम 'कायस्थ पाठशाला' था, पर वह था हाई स्कूल तक। अब तो वह इंटर कालेज हो गया है।

अलीगढ पहुचते ही मेरी दिलचस्पी स्काउटिंग मे हुई। पढ़ाई के साथ-साथ मैं स्काउटिंग मे खूब कसकर काम करता। उन दिनो अलीगढ मे कलक्टर एक अग्रेज था—पी डब्ल्यू मार्श। वह स्काउट कमिश्नर भी था। बडा सरल और सेवा-भावी था। कार्य करते-करते उससे परिचय हुआ और कुछ ही दिनो मे मैं उसका विश्वास-पात्र बन गया। उसने मुझसे कह रखा था कि तुम जिस घडी मेरे पास आना चाहो, आ सकते हो। एक बार अलीगढ मे एक कार्नीवल आया। एक दिन रात को मैं उसे देखने चला गया। वहा कई प्रकार का जुआ हो रहा था। रात को दस बजे के बाद मैं सीधा मार्श की कोठी पर गया। सारी बात बताई। अगले दिन शाम को चार बजे कार्नीवल को वहा से हटा दिया गया।

धीरे-धीरे मैंने स्काउटिंग की कई प्रतियोगिताए जीती और मैं स्काउट मास्टर हो गया। अब मैं पढाई के साथ-साथ स्काउटो के प्रशिक्षण का काम भी करने लगा।

स्काउटिंग के सिलसिले मे मेरा परिचय स्काउटिंग के हेडक्वार्टर कमिश्नर प श्रीराम वाजपेयी, उनके सहयोगी श्री डी एल आनद राव आदि से हुआ। वे इलाहाबाद मे रहते थे, पर जब-तब अलीगढ या उसके आसपास आते रहते थे। खुर्जा के एक युवक स्काउट के प्रति मेरा विशेष अनुराग हुआ। वह युवक था जगदीश चद्र माथुर, जो आगे चलकर आई सी एस हुए और जिनके साथ मेरा बहुत ही घनिष्ठ सबध उनके जीवन के अतकाल तक रहा। वह बडे मेधावी युवक थे। स्काउटिंग के कई कैंपो मे हम लोग साथ रहे। उनमे फुर्ती तो थी ही, वह बासुरी बहुत अच्छी बजाते थे। बडे ही सैलानी थे। लक्ष्मण झूला के निकट निर्मल वन कैंप मे

एक बार मार्च करते-करते वह एक पेड पर चढ़ गए और ऊपर बैठकर उन्होने जो बांसुरी बजाई तो हम सब मुग्ध रह गए ।

आगे चलकर वे एक अच्छे लेखक बने । उन्होने अनेक नाटक लिखे, सस्मरण लिखे, निबध लिखे । मुझे कसक है कि मेरा वह साथी अल्पायु मे ही चल बसा ।

हमारे स्कूल की एक पत्रिका प्रकाशित होती थी । उसी मे मेरा पहला लेख छपा । उस लेख के छपने पर मुझे बेहद खुशी हुई और मैंने कविताए और गद्यगीत लिखना आरभ कर दिया । एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा, जिसकी पाण्डुलिपि एक मित्र पढने को ले गए और वह उन्होने खो दी । यह सन् १९३० के दिनो की बात है ।

उन्ही दिनो गाधीजी अलीगढ आए । लायल लाइब्रेरी के प्रागण मे उनका भाषण हुआ । अपने स्काउटो को लेकर मैं व्यवस्था के लिए वहा पहुचा । बडी भीड थी । बापू आए । उनके चरण छूने के लिए एक बुढ़िया ने आगे आने का प्रयत्न किया । मैंने उसे रोक दिया । बापू ने देख लिया । उन्होने सकेत से कहा, "आने दो ।" मैंने रास्ता करके उसे आगे आ जाने दिया । बापू एक क्षण रुके, फिर आगे बढ गए । बुढिया सतुष्ट होकर लौट गई ।

इस ऐतिहासिक घटना से बापू के प्रति मेरे मन मे एक ऐसी जगह बन गई, जो आजतक बनी है, बल्कि धीरे-धीरे उसकी जडें बहुत गहरी चली गई ।

अलीगढ बडी जगह है । छोटे कस्बे से आने वाले के लिए वहा काम की बडी गुजाइश थी । मुझे लगता था कि मैं समाज की भलाई के लिए जो कुछ कर सकता हू, करू । कभी कोई मेला या उत्सव होता तो मैं स्काउटो की टोली को लेकर व्यवस्था के लिए वहा जाता । गगा-स्नान के अवसर पर अपनी टोली के साथ राजघाट पहुचता, जहां गगा-स्नान के लिए हजारो यात्री इकट्ठे होते ।

एक बार ऐसे ही गगा-स्नान के पर्व के अवसर पर एक बडी मजेदार घटना हुई । हमारे स्कूल के खेल-कूद के अध्यापक भी हमारे साथ राजघाट गए । कोई यात्री डूब न जाय, इसलिए हमारी टोली गगा के किनारे तैनात हो गई । थोडी देर मे हमे गोली की आवाज सुनाई दी । मैं दौडकर उस ओर गया तो देखता क्या हू कि हमारे मास्टरजी नदी की धारा की ओर निशाना लगा रहे है । मुझे देखते ही उन्होने कहा, "मगर ।" और दन-से दूसरी गोली दाग दी । एक बडा मगर पानी मे था । हम लोग अचरज मे थे कि वह गोली खाकर नीचे क्यो नही चला गया !

जैसे-तैसे डरते-डरते उसको रस्सी बाधी और खीचकर बाहर ले आए । फिर तो मारे हसी के हमारा बेहाल हो गया । पता चला कि दो-तीन दिन पहले किसी शिकारी ने उस पर गोली चलाई थी और वह गोली खाकर पानी मे चला गया था, पर गोली ने उसके प्राण ले लिये । वह पानी के ऊपर आ गया । हमारे मास्टरजी ने उस मरे-मराये जानवर पर दो गोलिया दागी थी और अभिमान से फूले खडे थे कि उन्होने मगर का शिकार कर डाला ।

मगर को कई जगह से मछलियो ने खा लिया था । उसकी खाल मे जगह-जगह सुराख हो गए थे । वह किसी काम की नही रही थी । मारे बदबू के पास खडा होना कठिन था ।

एक बार एक नौजवान की लाश बहकर आ रही थी । रात का समय था । हमे लगा, कोई जानवर है । जब खीचकर बाहर लाये तो मालूम हुआ कि उस दिन सवेरे जो युवक नहाते हुए डूब गया था, उसकी वह लाश

थी। मेले में खबर कराई तो ढूढते-ढूढते उस युवक के घर वाले आ गए। उनका क्रंदन आज भी मुझको सुनाई दे जाता है।

मुझे कायस्थ पाठशाला छोड़कर डी ए वी स्कूल में जाना पड़ा। इसकी भी एक कहानी है। स्कूल और छात्रावास का नियम था कि शहर से बाहर कही जाओ तो हैडमास्टर की अनुमति लेनी होती थी। मैं, अक्षय और हमारा एक सहपाठी बुलन्दशहर चले गए। वहा एक प्रदर्शनी हो रही थी। सोचा कि शाम को लौट आएगे, इसलिए किसी से कुछ नहीं कहा, न उसके लिए हैडमास्टर की अनुमति ली।

सयोग से हमारे जाते ही हमारे एक सबधी बाहर से आए। हमसे मिलने स्कूल पहुचे और जब हम वहा नही मिले तो होस्टल गए। वहा भी हमे न पाकर उन्होने हैडमास्टर को खबर दे दी। उसी समय किसी लड़के ने बताया कि हो न हो, वे लोग बुलन्दशहर गए हो, क्योकि उसका मित्र, जो हमारे साथ गया था, वह जाने को कह रहा था। यह भी कह रहा था कि हम दोनो को साथ ले जाएगा।

सुराग पाकर हमारे सबधी ने बुलन्दशहर की बस पकडी और वहा पहुचकर सीधे प्रदर्शनी गए। हम लोग वहा घूम ही रहे थे। सबधी क्रोध से लाल-पीले हो रहे थे। उन्होने झपटकर हम लोगो पर आक्रमण किए। हमारी सिट्टी तो उन्हे देखकर वैसे ही गायब हो गई थी। वह आगे आए तो मैंने उनका हाथ पकड लिया। पर वह तैश मे थे। खूब गुत्थम-गुत्था हो गई। लोगो ने बीच-बचाव कर दिया।

हम सब अलीगढ लौटे। हैडमास्टर के सामने पेश किये गए। हैडमास्टर अनुशासन के बडे पक्के थे। उन्होने आव देखा न ताव, हम तीनो को एक वर्ष के लिए स्कूल से निकाल दिया। स्कूल और होस्टल का नियम हमने अवश्य तोडा था, पर हमारा अपराध इतना सगीन तो नही था कि उसके लिए इतनी कठोर सजा दी जाती! आखिर लडको मे इतनी गभीरता हो तो उनमे और बडो मे अतर ही क्या!

हैडमास्टर ने दण्ड दिया, किन्तु जाने-अनजाने उन्होने हमारे हित मे एक चूक कर दी, उन्होंने हमे अपने स्कूल से हटाया, लेकिन दूसरे किसी स्कूल मे दाखिले पर पाबदी नही लगाई। मेरा दाखिला डी ए वी स्कूल म हो गया और मेरा एक साल बर्बाद होने से बच गया। वही से मैने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और फिर वही के धम समाज कालेज मे इटर मे दाखिला ले लिया।

कायस्थ पाठशाला के दिनो की एक शरारत पर आज मुझे बडी लज्जा आती है। दु ख भी होता है। वहां हमे जो अध्यापक हिन्दी पढ़ाते थे, वह बडे ही सरल और सीधे थे। अच्छा पढाते थे। रामायण की बहुत-सी चौपाइया उन्हे कण्ठस्थ थी। पर वह एकाक्षी थे। हर घडी धूप का चश्मा लगाए रहते थे। हम उनका बडा आदर करते थे, पर कभी-कभी शरारत करन को मन हो आता था। हममे से कभी कोई तो कभी कोई, उनकी उस आख की ओर खडा हो जाता था, जिससे उन्हे दिखाई नही देता था। हम लोग खडे ही नही होते थे, उनकी आख की ओर उगली से सकेत भी करते थे। सारी क्लास खिलखिलाकर हस पडती थी।

एक दिन हममे से जैसे ही किसी ने यह शरारत की कि पडितजी ने अपना मुह घुमाया। उगली उनके चश्मे मे लगी। उनको बडा बुरा लगा। नाराजी भी उन्होने दिखाई। पर हम अपनी आदत से बाज नहीं आए।

इसके दो-तीन दिन बाद पडितजी को सदेह हुआ कि कोई लडका आकर खडा हो गया है। उन्होंने बिना देखे, खीजकर, बडे जोर से उसके चाटा मारा। पर वहा कोई लडका नही था, स्कूल का चपरासी था, जो कोई नोटिस लेकर आया था।

उस घडी हमे अपनी अशिष्टता और उससे भी बढकर अपनी मूर्खता का बोध हुआ और मैंने निश्चय किया कि आगे किसी भी व्यक्ति की शारीरिक असमर्थता की खिल्ली नही उडाऊगा।

कायस्थ पाठशाला के सस्थापको मे अलीगढ़ के एडवोकेट बाबू कामता प्रसाद थे। उस शिक्षा सस्था और उसके भवन के निर्माण मे उनका विशेष योगदान था। वह बडी कुशाग्र बुद्धि के व्यक्ति थे। अग्रेजी के अच्छे लेखक थे। उनकी एक पुस्तक 'पॉलिटिकल विजडम ऑफ एडमड बर्क' लदन के प्रमुख प्रकाशक एलन अनविन से प्रकाशित हुई थी। वह लगभग सभी अग्रेजी के प्रतिष्ठित पत्रो के सम्वाददाता थे। स्काउटिंग मे उनकी सेवाए बडी महत्त्वपूर्ण थी। सार्वजनिक जीवन मे वह अत्यन्त लोकप्रिय थे। हिन्दू-मुस्लिम एकता के वह प्रबल पक्षधर थे।

मेरे प्रति उनका बडा स्नेह था। वह चाहते थे कि मैं आगे बढू। उन्होने मुझे भरपूर प्रोत्साहन दिया, यहा तक कि जब वह अलीगढ छोडकर इलाहाबाद हाईकोर्ट मे वकालत करने गए तो मुझे भी साथ ले गए और वहा ईविंग क्रिश्चियन कालेज मे भरती करवा दिया। मेरे बडे भाई को उन्होने अपना मुशी बना लिया। उनकी इच्छा थी कि मैं वकालत पास करू और उस क्षेत्र मे नाम कमाऊ।

मैंने ईविंग क्रिश्चियन कालेज से इटर और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी ए (१९३५) और लॉ (१९३७) की परीक्षा पास की, लेकिन उनका स्वप्न पूरा नही हुआ। नवे दर्जे से मेरा जो लेखन आरभ हुआ था, वह बराबर चलता रहा और इलाहाबाद पहुचकर तो वह और भी बढ गया। वहा के दैनिक पत्र 'भारत' और मासिक कहानी पत्र 'माया' मे मैंने खूब लिखा, और कानून की परीक्षा पास करते-करते हिन्दी जगत मे मेरा नाम फैल गया। दिल्ली के चित्रपट, नवयुग, सचित्र दरबार मे मेरी रचनाए बराबर छपती रही।

अब मेरे सामने बडी द्विविधा थी। दो विकल्प थे। वकालत करू या सीधा साहित्य के क्षेत्र मे पड जाऊ। बाबूजी (श्री कामता प्रसादजी को सब इसी नाम से सबोधित करते थे) की इच्छा थी कि मैं वकालत न करू तो भी किसी ऐसी लाइन मे जाऊ, जिसका सबध कानून से हो। सोचते-सोचते विचार आया कि पी डब्ल्यू मार्श की सलाह ली जाय। उनकी बदली अलीगढ से मेरठ के कमिश्नर के पद पर हो गई थी। उन्होंने एक बार मुझसे कहा भी था कि अपनी पढाई पूरी कर लो तो मेरे पास आ जाना। मैं तुम्हारे लिए कुछ करूगा।

बाबूजी मुझे लेकर मार्श के पास गए। वह बहुत खुश हुए। उन्होने कहा, "मै अलीगढ के कलक्टर के नाम पत्र लिखे देता हू। वह तुम्हारा नामाकन सीधा नायब तहसीलदारी के लिए कर देगे। फिर तुम्हे आगे बढने का अवसर रहेगा।"

उन्होने झट चिट्ठी लिख दी, पर मेरे भाग्य मे तो कुछ और ही बदा था।

इलाहाबद की पढाई के दिनो की बहुत-सी स्मृतिया हैं। वहा मुझे अनेक हिन्दी-जगत के लेखको, कवियो आदि से मिलने और उनके निकट सम्पर्क मे आने का सुयोग मिला। उनको देखकर साहित्य के प्रति मेरा अनुराग और बढा। जब मै बी ए का छात्र था, विश्वविद्यालय मे कहानी प्रतियोगिता हुई। उसकी अध्यक्षता करने आचाय चतुरसेन शास्त्री आए। उस प्रतियोगता मे सुनाने के लिए मैने भी एक कहानी दी थी, जो स्वीकृत हुई और उसे मैंने बडे गर्व से हिन्दी के इतने विख्यात लेखक के सामने छात्र-छात्राओ और प्राध्यापको से खचाखच भरे हॉल मे पढकर सुनाया। उसके बाद मेरी एक कहानी मुशी प्रेमचन्द ने अपने मासिक पत्र 'हस' मे छापी। वैसे मेरी बहुत-सी कहानिया इधर-उधर छप चुकी थी, लेकिन 'हस' मे कहानी का छपना कुछ और ही मायने रखता था।

अलीगढ की अपेक्षा इलाहाबाद का विशेष महत्व था। हिन्दी का वह गढ माना जाता था। राजनीति

का प्रेरणा-केन्द्र था। बडे-बडे नेता वहां आते रहते थे। प जवाहरलाल नेहरू का वह प्रमुख कर्म-क्षेत्र था। आएदिन वहां साहित्यिक, सास्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक समारोह होते रहते थे। अलीगढ़ से मेरा वहा आना विकास की कई सीढ़ियां एक साथ ऊपर चढ़ जाना था।

ईविंग क्रिश्चियन कालेज ने मेरे दृष्टिकोण को व्यापक बनाने मे बडी सहायता की। वह मिशनरियो का कालेज था। नए-नए मिशनरी वहां आकर हमे पढ़ाया करते थे। उनमे कोई-कोई तो बडी छोटी उम्र के होते थे। उनकी उमग देखते ही बनती थी। सबसे बडी बात यह थी कि उनमे खुलापन बहुत होता था। क्लास के बाहर वे समानता का व्यवहार करते थे।

बाइबिल का एक घटा होता था। उसे पढाती थी उस कालेज के भूतपूर्व प्रिंसीपल की पत्नी मिसेज जैनवियर। वह करुणा की मूर्त्ति थी। जीवन मे उन्होने बडा दु ख भोगा था। उनके पति कालेज के ऊपर के कमरे मे क्लास लेकर नीचे आ रहे थे कि जीने की एक सीढ़ी टूट गई और वह ऐसे लटक गए जैसे कोई सूली पर लटकता है। वस्तुत उनका वह लटकना सूली पर ही लटकना था। उनके वही प्राण निकल गए। सीने पर पत्थर की चट्टान रखकर उनकी पत्नी अकेली रह गईं। वह हम लोगो को प्राय घर बुला लेती थी। घर उनका कालेज के अहाते मे ही था। एक दिन कहने लगी, "जानते हो, मैं अपना समय कैसे गुजारती हू ?"

मैंने कहा, "नही।"

बोली, "कुर्सी पर बैठ जाती हू और पखे के चक्करो को गिनती रहती हू।"

कहते-कहते उनकी आकृति इतनी दयनीय हो उठी थी कि उनका चेहरा देखा नहीं जाता था। बाइबिल का गिरि-प्रवचन (सर्मन ऑन दी माउण्ट) पढाते-पढाते उनका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता था। उनका कोई सहारा नही था। उनका लडका नेत्रहीन था और लदन मे रहता था। अपना एकाकी जीवन उन्होंने कैसे काटा होगा, यह सोचकर रोमाच हो आता है।

कॉलेज का जीवन बडा उन्मुक्त था। हमारा अपना बोटिंग क्लब था। उसमे कई नावें पडी रहती थी। छुट्टी के दिन नाव लेकर हम लोग यमुना मे, जिसके किनारे कालेज अवस्थित था, हम खूब सैर किया करते थे।

स्काउटिंग का प्रेम यहा और बढ़ गया। प श्रीराम बाजपेयी तथा श्री डी एल आनदराव उसी नगर मे रहते थे। जब जी मे आता था, उनसे मिल आते थे। दोनो मे सेवा की असीम लगन थी। पुरुषार्थ कूट कूटकर भरा था। उनका जीवन मुझे हमेशा अनुकरणीय लगा करता था। स्काउटिंग की दस प्रतिज्ञाए थी। विश्वसनीय, भक्त, दूसरो का सहायक, भ्रातृभाव रखनेवाला, शिष्ट, दयालु, आज्ञाकारी, मितव्ययी, प्रसन्न और हृदय, शरीर तथा मन से पवित्र। इन दसो प्रतिज्ञाओ ने जैसे मेरे मस्तिष्क को जकड लिया था। सगम पर जब कभी मेला लगता था, हम स्काउटो की टोली वहा पहुच जाती थी। एक बार बडे कडाके की सर्दी थी। हम लोग सवेरे ४ बजे वहा गए। साईकिलो पर हमारी उगलिया जकड गईं। सगम पर जाकर आग जलाई, तब बडी देर मे उगलिया काम लायक हुईं।

सयोग से जगदीश चद्र माथुर भी उसी कालेज मे प्रथम वर्ष मे थे। मैं दूसरे वर्ष मे था। दिन मे कालेज मे मिलना हो जाता था। स्काउटिंग मे तो उनकी भी मेरी जैसी दिलचस्पी थी।

विश्वविद्यालय मे गया तो वहा का वातावरण अत्यन्त गरिमायुक्त पाया। यह विश्वविद्यालय भारत के सर्वोत्तम विश्वविद्यालयो मे माना जाता था। एक-से-एक बढकर प्राध्यापक वहा थे। मैंने बी ए मे इतिहास और अर्थ-शास्त्र विषय लिये थे। इतिहास विभाग मे डा ईश्वरी प्रसाद और डा रामप्रसाद त्रिपाठी की मेरे मन पर गहरी छाप पडी। डा ईश्वरी प्रसाद के विषय मे हम कहा करते थे कि किसी के सिर मे दर्द

हो तो उनकी क्लास मे चले जाओ । इतनी बढ़िया अग्रेजी बोलते थे कि सुनकर हम लोग सबकुछ भूल जाते थे । वह हमे यूरोप का इतिहास पढ़ाते थे ।

उन्होंने मेरी रुचि नेपोलियन मे पैदा कर दी । जितनी पुस्तकें, उस समय नेपोलियन के संबध मे मिल सकती थी, वे सब मैंने पढ़ डाली । नेपोलियन के शौर्य ने मेरी जिज्ञासा को इतना जाग्रत कर दिया कि जब बाद मे मुझे यूरोप जाने का अवसर मिला तो मैं नेपोलियन की समाधि पर जाये बिना नही रह सका । जोजेफाइन के प्रति उसके प्रेम की कथा मुझे कभी नही भूली, और जब उन दोनों का सबध-विच्छेद हुआ तो यह पढकर मेरी आखे डबडबा आईं कि अदालत मे तलाक के दस्तावेज पर जोजेफाइन ने कापते हाथो से हस्ताक्षर किए तो नेपोलियन के हस्ताक्षर से इतने सटाकर किए, मानो विच्छेद की उस घडी मे भी वह उसकी सहायता चाहती हो ।

डा ईश्वरी प्रसाद की विद्वत्ता ने मुझे उनकी ओर आकृष्ट किया, पर उससे भी अधिक मेरे मन पर प्रभाव डाला उनकी सादगी ने । जाडो का उनके पास बद गले के कोट का शायद एक सूट था और गर्मियो के दो । वह यूनीवर्सिटी के पास ही रहते थे । मैं प्राय उनके घर चला जाता था । वह बैंक रोड की अपनी कोठी के अमरूद और अपनी गाय का दूध पिलाते थे और अक्सर पूछा करते थे कि लडके मेरे बारे मे क्या कहा करते है । मैं जवाब देता था कि लडके आपको बहुत ही कजूस मानते हैं । इस पर बहुत ही गभीर होकर वह कहते थे, "हर आदमी को सादगी के साथ रहना चाहिए । हमारी प्राचीन शिक्षा का आदर्श तपोवन थे, जहा अध्यापक और छात्र लगोटी लगाकर रहा करते थे ।"

उनकी यह बात हम छात्रो का उस समय बडा मनोरजन करती थी, पर दिल मे मैं अनुभव करता था कि उनका कथन सही था । सादगी का जीवन ही सर्वोत्तम जीवन हो सकता था ।

डा रामप्रसाद त्रिपाठी का इतिहास का ज्ञान बडा मौलिक था । वह हमे मध्यकालीन भारत का इतिहास पढाते थे । पढ़ाते-पढाते वह ऐसा चित्र खीचते थे कि हम सब विद्यार्थी मत्र-मुग्ध होकर सुनते थे । वह ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे । जब पहली बार किसी कवि सम्मेलन मे कविता सुनाने के लिए उनका नाम पुकारा गया तो मैंने समझा कि और कोई व्यक्ति होगा, किन्तु जब वह सामने आए तो मैं अपनी आखो पर विश्वास नही कर सका । इतने बडे इतिहासज्ञ का ब्रजभाषा का कवि होना मेरी समझ से परे था ।

उनकी मौलिकता ने जहा मुझे उनकी ओर खीचा, वहा उनकी निर्भीकता ने मुझे चकित कर दिया । वह किसी आग्ल भारतीय लडकी को प्रेम करते थे और जब कभी शाम के समय मैं कैनिग रोड पर जाता तो देखता कि बढिया सूट पहने हमारे त्रिपाठीजी उस लडकी की बाह-मे-बाह डाले सडक पर घम रहे है । बाद मे तो उन्होंने उसके साथ विवाह किया और फिर अपने अतिम दिन उसी के साथ लदन मे बिताए । वही उनकी पिछले दिनो मृत्यु हुई । उन्हे किसी प्रकार का सकोच या डर नही था, न अपने घर वालो का, न समाज का । जो करना था, खुले आम करते थे । मैं उनकी इस प्रवृत्ति का समथन तो नही कर पाता था, लेकिन यह अनुभव किए बिना नही रहता था कि आदमी को अपने प्रति ईमानदार रहना चाहिए ।

जिन अन्य प्राध्यापको ने मेरे मन को जीता उनमे थे प्रो शिवआधार पाडे और प्रो एस के रुद्र । पाडेजी अग्रेजी पढाते थे । बडे सरल व्यक्ति थे । सबके साथ प्रेम का व्यवहार करते थे । उनमे बडप्पन की तनिक भी गध नही थी । एक बार किसी विषय पर उन्होंने एक निबध लिखवाया । मैंने बडे परिश्रम से लिखा । वह उन्हे इतना पसद आया कि उन्होने भरी क्लास मे मुझे उसको सुनाने के लिए कहा । अत मे शाबासी देते हुए अन्य छात्रो से कहा, "निबध इस तरह लिखा जाना चाहिए ।" पता नही, ऐसा उसमे क्या था, जो उन्हे वह इतना अच्छा लगा !

प्रो रुद्र को मैं अपने जीवन मे कभी नहीं भूल सकता। वह हमे अर्थ-शास्त्र पढ़ाते थे। पढ़ाने मे उनकी बड़ी गति थी। वह हमारे प्रोक्टर थे। विद्यार्थियों की सच्चाई और ईमानदारी पर अटूट विश्वास रखते थे। दो घटनाए मुझे हमेशा याद रहती हैं। यूनीवर्सिटी के दो छात्र एक दिन बाजार गए। उन्होने किसी दुकान मे एक निब देखा। दुकानदार ने उसके जो पैसे बताए, उस पर एक छात्र ने कहा कि वह दूसरी दुकान पर कम मे मिलता है। दुकानदार ताव मे आकर बोला, अगर कम मे ले आओ तो मैं इसे मुफ्त मे दे दूगा।

लडका दूसरी दुकान पर गया और कुछ कम दाम मे उसे खरीद लाया, साथ ही कैशमीमो भी कटवा लाया। जब वह दुकानदार के पास आया और कैशमीमो दिखाकर निब मुफ्त मे मागा तो दुकानदार लाल-पीला हो गया। लड़को ने भी अपनी आवाज ऊची की। फिर क्या था? देखते-देखते और दुकानदार आ गए, कुछ ने लडको का साथ दिया और जोर की लडाई हो गई। जैसे-तैसे झगडा शान्त हुआ।

लेकिन लडके कहा मानने वाले थे! उन्होंने मामला प्रोक्टर की अदालत मे पहुचा दिया। दुकानदार को सम्मन गए। वे आए। उन्होने उस सारे काण्ड मे लडको को दोषी ठहराया, लेकिन प्रो रुद्र ने साफ कहा, 'मेरे विद्यार्थी झूठ नही बोल सकते।" उन्होने दुकानदार से माफी मगवाई या कुछ दण्ड दिया।

एक दूसरी घटना का मुझे आज भी ध्यान है। प्रो रुद्र ने कह रक्खा था कि कुछ भी करो, पर मेरे पास आकर सच-सच कह दो। लेकिन मैंने ऐसा नही किया। हुआ यह कि हम दो लडके एक साईकिल पर कही जा रहे थे। अचानक पुलिस इस्पैक्टर वहा आ गया। उन दिनो दो व्यक्तियो के एक साईकिल पर चढने पर पाबदी थी। उसने मेरी साईकिल का चालान कर दिया। पता पूछा तो मैंने ठीक-ठीक बता दिया। उसके अगले दिन यूनीवर्सिटी की गर्मियो की छुट्टी हो गई।

यूनीवर्सिटी खुलने पर मैं वहा पहुचा तो किसी लडके ने मुझे बताया कि मेरा वारट है। मैं सीधा प्रो रुद्र के पास गया और मैंने कहा, ऐसा मालूम होता है कि चालान और किसी का हुआ है, नाम उसने मेरा लिखवा दिया है। प्रो रुद्र ने मामले मे तारीख दी और इस्पैक्टर को बुलाया। हम दोनो उनकी अदालत मे गए। इस्पैक्टर ने मुझे देखते ही कहा, जी हा, यही थे। मैंने कहा, आपको भ्रम हुआ है। मैं नही था। इस्पैक्टर अपनी बात कहता रहा और प्रो रुद्र ने यह कह कर मामला खारिज कर दिया कि मैंने जो कुछ कहा है, वह सच कहा है।

इससे यह समझना भूल होगी कि प्रो रुद्र गलत बातो मे अपने छात्रो का साथ देते थे। ऐसा नही था। वह दिल से मानते थे कि युवको के चरित्र बनाना है तो उन पर विश्वास करना होगा और इसके लिए उन्हे अवसर देना होगा। 'बेईमान' कह-कहकर तो उन्हे बेईमान बना देना है। प्रो रुद्र को छात्र दिल से प्यार करते थे और उनका कहना टालने की उन्हे हिम्मत नही होती थी।"

एक बार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को यूनीवर्सिटी मे आमन्त्रित किया गया। जब वह बोलने लगे तो माइक की व्यवस्था होते हुए भी उनका कोमल स्वर सिनेट हॉल के अत मे सुनाई नही दिया। एक छात्र ने खडे होकर कहा, "सर, आपकी आवाज सुनाई नही देती।"

गुरुदेव चुप हो गए। तभी प्रो रुद्र खडे हो गए और उन्होने कहा, "विश्व के महानतम व्यक्ति आज हमारे बीच है, यह हमारा परम सौभाग्य है। आप धैर्य रक्खें। आपको सबकुछ सुनाई देगा।"

हॉल मे इतनी खामोशी छा गई कि सुई गिरे तो उसकी भी आवाज सुनाई दे जाए। प्रो रुद्र ने गुरुदेव से बडी विनम्रता और आदर के साथ अपना भाषण जारी रखने का अनुरोध किया।

ऐसे प्रो रुद्र की मृत्यु बडे दु खद रूप मे हुई। वह नैनीताल गए थे। वहा से भीमताल गए। उस ताल मे तैरते हुए वह घास और झाड-झकार मे फस गए और निकल नही पाए। उनका शव बरामद हुआ। वह

स्वय महान थे। महान पिता के पुत्र थे। उनके पिता सुशील रुद्र दिल्ली मे सेंट स्टीफन्स कालेज के प्रिंसीपल थे। गाधीजी दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद जब कभी दिल्ली आते थे, उन्ही के अतिथि बनते थे। उनकी भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए गाधीजी ने लिखा है, "उनके सारे काय धर्म-भाव से प्रेरित होते थे। ऐसी हालत मे दुनिया की सत्त ा छिन जाने का कोई डर न था, तथापि वही धर्म-भाव उन्हे सांसारिक सत्ता के अस्तित्व और उपयोग तथा मित्रता के मूल्य को समझने मे सहायक होता था। जिस धार्मिक भाव से मनुष्य को विचार और आचार के सुन्दर मेल का यथार्थ ज्ञान होता है, उसकी सत्यता को उन्होंने अपने जीवन मे चरितार्थ करके दिखाया था। आचार्य रुद्र ने अपनी ओर इतने उच्च चरित्र लोगो को आकर्षित किया था, जिनके सहवास की इच्छा किसी को हो सकती है। बहुत लोग नही जानते कि श्री सी एफ एण्डयूज हमे प्रिंसीपल रुद्र के कारण प्राप्त हुए थे। वे जुडवा भाई जैसे थे।"

यूनीवर्सिटी मे और भी कई प्राध्यापको के सम्पर्क मे आने का सुयोग मिला। उनमे से कुछ ने मुझे जाने-अनजाने, जीवन-मूल्यो को पहचानने तथा उन पर आस्था रखने मे सहायता की। प्रो अमरनाथ झा का हिन्दी, अग्रेजी, फारसी, अरबी आदि भाषाओ का ज्ञान और समान अधिकार के साथ उनकी इन भाषाओ मे वक्तृत्व-कला मुझे आश्चय-चकित कर देती थी। उनकी सहृदयता तो और भी विस्मय-जनक थी। यूनीवर्सिटी छोडने के बाद जब-जब उनसे भेंट हुई उन्होने कभी मुझसे हाथ नही मिलाया। सदा सीने से लगाया।

हिन्दी मेरा विषय नही था, किन्तु जब-तब मैं डा धीरेन्द्र वर्मा अथवा डा रामकुमार वर्मा के हिन्दी वर्ग मे जा बैठता था। उन्हे अग्रेजी के माध्यम से हिन्दी पढ़ाते सुनकर हसी रोकना कठिन हो जाता था।

यूनीवर्सिटी मे पहुचते ही मैं यू टी सी (यूनीवर्सिटी ट्रेनिंग कोर) मे भर्ती हो गया और चार वर्ष तक सैनिक प्रशिक्षण लिया। बदूक चलाना सीखा, लम्बे-लम्बे कूच किए, अनुशासन का पाठ पढा और सबसे बडी बात यह समझी कि विदेशी सत्ता को अपने देश से हटना है तो अपने शरीर को मजबूत करो, देश की रक्षा के लिए अपने को तैयार करो और देश-भक्ति को कूट-कूटकर अपने अदर भरो।

गाधीजी ने दक्षिण अफ्रीका से लौटकर एक वर्ष देश मे घूमने मे बिताया और सारी स्थिति का जायजा लेकर राजनीति के मच पर अपना कार्य आरभ कर दिया। उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति के पीछे अहिसा थी, किन्तु उनकी अहिसा उस समय सहज ही लोगो के गले नही उतर पाती थी। जिस सरकार का साम्राज्य इतना व्यापक था कि उस पर सूर्यास्त नही होता था, उसे अहिंसा से कैसे हटाया जा सकता है, यह बात उस समय आसानी से समझ मे नही आती थी।

दो वर्ष मे बी ए और दो वर्ष मे एल-एल बी की परीक्षाए उत्तीण करके विश्वविद्यालय छोडा। उसके साथ ही जीवन का एक और अध्याय पूर्ण हुआ। अब आगे लम्बी-चौडी दुनिया फैली थी और मुझे अपना रास्ता तय करना था।

दिल्ली में जीवनारभ

इलाहाबाद छोडते मुझे बडा दु ख हुआ। दु ख होना स्वाभाविक था। वहा मैंने पाच वर्ष बिताए थे और उस स्थान के साथ मेरा रागात्मक सबध पैदा हो गया था। वहा मैंने जीवन-सागर को पार करने के लिए

तैरना सीखा था, अपनी साहित्यिक रुचि और लेखनी की धार दी थी, साहित्य-सेवियो से नाता जोड़ा था और अनेक परिवारो से मेरा आत्मीय सबध हो गया था। पर चूकि वहा रहकर वकालत करने का मेरा इरादा नही था, इसलिए इच्छा न होते हुए भी इलाहाबाद मुझे छोडना ही था।

मेरे पिताजी ने अपनी बदली उत्तर प्रदेश के एटा नगर के निकट भिसी-मिर्जापुर मे करा ली थी। वही मेरी एकमात्र बहन श्रीप्रभा का विवाह हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक श्री जैनेन्द्र कुमार के सगे भानजे महावीर प्रसाद के साथ हुआ। चूकि महावीर प्रसाद जैनेन्द्र कुमार को 'मामा' कहकर पुकारते थे, मैं भी उन्हे 'मामाजी' कहकर सबोधित करने लगा। वह सबोधन उनके साथ ऐसा जुड़ा कि मेरे निकट के अधिकाश लोग उन्हे 'मामाजी' कहने लगे।

विवाह बडी सादगी से हुआ। कुल २७ व्यक्ति बरात मे आए। मामाजी और उनके मामा महात्मा भगवानदीनजी कन्या-पक्ष की ओर से विवाह मे सम्मिलित हुए। उन्होने हमारे साथ बरात का स्वागत किया और सारी रस्मे बडी भावना के साथ पूरी कराईं।

मामाजी और महात्माजी के साथ मेरा परिचय विवाह से पहले ही हो चुका था। मामाजी ने उस समय तक अधिक नही लिखा था, लेकिन उनकी कहानियो तथा 'परख' उपन्यास ने हिन्दी-जगत मे उन्हे ऊचे स्थान पर प्रतिष्ठापित कर दिया था। उन्होने हिन्दी को नई शैली और नई दिशा दी थी। कथा-शिल्प मे उन्होने क्रातिकारी परिवर्तन किया था। स्थूल से वह उसे सूक्ष्म की ओर ले गए थे। उसे मनोवैज्ञानिक आधार दिया था और उसके द्वारा अतरमन की झाकी दी थी।

उनकी रचनाओ को मैं पढ़ता रहा था और उनके अपने प्रति मेरे मन मे बडा आकर्षण उत्पन्न हो गया था। फिर भी एक साथ साहित्य को अपना कर्म-क्षेत्र बनाने की स्फुरणा मेरे मन मे पैदा नही हुई।

कई विकल्प सामने आए। उदयपुर के विद्याभवन का उन दिनो बडा नाम था। सोचा, वही नौकरी करनी चाहिए। उसके प्रिंसपल डा कालूलाल श्रीमाली थे। उन्हे इलाहाबाद छोडने से पहले पत्र लिखा था। उनका उत्तर आया कि एक वष के लिए आ जाओ। प्रश्न हुआ एक वर्ष के बाद क्या होगा ? पायलट बनने का विचार आया, उसके लिए आवेदन-पत्र भेजा। शिक्षक की ट्रेनिंग करने की आकाक्षा हुई, उसके लिए प्रयत्न किया, लेकिन सफलता नही मिली। तभी अपने अग्रेज हितैषी माश का ध्यान आया और बाबूजी को साथ लेकर मेरठ मे उनसे मिला। पहले ही लिख चुका हू कि उन्होने अलीगढ के कलक्टर के नाम पत्र दे दिया। विचार आया कि दिल्ली होकर अलीगढ चले। दिल्ली आए और मामाजी के साथ ठहरे।

उनसे भविष्य के बारे मे विस्तार से चर्चा हुई। उन्होने कहा, "तुम जुडीशल लाइन मे जाओगे तो क्या होगा ? कमाई होगी, तुम्हारे पास बैंक बैलेस हो जायेगा। पर जीवन का उद्देश्य कमाई करना ही तो नही है। उससे ऊचा है। मैं जीवन मे सघष कर रहा हू। अगर तुम उस सघर्ष मे शामिल होना चाहो तो मेरे साथ आ जाओ, लेकिन इतना ध्यान रक्खो कि इसमे बडे खतरे हैं। रास्ता बडा ऊबड-खाबड है।"

जिस समय वह यह सब कह रहे थे, मेरी नियति अपना ताना-बाना बुन रही थी। साहित्य की मेरी पृष्ठभूमि थी, पर मैं यह देख चुका था कि हिन्दी के क्षेत्र मे काम करना कठोर साधना है। मेरे मन ने कहा—जीवन का ध्येय किसी उच्च आदश के लिए साधना करना ही तो है। उसका अपना आनद है।

उस रात मुझे नीद नही आई। तरह-तरह के विचार मन मे आते रहे, अत मे मैंने निश्चय किया कि जो भी हो, इस नये प्रयोग को करना है और जो भी स्थिति सामने आए, उसका सामना करना है।

द्विविधा दूर होने पर मन हलका हो गया और सवेरे उठकर मैंने मामाजी को अपना निर्णय बता

दिया। वह खुश हुए। मैंने मार्श के पत्र को फाड डाला और नये रास्ते पर चलने के लिए कृत-सकल्प हो गया। रहने की व्यवस्था मामाजी के साथ ही हुई।

दिल्ली मे पहले भी दो-तीन बार आ चुका था, फिर भी वह मेरे लिए नया शहर था। कुछ ही दिनो में लोगो से मेरे सम्पर्क बनने लगे। मामाजी स्वय नही लिखते थे, बोलकर लिखवाते थे। लिखने का काम मैंने अपने ऊपर ले लिया, पर यह कार्य तो नियमित रूप मे नही चलता था। जब वह लिखवाते थे तो तीन-चार घटे से अधिक नही लिखवा पाते थे। मेरे पास बहुत-सा समय बच रहता था। इसलिए विचार आया कि कुछ और काम भी करने चाहिए।

हिन्दी के लिए मन मे बडी उमग थी। सोच-विचार के बाद एक सस्था खोलने का निश्चय किया। उसका नाम रक्खा 'हिन्दी विद्यापीठ'। दरियागज मे हमारे घर के निकट ही कालेज ऑफ कामर्स था। उसके प्रिंसीपल सेन से परिचय हुआ। वह बडे भले थे। विद्यापीठ की बात आई तो उन्होंने बडे उत्साह से कहा, "अपनी क्लासे शाम को चलाओ तो मैं तुम्हे अपने कालेज के चार कमरे उपयोग के लिए दे सकता हू।"

उनका यह प्रस्ताव मुझे बहुत रुचिकर लगा। उन दिनो पजाब की रत्न, भषण और प्रभाकर की परीक्षाओ की धूम थी। उन परीक्षाओ को चलाने का निश्चय किया, साथ ही मैट्रिक और इटर की परीक्षाओ की पढाई का भी प्रावधान किया। कुमारी कचनलता सब्बरवाल, जो उन दिनो एम ए की परीक्षा की तैयारी कर रही थी, प्रिंसीपल बनाई गई। मैं मत्री बना। कालेज मे चार कमरो की व्यवस्था होते ही काम शुरू कर दिया। देखते-देखते विद्यापीठ मे लडके-लडकियो की काफी सख्या हो गई।

हमारा उद्देश्य सस्था से कमाई करना तो था नही, हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना था। इसलिए फीस बहुत कम रक्खी और अध्यापक सब मानद रूप से उसमे सहयोगी बने। डा नगेन्द्र, मोहन सिंह सेंगर, कचनलता और मैं विशेष रूप से पढाने लगे। स्वय प्रिंसीपल सेन इटर के छात्र-छात्राओ को अग्रेजी पढाते थे। एक विशाल कुटुम्ब जैसा वातावरण बन गया था। हमारे लिए कोई भी काम छोटा नही था। विद्यापीठ के प्रचार के लिए पोस्टर भी हम अपने हाथ मे लगाते थे। क्लासे समाप्त होने पर रात को एक बाल्टी मे लेई और हाथ मे कपडा लगा बास तथा पोस्टरो का बडल लेकर जगह-जगह मजे म पोस्टर चिपका आते थे। पैसा ही नही था कि मजदूर लगाकर इस काम को करवा लेते।

अकस्मात एक समस्या मेरे सामने आई। मामाजी लिखते तो थे, पर उन दिनो लेखो और कहानियो के लिए बहुत कम पैसा मिलता था। चीजे सस्तो जरूर थी, फिर भी गृहस्थी को चलाने के लिए पैसे की जरूरत रहती थी। खर्चा बधा था और आमदनी अनिश्चित थी। अक्सर ऐसा होता था कि घर मे पैसा नही होता था' और कही से पैसा आने की सभावना भी नही होती थी! तब क्या हो?

मैंने सोचा कि मुझे भी कुछ ऐसा काम करना चाहिए, जिससे पैसा मिले। किसी ने 'सस्ता साहित्य मण्डल' का नाम सुझाया। उन दिनो उसका कार्यालय दैनिक पत्र 'अर्जुन' और उर्दू के पत्र 'तेज' के पास नया बाजार मे था। मैं वहा गया। 'मण्डल' के मत्री मार्तण्ड उपाध्याय मिले। वह जब-तब मामाजी के पास आते रहते थे। बडे प्यार से मिले और जब मैंने उनसे अपनी बात कही तो उन्होने बडी उदारता से मुझे 'बी कीपिंग' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका दी और उसका हिन्दी मे अनुवाद कर देने को कहा।

पुस्तक लेकर मैं चला आया। दो-तीन दिन मे मैंने वह काम पूरा कर दिया। उसे मैं मार्तण्डजी को देने गया तो उन्होने उस पर सरसरी निगाह डाली। शायद अनुवाद उन्हे पसद आया। बोले, "क्या आप 'मण्डल' मे आ सकेंगे?"

उनका यह प्रस्ताव मुझे बडा आनददायक लगा। मुझे काम की खोज थी और वह मुझे स्थायी काम दे रहे थे। मैंने घर आकर मामाजी से पूछा तो उन्होंने कहा, जैसा तुम ठीक समझो, कर लो। मैंने सोच कर मार्तण्डजी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने का निश्चय किया। उनसे मिला और वेतन आदि निश्चय करके काम करना आरभ कर दिया।

मेरे जिम्मे अनुवाद, सम्पादन और प्रूफ देखने आदि का काम था। बडी लगन से मैंने कुछ ही दिनो मे इन सब कामो मे अच्छी प्रगति कर ली। उनका समय निश्चित था। शाम को 'मण्डल' के दफ्तर से मैं सीधा विद्यापीठ आता और रात को दस बजे के लगभग छुट्टी पाता।

यह सिलसिला सन् १९३७ से १९३९ तक चला। इस बीच मेरी ९ कहानियो का सबसे पहला संग्रह 'नव प्रसून' नाम से 'ऐस चाद' ने प्रकाशित किया। उसकी भूमिका मामाजी ने लिखी। उसे प्रकाशक ने प्रयत्न करके मैट्रिक के पाठ्यक्रम मे निर्धारित करवा लिया और वह कई वर्ष तक कोर्स मे रहा।

'मण्डल' के साधन उन दिनो सीमित थे। बहुत थोडी पुस्तकें निकलती थी और बिक्री भी कम ही होती थी। कर्मचारी भी अधिक नही थे। इस बीच हिन्दी के कवि सुधीन्द्र दिल्ली आ गये और पारस्परिक सबधो के कारण उनका 'मण्डल' मे उपयोग करना अनिवार्य हो गया। उनका काम भी वही था, जो मेरा था। दो आदमियो का खर्चा उठाना सभव नही था। मैंने काम छोड दिया। मार्तण्डजी बडे प्रेमल व्यक्ति थे। उनका हृदय अत्यन्त सवेदनशील था, पर वह विवश थे। उन्हे छोडते मुझे बडी व्यथा अनुभव हुई, पर न उनके सामने कोई चारा था, न मेरे सामने।

आगे काम के लिए मुझे भटकना नही पडा। दिल्ली मे आयुर्वेद की एक नामी फर्म है 'राजवैद्य शीतल प्रसाद एण्ड सस।' उससे एक मासिक पत्रिका निकलती थी—'जीवन सुधा'। उसमे फर्म की औषधियो का विज्ञापन होता था, उसके सचालक उसे साहित्यिक पत्रिका बनाना चाहते थे। उन्हे जब मालूम हुआ कि मैंने 'मण्डल' का काम छोड दिया है तो उन्होने मुझे बुलाया और 'जीवन-सुधा' को हाथ मे ले लेने का अनुरोध किया। उनके अनुरोध को मैंने स्वीकार कर लिया। मैं उसका सम्पादक हो गया।

उससे मुझे बडा लाभ हुआ। उसमे मैं नियमित रूप से कविताए, लेख, कहानिया लिखने लगा और 'निराश्रिता' नामक एक उपन्यास धारावाहिक रूप मे चलाया। बच्चो के लिए 'नानी की कहानी' एक स्तभ चालू किया, जिसे मैं ही लिखता था।

उसी दरम्यान मुझे पत्रिका का एक विशेषाक निकालने की प्रेरणा हुई। सोचा कि हिन्दी के लेखको और उनकी चुनी हुई रचनाओ का परिचय पाठको को देना चाहिए। अत एक वृहद 'लेखकाक' निकालने की योजना बनाई। वह विशेषाक हिन्दी मे अपने ढग का निराला विशेषांक था और वैसा प्रकाशन पहले कभी नही हुआ था। उसमे सभी छोटे-बडे, नये-पुराने लेखको के चित्र थे, परिचय थे और उनकी एक-एक रचना थी। काफी मोटा विशेषाक था। हिन्दी के अधिकाश लेखक उसमे आ गये थे।

मेरे लिए यह एक नया अनुभव था। उसके माध्यम से मुझे बहुत के लेखको से सम्पर्क मे आने का मौका मिला। इसके लेखको ने मेरे अनुरोध पर तत्काल अपनी रचनाए, चित्र और परिचय भेज दिये। यह मेरे लिए अप्रत्याशित सफलता थी।

एक बात बडी मजेदार हुई। पत्र के सचालक राजवैद्य महावीर प्रसाद और उनके पुत्र वैद्य शान्ति प्रसाद का आग्रह रहा कि विशेषाक मे मेरा भी चित्र रहे और वह सूट मे रहे। यूनीवर्सिटी मे मैं कभी-कभी सूट पहनता था, लेकिन अब वह बाना बदल गया था। उनके आग्रह पर मैंने अपना सूट निकाला, वह मुझे किसी फोटोग्राफर के स्टुडियो मे ले गये और फोटो खिचवाया। बहुत दिनो तक उस फोटो को देख-देख कर मुझे

हंसी आती रही। अपना इतना कृत्रिम रूप बहुत दिनो के बाद मेरे देखने मे आया था।

विशेषाक को पाठको ने बहुत पसद किया। विभिन्न पत्रो मे उसकी बढ़िया समीक्षाए हुईं। मुझे इस बात से बहुत सतोष रहा कि हिन्दी के पाठको को बडी सख्या में हिन्दी के नामी-गरामी लेखकों को जानने और उनके विचारो को समझने का मौका मिला।

देश की राजनैतिक स्थिति बडी उग्र होती जा रही थी। सन् १६१७ के चम्पारन-सत्याग्रह से लेकर गाधीजी के उपक्रम—असहयोग आदोलन, चौरी-चौरा काण्ड, बारडोली-सत्याग्रह, पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा, डाडी कूच, गोलमेज परिषद, यरवदा-पैक्ट, साबरमती आश्रम का त्याग आदि अवस्थाओ से गुजरता हुआ राष्ट्र लोक जीवन मे प्रविष्ठ हो गया था। सारा देश गहरी निद्रा को त्याग कर मैदान मे आगया था। विदेशी शासन इस उभरती हुई लोक शक्ति को कुचल देना चाहता था। उसने अपना दमन-चक्र जोरो से चलाया, लेकिन ज्यो-ज्यो उसके अनाचार-अत्याचार बढ़े, त्यो-त्यो देश और भी दृढता से उसका मुकाबला करने को कमर कस कर खडा हो गया। जेले भर गईं, अनेक नौनिहाल हसते-हसते फासी के तख्ते पर चढने को आमादा हो गये। सारा देश जोश से उबल रहा था।

अपने आदोलनो के साथ-साथ गाधीजी रचनात्मक प्रवृत्तियो का जाल सारे देश मे बिछा रहे थे। वह दृष्टा थे। बडे दूरदर्शी थे। उन्होने देख लिया था कि देश की आत्मा जाग्रत हो उठी है तो भारत एक-न-एक दिन स्वतत्र होकर ही रहेगा, लेकिन उन्हे चिन्ता इस बात की थी कि यदि देश मे ऊच-नीच, अमीर-गरीब, छोटे-बडे की खाइया रहेगी तो स्वतत्रता किस प्रकार सुरक्षित रह पावेगी! रचनात्मक कार्यक्रमो के द्वारा वह इन्ही खाइयो को पाटना चाहते थे। उन्होने धनिको को सलाह दी थी कि अपनी अनिवाय आवश्यकताओ की पूर्ति करके शेष धन को समाज की धरोहर मानें और उसे समाज के कल्याण के लिए खर्च करे। सवर्णों को उन्होने प्रेरणा दी कि हरिजनो के लिए अपने मदिरो और कुओ आदि को खोल दे। स्त्रियो से उन्होने कहा कि तुम राष्ट्र की गाडी का एक पहिया हो। दोनो पहियो के समान और मजबूत होने पर ही देश की गाडी आगे बढ सकेगी। उन्होने खादी और ग्रामोद्योगो को सब प्रकार से बढावा दिया। उन्होने यहा तक कहा, घर-घर चर्खा चलाओ। मैं तुम्हे एक वर्ष मे स्वराज्य दिलवा दूगा।

लोगो ने उनकी खिल्ली उडाई। कहा कि चर्खे का स्वराज्य से क्या सबध है? गाधीजी की अकल सठिया गई है! पर गाधीजी ने धीरज नही खोया। जिसे सत्य माना, उस रास्ते पर दृढतापूर्वक चलते रहे। कहा जाता है, परमेश्वर सत्य है। गाधीजी ने इस कहावत को पलट दिया। उन्होने कहा, सत्य ही परमेश्वर है और अहिंसा के द्वारा उसका साक्षात्कार किया जा सकता है।

जब मैं यूनीवर्सिटी मे पढता था, गाधीजी के बारे मे भाति-भाति की कहानिया सुनने को मिलती थी। जन-सामान्य मे उनका रूप बडा चमत्कारी था। सबसे अधिक प्रचलित तो यह कहानी थी कि गाधीजी को जेल के अन्दर बद कर दिया गया। फाटक पर ताला रहा और गाधीजी बाहर आ गये। मेरे मन ने कभी इन कहानियो पर विश्वास नही किया। मैं मानता था कि वह एक महान नेता है, लेकिन उनको इतनी सिद्धि प्राप्त है कि वह ऐसे चमत्कार दिखा सकते हैं, यह मुझे कभी ग्राह्य नही हुआ। इसके पीछे मुझे लोगो की अध-श्रद्धा ही दिखाई दी।

किसी-न-किसी बात को लेकर रोज पकडा-धकडी होती थी। उस सबको देखकर मेरा मन रोमाचित होता था। भीतर से कोई कहता था कि तू कैसा है, जो अलग खडे होकर तमाशा देख रहा है! कूद कर मैदान मे आ जा। पर वह मेरे जीवन का आरभ था। सोचता था, जेल तो बहुत लोग जा रहे है, कुछ लोगो को बाहर रहकर काम करना चाहिए। 'मण्डल' मे जब मैं कार्य करता था तो 'हरिजन' के बहुत से अग्रेजी लेखो का

हिन्दी अनुवाद करके 'हरिजन सेवक' को देता था। जे सी कुमारप्पा की अंग्रेजी ग्रामोद्योग-सबधी पत्रिका के लेखों का अनुवाद भी उसके हिन्दी सस्करण के लिए करता था।

यह सब करता तो था, फिर भी रह-रह कर मन मे विचार आता था कि भले आदमी, इस तरह अपने को बचा कर मत रख। सारा देश जेल जा रहा है तो तू उनको माला पहना कर अथवा उनके माथे पर टीका लगा कर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कैसे मान सकता है?

इसी ऊहापोह मे मैं दरियागज वार्ड की काग्रेस का सदस्य बन गया और आगे सयुक्त मत्री हो गया।

उन दिनो की एक घटना बडी रोचक है। सरोजिनी नायडू दिल्ली आई हुई थीं और वह दिल्ली मे लाला शकर लाल की कोठी मे ठहरी थी। हम लोग उनसे मिलने गये और बात-बात मे उनको दरियागज आने और काग्रेस की एक सभा को सबोधित करने का अनुरोध किया, वह राजी हो गईं। दिन और समय तय हो गया। उन्हे लाने के लिए हमने एक बहन को तैनात कर दिया।

लेकिन जब सरोजिनी नायडू दरियागज पहुची तो मारे गुस्से से उनका चेहरा तमतमा रहा था। आते ही वह हम लोगो पर बरस पडी। असल मे हुआ यह कि जो बहन उन्हे लेने गई, वह तागा लेकर गईं और जब श्रीमती नायडू ने सवारी के बारे मे पूछा तो उन्होने बडी मासूमियत से कह दिया कि हा, तागा लाई हू। उन्हे तांगे मे तो क्या आना था, वह लाला शकर लाल की गाडी से आ गईं, लेकिन हम पर उन्होने गुस्से की इतनी वर्षा की कि हम सहम कर रह गये। जब हमने उन बहन से पूछा कि वह इतनी बडी नेता को लेने के लिए तागा क्यो ले गईं तो उन्होने उसी मासूमियत से उत्तर दिया कि इसमे क्या हो गया? मैं उन्हे पैदल तो ला नही रही थी! दरअसल उन दिनो सामान्य कार्यकर्त्ता तागा और टैक्सी के अतर को समझ नही पाता था।

ध्यान नही आता कि क्या मसला था कि मेरे सब साथी पकडे गये। मैं उन्हे विदाई देने जेल पर पहुचा। उन दिनो सेट्रल जेल उस स्थान के निकट थी, जहा आज मौलाना अबुल कलाम आजाद मेडीकल कालेज है। एक-एक करके मेरे सब साथी फाटक के अदर चले गये और मैं अभागा अपने से जूझता घर लौट आया।

मैं बार-बार अनुभव करता था कि मेरे सोचने मे कितनी बडी भूल है। जोर से आग लगी हो तो कोई भी हाथ सेकने की बात नही सोच सकता। देशवासी जेल की यातनाए सह रहे हो, जेल के भीतर अपार कष्टो का जीवन जी रहे हो तो कोई हृदय-हीन व्यक्ति ही दूर खडा रह सकता है।

पर यह सोच कर अपराध की गुरुता कुछ अशो मे कम हो जाती थी कि मैं गाधीजी के विचारो के प्रसार मे कुछ अशो मे सहायक हो रहा था।

आज मै अनुभव करता हू कि विचारो का बडा भारी महत्व है। विचार किसी भी राष्ट्र की रीढ़ होते है। उन्ही के बलबूते पर देश खडा रह सकता है। विचार व्यक्ति को चिन्तन करने को प्रेरित करते है। जो राष्ट्र चिन्तनशील नही हैं, वे उन्नति नही कर सकते। आज हमारे देश की जो बुरी हालत हुई है, उसका मुख्य कारण चिन्तन का अभाव है। जो व्यक्ति चिन्तन करता है, वह अपनी, समाज की और राष्ट्र की सुप्त शक्तियो को जाग्रत करता है। चिन्तनहीन मनुष्य जड होता है।

जो हो, मैं अपने काम मे लगा रहा। देश की एकमात्र सस्था कांग्रेस थी। उसके कार्यक्रमो मे अपने ढग से मदद करता रहा।

दिल्ली मे उन दिनो हिन्दी साहित्य सम्मेलन नही था। हिन्दी प्रचारिणी सभा थी। उसके काम मे भी मैं योग देता रहा। एक बार चादनी चौक के किसी मकान मे एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। प्रो इद्र विद्यावाचस्पति उसकी अध्यक्षता कर रहे थे। उसमे मुझसे भी एक निबध पढ़ने को कहा गया था। मैंने उसमे अखबार के मालिक और कर्मचारियो के बीच सौहार्द स्थापित करने की बात पर जोर देते हुए मुशी प्रेमचद के

जीवन की उस घटना का उल्लेख किया, जबकि शिवरानीजी ने उन्हे एक कोट का कपड़ा खरीदकर लाने के लिए रुपये दिए थे और प्रेमचदजी ने बाहर आते ही अपने एक कर्मचारी को, जिसकी बेटी का विवाह होने को था और उसके पास पैसे नही थे, अपनी जेब से वे रुपये निकालकर दे दिए थे। गोष्ठी के समाप्त होने पर कई लोगो ने आकर मुझे घेर लिया और लगे बधाई देने। मैंने पूछा, "क्या बात है ?" बोले, "इद्रजी स्वय आराम मे रह रहे हैं और उनके कर्मचारियो को कई महीने का वेतन नही मिला है। आपने यह घटना सुनाकर इद्रजी के मुह पर खूब चपत लगाई।"

उनकी बात सुनकर मैं दग रह गया। मुझे पता भी नही था कि 'अर्जुन' के कर्मचारियो को कई महीने का वेतन नही मिला है, और वे आर्थिक कष्ट मे हैं। मैंने तो सहज भाव से उस घटना का उल्लेख कर दिया था। इद्रजी के साथ मेरे बडे घनिष्ठ सबध थे। उनको खरी-खोटी सुनाने अथवा उनका अपमान करने की मैं कल्पना भी नही कर सकता था।

उन दिनो हिन्दी के लिए काम करना हसी खेल नही था। न उतनी सुविधाए थी, न उतने साधन थे। कधे पर झोला डाले हिन्दी के महान साधक पुत्तूलाल वर्मा की आकृति आज भी मेरे सामने आ खडी होती है। उन्होने हिन्दी की मशाल को जलाये रक्खा। जब कोई भी छोटा-बडा समारोह होता था, दरी या जाजिम बिछाने से लेकर ऊपर तक के सारे काम वही करते थे। उनके कुछ सहयोगी थे, पर गाडी को खीचने के लिए इजन तो पुत्तूलाल वर्मा ही थे। वह प्राय कवि सम्मेलन, गोष्ठिया और सार्वजनिक सभाए करते रहते थे। सबसे बडी बात यह थी कि मैंने उन्हे कभी बडबडाते या किसी की शिकायत करते नही देखा। बडी शान्त प्रकृति के थे और हिन्दी के लिए उनका जीवन समर्पित रहा। अपने अतिम दिनो मे वह दिल्ली छोडकर अन्यत्र चले गए और वही उनका निधन हुआ।

दिल्ली भारत की राजधानी होने के साथ-साथ राजनीति का गढ़ थी। यहा बडे-बडे हिन्दू-मुस्लिम नेता थे। उनके सामने आजादी का ध्येय था, एक ही पार्टी प्रमुख थी, पर इन नेताओ मे कभी-कभी रगड भी हो जाती थी। मतभेद होते थे, लेकिन मनभेद नही होते थे। उनके सामने एक महान आदर्श था न !

राजनेताओ के सघर्ष और राजनीति की उथल-पुथल देखकर मेरा मन राजनीति से और भी उदासीन हो जाता था। मुझे लगता था कि राजनीति मे सफलता प्राप्त करने के लिए आदमी को मोटी खाल चाहिए। जिसकी मोटी खाल नही होती, वह राजनीति मे टिक नही सकता। जिस प्रकार मैंने वकालत की ओर से मुह मोडा था, उसी प्रकार राजनीति के दावपेंच को देखकर मेरा मन विमुख होता गया। उस काल मे काग्रेस मे वकीलो का प्राधान्य था और मैं वकालत-पास यदि चाहता तो बहुतो को पीछे धकेलकर आगे आ सकता था पर वह मेरे लिए सभव नही था। मेरे स्वभाव के विपरीत था। जहा साफ-सुथरा जीवन था, छल-कपट नही था, ईर्ष्या-द्वेष नही था, वहा काम करने को मैं सदैव उद्यत रहता था। पर जहा सफाई नही थी, गदगी थी, वहा काम करना तो दूर, खडे होने को भी मेरा जी नही करता था। मुझे लगता है कि यदि मैं उस समय से राजनीति मे सक्रिय भाग लेता रहता तो स्वराज्य मिलने के उपरान्त शायद राजसत्ता मे मेरी अपनी कोई जगह होती, लेकिन मैं यह भी अनुभव करता हू कि तब मेरा जीवन कुछ दूसरी ही तरह का होता। जिन मानवीय मूल्यो मे आस्था रखकर मैं आरभ मे चला और आजतक चलता रहा हू, वे तिरोहित हो गए होते।

किसी महापुरुष ने ठीक ही कहा है, "पॉलिटिक्स इज द गेम ऑफ स्काउड्रल्स", अर्थात राजनीति दुष्टो का धधा है। मेरी मान्यता है कि जिस प्रकार से सीधी उगली से घी नही निकाला जा सकता, उसी प्रकार सच्चे और ईमानदार लोग राजनीति को नही चला सकते।

दिल्ली की आबादी उन दिनो लगभग पांच लाख थी। भीडभाड नहीं थी। यातायात की सुविधा थी और विशेष बात यह कि अपेक्षाकृत शान्ति का जीवन था। राजनैतिक गति-विधियां अकसर हलचल पैदा करती रहती थीं, लेकिन किसी प्रकार की बेचैनी नही थी। सस्ते का जमाना था और अधिकाश लोगो की आमदनो सीमित थी। इसलिए पैसे अथवा सत्ता के साथ जो बुराइयां आती हैं, उनसे लोग प्राय मुक्त थे। नागरिक जीवन अधिक सुरक्षित और अधिक निरापद था। काले धन का नाम भी उन दिनो सुनाई नहीं देता था। लोग मेहनत करते थे और जो कुछ मिल जाता था, उसी मे सतोष कर लेते थे।

दिल्ली मे मेरे चार वर्ष बीते, पर किसी के साथ मेरा घनिष्ठ नाता नही जुडा। जवाहरलालजी ने एक बार सार्वजनिक रूप मे कहा था, "दिल्ली के आत्मा नही है, (डेल्ही हेज नो सोल)।" उनकी बात मुझे सोलहौ आने सच लगती थो। मैं काम कर रहा था, पर मेरा मन दिल्ली मे रमा नही था।

उसी समय मेरे जीवन मे एक नया मोड आया। बात यो हुई। सन् १६३६ मे जब मैं इलाहाबाद मे कानून की पढाई कर रहा था, मैंने 'विशाल भारत' को एक कहानी भेजी। पत्र के सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी थे। कुछ समय बाद वह कहानी लौट आई। उसके साथ एक पत्र भी था। इस पत्र की शैली ने मेरा बडा मनोरजन किया। ऊपर लिखा था 'प्रियवर' फिर सारा पत्र अग्रेजी मे था। बीच-बीच मे एकाध शब्द हिन्दी मे लिखा था और पत्र का अत किया गया था इन शब्दो से—' विनीत, बनारसीदास चतुर्वेदी।"

इस पत्र से मुझे लगा कि उसके लेखक अवश्य ही सनकी होगे। जब उन्होंने पूरा पत्र अग्रेजी मे लिखा था तो सबोधन और अत भी अग्रेजी मे ही कर सकते थे। पत्र के अक्षर मोती जैसे सुन्दर थे और हिन्दी-अग्रेजी दोनो की लिखावट बहुत ही जमी हुई थी। इस चिट्ठी ने मेरा बनारसीदासजी से परोक्ष परिचय करा दिया।

इसके बाद तीन वष बीत गए। एक दिन अकस्मात मामाजी ने मुझे बताया कि बनारसीदासजी यहां आए हुए हैं। चाहो ता उन्हे अपने विद्यापीठ मे बुला लो। इसमे भला मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी! बनारसीदासजी नामी लेखको मे थे, उच्चकोटि के पत्रकार थे। उनका विद्यापीठ मे आना मेरे लिए आनद की ही बात होती। पर मैंने कहा, "वह आ जाएगे?" मामाजी बोले, "मैं उन्हे राजी कर लूगा।"

हम लोगो ने रात को एक बजे तक सारी तैयारिया की। अखबारो को छापने के लिए समाचार पहुचाया। किन्तु अगले दिन ११ बजे जब मामाजी लौटकर आए तो उन्होंने बडे ही निराश स्वर मे कहा, "बनारसीदासजी ने आने से इकार कर दिया। कहते हैं, वह यहा आराम करने आए हैं, सभाओ मे भाग लेने और भाषण देने नही।"

मैंने एक क्षण सोचा और झट प्रिंसीपल कचनलता और उनकी वृद्ध माताजी को लेकर नई दिल्ली पहुचा, जहा बहन सत्यवती मल्लिक के घर बनारसीदासजी ठहरे हुए थे। अपने साथ मैं अखबारो की कतरनें भी लेता गया, जिनमे शाम ४ बजे उनके विद्यापीठ मे आने का समाचार था।

जाकर मैंने धीरे से कहा, "देखिए, आपके न आने से हमारी बडी बदनामी होगी। लोग आवेंगे और कहेगे कि हमने झूठ-मूठ को आपका नाम दे दिया था।"

चतुर्वेदीजी हमारी कठिनाई को भाप गए। विनोद के स्वर मे बोले, "तुमने मिठाई का इ तजाम किया है या नही? हम तो चौबे ठहरे!"

मैंने कहा, "आप आइए तो सही, हमने खूब मिठाई का इन्तजाम किया है, आप जितना चाहे, खाइए और साथ ले आइए।"

उन्होंने हसते हुए आना स्वीकार कर लिया। वह आए और इतनी बढ़िया सभा हुई कि लोग बहुत दिनो तक उसकी याद करते रहे।

बनारसीदासजी 'विशाल भारत' छोड चुके थे और ओरछानरेश श्री वीर सिंह जूदेव के अनुरोध पर कुण्डेश्वर (टीकमगढ) मे रह रहे थे।

समारोह के बाद अगले दिन शिष्टाचार के नाते मैं उनसे मिलने गया। बहन सत्यवतीजी के साथ मेरा बडा आत्मीयतापूर्ण सबध था। मेरे दिल्ली आने के पश्चात् जिन परिवारो से मेरी निकटता स्थापित हुई थी, उनमे एक परिवार उनका था। कुछ देर इधर-उधर की बातें करके मैं चला आया और बनारसीदासजी दो-एक दिन रुककर कुण्डेश्वर लौट गए।

इसके कुछ ही दिन बाद बनारसीदासजी का एक कार्ड मिला, जिसमे उन्होंने अपनी मिली-जुली लेखन-शैली मे मुझे कुण्डेश्वर आने का निमत्रण दिया था। उस स्थान के प्राकृतिक सौंदर्य की प्रशसा करते हुए लिखा था कि हम यहा से 'मधुकर' नामक पत्रिका निकाल रहे है। आप एक महीने के लिए यहा आ जाय और जगह पसद आवे तो रहने की सोच ले।

मेरा मन दिल्ली से ऊब ही रहा था। मैंने वहा जाने का निश्चय करने से पहले पूछताछ की तो जानकार लोगो ने कहा, वहा जाकर क्या करोगे? बडी बियाबान जगह है और वहा कुछ भी नही मिलता। मैंने बनारसीदासजी को लिखा कि वहा क्या-क्या मिलता है? उन्होने उत्तर दिया कि आप स्वय यहा आकर देख लीजिए। उन्होंने आने-जाने के किराए के रुपये तार से भेज दिए। मेरे हाथ मे जो काम थे, मैंने उनको समेटा, हिन्दी विद्यापीठ को बद किया और मैं कुण्डेश्वर के लिए रवाना हो गया। यह सन् १९४० के अक्तूबर महीने की बात है।

दिल्ली छोडने मे बहुत जोर नही पडा, लेकिन मामी से बिछुडते समय दिल मे हूक-सी उठी। उन्होने चार वर्ष तक मुझे अपने बच्चे की तरह रक्खा था। उनके अपनी तीन लडकिया और दो लडके थे। हम सबके बीच उन्होने कभी भेद नही किया। मुझे एक क्षण को भी यह अनुभव नही होने दिया कि मैं पराया हू। उनमे मैंने एक गुण बहुत बडी मात्रा मे पाया। वह कसकर शरीर से मेहनत करती थी और बुद्धि की बारीकियो के लिए जाने-अनजाने समझ नही रखती थी। जब कभी खीजती या क्रुद्ध होती तो उनकी खीज या क्रोध देर तक नही टिकता था। ममत्व वैसे मामाजी मे भी था, पर उनका बौद्धिक पक्ष अत्यन्त प्रबल था, जबकि मामी मे हृदय पक्ष का प्राधान्य था। मैं उन्हे जैसे ही समझाता, उनका पारा तत्काल नीचे आ जाता। घर मे हद दर्जे की तगी थी, किन्तु मामी ने कभी अधिक कमाई के लिए मामाजी पर दबाव नही डाला और घर की परिस्थितियो को लेकर कभी विद्रोह नही किया।

मामी को मेरा जाना बहुत अखरा, पर और कोई रास्ता नही था। उनकी आखो से आसू गिरते रहे। मेरा मन भी द्रवित हो गया।

कुण्डेश्वर में छह वर्ष

कुण्डेश्वर पहुचने के लिए पश्चिम रेलवे के ललितपुर स्टेशन पर उतरना होता है। वहा से २८ मील पर कुण्डेश्वर है और फिर उससे आगे लगभग ४ मील पर टीकमगढ़, जो तत्कालीन ओरछा राज्य की राजधानी था। मैं ललितपुर स्टेशन पर उतरा। बनारसीदासजी ने ललितपुर नगर-निगम के सचिव

श्री श्यामसुदर चतुर्वेदी को लिख दिया था और मुझे सूचित कर दिया था। स्टेशन से मैं सीधा उनके घर गया। उन्होंने मुझे जलपान कराया और बस मे मेरे कुण्डेश्वर जाने का प्रबध कर दिया। १२ बजे के करीब कुण्डेश्वर पहुच गया। बनारसीदासजी मेरी राह देख रहे थे। उन्होंने ओरछेश की विशाल कोठी मे मुझे अपने साथ ठहराया। कोठो 'जमडार' नामक नदी के किनारे थी। उस नदी पर बाध बनाकर उसकी धारा को नीचे एक लम्बे-चौडे जलाशय मे गिराया गया था। बाध के ऊपर से गिरने वाला पानी छह धाराओ मे विभक्त था। उस प्रपात का कलकल निनाद कोठी के कमरे मे बैठे-बैठे हमे सुनाई देता था।

बनारसीदासजी सबसे पहले मुझे उसी प्रपात पर ले गए। वहा की प्राकृतिक सुषमा देखकर मेरा मन विभोर हो उठा। कुण्डेश्वर बुन्देलखण्ड (अब मध्य प्रदेश) का बहुत बडा तीर्थ है। वहा 'कूडादेव' (महादेव) का मदिर है। स्थान की रमणीकता और तीर्थ-स्थान का धार्मिकता से खिचकर दूर-दूर के यात्री वहा आते हैं। कहावत है, लव एट फस्ट साइट' (पहली दृष्टि मे ही प्रेम हो जाना), यही मेरे साथ हुआ। बचपन में प्रकृति-प्रेम के जो सस्कार मुझे मिले थे, वे उस स्थान को देखकर एकदम जाग्रत हो गए। बनारसीदासजी स्वय प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं। सवेरे उठते ही वह मुझे तथा अन्य व्यक्तियो को साथ लेते और वन-भ्रमण के लिए निकल पडते। जमडार जलाशय से आगे बढकर दो-ढाई मील पर एक दूसरी नदी जामनेर मे मिल जाती थी। सगम तक का सारा क्षेत्र घने जगल से आच्छादित था। उसका नाम चतुर्वेदीजी ने 'मधुवन' रक्खा था। उसमे जगली जानवर भी रहते थे। शाम को प्राय चीतल आदि पानी पीने के लिए जलाशय पर आ जाते और उन्हे हम कोठी की ऊपरी मजिल के अपने कमरो से देखकर आह्लादित होते।

दोपहर को हम कुण्ड (जलाशय) के किनारे तेल की मालिश करके खूब तैरते। शाम को फिर घूमने निकल जाते। बनारसीदासजी बातो के धनी हैं। घूमते हुए वह दुनिया भर की बाते सुनाते और कोठी मे लौट आने पर भी उनका वह क्रम बराबर चलता रहता।

एक महीना कैसे बीत गया, पता भी नही चला। उसके बाद बनारसीदासजी ने कहा, "बोलिए, अब क्या इरादा है? मेरा कोई दबाव नही है, लेकिन अगर आप ठहरने का निश्चय करेगे तो मुझे खुशी होगी।"

मेरा मन उस सारे वातावरण से जुड गया था। इसलिए बिना दुविधा या सकोच के मैंने कहा, "मैं यही रहूगा।"

एक महीना तो मेहमानदारी मे बीता था। अब यह निश्चय हो जाने पर कि मुझे वही रहना है, मैंने अपना ध्यान काम की ओर किया। बनारसीदासजी उम्र मे मेरे पिताजी के बराबर हैं। मैं उन्हे 'चतुर्वेदीजी' कहा करता था। रहने का तय हो जाने पर सबसे पहले मैंने अपना सबोधन बदला। उनसे कहा, "मैं आपको 'दादाजी' कहा करूगा।"

मेरी बात सुनकर वह कुछ दुविधा मे पडे। फिर बोले, "मेरा छोटा भाई पटे (रामनारायण) मुझे 'दादा' कहा करता था।"

मैं समझ गया कि उन्हे 'दादाजी' कहलवाने मे हिचक क्यो हो रही थी। रामनारायण बडे ही मेधावी युवक थे। अल्पायु मे ही उनका निधन हो गया। उनकी पत्नी आजीवन अपनी दो लडकियो और एक लडके को लेकर दादाजी के साथ रही और सारे घर को बडी कुशलता से सभालती रही।

कुण्डश्वर मे मैं ६ वर्ष रहा। उन वर्षों को मैंने अपने जीवन के सर्वोत्तम वष माना। मैं तो वहा यह सोचता हुआ पहुचा था कि उस निर्जन स्थान पर कुछ भी नही मिलेगा, लेकिन वह मेरा भ्रम था। वहा सब चीजें मिल जाती थी, बाद मे तो मैंने एक लेख लिखा—'यहा होता क्या नही।' लेख 'मधुकर' मे छपा और दादाजी, मुझे बार-बार याद दिलाते रहे कि अपने एक पत्र मे मैंने कितनी मजेदार बात पूछी थी कि वहा क्या-क्या होता है।

'मधुकर' पत्र ने मुझे बडा सतोष दिया। उसके द्वारा हमने बुन्देलखण्ड के लोक-साहित्य, सस्कृति, कला, प्राकृतिक सौंदर्य, इतिहास, भूगोल आदि को लोकप्रिय बनाने मे पूरी तरह से मदद की। उस प्रान्त मे अनेक प्रतिभाए छिपी पडी थी। उन्हे हमने ढूढ़कर बाहर निकाला। उनकी क्षमता किसी भी अखिल भारतीय ख्याति के लेखक से कम नही थी। उनसे हमने आग्रह-पूर्वक खूब लिखवाया।

पत्र के द्वारा कई आंदोलन चलाये, जिनमे प्रमुख आदोलन प्रान्त निर्माण का आदोलन था। उसका मूल उद्देश्य यह था कि बुन्देलखण्ड को एक पृथक प्रान्त बनाया जाय, जिससे उसकी सस्कृति, कला, प्रकृति, लोक साहित्य आदि को पूरी तरह प्रकाश मे लाया जा सके।

प्रान्त निर्माण के सिलसिले मे बहुत से नेता समय-समय पर वहा आते रहे। रचनात्मक क्षेत्र के कार्य-कर्त्ताओ का तो वह एक अच्छा-खासा केन्द्र ही बन गया था। भाई जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी तथा श्री कृष्णानद गुप्त वहा बुला लिये गए। कुछ समय श्री चतुर्भुज पाठक, जो बाद मे मध्य भारत मे और फिर मध्य प्रदेश का निर्माण हो जाने पर उसमे मत्री रहे, प्रेमनारायण खरे, जो वहा के अत्यन्त निष्ठावान रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ मे थे, हमारे साथ रहे। दादाजी की कृपा से उस धर्म-स्थली पर साहित्य और सस्कृति की भी धाराए प्रवाहित हो उठी। हम सबने मिलकर उस प्रान्त की जो सेवा हो सकती थी, करने का प्रयत्न किया।

श्री कृष्णानदजी ने एक नई पत्रिका 'लोकवार्त्ता' निकाली। 'मधुकर' और 'लोकवार्त्ता' दोनो पत्रिकाए खूब लोकप्रिय हुईं।

'मधुकर' के द्वारा जो आदोलन हुए, उनमे एक आदोलन टीकमगढ से १६ मील दूर 'अहार' नामक अतिशय जैन-तीर्थ के सबध मे था। वहा हम लोग एक दिन अनायास पहुच गए थे। उस जगह पर बहुत बडी सख्या मे जैन मूर्त्तिया इधर-उधर पडी थी। बाईस फुट की शिला पर १८ फुट की भगवान शान्तिनाथ की इतनी विशाल और इतनी मनोज्ञ प्रतिमा थी कि जो भी देखता था, श्रद्धावनत हो जाता था। प्रतिमा का निर्माण विक्रम सवत् ११८० मे पापट नाम के 'स्थापत्य-कला-विशारद्' ने किया था। प्रतिमा के शरीर का अनुपात और उसका कलागत सौंदर्य अद्भुत था। उसके बाए पार्श्व मे ग्यारह फुट की भगवान कुन्थुनाथ की और दाए पार्श्व मे अरहनाथ की उतनी ही बडी प्रतिमा थी। और भी बहुत सी मूर्त्तिया थी। जो एक कोठरी मे भरी पडी थी। सैंकडो प्रतिमाए इधर-उधर बिखरी हुई थी। उन्हे देखकर मुझे लगा कि उनका सग्रह होना चाहिए। वहा एक पाठशाला भी थी, जिसके छात्रो को पूरी सुविधाए प्राप्त नही थी। उनके कारण भी मेरा ध्यान उस गौरवशाली स्थान की ओर गया। दादाजी की प्रेरणा तो थी ही। निश्चय हुआ कि वहा एक सग्रहालय का निर्माण कराया जाय। इस निश्चय के अनुसार जून १९४४ म शातिनाथ सग्रहालय के भवन की नीव डाली गई और नागपुर के ब्रह्मचारी फतेहचदजी आदि के अथक परिश्रम तथा आर्थिक सहयोग से भवन पूरा हुआ। चौदह वष के बाद, माच १९५८ मे, दादाजी ने उसका उद्घाटन किया। आज उस सग्रहालय का भवन लाखो रुपये का है और उसमे डेढ़-दो हजार ऐतिहासिक प्रतिमाओ का सग्रह है। अधिकाश खडित हैं, किन्तु ९० प्रतिशत प्रतिमाओ के नीचे आसन पर शिला-लेख उत्कीण हैं।

अहार के निकट दो सागर जैसे जलाशय हैं। वर्षा के दिनो मे दोनो जलाशय मिल जाते हैं और उनके बाध पर खडे होकर चारो ओर की दृश्यावली देखने मे अलौकिक आनद की अनुभूति होती है।

इस सग्रहालय के निकट दो मदिर हैं। पुरातन मदिर भगवान शान्तिनाथ का है। उसके पास ही बाहु-बली का नव-निर्मित मदिर है। अब तो वहा जैन विद्यापीठ का भवन तैयार हो रहा है। १९४६ मे कुण्डेश्वर छोडने तक हम लोग बीसियो बार अहार गए, कभी पैदल, कभी बैलगाडी मे, कभी मोटर मे।

अहार मे जो कुछ सेवा हुई, उसका श्रेय दादाजी ने अत्यन्त उदारतापूर्वक मुझे दिया, लेकिन सच्चाई

यह है कि उस सबके पीछे प्रेरणा दादाजी की ही थी और ब्रह्मचारी फतेहचदजी ने तो उसके लिए रात-दिन एक कर दिया। लखनऊ के न्यायाधीश स्व अजितप्रसाद जैन वहां आए, और भी अनेक गण्यमान्य महानुभावो ने उसमे सहयोग दिया। बाद मे तो उस तीर्थ की इतनी ख्याति हुई कि देश के कोने-कोने से दर्शनार्थी वहां आए और आज भी आते रहते हैं। सग्रहालय के भवन के निर्माण में उसके व्यवस्थापक श्री घनश्यामदास कोठिया की सेवाए भुलाई नही जा सकती।

हम लोगों ने 'मधुकर' के पृष्ठ अहार के लिए मुक्त भाव से खोल दिये। बाद मे उनकी एक पुस्तिका प्रकाशित की। अहार-तीर्थ के प्रचार-प्रसार मे इस पुस्तक तथा 'मधुकर' की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सग्रहालय का कुछ काम अब भी शेष है, जो पूरा हो जाएगा।

दादाजी की बहुत बडी विशेषता है कि जहा कही रहते है, वहा कुछ-न-कुछ लोकोपयोगी कार्य अवश्य करते हैं। कलकत्ता रहे तो शातिनिकेतन मे 'हिन्दी भवन' की स्थापना कराई, कुण्डेश्वर रहे तो वहा अनेक कार्य किये। उनमे अहार के सग्रहालय के अतिरिक्त 'प्रेमी अभिनदन-ग्रथ' के सग्रह और प्रकाशन का काम भी था। जैन-समाज मे श्री नाथूराम प्रेमी का नाम विख्यात है। उनकी प्रकाशन-सस्था 'हिन्दी ग्रथ रत्नाकर' ने जो कार्य किया, वह बहुत थोडे प्रकाशक कर पाये। प्रेमीजी उच्चकोटि के विद्वान भी थे। उनके लिए एक अभिनदन ग्रथ की योजना कुण्डेश्वर मे ही बनी और उसका सारा कार्य भी वही पर हुआ। अर्थ-सग्रह के लिए मै तो कई जगह गया ही, दादाजी ने भी कुछ स्थानो की यात्रा की। डा वासुदेवशरण अग्रवाल, डा हीरालाल जैन तथा अन्य अनेक महानुभावो ने उसके विभिन्न खण्डो की सामग्री के सकलन मे बडी मदद की। वासुदेवशरणजी ने तो पूरे ग्रथ के सम्पादन मे हाथ बटाया। साहू शान्तिप्रसादजी ने उसकी छपाने की व्यवस्था इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस मे करा दी और प्रेस के सचालक स्व कृष्णप्रसाद दर ने ग्रथ को बड़े कलापूर्ण ढग से छापा।

सामग्री, छपाई, साज-सज्जा आदि की दृष्टि से उस ग्रथ की सभी क्षेत्रो मे सराहना हुई। उस समय तक जो अभिनदन-ग्रथ निकले थे, उनमे समीक्षको ने 'प्रेमी अभिनदन ग्रथ' को बहुत ऊचा स्थान दिया।

इसी प्रकार 'वर्णी अभिनदन-ग्रथ' की तैयारी मे भी हम लोगो ने यथासभव सहयोग दिया।

ओरछेश श्री वीर सिंह जूदेव अपने ढग के निराले व्यक्ति थे। वैसे तो वह शासक थे और उस राज्य के महाराजा थे, जो रुतबे मे बुन्देलखण्ड के सारे राज्यो मे सबसे बडा माना जाता था, किन्तु वह साहित्य के अनन्य प्रेमी थे। स्वय उच्चकोटि के लेखक थे। अपने ओरछा राज्य मे उन्होने 'वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद्' की स्थापना की और उसके द्वारा 'देव पुरस्कार' चालू किया, जो उस समय का बहुत बडा और गौरवशाली पुरस्कार माना जाता था।

कुण्डेश्वर की सारी प्रवृत्तियो के पीछे उन्ही की दूरदर्शिता थी। मैं जैसे ही कुण्डेश्वर पहुचा था, दादाजी ने उन्हे सूचित कर दिया था। एक सध्या को वह आए और कोठी से निकल कर कुण्ड की सीढ़िया उतरते हुए उन्होने मेरे कधे पर हाथ रखकर कहा, "यशपालजी, यहा खूब अच्छी तरह से रहिए और अगर कभी किसी चीज की जरूरत हो तो मुझे बता दीजिए।" मैं उनकी ओर देखता रह गया। उनमे शासक की कही गध नही थी। अभिमान तो होना ही क्या था! हमारी प्रवृत्तियो पर उन्होंने लाखो रुपये खर्च किये, लेकिन भूलकर भी उन्होने कभी इस बात को अपनी जबान पर नही आने दिया।

वह शाम को प्राय कुण्डेश्वर आ जाते थे और काफी देर तक हम सबके बीच बैठकर बातें करते रहते थे, अपने अनुभव सुनाते रहते थे। उनकी सबसे बडी बात यह थी कि वह मुक्त पुरुष थे। अपने दोषो को भी बताने मे हिचकिचाते नही थे। बड़े विनोदी थे, खूब हसते थे और खूब हसाते थे।

उनके बहुत-से अविस्मरणीय प्रसग हैं, लेकिन दो प्रसगो का उल्लेख किए बिना नही रह सकता। एक

बार वह अचानक कुण्डेश्वर आ गए। दादाजी का पाजामा सूख रहा था। उन्होंने झटपट उसे पहना। उसका कमरबद नौकर ने निकाल दिया था। वह मिला नही। जल्दी मे दादीजी ने कमरबद की जगह सुतली बाध ली और आकर बैठ गए। बैठने मे पेट पर जोर पडा तो सुतली टूट गयी। अब दादाजी ने पाजामे को हाथ से पकड लिया। महाराजा साहब ने यह देखा तो उनसे पूछा, "क्या बात है ?" दादाजी ने सारी बात बता दी। फिर तो मारे हसी के सब लोट-पोट हो गए। महाराजा साहब ने कहा, "चौबेजी, जाओ, और पाजामे मे नाडा डाल लाओ।"

एक दूसरा प्रसग है उस समय का, जब स्व नाथूराम प्रेमी वहा आए। महाराजा साहब का यह नियम था कि जब कोई अतिथि हमारे यहा आता या तो महाराजा साहब स्वय उससे मिलने आते थे। एक शाम को जब हम सब मिलकर बैठे तो प्रेमीजी ने कहा, "हम यहा यह सोचकर आए थे कि साहित्य और सस्कृति के लिए कुछ विशेष काम हुआ होगा, पर ऐसा दिखाई नही दिया।"

महाराजा साहब ने तत्काल उत्तर दिया, "प्रेमीजी, साहित्य और सस्कृति के काम मौलश्री के वृक्ष की भाति होते है। उनके जमने मे समय लगता है। वे काम धीरे-धीरे होते हैं।"

महाराजा साहब के स्थान पर दूसरा कोई होता तो जवाबतलब करता कि प्रेमीजी क्या कह रहे है, किन्तु उन्होने स्वय ही स्थिति सभाल ली।

दो अवसर ऐसे आए, जब महाराजा साहब ने मेरी बडी भारी मुसीबत कर दी। एक बार टीकमगढ मे एक बहुत बडी सभा हो रही थी। महाराजा साहब मच पर बैठे थे और मैं उनके ठीक सामने सोफे पर बैठा था। महाराजा साहब भाषण देने लगे। उन्होने कहा, "हम बहुत-से काम ऐसे करते है, जिनसे लोगो का ज्ञान-वर्धन होता है। हम शिकार खेलते है और पशु-पक्षियो को मारकर उनमे से कुछ को सग्रहालय मे जनता के ज्ञानवर्द्धन के लिए रखवा देते है। इसमे हिंसा क्या हुई ? क्यो, यशपालजी ?"

फिर बोले, 'हमारे राज्य मे सबसे अधिक शोषक जैन समाज के लोग करते हैं। वे लोगो को रुपया उधार देते हैं और खूब ब्याज वसूल करते है। यह शोषण का काम है न ? क्यो, यशपालजी ?"

इसके बाद उन्होने और भी कई बात ऐसी कही, जो जैन समाज को अप्रिय हो सकती थी। और हर बात के अत मे कहा, "क्यो, यशपालजी ?" सयोग से वहा जैन बहुत बडी सख्या मे उपस्थित थे। सभा समाप्त होने पर उन लोगो ने मुझे घेर लिया। बोले, "आपको महाराजा साहब का विरोध करना चाहिए था।" मैने कहा, "क्यो ? आखिर आप भी तो यहा थे। आपने विरोध क्यो नही किया ?" पर वे तो उनकी प्रजा थे न !

एक-दो दिन बाद जब महाराजा साहब आए तो मैंने उन्हे वह किस्सा सुनाया। सुनकर वह खूब हसे। बोले, "अच्छा हुआ, मैंने जान बूझकर ही आपका नाम लिया था।"

एक दूसरा प्रसग महावीर जयती का था। जैन समाज ने कहा कि हम महाराजा साहब को उस समारोह मे बुलाना चाहते हैं। मैंने कहा, मत बुलाइए। रात के आठ बजे का समय उनके पीने-पाने का होता है, पर वे लोग नही माने। मैंने महाराजा साहब से अनुरोध किया और वह आने के लिए राजी हो गए। वह आए। आते ही उन्होंने मुझसे कहा कि आप कुछ बाते एक कागज पर नोट कर दीजिए। उन्ही के आधार पर मैं बोल दूगा। मैंने उसी समय कुछ बाते लिखकर उन्हे दे दी। कई विद्वानो के भाषण हुए। जब महाराजा के बोलने की बारी आई तो उन्होने मेरा कागज हाथ मे ले लिया और एक विद्वान को सकेत करके बोले, "आपने कहा कि आदमी को चरित्रवान होना चाहिए ? क्या मतलब है आपका ? चरित्र के मानी क्या है ? बोलिए।" फिर दूसरे विद्वान को लक्ष्य करके कहा, "आपने बताया कि जहा प्रकाश होता है वहां छाया नही होती, जहा छाया होती है, वहा प्रकाश नही होता। इसमे आपने नई बात क्या कही ? बोलिए।"

फिर इधर-उधर की और बातें कहकर उन्होंने अपनी टोपी उतारी और सिर पर हाथ मारकर कहा, "अरे, खोपड़ी से काम लो।"

बोलते मे वह मेरे दिए हुए कागज को देखते जाते थे। लोगो ने मुझे वह कागज उन्हे देते देखा था। उनका यह समझना स्वाभाविक था कि महाराजा साहब को बहकाने मे मेरा हाथ है। समारोह के खत्म होने पर महाराजा साहब तो चले गए। जैनियो ने मुझे आ पकडा। बोले, "यह सब आपकी करतूत है ?" सयोग से महाराजा साहब मेरे उस कागज को मसनद के किनारे छोड गए थे। मैंने वह कागज उन लोगो को दिखा दिया। उस पर लिखा था कि आप भगवान महावीर की अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त के बारे मे बोलिए। इस सबध मे कुछ और खुलासा कर दिया था। मैंने वह कागज उन लोगो को दिखा दिया। तब जान छूटी।

दो-तीन दिन बाद महाराजा साहब मिले तो हसकर बोले, "क्यो, उस दिन कैसी बीती ?" मैंने उन्हे सारा किस्सा सुना दिया। बोले, "मुझे उस दिन शरारत सूझी थी।" पता नही, बात क्या थी, पर मैं तो यही समझ रहा था कि वह नशे मे थे।

कभी-कभी वह हमे किले मे बुला लेते थे। एक बार हिन्दी के उपन्यासकार वृन्दावन लालजी वर्मा को, जो कुण्डेश्वर आए हुए थे, और हम सबको किले मे बुलाया। १२ बजे तक तो अच्छी-अच्छी बाते करते रहे, उसके बाद जो नशा चढा तो अपने इतने दोष गिनाये कि हम चकित रह गए।

यदि तौलकर देखा जाय तो उनके गुणो का पलडा उनके दोषो की अपेक्षा कही अधिक भारी था। उन्होंने बहुत-से कवियो तथा साहित्य-सेवियो को भरपूर सहायता दी। वह अच्छे इसान थे, अच्छे मित्र थे।

कुण्डेश्वर की एक घटना मेरे जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। जब मैं इलाहाबाद मे पढ़ाई कर रहा था, मैंने निश्चय किया था कि बाबूजी (श्री कामताप्रसादजी) की बडी लडकी आदर्श कुमारी से विवाह करूगा। मैंने लॉ किया और आदर्श ने इण्टर। बाबूजी उससे दो-तीन महीने पहले इलाहाबाद छोडकर अलीगढ़ चले आए। आदर्श और उसकी छोटी बहन ज्ञान को होस्टल मे रख आये। परीक्षा देकर दोनो बहनें अलीगढ आ गईं। वहा आदर्श ने डेढ वष एक स्थानीय स्कूल मे काम करके आगरा मे सी टी मे प्रवेश ले लिया। दो वर्ष मे सी टी करके गाजियाबाद के एक स्कूल मे नौकरी की। यह सन् १९४१ की बात है। मैं टीकमगढ पहुच गया था। वहा से किसी काम से मैं सन् १९४२ मे दिल्ली गया। आदश को मैंने वही बुला लिया। दोनो ने मिलकर विवाह का निश्चय किया। मैं जैन हू, आदर्श कायस्थ है, पर उनका परिवार ऐसा है कि उनके चौके मे प्याज तक जाना निषिद्ध रहा है।

सिविल मैरिज के लिए चौदह दिन का नोटिस देना आवश्यक था। वह दिया और सन् १९४२ की वसत पचमी को विवाह करने का निश्चय किया। पर उस दिन अदालत की छुट्टी होने के कारण अगला दिन तय हुआ।

हम दोनो को तो अदालत मे जाना ही था, साथ मे गवाही के लिए जो तीन महानुभाव गए, उनमे थे प सुन्दरलालजी, हिन्दी के यशस्वी लेखक और 'भारत मे अग्रेजी राज' के प्रणेता। दूसरे थे सुधीन्द्र, हिन्दी के सुविख्यात कवि। कुछ कारणो से मामाजी और मामी नही जा सके। २२ जनवरी १९४२ को हम लोग एक-सूत्र मे बध गए। अपनी मगल कामनाओ के रूप मे रजिस्ट्रार ए इसर ने हम दोनो को गुलाब का एक-एक फूल भेट किया।

अगले दिन चादनी चौक के लक्ष्मी रेस्तरा मे पडित सुन्दरलालजी ने प्रीतिभोज की व्यवस्था की। पडितजी के साथ मेरा विद्यार्थी-काल से ही संबध था। उन दिनो पडितजी इलाहाबाद मे रहते थे।

चूकि विवाह् आदर्श के माता-पिता की सहमति से नहीं हुआ था, अत उनकी नाराजगी स्वाभाविक थी, पर आदर्श की सात बहने और दोनो भाई हम लोगो से बराबर मिलते रहे। यह नाराजगी काफी समय तक चली, फिर दूर हो गई। आदर्श के पिताजी हमारी शादी के कुछ ही दिन बाद अलीगढ मे डिप्टी कलक्टर हो गए।

विवाह् के बाद कुछ दिन तक आदर्श ने गाजियाबाद की नौकरी को निभाया, अनतर छोड कर कुण्डेश्वर पहुच गई। सन् १९४३ के १० अक्तूबर को हमारी बेटी अन्नदा का जन्म हुआ और सन् १९४५ की ५ फरवरी को हमारे बेटे सुधीर का। विवाह् और दोनो बच्चो के जन्म ने मुझे उस महान तीर्थ के साथ हमेशा के लिए गहरे स्नेह और आदर की डोर से बाध दिया। विवाह् के कुछ समय पश्चात आदर्श टीकमगढ के कन्या विद्यालय मे पढाने का काम करने लगी और वह कार्य काफी दिनो तक चला।

कुण्डेश्वर के दिनो मे मुझे सबसे बडा लाभ दादाजी और उनके परिवार के निकट सम्पर्क मे आने से हुआ। अपने जीवन मे मुझे बहुत-से व्यक्तियो के घनिष्ठ सम्पर्क मे आने का अवसर मिला है, पर दादाजी जैसा व्यक्ति मुझे अबतक नही मिला। वह काफी समय तक गाधीजी के पास रहे थे, गुजरात विद्यापीठ मे उन्होने पढ़ाया था, फिर प्रवासी भारतीयो के लिए कार्य किया, पूर्वी अफ्रीका गए। अनेक महापुरुषो से उनके सबध बने। इन्ही कारणो से उनका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक हो गया। इदौर के डेली कालेज मे ओरछा-नरेश को उन्होने पढ़ाया था, फिर 'विशाल भारत' के सम्पादक बने और उस मासिक पत्र के द्वारा हिन्दी के उन बहुत से लेखको को प्रोत्साहन दिया, जिन्होने आगे चलकर हिन्दी-जगत मे काफी नाम कमाया।

दादाजी की तीन विशेषताओं की मेरे मन पर गहरी छाप पडी। उनमे पहली विशेषता थी सबेरे चार बजे उठकर उत्तम ग्रथो का स्वाध्याय करना और जो विचार आव, उन्हे नोट करना। उनके विचारो के रजिस्टरो और कागजो का अम्बार लग गया था। दूसरी विशेषता थी पत्र लिखना। अपने जीवन मे उन्होंने लाखो पत्र लिखे होगे। वह पत्रो द्वारा अच्छे-अच्छे विचारो के बीज चारो ओर बिखेरते रहते थे। किसी की कोई अच्छी रचना पढते कि उसे तत्काल पत्र लिख देत। उनकी तीसरी विशेषता यह थी कि उन्होने अपनी और अपने घर की कभी चिता नही की, किन्तु दूसरो की हमेशा मदद की। घर मे चीनी नही है, कोई बात नही, जवान लडकिया विवाह के लिए बैठी है तो क्या हुआ! पर सकट-ग्रस्त व्यक्तियो के लिए उनकी चिन्ता सीमा को पार कर जाती थी। मुझे याद है कि कई अस्वस्थ साधनहीन व्यक्तियो के लिए उन्होने रात-दिन एक कर दिए थे। उनकी आर्थिक सहायता के लिए स्वय तो पत्र लिखे ही, हम लोगो को भी प्रेरित किया कि हम अपने मित्रो को पत्र लिखे और मनी आडर फाम भरकर भेज दे। इस प्रकार सैकडो-रुपये उन लोगो को भिजवाये। कई सप्ताह तक हमारे सारे काम बन्द रहे। हिन्दी के किसी भी बडे लेखक को मैंने इतना परदु खकातर नही पाया।

फिर दादाजी मे वात्सल्य भी बेहिसाब था, यद्यपि वह शब्दो मे उसे प्रकट नही करते थे। हमारी लडकी अन्नदा जन्म के कुछ दिना बाद बडी बीमार हो गई। दादाजी उसके पास बैठे रहे और उसे कर्पूरारिष्ट की बूदें पानी मे डाल कर पिलाते रहे। जब अन्नदा ठीक हो गई तो उन्होने विनोद मे उसका नाम 'कपूरी' रख दिया।

दादाजी का कडा आदेश था कि दोपहर को भोजन करने के बाद कम-से-कम एक घटा आराम करो। नीद नही आए तब भी बिस्तर पर लेटे रहो। पर मुझे कभी-कभी टीकमगढ से कुछ लाना होता था तो चुपके से साईकिल उठाता था और चला जाता था। एक बार दादाजी ने अपने कमरे मे से मुझे जाते हुए देख लिया। फिर क्या था! आवाज दी। उठकर बाहर आए और मुझसे बोले, "आप भी अच्छी हिमाकत करते हैं! इतनी धूप मे कही जाने की जरूरत नही है। साईकिल रख दीजिये और जाकर आराम कीजिये।" अब जब दिल्ली मे

चिलचिलाती धूप या तेज वर्षा मे या ठिठुरते जाड़े मे दफ्तर जाता हू तो कभी-कभी मेरे कान यह सुनने के लिए लालायित हो उठते हैं, "यशपालजी, इस समय कही मत जाइये, अपने कमरे मे आराम कीजिये।" पर किसमे है, आज इतनी आत्मीयता !

दादाजी जबर्दस्त प्रचारक हैं। जिस चीज के पीछे पडते हैं, उसे सहज ही छोडते नहीं हैं। उन्होंने अनेक साहित्यिक आदोलन चलाये हैं और उनके पीछे अपने महीनो खर्च किये हैं।

दादाजी ने मुझे और मेरे परिवार को इतनी आत्मीयता दी कि उसका स्मरण करके मुझे रोमाच हो जाता है। मेरे व्यक्तित्व के विकास मे उन्होने बडा योग दिया। वह बराबर इस बात का प्रयत्न करते रहे कि मेरा स्वतत्र अस्तित्व बने। उनके प्रति आज भी मेरा मन बडी कृतज्ञता अनुभव करता है।

मामाजी दिल्ली मे एक प्रयोग करना चाहते थे। शारीरिक श्रम द्वारा कमाई करके जीवन व्यतीत करने की उनकी इच्छा थी। उन्होने मुझे लिखा। दादाजी ने तत्काल सवैतनिक रूप मे मुझे छुट्टी दे दी। यद्यपि वह प्रयोग कई कारणो से सफल नही हुआ, फिर भी दादाजी कई महीने तक मेरा वेतन दिल्ली भेजते रहे। लिखते थे, जब जी मे आवे, वापस कुण्डेश्वर आ जाइये। मैं अपने परिवार के साथ दिल्ली आया था, और उस प्रयोग मे महात्मा भगवान दीनजी भी शामिल थे। पर जब देखा कि वह प्रयोग ठीक से चल नही पा रहा है, तो मैं परिवार के साथ कुण्डेश्वर लौट गया। मेरी इतनी लम्बी अनुपस्थिति के सबध मे दादाजी ने एक शब्द तक नही कहा।

एक बार दादाजी से बडे जोर की लड़ाई हो गई। मैंने त्यागपत्र दे दिया और दादाजी को लिखा कि एक महीने बाद मैं अपने को मुक्त मान लूगा। हम लोग एक ही मकान मे रहते थे, पर सबके कमरे अलग अलग थे। दादाजी ने मुझे लिखा कि इस तकलीफ को एक महीना और क्यो बढाते हैं? आइए, आज से ही हम समान बन जाय। मैंने उत्तर दिया कि मेरे हाथ मे काम है, जिसे पूरा करने मे एक महीना लग जायगा।

दो दिन बाद दादाजी ने मुझे एक चिट भेजी—आखिर मैंने ऐसा क्या किया है, जो आपने मुझसे बोलना बद कर दिया है? मैंने जवाब दिया—मैं मानसिक रूप से बहुत ही हैरान हू और अनुभव करता हू कि मुझे चुप रहना चाहिए।

थोडी देर बाद फिर एक चिट आई—मैं आपके साथ एक प्याला चाय पीना चाहता हू। मैंने कुडेश्वर के छह वर्षों मे कभी चाय नही पी थी। मैंने जवाब लिखा—मुझे खेद है कि मैं आपको चाय नही पिला सकता। दादाजी मेरी चाय न पीने की आदत को जानते थे। उन्होने लिखा—अच्छा, एक प्याला दूध पिला दीजिए। मैंने जवाब दिया—ठीक है।

दादाजी मेरे कमरे मे आए। मुझे लगा, दादाजी कितनी ऊचाई पर हैं। उनके बडप्पन को देखकर मुझे बडी लज्जा अनुभव हुई।

इसके बाद दादाजी के पूज्य पिताजी बहुत बीमार हो गए। दादाजी फीरोजाबाद चले गए। वहा से उन्होने मुझे एक अत्यन्त मर्मस्पर्शी पत्र लिखा—"यह चिट्ठी मैं कक्का की मृत्यु-शैया से लिख रहा हू। सभव है, वह सवेरे तक जीवित न रहे। उनकी मृत्यु-शैया से मैं असत्य नही लिख सकता। मेरे अन्दर बहुत दोष है, बहुत कमिया हैं, पर मैंने उनको छिपाया नही है। मेरे मन मे किसी के प्रति कोई दुर्भावना नही है। आप मेरी बातो का बुरा न माने और खूब खुश होकर रहे।" पत्र मे और बहुत-सी बाते लिखी थी। नीचे 'पुनश्च' करके लिखा था—कक्का चले गए।

पत्र पढकर मेरा दिल भर आया। सच यह है कि दादाजी मे प्रचार की अद्भुत क्षमता है। अपनी बातो को बार-बार दोहराते हैं। यह मुझे कभी-कभी बहुत खलता था। इस चीज को छोडकर उनके और

मेरे बीच कोई मतभेद नही हुआ। उन्होने स्वय अपना काम सदा पूरी आजादी के साथ किया था, कभी किसी की दखलदाजी सहन नही की थी, वही व्यवहार उनका मेरे प्रति रहा। जो मेरे जी मे आया, वही मैंने लिखा और जो मैं कहना चाहता था, वही मैंने कहा। मेरी वाणी और लेखनी को दादाजी ने हमेशा मान दिया।

फीरोजाबाद से लौटकर उन्होने मेरे त्यागपत्र को फाड डाला।

कुडेश्वर मेरे लिए एक बहुत बडा वरदान सिद्ध हुआ। मेरी आत्मा को सुख मिला। मेरे जीवन की बुनियाद और पक्की हुई। स्वतत्रता का वास्तविक मूल्य समझा। मानवीय मूल्यो मे मेरी आस्था और गहरी हुई। दादाजी ने अपन जीवन से मुझे बताया कि व्यक्ति के लिए सबसे मूल्यवान चीज कण्ठ की स्वाधीनता है।

कुछ परिस्थितिया ऐसी पैदा हुई कि 'मधुकर' बद कर दिया गया। शासन मे कुछ लोग थे, जिन्हे कुडेश्वर की स्वतत्रता पसद नही आती थी। वह रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ का शक्तिशाली केन्द्र बन गया था। ये कायकर्त्ता स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध थे। उन्होंने उसके लिए बहुत कष्ट उठाए थे। पर ज्यो-ज्यो उनका दमन हुआ, उनकी तेजस्विता और बढ गई। फिर आजादी का सूर्य उदय होने वाला था। यह सन् १९४६ की बात है।

मामाजी मुझे बार-बार लिख रहे थे कि वह 'भारतीय साहित्य परिषद्' करना चाहते हैं। मैं दिल्ली जल्दी-से-जल्दी आ जाऊ। वह सन् १९३८ म 'हिदी परिषद्' कर चुके थे और अब उनकी निगाह एक विशाल आयोजन पर थी। वह चाहते थे कि सारी भारतीय भाषाओ को एक मच मिले और उनके लेखक सगठित हो।

जहा मैंने अपने जीवन के छह अत्यन्त सुखद वर्ष व्यतीत किए थे और जो मेरे बच्चो की पवित्र जन्म-भूमि थी, जिसकी प्रकृति ने मेरे जीवन को समृद्ध किया था, और जहा मैंने दादाजी का भरपूर दुलार और आत्मीयता पाई थी, उसे प्रणाम करके मैं सपरिवार दिल्ली आ गया।

दिल्ली में पुनरागमन : 'सस्ता साहित्य मण्डल' में ४२ वर्ष

सन् १९४६ से अबतक दिल्ली मे हू। मामाजी ने जिस काफ्रेस के लिए लिखा था, उसकी पूरी तैयारिया हो गईं। उसके लिए हम लोगो ने बडा परिश्रम किया, लेकिन वह काफ्रेस नही हो सकी। दिल्ली मे साम्प्र-दायिक दगे हो गए। उन्माद इतना बढा कि जान का कोई मूल्य न रहा। काफ्रेस को स्थगित कर देना पडा। पर मैंने देखा कि कोई भी अच्छा काम करो, उसमे अडगा डालने वाले कुछ स्वार्थी और महत्वाकाक्षी तत्व उभर ही आते है। मै काफ्रेस का कार्यालय मत्री था। अपने को प्रगतिशील कहने वाले कुछ लोग आए और उन्होने हरचद कोशिश की कि मै अपने पद से त्यागपत्र दे दू, लेकिन ज्यो-ज्यो उनकी चुनौतिया बढती गयी, त्यो-त्यो मेरी दृढता मे भी वृद्धि होती गई और अत मे उन्होने समझ लिया कि मुझसे पार पाना आसान नही है। मेरे इस्तीफा देने का मतलब था सारी चीज उनके हाथ मे चली जाना, पर वह सभव नही हुआ और तब वे हार कर बैठ गए।

वे दिन बडे भयकर थे। दिल्ली की सडको पर लाशें पडो देखी जा सकती थी। जिस साम्प्रदायिक

एकता के लिए गाधीजी ने अपने प्राणो की बाजी लगा दी थी, वह एकता हवा मे उड गई थी। हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे की जान के दुश्मन हो गए थे।

इसी बीच कांग्रेस महासभा की बैठक हुई। उसमे पत्रकार के रूप मे मैं भी शामिल हुआ। वह दृश्य मैं भूल नहीं पाता। रात का समय था। गांधीजी को लाया गया। वह आए और मच पर आसीन हो गए। उनका चेहरा बडा ही व्यथित था। बडी धीमी आवाज मे उन्होंने जो कुछ कहा, उसका सार यह था कि आप सब जानते हैं, मैं भारत विभाजन के विरुद्ध रहा हू। मैंने तो यहा तक कहा था कि मेरे शरीर के टुकडे हो जायगे, लेकिन हिन्दुस्तान की तकसीम नही होगी। पर वर्किंग कमेटी ने विभाजन का प्रस्ताव इस उम्मीद मे मजूर कर लिया है कि आप उसका समर्थन करेंगे। अगर आप उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं तो वर्किंग कमेटी के लिए जरूरी हो जाता है कि वह इस्तीफा दे दे और तब आपको अपनी नई वर्किंग कमेटी बनानी होगी। अब आप देख लें।

यह एक ऐसा कानूनी मुद्दा था, जिसने ए आई सी सी के सदस्यो के मन मे दुविधा पैदा कर दी। वर्किंग कमेटी मे जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्रबाबू, सरदार पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद प्रभृति सभी बडे नेता थे। उन्हे छोड़कर प्रभावशाली वर्किंग कमेटी का नया गठन हो नही सकता था।

लेकिन अगले दिन राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन का बडा हृदयस्पर्शी भाषण हुआ। उन्होने कहा, इस प्रस्ताव को कदापि स्वीकार न कीजिए। ज्यादा-से-ज्यादा यही होगा न कि आजादी कुछ दिन के लिए टल जायगी। लेकिन विभाजन से हमेशा के लिए मुसीबत हो जायगी। उन्होंने पूरी ताकत से प्रस्ताव का विरोध किया। बैठक मे जयप्रकाश नारायण तथा राम मनोहर लोहिया भी उपस्थित थे। वे चुप रहे। प्रस्ताव बहुमत से पारित हो गया। विश्व के मानचित्र पर एक नया देश पाकिस्तान आ गया। एक और अखण्ड भारत बट गया, उसके दो टुकडे हो गए। लाखो-करोडो लोगो की अदला-बदली हुई। भारत से करोडो लोग पाकिस्तान गए, वहा से करोडो लोग भारत आए। १४-१५ अगस्त १९४७ की अर्धरात्रि को भारत स्वाधीन हो गया।

लम्बी दासता की मजबूत कडिया टूट गईं, भारत के कधे पर से विदेशी सत्ता का जुआ उतर गया, विदेशी शासको की जगह भारतीय शासको ने ले ली, यह बडे हर्ष की बात थी, लेकिन साम्प्रदायिक वैमनस्य अपनी चरम सीमा पर पहुच गया था। लाखो हिन्दू मारे गए, लाखो मुसलमान मारे गए। भारतीय इतिहास का वह एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय था।

स्वराज्य की घोषणा करते हुए जवाहरलालजी का भाषण हुआ, बाद मे तिरगा झण्डा फहराया गया, लेकिन वह आनद अमिश्रित नही था। गाधीजी उस समय नोआखाली मे दु खियो के आसू पोछते हुए पैदल घूम रहे थे।

उसके बाद देश मे जो हुआ, उसे सब जानते है। गाधीजी की निमम हत्या ने भारत और दुनिया को झकझोर डाला। पर उनका बलिदान व्यर्थ नही गया। उसने हिन्दू और मुसलमान दोनो की आत्मा को जाग्रत कर दिया।

'भारतीय साहित्य परिषद्' के स्थगित होते ही मैं 'सस्ता साहित्य मण्डल' मे पहुच गया। हमने अनुभव किया कि गाधी-विचारधारा को व्यापक रूप मे प्रसारित करने के लिए उनके साहित्य को विधिवत् रूप मे अनेक खण्डो मे प्रकाशित करना चाहिए। इसके पीछे मुख्य प्रेरणा स्व महाबीर प्रसाद पोद्दार की थी, जो 'मडल' के आद्य-सस्थापको मे से थे।

काम बहुत बडा था और श्रम-साध्य था। पर हम लोगो ने कमर कस ली। कागज के लिए साधन

स्व घनश्यामदास बिरला ने जुटा दिए और हम लोग जी-जान से उसमे जुट गए। एक के बाद एक कुछ ही समय मे हमने दस भाग प्रकाशित कर दिये। उन्हे पाठको ने बहुत पसद किया, लेकिन आगे चलकर वह काम रुक गया। बीस खण्ड निकालन का विचार था, लेकिन भारत सरकार ने इस काम को शुरू कर दिया। 'सम्पूर्ण गाधी वाङ्मय' के नाम से उसने हिन्दी-अग्रेजी मे तिथि-क्रम से इस सामग्री को निकाला और सस्ते मूल्य मे।

इस ग्रथमाला के अतिरिक्त और बहुत-सी पुस्तके प्रकाशित की। गाधीजी की मूल विचारधारा को सुरक्षित रखकर अनेक नये विषयो का समावेश किया।

गाधीजी के उत्सर्ग के बाद विनोबा के सुझाव पर सारी रचनात्मक सस्थाए सगठित करके 'सब सेवा सघ' की रचना की गई। इतना ही नही, गाधीजी के भाईचारे मे विश्वास रखने वालो का सर्वोदय समाज बना, जिसके देश के विभिन्न भागो मे वार्षिक अधिवेशन होते थे। मैं अधिकाश अधिवेशनो मे शामिल हुआ। पहला सम्मेलन इदौर के पास राऊ मे हुआ था। उसमे भी मैं शरीक हुआ था। विनोबा बाबा का उत्साह देखने-योग्य था। भारत-विभाजन के बाद विस्थापितो को बसाने की समस्या बडी विकट थी। जो लोग पाकिस्तान से आए थे, वे अपना सबकुछ वहा छोड आए थे। उनके मन मे बडा क्षोभ था, असतोष था। उस पर मरहम लगाने की आवश्यकता थी। विनोबा मेवो के बीच गए और उन्हे सात्वना दी, किन्तु उनके काम मे कुछ सरकारी दखलदाजी हुई तो विनोबा उस काम को छोडकर अपने आश्रम पवनार मे वापस चले गए।

सयोग से १६५१ मे भूदान की गगा प्रवाहित हो गई। बाबा विनोबा ने सारे देश की परिक्रमा की और लाखो एकड भूमि उन्हे मिली। प्रेम का ऐसा करिश्मा पहले कभी देखने मे नही आया था। विनोबा के पास कोई भी भौतिक बल नही था, केवल प्रेम की शक्ति थी।

मुझे लगा कि उस अहिसक क्रान्ति की बडी सभावनाए है। मैं बीच बीच मे विनोबा के साथ भूदान-यज्ञ मे सम्मिलित होता रहा। उनकी कई पुस्तके प्रकाशित की। उनकी पुस्तक 'गीता प्रवचन' तो बेहद लोक-प्रिय हुई है। २८० पृष्ठ की उस पुस्तक का मूल्य हमने १ २५ रु रक्खा था। एक दिन विनोबाजी ने हसकर कहा, "यशपालजी, १ २५ रु मूल्य बडा असुविधाजनक है। या तो कोई आदमी रुपये के साथ चार आने लावे, अथवा आपके पास बारह आने हो।"

उनका सकेत मैंने समझ लिया और उसी समय उसका मल्य एक रुपया कर दिया।

सर्वोदय सम्मेलन के उनके उदघाटन और समापन-व्याख्यानो का सग्रह छापा, किशोरोपयोगी लखो का एक सकलन प्रकाशित किया।

अपने भूदान-यज्ञ की पग-यात्रा मे विनोबा रोज दो-तीन बार बोलते थे और हर बार नई बात कहते थे या पुरानी बातो को नये ढग से कहते थे। साथ-साथ चलते हुए विनोबा से विभिन्न विषयो की खूब बातें होती थी। एक दिन मैने पूछा, ' आप इतनी मौलिक बाते रोज कैसे कहते है ?"

विनोबा ने मुस्कराकर कहा, "पैदल जो चलता हू। मनुष्य जितना धरती और प्रकृति के निकट रहता है, उतनी ही उसे नई-नई बाते सूझती है।"

विनोबा के बारे मे मैं इतना जानता था कि वह परम ज्ञानी है, पर वह अत्यन्त सवेदनशील और विनोदी है, यह मैने उनके निकट रहकर ही जाना।

उनके लिए बाद मे बडे आकार का एक वृहद् ग्रथ ५०० पृष्ठ का तैयार किया – 'विनोबा व्यक्तित्व और विचार' इस ग्रन्थ को सभी क्षेत्रो मे बहुत ही पसद किया गया। उसमे विनोबा के तेजस्वी व्यक्तित्व की झाकी तो है ही, उनके विचारो का भी दर्शन है।

अपने जीवन मे विनोबा ने बहुत कुछ दिया, पर हमारा पात्र इतना उथला था कि हम उनसे कुछ भी

राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह के साथ 'भारतरत्न इंदिरा गांधी' चित्रावली विमोचन के अवसर पर

राजनेताओं, लेखकों तथा चिन्तकों के मध्य

प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ
पं. जवाहरलाल नेहरू के चित्र समर्पण के अवसर पर

सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार प्राप्त करते हुए

प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ पति पत्नी

चिंतन का क्षण

प्रधान मन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू के साथ जीवन में स्व. मार्तण्ड उपाध्याय

चाचा नेहरू और बच्चों के बीच बाल दिवस पर

भारत के प्रथम राष्टपति डा राजेन्द्र प्रसाद के साथ
राष्ट्रपति के दाए केन्द्रीय मंत्री श्री के सा रेड्डी
बाए लोकसभा अध्यक्ष श्री अनंत शयनम आयंगार

सरहदी गाधी खान अब्दुल गफ्फार खा के सान्निध्य म

आचार्य विनोबा भावे को पवनार म ग्रथ-भेंट

डो राधाकृष्णन क साथ कुतूहल का क्षण

प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के साथ
बीच में श्रीमती ललिता शास्त्री

राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी तथा कुछ साहित्यकारों के बीच
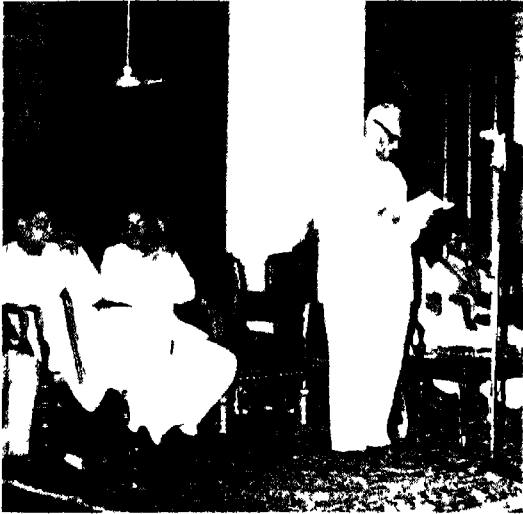
राष्ट्रपति श्री वी वी गिरि के साथ राष्ट्रपति भवन में
दाहू और कविवर श्री दिनकर और विज्ञानवेत्ता डा डी एस कोठारी

उपराष्ट्रपति श्री गोपाल स्वरूप पाठक की आत्मीयता

प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई द्वारा
'सजना' पत्रिका का विमोचन

प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई के साथ

भारतीय संस्कृति के व्याख्याता डा. कर्णसिंह के साथ

षष्टि पूर्ति के अवसर पर समन्वयी साधु साहित्यकार ग्रंथ-समर्पण
पुत्री अन्नदा बांचते हुए बीच में, रक्षामंत्री श्री जगजीवन राम

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन क साथ
दाइ ओर श्री एन वी गाडगिल, पीछ श्री मौलिचंद्र शर्मा
बाइ ओर सेठ गोवि द दास

प बालकृष्ण शर्मा नवीन क विवाह क अवसर पर
नव दम्पती राष्ट्रकवि मथिलीशरण गु त, सठ
गोविन्द दास श्रीमन्नारायण

महा मा भगवानदीन स विचार विमर्श

आचार्य काका सा कालेलकर क ज मदिन पर
बीच म काका सा डॉ उपराष्ट्रपति हिदायतुल्ला

मराठी के विख्यात लेखक मामा वरेरकर के साथ बाएं माता
श्रीमती लक्ष्मी देवी बाए हिंदी के लेखक श्री विष्णु प्रभाकर

बर्मा प्रवास पर जाते समय
सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त तथा जैनेन्द्रकुमार द्वारा शुभकामनाएं

मारीशस के प्रसिद्ध लेखक श्री सोमदत्त बखोरी दम्पती के साथ
श्री रामधारी सिंह दिनकर तथा यशपाल जन दम्पती

अणुव्रत समारोह में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के साथ

भारत म अंग्रेजी राज क यशस्वी लखक प सुन्दरलाल
पुत्री अ नदा और जामाता कमल कुमार

चिन्तन म लीन
गांधीवादी विचारक श्री हरिभाऊ उपाध्याय क साथ

उल्लास के क्षण म
सवश्री बनारसीदास चतुर्वेदी तथा विष्णु प्रभाकर क साथ

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के अभिनन्दन ग्रंथ अरक माधव क
विमोचन समारोह म डा० सवश्री ब दा चतुर्वेदी
गोपाल स्वरूप पाठक आदित्यनाथ झा

मन मान्त्य र ममन ा वियागी हरि क मा र

सरस्वती क उपासक तथा उद्यागपति श्री घनश्यामदास बिरला से
विचार विमश

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी क ज म दिवस पर
मध्य म सवश्री म यवती मल्लिक एन आर मलकानी
बनारसीदास चतुर्वेदी राममाल मल्लिक यशपाल जन
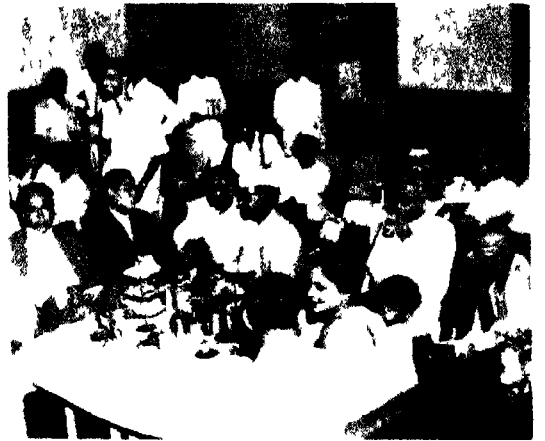
दक्षिण-पूर्व एशिया के प्रवास पर जात ममय
एशियाई देशा क राजनयिक महात्मा भगवानदीन श्री जनेन्द्र कुमार,
तथा श्रीमती इ द्राणी रहमान आदि क बीच

लखक तथा विधिवेत्ता डा लक्ष्मीमल्ल सिंघवी स चर्चा

सुखद अनुभूति
दक्षिण पूर्व एशियाई देशों से वापसी पर श्री विष्णु प्रभाकर के साथ

सर्वश्री श्रीमन्नारायण तथा जैनेन्द्र कुमार के साथ
दाए श्री विष्णु हरि डालमिया

ग्रन्थ विमोचन
केन्द्रीय मंत्री श्री बृजलाल वर्मा, डा धर्मशीला भुवालका,
उपराष्ट्रपति श्री बा दा जत्ती

तिपोगरि म
श्रीअरविन्द आश्रम के साधक तथा विख्यात लेखक डा इन्द्रसेन आदि

लेखिका संघ के विशेष समारोह मे
बाइ ओर (तीसरी) पंजाबी की प्रसिद्ध लेखिका
श्रीमती अमृता प्रीतम आदि के मध्य
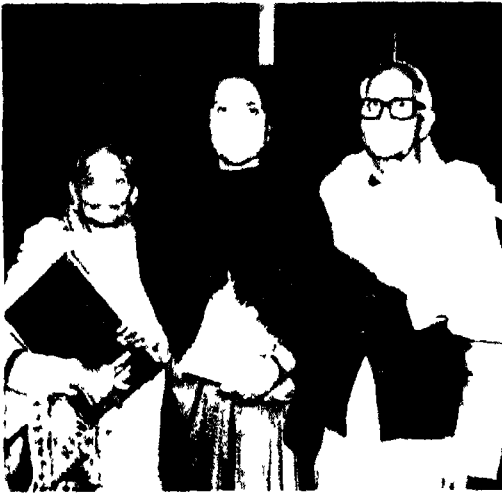
हिन्दी की लोकप्रिय लेखिका श्रीमती शिवानी और यशपाल जैन-दम्पती
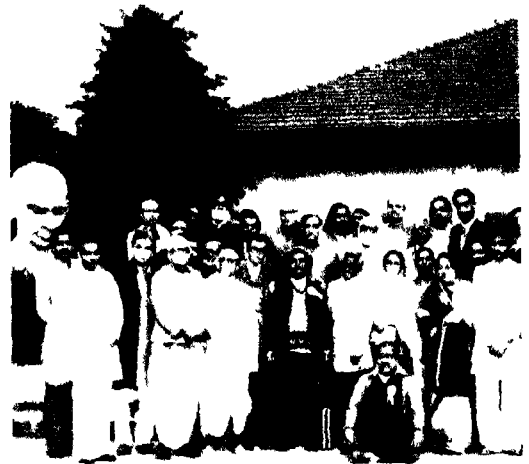
गांधी विचार गोष्ठी मे
दाए श्री र रा दिवाकर तथा उडीसा के राज्यपाल
श्री विश्वम्भरनाथ पाण्डेय आदि के बीच

गाधी दर्शन सस्था मे
डा प्रभाकर माचवे तथा बगाली लेखको के मध्य, कलकत्ता मे
व्याख्यान देते हुए

प्राकृतिक चिकित्सा वार्ता
आरोग्य के सम्पादक श्री विट्ठलदास मोदी के साथ

रूसी सास्कृतिक केन्द्र मे
रूसी लेखक फैदिन की जन्मशती पर सभा को सबोधन

विपश्यना के शिविर मे
विपश्यना विद्या के आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का के साथ

धार्मिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक अनुष्ठानों में

एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्दजी के सान्निध्य में वीर निर्वाण भारती के पुरस्कार समारोह के अध्यक्ष पद से बोलते हुए

सिद्धयोगी बाबा मुक्तानन्द परमहंस को नई दिल्ली में कुछ पुस्तकें भेंट करते हुए

षष्ठिपूर्ति के अवसर पर रामभक्त पं० कपीन्द्रजी तिलक करते हुए

आचार्यश्री तुलसी तथा युवाचार्य की उपस्थिति में
अणुव्रत सभा को सम्बोधन

मुनि सुशीलकुमारजी से चर्चा

गंगोत्रीवासी स्वामी सुन्दरानन्दजी आदि के साथ

डा राधाकृष्णन तथा लाकसभा अध्यक्ष श्री ग वा मावलकर
आदि क बाच एक जन समाराह मे

एक समारोह मे
श्रीमता जानकी देवी बजाज श्री श्रीम नारायण, लाकसभा
अध्यक्ष अनत शयनम श्री आयगार आदि के मध्य

'सावियत लड नहरू पुरस्कार विजताओ की टाली
, दाए रूस के प्रसिद्ध लेखक श्री चलिशव और हिन्दी क विख्यात
उपन्यासकार श्री वन्दावनलाल वर्मा म बात करत हुए

श्रामती इदिरा गाधी के चित्रा की प्रदशनी म
चित्र दिखात हुए

हिसार की एक सभा में स्मारिका विमोचन

एक साहित्यिक सभा में
बीच मे, श्री रामलाल पुरी बोलते हुए श्री गोपाल प्रसाद व्यास

टीकमगढ़ (मध्य प्रदेश) में महावीर बाल संस्कार विद्यालय का शिलान्यास करते हुए

गुड़गाँव की एक कवि-गोष्ठी का सम्बोधन

दिल्ली राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के एक परीक्षा केन्द्र में
सामने (गांधी टोपी पहने) श्री एस आर एस राघवन

पराविधा की मगोष्ठा म क द्रीय मत्री श्री योग द्र मकवाना उनराय भट करते हुए
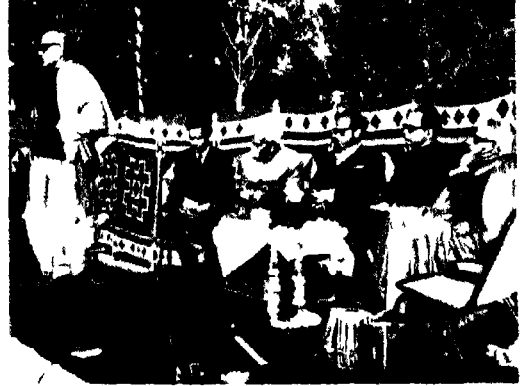
नई दिल्ली मे अ भा जैन मिलन द्वारा आयोजित सभा को सबोधन शाह और म श्री सतीशकुमार लाला श्यामलाल, डा लक्ष्मीमल्ल सिघवी श्री इद्रकुमार गुजराल तथा श्री जनेद्रकुमार

खतौली (उत्तर प्रदेश) के के क जैन डिग्री कालेज मे दीक्षान्त-भाषण देने के उपरान्त पुरस्कार प्रदान करते हुए

जयपुर की लोक शिक्षक पत्रिका के सचालक श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी के ८०वे जयती-समारोह मे स्मारिका का विमोचन

बदरी केदार की तीर्थ-यात्रा

श्रवणबेल गोल म बाहुबली की प्रतिमा की वदना
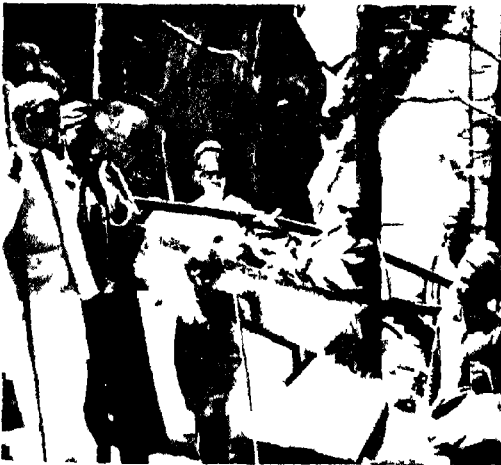
गगोत्री के पथ पर डाडी मे श्रीमती आदशकुमारी पीछे, पुत्री सौ अनन्दा पाटनी, सामने दौहित्र चि पराग

काश्मीर के विख्यात तीर्थ अमरनाथ को जाता हुआ यात्री-दल

आमनेर नदी (मध्यप्रदेश) के मिनौरा घाट में प्रकृति का आनन्द लेते हुए

नौकुचियाताल (नैनीताल) पर विदेशी प्रवासी श्रीमती स्मैटचक और उनके पिता

लद्दाख के हिममण्डित क्षेत्र में (दाएं से तीसरे)

पुरातत्व के महान केन्द्र [illegible] (मध्य प्रदेश) की एक सभा को सम्बोधित करके प्रस्थान करते हुए

दक्षिण भारत के एक कन्या विद्यालय की छात्राओं तथा हिन्दी-सेवियों के बीच

खिलनमर्ग काश्मीर में परिवार के साथ। सामने पत्नी श्रीमती आदर्शकुमारी पुत्री अन्नदा पुत्र सुधीर। दाएं ओर से श्री आतमल लूणिया श्रीमती लक्ष्मी मार्तण्ड उपाध्याय
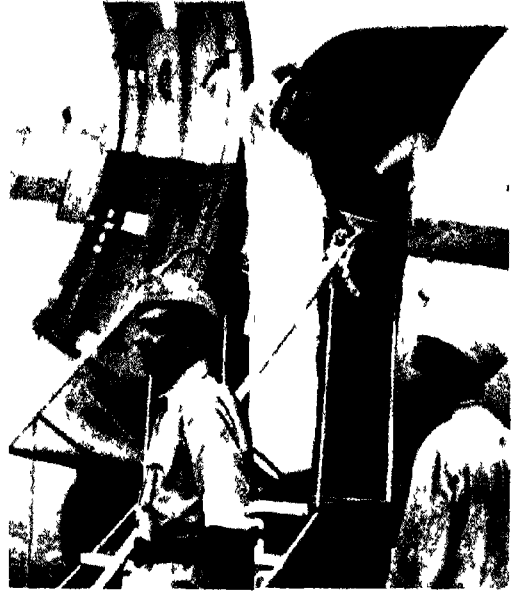
लनिनग्राड के प्राच्य संस्थान म
मध्य म, महाभारत क अनवादक प्रो कल्यानाव

पवीत्र म गाँ वि ान फाया अनमान गळयान क साथ

In Appreciation

of the outstanding services rendered
by

Shri Yashpal Jain

to the cause of peace and friendship
THE SOVIET LAND
NEHRU AWARD COMMITTEE
is glad to present
this Certificate of Merit to him

CHAIRMAN	SECRETARY-GENERAL	VICE-CHAIRMAN

14.11.1968
NEW DELHI

सोवियत लण्ड नेहरू पुरस्कार का प्रमाण पत्र

ट्रिनीडाड म गाधीजी की प्रतिमा के सामन

ट्रिनीडाड म विदाई

माडले (बर्मा) क बन्दीगृह म लोकमा य तिलक स्मारक क समक्ष

रगून क अ तर्राष्ट्रीय ध्यान केन्द्र म सचालिका सयामा मा क साथ

बहादुरशाह जफर की मजार पर

बर्मी लखको क बीच

रगून की एक सभा का सबोधन

सिंगापुर मे

हिन्दी परिषद् पोर्ट लुई (मारीशस) की सभा को सबोधित करते हुए
बाइं ओर अध्यक्ष श्री सामन्त बखारी

मारीशस से विदाई
मत्री श्री बसतराय-दम्पती तथा मत्री श्री रवीन्द्र घरभरण के साथ
यशपाल जैन सपत्नीक

फीजी के समाज सेवी श्री शकर प्रताप के साथ

फीजी मे आतिथ्य प० श्रीधर महाराज के परिवार के साथ

वन्काड क कलापूण फव्वार पर

मफारी (कैनेडा) क मैदान म

सफारी की झील म डाल्फिन रा करतब रखत हुए

कैनडा की विख्यात क्रीडा स्थली आटरियो प्लस म

कैनडा की विशिष्ट नगरी कुबक सिटी म

टारटो क चिडियाघर म

घर परिवार

माता पूज्य लक्ष्मी [illegible]

पिता पूज्य श्यामलाल जैन
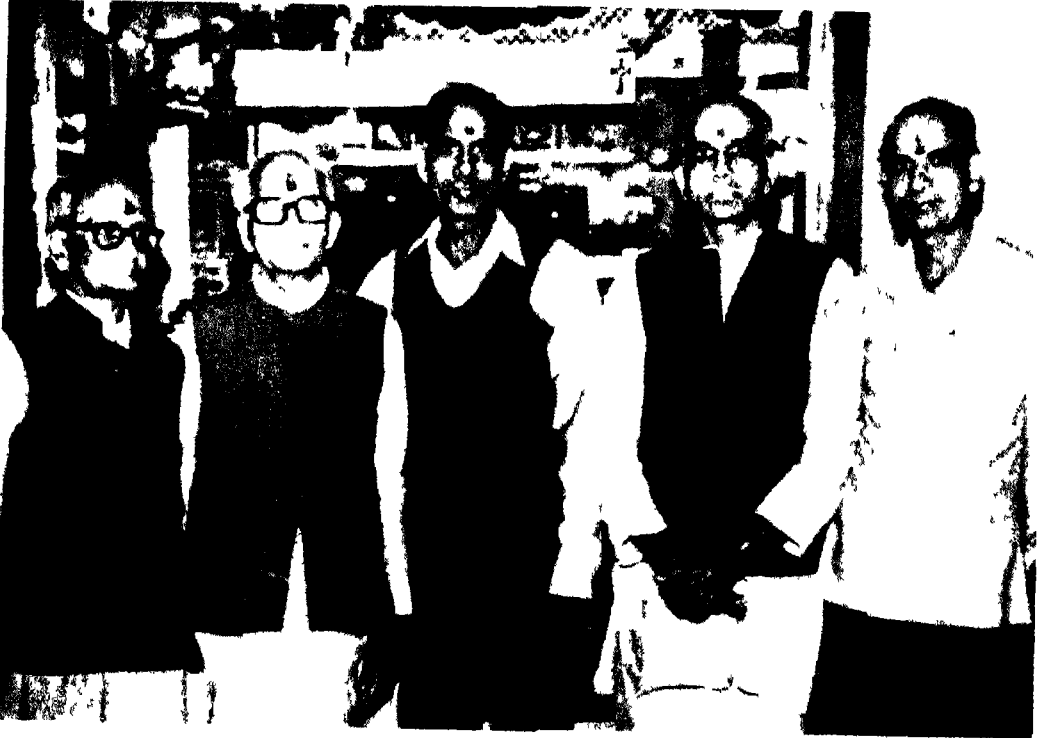
पांचो सहोदर
बाएं से, सर्वश्री हजारी लाल, यशपाल, कुशलपाल
वीरेन्द्र प्रभाकर और राजेन्द्रपाल

यशपाल जैन दम्पती

विशाल परिवार
एक विशेष अवसर पर

श्रीमती आदर्श कुमारी, स्नातिका के रूप में

यशपाल का परिवार
(बाएं से) पुत्री अनन्दा यशपाल जैन पुत्र सुधीर और पत्नी श्रीमती आदर्श कुमारी

श्रीमती अन्नदा पाटनी का परिवार
श्री कमल कुमार पाटनी (पति) चि० पल्लव (कनिष्ठ पुत्र)
श्रीमती अन्नदा पाटनी चि० पराग (ज्येष्ठ पुत्र)

श्री सुधीर कुमार का परिवार
(बाएं से) चि० विवेक (ज्येष्ठ पुत्र) श्री सुधीर कुमार,
चि० मोनिका (पुत्री) डा० मीरा (पत्नी) और चि० विनीत (कनिष्ठ पुत्र)

बटी अन्नदा की विदाई

(बाए से) सुधीर, सवश्री जयदयाल डालमिया, जैन इ कुमार, कमल कुमार पाटनी इमाम सा, आदश कुमारी हरिभाऊ उपाध्याय जीतमल लणिया अनन्दा सुभद्र कुमार पाटनी (जेठ) हजारीलाल जैन यशपाल जन और अभय कुमार जन

भूमि पूजन
दिल्ली में गह निर्माण

सौ० अनदा और श्री कमल कुमार के विवाह क अवसर पर
श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा आशीर्वाद

व्यक्तित्व विभिन्न भाव-रूप

पढ़न म लीन

नगा म मग्न

न मुक्त वातावरण म

चरवति चरवति

जीवन की गहराई में

प्रेरणा का अक्षय स्रोत
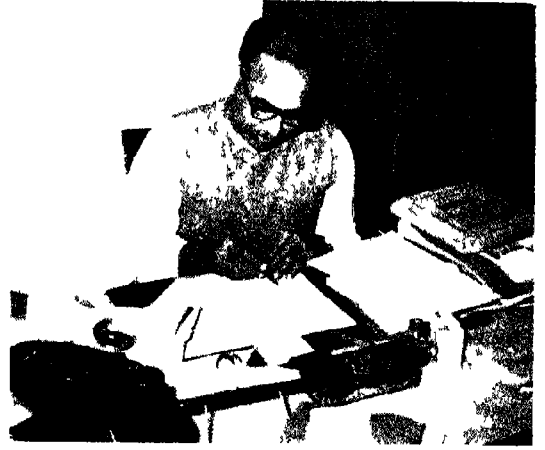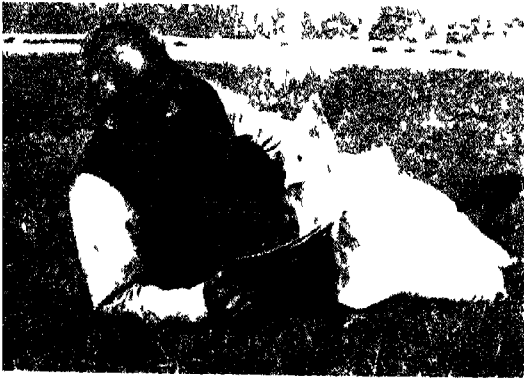
ग्रहण नहीं कर पाए। शासन ने उनका भरपूर उपयोग किया, लेकिन उनके मार्ग से कोसो दूर रहा। देश ने उन्हे श्रद्धा दी, पर उनकी बात नही मानी। उन्होंने जीवन भर कुछ नही चाहा। अपनी उतरती वय मे दो बातों की आकांक्षा की १ शराबबंदी हो। २ गो-वध पर पाबदी लगे। गो-वध निषेध के लिए तो उन्होने अनशन तक किया, किन्तु सरकार वचन देकर भी उसका पालन नहीं कर सकी। मैं क्या, सारा देश देखता था कि विनोबा का हृदय कितना चीत्कार करता है, पर बहरे कानो ने उनकी बात नही सुनी और वह युग-पुरुष अपनी आंखो से देखता रहा कि शराब की नदिया और चौड़ी, और गहरी, होती गई, कटने वाली गायो की सख्या पहले से कई गुनी अधिक हो गई।

विनोबा की व्यथा का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि कलकत्ता मे उन्होंने अपने प्रवचन मे कहा था, "मन होता है, कसाईघर मे जाकर मैं कट जाऊ।"

उन्होंने जो कुछ कहा था, अपने मरने के लिए नहीं कहा था, देश के, मानव-जाति के, भले के लिए कहा था पर मानवता तो जैसे सुप्त हो गई थी।

अपनी आत्मा की पुकार सुनाते-सुनाते विनोबा चले गए। गाधी को गोली मारकर मानवता रक्त हो गई थी, विनोबा को खोकर उसने अपनी कृतघ्नता का, अपनी हृदयहीनता का, परिचय दिया।

गाधीजी के विचार जन-जन तक पहुचे, इस सबध मे हम लोगो का चिंतन बराबर चलता था। उसी चिन्तन के फलस्वरूप सन् १९५१ से 'गांधी डायरी' का प्रकाशन आरभ किया, जो अबतक निकल रही है। वैसे कहने को तो वह डायरी है, पर हमने उसमे बापू की प्राथनाए, एकादश व्रत, रचनात्मक कार्यक्रम, उनके प्रिय भजन, उनके जीवन की प्रमुख घटनाओ की तालिका आदि बातें तो दी ही, प्रत्येक तिथि पर उनका उसी दिन को बोला या लिखा एक वचन भी दिया। बडी मेहनत की, परिश्रम सफल हुआ। आज की डायरियो मे लोगो ने उसे सर्वश्रेष्ठ माना।

इस डायरी के प्रकाशन से पहले गाधीजी की स्वयं की तथा उनकी विचार-धारा से सबधित दूसरो की लिखी बहुत-सी पुस्तके निकाली। सबसे अधिक बल हमारा इस तथा इसी प्रकार के साहित्य पर रहा।

गाधीजी विकासशील थे। प्रत्येक क्षण आगे बढते रहे। उनके विचार विकसित होते गए। प्रत्येक क्षण को उन्होने जिया और उसमे से नए अनुभव ग्रहण किए। उनके बहुत से विचारो मे परिवर्तन आया, लेकिन जहा तक शाश्वत सिद्धान्तो का प्रश्न है, उनमे किसी तरह की कोई तब्दीली नही हुई। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि के सबध मे उनके विचार अत तक यथापूर्व रहे। सन् १९०९ मे उन्होने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' लिखी। बाद मे उन्होने उसमे एक शब्द भी नही बदला।

गाधी और विनोबा मेरे जीवन की प्रेरक शक्ति रहे, आज भी हैं।

'मण्डल' के साथ मेरा सम्बन्ध सन् १९३७ के आसपास जुडा था, जो १९४० तक चला। उसके बाद सन् १९४६ मे मैं 'मण्डल' मे फिर आ गया और अबतक हू। इन बयालीस वर्षों मे प्रारभिक चार बष मे पुस्तको के अनुवाद और सम्पादन तथा ऐसे ही कुछ कार्यों मे मेरा योग रहा, लेकिन १९४६ के बाद इन कार्यो मे तो हाथ बटाया ही, साथ ही सस्था के विकास मे भी सहायता की। मैं यह हृदय से स्वीकार करता हू कि इस सस्था के निर्माण मे जिन व्यक्तियो ने अपनी विलक्षण सूझबूझ दिखाई और शुरू के दिनो मे अथक परिश्रम किया, उनमे स्व जीतमल लूणिया का, जिन्हे सब 'मालक' कहकर सम्बोधित करते थे, स्थान अग्रणी था। प्रेरणा महात्मा गाधी की थी, बीजारोपण स्व जमनालाल बजाज ने किया, उसकी साज-सवार सर्वश्री घनश्यामदास बिरला,

हरिभाऊ उपाध्याय (दा साहब), महावीर प्रसाद पोद्दार (ताऊजी) आदि ने की, लेकिन उसे खाद-पानी दिया मालक ने। वह कई वर्ष तक 'मण्डल' के मन्त्री रहे।

जब 'मण्डल' का कार्यालय सन् १९३४ मे अजमेर से दिल्ली आया तो मालक अजमेर छोडने की स्थिति मे नही थे। तब सस्था का दायित्व आया श्री मार्तण्डजी उपाध्याय के कधो पर, और उस दायित्व का निर्वाह मार्तण्डजी ने जिस त्याग-तपस्या से किया, उसका स्मरण करके हृदय रोमांचित हो उठता है। एक प्रकार से उन्होने 'मण्डल' के काम मे अपने को होम दिया। एकाग्र निष्ठा से उसमे जुटे रहे। स्कूली शिक्षा उन्होंने अधिक नही पाई थी, किन्तु अपने परिश्रम से इतनी योग्यता प्राप्त कर ली थी कि क्या अनुवाद, क्या सम्पादन और क्या पुस्तको का चुनाव, इस सबमे बहुत कम लोग उनका मुकाबला कर सकते थे। वह अग्रेजी, सस्कृत, हिन्दी, मराठी और गुजराती अच्छी तरह जानते थे।

उनकी पीठ पर दा साहब थे। दा साहब का राजनैतिक तथा रचनात्मक दोनो क्षेत्रो मे बडा मान था। गाधी-विचारधारा के वह प्रमुख व्याख्याता थे। अच्छे लेखक थे। सबसे बडी बात यह थी कि दोनो भाई लोक-सग्रही थे। उन्होने अजमेर मे और बाद मे दिल्ली मे अपने सहयोगियो की एक बहुत बडी टीम तैयार कर ली थी। मालक भी अपने जीवन के अत समय तक सहयोगी रहे।

डा राजेन्द्र प्रसाद 'मण्डल' के आरभ से ही उसके प्रधान सरक्षक और श्री घनश्यामदास बिरला उसके अध्यक्ष रहे। जब राजेन्द्रबाबू राष्ट्रपति हो गए और उन्होने सभी स्वय-सेवी सस्थाओं से सबध-विच्छेद कर लिया तो 'मण्डल' से उनके हटने पर घनश्यामदासजी प्रधान सरक्षक हो गए और आखिरी समय तक उस पद पर बने रहे। अध्यक्ष श्री भागीरथ कानोडिया हुए। उनके निधन के पश्चात उस पद पर श्री लक्ष्मी निवास बिरला आये और अभी तक वही उस दायित्व को सभाले हुए हैं।

स्व महावीर प्रसाद पोद्दार 'मण्डल' के आद्यसस्थापको मे से थे। वह उसके काम मे बराबर गहरी दिलचस्पी लेते रहे और सक्रिय सहयोग देते रहे। 'मण्डल' के काय-विस्तार मे उनका योग भी उल्लेखनीय है। सर्वश्री बैजनाथ महोदय, वियोगी हरि, कमलनयन बजाज, काशिनाथ त्रिवेदी, रामनाथ सुमन, मुकुटबिहारी वर्मा, शकरलाल (मामाजी), शोभालाल गुप्त आदि-आदि दर्जनो व्यक्ति 'मण्डल' के अग बने। बीसियो लेखक जुटे और 'मण्डल' उत्तरोत्तर उन्नति करता गया। उसमे अत्यन्त निष्ठापूर्वक मदद की अनेक छोटे बडे कार्यकर्त्ताओ ने। उन सबके नाम गिनाना सभव नही है। पर उनके योगदान को भुलाया नही जा सकता। उसने अब तक विविध विषयो की लगभग दो हजार पुस्तके निकाली है, जिन्होने पाठको की रुचि को परिष्कृत किया है।

सन् १९४६ मे जब मैं पुन 'मण्डल' मे आया तो मैंने कल्पना भी नही की थी कि अततोगत्वा 'मण्डल' का दायित्व मेरे ऊपर आवेगा। सोचता था कि 'मण्डल' की आर्थिक कठिनाइयो को कुछ हद तक दूर करवाकर मैं मुक्त हो जाऊगा, पर प्रभु को कुछ और ही मजूर था। ज्यो-ज्यो 'मण्डल' का काम बढता गया, मैं उसमे फसता गया। अपनी अस्वस्थता के कारण जब मार्तण्डजी ने सन १९७५ मे अवकाश ग्रहण किया, तो न चाहते हुए भी मत्री का पद मुझे सभालना पडा और अबतक सभाले हुए हू।

'मण्डल' के अपने बयालीस वर्ष के कार्य-काल मे सभी तरह के अनुभव हुए। मैं मानता हू कि लम्बे अर्से तक किसी भी सस्था का कुशलता और सफलता से सचालन करना आसान नही है, किन्तु मैं यह भी मानता हू कि ईमानदारी और सूझ-बूझ के साथ कार्य किया जाय तो वाछित फल अवश्य मिलता है।

मुझे यह कहने मे सकोच नही है कि 'मडल' ने देश की बडी सेवा की है और आज भी कर रहा है, भले ही उसका उचित मूल्याकन न हुआ हो। उसने भारतीय तथा विदेशी नेताओ, चिन्तको, लेखकों और समाज-

सेवियो आदि का जो साहित्य प्रकाशित किया है, वह सात्विक और चरित्र-निर्माणकारी तो है ही, ज्ञानवर्द्धक भी है।

अजमेर में 'मडल' से 'त्यागभूमि' नामक पत्रिका प्रकाशित हुई थी। विदेशी सरकार ने उससे जमानत मागी और वह बद कर दी गई। सन् १९४० से 'जीवन साहित्य' नामक मासिक पत्र आरभ हुआ, जिसके कुछ समय तक हरिभाऊजी उपाध्याय और डा सुधीन्द्र सम्पादक थे। सन् १९४६ मे मेरे आ जाने पर हरिभाऊजी और मैं सम्पादक हो गए। हरिभाऊजी का निधन हो जाने पर मैं अकेला ही उसका सम्पादक रहा और हू। इस पत्रिका ने भी अपनी भूमिका अच्छी तरह निभाई और अब भी निभा रही है। उसके सामान्य अको मे तो विचार-पूर्ण सामग्री रहती ही है, उसके बीसियो विशेषाक निकले हैं, जिन्हें पाठको ने सहेजकर रक्खा है और उनकी माग बराबर होती रहती है।

आज की पत्रिकाओ से वह भिन्न है। उसमे न भडकीली कविताए रहती हैं और न वासनोत्तेजक कहानियां और लेख। उसके सामने एक ध्येय है, एक आदर्श है, उसी को लेकर यह पत्र चलता रहा है। अब भी चल रहा है।

ऐसी पत्रिकाओ का और साहित्य का रास्ता बडा कठिन है। देश के आजाद होने के बाद इन ३७ वर्षों मे विपुल साहित्य का निर्माण हुआ है, लेकिन बहुत कम साहित्य ऐसा निकला है, जो पाठको के चिन्तन को प्रोत्साहित करे। यही कारण है कि गभीर साहित्य आज भी पढा नही जाता, पढवाया जाता है। हल्का-फुल्का उपन्यास लाखो की सख्या मे बिक जाता है, जबकि स्वस्थ, जीवनोपयोगी पुस्तक मुश्किल से दस-पाच हजार बिक पाती है। किसी-किसी पुस्तक की तो हजार प्रतिया भी नही खप पाती।

हमारे देश मे एक तो साक्षरो की सख्या बहुत सीमित है। जो पढे-लिखे हैं, वे भी उत्तम, विचारपूर्ण तथा प्रेरक साहित्य मे रुचि नही रखते। परिणाम यह है कि सत्साहित्य का स्रोत धीरे-धीरे सूख रहा है और चिन्तन का देश मे भारी अकाल पड गया है। कहा गया है कि विद्या-दान सर्वोत्तम दान है, किन्तु उसे लेने वाले आज बहुत थोडे है।

भारत बहुत बडा देश है। उसकी समस्याए भी बहुत बडी हैं। सबसे बडी कठिनाई यह है कि आज सारी समस्याए राजनीति से प्रभावित है। छोटे-से-छोटे मसले मे भी राजनीति घुस आती है और वह पेचीदा बन जाता है। आज सैकडो मसले राजनीति ने उलझा रक्खे हैं। पर मैं आशा करता हू कि भविष्य मे हमारा विवेक जाग्रत होगा और तब चिन्तन की प्रक्रिया तीव्र होगी।

'मण्डल' के विकास मे मेरी भूमिका क्या रही और है, इस विषय मे मेरा कुछ भी कहना उचित नही है। इसका मूल्याकन दूसरे लोग करेंगे, समय करेगा, लेकिन इतना मैं अपने अत करण की साक्षी देकर कह सकता हू कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पूरी निष्ठा से निर्वाह किया है और कर रहा हू। जो जी मे आया है, वह मैंने लिखा है, जो जी मे नही आया, उसे लिखने की बाध्यता मैंने कभी स्वीकार नही की।

मेरी मान्यता है कि चिरजीवी साहित्य वही होता है, जो अतर से उपजता है और जिसके सृजन मे लेखक की अपनी प्रेरणा होती है। बाहरी डडे के जोर पर जो साहित्य लिखा जाता है, वह बडा निष्प्राण होता है, अधिक दिन टिकता नही।

'मण्डल' से केवल वही साहित्य निकला है, जो किसी के आदेश पर नही रचा गया है। उसमे इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि वह पाठको की रुचि को गिराये नही, ऊपर उठावे।

देश-विदेश में प्रवास

देश मे

आदिगुरु शकराचार्य ने देश के चारो छोरो पर चार मठ स्थापित किये। उत्तर मे बदरीनाथ, दक्षिण मे शृगेरी मठ, पूर्व मे जगन्नाथपुरी और पश्चिम मे द्वारका। इसके पीछे उनका मुख्य उद्देश्य यह था कि इन तीर्थों की यात्रा करने के बहाने देशवासी सम्पूर्ण भारत के दर्शन कर ले। जानने के लिए देखना आवश्यक होता है। जो लोग अपने देश को जानना चाहते है, उन्हे उसको अपनी आखो से देखना चाहिए।

सन् १६४६ से पहले और उसके पश्चात मैंने अपने सारे देश की कई बार परिक्रमा की। सभी यात्राओ मे मेरा ज्ञान-वर्धन तो हुआ ही, नए अनुभव भी प्राप्त हुए। यद्यपि राजनीति ने देश को कुछ और ही रूप दे दिया है, तथापि उसकी आत्मा एक और अखण्ड दिखाई दी। भारत बहुत बडा देश है, उसमे अनेक भाषाए हैं, अनेक सस्कृतिया है, रहन-सहन मे भिन्नता है, आचार अलग-अलग हैं, परन्तु कुछ है, जिसने देश को एक ओर अखण्ड बनाए रक्खा है।

यह मूलभूत एकता मुझे अपने प्रवासो मे स्पष्ट दिखाई दी। उत्तर भारत और दक्षिण भारत, पूर्व और पश्चिम, यह तो विभाजन हमारा किया हुआ है, वास्तव मे देश की आत्मा एक है। यही कारण है कि सारे उतार-चढावो के बावजूद देश की हस्ती मिटी नही है।

अपनी पहली यूरोप-यात्रा मे जब मैं मास्को से चलकर चैकोस्लोवाकिया, स्विटजरलैण्ड, इटली, फ्रास, इगलैड, जर्मनी, डेनमार्क और फिनलैण्ड होकर पुन मास्को लौटा तो वहा भारतीयो ने एक सभा की। उन्होने मुझे विभिन्न देशो के अनुभव सुनाने को कहा। मैंने उन्हे बतलाया कि प्राचीनता के कारण मैंने चैको-स्लोवाकिया की, प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए स्विटजरलैण्ड की, कला के लिए इटली की, सस्कृति के लिए फ्रास की, लोकतत्र के उद्गम के लिए इगलैण्ड की, विनाश मे से निर्माण के पुरुषार्थ को देखने के लिए जर्मनी की और छोटे होने पर भी किस प्रकार स्वावलम्बी हो सकते है इसके मूल्याकन के लिए डेनमाक और फिनलैण्ड की यात्रा मैंने की। सब देशो मे एक-एक विशेषता है, लेकिन यदि इन सारी विशेषताओ का समन्वित रूप देखना हो तो वह भारत है। उसमे ये सारी बाते विद्यमान है, लेकिन दुर्भाग्य से हम अपने देश को जानते नही।

जिसने हिमालय नही देखा, वह भारत के प्राकृतिक सौदर्य की कल्पना नही कर सकता। जिसने गगा, यमुना आदि के किनारे-किनारे पैदल-यात्रा नही की, वह नदियो के महत्व को क्या जाने ! जिसने सागर नही देखा, वह अनत जल-राशि की महिमा को अनुभव नही कर सकता। जिसने अजता-एलौरा की गुफाए नही देखी, वह अपनी महान कला का अनुमान नही लगा सकता। जिसने तीर्थों के दशन नही किए, वह भारतीय धर्म की महिमा को क्या समझे !

हम लोगो ने उत्तराखण्ड के समस्त धामो—बदरी, केदार, गगोत्री, यमुनोत्री और गोमुख की यात्रा की, अमरनाथ गए, और दक्षिण के छोर पर कन्याकुमारी और धनुषकोटि तक कोई भी तीर्थ ऐसा नही रहा, जिसके दर्शन हम लोगो ने न किए हो। इन सारी यात्राओ के सबध मे मैंने खूब लिखा। अधिकाश लेख-मालाए 'नवभारत टाइम्स' मे छपी और लाखो पाठको ने उन्हे बडे चाव से पढा। अमरनाथ की यात्रा पर 'जय अमरनाथ' ! नामक पुस्तक निकली। एक बार जब शृगेरी मठ के शकराचार्य से मेरा परिचय कराया गया तो उन्होंने छूटते ही कहा, "हम इन्हे जानते हैं, पर यह हमे नही जानते।"

मैंने विस्मय से उनकी ओर देखा। वह मुस्कराते हुए आगे बोले, "हमने आपकी 'जय अमरनाथ' पुस्तक पढ़कर अमरनाथ की यात्रा की थी।" मैंने कृतज्ञभाव से कहा, "मेरा लिखना सार्थक हो गया।"

'उत्तराखण्ड के पथ पर' मे मैंने बदरी-केदार की यात्राओ का विशद् वर्णन किया था। वह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि उसका तत्काल नया सस्करण हो गया। जब वह पुस्तक लेख-माला के रूप मे 'नवभारत टाइम्स' मे प्रकाशित हो रही थी, बबई जाने का अवसर हुआ। साथ मे 'सस्ता साहित्य मंडल' के तत्कालीन मत्री श्री मार्तण्डजी उपाध्याय भी थे। हम लोग बाजार मे स्टेनलैस स्टील के बर्तनो की दुकान पर गए। वहा 'नवभारत टाइम्स' रक्खा देखकर मार्तण्डजी ने दुकानदार से पूछा, "क्या तुम इस अखबार को नियमित रूप से पढते हो ?"

वह बोला, "नही, इसमे किसी यशपाल जैन के बदरी-केदार की यात्रा पर लेख छप रहे हैं। उन्ही को पढने के लिए इसे खरीदता हू।"

मार्तण्डजी ने कहा, "यशपालजी से मिला दू तो ?"

"मुझे बडी खुशी होगी।" वह बोला।

मार्तण्डजी ने मेरा परिचय कराया तो वह इतना अभिभूत हुआ कि उसने चार थालो के सेट, जिसमे एक थाल, दो कटोरी और एक गिलास था, चौसठ रुपये मे दे दिये, साथ मे दो दजन चम्मचे। उन सब पर उसने अपने हाथ से मेरा नाम भी लिख दिया। अगली बार जब मार्तण्डजी वहीं चार थालो के सेट लेने गए तो उसने एक सौ आठ रुपये मागे। कुछ तो स्टील का भाव भी बढ गया था, लेकिन उससे भी बडी बात यह थी कि मेरी लेख-माला समाप्त हो गई थी।

एक प्रेस-पार्टी के साथ प जवाहरलाल नेहरू ने मुझे लद्दाख भेजा। यह चीन के आक्रमण के कुछ ही दिन बाद की बात है। उस यात्रा मे हमारा अमरीकी जहाज गौरीशकर (ऐवरेस्ट) की चोटी पर से गुजरा। मौसम साफ था। उसे देखकर रोमाच हो आया। ससार के सबसे ऊचे पहाडी मार्ग से जब हमारी जीप चागला (लगभग १९-२० हजार फुट) से गुजरी तो चारो ओर की हिम-मडित दृश्यावली को देखकर न केवल हिमालय की विराटता का अनुभव हुआ, अपितु उसकी अलौकिकता का भी।

देश-भ्रमण की अनगिनत यात्राओ मे मुझे जहा हिन्दी साहित्य सम्मेलनो के, जिसकी स्थायी समिति का मैं बराबर सदस्य रहा, और सर्वोदय सम्मेलन के अधिवेशनो की याद आती है, वहा मैं पाडिचेरी और गणेशपुरी की यात्राओ को कभी नही भूल सकता। पाडिचेरी के श्रीअरविन्द आश्रम की माताजी की मेरे प्रति बडी आत्मीयता थी। उनके दर्शन करने के लिए मैं कई बार पाडिचेरी गया और वह अत्यन्त उदारता-पूर्वक मुझे समय देती रही। उन्होने सबसे पहले एक बडे नाजुक काम मे योग देने का मुझे अवसर दिया। वह फ्रांस मे उत्पन्न हुई थी, पर श्रीअरविन्द के पास आने के बाद उन्हे लगा कि उनका पुनर्जन्म भारत मे हुआ, अत वह अपनी फ्रेच राष्ट्रीयता को बनाए रखकर भारत की राष्ट्रीयता चाहती थी। उन्होने एक पत्र देकर अपने अते-वासी डा इद्रसेन और मुझे राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद से मिलने भेजा। राजेन्द्रबाबू उस समय मैसूर मे ठहरे थे। हम लोग वहा गए, राजेन्द्रबाबू से मिले। माताजी का पत्र दिया, उन्होने माताजी के प्रति गहरी श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहा कि दोहरी राष्ट्रीयता मिलना सभव नही है। उन्होने बताया कि गाधीजी ने मीराबहन (मिस स्लेड) को दोहरी राष्ट्रीयता दिलवाने के लिए जवाहरलालजी से कहा था। उन्होंने इस विषय मे कानून के विशेषज्ञो से राय ली, पर उनका कहना था कि एक व्यक्ति को एक ही राष्ट्रीयता मिल सकती है।

एक दूसरा अवसर उस समय आया जब मैंने माताजी से निवेदन किया कि आपके पास एक-से-एक

बढ़कर योग्य तथा निस्स्वार्थ विशेषज्ञ हैं। आप उनमे से कुछ व्यक्तियो को भारत सरकार की सहायता के लिए क्यों नही भेज देती ? माताजी ने कहा, "मैं इसके लिए तैयार हू। मैं जिन व्यक्तियो को भारत सरकार को चुनी, वे सरकार से एक पैसा नही लेगे, अपनी सेवाए मानद रूप मे देंगे, पर वे काम मेरे निर्देशन मे करेंगे।" उन्होंने राष्ट्रपति के नाम इस आशय का पत्र लिखा और उन व्यक्तियो की सूची सलग्न की, जिन्हे वह भारत सरकार की सहायतार्थ भेजने को उद्यत थी। उनके पत्र को लेकर मैं राजेन्द्रबाबू से मिला। उनसे बात की तो उन्होंने स्पष्ट कहा, "यशपालजी, सरकार को यह कैसे स्वीकार होगा कि वे लोग काम यहा करें और मार्ग-दर्शन माताजी से प्राप्त करे ? दूसरे, ऐसे आदमियो को सरकारी अधिकारी टिकने कहा देंगे !"

मुझे बडा दु ख हुआ, क्योकि मेरी हार्दिक आकाक्षा थी कि देश के प्रशासन मे नीति का पूर्णतया समावेश हो और वह शुद्ध बने, लेकिन राजेन्द्रबाबू ने जो कठिनाई बताई, वह वास्तविक कठिनाई थी।

मेरी दूसरी स्मरणीय यात्राए गणेशपुरी की थी, जहा गुरुदेव सिद्धपीठ के अधिष्ठाता बाबा मुक्तानन्द परमहस रहते थे। ससार के, विशेषकर अपने देश के, आध्यात्मिक पुरुषो के प्रति मेरा मन बहुत ही आकर्षित रहा है। उसी आकर्षण से मैं अनेक सतो से मिला। श्रीअरविन्द आश्रम की माताजी के पास गया, माता आनदमयी के आश्रम मे गया, गगोत्री के स्वामी कृष्णाश्रम से मिला। और भी बहुत से सतो और धर्म-पुरुषो से मिला। जैनाचार्य शान्ति सागरजी के सान्निध्य मे रहा, आचार्य तुलसी, मुनि सुशील कुमार, उपाध्याय अमर मुनि आचार्य रजनीश आदि-आदि न जाने कितने सत जनो के निकट सम्पर्क मे आया। सबके लिए मेरे मन मे आदर रहा, सबने मुझे स्नेह दिया और उनके प्रति मैंने कृतज्ञता अनुभव की, किन्तु मेरा मन तो मा की गोद चाहता था, जिसमे मैं सिर रखकर अपनी सारी बेचैनी, हैरानी और क्लेश भूल सकू। वह गोद मुझे बाबा मुक्तानद की मिली। ऐसी ही गोद क्षुल्लक (अत काल मे मुनि) बाबा गणेश प्रसाद वर्णी की दिखाई दी थी, पर वह तो निर्वाण को प्राप्त हो गए। बारह-तेरह वर्ष तक बाबा मुक्तानद मुझ पर और मेरे सारे परिवार पर अपने प्रेम की वर्षा करते रहे, हम सबको उन्होने निहाल कर दिया। अत मे वह भी ब्रह्मलीन हो गए।

उनके जाने के बाद कुछ समय तक बडी रिक्तता अनुभव हुई, किन्तु धीरे-धीरे लगा कि बाबा बहुत कुछ दे गए हैं। उसे ध्यान मे रखना और तदनुकूल जीते रहना है।

अध्यात्म की मेरी भूख का अत नही था। वही भूख मुझे एक अन्य व्यक्ति के पास ले गई। वह है श्री सत्यनारायण गोयन्का। उनके पूर्वज बर्मा गए थे और सत्यनारायणजी का जन्म वही हुआ था। जब मेरे अनन्य मित्र और बधु विष्णु प्रभाकर और मैं सन् १९६० मे अखिल बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिकोत्सव के उद्घाटन के सिलसिले मे रगून गए थे तो उन्ही के साथ ठहरे थे। उस समय वह बहुत बडे उद्योगपति थे। उनकी कुछ मिले चलती थी। पर अपने माइग्रेन के रोग के कारण 'विपश्यना' (ध्यान-योग) की ओर वह आकृष्ट हुए। उन्हे लाभ हुआ। उसके बाद उधर रुचि बढती गई। वर्तमान मे जिन्होने भगवान बुद्ध प्रणीत विपश्यना को नया जीवन प्रदान किया था, उन ऊ बा खिन ने अपने निधन की पूर्व सध्या मे सत्यनारायणजी को विपश्यता सिखाने का दायित्व सौपा। सत्यनारायणजी उस समय भारत मे थे। ऊ बा खिन की इच्छापूर्ति के लिए उन्होने इस सत्कार्य के लिए अपने जीवन को अर्पित कर दिया। वह स्वय शिविर लगाने लगे और अब तो देश-विदेश मे विपश्यना इतनी लोक-प्रिय हो गई है कि चारो ओर से सत्यनारायणजी की माग रहती है।

विपश्यना के कई शिविरो मे भाग लेने के उपरान्त मैं कह सकता हू कि ध्यान की पद्धतियो मे यह सबसे अधिक वैज्ञानिक है। श्वास पर ध्यान केन्द्रित करने से आरभ करके साधक जीवन की गहराइयो मे जाता है और अततोगत्वा उसे अनुभूति होती है कि जिन चीजो पर हमारा जीवन आधारित रहता है, वे प्राय अनित्य

होती हैं और इस प्रकार वह जीवन का मर्म समझ लेता है। मेरा मन आज भी इस ध्यान-पद्धति की ओर आकृष्ट होता है, पर मैं उसके लिए नियमित रूप से समय नहीं निकाल पाता।

मेरी मान्यता है कि सच्चा धर्म-पुरुष वही है, जिसके सामने पहुचते ही व्यक्ति का अहकार गल जाय। आदमी की सबसे बड़ी व्याधि अहकार ही है और उसी से मुक्त होने पर जीवन मे निखार आता है। पर अहकार पूरी तरह गलता कहा है ! राजनेता, विद्वान, लेखक, समाज-सेवी, उद्योगपति, यहां तक कि अधिकांश साधु-सत तक अहकार का बोझ ढोते हैं।

सारे भारत मे कई बार घूमने पर मुझे जहां प्रकृति-प्रदत्त महान सम्पदा को देखने का सौभाग्य मिला, वहा देश की अमूर्त्त सास्कृतिक परम्पराओ को भी प्रत्यक्ष रूप से देखने और जानने का अवसर मिला। मैंने कई बार कहा और लिखा है कि हम अपने बच्चो को हिमालय-यात्रा करानी चाहिए, देश मे घुमाना चाहिए, जिससे बचपन से ही उन्हे उच्चकोटि के सस्कार प्राप्त हो और देश की धरती के साथ उनका घनिष्ट नाता जुडे।

विदेशों मे

मेरे पैर मे चक्र है, वह मुझे चैन नही लेने देता। उस चक्र ने मुझे अपने देश मे घुमाया है तो देश के बाहर भी ले गया है। दादाजी (श्री बनारसी दास चतुर्वेदी) ने मेरे बारे मे लिखा है कि राहुल सांस्कृतायन और डा रघुवीर के बाद मैं तीसरा हिन्दी लेखक हू, जिसने देश-विदेश की इतनी यात्राए की हैं। राहुलजी और डा रघुवीर ने जो काय किया है, उसका तो मैं शताश भी नही कर पाया, लेकिन यह सच है कि मैंने दुनिया छान डाली है।

मेरी सबसे पहली विदेश-यात्रा सन् १६५७ मे रूस की हुई थी, जहा मैं युवक समारोह मे भारतीय प्रतिनिधि-मडल का सदस्य होकर गया था। एक सप्ताह मे लौट आने की बात थी, लेकिन लौटा चार महीने मे। रूस-प्रवास पर बाद मे मेरी एक लेख-माला निकली, जो 'रूस मे छियालीस दिन' पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुई। उस पर मुझे 'सोवियत लैण्ड नेहरू' पुरस्कार मिला।

मास्को मे रेडियो आदि से जो पैसा मिला, वह भारत आ नही सकता था। मित्रो ने सलाह दी कि यूरोप के देशा मे घूम आओ। अत मैंने चैकोस्लोवाकिया, स्विट्जरलैण्ड, इटली, फ्रांस, इगलैण्ड, जर्मनी, डेनमार्क, फिनलैण्ड, लेनिनग्राद, और मास्को का हवाई जहाज का टिकट लिया। मास्को मैं काफी दिन रह चुका था, इसलिए चाहता था कि लदन होकर भारत लौट जाऊ, लेकिन मेरे पास दिल्ली से मास्को का वापसी टिकट था। जब मैंने इन्टूरिस्ट से इस बारे मे बात की तो वहां बैठी किशोरी ने कहा, "क्यो, क्या मास्को आपको पसद नही है, जो लदन से भारत चले जाना चाहते हैं ? यहा वापस आइए और कुछ दिन रहिए।"

उसने यह कहा तो, पर सच यह था कि वह टिकट मे कोई परिवर्तन नही कर सकती थी। जो हो, टिकट बनवा कर मैंने यात्रा आरभ की। जहा भी गया, वही सुविधाए मिलती गईं। विदेशी मुद्रा की कमी इसी से नही हुई। लदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर उतरा उस समय मेरे पास कुल जमा एक पौण्ड और कुछ शिलिंग थे। मैं एक मित्र के साथ ठहरा। बी बी सी वालो को मालूम हुआ तो उन्होने मुझे बुलाया और १२॥ मिनट की इटरव्यू ली। उससे फिर पैसा हाथ मे आ गया। यात्रा बडे आनन्द से हुई। लौट कर मैंने 'यूरोप की परिक्रमा' लेख-माला 'नवभारत टाइम्स' मे लिखी।

यूरोप के इस प्रवास मे चमक-दमक बहुत देखी, पर मेरा मन भूखा ही रहा। मैं भारतीय सस्कृति

का दर्शन करना चाहता था, पर वैसा नही हुआ। मेरी यह इच्छा दक्षिण-पूर्व एशियाई देशो की यात्रा करने पर पूर्ण हुई। मै पहले ही बता चुका हू कि बर्मा के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक महोत्सव के लिए मुझे और विष्णु प्रभाकर को बुलाया था। हम लोग डेढ़ महीने ब्रह्मदेश मे रहे, अनतर थाईलैण्ड, कम्पूचिया, दक्षिण वियतनाम, सिगापुर और मलाया मे घूमे, फिर बैकोक होकर रगून पहुचे। इस यात्रा को मैं अपने जीवन की अत्यन्त महत्वपूण यात्रा मानता हू। भारतीय सस्कृति बड़े ही उत्कृष्ट रूप मे मुझे बर्मा, थाईलैण्ड और कम्पूचिया मे दिखाई दी। अकोरवाट, अकोर थाम, बेतई सिरी, बेतई सिमरे आदि मे भारतीय सस्कृति और हिन्दू धर्म की अमूल्य निधिया बिखरी पडी हैं। उन्हे देखकर मन अनिवचनीय आनद की अनुभूति करता है। थाईलैण्ड मे राम-भक्ति की पावन धारा इतनी शीतल और इतनी वेगवती है कि दर्शक देखकर चकित रह जाता है।

इस प्रवास की लेख-माला भी 'नव भारत टाइम्स' मे छपी और बाद मे उसके साथ अफगानिस्तान और नेपाल को जोड कर मेरी 'पडोसी देशो मे' पुस्तक का प्रकाशन हुआ, जिसे उत्तर प्रदेश की सरकार ने पुरस्कृत किया।

गांधी मार्ग के निष्ठावान पथिक, अपनी धुन के धनी और स्वतत्रता सेनानी श्री महाबीर प्रसाद पोद्दार ने एक बार श्री घनश्यामदास बिरला से योही कह दिया था कि वह विदेशो मे जाकर वहा से प्राकृतिक चिकित्सा सबधी साहित्य खरीदना चाहते है। मै उस समय वहा मौजूद था। पोद्दारजी तो जा नही सके, लेकिन बिरलाजी ने मुझसे जाने और प्रवासी भारतीयो तथा भारतीय सस्कृति का निरीक्षण कर आने को कहा। उन्होने विशेष रूप से मारीशस और फीजी जाने की इच्छा प्रकट की, जहा भारतीय बडी सख्या मे बसते है। मेरा मन अफ्रीका मे घूमने का था। मैंने अदन, सूडान, इथियोपिया, कैनिया, युगाण्डा, तजानिया, जजीबार मलावी, दक्षिणी रोडेशिया, जाबिया, मैडेगास्कर, मारीशस, कोकोज द्वीप, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, फीजी, सिगापुर और थाईलैण्ड का कार्यक्रम बनाया। प्राकृतिक दृष्टि से मुझे अफ्रीका बडा सुन्दर लगा। इतने घने बन मीलो तक फैले मैंने अन्यत्र नही देखे थे। युगाण्डा का विशेष आर्कषण मेरे लिए नील नदी का उद्गम देखना था, जो युगाण्डा की राजधानी कम्पाला से लगभग २५० मील की दूरी पर था। रिपन प्रपात अब विक्टोरिया झील मे मिल गया है। उस झील का आकार सागर जैसा है।

सारे देशो मे मेरा शानदार स्वागत हुआ। सभी जगह रेडियो और टी वी पर मेरे एकाधिक कार्य-क्रम हुए। बात यह हुई कि उस प्रवास पर जाने से पहले मैं तत्कालीन प्रधानमत्री श्री लालबहादुर शास्त्री से मिला। उन्होने जहा-जहा मुझे जाना था वहा के राजदूतावासो को पत्र लिख दिये कि मुझे सब प्रकार की सुविधाए प्रदान की जाय। इसस मुझे बडी सुविधा हो गई और प्रत्येक देश मे मुझे विशिष्ट अभ्यागत का स्वागत दिया गया।

रेडियो और टी वी पर तथा सावजनिक सभाओ और गोष्ठियो मे बोलने के मेरे चार मुख्य विषय थे साहित्य, भारतीय सस्कृति, गाधी विचार-धारा और प्रवासी भारतीय। भारतीय समुदाय के सामने मैं राष्ट्रभाषा हिन्दी की बात भी करता था। मोम्बासा (कैनिया) मे एक सभा जैन-धर्मावलम्बियो की हुई तो मैं वहा जैन-धर्म, विशेषकर भगवान महावीर के सिद्धान्तो पर बोला।

एक घटना मुझे याद आती है। सभवत सूडान मे एक दिन वहा के सबसे प्रमुख पत्र मे पहले पृष्ठ पर मोटी सुर्खिया मे अग्रेजी मे छपा, जिसका भाव था—"भारत अब भी अग्रेजी को बनाये रखने के लिए उत्सुक, मद्रास मे भयकर प्रदर्शन, लोग जल कर मृत्यु का वरण कर रहे हैं।"

इस समाचार को पढ कर मुझे बडी चोट लगी। मैंने तत्काल भारतीय दूतावास को फोन किया।

प्रथम सचिव मिले। मैंने कहा, "आपने आज का अखबार देखा ?"

"जी हां," उन्होंने बड़े साहिबी लहजे मे कहा, "कहिये।"

मैंने कहा, "आपको उसमे कुछ अन्यथा दिखाई नही दिया ?"

"अन्यथा ?" उन्होने लापरवाही से कहा, "जो छपा है, वह ठीक है।"

मुझे ताव आ गया। मैंने कहा, "जनाब, आपको कुछ और भी जानकारी है ? तमिलनाडु वह प्रदेश है, जहा गांधीजी ने सन् १९१८ मे 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना की थी और अपने लडके देवदास गांधी तथा अन्य व्यक्तियो को हिंदी के प्रचार के लिए भेजा था। आपको पता है कि तमिलनाडु वह प्रदेश है, जहा चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने अपने मुख्यमत्रित्व के दिनो मे हिंदी को अनिवार्य बनाया था और जिन्होने उसका विरोध किया था, उन्हें जेल भेजा था ? क्या आपको जानकारी है कि आज भी वहां हिंदी की परीक्षाओ के आठ सौ केन्द्र हैं ?

इन बातो को सुनकर वह महोदय दबी जबान मे बोले, "मुझे दु ख है कि ये तथ्य हमे विदेश-मत्रालय ने नही दिये। क्या आप एक कृपा करेंगे ?"

मैने पूछा, "क्या ?"

बोले, "मैं अभी आता हू। आप मेरे साथ रेडियो स्टेशन चलिए और इन्ही तथ्यो के आधार पर एक वार्ता प्रसारित कर दीजिये।"

मैंने स्वीकृति दे दी। वह महानुभाव आए। मुझे साथ लेकर रेडियो स्टेशन गये और मैंने तेरह मिनट की वार्त्ता प्रसारित की। फिर उस वार्त्ता के आधार पर उन्होंने एक गश्ती चिट्ठी तैयार करके विभिन्न पत्रो आदि को भेजी।

इस यात्रा मे मारीशस और फीजी के आतिथ्य ने तो मुझे विभोर कर दिया। वहा मैं लगभग २०-२० दिन रहा। वहा के भारतीयो मे भारत और भारतीय सस्कृति के प्रति अनुराग देखकर मेरा मन रोमाचित हो उठा। पर हिन्दी के लिए जो प्रेम मुझे मारीशस मे देखने को मिला, वह फीजी मे नही मिला। मारीशस मे, यद्यपि वहा की भाषा क्रयोल है, तथापि हिन्दी का खूब चलन है। फीजी मे हिन्दी का उतना प्रचार नही है। मारीशस मे मेरे सारे कार्यक्रमो की व्यवस्था वहा की 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' ने की थी, पर फीजी मे मेरा सारा प्रबन्ध भारत-प्रेमी श्री शकर प्रताप ने किया था। भारतीय सस्कृति के प्रति उनके मन मे आकर्षण था, पर वह हिन्दी के उतने आग्रही नही थे। प्रवासी भारतीयो के लिए कुछ करने की उनके दिल मे बडी तड़प थी।

फीजी मे एक मजेदार बात हुई। वहा के कुछ बधुओ ने मुझे सलाह दी कि यहा धोती-कुरता मत पहनिये, क्योकि जो धोती-कुरता पहनता है, उसके सबध मे माना जाता है कि वह गरीब है। यहा हिन्दी भी मत बोलिए, क्योकि लोग समझते हैं कि हिन्दी बोलने वाला अशिक्षित है, अग्रेजी नही जानता।

मैंने बडी विनम्रता से उत्तर दिया कि कुरता-धोती के अलावा और कुछ पहनने का तो प्रश्न ही नही उठता। जहा तक हिन्दी न बोलने का सवाल है, आप मुझे क्षमा करेंगे, मैं बस भर हिन्दी मे ही बोलूगा।

फीजी की राजधानी सूवा मे मेरा सार्वजनिक अभिनदन हुआ। लगभग सभी प्रमुख शिक्षण-सस्थाओ मे मुझे आमत्रित किया गया। मैं पहले जमकर हिन्दी मे बोलता और फिर दस-पद्रह मिनट मे हिन्दी के भाषण का सार अग्रेजी मे दे देता।

फीजी छोटा-सा देश है। ६-७ लाख की आबादी है। चारो ओर शोर मच गया। उसके साथ ही मुझ पर निमत्रणो की वर्षा होने लगी। जहा मैं जा सकता था, गया।

प्रवास के अत मे मुझे विदाई देने के लिए सूवा मे एक समारोह हुआ। उसमे उन लोगो ने जो भावनाए

व्यक्त की, उनसे मेरी यात्रा सार्थक बन गई। उन्होने कहा, "आपके आने से सबसे बडा लाभ हमे हुआ। यहा के लोगो की निगाह मे कुरता-धोती और हिन्दी का मान बढा है।"

इससे बढ़कर सम्मान की बात मेरे लिए भला और क्या हो सकती थी !

यात्रा लबी थी, बहुत लम्बी थी, पर मुझे थकान अनुभव नही हुई, बल्कि मेरा उत्साह दिनो-दिन बढ़ता ही गया। नये-नये देश देखे, नये-नये लोग मिले लेकिन उससे भी बडी बात यह हुई कि मुझे प्रवासी भारतीयो की स्थिति को प्रत्यक्ष रूप मे देखने का मौका मिला।

भारत लौटकर मैंने अपनी रिपोर्ट तैयार की 'प्रवासी भारतीयो की स्थिति'। श्री घनश्यामदासजी को वह रिपोर्ट पसद आई और उन्होने उसका अग्रेजी अनुवाद करके छपवाने और सारे ससद सदस्यो को तथा केन्द्रीय सरकार के सब मत्रालयो को भेजने की सलाह दी। मैंने ऐसा ही किया। उस रिपोर्ट की गृह तथा विदेश मत्रालयो मे बडी चर्चा रही। उन्होने इसकी बडी सख्या मे प्रतिया मगवाकर इधर-उधर भेजी।

इस प्रवास की लेख-माला 'सागर के आर-पार' के सबध मे मुझे बीसियो क्या, पचासो पत्र मिले, जिनमे पाठको ने इतनी उपयोगी सामग्री देने के लिए बधाई दी।

१९६८ मे 'चित्रकला सगम' का एक प्रतिनिधि मडल उजबेकिस्तान की सरकार के निमत्रण पर मास्को, ताशकद और समरकद गया। इस प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व मुझे सोपा गया। उसमे सर्वश्री हसराज गुप्त (दिल्ली के तत्कालीन महापौर), अक्षयकुमार जैन, हरिकृष्ण शास्त्री, सुनील शास्त्री (स्व लालबहादुर शास्त्री के सुपुत्र), ताराचद खण्डेलवाल और वीरेन्द्र प्रभाकर थे। हम लोग शास्त्रीजी की एक विशाल आवक्ष प्रतिमा ले गए थे, जिसे उस स्थान पर स्थापित किया गया, जहा उनका देहान्त हुआ था।

इस प्रवास के प्रारभ मे ही मैंने अपने प्रतिनिधि मडल के सब सदस्यो को सूचित कर दिया था कि हमारी सारी कार्यवाही हिन्दी मे होगी। इसे सबने स्वीकार कर लिया। मास्को सरकार हमारे इस निश्चय से बहुत प्रभावित हुई और उसने तत्काल एक हिन्दी रूसी के परिवाचक (दुभाषिये) की व्यवस्था कर दी।

सन् १९७२ मे मैं सपत्नीक कैनेडा गया, जहा मेरा लडका सुधीर रहता है। वहा से हम लोग अमरीका चले गए। लौटकर फिर कैनेडा गए। वहा मुझे सूरीनाम, गयाना और ट्रिनीडाड और टोबेगो (कैरेबियाई देशो) की यात्रा का निमत्रण मिला। मै वहा गया और तीनो देशो मे खूब घूमकर कैनाडा वापस पहुचा, फिर स्वदेश आया। प्रवासी भारतीयो की दृष्टि से यह प्रवास अत्यन्त महत्वपूण था।

दूसरी बार हम लोग सन् १९८० मे पुन कैनेडा गए। टोरेटो (कैनेडा) की बहुत-सी स्मृतियो मे एक स्मृति अविस्मरणीय है। पिछली बार जब हम लोग टोरेटो गए थे, मुझे 'हिन्दू प्रार्थना समाज' नामक सस्था मे आमत्रित किया गया था। शहर के एक गिरजाघर मे ईसा के सलीब पर पर्दा डालकर वहा राम, कृष्ण आदि के चित्र रख लिये गए और रामायण आदि का पाठ किया गया, कीर्तन हुआ।

यह सब मुझे देखकर जहा प्रसन्नता हुई, वहा थोडा दु ख भी हुआ कि सस्था के अधिकारियो ने अपना स्थान नही बनाया। मैंने यह दु ख उनके सम्मुख व्यक्त किया तो उन्होंने आश्वासन दिया कि अगली बार जब मैं आऊगा तो देखूगा कि सस्था का अपना स्थान हो गया है।

इस बार मैं वहा पहुचा तो उन्होने मुझे बुलाया और मुझे यह देखकर अपार हर्ष हुआ कि उन लोगो ने न केवल मदिर बनाया था, अपितु बाहर से आने वाले धर्म-प्रेमी तथा अन्य व्यक्तियो के ठहरने के लिए मदिर के साथ ही आवास का भी प्रबध कर दिया था। अपने भाषण मे मैंने उन्हे बधाई दी और आशा व्यक्त की कि प्रभावना की दृष्टि से उस धर्म-स्थान की भविष्य मे महत्वपूण भूमिका होगी।

कैनेडा पहुचने से पहले हम न्यूयार्क मे रहे और बाबा मुक्तानद के आश्रम साउथ फॉल्सबर्ग मे कैनेडा

आने से पूर्व और लौटकर अठारह दिन बिताये। इस प्रवास के साथ बिमला लूनावत और मुनि सुशील कुमार का हमारे प्रति प्रेम और सौजन्य विशेष रूप से जुड़ा है। बिमला हनुमान की परम भक्त हैं। न्यूयार्क में रहकर अपनी साधना करती हैं और ज्योतिष (कुण्डली बनाना और उसका फल बताना) मे निष्णात हैं। उनके दो बड़े ही सुसंस्कृत पुत्र हैं। हमारे अभिनदन के लिए बिमला ने एक गोष्ठी की, जिसमे ४०-४५ व्यक्तियो ने भाग लिया।

इस बार न्यूयार्क मे हिन्दी की सुलेखिका सोमा वीरा से भी मिलना हुआ। उन्होने रेडियो के लिए मुझसे इटरव्यू ली।

मुनि सुशील कुमार भगवान महावीर की पच्चीसौवें निर्वाण-महोत्सव वर्ष के अवसर पर जैन समाज के घोर विरोध के बावजूद, कतिपय पुरातन परम्पराओ को तोडकर, विदेश गए थे और अनेक देशो मे उन्होंने भगवान महावीर का सदेश दिया। बाद मे वह न्यूयार्क से ५०-६० मील पर स्टेटन द्वीप मे अपना आश्रम बनाकर रहने लगे। अब तो उन्होने किसी अन्य स्थान पर बहुत-सी जमीन लेकर बडा आश्रम बनाया है। उन्होंने मुझे और मेरी पत्नी को अपने आश्रम मे बुलाया, कुछ अन्य व्यक्तियो को भी आमन्त्रित किया और एक छोटी-मोटी सभा की। मुनि महाराज बडे ओजस्वी वक्ता हैं और जैन धर्म के जाने-माने विद्वान हैं। विभिन्न देशो मे उनकी ख्याति है। न्यूयार्क मे और लदन में दो अंतर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन करा चुके हैं। तीसरा सम्मेलन दिल्ली मे करा रहे है। अत्यन्त कर्मठ और गतिशील व्यक्ति है।

मेरी पत्नी मास्को नही गई थी। जब वह डेनिश सरकार की फैलोशिप के दिनो मे डेनमार्क मे थी, लौटते मे उन्होने मास्को मे रुककर दिल्ली आने का कार्यक्रम बनाया था। सारी व्यवस्था हो गई, किन्तु ऐन मौके पर कुछ बाधा उपस्थित हो गई। जाना रुक गया। अब उन्होने वहां जाने की इच्छा जतलाई तो लिखा-पढी की गई और बारह दिन मास्को मे ठहरने की सुविधा हो गई, किन्तु ओलम्पिक खेलो की भीड के कारण वहा की सरकार ने हमे आने की अनुमति नही दी। तब मैंने कहा, "चलो, अब यह समय लदन मे बितायेंगे।" वहा गए और बारह-पद्रह दिन मारीशस के अवकाश-प्राप्त शिक्षा-परामर्शदाता और हिन्दी-सेवी श्री लक्ष्मी प्रसाद रामयाद के साथ ठहरे। उनके और उनकी पत्नी बहन सरस्वती के प्रेमल व्यवहार और मधुर आतिथ्य की स्मृति आजतक मन पर बनी है।

लदन मैं दो-तीन बार पहले हो आया था। प्रथम प्रवास मे तो एक पखवाडे से अधिक ठहरा था, किंतु ऑक्सफाड विश्वविद्यालय नही देख पाया था। जिसकी प्रसिद्धि थी वह विश्वविद्यालय हम लोगो ने इस बार देखा। अच्छा लगा। पुराना ऐतिहासिक शिक्षा-केन्द्र है और बडो-बडी विभूतिया उसने पैदा की हैं। वहा प्राय प्रत्येक सकाय के साथ गिरजाघर देखकर लगा कि उसके निर्माताओ ने शिक्षा के साथ धर्म को जोडकर बडी दूरदर्शिता से काम लिया है। हमारे देश में शिक्षा की दुगति इसीलिए हुई है कि उसके साथ धर्म का सम्बन्ध नही रहा।

इस यात्रा से पहले सन् १९७६ मे द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन मारीशस मे हुआ। उसमे मारीशस की सरकार के निमंत्रण पर मैं और मेरी पत्नी प्रतिनिधि के रूप मे सम्मिलित हुए। उससे एक वर्ष पहले नागपुर के प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन मे हम देख चुके थे कि हिन्दी को लेकर जितना उत्साह विदेश के हिन्दी-प्रेमियों और हिन्दी-सेवियो मे है, उतना भारत मे और भारत-वासियो मे नहीं है। इस बात पर अनेक विदेशी प्रतिनिधियो ने सार्वजनिक मच से अपना क्षोभ प्रकट किया था। वही क्षोभ मारीशस मे देखने मे आया और उसी क्षोभ की नई दिल्ली के तृतीय सम्मेलन मे पुनरावृत्ति हुई। जो प्रस्ताव पहले सम्मेलन मे पारित हुए थे,

उनमें से अधिकाश फाइलो की धूल चाटते रहे, आज भी चाट रहे हैं। फिर भी मानना होगा कि विदेशो मे हिन्दी की जडें मजबूत हुई हैं और कोई आश्चर्य नही, यदि हिन्दी का विदेशो मे जय-जयकार होने पर, हमारा देश हिन्दी के महत्व को समझे।

१९७८ मे रगून मे अखिल बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हुआ तो उसकी अध्यक्षता करने के लिए मुझे फिर बुलावा आया। होली का विशेष अवसर था। मैं वहा गया। वहा का राजनैतिक वातावरण मुक्त नही था, फिर भी आठ दिन मे एक दर्जन से अधिक सभाए हुईं, जिनमे मैंने अपने विचार व्यक्त किये। सन् १९६० मे हिन्दी का जो विस्तार था, वह बहुत कुछ सिमट गया था। बंदिशो के कारण वे लोग पैसा बाहर भेज नही सकते थे और हमारी सरकार मे इतनी दूरदर्शिता नही थी कि वह हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और महिला विद्यापीठ की, जितनी परीक्षाए वहा चलती हैं, उनकी पाठयपुस्तकें नि शुल्क वहा भिजवा सके। जब पुस्तकें ही नही होगी तो पढ़ाई कैसे होगी ? उन लोगो ने अपनी कुछ पुस्तके तैयार करवाई थी, किन्तु बिना उपर्युक्त सस्थाओ की पाठ्यपुस्तको के उनकी अपनी पुस्तको से कैसे काम चल सकता था ! बीच मे एक बार मैंने अनुरोध करके सब सस्थाओ की पाठ्यपुस्तको के दस-दस सेट बिना मूल्य के मगवाए थे और विदेश मत्रालय की सहायता से रगून भिजवाये थे, लेकिन बार-बार तो ऐसा हो नही सकता था।

श्रद्धेय काका साहेब कालेलकर के प्रति मेरे मन मे गहरी आत्मीयता थी। वर्षों से मैं उनके निकट सम्पर्क मे रहा। उन्होने ही मेरी पुस्तक जय अमरनाथ' की बडी सुन्दर भूमिका लिखी थी और उनके हाथो से ही मुझे नई दिल्ली के विज्ञान भवन मे जैन सत एलाचार्य विद्यानदजी महाराज के सान्निध्य मे 'वीर निर्वाण भारती' पुरस्कार मिला था।

काका साहेब ने सारी दुनिया घूमी थी। लेकिन जापान के प्रति उनका विशेष लगाव था। वहा छह-सात बार हो आए थे। मैं जब कभी उनसे मिलता था, वह मुझसे आग्रह करते थे कि एक बार जापान जरूर जाइए। सन् १९८१ मे टोकियो मे विश्व शान्ति सम्मेलन हुआ, जिसमे 'जापान बुद्ध सघ' ने मुझे जैन धर्म और गाधी-विचार-धारा के प्रतिनिधि के रूप मे आमत्रित किया। काका साहेब की इच्छा फलीभूत हुई। मैं जापान गया। सम्मेलन के अध्यक्ष-मडल मे उन लोगो ने मुझे सम्मिलित किया। सम्मेलन के प्रेरक शक्ति थे जापान के विख्यात सत फ्यूजीई गुरुजी। इगलैण्ड से नोएल्न बेकर भी आए थे। ५६ देशो के लगभग १६० शान्तिवादी भाई-बहनो ने उसमे भाग लिया था। जापान के प्रतिनिधियो को मिलाकर तो उनकी सख्या ६०० से ऊपर हो गई थी।

खुले अधिवेशन मे कई लोग बोले। मैं भी बोला। उसमे अमरीका के प्रतिनिधि ने रूस से और रूस के प्रतिनिधि ने अमरीका से अनुरोध किया कि वह शस्त्रो के तनाव को रोकें और विश्व मे शान्ति स्थापित करने मे सहायता करें। जब बोलने की मेरी बारी आई तो मैंने कहा, "अस्त्रो की यह होड तीन कारणो से है—भय, अस्तित्व की इच्छा और विस्तार की महत्वाकाक्षा। इनमे सबसे अधिक हैरानी पैदा करने वाली चीज भय है। आप हिंसा की रेखा को इधर उधर से मिटाकर छोटा करना चाहते हैं। आपके एक-दूसरे से अनुरोध करने से निरस्त्रीकरण नही होगा। आपको हिंसा की रेखा के नीचे उससे बडी अहिंसा की रेखा खीचनी होगी। तब हिंसा की रेखा अपन आप छोटी हो जायगी।"

आगे मैंने कहा, "मैं जो कह रहा हू, वह अव्यावहारिक बात नही है। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जैनो के चौबीसवे तीर्थकर भगवान महावीर ने अहिंसा की शक्ति को प्रकट किया था और वर्तमान युग मे

गांधीजी ने। उन्होंने अहिंसा को 'अमोघ अस्त्र' कहा था और खुलेआम एलान किया था कि दुनिया की कोई समस्या नहीं है, जिसे अहिंसा के द्वारा सुलझाया न जा सके। उन्होंने कहा था कि अहिंसा वीरो का अस्त्र है। वह मारने की नही, मरने की कला सिखाती है।"

अपने भाषण मे मैंने महावीर के अहिंसा और अनेकान्त के सिद्धान्तो पर विशेष बल दिया था और गांधीजी के प्रेम और अपरिग्रह पर।

अधिवेशन के बाद बीसियो प्रतिनिधि मेरे पास आए। पूछते थे—महावीर कौन थे ? उनका कहना था कि शान्ति के लिए हम जिन सिद्धान्तो की चर्चा करते हैं, वे ठीक वही हैं, जो महावीर ने प्रतिपादित किये थे।

मेरी हीरोशिमा जाने की बडी इच्छा थी, जहां सन् १९४५ मे अमरीका ने बम गिराकर लाखो व्यक्तियों को हताहत और जीवितो को अपग कर दिया था। मैं टोकियो से बुलेट ट्रेन से गया, जिसने मुझे २००० किलो-मीटर की दूरी छ घटे में पार करके वहां पहुचा दिया। हीरोशिमा नगरी अब लहलहा रही है और उसे देखकर पता भी नही चलता कि आज से ३६ वर्ष पूर्व वहा बम गिरा था और भयकर विनाश-लीला हुई थी, किन्तु जिस इडस्ट्रियल हाउस के भवन पर बम गिरा था, वह उस हृदय-विदारक दुर्घटना की याद दिलाने के लिए यथापूर्व ध्वस्त खडी रक्खी गई है। उसके पास पत्थर की एक पटिया लगी है, जिस पर बम गिरने की तिथि आदि देकर अत मे लिखा है—हम शान्तिवादियो की कामना है कि अब हीरोशिमा के दुर्दान्त काण्ड की पुनरावृत्ति न हो।

एक बम नागासाकी पर भी गिराया गया था। दोनो नगरो की विनाश-लीला की भयावह झाकी वहा के सग्रहालय मे देखी जा सकती है। स्त्री, पुरुषो और बच्चो के शरीर की जो क्षति हुई, वह वहा के चित्रो आदि मे दिखाई गई हैं। बम के धमाके से इमारतें उड गई और विकिरण(रेडिएशन) से नदियो का पानी खौल उठा। बम के धमाके से उछल कर गिरने वाले व्यक्तियो को जलाकर उस खौलते पानी ने उनकी आकृति को विकृत कर दिया। कहते हैं, वह दृश्य इतना भयकर था कि बम गिराने वाले व्यक्ति के दिल की धडकन कुछ समय बाद बद हो गई, वह मर गया।

सग्रहालय के निकट ही शहीदो का एक स्मारक है और उसी प्रागण मे एक ऑडिटोरियम है, जिसमे हीरोशिमा और नागासाकी से सबधित फिल्मे जापानी और अग्रेजी मे दिखाई जाती हैं।

मैं कई परिवारो से मिला, जिन्होने उस हत्या-काण्ड की यातना भोगी थी और आज भी भोग रहे थे। उनकी अबोध सताने दुष्परिणामो से नही बची थी। वे अपगता का सामना कर रही थी। किसी के कान खराब थे, तो किसी की आखे, किसी की बाहो मे खराबो थी तो किसी की टागो मे। लहलहाती हीरोशिमा की समृद्धि के स्वाद को य आहे कडुवा बना रही थी।

मेरी आखे नगर की खुशहाली को देखती थी, पर मन उसके पीछे छिपे इतिहास के खण्डहरो को देखता था। दिल म बार-बार एक हूक उठती थी।

बम गिरा कर अमरीका ने जोरो का प्रचार किया था कि यदि उसने ऐसा नही किया होता तो द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त नही होता, इसलिए उसका यह कदम शान्ति स्थापना की दिशा का कदम था। जिन्होने इस प्रचार का खण्डन किया, उनमे तीन व्यक्ति प्रमुख थे। जापान के फ्यूजीई गुरुजी, भारत के महात्मा गाधी और ब्रिटेन के बर्टेण्ड रसल पर उनकी आवाज अरण्यरोदन के समान सिद्ध हुई और आज उस अणुबम से भी कहीं अधिक सहारक अस्त्र तैयार हो गये हैं और हो रहे हैं।

शान्ति के लिए गुरुजी और उनके 'जापान बुद्ध सघ' ने जो कार्य किया है और अब भी कर रहे है, वह निस्सदेह सराहनीय हैं। गुरुजी ने सारे ससार मे शान्तिवादियो की एक बहुत बडी सेना खडी कर दी है। इतना ही नही, देश-विदेश मे उन्होने विशाल शान्ति-स्तूपो की स्थापना की है और बौद्धमठ बनाये हैं। सम्मेलन के

अगले वर्ष 'राष्ट्र सघ' के निरस्त्रीकरण से संबधित विशेष अधिवेशन के अवसर पर, न्यूयार्क मे सघ के भवन के सामने विश्व के लगभग दस लाख शान्तिवादियो ने जो प्रदर्शन किया था, उसके पीछे गुरुजी तथा उनके संघ की ही प्रेरणा थी।

सौ वर्ष की आयु के आस-पास के गुरुजी से कई बार मिलने का सौभाग्य हुआ। उनसे चर्चाए भी की। वह जापानी बोलते थे और उनकी जापानी सेविका कात्स्यूबहन, जो काकासाहब के पास रह चुकी थी, हिंदी मे अनुवाद करती थी और मेरी बात जापानी मे उन्हे समझाती थी। बाद मे जब गुरुजी भारत आए और नई दिल्ली मे 'सन्निध' (राजघाट) मे एक सभा का आयोजन किया गया तो उपस्थित लोगो को गुरुजी का परिचय मैंने ही दिया था।

शान्ति सम्मेलन के अवसर पर मैंने अग्रेजी मे एक कविता भी लिखकर अधिकारियो को दी थी, जो बहुत पसद की गई। वह लोकगीत की तरह थी।

यहा मैं बौद्ध भिक्षु आकिरा नाकामूरा को नही भूल सकता, जो भारत मे शान्ति के लिए काम करते हैं। उन्ही के कारण मेरा यह प्रवास सभव हुआ। उन्होने ही मेरे लगभग पाच सप्ताह के प्रवास को सब प्रकार से सुविधा-जनक बनाया तथा विभिन्न ऐतिहासिक स्थलो, नगरो और देहातो मे घूमने की व्यवस्था की और कराई।

अब एक देश रह गया था चीन। वहा जाने की मेरे मन मे बडी उत्सुकता थी। प सुदरलालजी चीन के अभिन्न मित्र थे। उन्होने बहुत वर्ष पहले वहा जाने के मुझे दो अवसर दिये, पर मैं कुछ कारणो से उनका लाभ नही ले सका। एक बार मास्को से वहा जाने की सोची, लेकिन यूरोप मे घूमते-घूमते थक गया था, इसलिए सारी तैयारी हो जाने पर भी टाल गया।

सन् १९८३ के अत मे आखिर वह मौका आ ही गया। चीन की 'विदेशो से मैत्री सबध-परिषद' ने एक भारतीय प्रतिनिधि मडल को चीन आने का निमत्रण भारत-चीन-मैत्री परिषद को भेजा, जिसके अध्यक्ष उडीसा के राज्यपाल श्री विश्वम्भरनाथ पाडे हैं। उन्होने उस प्रतिनिधि मडल मे मुझे भी सम्मिलित किया और इस प्रकार एक सप्ताह की थाईलैण्ड और हागकाग की और दो सप्ताह की चीन की यात्रा हुई। कह सकता हू कि चीन के साथ कुछ मामलो मे मतभेद होते हुए भी वह यात्रा मेरे लिए स्मरणीय बनी। वहा हम कई प्रमुख नगरो मे गए, देहातो मे गए और वहा के प्रत्येक क्षेत्र मे छलछलाती युवा-शक्ति को देखकर मैं दग रह गया। युवक और युवतियो का अनुशासन, कर्त्तव्य निष्ठा और देश-भक्ति अद्भुत थी। अपनी एक अरब से ऊपर की आबादी को उन्होने किस प्रकार नियन्त्रित किया है, वह हमारे लिए प्रेरणादायक हो सकती है। गरीबी वहां भी है और देश के कुछ भागो मे तो वह हद दर्जे की है, किन्तु इतने दिनो मे मैंने एक भी भिखारी हाथ फैलाते नही देखा। समय की पाबदी उनकी देखते ही बनती थी।

यह ठीक है कि वहा सबकुछ सरकार के इशारे पर होता है और वहा के निवासियो को प्रत्येक क्षेत्र मे बधनो के बीच रहना पडता है, मैं स्वय कण्ठ की स्वाधीनता और मानव की उन्मुक्तता का पक्षपाती हू, लेकिन उच्छृखलता, अनुशासनहीनता, कर्त्तव्य-विमुखता आदि को मैं व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सबके लिए विघातक मानता हू।

विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र मे जापान ने जो चमत्कार कर दिखाया है, वह मुझे चीन मे दिखाई नही दिया। किन्तु इसमे कोई शक नही कि चीन तेजी से आगे बढ़ रहा है, किन्तु अपनी मजिल तक पहुचने मे उसे समय लगेगा।

विदेश-यात्राओं से मुझे दोहरा लाभ हुआ। एक तो यह कि दुनिया में जो कुछ हो रहा है, वह देखने का मौका मिला। दूसरे विभिन्न देशो मे मुझे भारत का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने की सुविधा हुई।

एक घटना मुझे याद आती है। कैनेडा मे एक दैनिक पत्र है 'टोरटो स्टार'। लगभग ६४ पृष्ठ का प्रतिदिन निकलता है। शनिवार को लगभग ३०० पृष्ठ रहते हैं। रविवार को बद रहता है। उस पत्र के विदेश-सम्पादक ने मुझे अपने कार्यालय मे आमत्रित किया। मैं गया। उन्होंने अपना प्रेस दिखाया, सम्पादको से मिलाया, अत मे हम लोग उनके कमरे मे बैठकर बातें करने लगे। उन्होंने पूछा, "क्या आपने हमारे पत्र को देखा है?" मैंने कहा, "पद्रह दिन से उसी पत्र को पढ़ रहा हू।" आगे उन्होंने पूछा, 'कैसा लगता है?" मैंने औपचारिक ढग से कह दिया, "अच्छा है।" उन्होंने कहा, "नही, मैं आपकी साफ-साफ राय चाहता हू।" मैंने गंभीर होकर कहा "सच पूछते हैं तो मुझे आपका पत्र पसद नही है।" उन्होंने विस्मय से पूछा, "क्यो?" मैंने कहा, "देखिए, मैं बहुत दिनो से देश से बाहर हू। मैं अपने देश का समाचार पाना चाहता था, पर इतने दिनो मे आपके पत्र मे एक शब्द भी भारत के बारे मे दिखाई नहीं दिया।"

इतना सुनकर वह तैश मे आ गए। बोले, "क्या आपके पत्र कैनेडा के बारे मे कुछ छापते हैं?" मैंने कहा, "मित्र, मेरा दावा है कि हिन्दुस्तान का औसत शिक्षित आदमी कैनेडा के बारे मे जितना जानता है, उतना कैनेडा का शिक्षित आदमी भी हिन्दुस्तान के बारे में नहीं जानता।"

कुछ रुककर मैंने उनसे पूछा, "आप इतने बडे पत्र के सम्पादक हैं। मैं पूछता हू कि क्या आप उस मौन क्रान्ति को जानते हैं, जो भारतवर्ष मे हो रही है?"

"कौन-सी क्राति?" उनका प्रश्न था।

मैंने कहा, "हमारी प्रधान मत्री गरीबी और बेकारी को दूर करने के लिए जी-जान से जुटी हैं। आपके यहां भी वही समस्याए है। आपको भारत मे दिलचस्पी होनी चाहिए।"

वह महानुभाव मेरी बात सुनकर कुछ हतप्रभ-से हो गए। बोले, "आप ठीक कहते हैं। मुझे उसकी जानकारी होनी चाहिए।" फिर बोले, "क्या आप एक बार फिर आ सकेंगे?" मैंने कहा, "कह नही सकता। अब मुझे भारत जाने की तैयारी करनी है।"

एक घटना और भी बडे मार्के की है। एक दिन हम लोग कहीं से लौट रहे थे। रास्ते मे मेरे लडके सुधीर ने कहा, "बाबूजी, चलिए, एक एक प्याला चाय पीते चले।" मैंने कहा, "ठीक है।"

हम लोग एक रेस्तरा मे गए। सुधीर ने काउण्टर पर खडी दो किशोरियो से कहा, "खाने की कुछ ऐसी चीजें दे दीजिए, जिनमे मास या अण्डा न हो। मेरे माता-पिता न मास खाते हैं, न अडा।"

उन दोनो ने उत्सुकता से सुधीर की ओर देखा और पूछा, "क्या कोई शाकाहारी भोजन पर जिन्दा रह सकता है?"

सुधीर ने उत्तर दिया, "मुझसे क्या पूछती है? मेरे साथ आइये और मेरे पिताजी और माताजी से स्वय बात कर लीजिये।"

इसके बाद उनमे से एक बहन हमारे पास आयी और बोली, "आपके लडके ने बताया है कि आप पूरी तरह शाकाहारी है। न मास खाते हैं, न अडा खाते हैं। अपकी उम्र कितनी है।"

मैंने कहा, "मैं लगभग ६९ वर्ष का हू।"

उसने कौतूहल से मेरी तरफ देखा, बोली, "हमे तो हमेशा यही बताया गया है कि शाकाहारी भोजन से आदमी दुर्बल हो जाता है और अधिक दिन नही जीता, पर मैं देखती हू कि आप शाकाहारी हैं और इस उम्र मे भी आपकी सेहत इतनी अच्छी है। ओफ़, हमे कितनी गलत जानकारी दी गई है!"

आगे उसे और कोई सवाल करने या कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई और वह नई जानकारी से खुश होकर चली गई। मैं सोचता रहा कि अपनी अजानकारी अथवा अज्ञान के कारण हम कितने भ्रम पालते रहते हैं।

सस्थाओं में सहयोग

मैं पहले ही बता चुका हू कि अपनी पढाई पूरी करके दिल्ली आने पर मैंने 'हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना की थी। वह शैक्षिक सस्था थी। फिर सन् १९४८ मे 'दिल्ली राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' का गठन किया। पाच छात्रो के उसके वर्ग का उद्घाटन विनोबा ने किया था। दादाजी (बनारसीदासजी चतुर्वेदी) जब राज्य सभा के सदस्य होकर दिल्ली आए तो उन्होने 'हिन्दी भवन' की स्थापना की। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने जहा हजारो अहिन्दी भाषी भाई-बहनो को हिन्दी पढाई, वहा 'हिन्दी भवन' ने साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। इन दोनो ही सस्थाओ के सस्थापक सदस्यो मे मैं था और उनका उपाध्यक्ष रहा। आज भी 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' का उपाध्यक्ष हू। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के पीछे यदि राघवन-दम्पत्ती (एस आर एस राघवन तथा उनकी पत्नी राजलक्ष्मी राघवन) और उनकी सन्तति की साधना है तो हिन्दी भवन के पीछे बहन सत्यवती मल्लिक का अनवरत परिश्रम रहा, यद्यपि मूल प्रेरक तो दादाजी ही थे। उनके राज्य सभा के कार्य-काल मे हिन्दी भवन ने अच्छी उन्नति की। एक विशाल पुस्तकालय बनाया, बडी-बडी गोष्ठिया की, लेखको का अभिनन्दन किया, किन्तु दादाजी के दिल्ली से चले जाने के बाद उसकी जिम्मेदारी श्री बाके बिहारी भटनागर ने ले ली और फिर उसके पुस्तकालय आदि को भावलपुर हाउस मे सुरक्षित कर दिया गया।

सन् १९५१ मे साहित्य, सस्कृति और कला को प्रोत्साहन देने के लिए मेरे अनुज वीरेन्द्र प्रभाकर ने 'चित्रकला सगम' नामक एक सस्था स्थापित की। इस सस्था ने राजधानी मे जो सेवा की, उसे सब जानते है। चित्रो की प्रदर्शनिया, निबध-प्रतियोगिताए, आशु चित्राकन, साहित्यकारो तथा कलाकारो का सम्मान, नेहरूजी की जयती के उपलक्ष्य मे बाल-दिवस का आयोजन, ऐसे दजनो काय इस सस्था ने किये। अतर्राष्ट्रीय बाल-दिवस के उसके आयोजन तो आज भी दिल्ली के नागरिक याद करते हैं। राष्ट्रपति भवन मे राष्ट्रपतियो की आवक्ष प्रतिमाए 'चित्र कला सगम' द्वारा ही प्रदत्त हैं। पीछे के पृष्ठो मे हम बता चुके हैं कि स्व लालबहादुर शास्त्री की एक आवक्ष प्रतिमा उनके निधन-स्थल पर लगाने के लिए 'चित्रकला सगम' ने ही तैयार करवाई थी और उसी का प्रतिनिधि-मण्डल उस प्रतिमा को लेकर रूस गया था।

मुझे याद आता है कि एक बार बाल-दिवस के अवसर पर बच्चो की एक आशु चित्राकन प्रतियोगिता कराई गई थी। उसका विषय था नेहरू और उनका भारत। बच्चो ने बडे सुन्दर चित्र बनाये। हम लोगो की स्वाभाविक इच्छा हुई कि उन चित्रो को जवाहरलालजी देख ले। उनके पास समय का अभाव था। इसलिए उन्होने इच्छा व्यक्त की कि उनके निवास-स्थान पर 'तीन मूर्त्ति भवन' मे उन चित्रो का प्रदशन कर दिया जाय। इसकी व्यवस्था कर दी गई। पडितजी आए, साथ मे इदिराजी भी थी। उन्होने उन चित्रो को बडे

ध्यान और दिलचस्पी से देखा। वे किसी चित्र को देखकर मुस्कराते थे तो कभी किसी चित्र को देखकर गंभीर हो जाते थे। लेकिन एक चित्र ने उन्हे पकड लिया। किसी बच्चे ने उनका वह चित्र बनाया था, जिसमे वह अपना बांया हाथ उठाकर कलाई पर बधी घडी मे बडी तन्मयता से समय देख रहे हैं। उस चित्र को पडितजी काफी देर तक देखते रहे, मानो पुराने इतिहास के पृष्ठ उनके सामने खुल गए हो। मैं उनके साथ-साथ चल रहा था और चित्रो का परिचय दे रहा था। घडी वाले चित्र को देखकर उन्होने जिस निश्छल और बालसुलभ मुस्कराहट से मेरी ओर देखा, वह क्षण मैं कभी भूल नही सकता।

इस साधनहीन सस्था ने जो काम किया, वह कोई बडी-से-बडी सस्था भी नही कर सकती थी। उसने कुछ ग्रथ भी निकाले, जिनकी भूरि-भूरि प्रशसा हुई।

सन् १९७४ में भगवान महावीर का पच्चीससौवा निर्वाण महोत्सव मनाया गया। वह पूरे वर्ष चला। उसके लिए एक राष्ट्रीय समिति बनी, जिसकी अध्यक्ष प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाधी थी। उस समय प्रो नूरुल हसन केन्द्रीय शिक्षा मत्री थे और प्रो डी पी यादव उपशिक्षा मत्री। वे इस आयोजन के मुख्य कर्त्ता-धर्त्ता थे। राष्ट्रीय समिति मे दिगम्बर, श्वेताम्बर, तेरापथी और स्थानकवासी, चारो आम्नाय के सदस्य थे। उनमे मैं भी था। इस समिति की एक छोटी-सी प्रबध समिति थी। उसमे भी मैं था। हम लोगो को प्रकाशन का काम सौंपा गया। सरकार ने पचपन लाख रुपया देने की घोषणा की, जैन समाज ने भी करोडो रुपये खर्च किये, लेकिन राष्ट्रीय समिति ने जो कार्यक्रम निश्चित किये थे, वे पूरे नहीं हो पाये। मुझे सबसे अधिक लज्जा इस बात की है कि प्रकाशन का जो दायित्व हमे सौपा गया था, उसके अतर्गत एक भी पुस्तक नही निकली।

महावीर स्मारक का भवन भी आज किसी कर्मठ व्यक्ति की राह देख रहा है।

अखिल भारतीय जैन महासभा ने भी कुछ प्रदर्शनात्मक कार्यक्रम करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मानली। इस सभा का भी मैं सदस्य था।

इस उपक्रम के सबध मे एक बात मुझे बार-बार याद आती है। जाने कितनी बार कहा गया कि इस महोत्सव का आरभ अमुक तिथि से होगा और उसका समापन अमुक तारीख को किया जायेगा। मैंने सार्व-जनिक मच से बार-बार इस बात को दोहराया कि यह मत कहिए कि अमुक तारीख को समापन होगा। कहिए कि उस तारीख से महावीर-युग का श्रीगणेश होगा। मेरे कहने का आशय यह था कि वर्ष भर इतना सघन काय हो कि उससे युग प्रभावित हो और महावीर के सिद्धान्त राष्ट्र के जीवन मे उतरे। मेरी निश्चित मान्यता है कि पूरे जैन समाज ने अपने तग दायरो से ऊपर उठकर उस वर्ष मे अहिंसा आदि को तेजस्वी बनाया होता तो अवश्य ही एक नये युग का आरभ होता। किन्तु ऐसा हुआ नही।

एक दूसरी बात मैंने और कही थी कि महावीर को जैन-समाज की तग परिधि से मुक्त कीजिये। महावीर जैन कौन थे, कोई नही जानता। उन्होने अपने नाम के आगे कभी 'जैन' नही लगाया। उनके समव-शरण (धर्म सभा) मे किसी भी धर्म का व्यक्ति आ सकता था। मनुष्य ही नही, जीव-जन्तु तक आ सकते थे, आते थे।

पर जैन समाज इतना साहस, इतनी दूरदर्शिता, नही दिखा सका।

एक अखिल भारतीय सस्था 'भारतीय साहित्य परिषद' बहुत समय से काम करती आ रही थी। उसकी दिल्ली शाखा का मुझे अध्यक्ष बनाया गया। उसकी बहुत-सी गोष्ठिया हुईं, जिनमे नई पुस्तको की समीक्षाए की गईं और अनेक साहित्यिक प्रश्नो पर सागोपाग विचार-विमर्श किया गया। दिल्ली से बाहर भी उसके समारोह हुए। साल भर तक खूब काम हुआ, लेकिन आपात-स्थिति के दिना मे यह सस्था छिन्न-भिन्न हो गई।

सन् १९५१ मे भूदान के साथ-साथ एक-दूसरे अहिंसक क्रांति के आदोलन का सूत्रपात हुआ था। वह आदोलन था अणुव्रत का, जिसके प्रवर्तक हैं तेरापथ सम्प्रदाय के आचार्य तुलसी गणी। इस आदोलन का मुख्य हेतु था छोटे-छोटे व्रतो द्वारा मानव-जीवन को परिष्कृत करना। आचार्य तुलसी तथा उनके अतेवासी साधु-साथियो ने अणुव्रत के प्रचार-प्रसार के लिए उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक हजारो मील की पैदल यात्रा की। उस विचार को घर-घर पहुचाया। उसमे जाति-पाति का कोई भेदभाव नही था। जो सत्य अहिंसा, अपरिग्रह आदि व्रतो का पालन करे, वह अणुव्रती बन सकता था। सभी धर्मों के लोग उसकी ओर आकृष्ट हुए। एक विशाल परिवार बना। उसमे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सब थे।

राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमत्री प जवाहरलाल प्रभृति नेताओ को भी वह आदोलन पसद आया।

आरभ मे मैं उसकी ओर से उदासीन था। मानता था कि अपने-अपने धर्म-सघ और तेरा पथ के प्रचार के लिए आचाय तुलसी ने यह कदम उठाया है, लेकिन ज्यो-ज्यो उस आदोलन को निकट से देखने का मुझे अवसर मिला, मेरी भ्रांति दूर होती गई और मैं उसके नजदीक पहुचता गया। धीरे-धीरे मैं सक्रिय रूप मे उसमे सहयोग देने लगा। आचार्य तुलसी ने दिल्ली मे एक विशेष समारोह मे मुझे 'अणुव्रत-प्रवक्ता' की उपाधि प्रदान की और फिर मुझे अखिल भारतीय सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया।

मैंने वर्ष भर मे देश के विभिन्न भागो मे खूब दौरे किये और अणुव्रत का सदेश जन जन तक पहुचाने का प्रयत्न किया।

अपनी अध्यक्षता के दौरान मैंने तीन कायक्रम ऐसे अपनाये, जिनका सबध पूरे समाज के कल्याण से आता था। उनमे एक था साक्षरता का प्रचार, दूसरा था मद्य-निषेधक और तीसरा दहेज उन्मूलन का। उसके लिए मैंने और मेरे सहयोगियो ने अच्छा वायुमण्डल बनाने का प्रयास किया, लेकिन काम मे आगे चलकर वह गति नही रही।

आचार्य तुलसी, उनके उत्तराधिकार युवाचार्य महाप्रज्ञ, साध्वीप्रमुखा कनकप्रया तथा अन्य साधु-साध्वियो के प्रति मेरे मन मे बडा स्नेह और आदर है। वे सब भी मेरे प्रति बडी आत्मीयता रखते हैं। अणुव्रत के अनेक अधिवेशनो तथा समारोहो मे मैं सम्मिलित होता रहता हू। अखिल भारतीय अणुव्रत सम्मेलन का मैं अब उपाध्यक्ष हू। 'अणुव्रत' पाक्षिक पत्रिका का परामश-दाता सम्पादक हू।

श्रद्धेय काका साहेब कालेलकर का मैं अत्यन्त प्रशसक रहा हू। उनके जीवन-काल मे दो अभिनदन ग्रन्थ हम लोगो ने प्रकाशित किये थे। पहला था 'सस्कृति के परिव्राजक' और दूसरा था 'समन्वय के साधक'। दोनो ही ग्रथ बहुत विशाल थे और उनसे काका साहेब के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अच्छा प्रकाश पडता था।

काका साहेब ने मुझे अपनी 'गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा' म सम्मिलित किया और उनके निधन के उपरान्त जो 'आचार्य काका कालेलकर स्मारक-निधि' स्थापित की गई, उसके प्रधान सचिव का दायित्व मुझे सौंपा गया।

दो और सस्थानो का उल्लेख करना आवश्यक है। उनमे पहला है 'राष्ट्रीय पुस्तक न्यास' (नेशनल बुक ट्रस्ट)। यह सस्थान स्वायत्तशासी है और इसने पुस्तको के प्रकाशन के साथ-साथ पुस्तको के दूसरो द्वारा निकाले जाने मे पर्याप्त आर्थिक सहायता दी है। इस सस्थान ने पुस्तक-मेलो का भी अतर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन किया है और पुस्तके पढने की आदत को बढावा देने के लिए बडा काम किया है, अब भी कर रहा है। उसका मैं ट्रस्टी हू।

दूसरा सस्थान भी उसी प्रकार स्वायत्तशासी है—'राष्ट्रीय पुस्तक-विकास परिषद' (नेशनल बुक डेवेलपमेंट कौंसिल)। इस सस्थान को हाल ही मे पुनर्जीवित किया गया है और उसके द्वारा पुस्तक-व्यवसाय को अधिकाधिक क्रियाशील बनाने की चेष्टा की जा रही है। इस सस्थान का भी मैं एक सदस्य हू।

हम लोगों ने स्वयं एक छोटी-सी सस्था की स्थापना की थी 'यात्रिक सघ'। यह उन व्यक्तियो की सस्था थी, जिनकी पर्यटन मे गहरी अभिरुचि थी। वे ही इसके सदस्य हो सकते थे। इस सस्था का उद्देश्य पर्यटन की व्यवस्था करना और पर्यटको को सुविधा प्रदान करना था। पर हम लोगो की व्यस्तता के कारण यह सस्था बहुत आगे नही बढ सकी।

इसी प्रकार एक और सस्था का सगठन किया था 'अखिल भारत-बर्मा-साहित्य-कला-परिषद।' इसके द्वारा हम भारतीय-बर्मी साहित्य और कला का आदान-प्रदान करना चाहते थे, पर यह सस्था भी कुछ दिन काम करके समाप्त हो गई।

'दिल्ली नागरिक परिषद' की कार्य समिति का मैं इस समय भी सक्रिय सदस्य हू। इस सस्था का ध्येय नागरिको की कठिनाइयो को दूर करना है और युवा-शक्ति को जाग्रत करना तथा सगठित करना है।

और भी अनेक साहित्यिक तथा सास्कृतिक सस्थाओ से मैं जुडा हू। राजनीति मे मेरी केवल इतनी रुचि है, जितनी एक लेखक के नाते होनी चाहिए, लेकिन साहित्य, सस्कृति और कला को मैं किसी भी देश की आत्मा मानता हू और उनकी अभिवृद्धि मे मेरा हमेशा सहयोग रहता है। देश के विभिन्न भागो मे फैली अनेक साहित्यिक तथा सास्कृतिक सस्थाओ ने मुझे अपना सरक्षक बना रक्खा है। उनमे जब-तब आना-जाना रहता है।

षष्ठि-पूर्ति

मैंने जब अपने जीवन के साठ वर्ष पूरे किये तो मेरे अनेक हितैषी बधुओ ने मेरे लिए एक अभिनदन-ग्रन्थ निकालने की योजना बनाई, पर मैंने उसे स्वीकार नही किया। मैंने एक सुझाव दिया कि अच्छा यह होगा कि आप लोग मेरे बुजुर्गों, साहित्यिक मित्रो, समाज-सेवियो तथा राजनेताओ को एक-एक कोरा कागज भेज दे और उनकी मगल कामनाए मगवा ले। सयोजको ने वही किया। उसका नतीजा यह हुआ कि एक विशाल-काय हस्त-लिखित ग्रथ तैयार हो गया। हिन्दी के लिए वह एक अनूठी चीज थी। इतने व्यक्तियो की, और वह भी विभिन्न क्षेत्रो के, हाथ की लिखावट का इतना विपुल सग्रह कही भी नही मिल सकता।

उन कागजो को एकत्र कर एक ग्रन्थ तैयार किया गया—'समन्वय साधु साहित्यकार।' इस भारी-भरकम ग्रथ को सितम्बर १९७२ मे कान्स्टीट्यूशन क्लब, नई दिल्ली मे तत्कालीन रक्षा-मत्री श्री जगजीवन राम ने समारोह-पूर्वक मुझे अर्पित किया। उस समारोह मे दिल्ली तथा बाहर के प्रमुख साहित्यकार, राजनेता, पत्रकार और गण्यमान्य नागरिक बडी सख्या मे उपस्थित थे।

आज उस समारोह का स्मरण करता हू तो मेरा मन अभिभूत हो जाता है। कितना हार्दिक प्रेम मुझे दिया गया था। ग्रथ तो प्रेम से भरा था ही, किन्तु उपस्थित व्यक्तियो मे से अनेक महानुभावो ने अपने उद्गार

उस अवसर पर प्रकट किये। इन बारह वर्षों मे उनमे से मेरे अनेक प्रियजन चले गए। उनका स्मरण आज मुझे विह्वल कर देता है, मेरी आखो मे आंसू ला देता है। मेरे बचपन के माथी जगदीश चद्र माथुर, मेरे स्नेही बधु प्रकाशवीर शास्त्री तथा और भी कई महानुभावो का अभाव आज मेरे हृदय मे टीस पैदा करता है। जगदीश माथुर की स्मृति तो मेरे रोम-रोम मे बसी है और प्रकाशवीर शास्त्री का मुस्कराता हुआ सौम्य चेहरा बार-बार मेरी आखो के सामने घूम जाता है। उनकी ओजस्वी वाणी आज भी मेरे कानों मे गूजती है।

समारोह का चित्र और विवरण पत्रो मे छपा तो मित्रो के पत्रो की बाढ आ गई। उनकी शिकायत विशेष रूप से ग्रन्थ के बारे मे थी। उनका कहना था कि उन्होने जो लिखा, उसे तो वे जानते हैं, लेकिन दूसरो ने क्या लिखा, इसका उन्हे पता नही है। इसलिए ग्रथ को छपवा दिया जाय।

कुछ हितैषी बधु तो घर पर आए और उन्होने आर्थिक सहयोग का आश्वासन देकर ग्रथ को प्रकाशित करवा देने के लिए जोर डाला। पर ग्रथ किसलिए उस पर इतना खर्च हो, इसके लिए मेरी आत्मा ने गवाही नही दी। उनका आग्रह चलता रहा, पर मेरा आग्रह डिगा नही। ग्रथ ज्यो-का-त्यो रक्खा है। मुझे हर्ष है कि उन बधुओ की इच्छा अब पूर्ण हो रही है। उस ग्रथ की कुछ सामग्री का उपयोग इस ग्रथ मे कर लिया गया है।

यहां मैं यह कह देना चाहता हू कि प्रस्तुत ग्रथ के सम्बन्ध मे चतुराई से काम लिया गया। सयोजक जानते थे कि यदि वे आरभ मे ही मुझसे सलाह करेंगे तो मैं साफ इकार कर दूगा। अत उन्होने मुझे बिना बताये चुपचाप कार्य आरभ कर दिया और जब वे ऐसी अवस्था मे पहुच गए कि पीछे लौटना सभव नही था तब उन्होने मुझसे चर्चा की। मैं विवश था। तब मैंने सुझाया कि यदि ग्रन्थ निकालना ही है तो उसे व्यक्ति-परक न बनाकर उन मूल्यो को समर्पित कीजिए, जिन्हे मैंने अपने जीवन मे सर्वोपरि स्थान दिया है। व्यक्ति आता है, चला जाता है, लेकिन शाश्वत मूल्य कभी नष्ट नही होते। वे अमर होते हैं और उनकी प्रासगिकता देश-कालातीत होती है।

वह पुण्यात्मा

ससार का शाश्वत नियम है कि जो व्यक्ति इस धरा पर जन्म लेता है, उसे एक-न-एक दिन मृत्यु की गोद मे जाना ही होता है, लेकिन यह भी उतना ही सनातन सत्य है कि जो जीवन के मर्म को और धर्म को जानता है और तदनुकल जीता है, उसकी भौतिक काया भले ही नष्ट हो जाय, उसका यश शरीर कभी काल से पराभूत नही होता।

हमारी पूजनीया माता लक्ष्मी देवी ऐसी ही पुण्यात्मा थी। उन्होंने अस्सी वर्ष की आयु पाई, लेकिन इस दीर्घ अवधि मे धर्म या नीति के प्रति उनकी आस्था कभी विचलित नही हुई। इतना ही नही, अपनी जीवन-यात्रा मे ज्यो-ज्यो वह अग्रसर होती गईं, उनकी धर्म-निष्ठा, प्रेम और परोपकारिता का दायरा और भी बढता गया। वह जैन कुल मे उत्पन्न हुई थी और जैनधर्म को बडी श्रद्धालु दृष्टि से देखती थी, भारत के प्राय सभी प्रमुख जैन तीर्थों के उन्होंने दर्शन किये थे, व्रत और त्यौहारो को बहुत ही भावना से मनाती थी, लेकिन धर्म को उन्होंने कभी सकीर्ण परिधि मे नही बधने दिया। उन्होने धर्म को अपने जीवन मे धारण किया। वह

सदा सचाई के मार्ग पर चलीं और बिना छोटे-बड़े ऊंच-नीच, अमीर-गरीब का ध्यान किये दूसरों का हित-साधन करती रहीं।

हम भाई-बहन ही नहीं, सब उन्हें 'अम्मा' कहकर सम्बोधित करते थे। उनका जन्म सन् १८९० में बरौली नामक स्थान पर हुआ था। बरौली तत्कालीन युक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) की एक छोटी-सी रियासत थी, जहां हमारे नाना स्वर्गीय आहूरी लालजी दीवान थे। अम्मा के कोई भाई नहीं था वे पांच बहनें थीं। अम्मा उनमें सबसे बड़ी थीं। नानी सबसे अधिक उन्हीं को प्यार करती थीं। ६ जून १९०३ को तेरह वर्ष की अवस्था में अम्मा का विवाह हुआ और चार वर्ष बाद द्विरागमन की विधि सम्पन्न हुई। हमारी नानी अत्यन्त धार्मिक थीं और नाना बड़े ही स्वाभिमानी थे। अपने माता-पिता से अम्मा ने ये दोनों गुण भरपूर पाये। बीमारी के अन्तिम दिनों को छोड़कर वह बराबर पूजा-पाठ करती रहीं और अपने स्वाभिमान को उन्होंने कभी आंच नहीं आने दी।

हम लोगों के बाबा अलीगढ़ जिले में विजयगढ़ नामक कस्बे के निकट बीझलपुर ग्राम के पटवारी थे। कुछ जमींदारी भी थी। बड़ा सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित घराना था। हमें आज भी याद है कि हमारे यहां कोठारों तथा खत्तियों में मनों अनाज भरा रहता था। दूध के लिए भैंसें थीं और सवारी के लिए घोड़े। बाबा की चारों ओर बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह फारसी और अरबी के ज्ञाता थे। उनकी कविताएं आज भी हमारे पिताजी सुनाया करते हैं। सन् १९१० में बाबा की मृत्यु हो गई और उसके कुछ दिन बाद ही पिताजी पूज्य श्यामलालजी पटवारी हो गये। घर के ठाठ-बाट में कोई कमी नहीं आई। पर उस वैभव पर अम्मा ने कभी अभिमान नहीं किया। सादगी से रहीं और जरूरतमंदों की हमेशा मदद करती रहीं। जब कभी दरवाजे पर कोई भिखारी आवाज लगाता था, अम्मा घर के सब काम छोड़कर उसे आटा देने जाती थीं। जाने कितनों को जरूरत के समय पैसा दिया, पर उसमें से आधा चौथाई भी वसूल न हुआ तो इससे वह हैरान या परेशान न हुईं। कुछ लोग तो उनकी गिन्नियां तक दबा बैठे। हमारे घर में बड़े जोर की चोरी हुई, जेवर, रुपये, कपड़े, बर्तन आदि सब चले गये, लेकिन अम्मा ने मुंह से उफ तक न की। वह कहा करती थीं—"पैसा तो हाथ का मैल है। आदमी का ईमान सच्चा होना चाहिए।"

अम्मा ने कभी अपने-पराये का भेद नहीं किया। हम आठ भाई-बहन थे जिनमें से एक भाई और एक बहन अल्पायु में ही चले गये। पांच भाइयों और एक बहन के अतिरिक्त घर में काम करने वाले दो-चार आदमी बराबर बने रहते थे। हमारे एक फूफा बेकारी के दिनों में बरसों सपरिवार हमारे घर रहे, पर अम्मा ने कभी उन लोगों को यह अनुभव नहीं होने दिया कि वह अपने घर में नहीं हैं। कोई चीज कम होती थी तो उन लोगों को दे देती थीं और अपने बच्चों को आंख के इशारे से समझा देती थीं। इस प्रकार सालों तक उन्होंने विशाल परिवार की जिम्मेदारी ऐसे निभाई कि देखने वाले भी दंग रह गये।

अम्मा का हृदय बहुत ही सरल और निश्चल था, व्यवहार बहुत ही मधुर था। हमें उनसे कभी डर नहीं लगा। भली-बुरी जो भी बात होती थी, निस्संकोच उनसे कह देते थे। पिताजी आरंभ से ही तेज स्वभाव के हैं। वह जब हम लोगों पर नाराज होते थे, या हमारी ठुकाई पर आमादा हो जाते थे तो अम्मा हमेशा हमारी मदद को आ जाती थीं। मुझे याद नहीं कि अम्मा ने कभी हम पर हाथ उठाया हो। हमसे कभी कोई भूल हो जाती थी तो शांत भाव से समझा देती थीं।

उन दिनों छुआछूत का बोलबाला था। हमारे घर के नीचे के आंगन के एक खास हिस्से तक ही जमादार आ जा सकता था। वहीं कूड़ा डाल दिया जाता था और वहीं उसे रोटी-दाल आदि दे दी जाती थी। पानी पीने के घड़ों को कहार भरते थे, पर नाई उन घड़ों से हाथ नहीं लगा सकते थे। यद्यपि घर में दो-तीन

मुसलमान नौकर थे, तथापि वे भी एक हद तक ही हम लोगो से हिलमिल पाते थे। एक बार घर मे एक बूढ़ा मुसलमान आ गया। उसके कुनबे मे कोई नही था। वह बडी मुसीबत का मारा था। पिताजी ने अम्मा से बात की कि वह हमारे घर मे रहना चाहता है। अम्मा ने एक क्षण के लिए भी नही सोचा और कहा कि उसे बाहर के कमरे मे रहने को जगह दे दो। उन्होने उसका सारा प्रबध कर दिया। अम्मा स्वयं अपने हाथ से रोटी पकाती थी और करीम जब तक जिया, अम्मा के हाथ की गरम और मुलायम रोटिया खाता रहा। एक दिन अचानक उसके प्राण निकल गये तो पिताजी से कहकर अम्मा ने उसके किसी दूर के रिश्तेदार को खबर कराई और उसे दफन कराने मे जो खच आया, स्वय वहन किया। इतना ही नही, हिन्दुओ की तरह उसकी तेरहवी भी की।

अम्मा का प्रेम और उनकी करुणा मनुष्यो तक ही सीमित नही थी, पशु-पक्षियो तक भी व्याप्त थी। एक बार हमारे कमरे मे एक सफेद कबूतर आ गया। उसे पकडने के लिए हमने कमरे की सारी किवाडें बद कर दी और लगे कपडे से उसे उडाने। कबूतर ने कमरे मे इधर-से-उधर चक्कर लगाये, बाहर निकलने की कोशिश की, अत मे हैरान होकर वह धरती पर आ गिरा। हम उसे पकडने को झपटे तो देखा, वह जोर-जोर से सास ले रहा है। दौडकर पानी लाये, उसकी चोच मे पानी डाला, लेकिन उसने आखिरी सांस ले ली। अम्मा को मालूम हुआ तो उन्हें मर्मांतक पीडा हुई और उन्होने उस कबूतर का ठीक उसी तरह क्रिया-कम कराया, जिस तरह आदमी का होता है।

अम्मा की परिश्रमशीलता के तो कहने ही क्या थे। गाव मे घर पर सदा नौकर-चाकर रहते थे, पर भैसो का दूध वह स्वय निकालती थी। नौकर पशुओ की टहल मे किसी प्रकार की असावधानी न करे, इसकी पूरी चौकसी रखती थी। शरीर उनका दुबला-पतला था, लेकिन बना जैसे वह फौलाद का था। थकना तो वह जानती ही नही थी। साठ पार कर जाने पर भी उन्होने आलस्य को कभी प्रश्रय नही दिया और आखिरी बार बीमार पडने से एक दिन पहले तक घर का सारा काम स्वय करती रही। लगभग पच्चीस वर्ष पहले पिताजी ने पटवारीगिरी छोड दी थी और तब से वे कभी किसी भाई के पास रही तो कभी किसी भाई के पास। सयोग से हम सब भाई दिल्ली मे आ बसे, पर स्थानाभाव के कारण दो-तीन अलग-अलग घरो की व्यवस्था करनी पडी।

अम्मा मुख्यत बडे भाई के साथ रही। हमारी भाभी डेढ साल का एक लडका छोडकर चल बसी थी। अम्मा ने उस लडके को अपने बेटे की तरह पाला। कहा करती थी, मेरे छ नही, सात बच्चे हैं, उन्होने कभी अपनी चिन्ता नही की, सदा दूसरो की सेवा करती रही।

अम्मा की स्कूली पढाई एक-दो दर्जे तक हुई थी। उन दिनो लडकियो के पढाने का चलन था भी नही। लेकिन अम्मा ने हिन्दी के लिखने-पढने का इतना अभ्यास कर लिया था कि वह धार्मिक पुस्तकें ही नही, अन्य पुस्तकें भी मजे मे पढ लेती थी। मेरी सारी पुस्तके और लेख अम्मा ने आद्योपात पढे थे। जब उनकी आखे कमजोर हो गई थी तो वह घर के किसी बच्चे से पढवाकर सुनती थी। रेडियो पर मेरी कोई वार्ता प्रसारित होती थी तो उसे अवश्य सुनती थी और कभी-कभी मैं उन्हे सूचना देना भूल जाता था तो उलाहना देती थी।

उनमे सहज बुद्धि इतनी विकसित थी कि जटिल-से-जटिल बात को भी सहज ही समझ लेती थी। जब मोरारजी भाई ने स्वण नियत्रण किया तो वह बहुत खुश थी। कहती थी—"भैया, सोने को लादने से क्या फायदा! मुरारजी ने यह काम बडा अच्छा किया है" सच बात यह है कि उनमे धन सग्रह की वृत्ति थी ही नही। उन्होने कभी अपने पास कुछ नही रक्खा। उनके जाने के बाद जब उनका बक्स खोला, तो उसमे एक नई और दो पुरानी धोतिया, एक शॉल और पैंतीस रुपये निकले। छियासठ वर्ष की यही उनकी कुल जमा पूंजी

थी। उनके हाथो मे हजारों रुपये आये होंगे, घर मे खूब समृद्धि थी, पर अम्मा मे धन-सम्पत्ति के प्रति आसक्ति हुई ही नहीं।

अम्मा बहुत ही प्रज्ञावान थी। उन्हें मैंने कभी व्यग्र नही देखा, न उतावली मे पाया, न अधीर होते देखा। जब कभी कोई कठिनाई आती तो वह बडे सहज और शात-भाव से उसका सामना करतीं।

उन्होने सारे घर को एक सूत्र मे बांध रक्खा था। त्योहार के दिन वह सारे परिवार को इकट्ठा कर लेती और सबको बडी ममता से खाना खिलातीं। जिस तरह माली को अपनी फुलवाडी को फलते-फूलते देखकर आतरिक सुख मिलता है, वही मनोभाव अम्मा को अपने बच्चो को देखकर होता था।

अपने लडको की जब किसी से प्रशसा सुनती थी तो उन्हे बडा सतोष होता था। एक बार किसी ने बिना यह जाने कि वह मेरी मा हैं, उनके सामने मेरी बडाई की। अम्मा थोड़ी देर चुप रही फिर बोली, "अरे, बुतो मेरौई बेटा है।" अपने लडको को लेकर उनमे अहकार नही था। उनकी एकमात्र अभिलाषा यही थी कि उनके बच्चे गलत रास्ते पर न जायं और दूसरो की जितनी भलाई कर सके, करें।

अम्मा की ममता का पार न था। रविवार को उनके पास जाने का मेरा नियम था। कभी व्यस्तता के कारण न जा पाता तो अम्मा फोन करती, "चौं भैया, तेरी तबीयत तो ठीक है न !" हम लोग आपस मे ब्रज-भाषा मे बात किया करते थे। मैं कह देता, "अम्मा, तबीयत तो ठीक है, काम के मारे नाइ आइ पायौ।" वह कहती, "कोई बात नाये।" कभी-कभी इस चीज को लेकर थोडा विनोद भी हो जाता। अम्मा कहती, "भैया, या है जाओ नई तो मेरे पिरान तुममे ई अटके रहिंगे।" मैं हसकर कहता, "तो अम्मा, मैं नई आओ करुगो। जा मारे तुम्हारे प्राण तो अटके रहिंगे।" अम्मा भी हस पडती। मैं पेट का वर्षों से रोगी हू। कभी पेट मे हवा बहुत बनती और हैरानी होती तो मैं अम्मा से कह देता। वह कहतीं, "भैया, तुमने परहेज करि-करि कै अपनौ पेट बिगाड लयो ए।" फिर तो रोज फोन करती और जबतक तबीयत ठीक न हो जाती, उन्हे चैन न पडता। मेरे लिए ग्वारपाठा, अजवाइन तथा और न जाने क्या-क्या चीजें डालकर चूर्ण बनाकर भेज देती। आज तबीयत खराब होती है तो लगता है, अब फोन की घटी बजेगी और अम्मा की आवाज सुनाई देगी।

जाने कैसे मैं यह मानता रहा कि अम्मा सौ बरस जरूर पूरे करेगी। इसीलिए कभी यह सोचा ही नही कि अम्मा की भौतिक सुविधाओ का जितना ध्यान रखना चाहिए, उतना रक्खें। आज इसी बात को याद करके दिल मे हूक-सी उठती है। आखिर उसकी आवश्यकताए थी ही कितनी। पर हम लोग उनके लिए उतनी भी सुविधाए नही जुटा पाये ! इस बात का मुझे हमेशा दुख रहेगा।

इतने बडे हो जाने पर भी हम अक्सर अम्मा के सामने बच्चे बन जाते थे। अम्मा ब्रजभाषा के कुछ ठेठ शब्द बोलती थी। मैं कभी-कभी विनोद मे यो ही कुछ कह देता। अम्मा कहती, "तु तो बडी अनटोटी[1] बात कतु ए।" इस प्रकार जब मैं कम खाता तो वह कहती, "तू तो बडो निंजैमा[2] है गयौ ए।" हममे से कोई अच्छी चीज होते हुए भी खाने से इन्कार करता तो अम्मा झट कह देती, "छोरा तू तो बडौ पुदकावतु[3] है।" अम्मा के इन और ऐसे ही शब्दो को लेकर जब हम हस-हसकर बात करते तो वह जरा भी बुरा न मानतीं।

२९ अक्तूबर १९६९ को वह अचानक बीमार पडी और २८ नवम्बर १९६९ को मगलवार के दिन उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

वैसे तो उनका प्रेम हम सब भाइयो और बहन पर समान था, किन्तु उनका झुकाव मेरी ओर कुछ अधिक था। अम्मा के जाने से मुझे बडी रिक्तता अनुभव हुई। लगा, मानो मेरे जीवन की एक अत्यन्त मूल्यवान

१ अजीब। २ अनखाता। ३ ऊचा दिमाग रखना।

निधि खो गई। जो डोर हमारे सारे परिवार को बाधे हुई थी, वह सहसा टूट गई थी।

जिस समय मेरे हृदय मे भारी उथल-पुथल हो रही थी, अम्मा ने ही मेरी सहायता की। मुझे याद आया, वह कहा करती थी कि आदमी की जिन्दगी मे उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं। धीरज से काम लेना चाहिए और घबराना नही चाहिए।

अम्मा के इस कथन का चिन्तन करते हुए मुझे सूझा कि कोई ऐसा काम हाथ मे लेना चाहिए, जिसमे मेरे साथ मेरा यह दु ख भी डूब सके। सोचते-सोचते मैंने दादाजी (बनारसीदास चतुर्वेदी) के अभिनदन-ग्रन्थ का काम हाथ मे ले लिया और तीन महीने तक उसी काम मे खोया रहा। 'प्रेरक साधक' ग्रथ उन्ही दिनो की कृति है।

समय ने दु ख पर पर्दा डाल दिया, पर अम्मा की याद बराबर बनी रही। उनकी प्रथम पुण्य तिथि पर हम लोगो ने तीन काम किये। मेरे छोटे भाई कुशलपाल ने भगवान महावीर का विशाल रगीन चित्र तैयार किया था। उसे देखकर अम्मा ने कहा था, "भैया, यह तो घर मे नही, मदिर मे लगना चाहिए।" अम्माजी इस आकाक्षा को ध्यान मे रखकर उसे उनकी पहली पुण्यतिथि पर लाल किले के सामने लाल मदिर मे लगवा दिया।

दूसरा काम यह किया कि परिवार के छोटे-बडे सभी सदस्यो से और अम्मा के सम्पर्क मे आने वाले कुछ महानुभावो से, उनके सस्मरण लिखवाये और उनका एक सग्रह 'दिव्य ज्योति' के नाम से उनकी पहली पुण्य तिथि पर निकाला। उसके एक खण्ड मे वे प्रार्थनाए और भजन भी दिए, जो अम्मा को बहुत प्रिय थे और उन्हे कण्ठस्थ थे। इनकी भूमिका दादाजी ने लिखी और विमोचन केन्द्रीय मत्री श्री प्रकाशचद्र सेठी ने किया।

तीसरा काम था दरियागज (दिल्ली) के जैन उच्चतम माध्यमिक विद्यालय मे किसी नैतिक या धार्मिक विषय पर छात्रो की वाक् प्रतियोगिता, जो अब भी प्रति वर्ष १८ नवम्बर को बराबर होती आ रही है।

अम्मा के ऋण से हम कभी उऋण नही हो सकते। उनके चरणो मे श्रद्धाजलि।

पिताजी स्मृति में

मेरे पूज्य पिताजी (श्री श्यामलाल जैन) का जन्म सन् १८६० मे अलीगढ जिले के विजयगढ़ नामक कस्बे मे हुआ था, जो किसी जमाने मे एक ऐतिहासिक नगर था। राजपूतो का वहा विशाल गढ़ था। उसके अवशेष अब भी देखे जा सकते हैं। 'बाबरनामा' मे उस नगरी का उल्लेख आता है। हमारे बाबा लाला भूपाल सहाय तीन भाई थे। बहुत बडा परिवार था। धन-धान्य से भरा था। चारो ओर प्रतिष्ठा थी। बाबा पटवारी थे। उन दिनो पटवारी को गाव का खुदा कहा जाता था। दूर-पास जमीदारी थी। उन दिनों जमीदारी प्रतिष्ठा और शक्ति दोनो का केन्द्र थी। मुझे याद है कि हमारे यहा खत्तियो मे अनाज भरा रहता था। घर मे गायें-भैंसे थी, घोडे-घोडी थे। नौकर-चाकर काम करते थे। किसी भी चीज की कमी नहीं थी। चारों ओर प्रभाव था।

पिताजी दो भाई थे और चार बहनें। हमारी चारो बूआ अच्छे घरो मे ब्याही। एक बूआ का विवाह पड़ोस मे ही लाला इन्द्र प्रसादजी के सम्पन्न एव सभ्रान्त घर मे उनके पुत्र दीवान रूप किशोर के साथ हुआ, जिनकी सतान अक्षय कुमार जैन हैं। पिताजी का विवाह उत्तर प्रदेश की रियासत बरौली के दीवान लाला जाहरीलाल की पुत्री लक्ष्मी देवीजी के साथ हुआ। हम आठ भाई-बहन थे, जिनमे छह जीवित रहे।

उन दिनो उर्दू और फारसी का बोलबाला था। बाबा इन दोनो भाषाओ के जानकार थे। पिताजी सुनाया करते थे कि बाबा को फारसी की बहुत सी कविताए याद थीं। कुछ कविताए उन्होने स्वय भी लिखी थी। उनकी परम्परा को पिताजी ने आगे बढ़ाया। उन्हे पढ़ने का बचपन से ही शौक रहा, जो अत तक चला। उन्होने उर्दू और फारसी मे कुछ कविताए लिखी। इन कविताओ को वह अक्सर गाकर सुनाया करते थे।

हमारी दादी का छोटी उम्र मे ही स्वर्गवास हो गया था। फिर भी वह बडा घर बिखरा नही। हमारी ताई और माताजी ने उसे एक सूत्र मे बाधे रखा। ताई के जाने के बाद हमारी मां ने उस जिम्मेदारी को खुले दिल से निभाया और अपने स्वर्गवास के समय तक पुराने सबधो को बनाए रखा।

पिताजी बडे तेज स्वभाव के थे। यह तेजी उन्हे बाबा से विरासत मे मिली थी। हम घर के आदमी ही नही, बाहर के लोग तक उनसे डरते थे। जब हम लोग विजयगढ़ के निकट बीझलपुर ग्राम मे चले गए, तो वहा भी उनका रौब-दौब उसी तरह बना रहा। शाम को गाव के मुखिया और दूसरे बडे-बडे लोग हमारे यहा इकट्ठे हो जाते थे और पिताजी घटो उनसे बाते करते रहते थ।

पिताजी हुक्का पिया करते थे। नौकर उनकी फरसी तैयार करके उनके सामने रख देता था और वे हत्थेदार मूढ़े पर बैठकर बहुत रात गय तक आराम से बातें करते रहते थे।

हम बच्चो का बचपन बडे अनुशासन मे बीता। पढाई के बारे मे पिताजी बडे सख्त थे। जब वह रात गये बाहर से उठकर अदर आते थे, तो बहुत बार हमे जगाकर पहाडे या पाठ सुनते थे। कभी-कभी हमारी ठुकाई भी हो जाती थी।

एक बार नौकर कही गया हुआ था। पिताजी ने मुझसे चिलम भर लाने को कहा। जहा पर वह बैठते थे, उसके और भीतर के कमरो के बीच थोडी जगह थी, जिसमे गाय-भैसे बधा करती थी। उन दिनो स्त्रिया बाहर बहुत कम निकलती थी। अपने भीतरी आवास मे वे रहती थी और पुरुष बाहरी हिस्से मे। मैंने अन्दर जाकर चिलम भरी और जब लौटने लगा, तो एक खेल सूझा। बीच मे एक भैंस खडी थी। मैं तेज आग चिलम को भैंस के थनो के नजदीक ले गया। गर्मी से भैंस कूदने लगी। वह कूदकर जहा रुकती, वही मैं फिर चिलम को ले जाता। इस खेल मे थोडी देर हो गई। पिताजी ने सोचा कि इतनी देर लगनी नही चाहिए थी। वह चुपचाप यह देखने के लिए कि बात क्या है, अन्दर आए। मैं तो अपने खेल मे मस्त था। पिताजी मक्खियां भगाने के लिए एक चौरी रखा करते थे। बडी जोर से एक चौरी मेरी पीठ पर पडी। मैंने मुडकर देखा। फिर तो पिताजी ने जोर से कई चौरियां मेरी पीठ पर जमा दी। जब उनका हाथ रुका तो उन्होंने कहा, "जानवरो से हसी-खेल करते हो, जिनके जबान नही है, उन्हे सताते हो!' उस दिन से आज तक मैंने किसी जानवर को सताया हो, मुझे स्मरण नही।

उन्होने धूम्रपान की बुरी आदत से मुझे किस प्रकार होशियारी से बचाया, इनका उल्लेख मैंने अन्यत्र किया है।

वे जितने कठोर थे, उतने ही परिवारवत्सल भी थे। हम बच्चो को बेहद प्यार करते थे। हमे अच्छी-से-अच्छी शिक्षा और सगति मिले, इसका ध्यान वे सदा रखते थे। बीझलपुर छोटा-सा गाव था। वहा पढ़ाई की व्यवस्था नही थी। हम लोग पड़ोस के गाव मे पढ़ने जाते थे। एक बार कई दिनो तक स्कूल जाने को मन

नहीं किया। पट्टी-बस्ता लेकर हम कुछ बालक घर से निकलते और हरे-भरे खेतो मे खेलते। फिर पट्टी पर थोड़ा-सा लिखकर शाम को घर लौट आते। दो-तीन दिन बाद एक मुशीजी (हैडमास्टर) हमारे घर आए मेरे स्कूल न जाने से उन्हे चिन्ता हो गई थी कि मैं कही बीमार तो नही पड गया। आते ही उन्होने पिताजी से कहा, "यशपाल की तबीयत कैसी है ?" पिताजी ने विस्मय से पूछा, "क्यो, क्या बात है ?" मुशीजी ने कहा "वह कई दिन से स्कूल नही जा रहा है।"

तत्काल मेरी पेशी हुई। मुशीजी को देखते ही मेरा खून सूख गया। मुझसे कैफियत मागी गई, तो मैंने डरते-डरते अपनी बात कह दी। उसके बाद जो ठुकाई हुई, उसकी याद करके आज भी रोगटे खडे हो जाते हैं। पिताजी एक क्षण को भी यह गवारा नही कर सकते थे कि उनका बच्चा पढाई से जी चुराये और झूठ बोले।

ऐसे अवसरो पर मा हमेशा बीच मे आ जाती थी, पर वह तो अदर थी। इसलिए पिताजी का हाथ तब तक नही रुका, जब तक मैंने मुशीजी के सामने वचन न दिया कि आइदा कभी ऐसा नही करूगा।

पिताजी पटवारी थे। विजयगढ तथा बीझलपुर मे कुछ जमीदारी भी थी, लेकिन पिताजी हमेशा अक्खड और फक्कड रहे। उन्होने अपना सिर हमेशा ऊचा रखा। कभी किसी से दबे नही। पैसे का लालच उन्हे कभी नही हुआ, जो मिला, खर्च किया। अच्छी तरह रहे, अच्छा खाया-पिया। यह चिन्ता कभी नही कि आगे क्या होगा। ईश्वर पर उनका विश्वास रहा हो या न रहा हो, पर इतना वह अवश्य मानते थे कि नेकी का जीवन बिताने वाला कभी घाटे मे नही रहता।

जब उन्होने गाव छोडा, तो फिर मुडकर एक बार भी पीछे नही देखा। विजयगढ और बीझलपुर के हमारे महल जैसे घर थे। वे मिट्टी मे मिल गए, जमीदारी पर दूसरो ने कब्जा कर लिया, बाग-बगीचे उजड गए। पिताजी चाहते, तो उन्हे बेचकर कुछ पैसा उठा सकते थे, लेकिन पैसे के लिए उनमे मोह था ही नही।

उनके जीवन मे उतार-चढाव खूब आए। एक बार बीझलपुर मे बरसात के दिनो मे हम लोग छप्पर के नीचे सो रहे थे। पिताजी, माताजी और हम सब भाई-बहनो की चारपाइया बराबर-बराबर बिछी थी। वर्षा के साथ बडे जोर का अधड आया और छप्पर एकदम नीचे आ गिरा। सयोग देखिए कि छप्पर की बल्लिया एक ओर दीवार के सहारे टिकी रही। हममे से किसी के खरोच तक नही आई।

एक बार बडे जोर की चोरी हुई। सब कुछ चला गया। चोर पिताजी को मारने भी आए थे। दैवयोग से उस दिन पिताजी किसी काम से बाहर गए थे। चोर घर खाली करके चले गए, लेकिन पिताजी का कुछ भी नही बिगडा।

मेरे बडे भाई का लडका और उस समय का उनका इकलौता पोता, जिसे सारा घर बहुत प्यार करता था, एक दिन कुए की जगत पर खडे होकर नीचे झाक रहा था कि उसका पैर फिसल गया और वह कुए मे गिर पडा। बडा गहरा पानी था, पर वह जीवित निकाल लिया गया। कुछ समय बाद विषम ज्वर मे वह गुजर गया।

सकट यो सभी के जीवन म आते हैं, पिताजी के जीवन मे भी आए, पर ज्यादातर तूफान की तेजी से आए और उसी तेजी से उतर गए। पिताजी ने कभी हौसला नही छोडा।

स्वतन्त्रता से कुछ दिन पहले पिताजी ने सारे कामो से छुट्टी ले ली। उनके सब लडके अपने-अपने काम पर लग गए, पर वह अधिकतर रहना बडे भाई श्री हजारीलालजी या तीसरे भाई कुशलपाल के साथ पसद करते थे। काम छोडा, तब पैसे के नाम पर उनके पास फूटी कौडी भी नही थी, पर वे कभी किसी से दबे नहीं। अपनी ही रची एक कविता की ये दो पक्तिया वे बडे ही मधुर स्वर मे गाकर सुनाया करते थे।

मिले खुश्क रोटी जो आजाद रहकर
तो है वो कही हलुवा-पूडी से बेहतर।

इसमे उनके जीवन का सारा दृष्टिकोण समाया हुआ था। उन्हे परेशानियां हुईं, पैसे की तगी भी रही पर उन्होने अपने स्वाभिमान को कभी आच नही आने दी। अच्छा खाया, अच्छा पहना, पर किसी के दबाव में नही आए। बच्चे घर-गिरस्ती वाले हो गए थे, लेकिन क्या मजाल कि वह कुछ कहे, तो कोई लडका मुह खोल दे। कभी कोई बात होती थी, तो वे कह देते थे, "मैं हरिद्वार चला जाऊगा, पर तुम लोगों की बात नही सुनूगा। तुम्हारा मुह नही ताकूगा।'

मेरे बडे भाई दिल्ली आ गए, ता वे भी उनके पास आकर रहने लगे। उनके जीवन का उत्तरार्द्ध दिल्ली मे ही बीता। एक दिन मैंने उनसे कहा— "चाचाजी, आप अपनी जीवनी लिख दें।" उन्होंने मेरी बात मान ली और लिखना शुरू कर दिया, लेकिन १५-२० पन्ने लिखे कि उनका मन उचट गया। मैं बार-बार तकाजा करता, तो कह देते कि अच्छी बात है, अब फिर लिखना शुरू कर दूगा, पर वह घडी आई नही। मैंने उनसे अनुरोध किया था कि वे अपनी कविताए भी उसी मे लिख दें। आज मुझे दुख इस बात का है कि उनकी कविताए उनके साथ ही चली गईं।

सन् १९५१ से उन्होने अपनी डायरी रखी। प्रारम्भ मे उन्हे उर्दू और फारसी का अभ्यास था। वे उर्दू मे ही लिखा करते थे। उनकी डायरी उर्दू मे ही है। जाने कितनी प्रकार की चीजे उन डायरियो मे आ गई हैं उनसे पता लगता है कि उनकी रुचि कितनी व्यापक थी। उन्होन कभी राजनैतिक काम नही किया, पर डायरी के पन्ने-पर-पन्ने राजनैतिक घटनाओ से भरे पडे हैं। एक तिथि को लिखा है—आज राष्ट्रपति का चुनाव हुआ तीन उम्मीदवार थे। १—वी वी गिरि, २—सजीव रेड्डी, ३—देशमुख। तीनो को इस प्रकार वोट मिले (पूरी तालिका दी है)। वी वी गिरि जीत गए।

एक अन्य तिथि का उल्लेख है—आज मुजीबुर्रहमान बिना शर्त रिहा कर दिए गए।

आगे की तारीख मे लिखा है—वह एक विशेष हवाई जहाज से लन्दन पहुचे।

फिर आगे उल्लेख है—आज मुजीबुरहमान भारत आए। पालम हवाई अड्डे पर राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री आदि ने उनका स्वागत किया। मुजीबुर्रहमान का भाषण हुआ।

एक तिथि मे अकित है—आज रात को १२ बजकर ५ मिनट के जहाज से यशपाल अमरीका गए।

फिर एक तारीख मे है—आज के जहाज से वीरेन्द्र काग्रेस के अधिवेशन मे कलकत्ता गया।

अन्य घटनाओ के साथ घर के लोगो के कही भी आने-जाने का पूरा विवरण उनकी डायरी मे है।

जब कभी कोई उल्लेख-योग्य घटना नही होती थी, तब वह मौसम का हाल देते थे

आज दिन भर बादल घिरे रहे। कुछ बूदाबादी भी हुई।

१८ नवम्बर १९६९ को जब मेरी माताजी का देहावसान हुआ, तो उन्होने माताजी की स्मृति मे प्रकाशित 'दिव्य-ज्योति' सस्मरण मे लिखा

६ जून १९०३ का बन्धन एक पल मे टूट गया, लेकिन जो टूटा वह जिस्मानी बन्धन था, जो देर-अबेर से सबका टूटता है, पर क्या ६६ वर्ष की याद कभी भुलाई जा सकती है? उन्होने अपना फर्ज बडी खूबी से अदा किया और मुझे पूरा भरोसा है कि वे जहा भी होगी, सुखी ही होगी, क्योंकि दुख को उन्होंने कभी दुख माना ही नहीं।"

माताजी के जाने बाद यो उनके जीवन-क्रम मे विशेष अन्तर नही आया, न उन्होंने कभी उनके विषय

मे चर्चा ही की, लेकिन सच बात यह थी कि उनका बहुत बडा सहारा छिन गया था। उनका दिल अन्दर से जैसे खाली हो गया था।

फिर भी बिछोह के तीन वर्ष उन्होंने बड़ी हिम्मत से बिताये। वे सबेरे नित्य-नियम से तीन-चार मील घूमते थे। उनका घूमना जारी रहा। वे सीताराम बाजार मे हमारे बडे भाई श्री हजारीलाल के साथ रहा करते थे। कभी-कभी घूमते हुए मेरे पास दरियागज आ जाते और जब देखते कि मैं घूमने नही गया हू, तो कहते—"यशपाल, घमना किसी भी हालत मे बन्द नही करना चाहिए। उसके बिना सेहत ठीक नही रह सकती।"

कभी-कभी मैं बताता कि पेट मे दर्द है, तो वे कहते, "तुमने अपना पेट अपने आप खराब कर डाला है। हम यह नही खायेंगे, यह ठीक नही है। सब चीजे खाओ। परहेज की अति भी पेट को बिगाड देती है।

फिर कहते, "तुम लोग जल्दी-जल्दी घडी देखकर खाते हो। यह बडी बुरी बात है। आराम-आराम से खाओ और खाकर कम-से कम दस-पद्रह मिनट बिस्तर पर लोट जरूर लगाओ।"

उनमे बहुत से गुण थे, उनकी बहुत सी मर्यादाए भी थी। बहुत कुछ-शान्त हो जाने पर भी उनके स्वभाव मे उग्रता अन्त तक बनी रही, पर मिलनसारिता उनमे इतनी थी कि जहा रहते थे, वही उनके सगी साथियो का बडा समुदाय बन जाता था। दरियागज मेरे पास आते थे, तो अपने सारे परिचितो से मिलकर जाते थे। जो नही मिलते थे, उनकी कुशल क्षेम मुझसे या किसी से पूछ लेते थे। आज जाने कितने लोग उनको याद करते हैं।

१३ फरवरी १९७३ को ८३ वष की अवस्था मे उनकी लम्बी लोक-यात्रा का अकिम पडाव आ गया। शरीर उनका दुबला-पतला था, पर आखीरी समय तक कमर उनकी सीधी और सीना उनका तना रहा।

वे वास्तव मे वटवृक्ष थे, जो दृढता से खडा रहा और जो भी उनके नीचे आया, उसी को छाया और शीतलता प्रदान की।

मैं बराबर अनुभव करता रहा हू और माताजी तथा पिताजी के विछोह के बाद मेरी यह अनुभूति और भी गहरी हो गयी है कि अभिजात्य तथा अभावग्रस्त वर्गो के बीच की खाई को दूर करने के लिए हमे विद्रोही बनना चाहिए। माता-पिता जिस घर मे रहे, उसमे न धूप जाती है, न खुली हवा का प्रवेश होता है। पैसे की मोह-ममता न होने पर भी उन्हे जो भौतिक सुविधाए मिलनी चाहिए थी, नही मिली। मुझे लगता है जब तक एक ओर ढेर रहेगा तो दूसदी ओर अनिवायत गड्ढा रहेगा। स्वतन्त्र देश के नागरिको को पौष्टिक और शुद्ध भोजन न मिले, रहने को खुला मकान न हो, काम के साधन न हो, चारो ओर घुटन हो तो इससे अधिक लज्जा की बात क्या हो सकती है ?

और उन्ही के साथ पिताजी का स्वर उभरता है, "ऐसा कुछ करो, जिससे हर आदमी को इज्जत के साथ जीने का मौका मिले।"

और मैं हू कि लाचारी से कभी समाज का मुह देखता हू, कभी सरकार का। अखबारो मे अपनी बात लिखता हू, सभाओ मे अपनी बात कहता हू, लेकिन सत्ता का और पैसे का जोर और शोर इतना है कि मेरी बात अरण्यरोदन सी होकर रह जाती है।

यह हमारा दुख है और जब तक जीयेगे, रहेगा। लेकिन पिताजी की आत्मा को हमे सुख देना है तो वह तभी मिलेगा जब कि समाज मे आर्थिक विषमता दूर होगी और गरीब को भी सम्मानपूर्वक जीने की उतनी ही सुविधा मिलेगी, जितनी कि आज अमीरो को मिली हुई है। यही उनके प्रति सर्वोत्तम श्रद्धाजलि होगी।

इन्हें भी कैसे भूलूं

मेरे प्रारंभिक जीवन में जिन्होंने मुझे सबसे अधिक सहारा दिया, वे थे बाबूजी (मेरे श्वसुर, बा कामता प्रसाद)। मेरी पढ़ाई-लिखाई मे उन्होंने सहायता की थी, मुझे आगे बढ़ाने मे भी उन्होंने भरपूर प्रोत्साहन दिया। वह बहुत ही उदार थे। उनकी दृष्टि भी ऊंची थी। उनका बराबर प्रयत्न रहता था कि दूसरो की दृष्टि भी ऊची हो वे बड़े बनें। आज मैं जो कुछहू, वह उनके आशीर्वाद का ही फल है। वह आज होते तो उन्हें अपार हर्ष होता।

अपने अग्रज (श्री हजारीलाल जैन) के सबध मे कुछ भी कहना अपनी प्रशसा करने के समान होगा। वह मुझे निरंतर बढ़ावा देते रहे और मेरी उन्नति से आनदित होते रहे।

जिनके प्रति कुछ भी कहने मे शब्द ओछे पड जाते हैं, वह हैं मेरी पत्नी आदर्श कुमारी। अपने माता-पिता की वह सबसे बडी सतान हैं। अपने पिता की योग्यता और तेजस्विता उन्होने विरासत मे प्राप्त की है। अपने घर वालो को नाराज करके वह मेरे पास आईं और घर-गिरस्ती के झझटो और सघर्षों के बीच आगे बढने का सतत् प्रयत्न करती रही। लडकी अन्नदा और लडके सुधीर को जन्म दिया। दोनो बच्चो की उम्र बहुत छोटी थी कि मुझे पीलिया हो गया, जिसने मुझे मरणासन्न कर दिया। मेरे ठीक होने पर वह स्वय बहुत अस्वस्थ हो गईं और उनके रोग-मुक्त होने मे कई वर्ष लगे। किन्तु उन्होने हिम्मत नही हारी। उनकी दो छोटी बहनो (ज्ञान, जो डाक्टर हैं और प्रमिला) ने रात-दिन एक कर दिये और मेरे भार को बहुत-कुछ अपने ऊपर ले लिया।

विवाह के समय आदश इटर सी टी थी। विवाह के बीस वर्ष बाद, जब कि लडकी अन्नदा प्रेप मे पढती थी, उन्होने बी ए पार्ट मे इद्रप्रस्थ गर्ल्स कालेज मे औपचारिक रूप से दाखिला कराया और प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुई। दिल्ली विश्वविद्यालय मे द्वितीय स्थान मिला। फिर एम ए किया प्रथम श्रेणी मे, विश्वविद्यालय मे तृतीय स्थान पाया। अनतर डेनिश सरकार की फैलोशिप पर डेनमार्क गई और आठ महीने रह कर वहा के फोक हाई स्कूल मूवमेट का विशेष अध्ययन किया। डेनिश भाषा का अभ्याम किया। वहा से स्वीडन, इगलैण्ड, फ्रास घूमती हुई भारत लौटी और कुछ समय बाद कालिन्दी कालेज मे हिन्दी की प्राध्यापिका हो गई। इस समय उसी पद पर काम कर रही हैं।

लोक कथाओ मे उनकी विशेष रुचि है। उनके तीन सग्रह निकले। उनमे से एक सग्रह की कहानियो का लाइपजिग विश्वविद्यालय से जर्मन मे अनुवाद प्रकाशित हो रहा है।

स्टीफन ज्विग के दो उपन्यासो के हिन्दी रूपान्तर किये। कृष्ण हठी सिंह की सस्मरण-पुस्तक 'शैडोज आन दी वाल' का भी अनुवाद किया।

काफी समय तक आल इडिया रेडियो मे ब्रज कार्यक्रम की सयोजिका रही।

जापान मे लोक कथाओ के सबध मे टोकियो से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसमे एक अध्याय उनकी लोक कथाओ पर छपा है।

यह सब तो कृतित्व की बात हुई, लेकिन उनकी एक बडी विशेषता उनका अदम्य व्यक्तित्व है। वह किसी प्रकार के भी अनाचार और अत्याचार के आगे नही झुकती। वे सात बहनें और दो भाई हैं। सभी सुशिक्षित हैं। सभी स्वाभिमानी हैं।

लेखक की पत्नी होना वैसे गौरव की बात मानी जाती है, किंतु वह बहुत आसान भी नही है। मेरे साथ

आदर्श को कड़ुवे-मीठे दोनो प्रकार के अनुभव हुए हैं। जबतक वह कालेज मे काम नहीं करने लगीं, हम लोग बहुत ही आर्थिक कष्ट मे रहे। महीने के अतिम दस दिन काटना मुश्किल होता था। उन्होंने सादगी का जीवन अपनाया, किंतु किसी के आगे हाथ नही फैलाया।

सबसे बडी कष्टकर स्थिति उनके लिए यह थी कि जब-जब वह मुझसे पैसे की तगी की बात करती थी, उन्हें एक ही उत्तर मिलता था, "तुम्हारे तो बीस दिन निकल जाते हैं, करोड़ो ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका बीस दिन भी निकलना मुश्किल होता है।"

जब वह कहती थी कि ऐसे भी लोग हैं, जो आनद की जिन्दगी बिताते हैं तो उत्तर मिलता, "आगे मत देखो, पीछे देखो।" दरअसल मेरी भी तो लाचारी थी। अधिक कमाई की ओर मेरा ध्यान ही नही था।

हम पाच भाई हैं। सब बड़े परिवारवत्सल हैं। सबके अपने-अपने भरे-पूरे परिवार हैं, किंतु आर्थिक दृष्टि से सब औसत दर्जे के हैं। किसी के पास इतना पैसा नहीं रहा कि दूसरे की मदद कर सकें।

आदश ने वह सब सहा, लेकिन समाज मे अपनी धाक बनाये रक्खी। कभी किसी का एक पैसा नहीं रोका। मुझे याद है, जिसकी दुकान से खाने पीने आदि का सामान आता था, वह एक दिन कहने लगा, "बाबूजी, कुछ लोग है, जिनकी ओर दो-दो तीन-तीन महीने की उधारी हो जाती है और वे अपना घर बदल लेते हैं। हमे बडी परेशानी होती है।"

इस पर मैंने विनोद मे कहा, "हम भी ऐसा ही करे क्या?"

उसने आदश की ओर देख कर कहा, "बीवीजी ऐसा हरगिज नही कर सकती।" इतना विश्वास उन्होंने अर्जित कर लिया था।

एक दिन उन्हे सडक पर किसी की सोने की जजीर और लाकेट पडा मिला। दोनो मिलकर काफी कीमती थे। लेकिन आदश ने तत्काल 'नवभारत टाइम्स' को फोन करके उसमे समाचार दे दिया। समाचार के छपते ही एक महिला आई। जजीर और लाकेट उन्ही का था। ले गई।

आदर्श के चरित्र की यह बहुत बडी खूबी है कि उन्होने न कभी किसी के पैसे पर आख लगाई और न बेहद तगी के दिनो मे भी कभी अपने को नीचे झुकने दिया।

आदर्श ने मेरा कितना ध्यान रक्खा है और आज भी रखती हैं, वह विस्मय-जनक है। शरीर उनका सदा से दुर्बल रहा है, फिर कभी कोई तो कभी कोई, रोग समय-समय पर हैरान करता रहता है, लेकिन क्या मजाल कि समय पर खाना तैयार न हो। शरीर मे उन्होंने जोर-जोर से आर लगाई है और चलाया है। आज भी यही हालत है। कालेज जाती है और घर सभालती हैं।

स्वभाव उनका तेज है और उन्हे इस बात पर खीज होती है कि घर के सभालने मे मैं सहायक क्यो नही होता? क्या घर उन्ही का है? मेरा उससे कोई सरोकार नही है? सबके बावजूद घर वह अकेली सभालती हैं। फिर भी बोझ और बढ गया है। टागो मे उनके आथराइटिस का दर्द रहता है। वह कभी-कभी इतना बढ जाता है कि चलना दूभर हो जाता है। फिर भी चलती है और काम करती हैं। अब मधुमेह ने उनकी शक्ति को और भी क्षीण कर दिया है, पर असभव है कि खाने की चीजो की सख्या मे कटौती हो जाय! तेज बात करेंगी, बड-बडायेगी, लेकिन यह स्वप्न मे भी नही हो सकता कि मैं कभी बिना खाना खाये दफ्तर या और कही चला जाऊ!

कालेज जल्दी जाना होता है तो खाना बनाकर रख जाती है। पर मुझ जैसे निकम्मे आदमी से कभी-कभी फ्रिज मे सारी चीजे भी नहीं निकाली जाती खाने को गरम करना तो दूर रहा। हारकर उन्होंने हौट केस मगवा कर रक्खा है।

जबतक शरीर मे दम रहा, मेरे मना करने पर भी मेरे कपड़े धोती रही। जब शरीर जवाब दे गया तो धोबी की व्यवस्था की। यदि उन्होंने इतना ख्याल न रक्खा होता तो पता नही, मेरा क्या हाल हुआ होता।

सक्षेप मे कह सकता हू कि उन्होने हृदय मा का पाया है, किन्तु बुद्धि विद्रोह की पाई है। हृदय और मस्तिष्क के बीच उनके भारी कशमकश होती रहती है और दोनो अपना-अपना काम करते रहते हैं। कोई किसी से दबता नहीं।

कहावत है कि बडे वृक्ष के नीचे छोटा वृक्ष नहीं पनप सकता। आदर्श बहुत अच्छा लिखती हैं। उनमे अच्छी लेखिका बनने की क्षमता है। किन्तु उनकी लेखन-शक्ति मेरे साथ विकास का पूरा अवसर नहीं पा सकी। उनके अतर मे एक ग्रथि बन गई कि एक घर मे दो लेखक नही हो सकते। परिणाम यह कि वह उस ओर से उदासीन हो गई और उन्होने अपने व्यक्तित्व को कुण्ठित कर डाला।

अपने घरबार के लिए नारी सदा से त्याग करती आई है, लेकिन आज की नारी अपने व्यक्तित्व के मूल्य का त्याग नही करना चाहती। आदर्श के अन्दर, उच्चशिक्षा के बावजूद पुराने सस्कार काम करते हैं।

आदर्श ने मुझे जो सहारा दिया है, उसका मूल्याकन करना मेरे लिए सभव नही है। मैं उनके इस ऋण को लेकर अबतक जिया हू, आगे भी उससे उऋण होने की आकाक्षा नही हैं। और हो भी कैसे पाऊगा। मेरी तो यही कामना है कि मेरे जीवन के अतिम क्षण तक मुझे यह सहारा बराबर मिलता रहे।

और किस-किसने मेरे साथ क्या-क्या किया है, उस सबको गिनाना मेरी सामर्थ्य के बाहर है, पर मैं उन ज्ञात-अज्ञात सभी बधुओ और बहनो का हृदय से आभार मानता हू और जाने-अनजाने हुई अपनी भूलो के लिए करबद्ध क्षमा-याचना करता हू।

जीवन पर एक दृष्टि

पीछे मुड कर देखने का मेरा स्वभाव नही है। मैंने सदा आगे देखा है और जहां तक मेरा बस चलेगा, आगे ही देखता रहूगा।

लेकिन कभी-कभी पीछे देखने की विवशता हो जाती है। आज वही विवशता मेरे सामने है। यहां मैं जो कुछ लिख रहा हू, वह हृदय को साक्षी रखकर लिख रहा हू।

आज के समय के अनुसार बहत्तर वर्ष का जीवन काफी लम्बा माना जाता है और समझा जाता है कि व्यक्ति को जो करना था, कर चुका। पर मैंने तो अपने जीवन मे कुछ भी ऐसा नही किया, जो उल्लेखनीय हो और जिस पर मैं गर्व कर सकू। इसमे कोई सदेह नही कि मेरे कम-क्षेत्र साहित्य और सस्कृति रहे हैं, लेकिन इन क्षेत्रो मे भी ४६ वर्ष व्यतीत करने के बावजूद मैंने गिनाने योग्य क्या किया। जो लिखा, वह मुझे लिखना ही चाहिए था, जो किया, वह मुझे करना ही चाहिए था और जो कहा, वह मुझे कहना ही चाहिए था। वह मेरा कर्तव्य था, और कर्तव्य हर आदमी को करना ही होता है।

यह मैं शिष्टाचार-वश नही कह रहा और न परम्परागत विनय को दरशाने के लिए कह रहा हू। औपचारिकता मे मेरा विश्वास नही है। लेकिन दो बातें मैं स्पष्ट कह देना चाहता हू।

पहली बात तो यह है कि मैंने वही किया, जो मुझे उचित मालूम हुआ, सही मालूम हुआ। दूसरी बात यह कि जो करणीय नही था, वह मैंने कभी नही किया। कह सकता हू, मैंने नीति के रास्ते पर चलने का सतत प्रयत्न किया और अनीति के रास्ते को स्वप्न मे भी अगीकार नही किया।

यह भी कह सकता हू कि मैंने कभी किसी के प्रति दुर्भावना नही रक्खी। इसलिए सच को निर्भीकता-पूर्वक सच कहा और जो गलत था, उसे गलत कहने मे कभी कोई हिचकिचाहट नही की।

आज देश की स्थिति बडी नाजुक हो रही है। सत्ताधारी की सुहाती कहो तो कुछ भी प्राप्त हो सकता है, लेकिन आलोचना करो, भले ही वह सही हो, तो सत्ताधारी सहन नही करता।

इस प्रकार जीवन आज बडा जटिल हो गया है। राजनीति मे निष्पक्ष आलोचक की कोई जगह नही है।

आज राजनीति का बोलबाला है। भाषा, सस्कृति, धर्म गर्जेकि सबमे राजनीति समाविष्ट है। राज-नीति के बिना एक कदम चलना दूभर है।

यही हाल पैसे का है। यदि आपके पास पैसा है तो कोई चिन्ता नही। पैसा नही है तो समाज मे आपकी कोई हस्ती नही है। आपका रास्ता भले ही सच्चाई और ईमानदारी का हो, पर आपके हाथ मे सत्ता और धन नही हैं तो आपका कोई अस्तित्व ही नही है।

मुझे यह स्थिति कभी स्वीकार नही हुई। यही कारण है कि जिन्होने दूसरा मार्ग अपनाया अर्थात जमाने के साथ चले, वे मेरे देखते-देखते कही-के-कहीं पहुच गए। उन्होने पद पाया, धन बटोरा और दुनिया की निगाह मे बुद्धिमान सिद्ध हुए।

सबमे बडी बिडम्बना यह है कि मानवीय मूल्यो को सुरक्षित रखने की जिन बुद्धिजीवियो और गाधी-विचार-क्षेत्र के व्यक्तियो से आशा थी, उनमे से अधिकाश या तो सत्ता और धन के व्यामोह मे फस गए या पस्त होकर बैठ गए।

जो रास्ता मैंने चुना, वह कठिन था, बहुत कठिन था, पर चूकि मैंने वह स्वेच्छा से चुना था, इसलिए मुझे उसका कभी मलाल नही हुआ। अनीति से कमाई करने की बात तो दूर, ईमानदारी से भी पैसा कमाने का रास्ता मैंने जानबूझ कर छोडा। जब मेरे मित्र जगदीशचद्र माथुर आल इडिया रेडियो के डाइरेक्टर जनरल हुए तो उन्होने रेडियो मे आ जाने के लिए मुझसे आग्रह किया, मैंने इन्कार कर दिया। इलाहाबाद के लीडर प्रेस का सचालक बनन का प्रस्ताव आया, मैंने उसे ठुकरा दिया। ऐसे ही और भी प्रस्ताव मुझे मिले, जो आर्थिक दृष्टि से मेरे लिए अत्यन्त लाभदायक थे, पर उनके बारे मे जैसे सोचने का भी मेरे पास अवकाश नही था।

कहने वाले कह सकते हैं कि तुम राजनीति और धन को महत्व नही देते तो उसका कारण यह है कि राजनीति मे जगह पाने के लिए और धन कमाने के लिए जो दम-खम चाहिए, वह तुममे नही है, जो दाव-पेच चाहिए, उन्हे तुम नही जानते। खतरे के पद को सभालने के लिए जो हौसला और सामर्थ्य चाहिए, जोखिम उठाने का साहस चाहिए, उसका तुममे सर्वथा अभाव है। मैं मानता हू, मुझमे अभाव है। ऐसे हौसले और सामथ्य को मैं दूर से ही नमस्कार करता हू। मेरी आस्था चुपचाप, मूक भाव से, काम करने मे रही है।

यहा मुझे एक पुरानी रोचक घटना याद आती है। कुण्डेश्वर मे हम समय-समय पर श्रमदान करते रहते थे, कूडा-ककट हटाना, नालिया साफ करना, मिट्टी खोदकर गड्ढे भरना आदि-आदि काम स्वय कर डालते थे। एक बार हमारी टोली मे एक नए महानुभाव शामिल हुए। उन्होने हमको मेहनत से पसीना-पसीना होते देख-कर विनोद मे कहा, "आप लोग भी अजीब है। मिट्टी की टोकरी ऊपर तक भरकर उठाते हैं। कही काम ऐसे किया जाता है? देखो, काम का तरीका यह है।"

उन्होंने टोकरी में एक फावडा मिट्टी डाली और फिर उसे ऐसे उठाया, मानो वह ऊपर तक भरी हो और ऐसे लेकर चले, जैसे सिर पर जाने कितना बोझ हो। चलने के साथ-साथ कुछ ऐसे स्वर मे आह भी भरते जाते थे, जैसे सिर पर पहाड रक्खा हो।

एक खेप ढोने के बाद बोले, "देखा, काम इस तरह होता है। काम कम करो, शोर ज्यादा मचाओ।"

उन भाई ने विनोद मे जो कहा और किया, आज वही सचमुच मे हो रहा है। शोर मचाने वाले ऊपर पहुच रहे हैं और काम करने वाले नीचे पडे हैं।

साहित्य भी इसका अपवाद नही है। वे दिन लद गए जब आदमी का काम बोलता था। आज शब्द बोलता है।

मैंने अपने कार्य-काल की लगभग अर्द्धशताब्दीको अकारथ नही खोया। प्रत्येक क्षण का पूरा-पूरा उपयोग किया है। कुण्डेश्वर के छह और 'सस्ता साहित्य मण्डल' के बयालीस वर्षों मे मुझसे जो कुछ बन पड है, उसे करने मे मैं कभी पीछे नही रहा। 'मधुकर' के अक, कई ग्रथो का सम्पादन और प्रकाशन तथा अन्य प्रवृत्तियो के सचालन मे जो सेवा मुझसे हो सकी है, दादाजी ने उसका उल्लेख अपने लेखो मे किया है। बयालीस वर्षों मे 'सस्ता साहित्य मण्डल' से जो प्रकाशन हुए हैं, पुस्तको के साथ जो विशालकाय अभिनन्दन अथवा स्मृति-ग्रथ निकले हैं, 'मण्डल' के विकास की जो योजनाए बनी और क्रियान्वित हुई हैं, उनमे थोडा-बहुत हाथ मेरा भी रहा है।

कहावत है, कहने से काम का पुण्य घट जाता है। मुझे यह सब कहना नही चाहिए। पर मैं चाहता हू कि लोग जाने कि एकान्त साधना का भी अपना महत्व और आनद है। कसकर काम करने के बाद जिस सतोष और आनद की अनुभूति होती है, उसे वही जान सकते है, जिन्होंने वह प्राप्त किया है। गौरीशकर की चोटी पर चढने का आनद उन्ही को मिलता है, जो उस पर चढते और वहा पहुचते हैं। नीचे खडे होकर जो उस ऊचाई को देखते हैं, उनका आनद अधूरा रह जाता है।

यह कहना गलत होगा कि वर्तमान युग एकदम अधेर का युग है। इसमे आदमी की कीमत नही। मूक सेवको की ओर भी कभी-कभी निगाह चली जाती है। मुझे भी दो बार 'सोवियतलैण्ड नेहरू' पुरस्कार मिल चुका है। एक बार मेरी पुस्तक 'रूस मे छियालीस दिन' पर, सन् १९६८ मे और दूसरी बार मेरी पुस्तक 'सेतु निर्माता' पर, सन् १९७७ मे। मेरी कुछ अन्य पुस्तकें राज्य तथा केन्द्रीय सरकारो द्वारा पुरस्कृत हुई है। मेरी कहानियो तथा अन्य रचनाओ के भारतीय और विदेशी भाषाओ मे रूपान्तर हुए हैं। 'मिलन', 'जीवन-सुधा', 'मधुकर' और 'जीवन साहित्य' के सबध मे मुझे सैकडो प्रशसात्मक पत्र मिले हैं। विदेशो मे मेरे हिन्दी और उसके साहित्य के प्रचार-प्रसार मे दिए गये यत्किंचित योगदान को लोगो ने उदारतापूर्वक सराहा है।

यह सब नही होता तब भी मैं अपने अगीकृत मार्ग को नही छोडता। आखिर उस मार्ग को मैंने किसी के दबाव मे आकर तो नही चुना था। अत उसे छोडने का प्रश्न ही नही था।

निश्चय मानिये कि अपनी दिशा को न छोडने और चुपचाप चले चलने का मुझे बेहद सतोष है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे', रचना मुझे बहुत पसद है। जो दुनिया के साथ नही चलते, उन्हे अकेला ही चलना पडता है। वस्तुत उनकी सफलता ही अकेले चलने मे है।

एक बात मे मैं अपने को अत्यन्त सौभाग्यशाली मानता हू। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे मुझे अनेक महापुरुष मिले। उनका स्मरण करता हू तो बडी धन्यता अनुभव होती है। राजनीति, साहित्य, सस्कृति, धर्म, अध्यात्म, कला आदि का कोई भी क्षेत्र ऐसा नही है, जिसमे मुझे एक-से-एक बढकर विभूतिया न मिली हो। उनका रास्ता बडे कसाले का था, पर उन्होने उस पर चलने की प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप से मुझे प्रेरणा दी।

असख्य व्यक्तियो का प्रेम मेरा पाथेय बना और मैं मजबूती से उस रास्ते पर चलता गया।

अब जीवन का उत्तरार्द्ध है। लम्बे सफर मे प्राय लोग थक जाते हैं। उनका मन विश्राम करने को होता है। पर मैं तो न थका हू, न विश्राम लेने की मेरी इच्छा है। मेरी तो यही कामना है कि जबतक जीऊ, जो भी इन हाथो से बन सके, सेवा करता रहू।

एक बार गगोत्री की यात्रा मे एक निरक्षर ग्रामीण बहन ने बडी उद्बोधक बात कही थी—"तीर्थ-यात्रा मे दु ख सहा जाता है, कहा नही जाता।" इसमे मैं इतना और जोड देना चाहता हू कि असली मर्द वही है, जो विष पीता है और अमृत देता है।

मैं इनका ऋणी हूं

आदमी के निर्माण मे वैसे बहुतो का हाथ होता है। मैं भी अपने जीवन पर निगाह डालकर देखता हू तो बहुतो के उपकार से अपने को दबा हुआ पाता हू। सबसे अधिक ऋण तो माता-पिता का है, जिन्होने मुझे जन्म दिया। उनके निधन पर मैंने जो लेख लिखे थे, उन्हे यहा दिया जा रहा है।

अन्तिम आकांक्षा

पहली सितबर को अपने जीवन के बहत्तर वष पूरे करके तिहत्तरवे वष म प्रवेश कर गया। पर एक क्षण को भी मुझे यह नही लगता कि मैं अपनी आयु का अधिकाश भाग जी चुका हू। लेखन-काय १९३० के आसपास विद्यार्थी जीवन से ही आरभ किया था और १९३७ मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे कानून की पढाई पूरी करके नियमित रूप से लेखन-क्षेत्र मे आ गया। तब से लेकर अबतक उपन्यास, कहानी, निबध, रेखा-चित्र, रेडियो रूपक आदि जाने क्या-क्या लिखा है। जिसमे से कुछ पुस्तकाकार म प्रकाशित हो गया है, कुछ विभिन्न पत्रो मे छप कर रह गया है। इस बीच देश-विदेश मे घूमा और कई यात्रा-पुस्तकें निकली। कुछ पुस्तको के अनुवाद किए। सैकडो पुस्तको का सपादन और सकलन किया, अनेक साहित्यिक तथा सास्कृतिक सस्थाओ मे सक्रिय भाग लिया, लेकिन मैंने कभी अनुभव नही किया कि इतने लबे अरसे मे इतना काम कर चुका हू कि अब मुझे अवकाश ग्रहण कर लेना चाहिए। मेरी सदा से धारणा रही है और इतने दिनो के अनुभव से वह अब और भी पुष्ट हो गई है कि जबतक आदमी की सास चलती है, उसे रसपूवक काम करते रहना चाहिए। जिस आदमी के अतर का रस सूख जाता है, उसका जीना अकारथ है, वह व्यक्ति मृतक के समान है, भले ही उसकी सास का तार क्यो न जुडा रहे।

मेरी अनुभूतिया मुझे बताती हैं कि दुनिया मे एक भी प्राणी ऐसा नही है, जिसके जीवन मे सुख और

दु ख दोनो का समावेश न हो। जिस प्रकार किसी भी सुन्दर चित्र के लिए छाया और प्रकाश, दोनों का मेल आवश्यक है, उसी प्रकार जीवन के सौन्दर्य के लिए सुख और दु'ख दोनो अनिवार्य हैं।

प्रश्न है कि सुख-दु ख मानव-जीवन मे क्यो आते हैं ? उनका सृष्टा कौन है ? मैं मानता हू कि दोनो का जनक मनुष्य स्वय है। हम सब अपने मन मे कुछ आशाएं और आकांक्षाए रखते हैं। उनकी पूर्ति मे सुख का अनुभव करते हैं, अपूर्ति से दु ख की अनुभूति होती है। आप आशा करते हैं कि अमुक व्यक्ति से आपको एक बडी रकम मिले। मिल गई तो आपका हृदय आनद से भर गय।, नही मिली तो आप पर दु ख का पहाड टूट पडा। मेरी प्रतीति है कि दुनिया का सारा खेल ही आदमी की आशा, आकाक्षाओ के सहारे चलता है।

दूसरी बात यह है कि आदमी के आनद अथवा रस की सबसे बडी शत्रु उसकी बुद्धि है। जिसकी बुद्धि हृदय-पक्ष पर हावी हो जाती है, वह न कभी स्वय सुखी होता है, न दूसरों को सुखी होने देता है। मैं बुद्धि की महिमा का कायल हू। उसके चमत्कार किसी से छिपे नही है। लेकिन जब और जहां बुद्धि ने हृदय को दबाया है, वहा इसान का सुख मिट्टी हो गया है।

यह कहना तो सही नही होगा कि मैंने अपने को आकाक्षाओ से शून्य बना लिया है, लेकिन इतना मैं कह सकता हू कि मैंने वैयक्तिक महत्वाकाक्षाओ से अपने को बचाने का बराबर प्रयत्न किया है। महत्वाकाक्षा यदि रखी है तो बस उतनी कि मेरे हाथो दूसरो का जितना हित हो, सके हो। मैं मानता हू कि ऐसी आकाक्षा भी बहुत अच्छी नही है, क्योकि दूसरो के हित-साधन की आकाक्षा मे जाने-अनजाने मनुष्य अहकार का शिकार हो जाता है। सूर्य गर्मी और प्रकाश देता है तो कभी सोचता नही कि किसी का उपकार कर रहा है। वह उसकी सहज क्रिया है, जो सहज भाव से सबका कल्याण करती है और साथ ही उसे कर्त्तापन के अभिमान से बचाती है। मनुष्य के लिए भी यही स्थिति सर्वथा अनुकरणीय है।

जब से देश स्वतत्र हुआ है, हमारे मूल्य बडी तेजी से बदले हैं। वैसे तो एक युग कभी टिक कर नही रहता। बहुत कुछ है, जो बदल जाता है, लेकिन शाश्वत मूल्यो पर आच आती है तो बात चिंतनीय हो उठती है। आजादी के बाद से देश का परिवेश ही नही बदला, देश की आत्मा मे भी परिवर्तन हुआ है। समाज, साहित्य, सस्कृति, सबमे एक ऐसी भावना का प्रवेश हुआ है, जिसने मानवीय मूल्यो को चुनौती दी है। यातायात के साधनो मे वृद्धि हो जाने के कारण बाहर की हवा खुलकर यहा आ रही है। उसकी तडक-भडक ने हमारे अभावो को उभार दिया है और हम आज पदार्थ के उपासक बन गए हैं। सार हाथ से निकल रहा है, छाया हम लुभा रही है।

मूल्यो के इस परिवर्तन ने, कहिए, सकट ने, आज हमारे भविष्य के सामने एक बडा प्रश्न-चिह्न लगा दिया। राजनीति के मध्य मे सत्ता प्रतिष्ठित हो गई है। सामाजिक जीवन मे अर्थ, वैयक्तिक जीवन मे महत्वा-कांक्षा और आज हम चारो ओर से इन्ही व्याधियो से घिरे है। सत्ता बुरी नही होती, अर्थ के बिना किसी का जीवन नही चलता और महत्वाकाक्षा जीवन मे बढ़ने का हौसला देती है, लेकिन जब इनकी उपासना सकुचित स्वार्थ के लिए होती है तो इसका परिणाम विघातक होता है।

इस मूल्य-विपर्यय ने जो विषमता उत्पन्न की है, उसका सबध प्रत्येक व्यक्ति के साथ आता है। आखिर मनुष्य समाज की एक इकाई ही तो है और समाज मे जो होता है, उससे वह अछूता कैसे रह सकता है ? यही कारण है कि आज जो हो रहा है, उसका प्रभाव सब पर पड रहा है।

मेरी धारणा है कि हमारे हाथ मे कितनी ही सत्ता क्यो न आ जाए, कितने ही ऊचे पद पर हम क्यो न आसीन हो जाए, धन-धान्य से हमारा घर कितना ही क्यो न भर जाए, लेकिन यदि मानवीय मूल्यो पर हमारी आस्था नही है और मानव हित को हम उचित महत्व नही देते तो हमारी ये उपलब्धियां व्यर्थ हैं, अभिशाप हैं।

आज मनुष्य का इसान नीद मे है। उसे जगाने की आवश्यकता है। हम किसी भी क्षेत्र मे काम करते हैं, हमे अब आगे इसी दिशा मे प्रयत्न करना है। एक बार इसान जाग जायगा तो आज की बहुत-सी व्याधियां अपने आप समाप्त हो जायेगी। सत्तात्मक राजनीति, पद-लोलुपता, स्वार्थ-परायणता, अर्थ-लिप्सा और स्वार्थ की लोक-व्यापी दूषित मनोवृत्ति मानवीय चेतना के उदय होते ही स्वस्थ दिशा मे मुड जायगी।

अपने वैयक्तिक तथा साहित्यिक जीवन मे मैंने सदा इस बात का प्रयत्न किया है कि मानव मानव के बीच की सकीर्ण परिधियां टूटें और हर व्यक्ति अनुभव करे कि दूसरे के भी हृदय है, जो ठीक उसी प्रकार स्पदित होता है, जैसे उसका अपना। छोटा और बडा, धनी और निर्धन, ऊच और नीच, ये सारे भेद मनुष्य के बनाए हुए हैं और इन्हे बनाकर मनुष्य स्वय उन बेडियो मे जकड गया है। मूलत सारे इसान एक से हैं। सबका जन्म एक समान होता है और मानवता मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी भी भेद को स्वीकार नही करती।

मेरे लिए यह बडे सतोष की बात है कि मैं अपने चारो ओर प्रेम ही प्रेम पाता हू। प्रेम से बढ़कर आखिर और है भी क्या ? मानव और प्रकृति दोनो मेरे लिए प्रेरणा के अक्षय स्रोत हैं। इसी प्रेरणा के वशीभूत होकर मैंने सारे देश की कई बार परिक्रमा की है और विश्व के लगभग बयालीस देशो मे घूमा हू। हिमालय मुझे बार-बार बुलाता है, सागर मुझे बार-बार आमत्रित करता है। जबतक जीवित हू, मानव और प्रकृति के साथ मेरा सान्निध्य निरतर बना रहे, उनका आशीर्वाद मुझे मिलता रहे, यही मेरी आतरिक कामना है।

उपसंहार

अपने सबध मे मैंने यह सब लिख तो दिया है, पर नही जानता, इसका उपयोग क्या होगा। मेरी तरह असख्य भाई-बहन है, जो इस प्रकार के अनुभवो से गुजरते है। इस प्रकार का जीवन जीते है। फिर भी मेरी मान्यता है कि छोटे-से-छोटे व्यक्ति के जीवन मे कुछ-न-कुछ ऐसा होता है, जो दूसरो को प्रेरणा दे सकता है। दत्तात्रेय ने अपने २४ गुरुओ के नाम गिनाये हैं, जिनसे उन्होने सीख ली थी। उनमे नाग, मत्स्य और कपोत तक थे। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति मे सीखने की जिज्ञासा है तो सामान्य व्यक्ति से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। छोटो मे भी गुण होते हैं और कभी-कभी तो वे गुण बडो के गुणो से भी बढकर होते हैं, किन्तु देखने मे आता है कि बडे के गुण जहा स्थूल आखो से दिखाई दे जाते हैं, वहा सामान्य व्यक्तियो के गुणो को देखने के लिए सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता होती है।

पाठको से मेरा निवेदन है कि वे इन पृष्ठो को पढने की कृपा करें और यदि इनमे कही कुछ सार हो तो उसे ग्रहण करलें और असार को छोड दे।

साथ ही एक प्रार्थना यह भी है कि यदि उन्हे कही ऐसा दिखाई दे कि मैंने अपने विषय मे आवश्यकता से कुछ अधिक लिख दिया है तो क्षमा करें।

ससार मे प्रेम से बढकर और कुछ नही है। मैंने अबतक उसी की कामना की है और जीवन की अतिम घड़ी तक उसी की कामना करता रहूगा।

रचना-संसार

यशपालजी ने समाज तथा देश की जो सेवा की है, उसका मुख्य माध्यम उनकी लेखनी रही है। उन्होंने अनेक विधाओं के साहित्य की रचना की है। कहानियों, कविताओं, संस्मरणों, बोध-कथाओं, निबंधों, यात्रा-वृत्तान्तों आदि-आदि के द्वारा उन्होंने हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया है। उनके विपुल साहित्य में से चुनाव करके कुछ रचनाएं इस खंड में दी गई हैं। उनसे न केवल यशपालजी का बहुआयामी जीवन सामने आता है, अपितु यह भी पता चलता है कि वह विचारों के ही नहीं, भाषा-शैली के भी धनी हैं।

कहानियाँ

व्योमबाला

दिल्ली के पालम हवाई अड्डे से जब चेतन एयर इंडिया के जम्बोजेट से सपत्नीक न्यूयार्क जा रहा था तो उसकी हालत बडी अजीब-सी हो रही थी। यह उसकी पहली विदेश-यात्रा नही थी, पहले भी वह कई बार बाहर हो आया। था, लेकिन आज की जैसी हैरानी उसे शायद ही कभी हुई हो। घर से चलते समय उसने अहतियातन हवाई अड्डे को फोन किया था तो जवाब मिला था कि जहाज सबेरे ४ बजे छूटेगा और उसे दो बजे तक वहा पहुच जाना चाहिए। इसी बात को ध्यान मे रखकर वे लोग पालम पहुच गये, पर वहा पहुचते ही उन्हें खबर मिली कि जहाज कोई दो घटे देर से जायेगा। इस समाचार से खीज होना स्वभाविक था। अगर पहले से मालूम हो जाता तो वे लोग थोडा आराम कर लेते और उनकी पूरी रात आखो मे न जाती। सयोग से उस दिन गर्मी भी गजब की थी। हवाई अड्डे के भीतर ठडक की व्यवस्था होते हुए भी चेतन को पसीना आ रहा था और उमस के मारे दम घुट रहा था। पर अब हो क्या सकता था! मन का गुबार निकालने के लिए उसने कठोर मुद्रा मे पत्नी से कहा, "देखो, यह हाल है अपने देश का!"

अपनी परेशानी को दबाते हुए पत्नी ने उत्तर दिया, "यह कोई नई बात थोडे ही है। फिर जो चीज अपने बस मे नही है, उसे लेकर खीजने से फायदा क्या!"

पत्नी ने बात सहज भाव से कही थी, लेकिन उसने आग मे घी का काम किया। उबलकर चेतन ने कहा, "इस देश का बेडा तुम-जैसो ने ही गर्क किया है।"

पत्नी आसानी से हार मानने वाली नहीं थी, पर पति की दिमागी हालत देखकर खामोश हो गई। चेतन ने जेब से रूमाल निकालकर माथे का पसीना पोंछा और जैसे अपने को ही सबोधित कर रहा हो, बडबडाकार बोला, "एक वे देश हैं कि दस मिनट की भी देर होती है तो मुसाफिरो को फोन पर इत्तिला कर देते हैं और एक यह हमारा देश है कि लोगो का घटों वक्त बरबाद हो जाय, किसी को चिन्ता नही! गजब है!"

पत्नी कहने को हुई कि बाहर की दुहाई देने से लाभ क्या, जबकि हम जानते है कि उस हालत तक पहुचने मे हमें कई जन्म धारण करने पडेगे, लेकिन यह सोचकर उसने मुह नही खोला कि अगर उसने एक शब्द भी कहा तो पति का दिमाग आसमान मे पहुच जाएगा।

चेतन का मन अब भी बेकाबू होकर उछल-कूद कर रहा था। अचानक उसकी निगाह बराबर की कुर्सी पर गई। देखता क्या है, उस पर एक विदेशी तरुणी ऐसे सो रही है, जैसे उसे कही जाना ही न हो। चेतन के भीतर का तूफान और तेज हो गया। आदमी का जी अशान्त होता है तो दूसरे की शान्ति उसे और बेचैन कर देती है। चेतन को लगा कि वह उसे झकझोरकर जगा दे और कह दे कि देवीजी, यह मुसाफिरखाना है, सोने का कमरा नही है। पर उसने अपने को जब्त कर लिया। वह एक क्षण को भी नही सो सका।

आखिर जब विमान मे बैठने की घोषणा हुई तो दिन का उजाला फूट आया था। एक लम्बी सास लेकर चेतन ने हाथ का सामान उठाया और दूसरे मुसाफिरो के साथ बाहर खडी बस मे जा बैठा।

विमान मे उन्हे खिडकी के पास की सीटे मिली थी। अपने सामान को इधर-उधर जमाकर वह कुर्सी पर ऐसे पड रहा, मानो उसका शरीर बिल्कुल बेजान हो गया हो। तभी व्योमबाला ने हाथ मे ट्रे लेकर यात्रियो को मीठी गोलिया, सोफ आदि देना शुरू कर दिया। चेतन ने यन्त्रवत एक गोली उठा ली और उसका कागज हटाकर मुह मे डाल ली।

विमान का इजन घडघडाने लगा था। थोडी देर मे विमान रेगने लगा। रेंगते-रेंगते रुका, अनतर तेज दौडा और फिर धरती को छोड अम्बर की ओर उड चला। ऊपर जाकर जब उसकी उडान समतल हो गई और कमर पर बधी कुर्सी की पेटिया खुलवा दी गई तो चेतन को कुछ चैन पडा। उसे बडे जोर की प्यास लग रही थी। उसका गला चटक रहा था। उसने घटी बजाकर व्योमबाला को बुलाया और एक गिलास पानी लाने को कहा। व्योमबाला उसकी बात सुनकर चली गई, पर पानी लेकर तत्काल लौटी नही। पाच मिनट निकले फिर भी वह नही आई तो चेतन ने अधीर होकर दोबारा घटी बजाई। व्योमबाला आई, पर उसके हाथ मे पानी का गिलास नही था। चेतन ने झुझलाकर कहा, "मैंने एक गिलास पानी मागा था।" तपाक से वह बोली, "जी हा, पर जहाज मे आप अकेले मुसाफिर नही है, और भी लोग हैं और मुझे सबको देखना पडता है।"

घटना बडी अप्रत्याशित थी। सामान्यतया विमानो पर व्योमबालाए बहुत ही मधुर और शिष्ट होती हैं। उनके चेहरे पर हर घडी मुस्कराहट खेलती रहती है। उनका काम ही है कि वे हसते-हसते मुसाफिरो की सेवा करें। लेकिन इस बाला का तौर-तरीका ही कुछ और था। उसके चेहरे के तनाव और वाणी की तलखी को देखकर चेतन को गुस्सा तो बहुत आया, लेकिन दूसरे यात्रियों का लिहाज करके गुस्से को पी गया। व्यग्य मे बस इतना कहा, "ठीक है।"

व्योमबाला ताव मे तेजी दिखा तो गई थी, पर शायद जाते-जाते उसे लगा कि ऐसा नही होना चाहिए था। वह तुरत पानी लेकर लौटी। चेतन कुर्सी की पीठ पर सिर टिकाये आखे बन्द किये बैठा था। व्योमबाला थोडी देर खडी रही, फिर जरा ऊची आवाज मे बोली, "पानी लीजिये।"

चेतन ने आखे खोली, पर एकबारगी गिलास ले लेने का जी नही हुआ। सोचा, कह दे, "ले जाओ अपना पानी, मुझे नही चाहिए।" लेकिन मुह से ये शब्द निकले कि गिलास उसके हाथ मे था।

कुवैत तक विमान को कही रुकना नही था। चार या पाच घटे की उडान थी। चेतन अब कुछ सो लेना चाहता था। लेकिन कुछ ही देर बाद नाश्ता आ गया। वही व्योमबाला लाई थी। उम्र उसकी कोई बीसेक साल की रही होगी। देह पर रेशम की साडी थी। छरहरा बदन था। देखने मे अच्छी खासी थी, लेकिन उसके चेहरे पर कुछ ही देर पहले चेतन ने जो तनाव देखा था, वह अब और गहरा हो उठा था।

एक उडती निगाह उस पर डालकर चेतन नाश्ता करने मे लग गया, पर व्योमबाला के व्यवहार और रातभर की जगार के कारण उससे कुछ खाया नही गया। थोडा-बहुत मुह मे डालकर और चाय पीकर वह फिर सोने का प्रयत्न करने लगा। उसे नींद आ गई, लेकिन सपने मे वही व्योमबाला उसके इर्दगिर्द चक्कर लगाती रही। उसने जितना उसे दूर हटाने की कोशिश की, उतनी ही वह उस पर छाई रही।

कुवैत आने की घोषणा हुई तो उसी व्योमबाला ने आकर उसे जगाया और कुर्सी की पेटी बांधने को कहा। इस आशा से कि कही उसके चेहरे पर कुछ बदलाव आ गया हो, उसने उसकी ओर देखा। पर वह चेहरा तो अब भी पाषाण जैसा बना था।

कुवैत पर जहाज एक घटा रुका, पर सूचना दी गई कि सुरक्षा की दृष्टि से आगे जाने वाला कोई भी यात्री न उतरे। सब अपनी-अपनी कुर्सियो पर बैठे रहे।

चेतन को बुरा लगा। वह चाहता था कि उसे ताजी हवा मिले, थोडा घूमना मिले तो तबीयत कुछ हल्की हो जाय, पर वह भी सभव न हो सका। मन मारकर वह अपनी कुर्सी पर बैठा रहा और विचारो की उधेड-बुन मे लगा रहा। इस बीच उसकी पत्नी ने मजे की नीद ले ली और कुवैत पर जहाज से न उतरने की सूचना पाकर फिर नीद मे खो गई। चेतन आखें मूदे बैठा रहा।

एक घटे बाद जब विमान चला तो चेतन ने आखें खोली। उसे यह देखकर बडी राहत मिली कि जिस व्योमबाला ने उसकी नीद हराम कर दी थी, वह बदल गई है और उसकी जगह कुवैत की एक नई व्योमबाला आ गई है. वह मुस्कराती हुई ट्रे मे शरबत का गिलास लेकर आई और बडे शालीन ढग से उसे चेतन के हाथ मे थमाकर आगे बढ़ गई। उसके चेहरे पर बहुत ही मोहक सौम्यता थी और उसकी आखो से प्यार छलक रहा था। चेतन का सारा मानसिक तनाव दूर हो गया। उसने देखा, व्योमबालाए ही नही बदली हैं, बाहर के सारे दृश्य भी बदल गए हैं। तेल की भीमकाय टकिया बता रही थी कि वह तेल का देश है। पर भूमि शस्य-श्यामला नहीं है। सूखे पर्वत और सूखे मैदान इसके साक्षी थे। तभी विमान बादलो को चीरकर ऊपर उठा और पैंतीस हजार फुट की ऊचाई पर पहुच गया। अब नीचे सफेद-काले बादलो के फाये बिछे थे और दृश्य बडा ही रोमांचकारी हो गया था। बादलो मे भांति-भांति की आकृतिया दिखाई दे रही थी। उन आकृतियो में क्षणभर को उसे उस व्योमबाला की आकृति की भी झलक दिखाई पडी, जिसे वह पीछे छोड़ आया था।

विमान के अधिकाश यात्री ऊघ रहे थे। कुवैत के समय के अनुसार अभी वहा सवेरा था और व्योम-बालाए नाश्ते की तैयारी कर रही थी। थोडी देर मे यात्रियो को नाश्ता दिया गया। जब वह भोली-भाली व्योमबाला चेतन से पूछने आई कि वह शाकाहारी नाश्ता लेगा, या दूसरा, तो चेतन ने शाकाहारी नाश्ते की माग करते हुए उससे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

बडी आत्मीयता के साथ मुस्कराकर उसने कहा, "मर्सी।"

"वाह, यह नाम तो बडा अच्छा है!" चेतन के मुह से अनायास निकल गया।

मर्सी का चेहरा आरक्त हो गया, उसकी मुस्कराहट और मधुर बन गई, पर वह अपनी लज्जा को समेटकर बडी फुर्ती से वहा से हट गई। निमिषभर मे उसने शाकाहारी नाश्ते की ट्रे चेतन के सामने लाकर रख दी।

न श्ता निबटने के बाद जहाज मे फिर निस्तब्धता छा गई। समय आने पर दोपहर का भोजन कराया गया, फिर खिडकियो पर पर्दे डाल दिये गए, जिससे प्रकाश यात्रियो की नीद मे बाधक न बने। चेतन कुछ देर विचारो के सागर मे गोते लगाता रहा, फिर अनायास उसका हाथ घटी के बटन पर चला गया। मर्सी सामने आ खडी हुई। सकपकाकर उसने कहा, "कोई अखबार लाकर दे सकोगी ?"

सपाटे से मर्सी गई और दो-तीन अखबार ले आई। बोली, "पीछे रैक मे और कई अखबार रक्खे हैं। आपको जो चाहिए, ले लीजिए।"

अखबारो पर निगाह डालकर चेतन अलसभाव से उठा और रैक के पास जाकर अखबारो को देखने लगा। उसमे कुछ अखबार फ्रेंच मे थे, चेतन फ्रेंच नही जानता था। अत मे उसने अंग्रेजी की दो-तीन पत्रिकाए चुनी और उन्हे लेकर चलने को हुआ तो देखा, सबसे पीछे की सीट पर मर्सी अकेली बैठी है। उसके साथ की सीट खाली थी। चेतन ने उधर जाकर मर्सी से कहा, "क्या मैं यहा बैठ सकता हू ?"

बड़े मुक्त भाव से मर्सी ने उत्तर दिया, "जरूर, आइए।"

चेतन बैठ गया। फिर उसने कहा, "मर्सी, बुरा न मानो तो एक बात पूछू ?"

बडी सहजता से मर्सी बोली, "एक नही, दो।"

चेतन ने देखा, मर्सी जीवन की दहलीज पर खडी होकर आगे कदम बढ़ाने को है। शरीर स्वस्थ है, चेहरा मासूम है, होठो पर मुस्कराहट है। वह पूछना चाहता था कि क्या सचमुच तुम इतनी सुखी हो, जितनी दिखाई देती हो, पर यह प्रश्न एक साथ मुह से बाहर नही निकल पाया। उसने पूछा, "मर्सी, आसमान मे उडते-उडते तुम्हे कैसा लगता है ?"

मर्सी ने प्रश्न सुना, पर तत्काल उत्तर नही दिया। थोडी देर चुप रही। फिर बोली, "कैसा लगता है ? अच्छा लगता है।"

इस उत्तर से चेतन का समाधान नही हुआ। वह जानता था कि नौकरी है तो अच्छा लगे या न लगे, अच्छा लगाना होगा। पर वह भीतरी सच्चाई जानना और बात को बढ़ाना चाहता था।

मर्सी उसके अतर के भावो को ताडकर हस पडी। बोली, "मैं समझ गई कि आप क्या जानना चाहते हैं। आपके ध्यान मे आसमान मे उडते पछी है। कितने मुक्त हैं वे ! कितने स्वच्छद ! कितने प्रसन्न ! आप यही जानना चाहते हैं कि क्या मैं व्योमविहारिनी इन पछियो की तरह बधनो से मुक्त और स्वच्छद हू ?"

चेतन ने उसकी बात का कोई जवाब नही दिया। वह सचमुच वही जानना चाहता था, जो वह कह रही थी, पर अपने ही जाल मे वह फसना नही चाहता था।

उसे चुप देखकर मर्सी बोली, "सुनिये, कहावत है, जो दमकता है, वह सब सोना नही होता। कहा अनत आकाश मे विचरण करने वाले पछी और कहा हम ! वे मुक्त हैं, हम बदी हैं। न हमारे पास पख हैं, न हममे उडने की ताकत है। हम तो फडफडाते है। हमारी मुस्कराहट बहुत धोखा देने वाली है।"

कहते-कहते मर्सी रुआसी हो आई। चेतन को लगा कि यह रो पडेगी। उसे सात्वना देते हुए चेतन ने कहा, "मर्सी, आदमी के पास बहुत बडी दौलत है, उसका मन। वह कभी बदी नही होता। जहा चाहे, उडकर दौड जाता है। जिस दूरी को पार करने मे पछी को बहुत समय लगता है, वहा मन पलभर में पहुच जाता है।

"आप ठीक कहते है।" वह कुछ विह्वल होकर बोली, "मैं मन की उडान को खूब जानती हू। मेरा मन भी तो कम नही उडता। कभी-कभी तुकबदी भी करती हू। सच मानिए, विचारो मे डूबना मुझे बडा अच्छा लगता है, लेकिन डूब नही पाती।"

चेतन ने उत्सुक होकर पूछा, "क्यो ?"

बिना हिचकिचाहट के मर्सी ने कहा, "इसलिए कि जो विचारो मे डूबता है, वह बाहरी दुनिया के लिए मर जाता है। मैं मर नही सकती। मुझे दुनिया मे रहना पडता है।"

कहते-कहते उसका मन बेकाबू होने लगा। बोली, "मुझे दो जिन्दगिया जीनी पडती हैं। हसते हुए कभी-कभी भीतर से रुलाई आती है, पर मैं इतनी मजबूर हू कि रो भी तो नही सकती।"

चेतन उसकी बातों से इतना अभिभूत हो गया कि वह भूल गया कि वह जहाज मे बैठा है और व्योमबाला से बातें कर रहा है।

मर्सी अब एकदम बदल गई थी। वह विमान में उडने वाली अबोध षोडशी व्योमबाला नही रही थी, जीवन की गहराइयो में से ज्ञान की मणिया खोजने वाली प्रौढ़ा बन गई थी।

मर्सी का मर्म जैसे किसी ने छू दिया था। उसका बाध टूट गया था। उसी स्वर में वह बोली, "मेरे चेहरे को देखकर आप सोचते होगे कि मैं बहुत सुखी हू, पर क्या आप मान सकेंगे कि मेरे जीवन का रस धीरे-धीरे सूखता जा रहा है ? लम्बी उडान के बाद लौटती हू तो लगता है, बदन टूट गया है। इतनी मुस्कराहट देनी पडती है कि भीतर से खाली हो जाती हू। फिर कुछ भी करने को जी नही करता। बार-बार एक ही बात मन मे उठती है कि मैं वह नहा हू, जो हू। एक दिन वह आएगा जब असली मर्सी मर जाएगी और जो बचेगी, वह नकली मर्सी होगी।"

विचारो के उद्दाम प्रवाह को रोकते हुए चेतन ने पूछा, "घर मे कौन-कौन हैं ?"

मर्सी की आखें छलछला आईं। रुधे कठ से बोली, "मेरी मा बचपन मे ही मुझ अकेली सतान को छोडकर चल बसी थी। घर मे पिता हैं। उन्हें शराब की लत है। पैंशन मे जो रुपया पाते हैं, वह सब दारू मे उडा देते हैं। मैं न कमाऊ तो पता नही, घर का क्या होगा !"

उसके होठ कापने लगे। उसने अपने पर्स से रूमाल निकालकर आखें पोछी, नाक साफ की।

किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर चेतन ने कहा, "मर्सी !"

तभी जैसे भीतर से किसी ने मर्सी को जोर से झकझोर दिया, "ओ पगली, तू यह क्या कह रही है ? आपे से बाहर हो रही है। जिसके सामने अपना दुखडा रो रही है, यह एक अजनबी मुसाफिर हैं। मजिल आएगी, वह चला चाएगा। अरी मूर्ख, आदमी का दु ख अपना होता है। उसके बोझ को उसे स्वय ही उठाना पडता है।"

मर्सी ने सिर को झटका। वह जैसे स्वप्न से जाग उठी। सभलकर बोली, "विचारो का एक झोका आ गया था। पता नही, जाने क्या-क्या कह गई ! आप उस सबको भूल जाइए। थोड़ी देर मे लदन आ जाएगा। वही मैं उतर जाऊगी। अच्छा, ईश्वर ने मिलाया तो फिर मिलेंगे।

इतना कहकर मर्सी बडी फुर्ती से उठी, जैसे कुछ हुआ ही न हो और लम्बे-लम्बे डग रखती हुई चली गई। उसके चेहरे पर फिर खोई मुस्कराहट खेलने लगी थी।

चेतन बेमन उठा और अपनी कुर्सी पर आ बैठा। उसकी पत्नी अब भी बे-खबर सो रही थी। चेतन का ध्यान उस व्योमबाला की ओर गया, जो कुवैत पर उतर गई थी। उसके प्रति अब उसके मन मे कसके नही, करुणा थी।

तभी सामने की पट्टी पर कुर्सी की पेटी बाधने की सूचना उभरी और घोषणा हुई, हमारा विमान अब कुछ ही देर मे लदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर उतरने वाला है। चेतन ने देखा, मर्सी अपनी कुर्सी पर जा बैठी है और उस मुखौटे को उतारने की तैयारिया कर रही है, जो उसने जहाज मे घुसते समय पहन लिया था।

जीवन-सागर पर तैरती तरुणी

यूरोप के अनेक देशो की यात्रा करने के उपरात फिनलैण्ड की राजधानी हैलसिंकी पहुचा तो मुझे काफी थकान अनुभव हो रही थी। घमते-घूमते चार महीने हो चुके थे। यह ठीक था कि इस दरमियान मैंने छोटे-बड़े कई देश देखे थे, लेकिन सफर फिर भी सफर होता है और सुविधाए चाहे जितनी क्यो न मिलें, जाने-अनजाने मन पर जोर तो पडता ही है। फिर हैलसिंकी मेरा अतिम पडाव नही था। स्वदेश लौटने से पहले लेनिनग्राद, मास्को, ताशकद और काबुल, ये चार पडाव और थे। मेरा यह लम्बा प्रवास मास्को से आरभ हुआ था और वहा मेरा बहुत-सा सामान पडा हुआ था।

हवाई अड्डे पर उतरा तो शाम हो चुकी थी। जाडे के दिन थे। कडाके की सर्दी पड रही थी। हवाई अड्डे की गाडी से शहर पहुचते-पहुचते चारो ओर गहन अधकार छा गया। लोग घरो के भीतर चले गए। सडकें सुनसान हो गयी। सडक की बत्तिया तिमिर को चीरने और निस्तब्धता को भग करने का असफल प्रयास कर रही थी।

हवाई अड्डे के शहर के दफ्तर मे जाकर मैंने सामान एक ओर रखा और टूरिस्ट विभाग मे बैठी तरुणी से तीन दिन ठहरने की व्यवस्था करने को कहा। साथ ही यह भी जता दिया कि व्यवस्था किसी महगे होटल मे न करे।, क्योकि मेरे पास पैसा बहुत सीमित है। मेरी बात सुनकर उसने कही फोन मिलाया, बात की, फिर मुझसे कहा, "लीजिए, अमुक होटल मे इतजाम हो गया। तीन रात के आपको इतने पैसे देने होगे।

फिर कुछ रुककर बोली, "आप वहा जायेगे कैसे ?"

मैंने कहा, "इसकी तुम चिंता मत करो। मैं बहुत से देशो मे चक्कर लगा आया हू। पता दे दो, पहुच जाऊगा।

उसने गभीर होकर पूछा, " यहा की भाषा जानते हैं ?"

"नही !" मैंने कुछ द्विविधा के साथ उत्तर दिया।

"पहले कभी यहा आये है ?"

"नही।"

उस तरुणी ने मुह बनाया। बोली, "यहा की भाषा जानते नहीं, पहली बार आये हैं, बाहर चारो तरफ अधेरा-ही-अधेरा है। क्या रात-भर भटकने का इरादा है ?"

मैं कुछ कहू, इससे पहले ही उसने एक ओर पडे सोफे की ओर इशारा करके कहा, "वहा बैठ जाइए। आधे घटे मे मेरी ड्यूटी खत्म हो जायेगी। मैं आप को होटल पहुचाती हुई चली जाऊगी।"

उसके इस प्रस्ताव पर मेरा मन एकबारगी काप उठा। नया देश है, रात का समय है। किसी का क्या भरोसा ! यह आशका बिजली की भाति कौधी, पर उस तरुणी के मुह से निकले हुए शब्द इतने सहज और उसका चेहरा इतना सौम्य था कि मेरी आशका एक क्षण मे निर्मूल हो गई। मैं सोफे पर जाकर बैठ गया और सामने मेज पर पडे पत्रो मे से एक को उठाकर पढने लगा।

ठीक आधा घटे बाद वह आयी और मेरा एक सूटकेस हाथ मे लकर बडे मुक्त भाव से बोली, "नमस्कार। मेरा नाम मेरिलीन है। चलो, चले।"

उठकर सूटकेस उसके हाथ स लेना चाहा, लेकिन उसने नही लेने दिया। बोली, "और जो सामान है, उसे आप उठा लें। होटल बहुत दूर नही है, पर उतना पास भी नही है।"

रास्ते में उसने सवालों की झडी लगा दी—"किस देश से आए हैं? वहां के लोग कैसे हैं? रीति-रिवाज क्या हैं? स्त्रियां कैसे रहती हैं? आदि-आदि। मैं एक-एक सवाल का सक्षेप मे जवाब देता गया। अत मे उसने पूछा, "खाओगे क्या?"

मैंने कहा, "मैं पूर्ण शाकाहारी हू। अडा और मछली भी नही खाता। डबल रोटी, मक्खन मिल जायेगा तो उससे काम चल जाएगा"

मेरी इस बात पर वह हस पडी। हसी रुकने पर वह बोली, "आप भी खब हैं! जनाब, ये जाड़े के दिन हैं। पूरा खाना नही खाओगे तो रात को नीद नही आयेगी। और सुनो, होटल मे खाना बडा महगा मिलता है। उसके पास ही एक रेस्तरा है। वहा खाना सस्ता मिल जायेगा।"

होटल मे पहुच कर उसने मेरा सामान एक कमरे में रखवा कर कहा, "चलो आप के खाने का बदोबस्त और कर दू। फिर मैं चली जाऊगी।"

मेरे लिए यह सब सुखद नही था। मैं इतना थका हुआ था कि एकदम बिस्तर पर पड जाना चाहता था। मैंने कहा, "तुमने जो कुछ किया, उसके लिए मैं शुक्रगुजार हू। पर अब तुम जाओ। मैं सो जाना चाहता हू।

पर वह कहां मानने वाली थी! मेरा हाथ पकड कर बोली, "चलो अब देर मत करो। रेस्तरां बद हो गया तो और मुसीबत हो जायेगी।"

होटल से बीसेक कदम चल कर रेस्तरा पहुचे तो वे लोग उसे बद कर रहे थे। उसने झट-पट ऑफिस मे जाकर फोन किया और आकर मुझसे बोली, "मुझे डर था कि रेस्तरा बद हो जाएगा। वही हुआ। यहा खाना-पीना जल्दी खत्म हो जाता है और लोग, खास कर जाडे के दिनो म, घर मे रहना पसद करते है। लेकिन खैर कोई बात नही है। मैंने अपनी एक सहेली को फोन कर दिया है। हम लोग ट्राम से उसके घर चलेंगे। वहा पहुचेंगे, तब तक वह खाना तैयार कर लेगी।"

मैं अपने अदर बडी बेचैनी अनुभव कर रहा था। मैंने कहा, मुझे माफ करो। मैं नही जाऊगा।"

बडे अधिकार के स्वर मे वह बोली, "जाओगे कैसे नहीं? मेरी सहेली राह देखेगी।"

यह क्या हो रहा था! मेरी समझ मे नहीं आ रहा था। वह नितात अजनबी थी। परदेश मे आदमी को इतना मुलाहिजा नही करना चाहिए। जरा सी कोई बात हो जाये तो लेने के देने पड सकते हैं। पर मैं क्या करू? उससे पीछा छुडाने का अवसर ही कहा था? वह तेज कदमो से आगे बढी और मैं अनचाहे उसके साथ चल दिया।

ट्राम से सहेली के यहा पहुचे तो दस बज चुके थे। घटी की आवाज सुनकर जिस महिला ने द्वार खोला वह भी मेरिलीन की हमउम्र थी। ड्राइग रूम मे एक तेरह-चौदह बर्ष की लडकी बैठी थी। हम लोगो के बैठते ही मेरिलीन ने परिचय कराया, "यह है मेरी सहेली एलिजाबेथ और यह है मेरी बेटी हेलन।"

मैंने हेलन की ओर देखकर पूछा, "अग्रेजी जानती हो?"

उसके सिर हिलाने पर मैंने कहा, "यहां मेरे पास आओ।"

पर वह अपनी जगह से टस-से-मस न हुई। मेरे दुबारा कहने पर भी वह नही उठी तो मैं उसके पास गया और उसकी बांह पकड कर अपने साथ ले आया और सोफे पर बैठा लिया। मेरिलीन बोली, "मेरी यह लडकी बड़ी सकोची है। इसके अदर एक गाठ बध गयी है। जब कभी यह मुझे किसी आदमी के साथ देखती है तो इसे लगता है, मैं उससे ब्याह कर लूगी।"

मेरिलीन ने ये शब्द मुस्कराते हुए कहे थे, पर मेरे अदर उन्होंने खलबली पैदा कर दी। कोई-न कोई

बात होनी चाहिए, नहीं तो लडकी के मन मे यह भावना क्यो जड जमाती ?

पर मेरिलीन ने मुझे सोचने का मौका नही दिया। बोली, "इस एलिजाबेथ के पति आप की तरह लेखक हैं। एक दैनिक पत्र मे काम करते हैं। आज उनकी रात की ड्यूटी है। मेरी यह सहेली भी अकेली बैठी-बैठी कविताए लिखती रहती है। मैंने रेस्तरा से फोन करके जब इसे बताया कि भारत के एक लेखक को लेकर आ रही हू तो यह बेहद खुश हुई। लेखको के लिए इसके मन मे बहुत ही प्यार और आदर है। खुद लिखती है न।"

अपनी प्रशसा सुनकर एलिजाबेथ का चेहरा आरक्त हो उठा। एक हल्की मुस्कराहट ने उसकी आकृति को बडा ही आभायुक्त बना दिया।

बातचीत के बाद सब भोजन करने मेज पर बैठे। सारी चीजे निरामिष थी। मेरिलीन ने बता दिया था कि वह क्या-क्या चीजे तैयार करे। भोजन करते-करते आधी रात हो गयी। विदा लेते समय मेरिलीन ने कहा, "मैं आपको होटल पर छोडकर चली जाऊगी।"

रवाना हुए तो हेलन भी साथ थी। मेरे मन को रह-रह कर उस बालिका की यह हैरानी कुरेद रही थी कि अपनी मा को जब वह किसी पुरुष के साथ देखती है तो उसे लगता है वह उसके साथ विवाह करेगी। इसके पीछे अवश्य कोई रहस्य होगा, पर लडकी के सामने मुझे उस रहस्य को खुलवाने की हिम्मत न हुई। रास्ते भर हम लोग अपने-अपने मे मुदे रहे।

होटल आने पर सब ट्राम से उतर पडे। मेरिलीन ने कहा, "अब आप कमरे मे जाकर सो जायें। खूब आराम से सोइये। सबेरे मेरी ड्यूटी आठ बजे से है। दफ्तर आ जाइये। मैं आपको एक पुर्जा दे दूगी। रेस्तरा मे जाकर नास्ता कर लीजिये और थोडा घूम-फिर लीजिये। मेरी ड्यूटी १२ बजे समाप्त हो जायेगी। दफ्तर चले आइये फिर मैं बराबर आप के साथ रहूगी।"

मेरिलीन की सदाशयता से मेरा मन भीग आया। मैंने उसका आभार माना। उसके बाद मा-बेटी चली गयी।

मैं अपने कमरे मे आया और बिस्तर पर लेट गया। लेकिन नीद नही आयी। मेरिलीन और हेलन की गुत्थी मन मे सनसनाहट पैदा करती रही। हो न हो, इसमे जरूर कोई गहरा भेद है।

सुबह तैयार होकर दफ्तर पहुचा तो मेरिलीन अपनी सीट पर मौजूद थी। मुझे देखते ही मुस्करायी। बोली, "क्यो, रात को बढिया नीद आयी या नही ?

मैंने कहा, "नयी जगह पर जैसी आनी चाहिए, वैसी आयी। और तुम?"

उसकी मुस्कराहट और फैल गयी। बोली, "मेरी कुछ न पूछो। बिस्तर पर लेटते ही गहरी नीद मे सो जाती हू।"

इतना कहकर उसने कागज की एक पर्ची पर कुछ लिखा। बोली, "इसी सडक पर कुछ आगे एक रेस्तरा है। उसमे यह चिट दिखाकर नाश्ता कर लीजिय और ये-ये जगह देख आइये। मैं बारह बजे काम से छुट्टी पाकर आपकी राह देखूगी।"

उसने एक नक्शा निकाला और कुछ स्थानो पर निशान लगाकर मुझे दे दिया।

रेस्तरा खोजने मे कोई कठिनाई नही हुई। जलपान करके नक्शे की सहायता से कुछ दर्शनीय स्थल देखे और समय से थोडा पहले ही मेरिलीन के पास पहुच गया। वह अपना काम समेट रही थी। पाचेक मिनट मे हम लोग वहा से रवाना हो गये।

मेरिलीन ने कहा, "घटे भर घूम लें, उसके बाद 'वेजीतेरिया' रेस्तरां मे खाना खायेंगे। आज आपके साथ मैं भी शाकाहारी भोजन का आनद लूगी।"

रात की बात मेरे मन मे उछल-कूद कर रही थी। कुछ कदम चलते ही वह बात मेरे होठो पर आ गई मैंने कहा, "मेरिलीन, बुरा न मानो तो एक बात पूछू ?"

सहज भाव से उसने कहा, "जरूर पूछिये, एक नही, दो।"

"रात तुमने अपनी सहेली के घर कहा था कि हेलन के मन मे एक गांठ बंध गई है। वह तुम्हें . "

उसने मेरी बात पूरी की, "हां-हां, मुझे याद है कि हेलन जब मुझे किसी आदमी के साथ देखती है तो यह सोचकर सहम जाती है कि मैं उससे ब्याह कर लूगी। अपने भाग्य की बात आप से क्या कहू ! "

कहते-कहते विषाद की कुछ रेखाए उसके चेहरे पर उभर आयीं। उसने सिर को झटका और प्रकृतिस्थ होकर बोली, "यह जीवन एक नाटक है। नाटक मे उतार-चढ़ाव न आए तो वह नाटक कैसा !"

थोडी देर हम दोनो चुप रहे। फिर उसी ने मौन तोड़ा। बोली, "बात यह है कि मेरे खाविन्द और मैं तीन साल से अलग रह रहे थे। अभी कुछ दिन पहले ही हमारा तलाक हो गया।"

मुझे काटो तो खून नही ! बात इतनी अप्रत्याशित थी कि सहसा उसपर विश्वास नही हुआ। मेरी ओर एक क्षण को अनिमेष देखकर वह बोली, "मेरी बात से आपको चोट लगी दीखती है। पर मैं आपसे क्या कहू, आज से पंद्रह साल पहले हम लोगो का विवाह हुआ था। विवाह के कुछ समय बाद हेलन हुई, फिर गैरी। शादी के कुछ दिन बीतते-बीतते मैंने देख लिया कि मेरा आदमी बडा ही तुनकमिजाज है। जरा-जरा-सी बात पर उसका पारा चढ जाता था। वह दात पीसता और मुझे गालिया देता। पर देखते-देखते मैं दो बच्चो की मा बन गई थी। सोचती थी, जैसे-जैसे दिन बीतते जाएगे, उसका स्वभाव बदलता जाएगा। पर मेरा सोचना गलत था। उसके स्वभाव मे सुधार नही आया, वह और उग्र होता गया "

मैंने कहा, "मेरिलीन, वह तुम्हें हैरान करता था, तो तुमको गुस्सा नही आता था ?"

उसकी आंखें भीग आयी। बोली, "जो आदमी अपने दिमाग को नही जानता, उस पर गुस्सा कैसे किया जा सकता है ? उस पर तो तरस ही खाया जा सकता है।"

बातचीत मे काफी समय निकल गया। हठात् उसने घडी देखकर कहा, "खाने का समय हो गया है। आपको भूख लगी होगी। 'वेजीतेरिया' आ गया है। चलो, खाना खा लें।"

दोनो रेस्तरा मे गए। खाना खाया। लेकिन मेरे मन पर विषाद के काले बादल छाये रहे। खा-पीकर बाहर आए तो टूटे सूत्र को उसी ने जोडा। बोली, "तीन साल पहले हम दोनो अलग हुए तो गैरी उसके साथ चला गया, हेलन मेरे पास आ गई। गैरी हर शनिवार को मेरे पास आता है और सोमवार को सबेरे ही चला जाता है। दो रात खूब चिपटकर मेरे साथ सोता है। बार-बार प्यार करके कहता है, "मम्मी, तुम कितनी अच्छी "

कहते-कहते मेरिलीन का गला भर आया। पर्स से रूमाल निकालकर आखें पोछी, फिर बडे धीमे स्वर में बोली, "गैरी कहता है, 'डैडी बड़े बुरे हैं, मम्मी। तुम्हारे लिए जाने क्या-क्या कहा करते हैं।' मैं उसे समझा देती हू कि उनके कहने का बुरा मत माना कर। इस दिल की धरती मे जैसा बोओगे, वैसा ही उगेगा। प्यार अच्छी चीज है, नफरत बुरी चीज है। वह मुझसे और भी कसकर चिपट जाता है। हेलन बडी सीधी है। उसका दिल बडा कोमल है। जब उसके डैडी मुझे मारते थे तो वह चीख उठती थी और रोने लगती थी।"

उस दिन हम दोनों रात तक साथ रहे। मुझे होटल पर छोडते हुए उसने कहा, "आप अपने मन को भारी न करें। किस्मत के लिखे को कोई मेट नही सकता। हा, देखिए, कल भी मेरी सबेरे की ड्यूटी है। आज की तरह आप आठ बजे आएंगे और बारह के बाद रात तक हम साथ रहेगे।"

उस रात मेरी हालत उस ज्वरग्रस्त रोगी की भाति रही, जो गफलत मे पडा भयावने स्वप्न देखता

रहता है। मेरी आंखो के आगे दात पीसता, अपनी औरत को गालियां देता और बुरी तरह पीटता एक नौजवान बार-बार आ जाता था। मोम की पुतली बनी स्त्री उस अत्याचार को सहती थी। दो मासूम बच्चे मां के इधर-उधर खड़े बिलखते थे। जीवन की यह कैसी विडम्बना थी!

सारी रात आखो मे गई। इतनी यात्राए मैं कर चुका था, पर ऐसी यात्रा तो पहले कभी नही हुई थी कि मेरा सपूर्ण मानस एक नारी के इर्द-गिर्द सिमट जाए।

अगले दिन आठ बजे सबेरे हम फिर मिले। मेरिलीन के चेहरे पर कुछ क्लाति-सी दिखाई दी, पर उसने मुस्कराहट के साथ मेरा अभिवादन किया।

दोपहर को बारह बजे जब साथ निकले तो एक नया सवाल मेरे मन पर छाया था। मैंने कहा, "मेरिलीन, एक बात बताओ।"

"क्या?"

"जब तुम बारह साल तक अपने आदमी के अत्याचार सहती रही तो फिर अब अलग होने की जरूरत क्यो आ पड़ी?"

मेरे इस प्रश्न ने जैसे उसके मर्म को छू दिया। उसके होठ धीरे-से स्पदित हो उठे। पर शब्द उसके मुह मे ही रह गए। फिर कुछ सभलकर वह बोली, 'आप भावनाशील लेखक है। इसलिए आपको मन की बात बताये देती हू। हुआ यह कि मैं अपने आदमी की सारी ज्यादतिया बर्दाश्त करती रही, लेकिन मैंने अपने हृदय को मरने नही दिया। उसे जिंदा रक्खा। अब मुझे लगा कि मेरा हृदय मरता जा रहा है और मैं कुछ दिन और उसके साथ रही तो वह एकदम खत्म हो जाएगा, तब मेरे खाविंद को जिंदगी भर मुर्दे का बोझ ढोना पड़ेगा। इसे मैं सहन नही कर सकती थी। मै किसी पर बोझ नही बनना चाहती थी।"

भावना का ज्वार उसके अदर इतने जोर से उठा कि वह निढाल-सी हो गई। उसने अपना हाथ मेरे कधे पर रख लिया, जैसे कुछ सहारा लेना चाहती हो। मैंने कहा, "मेरिलीन "

वह क्षण भर उसी अवस्था म रही। फिर धीरे-धीरे अपने को सभालते हुए बोली, "मैं यह सब क्या कह गई! ये जिंदगी की ऐसी बाते ह जो कही नही जाती। अपना दु ख आदमी खुद ही बर्दाश्त करता है। आप इतनी दूर से आए है, तो इसलिए थोड़े आए है कि किसी के दु ख मे साझीदार बने। देखती हू, मेरी बाते सुन-सुनकर आपका दिल गहरी बेचैनी अनुभव करता है, पर आप सच मानिए कि मुझे यह दु ख दु ख लगता ही नही। इसकी आदी हो गई हू। कभी कभी सैलाब आता है, अपने आप उतर जाता है। ऊपरी निगाह से देखो तो जिंदगी कुछ नही है, गहराई से देखो तो उसमे बहुत कुछ है। लेकिन इन सारे पचड़ो को छोड़ो। बहुत हो गया बहुत हो गया बहुत हो गया।"

मैंने कहा, "मेरिलीन, एक बात और बता दो। जिस आदमी ने तुम्हे इतना सताया है, उसके खिलाफ कल से अब तक तुमने एक शब्द भी नही कहा।"

उसके अतर का आवेग थम गया था। बोली, "जो आदमी छुई-मुई है, मन पर जिसका काबू नही है, उसके खिलाफ कुछ कहने से क्या फायदा! मैंने कल कहा था न कि ऐसा इन्सान तो दया का पात्र होना है।"

रात को जब हम अलग होने को हुए तो मेरिलीन ने कहा, "कल आप चले जाएगे। पर आपका जहाज तो शाम को है। सबेरे आठ बजे दफ्तर मे हम फिर मिलेंगे। और हा, आप हवाई अड्डे जाने के लिए बस का टिकट मत खरीदिये और सबेरे ही होटल से सामान साथ लेते आइए। बस दफ्तर से ही तो जाएगी। होटल मे सामान रहने देंगे तो एक दिन का पैसा और बेकार लग जाएगा।"

अगले दिन जाने का समय हुआ तो मेरिलीन बस मे मेरे पास आकर बैठ गई। कुछ दूर साथ आई।

फिर अपने पर्स मे से बस का टिकट मेरे हाथ मे थमाकर बोली, "अच्छी तरह जाइए। अच्छी तरह रहिए। मेरी इच्छा भारत आने की है। पर हम लोगों के लिए इतने दूरदेश जाना आसान नही है। अच्छा, विदा! अलविदा!"

मेरिलीन ने बस रुकवायी। उतरकर नीचे खड़ी हो गई। उसकी आंखें डबडबा रही थी, उसने उन्हें पोंछा नही। चुपचाप बुत की तरह खडी रही और बस के चलने पर उस समय तक रूमाल हिलाती रही जब तक कि निगाह से ओझल न हो गई।

यात्रा समाप्त हो गई, पर कहानी अभी तक समाप्त नही हुई है। जीवन-सागर पर अचूक विश्वास और अटूट साहस के साथ तैरती वह तरुणी बार-बार मेरे मानस-पटल पर उभर आती है। आगे उस कहानी का क्या हुआ, नही जानता, क्योकि बाद मे न मेरिलीन से फिर कभी मिलना हुआ, न उसका कोई समाचार मिला, पर मैं जानता हू कि वह सुखी ही होगी, क्योकि उसने दु ख को दु ख माना ही कहां!

कहानी खत्म हो गई

अमलेन्दु का जन्म बगाल की उद्योग-नगरी कलकत्ते के एक सामान्य बगाली परिवार मे हुआ था। वही उसका बचपन बीता, वही उसकी शिक्षा-दीक्षा हुई और वही एक पत्रकार के रूप मे उसने अपने जीवन का श्रीगणेश किया। शुरू मे एक छोटे-से पत्र मे काम किया, बाद मे अपनी मेहनत, लगन और सूझबूझ के बल पर वह एक प्रमुख पत्र के साथ जुड गया।

अमलेन्दु की मा उसके जन्म के समय ही मर गई थी, इसलिए उसका लालन-पालन उसके पिता और उसकी विधवा बुआ ने किया।

एक पत्रकार के नाते अमलेन्दु के बहुत-से खास लोगो से सम्पर्क बन गए, वैसे भी वह बडा मिलनसार था। सोचता था कि आगे चलकर कभी अपना पत्र निकालेगा और समाज मे जो बुराइया आ गई हैं, उन्हे दूर करने मे अपने पत्र का उपयोग करेगा।

लेकिन आदमी सोचता कुछ है, हो कुछ और ही जाता है। उसे एक दिन अचानक एक प्रतिनिधिमडल मे रूस जाने का निमंत्रण मिला और वह खुशी-खुशी मास्को के लिए रवाना हो गया। यात्रा मे वह दो दिन काबुल रुका और एक दिन ताशकद।

सयोग से इस यात्रा मे उसकी भेट भारत के विख्यात लेखक आनन्द से हो गई। यह लेखक भी उसी समारोह मे मास्को जा रहे थे, जिसमे अमलेन्दु जा रहा था। काबुल मे उन्हे साथ साथ काबुल होटल मे ठहराया गया और साथ-साथ ही वे शहर मे और आसपास के स्थानो मे घूमे। ताशकद मे भी वे एक ही जगह रहे। मास्को पहुचते-पहुचते दोनो मे बडी दोस्ती हो गई। वहां अधिकांश प्रतिनिधियो को एक ही होटल मे ठहराया गया था। अत वे दोनो वहा भी साथ रहे।

समारोह के बाद वे मास्को मे कुछ दिनो के लिए रुक गए। आठ-दस दिन बाद आनन्द तो यूरोप के

दूसरे देशों मे घूमने चला गया, अमलेन्दु वही एक मित्र के यहां रहा। जब आनन्द लौटकर मास्को आया तो उसने अपने प्रवास का सारा हाल अमलेन्दु को सुनाया। सुनकर अमलेन्दु की इच्छा लदन जाने की हुई। आनन्द के कुछ मित्र लदन मे थे। अमलेन्दु के आग्रह पर उसने अपने मित्रो को पत्र लिख दिए और आनन्द भारत लौटे, तब तक अमलेन्दु लदन पहुच गया।

वहां वह कैसे पहुचा और शुरू के दिन उसके कैसे बीते और बाद मे उसने वहां किस तरह सिलसिला बिठाया, इसकी बडी रोमाचकारी कहानी है। लदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर जब वह उतरा तो उसकी जेब मे एक पौण्ड और कुछ शिलिग थे। उसने हवाई अड्डे से उतरकर शहर की बस पकडी और उन मित्रो को खोजा, जिनके नाम आनन्द के पत्र थे। बहुत भाग-दौड के बाद उसे एक मित्र मिल गए। मित्र बडे भले थे। उन्होंने उसके ठहरने की व्यवस्था की और कुछ पौण्ड खर्च के लिए दे दिए।

अमलेन्दु का मन वहा कुछ दिन रहकर भारत वापस आ जाने का था, लेकिन उसकी किस्मत मे तो कुछ और ही बदा था। थोडे सघर्ष के बाद उसे वहा कुछ काम मिल गया। उस काम से जो पैसे मिले, उनसे उसे दूसरी ही दिशा मे सोचने की प्रेरणा मिली। भारत मे तो इतने पैसे सालो मे भी उसे नही मिल सकते थे। विचार आया कि अगर वह कुछ समय और वहा रह लेगा तो भारत लौटकर शेष जीवन चैन से बिता सकेगा।

एक विचार यह भी आया कि वह अपने देश लौटने की जल्दी क्यो करे? आखिर उसकी याद करने वाला वहा कौन बैठा है? पिता हैं, वह दुनिया की मोह-माया से विरक्त हैं। बुआ अपने वैधव्य के दिन काट रही हैं। फिर ऐसा क्या है, जिसके लिए वह घर लौट जाने को लालायित हो? बहुत सोच-विचार के बाद उसने वहीं बस जाने का निश्चय किया। मित्रो की सहायता से उसने स्थायी काम खोजा और वह मिल भी गया। अब उसने एक बडा अच्छा मकान ले लिया।

उसका इरादा था कि कुछ दिन मे उसके हाथ मे और पैसा आ जाएगा तो वह अपने देश जाएगा, किसी अच्छी होशियार बगाली लडकी से विवाह करेगा और उसे साथ लेकर लदन लौट आयेगा।

लेकिन यह न होना था, न हुआ। उसके पडोस मे मध्यम श्रेणी का एक अग्रेज परिवार रहता था। उस परिवार मे एक बडी उम्र की लडकी थी जैकलिन। अमलेन्दु की निगाह उस लडकी पर पडी। लडकी की निगाह अमलेन्दु पर पडी। लडकी ने स्कूली पढाई पूरी कर ली थी। उसका शरीर बहुत ही स्वस्थ था। वह बडी चचल थी। इतने जोर से हसती थी कि उसकी हसी अमलेन्दु को अपने कमरे मे सुनाई दे जाती थी। अमलेन्दु जब शाम को काम से लौटता तो वह नित्य अपने घर के दरवाजे पर खडी मिलती और उसे देखकर खूब मुस्कराती। अमलेन्दु का आकषण उसके प्रति दिनोदिन बढता गया और अत मे एक दिन उसने उससे विवाह करने का निश्चय कर लिया।

अवसर पाकर उसने जैकलिन से इसकी चर्चा की तो वह एकदम तैयार हो गई। सच यह था कि वह तो स्वय इसके लिए उत्सुक थी। लेकिन उसने कहा, "मेरी मा तो बडी सीधी है। मान जाएगी, पर पिता दूसरी तरह के हैं। जो भी हो, आप चिन्ता न करे। मैं देख लूगी।"

अगले दिन अमलेन्दु ने सुना, जैकलिन के पिता चीखकर कह रहे थे, "यह सब नहीं होने का। मैं तुझे उस मुल्क के आदमी के घर नही जाने दे सकता, जो हमारा गुलाम रहा हो। इस बात को तू कान खोलकर सुन ले और समझ ले।"

उनका अतिम शब्द पूरा होते-होते जैकलिन की उतनी ही तेज आवाज उसके कानो मे पडी, "आप कुछ भी कहे, मैंने तो अपना इरादा पक्का कर लिया है।"

दो-तीन दिन घर मे कोलाहल मचा, आखिर जीत जैकलिन की हुई। वह अपनी बात पर अडी रही

और पिता को मन मारकर पास के गिरजे मे अपनी बेटी का विवाह सांवले रंग के अमलेन्दु के साथ कर देना पड़ा।

जैकलिन के आते ही अमलेन्दु का घर जगमगाने लगा। वह मामूली घर की थी। कम खर्च मे अच्छी तरह रहने की कला में निपुण थी। अस्त-व्यस्त पड़े घर को उसने इतना सवार दिया कि अमलेन्दु भी चकित रह गया। जैकलिन की मां बडी पति-भक्त थी। बेटी मे भी वही संस्कार आया। अमलेन्दु के प्रति उसके स्नेह और आदर को देखकर कोई भी उनसे ईर्ष्या कर सकता था।

भारत लौटकर आनन्द अपने कामकाज मे लग गया। उसे ध्यान भी नही रहा कि अमलेन्दु नाम का कोई युवक पत्रकार उसे रूस की यात्रा मे मिला था।

अकस्मात एक दिन उसकी डाक मे लदन से एक पत्र आया। बडी बारीक लिखावट मे लिफाफे पर पता लिखा था और भेजने वाले की जगह नाम था अमलेन्दु। आनन्द को एक साथ वह नाम याद नहीं आया। उसने लिफाफे को हाथ मे लिए अपनी स्मृति पर जोर डाला, फिर भी उसे ध्यान न आया तो उसने उत्सुकता से उसे खोला। उसके शुरू के वाक्यो से ही सारी घटना उसकी आंखो के सामने घूम गई। लिखा था

"लदन से मेरा यह पत्र पाकर आपको अचरज होगा। शायद आप मुझे भूल गए होंगे, पर मैं अपने उस हितचितक को कैसे भूल सकता हू, जिसने मुझे इस नगरी मे आने का साहस और सुविधा दी। जी हा, मैं अभी लदन मे हू और आपको यहा आने का निमत्रण भेजता हूं।"

पत्र बडा लम्बा था और उसमे उसने मास्को से रवाना होने से लेकर अबतक की पूरी कहानी विस्तार से लिखी थी। उसने जैकलिन की भूरि-भूरि प्रशसा की थी। लिखा था कि जब मैंने उसे बताया कि आपके पत्र न होते तो मेरा एक दिन भी लदन मे रहना मुश्किल होता तो वह अब आपसे मिलने को बहुत ही उत्सुक है। अत मे लिखा था

"हमारा घर बहुत बडा है। आपको यहां रहने मे जरा भी तकलीफ नहीं होगी। आपको हम हवाई अड्डे से ले लेंगे। सच मानिए, आपके आने से हम लोगो की एक बहुत बडी साध पूरी हो जाएगी।"

पत्र पढ़कर आनन्द को अच्छा लगा। उसने उत्तर में अमलेन्दु को बधाई भेजी और लिखा कि जैसे ही उसे मौका मिलेगा, वह अवश्य आवेगा और कुछ दिन उसके साथ ठहरेगा।

इसके बाद दोनो मित्रो का पत्र-व्यवहार आरभ हो गया। अमलेन्दु बडा भावुक था। घर मे कोई भी खुशी की बात होती तो फौरन खबर देता।

धीरे-धीरे कई साल बीत गए। इस बीच जैकलिन के तीन बच्चे हुए। सबसे पहले एक लडका हुआ, फिर एक लडकी और बाद मे फिर एक लडका। अमलेन्दु के पत्रो के एक-एक शब्द से उसका आतरिक हर्ष और सतोष प्रकट होता था। तीसरे लडके के जन्म की सूचना देते हुए उसने लिखा

"घर इतना भरा-पूरा हो गया है कि आप देखकर मारे खुशी के उछल पडेंगे। अब आ ही जाइए।"

इसके बाद कई महीनो तक अमलेन्दु की चिट्ठी नही मिली। आनन्द ने पत्र लिखा, पर जवाब नहीं आया। उसे एक महीने के लिए हिमालय मे घूमने जाना था। चला गया। लौटा तो देखता क्या है, डाक में अमलेन्दु का पत्र मौजूद है। लिखा था

"मैं चालीस दिन के लिए भारत गया था, पर मुझे इस बात का बडा दु ख है कि इच्छा होते हुए भी आपके पास तक नही पहुच पाया। बहुत दिनो के बाद गया था, इसलिए कलकत्ते ने ही सारा समय ले लिया।" उसने मिल न पाने के लिए बहुत क्षमा मांगी थी और अपने आग्रह को दोहराया था।

कुछ दिनों के बाद आनन्द का अमरीका और कैनेडा जाने का कार्यक्रम बना। उसका विमान लदन के

हवाई अड्डे पर रुका तो उसने अमलेन्दु को फोन किया। कोई महिला बोली। आनन्द ने पूछा, "आप कौन हैं ?"

'जैकलिन, और आप ?'

आनन्द ने अपना परिचय दिया तो जैकलिन ने विभोर होकर कहा, "हम लोग कितने सालो से आपसे मिलना चाह रहे हैं। आप आ जाइए। अमलेन्दु दफ्तर गए है। अच्छा, आप वही रुकिये। मैं अमलेन्दु को फोन किए देती हू। वह आपको ले आवेंगे।"

यह सब जैकलिन एक सास मे कह गई। आनन्द ने उसे बताया कि वह न्यूयार्क जा रहा है। उसका जहाज थोडी देर मे रवाना हो जाएगा। वह लौटते मे रुकने का प्रयत्न करेगा। उसने कैनेडा का अपना पता दे दिया।

न्यूयार्क मे थोडा रुककर आनन्द जब टोरेंटो पहुचा तो उसे अमलेन्दु का पत्र मिला। पता चला कि जैकलिन ने उसे तत्काल फोन कर दिया था। उसके बाद वह कस्टम मे उससे सम्पर्क करने का बराबर प्रयत्न करता रहा। उसे मलाल था कि आनन्द के लदन पहुचने पर भी मुलाकात नही हो सकी। "लौटते मे जरूर-जरूर आइए और कुछ दिन रुकिये।" उसने बडे आग्रह के साथ लिखा था।

पर लौटते समय भी मिलना सभव नही हो सका। आनद को अमरीका और कैनेडा मे बहुत समय लग गया। लदन के लिए एक दिन भी वह नही निकाल सकता था।

भारत लौटकर उसे जैकलिन का पत्र मिला। उसमे उसने जो लिखा था, उसे पढ़कर आनन्द की सारी खुशी गायब हो गई। पत्र यह था

"प्यारे मित्र,

"हमे पूरी उम्मीद थी कि आप अमरीका से लौटते हुए हम लोगो के साथ कुछ दिन जरूर रुकेंगे। आपसे मिलने की एक तो वैसे भी मेरे मन मे बडी उत्सुकना थी, लेकिन मेरा एक स्वाथ भी था।

"आपसे कैसे कहू कि आपके मित्र इन दिनो शराब बेहद पीने लगे हैं। मैं उन्हे बहुतेरा रोकती हू, उनके हाथ जोडती हू, पर वह मानते नही। यहा वैसे शराब सभी पीते हैं, उसमे कोई बुराई या पाप नही है, लेकिन हर चीज की एक हद होती है। उस हद से आगे बढना ठीक नही होता। आपके मित्र हद को पार कर गए हैं।

"मेरी बडी इच्छा थी कि आप यहा आवे और इन्हे समझावे। मुझे पूरा भरोसा था और है कि वह आपकी बात को टालेंगे नही। इसी से मैं रोज आपके आने के लिए प्रार्थना करती रही, पर प्रभु ईसा को वह मजूर न हुआ!

"खैर, आप चिन्ता न करें। मेरे पत्र का उत्तर अवश्य दीजिए, लेकिन मैंने जिस विषय की चर्चा की है, उस सबध मे कुछ भी मत लिखिए। इन्हे मालूम हो जाएगा कि मैंने अपना दुख लिखकर आपको दुखी किया है तो इनको बहुत बुरा लगेगा।

आपकी

—जैकलिन"

आनन्द ने चिट्ठी को एक ओर रख दिया। उसके मन पर बडा भार था। वह अपने को अपराधी मान रहा था। उसे लदन के लिए एक-दो दिन निकाल ही लेने चाहिए थे। जैकलिन ने ठीक ही लिखा था, अमलेन्दु उसकी बात जरूर मान लेता। कितना बडा काम हो जाता। पर अब पछतान से क्या हो सकता था!

कई साल निकल गए। आनन्द को फिर अमरीका और कैनेडा जाने का सुयोग मिला। इस बार उसने निश्चय किया कि वह लौटते मे लदन अवश्य रुकेगा और बिना सूचना दिए ही अमलेन्दु के घर पहुचकर उसे और जैकलिन को चकित कर देगा।

लंदन में उसके कई मित्र थे। फिर न्यूयार्क मे वह जिनके साथ ठहरा था, उन्होंने अपने संबंधी को उसके लंदन पहुचने की सूचना दे दी थी।

न्यूयार्क से जब उसका विमान लंदन के हवाई अड्डे पर रुका और वह कस्टम की खाना-पूरी करके बाहर आया तो उसके एक मित्र उसे लेने आए हुए थे। आनन्द ने सोचा, अमलेन्दु के घर सीधा नही जाना चाहिए। हो सकता है, वे लोग घर पर न हों। उसने मन-ही-मन कहा, उसे दस-पन्द्रह दिन ठहरना है, वह किसी दिन अमलेन्दु से मिलने जाएगा और अमलेन्दु खुद उसका सामान उठाकर अपने घर ले जाएगा।

यह सोचकर वह मित्र के साथ चला गया। मित्र लदन से कोई चालीस मील दूर वहां के उपनगर मे रहते थे। आनन्द की पत्नी साथ थी। मित्र के घर पहुचने के उपरान्त उन्होंने घूमने-फिरने का कार्यक्रम बनाया और वे लोग दिन-दिनभर घर से गायब रहने लगे। रोज सोचते थे कि अमलेन्दु के यहां जाएगे, पर दिन-पर-दिन निकलते गए। मित्र के यहां फोन नहीं था। वह नए-नए उस घर मे आए थे। इसलिए फोन नहीं लग पाया था। फोन न होने के कारण वे अमलेन्दु से सम्पर्क नही कर सके।

आनन्द को बाद मे ध्यान आया कि लदन पहुचते ही उसने अमलेन्दु को पत्र लिख दिया होता तो वह किसी दिन आ जाता और उन लोगो को ले जाता, लेकिन भाग-दौड मे उसे पत्र लिखने का भी ध्यान नही रहा।

उसके मन मे अमलेन्दु से मिलने की तो इच्छा थी ही, लेकिन उससे अधिक उसके दिमाग मे जैकलिन की वह बात थी, जो उसने अपने पत्र मे लिखी थी। वह चाहता था कि निश्चित होकर वह और उसकी पत्नी दो-तीन दिन उनके साथ रहे और अमलेन्दु के मन पर यह बात जमा दें कि उसे शराब की बुरी लत को छोड ही देना है। यदि एकदम न छोड सके तो उसे मर्यादित तो कर ही देना है।

जब उन लोगो के लदन छोड़ने मे तीन दिन शेष रह गए तो आनन्द ने बहुत बेचैन होकर मित्र से कहा, "अब हम लोगो को अपने दोस्त के यहा जाना ही चाहिए।"

मित्र बड़े अच्छे थे। उनकी इच्छा थी कि वे आनन्द को ज्यादा-से-ज्यादा अपने घर रक्खें और आखिरी दिन अमलेन्दु से मिलाकर हवाई पड्डे पहुचा दें। पर जब आनन्द ने जाने पर बहुत जोर दिया तो उन्होंने कहा, "चलिए, फोन कर ले। यहा शनिवार और रविवार को अधिकतर लोग घूमने बाहर चले जाते हैं। आपके मित्र कही चले गए होगे तो चालीस और चालीस, अस्सी मील का चक्कर बेकार लग जाएगा।

मित्र की बात मे बल था। वे दोनो बाहर निकले और पब्लिक फोन पर आकर अमलेन्दु का नम्बर मिलाया।

थोडी देर तक उधर से कोई जवाब नही आया। आनन्द ने अनुभव किया कि किसी ने फोन उठाया तो है, पर बोल नही रहा। उसने पूछा, 'क्या यह अमलेन्दु का फोन है?'

'जी।' उधर से बहुत धीमी आवाज मे किसी ने उत्तर दिया।

'अमलेन्दु हैं?' आनन्द ने पूछा।

एक साथ जवाब नहीं मिला। आनन्द ने अपनी बात को दोहराया, 'अमलेन्दु हैं?'

'नही, गए साल वह गुजर गए।' बड़े ही आहत स्वर मे उत्तर मिला। शायद वह जैकलिन की आवाज थी।

आगे दोनो में से कोई भी एक शब्द नही बोल सका। कहने को अब रहा ही क्या था!

दायरे और इंसान

उस दिन सबेरे अखबार आया तो उसके तीसरे पन्ने पर एक समाचार था

"हिंदी के तरुण कवि श्री अभय ने आज दिल्ली से आती पजाब मेल के आगे कूदकर आत्महत्या कर ली। नयी पीढी के कवियो मे अभय का अपना स्थान था। उनकी अवस्था कुल २६ वर्ष की थी। अपने पीछे वह पत्नी, एक लडका तथा एक लडकी छोड गये हैं।"

यह समाचार पिछले दिन का था और उसमे बताया गया था कि दुर्घटना झांसी शहर से कोई एक फर्लांग की दूरी पर घटी।

तरह-तरह की खबरो से भरे अखबार के कोने मे छपे इस खेदजनक समाचार पर कितनो की निगाह गयी होगी, यह कहना मुश्किल है पर चूंकि मृत्यु का कोई कारण नही दिया गया था, इसलिए जिन्होंने भी उस समाचार को पढ़ा होगा, उन पर अलग-अलग प्रतिक्रिया हुई होगी, कुछ ने सोचा होगा कि कवि स्वभाव से भावुक हुआ करते हैं। कभी-कभी छोटी-सी बात ही उनके दिल मे गहरी चुभ जाती है। अभय के साथ भी शायद कुछ ऐसा ही हुआ होगा। कुछ ने कल्पना की होगी कि नौजवान के जीवन मे कोई त्रिकोण बन गया होगा—ऐसा त्रिकोण, जो तीन भुजाओं को मिलाता नही, नुकीला बनाता है। उनका ऐसा सोचना बेजा नही कहा जा सकता, क्योकि कभी-कभी देखने मे आता है कि दो व्यक्ति विवाह के बधन मे बध जाते हैं, पर कुछ ही दिनो मे मालूम होता है की लडकी या लडके के झुकाव का केंद्र कही और है। फिर क्या है, आपस मे तनातनी आरभ हो जाती है। इस प्रकार की गांठ को खोलना आसान नही होता और जब जीना दूभर हो उठता है तो पति-पत्नी मे कोई-न-कोई अपनी जान पर खेल जाता है। अभय की जिंदगी मे अगर कोई इस तरह की बात हुई हो तो अचरज नही।

सभव है, कुछ लोगो ने इस घटना के लिए गरीबी को दोषी ठहराया हो। आए दिन अखबारो मे समाचार निकलते रहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने भूख से तग आकर अपनी स्त्री तथा बच्चो की हत्या कर डाली और फिर स्वय भी मर गया।

जिसकी जो भी प्रतिक्रिया हुई हो, पर इसमे शक नही कि हर पाठक ने अनुभव किया होगा कि अभय का यह कदम बहुत ही गलत था। मुसीबत किस पर नही आती? मुसीबत न हो तो जिंदगी फीकी हो जाये। पर मर्द होकर इसान को ऐसे मौको पर हौसले से काम लेना चाहिए। अपने बीवी बच्चो को यो बेसहारा छोड कर जान देने मे अभय ने कोई बुद्धिमानी का काम नही किया।

दुनियादारी की निगाह से देखने पर सामन्यतया ऐसी ही बाते सोची या कही जा सकती हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि हममे से अधिकाश लोगो की आखें केवल उन्ही वस्तुओं को देखती हैं, जो प्रत्यक्षत दिखायी देती हैं। हममे से कितने हैं, जो यह सोच पाते हैं कि इस जगत मे बहुत कुछ ऐसा भी है, जो स्थूल आंखों से दिखायी नही देता और जिसे देखने के लिए दूसरी ही आखो की जरूरत होती है?

अभय के जीवन मे कुछ ऐसा ही था और इसका साक्षी है उसका वह दोस्त, जो अखबार के उस हृदय-विदारक सवाद को पढकर स्तब्ध-सा बैठा रहा। मन उसका कुछ क्षण के लिए जैसे शून्य-सा हो गया और जब सुस्थिर हुआ तो एक के बाद एक जाने कितने चित्र उसके मानस पटल पर उभर-उभर कर आने लगे।

प्रेमेंद्र और अभय बचपन के साथी थे। साथ खेले, साथ पढ़े, साथ पढ़ाई पूरी की और थोड़े समय के हेर-

फेर से दोनों नौकरी पर लग गये। नौकरी के बाद प्रेमेंद्र ने विवाह कर लिया और घर-गिरस्ती बसाकर रहने लगा। अभय के पिता उसे छोटी उम्र में ही छोड़कर चल बसे थे। अपने माता-पिता की वह अकेली संतान था। मां ने उसे अपने प्राणों से भी ज्यादा मानकर उसका पालन-पोषण किया ओर घर में हर तरह की तंगी झेलते हुए भी उसकी पढ़ाई में कोई कोर-कसर न रखी।

अभय बचपन से ही कुछ दूसरी तरह का था। मां चाहती कि बेटे को घर की गरीबी का पता न चले, लेकिन मां जितना छिपाती थी, अभय की आंखें उतना ही उसे देखती थी। घर मे जमा-पूजी कुछ भी नही। मां के पास थोडे-बहुत जेवर थे, वे एक-एक करके निकलते गये। अभय की पढ़ाई के अतिम दिनो मे मां पर जो बीती, उसे या तो वह जानती हैं या उनके अतर्यामी जानते हैं।

पर मां ने कभी धीरज नहीं खोया। वह मानती थीं कि दु ख-सुख तो जिंदगी के साथ लगे ही रहते हैं। उन्होंने किसी धर्म ग्रंथ मे पढ़ा था कि भगवान जिन्हें प्यार करता है, उनकी बडी कडी परीक्षा लेता है। इस तरह अपनी हिम्मत और भगवान के सहारे खडी रह कर जो भी सकट आया, उसे सहन वह करती रही।

जब अभय की पढ़ाई पूरी हुई और वह अच्छी तरह से पास हो गया तो जैसे मा की खुशी का ठिकाना न रहा, और जब बेटे की नौकरी लगी तब तो मा को सारी दुनिया की दौलत ही मिल गयी।

अब उनकी एक ही इच्छा थी, अभय का ब्याह हो जाय और घर मे बहू आ जाय। एक दिन बड़े प्यार से उन्होंने बेटे से इसकी चर्चा की तो अभय ने कहा, "मा, मैं शादी नही करूगा।"

मां जैसे इस उत्तर के लिए तैयार नहीं थी। बोली, "ब्याह नही करेगा! क्यो रे क्या बात है ?"

मा की इस बात का अभय ने कोई जवाब नही दिया। मां को बडा धक्का लगा। वह तो सपने देख रही थी कि उनके घर मे प्यारी-सी बहू आयेगी और तब उस सुनसान घर मे खूब चहल-पहल हो जायेगी पर बेटे ने तो उनकी आशाओ पर पानी ही फेर दिया।

फिर भी मां चुप होकर नही बैठी। उन्होंने एक दिन अभय के मित्र प्रेमेंद्र को बुलाया और पास बैठाकर बोली, "बेटा, अभय मेरी तो सुनता नही, तू ही उसे समझा। इस जिंदगानी का क्या भरोसा? जाने किस दिन आख मुद जाये। घर को फलता-फूलता देख जाऊंगी तो उस जनम मे भी आत्मा सुखी रहेगी।"

कहते-कहते मा का गला भर आया। उन्हे अचानक अभय के पिता की याद हो आयी। वह आज होते तो अपने लडके को देख कर फूले न समाते।

उस दिन शाम को दोनो दोस्त चार घटे साथ रहे। उनकी चर्चा का एक ही विषय था। प्रेमेंद्र जानता था कि अभय के जीवन मे पहले से ही आदर्शवाद का कुछ पुट है, इसलिए अपनी बात को कहने मे उसे काफी जोर लगाना पडा। उसने कहा, "अभय तुम अपनी शादी क्यो नही करना चाहते? शादी न करने की तुम्हारी दलील क्या है ?"

अभय ने गभीरता से कहा, "और शादी करने के सबध मे तुम्हारी दलील क्या है ?"

प्रेमेंद्र बोला, "यही कि पढ़-लिखकर हिल्ले से लग जाने पर हर किसी की इच्छा घर बसाने की होती है, और यह ठीक ही है। आखिर आदमी जीता किसलिए! उसे जीवन मे कोई-न-कोई सहारा तो चाहिए ही!

अभय और गंभीर हो उठा। बोला, "सहारा! क्या सचमुच तुम मानते हो कि आदमी को विवाह सहारा देता है ?"

अभय के इस प्रश्न पर प्रेमेंद्र को हसी आने को हुई। कैसा बेतुका सवाल था उसका! लेकिन अपनी हसी को रोककर उसने पूछा, "क्या तुम शादी को जरूरी नही मानते ?"

दृढता के साथ अभय ने कहा, "नहीं। विवाह एक बधन है। इसान के लिए क्यों जरूरी हो कि वह बंध कर चले ?

"मतलब ?"

"मतलब यह कि हमारा दायरा सीमित नही होना चाहिए। जो अपना छोटा परिवार बनाते हैं, वे अपने को सकीर्णता के घेरे मे बाधते हैं।"

प्रेमेद्र कुछ कठोर हो आया। बोला, "यानी तुम यह कहना चाहते हो कि आदमी को स्वच्छद रहना चाहिए।"

"नही मेरा यह कहना नही है," अभय ने अपनी बात साफ करते हुए कहा, "मेरा कहना यह है कि हमे अपने को असीम बनाना चाहिए।"

"सो तो ठीक है, लेकिन सीढ़िया चढकर ही तो आदमी ऊपर पहुच सकता है। विवाह कहा कहता है कि तुम अपने चारो ओर दीवारें खडी करो, बल्कि वह तो प्यार का रास्ता खोलता है।"

प्रेमेद्र के लिए आगे इस सतह पर तर्क करना व्यर्थ था। वह जानता था कि ये सब हवाई बातें हैं। दुनिया मे कितने हैं, जो सारी वसुधा को अपना कुटुब मानते हैं। सौ पीछे सौ आदमी अपने-अपने घेरो मे बधे हैं। इसलिए आदर्श से हटकर उसने आखिरी बात कही, "जिस मा ने तुम्हे जन्म दिया है, पढ़ाया-लिखाया है, उसकी इच्छा पूरी नही करोगे ? अब तो तुम कमाने लगे हो।"

प्रेमेद्र का इतना कहना था कि अभय जैसे आवेश मे आ गया। व्यग्य के स्वर मे बोला, "कमाई !" तुम इसे कमाई कहते हो। हममे से कितने हैं, जो सचमुच कमाई करते हैं ! ज्यादातर लोग तो मर-मर कर जीते है। मालिक और नौकर के बीच पैसे का सबध होता है। वह जमाना गया जब कि मालिक मालिक नही होता था और नौकर उसके घर मे घर के आदमी की तरह रहता था। आज तो आदमी आदमी को तौलता है। मालिक देखता है कि उसे सस्ते मे दूसरा मिल जाए तो महगे को जवाब दे दे। नौकर देखता है कि कही उसे चार पैसे ज्यादा मिल जाए तो वह वहा चला जाए। इस तरह दोनो का अपना-अपना स्वार्थ है। इसे कमाई कहोगे ?"

प्रेमेद्र ने कहा, "सभी मालिक ऐसे नही होते। सभी नौकर भी ऐसे नही होते।"

चार घटे की बहस के बाद प्रेमेद्र ने समझ लिया कि अभय उसकी बात नही मानेगा। वह चुप हो गया। अगले दिन उसने बडे दुख के साथ यही बात अभय की मां से कह दी।

मा बडी हैरान हुईं, सारे दिन उदास रहीं। पर काल सब पर परदा डाल देता है। मां अपने काम मे लग गयी। सबकुछ फिर अपनी गति से चलने लगा।

लेकिन मुश्किल से एक साल बीता होगा कि चमत्कार हुआ। लोगो ने देखा, अभय के घर मे बहू आ गई। मां की खुशी का ठिकाना न रहा। बहू क्या आई, मा को बडी नियामत मिल गई। बहू सुदर थी, सुशील थी, घर महक उठा। मा ऐसी ही बहू की तो कामना करती थी।

विवाह के एक साल बाद उषा के लडका हुआ और वह दो साल का भी न हो पाया था कि उसके एक बहन और आ गई।

मा के आनद का पार न था। वह दिन-रात काम मे जुटी रहतीं। बहू को ज्यादा-से-ज्यादा आराम देती और बच्चो की देखभाल स्वय करती। बहू जरा पानी मे हाथ देती तो झट रोक देती। कहतीं, "नहीं बहू, ऐसा न करो। सर्दी हो जाएगी। मुन्नी अभी छोटी है।"

उषा सास की बात पर सहम जाती। इतना प्यार तो उसे अपनी सगी मां से भी नहीं मिला था।

बच्चे बड़े होने लगे और दादी की ममता का दायरा जैसे सिमटने लगा। अपनी बहू, अपना बेटा, अपनी बेटी, बस इनसे बाहर जैसे उनके लिए और कुछ था ही नही।

उस छोटे-से घर में सुख का जैसे साम्राज्य छा गया, पर पर .

विधना से वह सब न देखा गया। एक दिन अभय ने नौकरी छोड दी। मालिक उसके अच्छे थे। उसे अतिरिक्त मान देते थे, पर अभय को वैसा मान नहीं चाहिए था। उसमे स्वाभाविकता नहीं थी। अभय जानता था कि उसे जो दिया जा रहा है, उसके पीछे एहसान है और उसे देकर मालिक एक प्रकार का गर्व अनुभव करता है। अपने को बडा और उसे छोटा मानकर परितोष पाना चाहता है।

अभय के लिए समाज की वह व्यवस्था भयावह थी, घृणास्पद थी, जिसमे एक ओर विपुलता का ऊंचा ढेर हो और दूसरी ओर अभाव का गहरा गड्ढा। एक के पास इतना हो कि उसे सूझे नही कि उसका क्या करे, दूसरे के पास इतना भी न हो कि वह अगला दिन निश्चिन्त होकर बिता सके।

उसका सोचना सही था। पर, जो था, था। हर कोई जीना चाहता था और उसकी आख सीधी उसके स्वार्थ पर टिकी थी।

ऐसे समाज मे रहने मे अभय का दम घुटता था। उसे लगता था कि ऐसी अवस्था और व्यवस्था मे नौकरी करने का अर्थ है, समाज के शोषण मे भागीदार बनना।

इसी से प्रेरित होकर उसने नौकरी छोड दी।

जिस दिन नौकरी छोडी, उसने बडा हलकापन अनुभव किया। लेकिन दो दिन भी न बीतने पाए थे कि उसको लगा, जिस समाज से बचने के लिए उसने नौकरी छोडी थी, वही उसके चारो ओर है और उसे जकडे हुए है। जैसे चुनौती देकर कहता हो, देखें, तुम हमसे बच कर कहा जाते हो!

और अभय ने देखा, उसका घर है, मां और बीवी-बच्चे हैं, सबके पेट हैं, जिन्हे भरने के लिए अन्न चाहिए, तन ढकने को कपडे चाहिए।

अब ?

अभय के सामने एक नया प्रश्न-चिह्न उठ खडा हुआ। उसने सोचा और अत मे वह इस निर्णय पर आया कि सारी बुराई की जड आदमी का अहकार है। आदमी चाहता है कि लोग उसे जानें और मानें। उसका आदर करे। क्यों? आखिर आपमे ऐसी क्या बात है कि लोग आपको तो मान दें और दूसरे को दुत्कारें? जी, यह आपका अहकार है, झूठा अहकार, जो सारे समाज को दूषित कर रहा है।

और तब अभय ने सोचा कि इस कमबख्त अहकार को ही गलाना चाहिए। पर वह गले कैसे?

अभय ने इसका एक रास्ता निकाला। उसने महसूस किया कि आदमी के अहकार का कारण उसके अस्तित्व का मान और गुमान है। आदमी का अस्तित्व न रहे तो फिर अभिमान वह करेगा किसका? उसने अपने अस्तित्व को शून्य बनाने की कोशिश की।

अगले दिन लोगो ने देखा कि अभय सडक के किनारे खडा भीख माग रहा है। भीख, जी हा, भीख। कुछ लोग उसकी ओर देखकर अनासक्त भाव से आगे बढ़ जाते थे, कुछ उसके फैले हाथ पर पैसा रखते थे, पर ऐसे, जैसे कहते हो, अरे भलेमानस, इतना हट्टा-कट्टा होकर भी भीख मांगता है! शर्म नही आती तुझे?

अभय का अहकार चोट खाता, उसे अच्छा लगता। वह जानता था कि चोट खा-खाकर ही उसके अहंकार की व्याधि मिटेगी। उसे और गहरी चोट लगनी चाहिए।

इस हालत मे कोई दो महीने निकले होंगे कि अंत मे अभय ने पाया, अहकार से यों मुक्ति मिलनेवाली नही है। इससे वह अपने निज के अह को जीत ले तो भले ही जीत ले, पर उनके अहकार का क्या होगा, जो

देने की हैसियत मे हूँ ? अहकार किसी का भी हो, देनेवाले या लेनेवाले का, जबतक समाज मे रहेगा, समाज शुद्ध-बुद्ध नहीं बनेगा।

अभय को तब एक नई प्रेरणा मिली। उसे दो हाथ भगवान ने इसलिए दिए हैं कि वह उनसे मेहनत करे। उसने टॉल्स्टॉय का यह कथन पढ़ा था कि असली कमाई पसीने की कमाई है। उसने गाधी का यह वाक्य भी पढ़ा था कि रोटी के लिए हर आदमी को मजदूरी करनी चाहिए, शरीर से मेहनत करनी चाहिए। यह ईश्वरीय नियम है।

एक-दो दिन अभय के मन मे सघर्ष चला और उसके बाद वह हाथ-पैर की मेहनत-मजदूरी पर जुट गया। दिन भर कस कर काम करता। भारी-भारी सामान ढोता। मेहनत करने मे वह जरा भी कसर न उठा रखता। पर वहा भी समाज से उसका पीछा न छूटा—उस समाज से, जिससे बचने के लिए उसने अपने जीवन मे इतने उतार-चढाव देखे थे। वह जी-तोड परिश्रम करता, पर बदले मे फटकार खाता और सुनता कि वह कामचोर है, कामचोर ! उसकी आत्मा कचोटती और फिर दिन भर की मेहनत-मशक्कत के बाद वह इतना भी तो न जुटा पाता कि घर के लोगो को रूखी-सूखी रोटी भी भरपेट नसीब हो सके।

अभय के मन मे फिर सघर्ष चलने लगा। कही कोई भारी चूक है। आदमी पूरी मेहनत करे, पर पाये इतना भी नही कि ईमानदारी से उसका पेट भर सके ! हा, गलत है, सब कुछ गलत है। हमारा समाज गलत है, उसका ढाचा गलत है। क्यो ? इसलिए कि वह प्रेम पर नही, स्वार्थ पर खड़ा है, सहयोग पर नही, प्रति-स्पर्द्धा पर खडा है, मेल पर नही, द्वेष पर खडा है। इसान की इसानियत आज सो गई है। तभी तो वह यह देखते हुए भी चैन-से खा सकता है कि उसके चारो ओर भूखे इसान है। आदमी को अपना सुख चाहिए और सुख आज पैसे मे है—उस खोटे पैसे मे, जो खरे आदमी को भी खोटा बना देता है। धन उसे इसलिए चाहिए, क्योकि धन से सुख खरीदा जा सकता है, वैभव जुटाया जा सकता है।

तब ? ठीक है, जैसे भी हो, धन कमाओ और मान पाओ। आज के समाज की यही रीति-नीति है।

पर धन आयेगा कहा से ? दूसरो का पेट काटकर। दूसरे के पेटो का ध्यान रखकर कोई धनी नही बन सकता।

भूल बस यही है कि आदमी आज भटक गया है। वह अपने सुख और अपने स्वार्थ पर जीता है। उसकी आत्मा मे विवेक नही रहा। उसके स्वार्थ की जड़ें इतनी गहरी चली गई हैं कि समाज को बदलना आसान नही है। और जिस समाज को हम बदल नहीं सकते, उसमें रहने से फायदा क्या ! ऐसे जीने से मौत भली !

इस सारे सघष का जो परिणाम होना था, वही हुआ।

अभय ने चार पत्र छोडे। एक मा के नाम था, जिसमे उनके चरण मे बारबार प्रणाम निवेदन किया था। दूसरा पत्नी के नाम, जिसमे उसने बडी विनम्रता से क्षमा मागी थी। तीसरा बच्चो के नाम, जिसमें उसने उन्हे भर-भर हाथो प्यार दिया था। चौथा प्रेमेंद्र के नाम, जिसमे लिखा था

मेरे प्यारे मित्र,

मैं बेबस हू। जा रहा हू। इस समाज मे एक क्षण भी रहना मेरे लिए दुश्वार हो उठा है। मैं जानता हू, आज की इस दुनिया मे हर कोई अभय नही है। हो भी नही सकता। होना भी नही चाहिए। जो समाज मे जन्मा है, उसे जीना चाहिए और जीने के लिए जो चाहिए, वह पाना चाहिए। तुम सुख से रहना, अपने पागल मित्र को भूल जाना। मैं एक ही आकाक्षा लिए जा रहा हू, अतिम आकांक्षा—वह दिन आएगा,

जब हम सब अपनी भूल को समझेंगे और उन दायरों को तोड़ेंगे, जो आज आदमी-आदमी के बीच दीवार बनकर खड़े हैं। धन, प्रतिष्ठा, मान, वैभव, ऊंचाई—ये सब दीवारें हैं, जो इंसान को इंसान से अलग करती हैं।

नये समाज की रचना आदमी करेगा। आदमी को करनी ही चाहिए। आदमी मे बड़ी शक्ति है। वह अपनी शक्ति को एक दिन पहचानेगा उसकी आत्मा एक दिन जागेगी। नहीं करेगा तो समय करायेगा। काल-पुरुष की शक्ति भी कम नहीं है।

अच्छा, विदा। अलविदा!

तुम्हारा
अभय

गुनाह का बोझ

राम सेवक को जिस समय सभा भवन मे ले आया गया, उसका रोम-रोम पुलकित हो रहा था। सारा हॉल स्त्री-पुरुषो से खचाखच भरा था। पैर रखने को भी जगह नही थी। पूरा नगर ही मानो उमड आया था। राम सेवक ने इतनी भीड की कल्पना भी नही की थी। वह जब मच पर आया तो उसका दिल जोरो से धडक रहा था। मच के मध्य खड़े होकर उसने दर्शको पर एक निगाह डाली और गर्दन को जितना झुका सकता था, झुकाकर हाथ जोड सबको नमस्कार किया। फिर मसनद के सहारे ऐसे बैठ गया, जैसे उसके जीवन की बहुत बडी साध पूरी हुई हो। तालियो की गडगडाहट से सभा भवन बड़ी देर तक गूजता रहा।

उसके बैठते ही सयोजक ने घोषणा की कि अब स्वागताध्यक्ष आज के विशेष अतिथि का स्वागत करेंगे। गुलाब के गहरे लाल रग के महकते फूलो का मोटा हार दोनो हाथो मे थामे मथर गति से स्वागताध्यक्ष आए और उन्होंने बडे सभ्रम से उसके गले मे हार पहना दिया। उपस्थित नर-नारियो ने इतने जोर से तालिया बजाईं, मानो वे उस कक्ष की दीवारो को ही तोड डालेगे। चौथे दर्जे तक पढ़े स्वागताध्यक्ष लाला चरणदास तब माइक के सामने आए और अपने बे-पढ़े-लिखे होने का प्रदर्शन करते हुए उन्होने अपना लिखित भाषण जैसे-तैसे पढ़ा। उसमे उन्होंने राम सेवक के नगर-परिषद के अध्यक्ष-पद पर आसीन किए जाने पर उसका स्वागत और अभिनदन करते हुए उसके गुणो की गिनती कराई और उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की। दर्शको ने बार-बार तालिया बजाईं, जैसे जो कहा जा रहा था, उसका वे सब पूरे दिल से समर्थन कर रहे हो।

स्वागताध्यक्ष के भाषण के उपरांत नगर की छोटी-बड़ी कोई दो दर्जन सस्थाओ और यूनियनों के, जिनमे सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक सभी प्रकार की संस्थाए और यूनियनें शामिल थी, नुमाइदो ने उन्हें मालाएं पहनाईं। राम सेवक की गर्दन ऊपर तक मालाओ से भर गई। उसने उन्हे उतारने की एक बार भी कोशिश नहीं की। प्रत्येक माला उसके अतर को गुदगुदाती रही और वह आनंद की लहरो पर झूमता रहा।

संस्थाओं द्वारा स्वागत के बाद भाषणों की बारी आयी। कई बोलने वालों ने उसके चरित्र की प्रशंसा की, उसके पुरुषार्थ को सराहा और मामूली हैसियत से ऊपर उठकर थोडे ही दिनों मे इतने बडे पद पर आसीन होने के लिए उसको जी भर कर बधाई दी।

अत मे एक अभिनदन-पत्र भेंट किया गया, जो दो रग मे छपा था और बड़े सुदर चौखटे मे जडा था। लाल सुर्खियो मे एक गुणबोधक विशेषण था, फिर नीली स्याही मे उस सबध मे विस्तार से भावनाए प्रकट की गई थी। अत के वाक्य थे, "आपके गुणो को व्यक्त करने के लिए श्रीमान्‌जी, हमारे पास शब्द नही हैं। आप सच्चे अर्थों मे यथानाम तथा गुण हैं।"

नागरिको की उस अनुपम भेंट को स्वीकार करने के लिए जब राम सेवक खडा हुआ तो लोगो ने इतनी तालिया बजायी, जितनी शायद ही पहले कभी किसी के लिए बजी हो।

अतिशय विनम्रता से बार-बार अपना सिर झुकाते और हाथ जोडते हुए राम सेवक ने माइक के निकट जाकर जब अपने भाषण का कागज निकालने के लिए जाकेट की जेब मे हाथ डाला तो वह थर-थर काप रहा था, जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षा-पत्र को हाथ मे लेकर कांपता है। कागज निकाल कर लडखडाती उगलियो से उसने उसे खोला, पढने की कोशिश की, पर आधा मिनट तक उसके मुह से आवाज नही निकली। उसकी आखो के आगे अधेरा छा गया और उस अधकार मे उस कागज पर लिखे शब्द जैसे खो गए। हॉल मे ऐसी निस्तब्धता छा गई कि सुई गिरे तो उसकी भी आवाज सुनी जा सके। इस निस्तब्धता ने उसके होश और भी गायब कर दिए। उसे लगा कि गिर पड़ेगा। तब उसने जोर देकर अपने को सभाला और अटकते-अटकते अपने भाषण को पढ़ना शुरू किया, 'भाइयो और बहनो, मुझ नाचीज को आपने आज इतना सम्मान दिया, यह आपकी किरपा है। मैं इसके लायक कहा हू। आज हमारे मुलक को सबसे जियादा जरूरत चरित्रवान लोगो की है। हमारे नेता और सरकार भौत अच्छी है। हम उनके पोछे चलें, तभी हमारा और हमारे मुलक का कलियान होगा। जै हिन्द।"

सभा के बाद जलपान मे शामिल होकर राम सेवक ने विदा ली तो कई लोग उसे कार तक पहुचाने आए।

घर आकर राम सेवक सीधा अपने कमरे मे गया और उसने अभिनदन-पत्र को अपनी कुर्सी के ठीक सामने टाग दिया। उसके दिमाग पर सभा का नशा अब भी पूरी तरह छाया हुआ था। लोगो के माला पहनाने के दृश्य बार-बार उसकी आखो के आगे चक्कर लगा रहे थे, लोगो के शब्द और तालियो की गडगडाहट उसके कानो म अब भी गूज रही थी। उसने विचारो को रोका नही। वह रस मे सराबोर हो रहा था।

काफी देर तक आनन्द-लोक मे विचरण करने के बाद वह बुदबुदाया, "ओह, दुनिया मे पैसे की माया है! पैसे से कुछ-का-कुछ हो जाता है। दो साल पहले उसे खाने क लाले पडे रहते थे। कोई पूछता तक नहीं था। जिसने आज स्वागत किया, यह वही आदमी था, जो सीधे मुह बात नही करता था। जिसने अभिनदन-पत्र पढा, उसने एक दिन उसको बुरी तरह फटकार दिया था। सब पैसे की महिमा है। आज उसका लाखों का हिसाब है। पैसा न होता तो नगर-परिषद का सदर तो क्या, चपरासी भी कोई उसे न बनाता। समाज मे जो जीना चाहते हैं और शान से जीना चाहते है, उन्हे जैसे भी हो, पैसा कमाना चाहिए।"

राम सेवक बैठा-बैठा जाने क्या-क्या सोचता रहा, सोचता रहा। सभा मे किसी ने बोलते हुए कहा था, हम वह दिन देखने को लालायित है, जबकि हमारे सदर साहब सरकार मे मत्री की कुर्सी पर बैठेंगे। जी हा, उन्होने ठीक ही कहा था। चुनाव आनेवाले हैं। पैसा है तो जीत पक्की है, फिर मंत्री की कुर्सी गई कहा है!

इस विचार के आते ही राम सेवक किसी और ही दुनिया में पहुंच गया। उसके मकान के आगे भीड़ लगी है। मोटर-पर-मोटरें खड़ी हैं। लोग अपने मंत्री को बधाई देने आए हैं। तरह-तरह की बातें कह रहे हैं। विचारों के सागर में गोते लगाए हुए काफी देर हो गई। राम सेवक घर मे अकेला है। तीन साल पहले गरीबी के कारण ठीक से इलाज न होने के कारण उसकी पत्नी चल बसी थी। संतान कोई भी नहीं। बाद मे उसने दूसरा विवाह करने का विचार किया, लेकिन जब कमाई होने लगी तो वह उसी के चक्कर में पड़ गया। अब घर मे एक नौकर है। वही सबकुछ देख भाल लेता है।

जब बहुत देर हो चुकी तो नौकर ने आकर कहा, "सेठजी, खाना तैयार है।"

राम सेवक को भूख नहीं थी। फिर भी थोडा-सा खाकर वह अपने बिस्तर पर जा लेटा। विचारो का तांता अभी टूटा नही था। उसकी हालत ऊचे रक्तचाप के उस रोगी की तरह हो रही थी, जिसका दिमाग सांय-सांय करता है। वह करवट बदलता रहा। सोने की जितनी कोशिश करता, उतने ही तेज उसके विचार दौड़ने लगते।

अचानक देखता क्या है कि किसी ने धीरे से उसके कमरे का दरवाजा खोला। राम सेवक ने उसे देखा तो सिर से पैर तक काप उठा। "कौन, तुम सुधा ?"

'हा', सामने एक लडकी खडी थी और मुस्करा रही थी। वह राम सेवक की ओर देख रही थी और देखे जा रही थी। राम सेवक ने घबड़ाकर पूछा, "इस समय तुम यहा कैसे ?"

सुधा को जोर की हसी आ रही। उसे रोकते हुए बोली, "मैं आपको बधाई देने आई हूं। आज आपकी सभा मे मैं मौजूद थी और आपकी तारीफो के जिस समय पुल बाधे जा रहे थे, मैं बडे ध्यान से सारी बाते सुन रही थी और जब यह कहा गया कि आपने अपने दामन को हमेशा पाक रखा है तो मुझे मन-ही-मन बडी हसी आयी। खुशी भी हुई। मेरा दाग धुले या न धुले, पर धन ने और सत्ता ने आपके दाग तो धो ही दिए।"

राम सेवक ने हैरान होकर कहा, "सुधा, चुप हो जाओ! भगवान के नाम पर जबान बन्द करो!"

सुधा चुप नही हुई, उल्टे खिलखिला कर हसने लगी। हसी जब थोडी कम हुई तो बोली, "सचमुच पैसे मे बडी ताकत है। मैंने नही समझा था कि "

उसकी बात बीच मे ही काटकर राम सेवक ने रोती-सी आवाज मे कहा, "सुधा, आखिर तुम चाहती क्या हो ?"

"मैं ? नही, मैं कुछ नही चाहती।" हसते हुए सुधा ने कहा, "मैं चाह भी क्या सकती हू ? तुम डरो मत। मैं कुछ कहूंगी भी तो लोग मेरी बात पर यकीन नही करेंगे। कहेगे, तुम्हें बदनाम करके पैसे ऐंठना चाहती हू। मैं ऐसी गलती नही करूंगी। अब सच बोलने का जमाना नही रहा। पैसा है तो जो चाहो, कर लो और बेदाग रहो। सत्ता है तो सौ खून माफ हैं। कैसे भी कमाओ, कैसे भी सत्ता हासिल करो, यह कोई भी नही देखता! क्यो, है न ?"

"सुधा!" राम सेवक ने खीज कर कहा।

सुधा के चेहरे पर तनाव आ गया। बोली, "मेरा बडा भाग्य है, जो आपने मुझे पहचान लिया। मैं आपकी इस मेहरबानी को हमेशा याद रखूंगी। अच्छा, मैं जाती हू।"

राम सेवक को साहस नही हुआ कि उठे और उसकी बाह पकडकर कहे कि सुधा, रुक जाओ। बेदाग मैं नहीं, तुम हो—हां तुम। मैंने ही तो तुम्हारे साथ छल किया था। पर वह एक शब्द भी नही कह सका। वह गरीब और असहाय बाप की बेटी जो थी!

उसके जाने पर राम सेवक की निगाह सामने लटके अभिनंदन-पत्र पर गई। वह उसे देखता-का-देखता

रह गया ! लाल सुर्खी मे जहा लिखा था—'हे चरित्र के धनी,' वहां उसके आगे काली स्याही में एक प्रश्न-चिह्न लगा हुआ था। राम सेवक को अपनी आखों पर विश्वास नहीं हुआ। जब यह अभिनंदन-पत्र दिया गया था तब तो वहा ऐसा कोई निशान नहीं था। उसने मन-ही-मन कहा, "लोगो ने मेरे साथ मजाक किया है। ऐसी स्याही में यह निशान लगा दिया कि उस समय तो दीखे नहीं, लेकिन बाद मे चमक उठे। मैं कल एक-एक की खबर लूगा।"

राम सेवक ने करवट बदली और जोर से आखें बद कर लीं। तभी धीरे से फिर दरवाजा खुला। इस बार सामने रामदयाल खडा था। तन पर चिथडे थे और चेहरा खूखार हो रहा था। राम सेवक को लगा, वह उसे उसी घडी चीरकर दो कर देगा। वह डर के मारे कापने लगा। उसकी घिग्घी बध गई। रामदयाल ने चेहरा थोडा मुलायम करके कहा, "अरे, डरते हो ! अब डरने की क्या बात है ? बेईमानी करके तुमने मेरा सब कुछ हडप लिया, मुझे भिखारी बना दिया तो इसमे तुम्हारा कुसूर क्या है ! राम सेवक, पैसा हमेशा पैसे के पास जाता है।"

राम सेवक का डर कुछ कम हुआ। रामदयाल अब हसने लगा। बोला, "मैं तुम्हें यह बताने आया हू कि आज मैं बहुत खुश हू। मेरा पैसा फला, तुम धन्नासेठ और रुतबेदार बन गए।"

'रामदयाल !'

'नही, भाई,' रामदयाल का चेहरा फिर तन उठा, "तुमने जो किया, वह ठीक किया, बहुत ठीक किया। रहम करने से पैसा नही आता। रहम करने वाले धनी नही बन सकते। मेरे बाप ने कर्ज लिया था। तुमने दसगुना वसूल कर लिया। राम सेवक, मुझे बडी खुशी है कि तुम्हारा कर्ज चुक गया, तुम्हारी आत्मा ठडी हो गई। अच्छा, बधाई। मैं अब जाता हू।"

राम सेवक ने देखा कि एक स्त्री और एक लडकी उसके सामने खडी गिडगिडा रही है। "अरे, यह तो रामदयाल की मा और बहन हैं। कैसी बेबसी दिखा रही हैं ! नही जी, मेरे पास लुटाने को पैसा नही है।" राम सेवक पत्थर का बना रहा।

रामदयाल धीरे से दरवाजा खोलकर बाहर हो गया। उसके जाते ही राम सेवक ने चैन की सास ली। लेकिन यह क्या, लोगो की बदमाशी देखो, अभिनदन-पत्र मे जहां 'हे दया-निधान' लिखा था, वहा कम्बख्तो ने कितना मोटा प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। सारे अभिनदन-पत्र को इन लोगो ने बिगाड डाला है ! नही, यह रामदयाल का काम नही हो सकता। उस बेचारे मे इतना दम ही कहा है ? यह तो अभिनदन-पत्र देनेवालो ने मेरे साथ कपट किया है। हे भगवान, मैं क्या करू !

राम सेवक तग आ गया था। उसने जोर से कमरे की किवाडें बद कर ली, फिर बुदबुदाया, "अब देखता हू, कौन माई का लाल मेरे कमरे म आता है।" वह चादर ओढ़कर सो गया।

पर थोडी हो देर मे उसे फिर कमरे मे किसी के पैरो की आहट सुनाई दी। आखें खोली तो सामने नगे बदन का एक काला-कलूटा आदमी खड़ा था। उसके चेहरे पर सतोष झलक रहा था। खुशी अग-अग से फूट पड रही थी। वह कुछ देर राम सेवक की ओर देखता रहा, फिर बोला, "दोस्त, मैं कई दिन से किसी अच्छे घर की खोज कर रहा था, पर मिलता नही था। आज मिल गया। अब मैं यही रहूगा। घबराओ नही, बिना मेरे सहारे के धन और सत्ता कुछ नही कर सकते। इसान को भगवान ने आत्मा दी है, वह मेरी दुश्मन है ! मेरा काम उसी को हराकर अपने वश मे करना है। आत्मा जहा मेरे वश मे आई कि मेरा राज्य कायम हो जाता है। तब धन और सत्ता ऐसे-ऐसे करिश्मे दिखाते हैं कि क्या कहना !"

वह यह सब एक सांस मे कह गया। राम सेवक के शरीर को जैसे लकवा मार गया। एक तो आगंतुक

की शक्ल ही बड़ी भयानक थी, दूसरे, वह बात बड़ी अजीब-सी कह रहा था। राम सेवक ने हिम्मत करके पूछा, "तुम कौन हो ? मैंने तुम्हें पहचाना नहीं।"

आगंतुक ठहाका मार कर हंसा और इतना हसा कि उसके पेट मे बल पड गए। फिर बोला, "तुमने मुझे पहचाना नहीं। और कोई बात नहीं। अब पहचान लोगे। मेरा डेरा अब इसी घर में लग गया है। तुम मुझे देख नहीं पाओगे, पर मैं अपना काम करता रहूंगा।"

इतना कहकर वह जाने को मुड़ा तो रामसेवक के प्राण मुह को आ गए। उनकी पीठ पर बिजली की तरह तीन अक्षर कौंध रहे थे—शै-ता-न !

राम सेवक ने कसकर आंखें मूद ली। सरसाम मे जैसे बीमार का बदन कापता है, वैसे ही उसका बदन बुरी तरह से कांप रहा था।

इतने में किसी ने दरवाजा खटखटाया। राम सेवक मारे डर के आखें नही खोल सका। तभी उसने सुना, नौकर कह रहा था, "सेठजी, उठिए। सवेरा हो गया है। चाय तैयार है।"

अल्हड़ लड़की

नई कोठी के एक कमरे मे अपने अस्त-व्यस्त पड़े सामान को ठीक कर रहा था कि बाहर से किसी ने पुकारा, "बाबूजी !"

हाथ की चीज को हाथ मे थामे मैंने निगाह उठा कर दरवाजे की ओर देखा तो चौखट के सहारे ग्यारह-बारह साल की एक लडकी खडी थी। उसके बाहर रुक जाने से मुझे यह समझते देर न लगी कि वह आसपास की कोठियो मे रहनेवाले किसी नौकर की लडकी है। उपेक्षा-भाव से मैंने पूछा, "क्यो, क्या है ?"

मेरे इस सवाल पर लडकी सहमी नही। बडे सधे स्वर मे बोली, "थोडी-सी चाय दे दीजिए।"

सामने काम का अम्बार था। मन वैसे ही हैरान हो रहा था। फिर मैं यह भी सुन चुका था कि नौकरो के इन बच्चों को एक बार कोई चीज दे देना अपने सिर आफत मोल लेना है। उसके बाद उनकी कोई-न-कोई फरमाइश रोज होती रहती है। अलमारी की ओर बढ़ते हुए मैंने तिरस्कार से कहा, "भाग जा ! चाय-वाय यहा नही है !"

इस रूखे उत्तर से लडकी चली नही गई और न निराशा की कोई झलक ही उसके चेहरे पर दिखाई दी। गभीर आवाज मे बोली, "चार पत्तियां दे देंगे तो आपको कौन कमी आ जाएगी !"

उसकी इस बात पर बडी खीज हुई, पर उसे पी गया। कुछ भी बोला नही। बिना बात मगजपच्ची करने से कोई फायदा नही था।

पर लडकी चुप नहीं रही, बोली, "बड़ी बुरी आदत पड गई है, बाबूजी ! चाय नही मिलती तो काम नही होता और काम नहीं होता तो मां मारती है।"

"तो मैं क्या करू ?" मैंने झुझलाकर कहा, "तू यहां से फौरन चली जा। मुझे अपना काम करने दे ! मैंने कोई दुनिया का ठेका थोड़ा ले रखा है !"

इतना कहकर मैं किताबें छाटने में लग गया। दरवाजे की ओर पीठ कर ली। कोई दसेक मिनट बाद

अचानक निगाह ऊपर उठी तो देखता क्या हू, वह लडकी सीढ़ी के सहारे बैठी जमीन पर उंगली से टेढ़ी-मेढ़ी आकृतिया बना रही है। बनाती है, बिगाडती है। कभी एक आकृति के ऊपर दूसरी आकृति बना देती है। फिर उसे ध्यान से देखती है और मुस्करा उठती है, कभी गभीर हो जाती है! चेहरे पर उसके एक अजीब तरह का भोलापन था। इस भाव-परिवर्तन से वह भोलापन और चमक उठता था। क्षण-भर मैं उसके खेल को देखता रहा और वह बालिका सृष्टि और विध्वस के अपने खेल मे खोई रही।

उसका भोलापन मुझे अच्छा लगा, लेकिन उसकी ढीठता ने मेरी कठोरता को कम नही होने दिया। एक बार कह दिया था कि चली जाए तो उसे चली जाना चाहिए था! पर वह तो न सिर्फ नहीं ही गई, बल्कि वहा जमकर बैठ गई और अपना खेल शुरू कर दिया! मैंने तय कर लिया कि कुछ भी हो जाए, उसे चाय देना नही!

थोडी देर मे खेल से उसका ध्यान टूटा तो फिर वही रट लग गई, "अरे, बाबूजी! दीजिये न थोड़ी-सी चाय।"

बात छोटी थी, पर जब जिद सिर पर सवार हो जाती है तो छोटी चीज भी बडी बन जाती है। वही हुआ। मैंने ठान ली कि वह हजार कहेगी तो भी मैं उसकी माग पूरी नही करूगा।

इतने मे देखता हू कि वहा की जमादारिन "अमीरन, ओ अमीरन की बच्ची," चिल्लाती हुई आई और लडकी को सामने देखकर उसका पारा आसमान पर पहुच गया। उसने आव देखा न ताव उसके मुह पर तडातड-तडातड पाच-सात चाटे रसीद कर दिये। मारती जाती थी और कहती जाती थी, "इस कम्बख्त ने मेरी जान मुसीबत मे कर दी है। मर जाय तो मेरा कलेजा ठडा हो जाय। घर चल। आज तेरी बोटी-बोटी अलग न कर दी तो कहना!"

इस तूफान की मैंने कल्पना भी नही की थी। इतनी बेरहमी से लडकी को पीटते हुए देखकर मैंने ऊची आवाज मे कहा, "यह क्या है, जमादारिन?"

"क्या बताऊ, बाबूजी!" वह रोती-सी बोली, "इस लडकी ने मेरा नाक मे दम कर रखा है! इतनी बडी हो गई है, पर काम का रत्ती-भर सहारा नही। आप ही बताइये, मैं कमाने जाऊ या बच्चे को लेकर घर मे बैठू? घर से अभी-अभी निकली थी कि यह शैतान की बच्ची यहा भाग आई और बच्चे ने चारपाई से गिर-कर सिर फोड लिया। आज मैं भी इसका सिर फोडे बिना नही मानूगी।"

गुस्से के मारे जमादारिन काप रही थी। शब्द भी उसके मुह से ठीक-ठीक नही निकल पा रहे थे।

मैंने कहा, "यहा शोर मत मचाओ। चली जाओ।"

जमादारिन ने लडकी को बाह पकड कर उठाया और धक्का देकर बोली, "अब चलती है कि यही गडी रहेगी!"

उनके चले जाने पर मुझे बुरा लगा। मैं अपने को दोषी मानने लगा। आखिर ऐसा क्या था, जरा-सी चाय दे दी होती तो वह मासूम लडकी इतनी क्यो पिटती और बात इतना तूल क्यो पकडती? पर अब क्या हो सकता था! जो होना था, वह हो चुका था।

अगले दिन दोपहर को कालेज से लौटा तो देखा, अमीरन एक छोटे बच्चे को लिए आम के पेड के नीचे बैठी है। बच्चा पेड की सूखी पत्तियो मे खेल रहा है और अमीरन आम की एक हरी पत्ती के बीच सींक डालकर उसे हवा मे घुमाने का प्रयत्न कर रही है। मुझे देखते ही वह कुछ सहमी, फिर सभलकर मुस्करा उठी।

पिछले दिन की घटना मैं भूल गया था। अमीरन को देखते ही वह याद आ गई। बडे सहजभाव से मैंने

उससे पूछा, "क्यों री अमीरन, कल घर जाकर मां ने और मार-पीट तो नही की ?"

"बाबूजी," उसने गंभीर होकर कहा, "छोडिये उस बात को।"

उस छोटी-सी लड़की के मुह से यह सुनकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा, "अमीरन !"

"क्यो, नाराज हो गए ?" वह बोली, "आप मां को जानते नही। उसकी आदत बडी अजीब-सी है। कहीं का गुस्सा कहीं उतारती है ! कल मिस्त्री से उसकी कुछ कहा-सुनी हो गई और भूत उतरा मेरे सिर पर। लेकिन बाबूजी, वह सब तो चलता ही रहता है !"

मैं चुपचाप उसकी बात सुन रहा था। अमीरन की आखे छलछला आई। रुधे कठ से बोली, "क्या कहू बाबूजी, घर जाकर दो संटिया ऐसी मारी कि उनके निशान अबतक बने हैं।"

कहते-कहते कई आंसू उसकी आंखो से लुढ़क पड़े। उन्हें पोछते हुए उसने कहा, "बाबूजी, मैं बडी पागल हू। खेल मे ऐसी डूब जाती हू कि काम की याद नही रहती। फिर आप ही बताइए कि यह भी कोई अच्छी आदत है कि चाय न मिले तो कोई काम ही न हो ?"

मैंने उत्सुकता से पूछा, "कल फिर चाय मिली या नही ?"

"कहा से मिलती, बाबूजी ! मा गुस्सा थी और घर मे चाय थी नही ! तभी तो "

अमीरन कातर हो उठी।

"क्यो, आज मिली ?" मैंने सहानुभूति के साथ पूछा।

"वाह, आज क्यो न मिलती !" उसने मुस्कराकर कहा, "मा मेरी बडी अच्छी है। कल जब भूत उतर गया तो बाजार गई और चाय का एक पुडा ले आई।"

उस दिन से अमीरन के प्रति मेरे मन मे बडी ममता पैदा हो गई। सच कहू, जब मैंने उसकी पीठ पर सटी के दो निशान देखे तो मुझे रोना आ गया। उस चोट की पीडा का मैं अनुमान कर सकता था। एक दिन पढ़ाई से जी चुराकर भाग जाने के अपराध मे जब मुशीजी ने दो बेंत मेरी पीठ पर मार दिये थे तो तीन दिन तक बुखार मे पडा रहा था।

धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया। इस बीच अमीरन मेरे बहुत निकट आ गई। खाली समय होता तो वह मेरे पास आ बैठती और दुनिया-भर की बाते करती रहती। भूल जाती कि अब वह इतनी बडी हो गई है। मैं सोचता कि हे भगवान, यह कब तक अल्हड बनी रहेगी ! कभी सिर पर से धोती हटा कर दो आनेवाले नकली बुदे दिखाकर कहती, "बाबूजी, जरा देखना, कैसे लगते हैं ?" मैं हस पडता। वह भी हस पडती। कभी कहती, "बाबूजी, मेरे लिए एक बढ़िया-सा दातो का बुर्श ला देना। मेरा बुर्श बहुत पुराना हो गया है।" ऐसी ही जाने क्या-क्या बातें करती। एक दिन बोली, "बाबूजी, मुझे पढ़ा दिया करो। दो घटे रोज पढाओगे तो ढेर सारा पढ़ जाऊगी। फिर तुम्हारी तरह साइकिल पर चढ़कर पढ़ने जाया करूगी।" मैंने हंसी को रोकते हुए कहा, "यह भी तो कह कि तुम्हारी तरह कोट-पतलून भी पहना करूगी।" मुह बनाकर बोली, "छि, कोट-पतलून तो मुझे बहुत ही बुरे लगते हैं। मैं तो बेलबूटे की साडी पहनूगी।"

उसकी बातों का अत नही था। मैं मानता हूं कि अगर बताया न जाता तो यह कहना असभव था कि वह अछूत कन्या है। वह किसी उच्च परिवार की लगती थी। रग साफ, चेहरा मनोरम, दांत चादी की तरह चमकीले। बातों मे कोई उच्च वर्ग का व्यक्ति उसका क्या मुकाबला करता !

दिन बीतते गये, पर अमीरन का शैशव जैसे अनंत काल तक चलता जाएगा। बूढ़ी हो जाएगी, तब भी बच्चों की तरह हसेगी और वैसे ही बात करेगी।

उसकी कोठरी हमारी कोठी के ठीक पीछे थी। उधर से निकलता तो देखता कि वह अपने काम मे या किसी खेल से लगी है। बाल इधर-उधर बिखरे हैं और सिर की ओढ़नी ढुलककर कधे पर आ गिरी है, पर अमीरन को कुछ भी पता नही है। मैं पास पहुचकर कहता, "अमीरन !"

वह चौक पडती। सिर उठाकर कहती, "हाय, मैं तो डर गई ! कहां जा रहे हो ?"

"कही नही, यो ही घूमने निकला था।" मैं कह देता। मेरी आवाज सुनते ही जमादारिन कोठरी से निकल आती। कहती, "बाबूजी, इस लडकी को बिलकुल शऊर नही है। देखिये, बालो का क्या हाल है और सिर का दुपट्टा कहा जा रहा है ! आप ही इसे समझाइये, बाबूजी। कल को इसे पराये घर जाना होगा। वहां कैसे निभावेगी ?"

मा की इस बात पर अमीरन खूब हसना चाहती, पर डरकर हसी को रोक लेती। कभी रोकते-रोकते हसी निकल पडती तो जमादारिन झिडककर कहती, "ओ बेहया लड़की, जरा तो बडो का लिहाज किया कर। हर घडी भट्टी-सा मुह फाडना अच्छा नही होता।"

मैं जमादारिन को समझाता, "तुम घबराओ मत, यह लडकी बड़ी अच्छी है। ससुराल मे जाकर अपने घर का नाम ऊचा करेगी।"

"नाम ऊचा करेगी !" जमादारिन बेटी की बडाई की सुनकर मन-ही-मन फूल उठती, पर अपने उल्लास को व्यक्त न करते हुए कहती, "बाबूजी, आदमी का चाम नही, काम प्यारा होता है। फिर बाबूजी, आप ही बताइये कि कौन ऐसा धन्नासेठ है, जो इसे दो-दो बार दिन मे चाय पिलावेगा, दांतो के लिए बुर्श-मजन लाकर देगा और नई-नई साडियो से इसे सजावेगा ?"

बात खत्म करने के लिए मैं कह देता, "अरे, छोडो भी इस पचडे को ! भगवान पर भरोसा रखो, सब ठीक हो जाएगा।"

मा के पीछे खडी होकर अमीरन मुह मे कपडा लगाकर खूब हसती। कभी-कभी तो मारे हसी के उसकी आखो मे पानी आ जाता और वह वहा से भाग जाती।

आखिर मेरी पढाई पूरी हो गई और मुझे वह शहर छोडना पडा। सामान बाधकर चलने को तैयार हुआ तो अमीरन आयी। चेहरे पर उसकी रोज की मुस्कराहट नही थी। बोली, "जा रहे हो, बाबूजी ?"

"हा।"

"अब कब आओगे ?"

"कह नही सकता, कब आऊगा ! शायद न भी आऊ। अब तो कही काम देखना पडेगा।"

उसका गला भर आया। बोली, "कभी-कभी हमारी याद कर लिया करना। करोगे ?"

मैं चुप।

"बाबूजी, तुम्हे याद नही आवेगा कि अमीरन नाम की कोई पागल लडकी थी, जिसे बात करने का सलीका नही था ?"

मैं फिर भी चुप रहा।

वह मुस्कराकर बोली, "अरे, बोलते क्यो नही हो ? देखो, आने मे देर हो जाय तो चिट्ठी भेज देना। मेरे ही नाम लिखना। क्यो, नाम याद रहेगा न ? यहां आओ तो बिना मिले मत जाना। सुनते हैं न, बाबूजी ?"

मैं क्या जवाब देता ! अमीरन की एक-एक बात निराली थी। उसका ढग ही बडा विचित्र था। इस समय चेहरे पर जो मुस्कराहट दीख पडती थी, वह भीतर से उठकर थोडी आ रही थी। भीतर तो जैसे उसके

दिल को कोई कुरेद रहा था ! वह कैसे भूल सकती थी कि परसों या अगले दिन उसकी नई सिलवार सिलकर आवेगी तो वह उसे दिखाने कहां आएगी ? इस समय वह जो बात-पर-बात किये जा रही है तो सिर्फ इसलिए कि उसकी जबान जरा भी रुकी कि उसके भीतर का रोना बाहर आ जाएगा। इसीसे वह रुकना नहीं चाहती। जो जी में आ रहा है, कहे जा रही है।

"एक बात कहूं ? बुरा मत मानना, बाबूजी।.. अपने ब्याह में अमीरन को बुलाना मत भूलना। तुम्हारी चिट्ठी मिलते ही चली आऊंगी। सच मानो, अमीरन झूठ नहीं कहती। बहूजी को देखने को मेरा बड़ा मन है।"

इतने मे तांगा आ गया। सामान रखा गया। बैठने लगा तो बोली, "चिट्ठी जरूर लिखना। मैं ही लिखती, पर मुझे लिखना तो तुमने सिखाया ही नही !"

कहकर उसने अपने हाथ मेरे पैरो की ओर बढा दिए। फिर दुपट्टे से आंख पोछती हुई आड मे खडी हो गई।

प्रयाग छोड़े कुछ समय निकल गया। इस बीच दो-तीन बार वहां जाना हुआ, लेकिन अमीरन से मिलना नहीं हो सका। समय था, सुविधा भी थी, लेकिन सोचा कि वह अब अपनी मां के पास थोडी बैठी होगी। अंतिम बार पता लगाया तो मालूम हुआ कि उसकी शादी हो गई और वह अपनी ससुराल चली गई। चलो, अच्छा हुआ। अपने घर मे वह सुख से रहेगी। मेरा मन निश्चिंत हो गया।

मैं भी अपने काम मे लग गया। काम क्या था, दिन गुजारने थे, समय काटना था। पैसा कमाना चाहता था, पर दुनियादार बनकर नही। उसके लिए एक विशेष प्रकार के मनोभाव की आवश्यकता थी, जो मेरे पास नही था। नतीजा यह हुआ कि बहुतेरा सिर पटकने पर भी पैसे की तंगी बनी रही। लिखने से इतनी आमदनी नही हो सकती थी कि अपना और अपने पर आश्रित चार प्राणियो का अच्छी तरह पेट भर जाता। रोज कोई-न-कोई मुसीबत खडी रहती। मुश्किल यह थी कि न मैं बदल सकता था और न दुनिया बदल सकती थी। ईमानदारी से कमाई करना एक प्रकार से नामुमकिन था।

कल अपने कमरे मे बैठा नई कहानी के लिए कोई कथानक खोज रहा था। पर मन जम नही पा रहा था। घर की समस्याएं सामने आ रही थी। मन कभी इधर दौडता था, कभी उधर।

इतने मे नौकर के चीखने की आवाज सुनाई दी।—ओफ, इस, शैतान से बाज आया ! जब देखो, गला फाडकर बोलता है ! मैंने झल्लाकर कहा, "क्या है रे चंदू के बच्चे ?"

बोला, "बाबूजी, इस मेहतरानी को समझाते-समझाते हैरान हो गया हूं। कम्बख्त रोज कूडा पडा छोड जाती है। टट्टी अच्छी तरह नही धोती। आती है और एक-दो झाड़ू इधर-उधर मारकर चली जाती है। बताइये, मैं क्या करूं !"

मैंने कहा, "इसमे गला फाडने की क्या बात है ? धीरे-से क्यो नही समझा देता ?"

इतने मे मां ने आकर कहा, "चंदू ठीक कहता है। समझाने से यह मानती है ? दस बार तो मैं इससे कह चुकी हूं। जबसे यह नई मेहतरानी आई है, तबसे रोज का रोना हो गया है। इसकी देह ही नही चलती !"

मैंने कहा, "ठीक है मां, काम नहीं करती तो इसे जवाब दे दो और दूसरे मेहतर का इंतजाम कर लो। मुझे झिक-झिक अच्छी नहीं लगती।"

मेहतरानी को जवाब दे दिया गया और उससे कह दिया गया कि अगले दिन आकर अपना हिसाब ले जाय।

दूसरे दिन मेहतरानी आई। मां मदिर गई थी, चदू बाजार गया था, भाई पढ़ने चले गए थे। घर मे मैं अकेला ही था। मेहतरानी ने दरवाजा खटखटाया तो मैं बाहर आया। पर यह क्या, सामने माथे तक का घूघट निकाले जो मेहतरानी खडी थी, वह अमीरन थी।

आश्चर्य से भरकर मैंने कहा, "अमीरन !"

आवाज सुनकर अमीरन ने मुह ऊपर उठाया। एकबारगी वह अपनी आंखो पर विश्वास न कर सकी। बोली, "तुम हो, तुम बाबूजी ?"

मैंने कहा, "तू "

बोली, "हा, मैं यही हू।"

उसने घूघट पीछे हटा दिया। अपने बाबूजी से यो मिल जायगी, यह उसने सपने मे भी नही सोचा था। कही उसकी आखें तो धोखा नही दे रही हैं। उसने आखें मली, फिर बोली, "बाबूजी, तुम बडे बुरे हो ! मुझे चिट्ठी तक नही भेजी ! मैं बराबर राह देखती रही।"

मैंने पूछा, "कहां रहती है ?"

"यही पिछवाडे।"

"पिछवाडे ?"

"हा, चार कदम पर।"

मैंने पुराने दिनो की याद करते हुए कहा, "अमीरन, अब तो तू बडी हो गई है।"

"बडी !" और वह जोर से हस पडी। अरी, अमीरन, तेरा अल्हडपन कभी दूर नही होगा। मैंने मन-ही-मन कहा। हसी रुकने पर वह बोली, "बाबूजी, तुम भी खूब हो ! कितने दिन बीत गए हैं। सच कहो, क्या मुझे बडा नही होना चाहिए ?"

मैं कुछ कहू कि वह बोली, "अब जाऊगी। देर हो गई है। मुझे अभी कई घरो मे जाना है।"

मैंने कहा, "कल से काम पर आना। मैं मा से कह दूगा।"

वह फिर एक बार हस पडी। बोली, "तुम क्या कहोगे ! अब तो मा कितना ही मना करें, मेरे पैर कहा रुकने वाले हैं। समझे ?"

उसके जाते-जाते मैंने पूछा, "क्यो री, चाय मिल जाती है न ?"

वह लौट पडी। मुस्कराती हुई बोली, "तुम क्या समझते हो, बचपन की पडी आदत छूट सकती है ?"

"ठीक कहती है।" मैंने विनोद मे कहा, "चाय की आदत नही छूट सकती तो आलस की आदत भी कहा छूटनेवाली है ! क्यो है न ?"

उसने शरारत से मेरी ओर देखते हुए कहा, "बडे खराब हो, बाबूजी ! बुरी बातें कही याद रखी जाती हैं ?"

मुझे हसी आ गई। अमीरन अपनी हसी को होठो के बीच रोकती हुई बोली, "बाबूजी, यह मत भूलना कि मैं अब मां के पास नही हू, ससुराल मे हू। हा, यह तो बताओ कि तुमने ब्याह किया या नही ?"

उसके प्रश्न को टालते हुए मैंने कहा, "अच्छा, अब कल बात करेंगे।"

अमीरन ने घूघट खीचकर फिर मुह पर डाल लिया और चचल गति से आखो से ओझल हो गई।

तट का बंधन

गिरधारी अपनी किशोर बय के अतिम चरण मे था। उसका विवाह कई साल पहले हो चुका था, लेकिन बच्चा कोई नही हुआ। घर में वे दो ही जने थे। उसकी मा का देहान्त उसके जन्म के कुछ ही दिन बाद हो गया था। पिछले वर्ष उसके पिता भी चल बसे। वह उनकी अकेली संतान था। अब उसका पास का कोई भी सबधी नहीं था।

उन दोनो का जीवन सामान्य गति से चल रहा था। कोई विशेष बात नही थी। अचानक एक रोज जाने कैसे ऐसा तूफान आ गया, जिसकी उसकी पत्नी सीता तो क्या, कोई भी कल्पना नही कर सकता था। एक दिन रात को वह खा-पीकर अच्छी तरह सोया, पर सवेरे उठते ही उसने पत्नी को आवाज दी और अपने पास बिठाकर कहा, "सुनोजी, मैं आज से हम दोनो के बीच के पति-पत्नी के सबध को समाप्त कर देना चाहता हू। आगे से अब हम दोनों भाई-बहन के रूप मे रहेगे।

बात इतनी अप्रत्याशित थी कि पत्नी हक्की-बक्की रह गई। उसे काटो तो खून नही। उनके विवाहित जीवन के लम्बे अर्से मे ऐसा प्रसग पहले कभी नही आया था। पत्नी बडी समझदार थी। उसने शीघ्र ही अपने को सभाल लिया। बोली, "तुम जो कह रहे हो, वह बडा कठिन काम है। जैसा ठीक समझो, मुझे कोई आपत्ति नही है, अच्छी तरह सोच-समझ लो।"

गिरधारी ने दृढ़ता से कहा, "मैं क्या जानता नही कि जो कदम मैं उठा रहा हू, वह आसान नही है? पर मैं अब साधना के रास्ते पर चलना चाहता हू। यह मेरी अतरात्मा की पुकार है और मैं उसे दर-गुजर नही कर सकता। मेरी इच्छा है कि तुम भी मेरा साथ दो और मुझे भाई के रूप मे मान लो।"

पत्नी बोली, "पति का दर्जा बहुत ऊचा होता है। मैंने आप को देवता के रूप मैं माना है। मैं आप को भाई के रूप मे नही, पर गुरु के रूप मे स्वीकार कर सकती हू। जबतक जिऊगी, आप की शिष्या बनकर रहूगी।"

गिरधारी ने कहा, "ठीक है। बात एक ही है। भाई मानो या गुरु, यह रिश्ता मुझे मजूर है। आओ, हम दोनो प्रतिज्ञा करे।"

पत्नी बोली, "प्रतिज्ञा मे बधने से पहले एक बार फिर सोच लो। प्रतिज्ञा बच्चो का खेल नही है। एक बार की कि फिर जब जी मे आया, तोड़ी नही जा सकती। प्रतिज्ञा बडी पवित्र होती है। एक बार ले लेने पर जिन्दगी भर उसे निभाना होता है।"

गिरधारी ने कहा, "तुम जो कुछ कह रही हो, वह सब मैं समझता हू और समझ-बूझकर ही प्रतिज्ञा करता हू कि आज से मैं तुम्हारा गुरु और तुम मेरी शिष्या।"

पति के प्रतिज्ञा कर लेने पर पत्नी भी पीछे न रही और उसने भी उस नये सबध की शपथ ले ली। उस दिन से घर का सारा वातावरण बदल गया। दोनों एक नये रास्ते पर चल पडे।

गिरधारी अब सत्यानद और सीता मीरा बन गई। उनके कमरे अलग-अलग हो गये। गद्दो के मुलायम बिस्तरो की जगह कडे तख्तो ने ली। अपने इस परिवर्तन से दोनो बहुत सतुष्ट और खुश थे। कुछ दिन इसी प्रकार निकल गये।

एक दिन सत्यानद ने कहा, "मीरा, चलो बद्रीनाथ हो आवे। हफ्ते दस दिन मे लौट आवेंगे।"

मीरा बोली, "एक बार हम साथ-साथ वहा यात्रा कर आये हैं। मेरी मा बीमार है। बार-बार बुला

रही हूं। आपकी वजह से मैं अब तक जा नही पाई। आप बदरीनाथ हो आइये। मैं मां को देख आऊं। आप लौट कर आवेंगे तब तक मैं भी आ जाऊगी।"

सत्यानद ने कहा, "अच्छी बात है। मैं इस बार बदरीनाथ धाम चला जाऊंगा। तुम मां के पास हो आना। आज से आठवे दिन आ जाना। मैं भी लौट आऊगा।"

इस निश्चय के अनुसार इतवार को वे दोनो अपने-अपने स्थानो को रवाना हो गए।

दोनो की यात्रा बडे आनद से सम्पन्न हुई। सत्यानद हरिद्वार से बस द्वारा चलकर ऋषीकेश, लक्ष्मण झूला, चमोली, पीपलकोटी होकर जोशी मठ पहुचा। रात को वहा रहा और फिर अगले दिन सवेरे रवाना होकर १०बजे तक बदरीनाथ पहुच गया। वहा सयोग से उसे मोदी भवन का एक कमरा मिला, जिसमे वह पिछली बार सीता के साथ ठहरा था। पर अब तो वह दूसरे ही रूप मे आया था। मौसम सुहावना था। ठण्ड अधिक नही थी और भारत के कोने-कोने से यात्री आ-जा-रहे थे। अधिकाश नर-नारी धार्मिक भावना से प्रेरित और पूरित होकर आए थे, पर कुछ सैलानी लोग भी थे, जो हिमालय के हिम-मडित शिखर, उसकी हरी भरी उपत्यकाए, कलकल निनादिनी अलकनदा, सरस्वती और अलकनदा के सगम पर स्थित व्यास गुफा तथा वसुधारा के अलौकिक सौंदर्य को देखने आये थे।

इन सैलानियो मे बगाल से आया एक कलाकार था अमलेन्दु। उसकी उम्र अधिक नही थी। यही कोई तीसेक वर्ष का रहा होगा। उसके साथ गुजरात की एक गौरागना थी कुमारिका मगला। दोनो कला के परम उपासक थे। उनकी आकृति, वेश-भूषा और चालढाल से सहज ही अनुमान किया जा सकता था कि वे कलाकार हैं। अमलेन्दु नागाधिराज हिमालय के प्राकृतिक दृश्य चित्रित करने आया था और मगला पार्वत्य प्रदेश के निवासियो का चित्राकन करने आई थी। दोनो उच्चकोटि के कलाकार थे, पर दोनो की कला के आयाम अलग-अलग थे। वे साथ-साथ सत्यानद के कमरे से सटे कक्ष मे ठहरे थे। आपस मे परिचय हो जाने पर सत्यानद उनके कमरे मे चला जाता था वे सत्यानद के कमरे मे आ जाते। सत्यानद देखता, उन दोनो की दुनिया बडी सुन्दर है। वे कभी पवत-शिखरो के ऊपर घूमते हुए मेघ खण्डो को देखकर उछल पडते तो कभी बदरी विशाल मदिर से अलकानदा की जलधारा को पार करके आते हुए आरती के स्वरो को सुनकर विभोर हो उठते। प्रात बाल-रवि की किरणो से जब नर-नारायण पर्वतो के शिखर स्वर्णिम आभा से युक्त हो उठते तो वे दोनो कलाविद मानो किसी देवलोक मे पहुच जाते। कभी-कभी रात्रि की नीरवता म वे मोदी भवन के प्रागण मे खडे होकर अलकनदा का सगीत सुनते। उनका जीवन रस से परिपूर्ण था। प्रकृति की हर छठा उन्हे आनद से आप्लावित कर देती थी।

पर सत्यानद की तो दुनिया ही अब बदल गई थी। वैसे बाहरी चीजो मे उसका पहले भी विशेष रस नही था, पर जो थोडा-बहुत था, अब तो वह भी सूख चला था।

एक दिन अलकनदा के उस पार अमलेन्दु तप्तकुण्ड मे स्नान करने चला गया। मगला अकेली रह गई। वह सत्यानद के कमरे मे आ गयी। उसने एक रमणी का चित्र बनाया था, जो सौंदर्य की अद्भुत प्रतिभा थी। पर्वतीय परिधान तथा अलकारो से सज्जित उस रूपसी के अग-प्रत्यग से यौवन फूटा पडता था। उसके होठो की मद-मद मुस्कान उसकी सुन्दरता को कई गुना बढा रही थी।

मगला उस चित्र को तैयार कर चुकी थी। बडे उल्लास के साथ वह उसे अपने साथ लाई और सत्यानद को दिखाकर बोली, 'कहिए, आपको यह कैसा लगा ?"

सत्यानद ने चित्र को बडे ध्यान से देखा और बोला, "आपने तो गजब कर दिया है। ऐसा लगता है, यह इद्रलोक की कोई अप्सरा है। इसके चेहरे पर आपने जो अलौकिकता का भाव प्रदर्शित किया है, वह अनूठा है।"

मगला को अपनी कृति की प्रशंसा सुनकर अच्छा लगा। गहरे संतोष के साथ वह बोली, "यह काल्पनिक चित्र नहीं है। यहा से थोड़ी दूर पर जो माना नाम का सीमात ग्राम है, वही यह लड़की अकस्मात मुझे मिली थी। मैं वहा दो दिन रही और उसका चित्र बनाकर लौटी।"

सत्यानद ने सोचा था कि वह कलाकार का कल्पित चित्र होगा, पर जब उसने यह सब सुना तो उसे और भी कुतूहल हुआ। रमणी की देह-यष्टि की सुघडता से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसे लगा, वह तरुणी सजीव हो उठी है और उसी की ओर देखकर मुस्कराकर कह रही है, "इस दुनिया से मुह मोड़कर जाओगे कहां? देखते नही, इसमे कितना सुख-सौंदर्य भरा पड़ा है।"

उस सौंदर्य-मूर्ति द्वारा कहे शब्दो की प्रतिध्वनि सारे वातावरण मे गूज उठी। सत्यानद ने सिर झटका, आखें खोली, पर वे शब्द पत्थर की लकीर की तरह उसके अतर मे अकित हो गए थे।

थोडी देर रुककर मगला चली गई और सत्यानद उस मादक नशे से मुक्त होने के लिए अलकनदा की शीतल धारा मे स्नान करने चला गया।

उसी शाम को अमलेन्दु और मगला लौट आए। सत्यानंद को भी पांच दिन हो गए थे और उसे वापसी मे एक दिन हरिद्वार मे रुकना था। उसने भी अपना सामान समेटा ओर अगले दिन सवेरे की बस से रवाना हो गया।

घर लौटा तो देखा, मीरा एक दिन पहले ही लौट आई है। उसे लगा, वह एक सप्ताह मे कुछ बदल गई है। पहले से उसका रूप कुछ निखर आया है और उसकी मुस्कराहट मे कुछ है, जो पहले नही था। मीरा ने पुलकित होकर बताया, "देखो, एक आदमी के पुण्य का लाभ सारे घर को मिलता है। आपकी तीर्थ-यात्रा के पुण्य-प्रताप से मा अब अच्छी है, और आपके चेहरे पर भी तो पहले से ज्यादा चमक आ गई है।"

सत्यानद के दिल मे मीरा की इस बात से कुछ गुदगुदी-सी हुई। पर वह कुछ बोला नही, उसने अपनी यात्रा का सारा हाल बडे रसपूर्वक सुनाया और मगला तथा उसके चित्र का भी विस्तार से वर्णन करते हुए कहा, "मन हुआ कि तुम भी साथ रहती तो कितना अच्छा होता।"

खा-पीकर सत्यानद अपने बिस्तर पर लेटा तो उसने पाया, उसके भीतर भारी द्वन्द्व चल रहा है। माना ग्राम की जिस तरुणी की छवि को वह पीछे छोड आया था, अनजाने उसके साथ आ गई है और वह मानो मीरा मे समाविष्ट हो गई है।

रात जैसे-जैसे बढती गई, सत्यानद का अतर्द्वन्द्व तीव्र होता गया। उसने सोने की बहुतेरी कोशिश की, पर माना की वह युवती उसका पल्ला ही नही छोडती थी। जब उसकी बेचैनी असह्य हो गई तो उसने मीरा को आवाज दी। कोई उत्तर नही मिला। उसने चिल्लाकर कहा 'मीरा, जरा यहा आओ।'

थोडी देर मे मीरा आई और खडी-खड़ी बोली, 'क्यो, इस समय आपने कैसे याद किया?'

सत्यानद ने कहा, "बैठ जाओ, तुम से कुछ जरूरी बात करनी है।"

मीरा एक ओर को नीचे जमीन पर बिछे फर्श पर बैठ गयी। सत्यानद बोला, "तुमसे कुछ कहना चाहता हू। बुरा तो नही मानोगी?"

मीरा ने पूछा, "क्या?"

वह बोला, "मीरा, मुझे लगता है कि आदमी को ईमानदार होना चाहिए।"

मीरा ने सहजभाव से कहा, "जरूर।"

"मीरा, देखो, तुम नाराज मत होना। दिल की बात तुमसे न कहू तो किससे कहू! हम तुम दोनो दु:ख-सुख के साथी रहे हैं। बात यह है कि ." सत्यानद एक सास मे कहकर सहसा रुक गया।

मीरा गहरी उत्सुकता से उसके चेहरे को देख रही थी और उस पर बढ़ते-उतरते भावो को पढ़ने का प्रयत्न कर रही थी। बोली, "जो कहना है, कह क्यो नहीं देते ? रुक क्यो जाते हैं ?"

सत्यानद ने कहा, "मीरा मीरा "

किंचित कठोर होकर मीरा ने कहा, "आप जो चाहते हैं, साफ-साफ कह दीजिए।"

सत्यानद ने सिर नीचा करके कहा, "मैं चाहता हू कि हम लोग फिर घर लौट आवें ?"

मीरा उसकी बात एकदम समझी नहीं। बोली, "मतलब ?"

सत्यानद ने साहस जुटाया। बोला, "मेरी इच्छा है कि हम दोनो फिर पहले की तरह पती-पत्नी"

मीरा ने उसका वाक्य पूरा नही होने दिया। बोली, "छि-छि, आप यह क्या कह रहे हैं ! कुछ ही दिनो मे भूल गए कि हम लोगो ने क्या प्रतिज्ञा की थी ?"

सत्यानद ने बिना हत्प्रभ हुए कहा, "तुम यह क्यो भूल जाती हो कि जो बनाता है, वह बिगाड भी सकता है। आखिर प्रतिज्ञा हमने ली थी। जबतक निभी, निभाई। नही निभी तो तोड दी।"

आक्रोश से भरकर मीरा बोली, "यह पाप आप कर सकते है, मैं नही कर सकती। कान खोलकर सुन लीजिए, मैं सोच-समझकर आपको गुरु के रूप मे स्वीकार कर चुकी हूं। अब किसी भी हालत मे आपके साथ पुराना सबध नहीं जोड सकती।"

इतना कहकर विद्रूप से उसने सत्यानद की ओर देखा और उठ खडी हुई। सत्यानद चकित रह गया। उसने उससे ऐसी आशा नही की थी। उसे खडा होते देखकर वह सपाटे से उसकी आर बढ़ा और ज्यो ही उसका हाथ पकडने को हुआ कि वह दौड कर कमरे से बाहर हो गई और अपने कमरे मे जाकर भीतर से किवाडें बद कर ली।

पर सत्यानद पर तो भूत सवार था। उसने मीरा के कमरे पर जाकर उसका दरवाजा थपथपाया। बोला, "सीता, तुम इतनी पत्थर मत बनो। मेरी हालत पर रहम खाओ। मीता, "अब मैं तुम्हारे बिना नही रह सकता। किवाडें खोल दो।"

बडे शात और सहज भाव से अदर से आवाज आई, "गुरुदेव, जिस दिन हमने प्रतिज्ञा ली थी, उसी दिन सीता मर गई थी। अब आप हजार कोशिश करें, वह जी नही सकती। "

"सीता सी-ता।" सत्यानद गिडगिडाया, पर मीरा ने किवाड नही खोले, नही खोले।

रात गाढ़ी हो आई थी। चारो ओर निस्तब्धता छाई थी। आकाश मे छोटे-छोटे मेघ-खण्ड आख-मिचौनी कर रहे थे। उनके बीच-बीच तारे टिम-टिमाते दिखाई दे रहे थे। सत्यानद मन मे गहरी घुटन लिए खुले आगन मे पडी चारपाई पर बैठ गया। उसके दिल मे तूफान उठ रहा था। वह अब क्या करे ? उसे कभी अपनी प्रतिज्ञा लेने की नादानी पर क्षोभ होता था, कभी मीरा पर गुस्सा आता था। वह कभी इतनी कठोर हो सकती है, इसकी अनुभूति उसे अपने जीवन मे पहली बार हुई थी।

वह विचारो के ज्वार-भाटे मे जूझता रहा और उस सघर्ष मे अतत इतना पस्त हो गया कि चारपाई पर कब लुढ़क गया, उसे पता भी न चला।

आख खुली तो सवेरा हो गया था। उसे यह देखकर विस्मय हुआ कि उसके बदन पर चादर ओढ़ाई हुई थी। उठकर बैठा तो सिरहाने एक पर्चा रक्खा था। उसने उत्सुकता से उठा लिया, पढ़ा। लिखा था

पूज्य गुरुदेव,

चरणो में प्रणाम। मैं भगवान का हजार बार आभार मानती हू कि उसने हमारी रक्षा कर ली। नदी की धारा जब तट के बधन तोडने लगती है तो प्रलय की आशका हो जाती है। मे अनुभव करती हू कि आपके

मन की मौजूदा हालत में मेरा आपके पास रहना ठीक नहीं है। मैं अपनी माँ के पास जा रही हूं, आप मेरी चिन्ता न करें। जब प्रतिज्ञा की पवित्रता आपकी समझ मे आ जाए और आपके दिल मे मजबूती हो जाए तो मुझे पत्र लिख दीजिए। मैं आने मे एक क्षण की भी देरी नहीं करूंगी। सच मानिए, मुझे यह कदम उठाने मे मर्मांतक पीडा हो रही है। जिसने आपके सुख की सदा चिन्ता की थी, वह आपको दु ख पहुचाने की कैसे सोच सकती थी ? पर मेरे सामने और कोई चारा भी तो नहीं है। मुझे जहां अपनी रक्षा करनी है, वहा आपके हित का भी ध्यान रखना है। यदि आपके पतन की मैं निमित्त बन गयी तो आपको बाद में जीवन भर घोर सताप की ज्वाला मे जलना पड़ेगा और मुझे भी जन्म-जन्मान्तर तक नरक की यातना भोगनी पडेगी। गुरुवर, मैं आपसे सौ-सौ बार क्षमा मागती हू।

आपकी शुभाकांक्षी

मीरा

सत्यानद की आखें डबडबा आयी और आसुओ की दो बूदें अनायास नीचे लुढ़क पडी। ये आसू उसकी पराजय के थे, अथवा प्रायश्चित के, यह वह जाने या उसका अतर्यामी, पर उसकी भावभगिमा से इतना स्पष्ट था कि मीरा के देवत्व के आगे उसका पशुत्व पराभूत हो गया था।

गांधीजी का मानव-रूप

विश्व के महान विज्ञान-वेत्ता आइस्टीन ने गाधीजी के विषय मे कहा था कि आगे आने वाली पीढिया इस बात पर कठिनाई से विश्वास कर सकेंगी कि उन जैसा हाड-मास का व्यक्ति कभी इस धरा पर जन्मा था।

प्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार लुई फिशर ने गाधीजी के उत्सर्ग पर लिखा, "आधुनिक इतिहास मे किसी भी व्यक्ति के लिए इतना गहरा और इतना व्यापक शोक आज तक नही मनाया गया। सयुक्त राष्ट्रसघ ने अपना झडा झुका दिया। मानवता ने अपनी ध्वजा नीची कर दी।"

भारत से हजारो मील दूर देश मे बारह वर्ष की एक बालिका जलपान करने के लिए रसोई घर मे गई थी। तभी रेडियो पर गाधीजी पर गोली चलाने का समाचार आया। लडकी और उस घर की सेविका ने नाश्ता छोड दिया और प्रार्थना करने बैठ गई। उनकी आखो से आसू बह रहे थे।

विख्यात लेखिका पर्लबक के परिवार को जब गाधीजी पर तीन गोलिया दागने का समाचार मिला तो उनकी सात-आठ वर्ष की लडकी ने रुधे गले से कहा, "मा, कितना अच्छा होता यदि पिस्तौल की ईजाद न हुई होती।"

मास्को मे एक रूसी वृद्ध बडा हैरान था कि आखिर उस व्यक्ति को क्या हुआ, जिसने गांधीजी को गोली मारी थी और जब मैंने उसे बताया कि उसे फासी हो गई तो वह मारे खुशी के बालक की भाति उछल पडा था और उसका आतरिक उल्लास इन दो शब्दो मे फूट पडा था, "खराशो, आचिन खराशो। (अच्छा हुआ बहुत अच्छा हुआ।)

ससार के सभी छोटे-बडे देशो मे करोडो व्यक्तियो ने गाधीजी की मृत्यु पर ऐसा शोक मनाया था, मानो उनकी व्यक्तिगत हानि हुई हो। कहने की आवश्यकता नही कि इन कोटि-कोटि नर-नारियों मे अधिकाश वे व्यक्ति थे, जिन्हे गाधीजी के सम्पर्क मे आना तो दूर, कभी उन्हे देखने तक का अवसर नही मिला था।

गांधीजी के प्रति सम्पूर्ण विश्व की इतनी सघन आत्मीयता का कारण क्या था? कारण एक ही था और वह यह कि गांधीजी का जीवन मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित था, वह मानव-धर्म के उपासक थे। अपने जीवन मे उन्होने मानव को सर्वोपरि माना और उसी को लक्ष्य मे रखकर अपनी सारी नीतियां निर्धारित और सचालित कीं।

इसमें कोई संदेह नही कि गाधीजी जीवन भर राजनीति मे रहे, अपने देश को विदेशी सत्ता से मुक्त करने के लिए उन्होंने अनेक आंदोलन चलाए, लेकिन उन्होंने स्पष्ट कहा, "मैं भारत को स्वतत्र और बलवान बना हुआ देखना चाहता हू, क्योकि मैं चाहता हू कि वह दुनिया के भले के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी पवित्र आहुति दे सके। यूरोप के पैरो मे पडा हुआ अवनत भारत मानव-जाति को कोई आशा नही दे सकता, किंतु जाग्रत और स्वतत्र भारत दर्द से कराहती हुई दुनिया को शान्ति और सद्भाव का सदेश अवश्य देगा।" उन्होने आशा प्रकट की, "भारत की स्वतत्रता से शाति और युद्ध के बारे मे दुनिया की दृष्टि मे जडमूल से क्राति हो जाएगी।"

जिस समय स्वराज्य का अर्थ किया जा रहा था विदेशी शासन का अत करके राज-सत्ता को अपने हाथ मे ले लेना, उस समय गाधीजी की स्वराज्य की कल्पना थी। स्व-राज्य अर्थात आत्म शासन, अपने ऊपर सयम। गांधीजी जानते और मानते थे कि वास्तविक स्वराज्य तभी आ सकता है, जबकि देशवासी सच्चे और ईमानदार हो, अनुशासन का पालन स्वेच्छापूर्वक करते हो, अधिकारो से अधिक कर्तव्य को महत्व देते हो और समष्टि के हित मे व्यक्ति का हित देखते हो।

गाधीजी ने एक कहानी का उल्लेख किया है, जो उन्होंने कहीं पढ़ी थी और जो मानव-धर्म पर उनकी अटूट आस्था को अभिव्यक्त करती है। पैगम्बर मुहम्मद के निधन के कुछ ही वर्ष बाद अरबो और रोमो के बीच बडे जोर का युद्ध हुआ। दोनो पक्षो के बहुत-से योद्धा मारे गए। बहुत-से घायल हुए। शाम को युद्ध बद होने पर दोनो पक्षो के लोग अपने-अपने सगे-सम्बन्धियो की कुशल-क्षेम जानने के लिए एक पक्ष से दूसरे पक्ष मे जाते थे।

एक दिन जब लडाई बद हुई तो अरब सेना का एक युवक दूसरी ओर से लडते अपने चचेरे भाई को ढूढ़ने निकला। सोचा, उसकी लाश मिल जाएगी तो दफना दूगा और जीवित मिला तो उसकी सेवा करूगा। उसने यह भी सोचा कि संभव है, वह घायल हो गया हो और पानी के लिए तडप रहा हो। उसने एक लोटा पानी ले लिया। अधेरे मे खोजने मे कठिनाई न हो, इसलिए एक हाथ मे लालटेन ले ली।

वह लडाई के मैदान मे पहुचा। तडपते घायल सैनिको की कराह से मैदान सिसक रहा था। बहुत-से सैनिक सदा के लिए आखें मूद चुके थे। उन सबके बीच उसे अपना भाई मिल गया। वह सचमुच बेहद प्यासा था और पानी की रट लगा रहा था। उसके शरीर पर गहरी चोटें आई थी और घावो से खून बह रहा था। उसके बचने की क्या आशा हो सकती थी! भारी दिल से युवक ने लालटेन नीचे रखी और भाई को पानी पिलाने को झुका कि तभी किसी दूसरे घायल की आवाज आई, "पानी।"

भाई ने खुला मुह बद कर लिया, अनतर बोला, "पहले उस घायल को पानी पिला आओ। फिर मुझे पिलाना।"

जिस ओर से आवाज आई थी, युवक उस ओर तेजी से बढ़ा। पास जाकर देखता क्या है कि वह सेना का एक बड़ा सरदार है। उसके बदन से खून बह रहा था। युवक उसे पानी पिलाने और सरदार पीने को ही था कि तीसरी ओर से पुकार आई, "पानी।"

सरदार ठिठक गया। बडी कठिनाई से उसने कहा, "प्यारे भाई, पहले वहां, फिर मुझे।"

बेचारा नौजवान उस ओर दौड़ा, जिधर से पानी की आवाज आई थी। वहां पहुंचकर देखता क्या है कि घायल सिपाई का दम टूट चुका है। उसे पानी न मिला। खुदा का नाम लेता नौजवान सरदार के पास आया तो वह भी दुनिया से कूच कर चुका था। भरे हृदय से युवक अपने भाई के पास पहुंचा तो वह भी आखिरी सांस ले चुका था।

गांधीजी लिखते हैं, "यो तीन घायलो मे से किसी को भी पानी न मिला, पर पहले दो मानवता के इतिहास मे अपना नाम अमर कर गए।"

आगे वह इससे भी मर्मस्पर्शी बात कहते हैं, "इस दृष्टान्त को देने का हेतु यह है कि उक्त वीर पुरुषो जैसा त्याग हममे भी आवे और जब परीक्षा का समय उपस्थित हो तो हम एक-दूसरे को पानी पिलाकर पिये, दूसरे को जिलाकर जिये और दूसरे को जिलाने मे स्वय मरना पडे तो हसते चेहरे से कूच कर जायं। पानी की परीक्षा से कठिनतर परीक्षा हवा की है। हवा के बिना तो आदमी एक क्षण भी जीवित नही रह सकता। इसी से सम्पूण जगत हवा से घिरा हुआ जान पडता है। फिर भी कभी-कभी ऐसा भी समय आता है, जब अलमारी जैसी कोठरी मे बहुत से लाग ठूस दिए गए हो और एक ही सूराख से थोडी-सी हवा आ रही हो। जो उस हवा को पा सके, वही जिये, शेष दम घुटकर मर जाय। हम भगवान से प्रार्थना करे कि ऐसा समय आवे तो हम हवा को रोके नही, चले जाने दे।"

गाधीजी का हृदय अत्यन्त स्पन्दनशील था। उसमे हर घडी सबके लिए प्रेम छलछलाता था। दूसरे की पीडा सहज ही उनकी अपनी पीडा बन जाती थी और वह उसे दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न करते थे। अपने जीवन के प्रारभिक काल से ही उन्होने विशाल परिवार की रचना कर ली थी। उस परिवार मे धर्म-विश्वास, जाति-पाति, छोटे-बडे, ऊच-नीच का कोई भेद नही था। सब परिवार के सदस्यो की भाति रहते थे। इस प्रयोग का श्रीगणेश उन्होने दक्षिण अफ्रीका मे किया था। उनके आश्रम मे विभिन्न देशो के भाई-बहन रहते थे। सब शरीर की मेहनत करते थे और सबको समान सुविधाए प्राप्त थी। अग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' पुस्तक को पढकर उनके जीवन की दिशा ही बदल गई। उन्होने 'सर्वोदय' के नाम से उस पुस्तक का रूपान्तर किया। सर्वोदय का अर्थ है सबका उदय, सबका भला। भगवान बुद्ध के 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' से आगे का कदम था। उसमे भगवान महावीर की यह वाणी मुखरित थी—'जीओ और जीने दो।' गाधीजी ने सर्वोदय के सिद्धान्तो को इस रूप मे समझा

१ सबकी भलाई मे हमारी भलाई निहित है।
२ सबके काम की कीमत एक-सी होनी चाहिए, क्योकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है।
३ सादा, मेहनत-मजदूरी का जीवन ही सच्चा जीवन है।

इसके बाद उन्होने तत्काल शहर छोडकर देहात मे अपना आश्रम बनाया और सर्वोदय के इन सिद्धातो को वैयक्तिक तथा सामूहिक जीवन मे कार्यान्वित किया।

मानवीय मूल्यो के प्रति गहन निष्ठा ने उन्हे लडने के लिए, अन्याय-अत्याचार का मुकाबला करने के लिए अभिनव अस्त्र दिये—सत्याग्रह, असहयोग, निष्क्रिय प्रतिरोध, अनशन, आत्म-पीडन, आदि-आदि। इन अस्त्रो से उन्होने दक्षिण अफ्रीका मे मानवीय अधिकारो के लिए लडाई लडी और विजयी होकर भारत लौटे तो यही अस्त्र उनके साथ थे। स्वाधीनता की सारी लडाइया उन्होंने इन्ही अस्त्रो से लडी और सिद्ध कर दिया कि हिंसा की शक्ति से कही अधिक श्रेष्ठ और बलवती अहिंसा की शक्ति है।

गाधीजी की मान्यता थी कि समाज की आधार-मूलक इकाई मनुष्य है। मनुष्यो के मिलने से समाज

बनता है। इसलिए मनुष्य यदि अपने को सुधार ले तो समाज अपने आप सुधर जाएगा। अपनी इसी मान्यता से प्रेरित होकर उन्होंने मानव की शुचिता पर सबसे अधिक बल दिया। अपने आश्रम मे उन्होंने सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि एकादश व्रतों का विधान किया और उनके पालन का आग्रह किया। उनकी प्रार्थना मे

वैष्णव जन तो तेने कहीए
जे पीर पराई जाणे रे

के स्वर गूजते थे और वह तथा उनके आश्रम का प्रत्येक सदस्य प्रभु से नित्य प्रार्थना करता था

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृत गमय।

—हे प्रभो, मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चल,
अधकार से प्रकाश की ओर ले चल,
मृत्यु से अमरता की ओर ले चल।

और फिर वे कहते थे

सर्वेऽत्र सुखिन सन्तु। सर्वे सन्तु निरामया ।
—सब सुखी हो, सब नीरोग हो।

भारत के राजनैतिक रगमच पर पैर रखते ही गाधीजी की दूरदर्शी दृष्टि ने देख लिया कि देश की आत्मा एक और अखण्ड होते हुए भी देशवासी अनेक विषमताओ से पीडित हैं। सारा देश धनी-निर्धन, ऊच-नीच, छोटे-बडे आदि की व्याधियो से आक्रात है। मानव मानव के बीच की इन दीवारो पर उन्होंने बडे जोर का प्रहार किया। वह दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि बने। उन्होने धनिको से कहा कि वे सादगी का जीवन व्यतीत करें, अपनी इच्छाओ को सीमित करे और अपनी अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति करके उनके पास जो बचे, उसे जनता की धरोहर मानकर उसके कल्याण के लिए खर्च करें। उन्होंने कहा, "सुनहला नियम तो यह है कि जो चीज लाखों लोगो को नही मिल सकती, उसे लेने से हम भी दृढ़तापूर्वक इन्कार कर दे।"

उन्होंने यह भी कहा, "हमारे लाखो मूक देशवासियो के हृदयो मे जो ईश्वर निवास करता है, उसके सिवा मैं किसी दूसरे ईश्वर को नही जानता। वे उसकी उपस्थिति का अनुभव नही करते, मैं करता हू, और मैं सत्य-रूप ईश्वर या ईश्वर-रूप सत्य की पूजा इन मूक देशवासियो की सेवा के द्वारा ही करता हू।"

हरिजनो के साथ किस प्रकार का अन्याय होता था, उसका स्मरण करके आज भी रोगटे खडे हो जाते हैं। वे हिन्दुओ के कुओ से पानी नही भर सकते थे, उनके मदिरो मे नही जा सकते थे। इतना ही नही, वे तथा कथित उच्च वर्ग द्वारा पग-पग पर अपमानित होते थे। गाधीजी के लिए यह असह्य था। उन्होंने उपवास करके देशव्यापी दौरा करके हरिजनो के लिए हिन्दुओ के कुयें और मदिर खुलवाये और उन्हे समाज मे सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार दिलवाया। अपने पत्रो का नाम उन्होने 'हरिजन' रक्खा और बार-बार कहा कि यदि उनका पुनर्जन्म हो तो प्रभु से उनकी प्रार्थना है कि वह उन्हें अछूत के घर मे पैदा करें।

धर्म जब संकीर्ण दायरो मे बध जाते हैं तो वे जोडते नही, तोडते हैं। इसान इसान के बीच फासला पैदा कर देते हैं। गाधीजी ने किसी धर्म की भर्त्सना नहीं की। उन्होने कहा, "कोई भी धर्म न छोटा है, न बडा। सबके सिद्धान्त एक समान हैं। सच्चे अर्थों मे धर्म-निष्ठ वही है, जो धर्मों के प्रति समभाव रखता है।"

मानव-जीवन का अधिष्ठान सेवा और प्रेम है। ये दोनो ही गाधीजी के जीवन मे श्वास के समान थे।

संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित परचुरे शास्त्री कुष्ठ रोग से पीडित हो गए। वे शान्तिपूर्वक मरने के लिए गांधीजी के आश्रम मे आए। गांधीजी ने उन्हे गले लगाया और जब तक रोगी के शरीर मे प्राणो का स्पंदन होता रहा, गाधीजी अपने हाथो से उनकी सेवा-सुश्रूषा करते रहे, उनके घावो को साफ करते रहे। वाइसराय से महत्त्वपूर्ण वार्ता करने के लिए वह शिमला गए। वार्ता समाप्त हुई कि वहां से चलने को तैयार हो गए। वाइसराय ने कहा, "एक-दो दिन रुक नही सकते ?" गाधीजी ने तत्काल उत्तर दिया, "नही, सेवाग्राम मे मेरे मरीज मेरी राह देख रहे होगे।"

मानव-प्रेम से गाधीजी का जीवन भरा पडा है। कही से भी कराह आती थी तो गाधीजी का हृदय चीत्कार कर उठता था। उनका प्रेम और करुणा केवल मानव-प्राणियो तक ही सीमित नही थी। उसमे कीडे-मकोडे तथा पशु-पक्षी तक आ जाते थे। गाधीजी के आश्रम मे बिच्छू और साप बहुत निकलते थे, लेकिन गाधीजी का आदेश था कि कोई भी उन्हें मारे नही। उन्हे पकडकर दूर छोड दिया जाता था। गाधीजी की करुणा का एक बडा मर्मस्पर्शी प्रसग है। एक बार वह साबरमती आश्रम मे प्रार्थना के लिए बैठे। अचानक एक साप आया और उनकी पीठ पर होकर कधे पर आ गया। आश्रमवासियो को पता चल गया। पर कोई बोला नही। उससे प्रार्थना मे जो विघ्न पडता। गाधीजी को भी मालूम हो गया, किन्तु वह भी चुपचाप बैठे रहे। प्रार्थना के बाद लोगो ने चादर के छोर पकडकर साप को लपेट लिया और दूर जाकर छोड आए। किसी ने विनोद मे गाधीजी से कहा, "बापू, साप से आप इतना डर गए कि एकदम गुमसुम बैठे रहे। जरा भी हिले-डुले नही।" गांधीजी ने कहा, "हा, मुझे डर लग रहा था, पर इस बात का नही कि मुझे साप काट खाएगा और मैं मर जाऊगा। डर इस बात का था कि अगर मैंने हरकत की और साप ने मुझे काट खाया तो आश्रमवासी साप को जीवित नही छोडेगे।"

चम्पारन मे जब सत्याग्रह हुआ तो गाधीजी के सत्याग्रहियो मे सब प्रकार के लोग थे। उनमे एक कुष्ठी भी था। उसके पैरो से खून बहता था और वह कपडो के टुकडे पैरो से बाधकर कूच मे शामिल होता था। शाम को वे लोग छावनी पर लौट आते थे। एक दिन शाम को छावनी पर आकर गाधीजी प्रार्थना करने बैठे तो उन्होंने देखा कि वह कुष्ठी भाई नही है। उन्होने अपने साथियो से पूछा तो मालूम हुआ कि वह लौटा नही है। गाधीजी तत्काल उठे और हाथ मे लालटेन लेकर उसे खोजने के लिए चल दिए। थोडी दूर जाने पर उन्होने देखा कि वह भाई एक पेड के नीचे बैठा है। गाधीजी को देखते ही वह चिल्लाया, "बापू।"

गाधीजी उसके पास गए और उसकी अवस्था देखकर उनका जी भर आया। उसके पैरो से खून टपक रहा था। गाधीजी ने कहा, "तुम्हारी यह हालत थी तो तुमने मुझसे क्यो नहीं कहा ?" उसके पैरो से बधे कपडे कही गिर गए थे। गाधीजी ने अपनी चादर फाडकर उसके पैरो के घावो पर पट्टी बाधी और उसे सहारा देकर छावनी लाए। उसके पैर साफ किये और फिर उसे अपने पास बिठाकर प्रार्थना की।

बापू एक बार दिल्ली की हरिजन बस्ती मे ठहरे थे। हम लोग शाम को प्राय उनकी प्रार्थना-सभा मे जाया करते थे। एक दिन मैं सपरिवार वहा गया और बापू के कमरे के पास रास्ते के एक ओर हम लोग खडे हो गए। गोद मे मेरी लडकी अन्नदा थी। बापू प्रार्थना करके लौटे। उनके दांए-बाए और पीछे कुछ विशेष लोग थे। वह किसी नेता से बात करते आ रहे थे। जब हम लोगों के पास आए तो अन्नदा को अचानक जाने क्या सूझा कि चिल्लाकर बोली, "बापू।" उस सम्बोधन को बापू ने सुना। और अन्नदा के सामने आकर रुक गए। उसकी ओर देखा और जैसे बुजुर्ग लोग मुह बनाते हैं, मुह बनाकर 'खौं' किया और मुस्कराकर आगे बढ़ गए। उनके अतर मे बैठा मानव इतना जागरूक था कि वह एक नन्ही बालिका की प्रेम भरी पुकार के सामने एक महान नेता को भूल गए।

गांधीजी के एकादश व्रत, उनके रचनात्मक कार्यक्रम, उनकी नीतियां और रीतियां, सब मानव को मानव के साथ जोड़ने के लिए थे। मानव के प्रति अपने वात्सल्य के कारण वह सबके 'बापू' बने। अपनी पुस्तक 'नीति-धर्म' मे वह एक स्थान पर लिखते हैं, मनुष्य जब तक स्वार्थी है, अर्थात वह दूसरो के दु ख की परवाह नहीं करता, तब तक वह पशु-सदृश, बल्कि उससे भी गया-बीता है। मनुष्य पशु से श्रेष्ठ है, यह हम देख सकते हैं, पर यह तभी होता है जब हम उसे अपने कुटुम्ब का बचाव करते देखते है। वह उस समय मानव-जाति मे ऊचा स्थान पाता है, जब अपने देश या अपनी जाति को अपना कुटुम्ब मानता है, तब उससे भी ऊचे सोपान पर चढ़ता है। ..जबतक हमारे मन मे हर एक मानव सन्तान के लिए दया न हो तबतक हमने नीति-धर्म का पालन नहीं किया और न उसे जाना।"

गांधीजी की निगाह सदा उस विपन्न व्यक्ति पर रही, जो समाज के अतिम छोर पर खड़ा बेबसी के आंसू पीता था। स्वराज्य मिलने पर उन्होंने कहा था कि स्वतंत्रता मेरी मजिल का एक पड़ाव है। जबतक एक भी आख मे आसू है, मेरे सघर्ष का अत नही हो सकता।

वह मानव-प्रेमी थे, मानव-धर्म के उपासक थे। इसी से वह प्रेम मे परमेश्वर के दर्शन करते थे। उन्होंने सम्पूर्ण वसुधा को अपना कुटुम्ब माना। उसी की भलाई के लिए वह जिये और उसी के हित-साधन मे उन्होंने अपने प्राणो को न्योछावर कर दिया।

जवाहरलाल नेहरू : कुछ रग-बिरंगे चित्र

बहुत पुरानी बात है। सभवत अड़तालीस वर्ष पहले की। महात्मा गाधी इलाहाबाद गये हुए थे और आनन्द-भवन मे ठहरे थे। शाम को उनकी रोज खुले लॉन पर प्रार्थना होती थी। काफी लोग इकट्ठे हो जाते थे। मैं उन दिनो प्रयाग विश्वविद्यालय मे पढ़ता था। एक दिन अचानक शाम को प्रार्थना मे शामिल होने के लिए आनन्द-भवन जा पहुचा। प्रार्थना शुरू होने मे देर थी। दरिया बिछ चुकी थी और लोग बैठ रहे थे। गांधीजी आने वाले थे।

इतने मे अन्दर से एक नौजवान आया। रग गोरा-चिट्टा, चेहरा अत्यन्त भव्य, तेज से दीप्त। उसने घुटनों के नीचे तक का श्वेत खादी का कुरता और खादी की बारीक धोती पहन रखी थी। ऊपर से जाकेट। जहा गांधीजी के बैठने की जगह थी वहां खड़े होकर उसने उपस्थित लोगो पर एक निगाह डाली और सिपह-सालार के रूप मे एकदम बोला, "आप लोग एक-एक गज पीछे हट जाए।"

कहने की देर थी कि लोग पीछे हट गए। उस भीड़ मे कोई १७-१८ साल का एक लड़का था। उसने सोचा कि जब सब पीछे हट गए हैं तो उस एक के हटने-न-हटने से क्या अन्तर पड़ेगा! वह वहीं बैठा रहा। नौजवान ने देखा कि वह लड़का न तो हटा और न हटने का नाम ले रहा है, तो वह आगे बढ़कर आया, आवेश के साथ लड़के की बाहे पकड़कर खड़ा किया और इतने जोर से धक्का दिया कि बेचारा भीड़ के ऊपर जा गिरा। फिर होंठों मे कुछ बड़बड़ाता हुआ वह नौजवान वापस लौट गया।

यह नौजवान थे हमारे जवाहरलाल नेहरू । उन्हे बहुत बार सभाओ मे देखा था। उनके भाषण भी सुने थे। उनके जोश के भी नमूने सामने आए थे, पर उनकी उग्रता को इतने निकट से देखने का यह पहला ही अवसर था। सच यह है कि उनकी वह हरकत मुझे बहुत बुरी लगी, पर बाद मे अनुभव किया कि उस समय उन्होंने जो किया, वह उनके लिए बहुत स्वाभाविक था। वह किसी भी अवस्था मे अनुशासन का भग सहन नही कर सकते थे।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय से आनन्द-भवन अधिक दूर नही था। छात्र-छात्राए अक्सर वहां चले जाते थे और मौका होता था तो जवाहरलालजी से मिल आते थे। आनन्द-भवन मे आए दिन बडे-बडे नेताओ का जमघट लगा रहता था। जवाहरलालजी के साथ-साथ उनके भी दर्शन हो जाते थे।

मेरी कई बार आनन्द-भवन जाने की इच्छा हुई, लेकिन जवाहरलालजी की उग्रता की बात मन पर इतनी गहरी अकित हो गयी थी कि जाने का साहस नही जुटा पाता था। एक दिन मेरा मन नही माना और हिम्मत करके मैं आनन्द-भवन पहुच गया। यह सन् १९३६ की बात है। आनन्द-भवन मे घुसते ही किसी ने बताया कि पडितजी अपने ऑफिस के कमरे मे हैं। मै वहा पहुचा। पडितजी दरवाजे के सामने कुर्सी पर बैठे कोई फाइल देख रहे थे। मेज पर कागजो का ढेर लगा था। समझ गया, वह बहुत ही व्यस्त हैं। फिर भी मैं खडा ही रहा। थोडी देर मे उन्होने फाइल पर से निगाह हटाई तो मुझे देखा। बोले, "क्यो, क्या बात है? अन्दर आइये।"

मैं कमरे मे जाकर उनके पास खडा हो गया। कहा, "मैं युनिवर्सिटी का विद्यार्थी हू। आपके दर्शन करने आया हू।"

उन्होने प्रश्नभरी मुद्रा मे मेरी ओर देखा। पूछा, "कौन-सी क्लास मे पढते हो?"

मैंने कहा, "लॉ (कानून) की पहली साल मे।"

"अच्छा, ला किसलिए पढ रहे हो?"

इस सवाल पर मैं सकपका-सा गया। विद्यार्थियो मे आखिर कितने होते हैं, जो सोचते हो कि वे किस लिए पढते हैं? सकोच मे उत्तर दिया, "अभी कुछ सोचा नही है। पढाई पूरी करने के बाद जो होगा, देखा जाएगा।"

इतना कहना था कि पडितजी ने फाइल मेज पर रख दी। बोले, "तुम भी अजीब हो! पढ़ रहे हो और कहते हो कि यह सोचा ही नही कि क्या करोगे। बिना मकसद के पढने से क्या फायदा?"

मैंने साहस जुटाया। कहा, "पडितजी, अभी से हम क्या सोच सकते हैं? आजादी की लडाई आगे चलकर क्या रुख लेती है, यह कौन कह सकता है।"

पडितजी थोडी देर को जैसे खो-से गये। फिर चैतन्य होकर बोले, "आपका कहना वजा है। पर मैं कहता हू कि मुल्क से बढकर और कोई चीज नही है। आप लोग अपने को आजादी की लडाई के लिए तैयार करें। नौजवान उठेंगे तो उससे बडी ताकत पैदा होगी।"

यह सब वह एक ही सास मे कह गये। मैं उनकी बात का क्या जवाब देता! लेकिन उस समय कहे उनके दो वाक्य आज भी मेरे मानस-पटल पर ज्यो-के-त्यो अकित हैं—"बिना मकसद के पढने से क्या फायदा!" और "मुल्क से बढकर और कोई चीज नही है।"

उन्होने मेरी ऑटोग्राफ एल्बम मे लिखा—"डू नॉट फॉल्टर।"

इसी के आस-पास की इलाहाबाद की एक और घटना है। श्रीमती कमला नेहरू की अस्थियां स्विटजरलैंड से आयी थी और एक बहुत बडे जुलूस मे उन्हें सगम मे प्रवाहित करने जा रहे थे बड़ी भारी भीड

थी। आगे-आगे अस्थियां थी, फिर प सुन्दरलालजी, मैं तथा कुछ अन्य लोग एक कतार बनाकर चल रहे थे। हमारे पीछे जवाहरलालजी और उनके परिवार के सदस्य थे। जुलूस जैसे ही मुट्ठीगज पहुचा कि सामने से एक फोटोग्राफर आ गया और बीच सडक पर स्टैण्ड पर कैमरा लगाकर उसने जुलूस को जरा रुकने का इशारा किया। जैसे ही लोगो की रफ्तार धीमी हुई कि पीछे से जवाहरलालजी चिल्लाये, "क्या बात है! जुलूस क्यों रुक रहा है?"

मैं उनके सामने था। उन्होंने तेजी से आगे बढ़कर मेरे कधे पर हाथ रखा और कहा, "जाओ, कह दो, जुलूस नही रुकेगा। उसे कोई नही रोक सकता।"

मैं जैसे ही आगे बढने को हुआ कि बडी उतावली से वह स्वय लपककर आये। बोले, "ठहरो, मैं खुद जा रहा हू।" मुझे लगा, फोटोग्राफर की खैर नहीं, पडितजी जरूर उसका कैमरा उठाकर फेंक देंगे। लेकिन फोटोग्राफर होशियार निकला। उसने जैसे ही पडितजी को गुस्से मे भरे आते देखा, वह कैमरा लेकर भागा और पास के किसी घर मे घुस गया। लोगो को तेजी से आगे बढ़ने और किसी के भी रोके न रुकने को कहकर पडितजी फिर अपनी जगह पर आ गये।

पढ़ाई पूरी करके मैं दिल्ली आ गया। देश के आजाद होने के कुछ समय पहले से ही पडितजी दिल्ली आ गये और स्थायी रूप से यहा रहने लगे। एक दिन हम लोग उनसे मिलने गये। काम की बातचीत होने के बाद वह बोले," को आप लोग जानते हो?"

"जी हा।"

उन्होने कहा, "उसकी शख्सियत के बारे मे मैं क्या कहू! मैं कुरुक्षेत्र गया था। वहा किसी ने कहा कि एक मुसीबतजदा औरत है। पाच मिनट को मिलना चाहती है। जाहिर है, मेरे पास वक्त नही था। फिर भी मैंने उसे बुला लिया। थोडी देर मे वह अपनी बात तो क्या कह सकती थी, लेकिन उसकी शख्सियत का मुझपर इतना असर पडा कि मैं उसे मोटर मे साथ ले आया। रास्ते मे उसने बताया कि काश्मीर पर कबाइलियो के हमले के समय किस तरह उसके पति मारे गये और किस तरह अपने बच्चो के साथ वह वहां से निकलकर आई। बडी दर्दनाक कहानी है। आप लोग उससे जरूर मिलें।"

पडितजी के जीवन मे ऐसे एक-दो नही, सैकडो व्यक्ति आये। सकटग्रस्त लोगो के लिए उनकी करुणा सदा जाग्रत रहती थी और उनके घर का दरवाजा उनके लिए सदा खुला रहता था।

एक बार पडितजी की वर्षगांठ पर उनसे मिलने गये। सयोग से उनसे बात करने का मौका मिल गया। मैंने कहा, "पडितजी, महिला शिक्षा सदन, हटूडी के बारे मे हम लोग एक ग्रथ निकाल रहे हैं। आप उसके लिए दो शब्द लिख दीजिए।"

उस दिन पंडितजी बडी प्रसन्न मुद्रा मे थे। बोले, "अच्छी बात है, ग्रथ छप जाय तो उसे मेरे पास ले आइये। लिख दूगा।"

ग्रथ छप गया तो उसकी एक प्रति बधवाकर हम लोग पडितजी के पास ले गये। श्री हरिभाऊजी उपाध्याय, उनकी लडकी शकुन्तला तथा हम, कई जने थे। पडितजी को ग्रथ दिखाया। देखते ही बोले, "हिन्दी वालो की यह आदत क्या है कि पन्ने पर बार्डर डालकर छपाई करते हैं। जरा और मुल्को की छपाई देखो। कैसी खूबसूरत होती है।"

हममें से एक ने कहा, "पडितजी, इस ग्रथ मे तो बार्डर नही डाले गये हैं।"

उन्होंने कुछ तेज होकर कहा, "मैंने कब कहा कि इसमे डाले गए हैं ! मैंने तो एक आम बात कही।"

इतना कहकर वह ग्रथ के पन्ने उलटने लगे। मैंने कहा, "पडितजी, आपने कहा था कि यह ग्रंथ छप जाय तो आपको लाकर दे दू। आप इसके लिए कुछ लिख देंगे।"

बोले, "मैंने कहा था, पर मेरे पास वक्त कहा है ? जी नहीं, मैं नहीं लिख सकता।"

इतना कहकर उन्होने जैसे ही ग्रथ के शुरू के पन्ने उलटे कि पारा चढ़ गया। बोले, "लोगों को इस तरह घेरने की आदत को मैं सख्त नापसन्द करता हू। प्रस्तावना, भूमिका, प्राक्कथन, दो शब्द, निवेदन, आखिर यह सब क्या तमाशा है ! बडी बुरी बात है। इसको पकडा, उसको पकडा, इस सबसे फायदा क्या ? बगैर बात लोगो को परेशान करना है।" ग्रथ को मेज पर रखते हुए वह शकुन्तला की ओर बढ़े। बोले, "क्यों, तेरा क्या हाल है ?"

उसने कहा, "मेरा हाल बहुत खराब है।"

"क्यो, क्या हुआ ?"

शकुन्तला बोली, "अगर बच्चो को अपने बडो का आशीर्वाद भी न मिल सके तो उनका हाल अच्छा कैसे हो सकता है ?"

पडितजी एकदम मुस्करा उठे। बोले, "तू तो अब बडी हो गई है। बडो की-सी बातें करने लगी है। अरे, कुछ बाते टालन के लिए कही जाती हैं। इसका मतलब यह थोडा है कि मैं कुछ लिखूगा नही।"

एक दिन प्रधान-मत्री के निवास-स्थान (तीन मूर्त्ति भवन) पर बालकनजी बारी के बहुत-से बच्चे इकट्ठे हो गये। हम लोग ऊपर की मजिल पर पडितजी से बाते करके उनके साथ नीचे आये तो वह बोले, "बहुत-से बच्चे मेरी राह देख रहे है। आप लोग भी जाय।"

बच्चे पीछे के लॉन पर कतार मे खडे थे। पडितजी को देखते ही उन्होने 'चाचा नेहरू जिन्दाबाद' के नारे लगाये। पडितजी ने उनके बीच मे जाकर कुछेक के नाम पूछे और फिर बोले, "आओ, मैं तुम्हे एक बढिया चीज दिखाऊ।"

बच्चो की फौज उनके साथ चल दी। एक घेरे के पास जाकर उन्होंने बच्चा को रुकने को कहा और स्वय दाए हाथ मे सफेद दस्ताना पहनकर उसके अन्दर चले गये। वहा उनका प्रिय पाडा पेड के तन के ऊपर डाल पर बैठा था। बड प्यार म उन्होंने उसे पुकारा, पास जाने पर बडी कामलता से उसकी पीठ सहलाई, फिर उसे धीरे-धीरे नीचे उतारा।

बच्चा से पूछा, "अच्छा, बताओ यह कौन जानवर है ?"

बच्चो मे से एक ने कहा, "यह भालू है।"

"वाह, खूब पहचाना !" नेहरूजी ने मुस्कराते हुए कहा, "अरे, कही भालू ऐसा होता है !"

दूसरे बच्चे न कहा, नही, यह ऊदबिलाव है।"

"ऊदबिलाव ! अरे, ऊदबिलाव कभी देखा भी है ! यह न भालू है, न ऊदबिलाव ! यह भालू और बिल्ली के बीच की किस्म का एक जानवर है। जब मैं असम गया था तो वहा मुझे भेंट मे मिला था।"

बच्चा म स एक ने पूछा, "चाचाजी, यह खाता क्या है ?"

'पत्तिया।" उन्होने उत्तर दिया।

एक लडके ने पास के पेड से पत्तिया तोडने की कोशिश की तो पडितजी ने रोक दिया। बोले, "क्या करते हो ? यह हर किस्म के पेड की पत्तिया थोडे ही खाता है।"

एक बच्चे ने कहा, "बापूजी, हम आपके साथ तसवीर खिंचवायेंगे।"

"अच्छा, खिंचवा लो।"

तसवीर खिंच गई तो दूसरा बालक बोला, "चाचाजी, हमारी आटोग्राफ एलबम मे कुछ लिख दीजिए।"

उन्होंने लिख दिया।

मेरा अनुमान है कि बच्चो के साथ उनके बीसेक मिनट निकल गए होंगे। वह बच्चों को बेहद प्यार करते थे और उनके बीच अपने को भूल जाते थे। एक के बाद एक जब बच्चो की मागें बढ़ती गयी तो उन्होंने समझाते हुए कहा, "देखो, मेरे लिए बहुत-सा काम पड़ा है। अब मुझे जाना है। अच्छा, जय हिन्द!"

इतना कहकर वह बच्चो की-सी चपलता से दो-दो सीढ़िया एक साथ लाघकर चले गए।

सन् १६४७ मे दिल्ली के पुराने किले मे एशियाई देशो की एक बहुत बडी कार्फ्रेंस हुई थी। बाहर से काफी लोग आये थे। गाधीजी भी उसमे शरीक हुए थे। किले का सारा मैदान नर-नारियो से भरा था। नेताओ के आने-जाने के लिए भीड के बीच से एक रास्ता बनाया गया। भीड गाधीजी के दर्शन के लिए उतावली हो रही थी। प्रबधको को डर हुआ कि अगर गांधीजी उस रास्ते से आये तो सारी व्यवस्था भग हो जाएगी। लोग उन्हें पास से देखने और उनके पैर छूने के लिए दौड पडेंगे। इसलिए उन्हे चुपचाप गाडी से हा मच के पीछे तक ले जाया गया और वहा एक छोटे-से दरवाजे से उन्हें मच पर पहुचा दिया गया। जैसे ही लोगो को इसका पता चला, शोर मच गया। लोग धक्का-मुक्को करके मच की ओर बढने लगे। व्यवस्थापको ने शाति रखने की बहुतेरी कोशिश की, पर कोई नतीजा नही निकला। स्वयसेवको ने लोगो के हाथ जोडे, उन्हे पकड-पकडकर बिठाने की चेष्टा की, पर सब बेकार। जब भीड किसी तरह काबू मे आती दिखाई नही दी तो मच पर से पडितजी एकदम कूदकर लोगो के बीच पहुच गये और धक्का मार-मारकर लोगो को पीछे हटाने लगे, कधे पकड-पकडकर उन्हे बिठाने लगे।

वे दिन बडे भयकर थे। साम्प्रदायिक वैमनस्य अपनी चरम सीमा पर था। कुछ भी हो सकता था! वहा की अव्यवस्था को देखकर ऐसा लगता था कि कांफ्रेस शायद ही हो सके।

पर पडितजी ने जरा-सी देर मे जादू का-सा काम कर दिखाया। वह जिधर जाते थे, भीड फट जाती थी और लोग बैठ जाते थे। पद्रह-बीस मिनट मे चारो ओर शान्ति स्थापित हो गई और सभा की कार्रवाही आरम्भ हो गई।

ऐसा हौसला पडितजी ही दिखा सकते थे। उन्होने ऐसा एक जगह नही, सैकडो जगह करके दिखाया था। जनता, जो किसी के वश में नहीं आती थी, अपने उस महान नेता को अपने बीच हैरान देखते ही फौरन खामोश हो जाती थी। वास्तव मे पडितजी एक ऐसे नेता थे, जिनकी मुस्कराहट से लाखो स्त्री-पुरुषो के हृदयो की कली खिल जाती थी और जिनके चेहरे पर उदासी देखकर लाखो व्यक्ति एक साथ व्यथित हो उठते थे।

एक बार प्रधान मत्री के दफ्तर से फोन आया कि पडितजी फौरन मिलना चाहते हैं। हम लोग गये। देखा, उनके पास एक युवक बैठा है। सिर पर काले घने बाल, मूछें-दाढी, घुटनो तक की धोती, बदन पर चादर। पडितजी ने कहा, "इन्हे जानते हो?" हमारे "नहीं," कहने पर बोले, "अरे! यह विनोबाजी के सेक्रेटरी हैं। पढ़ना चाहते हैं, कहते हैं, किताबें बेचकर जो कमीशन मिलेगा, उससे अपनी पढ़ाई का खर्चा पूरा करेंगे। कितनी बड़ी बात है!" हमने कहा, "पडितजी, इसमे आपको हैरान करने की क्या बात थी?" इतना सुनते ही पडितजी तेज हो गए। "बिना जमानत के आप अपने यहां से किताबें उधार कैसे दे सकते हैं!

खैर, आप मेरी जमानत पर इन्हे दो हजार रुपये तक की किताबें दे दीजिए। यह आपको हर महीने हिसाब देंगे और जितने रुपये की बिक्री होगी, उतने की किताबें फिर ले लेंगे।"

उन भाई को साथ लेकर हम दफ्तर आये और उन्हे अठारह सौ रुपये की पुस्तकें दे दी।

उसके बाद एक महीना बीता, दो महीने बीते, उन्होने न हिसाब दिया, न हमारी चिट्ठियो का उत्तर। हैरान होकर हम पडितजी के पास गये। सारा हाल सुनकर उन्होने कहा, "मैं अपने दफ्तर से चिट्ठी भिजवा दूगा।"

जब उनके यहा से चिट्ठी गई तो वह भाई अपनी हुलिया और नाम बदलकर यह पता लगाने कि माजरा क्या है दिल्ली आये। किसी होटल मे ठहरे। हमने गाधी आश्रम आदि रचनात्मक संस्थाओ मे उनके बारे मे कह रक्खा था। किसी ने उन्हे पहचान लिया। हमने अपने आदमी को भेजकर उन्हे बुलवाया। उनकी दाढी-मूछे साथ थी। शरीर पर कलकतियां ढग का कुरता और मिल की धोती थी। हमने उन भाई को एक दिन अपने पास रक्खा। उन्होने क्या-क्या ढोग किया, वह लम्बा किस्सा है। अगले दिन पंडितजी को खबर दी। पडितजी ने कहा, "छोडिये इस झमेले को। आपको अठारह सौ रुपये चाहिए, वह मेरी रायल्टी मे से काट लीजिए।" हमने कहा, "वह हमे ही नही, औरो को भी धोखा दे रहा है। कहता है, पडितजी से मिलना चाहता हू।" बोले, कल ले आइये।"

हम लोग अगले दिन उस भाई को लेकर गए। उन्हे देखकर पडितजी को जो गुस्सा आया, उसका वणन शब्दो मे करना कठिन है। मुक्का तानकर वह युवक के सामने खडे होकर बोले, "तुम झूठे हो। तुमने मुझे भी झूठा और बेईमान साबित कर दिया। ये लोग क्या सोचते होगे मेरे बारे मे ? अब तुम महीने भर के भीतर इनका हिसाब साफ करो।"

वह भाई वादा करके चले गये, पर उन्होने अपने वचन को नही निभाया। पडितजी को खबर की तो उन्होने कहा, ' छोडो उस कजिये को। मेरे रायल्टी के हिसाब मे स अपने रुपये वसूल कर लो।"

रायल्टी मे से पैसे तो क्या लेने थे, बट्टे खाते डालने पडे, लेकिन इस घटना ने दिखा दिया कि पडितजी कितने उदार थे।

एक घटना और याद आती है। पडितजी से मिलने गया। साथ मे 'सस्ता साहित्य मण्डल' की कुछ पुस्तकें भी लेता गया। पता नही, पडितजी के दिमाग मे क्या था, बैठते ही बोले, "आप हिन्दी वाले बहुत कहते हैं कि हिन्दी जैसे बोली जाती है, वैसे ही लिखी भी जाती है। अच्छा, लिखिये—DOG।" इतना कहकर उन्होने कागज और पैंसिल मेरे सामन रख दी। मैंने ड लिखकर उस पर ा की मात्रा लगाई, ऊपर चन्द्र ँ लगा दिया और आगे 'ग' लिख दिया। देखकर बोले, "यह तो ड-आ-ग हुआ। अच्छा, लिखिये 'CAT।' मैंने 'क' लिखकर ऐ की मात्रा लगाई और ट लिख दिया। बोले, "यह तो क-ई-ट हुआ। अग्रेजी मे 'डाग' और 'कैट' का जो उच्चारण है, वह देवनागरी लिपि मे हर्गिज नही लाया जा सकता।"

इसका उत्तर मैंने दिया, पर मैंने देखा कि उनका दिमाग न जाने कहां-कहा दौड़ता था।

बच्चो को वह बेहद प्यार करते थे और उनके बीच स्वय बच्चा बन जाते थे। एक बार उनकी वर्षगांठ पर बहुत-से लोग तीनमूर्ति भवन मे इक्कट्ठे हुए। बच्चे भी बडी सख्या मे आये। तीनमूर्ति भवन की लॉन पर मेजें लगवा दी थी, जिन पर प्लेटों मे बर्फी रक्खी थी। पडितजी एक ओर को खडे हो गए और बच्चे कतार मे उनके हाथ स बर्फी लेकर आगे बढ़ने लगे। जब लाइन कही टूट जाती तो पडितजी बर्फी का एक टुकडा अपने मुह में डाल लेते। मैं पास खडा उस मधुर दृश्य को देखता रहा। थोड़ी देर मे बच्चों की पक्ति समाप्त हो गई

और पंडितजी वहां से हटकर दूसरी तरफ को जाने लगे। तभी अचानक एक लडका वहां आ गया। यह सोचकर कि अगर पंडितजी के हाथ से उसे बर्फी नही मिली, तो उस बेचारे बालक को बडा दुख होगा, मैंने चिल्लाकर कहा, "पंडितजी।" पंडितजी ने मुडकर देखा और लौट आये। उस लडके को बर्फी दी और चलते-चलते एक टुकडा फिर अपने मुह में डाल लिया। उनके उस बाल-स्वभाव को देखकर वह क्षण मेरे लिए अविस्मरणीय बन गया।

ऐसे रंग-बिरंगे चित्रों का अनंत भण्डार है। दो दशक से अधिक तक पंडितजी से बराबर सपर्क रहा। उन्होंने कह रक्खा था कि सबेरे आठ बजे जब आना हो, पाच मिनट के लिए आ जाओ। इन वर्षों मे नाना प्रकार के इतने प्रसग आये कि उन सबका उल्लेख किया जाए तो एक पुस्तक तैयार हो जायगी। इन प्रसगो से पता चलता है कि पंडितजी अत्यन्त प्राणवान व्यक्ति थे, सब चीजों में रस लेते थे और इंसानियत उनमें कूट-कूटकर भरी थी। इनसे भी बडी बात यह थी कि वह एक क्षण मे गुस्से से तमतमा सकते थे, लेकिन दूसरे ही क्षण खिल-खिलाकर हस सकते थे। इससे स्पष्ट है कि उनका हृदय बहुत ही निश्छल था।

मैं बाबा का चिर-ऋणी हूं

२१ अक्तूबर १९७० रात के दस बजे हैं। मेरे मित्र और एक बहन मुझे तथा मेरी पत्नी को पालम हवाई अड्डे ले जा रहे है। मन मे विशेष उत्साह नहीं है, पर मित्र के आग्रह मे इतनी सरलता थी कि टालना सभव न हो सका। रात की गहनता को चीरती हमारी गाडी दौडी जा रही है। दूर-पास, सब कुछ निस्तब्ध है। गाडी मे दो-तीन जने और हैं, पर सब अपने मे सिमटे हैं।

हम लोग पालम पहुचते हैं, लेकिन यह क्या? शहर से इतनी दूर, इतनी रात गए, सैंकडो नर-नारी और बच्चे वहा उपस्थित हैं। अधिकांश हवाई अड्डे के प्रवेश की ओर की घास पर बैठे बडी तन्मयता से वाद्यों के साथ कीर्तन कर रहे हैं। एक मधुर नारी-कण्ठ हारमोनियम की लय के साथ बोलता है—"ॐ नम शिवाय" और उसका अतिम स्वर समाप्त हो कि अनगिनत कण्ठ उन शब्दो से आकाश को मुखरित कर देते हैं। मैं उस समुदाय को विस्मय से देखता हू। वह अपढ़ अंध श्रद्धालुओ की पेशेवर मण्डली नहीं है, उसमे देश-विदेश के शिक्षित लोग हैं, ओहदेदार हैं, पत्रकार और लेखक हैं, ससद-सदस्य हैं, उद्योगपति हैं, प्राध्यापक और समाज-सेवी हैं। सबके हृदय विभोर हो रहे हैं। उनके 'बाबा' जो आ रहे हैं।

इतने प्रबुद्ध व्यक्तियो को भक्ति-भाव से विह्वल देखकर मेरा मन जाने कैसा हो उठता है। उस भीड मे बहुत से मेरे परिचित हैं। मेरी निगाह कभी इधर-उधर घूमते लोगो पर जाती है, कभी घास पर बैठी मण्डली पर। लगता है, जैसे एक विशाल परिवार वहा एकत्र हो गया है, जिसमे छोटे-बडे, धनी-निर्धन, अफसर और मातहत का भेद लुप्त हो गया है। सब समानता के सूत्र मे बधे हैं, एक ही भावना से अभिभूत हैं।

एयर इंडिया का जेट विमान बबई से चलकर साढे ग्यारह बजे वहा पहुचने वाला है। अब समय हो रहा है। सारी भीड उठकर विशिष्ट व्यक्तियो के अभिनदन-स्थल पर आ गई है। कस्टम के अधिकारियो ने प्रतिबधक सीमा के उधर एक सोफा जैसी कुर्सी रख दी है और सूचना दे दी है कि कोई भी व्यक्ति बाडे की

रोक को लांघकर उधर न आवे। बाबा की कष्टमयी खानापूरी बबई मे हो चुकी है। वह आकर कुर्सी पर बैठ जायेंगे, सब दूर से ही उनके दशन कर ले।

विमान आ गया। सबकी आखे उसी ओर केन्द्रीभूत हो गई। अधिकारी जीप लेकर तत्काल विमान पर पहुच गए। ज्योही जीप भीड की तरफ आती दिखाई दी कि बाबा के जयघोष से सारा हवाई अड्डा गूज उठा।

मैं एक ओर को चुपचाप खडा हू। प्रबधक भीड को व्यवस्थित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, सबको बैठ जाने को कह रहे है, लेकिन उनकी कौन सुनता है? सबकी एक ही इच्छा है कि आगे बढ़कर बाबा के दशन और सान्निध्य का लाभ लें।

भीड की वह उतावली और अव्यवस्था मेरे मन मे खीज पैदा करती है। पर कोई करे क्या!

जीप कुर्सी से कुछ ही कदम पर रुकती है। उसमे से एक भगवा वस्त्रधारी, हल्की दाढी-मूछो से युक्त, साधु उतरते हैं। उन्हे देखते ही "बाबा मुक्तानद की जय" के घोष से दिग-दिगन्त व्याप्त हो जाते हैं। भीड का रहा-सहा सयम टूट जाता है। लोग लोहे के पाइपो की बाड को लाघकर या उसके बीच से निकलकर उधर चले जाते है और बाबा को पुष्पहार अर्पित करते हैं। लेकिन बाबा एक भी हार अपने पास नही रखते। हाथ मे लेते है और भीड पर फेक देते हैं। लोग उन फूलो और मालाओ को प्रसाद के रूप मे ग्रहण करते हैं। प्रतीत होता है, मानो भक्ति की धारा चारो ओर प्रवाहित हो रही है।

बाबा विदेश जा रहे हैं। उनका विमान लगभग दो घण्टे यहा रुकेगा और फिर वह रोम चले जायेंगे। बाबा कुर्सी पर बैठ गए है। भीड ने उन्हे चारो ओर से घेर लिया है, पर काफी लोग है, जो बाडे के सहारे, दूसरी ओर, यहा से वहा तक खडे है। बाबा का ध्यान उनकी तरफ जाता है। वह एकदम उठकर खडे हो जाते है और अपने इदगिद की भीड मे से रास्ता निकालकर बाड के एक सिरे पर पहुच जाते हैं। हाथ बढाकर स्त्री-पुरुषो और बच्चो से मालाए लेते है, किसी को देखकर कहते हैं, "अरे, तू भी आ गई! वाह!" इस प्रकार लोगो का अभिवादन स्वीकार करते और अपने प्रेम की उन पर वर्षा करते एक छोर से दूसरे छोर तक जाते हैं, फिर लौट पडते हैं और इस प्रकार बराबर चक्कर लगाते हैं।

मैं अनुभव करता हू, उस स्वामी मे सचमुच कुछ है, जो असख्य लोगो को उनकी ओर आकर्षित करता है। मुझे याद नही कि उनकी-सी निश्छल हमी मैंने कही अन्यत्र देखी है। जान पडता है, जैसे कोई शिशु हस रहा है। मेरा दिल कहता है, ऐसी हसी वही हस सकता है, जिसका अत करण निमल हो और जिसके हृदय मे प्राणीमात्र के प्रति गहरी आत्मीयता, करुणा और निस्वार्थ प्रेम के अतिरिक्त और कुछ न हो।

मैं उदासीन भाव से वहा गया था और अब मेरी इच्छा हो रही थी कि बाबा के सान्निध्य के क्षण कुछ और बढ जाये, ताकि मैं उस दुर्लभ आत्मीयता, पावन प्रेम और आनन्द के सागर मे अधिकाधिक अवगाहन कर सकू।

बाबा गतिशील है। उनके चेहरे पर मुस्कराहट उत्तरोत्तर निखरती जा रही है। किसी ने उन्हें मिठाई के डिब्बे अर्पित कर दिए हैं। पर बाबा उस मिठाई को ही नही बाट रहे है, उनके पास जो प्रेम की अनमोल निधि है, उसे भी भर-भर हाथो लुटा रह हैं।

विमान के जाने की घडी आती है। बाबा विदा लेते हैं। उनकी भौतिक काया ओझल हो जाती है, पर कुछ ऐसा छोड जाते हैं, जिसकी स्मृति अतर-पटल पर सदा-सदा के लिए अकित हो जाती है।

रात्रि के अतिम प्रहर म हम लौटते हैं। लोग बिखर जाते हैं। हवाई अड्डा पीछे छूट जाता है, पर बाबा की मुस्कराहट तथा आत्मीयता साथ आती है।

गणेशपुरी के सिद्धगुरु स्वामी मुक्तानद परमहस से यह मेरा प्रथम साक्षात्कार था, पर ऐसा लगा, जैसे मैं उन्हे चिरकाल से जानता हू।

बाबा तीन महीने से कुछ ऊपर बाहर रहे। उनके भक्त बीच-बीच मे उनके प्रवास के समाचार देते रहे। बाद में उनके आश्रम से 'वृत्त-सार' मिले, जिनसे पता चला कि बाबा अपने भ्रमण के दौरान कहा-कहां गए, उनका कैसा स्वागत हुआ और यूरोप, अमरीका तथा अन्य देशो के लोगो पर उनका क्या प्रभाव पडा। उस सबसे मुझे हर्ष हुआ, क्योंकि बाबा के प्रति अब मेरी गहरी अभिरुचि हो गई थी, लेकिन विदेश के लोगों की भावाभिव्यक्ति से आश्चर्य नही हुआ, क्योंकि मैं जानता था कि उन लोगो मे शान्ति की भूख है और वे अनुभव करने लगे हैं कि जिन कृत्रिम उपायो से वे शाति चाहते हैं, उनसे उन्हे वास्तविक शाति मिलने की नही। इसलिए जो भी उन्हे नया मार्ग सुझाता है, उसी के प्रति वे आकृष्ट हो जाते हैं, फिर भी कुल मिलाकर अनेक देशो के नर-नारियों ने बाबा से जो पाया, वह मुझे आनद-दायक लगा।

विभिन्न देशों मे बाबा के अनुयायियो की एक विशाल सेना खडी हो गई और कुछ को साथ लेकर वह स्वदेश लौट आए। यह उनकी पहली विदेश-यात्रा थी, पर उन्होंने जिस बारीकी से वहा के निवासियो की विशेषताओ, साथ ही कमियो को देखा, वह अद्‌भुत था। वर्षों तक विदेशियो के बीच रहकर भी लोग जिस चीज को नही देख पाते, वह बाबा ने कुछ ही दिनो मे देख ली। इसका कारण सभवत यह था कि बाबा के लिए विदेशी या पराया कोई नही था, सब अपने थे और उनके इस अद्वैत भाव ने सबके हृदय को जीत लिया।

मेरा मन बाबा से मिलने और उन्हे निकट से देखने के लिए आतुर हो उठा। कुछ समय निकल गया। अचानक एक दिन पता चला कि बाबा १७ फरवरी (१९७१) को दिल्ली आ रहे हैं। बाबा का दिल्ली आना कोई अप्रत्याशित घटना नही थी, क्योंकि वह कुछ समय स साल मे एक बार राजधानी मे आते रहे थे, लेकिन इस समाचार ने मेरी आतुरता को कई गुना बढा दिया।

अपने अतेवासियो तथा कुछ विदेशी साधक-साधिकाओ के साथ बाबा निश्चित तारीख को दिल्ली आये और नई दिल्ली के सुनहरो बाग रोड की ४ नम्बर की कोठी मे ठहरे। अन्यत्र व्यस्त होने के कारण मैं हवाई अड्डे पर नही जा सका, लेकिन मैंने सुना कि बाबा का स्वागत करने के लिए काफी भीड इकट्ठी हो गई थी।

मैंने बाबा के विषय मे कुछ लिखा था, जो २१ फरवरी को 'नवभारत टाइम्स' मे प्रकाशित हुआ। २५ फरवरी को प्रात काल बाबा के पास गया। उनसे परिचय हुआ। बाबा बडे प्रेम से मिले। घूमने गए तो साथ ले गए। रास्ते मे उन्होंने अपने अनुभव सुनाते हुए कहा, "विदेशो के लोग बडे गतिशील हैं। खूब काम करते हैं। खूब कमाते हैं। कमाई को मैं बुरा नही मानता। निर्धन व्यक्ति धर्म मे गति नही कर सकता। मैं कहता हूं, खूब कमाओ और दूसरो को खूब दो। जो धनी होने के लिए धन-सम्पत्ति का सचय करता है, वह बुराई को जन्म देता है।"

दोपहर का भोजन मैंने वही किया। शाम को श्रीवियोगी हरिजी को साथ लेकर वहा गया। काफी भीड थी। सार्वजनिक सभा मे मैंने हरिजी का परिचय दिया। हरिजी सत-साहित्य पर बोले, फिर बाबा का प्रवचन हुआ। उन्होने वही बातें विस्तार से कही, जिनकी चर्चा सुबह टहलते हुए की थी।

अगले दिन शाम को दिनकर जी वहां आए। सभा मे हम दोनो से बोलने का बाबा ने आग्रह किया।

२७ फरवरी का दिन मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगा। उस दिन हम प्रात ६ बजे वहा पहुच गए। 'विष्णुसहस्रनाम' के पाठ तथा कीर्तन मे सम्मिलित हुए। बडा रस आया। उसके पश्चात् मैं अन्दर के कमरे मे चला गया, जहां बाबा कीर्तन के समय बैठते थे। सायकालीन सार्वजनिक सभा बाहर लॉन पर बने पडाल मे होती थी। अचानक बाबा आए और बोले, "तुम यहा हो। मैं तुम्हे बाहर खोज रहा था।" इतना कहकर वह

चले गए। कुछ ही क्षण बाद उनके सचिव आए और बोले कि बाबा आपको बुला रहे हैं। मैं बाबा के निजी कमरे में गया। एक ओर को बाबा का पलग बिछा था। दूसरी ओर को एक मेज पर बाबा के गुरु नित्यानन्दजी महाराज का चित्र रक्खा था। चित्र के दाए-बाए दीपदानो पर दो दीप जल रहे थे। सारा कमरा फूलो और अगरबत्तियों की सुगधि से महक रहा था। चित्र के पास ही एक लम्बी गद्दी बिछी थी। बाबा ने उसी पर बैठ जाने का सकेत किया। मैं पालथी मार कर बैठ गया। बाबा ने मेरे सिर पर कमल का एक फूल रक्खा, सिर, माथे और नाक पर अपनी उगलियो से सहलाया, नाक मे फूक मारी और कहा, "ध्यान करो, ध्यान करो, ध्यान करो। गुरु ॐ का जाप करो।"

जिस समय बाबा मेरे सिर और माथे को सहला रहे थे, मेरे हाथो की उगलियां, जो एक-दूसरे मे फसी थी, एकदम जकड गईं, बाहे सख्त हो गई, सारा बदन अकड गया। जैसे बिजली का करेंट छू जाने से शरीर जकड जाता है, वैसी ही स्थिति बाबा के स्पर्श से हुई। उसके उपरान्त मुझे पता नही कि क्या हुआ। कौन कमरे मे आया, कौन गया। दो घण्टे तक हिमालय के दृश्य दिखाई देते रहे। केदारनाथ का मन्दिर और उसके पृष्ठ-भाग की हिममडित पर्वत-मालाए बार-बार सामने आती रही। उन्हे देखते-देखते बाबा का मुस्कराता मुख-मण्डल उभर आता था। उनकी हसी कानो मे सुनाई देती थी। लगभग दो घण्टे तक यही स्थिति रही। मन एकदम एकाग्र हो गया था। भटकन दूर हो गई थी। बडी प्यारी शाति अनुभव हो रही थी।

आख खुली तो देखा कि बाबा पलग के निकट नीचे कालीन पर बैठे हैं। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया। मैंने जैसे ही उनके चरणो पर सिर रक्खा कि मुझे रोना आ गया। बच्चे की तरह हिडकी बध गई। बाबा ने मेरा सिर और पीठ थपथपाई। मेरे सिर उठाने पर बोले, "तुम आगे बढ़ोगे, बहुत आगे बढोगे। रोज ध्यान करो।" उन्होंने प्रसाद दिया। जब मैं कमरे से बाहर आया तो लग रहा था, जैसे दुनिया बदल गई है। मन मे सबके प्रति ऐसी आत्मीयता उत्पन्न हो गई थी, जैस पहले कभी नही हुई थी। हृदय शाति रस से लबालब भर गया था। बार-बार आखे बद कर लेने को जी करता था।

दफ्तर आया। मन मे अपूर्व शान्ति थी। काम मे खूब आनन्द आया। मन मस्ती से बार-बार झूम उठता था। छोटे-बडे सब अपने लगते थे। शाम को फिर बाबा के पास गया। दिनकर जी वहा आए हुए थे। सावजनिक सभा मे बाबा ने मुझे अपने अनुभव सुनाने को कहा। बडे सकोच के साथ मैंने सारी बातें सुनाईं।

अगले दिन फिर वही सौभाग्य प्राप्त हुआ। "विष्णु-सहस्रनाम" के पाठ तथा कीर्तन के पश्चात बाबा ने अपने कमरे मे बुलाया और पिछले दिन की सारी क्रियाये दोहराई। एक घण्टे तक ध्यान मे रहा। आज गगोत्री के मनोरम दृश्य दिखाई दिए, रामेश्वरम का लहराता नीलवर्णी सागर दीखा और दीखे हसते-मुस्कराते बाबा। मन इतना शान्ति और आनद मे था कि आखें खोलने की इच्छा नही होती थी। ऐसी प्रतीति होती थी, मानो प्राणो को कुछ मिल रहा है, जो पहले नही मिला था।

आखें खुलते ही पाया कि मुझसे कुछ ही दूरी पर दिनकरजी ध्यान मे लीन बैठे थे। बाबा ने अपनी कृपा का प्रसाद उन्हे भी दिया था। बाद मे दिनकरजी ने बताया कि वह लगभग आधा घण्टे ध्यान मे रहे, उन्होंने बडी शान्ति का अनुभव किया और बाबा नित्यानदजी की आकृति उनके सामने बराबर बनी रही।

उस सध्या को लाजपत भवन मे बाबा का 'शक्तिपात' पर भाषण था। बाबा ने मुझे भी वहा चलने और बोलने का आदेश किया। बाबा का प्रवचन बहुत ही सुन्दर हुआ। लौटते मे वह मुझे अपनी कार मे साथ लाये।

१ मार्च को प्रात काल के विमान से बाबा को जाना था। हम लोग ५॥ बजे वहां पहुच गए। आज 'विष्णु सहस्रनाम' के पाठ तथा कीर्तन मे बाबा का उल्लास जैसे फूटा पड रहा था। कीर्तन मे उनका स्वर

इतना ऊंचा उठता था और उसमे इतनी लय थी कि उपस्थित सभी नर-नारी विभोर हो उठे।

आज हिन्दी के सब्ध प्रतिष्ठ लेखक श्री जैनेन्द्र कुमारजी भी वहां उपस्थित थे। बाद में दिनकरजी तथा संसद-सदस्य श्री गंगाशरणसिंह भी आ गए। मैंने श्री जैनेन्द्र कुमारजी को बाबा के कमरे में ले जाकर परिचय कराया तो बाबा ने बडे आत्मीय भाव से कहा, गणेशपुरी आइये। फिर मेरी ओर देखकर बोले, "क्यो, आज बहुत जाडा है ?" मैंने कहा, "हां, बाबा, जाडा तो है।" मेरे इतना कहते ही बाबा ने अपने परि-चालक से कहकर गरम मोजे निकलवाये और मेरी ओर बढाते हुए बोले, "लो, इन्हे पहन लो।" मैं पहले से ही मोजे पहने था। कुछ हिचकिचाया। पर बाबा कहा मानने वाले थे। बडे प्यार से कहा, "यहीं बैठकर पहन लो।" आगे मुझसे कुछ कहते न बना।

हम सब बाबा को बिदा करने पालम गए। वहां काफी भीड जमा हो गई थी। बाबा को हैदराबाद जाना था। उनके कुछ अतेवासी रेल से पहले ही चले गए थे। कुछ विदेशी भाई-बहिनें भी। फिर भी पालम पर सैकडो स्त्री-पुरुष थे। इस बार पहले की भाति भीड अव्यवस्थित नही थी। अनुशासन-बद्ध थी। हम लोग काफी देर तक वहा बैठे-बैठे बाबा से बातें करते रहे। वह सबको गणेशपुरी आने का निमंत्रण देते थे और कहते थे, "वहां आओगे तो तुम्हे बहुत अच्छा लगेगा। वहा की अपनी विशेषता है। वहां के पेड लचकते हैं, लताएं नाचती हैं, गाये मुझे देखते ही दूध की धार छोड देती हैं। यह चमत्कार की बात नहीं है। कोई भी वहां आकर इस सबको अपनी आंखो से देख सकता है।"

बाबा के इस कथन मे अतिशयोक्ति नही थी। कई भाई-बहनें इन दृश्यो को देख चुकी थी। उनके मुंह से मैंने इसका वर्णन सुना था। प्यार की महिमा कौन नही जानता। उससे सब कुछ सभव हो जाता है। बाबा मे नीचे स ऊपर तक प्यार ही प्यार भरा है। मुझे याद आया, पिछली रात को जब दिनकरजी, गंगाबाबू, मैं और अन्य व्यक्ति बाबा के पास बैठे थे तो महर्षि रमण के आश्रम की एक बुजुर्ग बहन ने बाबा को सकेत करते हुए ठीक ही कहा था, "ही इज लव परसोनीफाइड। (वह प्रेम की जीती-जागती प्रतिमा हैं)।"

बाबा ने राजधानी से बिदा ली। जाने कितने हृदय विह्वल हो उठे।

जीवन मे कभी-कभी चमत्कार देखने मे आते हैं, पर बाबा ने अपने स्पर्श से जो चमत्कार किया, वह अपने ढग का निराला था। मुझे अपने देश-विदेश के प्रवासों मे जाने कितने साधु-सतो के सम्पर्क का सौभाग्य मिला है, पर कोई भी साधु मुझे उतना आकृष्ट नहीं कर सका, जितना बाबा मुक्तानदजी ने किया। मैं "शक्ति-पात" का गूढार्थ नहीं जानता, चमत्कारो में भी मेरा विश्वास नहीं है, पर बाबा की सरलता, निश्छलता और प्रेमलता मुझे विकल लगी।

बाबा ने मुझसे क्या, किसी से भी नही कहा कि अपना सबकुछ त्यागकर साधु बन जाओ। वह तो एक ही बात कहते थे कि जो भी काम-धन्धा तुम्हारे हाथ में हैं, उसे सच्चाई से करो, उसमे रस लो और आनन्द अनुभव करो, लेकिन यह मस्ती तुम्हे तब प्राप्त होगी जब तुम अपने अतर में झांकोगे और देखोगे कि तुम्हारे भीतर अनत शक्ति विद्यमान है। उनका मूलमत्र था, "आपको ध्याओ। आपको पूजो। आपको बदो। आपको सम्मान करो। आपमे ही अपना राम आप ही रहता है।" बाबा ने इसी अतर्शक्ति को जाग्रत करने का सतत प्रयास किया। वह देश मे घूमे, विदेशो मे गए, स्थान-स्थान पर अपने आश्रम और केन्द्र स्थापित किए। उन्होंने किसी नये धर्म या सम्प्रदाय की स्थापना नही की। उन्होंने कहा, "मेरे पास नया सिखाने के लिए कुछ नही है। मैं तो तुम्हे उसी सत्य को समझाना चाहता हूं, जिस सत्य का वेदो, उपनिषदों, गीता तथा पुरातन और अर्वा-चीन दृष्टाओं ने रहस्योद्घाटन किया है। मैं तो इसे तुम्हारे दैनिक जीवन के प्रत्यक्ष तथा आंतरिक अनुभव-

का विषय बनाना चाहता हू ।"

मेरा परम सौभाग्य था कि मुझे और मेरे सारे परिवार को बाबा की गहरी आत्मीयता प्राप्त हुई। हम लोग कई बार गणेशपुरी गए। अमरीका मे न्यूयार्क से लगभग सौ मील की दूरी पर साउथ फौल्सबर्ग मे अठारह दिन बाबा के साथ उनके आश्रम मे रहे। उस सबकी याद करता हू तो मन अनिर्वचनीय आनद का अनुभव करता है।

बाबा २ अक्तूबर १९८२ को ब्रह्मलीन हो गए। उनकी भौतिक काया चली गई, पर बाबा असख्य हृदयो मे आज भी विद्यमान हैं और सदा रहेगे।

वह समर्पित व्यक्तित्व म्यूरियल लीस्टर

कुमारी म्यूरियल लीस्टर का नाम मैं कई बार सुन चुका था। गांधीजी के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होकर जो परदेसी भाई-बहन उनके मार्ग के अनुगामी बन गये, उनमे यह बहन भी एक थी। गहरी आत्मीयता और असीम अनुराग से उत्प्रेरित होकर वह अनेक बार इस देश मे आई और गाधीजी के सान्निध्य मे रही। द्वितीय गोलमेज परिषद मे सम्मिलित होने के लिए जब गाधीजी लदन गये तो उनके मेजबान बनने का दुलभ लाभ इन्ही कुमारिका को मिला।

सन् १९५७ मे अपने विदेश-प्रवास के दौरान मास्को से अन्य देशो के भ्रमण का कार्यक्रम बनाते समय लदन का नाम आया तो मुझे सहज ही म्यूरियल लीस्टर का स्मरण हो आया। मास्को-स्थित भारतोय दूतावास के तत्कालीन कौसलर श्री रत्नम की पत्नी कमला बहन से जब उनकी चर्चा आई तो उन्होंने कहा कि लदन मे आप म्यूरियल से अवश्य मिले। उन्होने उनके नाम एक पत्र भी लिखकर दे दिया।

लदन पहुचने के अगले दिन ही मैंने कमलाजी के पत्र का डाक से म्यूरियल को भेज दिया। साथ ही यह भी लिख दिया कि मैं लदन पहुच गया हू, अमुक स्थान पर ठहरा हू और घर का फोन नम्बर यह है। आप कृपया पत्र पाते ही सूचना दीजिये कि मैं कब मिलने आऊ ?

तीसरे दिन शाम को जब मैं अपने मेजबान नारायण स्वरूप शर्मा और उनकी पत्नी उर्मिला से बात कर रहा था कि फोन की घटी बजी। चोगा उठाया तो उधर से किसी महिला की आवाज सुनाई दी।

"क्या मैं यशपाल जैन से बात कर सकती हू ?"

"जी, मैं बोल रहा हू।"

"अच्छा, नमस्कार, मैं म्यूरियल लीस्टर हू। आपकी चिट्ठी मुझे मिल गई है। आपको यात्रा मे कोई कठिनाई तो नही हुई ?"

"जी, नही, आपकी कृपा से यात्रा बडे आनन्द से हुई।" मैंने कहा, "आप कैसी है ?"

"ठीक हू। क्या कल शाम को आप मेरे घर आ सकेंगे ?"

"कितने बजे ?"

"यही कोई चार बजे। क्यो, आपको कोई असुविधा तो नही होगी ?"

"जी, नही।"

लदन से बहुत दूर लाउटन मे रहती थीं। वहा पहुचने में मुझे कोई असुविधा न हो, इसलिए अपने घर तक पहुचने की पूरी जानकारी उन्होंने नारायणस्वरूप शर्मा को दे दी, जो मेरे साथ उनके यहा जाने वाले थे।

फोन पर म्यूरियल से जो थोडी-बहुत बातचीत हुई, उससे मुझे अच्छा लगा। उसके स्वर मे न केवल माधुर्य था, अपितु उनकी वाणी मे बडी हार्दिकता थी। लदन के शिष्टाचार से परिपूर्ण जीवन मे मेरे लिए यह एक नया और सुखद अनुभव था।

अगले दिन हम लोग सुरग की रेल से रवाना हुए। एसैक्स के जिस इलाके मे वह रहती थी, वह लदन से चालीस-पचास मील होगा। हमे इसका पता था, इसलिए उसी अदाज से चले। कोई पौन घटे, घटे भर रेल से सफर करके बस पकडी, जिसने एक छोटी-सी पहाडी के निकट उतार दिया। बस कडक्टर ने पहाडी की ओर सकेत करके बताया कि सडक से ऊपर चले जाय। थोडी दूर पर बाल्डविन रोड मिल जायगी।

बस से उतर कर ऊचाई के रास्ते पर चले। थोडी-थोडी वर्षा हो रही थी। आकाश काले बादलो से आच्छन्न था। कडाके की सर्दी पड रही थी। सडक एकदम सुनसान थी। हम लोगो को पहले ही कुछ देर हो चुकी थी। बडी मुश्किल से बाल्डविन रोड मिली, लेकिन उसके मकानो पर नम्बर नही थे और कही कोई आदमी दिखाई नही दे रहा था। पूछें तो किससे? मेह मे भीगते और जाडे से ठिठुरते हम लोग हरियाली से सुशोभित उस निर्जन सडक पर इधर-उधर चक्कर काटते रहे, परिणाम यह हुआ कि अत मे जब मकान ढूढ निकालने मे सफल हुए, दो घटे का विलम्ब हो चुका था।

४६ नम्बर के उस छोटे से मकान की घटी बजाते समय हमारा दिल धडक रहा था। आखिर प्रतीक्षा की भी तो हद होती है! पता नही, म्यूरियल क्या सोच रही होगी!

घटी की आवाज सुनते ही जिन्होंने बिना किसी उतावली के द्वार खोला, वे स्वय म्यूरियल लीस्टर थी। हमारा स्वागत अभिवादन करती हुई बोली, "मैं जानती थी कि ऐसे मौसम में आने मे आपको देर हो सकती है।"

मैंने कहा, "हमे बडा खेद है कि आपको इतनी राह देखनी पडी।"

बडे प्यार से वह बोली, "मेह बरसते मे भी आप आ गये, यह हमारे लिए थोडी बात नही है।"

दुबला-पतला शरीर, पर बेहद फुर्तीला, सौम्य-शांत चेहरा, प्रेमल स्वभाव, बेहद सादी पोशाक—यह थी म्यूरियल। मकान मे घुसते ही मानो उन्होने हमे जीत लिया। मैं बरसाती ओढे हुए था, इसलिए कम भीगा था, लेकिन नारायण का कोट पानी से सराबोर हो गया था। अन्दर कमरे मे पहुचते ही म्यूरियल ने बडी फुर्ती से सहारा देकर उनका कोट उतरवाया और हीटर के सामने कुर्सी की पीठ पर उसे सूखने के लिए फैला दिया।

इसके उपरात हम उनके छोटे से ड्राइग रूम मे बैठकर बाते करने लगे। गाधीजी की वह अनन्य भक्त थी और मैं गांधीजी के देश से वहा पहुचा था, फलत बैठते ही गांधीजी के विषय मे चर्चा छिड गई। म्यूरियल जैसे किसी पुराने युग मे पहुच गई। बोली, "सबसे पहले मैं गाधीजी से सन् १९२६ मे मिली थी। उस समय मैं उनके साथ एक महीने साबरमती आश्रम मे रही। उन दिनो की एक-एक बात मुझे आज भी याद है। कितना ऊचा था उनका व्यक्तित्व। कितना व्यापक था उनका प्रेम। दूर देश से वहा गई थी, कोई भी परिचित नही था, लेकिन क्षण भर के भीतर लगा कि मैं घर मे और घर वालो के बीच हू।"

कहते-कहते जैसे थोडी देर को वह खो गईं। फिर मानो एक साथ सोते से जगी, बोली, "सन् १९३१ मे जब गांधीजी दूसरी गोलमेज परिषद मे आने को हुए तो उन्होने इच्छा प्रकट की कि वह यहां उस वर्ग के लोगों के बीच ठहरना पसन्द करेंगे, जिनके लिए उन्होंने हिन्दुस्तान में अपना जीवन समर्पित कर रक्खा है। उन्होंने हमारा आतिथ्य स्वीकार किया। गरीबों की बस्ती मे किंग्सले हाल मे ठहरे। कोई तीन महीने हम सब साथ

रहे। बड़ी चीजों मे तो महानता प्राय सभी दिखाते हैं, लेकिन गांधीजी छोटी-से-छोटी चीजों में भी कितने महान थे। ईस्ट-एड की बस्ती के छोटे-बडे सब के दिलो मे उन्होंने अपना घर बना लिया।"

म्यूरियल की आखें चमक उठी, चेहरा दमदमा उठा, मानो एक बार वह पुन गाधीजी की भौतिक काया के दर्शन कर रही हो।

फिर कुछ सुस्थिर हुई तो बोली, "हमारे दिलो को तो उन्होने पूरी तरह जीत लिया। सन् १६३४ में मैं फिर भारत पहुची। बिहार मे भूकम्प से उन दिनो बडी बारबादी हो गई थी। गाधीजी मुझे अपने साथ बिहार ले गए। बाद मे जब उन्होने अस्पृश्यता-निवारण के सिलसिले मे दौरा किया तो उसमे भी मैं उनके साथ रही। मैं बहुत घूमी हू —अमरीका, चीन, जापान और बहुत-से देशो मे गई हू, पर गाधीजी का सत्सग कुछ और ही महत्व रखता था।"

धीमी आवाज मे एक के बाद एक वह बहुत से सस्मरण सुनाती रही। ऐसा जान पडता था, जैसे कोई अवरुद्ध स्रोत खुल गया हो।

उस आडम्बरहीन ड्राइग रूम मे फर्नीचर के नाम पर तीन कुर्सियां और एक छोटी-सी मेज थी। हा, एक आराम-कुर्सी और थी, जिसपर बैठी हुई वह दशाब्दियो पहले की अपनी स्मृतियो को सजीव कर रही थी। सामने की दीवार पर गाधीजी का एक चित्र टगा था।

सस्मरणो की शृखला अबाध गति से चलती रहती, यदि बीच मे ७० वर्ष की उनकी छोटी बहन डारिस न आ गई होती। उन्होने डारिस से हमारा परिचय कराया। फिर बोली, "डारिस, मेहमानो को घर दिखाने का काम तुम करो।"

बडी बहन की भाति उन वृद्धा-युवा बहन के साथ हम लोगो ने पहले नीचे का हिस्सा देखा, जिसमे एक गुसलखाना, रसोई तथा एक छोटा-सा कमरा था। फिर जीने से ऊपर की मजिल मे गये। ऊपर की मजिल क्या थी, एक कमरा था, छोटा-सा, जिसमे एक ओर को आलमारी मे कुछ पुस्तकें रक्खी थी और उसके निकट ही म्यूरियल के सोने के लिए एक पलग पडा था। हर चीज से सादगी टपकती थी, पर साथ ही यह भी महसूस होता था कि म्यूरियल बडी ही कला-प्रेमी हैं। डारिस ने पलग की ओर सकेत करके कहा, "यह पलग आपको कुछ ज्यादा ऊचा लगता होगा। म्यूरियल ने जान-बूझकर इसे इतना ऊचा बनवाया है। जानते हैं क्यो? इस-लिए कि सबेरे उठते ही, बिस्तर पर बैठे-बैठे, वह खिडकी मे से सबसे पहले बगीचे के फूलो को देख सके। फूलो को म्यूरियल बहुत प्यार करती हैं। एक बात और बताऊ। म्यूरियल ने सबेरे जगाने के लिए बडी बढ़िया एलार्म घडी लगा रक्खी है। देखेंगे?"

कौतूहल से मैंने कहा, "जरूर।"

डारिस हस पडी। खिडकी के सहारे टीन की एक नली दिखाकर बोली, "म्यूरियल की एलार्म घडी चिडिया हैं। हम लोग चुगने के लिए इस नली मे दाना डाल देते हैं। चिडिया सबेरे यहा आकर चहचहाती हुई दाना चुगती हैं और खिडकी के शीशे से चोच खटखटाती हैं। बस, म्यूरियल जाग जाती हैं। चिडियां उन्हे बेहद पसन्द हैं"

यह सब देख-सुनकर हृदय गद्गद् हो गया। छोटी-छोटी चीजें हमारे जीवन को कितना सरस और आनन्दमय बना सकती हैं, उसका यह एक सुन्दर उदाहरण था। म्यूरियल के कला-प्रेम की भी मन पर गहरी छाप पडी।

नीचे आये तो म्यूरियल ने कहा, "डारिस, हम लोग बातो मे ऐसे डूब गये कि मैंने मेहमानों से कॉफी के लिए भी नहो पूछा। पर सुनो भाई, आप लोग खाना खाकर जायेंगे।"

उनके आग्रह भरे निमन्त्रण को हमने खुशी-खुशी स्वीकार किया। हमारी रजामन्दी पाकर म्यूरियल बोली, "देखिये, हम लोग अपना काम खुद करते हैं। डारिस और शर्मा कॉफी बनायेंगे। मैं और आप टोस्ट सेकेंगे। ठीक है न?"

उनके यहां सचमुच कोई नौकर नहीं था। सफाई, खाना बनाना, आदि-आदि सारे काम वे स्वय करती थीं।

हम लोगो ने मिलकर भोजन तैयार किया। एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ। काम करते-करते बातें करने का सहज अवसर मिल गया। म्यूरियल ने साबरमती, सेवाग्राम बिहार आदि के बहुत से संस्मरण सुनाये। बोली, "जाने कितनी बातें याद आती हैं गांधीजी की। वह वास्तव मे महापुरुष थे। एक बार मैंने सुना, वह किसी से कह रहे थे, 'जिसे नेतृत्व का कार्य करना होता है, उसे क्रोध मे अपनी शक्ति का अपव्यय नही करना चाहिए। नेता को अपने लिए किसी चीज के पाने की आकाक्षा नही रखनी चाहिए—न पुरस्कार की, न पद की, न आमोद की और उसे चौबीसो घटे भगवान का स्मरण रखना चाहिए।' उनके लिए सत्य परमेश्वर था और परमेश्वर तक पहुचने का मार्ग अहिंसा थी।"

हाथ उनके फुर्ती से काम करते जाते थे। बोली, "हां, देवदास[1] का क्या हाल है?"

मैंने कहा, "वह तो अब इस दुनिया मे नहीं हैं।"

सुनकर वह स्तब्ध-सी रह गई। बोलीं, "यह क्या हो गया? उनके साथ मेरा बडा सम्पर्क रहा था। मैं तो सोच रही थी कि इस बार दिल्ली आऊगी तो उनसे जरूर मिलूगी। पर अचानक ऐसा कैसे हो गया? क्या वह बीमार थे?"

मैंने कहा, "नही, वह बीमार नही थे। पहले उनकी तबीयत खराब रही थी। अब ठीक थी। असल में वह काम बहुत करते थे। रात देखते थे, न दिन। आखिर शरीर कब तक सह सकता था! मद्रास गये थे, वहा से बम्बई। दिल्ली लौटने वाले थे। अकस्मात् दिल की धड़कन बन्द हो गई।"

म्यूरियल ने कहा, "बडा बुरा हुआ, पर यह अच्छा है कि आदमी हाथ-पैर के चलते-चलते चला जाए। इसे मैं ईश्वरीय वरदान मानती हू, पर देवदास की तो उम्र कुछ भी नहीं थी।"

सारा वायुमण्डल बहुत भारी हो गया। शायद इस बात को उन्होंने अनुभव किया। अत विषय बदलते हुए बोली, "विनोबाजी का और भूदान का क्या समाचार है?"

मैंने उन्हें विस्तार से सब बातें बताईं। वह बोली, "विनोबाजी ऊचे दर्जे के सन्त हैं और उन्होंने जो काम उठाया है, वह हिन्दुस्तान की ही नही, दुनिया की भलाई का है। आखिर दुनिया प्यार और सद्‌भाव पर ही टिकी रह सकती है।"

खाना तैयार हो चुका था। हम लोग साथ-साथ खाने बैठे। डबलरोटी, मक्खन और कॉफी के अलावा कुछ कच्ची चीजें थीं—गाजर, खीरा और बंदगोभी के पत्ते। खाना खाते-खाते म्यूरियल बोली, "गाधीजी ने एक बार कहा था, 'मैं सौ साल जीना चाहता हू और यही उम्मीद मैं अपने दोस्तो और संगी-साथियो से करता हू।' मुझे पक्का यकीन है कि वह जरूर सौ साल जी सकते थे, पर भगवान् को मजूर न हुआ। (कुछ रुककर) लेकिन हम लोगो से उन्होंने जो इच्छा की थी और उम्मीद रखी थी, उसे मैं पूरी करना चाहती हू। अभी उनका बहुत-सा काम करने को बाकी पड़ा है न!"

भोजन के बाद हमने बर्तन साफ किये। बातचीत का सिलसिला फिर शुरू हो गया। रात काफी हो गई थी और वह ऐसे बात किये जा रही थीं, जैसे उनका अंत ही नहीं होगा।

---

१ देवदास गांधी, महात्मा गांधी के लड़के।

हम लोग चार घटे साथ रहे। दोनो बहनो के असामान्य सयम की झलक उनके चेहरे से दिखाई देती थी। म्यूरियल ७३ वर्ष की थी, पर उनका एक भी दात नही उखडा था। डारिस ७० वर्ष की थी और अपनी बहन की तपस्या मे गहरी निष्ठा से योग देती थी। म्यूरियल की निश्छल हसी और चेहरे की दमक आज भी मुझे विभोर कर देती है।

हम लोगो ने विदा मागी तो म्यूरियल ने मुझे अपनी दो पुस्तके भेंट मे दी। 'गाधीजी के सिगनेचर', जिसमे उन्होने गांधीजी के अपने सस्मरण दिये थे। दूसरी थी उनकी आत्म-कथा—'इट अकर्ड टू मी।' इस पर दोनो बहनो ने अपने हस्ताक्षर किये।

उसी समय एक और बहन वहा आ गईं। वे हमे बस के अड्डे तक पहुचा गईं। थोडी देर मे बस मिल गई। सारे रास्ते हम लोग म्यूरियल की चर्चा करते रहे। कितनी सादगी और उच्चता थी उनमे!

म्यूरियल का जीवन प्रारम्भ से ही वैभव से विमुख रहा था। उनके पिता जहाज बनाने की एक कपनी मे काम करते थे और अत्यन्त परिश्रमशील थे। उनके पास पैसे की कमी न थी। वे लोग लदन से दूर एसैक्स मे एक साफ-सुथरे मोहल्ले मे रहते थे, लेकिन शहर आते-जाते उन्हे उस पूर्वी बस्ती से गुजरना पडता था, जहा गरीब लोग रहते थे और गदगी की जिन्दगी बसर करते थे। म्यूरियल जब आठ वर्ष की थी तो एक दिन किसी पार्टी से अपनी नर्स के साथ लौट रही थी। अचानक उनकी निगाह पूर्वी लदन के मकानो पर गई, जो बडे गदे दिखाई दे रहे थे, जिनसे बदबू आ रही थी और जिनके इर्द-गिर्द बाग-बगीचो का नामो-निशान तक न था। म्यूरियल के लिए ऐसे मकान अकल्पनीय थे। उन्होने बाल-सुलभ विस्मय से अपनी नर्स से पूछा, "क्या इन मकानो मे आदमी रहते है?"

नर्स ने उत्तर दिया, "क्यो नही, इनमे बहुत-से आदमी रहते है।"

सभवत नर्स को सूचना थी कि वह बच्चो को ऐसी किसी बात की जानकारी न होने दे, जिससे उन्हे बुरा लगे या दु ख पहुचे। अत नर्स ने आगे कहा, "पर तुम इसकी चिन्ता न करो। इन मकानो मे रहने वाले लोगो को जरा भी हैरानी नही होती। वे खूब खुश रहते हैं।"

कुछ समय बाद फिर म्यूरियल का ध्यान उस ओर गया और उन्होने अपने प्रश्न को दोहराया। इस बार उत्तर मिला, 'ये लोग बडे मस्त हैं। यहा की गदगी इन्हे बिल्कुल नही अखरती। अखरे भी तो क्या, आखिर यही लोग तो इसके लिए जिम्मेदार है। ये शराब मे अपना पैसा उडा देते हैं। इसी से गरीब है।"

म्यूरियल ज्यो-ज्यो बडी होती गईं, उनके मन मे यह विचार घर करता गया कि गरीब लोगो के रहन-सहन को कैसे ऊपर उठाया जाय और उनके जीवन मे कैसे सुधार किया जाय। यही विचार धीरे-धीरे पल्लवित होता गया और आगे चलकर उसने उनकी जिन्दगी को एक नयी दिशा मे मोड दिया।

म्यूरियल पांच भाई-बहन थे। दो बडी बहनो का विवाह हो गया था। म्यूरियल और उनकी छोटी बहन डारिस आजन्म अविवाहित रहीं। उनके एक ही भाई था किंग्स्ले। वह सबसे छोटा था। म्यूरियल उसे बेहद प्यार करती थी। वह अपनी आत्म-कथा म लिखती है, 'मुझे इस बात का बडा का डर लगा रहता था कि कही किंग्स्ले बडा होकर शराब न पीने लगे, बुरी सोहबत मे न पड जाय और कही वह भगवान को न बिसरा दे। जब वह कैम्ब्रिज मे पढ़ने जाने को था तो न जाने किन-किन बुराइयो की कल्पना करके मैं परेशान होने लगी। अत म टाल्स्टाय न मेरा उद्धार किया। किसी के घर मे मुझे टाल्स्टाय की एक पुस्तक मिली, 'स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अन्तर मे है।' उस पुस्तक ने मेरे जीवन के मूल्य ही बदल दिये। उसमे ईसा के इन शब्दो

पर "किसी के काजी मत बनो" एक लम्बा अध्याय था। जब मैंने उसे मनोयोगपूर्वक पढ़ा तो चिन्ता पैदा करने वाले विचारो का बोझ मेरे मन पर से उतर गया। मैंने अनुभव किया कि जब तक किंग्स्ले या कोई दोस्त जिसे सही मानता है, उस रास्ते पर चलता है, मुझे उनको आदर देना चाहिए।"

आगे वह लिखती हैं, "उस किताब मे एक और अध्याय था—'चिन्ता न करो', उसे पढ़कर मैंने उन परंपराओ, आकांक्षाओ, आडम्बरो तथा भयो को सदा के लिए तिलांजलि देने का निश्चय कर लिया, जो हमारे अदर सघर्ष पैदा करते हैं।"

म्यूरियल के पिता बडे ही धर्म-परायण व्यक्ति थे, लेकिन उनका धर्म कर्मकाण्ड तथा रूढ़ियो से आबद्ध नहीं था। वह अपनी वाणी, कर्म तथा लेखनी से यह दिखाने का बराबर प्रयत्न करते थे कि ईश्वर का सारतत्व प्रेम है। वह बाइबिल की कथा-कहानियो की ओर विशेष ध्यान दिया करते थे और हर रविार को अपने बच्चो को वैसी कहानिया सुनाया करते थे।

अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद म्यूरियल को सेवा की धुन सवार हुई। वह अवसर मिलते ही पूर्वी लदन की गदी बस्ती मे पहुच जाती और वहां के लोगो की जो कुछ सेवा कर सकती, करती।

सन् १९१० मे वह अपने माता-पिता के साथ फिलिस्तीन गई। उन्हें बताया गया था कि धर्म-स्थानों की हालत बडी बुरी है। लेकिन उनकी भयकरता का अनुमान वह पहले नही लगा सकी थी। जब वह बैथलहैम और जैरूसलम पहुची और वहा के गिरजो की जीर्णता, दीवारो का उखडा पलस्तर और कीलो पर लगी जग देखी तो उन्हे बडी चोट लगी।

लदन लौटकर वह पुन सेवा-कार्यों मे जुट गई। उनका और उनकी छोटी बहन डारिस का अब प्राय पूर्वी लदन की 'बो' नामक बस्ती ही प्रमुख कार्य-क्षेत्र बन गई। इसी बीच उनके भाई किंग्स्ले का मन अपने व्यवसाय से उचटा और वह भी सन् १९१२ मे अपनी बहनो के साथ आ मिला। तीनो ने मिलकर 'बो' बस्ती मे एक मकान भाडे पर ले लिया, लेकिन उन्होंने कुछ ही दिन काम किया कि किंग्स्ले को एपैंडिसाइटिस की शिकायत हो गई, जो उनके लिए प्राण-घातक सिद्ध हुई। छब्बीस वर्ष की उम्र मे उस इकलौते भाई का देहान्त हो गया।

म्यूरियल को बडी पीडा हुई पर उन्होने उस दु ख मे से शक्ति उत्पन्न की। उन्हे किंग्स्ले के कार्य को आगे बढाना था। वह और डारिस पूरी लगन और उत्साह से समाज के पिछडे वर्ग को समुन्नत करने मे लग गई। किंग्स्ले के पास कुछ पैसा था। मरते समय वह लिखकर छोड गया कि उस पैसे को म्यूरियल और डारिस काम मे लावे और उससे जो आमदनी हो, वह 'बो' के निवासियो की सेवा मे खर्च की जाय।

एक दिन म्यूरियल के पिता ने कहा, "सेवा के लिए किसी सार्वजनिक स्थान का निर्माण करने से बढकर किंग्स्ले का कोई भी स्मारक नही हो सकता। अगर कोई मौके की अच्छी जगह हो तो मुझे बताओ। मैं उसे तुम दोनो बहनो के लिए खरीद दूगा।"

इधर-उधर ढूढने से पश्चात् उन्हे एक हॉल मिला, जो खाली पडा था। वस्तुत वह एक चैपल था। उसी को खरीद लिया गया और इस प्रकार सन् १९१५ मे 'किंग्स्ले हाल' की स्थापना हुई। किसी भी सस्था को जन्म दे देना आसान है, लेकिन चलाना बडा कठिन है। उसके लिए भारी साधना की आवश्यकता होती है। म्यूरियल एक स्थान पर लिखती हैं

"किसी विचार को ईंट और चूने का जामा पहनाने मे बहुतो को निराशा हो सकती है। अपनी नयी सस्था के लिए हम लोगो ने बडी मेहनत की। हमारे पास कुछ भी ऐसा न था, जिस पर हम गर्व कर सकते, पर जिस तड़प ने किंग्स्ले हॉल की स्थापना कराई थी, वह कभी खत्म न हो सकी। हमें बडे-बडे अनुभव प्राप्त हुए

—असफलता के, आनन्द के, प्रेम के और खतरे के।"

प्रारभ मे इस संस्था की मुख्य प्रवृत्ति थी सध्या को लोगों का वहां एकत्र हो जाना और स्वस्थ मनोरंजन मे कुछ समय व्यतीत करना, किन्तु इतने भर म्यूरियल को कहा सन्तोष होने वाला था ! उन्होंने अपनी प्रवृत्तियो मे वृद्धि की। वह तो उसे एक ऐसी सस्था का रूप देना चाहती थी, जहां सामान्य स्थिति के लोग बिना वर्ण, वर्ग तथा विश्वास के भेद के रहे और सचाई की जिन्दगी बितायें।

'बो' का वह स्थान छोटा पडने लगा तो उन्होने पाविस रोड पर एक बडी जगह ली। वहा म्यूरियल और कुछ अन्य व्यक्ति मिलकर सारा काम स्वय करते। कोई फर्श की सफाई करता, कोई खाना पकाता। उन्होने कोई भी काम एक व्यक्ति को नही सौंपा। जिसे जो काम पडा दीखता, वह उसी को करने मे लग जाता। "हमारे सामने एक दृष्टि थी", म्यूरियल लिखती हैं, "और वह यह कि हमे सबसे पहले ईश्वर की सेवा करनी है, फिर किंग्स्ले-हॉल की व्यवस्था करनी है। उसके बाद कही आती है हमारी निजी मर्जी।" वे लोग सबेरे ठीक ६ बजकर ५० मिनट पर रसोई मे पहुच जाते थे। उनका हर काम इतनी नियमितता से होता था, जितनी नियमितता से कारखाने के मजदूर अपना काम करते हैं। म्यूरियल लिखती हैं, "हम पूजीवादी सिद्धात को भ्रामक सिद्ध करना चाहते थे कि निजी लाभ और बर्खास्तगी के डर से ही अच्छा काम कराया जा सकता है। वे लोग सारा काम स्वेच्छा से करते थे। इनके सामने न पैसे का लालच था, न यह डर कि वे अपना काम ठीक से नही करेंगे तो कोई उन्हे वहा से निकाल बाहर करेगा।

इस प्रकार की निष्ठा बिना प्रार्थना के कैसे सम्भव हो सकती थी। सुबह-शाम मौन-प्रार्थना उनकी दैनिक चर्या का अभिन्न अग बनी।

नये स्थान की इमारत म्यूरियल तथा उनके साथियो को अनुकूल नहीं मालूम होती थी। अत उसे गिराकर नई इमारत बनाई गई। उसका प्रत्येक भाग जीवन तथा धर्म के प्रति म्यूरियल के दृष्टिकोण के किसी न-किसी पहलू का प्रतिनिधित्व करता था।

इस किंग्स्ले-हॉल का सितम्बर १९२८ मे उद्घाटन हुआ। यही वह सस्था थी, जिसके आतिथ्य को गाधीजी ने द्वितीय गोलमेज परिषद् के अवसर पर स्वीकार किया। सन् १९३१ मे वह तीन महीने इसी किंग्स्ले-हॉल मे ठहरे।

इस सस्था के द्वारा म्यूरियल ने सामान्य लोगो की जो सेवा की, वह अद्भुत थी। उसमे कुछ लोग स्थायी रूप से रहते थे और सारा काम अपने हाथ से करते थे। वहा न कोई नौकर था, न मालिक। सब एक परिवार के सदस्यो की भाति रहते थे। अपनी नि स्वार्थ सेवा, सादगी तथा सचाई से इस सस्था ने बहुत-से सम्मानित व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट किया। वहा के नर्सरी स्कूल मे पढे बहुत-से बच्चे कालातर मे ऊचे ओहदो पर पहुचे। सबमे बडी सेवा उसने यह की कि हीन दृष्टि से देखे जाने वाले उस इलाके के स्त्री-पुरुषो के हृदयो मे आत्मीयता, साहस और करुणा की भावना पैदा हुई। जो लोग भयकर-से-भयंकर बुराई करने के लिए आमादा रहते थे, उनके जीवन को इस असामान्य महिला ने एकदम बदल दिया। उन्होंने दुनिया को दिखा दिया कि प्यार के आगे पत्थर भी मोम हो जाता है।

सन् १९२९ के आरभ मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जामाता प्रो गागुली किंग्स्ले-हॉल मे भाषण देने आए। बाद मे जब म्यूरियल उनमे मिलने गई तो उन्होने कहा, "मेरी इच्छा है कि आप भारत आए और वहां सब चीजो को एक बार अपनी आखो से देखे। अगर आपके पास समय हो तो एक महीना कवीन्द्र रवीन्द्र के पास ठहरे, एक महीना गाधीजी के पास और एक महीना इधर-उधर घूमने मे लगाए। मैं आपके लिए सारी व्यवस्था कर दूगा।"

म्यूरियल को भला और क्या चाहिए था ! वह सन् १९२६ के अक्तूबर मास मे गांधीजी के साबरमती आश्रम में पहुचीं और एक महीने उनके साथ रहीं । गांधीजी के व्यक्तित्व, उनके प्रेम तथा उनके आदर्शों ने उनको इतना प्रभावित किया कि वह सदा के लिए उन्हीं की हो रहीं ।

म्यूरियल के यहां से चलते समय मैंने उनसे निवेदन किया था कि हम लोग किंग्स्ले-हॉल देखना चाहेंगे, जहां गोलमेज परिषद् के दिनों मे गांधीजी रहे थे ।

म्यूरियल ने बडी भावना के साथ कहा, "जरूर देखिए, पर वह यहा से दूर है । कोई बात नही । मैं स्वयं वहा आकर आपको उसे दिखाऊगी ।"

इतना कहकर उन्होंने वहा मिलने की तिथि और समय निश्चित कर दिया ।

पूर्वी लदन के मध्य मे, मजदूरों की बस्ती के बीच, किंग्स्ले-हॉल के ऐतिहासिक स्मारक को देखने हम लोग निश्चित समय पर पहुच गए । वहा आने के लिए बसें, ट्रामे और सुरग की रेलें बराबर दौडती रहती हैं । पाविस रोड के पूर्वी भाग मे एक छोटा-सा मकान है, जिसके बाहर एक गोलाकार घेरे मे अग्रेजी मे लिखा था—"लदन काउण्टी कौंसिल । महात्मा गांधी (१८६९-१९४८) यहा ठहरे थे—१९३१ ।" हम समझ गए कि यही किंग्स्ले-हॉल है ।

म्यूरियल और डारिस, दोनो वहा पहले ही पहुच गई थी । कुछ और लोग आए थे, जिनमे उस सस्था के मिनिस्टर और वार्डन भी थे । सूचना देने पर म्यूरियल ने हमे ऊपर बुलाया । उपर की मजिल मे कुछ कमरे थे । उन्ही मे से एक मे बापू ठहरे थे । बाद मे बापू ने 'यग इडिया' मे लिखा था, "यह एक बडी शुभ बात थी कि म्यूरियल लीस्टर, किंग्स्ले हॉल की प्राण, ने अपनी बस्ती मे ठहरने के लिए मुझे निमत्रण दिया और मैं उसे स्वीकार कर सका । अनुभव ने मुझे बताया कि रहने के लिए किंग्स्ले हॉल का चुनाव आदर्श था । वह लदन के गरीबो के बीच अवस्थित है और उन्ही की सेवा के लिए पूरी तरह समर्पित है । कहने की आवश्यकता नही कि मैं वहा ठीक उसी प्रकार रह सका, जिस प्रकार भारत मे रहता हू । पूर्वी लदन की सडको पर सवेरे-सवेरे टहलने की स्मृति ऐसी है कि कभी भुलाई नही जा सकेगी ।

" पूर्वी लदन के अपने निवास-काल मे मैंने मानवीय स्वभाव के सर्वोत्तम पहलू को देखा और मेरी इस धारणा की पुष्टि हुई कि यदि हम गहराई से देखें तो बुनियाद मे पूर्वी और पश्चिम जैसा कोई भेद नही है ।"

ऊपर के कमरे को दिखाते हुए म्यूरियल एक कमरे पर रुक गईं । भाव-विभोर होकर बोली, "गांधीजी इसी कमरे मे ठहरे थे । उन्होंने सबसे छोटा कमरा अपने लिए चुना था । उसमे से फर्नीचर उन्होंने निकलवा दिया । कितना जाडा था उन दिनो, पर गांधीजी जमीन पर बिस्तर लगाकर सोते थे । बाहर इस छत पर (छत की ओर सकेत करते हुए) प्रार्थना होती थी ।" म्यूरियल को सब-कुछ ऐसा याद था, जैसे वह कल की ही घटना हो । उन्होने वह सडक दिखाई, जिस पर गांधीजी टहलने जाया करते थे ।

फिर कुछ याद करती हुई बोली, "बडे तडके वे टहलने जाते थे । एक रोज कुछ बच्चे आए और उन्होंने डारिस से कहा, 'क्योजी, हम लोग गांधीजी के साथ सैर कर सकते हैं ?' डारिस ने कहा, 'जरूर जा सकते हो, लेकिन इसके लिए तुम्हें जल्दी उठना होगा ।' अगले दिन देखते क्या हैं कि पाच बच्चे बडी जल्दी आकर नीचे अधेरे मे खडे होकर गांधीजी की राह देखने लगे । उनकी उम्र १०-१०, ११-११ साल से अधिक नहीं होगी । बच्चे गांधीजी को बहुत प्यार करते थे और गांधीजी स्वयं उन्हे बहुत चाहते थे ।"

उन्होंने आगे कहा, "यहां के नर्सरी स्कूल मे पढ़े अनेक बालक-बालिकाए लदन के विभिन्न भागो मे

आज अच्छा काम कर रहे है। सस्था से अनेक सम्मानित व्यक्ति सम्बद्ध हैं। लेकिन " म्यूरियल कुछ देर रुक कर बोलीं, "अब तो इस बस्ती का रूप ही कुछ और हो गया है। आग लगने से यहा के छोटे-छोटे सब मकान ढह गए। जमीन को पैसो वालो ने खरीद लिया और गरीबो को खदेडकर बडे-बडे मकान खडे कर लिये। अब तो सारा वायुमण्डल ही बदल गया है। मजदूरो के छोटे-छोटे मकानों के बीच किंग्स्ले हॉल बहुत बडा लगता था। अब वही बडे-बडे मकानो के बीच, देखते नहीं, कैसा छोटा लगता है!"

बडी व्यथा के साथ उन्होने आगे कहा, "लेकिन उससे भी बुरी बात यह है कि पैसे वालो की गाधीजी के सिद्धान्तो पर, उनके आदर्शों पर, आस्था नही है। मजदूर दिल से गाधीजी को प्यार करते थे। यहा इकट्ठे होकर उनका काम करते थे। पैसे वालो मे यह बात नही है। आज भी यहा कई प्रवृत्तिया चल रही हैं, लेकिन हम बडे ही आर्थिक सकट से गुजर रहे है। पर उससे क्या, आस्था के साथ थोडे लोग भी गाधीजी की जलाई ज्योति को प्रज्वलित रखेंगे तो वह कभी बुझेगी नही।"

वहा के वार्डन मि रसल ने बताया कि कुछ दूर पर एक और किंग्स्ले हॉल है। गाधीजी उसे देखने गए। वह उनका मौनवार था। बच्चे खेल रहे थे। गाधीजी देर तक हसते-खिलखिलाते बच्चो के खेल देखते रहे। बाद मे उनसे रजिस्टर मे कुछ लिखने को कहा गया तो उन्होने लिखा—"लव सराउडेड मी हियर।" (मैं यहा चारो ओर प्रेम से घिरा रहा।)

सुनाते-सुनाते रसल बोले, "गाधीजी का यह अमर वचन और उनकी भावना सदा हमारे सामने रहती है।"

किंग्स्ले हॉल को देखकर जब मै लौटा तो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो तीर्थ-यात्रा करके आया हू। लदन की भौतिकता के लिए म्यूरियल लीस्टर का जीवन और किंग्स्ले हॉल की प्रवृत्तिया निस्सन्देह एक चुनौती है और साथ ही एक चेतावनी भी कि इस ससार मे सब कुछ क्षण-भगुर है। यदि कुछ अजर-अमर है, तो वह प्रेम है और उसी पर चलकर और ढलकर इसी पृथ्वी पर स्वर्ग की कल्पना साकार हो सकती है।

भारत लौटने पर म्यूरियल के साथ मेरा बराबर सम्पर्क बना रहा। मैंने उनसे एक बार नेहरूजी पर और दूसरी बार गाधीजी पर लेख भेजने का अनुरोध किया। उन्होने तत्काल लेख भेज दिए। दोनो बार लेख उन्होने अपने हाथ से लिखकर भेजे। मैने समझ लिया कि उनके पास टाइप कराने की भी सुविधा नही है।

कोई चार वर्ष पहले म्यूरियल की अस्सीवी वर्षगाठ मनाई गई। किंग्स्ले हॉल के अधिकारी का पत्र आया कि मैं म्यूरियल के प्रति कुछ पक्तियो मे अपनी शुभकामनाए भेज दू और यदि हो सके किंग्स्ले हॉल के लिए कुछ आर्थिक सहायता भी। उनके अनुरोध को मैंने सहर्ष स्वीकार किया। कुछ दिन बाद म्यूरियल का पत्र आया। उसमे उन्होंने उस सन्ध्या का स्मरण किया था, जो हमने साथ बिताई थी। फिर लिखा—"मेरी छोटी बहन डारिस की तुम्हे याद होगी, प्यारी डारिस की। उसके साथ बडी दुर्घटना हो गई। उसकी स्मरण-शक्ति जाती रही है। उसका चेहरा आज भी वैसा ही है, उतना ही सुन्दर, उतना ही आकर्षक, पर वह मेरी ओर ऐसे देखती है, जैसे शून्य मे देखती हो। वह मुझे पहचान नही पाती। ईश्वर की मर्जी के आगे किसी की कुछ नही चलती! "

म्यूरियल आत्मा की शक्ति मे अचल विश्वास रखती थी। किंग्स्ले हॉल का यह अभिलेख "ईश्वर ने हम सबको इसलिए जन्म दिया है कि हम सारे प्राणियो के साथ भाईचारा स्थापित करें", मानवता के प्रति उनके तादात्म्य की ओर सकेत करता है। जब और जहा से भी मानव की पुकार उनके कानों मे पडी, वह

मदद के लिए दौड़ी गई। सन् १९१६ में वह महिलाओं का जलूस लेकर हाउस ऑफ कामन्स में गई थीं। उनकी मांग थी कि भूखे जर्मन परिवारों को खाना भेजा जाय। द्वितीय महायुद्ध का विरोध करने के फलस्वरूप उन्हें ट्रिनीडाड मे नजरबन्द रखा गया, एक रात उन्हें ग्लासगो की पुलिस की हिरासत में बितानी पड़ी, दो दिन होलोवे की जेल मे। वह पॉपलर बरो की सदस्य रहीं, युद्ध के अस्त्रों के व्यापार के विरुद्ध उन्होंने अतर्राष्ट्रीय स्तर पर आन्दोलन किया। मानव-समाज के कल्याण के लिए और भी न जाने क्या-क्या काम उन्होंने किये।

वह उच्चकोटि की लेखिका थीं। उनकी आत्मकथा, जो बडी ही प्रांजल भाषा मे लिखी गई है, अत्यत प्रेरणादायक है। उनकी दूसरी पुस्तक 'एटरटेनिंग गांधी' उपन्यास-जैसी रोचक है और गांधीजी तथा उनकी प्रवृत्तियो के प्रति लेखिका की अनन्य श्रद्धा को व्यक्त करती है।

लेखनी की भाति म्यूरियल वाणी की भी धनी थी। वह नपी-तुली शब्दावली मे बोलती थी और अपनी बात बडे प्रभावशाली ढग से कहती थी।

वस्तुत उनकी शक्ति का स्रोत था प्रेम से छलछलाता उनका हृदय, दीन-दुखियो की निस्वार्थ सेवा-भावना और सर्वहितकारी दृष्टि। वह धनिक घर की थी, उनमे ऊचे-से-ऊचे पद पर आसीन होने की योग्यता थी, पर उन्होने स्वेच्छा से गरीबी और सादगी की जिन्दगी अपनाई और आजीवन निष्ठापूर्वक उसी रास्ते पर चलती रही।

पिछले दिनों समाचार मिला कि म्यूरियल लीस्टर का लंदन मे देहान्त हो गया। मुझे उनका यह वाक्य याद आया जो उन्होने अपने निवास-स्थान पर भोजन के समय मुझसे कहा था, "लेकिन हम लोगो से उन्होंने (गाधीजी ने) जो इच्छा की थी और उम्मीद रखी थी, उसे मैं पूरी करना चाहती हू। अभी उनका बहुत-सा काम करने को बाकी पडा है न!"

वह सचमुच जीने के लिए उत्सुक थी। इसलिए नही कि उन्हे जीने से किसी प्रकार का मोह था, बल्कि इसलिए कि शाति और प्रेम को जन-जन तक पहुचाने का गांधीजी का ध्येय अभी पूरा नही हुआ था। म्यूरियल की सारी प्रवृत्तियो के मूल मे गाधीजी की विचार-धारा की प्रेरणा थी।

भारतीय संस्कृति के अमर गायक : रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की सेवाए इतनी व्यापक हैं कि उनका ठीक-ठीक मूल्यांकन करना बडा कठिन है। वस्तुत वह सर्वतोमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। साहित्य से आरम्भ करके उनकी सेवाओं का क्षेत्र उत्तरोत्तर विस्तृत होता गया और आगे चलकर तो लोक जीवन का एक भी ऐसा प्रमुख अग नही छूटा, जिसे उन्होंने अपने योग-दान से समृद्ध न किया हो उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए एक लेखक ने यथार्थ ही लिखा है

"किसी गगनचुम्बी शैल-शिखर के पाद-प्रदेश मे खडे होकर जब हम उसकी ओर देखते हैं, या कूलहीन सागर के तट पर खडे होकर उसकी अनन्त जल-राशि के बीच विक्षुब्ध तरगो की लीला का अवलोकन करते हैं तो उस समय हमारे मन मे विस्मय के जिस प्रकार के भाव उत्पन्न होते है उसी प्रकार के भाव श्री रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध मे भी हमारे मन को अभिभूत कर डालते हैं।"

रवीन्द्रनाथ निस्सन्देह बहुत बडे थे। उनकी आकृति अत्यन्त भव्य थी, ऋषि के समान, लेकिन उससे भी बढकर उनके गुण थे। अपने साहित्य के माध्यम से अपनी चेतना को विश्व के मर्म-स्थल मे प्रविष्ट करके उन्होने सारे ससार के साथ अटूट सम्बन्ध जोड लिया। वह सच्चे अर्थो मे विश्व-कवि थे। उन्होने एक हजार से अधिक कविताए और दो हजार से अधिक गीत लिखे है। इनके अतिरिक्त कहानिया, उपन्यास, निबन्ध आदि का परिमाण भी विपुल है। उनके साहित्य मे मानवीय भावनाए ओतप्रोत हैं। देश, जाति, धर्म इत्यादि के सकीर्ण व्यवधानो से परे, मानव को मानव रूप मे देखने की उनमे अद्भुत क्षमता थी। मानवीय दृष्टिकोण उनका बचपन से ही था। वाह्य सम्पर्क बढ़ने पर वह दृष्टिकोण और परिपुष्ट हुआ। वह लिखते हैं, "मनुष्य की प्रकृति सब जगह एक समान है।" अपने साहित्य मे उन्होने मानव की गरिमा को सदैव प्रतिष्ठित किया। अपनी एक रचना मे वह कहते हैं

"ओ पुजारी! अपने भजन, पूजन और आराधना को छोड मदिर के इस अधियारे कोने मे, सारे दरवाजे बन्द करके, तू किस की पूजा करता है?

"जरा आखे खोल, देख तेरे देव तेरे सामने नही है। वह तो वहा है जहा कृषक कठोर भूमि को जोत रहा है, जहा श्रमिक पत्थर तोडकर मार्ग बना रहा है, धूप और वर्षा मे तेरा आराध्य उन्ही के साथ है, उसके कपडे धूल से भर गए है।

"अपने पुजारी के बाने को उतार और उसकी भाति धूल-भरी मिट्टी पर आकर काम कर।

"अपने ध्यान को छोड, फूलो को एक ओर पटक, नैवेद्य का तिलाजलि दे।

"अगर तेरे कपडे फट जाएगे मैले हो जाएगे तो उसमे हानि क्या है?

"तू उसके साथ श्रम कर, अपना पसीना वहा।"

मानना होगा, रवीन्द्र मे उच्च-कोटि का आदर्शवाद था। वह चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य गौरव के साथ अपना जीवन जीये। यही कारण है कि उन्होने अपने समूचे साहित्य मे मानव को सर्वोपरि स्थान दिया।

उनके आदर्शवाद की एक अनोखी विशेषता थी। उन्होने सदा आशा का सन्देश दिया। अपने जीवन मे उन्होंने दारुण आघात सहे थे। भरी जवानी मे उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी। इतना ही नही, उसके चार वर्ष के भीतर उन्हे एक कन्या, एक पुत्र और एक पिता का विछोह सहना पडा, लेकिन इससे उनका उत्साह मद नही पडा। उनकी वाणी उल्टे और अधिक तेजस्विता मे मुखरित हुई। वह मानते थे कि इस नश्वर शरीर को एक-न-एक दिन मिट्टी मे मिल जाना है, पर जो जीवन की महिमा को जानता है, वह कभी नही मरता। इस-लिए उन्होने अपने काव्य, कथा-साहित्य, उपन्यास, निबन्ध आदि सब मे जीवन की नित्यता और गतिशीलता को अभिनदित किया।

जिस समय वह स्वय भारी कष्टो मे गुजर रहे थे, उन्होने 'गीताजलि' की रचना की। इसी पुस्तक पर उन्हें विश्व का सबसे बडा पुरस्कार 'नोबुल-पुरस्कार' मिला। 'गीताजलि' की एक-एक कविता कवि ने अपने अन्तर की पूरी शक्ति के साथ लिखी थी।

'नोबल पुरस्कार' मिलते ही रवीन्द्रनाथ की कीर्ति सारे ससार मे फैल गयी। उनकी रचनाओ के अनेक भाषाओ मे अनुवाद हुए। जिसने भी उनके साहित्य को पढ़ा, उनकी प्रतिभा के आगे नतमस्तक हो गया।

यूरोप, एशिया, अफ्रीका आदि के प्रवास मे मैंने देखा कि भारत के जिन तीन महापुरुषो को वहां असामान्य लोकप्रियता प्राप्त है, उनमें एक नाम रवीन्द्रनाथ ठाकुर का है। कहते हैं, एक बार रवीन्द्रनाथ को कुछ दिन पेरिस मे ठहरना पडा। वहां से उन्हे बहुत दूर कही भाषण देने जाना था। टैक्सी आयी, मंजिल पर पहुचकर देखा गया कि काफी रकम भाडे की हो गयी है, लेकिन ड्राइवर को जैसे ही मालूम हुआ कि वह रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अपनी टैक्सी मे लाया है तो उसने बडी कृतज्ञता अनुभव की और भाडा लेने से इन्कार कर दिया। उसने कहा, "फ्रांसीसी भाषा में इनकी जो पुस्तकें निकली हैं, उन सबको मैं पढ चुका हूं। ऐसे महान साधक से मैं पैसा नही ले सकता।"

काव्य की भांति अपने नाटको, उपन्यासो तथा कहानियो के द्वारा भी उन्होंने जो कुछ दिया, उसके पीछे लेखक की सूक्ष्म दृष्टि और मानव-स्वभाव के प्रति उनकी गहरी सूझबूझ का परिचय मिलता है। उनके 'गोरा, योगायोग, आंख की किरकिरी आदि उपन्यासो को आधुनिक भारतीय साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

साहित्य की परिभाषा देते हुए रवीन्द्र ने लिखा है

"साहित्य का सहज अर्थ जो मैं समझा हू वह है नैकट्य, अर्थात् सम्मिलन। उसका काम है हृदय का योग कर देना, जहां योग ही अन्तिम लक्ष्य है।"

एक अन्य स्थान पर वह कहते हैं

"विशुद्ध साहित्य अप्रयोजनीय है। उसका जो रस है, वह अहेतुक है। मनुष्य दायित्व-मुक्त बृहत अवकाश के क्षेत्र मे कल्पना के जादू की लकडी छुडाई हुई सामग्री को जाग्रत करके जानना चाहता है अपनी ही सत्ता को। उसके उस अनुभव मे अर्थात् अपनी ही विशेष उपलब्धि मे उसका आनन्द है। ऐसा आनन्द देने के सिवाय साहित्य का और कोई भी उद्देश्य है, यह मैं नही जानता।"

रवीन्द्र का साहित्य इसी भावना से प्रेरित है।

उनकी देन केवल साहित्यिक क्षेत्र तक ही सीमित नही है, वह उच्च-कोटि के सगीतज्ञ तथा चित्रकार भी थे। उन्होने गीतो की रचना ही नही की, उनकी स्वरलिपि भी तैयार की। यद्यपि इस कार्य का आरम्भ उन्होने एक परम्परावादी के रूप मे किया था, तथापि आगे चलकर उन्होने अपने गीतो का स्वर-क्षेत्र इतना बढा दिया कि पूर्व की पृष्ठभूमि के साथ उसमे पाश्चात्य सगीत तथा धुनें भी जोड दी गयी। इन सबके समन्वय से जो सगीत तैयार हुआ, वह रवीन्द्र-सगीत कहलाता है और उसे सुनकर लोगो का हृदय आज भी गद्गद् हो जाता है।

अपने जीवन के उत्तरार्द्ध मे वह चित्रकार बन गए। दस वर्ष के भीतर उन्होंने कोई तीन हजार चित्र बनाये। चित्रकला की प्रचलित परम्पराओ से भिन्न इन चित्रो मे जन-मानस की अचेतन और अर्धचेतन प्रवृत्तियो का उन्होंने सम्मिलन किया। उनके चित्रो की भारत मे ही नही, दूसरे कई देशो मे प्रदर्शनियां हुईं।

शिक्षा के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। बचपन मे उन्होंने मदरसे मे जो शिक्षा पायी थी, उससे उनके मन में शिक्षा की चालू पद्धति के प्रति घोर असन्तोष की भावना पैदा हो गयी। अपनी इस भावना को उन्होंने इन शब्दो मे व्यक्त किया

"हमारे देश मे शिक्षा की प्रचलित प्रणाली कठिन एव कठोर है। शिशु-चित्त आनन्द के बीच मुक्त वायु मे जिस प्रकार विकसित होता है, उस प्रकार और कहीं सम्भव नही। प्रकृति के विरुद्ध जाने से अनुकूल परिणाम की आशा बहुत कम रह जाती है। इसलिए जब देखता हू कि शिक्षा के नाम पर बालक का मन बन्दी हो जाता है तो मेरा मन व्याकुल हो उठता है।"

उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ने जिस 'शान्ति-निकेतन' नामक आश्रम की स्थापना की थी, शिक्षा-सम्बन्धी अपने विचारो को मूर्तरूप देने के लिए रवीन्द्र ने उसे ब्रह्मचर्य के दीक्षा विद्यालय के रूप मे परिणत कर दिया। बच्चो को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देते हुए एक बार उन्होने कहा था

"प्राचीनकाल के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जिस शिक्षा और जिस व्रत का अवलम्बन करके महान् तथा वीर बने, उसी शिक्षा और व्रत को ग्रहण करने के लिए मैंने तुम लोगो को इस निर्जन आश्रम मे बुलाया है।"

आगे उन्होने कहा, इससे बढकर शिक्षा का ध्येय और कुछ हो नही सकता। यदि हमारी यह चेष्टा सफल होगी तो तुम वीर पुरुष बनोगे, भय से कातर नही होगे, दुख मे विचलित नही होगे, क्षति से म्रियमाण नही होगे, धन के गर्व से स्फीत नही होगे, मृत्यु को ग्राह्य नही करोगे, सत्य को जानना चाहोगे, मिथ्या को मन, वाणी और कर्म से दूर कर दोगे, जगत के सब स्थानो मे, घर मे और बाहर, एक ही ईश्वर है, इसे निश्चय-पूर्वक जानकर आनन्द-मन से सब प्रकार के दुष्कर्मों से निवृत्त रहोगे, प्राणपण से कर्तव्य करते रहोगे, धर्म-पथ पर रहकर ससार की उन्नति करोगे और कर्तव्य-बोध के कारण जब धन-सम्पदा एव ससार का त्याग करना पडे तब जरा भी व्याकुल नही होगे। ऐसा होने से भारतवर्ष तुम्हारे द्वारा और भी उज्ज्वल हो उठेगा।"

शिक्षा सम्बन्धी अपनी इसी कल्पना को साकार करने के लिए उन्होने शान्ति-निकेतन का विकास किया। ग्रामोन्नयन की दृष्टि से श्रीनिकेतन की स्थापना की और विश्व-मैत्री की भावना से प्रेरित होकर विश्वभारती को जन्म दिया। देश-विदेश के शिक्षाशास्त्री, विद्वान, कलाविद, साधक आकर्षित होकर वहां आये और उन्होने रवीन्द्र को उनके स्वप्नो को चरितार्थ करने मे योग दिया। मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए इस सस्था द्वारा रवीन्द्रनाथ ने जो किया, वह युग-युगान्तर तक प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

रवीन्द्रनाथ का मुख्यक्षेत्र यद्यपि साहित्य, शिक्षा ओर सस्कृति थे, तथापि राजनीति मे उनकी देन किसी प्रकार कम न थी। वह अपने देश के प्रति बेहद अनुराग रखते थे। लोकमान्य तिलक के होमरूल मे उन्होंने उनका साथ दिया, पजाब मे भीषण नर-सहार की तीव्र शब्दो मे निन्दा की, 'सर' की उपाधि को छोडा और गाधीजी के आन्दोलनो मे गहरी दिलचस्पी रखी। भारत की स्वतन्त्रता के सभी प्रयत्नो को उन्होंने प्रोत्साहन दिया। गाधीजी के साथ उनके मतभेद हुए, लेकिन उनसे उनके प्रेम मे कोई अन्तर नही पडा। उन्होने यहा तक कहा, "मैं महात्मा गाधी का अन्त तक और उस जन्म मे भी अनुकरण करूगा।" साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध जब गाधीजी ने उपवास किया और उद्देश्य की प्राप्ति पर जब उसे तोडा तो वह दौडे हुए पूना पहुचे।

भारत की राष्ट्रीय चेतना को प्रबुद्ध करने के लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो किया, वह भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास मे अमर रहेगा।

गुरुदेव के दर्शन का सौभाग्य मुझे उस समय मिला, जब वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे पधारे थे। मैं उन दिनो वहा का छात्र था। यूनीवर्सिटी ट्रेनिग कोर के सैनिको को सीनेट हॉल के दरवाजो तथा अन्य स्थानो पर तैनात किया गया था। मैं मच से सटा खडा था। सारा हॉल छात्र-छात्राओ, अध्यापक तथा विशिष्ट नागरिको से खचाखच भरा था। सबकी आखें बडी उत्सुकता से मुख्य द्वार पर केन्द्रित थी। ठीक समय पर वह आये। सब लोग उठकर खडे हो गए। तालियो की गडगडाहट से हॉल गूज उठा। उस समय की उनकी आकृति आज भी मेरी आखो मे बसी है। उन्नत ललाट, प्रेमल आखें, भव्य श्वेत दाढ़ी, शरीर पर लम्बा चोगा, सिर पर साधु-सतो जैसा टोपा। बडी मथर-गति से वह मच की ओर बढ़ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो प्राचीन युग का कोई महान ऋषि हमारी आंखो के सम्मुख हो।

बड़े आदर से उन्हें मंच पर लाया गया और कुर्सी पर आसीन किया गया। मुझे उनके एकदम निकट उपस्थित रहने का सौभाग्य प्राप्त था।

अभिनन्दन-अभिवादन के पश्चात् उन्होंने बोलना आरम्भ किया। उनके स्वर मे निराली लय थी। धीरे-धीरे शब्द उनके मुंह से निकल रहे थे। दो-चार वाक्य ही वह बोल पाये होंगे कि हॉल के दूसरे छोर से एक छात्र ने खड़े होकर कहा, "सर यू आर नॉट ऑडीबिल टू "(श्रीमान जी, आपकी आवाज हमें सुनायी नहीं दे रही है)।

गुरुदेव चुप हो गए। तभी प्रोक्टर श्री सुशीलकुमार रुद्र उठ खडे हुए। उन्होने कहा, "आज हमारे मध्य विश्व के महानतम पुरुषों में से एक विद्यमान हैं। आप चुप रहें, धीरज से सुनें, सब कुछ सुनायी देगा।"

इन शब्दो ने जादू का-सा काम किया। हॉल में सन्नाटा छा गया। गुरुदेव की सगीतमयी वाणी की धारा पुन प्रवाहित हो उठी।

इसके बाद जब मैं अपनी पढ़ाई पूरी करके सन् १९४० में शान्तिनिकेतन गया तो गुरुदेव वहीं थे। उनके दर्शन की स्वाभाविक इच्छा थी, लेकिन श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने, जिनके साथ मैं ठहरा था, बताया कि गुरुदेव अस्वस्थ हैं और डाक्टरो ने मुलाकातो पर पाबदी लगा रखी है। मैं उनके निवास-स्थान—उत्तरायन—पर गया और बाहर से ही उस युग-पुरुष को देख करके चला आया। उनका आवास किसी ऋषि के तपोवन का स्मरण दिलाता था।

मानव की एकता मे रवीन्द्रनाथ की गहरी आस्था थी। भारत तथा आधुनिक विश्व के प्रति उनका सबसे बडा योगदान उनकी यह मान्यता है कि मनुष्य की एकता केवल गहन आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि द्वारा ही सम्भव है। वह विचार-स्वातन्त्र्य के पूर्ण समर्थक थे। उनका कहना था कि किसी भी अवयव रूप इकाई को सास्कृतिक विचार-स्वतन्त्रता का दमन करने से सार्वभौमिकता की प्राप्ति नही हो सकती। इसलिए जागतिक दृष्टिकोण मे इन सबको समेटने से ही कल्याण हो सकता है।

भारतीय सस्कृति के सन्देश वाहक के रूप में रवीन्द्र की समता कौन कर सकेगा। पर स्मरण रहे कि वह जहा अपनी सास्कृतिक थाती का सम्मान करते थे, वहां पश्चिम की बौद्धिक शक्ति एव वैज्ञानिक भावना के भी प्रशसक थे।

देशरत्न डा राजेन्द्रप्रसाद ने उनके विषय मे सत्य ही कहा था

"श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर आधुनिक भारत के सबसे बडे कवि एव कलाकार ही नही थे, बल्कि भारत के एक ऐसे महान् प्रहरी थे, जिनके उच्च नैतिक सिद्धान्त सभी अवसरों पर बिना किसी समझौते के अटल बने रहे। प्यार से वह भारत के गुरुदेव कहे जाते थे। वह अब नही रहे, किन्तु वह अपने पीछे भारत और विश्व के लिए बहुत कुछ ऐसी वस्तुए छोड गए हैं जिनका मूल्य अविनश्वर है और जिनसे कठिन परीक्षा की घडियो मे प्रकाश मिल सकता है।"

गाधीजी के शब्द तो उनके योगदान का और भी सुन्दर चित्रण करते हैं

"सूर्य का प्रकाश जैसे हमारे शरीर को लाभ पहुचाता है, वैसे गुरुदेव के फैलाये प्रकाश ने हमारी आत्मा को ऊपर उठाया है।"

किरणों के जादूगर : सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन

जीवन मे कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं, जिनकी स्मृति चिरस्मरणीय बन जाती है। २६ मई, १६५७ की सध्या ऐसी ही थी। इतने वर्षों के अन्तराल को चीरकर जब पीछे मुडकर देखता हू तो मन अनिर्वचनीय आनन्द से विभोर हो उठता है। हम लोगो की टोली दक्षिण भारत के प्रवास मे बगलौर पहुची थी और हमारे आतिथेय धनजीभाई का आग्रह था कि हम वहा के अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सस्थान 'रमन इन्स्टीट्यूट' को अवश्य देखें। उन्होंने आग्रह ही नही किया, स्वय हमे साथ लेकर वहां गए।

प्राकृतिक सौन्दर्य से छलछलाती उस नगरी की वह शाम बडी लुभावनी थी। ऊचे-ऊचे हरे-भरे वृक्ष, छोटी-बडी पहाडिया शान से अपना सिर उठाये दूर-दूर तक फैली थी। आकाश मे काले-काले मेघ-खण्ड आख-मिचौनी कर रहे थे। हम लोग मुग्ध भाव से प्रकृति की उस लीला को देख रहे थे कि धनजीभाई ने कार को एक विशाल भवन के अहाते की ओर मोड दिया। द्वार पर लिखा था—"यह आम रास्ता नही है। बिना आज्ञा प्रवेश वर्जित हैं।" हम लोग कुछ कहे कि उससे पहले ही धनजीभाई बोल उठे, "आप चिन्ता न करे। यह जो लिखा हुआ है वह हमारे लिये नही, विदेशियो के लिए है। यह सस्था तो हमारी ही है। हमे कौन रोक सकता है?"

विशाल प्रागण मे एक ओर गाडी रुकने पर हम लोग उतरे धनजीभाई ने कहा, "आइए, यही रमन इन्स्टीट्यूट है।" इतना कहकर वह बरामदे मे खडे चपरासी की ओर बढ़े, पूछा, "रमन साहब हैं? उनसे कहो कि हम लोग आये हैं।"

चपरासी के जाने के क्षण भर बाद ही हम देखते क्या हैं कि एक महानुभाव युवकोचित चपलता से बाहर आये और धारा-प्रवाह अग्रेजी मे बोले, "आई नो यू हैव कम विदाउट परमीशन। नैवर माइड। डोंट टैल एनीबडी। आई हैव ओनली फिफटीन मिनिट्स एट माई डिस्पोजल" (मैं जानता हू, आप लोग बिना आज्ञा के अन्दर आये है। कोई बात नही है। किसी से कहना मत। देखो, मेरे पास कुल पन्द्रह मिनट हैं।)

वह एक सास मे कह गये। यही थे विश्व-विख्यात विज्ञानवेत्ता सर चद्रशेखर वेकट रमन। सामान्य-सा कोट-पतलून, मामूली बूट, दक्षिणी पगडी। उस वेशभूषा को देखकर यह अनुमान लगाना कहा सम्भव था कि वह असामान्य व्यक्ति है। पर जैसे ही हम उस भवन मे प्रविष्ट हुए, हमने पाया कि उस व्यक्ति को और उस सस्थान को जो गौरव प्राप्त हुआ है, वह स्वाभाविक है।

हमारी टोलो मे छ जन थे—चार बडे, दो बालक। बडो मे हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक भाई विष्णु प्रभाकर, हमारे मेजवान धनजीभाई, मेरी पत्नी आदश कुमारी और मैं, बालको मे मेरी लडकी अन्नदा और सुधीर। सबके-सब उनके साथ ऐसे चल दिये जैसे किसी अध्यापक के पीछे विद्यार्थी चलते हैं। रमन महोदय एक के बाद एक विज्ञान की गूढ़ बाते हमे इस प्रकार समझा रहे थे, मानो हम विज्ञान के ऊचे वर्ग के छात्र हो। पेडो की पत्तियो और टहनियो से कोयला किस प्रकार बनता है, कोयला किन-किन रूपो मे परिवर्तित होता है, हीरो का निर्माण किस भाति होता है, धातुए कितने प्रकार की होती है, आदि-आदि बाते बताते हुए वह हमें सग्रहालय के उस कक्ष मे ले गये, जहा नाना प्रकार के हीरे तथा मूल्यवान पत्थर रखे थे। एक पत्थर की ओर सकेत करते हुए उन्होंने कहा, "यह आयल डायमण्ड है, इसके पास का इडस्ट्रियल डायमण्ड है। और उधर देखो, मोती हैं। कैसे चमक रहे है। बच्चो, उन्हे छूना मत। आप तो जानते है, हीरे कोयले की खानों मे पैदा

होते हैं, पर आपको यह नहीं मालूम होगा कि उन्हे चमकीला बनाने के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है।"

विज्ञान की बातें बताते-बताते वह एकदम बोल उठे, "हमारे देश मे नोबुल पुरस्कार पाने वाले दो व्यक्ति हैं। उनमें अब एक मैं ही रह गया हू। इसी से सारी मुसीबत है।"

कहते-कहते वह हमें सग्रहालय के उस भाग मे ले गये, जहां तरह-तरह की तितलिया, समुद्र के जीव-जन्तु और विभिन्न आकार-प्रकार के शख-सीपिया आदि थे। उन्होंने एक-एक चीज को दिखाया और समझाया। वह बोलते-बोलते बीच मे कह उठते थे, "यू नो ह्वाट आई मीन।" (तुम समझे, मेरा क्या मतलब है?) विष्णु भाई ने पहले तो कई बार अनजाने कह दिया—जी हां, लेकिन मैंने उन्हे धीरे-से बताया कि जवाब देने की जरूरत नही है। यह तो उनका तकिया-कलाम है।

सारा भवन दिखाते हुए वह हमे अन्त मे एक छोटे-से कमरे मे ले गये। उन्होने कमरे की बत्तिया जलायीं कि भांति-भांति के रगो से वह कमरा जगमगा उठा। उन रगो और उनकी किरणो का प्रभाव दिखाने के लिए कभी उन्होने कोई स्विच दबाया तो कभी कोई। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो हम किसी नये लोक मे पहुच गये हों। रगो का वह ससार इतना आभायुक्त था कि हम सब चकित रह गये। रगो के उस चमत्कार ने हमारे रूप को भी ऐसा बदल दिया था कि हम विस्मित होकर कभी उन इद्र-धनुषी रगो को देखते थे तो कभी एक-दूसरे को। मजे की बात यह थी कि स्विच को दबाकर नये-नये रगो की सृष्टि करके रमन महोदय अपने कोट की जेब मे हाथ डालकर मुस्कराते हुए ऐसे खडे हो जाते थे, जैसे उस सबसे उनका कोई सरोकार न हो।

कितना समृद्ध था उनका वह विपुल सग्रह! कितना अगाध था उनका ज्ञान! पर अचरज यह है कि उनमे बडप्पन का लेशमात्र मे भी गुमान न था, शिशु-जैसी सरलता और निश्छलता थी उनकी बातो मे, उनकी मुस्कराहट मे एक विचित्र प्रकार का जादू था।

नीचे-ऊपर घुमाकर उन्होने हमे पूरा भवन दिखाया। दिखाते-दिखाते बोले, "मैं यहा पर सब प्रकार के हीरो का संग्रह करना चाहता हूँ। तुम लोगो को कही भी कोई हीरा मिले तो मुझे भेज देना। भूलना नही।"

ऊपर की मजिल मे जब वह खुली खिडकी के पास पहुचे तो उनका एक नया ही रूप देखने मे आया। उनका प्रकृति-प्रेम उभर आया, "उन पहाडियो को देखो, पेडो को देखो। कितनी सुन्दर है यह नगरी! है न? मैं इसे और भी सुन्दर बनाना चाहता हू। आप लोग कुछ लिखो तो यह जरूर लिखना कि इस खिडकी से चारो ओर के दृश्य बहुत ही मनोरम दिखायी देते हैं।"

सस्थान के भीतर सब कुछ बडा ही सुन्दर था। एक ब्लैकबोर्ड पर विज्ञान के किसी सिद्धान्त के विषय मे मोती जैसे अक्षरों मे कुछ लिखा था। विष्णु भाई ने उस ओर सकेत किया तो रमन मुस्करा उठे। बोले, "विज्ञान आदमी को सौन्दर्य की ही प्रेरणा देता है।"

जिस समय वह भवन दिखा रहे थे, सुधीर बोल उठा, "हमने आपका चित्र अपनी किताब मे देखा था।"

रमन की आँखें चमक उठी, बडी ममता से उन्होने बालक के कधे पर हाथ रखकर कहा, "अच्छा, तुम विद्यार्थी हो, तो आओ, मैं तुमको कुछ ऐसी वस्तुएं दिखाऊगा जिन्हें किसी को भी दिखाना पसन्द नही करता।"

इतना कहकर वह हमे एक छोटे-से कमरे मे ले गये। उसमें कई अल्मारियाँ थी। उन्हे खोल-खोलकर उन्होंने हमे वे पदक और प्रमाण-पत्र दिखाये, जो उन्हे देश-विदेश से प्राप्त हुए थे। उन पदको के बीच नोबुल

पुरस्कार का वह भव्य पदक भी था, जो उन्हे भौतिक-विज्ञान के क्षेत्र मे उल्लेखनीय कार्य करने के उपलक्ष्य मे मिला था।

एक अल्मारी पूरी-की-पूरी पदको से भरी थी। उन पदकों के बीच वह पदक भी था, जो उन्हें भारत-रत्न की उपाधि के साथ भारत सरकार से प्राप्त हुआ था।

श्री रमन का जन्म सन् १८८८ के १७ नवम्बर को त्रिचनापल्ली के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बचपन से ही वह बडी कुशाग्र बुद्धि के थे। एम ए तक की सारी परीक्षाए उन्होने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। उनके पिता श्री चद्रशेखर अय्यर भौतिक-विज्ञान और गणित के प्रकाण्ड पडित थे। रमन भौतिक-विज्ञान के ग्रन्थो का अध्ययन करने के साथ-साथ प्रयोग भी करते रहे। उन प्रयोगो ने सिद्ध कर दिया कि उनमे मौलिक अन्वेषण की अपूर्व क्षमता थी। विद्यार्थी जीवन से ही उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। उनके दो लेख लन्दन की वैज्ञानिक पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए। उन्होने १८ वर्ष की अवस्था मे रगो के माप के प्रयोगो के सम्बन्ध मे एक शोध-प्रबन्ध लिखा था, जो लदन के फिलॉसोफीकल जर्नल मे सन् १९०२ मे छपा।

विज्ञान के क्षेत्र मे उन्हे इतनी प्रतिष्ठा मिलने पर भी उन्हे भारतीय अर्थ-विभाग मे विभिन्न पदो पर काम करने को मिला। अन्त मे वह सरकारी नौकरी छोडकर कलकत्ता विश्वविद्यालय मे भौतिक-विज्ञान के आचार्य हो गये। वहा उन्हें वैज्ञानिक अनुसधानो के लिए विशेष अवसर मिले। वह कई बार विदेश गये। रूस, अमरीका, यूरोप आदि देशो के वैज्ञानिक उनकी प्रतिभा तथा अनुसधानो को देखकर चकित रह गये। जाने कहा-कहा से उन्हे फैलोशिप मिली, पदक मिले और सन् १९२९ मे ब्रिटिश सरकार ने उन्हे 'सर' की उपाधि से अलकृत किया। १९३० मे नोबुल पुरस्कार और १९५४ मे 'भारत-रत्न' से वह विभूषित हुए।

ये उपाधिया और सम्मान उन्हे विज्ञान के क्षेत्र मे मौलिक अन्वेषणो के फलस्वरूप मिले। उन्होंने विज्ञान की शिक्षा विदेशो मे नही पाई थी। वह यहा की मिट्टी मे जन्मे थे और यही की मिट्टी ने ही उन्हे महानता प्रदान की। उनकी उपलब्धियो का उल्लेख करते हुए विष्णु भाई ने लिखा है, "सागर को देखकर उन्होंने कल्पना की कि जब स्वच्छ जल मे होकर प्रकाश चलता है तो फैलने की प्रक्रिया मे नाना रग उत्पन्न होते हैं। फिर सतत अध्ययन के बाद उन्होने एक नया सत्य खोजा कि प्रसारण की क्रिया मे प्रकाश अपना रग बदल सकता है। सन् १९२८ मे उन्होंने विभिन्न वस्तुओ द्वारा वितरित प्रकाश सतरगे मे नई रेखाओ की उपस्थिति पायी, जो प्रारम्भिक रश्मि मे नही थी। यही नवीन रेखा 'रमन रेखा' और सतरगा 'रमन-सतरगा' के नाम से प्रसिद्ध हुए।"

एक ब्रिटिश आलोचक का कथन है, "रमन-प्रभाव से अन्वेषणो का मार्ग उतना ही प्रशस्त हो गया, जितना कि एक्स-किरणो के आविष्कार तथा रेडियो-ऐक्टिविटी सम्बन्धी प्रारम्भिक कार्यों से हुआ था।"

रमन-प्रभाव के अतिरिक्त नाद, प्रकाश और वर्णों के कार्य-करण-सम्बन्ध और समुद्र के जल के नीले रंग के विषय मे एक-किरण अनुशीलन एव चुम्बकीय अनुसधान के कारण वह विश्व के महान वैज्ञानिको की प्रथम पक्ति मे जा बैठे।

श्री रमन के साथ घूमते हुए जाने क्या-क्या चित्र मानस पटल पर उभरते रहे। उनके पास पन्द्रह मिनट का समय था, पर एक घटे से ऊपर हो गया। फिर भी उनके मन में न किसी प्रकार की व्यग्रता थी, न उतावली। ऐसा प्रतीत होता था, मानो यह निश्चित हो, कोई काम ही उन्हे न हो। जो क्षण उनके सामने था, उसी का महत्त्व था, व्यतीत और भविष्य जैसे अपना अर्थ खो बैठे थे।

हमने समय का ध्यान दिलाया और इतना समय देने के लिए आभार माना। वह मुस्कराये। पर विदा लें कि मैंने कहा, "आपका चित्र खींचने की इच्छा है।"

"चित्र !" उन्होंने अबोध बालक की भांति मुस्कराते हुए कहा, "नहीं जी"। इस फटे कोट में चित्र खींचोगे ? क्यों, दुनिया को दिखाओगे कि मैं फटा कोट पहनता हू। और यह देखो, "मेरी कमीज का कालर और कफ भी तो फटे हुए हैं। लेकिन कोई बात नही ! तुम्हारी इच्छा है तो जरूर खींच लो।"

वह एक ओर खड़े हो गये। फिर गम्भीर होकर बोले, "नहीं, यहा नहीं, उधर चलो। वहा की पृष्ठभूमि मे हरियाली है। वह ज्यादा अच्छी लगेगी।"

हमारी पूरी टोली उनके साथ खड़ी हो गयी। उन्होंने प्रेम से चित्र खिचवाया। अनन्तर गहरी आत्मीयता से विदा किया। संस्थान मे प्रवेश करते समय मन भयाक्रात-सा हो रहा था। चलते समय स्नेह और आदर से हृदय छलछला रहा था। हमने कल्पना भी नही की थी कि श्री रमन से भेंट होगी और उनके इतने मधुर रूप देखने को मिलेंगे।

आज वह विज्ञान-वेत्ता हमारे बीच नहीं है। सोचता हू, व्यक्ति की महानता क्या उसके महान कार्यों से ही है ? नही, उसकी महानता इस बात से है कि वह जीवन मे कितना स्पन्दनशील है। रमन की वैज्ञानिक उपलब्धिया नि:सदेह अत्यन्त महत्वपूर्ण थी, लेकिन उनका व्यक्तित्व उन उपलब्धियो से भी कही अधिक महान था।

अहिंसा के आयाम

मानव-जाति के कल्याण के लिए अहिंसा ही एकमात्र साधन है, इस तथ्य का आज सारा ससार स्वीकार करता है, लेकिन कम ही लोग जानत हैं कि अहिंसा की श्रेष्ठता की ओर प्राचीनकाल से ही भारतवासियों का ध्यान रहा है। वैदिक काल मे हिंसा होती थी, यज्ञो मे पशुओ की बलि दी जाती थी, लेकिन उस युग मे भी ऐसे व्यक्ति थे, जो अनुभव करते थे कि जिस प्रकार हमे दु ख-दद का अनुभव होता है, उसी प्रकार दूसरे प्राणियो को भी होता है, अत जीवो को मारना उचित नही है। आगे चलकर यह भावना और भी विकसित हुई। महाभारत के 'शान्ति पर्व' मे हम भीष्मपितामह के मुह से सुनते हैं कि हिंसा अत्यन्त अनर्थकारी है। उससे न केवल मनुष्यो का सहार होता है, अपितु जा जीवित रह जाते हैं, उनका भी भारी पतन होता है। उस समय ऐसे व्यक्तियो की सख्या कम नही थी, जो मानते थे यदि हिंसा से एकदम बचा नहीं जा सकता तो कम-से-कम उन्हे अपने हाथ से तो हिंसा नही करनी चाहिए। उन्होने यह काम कुछ लोगो को सौंप दिया, जो बाद मे क्षत्रिय कहलाये। ब्राह्मण उनसे कहते थे कि हम अहिंसा का व्रत लेते हैं। हिंसा नही करेंगे, लेकिन यदि हम पर कोई आक्रमण करे अथवा राक्षस हमारे यज्ञ म बाधा डाले, तो तुम हमारी रक्षा करना। विश्वामित्र ब्रह्मर्षि थे, धनुर्विद्या मे निष्णात थे, पर उन्होंने अहिंसा का व्रत ले रखा था। अपने हाथ से किसी को नहीं मार सकते थे। उन्होंने राम लक्ष्मण को धनुष-बाण चलाना सिखाया और अपने यज्ञ की सुरक्षा का दायित्व उन्हें सौंपा।

मारने की शक्ति हाथ म आ जाने से क्षत्रियो का प्रभुत्व बढ गया। वे शत्रु के आने पर उसका सामना करते। धीरे-धीरे हिंसा उनका स्वभाव बन गया। जब शत्रु न होता तो वे आपस मे ही लड पडते और दु ख का कारण बनते। परशुराम से यह सहन न हुआ। उन्होंने धनुष-बाण उठाया, फरसा लिया और ससार से क्षत्रियों को समाप्त करने के लिए निकल पडे। जो भी क्षत्रिय मिलता, उसे वे मौत के घाट उतार देते। कहते हैं, उन्होंने २१ बार इस भूमि को क्षत्रियों से खाली कर दिया, लेकिन हिंसा की जड फिर भी बनी रही। विश्वामित्र

अहिंसा के व्रती थे, वे स्वयं हिंसा नहीं करते थे, पर दूसरो से हिंसा करवाने मे उन्हें हिचक नहीं हुई। परशुराम हिंसा से अहिंसा स्थापित करना चाहते थे। दोनों की अहिंसा मे निष्ठा थी, किन्तु उनका मार्ग सही नही था। उसमें हिंसा के लिए गुंजाइश थी और हिंसा से अहिंसा की स्थापना हो नहीं सकती थी।

भगवान बुद्ध ने एक नई दिशा दी। समाज के हित को ध्यान मे रख कर 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' का बोध किया। उन्होंने कहा, "वह काम करो, जिसमें बहुसंख्यक लोगों को लाभ पहुचे, सुख मिले।" इससे स्पष्ट था कि उन्होंने अनजाने मारने की मर्यादा को छूट दी, अर्थात् जिस कार्य से समाज के अधिकांश व्यक्तियो का हित साधन होता हो, उसे उचित ठहराया, भले ही उससे अल्प-संख्यको के हितो की उपेक्षा क्यो न होती हो।

भगवान महावीर एक कदम आगे बढ़े। उन्होने सबके कल्याण की कल्पना की और अहिंसा को परम धर्म मान कर प्रत्येक प्राणी के लिए अनिवार्य ठहराया। उन्होंने कहा—

"सव्वे पाणा पिया उया, सुहसाया, दुक्खपडिकूलता-आप्पियवहा।
पिय जीविणो जीवि उकामा, (तम्हा) णातिवाएज्ज किंचणं॥

अर्थात्, सब प्राणियो को आयु प्रिय है, सब सुख के अभिलाषी हैं, दु ख सबके प्रतिकूल है, वध सबको अप्रिय है, सब जीने की इच्छा रखते हैं, इससे किसी को मारना अथवा कष्ट नही पहुचाना चाहिए।

हम देखते हैं कि महावीर से पहले भी अनेक धर्म-प्रवर्तको तथा महापुरुषो ने अहिंसा के महत्व एवं उसकी उपादेयता पर प्रकाश डाला था, लेकिन महावीर ने अहिंसा-तत्व की जितनी विस्तृत, सूक्ष्म तथा गहन मीमांसा की उतनी शायद ही और किसी ने की हो। उन्होंने अहिंसा को गुण-स्थानो मे प्रथम स्थान पर रखा और उस तत्व को चरम सीमा तक पहुचा दिया। कहना होगा कि उन्होंने अहिंसा को सैद्धांतिक भूमिका पर ही खडा नही किया, उसे आचरण का अधिष्ठान भी बनाया। उनका कथन था—

सय तिवायए पाणे, अदुवन्नेहि घायए।
हणत याणुजाणाइ, वेर वड्ढइ अप्पणो॥

(जो मनुष्य प्राणियो की स्वय हिंसा करता है, दूसरो से हिंसा करवाता है और हिंसा करने वालो का अनुमोदन करता है, वह ससार मे अपने लिए वैर बढ़ाता है।)

अहिंसा की व्याख्या करत हुए वह कहते हैं

तसिं अच्छण जो एव, निच्च होयव्वय सिया।
मणसा कायवक्केण, एव हवइ सजय॥

(मन, वचन और काया, इनमे से किसी एक के द्वारा भी किसी प्रकार के जीवो की हिंसा न हो, ऐसा व्यवहार ही सयमी जीवन है। ऐसे जीवन का निरन्तर धारण ही अहिंसा है।)

सब जोवो के प्रति आत्मभाव रखने, किसी को त्रास न पहुचाने, किसी के भी प्रति वैर-विरोध-भाव न रखने, अपने कर्म के प्रति सदा विवेकशील रहने, निर्भय बनने, दूसरो को अभय देने, आदि-आदि बातो पर महावीर ने विशेष बल दिया, जो स्वाभाविक ही था। मानव-जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने और समाज मे फैली नाना प्रकार की व्याधियों को दूर करके उसे स्थायी सुख और शांति प्रदान करने के अभिलाषी महावीर ने समस्त चराचर प्राणियो के बीच समता लाने और उन्हें एकसूत्र मे बाधने का प्रयत्न किया। उनका सिद्धान्त था—"जीयो और जीने दो", अर्थात् यदि तुम चाहते हो कि सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो तो उसके लिए आवश्यक है कि दूसरों को भी उसी प्रकार जीने का अवसर दो। उन्होंने समष्टि के हित मे व्यष्टि के हित को समाविष्ट कर देने की प्रेरणा दी। वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को विकृत करने वाली सभी बुराइयों की

और उनका ध्यान गया और उन्हे दूर करने के लिए उन्होंने मार्ग सुझाया।

महावीर की अहिंसा प्रेम के व्यापक विस्तार में से उपजी थी। उनका प्रेम असीम था। वह केवल मनुष्य-जाति को प्रेम नहीं करते थे, उनकी करुणा समस्त जीवधारियो तक व्याप्त थी। छोटे-बड़े, ऊंच-नीच आदि के भेदभाव को उनके प्रेम ने कभी स्वीकार नही किया। यही कारण है कि अहिंसा का उनका महान आदर्श प्रत्येक मानव के लिए कल्याणकारी था।

जिसने राज्य छोडा, राजसी ऐश्वर्य को तिलाजलि दी, भरी जवानी में घर-बार से मुह मोडा, सारा वैभव छोडकर अकिचन बना और जिसने बारह वर्षों तक दुर्द्धर्ष तपस्या की, उसके आत्मिक बल की सहज ही कल्पना नही की जा सकती। महावीर ने रात-दिन अपने को तपाया और कचन बने। उनकी अहिंसा वीरो का अस्त्र थी, दुर्बल व्यक्ति उसका उपयोग नही कर सकता था। जो मारने की सामर्थ्य रखता है, फिर भी मारता नही और निरन्तर क्षमाशील रहता है, वही अहिंसा का पालन कर सकता है। यदि कोई चूहा कहे कि वह बिल्ली पर आक्रमण नही करेगा, उसने उसे क्षमा कर दिया है, तो उसे अहिंसक नही माना जा सकता। वह दिल मे बिल्ली को कोसता है, पर उसमे दम ही नही कि उसका कुछ बिगाड सके। इसी से कहा है—"क्षमा वीरस्य भूषणम्।" यही बात अहिंसा के विषय मे कही जा सकती है। कायर या निर्वीर्य व्यक्ति अहिंसक नही हो सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महावीर ने अहिंसा का व्यापक प्रचार-प्रसार किया और उसे धर्म का शक्तिशाली अग बनाया। उस जमाने मे पशु-वध आदि के रूप मे घोर हिंसा होती थी। महावीर ने उसके विरुद्ध अपनी आवाज ऊची की। उन्होने लोगो मे यह विश्वास पैदा किया कि हिंसा अस्वाभाविक है। मनुष्य का स्वाभाविक धर्म अहिंसा है, उसी का अनुसरण करके वह स्वय सुखी रह सकता है, दूसरो को सुखी रख सकता है।

इस दिशा मे हम ईसा के योगदान को भी नही भूल सकते हैं। उन्होंने हिंसा का निषेध किया और यहा तक कहा कि यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। उन्होंने यह भी कहा कि तुम अपने को जितना प्रेम करते हो, उतना ही अपने पडोसी को भी करो।

इसके पश्चात अहिंसा के प्रचार के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। कलिंग युद्ध मे एक लाख व्यक्तियों के मारे जाने से सम्राट अशोक का मन किस प्रकार अहिंसा की ओर आकृष्ट हुआ, यह सर्वविदित है। अपने शिला-लेखो मे अशोक ने धर्म की जो शिक्षा दी, उसमे अहिंसा को सबसे ऊचा स्थान मिला। तेरहवी-चौदहवी सदी मे वैष्णव धर्म की लहर उठी। उसने अहिंसा के स्वर को देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुचा दिया। महाराष्ट्र मे वारकरी सम्प्रदाय ने भी इस क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किया। और भी बहुत से सम्प्रदायो ने हिंसा को रोकने के लिए प्रयत्न किए। सन्तो की वाणी ने लाखो करोडो नर-नारियो को प्रभावित किया।

परिणाम यह हुआ कि जो अहिंसा किसी समय केवल तपश्चरण की वस्तु मानी जाती थी, उसकी उपयोगिता जीवन तथा समाज मे व्याप्त हुई। उसके लिए जहा कोई सामूहिक प्रयास नहीं होता था, वहां अब बहुत से लोग मिलजुलकर काम करने लगे। इन प्रयासो का प्रत्यक्ष परिणाम दृष्टिगोचर होने लगा। जिन मनुष्यो और जातियो ने हिंसा का त्याग कर दिया, वे सभ्य कहलाने लगीं, उन्हें समाज में अधिक सम्मान मिलने लगा।

लेकिन अहिंसा के विकास की यह अन्तिम सीमा नही थी। वर्तमान अवस्था तक आने में उसे कुछ और सीढिया चढ़नी थी। वह अवसर उसे युग-पुरुष गाधी ने दिया। उन्होंने देखा कि निजी जीवन में अहिंसा और बाह्य क्षेत्र मे हिंसा, ये दोनो चीजें साथ-साथ नहीं चल सकतीं, इसलिए उन्होंने धार्मिक ही नहीं, सामाजिक,

आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य सभी क्षेत्रों मे अहिंसा के पालन का आग्रह किया। उन्होंने कहा

"हम लोगों के दिल में इस झूठी मान्यता ने घर कर लिया है कि अहिंसा व्यक्तिगत रूप से ही विकसित की जा सकती है और वह व्यक्ति तक ही मर्यादित है। वास्तव मे बात ऐसी नहीं है। अहिंसा सामाजिक धर्म है और वह सामाजिक धर्म के रूप मे विकसित की जा सकती है, यह मनवाने का मेरा प्रयत्न और प्रयोग है।" इतना ही नहीं, उन्होंने यहां तक कहा

"अगर अहिंसा व्यक्तिगत गुण है तो वह मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। यह करोड़ों की है। मैं तो उनका सेवक हू। जो चीज करोडो की नहीं हो सकती है, वह मेरे लिए त्याज्य है और मेरे साथियों के लिए त्याज्य होनी चाहिए। हम तो यह सिद्ध करने के लिए पैदा हुए हैं कि सत्य और अहिंसा व्यक्तिगत आचार के ही नियम नहीं हैं, वे समुदाय, जाति और राष्ट्र की नीति हो सकते हैं। मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा हमेशा के लिए है, वह आत्मा का गुण है, इसलिए वह व्यापक है, क्योंकि आत्मा तो सभी के होती है। अहिंसा सबके लिए है, सब जगहों के लिए है, सब समय के लिए है। अगर वह वास्तव मे आत्मा का गुण है तो हमारे लिए वह सहज हो जाना चाहिए।"

लोगो ने कहा, "सत्य और अहिंसा व्यापार मे नहीं चल सकते। राजनीति मे उनकी जगह नही हो सकती।" ऐसे व्यक्तियो को उत्तर देते हुए गांधीजी ने कहा

"आज कहा जाता है कि सत्य व्यापार मे नही चलता, राजकाज मे नही चलता, तो फिर कहा चलता है? अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रो मे और सभी व्यवहारो मे नही चल सकता तो वह कौडी कीमत की चीज नही है। जीवन मे उसका उपयोग ही क्या रहा? सत्य और अहिसा कोई आकाश पुष्प नही हैं। उन्हें हमारे प्रत्येक शब्द, व्यापार और कर्म मे प्रकट होना चाहिये।"

गाधीजी ने यह सब कहा ही नही, इस पर अमल करके भी दिखाया। उन्होने प्राचीनकाल से चली आती अहिंसा को आगे बढ़ाया, उसे नया मोड दिया। उन्होने जहा वैयक्तिक जीवन मे अहिंसा की प्रतिष्ठा की, वहा उसे सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यों की आधारशिला भी बनाया। अहिंसा के वैयक्तिक एव सामूहिक प्रयोग के जितने दृष्टात हमे गांधीजी के जीवन मे मिलते हैं, उतने कदाचित किसी दूसरे महापुरुष के जीवन मे नही मिलते।

पर दुर्भाग्य से हिसा और अहिंसा की आख-मिचौनी आज भी चल रही है। गाधीजी ने अपने आत्मिक बल से अहिंसा को जो प्रतिष्ठा प्रदान की थी, वह अब क्षीण हो गई है। अहिंसा की तेजस्विता मन्द पड गई है, हिंसा का स्वर प्रखर हो गया है। इसी से हम देखते हैं कि आज चारों ओर हिंसा का बोलबाला है। विज्ञान की कृपा से नये-नये आविष्कार हो रहे हैं और शक्तिशाली राष्ट्रों की प्रभुता का आधार विनाशकारी आणविक अस्त्र बने हुए हैं। हिरोशिमा और नागासाकी के नरसहार की कहानी और वहा के असख्य पीड़ितो की कराह आज भी दिग-दिगत में व्याप्त है, फिर भी राष्ट्रो की भौतिक महत्वाकाक्षा तथा अधिकार-लिप्सा तृप्त नही हो पा रही है। संहारक अस्त्रों का निर्माण तेजी से हो रहा है और उनका प्रयोग आज भी कुछ राष्ट्र बेधड़क कर रहे हैं।

लेकिन हम यह न भूलें कि अहिंसा की जड़ें बहुत गहरी हैं। उन्हें उखाड फेंकना सम्भव नहीं है। उसका विकास निरन्तर होता गया है और अब भी उसकी प्रगति रुकेगी नहीं। हम दो विश्वयुद्ध देख चुके हैं और आज भी शीतयुद्ध की विभीषिका देख रहे हैं। विजेता और पराजित, दोनो ही अनुभव कर रहे हैं कि यह अस्वाभाविक स्थिति अधिक समय तक चलने वाली नही है। यातायात के साधनो ने दुनिया को बहुत छोटा कर दिया है और छोटे-बड़े सभी राष्ट्र यह मानने लगे हैं कि उनका अस्तित्व युद्ध से नही, प्रेम से ही सुरक्षित

रह सकता है। पर उनमे अभी इतना साहस नहीं है कि वर्ष में ३६४ दिन संहारक अस्त्रों का निर्माण करें और ३६५वें दिन उन सारे अस्त्रो को समुद्र मे फेंक दें। अहिंसा अब नए मोड पर खड़ी है और सकेत करके कह रही है कि विज्ञान के साथ अध्यात्म को जोडो और वैज्ञानिक आविष्कारो को रचनात्मक दिशा में मोड़ो। जीवन का चरम लक्ष्य सुख और शाति है। उसकी उपलब्धि सघर्ष से नहीं, सद्भाव से होगी। अहिंसा मे निराशा को स्थान नही। वह जानती है कि उषा के आगमन से पूर्व रात्रि के अन्तिम प्रहर का अन्धकार गहनतम होता है। आज विश्व मे जो कुछ हो रहा है वह इस बात का सूचक है कि अब शीघ्र ही नये युग का उदय होगा और ससार मे यह विवेक जागृत होगा कि मानव तथा मानव-नीति से अधिक श्रेष्ठ और कुछ नही है। आज नही तो कल, कल नही तो परसो, वह दिन आयेगा जब राष्ट्र नया साहस बटोर पायेंगे और वीर शासन के सर्वोदय तीर्थ तथा गाधी के रामराज्य की कल्पना को चरितार्थ करेंगे।

भारत की मिली-जुली सस्कृति

भारत एक और अखण्ड है। उमकी आत्मा अविभाज्य है। ये और इस प्रकार की बातें प्राचीन काल से अबतक बराबर कही जा रही हैं। यदि हम सतह से हट कर थोडा गहराई मे जाकर देखे तो हमे पता चलेगा कि इन मान्यताओ मे बडी सचाई है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतीय सस्कृति जो हमारे जीवन का सचालन और नियमन करती है, वह सदा मे ही बडी उदार रही है। उसने अपने द्वार कभी किसी के लिए बद नही किए। इतिहास बताता है कि बाहर से लोग आए, धर्म आए, सस्कृतिया आई, लेकिन भारतीय सस्कृति ने धीरे-धीरे उन्हे अपने अक मे ले लिया, अपना लिया, यह नही कि उसने उनके अस्तित्व का समाप्त कर दिया। उनके अस्तित्व को बनाए रखा और उन्हे एकता के सूत्र मे पिरो दिया।

भारतीय सस्कृति की उपमा एक उपवन से दी जा सकती है। उस उपवन मे नाना प्रकार के पुष्प हैं, उनके रग अलग हैं, उनकी महक अलग है, लेकिन उपवन एक है। उसमे एक ऐसा माधुर्य है, जो वहां आने वालो को बडी ही सुखद आत्मीयता का बोध कराता है। गुलाब, जुही, मल्लिका, पारिजात आदि सबका अपना-अपना व्यक्तित्व है, किन्तु वे एक-दूसरे को कभी पराया नही मानते। उनका मानसिक सौहार्द उस उपवन को एकता प्रदान करता है।

वाद्यवृन्द म तरह-तरह के वाद्य होते है। उनके अपने-अपने स्वतत्र स्वर होते हैं। फिर भी उन स्वरो मे इतनी सगति तथा एकलयता होती है कि सुनने वाला मुग्ध रह जाता है।

माला मे एक सौ आठ दाने होते हैं। सब दाने अलग-अलग होते हैं, लेकिन एक सूत्र मे बंध जाने पर उनसे एक ऐसी माला बन जाती है, जिसे सब पवित्र मानते है।

भारतीय सस्कृति की सबस बडी विशेषता ही यह है कि उसने अनेकता मे एकता साधी है। उसने अपन अतर की गहराई से घोष किया है, "वसुधैव कुटम्बकम," अर्थात यह सारी वसुधा, धरती, मेरा कुटुम्ब है। कुटुम्ब का अथ यह नही है कि सारे सदस्यो का धम-विश्वास एक है, आचार-विचार एक हैं, रहन-सहन

एक है। नहीं, उनमें भिन्नता होती है, किन्तु उस भिन्नता के साथ उनके बीच पारिवारिकता का एक ऐसा तत्व होता है, जो उन्हें आत्मीय भाव से एक रखता है। उनमे कभी-कभी टकराहट होती है, आखिर पिता और पुत्र, मां और बेटे, भाई और भाई भी तो आपस मे झगड पड़ते हैं। यह स्वाभाविक है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी-अपनी बुद्धि होती है, सोचने का ढग होता है, परन्तु उसके साथ ही उनमे समझ भी होती है और वह समझ उन्हें परिवार का अभिन्न अंग बनाए रखती है।

भारत के एक मनीषी ने ठीक ही लिखा है, "भारतीय सस्कृति का अर्थ है सहानुभूति। भारतीय सस्कृति का अर्थ है विशालता। भारतीय सस्कृति का अर्थ है ज्ञान का मार्ग ढूढते-ढूढ़ते आगे बढ़ते जाना। ससार में जो कुछ सुन्दर और सत्य दिखाई दे, उसे प्राप्त करके बढ़ती जाने वाली ही यह सस्कृति है। भारतीय सस्कृति सग्रह करने वाली है। यह सबको पास-पास लाने वाली है। यह सकुचितता से परहेज करती है। इससे हमें त्याग, सयम, वैराग्य, सेवा, प्रेम, ज्ञान, विवेक आदि बातें याद हो आती है। भारतीय सस्कृति का अर्थ है भेद से अभेद की ओर जाना, कीचड से कमल की ओर जाना, विरोध से विवेक की ओर जाना, अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर जाना।"

अत मे वह कहते हैं, "भारतीय सस्कृति का अर्थ है मेल—सारे धर्मों का मेल, सारी जातियो का मेल, सारे ज्ञान-विज्ञान का मेल, सारे कालो का मेल। इस प्रकार के महान मेल के पैदा करने की इच्छा रखने वाली सारी मानव-जाति को मगल, कल्याण की ओर ले जाने की इच्छा रखने वाली यह सस्कृति है।"

भारतीय सस्कृति के एक-से एक बढ़कर उपासक हमारे देश की इस मानव भूमि पर पैदा हुए हैं। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि सभी सस्कृतियो ने अपने-अपने सुन्दर और सुगन्धित पुष्पो से देश के फूलदान को सजाया है। इस मिली-जुली सस्कृति ने अपने देश भारत को ही नही, सारे ससार को अपना मूल्यवान योग दिया है।

आज भी हमारी आखो के सामने भारतीय सस्कृति के उज्ज्वल इतिहास के वे पृष्ठ खुल जाते हैं, जिनमे अद्वैत की मगलकारी ध्वनि गुजित है। जिस प्रकार भारतवर्ष के उत्तर मे गौरीशकर की ऊची चोटी है, उसी प्रकार भारतीय सस्कृति के पीछे अद्वैत का उच्च और भव्य दर्शन है। अद्वैत ऊचे स्वर से कहता है, "शिव के पास शक्ति रहेगी, सत्य के पास सामर्थ्य रहेगी और प्रेम के पास पराक्रम रहेगा।" अद्वैत का अर्थ है निर्भयता। अद्वैत का सदेश ही इस ससार मे सुख-सागर का निर्माण कर सकेगा।"

भारतीय मनीषियों ने इस सत्य को पहचाना था। उन्होने कहा, "ससार में परायापन होने का ही मतलब है दु ख होना और समभाव होने का ही मतलब है सुख होना।" वे यह भी कहते हैं, "जिन-जिनके प्रति तुम्हारे मन मे परायेपन का भाव है, उन-उनके पास आकर उन्हे प्रेम से गले लगाओ।" उन्होंने कहा, "सर्वेऽत्र सुखिन सन्तु। सर्वे सतु निरामया।" (सब सुखी हो, सब नीरोग हो।) उनकी यह मगल-कामना, कल्याण-भावना, एकांगी नहीं थी, उसमे सारा चराचर जगत समाया हुआ था।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने कहा था, "जीओ और जीने दो।" अर्थात्, दूसरो को भी जीने का उतना ही अधिकार है, जितना हमे है। हम दूसरे के जीवन का उतना ही आदर करें, जितना अपने जीवन का करते हैं। भगवान बुद्ध का सदेश था, "बैर से बैर कभी शांत नहीं होता।" ईसा ने कहा था, "थोड़ा सा खमीर सारे आटे को खमीरी बना देता है। प्रेम-मार्ग पर चलो।" यही मुहम्मद और यही गुरु नानक का संदेश था।

वर्तमान युग में प्रेम के पुजारी महात्मा गांधी ने भी यही कहा था। उनके आश्रम मे सभी धर्मों के भाई-बहन रहते थे, उनकी प्रार्थना में सब धर्मों की प्रार्थनाएं सम्मिलित थीं। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने

एकादश व्रतों मे सर्व धर्म-समभाव को प्रमुख स्थान दिया था। उन्होंने सब धर्मों को समान आदर दिया और सब धर्मावलम्बियों को हृदय से लगाया। उनका धर्म मानव-धर्म था, उनकी सस्कृति मानव-संस्कृति थी। नरसी के इस भजन को सुनकर वह विभोर हो उठते थे

"वैष्णव जन तो तेने कहीए, जे पीर पराई जाणे रे,
पर दु खे उपकार करे तोय मन अभिमान न आणे रे।"

अपने जीवन मे अद्वैत की साधना के दृष्टात पढ़कर हमारा मन रोमाचित हो उठता है। एक शेरनी भूखी और बीमार है। भगवान बुद्ध उसके मुह मे अपना पांव दे देते हैं। वृक्ष काटने वाले के सामने तुलसीदास अपनी गर्दन कर देते हैं। कमाल जगल मे घास काटने जाता है। अचानक उसे अनुभूति होती है कि घास कह रही है, "मत काट।" उसके हाथ से हसिया गिर पडता है। ऋषियो के आश्रम मे हिरन-सिंह के अयाल खुजलाता है और साप नेवले का आलिगन करता है। यह थी अद्वैत की महिमा, प्रेम का प्रभाव, सस्कृति की साधना।

यह मार्ग कठिन मालूम होता है, कभी-कभी असभव-सा लगता है लेकिन हम यह न भूलें कि समस्त मानव-जाति का सुख और आनद इसी पर निर्भर करता है। सारी सृष्टि हमे अपने कृतित्व से यही सदेश देती है। बादल अपना सारा पानी दे देते हैं, नदिया अपना पानी दे देती है, सूय-चन्द्र प्रकाश दे देते हैं। वे भेद-भाव नही करते। भारतीय सस्कृति भी इस भेदभाव को स्वीकार नही करती। सबको अपना मानती है।

भारत की भूमि बडी उर्वर है। जो बोओगे, वही पाओगे। भारतीय सस्कृति कहती है, "अपने को और समाज को सुखी बनाना चाहते हो तो प्रेम के बीज बोओ। प्रेम की ऐसी फसल मिलेगी कि जीवन धन्य हो जाएगा।"

राष्ट्रीय एकता का अधिष्ठान

राष्ट्रीय एकता का प्रश्न सनातन काल से चला आ रहा है। भारत एक विशाल देश है। उसमे विभिन्न धर्म-विश्वास हैं, आचार-विचार हैं, जाति-पाति हैं, रहन-सहन हैं, भाषाए हैं, आर्थिक स्तर (विषमताए) हैं और अनेक राजनैनिक दल तथा उनकी अपनी-अपनी मान्यताए हैं। लेकिन इस विभिन्नता को मिटाने का कभी प्रयत्न नही किया गया। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के आकार और वर्णों के पुष्पो से उद्यान शोभित होता है, उसी प्रकार इस वैविध्य को राष्ट्र की शोभा और गरिमा मानकर उसे अक्षुण्ण रखखा गया और भारतीय मनीषा ने इस विविधता के मध्य एकता साधित करने का मूलमत्र दिया। माला के एक सौ आठ दाने पृथक-पृथक होते हैं, किन्तु एक सूत्र मे पिरो दिये जाने पर उनसे पवित्र माला बन जाती है, उसी तरह राष्ट्र की विभिन्नताओ को सुरक्षित रखकर देश की आत्मा को एक और अखण्ड रखने का मूलमत्र हमारी सस्कृति ने दिया।

आज राष्ट्रीय एकता की समस्या बडी विषम बन गई है। प्रत्येक क्षेत्र मे विघटनकारी तत्व सिर उठा

रहे हैं और कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो मनुष्य टूट गया है और देश की आत्मा खडित हो गई है।

मेरी मान्यता है कि इस दुरवस्था का मूल कारण राजनीति है। स्वराज्य से पहले गाधी ने मनुष्य को सर्वोपरि मानकर मानव-नीति को प्रतिष्ठापित किया था। अपनी सारी नीतिया और कार्यक्रम मानव को केन्द्र में रखकर निर्धारित और सचालित किये थे। 'सर्वोदय' के आदर्श को चरम लक्ष्य मानकर वह उसी मंजिल की ओर पूरी निष्ठा और दृढ़ता के साथ अग्रसर हुए थे।

लेकिन हमारे परवर्ती नेताओ ने नई दिशा मे प्रयाण किया। इसमे कोई संदेह नही कि स्वराज्य मिलने के बाद उन्होंने देश को सुदृढ़ औद्योगिक अधिष्ठान प्रदान किया। सीमेट और इस्पात के भीमकाय कारखाने खोले, बिजली और सिचाई की बडी-बडी परियोजनाएं बनाईं और पूरी की, परन्तु उनके सम्मुख मुख्य ध्येय राज्य-सचालन तथा गरीबी और दैन्य को दूर करना रहा। उनकी सारी योजनाओ की बुनियाद 'राज' और 'अर्थ' रहे। उनकी सम्पूर्ण नीतिया भी इन्ही दो लक्ष्यो से प्रभावित रहीं। फलत गाधी ने जिस इन्सान को महत्व दिया था, उसे उसके स्थान से हटाकर 'राज' और 'अर्थ' वहा आसीन हो गए। आज राष्ट्रीय एकता की सबसे बडी बाधाए राजनीति और अर्थनीति का वर्चस्व है। लोकतन्त्र मे विभिन्न राजनैतिक दलो का होना स्वाभाविक है, उन दलो के बीच मतभेद होना भी स्वाभाविक है, लेकिन लोकतन्त्र तभी सफल हो सकता है, जबकि सब दलो का एक उद्देश्य अर्थात देश का कल्याण हो। उस अवस्था मे सत्तारूढ़ दल और विपक्षी दलो के विरोध का स्वरूप रचनात्मक हो जाता है। विपक्षो दल इस प्रकार, सहज ही, सत्तारूढ़ दल के सहायक बन जाते हैं।

इसी प्रकार अर्थ ने बडा विकराल रूप धारण कर लिया है। गाधी ने कहा था कि अपनी नितान्त आवश्यकताओ की पूर्ति करने के बाद तुम्हारे पास जो बचे, उसे समाज की धरोहर मानकर उसका उपयोग समाज के हित के लिए करो। लेकिन उनका 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धात हवा मे उडा दिया गया। आज अर्थशास्त्री भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि देश के स्वाधीन होने के उपरान्त अमीर अधिक अमीर हुआ है और गरीब अधिक गरीब हुआ है। आजकल धन की समानान्तर अर्थ-व्यवस्था खुले आम अपना काम कर रही है, बल्कि उजली अर्थ-व्यवस्था से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हो रही है।

राजनीति और अर्थनीति के इस उद्दाम प्रवाह ने देश मे मूल्यो का भारी सकट उत्पन्न कर दिया है। धर्म, सस्कृति, साहित्य, कला आदि सब क्षेत्रो मे वह सकट व्याप्त हो गया है। मनुष्य गौण और पद तथा अर्थ प्रमुख हो गए हैं। द्वैत की भावना ने भारतीय जीवन को छिन्न-भिन्न कर दिया है। यह ठीक है कि विगत ३६ वर्षों मे भारत ने विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र मे बडी उन्नति की है। किन्तु यह भी सच है कि मानवीय मूल्यो की दृष्टि से देश की बडी अवनति हुई है। आज यह आम धारणा बन गई है कि यदि हमारे हाथ मे सत्ता नही है, धन नही है तो समाज मे हमारा कोई अस्तित्व नही है। मत-भेदो ने आज मन-भेदो का रूप ले लिया हैं। देश की गाडी को आज अलग-अलग दिशाओ मे खीचा जा रहा है।

ऐसी अवस्था मे प्रश्न उठता है कि राष्ट्रीय एकता किस प्रकार स्थापित हो? इसका उत्तर गाधी ने दिया है। समाज और राष्ट्र की आधार-मूलक इकाई मानव है। मानव-मानव मिलकर ही समाज और राष्ट्र बनाते हैं। यदि मनुष्य अपने को सुधार ले तो समाज और राष्ट्र अपने आप सुधर जाएगे।

वस्तुत आज मनुष्य का व्यक्तित्व खडित हो रहा है। उसके शरीर, मन और हृदय विभाजित हो गए हैं। शरीर, मन और हृदय के सामजस्य से जो समग्रता जन्मेगी, वही राष्ट्र को एकसूत्र मे बाध सकेगी। राष्ट्रीय एकता के राजनैतिक तथा भावात्मक पक्षो को लेकर देश मे बहुत प्रयत्न हुए है, लेकिन उनका परिणाम यह हुआ है कि मानव-मानव से ही नही, अपने से भी पराया हो गया है। उसका शरीर भौतिक सुविधाए चाहता

है, मन महत्वाकाक्षा की डोर पकडकर आकाश मे उडता है और हृदय अपनी सारी संवेदनाओ को लेकर बिलखता है। रुदन और हास्य का भयावह खेल मानव के अतर मे हो रहा है।

जबतक मानव का यह खडित व्यक्तित्व समग्रता को प्राप्त नही करेगा, तबतक राष्ट्रीय एकता का स्वप्न चरितार्थ नही होगा।

राष्ट्रीय एकता की दूसरी शर्त है समष्टि के हित मे व्यष्टि के हित का समाहित होना। अपना सकीर्ण लाभ हमे स्वार्थ की सकुचित परिधि मे सीमित कर देता है और फिर वे परिधियां सघर्ष का कारण बन जाती हैं। अत स्वार्थ के दायरे को तोडकर व्यापक हित के साथ अपने को जोडना होगा।

हमारा प्राचीन ऋषि अद्वैत की बात कहता है, लेकिन साथ ही वह कहता है

"घृत च मे, मधु च मे, गोधूमाश्च मे, सुख च मे, शयन च मे, ह्रीश्च च मे, श्रीश्च मे, धीश्च मे, धिषणा च मे।"

(घी चाहिए, मधु चाहिए, गेहू चाहिए, सुख चाहिए, ओढ़ना-बिछौना चाहिए, विनय चाहिए, सम्पत्ति चाहिए, बुद्धि चाहिए, धारणा चाहिए, मुझे सब चाहिए।)

ऋषि इन सब चीजो की आकाक्षा करता है, किन्तु अपने लिए नही, ससार के समस्त चराचर प्राणियो के लिए, क्योकि उसके लिए कोई पराया नही है, सब अपने हैं। वह आगे कहता है

"चर्मकारेभ्यो नमो, रथ-कारेभ्यो नमो, कुलालेभ्यो नमो।"

(हे चर्मकार तुम्हे नमस्कार। हे बढई, तुझे नमस्कार। हे कुम्हार, तुझे नमस्कार।)

उसके लिए न कोई छोटा है, न बडा। मानवीय धरातल पर सब समान हैं। और अत मे वह कहता है

"सर्वे सुखिन सन्तु। सर्वे सन्तु निरामया।"

(सब सुखी हो, सब स्वस्थ हो।)

राजनैतिक प्रयत्नो से राष्ट्रीय एकता स्थापित होगी, यह सदहास्पद है, लेकिन मनुष्य के टूटे हुए व्यक्तित्व को जोडने, उसमे अद्वैत की भावना विकसित करने और समष्टि के हित मे व्यष्टि के हित की अवधारणा से राष्ट्र सगठित होगा, इसमे तनिक भी सदेह नही। बिना नेक बने राष्ट्र कभी एक हो नहीं सकता।

विज्ञानवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय

सृष्टि का आरभ कब हुआ, कैसे हुआ, जीव उसमे किस रूप मे आया, उसका विकास किस प्रकार हुआ और किन-किन अवस्थाओ से होकर वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुआ, ये और ऐसे ही बहुत-से प्रश्न हैं, जिनके उत्तर इतिहासज्ञो तथा शोधकर्ताओ ने विस्तार से दिए हैं। उन पर विपुल साहित्य आज उपलब्ध है। वस्तुत अब इन प्रश्नो का विशेष महत्व नही रह गया है, क्योकि आधुनिक युग की उपलब्धियो और चुनौतियों ने नये-नये प्रश्न उभार दिए हैं और नये परिप्रेक्ष्यो मे नये आयाम खोल दिए हैं।

इन नये प्रश्नो मे सबसे मुख्य प्रश्न आज विज्ञानवाद और अध्यात्मवाद का है। इस प्रश्न ने हमारे देश

को ही नहीं, सारे संसार को आक्रांत कर रखा है। एक ओर विज्ञान और उसका वाद है, दूसरी ओर अध्यात्म है। विज्ञान के बिना हमारा जीवन चल नहीं सकता, लेकिन विज्ञान ने मानव जाति को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है। आज चारों ओर भय और अशान्ति व्याप्त है। एक विदेशी उपन्यास पढ़ा था। सेना का एक अधिकारी युद्ध में लड़ता है और जीत हो जाने पर अवकाश ग्रहण करके किसी एकांत स्थान पर अपना घर बना लेता है। उसकी स्त्री साथ है। स्त्री दिन मे या रात मे कोई आहट सुनती है तो उछल पडती है। चीख-कर कहती है, "वे आ रहे हैं।" पति पूछता है, "कौन आ रहे हैं ?" वह उत्तर देती है, "दुश्मन।" युद्ध का भय उसके हृदय मे इतना समा गया था कि उसका मन हर घडी आशंकित और आतंकित रहता था। युद्ध प्राचीन काल मे भी होते थे, लेकिन उनकी विभीषिका ने मानव-जाति को इतना बेबस और बेहाल पहले कभी नही किया था।

इस परिस्थिति ने विवेकशील व्यक्तियो और शक्तियो को दूसरी दिशा मे सोचने के लिए प्रेरित कर दिया है और वह दिशा है अध्यात्मवाद अथवा आध्यात्मिकता की, जिसकी आधार-शिला प्रेम है। उन्होंने दीर्घ-कालीन अनुभव से यह देख लिया है कि मानव के तीन प्रबल शत्रु हैं अहकार, भय और महत्वाकाक्षा। इन तीनों के कारण ही आज विश्व में विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गई है। इस स्थिति के मूल मे विज्ञान है। उसकी शक्ति का उपयोग जहा रचनात्मक कार्यों के लिए हुआ है, वहां उसके द्वारा विनाश भी कम नही हुआ है। जो राष्ट्र आज आख मूदकर आणविक अस्त्रो की होड मे पडे हैं, वहा भी बहुत से लोगों में एक नयी चेतना उत्पन्न हो रही है कि विज्ञान की विध्वसात्मक शक्ति को रोकने का एकमात्र उपाय अध्यात्मवाद है, जो अहकार, भय और महत्वाकांक्षा की जड पर प्रहार करता है। रणक्षेत्र मे युद्ध तो कभी-कभी लडे जाते हैं, लेकिन मानव के अन्तर मे दैवी और आसुरी शक्तियो के बीच कुरुक्षेत्र सदा ही बना रहता है। इसी आतरिक महाभारत मे जब व्यक्ति पराजित हो जाता है तो बाह्य युद्ध पैदा होते हैं। अध्यात्म का मार्ग आत्मशोधन का मार्ग है और जब व्यक्ति का अन्त करण निर्मल हो जाता है तो समाज और राष्ट्र अपने आप शुद्ध बन जाते है। इसी से अब नई दिशा मे चिंतन तेजी से चल रहा है।

हम मानते हैं कि विज्ञान ने दुनिया को बहुत कुछ दिया है। मानव-सभ्यता के दस हजार वर्ष के लम्बे इतिहास मे विगत डेढ सौ वर्षों मे उसने जो चमत्कार कर दिखाया है, यह आश्चर्यजनक है। भौतिक स्तर पर आज जो उन्नति दिखाई देती है, उसमे विज्ञान का बहुत बडा हाथ है। सामान्य वस्तुओ से लेकर बडी-से-बडी चीजे विज्ञान ने ही हमारे लिए मुहैया की हैं। यदि विज्ञान न होता तो मनुष्य बाबा आदम के जमाने मे पड़ा रहता। इसमे तनिक संदेह नही कि सभ्यता के विकास मे विज्ञान का महान योगदान रहा है। उसने धरती के अनगिनत रहस्यों का उद्घाटन तो किया ही है, दूसरे लोको पर से भी रहस्यमयता के आवरण को हटा दिया है। उसने बहुत-सी पुरातन मान्यताओ को खंडित कर दिया है। अब चद्रमा 'चदा मामा' नहीं रहा और न उसमें एक वृद्धा चर्खा कातती दिखाई देती है। इतना ही नही, अब कोई भी कवि किसी सुन्दरी को 'चद्रमुखी' कहने का साहस नहीं कर सकता। विज्ञान की सहायता से मनुष्य चद्रलोक की यात्रा कर आया। वह मगल पर भी पहुच गया और वह समय अब दूर नही है, जबकि विज्ञान के चमत्कारो मे और भी महत्वपूर्ण शृखलाए जुडेंगी।

स्पष्ट है कि बिना विज्ञान के अब हमारा काम नही चल सकता। यह भी स्पष्ट है कि विज्ञान की प्रगति के इस चक्र को हम उल्टा नही घुमा सकते। हमारे वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा जागतिक जीवन के साथ विज्ञान इतना घुलमिल गया है कि अब उसे अलग नही किया जा सकता।

लेकिन दूसरी ओर बार-बार यह प्रश्न सामने आ रहा है—हम जा किधर रहे हैं ? इस प्रश्न के उत्तर

अलग-अलग दिये जाते हैं। विज्ञानवादी कहता है, "जो कुछ आज आपके सामने है, वह क्या अपने आप मे इस सवाल का जवाब नही है ? जी, यह विज्ञान का युग है। जरा नकार कर देखो न विज्ञान को, एक क्षण मे नानी याद आ जाएगी।'

अध्यात्मवादी का कहना है, "जी हा, विज्ञान का करिश्मा हम हिरोशिमा और नागासाकी मे खूब देख चुके हैं। क्षण भर मे लाखो निरपराध स्त्री, पुरुष और बच्चे हताहत हो गए। सैंतीस साल के बाद आज भी वहा के असख्य घरो से कराह सुनाई देती है। ऐसे 'वरदान' से भगवान बचाये।"

यह सुनकर विज्ञानवादी चुप नहीं होता। कहता है, "इसमे विज्ञान का क्या दोष है ? बम जरूर बनाया विज्ञान ने, पर उसे डाला किसने ? मनुष्य ने। इसलिए दोष बेचारे विज्ञान को क्यो देते हो ? दोष देना ही है तो मनुष्य को दो।"

दोनो का कहना अपनी-अपनी जगह ठीक है, पर यह प्रश्न का सही उत्तर नही है। विज्ञान सहारक चीजो का निर्माण करेगा तो उनका प्रयोग एक-न-एक दिन विनाश के लिए होगा ही। आग पैदा होगी तो वह जलावेगी ही। फिर हम यह भी न भूले कि आदमी के अन्दर देव है तो दानव भी है। विज्ञान को विनाशकारी वस्तुओ के निर्माण से और मानव के दानव को उनका इस्तेमाल करने से रोकने वाला यदि कुछ है तो वह अध्यात्म है।

यहा पश्चिम और पूर्व की मान्यताए सामने आती हैं। पश्चिम ने भौतिक उपलब्धियो पर जोर दिया है। विज्ञान उसी के हाथ का चमत्कार है। उसकी धारणा है कि मनुष्य अच्छी तरह खाने-पीने और अच्छी तरह रहने के लिए पैदा हुआ है। उसका सिद्धात है "खाओ, पीओ, मौज करो।" उसने भोगने पर कभी बदिश नही लगायी। उसे इस बात से बडा सतोष है कि भोग के लिए जितनी सामग्री अपेक्षित है, वह उसने जुटा ली है।

पूर्व की मान्यता इससे उल्टी है। उसका मानना है कि आदमी की इच्छाए कभी पूर्ण नही होती। एक इच्छा पूरी नही हुई कि दूसरी आ धमकती है। आदमी का मन बडा चचल है। उसे जितना दो, उतना ही और मागता है। जो व्यक्ति इच्छाओ के अधीन होता है, वह सदा भटकता रहता है। हर आदमी सुख चाहता है, लेकिन वह भूल जाता है कि प्रत्येक पदार्थ नाशवान है और जो नाशवान है, वह कभी स्थायी सुख नही दे सकता। सुख का उद्गम मानव के अतर मे है, बाहर नही। एक धर्म-कथा इस बात को बडे सटीक ढग से स्पष्ट करती है। एक नगर के लोग बडे दुखी थे। किसी के घर मे धन भरा पडा था तो किसी के घर मे खाने को भी नही था। किसी घर मे बच्चे बहुत थे तो किसी के घर मे एक भी बच्चा नही था। किसी के घर मे काम बहुत था तो किसी घर मे लोग बेकार बैठे थे। इस प्रकार सब हैरान थे। एक दिन अचानक आकाशवाणी हुई कि नगर के अमुक किनारे पर सुख का ढेर लगा है। अपने-अपने दु ख को बाधकर ले जाओ, वहा पटक आओ और सुख बाधकर ले आओ। इस आकाशवाणी का होना था कि लोगो ने अपने-अपने दु ख की गठरी बाधी और लेकर चल दिए।

रास्ते मे देखते क्या हैं, एक साधु खिलखिलाकर हस रहा है। लोगो ने पास जाकर कहा, "महाराज, आपने आकाशवाणी नही सुनी ? अगर कोई दु ख हो तो उससे छुटकारा पाने का यह बडा अच्छा अवसर है।"

साधु ने कुछ नही कहा। उसी तरह से हसता रहा।

लोग अपने-अपने दु ख की गठरी खाली कर आए और सुख बाधकर ले आए।

फिर क्या था ! सारे नगर मे सुख-ही-सुख फैल गया।

लेकिन एक दिन एक आदमी ने देखा कि उसके घर मे एक कौडी भी नही है और पडोस के घर की तिजोरी भरी पडी है। इस विचार का मन मे आना था कि देखते-देखते दु ख फिर लौट आया।

किन्तु वह साधु उसी तरह आनंदित था। लोगों ने उसके पास जाकर कहा, "स्वामीजी, यह क्या है कि जब नगर में दुःख था, आप हंस रहे थे, जब सुख आया तब भी आप हस रहे थे और जब दुःख फिर लौट आया है, आप उसी तरह हंस रहे हैं ?"

साधु ने कहा, "ओ अज्ञानियो, सुख बाहर नही, भीतर है। जो अन्तर के आनद में गोते लगाता है, वह कभी दुखी नही हो सकता।"

पूर्व का यही सिद्धांत रहा। उसने सादगी का जीवन अपनाया, इच्छाओं पर रोक लगाई और संयम को भोग की अपेक्षा ऊचा स्थान दिया। उसने कहा, "समष्टि के हित मे मानव का हित है और आत्म-शक्ति का मुकाबला कोई भी भौतिक शक्ति नहीं कर सकती।" उसने कामना की

"सर्वे सुखिन सन्तु सर्वे सन्तु निरामया।" सब सुखी रहें, सब स्वस्थ रहे।

उसने धर्म-विश्वास, आचार-विचार, रहन-सहन आदि की अनेकता को मिटा देने का प्रयत्न नही किया, बल्कि उसके बीच एकता साधित करने का प्रयास किया। माला के एक सौ आठ दानो के पृथक अस्तित्व को सुरक्षित रखकर उन्हे एक धागे मे पिरो देने की चेष्टा की।

बहुत-सा साहित्य रचा गया, जिसमे धर्म पुरुषो ने नाना प्रकार के इन सिद्धातो का प्रतिपादन किया। दार्शनिको ने गहन गुत्थियो को खोला। उनका एक ही उद्देश्य था कि मन जीवन के जटिल प्रश्नो मे उलझकर सच्चिदानंद से वचित न हो जाये। उन्होंने दर्शन और अध्यात्म को मानव-जीवन के साथ जोडा और तत्वज्ञान के अगाध सागर को मथकर मूल्यवान रत्न निकाले। उस मथन में अमृत निकला और विष भी, पर विष को पीने के लिए शिव की आवश्यकता हुई। शिव अर्थात सर्वशक्तिमान, जिन्होंने विष को गले से नीचे ही नहीं जाने दिया एक कहावत बन गई—"विष पीओ और अमृत दो।" अध्यात्म का यही सार है।

विज्ञान ने यातायात के साधन सुलभ कर दिये। दुनिया छोटी हो गई। दूरिया सिमट गयी। बद दरवाजे खुल गए। मुक्त पवन बहने लगा। पश्चिम की हवा पूव मे आई। वह इतनी तेज थी कि उसको रोकना कठिन था। टक्कर हुई। लगा, पश्चिम अर्थात भौतिकता जीत गई, पूर्व हार गया। उस सक्रातिकाल मे मूल्य बदले। पूर्व ने अनुभव किया, सन्यासी बनकर जीवन-यापन करने का समय गया। अब दुनिया मे दुनिया की तरह रहना होगा। मान्यताओ पर प्रभाव पडा, पर अध्यात्म ने धीरज नहीं खोया। वह जानता था कि भटककर आदमी अततोगत्वा उसी का मुह ताकेगा। पेट की भूख खाना खाकर मिट जाएगी, लेकिन हृदय की, प्रेम की, भूख कभी नही मिटेगी।

आज विज्ञानवाद और अध्यात्मवाद दोनो आमने-सामने खडे है। विज्ञान का रूप जितना-जितना भयकर होता जा रहा है, उतना ही मानव की जीने की लालसा तीव्र होती जा रही है। वह अनुभव कर रहा है कि जिसने जन्म लिया हैं, उसे जीने का पूरा अधिकार है, पर उसे मारने का अधिकार केवल उसी को है, जो जन्म देता है। शक्तिशाली राष्ट्र एक-दूसरे से भयभीत होकर अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने और अपने प्रभाव-क्षेत्र को उत्तरोत्तर व्यापक बनाने के लिए विज्ञान की आराधना कर रहे हैं और अब तो अमरीका ने न्यूट्रोन बम का आविष्कार किया है, जो अचल सपत्ति को क्षति न पहुचाकर केवल जीवधारी प्राणियो को आहत करेगा। लेकिन अणु बम और न्यूट्रोन बम के निर्माण के साथ ही कोटि-कोटि नर-नारियों मे यह अदम्य लालसा भी उत्पन्न हो रही हैं कि इस प्रकार के विघातक अस्त्रो का निर्माण और उपयोग मानवता के विरुद्ध है और उनका निरस्त्रीकरण होना चाहिए और उन्हें बनाने वाले कारखाने बद होने चाहिए। पिछले दिनो टोकियो मे हुई विश्व शक्ति परिषद की विराट सभा मे, जिसमे बिभिन्न देशो के लगभग ६०० प्रतिनिधियो ने भाग लिया था, हमने कहा था कि हिंसा की रेखा इधर-उधर से मिटाने से छोटी नहीं होगी, उसके नीचे अहिंसा की रेखा

खींच दो, हिंसा की रेखा अपने आप छोटी हो जाएगी। जिनके हाथ मे आज सहारक अस्त्र हैं, उनके हाथ में अहिंसा का अमोघ अस्त्र दे दो, आणविक अस्त्रो का निरस्त्रीकरण अपने आप हो जाएगा, उनके कारखाने अपने आप बद हो जाएगे। विज्ञान ने सहार के लिए जिस बम का आविष्कार किया है, निर्माण के लिए उससे भी अधिक शक्तिशाली बम का निर्माण अध्यात्म को करना होगा।

यह काम कठिन है, कारण कि विनाश के काम मे जो चमक-दमक होती है, वह निर्माण के काम मे नहीं होती। लेकिन मानव-जाति की मुक्ति और मानवता के कल्याण के लिए यह काम करना ही होगा।

विज्ञानवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय का अब समय आ गया है। विज्ञान की रचनात्मक शक्ति को अध्यात्म को स्वीकार करना ही होगा, साथ ही अध्यात्म की जन-मगल और लोक-कल्याण की भावना को विज्ञान को आदर देना ही होगा। विज्ञान मनुष्य के लिए है, मनुष्य विज्ञान के लिए नही है। विज्ञान की साथकता तभी तक है जब तक मनुष्य है। मनुष्य नही रहेगा तो विज्ञान भी नही रहेगा। संसार का स्पृहणीय मार्ग प्रेम का मार्ग ही हो सकता है।

विज्ञान के पोषको ने विज्ञान का वाद बना दिया है। अध्यात्म के समर्थको ने अध्यात्म का वाद बना दिया है। वाद प्राय विवाद को जन्म देते हैं। वाद की तग सीमाए टूट जाती हैं तो विवाद का मार्ग स्वत ही बद हो जाता है। मानव-जीवन के लिए वतमान परिस्थितियो मे विज्ञान जितना अनिवार्य है, उतना ही अनिवार्य अध्यात्म है। रोटी शरीर को पोषण देती है, लेकिन मनुष्य रोटी खाने के लिए नहीं जीता। जीवन का उद्देश्य उससे कही अधिक महान है। भगवान महावीर के शब्दो मे जीवन का उच्चतम ध्येय है 'जीओ और जीने दो।' इसी को गाधी ने 'सर्वोदय' की सज्ञा दी थी। विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय इसी ध्येय की पूर्ति मे सहायक होगा।

तट के बंधन

'अनुशासन' हमारे लिए नया शब्द नही है। उसका चलन कब से आरंभ हुआ, इसका ठीक उत्तर तो इतिहासकार ही दे सकेंगे, लेकिन इतना निश्चित है कि भारतीय मनीषा के लिए इसका महत्व पुरातन काल से ही रहा और उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उसकी आवश्यकता पर बल दिया। महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास ने तो अपने अमर ग्रथ मे एक पव ही 'अनुशासन पव' के नाम से दिया है। महाभारत के अध्येता जानते हैं कि इस पर्व मे ग्रथकार ने राजा से लेकर सामान्य जन तक के कर्त्तव्यो का (अधिकारो का नही), उल्लेख किया है। वस्तुत मनुष्य के अदर जिस घडी सामाजिकता का भाव उदय हुआ, जिस घडी उसने जगल के निरकुश जीवन को छोडकर सभ्यता की सीढी पर पैर रक्खा, अनुशासन की भूमिका आरम्भ हो गई।

अनुशासन का वास्तविक अर्थ है आत्म-सयम, अपने पर शासन। कहने की आवश्यकता नही की जो अपने ऊपर नियत्रण नहीं रख सकता, वह किसी भी क्षेत्र मे अनुशासन का पालन नही कर सकता। अर्थात्, "प्रति य शासमिन्वति" जिसका अर्थ है जो शासन का पालन करता है वही शासन कर सकता है। ऋग्वेद का

यह मंत्र स्वामी मुक्तानंद यानि 'बाबा' के ऊपर पूरी तरह चरितार्थ होता है, जिन्होंने आत्मसंयम और आत्म-शासन को व्यवहार में पूरी तरह उतारा है और इसका प्रतीक है गणेशपुरी स्थित उनका आश्रम।

इस सत्य को सामने रखकर हमारे संतों तथा महापुरुषों ने कहा था, आत्मविजय सबसे बड़ी विजय है। जिसने अपने को जीत लिया, उसने विश्व को जीत लिया। महात्मा गांधी ने अपने आश्रमवासियों के लिए एकादश व्रतों (सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि) का विधान किया था और उनपर कड़ाई से अमल करने का आग्रह रखा था। इसके पीछे उनका ध्येय यही था कि समाज की आधारमूलक इकाई मनुष्य है। यदि उसने अनुशासन का पाठ हृदयंगम कर लिया तो समाज अपने आप अनुशासित हो जायेगा।

इस प्रकार अनुशासन का श्रीगणेश व्यक्ति से होता है। जिसका हृदय निर्मल नहीं, वह अनुशासन के मार्ग पर कदापि नहीं चल सकता। एक मर्म कथा है 'एक व्यक्ति के हृदय में ईश्वर से साक्षात्कार करने की इच्छा उत्पन्न हुई। वह एक साधु के पास गया और बड़े विनीत भाव से बोला, स्वामीजी, मैं ईश्वर के दर्शन करना चाहता हूं। करा सकेंगे? साधु बुद्धिमान था। उसने तत्काल उत्तर दिया, "अवश्य करा दूंगा। पर तुम्हें मेरे साथ सामने के पहाड़ की चोटी पर चलना होगा।" उस व्यक्ति ने तुरत साधु की शर्त मान ली। तय हुआ कि वह आदमी अगले दिन सबेरे ही आश्रम पहुंच जायेगा और साधु के साथ पर्वत के शिखर पर जायेगा।

अगले दिन बड़े तड़के वह साधु के पास पहुंच गया। साधु पहले से ही तैयार था। उसने कहा, "चलो, चलें।"

फिर एक गठरी की ओर संकेत करके बोला, "इसे ले चलो।"

बड़े उत्साह से उस व्यक्ति ने गठरी को उठाकर सिर पर रखा और दोनों चल दिये। जब पहाड़ की चढ़ाई आरंभ हुई तो कुछ दूर चलने पर उसे गठरी भारी लगने लगी, पैर थकने लगे। बोझ असह्य हो गया और पैर जवाब देने लगे तो उसने साधु से कहा, "महाराज, अब चला नहीं जाता।"

साधु सहज स्वर में बोला, "अरे, इस गठरी में पांच पत्थर हैं। एक फेंक दे।"

उसने ऐसा ही किया, किन्तु थोड़ी दूर जाने पर गठरी फिर भारी लगने लगी। साधु ने दूसरा पत्थर फिकवा दिया। थोड़ी-थोड़ी देर में एक-एक करके सारे पत्थर फेंक देने पड़े और खाली कपड़े को कंधे पर डाल-कर वह आदमी और साधु पहाड़ की चोटी पर पहुंच गये।

वहां पहुंचते ही उस व्यक्ति ने उतावला होकर साधु से कहा, "महाराज! हम लोग चोटी पर आ गये। अब आप अपना वायदा पूरा कीजिए। ईश्वर के दर्शन कराइये।"

साधु ने गंभीर होकर कहा, "मूर्ख, पांच पत्थर की गठरी को सिर पर रखकर तू पहाड़ पर नहीं चढ़ सका। लेकिन उससे भी भारी चट्टानें—काम की, क्रोध की, मोह, मद, मत्सर माया आदि की अपने भीतर रखकर तू ईश्वर के दर्शन करना चाहता है।"

यह कथा, मात्र कथा नहीं है, यह एक बहुत बड़े सत्य की ओर संकेत करती है। जो व्यक्ति कषाययुक्त है, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का शिकार है, वह अनुशासन का पालन करना तो दूर, उसका मतलब तक नहीं समझ सकता।

कुछ लोग कहते हैं कि अनुशासन का बहुत ही दुष्परिणाम होता है। वह व्यक्ति के विकास को कुंठित कर देता है। आदमी का मन मुक्त होना चाहिए। लेकिन जो लोग इस बात को मानते हैं वे यह भूल जाते हैं कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, वह समाज का एक अभिन्न अंग है। यदि एक का मन मुक्त रहेगा तो दूसरा मन भी क्यों मुक्त नहीं रहेगा? और दो स्वतंत्र मन वाले व्यक्ति आपस में प्रायः टकराते हुए पाये जाते हैं।

नदी की धारा जब स्वेच्छा से दो तटों को स्वीकार कर लेती है और प्रसन्न भाव से उनके बीच बहती

है तो उससे लोक-कल्याण होता है, लेकिन जब वह तटो को तोडकर मनमानी करने लगती है तो उसके द्वारा विनाशलीला होती है। इस सबध मे प्रकृति हमे बहुत स्वस्थ मार्ग-दर्शन प्रदान करती है। उसका प्रत्येक उपकरण अक्लान्त भाव से अनुशासनबद्ध है। पृथ्वी रात-दिन अपनी धुरी पर घूमती है, सूर्य-चद्र नियमित रूप से उदय-अस्त होते हैं, ऋतुओ का आगमन ठीक समय पर होता है। जरा कल्पना कीजिये, धरती घूमना बंद कर दे, सूर्य-चद्र निरकुश होकर मनमानी करें, वर्षा समय पर न हो तो उसका नतीजा क्या होगा? ससार मे त्राहि-त्राहि मच जायेगी!

लेकिन प्रकृति की यह अनुशासनबद्धता इसलिये चलती है कि वह अनुशासन आरोपित नही है, स्वैच्छिक है। धरती किसी के आदेश पर नही घूमती, सूर्य-चद्र किसी दण्ड के भय से उदित नही होते और ऋतुए किसी के इशारे पर नही आती।

हम दूर क्यो जायें, सास को ही लीजिए। वह बिना किसी बाहरी दबाव के लगातार आती-जाती रहती है। यदि वह अनुशासन का पालन न करे जब जी मे आवे वह आए, जी मे न आए तो न आए तो सोचिये, इसका परिणाम क्या होगा!

इस सारे विवेचन का प्रयोजन यह है कि हम इस तथ्य को भली प्रकार समझ लें कि मानव और मानव समाज के सचालन के लिए अनुशासन अनिवार्य है। बिना अनुशासन के मानव की जीवन-यात्रा निरापद रूप से सपन्न नही हो सकती।

अनुशासन का पाठ अगर किसी से सीखना है तो वह गणेशपुरी के सत बाबा मुक्तानद परमहस मे सीखें। आत्मानुशासन की वह साक्षात् प्रतिमा हैं। जो आत्मशासन करता है, उसकी बाह्य प्रवृत्तियां भी अत्यत अनुशासित होती हैं। इसका प्रमाण है, गणेशपुरी आश्रम की अनुशासनबद्धता जिसे देखकर दर्शक चकित रह जाता है। छोटी-बडी किसी भी चीज मे बाबा अनुशासनहीनता पसद नही करते। आश्रम के भवन पर ही नही, आश्रमवासियो के जीवन पर भी अनुशासन की गहरी छाप है। कमरो मे सारी चीजें व्यवस्थित रखना, भीतर-बाहर पूरी सफाई, जूते एक कतार मे, सकीर्तन मे ढग से उठना-बैठना, इन तथा अन्य सभी बातो मे जो अनुशासन दिखाई देता है, वह अन्यत्र शायद ही दिखाई दे।

लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आरोपित अनुशासन देर तक टिक नही सकता। श्वास की भाति जो अनुशासन सहज होगा, अर्थात् स्वेच्छा से अगीकृत होगा और सहज भाव से जिसका पालन किया जायेगा, वही अनुशासन दूर तक निभेगा।

सहज अनुशासन जहा व्यक्ति को और प्रत्येक क्षेत्र मे किय गए उसके कर्म को शक्तिसम्पन्न करता है, वहां आरोपित अनुशासन बैसाखी की तरह होता है, वह पैरो की शक्ति को क्षीण कर देता है।

बाबा बहुत कडाई से अपने ऊपर अनुशासन करते है, फिर उतनी ही कडाई से वह दूसरो से भी अनुशासन के पालन की अपेक्षा रखते हैं। वह जानते हैं कि अनुशासन का मार्ग सतत साधना का मार्ग है। इसलिए वह चाहते हैं कि प्रत्येक साधक अनुशासन के पालन मे सतत जागरूक रहे। लेकिन उनका अकुश तभी तक रहता है, जबतक साधक अनुशासन मे प्रशिक्षित न हो जाय। जहा वह प्रशिक्षित हुआ कि फिर बाबा के नियत्रण की आवश्यकता नही रहती। वह नियत्रण उतना ही सहज हो जाता है, जितना श्वास लेना।

वर्तमान समय मे वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन मे घोर अनुशासनहीनता दिखाई दे रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि हम स्वय अनुशासन का पालन नहीं करते, दूसरे से पालन करने को कहते हैं। फिर, हम गीत अनुशासन का गाते है और कार्य अनुशासनहीनता के करते हैं। पेड बबूल का लगाते हैं, आशा आम पाने की करते हैं।

अनुशासनहीनता और अराजकता पर्यायवाची शब्द हैं। अनुशासनहीनता अनिवार्यतः अराजकता को जन्म देती है। आज सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य क्षेत्रों में जो अराजकता दिखाई देती है, वह इसीलिए है कि हम लोग अनुशासन का पदार्थपाठ भूल गये हैं।

हमें इस भ्रम को अपने मन से निकाल देना चाहिए कि अनुशासन से हमारी स्वतन्त्रता पर अंकुश लग जायेगा। हमारी स्वतन्त्रता की रक्षा तब और तभी होती है, जब हम दूसरों की स्वतन्त्रता का आदर करते हैं। अनुशासन का मुख्य प्रयोजन है दूसरों की स्वतन्त्रता को अपनी स्वतन्त्रता जितना ही मान देना।

आज सभी क्षेत्रों में अनुशासन की आवश्यकता है। भारतीय जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसमे अनुशासनहीनता दिखाई न देती हो। अनुशासन की पतवार टूट जाने के कारण भारतीय जीवन की तरणी सागर मे डगमगा के रही है।

कहते हैं, पाप का घड़ा भरने पर टूट जाता है। शायद, हमारे पाप का घड़ा अभी उतना भरा नही है कि फूट जाये। यदि ऐसा है तो हमे भविष्य मे और भी दुर्दिन देखने की तैयारी रखनी होगी।

परन्तु कानून और दण्ड के जोर पर अनुशासन नही लाया जा सकेगा। जिस प्रकार बम गिराकर शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती, उसी प्रकार दण्ड और कानून का प्रयोग करके अनुशासन की स्थापना नही की जा सकती। उसके लिए तो आत्मिक चेतना को जाग्रत करना होगा, अतर मे सोई आत्मा को जगाना होगा। बाबा की स्वय की आत्मानुशासन की प्रवृत्ति और उसी का आश्रम के बाह्य वातावरण पर प्रभाव इस बात की पुष्टि करता है कि मानव-उत्थान के लिए आत्मिक चेतना की जागृति अनुशासन को स्थापित करने मे पूर्ण सहायक है जिससे अनुशासन के प्रति सतत आत्मबोध बना रहता है। स्वय बाबा इसी दिशा मे सतत प्रयत्नशील हैं। उनके प्रयत्नों का फल भी व्यक्त और अव्यक्त दोनो ही रूपो मे दिखाई दे रहा है। यही कारण है कि न केवल बाबा की शारीरिक उपस्थिति, बल्कि उनकी शारीरिक अनुपस्थिति भी अनुशासन की पूर्णता मे कही कमी नही होने देती, आश्रम मे प्रत्येक जगह वैसा का वैसा ही अनुशासन दिखाई देता है।

रविन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि रात्रि का अतिम प्रहर सबसे अधिक अधकारपूर्ण होता है। पर वह अधकार उषा के आगमन का सूचक होता है। हम आशा करे कि आज हमारे देश में जो कुछ हो रहा है, वह इस बात का द्योतक है कि शीघ्र ही नये युग का आरभ होगा—उस युग का, जिसमे मर्यादापुरुष से बढ़कर और कुछ नही होगा। बाबा का आत्मिक चेतना के विकास का अभियान अपनी गति पर है और आशा है कि निकट भविष्य मे यह देश मे पूर्ण रूप से छा जाए और स्वात्मानुशासन को प्रश्रय देकर अवरुद्ध नैतिक, आध्यात्मिक विकास-पथ को प्रशस्त करे।

जन्म-भूमि की सुगन्धि

वाल्मीकि रामायण मे एक बडा ही उद्‌बोधक प्रसग आता है। रावण का वध और लका-विजय के बाद राम ने लक्ष्मण से कहा, "लक्ष्मण, तुम लका मे जाओ और विभीषण का विधिपूर्वक राजतिलक कराकर लौट आओ।"

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण गए। उन्होंने जैसे ही उस नगरी की शोभा और गरिमा को देखा कि मुग्ध रह गए। हरे-भरे वृक्षो-लताओ के पुष्पो से आच्छादित बाग-बगीचे, पक्षियो का कलरव, ऊचे-ऊचे सुन्दर भवन, कलकल निनाद करते प्रपात, एक-से एक बढकर चीजे ! उनकी आखें सुन्दरता पर रीझ गईं।

लक्ष्मण ने विभीषण को गद्दी पर बिठाया और फिर लौटकर राम के पास आए। विनीत स्वर मे बोले, "महाराज, लका ने मेरा मन चुरा लिया है। वह नगरी स्वर्ग जैसी है। आपकी आज्ञा हो तो मैं रह जाऊ !"

राम ने उनकी बात सुनी। फिर गभीर होकर बोले, "लक्ष्मण, इसमे कोई सन्देह नहीं कि लका का सौंदर्य निराला है। वह सचमुच स्वर्ग नगरी है। उसमे चारो ओर समृद्धि है। प्राकृतिक सुषमा है। लेकिन लक्ष्मण, याद रक्खो, लका कितनी भी सुन्दर हो, समृद्ध और वैभव से पूर्ण हो, लेकिन वह अयोध्या की बराबरी नही कर सकती। हमारी अयोध्या तो तीनो लोको से बढ़कर है। जहा आदमी जन्म लेता है, वहा की मिट्टी की सुगन्धि ही और होती है।"

अहैतुकी भक्ति

एक दिन कुछ लोग संत राबिया के पास आए। उनमें से एक से राबिया ने पूछा, "तुम ईश्वर की भक्ति किस-लिए करते हो ?"

उसने कहा, "मुझे नरक से बडा डर लगता है। उससे बचने के लिए मैं ईश्वर की भक्ति किया करता हू।"

राबिया ने यही सवाल दूसरे आदमी से किया। उसने उत्तर दिया, बात यह है कि मुझे स्वर्ग बडा अच्छा लगता है। वह बडा सुन्दर है और वहा तरह-तरह के भोग और सुख हैं। मैं उसे पाने के लिए ही भक्ति किया करता हू।

राबिया ने उनकी बात सुनकर कहा, "अच्छा, यह बताओ कि अगर स्वर्ग या नर्क न होता तो क्या तुम लोग ईश्वर की भक्ति करते ?"

वे लोग इसका कोई भी उत्तर न दे सके।

तब राबिया ने कहा, "सच्चे भक्त तो न नर्क की परवा करते हैं, न स्वर्ग की। उनकी भक्ति किसी मतलब से नहीं होती। वह तो अहैतुकी हुआ करती है।"

धर्म चक्रवर्ती

उस समय की बात है जब भगवान महावीर घरबार और राजपाट के वैभव को त्याग कर साधना के मार्ग पर चल पड़े थे। उनके पास कुछ भी नही था, केवल शरीर था, और था चैतन्य। वह शरीर को आवश्यक पोषण देते थे, शरीर उन्हें आवश्यक शक्ति देता था। चैतन्य से उन्हें आनद प्राप्त होता था, पुरुषार्थ मिलता था। वह एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण करते थे और रात को किसी एकान्त जगह में ध्यान लीन हो जाते थे।

उन दिनों पुष्य नाम का एक बहुत बड़ा ज्योतिषी था। उसका नाम चारो ओर फैला था। दूर-दूर के लोग अपना भविष्य जानने के लिए उसके पास आते थे। उसकी विद्या अचूक थी। उसका ज्ञान सत्य सिद्ध होता था।

सयोग से एक दिन पुष्य घूमता-घामता गंगा के किनारे पहुचा। उसकी बालू पर उसे किसी के चरण-चिन्ह दिखाई दिए। उन चिन्हों को उसने ध्यान से देखा तो चकित रह गया। अपने ज्ञान के आधार पर उसने अनुभव किया वे चिन्ह किसी चक्रवर्ती के हैं। लेकिन यह कैसे हो सकता है ? उसके अन्तर से किसी ने तर्क किया ? चक्रवर्ती और अकेला, यह हो नहीं सकता। पर उसकी विद्या भी तो झूठी नहीं हो सकती। वह असमंजस में पड़ गया।

कुछ देर वह वही बैठा-बैठा सोचता रहा, फिर उन चिह्नो का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ गया।

चलते-चलते वह देखता क्या है कि एक आदमी ध्यान की मुद्रा मे खडा है। उसने उसके चरणो को देखा, फिर चिन्हो को देखा। वे उन्ही चरणो के चिन्ह थे। उसने चकित होकर उस व्यक्ति के पैरो से सिर तक निगाह डाली।

"बडी विचित्र बात है।" उसने मन-ही-मन कहा, "इसके शरीर के लक्षणो से पता चलता है कि यह चक्रवर्ती है, लेकिन इसकी चर्या और स्थिति से मालूम होता है कि यह साधारण आदमी है।"

बेचारा पुष्य हैरानी मे पड गया। उसका ज्ञान कुछ कह रहा था, सामने उसे कुछ और दिखाई दे रहा था। वह अपने से जूझने लगा।

थोडी देर मे भगवान महावीर की ध्यान-मुद्रा खुली तो उसने विनत होकर अपनी जिज्ञासा व्यक्त की, "भन्ते, आप अकेले कैसे है?"

महावीर ने उसकी ओर देखकर कहा, "ससार मे आदमी अकेला आता है और अकेला जाता है। कोई भी उसका साथ नही देता।"

पर उनके इस उत्तर से पुष्य की उलझन दूर नही हुई। उसने जो पूछा था, वह अपनी समस्या को सुलझाने के लिए पूछा था। उसने महावीर से कहा, "आप ज्ञान की बातक र रहे हैं। मैं व्यवहार की बात जानना चाहता हू।"

महावीर बोले, "मैं अकेला कहा हू?" मेरा सारा परिवार मेरे साथ है।"

पुष्य ने कौतूहल से कहा, "परिवार साथ है। कहा है?"

महावीर ने कहा, "देखो, निर्विकल्प ध्यान (सबर) मेरा पिता है, अहिसा मेरी मा है, ब्रह्मचर्य मेरा भाई है, अनाशक्ति मेरी बहन है, शान्ति मेरी प्रिया है, विवेक मेरा पुत्र है क्षमा मेरी पुत्री है, सत्य मेरा मित्र है, उपशम मेरा गृह है। अब तुम्ही बताओ कि मैं अकेला कैसे हू?"

पुष्य की पहेली सुलझी नही। उसने कहा, "भन्ते, आपके शरीर के लक्षण बतात है कि आप चक्रवर्ती हैं, लेकिन वैसे आप साधारण व्यक्ति मालूम होते है। मेरे ज्योतिष के ज्ञान ने मुझ कभी धोखा नहीं दिया। इस समय मेरे सामने जीवन-मरण का प्रश्न है।"

महावीर ने कहा, "अच्छा, यह बताओ कि चक्रवर्ती कौन होता है?"

पुष्य ने कहा, "वह जिसके आगे-आगे चक्र चलता है।"

"और?"

"जिसकी विशाल सेना को सरक्षण देने के लिए छत्र-रत्न होता है।"

"और?"

"जिसके पास धर्म-रत्न होता है, जिसमे सवेरे बोया बीज शाम तक पक जाता है।"

भगवान महावीर ने कहा, "ठीक है। अब तुम जिधर भी देखो, धर्म-चक्र मेरे आगे-आगे चल रहा है। मेरा आचार छत्र-रत्न है, जो समस्त मानव-जाति को सरक्षण दे रहा है। मेरी भावना धर्म-रत्न है। उसमे जिस क्षण बीज डालो, पक जाता है।"

यह सब सुनकर पुष्य की गुत्थी सुलझ गई।

भगवान महावीर ने आगे कहा, अब यह बताओ कि क्या मैं चक्रवर्ती नही हू? क्या तुम्हारी ज्योतिष मे धर्म-चक्रवर्ती का कोई स्थान नही है?"

पुष्य आनद से पुलकित हो उठा। झूठी सिद्ध होने पर वह अपनी विद्या को सदा के लिए तिलांजलि

देने का संकल्प करके वहां आया था। अब उसकी आवश्यकता नहीं रही थी।

उसने भगवान महावीर के चरणों मे अपनी श्रद्धा अर्पित की और जिधर से आया था, उधर चला गया।

भगवान महावीर राजगृह की ओर बढ़ गए।

धीरज और शान्ति का फल

एक बार भगवान् बुद्ध कही जा रहे थे। उनका शिष्य आनन्द साथ था। रास्ते मे आराम करने के लिए वे एक पेड के नीचे रुक गए। बुद्ध को प्यास लगी। उन्होंने आनन्द को पानी लाने को कहा। पास मे एक नाला बहता था। आनन्द वहा गया और थोडी देर मे खाली हाथ लौट आया। बोला, "भन्ते, उस नाले मे से अभी-अभी गाडिया निकली हैं, पानी गदा हो गया है। मैं पानी नदी से लिए आता हू।"

नदी वहा से कुछ दूर थी। बुद्ध ने कहा, "नहीं, पानी नाले से ही लाओ।"

आनन्द गया, पर पानी अब भी गंदला था। वह लौट आया। बोला, "नदी दूर है तो क्या, मैं अभी दौडकर पानी लिए आता हू।"

बुद्ध ने कहा, "नही-नही, पानी उस नाले से ही लाओ।"

बेचारा आनन्द लाचार होकर तीसरी बार नाले पर गया तो देखता क्या है, कीचड बैठ गई है, पत्तियां इधर-उधर हो गई हैं, पानी एकदम निर्मल है। वह खुशी-खुशी पानी लेकर बुद्ध के पास आ गया।

बुद्ध ने कहा, "आनन्द, आदमी के लिए धीरज और शान्ति बहुत आवश्यक है। बिना उनके निर्मलता प्राप्त नही होती।"

अनर्थ की जड़

शेख फरीद एक बहुत बडे सन्त हुए हैं। उनकी मा ने उन्हे बचपन मे सिखाया कि बेटे, भूखे मर जाना, पर किसी के आगे हाथ मत फैलाना। शेख की सबसे बडी विशेषता यह थी कि वह अगले दिन की चिन्ता नहीं करते थे। मानते थे कि जिसने आज के लिए दिया है, वह कल के लिए भी देगा। उनका नाम चारो और फैल गया।

एक दिन एक धनिक उनके पास आया और उन्हे चांदी की बहुत-सी मुद्राए दे गया। शेख ने अपने एक शिष्य से कहा, "इन सबको गरीबो मे बाट दो।"

शिष्य ने यही किया। जब वह उन्हे बाट रहा था, एक मुद्रा नीचे गिर गई। सारी मुद्राए बंट गईं तो उसका ध्यान नीचे पडी मुद्रा की ओर गया। उसने मुद्रा को उठाकर रख लिया। सोचा, बाद मे किसी को दे देगा। फिर वह भूल गया।

शाम को शेख नमाज पढने बैठे तो और दिन की तरह उनका मन नही लगा। कुछ बेचैनी-सी रही। तभी उन्होंने अपने शिष्य से पूछा, "क्यो, मैंने जो मुद्राए तुम्हे दी थी, वे सब तुमने बांट दी थी?"

शिष्य को अचानक याद आया कि एक मुद्रा बच रही थी और वह उसके पास है। उसने यही बात उनसे कह दी और गलती के लिए माफी मागी।

शेख ने कहा, "सबसे पहले जाओ और उस मुद्रा को किसी गरीब को दे आओ।"

शिष्य फौरन उठ खडा हुआ, बाहर गया और एक जरूरतमद को मुद्रा देकर लौट आया। उसके बाद शेख ने चैन की सास ली और नमाज पढ़ी तो उनका दिल ठीक वैसे ही लगा, जैसे कि और दिन लगा करता था। उन्हे खूब आनन्द आया। ठीक ही कहा गया है "अर्थ अनर्थ की जड होता है।"

राष्ट्र की रीढ़

बाइबिल मे एक बडी ही प्रेरणादायक कहानी आती है।

किसी नगर के लोगो ने अपने यहा एक मीनार बनवाने का निश्चय किया। उनकी इच्छा थी कि मीनार बनवाने पर खर्चा कितना ही क्यो न हो जाय, लेकिन वह हो ऐसी कि उसे देखने के लिए दुनिया भर के लोग आवे। उसकी विशेषताओ और कला मे कोई भी मीनार उसका मुकाबला न कर सके।

ऐसी मीनार को बनाने के लिए बाहर के होशियार कारीगरो और मजदूरो का इकट्ठा करना आवश्यक था। उन्हे बुलाया गया। वे आये।

जहा मीनार का निर्माण होना था, उस स्थान का चुनाव पहले ही किया जा चुका था। काम का श्रीगणेश किया गया। लेकिन शीघ्र ही एक बहुत बडी कठिनाई आ गई। बाहर से बुलाए गए कारीगर और मजदूर अलग-अलग देशो के थे। वे एक-दूसरे की भाषा नही जानते थे। परिणाम यह हुआ कि राज ईंट मांगता था, मजदूर मसाला देता था और जब कारीगर मसाला मागता था तो मजदूर ईंटे पहुचाता था। यह सिलसिला बहुत समय तक चलता रहा।

अत मे जो होना था, वही हुआ, मीनार नहीं बन सकी। उसके निर्माताओ की आशाए धूल मे मिल गईं।

यह कहानी एक प्रतीक के रूप मे है। एक भाषा के अभाव मे जब एक मीनार नही बन सकी, तो बिना राष्ट्रभाषा के किसी राष्ट्र के विशाल भवन का निर्माण कैसे हो सकता है?

कहावत है—"राष्ट्रभाषा राष्ट्र की रीढ होती है।"

मंत्र का फल

राजा जनक को विदेह कहा जाता है। वह राजा थे, पर राजपाट मे उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं थी। वह आत्म-शोधक थे। अपने दोषों को देखकर उन्हें दूर करने का सतत प्रयत्न करते थे।

एक बार वह नदी के किनारे बैठकर 'सोऽहम' का जाप कर रहे थे। ऊंचे स्वर मे वह बार-बार 'सोऽहम्', 'सोऽहम्' कह रहे थे।

उसी समय वहां से अष्टावक्र निकले। वह परम ज्ञानी थे। राजा जनक को ऊची आवाज मे 'सोऽहम्' का जाप करते हुए देखकर वह एक ओर को रुके, फिर उन्होंने अपने एक हाथ मे पानीभरा कटोरा लिया और दूसरे मे छडी। अनंतर जनक से कुछ दूर पर खड़े होकर बडी तेज आवाज में चिल्लाना आरम्भ किया "मैं पानी का कटोरा हूं। मैं छडी हू।"

राजा जनक के कान मे उनकी आवाज पहुची तो उन्होंने उनकी ओर देखा, पर अपना जाप नही छोडा। लेकिन जब अष्टावक्र ने अपनी रट बन्द नहीं की तो उन्होंने चिल्लाकर पूछा, "यह तुम क्या कह रहे हो ?"

अष्टावक्र ने कहा, "मैं पानी का कटोरा हू। मैं छडी हूं।"

जनक बोले, "वह तो दिखाई दे रहा है।'

अष्टावक्र ने कहा, "तुम क्या बोल रहे हो—सोऽहम्! अरे तुम तो हो ही। यह क्या तुम्हें नहीं दीख रहा है ?'

कुछ देर रुककर अष्टावक्र बोले, "मन्त्र को यन्त्रवत रटने से कुछ नही होता, उसे अन्तर की चेतना के साथ जोडने पर ही उसका फल मिलता है।"

अनुपम देश-भक्ति

बहुत वर्ष पहले की बात है। स्वामी विवेकानन्द जापान गए थे। वहां एक स्थान से दूसरे स्थान को यात्रा कर रहे थे। एक दिन वह रेल से कही जा रहे थे। रास्ते मे उनकी फल खाने की इच्छा हुई। उन्होंने इधर-उधर बहुत खोज की, लेकिन कहीं भी फल नही मिले। आखिर निराश होकर उनके मुह से निकला, "यह जापान कैसा देश है कि जहां फल भी नही मिलते !"

उनके पास एक जापानी युवक बैठा था। उसके कानों मे यह शब्द पडे, तो वह तिलमिला उठा।

उसे पता था कि फल कहां मिलते हैं। अगले स्टेशन पर वह उतरा और थोडी ही देर में जब लौटा तो उसके हाथ में फलों का लिफाफा था। बडे प्रेम से उसने वे फल स्वामीजी के सामने रख दिये।

स्वामीजी ने मुस्कराकर उसे धन्यवाद दिया। फिर पूछा, "इन फलों के दाम कितने हैं ?"

युवक ने स्वामीजी की ओर देखा और देखता रहा। बोला कुछ नही।

स्वामीजी जानते थे कि वह उन्हे पैसे देकर ही लाया होगा, अत उन्होंने अपनी बात को दोहराते हुए कहा, "संकोच मत करो। साफ-साफ बता दो।"

युवक की आखे छलछला आई। बोला, "स्वामीजी, इनका मूल्य "

कहते-कहते उसकी वाणी रुक गई।

स्वामीजी ने कहा, "हा-हा, रुक क्यो गए ? बोलो।"

"इनका मूल्य," नौजवान ने धीमे स्वर मे कहा, "यह है कि आप अपने देश मे जाकर यह न कहे कि मेरे देश जापान मे फल नही मिलते।"

फकीरी की मस्ती

खलीफा जुनैद का मुसाहिब था। उसका नाम था अहमद-बिन-यजीद। वह बडे ठाट-बाट से रहता था, शान से घूमता-फिरता था। अपने सामने सबको छोटा समझता था और सबके साथ बडा कठोर व्यवहार करता था।

एक दिन एक बहुत बडे सूफी सत का प्रवचन हो रहा था। अहमद उस सभा मे पहुच गया। सत कह रहे थे, "इसान के बराबर कमजोर और कोई जीव नही है, लेकिन उसके घमड की कोई हद नही है। जोम मे भरकर वह बुरे-से-बुरे काम कर डालता है और भूल जाता है कि उसका नतीजा क्या होगा।

सत के उपदेश का अहमद पर बडा असर पडा। उस दिन उससे खाना भी नही खाया गया। उसने अपनी शान-शौकत की पोशाक उतार दी और फकीर के लिबास मे सत के पास गया, बोला, "आपकी नसीहत का मुझ पर जो असर हुआ है, उसका बयान मैं नही कर सकता। अब आप मुझे रास्ता बताइए कि मैं क्या करू ! मेरा दिल दुनिया से एकदम हट गया है।"

सत ने पूछा, "तुम्हे कौन-सा रास्ता चाहिए—आम या खास ?"

अहमद ने कहा, "दोना बताइए।"

सत बोले, "आम तो यह है कि घर-गिरस्ती मे रहो, पाचो वक्त जमात मे खडे होकर नमाज पढो, पास मे पैसा हो तो दान दो और पाक-साफ जिन्दगी बसर करो। खास यह कि दुनिया को छोडकर अल्लाह की इबादत करो।"

अहमद ने दूसरा रास्ता पसद किया। वह घर-बार छोडकर जंगल मे चला गया।

कुछ दिनो बाद अहमद की बूढी मा रोती हुई सत के पास आकर बोली, "मेरा इकलौता बेटा आपकी सोहबत मे दिवाना होकर जाने कहा चला गया।"

सत न दिलासा दिया। कहा, "घबराओ मत। तुम्हारा लडका जब आवेगा तो मैं तुम्हें खबर कर दूगा"

कुछ दिन बाद अहमद आया तो सत ने उसकी मां को खबर दी मा, उसकी बीबी और लडको को

लेकर आई। अपने बेटे को दुबला और फकीरी लिबास मे देखकर उससे लिपट गई और रोने लगी। उसकी बहू और लड़का भी रोने लगा। दूसरे लोगों की आंखें भी भर आई। मां और बीवी ने बहुत कोशिश की कि अहमद घर चले, पर वह राजी न हुआ। तब बीवी ने कहा, "यह लडका आपका है। इसका आप पर हक है। इसका कुछ इंतजाम कीजिए।"

अहमद ने मुस्कराते हुए उसके बढ़िया कपडे उतरवाकर कम्बल उढ़ा दिया और कहा, "मेरे साथ चलो।" लड़का तैयार हो गया।

लेकिन अहमद की मां और बीवी से यह नही देखा गया। उन्होने बालक को वापस ले लिया। उसका कम्बल उतारकर कपडे पहनाये और कहा, "ठीक है। हम इसकी देखभाल खुद कर लेंगे।"

उनके आंसू और उनका आग्रह अहमद को उसके रास्ते से नही डिगा सका। ममता की जिस डोर को वह पहले ही तोड चुका था, वह फिर उसे नही बांध सकी। ईश्वर के चरणों मे एक बार लौ लग जाती है तो तो सहज ही छूटती नही। फकीरी की मस्ती मे झूमता हुआ अहमद तेजी से जगल की ओर बढ़ गया। मां और बीवी की ममता बिलखती रही, पर अहमद तो अपने आनन्द मे डुबकी लगा रहा था।

प्रभु-प्राप्ति का मार्ग

दक्षिण भारत मे एक बहुत बडे सत हुए हैं। उनका नाम था मध्वाचार्य। उनके अनेक शिष्य थे। शिष्यो मे कुछ धनी लोग थे, कुछ साधु-सत थे। साधुओं मे एक ऊचे दर्जे के आदमी थे। उनका नाम कनकदास था।

एक दिन मध्वाचार्य के शिष्य आपस मे चर्चा करने लगे कि ईश्वर को कौन पा सकता है? किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। अत मे उन्होंने साधु कनकदास से पूछने का फैसला किया। शिष्यो मे से एक साधु ने सबसे पहले कनकदास से प्रश्न किया, "क्या 'मैं' परमात्मा को पा सकता हू?"

कनकदास ने उत्तर दिया, "अवश्य, लेकिन यह तब होगा जब 'मैं' जायगा।"

दूसरे ने कहा, "मुझे बताइये।"

कनकदास बोले, "तुम भी ईश्वर को तभी पा सकोगे जब 'मैं' जायगा।"

सारे शिष्यो ने बारी-बारी यही सवाल किया और सबको यही जवाब मिला।

सुनकर शिष्य हैरान हुए। कनकदास बात हमेशा सोच-समझकर कहते थे। उनकी बात का दूसरों पर प्रभाव पड़ता था। विस्मित स्वर में एक शिष्य ने कहा, "स्वामीजी आप भी तो भगवान के पास जायगे न?"

"जरूर," कनकदास ने उत्तर दिया, "लेकिन मैं भी तभी जा पाऊगा, जब 'मैं' जायगा।"

शिष्य-मण्डली एक-दूसरे का मुह देखने लगी। "मैं जायगा, मैं जायगा, आखिर यह 'मैं' कौन है? यह किस-किस के साथ जायगा?"

कनकदास ने उनकी परेशानी को देखकर कहा, "आप लोग मेरी बात समझे नही। 'मैं' का अर्थ है

मोह, 'मैं' का अर्थ है 'अहकार'। जब तक 'मैं और मेरा' और 'मैं भी कुछ हू' का अहंकार नहीं मिटेगा तब तक हम ईश्वर को नही पा सकते। प्रभु के रास्ते की यही दो सबसे बडी रुकावटे हैं। उन्हे दूर किये बिना प्रभु की प्राप्ति कदापि नही हो सकती।"

जीवन की सच्चाई

किसी समय धारा नगरी मे एक राजा राज करता था। उसका नाम था भोज। कहते हैं, कवियों मे, योगियो मे, भोगियो मे, दानियो मे, धनवानो मे, धनुर्धरो और धर्मात्माओ मे उसके समान कोई दूसरा राजा नही हुआ। उसकी उदारता और प्रजा के प्रति उसके प्रेम की बहुत-सी कहानिया प्रचलित हैं। उसने सब प्रकार का जीवन जिया। सब तरह के अनुभव प्राप्त किये।

जब अन्त समय आया तो उसने अपने दीवान को बुलाकर कहा, "मेरे मरने के बाद एक काम करना।"

"क्या, महाराज ?" दीवान ने उत्सुकता से पूछा।

भोज ने कहा, "जब मेरे शरीर को श्मशान-भूमि ले जाने को हो तो मेरा एक हाथ सफेद और दूसरा काला कर देना और दोनो हाथो को सबको दिखाते हुए अर्थी को ले जाना।"

राजा के इस निर्देश को सुनकर दीवान हैरानी मे पड गया। उसकी समझ मे नही आया कि राजा इस तरह का आदेश क्यो दे रहे हैं। झिझकते हुए उसने पूछा, "राजन, आप ऐसा करने के लिए क्यो कह रहे हैं ?"

"राजा भोज बोला, इसलिए कि खाली हाथ देखकर लोगो को पता चल जाय कि राजा हो या रक, कोई भी अपने साथ इस धरती से धन-दौलत आदि नही ले जाता। सब खाली हाथ जाते हैं। सफेद और काला रग यह बताने के लिए है कि आदमी के साथ अगर कुछ जाता है तो अच्छे और बुरे कर्म जाते है।"

राजा ने जीवन की एक ऐसी सच्चाई को उजागर कर दिया, जिसे दीवान कभी भूल नही सका। पाठक भी शायद ही भूल सकें।

यात्रा-वृतान्त

सच्ची दौलत

सन् १६४७ की बात है। मैं भारतीय शिष्ट-मडल के सदस्य के रूप मे रूस गया था। एक दिन मास्को मे मैं किसी काम से सरकारी दफ्तर मे गया। काम निबटा कर बाहर आया और अपने निवास की ओर चला तो रास्ता भूल गया। काफी देर तक इधर-उधर भटकता रहा, फिर भी सही रास्ता दिखाई न दिया। परेशानी होने लगी। सबसे बडी हैरानी यह थी कि जितने लोग मिले, उनमे से कोई भी अग्रेजी नही जानता था। वे रूसी-भाषी थे और मेरे लिए उस भाषा का काला अक्षर भैंस बराबर था।

मेरा ख्याल है कि आधा घटा इस प्रकार निकल गया होगा। अचानक एक लडकी उधर से गुजरी। मुझे कुछ परेशान देखकर मेरे पास आई और कामचलाऊ टूटी-फूटी अग्रेजी मे बोली, 'आप कुछ हैरान-से लगते हैं। क्या मैं कुछ मदद कर सकती हू ?"

मैंने बडे कृतज्ञ भाव से उसकी ओर देखते हुए कहा, ऐसा जान पडता है, मानो तुम्हे ईश्वर ने भेजा है। मुझे बोरोव्स्काया शोस्से जाना है, पर रास्ता नही सूझता।"

उसने मुस्कराकर कहा, "आप चिता न करें। वहा जाने वाली बस का अड्डा पास ही है। मैं आपको साथ ले जाकर बस मे बिठाल दूगी। आप सीधे अपने ठिकाने पर उतर जायेंगे।"

मुझे बडा चैन पडा। हम लोग साथ-साथ चलने लगे। लडकी ने पूछा, "आप मास्को मे कब से हैं ?"

"कोई पन्द्रह दिन हो गए।"

"यहां की सब चीजें देख लीं ?" उसने उत्सुकता से पूछा।

मैंने कहा, "तुम्हारी यह नगरी इतनी बडी है कि सबकुछ देखने के लिए महीनो चाहिए।"

हम लोग लाल चौक मे चल रहे थे। उसने बाए हाथ को संत बसील के गिरजे की ओर सकेत करके पूछा, "यह गिरजा आपने देखा है ?"

मैंने कहा, "नही।"

वह बोली, "अगर कोई काम न हो तो चलिए, अभी देख लीजिये। वह अब गिरजा नहीं है सग्रहालय है।"

मुझे कोई काम तो था नही। मैंने कहा, "चलो।"

हम दोनो गिरजे की ओर बढ़े। मैंने पूछा, "तुम क्या करती हो ?"

"दसवी कक्षा मे पढती हू।"

मैंने कहा, "वाह, यह भी खूब रही ! मेरी लडकी भी दसवें दर्जे मे पढ़ती है। कितने भाई-बहन हो ?"

वह बोली, "मेरे एक भाई है।"

"यह भी कैसा सयोग है !" मैंने किंचित् विस्मय से कहा, "मेरी लडकी के भी एक ही भाई है। अच्छा, तुम्हारे पिता क्या करते हैं ?"

इस सवाल पर वह लडकी कुछ विचलित-सी हुई। थोडी रुक कर बोली, "मेरे पिता दूसरे महायुद्ध मे मारे गए।"

हम दोनो विनोद करते, हसते, चल रहे थे। लडकी के मुह से ये शब्द सुनते ही मेरी हसी गायब हो गई। दिल को बडे जोर का धक्का-सा लगा। धक्के से कुछ सभलू कि तबतक लडकी बोल उठी, "एक बात कहू ! पिता के जाने का हमे दु ख तो है, घर का आदमी जाता है तो चोट लगती ही है, पर सच मानिये, जो हुआ उसका हमे मलाल नही है, क्योंकि पिता के प्राण देश के लिए न्यौछावर हुए।"

चौदह बरस की उस बालिका के हृदय से निकले ये शब्द आज भी मेरे कानो मे गूजते हैं। उनमे एक बहुत बडा रहस्य छिपा था। किसी भी महान् राष्ट्र की सच्ची दौलत धन नही होता, इसान होते है—वे इसान जो अपनी मातृभूमि को अपने प्राणो से भी ज्यादा प्यार करते हैं और उसके लिए सबकुछ बलिदान कर सकते हैं।

देश-प्रेम की प्रतिमा

दक्षिण-पूर्वी एशिया के प्रवास मे मैं और मेरे एक साथी थाईलैंड गए और कई दिन वहा रहे। अजुध्या नगर-प्रथम, बागसेन और न जाने क्या-क्या स्थान देखे। बैंकाक मे भी बहुत-सी चीजें देखने को थी। 'थाई-भारत कल्चरल लाज' के सचालक प रघुनाथ शर्मा तथा अन्य मित्रो के सहयोग से हमे कम समय मे अधिक-से-अधिक देखने का अवसर मिल गया।

एक दिन एक बौद्ध मन्दिर (वाट सिरी सकेत) देखने गए। वह एक पहाड़ी पर अवस्थित था। पहाडी 'फखाओ थौंग' कहलाती थी। बडा सुन्दर देवालय था। पहाडी की चोटी पर से चारों ओर के दृश्य बड़े सुन्दर दिखाई देते थे। हमे बताया गया था कि अधेरा हो जाने पर वहां से बैंकाक की शोभा देखते ही बनती है। झिलमिल करते रग-बिरगे प्रकाश मे वह नगरी बडी रहस्यमय और रोमांचकारी लगती है। ऐसे आकर्षण को

हम कैसे छोड़ सकते थे ! इसलिए हम वहां देर तक रुके। वास्तव में जैसा सुना था, वैसा ही पाया। ऐसा लगा, मानों ऊपर का विस्तृत आकाश अनंत गुना सुषमा-युक्त होकर नीचे आ गया है।

लौटे तो रात के आठ बजे थे। सोचा कि मंडी से कुछ फल लेते चलें। मेरे साथी और मैं, दोनों ही शाम को भोजन नहीं करते थे। फल और दूध लेते थे। मंडी पर कार रुकवा कर फल खरीदने गए। हमारे साथ वहां के एक भारतीय मित्र थे।

मंडी मे भांति-भांति के फल थे। आम और पपीते थाईलैंड के मशहूर हैं। कई दुकानों पर घूम कर हमने आम और पपीते लिये और जैसे ही चलने को हुए कि एक स्यामी महिला हमारे पास आई। उसके हाथ मे तीन आम थे। उन्हें हमारी ओर बढ़ा कर स्यामी भाषा मे कुछ कहने लगी। मित्र ने बताया "वह कहती है, आप ये आम ले लीजिए।"

हम समझे कि कोई फेरीवाली महिला है। देखने में वह देहातिन मालूम होती थी। आम छोटे-छोटे और शकल मे बडे अजीब-से थे। हमे अच्छे नही लगे। हमने कहा, "नहीं, ये आम हमे नही चाहिए। हम खरीद चुके हैं।"

मित्र ने जब हमारी बात उससे कही तो वह बोली, "मैं ये आम आपको देना चाहती हूं। ये मेरे अपने बाग के हैं और पूरे बाग मे जो सबसे अच्छा पेड है, उसके हैं। आप लोग बाहर से आए मालूम होते हैं। मैं चाहती हू, आप इन आमों को खाय और देखें कि हमारे देश मे आम कितने बढिया होते हैं।"

वह अधेड स्यामी महिला एक सांस मे यह सब कह गई। हमने एक बार फिर उसके हाथ के आमों को देखा। उनका रूप-रग और बनावट बहुत ही अनाकर्षक थी, पर उसका आग्रह देख कर हमने सोचा कि ले लें। मित्र के द्वारा पुछवाया कि वह उनके लिए कितने पैसे लेगी तो उसका चेहरा कुछ उदास हो आया। बोली, "दाम ! कैसे दाम ? मैं तो ये आम आपको भेंट में दे रही हू।"

हमने धन्यवादपूर्वक आम ले लिये। बडी कृतज्ञता से उस महिला ने सिर झुकाया और धीरे से मुड कर सामने की अपनी दुकान पर चली गई।

'थाई-भारत कल्चरल लाज' लौट कर हम लोग जब फल खाने बैठे तो भेंट मे मिले आम सामने थे। अनिच्छापूर्वक उन्हे तराशा और जब उन्हे खाया तो अपने अविवेक पर लज्जित हो उठे। वे आम मिश्री जैसे मीठे थे और उनमे कुछ ऐसी महक थी, जो अबतक खाये आमो मे हमे पहले कभी नहीं मिली थी।

उस अपूर्व भेंट को देने वाली महिला की भावना को हमने कितना गलत समझा, उसके साथ कितना रुखाई का व्यवहार किया और आमों के बाहरी रूप को देखकर उनकी कितनी अवगणना की, इसका स्मरण करके आज भी मन भारी हो जाता है और जब उस महिला के ये शब्द याद आते हैं—"ये मेरे अपने बाग के आम हैं, सबसे अच्छे पेड के हैं, आप खायें और देखें कि हमारे देश मे कितने बढ़िया आम होते हैं" तो देश-प्रेम की एक साकार प्रतिमा सामने आ खड़ी होती है।

झील की बेटी

डल झील काश्मीर का बहुत बडा आकर्षण है। अपने काश्मीर-प्रवास मे हम लोग अक्सर शिकारे मे झील की सैर करने चले जाते थे। एक दिन शाम खाली थी। सयोग से हमारा परिचित शिकारेवाला गफ्फारा मिल गया। फिर क्या था, बैठे उसके शिकारे मे और घूमने चल पडे। गफ्फारा बोला, "साब, मैं आज आपको तैरती खेती दिखाऊगा।"

इतना कहकर उसने कोई तान छेड दी और मौज से नाव को खेता हुआ काफी दूर ले गया। उसके बाद सैर कराता हुआ वहा पहुचा, जहा पानी की सतह के ऊपर कई प्रकार की खेती हो रही थी। नाव को रोककर बोला, "यहा आप उतर पडिये और देख लीजिए कि इसान ने कैसा करिश्मा कर दिखाया है।"

हम लोगो ने डरते-डरते नीचे पैर रक्खा कि कही धरती के साथ अन्दर पानी मे न चले जायं, पर हमारा वह भय निराधार निकला। फिर तो बेधडक इधर घूमे, उधर घूमे। नीचे काफी गहरा पानी था। ऊपर घास की मदद से मिट्टी जमा कर खेती की गई थी। घूम-घामकर फिर नाव मे आ गए और अब कमल के फूलो और बडे-बडे पत्तो के बीच से नाव को निकालता हुआ गफ्फारा दूसरी ओर को चला।

इतने मे देखते क्या हैं, एक पतली तीर जैसी नाव पर एक काश्मीरी किशोरी खडी हम लोगो की ओर देख रही है।

गफ्फारा ने कहा, "साब, जानते हैं, यह लडकी कौन है?"

हमारे इकार करने पर बोला, "यह यहा के जमीदार की लडकी है। ये जो खेत आप देखते हैं, सब इसी की जायदाद हैं।"

हमारी कुछ दिलचस्पी पैदा हुई। गफ्फारा ने शिकारे की रफ्तार धीमी कर दी। बोला, "साब, यह बहुत बडे आदमी की लडकी है। शाम को यहा आती है और घर के लिए साग-तरकारी वगैरा ले जाती है। अभी इसकी शादी नही हुई।"

हमने कहा, "इसे यहा बुलाओ।"

गफ्फारा बोला, "जनाब, इसका बडा ऊचा दिमाग है। आप बुलाइये। आवेगी नही।"

हमने कहा, "नही, हम नही बुलावेंगे। तुम बुलाओ।"

गफ्फारा मुस्कराया। नाव को उसने रोक दिया और लडकी को आने का सकेत किया।

लडकी कुछ सहमी। लगा, वह नही आवेगी। तब गफ्फारा ने उससे काश्मीरी में कुछ कहा। उसके बाद वह अपनी पतली-सी नाव को खेकर सपाटे से हमारे पास आ गई।

वह झील की बेटी थी। डल जितनी सुन्दर थी, बेटी उससे भी अधिक सुन्दर थी—बडी स्वस्थ और निर्भीक। शहजादी जैसी लगती थी।

वह हमारी भाषा नही जानती थी। हम उसकी भाषा नही जानते थे। हमने गफ्फारा की मार्फत उससे पूछा, उसके पिता कहा रहते है, उनके पास कितनी खेती है, कितनी उससे आमदनी हो जाती है, घर मे कितने लोग हैं, झील मे अकेले आते उसे डर तो नहीं लगता, आदि-आदि।

उसने मुस्कराहट के साथ सारी बातो के उत्तर दिये।

उसकी नाव मे मक्की के भुट्टे और कमलगट्टे रक्खे थे। उनकी ओर सकेत करके हमने कहा, "क्या ये भुट्टे और कमलगट्टे हमे नही दोगी?"

उसने बहुत से भुट्टे और कमलगट्टे हमारी ओर बढ़ा दिये। हमने उसे रोका, कहा, "नहीं, हमने तो यों ही कहा था, हमे नहीं चाहिए। तुमने अपने घर के लिए इन्हे इकट्ठा किया है। ले जाओ।"

पर वह नहीं मानी। जबर्दस्ती काफी भुट्टे और कमलगट्टे हमारी नाव मे पहुंचा दिये।

"इनके पैसे कितने हुए ?" हमने पूछा।

"पैसे ! कैसे पैसे ?" उसने गफ्फारा के द्वारा विस्मय से उत्तर दिया।

"ये जो चीजें तुमने दी हैं, उनके ?" हमने पैसे लेने के लिए आग्रह करते हुए कहा।

उसकी मुस्कराहट गभीरता मे परिणत हो गई। माथे पर बल डालकर, मुह बनाकर, उसने कहा, "आपने हमे समझ क्या रक्खा है ! आप हमारे खेत पर आए हैं। हमारे मेहमान हैं। आपके मन मे पैसे देने की बात आई कैसे ?"

इतना कहकर उसने डाड उठाया और हम कुछ कहें कि उससे पहले ही अपनी तीर-सी नाव को तेजी से चलाकर अपने रास्ते पर बढ़ गई।

तभी झील मे एक साथ लहरें उठी, मानो अपनी बेटी पर गर्व करते हुए मा पुलकित हो रही हो।

विदेशी से सबक

कुछ समय पहले की बात है। मैं यूरोप के प्रवास पर गया था। कई देशों मे घूमते हुए रूस की राजधानी मास्को पहुचा। उस नगरी मे बहुत-सी साहित्यिक सस्थाए हैं। एक दिन मेरे एक मित्र मुझे ओरियटल इस्टीयूट्ट ले गये। वहा हिन्दी का कार्य मुख्य रूप से भारत के अनन्य मित्र और हिन्दी के परम अनुरागी श्री चेलिशेव देखते हैं। ज्योही वह मिले, बोले, "यशपालजी, आज आप बड़े शुभ दिन यहा आये हैं।"

मैंने कहा, "क्यो, क्या बात है ?"

पुलकित होकर उन्होंने कहा, "हमारी सस्था से हिन्दी के कुछ कवियो की चुनी हुई कविताओ का रूसी भाषा में अनुवाद प्रकाशित हुआ है। आज ही वह पुस्तक आई है। पहली प्रति आपको भेंट करता हू।"

इतना कहकर उन्होंने एक प्रति पर 'प्रिय मित्र यशपाल जैन को सप्रेम भेंट' लिखकर मुझे दे दी। मेरे साथ एक भारतीय सज्जन थे। चेलिशेव ने उनसे कहा, "मैं आपका नाम नहीं जानता। कृपा करके अपना नाम एक कागज पर लिखकर मुझे दे दीजिये, जिससे एक प्रति मैं आपको भी भेंट कर दू।"

उन सज्जन ने अपना नाम लिखकर दे दिया। चेलिशेव ने कागज हाथ मे लेकर जैसे ही उसे देखा, उनकी त्योरी चढ़ गई। बोले, "मैंने आपसे अपना नाम लिखने को कहा था तो मेरा आशय यह था कि आप हिन्दी मे लिखकर दें। आपने अग्रेजी में लिखकर दिया।"

उन सज्जन ने कहा, "जी, बात यह है कि मैं हिन्दी कुछ-कुछ बोल तो लेता हू, पर लिख नहीं पाता।"

चेलिशेव का चेहरा लाल हो गया। बोले, "आप भारतीय हैं, हिन्दी आपकी राष्ट्रभाषा है और आप कहते हैं कि हिन्दी नहीं लिख सकते ! अच्छी बात है, आप नहीं लिख सकते, पर मैं लिखने का प्रयत्न करूगा।"

कहने की आवश्यकता नही कि उन रूसी महानुभाव ने उन भारतीय का नाम पुस्तक पर हिन्दी मे लिखा और शुद्ध हिन्दी मे लिखा।

बेलिशेव ने जो कहा, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। उनकी भाव-भगिमा को तो भूलना और भी कठिन है, जिसमे किसी भी स्वाधीनचेता राष्ट्र के लिए एक बडी भारी शिक्षा निहित थी।

आदमी आदमी एक-से

थाइलैंड की राजधानी बैंकाक की बात है। एक दिन हम लोग थाई-भारत-कल्चरल लॉज के सचालक पं रघुनाथ शर्मा से बात कर रहे थे। उनकी पत्नी पास ही बैठी थी। चर्चा चल रही थी कि पीढियो से रहते हुए भी हिन्दू लोग वहा के निवासियो को अछूत जैसा मानते हैं, यहा तक कि उनके हाथ का छुआ खाने से भी परहेज करते हैं। मैंने जिज्ञासा-वश योही शर्माजी की पत्नी से पूछा, "भाभीजी, आप भी स्यामी स्त्रियो से छत-छात का भाव रखती हैं ?"

मेरे इस सवाल पर वे थोडा ठिठकीं, फिर मुस्कराकर बोली, "हा, रखती तो हू। पर कुछ दिन पहले हमारी दुकान पर एक स्यामी लडकी काम करती थी। बडी भोली और बडी सीधी थी। हजार समझाओ, पर समझ ही नही पाती थी कि उसकी छुई हुई चीजो को खाने से किसी को परहेज हो सकता है। झट चीजो को छू लेती थी। उससे कुछ कहते थे तो भोलेपन से उन चीजो को देखती थी कि कही वे सचमुच खराब तो नही हो गई हैं। फिर छोटे बच्चे की तरह कहती थी, "नही, ये बिगडी तो नही हैं। आप देख लो।" उसकी सरलता और भोलेपन पर हसी आ जाती थी और उन चीजो को खाने मे बुरा नही लगता था।"

उनके यह सुनाते-सुनाते शर्माजी को एक घटना याद आ गई। बोले, "जब जापानी लोग बर्मा से यहां आये तो अपने साथ अक्याब से एक बालक को पकड लाये। उसे उन्होंने साथ रखा। लेकिन जब वे यहा से जाने लगे तो समस्या हुई कि उस बालक को कहा छोड़ें। कुछ लोगो ने सलाह दी कि हमारे यहां छोड दे। सो बालक हमारे घर आ गया और घर के बच्चे की तरह रहने लगा। अपने ही बर्तनो मे खाता-पीता था। एक दिन उसे बुखार आ गया। बुखार मियादी था। उन्ही दिनो अचानक पता चला कि वह मुसलमान है। उसका नाम महमद था। हमे इनसे (पत्नी से) डर हुआ, पर इनके चेहरे पर शिकन तक नही आई। बोली, "मुसलमान है तो क्या हुआ! अपने बच्चो की तरह घर मे रहा है। अब भी रहेगा।" उसका नाम 'सबीर' रख दिया गया। उसकी इन्होंने ठीक वैसे ही देखभाल की, जैसे अपने बच्चो की करती हैं। वह बालक कोई तीन महीने हमारे साथ रहा। बाद मे उसके घरवालो को पता लग गया तो उसके घर भेज दिया।"

मैं सोचने लगा, हमारे सस्कार कैसे भी हो, पर हर किसी के अन्दर इसान होता है, जो आदमी आदमी के बीच के फासले को नहीं मानता।

श्रद्धा का बल

हम लोगो की टोली उत्तराखण्ड की यात्रा कर रही थी। वहां के महान् तीर्थ केदारनाथ के दर्शन करने के बाद हम बदरीनाथ आ रहे थे। रास्ते मे एक बहुत ही महत्वपूर्ण तीर्थ तुगनाथ पडता था। वहाँ उत्तराखण्ड का सबसे अधिक ऊचाई पर बना मन्दिर था। वहां की चढ़ाई इतनी मुश्किल है कि बहुत से यात्री वहा जा नही पाते।

हमे रास्ते की इस मुश्किल का पता था, पर हमारी टोली नही मानी। चल पडी। सचमुच चढ़ाई बडी विकट थी। एक-एक कदम पर सांस फूलती थी। शुरू में चीड, देवदार तथा लता-गुल्मो की हरियाली और तरह-तरह के फूलों के कारण रास्ता विशेष अखरा नही, लेकिन आगे चलकर प्रकृति ने अपना वैभव समेट लिया और अब सामने सपाट पर्वत थे। हमारे पैर एक-एक मन के हो गये। चढ़ाई काफी शेष थी और हममे से प्राय सभी का दम जैसे टट रहा था। तभी देखते क्या हैं कि एक बहुत ही दुबला-पतला बूढा हाथ की लाठी को टेकता, प्रकृति को चुनौती देता, आगे चला जा रहा है, चला जा रहा है। कमर उसकी झुकी थी टागें बेहद दुबली थी। उसके पास पहुचने पर हमने उसे नमस्कार किया, फिर पूछा, "क्यो, बाबा, कितनी उमर के हो ?"

बडे ही सधे हुए स्वर मे उसने कहा "भैया, बहत्तर से कुछ ऊपर हू।"

आगे हम कुछ कहे कि वह बोला, "तीसरी बार तुगनाथ के दर्शन करने जा रहा हू। भगवान् ने जिन्दा रखा तो फिर आऊगा।"

हमारे पैरो को जैसे किसी ने अनजाने नई शक्ति से भर दिया। उस वृद्ध युवा के आत्म-विश्वास और श्रद्धा से तुगनाथ की वह शेष दूरी इतनी सुगम हो गई कि हमे मालूम भी नही पडी।

सेतुबंध के निर्माता

लेनिनग्राड मे नीवा नदी के किनारे हरमिताज के निकट अवस्थित ओरियण्टल इस्टीट्यूट पहुचा तो एक रूसी युवक ने भारतीय पद्धति से हाथ जोडकर मेरा अभिवादन करते हुए हिन्दी मे कहा, "नमस्कार, यशपालजी ! आइये, मेरा नाम ओग्राफ है। मुझे बडी खुशी है कि आप हमारे यहा पधारे।"

उस तरुण का उच्चारण बड़ा शुद्ध था और उसके बोलने के ढग से यह नही लगता था कि वह कोई नौसिखिया है। हम लोग हिन्दी मे ही बात करते हुए अन्दर पहुंचे। ओग्राफ ने सस्था का परिचय देते हुए बताया कि उसमें पूर्वी देशो की भाषाओं का, विशेषकर भारतीय भाषाओं का अध्ययन, अनुसधान और प्रकाशन होता है। कोई डेढ़-सौ साल पहले पूर्वी देशो की पाण्डुलिपियो के सग्रहालय के रूप मे इसकी स्थापना हुई थी। अब यहां पर हिन्दी, उर्दू, फारसी, पंजाबी, मराठी, तेलुगु, संस्कृत, पाली, अरबी आदि भाषाओं की पुस्तको के अनुवाद तथा प्रकाशन का कार्य हो रहा है।

सस्था का परिचय अभी समाप्त नहीं हुआ था कि इतने मे एक सज्जन आये। मझौला कद, उन्नत ललाट, चमकती आखे, फुर्तीला बदन। वह सूट पहने थे। ओग्राफ ने खडे होकर उनका स्वागत किया और परिचय कराते हुए कहा, "आप प्रो वी आई कल्यानोव हैं।"

इन महानुभाव का नाम मैं पहले से जानता था। मुझे यह भी पता था कि वह सस्कृत और हिन्दी धाराप्रवाह बोलते हैं और महाभारत के अनुवाद का कार्य उन्ही के द्वारा हो रहा है। सच यह है कि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट मैं मुख्यत उन्ही से मिलने गया था।

पारस्परिक अभिवादन के बाद हम लोग बैठकर बातें करने लगे। इधर-उधर की चर्चा के उपरान्त मैंने उनसे पूछा, "आपको महाभारत का अनुवाद करने की प्रेरणा क्यो हुई ?"

उन्होन उत्तर दिया, "इसलिए कि वह भारतीय सस्कृति का विश्वकोश है।"

"अब तक आप कितना अनुवाद कर चुके हैं ?"

वह बोले, "आदि-पर्व पूरा हो चुका है। वह छपकर बाजार मे आ गया है। आजकल मैं 'सभा-पर्व' का अनुवाद कर रहा हू। यह भी पूरा होन को है। कितना भरा-पूरा भण्डार है आपके पुरातन साहित्य का !"

इतना कहते-कहते उनके चेहरे पर हृष की रेखा उभर आई, जैसे वह अनुभव कर रहे हो कि उत्तम साहित्य देश-काल की सीमा से परे होता है।

फिर कुछ रुक कर बोले, "हमारे प्रोफेसर ने, जो सोवियत सघ की 'अकादमी आव साइसेज' के सदस्य हैं, बौद्ध धर्म का विशेष रूप से अध्ययन किया है और कई पुस्तकें लिखी हैं।"

उन्होने प्रोफेसर का नाम कुछ इस ढग से लिया कि मेरी समझ मे नही आया। वह नाम था भी कुछ जटिल-सा। मैंने कहा, "आप इस नाम को मेरी डायरी मे लिख दीजिये।"

उन्होन बडे सुन्दर देवनागरी अक्षरो मे लिखा—श्रीमदाचाय श्चेरेबेत्स्कि।

श्रीमदाचाय' शब्द पर मैं चौंक पडा। मैंन कहा, 'यह तो सस्कृत और भारतीय सस्कृति का शब्द है।"

उन्होने कहा, "जी हा, अपने यहा के 'थियोडोर' शब्द के लिए मुझे यही पर्याय अधिक उपयुक्त लगता है और मैं इसी शब्द का प्रयोग करना पसन्द करता हू।"

जाग्राफ ने सभी भारतीय भाषाओं के विभागीय अधिकारियो को वहा एकत्र कर लिया था। मेरे पास की कुर्सी पर एक रूसी बहन बैठी थी। उनके जिम्मे बगला विभाग था। जब उनका परिचय कराया गया तो मुस्कराकर प्रो कल्यानोव बोले, 'इनका नाम स्वेतविदावा है। जानत हैं, इसका अर्थ क्या है ?"

मैंने कहा, "नही।"

बोले, "इसका अर्थ है, श्वेतदर्शन।"

फिर हसते हुए उन्होंने कहा, ' मैं इनसे कहता हू कि आप अपना नाम 'श्वेतदर्शना' रख लो तो कितना अच्छा होगा।"

मुझे याद आया, किसी ने बताया था कि प्रा कल्यानोव भारत और भारतीय सस्कृति की ओर इतने आकर्षित है कि उन्होने अपना नाम 'कल्याणमित्र' कर लिया है।

स्वेतेविदोवा से नाम बदलने की बात उन्होने विनोद मे कही थी, लेकिन उनकी भाव-भंगिमा से यह छिपा न रहा कि भारत के प्रति उनको आत्मीयता बडी गहरी है और भारत और रूस के सम्बन्धों को स्थायी बनाने के लिए वह सतुबन्ध का निर्माण कर रहे हैं।

उस मनीषी के साथ जो क्षण बीते, वे आज भी याद आते हैं। लगता है, भूगोल की सीमाए और मीलों की दूरी, मानवता के लिए कोई महत्व नहीं रखती और उदात्त भावनाए, बिना किसी भेदभाव के, मानव के हृदय को स्पन्दित करती हैं।

स्वदेश का अभिमान

यूरोप के प्रवास मे रूस तथा चैकोस्लोवाकिया होता हुआ मैं स्विट्जरलैंड पहुचा। स्विट्जरलैंड अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए सारे ससार में विख्यात है। उसके जूरिक नगर की महिमा का तो कहना ही क्या! सबसे पहले मैं वहीं पहुचा। जैसा सुना था, वास्तव मे उसे वैसा ही पाया। लगता था, मानो प्रकृति ने वहा अपनी सुन्दरता खुले हाथो बिखेरी है।

जूरिक झील उस नगर का एक विशेष आकर्षण हैं। उसके चारों ओर पक्की सडक है। झील के पानी मे जहां भांति-भांति की नौकाए सचरण करती हैं, वहा सडक पर बसें दौडती हैं। कहीं भी चले जाइए। देश-विदेश के यात्रियो की वहा हर घडी भीड लगी रहती है।

शहर मे घूमते समय मुझे बताया गया कि वहां का सबसे सुन्दर स्थल उतलीबर्ग है। जूरिक का वह सबसे ऊचा पर्वत-शिखर है। बिजली की रेल चोटी तक जाती है। मैंने वहा जाने का निश्चय किया। बस द्वारा रेलवे स्टेशन के लिए रवाना हुआ। रेल के समय का पता लगाया तो मालूम हुआ कि कुल ५ मिनट बाकी थे। मेरे बराबर की सीट पर एक स्विस लडकी बैठी थी। मैंने जब उसे अपनी परेशानी बताई तो उसने कहा, "आप चिन्ता न करें। कण्डक्टर से कहती हू कि वह अगले स्टेशन पर आपको ट्रेन पकडवा दे।" मैंने धन्यवाद दिया। लडकी ने कडक्टर के पास जाकर उसे समझाया तो वह मान गया। उसने ड्राइवर से कह दिया। नतीजा यह हुआ कि उस भली लडकी की प्रेरणा से मुझे अगले स्टेशन पर ट्रेन मिल गई।

ऊपर तक का सारा रास्ता सचमुच बडा सुन्दर था। वह घने वन मे होकर जाता था। दोनो ओर ऊचे-ऊचे पेडो की निकुजे देखकर ऐसा लगता था मानो हमारी आखो के सामने कोई रगीन चित्र हो। सयोग से उस समय मौसम सुहावना था। छोटे-छोटे बादल आकाश मे अठखेलियां कर रहे थे, जिससे सारा वातावरण मनोरम बन गया था।

रेल में काफी भीड थी। जाने किन-किन देशो के नर-नारियो और बच्चों से वह खिलौने जैसी छोटी-सी गाडी भरी थी।

पच्चीस मिनट मे ऊपर पहुच गए। शहर से चोटी तक पैदल का भी पक्का रास्ता है। कुछ लोग पैदल आ-जा रहे थे। असली आनंद तो पैदल चलने में ही था। मैं स्वय पैदल चलना पसन्द करता, पर मेरे पास समय की कमी थी।

ऊपर आकर चारों ओर को निगाह दौड़ाई तो ऐसे-ऐसे दृश्य दिखाई दिए, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। नीचे जूरिक झील के चारों ओर सारा नगर बिछा था। झील का नील वर्णी जल उसकी

शोभा को और भी रंगीन बना रहा था। एक ओर को लिमत नदी मथर गति से बह रही थी। जूरिक झील से सटी ओबर झील थी। दोनो मिलकर किसी सागर का आभास करा रही थी। एक ओर को लोजान नगर दिखाई दे रहा था, जहा का जलवायु सारे स्विट्जरलैंड मे बहुत अच्छा माना जाता है।

चोटी पर उतोखुल्म नामक होटल था, जिसके आगे जूरिक के प्रेसीडेंट स्व डा जेकब हुन्स की विशाल मूर्ति थी। मैं उस मूर्ति के पास खडे होकर आल्प्स पर्वत-माला के दृश्य देखने लगा। सौभाग्य से बादल उस समय छट गए थ और सूय के प्रकाश मे वह हिम-मडित पर्वत-माला अलौकिक-सी लग रही थी।

मुझे वहा खडा देख कर एक स्विस युवती आई। बडी प्रसन्न मुद्रा मे बोली, "सामने, उन पवतो को देखिए।"

मैंने कहा, "उन्ही को तो देख रहा हू।"

"जानते हैं, वह हमारा आल्प्स है—प्यारा आल्प्स।" वह बोली, "ओह, कितना सुन्दर है! कितना भव्य!"

मैंने कहा, "आप ठीक कहती हैं। सचमुच, बडा सुन्दर है! बहुत अच्छा लग रहा है।"

"वह देखिए, उसकी चोटिया बर्फ से ढकी हैं। सूरज की रोशनी मे सारी पर्वत-माला कैसी चमक रही है! ठीक-ठीक बताइए, आपको यह सब कैसा लग रहा है?" उसने उछलते हुए पूछा।

मैंने उस तरुणी के चेहरे की ओर देखा। खुशी के मारे जैसे वह पागल हो रही थी। मैंने कहा, "जो चीज अच्छी है, वह तो अच्छी ही लगेगी।"

"अरे, वह देखो, वह देखो, सबसे ऊची चोटी! हिम का किरीट धारे किस शान से सिर उठाए खडी है! है आपके देश मे ऐसी चीज?"

उसकी बात पर मुझे हसी आ गई। मैंने कहा, "इसकी ऊचाई कितनी है?"

बडे गर्व से उसने कहा, "तीन हजार सात सौ ।"

मैंने कहा, "देवीजी, भारत मे नीचे-से-नीचा पहाडी मुकाम भी छ-सात हजार फुट की ऊचाई पर है। हिमालय की चोटिया तो २६-२६ हजार फुट तक गई हैं।"

कह नही सकता कि उस बहन ने मेरी बात सुनी या नही, क्योकि उसका मन तो आल्प्स के सौन्दर्य मे उलझा था और उसकी कल्पना उस पवत की सबसे ऊची चोटी पर रम रही थी। वह बच्चे की तरह कूदती रही, कूदती रही।

मैंने अनुभव किया, ये बातें वह किशोरी नही, उसका राष्ट्रीय स्वाभिमान कह रहा था।

प्यार से बढ़कर दुनिया में और है क्या!

यूरोप-प्रवास मे लदन के बाद मेरा अगला पडाव बर्लिन था। हैम्बर्ग पर रुकता हुआ मैं पश्चिमी बर्लिन के हवाई अड्डे पर उतरा। ठहरने के लिए जब सूचना विभाग मे बात की तो अधिकारी ने बताया कि बर्लिन से मेरा कोपनहेगन (डेनमार्क) जाने का कार्यक्रम है और जिस जहाज से मेरा वहा जाने का बुकिंग है, वह पूर्वी बर्लिन

के हवाई अड्डे से जाएगा। अगर मैं पश्चिमी बर्लिन मे ठहरूगा तो मुझे टैक्सी से वहां जाना पड़ेगा और उसमें मेरा काफी पैसा लग जाएगा। इसलिए अच्छा होगा कि मैं पूर्वी बर्लिन मे ठहरू और जाने का समय आवे तो सस्ते मे हवाई अड्डे की बस से चला आऊ।

पश्चिमी बर्लिन का हवाई अड्डा शहर से सटा हुआ था। सुरंग की रेल (ऊबान) का स्टेशन पास ही था। उससे मैं पूर्वी बर्लिन पहुचा। सूचना-विभाग से ठहरने की व्यवस्था करने को कहा तो उन्होंने वहा के बढ़िया होटल ओहनिसहोफ में प्रबध कर दिया।

होटल मे पहुचने के बाद मेरे सामने सबसे बड़ी समस्या भाषा की आई। वहां के लोग जर्मन जानते थे और मैं उस भाषा से एकदम अपरिचित था। अग्रेजी का चलन वहा बहुत कम था, बल्कि यह कहा जाय कि नही के बराबर था तो अत्युक्ति न होगी। लदन मे मुझे किसी ने बताया था कि विश्वविद्यालय मे कुछ भारतीय छात्र हैं। सभव है, वे मेरी कुछ सहायता कर सके। अत कमरे मे सामान जमा कर और थोडी देर विश्राम करके मैं विश्वविद्यालय पहुचा, जो होटल के निकट ही नदी के किनारे पर था। पूछताछ करने पर भारतीय विद्यार्थियो का पता लगा। विश्वविद्यालय की छुट्टी हो गई थी। मैं होस्टल पहुंचा। सयोग से दो भारतीय युवक मुझे अपने कमरे मे मिल गए। उनमे एक गुजराती था और दूसरा महाराष्ट्रीयन या और किसी प्रदेश का था। दोनो अपने-अपने बिस्तरों पर बैठे थे। नमस्कार करके मैने परिचय दिया और बताया कि मैं तीन दिन यहा ठहर कर पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन देखना चाहता हू, पर जमन भाषा न जानने के कारण मुझे बडी असुविधा होती है। अन्त मे मैंने उनमे अनुरोध किया कि यदि वे घण्टे-दो-घण्टे का समय मुझे दे सकें तो बड़ा अच्छा होगा।

दोनो लडको ने एक-दूसरे की ओर देखा और एक स्वर मे बोले, "माफ कीजिए, हम बीमार हैं।"

मैंने कहा, "यहां आसपास की जगहें दिखाने मे भी मदद नही कर सकेंगे?"

बोले,, "बुखार के मारे हम बडे लाचार हैं।"

"यहा और कोई भारतीय है?" मैंने पूछा।

"हमे पता नही।"

थोडी देर रुककर मैं चला आया। सोच रहा था कि अब क्या होगा? बिना किसी जानकार के थोडे से समय मे क्या देखा जा सकेगा! सोचते-सोचते जैसे ही विश्वविद्यालय के अहाते मे आया कि कोई बीसेक साल का एक जर्मन युवक मेरे पास आया और अग्रेजी मे बोला, "आप हिन्दुस्तान से आये हैं?"

मैंने कहा, "हा।"

"यहां कोई काम है?"

"नही, घूमने आया हू। यूरोप के कई देशो का भ्रमण कर आया हू। तीन दिन घूम-फिर कर डेनमार्क चला जाऊगा।"

इसके बाद मैंने उसे बताया कि यहा की भाषा न जानने के कारण मुझे बडी कठिनाई हो रही है। इतना सुनकर वह नौजवान बोला, "कोई बात नही। आप जबतक यहा रहेंगे, मैं आपकी मदद करूगा।

वह युवक अच्छी अग्रेजी नहीं जानता था, पर रुक-रुककर अथवा बिना क्रिया के शब्द बोलकर, अपनी बात कह देता था। उसने मेरा पता ले लिया और बोला, "आप होटल मे चलिए। मैं घर होकर घण्टे भर मे वहां आता हू।"

उसकी बात से मुझे अच्छा लगा। मैं होटल आ गया और अपने कमरे मे जाकर चुपचाप बिस्तर पर लेट गया।

जरा-सी आंख झपी होगी कि घण्टी बजी। किवाड खोलने पर देखता क्या हू कि वही लड़का खडा है और कह रहा है, "चलो, चले।"

वह मुझे इधर-उधर घुमाता हुआ उस इलाके मे ले गया, जो नया बसा था। पूर्वी बर्लिन की वहां सबसे चौडी सडक थी। उसके दोनो ओर शानदार दुकानें, रेस्तरा आदि थे। युवक ने बताया कि इस स्थान का निर्माण बडे व्यस्थित ढग से किया गया है। शाम के समय यहा इतनी भीड हो जाती है कि आप यहां के लोक-जीवन की बडे सुन्दर ढग से झाकी पा सकते हैं।"

उसकी बात सच थी। वहा सचमुच बडी भीड थी और सभी वर्गों के स्त्री-पुरुष मौज से घूम रहे थे। बाजार के एक छोर से दूसरे छोर तक चक्कर लगाकर हमने बूडापेस्ट होटल में भोजन किया। भोजन के बाद वह युवक अपने खाने के पैसे देने लगा तो मैंने उसे रोक दिया।

मेरी स्वाभाविक इच्छा उस रेखा को देखने की थी, जो पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन का विभाजन करती थी। मेरे आग्रह पर वह युवक मुझे वहा ले गया। सडक पर एक बडा फाटक था, जिसके दोनो ओर संगीनधारी सैनिको का पहरा था। जो भी गाडिया आती थी, उन्हे रोककर सैनिक पूछताछ करते थे, किसी-किसी की तलाशी भी लेते थे, तब जाने देते थे। वहा पहुचते ही युवक की आंखें डबडबा आई। बोला, "आपसे क्या कहू! यह रेखा हमारे शहर को ही नही बाटती, हमारे दिलो को भी चीरती है। पश्चिमी बर्लिन मे हमारे नाते-रिश्तेदार हैं, हमारे दोस्त हैं, पर हम उनके लिए एक सेंट की भी चीज नही ले जा सकते।"

हम लोगो ने स्तब्ध भाव से उस रेखा को पार किया और पश्चिमी बर्लिन मे पहुच गए। युवक बोला, "आपसे सच कहता हू, हमारे दिल मे बडा दर्द है, पर क्या करे, कुछ समझ नही आता!"

अपनी व्यथा को अपने अन्तर मे छिपाये वह युवक तीन दिन तक छाया की तरह हमारे साथ रहा। मैंने उससे कहा भी कि तुम्हारी पढाई का हर्ज होता होगा, पर वह नही माना। मुस्कराकर बोला, "आप कौन यहा रोज-रोज आवेगे।"

उस युवक ने तीन दिन के थोडे-से समय मे पूर्वी और पश्चिमी बर्लिन के प्राय सभी दर्शनीय स्थान मुझे दिखा दिये। जब-जब हम साथ-साथ सुरग की रेल या बस से विभाजक मीमा पार करते थे, उसके चेहरे पर विषाद की रेखा खिच जाती थी। कहना था, "दुनिया मे सबसे भयकर पीडा गुलामी की है। उसकी कसक इन्मान को हर घडी सालती रहती है।"

जब मैं वहा से चलने को हुआ तो वह मुझे शहर के हवाई दफ्तर तक पहुचाने आया। मेरे मना करते-करते टैक्सी का भाडा उसी ने चुकाया। हवाई अड्डे की बस मे सामान रखकर जब मैंने उससे विदा ली तो उसने कसकर मेरा हाथ पकड लिया। मैंने कहा, "तुमने मेरी इतनी मदद की। मैं तुम्हारा बडा ही अहमान-मन्द हू।"

वह सिहर उठा। बोला, "आभारी तो मैं हू, जो आपने मुझे इतना प्यार दिया। प्यार से बढ़कर आखिर इस दुनिया मे और है क्या!"

सेवा का संतोष

अमरनाथ की यात्रा के लिए हमारी टोली पहलगाम (काश्मीर) मे इकट्ठी हो गई, लेकिन चलने से पहले अचानक एक समस्या उठ खड़ी हुई। मेरा लडका सुधीर लिदर नदी के पानी मे से काफी समय तक गोल-गोल पत्थर बीनता रहा था। सितम्बर का महीना था। देर तक ठण्डे पानी मे रहने के कारण उसे शाम को जुकाम हो गया और रात को बुखार आ गया। हम परेशानी मे पडे कि उस हालत में अमरनाथ ले जाना ठीक होगा या नहीं। मेरी पत्नी कहती थी कि उसको लेकर वह वही रह जायंगी और मैं टोली के साथ चला जाऊं। मेरा कहना था कि मैं तो कभी भी यात्रा कर सकता हू, उनके लिए बार-बार आना संभव नहीं होगा। इसलिए वह चली जाय। दोनों का अपना-अपना आग्रह था। जब कोई फैसला न हो सका तो सोचा गया कि लडके को डाक्टर को दिखाया जाय और अगर डाक्टर कह दें कि उसे ले जाया जा सकता है तो सब चलें।

पहलगाम छोटी-सी जगह है। हम लोग एक कैमिस्ट की दुकान पर यह पूछने के लिए गए कि डाक्टर कहां मिलेगा। दुकानदार बोला, "अभी-अभी तो एक डाक्टर यहा थे। शायद बाहर सडक पर होगे। मैं अभी देखता हू।"

बाहर आकर उसने देखा तो डाक्टर सामने सडक पर खडे थे। हम उनके पास गए। लडका साथ था। हमने कहा, "डाक्टर, हम अगले दिन अमरनाथ जाना चाहते हैं, पर इस लडके की तबीयत खराब हो गई है। खांसी है, बुखार है। क्या करें!"

डाक्टर ने स्टैथसकोप से उसकी छाती देखी, मुह खुलवाकर गला देखा और बोले, "आप बेफिकर होकर इसे ले चलिए। कल मैं भी तो अमरनाथ के दर्शन करने जा रहा हू।"

आगे बातचीत हुई तो मालूम पडा कि वह दार्जिलिंग से आ रहे हैं। "अमरनाथ की यात्रा की मेरी बहुत दिनो से इच्छा थी, लेकिन झझटो मे निकलना ही नहीं हो पाया। अब जाकर जरा फुरसत मिली तो भाग आया। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें और लडके को ले चलें।" इतना कहकर उन्होने प्यार से लडके की पीठ थपथपाई।

डाक्टर के प्रोत्साहन से हम सबने अमरनाथ जाने का निश्चय कर लिया और तैयारी मे जुट गए।

अगले दिन सबेरे ६ बजे के लगभग हमारी टोली टट्टुओ पर चदनवाडी की ओर रवाना हुई। अपने कार्यक्रम के अनुसार हमने चदनवाडी पर एक होटल मे खाना खाया और शाम को दस हजार फुट की ऊंचाई पर जोजपाल के मैदान मे पहुचकर रात को ठहरने के लिए अपना तम्बू खडा कराया। उसके बाद जैसे ही खाना खाने बैठे कि जोर से बारिश आ गई और ओले गिरने लगे। हमे सबसे अधिक चिन्ता सुधीर की हुई। कही उसकी तबीयत और ज्यादा खराब हो गई तो? पर अब हो क्या सकता था!

आधी रात के बाद पानी थमने पर बाहर आए तो आकाश एकदम निर्मल था और त्रयोदशी के चन्द्रमा की चादनी चारों ओर फैली थी। सारा मैदान बर्फ से सफेद हो रहा था। दृश्य बडा अच्छा था, पर दिल कांप रहा था कि आगे क्या होगा!

जैसे-तैसे रात काटी। सबेरे जल्दी उठकर शीत से ठिठुरते निवृत्त हुए और जलपान करके आगे की मंजिल पर चल पडे। मील-डेढ़ मील निकलकर शेषनाग पहुंचे कि आसमान मे काली घटाए घिरने लगी। हमने टट्टुओं की रफ्तार तेज करने की कोशिश की, पर महागुनस की चढ़ाई शुरू होते ही मूसलाधार वर्षा होने लगी। पिछली रात की बारिश से रास्ता इतना रपटीला हो गया था कि टट्टुओ के पैर आध-आध गज सरक

जाते थे। तब लगता था कि नीचे घाटी मे पहुचे, जहां मौत बाहें फैलाए खडी थी।

बडी मुश्किल से पचतरणी पहुचे। वह हमारा दूसरा पडाव था। अमरनाथ यहां से कुल चार मील था हमारी योजना थी कि रात वहा बिताकर अगले दिन तडके ही चल देंगे और अमरनाथ के दर्शन करके दोपहर तक लौट आवेगे। इस बीच बोझी खाना बना लेंगे और सामान बाध लेंगे। हम लोग लौटकर खाना खायगे और चल पडेगे। रात शेषनाग पर बितावेंगे।

पचतरणी पर मौसम अच्छा रहा। रात को आकाश साफ रहा। चतुर्दशी के चद्रमा की चांदनी मे अद्भुत दृश्य दिखाई दिये। हम लोग रात भर प्रकृति की छटा को देखते रहे। वहां बहुत-से और भी यात्री आ गए थे। पर तनिक भी शोर न था। सिन्धु नदी की धारा के स्वर को छोडकर एक शब्द भी सुनाई नही पडता था।

सबेरे उठकर अमरनाथ की ओर चले तो हमारी प्रसन्नता का पार न था। चारो ओर सुनहरी धूप फैली थी और उससे भी ज्यादा आनददायक बात यह थी कि आसमान मे बादलो का नाम न था।

दो मील बात-की-बात मे निकल गए। तभी देखते क्या हैं कि सामने से एक सज्जन धीमे-धीमे, रुक-रुककर, चले आ रहे हैं। पास आने पर पता चला कि वह तो दार्जिलिंग वाले डाक्टर हैं। नमस्कार करके हमने कहा, "डाक्टर, आपने तो कमाल कर दिया! हम सब पर बाजी मार ली। हम दर्शन करने जा रहे हैं और आप कर भी आए।"

बडे गभीर स्वर मे डाक्टर बोले, "नही, भाई साहब, मैं अमरनाथ नही जा सका। जा भी नही सकूगा। मुझे हाई ब्लडप्रेसर है। यहा तक चला आया, पर अब मेरी सास बुरी तरह फूलती है। एक कदम भी नही चला जाता—न पैदल, न टट्टू पर। लगता है दिल की धडकन बद हो जायगी।"

हमने कहा, "नही, डाक्टर, आप चलिए। आपने जाने कितनो को हिम्मत देकर यह यात्रा कराई है। यह हो नही सकता कि आप न जाय।"

डाक्टर की आखें भर आईं। बोले, "मैं तो आया ही इसीलिए था, पर मेरा जाना नही हो सकेगा, नही हो सकेगा। आप लोग जाइए और अच्छी तरह दर्शन कीजिये। मेरी शुभकामनाए आपके साथ हैं।"

इतना कहकर डाक्टर ने एक ओर हटकर हमारे लिए रास्ता कर दिया।

अमरनाथ का दर्शन करके दोपहर को पचतरणी लौटे तो देखा, किसी टोली की एक बहन टट्टू पर से गिर पडी शायद बाह की हड्डी उतर गई। मदद के लिए इधर-उधर दौडे तो देखा, वही डाक्टर मौजूद है। उन्होंने हड्डी बिठाई और पट्टी बाधी। शाम को शेषनाग पर एक महिला सकरे रास्ते पर टट्टू के सामान मे रगड खा गईं। बदन छिल गया। उनकी चोट पर उन्ही डाक्टर ने दवा लगाई। किसी के सिर मे दर्द था, किसी को ठड लग गई थी, किसी को दस्त हो गए थे। सेवा की जरूरत हुई, डाक्टर हाजिर थे।

डाक्टर अमरनाथ के दर्शन नही कर पाये, इसका हम लोगो को मलाल था, पर उनके चेहरे पर सतोष की झलक थी, क्योंकि उन्हें दूसरो की सेवा करने का अवसर जो मिला।

सामयिक टिप्पणियाँ

[श्री यशपाल जैन ने सन् १६३६ में इलाहाबाद से मासिक पत्र 'मिलन' का सम्पादन अपने दो अन्य सहयोगियों श्री नरेन्द्र शर्मा तथा श्री प्रभात विद्यार्थी के साथ किया था। तत्पश्चात् दिल्ली से मासिक 'जीवन सुधा' का सन् १६३८-३६ में सम्पादन किया, फिर कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) से पाक्षिक 'मधुकर' के सन् १६४० से ४६ तक संयुक्त सम्पादक रहे और अब 'सस्ता साहित्य मण्डल' दिल्ली के मासिक पत्र 'जीवन साहित्य' का सन् १६४६ से लगातार सम्पादन कर रहे हैं। साथ ही दिल्ली से प्रकाशित 'मंगल प्रभात' के सम्पादक तथा 'अणुव्रत' के परामर्शदाता-सम्पादक भी हैं। इस प्रकार पाक्षिक और मासिक पत्रों के सम्पादन का उनका अनुभव दीर्घकालीन, लगभग ४६ वर्षों का है। इतनी लम्बी अवधि में उनके विचारो में, चिन्तन में और उनकी अभिव्यक्ति में जो परिपक्वता, जो निखार आया है, उसका परिचय हमें उनके लेखो, विशेषकर 'जीवन साहित्य' की सम्पादकीय टिप्पणियों से भलीभांति मिलता है।

सम्प्रति हमारे सामने 'जीवन साहित्य' के इधर के कुछ वर्षों की फाइल है। हम इससे उनके विचारों, चिन्तन, मनोभावो, उनके आवेगो, संवेगो, उद्वेगो, उनकी टीस, उनकी कसक इत्यादि की काफी झलक पाते हैं। एक सम्पादक को समझने के लिए उसकी, सम्पादकीय टिप्पणियों से बढ़कर शायद ही कोई अन्य साधन हो।

हम देखते हैं कि यशपालजी का चिन्तन किसी एक विषय में नहीं है। वह न केवल शाश्वत मूल्यो के प्रति ही प्रतिबद्ध हैं, सामाजिक समस्याओं के प्रति भी उनका उतना ही लगाव है। उनका दृष्टिकोण व्यापक और रचनात्मक है। मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के प्रति विशेष आग्रह है। गांधी-विनोबा के विचारों से अधिक नैकट्य है। जनसामान्य के जीवन से सम्बन्धित समस्याओ के प्रति सतत जागरूकता है। हिन्दीनिष्ठा, राष्ट्रभक्ति की याद बराबर बनी रहती है। भाषा पर पूरा अधिकार है। शब्द-चयन, सही शब्द की पकड़ में वह हिन्दी-क्षेत्र में एक सिद्धहस्त साहित्यकार हैं। उनके विचार सुलझे हुए हैं और साथ ही उनके सम्प्रेषण में ऐसी स्पष्टता है कि कहीं भी उलझाव नहीं होता। जो भी विषय वह लेते हैं, उसका चित्र पाठक के समक्ष साफ और सही उभरता है। उनकी सरल और सरस शैली, स्पष्ट प्रांजल और प्रवाहपूर्ण भाषा पाठक को आकर्षित तथा आनन्दित करती है।

—मुरलीधर विनोदिया]

शिक्षा और रचनात्मक कार्य

"आज शिक्षा ने बेरोजगारी को बढ़ाया है और लोगों को सरकार का मुखापेक्षी बना दिया है।"

"रचनात्मक क्षेत्र में आज कितनी निराशा व्याप्त है, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। जो खादी आजादी की वर्दी मानी जाती थी, वह आज सरकार की दया और कृपा पर जी रही है। ग्रामोद्योग सिसक रहे हैं।"

कुतुब मीनार की हृदय-विदारक त्रासदी

"पिछले दिनों कुतुब मीनार पर जो हृदय-विदारक दुर्घटना हुई है, उसका स्मरण करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारे देश के इतिहास में इस घटना की दु:खद स्मृति बहुत दिनों तक बनी रहेगी। यह त्रासदी अत्यंत भयंकर है, क्योंकि इसमें मरने वालों में अधिकांश स्कूली बच्चे थे। उनके अभिभावकों के दिलों के घाव कभी भरे नहीं जा सकेंगे। जब तक सरकार अपने बनाये नियमों के प्रति पूर्ण जागरूक नहीं होगी और नागरिक उन नियमों को मानने के लिए तत्पर नहीं होंगे तब तक ऐसी दुर्घटना को रोका नहीं जा सकता"

(जनवरी, १९८२)

राजनैतिक दलों की भूमिकाएं बदलें

"देश आज विनाश के कगार पर खड़ा है। आन्तरिक फूट, द्वेष-विद्वेष, लड़ाई-झगड़े, अहं उसकी भीतरी शान्ति को क्षीण कर रहे हैं वहां उसकी सरहद पर चारों ओर बाहरी खतरे बढ़ रहे हैं।"

"इन्दिराजी और उनका दल विपक्षी नेताओं को बुरा कहेगा और विपक्षी नेता और उनके दल इन्दिराजी को बुरा कहेंगे तो मतदाता अच्छा किसे मानेगा?"

विवाहों में धन का प्रदर्शन

"देश में आज दो समानान्तर अर्थव्यवस्थाएं चल रही हैं। एक उजले धन की, दूसरी काले धन की। जब तक काले धन पर नियंत्रण नहीं होगा तब तक हजार कोशिशें करें, धन के प्रदर्शन और दुरुपयोग को रोका नहीं जा सकेगा। कितने ही अभियान चलाओ, दहेज का भूत मुंह बाए खड़ा रहेगा और बेबस तथा निर्दोष लड़कियों को लीलता रहेगा।"

ये घिनौने चित्र और नग्न नृत्य

"जो पेट के लिए ऐसा करती हैं वे भी, सुनते हैं, किन्हीं माता-पिता की बेटियां हैं और जो उन नंगे नृत्यों को देखते हैं, वे भी शायद बेटियों के माता-पिता हैं।"

(फरवरी, १९८२)

अन्तुले प्रकरण समाप्त हो

"यह प्रकरण अब समाप्त होना चाहिए। इसने अन्तुले की ही नहीं, प्रधानमन्त्री की भी छवि को धूमिल किया है। यह उचित नही। शासक की छवि धूमिल होगी तो शासन कैसे चलेगा।"

पांचवां विश्व-पुस्तक मेला

"कहा जाता है कि कलम की ताकत तलवार से अधिक होती है। यह भी कहा जाता है कि पुस्तक गोला-बारूद से अधिक प्रभावशाली होती है। पर इस सत्य को भारत के शासको ने अभी हृदयगम नहीं किया है।"

(मार्च, १९८२)

मद्यपान की महाव्याधि

"गांधीजी ने कहा था, 'शराब सब बुराइयो की जननी है।' शराबखोरी आधुनिक सभ्यता और प्रगतिशीलता से जोड दी गई है। अगर आप शराब नही पीते तो 'दकियानूस' हैं, सभ्य नहीं है।"

(अप्रैल, १९८२)

सच्चा सेवक ही सच्चा शासक

"ऐसा प्रतीत होता है कि अब विभिन्न राजनैतिक दलो के सामने चुनावो को छोडकर और कोई बडा उद्देश्य नही रह गया है।"

"भ्रष्टाचार इस हद तक बढ़ गया है कि ईमानदार व्यक्ति के लिए जीना दूभर हो गया है।"

प्रेस की भूमिका

"आज के अधिकांश नगर-वासियों की दैनिक चर्या का आरभ अखबारों की खबरो के वाचन से होता है। आत्महत्याओं, डकैतियो, लूटमारो, राजनैतिक उखाड-पछाड, बलात्कार, आन्तरिक विग्रह, बाहरी खतरों आदि की सनसनीखेज खबरें जब तक पढ नही लेते, चैन नही पडता।"

"गांधीजी के गोली लगने का समाचार सुनकर विख्यात अमरीकी लेखिका पर्लबक की नन्ही बेटी ने भारी हृदय से कहा था, "मा कितना अच्छा होता अगर पिस्तौल की ईजाद न हुई होती।" व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन पर पत्रों के दुष्प्रभाव को देखकर हमारा मन भी प्राय यह कहने को लाचार हो उठता है कि यदि समाचार पत्र न होते तो कितना अच्छा होता! सबेरे अखबार पढ़कर जाने-अनजाने दिन भर के लिए हमारे मन पर तनाव पैदा हो जाता है।"

(मई, १९८२)

मुक्ति पर्व की अपेक्षा

"हमारा मुक्ति पर्व आ रहा है, १५ अगस्त। उसकी अपेक्षा है कि अब एक नये चिन्तक का आरंभ हो। हम निराशा, कुण्ठा, सन्त्रास आदि को छोड दें, अपने पुरुषार्थ, अतिक्रम, कर्तव्यनिष्ठा और लगन को जाग्रत करें। लोकतत्र को मान्यता दी है तो लोकनीति को आदर और लोकशक्ति को सर्वोपरि मानें। जिस दिन ऐसा होगा, आज की सारी व्याधिया अपने आप दूर हो जाएगी। आदमी मे असीम शक्ति है।"

(अगस्त, १९८२)

फिल्म निर्माताओ से

"फिल्म निर्माताओ के सामने एक ही लक्ष्य है—पैसा कमाना। उन्हे कमाई से मतलब है, देश भाड़ मे जाता हो तो जाय।"

"फिल्म निर्माताओ ने यदि अपनी दूषित मनोवृत्ति को नही बदला तो उनकी तिजोरियां अवश्य भर जायगी, किन्तु देश की नीव खोखली हो जायगी। जिस प्रकार अपनी बहन-बेटियो की इज्जत उन्हें प्यारी है, जिस प्रकार वह अपने बच्चो को अच्छे सस्कार देने के अभिलाषी हैं, उसी प्रकार दूसरे लोग भी अपने बच्चो को शिष्ट और सुसस्कृत बनाना चाहते हैं। उन्हे बिगाडने का उपक्रम करने का किसी को भी अधिकार नही है।"

हिन्दी को लेकर रस्साकशी क्यो ?

" जब वे दलीले थोथी सिद्ध हो गई तब हमारे स्वनामधन्य शासको ने एक नई दलील दी कि हिंदी किसी पर थोपी नही जायगी। आवेश अथवा अपने स्वार्थों के वशीभूत होने के कारण वे 'थोपने' का सामान्य अर्थ भी भूल गए। थोपने का अर्थ होता है अल्पसख्यको की भाषा को बहुसख्यको के सिर पर लादना। हिन्दी दक्षिण से लेकर उत्तर तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक सारे देश मे समझी और बोली जाती है। हमारे नेता लोग सत्ता को हाथ मे बनाये रखने के लिए जो न करें वह थोडा है। हिन्दी का किसी भी भाषा से विद्वेष नही है—न अग्रेजी से, न भारतीय भाषाओ से। लेकिन उसे अपना स्थान तो मिलना ही चाहिए। इतना निश्चित है कि स्वतत्र भारत की राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा न अग्रेजी हो सकती है, न कोई प्रादेशिक भाषा। वह दर्जा तो हिन्दी का है और उसी का रहेगा।"

(सितम्बर, १९८२)

धर्म गुरुओ से

"धर्मगुरुओ की तेजस्विता, मानव-नीति के प्रति अडिग आस्था और लोक-कल्याण के लिए कठोर साधना वर्तमान युग के लिए अपेक्षित है। उनके द्वारा ही देश को नई दिशा मिलेगी और स्वस्थ परम्पराए स्थापित होगी। उज्ज्वल भविष्य के लिए खरे मानव की महती आवश्यकता है। वह खरे धर्म गुरुओं और धर्माचार्यों के द्वारा ही सम्भव होगी।"

बिहार का प्रेस बिल गलत कदम

"प्रधानमंत्री ने अपने लखनऊ के व्याख्यान मे इस बिल का समर्थन कर दिया है। . यह सच है कि यह कदम अपनी कमजोरियो को छिपाने का प्रयत्न है। बिहार में राजनैतिक मच पर जो कुछ हो रहा है वह वांछनीय नहीं है। आगे और भी गंदगी फैलने का अदेशा है। यही कारण है कि प्रेस की आजादी छीनकर अपना मार्ग निष्कटक बना लेने के लिए बिहार के शासक उत्सुक हैं। आज के युग मे प्रेस की आजादी छीनना अपनी मौत को आमत्रण देना है।''

(अक्तूबर, १६८२)

नागरिकों से

''आज स्थिति यह है कि नागरिक घोर सकट का जीवन जी रहा है। महगाई ने उसकी कमर तोड दी है। मिलावट ने उसके स्वास्थ्य को नष्ट कर दिया है, भ्रष्टाचार ने उसके चरित्र-बल को क्षीण कर दिया है, काले धन ने असामान्य प्रभुता धारण कर ली है और राजनीति ने सत्ता का जादू चारो ओर फैला दिया है। यह सब इसलिए हुआ है, क्योंकि नागरिको को अपनी शक्ति का भान नही रहा और हर बात मे सरकार का मुंह ताकने के कारण उसका पराक्रम खत्म हो गया। वह कर्तव्य के प्रति उदासीन और अधिकार के प्रति सजग हो गया। सत्ताधारियो को देखते-देखते वह सेवा को भूल गया।

देश मे जो आज मूल्यो का सकट उत्पन्न हो गया है और व्यापक रूप मे फैल गया है, वह नागरिको की कर्तव्य विमुखता, पुरुषार्थहीनता, परावलम्बन तथा स्वार्थपरायणता के कारण है। जिस प्रकार दुर्बल शरीर पर सब तरह के रोगो का आक्रमण होता है उसी प्रकार दुर्बल निर्वीर्य नागरिको को नाना व्याधियो ने आक्रान्त कर रक्खा है।

आचार्य काका साहेब कालेलकर ने देश की वर्तमान दुरवस्था को ध्यान मे रखकर कहा था, हम एक बडे देश के छोटे लोग हैं।' उनका यह कथन हमे प्रेरित करता है कि बडे देश के छोटे नागरिक होना लज्जास्पद है, अशोभनीय है। हम उठें, चलें और जब तक अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर लें, चलते ही रहें।"

(नवम्बर, १६८२)

तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन

"पहला और दूसरा विश्व हिन्दी सम्मेलन नागपुर और मारीशस मे हो चुके है और अब तीसरा सम्मेलन नयी दिल्ली मे दिसम्बर के तृतीय सप्ताह मे होने जा रहा है।. हमे याद है कि सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन मे पश्चिम जर्मनी के हिन्दी-सेवी लोथार लुत्से ने भारी भीड के सामने कहा था, 'आप हमसे हिन्दी को बढावा देने की अपेक्षा रखते हैं, लेकिन यह तो बताइए कि आपके देश मे क्या हो रहा है? इस प्रकार का प्रश्न पूछने का अब तो और अवसर है। .हमे पहले अपने घर को सभालना चाहिए, हमारे देश की राष्ट्रभाषा और राजभाषा स्वराज्य-प्राप्ति के ३४ वर्ष बाद भी अग्रेजी बनी रहे, इसमे हमे भले ही अटपटापन अनुभव न हो, बाहर के लोगों के तो वह गले नही उतरती।"

(दिसम्बर, १६८२)

डाकुओं की समस्या

"हमे याद है कि भिण्ड-मुरैना के डाकुओं के आत्म-समर्पण के बाद नई दिल्ली में जब तहसीलदार सिंह तथा लोकमन का स्वागत किया गया था तो तहसीलदार सिंह ने साफ-साफ कहा था, 'समाज मे सफेदपोश डाकू हैं, उनसे भी तो आत्म-समर्पण करवाइये।'

"फूलन और उसके साथियो के साथ सरकार को कानूनन जो करना है, वह करेगी और करना ही चाहिए। पर हम समझने की भूल न करें कि कुछ डाकुओं के आत्मसमर्पण से इस समस्या का हल हो जायगा। यह समस्या तब और तभी हल होगी जबकि समाज से अन्याय और अत्याचार का उन्मूलन होगा, ऐसी व्यवस्था की जायगी कि कोई किसी का शोषण नही करेगा और प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न रूप से किसी को भी डाका डालने की छूट नही होगी।"

नये बजट मे पुस्तको पर परोक्ष प्रहार

"नये बजट मे कागज पर सरकार के चुगी बढाते ही कागज का दाम ऊपर चढ़ गया है। गत वर्ष डाक दर बढा दी गई थी। इस प्रकार विचार का गला घोटने मे कोई कसर नही छोडी जा रही है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है, 'सबसे भले विमूढ जन।' हमारी सरकार देश के बहुमस्यक भाग को 'भला' ही बना रहने देने का प्रयत्न कर रही है।"

भ्रष्टाचार-उन्मूलन का उपाय

"किसी महापुरुष ने कहा है कि जब कोई बुराई सार्वभौम बन जाती है तब बुराई बुराई नही रहती। आज भ्रष्टाचार देश मे इतना व्याप्त हो गया है कि वह 'भ्रष्टाचार' न रहकर 'शिष्टाचार' बन गया है। यह भ्रष्टाचार किसी एक वर्ग मे हो, ऐसा नही है। ऊपर से लेकर नीचे तक फैला है और फैलता ही जा रहा है। इसकी जड चुनावो मे है। जब चुनावो मे करोडो-अरबो रुपये खर्च होते हैं तो वे कहा से आते हैं? जिनके पास पैसा है वे देते हैं और बदले मे एक के दस वसूल कर करते हैं।

"भ्रष्टाचार को मिटाने की दिशा मे पहला कदम यह है कि हम अपने को शुद्ध करने की शुरुआत फौरन कर दें, साथ ही नई पीढी को जल्दी-से-जल्दी जगा देने की कोशिश करें।"

(अप्रैल, १९८३)

धर्मात्माओ के साथ दुर्व्यवहार

"१२ मार्च, १९८३ को चित्तौड जिले के सारदात खेडा नामक ग्राम मे पदयात्रा करती हुई कुछ जैन साध्वियों के साथ कुछ अवाछनीय तत्वो ने जो अभद्र व्यवहार किया है उसकी जितनी निन्दा की जाय, कम है। कहा जाता है कि उनके साथ छेडछाड की गई और उनके पात्र तथा कपडे फाड दिये गए। उनके साथ जो भाई थे उनको खूब मारा तथा पेड से बांध दिया गया।

"साध्वि-सतियो के साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार होना इस बात का द्योतक है कि अब देश की

आत्मा मरने लगी है। कहा जाता है, भारत धर्म-परायण देश है। धर्म उसकी मिट्टी के कण-कण में रमा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह भारत अब सपने की चीज रह गई है।

"आज धर्म का स्थान राजनीति ने ले लिया है। अब राजनेता धर्म के पीछे नही चलता, धर्म राजनेता के पीछे चलता है। यही कारण है कि धर्म आज सत्तात्मक राजनीति का शिकार हो गया है। धर्म के प्रति भोली-भाली ग्रामीण जनता मे जो आस्था थी, वह भी समाप्त हो रही है।"

खोया मार्ग

"भारतीय ज्ञानपीठ के सातवें पुरस्कार की विजेता अमृता प्रीतम का सम्पूर्ण जीवन साधना का रहा है और उनके साहित्य का उद्देश्य उस मानवता को प्रतिष्ठापित करना है, जो घर-घर मे व्याप्त है और जिसके अधिष्ठान पर सारा जगत खड़ा है। मेरे मतानुसार लेखन अपने तक और फिर अपने से बहुत दूर आगे तक पहुचने का सफर है। अपने तक पहुचने के सफर का मतलब है—सबसे पहले 'अपने' को जानना, फिर 'तुम' को और फिर आगे जो कुछ है यानी सारी दुनिया।

"इसका मतलब यह है कि इससे दूसरो का, इससे आगे और दूसरो का और फिर उनका जो बहुत दूर हैं, दर्द अपना दर्द बन जाता है।

"आदमी का, समाज का, देश का और दुनिया का मौजूदा दु ख तभी दूर होगा जब आदमी आदमी से मिलेगा, उसके बीच कोई फासला नही रहेगा और आदमी क्या, छोटे-से-छोटे जीव का दर्द अकेले का दर्द नही रहेगा। यही महावीर का मार्ग है, बुद्ध का मार्ग है, ईसा का मार्ग है, मोहम्मद और नानक का मार्ग है और यही गाधी का मार्ग है। इसी खोये मार्ग को खोजना है और उस पर चलना है। साहित्य का, और साहित्य ही का क्यो, सबका कर्तव्य इसी मार्ग की खोज मे सहायक होना है।"

चिन्ता बनाम चिन्तन

"आज धनी-निर्धन, छोटे-बडे सब किसी-न-किसी चिन्ता और हैरानी का बोझ लिये फिरते हैं। चिन्ता को चिता कहा गया है। देखने मे चिन्ता और चिन्तन दोनों शब्द एक-से लगते हैं, किन्तु उनके अर्थ मे जमीन-आसमान का अन्तर है। चिन्ता आदमी की शक्ति को क्षीण करती है। चिन्तन उस शक्ति को बढावा देता है। चिन्ता मार्ग को अवरुद्ध करती है, चिन्तन उसे प्रशस्त करता है। चिन्ता करने से कोई समस्या हल नही होती। चिन्तन से कोई समस्या हल हुए बिना नही रहती। हम चिन्ता के निरर्थक बोझ को सिर से उतार दे और स्वस्थ चिन्तन के द्वारा अपने मनोबल तथा पुरुषार्थ मे वृद्धि करें। जीवन आनन्द के साथ जीने के लिए है, रो-रोकर मरने के लिए नही, प्रत्येक व्यक्ति मे अनन्त शक्ति सुप्त पडी है। चिन्ता उस शक्ति पर पर्दा डालती है, चिन्तन उस शक्ति को जाग्रत करता है। चिन्ता आदमी को जड बनाती है। चिन्तन पुरुषार्थ का पाठ पढ़ाता है।"

(मई, १९८३)

मूल्यों का ह्रास : हमारा दायित्व

"आज प्रतिदिन समाचार पत्रो में खबरें आ रही हैं कि अमुक घर मे डाका पड गया, अमुक स्थान पर रेल या बस के यात्रियो को लूट लिया गया, अमुक स्थान पर स्त्री की हत्या कर दी गयी, अमुक स्थान पर युवती के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया, आदि-आदि। इनके अतिरिक्त असम तथा पजाब के चिन्तनीय समाचार भी बराबर पढ़ने को मिलते रहते हैं। ये सब इस बात के द्योतक हैं कि वर्तमान युग के मूल्य विकृत हो गये हैं। यह सब एक दिन मे नही हुआ है। स्वराज्य मिलने के बाद इस स्थिति को लाने के लिए प्रत्येक क्षेत्र मे प्रयत्न हुए हैं। राजनीति मे दलगत तथा सत्तात्मक राजनीति को प्रश्रय दिया गया है। औद्योगिक क्षेत्र मे अनैतिक साधनो को बढ़ावा दिया गया है। धर्म के क्षेत्र मे पाखण्ड को पोषण दिया गया है। साहित्यिक क्षेत्र मे लोक-रुचि को गिराने वाले साहित्य की बाढ़ लाई गई है। संस्कृति के क्षेत्र मे घोर असांस्कृतिक कार्य किये गए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मूल्यो का ह्रास अपने आप नही हुआ, जान बूझकर किया गया है। इस अधकार को दूर करने के लिए सबको ज्योति जलानी होगी, सबको अपनी अपनी क्षमता के अनुसार साधना करनी होगी, हम जितनी जल्दी इसका आरभ कर देंगे, उतना ही अच्छा होगा, काल-पुरुष खडा मुस्करा रहा है। वह अधिक समय तक किसी का लिहाज या इतजार नही करेगा।"

अहिंसा सार्वभौम

"अभी कुछ समय पहले सयुक्त राष्ट्र सघ (न्यूयार्क) के भवन के सामने निरस्त्रीकरण की दिशा मे दस लाख व्यक्तियो का प्रदर्शन निष्फल हुआ जबकि प्रदर्शनकारियो मे जापान के फ्यूजीई गुरुजी तथा इग्लैंड के नोरम्ला बेकर जैसी शान्तिवादी हस्तिया थी। इसमे कोई सन्देह नही कि अहिंसा सार्वभौम की योजना बडी मूल्यवान तथा दूरदर्शितापूण है, लेकिन कही ऐसा न हो कि जिस प्रकार गाधी के अभाव मे अहिंसा निस्तेज हो गई, उसी प्रकार प्रभावशाली नेतृत्व के अभाव मे आगे चलकर अहिंसा सार्वभौम की योजना भी अधर मे लटकी रह जाय।"

(जून, १६८१)

चीन मे हमने क्या देखा?

"चीन की राजनैतिक मान्यताए और नीतिया कुछ भी हों, उनके वैदेशिक उद्देश्य कितने ही विवादास्पद क्यों न हो, लेकिन इसमे सन्देह नही कि वहा बहुत कुछ प्रेरणादायक है। वहा लोक-जीवन कसा है, किन्तु नागरिको मे देश-प्रेम और देश-भक्ति कूट-कूटकर भरी है। कोई भी नागरिक देश को धोखा देने की कल्पना नहीं कर सकता।

"साहित्य के प्रति जन-सामान्य मे बडा प्रेम है। बीजिंग मे एक विख्यात लेखिका ने बताया कि हाल ही मे लोक तथा बोध कथाओ की एक पुस्तक साठ हजार छपी और दो महीने मे पूरी-की-पूरी खप गई। हमारे यहां अभी तो ऐसी खपत की कल्पना भी नही की जा सकती, हिन्दी की अधिकाश पुस्तकों (पाठ्य पुस्तकें छोड़कर) का प्रथम सस्करण एक-दो-पाच हजार से अधिक प्रतियो का नही छपता।"

(नवम्बर, १६८१)

नेक बनो, एक बनो

"आन्तरिक विग्रह, ईर्ष्या-द्वेष, पदलोलुपता और स्वार्थ ने देश को झकझोर डाला है। पंजाब, असम आदि मे आग सुलग रही है। ऐसा दिखाई दे रहा है कि यदि जल्दी ही स्थिति मे सुधार नहीं हुआ तो आग की लपटें समूचे देश को अपनी चपेट मे ले लेंगी।

"इस अन्दरूनी अशान्ति के साथ-साथ देश की सीमाएं खतरे से घिरी हैं। इन सारी कठिनाइयो और संकटो का कारण यह है कि राजनीति आज अत्यन्त निम्न स्तर पर उतर आयी है। उससे भी बडा कारण यह है कि हमारे देश का नागरिक घोर असतोष, कुण्ठा और निराशा का अनुभव कर रहा है।

"प्रश्न है कि इस संकट से कैसे उबरा जाय? उत्तर स्पष्ट है। देश को नेक और एक बनाना होगा, 'गरीबी हटाओ' का नारा अब अपना अर्थ खो चुका है। दूसरे नारे भी अब पुराने पड गये हैं। अब नया नारा होना चाहिए, 'नेक बनो, एक बनो'। इस मूलमत्र को बोलकर सतुष्ट हो जाने भर से काम नही चलेगा, इस पर अमल भी करना होगा।"

(मार्च १९८४)

एक नई फिल्म

"हाल ही मे एक नई फिल्म दिखाई जा रही है 'आज का एम एल ए राम अवतार।' फिल्म को हमने भी देखा और अनुभव किया कि आज देश में जो कुछ हो रहा है, उसकी झांकी इस फिल्म मे आयी है। फिल्म के अन्त मे राजनैतिक भ्रष्टाचार को दूर करने का जो मार्ग बताया गया है, वह सही है।

"राजनीति अब आदर्श प्रेरित नहीं रही। उसके दावे कुछ भी हो, वह अब एक धधा बन गई है। चुनाव भी अब धधा बन गया है। इस फिल्म ने एक बात और सिद्ध कर दी है कि देश का वर्तमान नेता विश्वसनीय नही है, उस पर निर्भर करोगे तो कुए मे गिरोगे।

"हम नहीं जानते कि देश मे शासन और नेताओं की यह साख होगी तो देश का प्रशासन किस प्रकार चलेगा।

"इतिहास मे हम पढ़ते हैं कि एक युग था जब कि मनुष्य पशु का-सा जीवन जीता था। असभ्यता के उस युग मे आदमी जिसे चाहता था मार डालता था, और अपनी पाशविक इच्छा की तृप्ति कर लेता था। लगता है उसी इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है। अबोध, निरपराध व्यक्ति को गोली से उड़ा देना अथवा उसके सीने मे खजर भोक देने मे उसे सकोच नही होता।

"वहां के कुछ लोग दुराग्रही हो गये हैं। उनके दुराग्रह को दुराग्रह से दूर नही किया जा सकता। वहा की धरती में घृणा के बीज बोये जा रहे हैं। उन बीजों को प्रेम की फसल उगाकर निरर्थक किया जा सकता है। इसके लिए पंजाबियो मे जितना पुरुषार्थ है, उससे अधिक पुरुषार्थ अपेक्षित है—पुरुषार्थ मारने का नही, मरने का। तभी वहां की आग शान्त होगी।"

(अप्रैल, १९८४)

[लेखक की दैनिक डायरी से संकलित]

—साहस और श्रद्धा व्यक्ति के सबसे शक्तिशाली अस्त्र हैं।

—विचारो की क्रान्ति समाज और राष्ट्र का कायाकल्प कर देती है।

— विकृत विचार ही ईर्ष्या-द्वेष, विग्रह, दम्भ आदि बुराइयो को जन्म देते हैं।

—जो राष्ट्र विचारो को महत्व नही देता, वह रसातल को चला जाता है।

—विवेक की घटी जिसके सिर पर बजती रहती है, वह कभी गलत रास्ते पर नही चल सकता।

—बिना देश-भक्ति के बडे-से-बडे राष्ट्र भी डूब जाते हैं।

— राष्ट्र-भाषा किसी भी देश की रीढ होती है।

—धर्म प्रेम का पर्यायवाची है, वह करुणा का दूसरा नाम है, वह पवित्रता और निश्छलता का द्योतक है।

—सत्य-परायण व्यक्ति अन्याय के सामने कभी नही झुकता।

—सत्य साध्य है तो उसकी प्राप्ति का साधन अहिंसा है। सत्य और अहिंसा की जोडी है।

—जो राग को जीत लेता है, वह द्वेष पर भी विजय पा लेता है।

—चरित्र का मानव के साथ वह सम्बन्ध है, जो प्रकाश का सूर्य के साथ होता है।

—कला नि सदेह जीवन के लिए है।

—हम सबको वर्षा की भाति परोपकारी और सर्व समभाव बनना चाहिए।

—जीवन का चरम लक्ष्य जैसे-तैसे जीना नही है, बल्कि जीवन का प्रत्येक क्षण आनन्द के साथ व्यतीत करना है।

—ऋतुए इस बात की द्योतक हैं कि इस धरा पर सब कुछ परिवर्तनशील है।

—साधना के लिए हृदय की निर्मलता तथा त्याग और निर्भीकता की आवश्यकता होती है।

—जीवन का वास्तविक उद्देश्य अपने अन्तर में झांकना और अपने को निर्मल बनाना है।
—हम दूसरों को जीतने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु अपने को नहीं जीतते।
—सर्वोत्तम व्यापार वह है, जिसका अधिष्ठान सत्य होता है और जो अपने को ही नहीं, सबको लाभ पहुंचाता है।
—व्यक्ति का अन्तःकरण ज्यों-ज्यों निर्मल होता जाता है, उसका आनन्द बढ़ता जाता है।
—जो अपने को नहीं जानता, वह किसी को नहीं जानता।
—अधूरे मन से किया गया काम अधूरा ही रह जाता है।
—महानता के लिए हृदय की विशालता आवश्यक है।
—मृत्यु शत्रु नहीं, मित्र है, वह हमें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है।
—मनुष्यता के लिए बुद्धि और हृदय का सामंजस्य आवश्यक है।
—विज्ञान के साथ अध्यात्म का होना जरूरी है।
—विवाह में जितना आडम्बर और प्रदर्शन किया जाता है, उतनी ही उसकी गरिमा और पवित्रता कम हो जाती है।
—अपने दुःख का रोना रोने वाला अपने दुःख को घटाता नहीं, बढ़ाता है।
—कर्म तभी अकर्म बनता है, जब वह सहज बन जाता है और करने में फलासक्ति नहीं रहती।
—संकल्प करके बिना विशेष कारण के उसे छोड़ना बड़ा ही हानिकारक होता है।
—सबसे बड़ा ज्ञानी वह है, जो अनुभव करता है कि वह कुछ भी नहीं जानता।
— सेवा का अर्थ है बिना फल की इच्छा से दूसरों के काम आना, उनकी सहायता करना।
—जीवन में सत्संग का बड़ा महत्व है।
—पुस्तकालय सरस्वती के मंदिर होते हैं।
—सच्ची सम्पदा आदमी का चरित्र है।
—मौत से डरने वाला हर समय भयभीत रहता है।
—जो पढ़ते कम हैं, गुनते अधिक है, उनका जीवन उत्तरोत्तर समृद्ध होता जाता है।
—मौन का अर्थ मात्र वाणी का संयम नहीं है, मन का भी नियंत्रण है।
—प्रत्येक लिखित शब्द साहित्य नहीं होता।
—साहित्यकार का सबसे बड़ा दायित्व राष्ट्र-चेतना को जाग्रत करना है।
—सत्याग्रह में अनशन का महत्वपूर्ण स्थान है।
—सुख तो आत्मा की वस्तु है, वह अर्थ की साधना से नहीं, आत्मा की आराधना से प्राप्त होता है।
—अर्जन और विसर्जन दोनों का सामंजस्य समाज में संतुलन रखता है।
—स्वार्थी व्यक्ति परमार्थ की बात नहीं सोच सकता।
—वचन न देना उतना बुरा नहीं हैं, जितना वचन देकर उसका निर्वाह न करना।
—जिसका हृदय कठोर होता है, वह कभी संत नहीं हो सकता।
—रोगी का मनोबल जो काम करता है, वह चिकित्सा नहीं कर सकती।
— बुद्धिमानी इसी में है कि हम इंसान के भीतर बैठे असुर को नहीं, सुर को देखें।
—शराब पीने के बाद आदमी को भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता। इतना ही नहीं, शराबी के मन और शरीर से ऐसी तरंगे उठती हैं, जो आसपास के वातावरण को भी उद्वेलित कर देती हैं।

—महापुरुष वही है, जो प्रत्येक स्थिति में मानसिक संतुलन बनाए रहता है।

—अच्छा युग वही माना जाता है, जिसमे नीति का पलड़ा अनीति से भारी होता है।

—राजनीति की जबान बडी लम्बी होती है और उसके कान बहरे होते हैं।

—वृक्षो के साथ मानव-जीवन जुडा हुआ है। वृक्षो की रक्षा करने का अर्थ मानव-जीवन की रक्षा करना है।

—प्रभु का नाम लेना ही पर्याप्त नही है, उसके अनुरूप काम भी होना चाहिए।

—अतर के खालीपन से जीवन मे शून्यता आ जाती है।

—जिसमे धैर्य नही होता, उसकी नाव सदा भवर मे पडी रहती है।

—आनन्द की शक्ति असीम है।

—सुख से फूलना नही, दु ख से बिलखना नही।

—समुद्र की भाति आनद-जीवन मे भी लहरे उठा करती हैं। जो उनके सामने सिर झुका देता है, वह डूब जाता है, जो उनसे मुकाबला करना है, वह जीत जाता है।

—विनम्रता बहुत बडा गुण है। जो जितना विनम्र बनता है, उतना ही ऊचा उठता है।

—ज्ञान की छोटी-सी किरण भी अज्ञान के अन्धकार को दूर कर देती है।

—आसक्ति परिग्रह कहलाती है। धनासक्ति मनुष्य को छोटा और ओछा बना देती है।

—आणविक अस्त्र किसी के लिए लाभदायक नही हैं। मानवता का सहार करने वाला अन्ततोगत्वा अपना ही सहार करना है।

— कराह किसी की भी हो, मानव को चैन से नही रहने दे सकती।

—स्वतत्रता की रक्षा तभी हो सकती है, जबकि दूसरो की स्वतत्रता को पूरा आदर दिया जाय।

—प्रार्थना हृदय से की जाय तो अवश्य फलदायी होती है।

—ऋतु चक्र द्वारा प्रकृति मानव को उदात्त सदेश देती है। वह नवीनता की ओर सकेत करती है।

—दुनिया का सारा खेल मन से चलता है। मन का सयम अत्यावश्यक है।

— विनोदी व्यक्ति हर घडी फूल की तरह हल्का रहता है, लेकिन आवश्यक है कि विनोद शिष्ट हो।

—ज्ञान, भक्ति और कर्म के सामजस्य से बडे-से बडे काम हो जाते हैं।

—सबसे गरीब वह है, जिसमे भौतिक सम्पदा का अभिमान और कृतित्व का अहकार है।

—जिसके हृदय मे मलिनता है, वह कभी सच्चे प्रेम का आनन्द न स्वयं ले सकता है, न दूसरो को दे सकता है।

—जब किसी प्रश्न के आरम्भ मे दो और दो पाच कर दिये जाते हैं तो आगे का सारा प्रश्न गलत हो जाता है।

—जब हम छोटी गलती करते हैं और उसे सुधारते नही तो बडी गलती का रास्ता खोल देते हैं।

—चिन्ता और चिन्तन मे बडा अन्तर है। चिन्ता विवेक पर पर्दा डाल देती है, चिन्तन विवेक को जाग्रत कर देता है।

—जब हम दूसरे की ओर एक उगली उठाते हैं तो तीन उगलिया हमारी ओर सकेत करती हैं। वे कहती हैं, दूसरो की ओर देखने से पहले अपनी ओर देखो।

—अपने दैनिक स्वाध्याय के लिए हम ऐसा साहित्य रखें, जो हमे विचारों का नवनीत प्रदान करे।

—जब तक मतदाता अपने मत के वास्तविक मूल्य को नहीं समझेगा और उसका उपयोग नीति की

प्रतिष्ठा मे नही करेगा, तब तक भ्रष्टाचार दूर नहीं होगा।

—बुराई की जड़ सींचने से उस पर अच्छे फल नही आ सकते।

—व्यापार का घाटा आसानी से पूरा हो जाता है, लेकिन जीवन का घाटा सहज ही पूरा नहीं होता।

—लोकतंत्र लोकशक्ति और लोकनीति से बनता है, बिना लोक के वह मात्र तंत्र रह जाता है।

—भावना मार्ग दिखाती है। भावुकता भटकाती है।

—जो अपने को नही जानता, वह धर्म को कदापि नहीं जान सकता।

—कला का मूल उद्देश्य व्यक्ति को आनन्द देना और उसके जीवन को सुसंस्कृत बनाना है। जो कला ऐसा नही करती, वह चिरजीवी नहीं हो सकती।

—जो वस्तु हिंसा से प्राप्त हो जाती है, उसे रखने के लिए हिंसा की आवश्यकता होती है। हिंसा भय पर आधारित होती है और भय व्यक्ति को कायर बना देता है।

—सत्य के मार्ग पर चलने वाला कभी थकता नहीं। उसकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है।

—जीवन का मार्ग समतल नही है, उतार-चढ़ावो से भरा है। अधिकांश व्यक्ति इसे समझ नही पाते, इसलिए वे जीते नही, जीवन का भार ढोते हैं।

—आग से आग शान्त नहीं होती, बैर से बैर समाप्त नहीं होता, लालच से लालच नहीं मिटता, क्रोध से क्रोध को नही जीता जा सकता, झूठ को झूठ से नहीं दबाया जा सकता।

—जिसमें विनय और जिज्ञासा है। वह सबसे कुछ-न-कुछ सीख सकता है। जिसमें ये गुण नही, वह कुए के पास पहुंचकर भी प्यासा रहता है।

—स्वतंत्रता का अर्थ दूसरो पर शासन करना नहीं, अपने पर शासन करना है।

—यदि अन्तर की शुद्धता न हो तो बाह्य शुद्धता टिकती नही। वह बिना नींव के भवन की तरह है, जो जरा-सी देर मे धराशायी हो जाती है।

—शरीर मदिर है। आत्मा प्रभु कि मूर्त्ति है। जो इसे जानते हैं और मानते हैं, वे अपने शरीर को अपवित्र नही होने दे सकते।

—साहस के आगे पर्वत भी सिर झुका देते हैं।

— दोष-दर्शन अच्छा नही है। दूसरे के दोषो को देखना तो और भी बुरा है। इसान अपने दोषों को देखे और उन्हें दूर करें।

—जिसे दूर जाना है, उसे खूब चौकन्ना रहना चाहिए। तनिक-सी-असावधानी यात्रा मे बाधक बन जाती है। प्रमाद तो मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है।

—ईश्वर की आराधना करो, धन की नही। जो धन की आराधना करते हैं, वे ईश्वर से दूर हट जाते हैं।

—आदर्शविहीन व्यक्ति भटकता है। सामने लक्ष्य नहीं है तो आदमी पहुंचेगा कहां ?

—संसार धोखा दे सकता है, ईश्वर कभी धोखा नहीं दे सकता।

—जो शिक्षा स्वतत्रता की रक्षा नहीं करती, कर सकती, वह व्यर्थ है। शिक्षा का अर्थ ही है इन्सान को स्वतंत्र बनाना। 'सा विद्या विमुक्तये।'

—जो कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं, उनके शब्द खोखले होते हैं और उनका कर्म निकम्मा होता है।

—जो ईश्वर पर निर्भर करते हैं, उन्हें किसी दूसरे के सहारे की जरूरत नहीं पड़ती।

—पुरुषार्थ जीवन को बल प्रदान करता है, किन्तु वह विवेकपूर्ण होना चाहिए।

—बिना मूल के वृक्ष खडा नही रह सकता। बिना चरित्र के मानव-जीवन टिक नही सकती।
—जिस राजनीति मे नीति नही, वह बिना पतवार की नाव के समान है, कभी भी डूब सकती है।
—पुस्तकीय शिक्षा ज्ञान-वर्द्धन कर सकती है, लेकिन जीवन की शाला मे प्राप्त शिक्षा मनुष्य को सच्चे अर्थों मे शिक्षित करती है।
—सेवा के लिए त्यागी, परिश्रमशील तथा विनम्र होना अत्यन्त आवश्यक है। अहकारी व्यक्ति सेवक नही हो सकता।
—अशान्ति का मुख्य कारण दृष्टि का बहिर्मुखी होना है। हमारे अन्तर मे आनन्द का सागर लहराता है, पर उसे देखने के लिए अन्तर्मुखी होना अनिवार्य है।
—नियमित ध्यान से हृदय शुद्ध और चित्त-वृत्ति निर्मल बनती है।
—जो व्यक्ति अपने को उद्विग्न नही होने देता, वह दीर्घ जीवन प्राप्त करता है।
—कर्त्तव्य मे अधिकार छिपा है। कर्तव्य करो, अधिकार अपने आप मिल जाएगा।
—जो साहित्य जीवन की साधना से उपजता है, वह अमर होता है।
—परोपकार अच्छा है, पर वह परोपकार क्या, जो जीवन को अपग बना दे।
—मनुष्य को सबसे बडी हैरानी तर्कबुद्धि से होती है, क्योकि वह विपरीत मत को पसद नही करती। हमारी सच्ची कसौटी विरोध के समय ही होती है।
—जब हम प्रकृति की हद से अधिक उपेक्षा करते है तो वह कसकर बदला लेती है।
—जीवन और मृत्यु के बीच की रेखा बडी पतली है। मनुष्य कभी भी उसको लाघकर मृत्यु की गोद मे जा सकता है।
—प्रतिभा बधे-बधाये मार्ग पर नही चलती, वह नया मार्ग बनाती है। प्रतिभाशाली व्यक्ति इसी से वर्तमान मूल्यो तथा समाज को चुनौती देते दिखाई देते हैं।
—स्वार्थ मनुष्य के विवेक पर पर्दा डाल देता है। स्वार्थी व्यक्ति कभी न्यायपरायण नही हो सकता।
—सगीत जीवन के लिए अनिवार्य है। वह रस का सचार करता है, जीवन को समृद्ध करता है।
— प्रेम मे लेन-देन नही होता। प्रेम की बुनियाद निस्वार्थ त्याग पर रहती है।
— ईश्वर को मानें या न माने, पर काम उसीके करे अर्थात बुराई से सदा बचे।
—साहित्य की प्रेरणा का स्रोत मानव होना चाहिए। जो साहित्य मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा करेगा, वही चिरजीवी होगा।
—यह ससार कुए की भाति है। जब जैसे स्वर मे बालेंगे, वैसी ही प्रतिध्वनि होगी।
—सच्चे अर्थशास्त्र का नियम है कि हम किसी का शोषण न करे, न अपना होने दें।
— सर्वोत्तम शासन वह है जो दण्ड से नही, प्रेम से शासन करता है। वह अपने प्रति निर्दय और दूसरो के प्रति सदय रहता है।
—परिवार मे सौमनस्य के लिए हृदय की विशालता आवश्यक है। जहा हृदय सकीर्ण होता है, वहा घर बिखर जाता है।
—बुद्धिमानी अधिक-से-अधिक बोलने मे नही है। कम-से-कम शब्दो मे अधिक-से-अधिक बात कहने मे है।
—यदि हम छोटी-से-छोटी चीजो मे रस लेना सीख लें तो बडी चीजें अपने-आप मधुर हो उठेंगी।

—मनुष्य का शत्रु और मित्र वह स्वय है। बाहर की शत्रुता और मित्रता उसके अन्तर की प्रतिच्छवि है।

—श्रद्धा और बुद्धि मे सदा झगडा रहता है। जहां दोनो मे मेल होता है, वहां सोने मे सुहागा की कहावत चरितार्थ होती है।

—पक्षी के पंख काट देने से वह उड़ नहीं सकता, उसी प्रकार लेखक की स्वाधीनता छीन लेने पर उसकी प्रतिभा उड़ान नही ले सकती।

—जो व्यक्ति जीवन के मधुर क्षणों को याद रखता है, वह बहुत-से मानसिक विकारों से बच जाता है।

—स्त्री को समझना बडा कठिन है। उसके अन्दर कई व्यक्तित्व होते हैं और यह कहना आसान नहीं कि कब कौन-सा व्यक्तित्व मुखर होगा।

—जो कोल्हू के बैल की तरह काम मे जुटे रहते हैं, वे कोई सृजनात्मक कार्य नही कर पाते। सृजनात्मक कार्यों के लिए मन का मुक्त होना आवश्यक है।

— मनुष्य के कई रूप होते हैं। जिस रूप को दुनिया देखकर सराहती है, प्राय वह उसका असली रूप नही होता।

— भौतिक आकांक्षा व्यक्ति को सक्रिय रखती है, लेकिन वह उसे भटकाती भी है।

—व्यक्ति की हर घडी परीक्षा होती है। जो सतत जागरूक रहता है, वही उस परीक्षा मे सफल होता है।

—स्त्री की बडी उपयोगिता है। वह आदमी की बुराइयो को झेल लेती है, जिससे आदमी दूसरो के लिए अच्छा बन जाय।

—मौन की भाषा बडी प्रखर होती है, पर हम बोल-बोलकर उसकी प्रखरता को मद कर देते हैं।

—अपनी भूलो को हम निरन्तर देखते रहें तो एक दिन उनसे अवश्य मुक्त हो जाएगे।

—कर्मठ व्यक्ति कभी निष्क्रिय नही हो सकता। उसके लिए कर्म साधना है और साधना के बिना उसके जीवन की गति नही।

—काम को व्यवस्थित रूप से किया जाय तो वह भारी नही पडता।

—जब भय होता है तो व्यक्ति का मन सतुलित नही रहता। वह बहुत कुछ व्यर्थ की बातें करता है।

—विकार मनुष्य की सकल्प-शक्ति को क्षीण और उसकी विवेक-बुद्धि को नष्ट कर देते हैं।

—आलोचना रचनात्मक हो तो उससे लाभ होता है। दुर्भाव न होने के कारण दूसरो पर उसका प्रभाव भी पडता है।

—एक व्यक्ति के पीछे दौडना तानाशाही को जन्म देना है। लोकतत्र की सफलता के लिए प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान होना चाहिए।

—अहिंसा के पीछे तेजस्विता न हो तो वह बेमानी है। बिना तेजस्विता के अहिंसा कायरता के समान है

—बच्चो की-सी निश्छलता बडों मे आ जाय तो दुनिया के बहुत-से प्रपच दूर हो जाय।

—तनहाई को योगी सहन कर सकता है। सामान्य व्यक्ति को तो वह पागल बना देती है।

—जीवन के उदात्त क्षणो का जो उपयोग कर लेता है, वह धन्य हो जाता है।

—हमारा चेहरा जैसा होता है, आईने मे वैसी ही आकृति उभरती है। ससार भी हमे वैसा ही दीखता है, जैसे हम हैं।

योगी और भोगी

किसी ने पूछा—
भोग और योग मे
अतर क्या है ?
सत ने उत्तर दिया—
वही जो होता है
पशु और इसान मे।

जब ज्ञान, भक्ति और कर्म मे
सामजस्य होता है,
योग साधित होता है।
वह सूत्र जब टूट जाता है तो
भोग फलित होता है।

फिर प्रश्न हुआ—
योगी और भोगी की
पहचान क्या है ?
जवाब मिला—
योगी हर घडी जागता है,
भोगी हर घडी सोता है।

१२ जनवरी, १९८१

शहीदों के स्मारक पर

['चित्रकला संगम' का एक प्रतिनिधि-मण्डल स्व. लालबहादुर शास्त्री की एक विशाल प्रतिमा ताशकंद में उस स्थान पर प्रतिष्ठापित कराने ले गया था, जहां उनका आकस्मिक निधन हुआ था। समारोह के उपरान्त प्रतिनिधि-मण्डल ने समरकन्द की यात्रा की और नगर के निकट ज्दानोव कोलखोज[1] पर उन शहीदों के स्मारक पर श्रद्धांजलि अर्पित की, जिन्होंने द्वितीय महायुद्ध के समय अपने देश की रक्षा करते हुए अपने प्राण निछावर कर दिये थे। इस ऐतिहासिक स्मारक का उद्‌घाटन प्रतिनिधि-मण्डल के वहां जाने से दो दिन पहले अर्थात १५ फरवरी, १९६८ को उजबेकिस्तान की राष्ट्रपति नामदार नासिरुद्दीनोवा ने किया था। यह कविता वहीं पर लिखी गई थी। —लेखक]

ज्दानोव कोल खोज की
इस निर्जन, बियाबान भूमि पर
यह क्या है
जो
उजबेकिस्तान के आबाल-वृद्ध के लिए
प्रेरणा का अक्षय स्रोत है
परम वदनीय है ?

यहा तैमूर के भव्य भवन नहीं,
नगर की चमक नहीं,
सत्ता की दमक नही,
फिर क्या है, जिसके आगे
सजल नेत्र, श्रद्धा-विनत
राष्ट्रपति मूक खडी हैं ?

दूर पास से सहस्रो नर-नारी
यहा क्यो एकत्र हुए हैं ?
उनके दिलो मे भावना का सागर उमड रहा है,
पर उनकी वाणी सहसा
क्यो अवरुद्ध हो गई है ?

यह वह पुण्यभूमि है,
जिसकी गोद में उसके वे सपूत सोते हैं,
जिन्होंने अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए,

---

१ सामूहिक खेत अर्थात् गांव

उसके गौरव की प्रतिष्ठा के लिए,
अपने प्राणो को भी
हसते-हसते निछावर कर दिया,
और
आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए
इतिहास के पटल पर अपने लहू से मानो लिख दिया,
"देश है तो हम हैं,
देश नही तो
हमारे अस्तित्व का भी कोई मूल्य नही।"

सपूतो का बलिदान फलीभूत हुआ,
मातृभमि का मस्तक ऊचा हुआ
गौरव अक्षुण्ण रहा,
आक्राता पराभूत हुआ।

"गुर-अमीर"[1] की नीली गुम्बदो और
बीबी खानिम की मस्जिद[2] की पच्चीकारी,
"शाही जिंदा"[3] के भवनो की नक्काशी
'रेगिस्तान चौक"[4] की मीनारो की कारीगरी—
सबकी स्मृति एक दिन धूमिल पड जायगी,
पर शहीदो की इस यादगार की प्रेरणा
जन-जन के दिल मे सदा ताजी रहेगी।

(उदानोव कालखोज (समरकद)
१७ फरवरी १९६८)

---

१ इस मकबरे मे तैमूरलग तथा उलुक बेग आदि की समाधियां है।

२ तैमूरलग की सबसे सुन्दर बीबी की स्मति मे निर्मित।

३ इसमें शाही खानदान के लोगो तथा सेनापतियों आदि के मकबरे और मसजिदें हैं।

४ ये तीन मदरसे हैं, जो कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

दिशाहीनता

मेरे प्रियजन खो गये हैं,
मैं हैरान हू।
वे कलकत्ते से चले थे,
उन्हें दिल्ली आना था,
पर वे बैठ गये
बम्बई की गाडी मे।
कितना समय बीत गया है,
वे दिल्ली नहीं पहुचे।
पहुचेंगे भी कैसे ?
भटकते-भटकते वे अब
अपना गतव्य भी भूल गये हैं।
भले ही कोई उनको
कितनी भी प्रतीक्षा करे,
वे दिल्ली नही पहुचेंगे,
कभी नहीं पहुचेंगे।
अपनी मजिल पर पहुचने के लिए
उसी ओर मुह रखना और
चलना होता है।

१५ अगस्त, १९८४

चरैवेति-चरैवेति

सोना चाहते हो ? खूब सोओ।
समय आखिर गुजरने को है,
खूब खोओ।
आराम से बढ़कर दुनिया मे और है क्या ?
क्यो, यही तो तुम मानते हो ?

लेकिन दोस्त, एक बात याद रखना—
जो क्षण चले जाते हैं,

वे वापस नही आते हैं।
यह भी ध्यान रखना—
जो बैठते हैं, उनका भाग्य बैठता है,
जो सोते हैं, उनका सौभाग्य सोता है।

इसान इसीलिए है कि वह चले,
जो चलता है, उसी की किस्मत आगे बढ़ती है,
जहा गति है, वही प्रगति है।

तभी तो हमारे उपनिषद्कार ने कहा है—
"चरैवेति-चरैवेति"—
चलते रहो, चलते रहो।

१० जनवरी, १९६५

मानव के दो रूप

जब मनुष्य के दिल मे दर्द होता है,
उसकी आखो मे आसू छलक आते हैं।
यह स्वाभाविक है,
क्योकि मनुष्य फूल के समान कोमल है।

पर इस दुनिया मे ऐसे लोग भी हैं,
जिनके दिल मे भयकर पीडा होती है,
लेकिन उनकी आखें कभी गीली नही होती।
यह भी स्वाभाविक है,
क्योकि मनुष्य वज्र के समान कठोर है।

२१ अप्रैल, १९७२

स्वराज्य का अर्थ

स्वराज्य का अर्थ अब
कुछ और हो गया है।
गांधी का दिया अर्थ आज
बिसर गया है।
गाधी ने कहा था --
"स्वराज्य का अर्थ है
अपने पर राज्य, आत्म-सयम।
जो अपने पर राज्य करता है,
वही दूसरों पर शासन का
अधिकार रखता है।"

किन्तु राजनेता
इस अर्थ को कैसे स्वीकार करे ?
वह जानता है, जो
अपने पर शासन करता है,
वह दूसरो पर शासन नही कर सकता।

२६ जनवरी, १९८४

'दिनकर' के निधन पर

मेरे प्यारे बधु, छोड दी
तुमने अपनी काया ऐसे,
खेल-खेल मे बालक कोई
फेंक खिलौना देता जैसे।

हुआ बताओ ऐसा क्या जो
तुमने सबसे नाता तोडा,
स्वजन और परिजन सबसे ही,
क्षण भर मे अपना मुह मोडा ?

माना मोह न था जगती से
और विमुख थे तुम जीवन से,
लेकिन जो थी सास तुम्हारी,
त्याग सके तुम उसको कैसे ?

जुड़ी हुई थी कविता तुमसे
जैसे प्राण जुड़े जीवन से,
उस चिरसगिन को बोलो, तुम
छोड सके पल भर मे कैसे ?

लिया सहारा नही किसी का,
चले सदा ऊचा सिर रखकर,
पाई तुमने कीर्ति अनोखी
अपने पैरो के बल चलकर।

क्या था जो कि न पाया तुमने,
वैभव मे पर रहे कमलवत्,
वाणी और लेखनी से तुम
देते रहे प्रेरणा अद्भुत।

कविवर, कौन भूल पायेगा
करते रहे पान तुम विष का,
पर भर-भर हाथो करते तुम
रहे दान सबको अमृत का।

अमर रहोगे सदा बधुवर,
अमर रहेगा काव्य तुम्हारा,
और गूजता नित्य रहेगा
युगो-युगो तक मान तुम्हारा।

२५ अप्रैल, १९७४

ओ वर्धमान, ओ महावीर

ओ वर्धमान, ओ महावीर !
हम कैसे अर्चन करें ?

तुम महाशक्ति के पुंज
और हम शक्तिहीन,
तुम महाक्रांति के स्वरदाता
हम क्रांति-हीन,
कैसे वंदन करें ?

तुम राजपाट को त्याग
चल पड़े तप करने,
हम धन-वैभव को लक्ष्य बना
हैं जुटे रात-दिन घर भरने,
कैसे सुमिरन करें ?

तुम अनेकांत के पथ-दर्शक
समता के पोषणकर्ता,
हम मताग्रही, विग्रह-सेवी,
हैं बने हुए शोषणकर्ता,
कैसे नमन करें ?

तुम कहते, "जीओ-जीने दो
सबको समझो अपने समान,"
हम इच्छुक अपने जीने के
है हमें स्वार्थ का सतत ध्यान,
कैसे पूजन करें ?

हैं दर्शन की महिमा अपनी
है ज्ञान बहुत ही हितकारी,
पर बिना चरित्र नहीं होता

जग में कुछ भी है गुणकारी।
हम इस पर चित्त धरें,
ऐसे आराधन करें ?

हम भले तुम्हारी जय बोलें
पर बन पायेगा क्या उससे ?
अनुसरण अपेक्षित उस पथ का,
हो बने वीर प्रभु तुम जिससे।
अपने को अर्पित करें।
ऐसे अर्चन करें।

२२ मई, १९७४
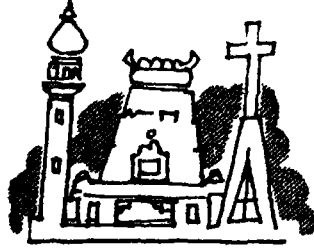
प्रत्येक व्यक्ति अपनी जन्म-भूमि के प्रति गहरी आत्मीयता रखता है। यशपालजी का जन्म ब्रज मे हुआ। उनके हृदय मे ब्रज की संस्कृति, कला, साहित्य, धर्म, अध्यात्म आदि के लिए विशेष स्थान है। इसी को ध्यान मे रखकर इस खण्ड की सामग्री का चयन किया गया है। इसे पढ़कर पता चलता है कि विभिन्न दृष्टियो से ब्रज-भूमि कितनी महान है। उसकी महानता का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उसने अनेक क्षेत्रो की अद्वितीय विभूतिया को जन्म दिया है।

जननी जन्म भूमिश्च

ब्रजभूमि का महत्व

(डा) कैलाशचन्द्र भाटिया

□□

'ब्रज' वस्तुत संस्कृत तत्सम रूप 'व्रज' का तद्भव रूप है, जो संस्कृत भाषा की धातु 'व्रज्' (जाना) से निर्मित हुआ है। 'व्रज' शब्द का प्रथम-प्रथम प्रयोग ऋग्वेद संहिता (३८/८, ३५/४, ४/२) मे अनेक स्थानो पर हुआ है, लेकिन इन सभी स्थलो पर इसका प्रयोग ढोरो के चरागाह या पशुसमूह व उसके बाडे के अर्थ मे किया गया है। वेदो मे 'गोष्ठ' के अर्थ मे प्रयुक्त शब्द 'ब्रज' ही (गाव उष्णमिव व्रजऋक् १०/४/२) आगे चलकर पुराण काल मे भू-भूमिवाचक बन गया। प्राचीन काल मे भारत के जिस मध्यभाग को ब्रह्मर्षि देश, मथुरा मण्डल या शूरसेन प्रदेश कहा गया है वही वस्तुत आज का 'ब्रज' है। रामायण-महाभारत काल तक भी यह देशवाचक नही बन पाया। प्राचीन बौद्ध साहित्य मे 'वृजि' कुछ देशवासियो के नाम के अर्थ मे जरूर मिलता है। डा सत्येन्द्र ने 'ब्रज और ब्रजयात्रा' के अन्तर्गत अपने लेख 'ब्रजभूमि और नामकरण' मे लिखा है, "बौद्धकाल मे यह प्रदेश एक विशाल भू-भाग के रूप मे 'मज्झिम देश' या मध्यदेश' कहलाता था। इस विशाल मज्झिम देश मे नौ महाजनपद थे। मत्स्य और शूरसेन जनपद इसके अन्तर्गत ही आते थे। डा सत्येन्द्र ने इसके नामकरण मे एक पौराणिक गाथा की ओर भी संकेत किया पुराणो मे विरजा को राधा की सखी माना गया है। कृष्ण के अपने लोक मे कृष्ण और राधा नित्यप्रति विहार करते थे। एक दिन राधा कुछ देर के लिए कही चली गयी कृष्ण आये तो राधा की सखी के साथ विहार करने लगे। इसी बीच राधा आ गयी। जैसे ही राधा के आने की आहट कृष्ण को मिली वे अन्तर्धान हो गये। भय से विरजा सरिता के रूप मे परिणत होकर गोलोक मे विचरण करने लगी। यही 'विरजा' 'यमुना' है, उन्ही का क्षेत्र 'विरज' अथवा 'ब्रज' है।"

हरिवश तथा भागवत पुराण मे इस शब्द का प्रयोग कृष्ण के पिता नन्द के मथुरा निकटस्थ व्रज अर्थात् गोष्ठ विशेष की भूमि के लिए होने लगा (हरिवश-विष्णु पर्व- ९/३, ६, १८, १६, ३० तथा २२/३४) प्रकारान्तर से 'गोकुल' के पर्याय के रूप मे 'ब्रज' का प्रयोग किया जाने लगा—

क्षेम्य प्रचारबहुल हृष्टपुष्टजनावृत
दामनीप्रायबहुल गर्गरोद्गारनिस्वनु
तक्रनिस्रावबहुल दधि मण्डार्द्रमृत्तिक
मन्थानवलयोद्गारै गोपीना जनितस्वन (हरिवश पुराण)

श्रीमद्भागवत मे तो श्रीकृष्ण के सन्दभ मे (पिता का घर—व्रज) 'व्रज' का प्रयोग मिलता है (कस्मान् मुकुन्दो भगवान पितुर्गृहाद् व्रज गत)

—श्रीमद्भागवत १०/१/८

इसके अतिरिक्त भी भागवत मे (१०/१/६६, १०/२/१) 'व्रज' का प्रयोग मिलता है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मे 'व्रज' का तद्भव रूप 'ब्रज' या 'बृज' का प्रचलन उस भूमि-भाग के लिए किया जाने लगा होगा जो मथुरा के चारो ओर रहा।

इसी क्षेत्र को 'चौरासी कोस' की सज्ञा दे दी गई। इसकी सीमाओ का उल्लेख इस प्रकार मिलता है।

पूर्वेहास्पवन नीय पश्चिमस्यापहारिक।
दक्षिणे जहनुसज्ञाक भुवनाख्य तथोत्तरे ।।

पूव दिशा मे	—	हास्यवन
पश्चिम दिशा मे	—	अपहारवन
दक्षिण दिशा मे	—	जह्नुवन
उत्तर दिशा मे	—	भुवनवन

यहा यह उल्लेखनीय है कि ये सभी स्थान मथुरा से लगभग समान दूरी—इक्कीस कोस पर स्थित हैं इस सीमा का ही ब्रज भाषा मे प्रचलन हुआ।

इत बरहद इत सोनहद उत सूरसेन का गाव।
ब्रज चौरासी कोस मे मथुरा मण्डल माह ।।

हास्यवन	—	बरहद
अपहारवन	—	सोन (गुडगाव)
जह्नु	—	सूरसेन का गांव—बटेश्वर
भुवनवन	—	शेरगढ के समीप—भूखनबन

पुराण काल से ही ब्रजभूमि का महत्व प्रतिपादित किया जाने लगा। पद्म-पुराण मे स्पस्ट उल्लेख मिलता है कि त्रैलोक्य के मध्य मे स्थित यह पृथ्वी धन्य है और बहुविश्रुन है और यही विष्णु भगवान् का अति प्यारा मथुरा नामक स्थान है। यह मेरा स्थान है और मैं इस मथुरा मडल की आराधना करता हू। इसका परिमाण-विष्णुचक्र के जितना है और वैष्णवो का अद्भुत धाम है।

तस्मात्त्रैलोक्यमध्येतु पृथ्वी धन्येति विश्रुता।
यस्मान्माथुरकेनाम विष्णोरकातवल्लभम्।
स्वस्थानमधिक नाम ध्येय माथुरमडलम्।
विष्णुचक्रपरिमाणद्धाम वैष्णवद्मभुतम्। (५८३/श्लोक १२-१३)

आगे कहा गया।

अहो न जानति नरादुराशया पुरी मदीया परमासनातनीम्
सुरेन्द्र नागेन्द्र मुनीन्द्र सस्तुता मनोरमा ता मथुरा सनातनीम्।

(इतनी महात्म्य वाली सनातन मेरी पुरी को दुराशयी लोग नही जानते। वे नहीं समझते कि सनातनी मनोरमा मथुरा पुरी की स्तुति इन्द्र, शेष और मुनीन्द्रगण तक करते हैं)

इस भूमि को ही 'कृष्ण बलराम की लीला भूमि' से अभिहित किया गया।

कदबमूल आसीन पीतवासमद्भुतम्।
वन वृन्दावन नाम नवपल्लव मडितम्।
कोकिलभ्रमराराब मनोभव मनोहरम्।
नदीमपश्य कालिंदीमिंदीवरधरप्रभाम्।
गोवर्धन तथापश्य कृष्णराम करोद्धतम्।
महेन्द्रदर्पनाशाय गोगोपालसुखावहम्। (पद्मपुराण, १६-२०)

मथुरा मे नवपल्लवो से मडित वृन्दावन नाम का प्रसिद्ध वन है। इसमे कदब की एक डाल पर पीतांबरधारी श्रीकृष्ण विराजमान रहते हैं। इस वन मे कोकिला और मोरा मनोहर स्वरो मे चहचहाया करते हैं। पास ही कमलदलो से सुशोभित कालिंदी प्रवाहित होती दीख पडती है और इसके अनन्तर कृष्ण बलराम की इहलोक लीला का साक्षी गोवर्धन पर्वत भी इस मडल मे विद्यमान है श्रीकृष्ण ने महेन्द्र (इन्द्र) के गर्व को खर्व किया था और गो तथा गोपालको को सुख समृद्धि दी।

वराह पुराण मे सर्वाधिक विस्तृत रूप मे लिखा गया कि "मुझे इस वसुधरा मे पाताल और अतरिक्ष से भी प्रिय मथुरा है।" उसको अपना मडल माना गया।

सा रम्या च सुशस्ता च जन्मभूमिस्तथा मम माथुर मममडलम् (श्लोक १७)

गरुडपुराण मे कहा गया है कि सात मोक्षदायिनी पुरियो मे से एक मथुरा है

अयोध्या मथुरा माया काशी काची अवतिका
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायका।

विष्णुपुराण मे वृन्दावन को गोविन्द भगवान् का आवास कहा गया है। यह भी उल्लेख मिलता है कि वृन्दावन मे अधिकतर कदब के वृक्ष होते हैं।

कम्बोडिया के प्राचीन अभिलेख मे उल्लेख मिलता है कि कालिन्दी नदी के तट पर बसे हुए उस मथुरा नगर मे ऋग्वेद, यजुर्वेद, तथा सामवेद की विद्या के अनुसार हजार श्रेष्ठ ब्राह्मणो द्वारा यज्ञो मे वेद पाठ होते थे। इसी मथुरा नगर मे काले सर्प का मर्दन करने वाले तथा दैत्यकुल का बिनाश करने वाले श्रीकृष्ण ने बाल लीलाए की थी।

प्रकारान्तर से ब्रजमडल (मथुरा) की सस्कृति ने ही अखिल भारतीय सस्कृति के गौरव की वृद्धि करते हुए उसको पूर्णता प्रदान की। समस्त भारत की विराट् सस्कृति की उन्नति व समृद्धि मे अपना विशेष योग दिया। यही ब्रजभूमि का सर्वाधिक महत्व है।

ब्रजभूमि मे पहाड, मैदान, वन, जलाशय आदि है। प्रकृति के वैभव से भरपूर, ब्रजभूमि सर्वाधिक प्रियभूमि रही। भारत के सार्वभौमस्वरूप के दर्शन यहा होते हैं। समन्वयात्मक स्वरूप पग-पग पर दृष्टिगत होता है। यह वह भूमि है, जहा गिरिराज शोभायमान है।

ललित ब्रजदेश गिरिराज राजै।
त्रिविध पौन सचारै, सुखद झरना झरै, ललित सौरभ सरस मधुप गाजै।
ललित तरु फूल फल फलित षट् रितु सदा चतुर्भुजदास गिरिधर समाजै।

ब्रजभूमि का महत्व बौद्धिक न होकर, भावात्मक है, प्रेरणास्पद तथा रचनात्मक है। साहित्य और

कलाओ के विकास के लिए यह उपयुक्त स्थली है। यही कारण है कि सगीत, नृत्य एवं अभिनय तो ब्रज सस्कृति के प्राण हैं। हृदय तत्व की अधिक प्रधानता है क्योंकि यही तो प्रिया और प्रियतम-राधा और कृष्ण-ब्रह्माड के अथ और इति ने लीलाए की। कृष्ण प्रिया यमुना इस माटी को दो कुल प्रदान करती है और सपूर्ण प्रदेश हरा-भरा दृष्टिगत होता है। हरियाली ही कृषि-प्रधान देश भारत में सम्पन्नता का प्रतीक है। आर्थिक दृष्टि से भी यह प्रदेश सम्पन्न रहा होगा। फिर राधाकृष्ण की इस क्रीडा स्थली की ओर क्यो न पठान रसखान मोहित होकर कहते।

मानुष हौ तो वही रसखान बसौ मित गौकुल गाम के ग्वारन।
पाहन हौं तो वही गिरि कौ, जो कियौ हरिछत्र पुरदर धारन।

यही त्याग, तपस्या और आत्माहुति की भावना ब्रज के महत्व को द्विगुणित कर देती है। सक्षेप मे ब्रज के महत्व के पीछे कारण है।

१ सरल स्वाभाविक और उल्लासपूर्ण जीवनचर्या।
२ उत्सव, त्यौहार, के माध्यम से कला-सस्कृति की सुरक्षा।
३ त्याग की भावना।
४ देश प्रेम की भावना।
५ गो सेवा।

और सर्वोपरि है, वन-वैभव का महत्व जिसकी ओर अब पुन पर्यावरण के सदर्भ मे ध्यान दिया जा रहा है। मन, बुद्धि तथा शरीर की क्रियाओ मे सन्तुलन प्रकृति के सान्निध्य मे प्राप्त होता है। नगरीकरण की प्रक्रिया ने सर्वाधिक हानि वनो को पहुचायी है। जहा ब्रज मे स्थान-स्थान पर कदम्ब खण्डी का उल्लेख मिलता है वहा अब यत्र-यत्र कदम्ब के वृक्ष दृष्टिगत होते है। पर्यावरण सबधी आधुनिक दृष्टि ब्रज मे आदि काल से विद्यमान रही है।

कालिन्दी के कमनीय-कूल पर कमलाकान्त कृष्ण और उनके द्वारा पूजित गोवर्द्धन प्रकृति के महत्व को प्रतिपादित करते हैं।

ब्रज के महत्व को प्रतिपादित करते हुए महाराज नागरीदास द्वारा रचित पद द्रष्टव्य है

हम ब्रजसुखी ब्रज के जीव
प्रान तन मन नैन सर्वसु राधिका कौ पीव ।।
कहां आनन्द मुक्ति मे ये कहा केलि विधान।
कहा ललित निकुज लीला मुरलिका कल गान ।।
कहा पूरन सरद रजनी जौन्ह जगमग जोत।
कहा नूपुर बीन धुनि मिलि रासमडल होत ।।
कहा पाति कदम्ब को झुकि रही जमुना बीच।
कहा रग विहार फागुन मचत केसरि कीच ।।
कहा गह्वर विपिन मे तिय रोकिबौ मिस दान।
कहां गोधन मध्य मोहन चिकुर रज लपटानि ।।
कहा लगर सूखा मोहन कहां उनकी हास।
कहा गोरस छाछ टैंटी डाक विपिन विलास ।।

और ठौर न कहू, ये सुख बिना ब्रज इहि ग्राम।
दास नागर धोष तजि यहँ मोक्ष सौं बे काम ।।

आधुनिक काल के ब्रजकोकिल श्री सत्यनारायण कविरत्न ने अपने भाव भी इसी स्वर मे व्यक्त किए

भुवन विदित यह जदपि चारु, भारत भुवि पावन।
पै रस पूर्ण कमडल, ब्रज मण्डल मन भावन ।।
प्रकृति पुन्यमय, प्रकृति छटा जहँ विधि विथुराई।
जग सुर मुनिवर मजु तासु जानत सुघराई ।।
तहं सुधि सरल स्वभाव, रुचिर मुनिगन के रासी।
भोरे भोरे बसत, नेह विकसित ब्रजवासी ।।

जिस ब्रजभूमि को श्री भट्ट ने 'मोहिनी' स्वीकार किया, जिस ब्रजभूमि मे धेनु रूप धारण कर ब्रह्मानन्द प्राप्त तपस्वी आनन्द लाभ करते हैं, जिस भूमि मे सभी हृष्ट-पुष्ट हैं और मक्खन दही दुहने की ध्वनि सुनायी देती है। (ब्रजेषु च विशेषेण गर्गरोद्गार हासिषु) उसका महत्व इससे ही सिद्ध हो जाता है कि जीव मुक्ति न चाहकर जन्म-जन्मान्तर तक यहीं बसना चाहता है

जनम जनम दीजो मोहि याही ब्रज बसिबौ।

ब्रज भाषा की नींव, शक्ति और सम्भावनाएं

(डा) मलखान सिंह सिसौदिया

□□

भारतीय साहित्य भाषाओ के विकास क्रम मे सस्कृत, पाली, प्राकृत अपभ्र श के बाद उत्तर भारत मे ब्रज भाषा ने स्थान ग्रहण किया। यह भाषा शौरसेनी अपभ्र शो के मध्यवर्ती रूप से विकसित हुई थी। ब्रज भाषा का साहित्य भाषा के रूप मे अपभ्र श का उत्तराधिकार ग्रहण करना मात्र सयोग नही है, प्रत्युत इसके ऐतिहासिक, धार्मिक एव सामाजिक कारण हैं। मध्य काल मे पजाब, राजस्थान वर्तमान मध्य प्रदेश एव उत्तर प्रदेश बाह्य आक्रमणो, सघर्षों एवं उथल-पुथल के क्षेत्र रहें हैं। इस प्रकार की राजनीतिक परिस्थितियो मे देश-वासियो मे स्वभावत दो प्रकार के मनोभावो का जन्म हुआ, एक सशस्त्र प्रतिरोध का मनोभाव था और दूसरा अलौकिक शक्ति पर आश्रित रहने का मनोभाव। यह दोनों ही आत्म-रक्षा के मूल भाव के दो रूप थे। प्रथम मनोभाव ने भक्ति साहित्य मे वीर-गाथाओं मे अभिव्यक्ति पाई तो द्वितीय ने भक्ति साहित्य में। वीरगाथाओं के उपरान्त भक्ति साहित्य की रचना मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है। मानव पहले अपने

पौरुष और बाहुबल से सकटो का सामना करता है, किन्तु जब उसका पौरुष थक जाता है और बाहुबल व्यर्थ हो जाता है तो फिर वह सर्व शक्तिमान की शरण मे आता है। बाहरी आक्रान्ताओ के समक्ष भारतीय नरेश एक-एक पराजित होते चले गए। परिणामस्वरूप देशवासियो का नैराश्यावस्था में विरक्ति भाव से ग्रस्त होना अथवा ईश्वरोन्मुख होना स्वाभाविक ही था। इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य के आधार पर हिन्दी साहित्य मे वीर गाथा काल और भक्ति काल का पूर्वापर सम्बन्ध है। वस्तुत ये दो काल उल्लिखित मन स्थितियो का मनोवैज्ञानिक क्रमानुसार प्रतिनिधित्व करते हैं।

उपर्युक्त परिस्थितियो और मन स्थितियो मे ब्रज भाषा का साहित्य भाषा का स्थान लेना सकारण है। प्रथम तो वह सघर्ष क्षेत्रों के हृदयप्रदेश मे बोली जाने वाली पुरानी हिन्दी के रूप मे जन भाषा थी अत अपभ्र श के रचना काल मे हिन्दी की आदिकालीन रचनाओ मे प्रारम्भिक हिन्दी का जो रूप मिलता है, उसमे ब्रज भाषा रूपो का प्रयोग है। यह प्रयोग धार्मिक रचनाओ, वीर काव्यो एव शृगार रस की रचनाओं, सभी मे किसी-न-किसी रूप मे मिलता है। 'रासो' साहित्य के वीर काव्यो मे प्रयुक्त डिंगल और पिंगल शैलियो मे से पिंगल शैली धीरे-धीरे लोकप्रियता प्राप्त करती गयी और अन्तत पन्द्रहवीं शताब्दी मे उसका ब्रज भाषा मे रूपान्तरण हो गया। यह पृथ्वीराज रासो मे विशेष रूप से दृष्टव्य है जिसकी भाषा प्राधनतया ब्रजभाषा है। उसमे ओजपूर्ण शैली के अलकरण के लिये प्राकृत अथवा प्राकृताभास रूप मिश्रित कर दिये गये हैं। यह भाषा मध्यकालीन ब्रजभाषा है। बीसलदेव रासो मे ब्रज एव राजस्थानी-गुजराती की तुक प्रवृत्तिया साथ-साथ चलती है। इसी प्रकार लोकसाहित्य की रचना बसन्तविलास की भाषा, जिसका काल ईस्वी तेरहवी शती माना जाता है, पिंगल अलकार आक्रान्त ब्रजभाषा मे रूपान्तरित होती हुई प्रतीत होती है जिसका पूर्ण विकास रीतिकालीन अलकार प्रियता मे मिलता है। यह कृति एक अत्यन्त सरस काव्य है जिसमे चौरासी दोहो मे प्रकृति और नारी का शृगारमय वर्णन है। वस्तुत डिंगल शैली मे जहा ककश शब्दो का प्रयोग वीरभावो की अभिव्यजना के लिए किया जाता था, वहा पिंगल शैली मे कोमल भावो की अभि-व्यजना के लिए कोमल शब्दो का प्रयोग किया जाता था। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे कोमल शब्दावली का विकास होने लगा। लोक साहित्य के अन्तर्गत ही ग्यारहवी शती मे रचित 'ढोला मारूरा दूहा' दोहो मे रचित शृगार काव्य है। यहां से दोहों मे वियोग और सयोग शृगार के वर्णन की परम्परा आरम्भ होती है। जिसका विकास आगे चलकर बिहारी के दोहो मे हुआ। दोहा-बध का ब्रजभाषा साहित्य के आदिकाल मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह अपभ्र श का मुख्य छद माना गया है। और ब्रजभाषा को शौरशैनो की अपभ्र श से उत्तराधिकार मे प्राप्त हुआ है। दोहा मे रचना करने वालो मे प्रथम नाम सरहपा सिद्ध का आता है जिनके एक ग्रन्थ का नाम दोहा कोष है। उनके पश्चात् दशवी शती के कवि देवसेन ने दोहो मे रचना की। उन्होंने धार्मिकतापूर्ण उपदेशात्मक दोहे लिखे हैं। इसके बाद जैनाचार्य हेमचन्द सूरि रचित व्याकरण मे दोहो के उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार यह दोहो की परम्परा प्राकृत पैंगलम, सन्देश, रासक और जैनो तथा सन्तो की साखियो से होती हुई रीतिकाल मे बिहारी तक जा पहुची।

ग्यारहवी शती की शिलाकित गद्य रचना रोडाकृत राउलवेल मे—जो चम्पू है—नख शिख वर्णन की शृगार परम्परा का आरम्भ होता है। उसमे अपभ्र शोत्तर आठ बोलियो के शब्द मिलते है जिनमे ब्रजभाषा रूप भी हैं। छदशास्त्र के ग्रथ प्राकृत पैंगलम मे, जिसमे सकलित पद्य बारहवी से चौदहवी शती तक का प्रतिनिधित्व करते हैं, ध्वनि, रूप और वाक्य विन्यास की दृष्टियो से प्राचीन ब्रजभाषा के प्रयोगो की बहुलता है। गोरखनाथ की बानी मे, जिसका समय विवादग्रस्त है (सातवीं से बारहवी शती तक, ब्रजभाषा का प्रारम्भिक रूप सुरक्षित है) मैथिल-कोकिल विद्यापति की काव्य रचना कीर्तिलता मे भाषागत प्रवृत्ति ब्रजभाषा के अनुकूल

है। बारहवीं शती के महाराष्ट्र के सन्त कवि नामदेव ने मराठी भाषा के साथ-साथ ब्रजभाषा मे विपुल मात्रा में पदो की रचना की, यद्यपि उसकी भाषा ब्रजभाषा पूर्वी हिन्दी और पजाबी के सम्मिश्रण से निर्मित हुई है।

वस्तुत आठवी शती से साहित्यिक अपभ्र श के साथ-साथ जनभाषा हिन्दी मे भी रचनाए लिखा जाना आरम्भ हो गया था और प्रारम्भिक हिन्दी का साहित्य भाषा के रूप मे जो रूप विकसित होने लगा था वह ब्रजभाषा का ही रूप था। पन्द्रहवीं शताब्दी का अन्त होते-होते यह रूप देश का मुख्य सास्कृतिक रूप बन गया। यह उसके सम्प्रेषण क्षमता का सूचक है और उसकी बहुत बडी शक्ति है। सुदूर दक्षिण मे बहमनी राज्य के ध्वस के बाद जो रियासतें बनी उनके साहित्य-सृष्टाओं ने ब्रजभाषा का ग्वालियरी नाम से उल्लेख किया है। वास्तव मे ब्रजभाषा का प्रारम्भिक रूप ग्यारहवी शती से प्राप्त होता है, किन्तु उसका नामकरण बहुत बाद मे हुआ। बहुत काल तक इसके अन्य नाम चलते रहे जिनमे पिंगल, मध्य देशी, ग्वालियरी आदि मुख्य है। अन्तर्वेदी भी इसका समानार्थक है। इन तथ्यो से यह प्रमाणित होता है कि उस समय ब्रजभाषा न केवल समस्त उत्तर-पश्चिम प्रदेश मे काव्य-रचना का माध्यम मानी जाती थी, प्रत्युत अन्तरप्रान्तीय भाषा के रूप मे भी इसे मान्यता प्राप्त थी। महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, बगाल और आसाम मे वह काव्य भाषा के रूप मे व्यवहृत होती थी। इस प्रकार से उसने अखिल भारतीय भाषा का स्थान प्राप्त कर लिया था।

अपभ्र श को उत्तराधिकारिणी के रूप मे ब्रजभाषा के साहित्य भाषा का स्थान लेने का एक कारण पीछे बताया गया है। दूसरा कारण सातवी शती के लगभग कृष्ण के उत्तर भारत मे उपास्य देव के रूप मे प्रतिष्ठित होने के पश्चात् कृष्ण भक्ति का समस्त देश मे प्रचार होना है। परिणामस्वरूप मथुरा, वृन्दावन, कृष्ण भक्तो की गतिविधियो के केन्द्र बन गए और अन्य प्रदेशो के भक्त-कवियो ने भक्ति विषयक रचनाओं के लिए ब्रजभाषा को सहर्ष अपनाया। इस प्रकार बृजभाषा उत्तर प्रान्तों के कवियो द्वारा समृद्ध की जाने लगी। इनमे सन्त नामदेव महाराष्ट्रवासी थे, नरसी मेहता गुजराती थे, मीराबाई राजस्थान की थी, शकर देव असम-वासी थे। इसी प्रकार सभी धर्मावलम्बियो द्वारा ब्रजभाषा मे रचनाए रची गयी। जैन धर्म मे तो ब्रजभाषा काव्य की प्राचीन परम्परा मिलती ही है, सिखो के धर्मगुरुओ ने भी ब्रजभाषा को अपनाया। गुरुमुखी लिपि मे ब्रजभाषा का बहुत-सा साहित्य उपलब्ध हुआ है। मुसलमानो ने इसमे प्रचुर परिमाण मे काव्य रचना की। तत्कालीन समाज के सन्त, नाथ, चारण, गायक, राजा आदि सभी वर्गों के रचनाकारो ने इस भाषा को अपनाया। ये तथ्य ब्रजभाषा की लोकप्रियता एव व्यापकता के पुष्ट प्रमाण हैं।

उस काल मे ब्रजभाषा के इतने व्यापक प्रसार एव उसमे विपुल कृतित्व के परिणामस्वरूप इसके विधिवत अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गयी। मीरजा खां का ब्रजभाषा का व्याकरण पहले ही प्रसिद्ध हो चुका था। कच्छ के महाराजा लखपतराव द्वारा स्थापित ब्रजभाषा की विद्यापीठ के लिए एक अन्य व्याकरण भी लिखा गया। प्रभूत काव्य रचना के अतिरिक्त ब्रजभाषा मे अन्य विषयो का साहित्य सृजन भी किया गया है। नाम मालाओ के रूप मे कोशो की रचनाए की गयी यद्यपि उन्हे कोश नाम नही दिया गया। दाम्पत्य वाग्विलास के रूप मे ज्ञान कोश का प्रणयन किया गया। इसके अतिरिक्त राजकोट के महाराजा महारामण सिंह एव कुछ अन्य विद्वानो ने सम्मिलित रूप मे प्रवीण सागर की रचना की। यह ग्रथ चौरासी लहरो मे रचित विश्वकोश है, जिसे एक कथा सूत्र के सहारे प्रस्तुत किया गया है। ऐसी रचना तभी सम्भव हो सकती थी जबकि इतने विद्वानो का ब्रजभाषा पर समान अधिकार हो। इससे स्पष्ट है कि इस भाषा ने न केवल जनता मे वरन् विद्वानो के हृदय मे उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था। राजस्थान के कवि गद्द ने

नीति काव्य परम्परा का श्रीगणेश किया जिसका आगे चलकर रहीम के नीतिविषयक दोहों मे विकास मिलता है।

ब्रजभाषा मे चरित काव्य परम्परा का श्रीगणेश चौदहवी शती मे सधारू अग्रवाल की कृति प्रद्युम्न चरित्र से होता है। इसमे कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का चरित्र जैन काव्यो की परम्परा मे विकसित किया गया है जिसमे स्वयभू का पउमचरिउ, पुष्पदन्त का महापुराण, रल्ह कवि रचित जिनदत्त आदि आते हैं। यह एक पूर्ण विकसित चरित्र काव्य है जिसमे एक ऐसे वीर चरित्र की कल्पना की गयी है जो बाल्यावस्था मे अपने माता-पिता से बिछुडकर अन्य द्वारा लालित-पालित होता है और अपने शौर्य एव पराक्रम से अनेक आपत्तियो पर विजय प्राप्त कर उनसे मिलता है। इस चरित्र काव्य की परम्परा मे बीसवी शती तक ब्रजभाषा मे प्रद्युम्न चरित्र पर ही एक दर्जन के लगभग रचनाए की गयी हैं। ये चरित्र काव्य इतिहास आश्रित हैं। इसी से मिलती-जुलती कथा काव्य की परम्परा है जिसका प्रारम्भ इसी काल से कवि-दामो की रचना लखमसैन-पद्मावती कथा से होता है। इस परम्परा मे अन्य रचनाए मानिक कवि कृत वैताल पच्चीसी, नारायणदास कृत छिताई वार्ता एव चतुर्भुजदास कृत मधुमालती आती हैं। इन कथाओ मे वे सभी लक्षण परिलक्षित होते हैं जो अनन्तर प्रेम गाथा मे विकसित हुए। ये कथाए अधिकाशत लोक कथाओ पर आधारित हैं अथवा कल्पना-प्रसूत हैं।

ब्रजभाषा काव्य गेय मुक्तक पदो मे अत्यन्त समृद्ध है जिसका अनुपम भण्डार सूरसागर है। इन पदो की रचना परम्परा इसी युग से आरम्भ हुई। विष्णुदास कृत रुक्मिणी मगल सूरसागर की पद-शैली का प्रथम ग्रथ है। इसमे पदा के साथ राग-रागनियो का भी उल्लेख है। इसी परम्परा मे प्राकृत पैंगलम आता है। इसमे अज्ञात कवियो के पदो का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है। इसके अनन्तर इस परम्परा मे निर्वाक सम्प्रदाय के कवियो की रचनाए आती हैं जिनमे श्री भट्ट रचित युगल-शतक, हरिव्यास देव रचित महावाणी विशेष उल्लेखनीय हैं। युगल शतक मे एक दोहा देकर उसके भाव को पद मे विस्तार दिया गया है। महावाणी मे भी यही प्रणाली अपनायी गयी है। प्रथम मे ब्रज एव नित्य-रस का मिला-जुला वर्णन है और द्वितीय मे शुद्ध नित्य बिहार रस का वर्णन है।

ब्रजभाषा के आदिकाल मे सगीत को भी पूर्ण प्रतिष्ठा मिलती है। यह सगीत पदो मे तो मिलता ही है शुद्ध शास्त्रीय सगीतकारो ने भी ब्रजभाषा की राग-रागनियो की रचना कर काव्यत्व एव माधुर्य प्रदान किया। इनमे पन्द्रहवी शताब्दी मे ग्वालियर के तोमरो की राज-सभा के सगीतकार नायक बैजू, नायक पाण्डे तथा नायक बख्शू थे। ये ध्रुपद शैली के गायक थे। इस शैली मे एक अन्य नाम गोपाल नायक आता है। धार्मिक अनुष्ठानों एव साम्प्रदायिक कीर्तनादि से सम्बद्ध सगीत के आचार्यों मे स्वामी हरिदास का नाम आता है जो तानसेन के गुरु माने जाते हैं। इन सगीतकारो के कारण ब्रजभाषा के सौष्ठव और उसकी भाव वहन क्षमता मे विशेष अभिवृद्धि हुई और उसमे रागात्मक तत्वो का सन्निवेश हुआ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आदिकाल मे ब्रजभाषा साहित्य की अत्यन्त सुदृढ नीव रखी गयी जिस पर भक्ति एव रीतिकाल मे साहित्य का ऐसा विशाल भवन निर्मित किया गया जिसकी टक्कर का भारतीय भाषाओ मे तो उस काल मे मिलता ही नही है, विश्व की अन्य भाषाओ मे भी कम ही उपलब्ध है। यद्यपि विद्वानो के मतानुसार साहित्यिक भाषा के रूप मे ब्रजभाषा की प्रतिष्ठा १५१६ ई० मे वास्तविक रूप मे उस तिथि को हुई जब गोवर्द्धन मे श्री नाथजी के मंदिर का निर्माण पूर्ण हुआ और महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवान के स्वरूप के सम्मुख नियमित रूप से कीर्तनादि करने का सकल्प लिया और इसके लिए उन्होंने कवियो, गायको को ढूढकर प्रश्रय दिया और उनमे रचना करने के लिए धार्मिक उत्साह भरा। किन्तु यह इस

भाषा की शक्ति और क्षमता का प्रमाण है कि साहित्य भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित होने से पूर्व ही उसमें विविधतापूर्ण और उच्चकोटि की रचनाए की गयी। साहित्य की अन्य विधाओ जैसे चरित्र-काव्य, कथा-काव्य, शृंगार एव नीति-ज्ञान परक दोहे, प्रकृति तथा नारी विषयक चित्रण आदि मे इस काल में रचनाए की गयी। संगीत-रस से परिपूर्ण पदों की रचनाए की गयी। इन समस्त विधाओं को आगे चलकर पूर्ण उत्कर्ष प्राप्त हुआ। रासों ग्रथो में ब्रजभाषा भिन्न रूप और भिन्न प्रकार की क्षमता का प्रमाण देती है। यह भाषा ब्रजमडल मे ही सीमित न रहकर साहित्य रचना की अखिल भारतीय भाषा बन गयी, जिसको अनेक प्रदेशों एव प्रान्तो के कवियों ने अपनी रचनाओ द्वारा समृद्ध किया। गद्य रचना के चिह्न शिलाकित कृति राउरवेल मे तो मिलते ही हैं इसके अतिरिक्त गोरख उपनिषद मे भी मिलते हैं जिसके काल के विषय मे विद्वानो को सदेह है। किन्तु महाप्रभु बल्लभाचार्य के पुष्टि सम्प्रदाय का वार्ता साहित्य ब्रजभाषा गद्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होने इसे पुरुषोत्तम भाषा का नाम दिया। इस प्रकार कवियो और विषयो के वैविध्य, जीवन के बहुमुखी चित्रण, वस्तु-वर्णनो, व्याकरण एव लक्षण ग्रथो के प्रणयन तथा रचना क्षेत्रो के विस्तार-प्रसार से ब्रजभाषा की शक्ति और सामर्थ्य स्वत प्रमाणित हो जाती है, न केवल उस काल मे प्रत्युत भक्ति एव रीतिकाल मे भी उसके समान समर्थ एव समृद्ध कोई अन्य भाषा नही थी।

किन्तु आधुनिक युग के आगमन के साथ अशत आग्ल भाषा के प्रभाव और अशत राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक एव आर्थिक परिवर्तनो के परिणामस्वरूप ब्रजभाषा मे साहित्य रचना ह्रास को प्राप्त होने लगी और मुख्यत खडी बोली मे साहित्य रचा जाने लगा। इन परिवर्तनो के अतिरिक्त ह्रास का अन्य कारण यह भी था कि ब्रजभाषा के कवि एव लेखक नवीन चेतना एव युगीन विचारो को ग्रहण करने मे असमर्थ रहे। मानसिक रूप से वे मध्यकाल से ही सयुक्त रहे। आधुनिक काल मे ब्रजभाषा मे रचना तो की गयी, किन्तु गद्य लेखन का कार्य एक प्रकार से अनुल्लेखनीय रहा। यद्यपि ग्वाल, श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, जगन्नाथ दास रत्नाकर, नाथूराम शर्मा शकर, हरिदयालु सिंह, कविरत्न सत्यनारायण, डा रसाल, हरिऔध, कन्हैयालाल पोद्दार आदि ने ब्रजभाषा मे सरस रचनाए की, किन्तु वे उसके ह्रास को नही रोक सके और इसका क्षेत्र एव प्रभाव धीरे-धीरे सीमित होता चला गया। परिणामस्वरूप अब ब्रजभाषा एक क्षेत्रीय भाषा की स्थिति को प्राप्त हो चुकी है।

किन्तु ब्रजभाषा अब भी जीवित भाषा है और उसके बोलने वालो की सख्या, जो प्रत्येक दशक मे बढ जाती है, लगभग एक करोड पचास लाख है। यह लगभग ३८००० वर्गमील का क्षेत्र घेरे हुए है। इसके अन्तर्गत हरियाणा के गुडगाव जिला का पूर्वी भाग, हरियाणा, राजस्थान और मध्यप्रदेश के कुछ भाग एव पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिले आते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से इसके बोलने वालो की जनसख्या आस्ट्रिया, बलगेरिया, पुर्तगाल अथवा स्वीडन की जनसख्या की दुगुनी और डेनमार्क, नार्वे अथवा स्विटजरलैंड की जनसख्या की चौगुनी है। इसका क्षेत्र आस्ट्रिया, हगरी, पुर्तगाल, स्काटलैंड अथवा आयरलैंड से अधिक है। यह सब होते हुए भी वर्तमान स्थिति मे उससे सम्बद्ध वास्तविकताओ को स्वीकार करना होगा। व्यापक राष्ट्रीय हित की दृष्टि से भी उसे खडी बोली की प्रतिद्वन्द्वी नही, प्रत्युत सहायक भाषा के रूप मे विकास करना होगा। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि क्षेत्रीय भाषा के रूप मे ब्रजी की उपेक्षा करना राजनीतिक, साहित्यिक एव सास्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त अहितकर होगा। वस्तुत अध्ययन और रचना की दृष्टि से ब्रजी एव खड़ी बोली को एक-दूसरे की पूरक बनना होगा। साहित्यिक दृष्टि से ब्रजी अतीत के समृद्ध वाङ्मय से जुडी हुई है और सांस्कृतिक दृष्टि से यह भी भारतीय सस्कृति के उदार एव प्रगतिशील मानवीय मूल्यो से निर्मित है। अत यह अपने क्षेत्र मे जनता मे जागृति उत्पन्न करने का सबल माध्यम बनायी जा सकती है,

यदि इसके कवि एव लेखक युगानुरूप नवीन विचारो एव भावनाओ से युक्त विभिन्न विधाओ मे लेखन करे और जनता से सयोजित रहे। इस प्रकार ब्रज मे नवीन लोक साहित्य के निर्माण और विकास की पर्याप्त सम्भावनाए हो सकती है। काव्य भाषा के रूप मे भी इसके युगानुरूप विकास की पर्याप्त सम्भावनाए हो सकती हैं। किन्तु इसके लिए उसे नवीन भाव एव चिन्तन की भूमियो पर प्रतिष्ठित करना होगा और साहित्य सृष्टाओ को अपने मे आधुनिक युग की मानसिकता उत्पन्न करनी होगी।

ब्रज भाषा संगीत धरती और प्रकृति का

(डा) अम्बाप्रसाद 'सुमन'

□□

ब्रज भाषा का काव्य कृष्ण की लीला और गौरव का प्रेमपूर्ण गुणगान है। कीर्तिकुमारी वृषभानुदुलारी की कीर्ति की अमृतमयी गाथा है और ब्रजेश्वर श्रीकृष्ण के भक्तो की भाव-कालिन्दी की लहरो से सयुक्त ललित प्रवाह है। ब्रज भाषा की भाव-सरिता मे पक्षी-सौन्दर्य, पशु-सौन्दर्य तथा मानव-सौन्दय समाविष्ट है। पशु, पक्षी, बादल और यमुना-सलिल के सौन्दर्य के साथ राधा-माधव के दिव्य सौन्दय पर गोपी-गोप निछावर हैं।

दाशनिक 'काण्ट' का कथन है कि वास्तविक सौन्दर्य वही है, जो बिना उपयोगिता के प्रसन्नता प्रदान करता है। ब्रजेश्वर कृष्ण और ब्रजेश्वरी राधा मे वैसा ही सौन्दर्य है और वह सौन्दर्य त्रिगुणात्मक सौन्दर्य है अथात रूप-सौन्दर्य + गुण-सौन्दय + स्वर-सौन्दय। यह त्रिगुणात्मक सौन्दय ब्रजेश्वर कृष्ण मे भी है और ब्रजेश्वरी राधा मे भी।

वे ब्रजेश्वरी राधा वही दिव्य महाशक्ति हैं, जिनके आगे ज्ञान, ध्यान रस्सी बटते है और मुक्ति कहारिन बनकर पानी भरती है 'ज्ञान-ध्यान जहा बटे जेबरी, मुक्ति भरै जह पानी।'

दोनो की त्रिगुणातिका महाछवि का वर्णन ब्रजभाषा के पद-पद मे, शब्द-शब्द मे और वर्ण-वर्ण मे परिव्याप्त है। श्रीकृष्ण को वशी का नाद-सौन्दर्य उन वर्णो मे और भी अधिक नाद का माधुर्य बढ़ा देता है।

श्रीकृष्ण का चरित्र महा मनोहारी है। विश्व की महान दिव्य विभूतियो मे श्रीकृष्ण जैसा व्यक्तित्व दूसरा नही हुआ। केवल श्रीकृष्ण ही एकमात्र ऐसी दिव्य विभूति हैं, जो इसी धरती पर, इसी धरती के लिए, इसी धरती के कष्ट-निवारण के लिए हुए और इसी लोक के लिए जिए। पूर्ण मानव का पूर्ण व्यक्तित्व श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व मे पूर्णाभा तथा पूर्णपरमा के साथ समाविष्ट है।

ब्रज का किशोर मनमोहन ब्रज मे रासलीला करता है, तिरछे होकर वशी बजाता है, नृत्य करता है। उसके साथ सारे गोप और गोपिकाए नृत्य करती हैं। ब्रज के नरों और नारियो के दु ख दूर करने के लिए ही

यशोदानन्दन का सारा जीवन समर्पित है। ब्रजेश्वर को ब्रजवासी प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं, इसीलिए यशोदा मैया का कन्हैया ब्रजबासियों का तन, मन, धन, है, सर्वस्व है। उन लीलाओ मे रमणीयता है, माधुर्य है। उस रमणीयतामय माधुर्य ने ब्रजभाषा की माधुरी को महामधुर बना दिया है। उस भाषा-माधुरी ने सम्पूर्ण भारत को आकृष्ट किया था, प्रभावित किया था। वह प्रभाव आज भी दिव्यालोक से आलोकित है।

ब्रजभूमि के सूरदास से पहले गुजरात के कवि ब्रज भाषा की माधुरी का स्वाद हमे चखा चुके थे। असम प्रदेश के अंकिया नाट में ब्रज भाषा की माधुरी का पुट है। केरल प्रदेश के राजा तिरुनाल ने ब्रजभाषा की माधुरी को अपनी लेखनी से व्यक्त किया था। हिन्दू ही नही, मुसलमान कवियों ने भी ब्रजभाषा में कविताएं लिखी थी। रहीम, रसखान, रसलीन, अनीस आदि इसके प्रमाण हैं। हिन्दुओ मे यदि 'मीरा' ब्रज भाषा पर मुग्ध है, तो मुसलमानो मे 'ताज' ब्रज भाषा की मिठास पर और ब्रजेश्वर पर ऐसी दीवानी है कि मुगलानी होते हुए भी हिन्दुवानी बनकर जीवन जीने के लिए तैयार हो गई।

जिस भाषा की 'साकरी', 'कांकरी' शब्दमयी, माधुरी दिल्ली के पठान खान 'रसखान' को ब्रजवासी बना देती है, उसका गुण-गान कोई कहा तक कर सकता है?

धर्म और भक्ति की भाषा मानी जाने के कारण लोक-जीवन में ब्रज भाषा का आदर होने लगा था। इसकी कोमलता तथा मधुरता ने इसके प्रसार मे और भी अधिक योग दिया। कृष्ण-भक्ति की प्रसारिका ब्रज भाषा ने गुजरात के कृष्णभक्त कवियो को प्रभावित किया था। उन्होंने १५वी शताब्दी मे ब्रज भाषा मे कविताए लिखी थी। सौराष्ट्र के निवासी तो ब्रज भाषा से इतने प्रभावित थे कि ब्रज भाषा में कविता-रचना सिखाने के लिए वहां एक पाठशाला खोली गई थी। उस पाठशाला मे ब्रज भाषा के छन्दो की सर्जना तथा ब्रज भाषा व्याकरण पढ़ाया जाता था। उस पाठशाला के संस्थापक महाराव लखपति थे, जो कच्छनिवासी थे। वह पाठशाला लगभग २०० वर्ष पहले कच्छ मे खुली थी।

विक्रम की पन्द्रहवी शती मे गुजरात के कवि भालण ने दो ग्रन्थो की रचना की थी—(१) दशमस्कन्ध (२) कृष्णाविष्टि। भालणकृत दशमस्कन्ध मे कुछ पद ब्रज भाषा मे भी मिलते हैं। इस ग्रन्थ मे श्रीकृष्ण की बाललीला और राधा का वर्णन महत्वपूर्ण है।

'माइलस्टोन आफ गुजरात लिटरेचर' मे लिखा है कि मध्य काल मे ब्रज भाषा मिश्रित हिन्दी ही अधिकाश विद्वानो की भाषा थी। नरसी मेहता भी १५वी शती के कवि हैं, जिन्होने ब्रज भाषा मे काव्य-सर्जना की थी। कृष्ण-काव्य की परम्परा का सूत्रपात सूर आदि ब्रज-प्रदेशीय कवियो से पहले गुजरात के कवि भालण, मयण, भीम आदि कर चुके थे। इन गुजराती कवियो ने तथा ब्रज प्रदेश के अष्टछापी कवियो ने ब्रज भाषा के माध्यम से श्रीमद्भागवत की नवधाभक्ति से भी ऊपर माधुर्य भाव की दसवी भक्ति—प्रेमलक्षणा-भक्ति—को सर्वोपरि सिद्ध किया है। इस दसवीं भक्ति मे दास्य, सख्य और वात्सल्य भाव भी समाविष्ट है। प्रेमलक्षणाभक्ति सर्वोपरि भावोपासना है। इस भावोपासना की सर्वोच्च साकाररूपा श्रीराधाजी हैं

गुजरात के कवि केशवदास ने कहा है कि राधा भक्ति की साक्षात अवतार हैं। गुजराती के कवि नरसी, केशव, भीम आदि ने कृष्ण के मिट्टी खाने का वर्णन किया है। बालक कृष्ण के मुख मे यशोदा ने ब्रह्माण्ड के दर्शन किए हैं। सूरदास के सूरसागर मे कई वर्णन ऐसे हैं, जिनका उल्लेख अपनी-अपनी कविताओ मे भालण और नरसी कर चुके थे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ मे सूरदासकृत ब्रज भाषा-पदो के सम्बन्ध मे लिखा है—"सूरसागर किसी चली आती हुई गीतकाव्य परम्परा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है।"

सूरदास आदि अष्टछापी कवियो ने, मीरा, रसखान, ताज आदि ने विकसित काव्य भाषा मे जिस दिव्य प्रेम को गाया है, उस गान को उस दिव्य-पवित्र-प्रेम का सकेत ही समझना चाहिए। आत्मिक प्रेम पूरी तरह गाया ही नही जा सकता, उसका सकेत भर किया जा सकता है। सूर और मीरा के कृष्ण-प्रेम के महा-सागर को किसी भी प्रकार वर्णित नही किया जा सकता।

महाराष्ट्र मे ज्ञानदेव के बडे भाई थे चागदेव। एक बार चागदेव अपने छोटे भाई ज्ञानदेव को पत्र लिखने बैठे। अभिवादन लिखते समय पहले बडे भाई के नाते छोटे भाई ज्ञानदेव को उन्होने 'आशीर्वाद' लिखना चाहा महाज्ञानी सन्त ज्ञानदेव को आशीर्वाद कैसे लिखे? बडे भाई के नाते प्रणाम लिखने मे भी चागदेव हिचके। अत कोरा कागज ही भेज दिया, ज्ञानदेव के पास। ज्ञानदेव ने कोरा कागज देखकर उसकी भाषा पढ ली कि चागदेव कोरा है निर्मल है। उन निर्मल चांगदेव पर ज्ञानदेव ने 'ज्ञानपासट्टी' लिखी है अर्थात चागदेव के सम्बन्ध मे ६५ ओविया लिखी है, ज्ञानदेव ने। ब्रज की गोपियो के भोले हृदय की निर्मलता और सरलता पर, उनके भोलेपन पर ब्रज भाषा के कवियो ने अपनी कविता मे दिल खोलकर लिखा है। अनेक पद, दोहे, सवैए और कवित्त लिखे गए हैं।

ब्रज भाषा हमारी धरती की भाषा है। ब्रज सस्कृति ग्राम्य सस्कृति है। इस सस्कृति को ब्रजभाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त किया जा सकता है। काव्य शास्त्र की मधुरा और कोमल वृत्तियो की लालित्यमयी सरस शोभा को हृदय के नेत्र ब्रज भाषा के काव्य मे ही देख सकते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि ब्रज-सस्कृति मे आराध्य प्रेमावतार श्रीकृष्ण हैं और उनके कारण बाह्य प्रकृति भी श्रीकृष्णमय है। अत प्रकृति भी प्रेम-भाव का आलम्बन बन गई है।

ब्रज भाषा के भक्तिकालीन कवियो ने महाविराट के दर्शन अपने हृदय-लोक मे करके अपने को विशाल बनाया था और जीवन मे अमृत पाया था। छान्दोग्य उपनिषद के कवि छन्दोग्य थे। छन्द (सगीत) उनके भीतर जागा था। उनके छन्दो (गीतो) मे भूमा (महाविराट) परिव्याप्त था क्योकि उनका हृदय शान्त एव निस्तरग सागर था। जो सागर तरगो से रहित अथवा ऊर्मियो से शून्य होता है, उसम ही पूर्णचन्द्र की ज्योति अखण्ड रूप मे दृष्टिगत होती है। तरगनि अथवा ऊर्मिल सागर मे चन्द्र-ज्योति खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाती है, पारे की तरह। पूणचन्द्र आनन्द श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन किस हृदय-सागर म हो सकते है — यह उन्ही ब्रज भाषा-कवियो ने हमे बताया था। उस महाविराट भूमा को ब्रजभाषी भक्त कवियो ने श्रीकृष्ण मे देखा था। 'रसखान' लिखते हैं कि जिसे अनन्त, अखण्ड, अभेद्य, अछेद्य कहा जाता है उसे ही अहीरो की लडकिया छछियाभर छाछ का लोभ दिखाकर नचाती हैं। वह नाचता है, छोकरिया गाती है।

सगीतमय जीवन के शान्त सागर मे हो उस परम भूमा या महाविराट के पूर्ण दर्शन हो सकने हैं, सगीत शून्य जीवन के समुद्र मे नही।

हिन्दी-साहित्य के भक्तिकाल के ब्रज भाषा-कवियो की भक्ति वास्तव मे पारलौकिक प्रेम ही है। उनके लिए प्रेम ही परमात्मा बन गया था। व्यक्ति-केन्द्रित 'प्रेम' का नाम 'मोह' या वासना है। जब प्रेम व्यापक रूप से वर्धमान होता हुआ, उस विराट विश्वरूप महाशक्ति मे परिव्याप्त हो जाता है अर्थात कण-कण मे, चर-अचर मे रम जाता है, तब परमात्मा मे ही समर्पित हो जाता है। वही पवित्र व्यापक प्रेम परमात्मा बन जाता है। मीरा के प्रेमालम्बन गिरिधर गोपाल ब्रजवासी गोपाल नही थे, वे गिरधर गोपाल चर-अचर व्यापी गोपाल थे, चिर-कालीन शाश्वत अर्थात देश-कालातीत। मीरा का प्रेम देश और काल की परिधि से परे है। वह अखण्ड है, अमर है, चिरजीवी है, चिरनूतन है।

ब्रज-सस्कृति मूलत मानव-सस्कृति है, जिसमे हिन्दू, मुसलमान आदि सभी रमे हुए थे। ब्रज-सस्कृति

प्रेम की संस्कृति है, ब्रज-संस्कृति रूप की सस्कृति है, ब्रज-संस्कृति सौन्दर्य की संस्कृति है, ब्रज-संस्कृति उल्लास और सहभाव की संस्कृति है, ब्रज-सस्कृति समानता की सहज सस्कृति है। फूल के सौन्दर्य पर, रूप के सौन्दर्य पर, सगीत के सौन्दर्य पर और नृत्य के सौन्दर्य पर कौन मुग्ध नही होता ? कौन ऐसा मुसलमान है, जो इन सौन्दर्यों पर निछावर नही होता ? कौन ऐसा ईसाई है, जिसकी आंखें इन तत्वों की ओर नही खिचती ? कौन सिख-पारसी इन्हे नहीं चाहता ? कौन वैष्णव, शैव और शाक्त है, जो इन्हे प्यार नहीं करता ? कौन ईश्वर-वादी इन्हें देखने की इच्छा नहीं रखता ? सारांश यह कि ब्रज-संस्कृति विश्व मानव की ग्राम्य सस्कृति है, जिसमे सब स्त्री-पुरुष मिलकर एक साथ आनन्द लेते हैं।

भक्तिकालीन ब्रज भाषा-काव्य के केन्द्र मे मुख्यत परमानन्दस्वरूप सगुण ईश्वर ही विराजमान है। अत ब्रज भाषा की वह मनोरम कविता हमे अन्नमय कोश से उठाकर मनोमय कोश मे और फिर विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोशो मे पहुचा देती है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि ब्रज-भाषा के भक्त कवियो ने स्वर्गीय आनन्द को धरती पर उतारा है। उन्होंने मानव के अतस् और बाह्य को एकरस बनाया है।

ब्रज भाषा का काव्य भाव-पक्ष मे जितना अधिक मधुर और सूक्ष्म है, उतना ही कला-पक्ष मे सरस और मूर्धन्य है। शास्त्रीय सगीत की रक्षा ब्रज भाषा के पद साहित्य ने की है। उस सगीत मे नाद का सौन्दर्य तो है ही, साथ मे भाव और शब्द का भी सौन्दर्य है। जहां भाव और नाद का मिलन है, वही ब्रज भाषा के पद-साहित्य के श्रुतिसुखद दर्शन किए जा सकते है। उन पदो की भाषा सहज और मधुर है। स्रष्टा कवि का जीवन जब तपश्चर्या और साधना से सहज बन जाता है, तभी उसकी वाणी या लेखनी से सहज भाषा प्रस्फुरित होनी है। सहज जीवन के मानसरोवर से निस्सृत सहज स्रोतस्विनी ही महानता का मार्ग दिखा सकती है। यही कारण है कि आज भी सूर, परमानन्द, मीरा आदि के पद बडे प्रेम से गाए जाते और सुने जाते हैं।

दोहा, कवित्त, सवैया आदि छन्दो के माध्यम से भावो को ब्रज भाषा समास शैली या व्यास शैली मे बडी माधुरी एव प्रभावात्मकता के साथ व्यक्त करती है। समास शैली के लिए दोहा और व्यास शैली के लिए कवित्त छन्द को ब्रज भाषा ने स्वीकार किया था। कवित्तो और सवैयो मे अतर्वर्ती आनुप्रासिकता से जो नाद-सौन्दय का रस निष्पन्न होता है उससे सहृदयो को आप्लावित करने मे ब्रज भाषा बेजोड है। सेनापति कहते हैं

> बीती औधि आवन की लाल मन भावन की,
> डग भई बावन की सावन की रतिया।

उर्दू भाषा की रुबाई छन्द के अन्तिम चतुर्थ चरण मे प्राण होती है। रूबाई का अन्तिम चरण —'क्यो नयन के देश मे बरसात आई ?' सवैया छन्द का अन्तिम चरण—'पूरन प्रीति हिये हिरकी फिरकी-खिरकीन फिरै फिरकी-सी।'

अन्तिम चतुर्थ चरण की प्राणवत्ता ब्रज भाषा के सवैया छन्द से रुबाई छन्द ने ग्रहण की है। देव के सवैए के इस चतुर्थ चरण मे भाव प्राणवन्त होकर बैठा है 'बेगि ही बूडि गईं पखिया अखिया मधु की मखिया भईं मेरी।'

अन्त्यानुप्रास की उत्तम नादात्मकता की मधुरता जितनी ब्रज भाषा कवित्तो और सवैयो मे मिलती है उतनी अन्य भाषाओ के छन्दो मे नही पाई जाती। अपभ्रंश के 'दूहा' छन्द को सार्वभौमिक लोकप्रियता जितनी ब्रज भाषा ने प्रदान की है, उतनी अन्य भाषाओ ने नही। ब्रज भाषा के कवित्तो और सवैयो मे पर्याप्त दीर्घ अन्त्यानुप्रासिकता मिलती है, इसी से प्रभावित होकर उर्दू की बह्रो मे रदीफ और काफिए का जन्म हुआ है। छन्द-रचना की कला मे उर्दू ब्रज भाषा की ऋणी है। आज खडी बोली हिन्दी मे जो नवगीतो की सृष्टि हो

हो रही है, उनकी कोमल, मधुर तथा सरस शब्दावली ब्रज भाषा से ही उधार ली गई है। ब्रज भाषा ने हिन्दी के शब्द-भण्डार को ऐसे शब्द-रत्न प्रदान किए हैं कि उनके समानान्तर अर्थ-द्योतक शब्द संस्कृत या खड़ी बोली में नहीं हैं। माता यशोदा शिशु कन्हैया को पालने मे झुला रही है। वह उसे हलराती हैं, दुलराती हैं और 'मल्हाती' है। मल्हाना क्रिया के समानान्तर अन्य भाषाओ मे कोई शब्द नही है। इच्छा, ललक और आकर्षण का सम्मिलित अर्थ देने वाला एक शब्द 'हौंक' ब्रज भाषा मे प्रचलित है। इसके समानान्तर हिन्दी की अन्य उपभाषाओ मे कोई शब्द नही है। ललबौरी, हुडक, हडकल, हौंस आदि ब्रज भाषा के अद्‌भुत अर्थवैशद्य के महत्त्वपूर्ण शब्द है।

रीतिकाल के ब्रज भाषा कवियो ने शब्दो को खूब छेडा है और वे उनसे खुलकर खेले हैं। उन्होंने नारियो के हाव-भावो को खूब पहचाना है। छायावादी तथा प्रगतिवादी कविता के बाद हिन्दी की शृगारिक कविता मे तो नारीत्व का खु ला अपहरण है, रीतिकाल मे तो नारी शरीर का कलापूर्ण विवरण ही था। सस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा को रीतिकाल की ब्रज भाषा मे जीवित रखा गया है।

सूरदास से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक हिन्दी साहित्य के इतिहास मे, ब्रज भाषा ने आसन जमाया था। ब्रज भाषा ने लगभग ३०० वर्षों तक भारतीय साहित्य पर पूर्ण आधिपत्य स्थापित किया है। वह हमारे राष्ट्र की राष्ट्रभाषा रही है। असम, बगाल, उडीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, पजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल आदि के साहित्यकार १५वी शती से १८वी शती तक ब्रज भाषा मे ही कविता करते रहे थे। दूसरे शब्दो मे यह भी कहा जा सकता है कि ब्रज भाषा का वैभव हमारे राष्ट्रीय साहित्य का वैभव रहा है।

ब्रज भाषा गरिष्ठ-गम्भीर भाषा नही, हलकी सरस भाषा है। जो हलका है, वही जीवन में ऊपर उठ सकता है। ब्रज भाषा मे जीवन का उल्लास है, हंसी है, विनोद है, गायन है, नर्तन है और अभिवादन है। उसमे सातवें लोक की या सहस्रार चक्र की बातें नही। उसमे तो इसी धरती की, इसी प्रत्यक्ष लोक की बातें हैं। ब्रज भाषा ने आनन्दमय कोश मे रहने वाले ब्रह्म को मानव बनाकर प्रत्यक्ष नचवा दिया है। यशोदा के मणिमय आगन मे वह निराकार ब्रह्म नीले प्रकाश के रूप मे घुटनो चलता है, किलकता है और मक्खन खाता है। किशोर होने पर वही गोपिकाओ की दही की मटुकिया फोडता हैं। चचलता तथा हास्य का सरस साकार रूप ब्रज भाषा की पावन धरती पर ही देखा जा सकता है। वह चचल हास्य सबके प्रेम-भाव का पवित्र आलम्बन हैं। जीवन-प्राण है, सर्वस्व है।

वशीधर गोपाल वशी बजाते हैं प्रात मे। वशी के स्वर से कुजो की कोयले अगडाई लेकर जग पडती हैं। यमुना मे मीठे-मीठे हलकोरे उठने लगते हैं। ब्रजधरा हसने लगती है। साराश यह है कि भक्तिकालीन काव्य मे जो प्राकृतिक सौन्दर्य उद्दीपन रूप मे तथा अलकार विधान के रूप मे गृहीत हुआ था, उसी का नया रूप छायावादी काल मे आलम्बन रूप मे प्रस्फुटित हुआ। छायावादी कविता मे सूक्ष्म-परिष्कृत सौन्दर्य जिस शिल्प सौष्ठव के साथ अभिव्यक्त हुआ है, उसका श्रेय भक्तिकालीन ब्रज भाषा-काव्य को दिया जा सकता है। छायावादी काव्य ने जिन अशरीरी उपमानो को स्वीकारा, वे स्थूल रूप मे ब्रज भाषा ने पहले ही ग्रहण कर लिए थे।

ब्रज भाषा के स्वभाव की कोमलता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण ही है कि उसकी वर्णमाला को ऋ, ण्, श्, ष्—जैसी कठोर ध्वनियां स्वीकार नही हैं। 'यशोद-पुत्र' को 'जसोदापूत' और 'कृष्ण' को 'कान्हा' या 'कन्हैया' ब्रज भाषा ही तो बनाती है।

ब्रज भाषा यदि अपनी शब्द-माधुरी तथा कोमलता शब्दो को प्रदान न करती, तो कविता मे शृगार

करुण, वात्सल्य आदि रस चरम कोटि की प्राप्ति न कर सकते। अपनी मधुरता और सरसता से ब्रज भाषा आज भी भारतीय प्रादेशिक भाषाओं मे सर्वोपरि है। उस ब्रज भाषा का और उस ब्रज-संस्कृति का वैभव आज भी भारत-व्यापी है।

ब्रज लोक-कथाओं के मूल तत्व

(डा) त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल

□□

ब्रज मे लोक-साहित्य की धारा अत्यन्त प्राचीन है। इस धारा मे ब्रज-लोक-कथाओ का महत्वपूर्ण स्थान है। ये कथाए हजारो वर्षों से ब्रज के जन-जीवन को रस प्लावित किए हुए हैं।

लोक-साहित्य लोक-जिह्वा पर जीवित रहता है। इस साहित्य मे लिखित एकरूपता के दर्शन सम्भव नही हैं। इसका परिणाम यह है कि कोई भी लोक-कथा सुनने मे समान-सी प्रतीत होते हुए भी वस्तुत समान नही है। ये कथाए कहने वाले के अनुसार परिवर्तित और रूपान्तरित होती रहती हैं। लिखित कथाए लेखक की योग्यता, अनुभूति और अभिव्यक्ति की शैली पर निर्भर करती हैं किन्तु, लोक-कथाओ का प्रभाव वाचक पर अर्थात् कहने वाले पर निर्भर करता है। अनुभवी वाचक एक मामूली-सी कथा को भी अपनी क्षमता से अत्यन्त रोचक और सरस बना देता है। लोक-कथाए इसीलिए पढने मे इतनी हृदयग्राही नही बन पाती है जितनी वे सुनने मे लगती हैं। लोक-कथाओ से मनोरजन और ज्ञानार्जन दोनो ही होते हैं।

लोक-कथाए मुख्यत तीन प्रकार की होती है—गाथा, अवदान और कथा। देव विषयक कथाओ को 'गाथा' कहा जाता है। ऐतिहासिक रस प्रधान कथाओ को 'अवदान' कहते हैं और लोक-जीवन से सम्बन्धित कथाओ को 'कथा' कहते हैं। लोक-कथाओ का वर्गीकरण कुछ विद्वान धार्मिक पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक कथाओ के रूप मे भी करते हैं किन्तु इनमे प्रथम प्रकार का विभाजन ही अधिक युक्तिसगत प्रतीत होता है। आकार मे बडी कथाओ को 'किस्सा' कहा जाता है। ये 'किस्से' लघु समय-अवधि मे पूरे नही सुनाये जा सकते। ये एक प्रकार से 'लोक-उपन्यास' ही होते हैं।

लोक-कथाओं के मूल तत्व परम्परागत रूप से निश्चित करना कठिन है क्योकि, लोक-कथाओ का मुख्य आधार हैं— लोक-जीवन और लोकानुभव। इसीलिए, लोक कथाए शिक्षाप्रद भी हैं और मनोरजक भी हैं।

'तत्व' शब्द का अर्थ है—वस्तु-निर्माण के उपादान। जिस प्रकार शरीर के निर्माण मे पच तत्वो का महत्व है, उसी प्रकार लोक-कथाओ के भी प्रमुख तत्व पांच हैं—कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, लोक-शिक्षा और लोक-भाषा। इन्हीं तत्वो से प्राय सभी लोक-कथाओ का निर्माण होता है। लोक-कथाओ का मूल स्रोत सस्कृत,

प्राकृत, पाली और अपभ्रंश आदि भाषाओ का साहित्य (हिन्दी लोक-कथाओ के सन्दर्भ मे) माना जाता है किन्तु यह बात पूर्णत सत्य नही है। लोक-कथाओ का जन्म तो वास्तव मे लोक-जीवन मे होता है। यही कारण है कि अधिकाश लोक-कथाओ मे जन-जीवन की सामान्य घटनाएं जुडी हुई हैं। ऐसी कथाओं मे राजा-रानी, सास-बहू, ननद-भौजाई (भावज) देवर-भाभी, सेठ-साहूकारो, पण्डित-ठाकुर आदि की कथाए सम्मिलित की जा सकती हैं। कथाओ का प्रारम्भ सामान्यत इस प्रकार होता है—एक समय की बात है ।

एक राजा था ।

एक रानी थी ।

एक गाव मे एक रहता था। आदि-आदि। इस मुख्य वाक्य को कहकर कथा सुनाने वाला अपनी कथा कहना प्रारम्भ कर देता है। इस कथा मे देव, दनुज, मनुज, पशु-पक्षी, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि पात्र कथा के सवादो का निर्वाह करते है और कथाकार अपनी सरस, मोहक तथा रोचक शैली मे इनके माध्यम से अपनी कथा का मुख्य उद्देश्य बडी सफलतापूर्वक व्यक्त कर देता है। कथोपकथन और लोक-व्यवहार की सफलता वास्तव मे कथा कहने वाले के ऊपर ही निर्भर करती है। प्रत्येक लोक-कथा मे कोई न-कोई एक विशेष शिक्षा निहित रहती है। जनसाधारण इन कथाओ को सुनकर उन शिक्षाओ को ग्रहण करता है। वस्तुत इन लोक-कथाओ का प्राण यह लोक-जीवन का अनुभव ही है। इस अनुभव मे समाज की रीति-नीति, आचार-विचार, ज्ञान-अनुभव आदि सभी समाये हुए हैं। सस्कृति का ज्ञान इन लोक कथाओ के द्वारा बहुत ही सरलता से हो जाता है। व्रत, त्योहार एव विशेष अवसरो पर इन लोक-कथाओ के कहने का अपना एक विशेष महत्व है। इन कथाओ के माध्यम से भारतीय परिवारो मे परम्परा और रीति-नीति का बोध मिलता रहता है।

लोक-कथाओ की विशिष्टता के विशेष परिचायक तत्व दो है—कथोपकथन तथा लोक-भाषा। लोक-कथाओ की भाषा सदैव परिवर्तित होती रहती है और यह भाषा कथा कहने वाले की योग्यता तथा उसकी मौलिक प्रतिभा पर निर्भर करती है। यदि कथा कहने वाला सूझ-बूझ वाला और वाग्मी है तो वह साधारण-सी कथा को भी अत्यन्त आकर्षक बनाकर सुना सकता है। इस सन्दर्भ मे कथा के श्रोताओ की योग्यता भी विचारणीय है। यदि लोक-कथा के श्रोता साधारण वर्ग के नर-नारी, बालक-बालिका हैं तो सुनाने वाले को भी अपनी भाषा उनके अनुरूप रखनी पडती है। लोक-कथाओ का वास्तविक आनन्द इसीलिए, लोक-कथाओं को मुद्रित रूप मे पढने पर नही आता है कि, उनमे कथा के सुनाने वाले की चेतना का स्पर्श नही होता है। लोक-कथाए पढने पर इतनी सुन्दर प्रतीत नही होती हैं जितनी कि वे सुनने पर लगती हैं। वाचक-श्रोता सम्बन्ध का जो सेतु लोक-कथाओ के मौखिक रूप मे बनता है वह लिखित रूप मे किसी भी स्थिति मे सम्भव नही है।

लोक-कथाओ की सर्वाधिक महत्वपूण विशेषता है—जीवन की सघर्षमयी परिस्थितियो के लिए मनो-रजक रूप से प्राप्त उनकी प्रेरणाशक्ति। सुन्दर लोक-कथाओ मे प्राय यह विशेषता निहित मिलती है। इन कथाओ मे पूर्वांश सघर्षमय और कष्टपूण घटनाओ से भरा रहता है तथा उत्तराश सुखद् घटनाओ तथा शुभ परिणामो का परिचायक रहता है। कुछ ही लोक-कथाओ का अन्त 'दुखान्त' मिलना है अन्यथा अधिकाश लोक कथाओ का अन्त 'सुखान्त' ही होता है।

ब्रज लोक-कथाओ मे 'गणेश जी', पार्वती जी' 'शकर जी', 'लक्ष्मी जी', जैसे देवी-देवताओ का चित्रण बडा सुन्दर हुआ है। ये सभी इन कथाओ मे शुभ परिणाम देने वाले चित्रित हुए हैं। सास, ननद, भावज—प्राय त्रासकारी चित्रित हुई हैं और चट-चालाक, लोभी, स्वार्थी पात्रो मे नाई तथा वैश्य का चित्रण हुआ है। अन्य वर्ग सामान्य रूप मे चित्रित हुए हैं। ब्रज की लोक-कथाओ मे बहिन-भाई के पावन प्रेम, स्वामी-सेवक-

सम्बन्ध के आदर्श रूप, प्रभु की कृपालुता का चित्रण बहुत ही सुन्दर रूप मे हुआ है। इन कथाओं से इनके श्रोताओ को सत्प्रेरणा मिलती है। जिस प्रकार 'ब्रज-लोक-गीतो' मे ब्रज का सांस्कृतिक पूर्ण परिचय मिलता है, उसी प्रकार ब्रज की लोक-कथाओ मे ब्रज का सास्कृतिक स्वरूप बडी कुशलता से व्यक्त मिलता है। ब्रज-भाषा मे अत्यन्त समृद्ध लोक-साहित्य है। इस साहित्य का अभी प्रारम्भिक अवस्था मे ही अनुसधान हुआ है। भविष्य मे जब कभी ब्रज-लोक-कथाओ का विशेष अध्ययन सम्मुख आयेगा तब वह निश्चित ही हिन्दी साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध होगी, ऐसी हमे आशा है।

—

ब्रजमंडल के लोक नाट्य

(डा) राजेंद्र रंजन

□□

ब्रज की रासलीला ने तो देश के कोने-कोने मे अपनी आकर्षक मुद्रा अकित की है। विदेशो के भी जो लोग वृन्दावन आते हैं, रासलीला के नृत्य सगीत अभिनय की भगिमा और भावो के वैभव को आखो मे भरने को उतावले बन जाते हैं। रास ने दो शताब्दियो तक भक्ति आन्दोलन के सदेश को जन-जन तक पहुचाया था।

पिछले पचास वर्षों मे ब्रज की रासलीला ने भी बडी ख्याति अर्जित की है। यो रामलीला देश मे सैकडो ही जगह होती है परतु अभिनय का जो खुलापन, ब्रजभाषा की जो मधुरता और गायन-शैली की जो अदा ब्रज की रामलीला मे है, उसके कारण ब्रज के लोक-नाट्य ने रामचरित्र मे घुलमिल कर एक खूबी पैदा कर दी हैं।

राजस्थान और ब्रजमडल मे कठपुतली का खेल भी बहुत प्रचलित है। सूत्रधार हाथ की उगलियो के सहारे कठपुतलियो को नचाता है और उसकी जीवन-सगिनी ढोलक बजाकर कथा का गायन करती है। रामलीला, रासलीला और कठपुतली के अतिरिक्त नरसिंह-लीला, भाडभगतिया, बहुरुपिया और नट के तमाशे ब्रजमडल के लोक नाट्य के ही अलग-अलग रूप हैं फिर भी जब यह प्रश्न किया जायेगा कि ऐसा कौन-सा नाट्य-मच है, जिस पर लोकमानस सबसे अधिक तेजस्वी बनकर मुखरित है तो मैं कहना चाहूगा—स्वाग।

इसमे दो मत नहीं हैं कि रासलीला ने ब्रज के लोक-जीवन को मुखरित किया है। रासलीला के नायक कृष्ण-कन्हैया का चरित्र ही ऐसा है कि वह लोक-मानस मे रसाबसा है। वह लोक के बीच ही खेला है और लोक के बीच ही बड़ा हुआ है। भारतीय इतिहास का विद्यार्थी भली प्रकार जानता है कि जिस भक्ति का सन्देश रासलीला में है, वह भक्ति लोक की ही शक्ति है। परन्तु इस सबके बाद भी स्वाग जनपदीय जीवन के अधिक निकट है।

भी हाथरस के स्वांग और आगरा, मथुरा, वृन्दावन के भगत एक नाट्य परपरा के रूप हैं परतु भगत परंपरा अव्यावसायिक तथा स्वाग व्यावसायिक होते हैं।

१६७१-७२ मे जब सासनी मे कृष्ण कुमारी की नौटकी का आयोजन हुआ था, तब जनपदीय-जन पर नौटकी के जादू का असर देखने को मिला था। अमर सिंह राठौर उर्फ आगरे की लडाई का खेल था। अमर सिंह की मृत्यु के बाद जब हाडी रानी की भूमिकायें चूडी फोडते हुए कृष्णा कुमारी ने करुण स्वर उठाया था—पिया तू कहा पिया तू कहा—तो हजारो-हजारो दर्शको से भरे उस विशाल पडाल मे सन्नाटा खिच गया था।

स्वाग या भगत के दर्शको, आयोजको और कलाकारो मे किसान, मजदूर, हलवाई, परचूनिया, हिन्दू, मुसलमान, गाव और शहर सभी समान रूप से मौजूद हैं। धोबी, तेली, नाई, बनिया, बामन और ठाकुर सबकी बिरादरी वहा तिरोहित है। पौराणिक कथाओ से लेकर वर्तमान युग की देश-विदेश की घटनाओ तक ने स्वांग की कथावस्तु का ताना-बाना बुना है। सती सावित्री, द्रौपदी, अनसूया, दमयन्ती, शकुन्तला, ध्रुव, प्रहलाद, सत्यवादी हरिश्चन्द्र से लेकर महाराणा प्रताप, शिवाजी, हकीकतराय, सुभाषचन्द्र बोस और राजा बख्तूसिंह तक और गुरु गोरखनाथ, गोपीचन्द, भरथरी, पूरनमल, हरदौल, ढोला, निहालदे, हीर-राझा, लैला-मजनू, गुल-बदन, शीरी-फरहाद, स्याह पोश, जान आलम, अजुमन-आरा तक की कथाओ को लेकर स्वाग रचे और खेले गये हैं।

स्वागो के अध्ययन के बिना ब्रज के जनपदीय जीवन की आत्मा का साक्षात्कार कैसे सभव है ? आपने बस मे यात्रा करते हुए देखा होगा कि कोई किसान का लडका छबीली भटियारी पढ़ रहा है और कोई सन्त-बसन्त पढ रहा है। वास्तव मे ये पुस्तकें ब्रज के लोक जीवन का मानसिक परिवेश तैयार करती है। इसलिए इनके अध्ययन की आवश्यकता है।

मेरे कहने पर गाव के एक छात्र ने वह पक्ति सुना दी जो कोई भी पिता अपने पुत्र से और कोई भी अध्यापक अपने विद्यार्थी से नही सुनना चाहेगा। पर यह सब स्वाग मे होने लगा है। अमरसिंह राठौर खेल मे कुछ नगे सवादों के साथ एक दो पात्रो की कामुम चेष्टायें देखकर मेरे भीतर का अध्यापक किस प्रकार सिकुड गया था, यह मुझे आज भी याद है। श्री रामनारायण अग्रवाल — भैया जी—इसे सागीत का बाजारूपन कहते हैं क्योकि इसी चटक-मटक और ठुमके पर स्वाग मडली को इनाम मिलता है। इसे हम स्वाग की कुरुचि या कुरूपता कहना चाहेगे किन्तु स्वाग हो या सिनेमा अथवा फिल्मी-पत्रिकाओ और अपराध कथाओ के नाम से धडाधड बिकने वाला घासलेटी साहित्य हो। अश्लीलता का प्रश्न एक ही है। और यह प्रश्न सौन्दर्य बोध जगाने का प्रश्न है। पान बेचने वाले, ताागा हाकने वाले और साधारण श्रमिक तक के पहनाव, उढाव, खान-पान और बोलचाल मे सुरुचि का विकास सचमुच एक बडा प्रश्न है।

प कृष्ण गोपाल वर्तमान युग के उन भगतकारो मे से थे, जिन्होने इस मच को साहित्यिक गरिमा से मडित करने का प्रयत्न किया था। शिशुपाल वध सागीत मे शरद ऋतु का वर्णन देखिये—

> है मद खद्योतगन गगन मे मगन ये आनद मे मेदिनी है
> बिखेर दी चन्द ने चहू दिस चमन मे चादी सी चादनी है
> अमोल मृदुबोल गोल गुल से कपोल पर सरजी तिल रही है
> शरद चन्द्रमा की चांदनी मे जरद चमेली सी खिल रही है

स्वागो की भाषा मे हिन्दी, उर्दू और ब्रजभाषा तथा अन्य जनपदीय बोलिया घुलमिल कर एकरस हो गयी है। वह अनगढ़ अपरिष्कृत हो तो हो परतु भावो का उसमे जबर्दस्त प्रवाह है। अमर सिंह राठौर-सांगीत मे बादशाह दरबार से भाग कर महलो मे पहुचता है—

तू जो अदना बतावै है जिसके तईं, उसके जौहर की तुझको खबर ही नही।
उसकी सानी बहादुर लड़ाका जवां कोई दुनिया मे आता नजर ही नहीं।
अब सलाबत को कर कत्ल मुझपै झुका यह जवा मुझको अब मेरा सर ही नही।
तू शुकर कर खुदा का मैं जीता बचा आज मरने मे थी कुछ कसर ही नही।

सासनी के सुखराम हलवाई से मैंने पुराने स्वागो की चर्चा प्रारभ की तो वे दूकानदारी को छोडकर मेरे पास आ बैठे। उनके बेटे को शायद यह बात नही रुचि थी परतु सुखराम ने तो अपनी जिन्दगी का रस लोकमचो के माध्यम से प्राप्त किया था।

सासनी तब तो और भी छोटी रही होगी फिर यहां स्वाग का बडा प्रचार था। शायद इसलिये भी कि हाथरसी स्वांग-परपरा के उन्नायक नथाराम गौड सासनी क्षेत्र के ही दरियापुर गाव के निवासी थे। तब सासनी मे इन्दरमन और मुरलीधर के दो अखाडे थे। एक अखाडे के स्वाग मे रानी—स्त्री पात्र—को पचास हजार का जेवर पहनाया गया है, तो दूसरे अखाडे के स्वाग मे प्रयास किया जाता था कि कम-से-कम एक लाख के तो आभूषण हो। इन्दरमन के अखाडे मे कन्हैयालाल, भूदेव प्रसाद, राधावल्लभ, घनश्याम चौबे और कन्हैयालाल चौबे थे तथा मुरलीधर के अखाडे मे गोकुला जैसा प्रवीण गायक था। सुखराम कहते हैं कि सारी बस्ती स्वागो के आयोजन मे इस प्रकार लग जाती थी, जैसे घर का ही कामकाज हो। गहरी सांस लेकर वे बोले—कहां रही अब वह बात !! सस्ता जमाना था, थोडे मे गुजर-बसर हो जाती थी, लोगो के पास फुरसत थी, प्यार-प्रीत के रिश्ते थे ! रईस लोग हजारो रुपये के गहने भरोसे पर यो ही दे देते थे।

सच तो यह है कि तब गरीबी थी परन्तु गरीबी के द्वारा दी गयी रिक्तता को भरने की कला लोक ने विकसित कर ली थी। तब सामूहिक जीवन से जिन्दगी का रस ग्रहण करने का माद्दा था। आज गरीबी तो है ही राजनीति भी आ गयी। गांव-गाव गुटबन्दी मे बिखर गये। गाव मे स्वाग हो रहा है और सौ कदम आगे गोली की आवाज गूजती है। सारे घर पर कब्जा करने के बाद मुह को लपेटे हुए कोई कह रहा है—'पराई आई मे कोई मत मरना।' लोग स्वांग छोडकर भाग निकले-लोगो को पराई आई मे नही मरना।

गाव की बेटी को बेटी मानना और गांव के महमान को महमान समझना। सोचता हू इन्सानियत के इतने गहरे रिश्तो को हो क्या गया है आज !!

लोक-नाट्य की मौलिकता इस बात मे नही है कि किसी पात्र का अभिनय कितना कलात्मक है या कि उसके मच की सज्जा कितनी भव्य है ! लोक-नाट्य मच की सबसे बडी मौलिकता उसके मूल मे निहित सामूहिक जीवन-पद्धति है। लोक-नाट्य मे कलाकार और दर्शक सहभोक्ता होते हैं।

सिनेमा देखते समय हम अंधेरे मे निष्क्रिय होकर बैठे रहते हैं। वहा अभिनय या गीतो से तादात्म्य नही होता कि हम अपना दर्शकपना भूलकर नायक के गीतो मे स्वर मिलाने लगे। सच बात तो यह है कि सिनेमा के दर्शक की कोई निजता या पहचान नही होती और जब खेल खतम होने पर पहचान होती भी है तो यह कि तुमने तीन रुपये के टिकट मे खेल देखा था। इसीलिए यदि यह सच है कि स्वाग सिनेमा के आगे नहीं टिक पाया तो यह भी सच है कि सिनेमा लोक-नाट्य मच का स्थान नही ले सकता। आज जाति, बिरादरी, धर्म, सम्प्रदाय, गुटबन्दी, दलबन्दी के विष से जन की सत्ता मूर्च्छित है परतु जब जन की सत्ता जागेगी, जब जनपद का कलाकार, जनपद का कवि और जनपद का गायक जागेगा तब स्वाग न सही, लोक के क्षितिज पर एक सशक्त नाट्य-मच उगेगा। जरूर उगेगा। और उस पर हम लोक को प्रतिष्ठित पायेंगे जिसके आगे वर्ण, वर्ग, धर्म और संप्रदाय की दीवालें बौनी हो जायेंगी।

ब्रज के पर्वोत्सव

राधेश्याम अग्रवाल

□□

'ब्रज' शब्द से ही एक विशिष्ट सस्कृति-सयुक्त भूखण्ड का चित्र प्रत्यक्ष होने लगता है। ब्रज है वह क्षेत्र जिसकी सास्कृतिक परम्पराए आनन्द-सागर मे मानव मन को डुबो देती हैं। ब्रज मे प्रत्येक दिन आनन्द और उल्लास का वातावरण विद्यमान रहता है। जीवन और गृहस्थ के सघर्ष तो सदैव चलेगे, किन्तु प्रभु चितन भी तो आवश्यक है। प्रात काल से ही भगवान श्रीकृष्ण की सेवा मे निरत जीव अपने जीवन के सुख को भुलाकर श्रीकृष्ण को सुख पहुचाने के लिए, गायन, वादन, शृगार, भोग, राग आदि की सेवा मे व्यस्त रहता है। इस प्रकार नित्य-सेवा करते हुए उसका प्रत्येक दिन उल्लासमय बन जाता है। फिर यदि कोई पर्व हो तो अपने लिए न सही, किन्तु अपने इष्ट-देवता की सेवा के लिए तो विशेष आयोजन करना ही पडता है। इस प्रकार सपूर्ण वर्ष भर ब्रज का वातावरण जीवन के सघर्षों के विद्यमान रहते हुए भी आनन्द और उल्लासमय बना रहता है।

भौगोलिक परिवेश के अनुरूप ही जीवन के क्रिया-कलाप निर्धारित होते है जिससे सस्कृति का निर्माण और विकास होता है। अत ग्रीष्म, वर्षा और शरद के अनुरूप ही उत्सवो का आयोजन किया गया है। फाल्गुन और चैत्र के मास मधुमय वसन्त ऋतु के मास हैं। शरद के पश्चात् बसन्त के आगमन पर न अधिक शीत रहता है और न ग्रीष्म ही आ पाती है। प्रकृति मे पतझड के उपरान्त नव विकास दृष्टिगत होने लगता है। नव किसलय, नव पल्लव, नव पुष्प और मजरी की सुगध वातावरण को मोहक बना देती है। आम पर बौर आने लगता है और कोयल कूकने लगती हैं। ब्रजवासी इस ऋतु का स्वागत विशेष उत्सवो के आयोजनो द्वारा करते है। माघ शुक्ला पचमी "बसत पचमी" कहलाती है। ऐसा लोक-विश्वास है कि इस दिन कामदेव का जन्म हुआ था। अत इस दिन कामदेव और रति की पूजा की जाती है। बसत राग का गायन होता है। मदिरो मे बसत राग और ध्रुपद धमार का गायन होता है। पीले वस्त्र धारण करते हैं, पीले मिष्टान्न द्वारा ठाकुरजी का भोग लगाया जाता है। ब्रजवासी भी पीले वस्त्र धारण करते हैं। बालिकाए अपने गुड्डे-गुडियो का शृगार पीले वस्त्राभूषणो द्वारा करती हैं। मदिरो मे आज से ही होली आरभ हो जाती है। ठाकुरजी पर गुलाल अबीर लगाया जाता है। सुगधित इत्र की बौछार की जाती है। सध्या समय ढाढा-ढाढी का नृत्य होता है जिसमे विविध वेष धारण कर पुरुष भगवान के समक्ष नृत्य करते है। फाल्गुनी शुक्ला अष्टमी से फाल्गुन पूर्णिमा तक मदिरो मे पानी की होली होती है। पुजारी इत्रो से सुवासित टेसू के रग का जल दर्शको पर बरसाते हैं।

होली ब्रज का प्रमुख पर्व है। होली के दिनो मे लोग बम (एक बडे नगाडे) को लेकर इकट्ठे होकर गाते-बजाते पूरे गाव, गली-गली घूमते है। उनके साथ डफ, ताल, मजीरे, ढोलक आदि होते हैं। स्त्रियां इन पर गुलाल डालती हैं। मथुरा के चतुर्वेदी समाज मे 'तान' नामक गायन बहुत प्रसिद्ध हैं। होली के पश्चात्

इनको नगाड़ो पर गाते हुए निकलते हैं।

ब्रज के कुछ स्थानो के होली के मेले, जिन्हे हुरगा कहा जाता है, बडे प्रसिद्ध है। जैसे—

आन्यौर और जतीपुरा का हुरंगा—गोवर्धन पर्वत के एक ओर आन्यौर और दूसरी ओर जतीपुरा ग्राम है। आन्यौर मे स्त्री-पुरुष दोनो गाते और नृत्य करते है। स्त्रिया गाते नाचते पुरुषो को छोटे-छोटे डण्डो से पीटती चलती हैं। जतीपुरा मे श्रीनाथजी के मुखारविंद मे होली होती हैं। नृत्य और रसिया गायन के उपरान्त होली प्रारभ होती है।

बलदेव (दाऊजी) का हुरगा—चैत्र कृष्णा द्वितीया को बल्देव के दाऊजी के मदिर का हुरगा बहुत प्रसिद्ध है। प्रात समाज होती है जिसमे होली सबंधी कीर्तन प्रस्तुत किए जाते हैं। दुपहर मे हुरगा होता है। गांव के पडो की स्त्रिया हाथ मे कोडे लेकर पुरुषो पर प्रहार करती हैं। पुरुष उनके वार का बचाव करते हैं तथा स्त्रियो पर रग गुलाल आदि डालते हैं। लोक गायक वाद्य-यत्रो पर लोक-गीत गाते रहते हैं। इनके मध्य एक ध्वजा होती है। जिसकी टोली का स्त्री-पुरुष इस ध्वजा को पहले ले जाता है उसी टोली की जीत मानी जाती है और हुरगा समाप्त हो जाता है।

मधुवन का हुरगा—यह हुरगा चैत्र कृष्णा द्वितीया और तृतीया को होता है। दिन मे पानी की होली होती है। शाम को लठमार होली होती है। रात्रि को चरकुला नृत्य होता है। ग्राम की नव विवाहित वधुए सिर पर लकडी के बने कलशों पर दीपक रखकर नृत्य करती है। पुरुष खरताल बजाकर नृत्य मे सहयोग करते हैं। लोकगीत, रसिया गाते हैं।

नदगांव और बरसाने का हुरगा—यहा की लठमार होली बहुत प्रसिद्ध है। फाल्गुन शुक्ला नवमी को नदगाव के हुरियारे बृषभानु किशोरी राधा जी के गाव बरसाने जाते है। श्री लड़ली लाल के मदिर मे उनका भाग ठडाई से स्वागत किया जाता है। उसके पश्चात् नदगाव के हुरियारे बरसाने की युवतियो को होली खेलने का निमत्रण देते हैं। युवतिया 'रग गली' मे उन्हे घेर लेती हैं और उन पर लट्ठो से प्रहार करती है। युवक इन प्रहारो को सिर पर मुडासा बाधकर तथा हाथ मे ढाल लेकर बचाते है। बहुत देर तक इस प्रकार की होली होने के उपरान्त बरसाने की युवतिया किसी हुरियारे युवक को लहगा-ओढनी पहना कर वृजभानु सरोवर का पूजन कराती हैं। दूसरे दिन बरसाने के युवक नदगाव मे जाकर होली खेलकर आते हैं।

द्वितीया को जाब और बठैन ग्राम मे भी लठमार होली होती है किन्तु युवक युवतियो के लट्ठो के प्रहार को बबूर की जेरी पर रोकते हैं। ढाल हाथ मे नही लेते।

फालेन की होली—एक आश्चर्य है। फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन एक पडा केवल एक वस्त्र धारण कर जलती हुई होली मे कूदकर निकलता है। उसके पश्चात् होली होती है।

चैत्र कृष्णा द्वितीया को ही राधाकुड के समीप मुखराई ग्राम मे झूला नृत्य होता है। झूला मे लोहे के पहियो के चारो ओर दीपक जलाए जाते हैं। मध्य मे सात कलश होते है जो क्रमश छोटे होते जाते हैं। इसको सिर पर रखकर नर्तकी नृत्य करती है तो अनोखी शोभा हो जाती है।

चैत्र शुक्ला पचमी को रग-पचमी कहा जाता है। वृन्दावन मे 'गोपेश्वर महादेव के' मदिर मे और बाद ग्राम मे राधा कृष्ण के मदिर मे हुरगा होता है। समेसपुर (सादाबाद) ग्राम मे ठाकुरजी का मेला लगता है इसी दिन दिल्ली मार्ग पर स्थित छटीकरा ग्राम के श्री गरुण गोविन्द जी के प्राचीन मदिर मे मथुरा के सर्राफ हुण्डा का आयोजन करते हैं, जिसमे उपस्थित व्यक्तियो को नि शुल्क भोजन कराया जाता है।

होली के सात दिन बाद जो सोमवार, बुधवार या शुक्रवार होता है उस दिन शीतला माता की पूजा

का उत्सव आयोजित किया जाता है। बासी पकवानो से शीतला माता का भोग लगाते हैं। कुत्ता, चौराहा, बुडिया और ममानी (श्मशानी) देवी की पूजा की जाती है।

चैत्र कृष्णा नवमी को वृन्दावन मे 'रथ मेला' होता है भगवान श्री रगनाथ को विशाल लकड़ी के रथ पर विराजमान करते हैं और भक्त जन उस रथ को खीचते हैं।

चैत्र प्रतिपदा से नव-सवत्सर प्रारभ होता है। इस दिन ब्रज में विशेष उत्सव होते हैं। प्रतिपदा से ही ब्रज के समस्त दुर्गा मन्दिरो मे शृगार, भोग, राग, पूजा, गायन वादन का विशेष आयोजन पूरे नव दुर्गा तक रहता है। भैंस वहोरा के मन्दिर के पास स्थित चतुर्वेदियो की बगीचियो मे फूल डोल आयोजित होते हैं। फूलो से देवताओ का शृगार होता है। काव्य सगीत की महफिलें जमती हैं। अखाडो को सुसज्जित किया जाता है। करौली (राजस्थान), नरीसेमरी, चामुडा, महाविद्या, ककाली, चर्चिका, योगमाया (मथुरा), मुखराई, मनसा-देवी (गोवर्धन), गौरी (अलीपुर), विमला (कामवन), चौवारी, साचौली सकेत (बरसाना), साबरी देवी (सेई गाव), आनन्दी देवी (लोहवन), महिष मर्दिनी (गिरिधरपुर), अकबरपुर नई सेमरी की देवी के मेला प्रसिद्ध हैं।

चैत्र शुक्ला तृतीया को गनगौर के मेले मे कन्याए गनगौर की पूजा करके उनकी मूर्तियो को यमुना मे विसर्जित करती हैं।

चैत्र शुक्ला छठ को यमुना जी का जन्म दिवस का मेला आयोजित होता है। विश्राम घाट और दक्षिण कोटि के घाटो पर फूल-डोल का आयोजन होता है।

चैत्र शुक्ला अष्टमी को वृन्दावन माग की बगीची और अखाडो का फूलडोल होता है।

चैत्र शुक्ला नवमी को भगवान श्रीराम की जयती बडे उत्सव से सपूर्ण ब्रज मे मनाई जाती है। ब्रज मे भगवान श्रीराम जानकी के मदिर भी काफी हैं। इनमे विशेष रूप से उत्सव होते हैं। कृष्ण मदिरो मे भी राम जन्मोत्सव होता है। मुख्य उत्सव श्री राजी द्वारे के श्री राम मदिर मे होता है जब तुलसीदास यहा पधारे तो उन्हे भगवान कृष्ण ने राम के रूप मे दशन दिये।

चैत्र शुक्ला एकादशी को भूतेश्वर (मथुरा) के निकट के मन्दिरो और बगीचियो पर फल डोल होता है।

ग्रीष्म के प्रारभ मे बैशाख मास मे शीतल जल, कूप, छत्र आदि दान का महात्म्य जनमानस म विद्य-मान है। बैशाख शुक्ला तृतीया को अक्षय तृतीया कहते है। इस दिन शीतल पेय आदि का दान किया जाता है। मदिरो मे विशेष झाकिया होती हैं। परशुराम जी का जन्म-दिवस मनाया जाता है। बैशाख शुक्ला चतुर्दशी को नृसिह भगवान के अवतार का उत्सव मनाया जाता है। बैशाख पूर्णिमा की चादनी रात मे ब्रजवासी ब्रज-क्षेत्र की परिक्रमा करते है।

ज्येष्ठ की अमावस्या को वट अमावस्या कहा जाता है। स्त्रिया सौभाग्य प्राप्ति के लिए वट वृक्ष की पूजा करती हैं और उसके नीचे बैठकर सावित्री सत्यवान के आख्यान कहती हैं। सावित्री, सत्यवान और धर्मराज की पूजा करती हैं और व्रत रखती हैं।

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को नर नारी दशहरा का उत्सव मनाते हैं। प्रात यमुना गगा मे स्नान करते हैं और स्नान करने का बडा पुण्य मानते हैं। इसे गगा-दशहरा भी कहा गया है। स्नान के उपरान्त शीतल वस्तुओ का दान करते हैं। गगा को पृथ्वी पर लाने वाले सूर्यवशी नरेश भगीरथ का जन्म दिवस आज के दिन मनाते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को निर्जला एकादशी कहा जाता है। इस दिन जल तक नही पान करते हैं।

केवल चरणामृत मात्र पान करते हैं। इस एकादशी व्रत का ब्रज में सर्वाधिक प्रचलन है।

ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को भगवान के कच्छप अवतार की जयन्ती मनाई जाती है। कच्छप भगवान की प्रतिमा का पूजन किया जाता है।

ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को देव मदिरो मे जल-यात्रा का उत्सव मनाया जाता है। देव प्रतिमाओं का पुष्पो से शृगार करते हैं। फूलो का बगला, फव्वारे, जल-सरोवर आदि बनाकर मदिरो मे उत्सव सम्पन्न किया जाता है।

आषाढ शुक्ला द्वितीया को देव मदिरो मे रथ यात्रा का उत्सव मनाया जाता है। जगन्नाथपुरी में इसी दिन भगवान जगन्नाथ की रथ यात्रा होती है। उसी के सन्दर्भ मे ब्रज मे यह उत्सव मनाया जाता है।

आषाढ़ शुक्ला एकादशी को देवशयनी एकादशी कहते हैं। इस दिन देवता चातुर्मास के लिए शयन करते हैं। देव-मदिरो मे देव-शयन का उत्सव आयोजित किया जाता है। पूर्णिमा के दिन गुरून महाराज की पूजा करने के कारण यह गुरु पूर्णिमा कही जाती है।

श्रावण मास वर्षा ऋतु का मास है। इस मास मे देव-मदिरो मे नाना प्रकार के उत्सव बगले, झूला, घटा और झाकिया होती हैं। मथुरा मे द्वारिकाधीश का मदिर और वृन्दावन मे श्री बाकेबिहारी जी का मदिर मुख्य आकर्षण के केन्द्र रहते हैं। श्रावण मास के चारों सोमवार को शिव मदिरो मे विशेष पूजा सम्पन्न होती है। तथा सायकाल इनको बडे भव्य रूप मे सजाया जाता है।

हरियाली तीज श्रावण मास के शुक्ल पक्ष मे मनाई जाती है। इस दिन स्त्रिया घरो मे पकवान बनाती हैं। बाग मे आकर झूला झूलती हैं और श्रावण के गीत गाती है। इस काल तक समस्त ब्रज-प्रदेश हरियाली छा जाने के कारण रम्य हो जाता है।

श्रावण कृष्णा पचमी को नाग पचमी का उत्सव आयोजित होता है। इस दिन स्त्रिया नये वस्त्र आभूषण धारण कर बाग आदि स्थानो मे सर्प की बाबी का पूजन करती हैं। बडा मेला लगता है। नाग को दूध पिलाने का विशेष महत्व होता है।

श्रावण मास के अत मे पूर्णिमा के दिन भाई द्वारा बहन की रक्षा के वचन का प्रतीक 'रक्षा बन्धन' का पव मनाया जाता है।

भाद्र मास मे कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव मुख्य होता है। आज के दिन भगवान कृष्ण ने इस धरा-धाम पर जन्म लिया था। मुख्य उत्सव श्रीकृष्ण जन्म स्थान पर होता है। भगवान के जन्म की लीला प्रदर्शित की जाती है। रात्रि को १२ बजे श्री द्वारिकाधीश के मदिर मे श्रीकृष्ण जन्म का उत्सव मनाया जाता है। पचामृत से भगवान को स्नान कराया जाता है। ब्रज के सभी मदिरो मे श्रीकृष्ण जन्म का उत्सव होता है। दूसरे दिन नवमी को नद-महोत्सव का उत्सव होता है। गोकुल मे यह उत्सव विशेष रूप से सम्पन्न होता है। दही, हल्दी, चदन, कपूर आदि भक्तो पर छिडका जाता है। सभी गाते हैं—

नद के आनन्द भये जै कन्हैया लाल की,
हाथी दीने घोडा दीने और दीनी पालकी।

भाद्रपद शुक्ला तृतीया को स्त्रिया हरतालिका व्रत करती हैं। यह सौभाग्य दायक माना जाता है। इसी प्रकार भाद्र शुक्ला पचमी को ऋषि-पचमी का व्रत कन्याए अवश्य करती हैं।

भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को श्रीकृष्ण के बडे भाई बलराम का जन्म दिवस का उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव का मुख्य केन्द्र हाथरस बलदेव और सतोहा है। यहा बडे मेले लगते है। माखन-मिश्री का भोग लगाया जाता है।

भाद्र शुक्ला अष्टमी को राधा अष्टमी कहा जाता है। इस दिन गोकुल के निकट रावल ग्राम में भगवान कृष्ण की परम प्रिया वृजभानु नदिनी राधाजी का जन्म हुआ था। रावल और बरसाना इस उत्सव के मुख्य केन्द्र होते हैं। प्रसिद्ध सगीतज्ञ महात्मा स्वामी हरिदास जी का जन्म दिन भी आज ही मनाया जाता है। वृन्दावन मे श्री बाके बिहारी के मन्दिर निधिवन और तट्टी स्थान मे यह उत्सव मुख्य रूप से मनाया जाता जाता है।

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को भगवान के वामन अवतार धारण करने के उपलक्ष मे उत्सव मनाया जाता है। इसे वामन द्वादशी कहते हैं।

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को अनन्त भगवान का पूजन होता है। यह अनन्त चतुर्दशी कहलाती है। पाडव जुए मे सब कुछ हार गए तब उन्होने श्रीकृष्ण से अपने कष्ट—निवारण का उपाय पूछा। उन्होने अनन्त भगवान का पूजन करने का आदेश दिया। इससे उन्हे पुन राज्य की प्राप्ति हुई।

आश्विन मास मे पितृ और देव कार्यों की साधना की जाती है। इसके पूर्वार्द्ध मे श्राद्ध आदिक कर्म और उत्तरार्द्ध मे दुर्गा पूजन नव रात्रि, सरस्वती पूजन, शरद महोत्सव आदि सपन्न होता है। श्राद्ध पक्ष आश्विन कृष्णा १ से १५ तक रहता है। पितृ पूजन के रूप मे ब्राह्मणो को भोजन, वस्त्र, द्रव्य दान किया जाता है।

आश्विन शुक्ला एक से नवमी नक प्रतिदिन दुर्गा पूजा हवन, पाठ और व्रत किए जाते हैं और नवमी को दुर्गा मदिरो मे विशेष पूजा की जाती है। दशवी को भगवान रामचन्द्र द्वारा रावण वध के उपलक्ष मे विजयादशमी का पव मनाया जाता है। सभी वैष्णव—मदिरो मे अस्त्र, शस्त्र, अश्व आदि का पूजन होता है, आश्विन मे स्थान-स्थान पर राम लीलाओ का आयोजन होता है। आश्विन शुक्ला एकादशी को पापाकुश एकादशी कहते है। और द्वादशी को पद्मनाभ द्वादशी कहते हैं। इस दिन पद्मनाभ भगवान विष्णु उठने के लिए अगडाई लेते हैं और कमल मे स्थित ब्रह्मा उन्हें जगाने के लिए ऊकार का नाद करते हैं।

आश्विनी शुक्ला चतुदशी भगवान वाराह का जन्म दिवस है। इस दिन हिरण्याक्ष वध की कथा श्रवण की जाती है एव भगवान वराह का पूजन किया जाता है।

आश्विन मास की पूर्णिमा शरद पूर्णिमा कहलाती है। इस दिन राधा-कृष्ण की प्रतिमाओ को सफेद वस्त्राभूषणो से अलकृत कर शरद—ज्योत्स्ना मे विराजमान कर शीतल दुग्ध, खीर आदि पदार्थों का भोग अर्पित किया जाता है। भगवान कृष्ण ने इसी दिन महारास प्रारभ किया था।

कार्तिक चातुर्मास्य ब्रज का अतिम मास है। इस मास मे ब्रज मे यमुना स्नान, तुलसी-पूजन एव भूमि, अन्न, वस्त्र, स्वर्ण, शैया आदि दान का विशेष महत्व माना जाता है। भगवान राधा दामोदर का नित्य पूजन, यमुना-स्नान एव कार्तिक मास के अत म राधा—दामोदर स्वरूप ब्राह्मण-ब्राह्मणी को भोजन कराकर वस्त्र, द्रव्य आदि दान दिया जाता है। यमुना मे साय दीप-दान किया जाता है। इससे यमुना की शोभा अपूव हो जाती है।

कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को करवा-चौथ कहा जाता है। इस दिन सुहागिनी स्त्रिया अपने सुहाग की रक्षा के लिए व्रत रखती हैं।

कार्तिक कृष्ण अष्टमी को स्त्रिया अहोई नामक देवी का चित्र अकित करके पूजती हैं तथा जल भरा कुभ उसके सामने रखती है। इसके जल से रूप चतुदशी को बच्चो को स्नान कराती हैं। द्वादशी को गौर और बछडो का पूजन किया जाता है। यह गोत्सव द्वादशी कहलाती है।

त्रयोदशी ब्रज मे धन तेरस के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन घरो को साफ करके, लीप पोत कर साय

समय लक्ष्मी जी का आह्वान किया जाता है।

चतुर्दशी रूप चतुर्दशी या नरक चतुर्दशी के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन यम से मुक्ति के लिए प्रात काल तैलादिक लगाकर जल से स्नान किया जाता है। सांय दीपदान करते हैं। इस दिन भगवान कृष्ण ने नरकासुर का वध भी किया था।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या को दीपावली का पर्व बडे उल्लास से सपूर्ण ब्रज मे मनाया जाता है। सांय यमुना, मानसी गगा (गोवर्धन) आदि नदियो-पदो पर दीपदान किया जाता है। रात्रि को लक्ष्मी-गणेश का पूजन किया जाता है।

प्रतिपदा को अन्नकूट महोत्सव मनाया जाता है। गोबर के गोवर्धन बनाकर पूजा की जाती है। ब्रज मे इस पर्व का विशेष महत्व है। भगवान कृष्ण ने इसी दिन ब्रज से इन्द्र की पूजा बद कराकर गोवर्धन की पूजा प्रारभ की और विविध पकवानो का भोग लगाया। उसी रूप मे यह महोत्सव आज भी मनाया जाता है। इस महोत्सव का मुख्य केन्द्र गोवर्धन मे जतीपुरा ग्राम है।

द्वितीया का पर्व यमद्वितीया कहलाता है। इस दिन मथुरा मे यमुना-स्नान का विशेष महोत्सव होता है। भाई और बहिन साथ-साथ स्नान करते हैं। भाई-बहिन को यथाशक्ति वस्त्र अलकार आदि देकर सतुष्ट करता हैं। कहते हैं कि इम दिन यमुना मे स्नान करने से मनुष्यो को यम लोक प्राप्त नही होता।

कार्तिक शुक्ला अष्टमी को ब्रजवासी व्रत रखते है और गौ का पूजन करके साय भोजन करते है। यह गोपाष्टमी कहलाती हे। इसी दिन भगवान कृष्ण ने गोचारण प्रारभ किया था।

कार्तिक शुक्ला नवमी अक्षय नवमी कहलाती है। कहते हैं कि इसी दिन सतयुग प्रारभ हुआ था। अत ब्रजवासियो का यह महान धार्मिक पर्व है। इस दिन मथुरा, वृन्दावन आदि की परिक्रमा की जाती है और आवले के वृक्ष के पूजन का विशेष महत्व होता है।

दशमी को कस-वध का मेला होता है। कस का बडा पुतला बनाकर मथुरा के चतुर्वेदी उसे लट्ठो से पीटते हैं।

एकादशी देवोत्थान या प्रबोधिनी एकादशी कही जाती है। इस दिन विष्णु भगवान का जागरण-उत्सव मनाया जाता है। ब्रजवासी व्रत रखते है और मथुरा, गरुडगोविंद, वृन्दावन की परिक्रमा करते हैं।

चतुदशी बैकुठ चतुर्दशी कही जाती है। भगवान बैकुठनाथ का पूजन किया जाता है और उनकी सवारी निकाली जाती है। इस सवारी के साथ चलने वाला व्यक्ति बैकुठ का अधिकारी हो जाता है।

कार्तिक पूर्णिमा को यमुना पर कार्तिक स्नान की समाप्ति करके राधा-कृष्ण का पूजन, दीपदान, शैयादि दान तथा ब्राह्मणो को भोजन कराया जाता है। इस दिन भगवान शकर का त्रिपुरोत्सव भी मनाया जाता है।

मार्गशीर्ष मे शुक्ल पक्ष की एकादशी को गीता-जयन्ती का उत्सव मनाया जाता है। एकादशी का व्रत भी नर-नारी मार्गशीर्ष मास से ही प्रारभ करते हैं। पौष मे एकादशी व्रत का विशेष महात्म्य होता है।

माघ मास मे प्रत्येक शनिवार को ब्रज मे कोकला वन की परिक्रमा और स्नान का उत्सव होता है। शुक्ल पक्ष मे कोयल कूकने लगती हैं। बसन्त ऋतु प्रारभ हो जाती है।

फाल्गुन कृष्णा नवमी को जानकीजी का जन्म दिवस मनाया जाता है। फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को महाशिवरात्रि का उत्सव मनाया जाता है। भगवान शिव की विशेष पूजा अर्चना होती है और शिव-मदिरो

को सजाया जाता है तथा गायन-वादन के कार्यक्रम आयोजित होते हैं। इसके पश्चात् होली आ जाती है और सम्पूर्ण ब्रज होली के रग मे रग जाता है।

इस प्रकार वर्ष भर ब्रज पर्व और उत्सवो के रगो मे रगा थिरकता आनन्द और उल्लास प्रदान करता रहता है।

ब्रज के तीर्थ

तोताराम 'पकज'

□□

ब्रजमण्डल भगवान का लीलाधाम है। प्राचीन काल से ही ब्रज धार्मिक क्षेत्र के रूप मे प्रसिद्ध रहा है। भारत के प्राय सभी प्रमुख धम—वैष्णव धर्म, शिवशाक्त धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, निर्गुण-सगुण धर्म ब्रज के साथ-साथ फले-फूले हैं। सभी धर्म सम्प्रदायो ने अपनी-अपनी धार्मिक भावनाओ का प्रसार-प्रचार किया है। ब्रज मे सभी उपासना स्थल, देव स्थान, मन्दिर, स्तूप, विहार, गिरजाघर, मस्जिद और उपास्य देवी-देवताओ तथा सत-महात्मा और धार्मिक भक्त समुदाय की मूर्तिया एव उनके भाव-चित्र, पूजा-स्थल, आश्रम, साधना-स्थल आदि दशनीय हैं। ब्रज मे कला, धम और उपासना की त्रिवेणी प्रवाहित है। जिसमे धार्मिक भक्त स्नानकर पुण्यलाभ प्राप्त करते हैं। ब्रज मे कला का मुख्य उद्देश्य इष्टोपासना की सिद्धि एव धर्म के प्रचार का प्रमुख साधन रहा है।

मथुरा-मधुपुरी—वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा नगरी है। प्राचीन काल मे मथुरा शूरसेन जनपद था। वाल्मीकि रामायण तथा पुराणो के उल्लेखानुसार यादवो मे मधु नामक एक प्रतापी एव बडा धार्मिक और न्यायप्रिय शासक था, किन्तु मधु का पुत्र लवण बडा क्रूर, दम्भी, अत्याचारी और दैत्य स्वभाव का था, जिसने मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम को ही युद्ध के लिए आमत्रण भेज दिया। भगवान श्रीराम ने अपने लघुभ्राता शत्रुघ्नजी को लवण से युद्ध करने भेज दिया। शत्रुघ्नजी ने मधुपुरी पर धावा बोल दिया। शत्रुघ्नजी के साथ उनका पुत्र शूरसेन भी था, जिसने दैत्यासुर लवण को मारकर मधुपुरी पर अधिकार कर लिया। लवण के कारण ही मधु को पुराणो मे कही-कही दैत्य, असुर, दानव आदि कहा गया। मधु लोकप्रिय शासक धार्मिक व्यक्ति था। मधु ने शिवाजी की तपस्या कर शिवजी से एक अमोघ त्रिशूल प्राप्त किया था।

मथुरा के दर्शनीय स्थल—वासुदेव श्रीकृष्ण जन्म भूमि मथुरा नगरी मे कई दर्शनीय स्थल हैं, जहां अनेको श्रद्धालु भक्त जन दर्शनार्थी आते हैं और जमुनामैया मे स्नान कर विविध मन्दिरो में भगवान की झांकी

के दर्शन कर कृतार्थ होते हैं। मथुरा के देव मन्दिरों मे श्रीकेशवदेवजी का मन्दिर, श्रीद्वारकाधीशजी का मन्दिर, मुकुट मन्दिर, श्रीकृष्ण-बलदेव मन्दिर, मुरली मनोहर मन्दिर, राधादामोदर मन्दिर, जमुना-कृष्ण मन्दिर, नीलकठेश्वर और भूतेश्वर महादेव मन्दिर, अन्नपूर्णा मन्दिर, लागुली हनुमान मन्दिर, नृसिंह मन्दिर, चतुर्भुजी ब्रह्म मन्दिर, चतुर्भुज विष्णु भगवान मन्दिर तथा महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की बैठकें आदि मथुरा के दर्शनीय तीर्थ-स्थल हैं।

श्रीकेशवदेवजी का मन्दिर—भगवान् श्रीकृष्ण जन्मभूमि पर निर्मित श्रीकेशवदेवजी का मन्दिर मथुरा के देवालयों मे अपनी प्राचीन परम्परा के कारण प्रसिद्ध है। द्वापर मे इस स्थान पर कस का कारागार था, जिसकी एक कोठरी मे भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। उसी स्थान पर श्रीकेशवदेवजी का मन्दिर था जिसे सिकन्दर लोदी ने नष्ट कर दिया था। इसी स्थान पर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने विशाल मन्दिर बनवाया था जिसे महमूद गजनवी ने पूर्णतया ध्वस्त कर दिया था। उसके उपरान्त सवत् १२०७ वि मे कन्नौज के राजा विजयपाल देव ने बनवाया था जिसे १५७३ मे नष्ट कर दिया गया। अन्त मे ओरछा नरेश वीरसिंह देव द्वारा निर्मित श्रीकेशवदेवजी का मन्दिर औरगजेब ने तुड़वाकर एक मस्जिद बनवा दी थी।

श्रीद्वारकाधीशजी का मन्दिर—मथुरा के वर्तमान मन्दिरो मे श्रीद्वारकाधीशजी का मन्दिर सबसे बड़ा विशाल, वैभवशाली और सबसे पुराना मन्दिर है। यह मन्दिर शहर के मध्य असिकुडा बाजार मे स्थित है। श्रीद्वारकाधीशजी के मन्दिर की छटा ही निराली है। इस मन्दिर मे दर्शन-झांकी, सेवा-पूजा, कथा-वार्ता, भजन-कीर्तन, रास, झूला-हिंडोले आदि की बड़ी सुव्यवस्था है। इस मन्दिर मे भगवान के जन्म से लेकर सभी लीलाए मन्दिर की दीवारो पर अकित हैं। श्रीद्वारकाधीशजी के मन्दिर मे हिंडोले, झूला और घटा आदि के मनोहारी दर्शन प्रदर्शित किये जाते हैं। ब्रज की धार्मिक भावना से ओतप्रोत देश के कोने-कोने से असख्य दर्शनार्थी प्रतिवर्ष मथुरा आते हैं और भगवान की झाकी का लाभ उठाते हैं। भक्त यात्रियो के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र श्रीद्वारकाधीशजी का मन्दिर है।

मथुरा के अन्य मदिरो मे श्रीमदनमोहनजी, श्रीदाऊजी, श्रीगोकुलनाथजी, महाविद्यादेवी, श्रीपद्मनाभ जी, श्रीदीर्घविष्णुजी, शैव-स्थल वीरभद्रेश्वरजी का मन्दिर, श्रीभूतेश्वर महादेवजी के मन्दिर प्रमुख तीर्थस्थल हैं। शिवजी के चार प्रमुख हैं—उत्तर दिशा मे गोकर्णेश्वर, दक्षिण मे रगेश्वर, पश्चिम मे भूतेश्वर और पूर्व मे पिप्पलेश्वर, चारो महादेव चार ओर से मथुरा की रक्षा करते हैं। इन चारो शिवमूर्तियो को मथुरा का कोतवाल (नगर रक्षक) कहा जाता है।

गीता मन्दिर—यह मन्दिर मथुरा नगर के बाहर वृन्दावन सडक पर बना हुआ है। यह बड़ा भव्य मन्दिर है। मन्दिर के समीप गीता स्तम्भ है। इस स्तम्भ पर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतगीता के श्लोक उत्कीर्ण हैं। पास ही गीता धर्मशाला है, जिसमे दूर से आनेवाले दर्शनार्थी ठहर जाते हैं। गीता मन्दिर श्रीलक्ष्मीनारायण मदिर के अधीन श्री घनश्यामदास बिडला ने बनवाया था। गीता मन्दिर मे विविध प्रकार के चित्र, रथ पर आरूढ, सारथी गीतायक वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान् की मूर्ति और रथ मे आसीन गुडाकेश अर्जुन विद्यमान है। दर्शन के साथ-साथ भारती वाङ्मय गीता के चुने हुए शास्त्र समत उपदेशात्मक वचन भी मिल जाते हैं। मन्दिर में देव मूर्तियो की सरचना कला के दर्शन होते हैं।

मथुरा के अन्य दर्शनीय स्थल—वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म भूमि एव लीला भूमि मथुरा का दार्शनिक, धार्मिक तीर्थ स्थलो मे महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि मथुरा मे वासुदेवोपासना का प्राधान्य रहा है, किन्तु साथ ही अन्य देवी-देवताओ के मन्दिरो तथा अन्य धर्म सम्प्रदायो का भी प्रचार-प्रसार एव धार्मिक भावनाओं का आधिक्य रहा है। देव मन्दिरो मे भगवान् विष्णु, ब्रह्माजी, शिव, इन्द्र, अग्नि, धन के स्वामी

कुबेर, राम-कृष्ण, हनुमान तथा बलराम के स्वरूप तथा नवग्रहो की प्रतिमाए भी विभिन्न मन्दिरों मे उपलब्ध हैं। देवो के साथ ही उनकी शक्ति रूपा देवियो की प्रतिमाए भी विद्यमान हैं। जैसे विष्णु भगवान् के साथ लक्ष्मीजी, ब्रह्माजी के साथ सावित्रीजी, शिवजी के साथ शिवा पार्वतीजी, श्रीराम के साथ सीताजी, श्रीकृष्ण के साथ राधाजी, सूर्य के साथ प्रभाजी, बलदेवजी के साथ रेवतीजी, रामभक्त हनुमानजी, सिंहवाहिनी दुर्गाजी, सरस्वतीजी, सप्त मातृका, गगा-यमुना की भव्य मूर्तिया स्थापित हैं।

मथुरा नगरी बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र है। भगवान् बुद्ध के मथुरा आगमन से बौद्ध धर्म का प्रभाव अत्यधिक बढा। कई स्तूपो और बिहारो की स्थापना होने लगी। बौद्ध धर्म मे सर्वास्तिवाद का प्रणयन है। जैन धर्म का गढ ब्रजमण्डल की मथुरा नगरी मे स्थापित है। यहा कई जैन केन्द्र हैं।

इत बरहद, उत सोननद, उत सूरसेन को गाम।
ब्रज चौरासी कोस मे, मथुरा मडल धाम॥

कहा जाता है कि जिस स्थान पर मथुरा नगरी बसी हुई है, उस स्थान पर पहले निर्जन बृहद् मधुवन नाम का बडा भयकर जगल था। ब्रजमण्डल मे बारहन वन और चौबीस उपवन बताये जाते हैं। कहा जाता है कि द्वारकापुरी का अन्त हो जाने पर श्रीकृष्ण के पौत्र और अजिरुद्ध के पुत्र वज्रनाभ ने द्वारका से आकर यहा की उजडी हुई मथुरा नगरी को पुन बसाया तथा विभिन्न स्थानो मे श्रीकृष्ण की ललित लीलाओ से सम्बन्धित आठ मूर्तियो का निर्माण कराया था—

"चार देव, दुइ नाथ, अर दुइ गोपाल बखान।
वज्रनाभ प्रगटित किये, अष्ट मूर्ति परमान॥"

गोवर्धन-पूजा का पव ब्रज के सभी नगर और गावो मे मनाया जाता है। गोवर्धन-पूजा का सर्वत्र प्रचार है। गोवधन-पूजा धन की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी का पूजन दिवाली के अवसर पर किया जाता है। गोवर्धन स्वरूप भगवान् विष्णु (वासुदेव श्रीकृष्ण) और उनकी शक्ति महालक्ष्मीजी का पूजन कार्तिक बदी त्रियोदशी (धनतेरस) से प्रारम्भ हो जाता है। चौदस को यमराज की पूजा होती है। अमावस्या को लक्ष्मीपूजन और कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को अन्नकूट महोत्सव मनाया जाता है। गोवर्धन के स्वरूपो मे यह प्रकृति पूजा और गो-सवर्धन पूजा है। दिवाली पर गाय-बैल और भैंस की पूजा प्रकृति पूजा है। कार्तिक शुक्ला द्वितीया को यमतनया यमुनाजी (भैया दूज) मे भाई-बहन हाथ मे हाथ मिलाकर स्नान करते हैं। बहन की यह आकाक्षा होती है कि अगले जन्म मे यही भाई मुझे मिले। इसलिये भैया दौज को यमुनाजी मे स्नान करने की प्रथा है।

श्रीनाथजी का मन्दिर—गोवधन मे गिरिराज पहाडी पर एक कन्दरा से देव-विग्रह का प्राकट्य हुआ था। श्रीमाधवेन्द्रपुरी ने उनका नाम 'गोपाल' रखकर सेवा-पूजा का आयोजन प्रारम्भ किया और एक 'गोपाल' मन्दिर का भी निर्माण कराया था। सिकन्दर लोदी ने वह मन्दिर नष्ट कर दिया। महाप्रभु वल्लभाचार्य के गोवधन पहुचने पर उनकी प्रेरणा से अम्बाला के हरिभक्त पूरनमल खत्री ने श्रीनाथजी का पक्का मन्दिर बनवाया था। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी न 'गोपाल' देव-विग्रह का नाम 'श्रीगोवधननाथ' अथवा 'श्रीनाथजी' रखा। पहले कच्चे मन्दिर म श्रीनाथजी को विराजमान करा दिया था। बाद मे सवत् १५५६ वि की वैशाख शुक्ला तीज (अक्षय तृतीया) को श्रीपूरनमल खत्री ने श्रीनाथजी का पक्का और भव्य मन्दिर का निर्माण कराया।

श्रीगिरिराजजी का मुखारविन्द—यह एक प्राकृतिक शिला खण्ड है जिसकी पूजा-सेवा यहां बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ की जाती है। वल्लभ सम्प्रदाय की मान्यता है कि वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान ने देवराज इन्द्र

की पूजा बन्द कराकर गिरिराज की पूजा का आयोजन किया था। उस समय जो प्रचुर मात्रा मे खाद्य सामग्री का भोग लगाया गया था। उसे स्वयं श्रीकृष्ण भगवान ने गिरिराज के रूप मे आरोग्य अथवा भक्षण किया था। इसलिए गिरिराज पहाडी को श्रीकृष्ण का ही स्वरूप माना जाता है।

मानसी गंगा—प्राचीन काल मे मानसी गगा एक बरसाती नदी थी, जिसे गोवर्धन के धार्मिक क्षेत्र में प्रवाहित होने के कारण पवित्र समझा गया। मानसी गगा को भगवान श्रीकृष्ण के मन से उत्पन्न धवल धारा वाली गगा के समान पावन माना जाता है। सवत् १६३७ वि मे आमेर के राजा भगवानदास ने गोवर्धन में यहा के प्राचीन देव-विग्रह श्रीहरिदेवजी का मन्दिर बनवाया था।

गोवर्धन गाव के पास ही 'दान घाटी' नामक व्रज का तीर्थ स्थल है। इस धार्मिक स्थान को भगवान श्रीकृष्ण की 'दान लीला' का प्राचीन स्मृति चित्र समझा जाता है। यहां दानीरायजी का एक छोटा-सा मन्दिर भी है।

राधाकुंड-कृष्णकुंड—गोवर्धन की परिक्रमा मे राधाकुड आता है। राधाकुड ब्रज का प्रमुख लीला-स्थल है। इस स्थान पर दो पक्के जुड़वा सरोवर हैं, जो राधाकुड और कृष्णकुड के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसकी पूर्वी दिशा मे अरिष्ट वन है, जहा श्रीकृष्ण ने अरिष्ट नामक दैत्य का सहार कर इस जलाशय मे स्नान किया था इसलिए इस जलाशय का नाम कृष्णकुड कहा जाने लगा। मिला हुआ राधा कुड है। इस पुण्य स्थल पर श्रीकृष्ण राधाजी नित्य प्रति जल-क्रीडा और रास लीला किया करते थे।

कुसुम सरोवर—यह अनुपम सरोवर राधाकुड और गोवर्धन के मध्य मे स्थित है। इसके निकटवर्ती भू-भाग का प्राचीन नाम कुसुम वन था जिसे कुसुम सखी की कुज तथा रास-क्रीडा के समय भगवान श्रीकृष्ण द्वारा व्रजेश्वरी राधा की बेणी गूथे जाने का स्थल भी कहा जाता है।

राधाकुड के समीप मुखराई गाव को राधाजी की मासामही (नानी) मुखरा का निवास स्थान कहा जाता है।

चन्द्र सरोवर—गोवर्धन के देव स्थलो मे चन्द्र सरोवर का महत्वपूर्ण स्थान है। यह बल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख स्थान है और इसे वृन्दावन तथा महारास का स्थल माना जाता है। चन्द्र सरोवर बडा रमणीक देव स्थान है। यहा महाप्रभु बल्लभाचार्यजी, गोस्वामी विट्ठलदासजी तथा गोस्वामी गोकुलनाथजी की बैठकें हैं। इसी स्थान पर ब्रज भाषा काव्य सम्राट महात्मा सूरदासजी ने साहित्य-साधना की थी। यही पर सूर कुटी है और बैठने का उनका एक चबूतरा भी है जिसे सूर चबूतरा कहा जाता है। इसी स्थान पर भक्त कवि सूरदासजी का देहावसान भी हुआ, यही सूर-स्मारक स्थापित है। इस पुण्य स्थल का नाम प्राचीन कुड के कारण चन्द्र सरोवर पडा है। कुड के ऊपर श्रीचन्द्र बिहारीजी और श्रीदाऊजी के मन्दिर बने हुए हैं।

परासौली—चन्द्रसरोवर के समीप का यह गाव 'परासौली' कहा जाता है। यह 'पल्लश अवलि' का परिवर्तित रूप है। ऐसा अनुमान होता है कि यहां पहले पलाश (ढाक) का वन था। यह गाव भक्त कवि महात्मा सूरदासजी के निवास-स्थल के रूप मे प्रसिद्ध है। इसी स्थान पर अष्टछाप के भक्त कवि कुभनदासजी के खेत थे। उनके पुत्र चतुर्भुजदासजी भी खेतो की देख-भाल करते थे। इस स्थान का महत्व स्वय सिद्ध है कि यह अष्टछापी कई भक्त कवियो का साधना स्थान रहा है।

कोसी—औद्योगिक नगर होते हुए भी कोसी ब्रज का प्रमुख धार्मिक स्थल है। प्राचीनकाल में कोसी का नाम कुशस्थली था, जो अब कोसी के नाम से प्रसिद्ध है। कुशस्थली नाम से ऐसा अनुमान होता है कि प्राचीनकाल मे यहां कुश अधिक था। अथवा कुश (डाभ-मूज) का वन था। कोसी (कुशस्थली को) ब्रजमण्डल की द्वारकापुरी माना जाता है। कोसी कस्बे मे कई और देवस्थान हैं।

वृन्दावन—ब्रज मण्डल का प्रसिद्ध धार्मिक तीर्थ स्थल वृन्दावन माना जाता है। प्राचीनकाल मे यह एक विशाल सघन वन था, जो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य और रमणीक वन-शोभा के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध था। प्राचीन वृन्दावन का महत्व श्रीकृष्णकाल मे अधिक बढ़ा। वृन्दावन श्रीकृष्ण भगवान के प्रमुख लीला स्थलो, देव मन्दिरो, धर्माचार्यों की साधना स्थलो, ब्रज की रमणीक वन-श्री और ऋषि-मुनियों की एकान्त सेवी तपोभूमि होने के कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण तीर्थों मे गणना की जाती है। वृन्दावन की समता कोई नहीं कर सकता—

"वृन्दावन सौ बन नही, नदगाम सौ गाम।
वशीवट सौ बट नही, कृष्ण नाम सौ नाम ॥"

इससे स्पष्ट होता है कि वास्तव मे वृन्दावन ब्रज का पुण्य स्थल-धर्म तीर्थ है। वृन्दावन नाम से ज्ञात होता है कि यह वृन्दा का वन था। वृन्दा द्वारा रक्षित होने के कारण 'वृन्दावन' नाम से विख्यात हो गया। वृन्दा शब्द से कई अभिप्राय प्रकट होते हैं।

श्रीगोविन्ददेवजी के पुराने मन्दिर के दक्षिण-पश्चिमी पार्श्व मे एक गुफा है, जो पाताल देवी की गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोग गोस्वामियो द्वारा बनवाये गए पाताल देवी की गुफा को वृन्दा देवी का मूल स्थान बताते हैं। औरगजेब द्वारा ब्रज के देव-मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट किये जाने के समय वृन्दादेवी की प्रतिमा गुप्त रूप से कामवन मे पधरा दी गई थी। वृन्दादेवी अभी तक कामवन मे ही विराजमान हैं। कामवन मे अन्य देव स्वरूप भी भेज दिए गए थे।

दर्शनीय स्थल— वृन्दावन मे ऐसे अनेक देव-स्थल है, जिनका महत्व अवर्णनीय है। इन ब्रज के तीर्थ स्थलो मे केशीघाट, चीरघाट, कालीदह, दावानल कुड, श्रृगार वट, वशीवट, निधिवन, सेवा कुज, रास मडल ज्ञान गुदडी, बृहन कुड तथा देव मन्दिर आदि प्रमुख तीर्थ है, जिनके कारण वृन्दावन को सर्वत्र महत्व मिला है। केशीघाट पर श्रीकृष्ण ने केशी नामक दैत्य का वध किया था। यहा कई मन्दिर हैं, जिनमे श्री युगल किशोरजी का मन्दिर है।

वशीवट—कहा जाता है कि शरद की रमणीक निशा मे रास-क्रीडा करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण ने वट वृक्ष पर चढकर वेणु नाद कर ब्रज की गोप-बालाओ का आह्वान किया था। इस पवित्र स्थल को उसी माधुर्य लीला का उपक्रम स्थल कहा जाता है—

नटवर की वशी बजी भजी गईं गोपी मधुवन मे।
उलटे-पुलटे गहने पहरे होश नही तन मे।
नारि करधनी, कटि मे माला, हसुला पायन मे।
एक आख मे देन न पायी, एक भरि अजन मे।
कोऊ ग्राम मुख खाति जाति धुन लागी धावन मे,
नटवर की वशी बजी भजी गयी गोपी मधुवन मे ॥

कहा जाता है कि प्राचीन स्थल यमुना की भीषण बाढ मे बह गया था। बाद मे श्रीहित हरिवशजी ने इसे प्रसिद्ध किया था। इस समय यह पुण्य स्थल निम्बार्क सम्प्रदाय के अधिकार मे है। इस तीर्थ-स्थल पर वशीवट बिहारीजी तथा हस गोपालजी के दर्शन का दर्शनार्थी लाभ उठाते हैं।

सेवाकुज—यह राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीहित हरिवशजी का पुण्य स्थल है। इस रमणीक वनखड मे श्रीजी का मदिर और ललित कुड है। कहा जाता है कि इस पावन रमणीक स्थल मे भगवान श्रीकृष्ण और ब्रजेश्वरी ब्रह्मशक्ति राधाजी की अब भी रास-क्रीडा हुआ करती है। इसलिए रात्रि के समय कोई भी यहा नही रह पाता है।

रास मण्डल—वृन्दावन को श्रीकृष्ण-राधाजी का रास-स्थल कहा जाता है। अत वृन्दावन के 'रास मण्डल' नामक लीला स्थल का महत्व स्वयं सिद्ध है। हितहरिवंशजी ने वृन्दावन आने पर रास मण्डल को लोक प्रसिद्ध किया था। पहले इस स्थान पर मिट्टी का चबूतरा बना हुआ था, जिसे सवत् १६४१ वि मे हितजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचन्द्रजी के अनुयायी भक्त भगवानदास स्वर्णकार ने इस चबूतरे को पक्का बनवा दिया था। यह व्रज का सबसे प्राचीन रास मण्डल कहा जाता है।

वृन्दावन के मन्दिर-देवालय—व्रज मण्डल मे वृन्दावन को मन्दिरो का नगर कहा जाता हैं। वृन्दावन का सबसे बड़ा आकर्षण देवालय-मन्दिर हैं। वृन्दावन मे जितने अधिक मन्दिर हैं, उतने पूरे व्रज मण्डल मे नहीं हैं। वृन्दावन का भारतवर्ष का कोई स्थान समता नहीं कर सकता। इन मन्दिरो मे व्रज की धार्मिक भावना के प्रचार-प्रसार में बड़ा योग दिया है। वृन्दावन के सबसे प्राचीन मन्दिरो मे वे मन्दिर हैं जिनका मुगल सम्राट अकबर और जहांगीर के शासन काल मे निर्माण हुआ था। उनसे पहले के कोई भी मन्दिर अपने मूल रूप मे अब विद्यमान नहीं हैं।

श्रीगोविन्ददेवजी—व्रज मण्डल के चार प्रमुख देव—श्री हरिदेवजी, श्री बलदेवजी, श्री गोविन्ददेवजी और श्री केशव देवजी का निवास स्थल वृन्दावन माना जाता है। पुराणो मे उल्लेख मिलता है—"तस्मि न्वृन्दावने पुण्य गोविन्दस्य निकेतनम्।" श्री गोविन्ददेवजी का प्राचीन स्वरूप गोस्वामी रूपचन्दजी को गोमा टीले से उपलब्ध हुवा था। इससे पता चलता है कि आततायियो और मूर्ति-भजको से श्री गोविन्ददेवजी के स्वरूप को बचाकर छिपा दिया गया था। बाद मे आमेर के राजा मानसिंह द्वारा निर्मित भव्य विशाल मन्दिर मे सवत् १६४७ वि मे श्री गोविन्ददेवजी के स्वरूप को विराजमान करा दिया गया था।

श्रीमदनमोहनजी—वृन्दावन स्थित कालीदह घाट की ऊची भूमि पर श्रीमदनमोहनजी का मन्दिर बना हुआ है इस प्राचीन मन्दिर को मुलतान के रामदास कपूर ने बनवाया था। औरगजेब के आतक से दुखी होकर सनातनजी के उपास्यदेव श्रीमदनमोहनजी का स्वरूप भी जयपुर पहुचा दिया गया था। बाद मे करौली (राजस्थान) के राजा गोपाल सिंह ने श्री मदनमोहनजी के स्वरूप को अपने बहनोई जयपुर नरेश से मांगकर अपने राज्य करौली मे प्रतिष्ठापित किया। करौली के विशाल मन्दिर मे श्री मदनमोहनजी का वह स्वरूप अभी तक विराजमान है।

श्रीगोपीनाथजी—यह चैतन्य सम्प्रदायी गौडीय भक्त श्रीमधु गोस्वामी के उपास्य देव हैं। श्रीगोपीनाथ जी का पुराना मन्दिर वंशीवट पर बना हुआ है। इस मन्दिर का निर्माण सवत् १६४६ वि में रायसेन नामक राजपूत सरदार ने कराया था। इस स्थान को 'श्री गोपीनाथजी का घेरा' कहते हैं। यह वृन्दावन के सबसे पुराने मन्दिरो मे से है और श्री गोविन्ददेवजी के पुराने मन्दिर के साथ ही इस मन्दिर का निर्माण हुआ था।

श्री जुगल किशोरजी—यह भी वृन्दावन के प्रसिद्ध ठाकुरजी है। इनके वृन्दावन मे कई मन्दिर और कई विग्रह हैं। प्रथम देव विग्रह वृन्दावन के विख्यात भक्त कवि नन्दराम व्यास के उपास्य देव हैं। इनका प्राकट्य सवत् १६२० वि की माघ शुक्ला एकादशी को वृन्दावन मे हुआ था। श्री जुगल किशोरजी का द्वितीय मन्दिर वृन्दावन के केशीघाट पर बना हुआ है। इस मन्दिर को नौनकरण राजपूत सरदार ने जहांगीर के शासन काल मे सवत् १६८४ वि मे बनवाया था। नौनकरण चौहान राजपूत श्री गोपीनाथजी के मन्दिर के निर्माता रायसेन का बड़ा भाई था। तृतीय मन्दिर वृन्दावन के युगलघाट पर बना हुआ है। इस मन्दिर का निर्माण जयपुर राज्य के तोमर ठाकुर गोविन्दराम और हरिदास नामक दो भाइयो ने कराया था। इस मंदिर में श्री युगल किशोरजी के दर्शन हैं और निम्बार्क सम्प्रदाय की सेवा है। यहां भक्तों की समाधि तथा अन्य देव-मूर्तियां हैं।

श्रीराधा बल्लभजी—यह भी हितहरिवंशजी के उपास्य देव हैं। इनका पुराना मन्दिर वृन्दावन के प्राचीन मन्दिरों की परम्परा मे आता है। इस मन्दिर का निर्माण देववन निवासी सुन्दरलाल खजांची ने कराया था।

श्रीराधा दामोदरजी— यह देव विग्रह श्रीजीव गोस्वामी के उपास्य देव हैं। इनकी सेवा प्राकट्य संवत् १५६६ वि की माघ शुक्ला दशमी को हुआ था। इनका मन्दिर-यमुना तट पर शृगार घाट के समीप है। मन्दिर से सलग्न श्री जीव गोस्वामी की समाधि है। मन्दिर के उत्तर मे एक जीर्ण इमली का वृक्ष है। कहा जाता है कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन आए थे, तब वे इसी स्थल पर विराजे थे। यहां पर श्री सनातन गोस्वामी द्वारा पूजित गोवर्धन शिला है। श्री राधा दामोदरजी की मूल प्रतिमा इस समय जयपुर के मन्दिर मे विराजमान हैं। उनका प्रति-भू विग्रह वृन्दावन के मन्दिर मे स्थापित हैं।

श्री राधारमणजी—यह भी गोपाल भट्टजी के उपास्य देव है। ऐसा कहा जाता हैं कि देव विग्रह पहले शालिग्राम शिला के रूप मे था, जो बाद मे गोपाल भट्ट की भावना के अनुसार परिवर्तित हो गया था। सुन्दर मूर्ति के रूप मे श्री राधारमणजी के साथ राधारानी का विग्रह नही है, बल्कि उनकी मुकुट सेवा होती है। मन्दिर मे मूल प्रतिमा ही विराजमान है।

श्रीराधा बिनोदजी तथा श्रीगोकुलानन्दजी—दोनो देव स्वरूप श्रीलोकनाथजी तथा श्रीविश्वनाथजी चक्रवर्ती के सेव्य स्वरूप हैं। दोनो देव स्वरूपा का मन्दिर श्री राधारमणजी के मन्दिर के समीप हैं। दोनो मूल प्रतिमाए जयपुर मे हैं। दोनो की प्रति-भू मूर्तिया वृन्दावन के इस मन्दिर मे विराजमान है।

श्रीराधा मदनमोहनजी—यह श्रीगादाधर भट्टजी के उपास्य देव हैं, जिनका मन्दिर श्रीराधाबल्लभजी के मन्दिर के समीप वृन्दावन के भट्ट मुहल्ला मे स्थित है। यहा समाज गायन प्रसिद्ध है। भक्तजनों की बड़ी भीड़ एकत्र होती है।

श्रीश्यामसुन्दरजी—ये भी श्यामानन्दजी के सेव्य स्वरूप है जिनका मन्दिर श्रीराधा दामोदरजी के मन्दिर के समीप वृन्दावन के भट्ट मुहल्ला मे ही स्थित है। मन्दिर के सामने एक घर मे श्री श्यामानन्दजी की बाडी तथा समाधि है। श्रीश्यामसुन्दरजी का स्वरूप भी प्राचीन प्रतीत होता हैं।

श्रीबांके बिहारीजी—वृन्दावन के सबसे प्रसिद्ध ठाकुर श्रीबाके बिहारीजी हैं। बाकेबिहारजी स्वामी हरिदासजी के सेव्य स्वरूप हैं। इनका मणि विग्रह स्वामीजी को निधुवन के एक विशिष्ट स्थल से मार्गशीर्ष शुक्ला पचमी को प्राप्त हुआ था। श्री वाकेबिहारीजी का मदिर वृन्दावन की पुरानी बस्ती मे बना हुआ हैं। यहा की सेवा प्रणाली की यह विशेषता है किस भी उत्सव—झूला के दर्शन, होली के दर्शन, चरण के दर्शन आदि महोत्सव वर्ष मे केवल एक-एक दिन ही हाते है। दैनिक झाकी मे थाडी थोडी देर पर पर्दा आता रहता हैं। वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया को वृहद दर्शन-मेला होना है। उस दिन बडी भीड होती है। बडा प्रयत्न करने पर कठिनाई के बाद दर्शन हो पाते हैं।

श्रीरसिकबिहारीजी—स्वामी हरिदासजी की शिष्य परम्परा के छठे आचार्य रसिकदासजी के यह सेव्य स्वरूप हैं। वृन्दावन निवासियो का कहना है कि इस स्वरूप का प्राकट्य भी निधुवन से हुआ था। श्रीरसिकदासजी ने निधुवन से स्वरूप को लाकर श्री रसिकबिहारीजी का पुराना मन्दिर बनवाया और देव स्वरूप की सेवा-पूजा की यथोचित व्यवस्था की थी।

श्रीगोरेलालजी—श्रीरसिकबिहारीजी के मन्दिर के निकट श्रीगोरेलालजी विराजमान हैं। ये हरिदासी सम्प्रदाय के पाचवे आचार्य नरहरिदासजी के सेव्य स्वरूप हैं। इस मन्दिर का निर्माण छठे आचार्य रसिकदासजी के शिष्य गोविन्ददासजी ने कराया था। इनका मन्दिर भव्य बना हुआ है तथा देव स्वरूप की अत्यधिक मान्यता है।

श्रीमोहिनी बिहारीजी—स्वामी हरिदासजी की विरक्त शिष्य परम्परा के सातवें आचार्य ललित किशोरीदासजी ने निधुवन से हटकर यमुना किनारे पर 'टट्टी संस्थान' की स्थापना की थी। उनके शिष्य ललित मोहिनीदासजी ने 'टट्टी संस्थान' मे ठाकुर मोहिनी बिहारीजी को प्रतिष्ठापित किया था। 'टट्टी सस्थान' के अन्तर्गत श्रीराधिका बिहारीजी, श्रीदाऊजी, प्राणवल्लभजी और दपति किशोरजी आदि के देव-मदिर हैं।

श्रीरंगनाथजी—श्रीरगनाथजी का मदिर वृन्दावन का सबसे विशाल और वैभवशाली मन्दिर है। इस विशाल और भव्य मन्दिर का निर्माण संवत् १६०८ वि मे मथुरा के सेठ लक्ष्मीदासजी के लघु भ्राता सेठ राधाकृष्णजी और सेठ गोविन्ददासजी ने कराया था। दोनो भाई रामानुज सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए थे।

श्रीरगजी के मन्दिर की प्रबन्ध व्यवस्था का समस्त उत्तरदायित्व रगाचार्य ट्रस्ट को सौंप दिया गया है। तब से अब ट्रस्टीगण ही समस्त कार्यों की देख-भाल करते हैं। श्रीरगजी के मन्दिर मे सात परिक्रमा हैं, जिनमे अनेक छोटे-बड़े देवालय है। मुख्य मन्दिर मे श्रीरंगनाथजी, श्रीलक्ष्मीजी और गरुडजी की विशाल प्रतिमाए हैं। इतनी बडी देव मूर्तिया वृन्दावन के अन्य किसी मन्दिर मे नही हैं। इस मन्दिर को 'बडा मन्दिर' या सेठजी का मन्दिर' भी कहा जाता है। इस मन्दिर मे रामानुज सम्प्रदाय के अनुसार सेवा-पूजा होती है। नित्य प्रति की सेवा-पूजा और नैमित्तिक उत्सवो पर बडा व्यय किया जाता है।

ब्रह्मचारीजी का मन्दिर—ग्वालियर के राजा जीवाजी राव सिंधिया ने इस मन्दिर का निर्माण सवत् १६५७ वि में कराया था। उन्होने यह मन्दिर अपने गुरु गिरिधारी दासजी ब्रह्मचारी को अर्पित किया था। ब्रह्मचारीजी मन्दिर के सेव्य स्वरूप श्रीराधागोपालजी हैं तथा इस मन्दिर मे निबार्क सम्प्रदाय के मूल आचार्यों की भी प्रतिमाएं विराजमान हैं। ब्रह्मचारीजी का मन्दिर बडा सुन्दर है।

श्रीशाहजी का मन्दिर—लखनऊ निवासी अग्रवाल जौहरी शाह कुन्दनलाल फुन्दनलाल ने सवत् १९२५ वि मे सगमरमर के इस सुन्दर कला पूर्ण मन्दिर का निर्माण कराया था। शाह कुन्दनलालजी प्रसिद्ध भक्त और उत्कृष्ट कवि थे। उनका काव्योपनाम था—ललित किशोरी। इस मन्दिरका भी 'ललित कुज' नाम रखा गया था, किन्तु यह शाहजी के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। शाहजी का मन्दिर अपने रूप-रग और साज-सज्जा मे वृन्दावन के सभी मन्दिरो मे अद्भुत है।

श्रीरामजी का मन्दिर—केशी घाट पर स्थित यह मलूकदासी सम्प्रदाय का मन्दिर है। सत मलूकदासजी भगवद् भक्त और सत कवि थे। ."सत मलूका कह गए, सबके दाता राम।" श्रीरामजी के मन्दिर मे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम, ब्रह्मशक्ति श्रीजानकीजी तथा रामभक्त हनुमानजी आदि की बडी सुन्दर मूर्तिया हैं। इस मन्दिर मे और भी कई देव मूर्तिया दर्शनीय हैं। श्रीरामजी के मदिर में चैत्र मास मे रामनवमी को राम जन्म दिवस महोत्सव मनाया जाता है और रामलीला का आयोजन होता है।

लाला बाबू का मन्दिर—इस मन्दिर का निर्माण सवत् १८६७ वि मे बगाल के हरि भक्त श्रीकृष्ण चन्द्र सिंह ने कराया था। बगाल के धनी जमींदार श्रीकृष्णचन्द्र सिंहजी व्रज मे 'लाला बाबू' के नाम से प्रसिद्ध थे। अत इस मन्दिर को लाला बाबू का मन्दिर कहा जाने लगा।

श्रीगोपीश्वर महादेव—व्रज के चार प्रमुख महादेवो मे श्रीगोपीश्वर महादेव की गणना की जाती है। यह श्रीगोपीश्वर महादेवजी वृन्दावन के प्रसिद्ध और प्राचीन शिव हैं। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार वासुदेव श्रीकृष्ण भगवान द्वारा आयोजित महारास के समय शिवजी वृन्दावन आए थे, तब उन्होंने गोपी का वेश धारण कर रास लीला का सुखानुभव किया था। भगवान श्रीकृष्ण पहचान गए कि यह गोपी नहीं, शिवजी हैं।

श्रीकृष्ण ने कहा—"आइए गोपीश्वरजी, रास का आनन्द लीजिए।" उसी स्मृति में श्रीगोपीश्वर महादेव की स्थापना की गई थी।

श्रीवनखडी महादेव—यह भी वृन्दावन के प्रसिद्ध महादेव हैं। इनके नाम पर वृन्दावन का वनखडी मुहल्ला कहलाता है। जिस स्थान पर वनखडी महादेव का मन्दिर बना हुआ है, वह पहले वृहद् वनखड था। वृन्दावन मे श्रीवनखडी महादेवजी की बडी मान्यता है। शिवभक्त दर्शनार्थी आते ही रहते हैं।

श्रीमीराबाई का मन्दिर—शाहजी के मन्दिर के निकटवर्ती गोविन्द बाग मुहल्ले मे भक्त मीराबाई का एक छोटा-सा मन्दिर बना हुआ है। कहा जाता है कि जब भक्त मीराबाई वृन्दावन आयी थीं, तब श्रीजीव गोस्वामी प्रभृति सन्तो के साथ इसी स्थान पर ठहरी थी। उसी स्मृति मे मीराबाई मदिर की स्थापना करायी गई थी।

वृन्दावन के उक्त मन्दिरो मे और भी अनेक छोटे-बडे मन्दिर देवालय हैं, उनमे सवामन शालिग्राम का मन्दिर, टिकारी वाला मन्दिर, शाहजहापुर का मदिर, जयपुर वाला मन्दिर, श्रीजी का मन्दिर, स्वर्णमयीजी का मन्दिर, वर्मा वाला मन्दिर, काच वाला मन्दिर, श्रीकात्यायनी देवीजी का मन्दिर, श्रीराम मन्दिर, आनन्दमयी मां का मदिर, महाप्रभुजी का मन्दिर, वर्धमान कुज, बरसानिया कुज, कानपुर कली कुज, षड्भुजा मन्दिर, श्रीचतुरबिहारीजो का मन्दिर, यमुना मन्दिर, जगन्नाथ मन्दिर, साधु मा का मन्दिर, चरखारी वाला मन्दिर, राधा निवास मन्दिर, दाऊजी का मन्दिर, मुगेर वाला मन्दिर, कला धारी का मन्दिर, सत्यनारायणजी का मन्दिर, यशोदानन्दनजी का मन्दिर, कालीय मर्दनजी का मन्दिर, नन्द भवन मन्दिर आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

वृन्दावन मे मन्दिर-देवालयो के अतिरिक्त और भी दर्शनीय स्थल हैं, उनमे उडिया बाबा, काठिया बाबा, चैतन्य, राधावल्लभ, हरिदास, हित हरिवश आदि चार आश्रम, अनी अखाडे, भजनाश्रम, मानव सेवा सघ, गुरुकुल, बैठके तथा समाधिया दर्शनीय स्थल हैं।

ब्रह्म कुंड—यह प्राचीन कुड श्री रगजी के मन्दिर के उत्तरी द्वार के समीप है। कहा जाता है कि ब्रह्माजी ने इसी स्थान पर श्रीकृष्ण के गो-वत्स और गोप बालको का हरण किया था और भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी माया से वैसे ही गो-वत्स और गोप-बालको का निर्माण कर ब्रह्माजी की शका का निवारण किया था। ब्रह्म कुड मे ब्रह्माजी और गोप-बालको के दर्शन हैं। प्राचीन काल मे इस स्थान पर बस्ती नही थी।

ज्ञान गुदडी मे आषाढ शुक्ला द्वितीया को रथ यात्रा महोत्सव होता है। लोहवन मे श्रीकृष्ण ने लोहजघ दैत्य का वध किया था। यहा आनदी और बन्दी नामक दो लोक देवियो के मन्दिर है। कहा जाता है कि आनदी और बदी यशोदाजी की दोनो परिचारिकाए थी। लोहवन म लोहासुर की गुफा, लोह कुड और कृष्णकूप दर्शनीय स्थल हैं।

भतरौड़ अक्रूर घाट—वृन्दावन के अन्य देव-धर्म-स्थलों के समान ही भतरौड अक्रूर घाट का भी बडा महत्व है। यह प्राचीन धम-स्थल श्रीकृष्ण काल मे ऋषि-मुनियो का यज्ञ और तप स्थल था। ब्रह्म ऋषियो की पत्निया श्रीकृष्ण के साथी गोप-सखाओ को इसी स्थान पर भोजन कराती थी। उसकी स्मृति में यहां के एक टीले पर श्री भतरौड बिहारी जी का मन्दिर बनाया गया है। जब कस के परामर्श पर अक्रूर जी श्रीकृष्ण-बलरामजी को साथ लेकर मथुरा को चले तब अक्रूरजी न यमुना मे स्नान कर इसी स्थान पर सन्ध्या-वन्दन किया था। जैसे ही अक्रूरजी ने यमुना मे डुबकी लगाई उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी को अपना विराट स्वरूप दिखाया था। उसी स्मृति मे यह घाट 'अक्रूर घाट' कहलाता है।

श्री बलदेवजी—ब्रज के तीर्थ-स्थलों मे वृन्दावन के बाद बलदेवजी का नाम आता है। बलदेव गांव का पुराना नाम रीढ़ा गांव था किन्तु अब यह गाव बलदेव ही कहलाता है। यहा की प्रसिद्धि सकर्षण श्री बलदेव जी (दाऊजी) के मन्दिर के कारण हुई है। यहां के मन्दिर मे श्री दाऊजी और रेवतीजी की विशाल और सुन्दर मूर्तिया प्रतिष्ठापित हैं। ब्रज मंडल की वर्तमान उपास्य स्वरूपों मे संकर्षण बलदेवजी का स्वरूप प्राय सबसे प्राचीन है।

महावन—बलदेव से गोकुल आने के मार्ग मे सबसे प्रमुख तीर्थ-स्थल महावन है। इसे पुराना गोकुल भी कहा जाता है। प्राचीन काल मे महावन एक विशाल सघन बन था, जो यमुना पार वर्तमान दुर्वासा आश्रम तक विस्तृत था। पुराणो मे इसका उल्लेख 'बृहद बन'—महावन, नन्दकानन, गोकुल, गो-ब्रज आदि नामो से हुआ है। ब्रह्मांड पुराण के बृहद्‌बन महात्म्य मे महावन की धार्मिक महत्ता का वर्णन किया है। महावन क्षेत्र मे इक्कीस धार्मिक स्थल हैं—यमनार्जुन, नन्द कूप, चिन्ता हरण, ब्रह्माड घाट, सरस्वती कुड, सरस्वती शिला, विष्णु कुड, कर्ण कूप, कृष्ण कुड, गोप कूप, रमणरेती, रमण स्थान, नारद स्थान, पूतना पातन, तृणावर्त पातन, नन्द अन्त पुर, नन्दालय, रमण घाट, मथुरानाथजी का स्थान, बलदेव जन्म स्थान, और योगमाया का जन्म स्थान। उपर्युक्त धार्मिक स्थलो मे से कुछ तो महावन की सीमा के अन्तर्गत है, और कुछ महावन के ओर-पास हैं।

श्यामलला जी का मन्दिर—महावन मे स्थित श्यामललाजी का मन्दिर नन्दरायजी के निवास स्थल की स्मृति मे बनाया गया है। ऐसा कहा जाता है कि वसुदेव जी इसी स्थान पर नवजात शिशु श्रीकृष्ण को छोड गए थे। इस देवालय मे बालक श्रीकृष्ण के दर्शन हैं।

छटी पालना (चौरासी खभा मन्दिर)—इस स्थान को रोहिणीजी का भवन और बलरामजी का जन्म स्थान कहा जाता हे। प्राचीन काल मे यहा पर श्री बलरामजी का विशाल सुन्दर मन्दिर था, जो मुसलमान आक्रमणकारियो द्वारा नष्ट कर दिया गया। उस मन्दिर के कलात्मक स्तभ तथा सुन्दरतम पाषाण खड शताब्दियो तक बिखरे पडे रहे थे। बाद मे उन्ही पुराने अवशेषो को जोडकर बहुसख्यक स्तभो (खभो) वाला एक मडपदार मन्दिर बना लिया गया। उसके खभों के कारण इसे चौरासी खभा का मन्दिर कहा जाता है।

योगमाया का मन्दिर—यशोदाजी ने जिस कन्या को जन्म दिया था और कस ने बालक श्रीकृष्ण के धोखे मे योग माया कन्या का वध कर दिया था, उस कन्या को योग माया का अवतार माना जाता है। यह मन्दिर उसी योगमाया का मन्दिर माना जाता है। यह मन्दिर एक ऊचे टीले पर बना हुआ है, जो किसी पुराने किले का बुर्ज-सा प्रतीत होता है।

तृणावर्तारि भगवान का मन्दिर—पुराणो से ज्ञात होता है कि बालक श्रीकृष्ण को मारने के लिए तृणावर्त दैत्य धूल का बवडर बन कर आया था, जिसे श्रीकृष्ण ने समाप्त कर दिया था। उसी स्मृति स्वरूप तृणावर्तारि भगवान का यह मन्दिर बनाया गया है। यह बड़ा दर्शनीय देव-स्थल है।

महामल्लराय जी का स्थान—यह स्थान श्रीकृष्ण-बलरामजी का अखाडा है। श्रीकृष्ण-बलराम यहां जोड़ किया करते थे। बाल्य-काल मे ही श्रीकृष्ण-बलराम दोनो मल्ल विद्या मे इतने निपुण हो गये थे कि उन्होंने कस के बडे-बड़े मल्लों और योधाओं को बड़ी सुगमता से पराजित कर दिया था। दोनो भाई मल्लो के लिए महामल्ल दिखायी पड़ते थे। उनके उसी रूप के दर्शन इस स्थान पर होते है। यह रूप मल्लो के लिए उत्साह जनक है।

मथुरानाथ जी का मन्दिर—यह प्राचीन देव मूर्ति एक साधारण से शिखरदार मन्दिर के चबूतरे पर

रखी हुई है। इसे देखने पर ऐसा अनुभव होता है कि यह मूर्ति किसी अन्य स्थान से लाकर यहां रख दी गयी है। इस देव मूर्ति के निकट वराह भगवान की भी एक प्राचीन प्रतिमा है। महावन से कुछ दूर यमुना तट के घाट को चिन्ताहरण घाट कहते हैं। इस स्थान पर चिन्ताहरण महादेवजी का एक मन्दिर भी है।

ब्रह्माण्ड घाट—महावन के निकट ही यमुना तट का यह एक रमणीक स्थल है। जहां सघन वन वृक्षों की छाया मे शान्तिपूर्ण तपोवन का-सा दृश्य दिखायी देता है। कहा जाता है कि बालक श्रीकृष्ण के मिट्टी खाये जाने पर जब यशोदाजी ने श्रीकृष्ण का मुख खोलकर देखा था। तब यशोदाजी को श्रीकृष्ण के मुख मे समस्त ब्रह्माण्ड की रचना दिखायी दी थी। उक्त पौराणिक अनुश्रुति का सम्बन्ध इस देव स्थल से बतलाया जाता है। इस दिव्य घटना की स्मृति मे यहा श्री ब्रह्माण्ड बिहारीजी का एक मन्दिर है। एक समीपवर्ती बगीचे मे कतिपय सन्यासियो की भजन कुटिया विद्यमान हैं। बडा रमणीक और प्रभावशाली स्थल है। यहा हरीभरी सुहावनी बाटिका है।

यमलार्जुन का मन्दिर—कहा जाता है कि इस स्थान पर भक्त कवि रसखान गोकुल गाव के ग्वारन के सग ग्वाल बनकर उस लीलाधारी की लीलाओ पर मुग्ध थे—

मानुष हौं तौ वही रसखान, बसो ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बसु मेरो, चरो नित नद की धेनु मझारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, जमुना तट कल-कदब की डारन।
पाहन हौ तौ वही गिरि को, जो कियो छत्र पुरन्दर धारन ॥

कविवर भक्त रसखान की कैसी प्रबल कामना है। जो भी योन मिले पर गोकुल मे जन्म हो।

पूतना खार—महावन गाव के बाहर एक नीचे स्थल को पूतना खार कहा जाता है। इस स्थान पर पूतना राक्षसी की दाह-क्रिया की गयी थी—यह जनश्रुति यहा प्रचलित है। यहा पूतना मेला भी होता है।

रमण रेती—यह धार्मिक देव स्थल महावन म यमुना पुलिन पर स्थित है। इस स्थल को बालक श्रीकृष्ण का खेल-कूद का स्थान कहा जाता है। यहा श्रीरमण बिहारी का मन्दिर है। इसके निकटवर्ती वन खड को खेलन बन कहा जाता है। इस स्थान का वर्तमान महत्व कृष्णोपासना के कारण बहुत बढ गया है। रमण-रेती के निकटवर्ती एक कूप को गोप कुआ कहते हैं और उसके टीलो को गोविन्द स्वामी का टीला कहा जाता है। यही एक छतरी मे रसखान की समाधि है।

महावन के मेले उत्सव—महावन मे कई उत्सव-मेलो का आयोजन होता है। उनमे दशहरा पर होने वाली रामलीला, कार्तिक शुक्ल छट को होन वाला पूतना मेला, माघ माम के चारो रविवारो को होने वाला 'अखैया' का मेला और फाल्गुन शुक्ला एकादशी को होने वाला रमणरती का उत्सव मुख्य है।

गोकुल—भगवान् श्रीकृष्ण की शैशव कालीन लीलाओ के कारण गोकुल धार्मिक स्थल की प्रसिद्धि हुई थी। भागवतादि पुराणो से ज्ञात होता है कि कस के किले कारागार मथुरा मे श्रीकृष्ण के जन्म लेते ही उनके पिता वसुदेवजी ने नवजात शिशु श्रीकृष्ण को कस से छिपाकर यमुना पार की गोप-बस्ती गोकुल मे पहुचा दिया था। नन्दराय जी के यहा गोकुल मे श्रीकृष्ण का शैशव काल व्यतीत हुआ था। वल्लभ सम्प्रदायी साहित्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि गोकुल की वर्तमान बस्ती को सवत् १६२८ वि मे गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ-जी ने बसाया था। इससे यह अभिप्राय सिद्ध होता है कि सवत् १६२८ वि से पूर्व श्रीकृष्ण कालीन गोकुल का कोई अस्तित्व ही नही था।

ऐसे अनेको प्रमाण उपलब्ध हैं, जिनमे यह सिद्ध होता है कि सवत् १६२८ बि से पूर्व भी गोकुल नाम

का धर्म स्थान था, जो महावन से पृथक था। जब चैतन्य महाप्रभु के परिवार जगतानन्द जी ब्रज की यात्रा करने आये थे, तब उन्होंने गोकुल और महावन दोनों को देखा था और दोनों स्थानो मे निवास भी किया था। इस पुष्ट प्रमाण से सिद्ध होता है कि गोकुल और महावन पृथक-पृथक दो गोप-बस्तिया थी।

गोकुल मे वल्लभ सम्प्रदाय के सातो सेव्य स्वरूपो के मन्दिरो का निर्माण हुआ और गोस्वामियो की बैठकें बनायी गयी। औरगजेब की दमन नीति के कारण ब्रज तथा गोकुल का धार्मिक वैभव प्राय समाप्त हो गया और गोकुल बस्ती भी उजड गयी।

श्री गोकुलनाथजी—वल्लभ सम्प्रदाय के सेव्य स्वरूप प्रसिद्ध सात स्वरूपो मे से श्री गोकुलनाथजी है। श्री गोकुलनाथजी का मन्दिर गोकुल के मन्दिरों में अद्वितीय कला का द्योतक है। इस मन्दिर मे श्री वल्लभाचार्यजी और श्री विट्ठलनाथजी की पादुका, माला, उपरत्न और हस्ताक्षर लेख आदि प्राचीन दर्शनीय वस्तुएं हैं। गोकुल के अन्य मन्दिरों में श्री गोकुलनाथजी का मन्दिर प्रमुख प्रधान मन्दिर हैं।

श्रीराजा ठाकुरजी– यहां के मुख्य स्वरूप श्रीनवनीत लाल जी हैं, जिन्हें श्रीराजा ठाकुरजी कहा जाता है। श्री राजा ठाकुरजी के निकट श्री बालकृष्णजी विराजमान हैं। यह गोकुल का अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है। यहा गोस्वामी बडे दाऊजी की बैठक है और अन्य दर्शनीय स्थल भी हैं।

श्री गोपाल लालजी—इस मन्दिर मे श्री नवनीत प्रियजी और श्री बालकृष्णजी के स्वरूप हैं। इसे चौकी वाला मन्दिर भी कहते हैं। श्री गोपाल लालजी का मन्दिर बडा सुन्दर बना हुआ है तथा दर्शनार्थियों की बडी भीड लगी रहती है।

मोरवाला मन्दिर—इसमे श्री नवनीत प्रियजी और श्री मदनमोहनजी के स्वरूप हैं। गोकुल के अन्य मन्दिरो मे कटरा वाला मन्दिर, श्री दाऊजी का मन्दिर, श्री राधा मा जी का मन्दिर, श्री ब्रजेश्वरजी का मन्दिर, श्री गगाबेटीजी का मन्दिर, श्री मथुरेशजी का मन्दिर, श्री नत्थूजी का मन्दिर, श्री पार्वती बहू और श्री भामिनो के मन्दिर, श्री वल्लभलालजी कामवन वालो का मन्दिर आदि उल्लेखनीय हैं। गोकुल मे महादेव जी के भी दो मन्दिर हैं। शिवजी के मन्दिरो का सवत् १६५६ वि मे जोधपुर नरेश विजय सिह ने निर्माण कराया था। यहां की एक बावडी को रीवा के सचिव मनोहरलाल भाटिया ने बनवाया था। शिवजी के मदिर म पक्का एक सुन्दर तालाब है जिसे चुन्ना का तालाब (सरोवर) कहा जाता है। बम्बई के मोटा मन्दिर द्वारा सचालित गोकुल मे एक बडी गौशाला भी है। गोकुल मे यमुनाजी के बारह घाट हैं, जिनमे गोविन्द घाट और ठकुरानी घाट विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गोकुल मे वल्लभ सम्प्रदाय की अनेक बैठकें हैं। उनमे सबसे प्राचीन बैठक महाप्रभु वल्लभाचार्यजी है, जो गोविन्द घाट पर एक छोकर वृक्ष के नीचे बनी हुई है। उक्त प्राचीन बैठक के अतिरिक्त आचार्यजी की शैया बैठक और सन्ध्या वन्दन बैठकें भी हैं। यहा गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की तीन बैठकें हैं, और गोस्वामी गोकुलनाथ जी की एक बैठक है। अन्य गोस्वामियो की भी एक-एक बैठक बनी हुई है।

रावल—ब्रज के तीर्थ स्थानों मे रावल गांव का भी उल्लेखनीय नाम है। रावल गाव यमुना तट पर बसा हुआ प्राचीन लीला-स्थल है। इसका नामोल्लेख ब्रज के चौबीस उपवनो मे किया गया है। रावल को ब्रजेश्वरी राधाजी का जन्म स्थान और उनके नाना का निवास स्थल कहा जाता है। राधाजी की श्रुतिकीर्ति माता श्रुतिकीर्तिजी ने अपने पिता के घर ही राधाजी को जन्म दिया था। उसी स्मृति मे रावल मे श्री राधा जी का प्राचीन मन्दिर का निर्माण कराया गया था। बरसाने मे लाडिलीजी के मन्दिर से पहले इस मन्दिर का निर्माण होने से इस मन्दिर का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। यमुना में अधिक बाढ़ आ जाने से रावल के मन्दिर की बडी क्षति हुई और रावल के प्राचीन मन्दिर से श्री राधाजी की प्राचीन मूर्ति बरसाना पहुंचा

दी गई। श्री राधाजी की प्राचीन प्रतिमा बरसाना के मन्दिर मे अब भी विराजमान है।

बरसाना—यह ब्रज का अत्यन्त रमणीक तथा पुनीत धार्मिक स्थल है। बरसाना राधाजी का निवास स्थल तथा उनके पिता श्री वृषभानु गोप का गाव माना जाता है। बरसाना ब्रज का अत्यन्त प्राचीन स्थान है। कस के आतक से भयभीत होकर गोप समुदाय ने वृन्दावन तथा गिरिराज पहाडी के आस-पास निवास किया और गोकुल छोड दिया।

ब्रज मे गिरिराज, बरसाना और नदगांव की तीन पहाडियां अधिक प्रसिद्ध हैं जिन्हे त्रिदेव के रूप में पूज्य माना जाता है। यह एक अद्भुत आश्चर्यजनक बात है कि इन तीनो पहाडियों के पाषाण के रग भी त्रिदेव के रगो के ही समान हैं। गिरिराज विष्णु रूप है, जिसका रग श्याम है, बरसाना ब्रह्म रूप है, जिसका रग श्वेत है और नदगाव रुद्र रूप है जिसका रग अरुणिमायुक्त है। ब्रह्म स्वरूप बरसाना पहाडी के चतुर्मुख चार शिखर हैं, जिन्हे दानगढ, मानगढ, विलासगढ़ और मोरकुटी कहा जाता है। राधा-कृष्ण की बाल-क्रीडाओ का महत्वपूर्ण केन्द्र होने के कारण बरसाना और नदगाव का निकटवर्ती क्षेत्र ब्रज का हृदय-स्थल है। ब्रज सस्कृति के स्वाभाविक स्वरूप की मनोहर झांकी इसी भू-भाग मे देखने को मिलती है।

लाडिलीजी का मन्दिर—द्वापर मे श्री वृषभानु गोप बरसाना की जिस पहाडी पर अपने परिवार के साथ रहते थे। उसी की स्मृति मे बरसाने मे उनकी पुत्री श्री राधाजी का मन्दिर बनवाया गया था, जिसे 'लाडिलीजी का भवन' कहते है। पहाडी के ओर पास तथा उसकी गोद मे वर्तमान मे बसी गोप बस्ती बरसाना कहलाती है। पहाडी पर ही लाडिलीजी का मन्दिर बना हुआ है। लाडिलीजी के प्राचीन मन्दिर के नाम से जो देवालय विद्यमान है, उसकी नीव ओरछा नरेश श्री वीरसिह देव ने माघ शुक्ला पचमी सवत् १६७५ वि मे रखी और सवत् १६८० तक मन्दिर पूरा बनकर तैयार हो गया था। लाडिलीजी के पुराने मन्दिर के समीप ही नया मन्दिर वृन्दावन निवासी भक्तवर सेठ हरगुलाल ने निर्माण कराया था। नया मन्दिर पुरान मन्दिर से बडा और अत्यन्त कलापूर्ण है।

इस पहाडी के नीचे अचल मे एक सुन्दर सघन वन है जिसे गह्वर वन कहते हैं। यह श्री राधा-कृष्ण के मिलन का स्थल है। इसके समीप मानपुर गाव, दोहनी कुड और कदमखडी है। यहा के कदम वृक्षो मे दाने दार पत्ते होते हैं। गह्वर वन के समीप चिकसोली गाव म साझी बहुत सुन्दर बनती हैं। इस वन की सघन वृक्षावलियो म श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओ के स्थल हैं, जिनमे मोरकुड, मोहिनीकुड, ललिता कुड और जल विहार प्रमुख हैं। यहा पर राम मडल भी है। श्री लाडिलीजी के मुख्य मदिर के समीप कुछ दूर पहाडी पर जयपुर वाला विशाल मन्दिर है। इस मन्दिर मे प्रमुख मूर्ति श्री राधा—गोपालजी की है। उनके साथ ही हस भगवान, सनकादि ऋषि तथा देवर्षि नारदजी की भी मूर्तिया स्थापित हैं। जयपुर के राजा द्वारा बनवाए गए मन्दिर म निबार्क सम्प्रदाय के अनुसार सवा-पूजा होती है। बरसाने मे कई कुण्ड-सरोवर हैं जिनमे भानोखर अथवा श्री वृषभानु सरोवर अधिक प्रसिद्ध है। भानोखर बरसाना क्षेत्र का पक्का कुण्ड है। सुनहरा गाव के समीप एक रमणीक वन स्थली है जिसे सुनहरा की कदमखडी कहा जाता है। यहां पर रत्न कुण्ड और राम मडल है। इस सुनहरा कदम खडी मे रास लीला होती है। बरसाने के समीप ऊचा गाव एक धार्मिक स्थल है। ब्रजोद्धारक श्री नारायण भट्ट का इस स्थान से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। भट्टजी ने ऊचा गांव मे श्री बलदेव जी की स्थापना की थी, जिनका मन्दिर यहा विद्यमान है। यही भट्टजी की समाधि भी है। इसके निकट की छोटी पहाडी को 'सखीगिरि' कहत हैं। वहा खिसलती शिला, चित्र शिला, ललित विवाह-मडप, त्रिवेणी कूप, सखी कूप और रास मडल आदि दर्शनीय स्थल हैं। यहा की रासलीला को 'बूढी लीला' कहा जाता है। कमई गांव को श्री राधाजी की सखी विशाखा का जन्म-स्थान कहा जाता है। यहां की रास-मडलियां प्रसिद्ध हैं।

बरसाना से प्राय दो कोस दूर पूर्व की ओर बसे करहला गांव को भी राधाजी की अष्ट सखियों में से प्रधान कलाकोविदा ललिताजी का जन्म-स्थान कहा जाता है। करहला भी ब्रज का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल है। ब्रज की रासलीला के प्रचार-प्रसार में करहला गांव के रासधारियों का प्रमुख केन्द्र है। करहला गाव के निकटवर्ती कृष्ण कुंड, वल्लभाचार्यजी तथा विट्ठलनाथजी की बैठकें और यहां की कदमखंडी प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त बरसाना में कई उत्सव और मेले आदि होते हैं जिनमे राधा अष्टमी का उत्सव और होली का मेला अधिक प्रसिद्ध हैं। भाद्रपद शुक्ला अष्टमी को बरसाने मे लाडिलीजी के मन्दिर में लाडिली राधाजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है जिसमे हजारों दर्शक उपस्थित होकर लाडिली के जन्मोत्सव मे भाग लेते हैं। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को होली का बड़ा मेला होता है, जिसे 'लठमार होली' कहा जाता है। उस दिन बरसाने की गोस्वामियों की महिलाए नन्दगाव के गोस्वामियो से होली खेलती हैं। इस लठमार होली मे महिलाए बड़े-बड़े लट्ठों से पुरुषो पर प्रहार करती हैं। पुरुष गण अपनी ढालो पर उन प्रहारों को बचाते हैं, इसलिए इसे 'लठमार होली' कहा जाता है। इस विचित्र होली को देखने के लिए विभिन्न प्रदेशो के हजारो नर-नारी एकत्र होकर आनन्द लेते हैं। बरसाना तथा नदगांव के लठमार होली खिलाड़ियो को पहलवानो की तरह दूध-घी आदि खिलाकर पुष्ट किया जाता है। यहा की सांझी कला भी प्रसिद्ध है। यह सांझी आश्विन मास में कई रूप और रगों में प्रदर्शित की जाती है। रग की सांझी, जल की सांझी, गोबर की सांझी, कौणियों की सांझी आदि कई रगो मे यहा के प्राय सभी घरो की दीवाल सांझी से चित्रित दिखाई देती हैं। बरसाने की स्त्रियां गोबर की बडी अद्‌भुत सुन्दर सांझी बनाती हैं।

सकेत—बरसाना तथा नदगांव के बीचोबीच स्थित सकेत मिलन-स्थल निर्धारित किया जाता है। सकेत का अर्थ है, गुप्त सूचना केन्द्र। इसके सम्बन्ध मे प्राचीन मान्यता है कि श्री राधा-कृष्ण इस स्थल पर गुप्त रीति से मिला करते थे। पुराने समय मे यहा एक विशाल वट-वृक्ष था, जिसे 'सकेत वट' कहते हैं। वही राधा-कृष्ण गुप्त मिलन का स्थल था। यहां पर श्री सकेत बिहारीजी और सकेती देवीजी और श्री राधा-बिहारीजी के मन्दिर हैं तथा राज चबूतरा और झूलामडप है। कहा जाता है कि श्री राधाबिहारीजी के मन्दिर का निर्माण बरसाने के रूपराम कटारा ने करवाया था। इस मन्दिर की वस्तु शैली नदगाव के मन्दिरो जैसी है, यद्यपि यह मन्दिर नदगांव के मन्दिरो से छोटा है। चारदीवारी का दूसरा मन्दिर बर्धमान के राजा ने बनवाया था। यहा राधा-कृष्ण के विवाह की रासलीला होती है। सकेत गाव से थोडी दूर विह्वल कुड और विह्वल देवी का देवालय भी है। आजकल इन्हे विमल कुड और विमलादेवी कहा जाता है।

नदगांव रुद्र पहाड़ी के शिखर पर बसा नदगाव श्रीकृष्ण के बाल्यकाल का निवास स्थल और उनके पालन-पोषण पिता नदराय जी का गाव है। कृष्ण-काल मे यहा से गोवर्धन पहाडी और यमुना तट तक प्राचीन वृन्दावन था, जिसका विस्तार बीस कोस था। नदगांव की वर्तमान बस्ती यहां रुद्र पहाडी पर बसी हुई है। पहाड़ी के ऊपर से देखने पर बस्ती का बडा सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। जब श्री निंबार्काचार्य जी ने ब्रज मे आकर निवास किया था, तब उन्होने इस प्राचीन देव स्थल तथा लीला स्थल के महत्व की पुनर्स्थापना का प्रयास किया और नदरायजी का मन्दिर बनवाकर ब्रजवासियों मे धार्मिक भावना का सचार किया। यहा मन्दिर के पुजारी भी निंबार्क सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

नन्दीश्वर—यह नदगांव के अधिष्ठाता रुद्र देवता हैं। नदगाव की पहाडी को भी रुद्र का स्वरूप कहा जाता है। जिस रुद्र पहाड़ी पर नंदगांव बसा हुआ है, उसे भी रुद्र पहाडी कहते हैं। रुद्रदेव मूर्ति की यहा बडी मान्यता है।

हाऊ-बिलाऊ—माता यशोदा जी श्रीकृष्ण की नटखटी रोकने के लिए उन्हें हाऊ का डर दिखाती थीं

क्योंकि बालक श्रीकृष्ण बचपन मे बडे नटखट थे। उसी स्मृति मे इस हाऊ-बिलाऊ मूर्ति की स्थापना की गई है। बडी अद्भुत मूर्ति है।

दीर्घ मथन मांट—इन विशाल मृतिका (मिट्टी के) पात्रों को यशोदा जी दधि-मथन के मांट (दहेंड़ी) कहते हैं। ये मिट्टी के बर्तन इतने बडे है कि इनके अन्दर दो आदमी बैठ सकते हैं। ये माट (दहेंडी) ब्रज की मृत्तिका पात्र निर्माण कला के दर्शनीय नमूने हैं। पहले मिट्टी के ऐसे ही बर्तन बनते थे।

खिरक, खूटे, दोहन स्थल—यहा ऐसी जनश्रुति है कि जिस खिरक मे नदरायजी की गाये बधती थीं, उनके खूटे है। इस खिरक मे नद यशोदा जी की गायो को बांधने का खिरक-स्थल कहा जाता है। यही पर श्री नदरायजी अपनी गायो को दुहते थे।

नदगाव के समीप अनेक लीला-स्थल हैं, जिनमे रीठौरा, आजनोख, पिसाया, खदिर वन, और उद्धव-क्यारी उल्लेखनीय हैं। रीठौरा को चन्द्रावली जी का निवास स्थान माना जाता है। यहां चन्द्रावली कुड भी दर्शनीय स्थल है। गोस्वामी जी बैठक भी है। आजनोख पुत्र का लीला-स्थल है। यहां पर श्रीकृष्ण द्वारा राधाजी की आखो मे अजन लझने की जनश्रुति प्रसिद्ध है। इसीलिए इस स्थल को 'अजनोख' कहा जाता है। इसे राधा की विशाखा सखी का निवास-स्थान भी कहते हैं।

अग्रवन— आगरा ब्रज-प्रदेश का प्रमुख नगर है। आगरा की ब्रज मण्डल के बारह वनो मे गणना की जाती है। पूर्वकाल मे आगरा 'अग्रवन' के नाम से विख्यात था। आगरा अग्रवन का अपभ्र श है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता टालबाय ह्वीलर ने आगरा को प्राचीन आर्यों का निवास स्थान बताया है। प्राचीन काल मे आर्य यहा रहते थे। आर्य-गृह से ही आगरा नाम पडा है। श्रीकृष्ण काल मे आगरा यमपुश्त अथवा 'इन्द्रप्रस्थ' नाम से प्रसिद्ध था। वर्तमान इन्द्रप्रस्थ का ही आगरा एक भाग है। जिस स्थान पर आगरे का केन्द्रीय कारागार था, प्राचीन काल मे उसी स्थान पर कस का कारावास था, जहा अब मार्केट बन गया है जिसका नाम 'सजय प्लेस' है।

आगरा के धार्मिक स्थल—आगरा प्रारम्भ से ही वीणावादिनी सरस्वती की क्रीडास्थली और साहित्य कारो की तपोभूमि रहा है। आगरा विश्व विख्यात ऐतिहासिक, सास्कृतिक और साहित्यिक धमस्थल है। आगरा की प्राचीन सस्कृति, अपूर्व साहित्य और भव्य-भवन ही आगरा की प्रतिष्ठा की धरोहर हैं। यमुना के किनारे बसा आगरा आज भी अपने अतीत-गौरव का स्मरण कर विश्व को आमत्रित करता रहता है। आगरा के अनेक विशेष दर्शनीय-स्थान तथा धार्मिक-स्थल और देवालय है, जिनके कारण उसे गौरव प्राप्त है। आगरा मे चार मुख्य शिव मन्दिर हैं, जिन्हे 'नगर रक्षक' की दृष्टि से स्थापित किया गया है।

कैलाश देव का मन्दिर— कैलाश आगरे की प्राचीनता का द्योतक शिव मन्दिर है। यह आगरे से छ मील दूर उत्तर-पश्चिम कोने म यमुना के तट पर बसा तीर्थ-स्थान है। कैलाश मे कई मन्दिर बने हुए हैं, उनमे प्रमुख मन्दिर कैलाशपति शिवजी का है। इस स्थान का नाम कैलाश इसीलिए पडा है। कैलाश मन्दिर मे शिवजी की दो पिण्डी (मूर्तिया) शिवलिंग स्थापित हैं। यह स्थान बडा रमणीक है। श्रावण के महीने मे यहां बडा भारी मेला लगता है। हजारो यात्री यमुनाजी मे स्नान कर शिवजी के दर्शन करते हैं और मेला देखते हैं। कैलाश महादेवजी की मूर्ति प्रचीन बताई जाती है। मनकामेश्वर शिवजी का मन्दिर आगरा नगर बसने से पूर्व का बतलाया जाता है। कहा जाता है कि जिस मुहल्ले मे यह मन्दिर है, वह पूर्वकाल मे रावत ब्राह्मणो का गाव था, जो अब रावतपाडा के नाम से प्रसिद्ध है। मनकामेश्वर महादेव की बडी सिद्ध मूर्ति है।

रावली महादेव का मन्दिर—आगरा कलक्टरी के पास रेल के पुल से थोडी दूर रावली मुहल्ले में रावली महादेवजी का मन्दिर है। आगरा के अधिकाश लोगो का विचार है कि प्राचीन मनकामेश्वर यही है।

औरंगजेब के आतंक के कारण रावतपाड़े से मनकामेश्वर महादेवजी की मूर्ति रावली के अगल मे छिपा दी गई थी। बाद में मन्दिर बनवाकर रावली मे स्थापित करा दी गई थी। शिवजी का प्राचीन स्वरूप रावली मे विराजमान है। रावतपाड़े में मन्दिर बन जाने के बाद मनकामेश्वर की दूसरी मूर्ति स्थापित की है।

आगरा में इनके अतिरिक्त और भी कई देव-स्थल हैं जिनमें शिवहरो का दाऊजी का मन्दिर प्रसिद्ध है। दाऊजी का एक दूसरा मन्दिर बेलनगज (भैरो बाजार) मे है। आगरा मे हनुमानजी के कई मन्दिर हैं। पुराना हनुमानजी का मन्दिर यमुना किनारे बेलनगज मे है, उन्हीं के सामने एक सन्त ने हनुमानजी का नया मन्दिर बनवाया है, जिसमे हनुमान जी की बड़ी विशाल मूर्ति है। हनुमानजी का एक प्राचीन मन्दिर सेठगली मे है। सैंट जौन्स कालेज के चौराहे पर हनुमानजी की बडी भव्य प्रतिमा स्थापित की है। इस मदिर मे श्रीराम-सीताजी की और लक्ष्मणजी की मूर्तिया बडी सुन्दर हैं। पास ही भैरोनाथजी का मन्दिर है।

डॉ रांगेय राघव मार्ग (बाग मुजफ्फर खा) में श्री वागेश्वर नाथ महादेवजी का मन्दिर और आगरा नागरी प्रचारिणी सभा मे श्री चन्द्रशेखर महादेवजी के मन्दिर भी अधिक प्रसिद्ध हैं। आगरा मे दुर्गाजी के कई मन्दिर हैं। आगरा मे जैन धर्म के भी अनेक धर्मस्थल जिनमे जैन मुनि प्रवचन करते हैं। आगरा मे रोशन मुहल्ला स्थित जैन मन्दिर बहुत प्राचीन है। इसके सम्बन्ध मे जनश्रुति है कि मन्दिर मे जो मूर्ति स्थापित है, वह किले की नीव खोदते समय अकबर के समय मे प्राप्त हुई थी। रोशन मुहल्ला स्थित वह मूर्ति बडी मनोहर और आकर्षक है। यह मूर्ति गुप्त शैली की प्रतीत होती है। प्रसिद्ध पुरातत्व ज्ञानी डा बुहर्रर ने भी सकेत दिया है कि सन् १८६३ मे किले के सामने जैनाचार्यों की मूर्तिया उपलब्ध हुई थी और किले के अमरसिंह गेट के सामने भग्नावशेष जैन मन्दिर थे। ताजमहल के आगे यमुना किनारे पर खडहर रूप मे राजा भोज के महल भी स्थित हैं। अन्य जैन मन्दिर आगरा के लोहामण्डी मुहल्ला मे विशाल और भव्य मन्दिर हैं तथा राजामडी मे भी जैन मन्दिर दर्शनीय हैं। एक प्राचीन मन्दिर आगरा के बटेश्वर (शौरीपुर) मे जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमनाथजी की जन्मभूमि है। बटेश्वर मे मनियादेव जो आल्हा-ऊदल के इष्टदेव थे, जैन मन्दिर मे स्थापित हैं। मनियादेव की मूर्ति मे कलाकार का जो सत्य छिपा है, वह अवर्णनीय है। तीर्थंकर की नाभि मे शिवलिंग स्पष्ट दिखायी देता है, इससे सिद्ध होता है कि आल्हा-ऊदल के इष्टदेव मनियादेव जैन मन्दिर मे स्थापित हैं। बटेश्वर जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र है।

बटेश्वर के शिव मन्दिर—बटेश्वर उत्तरी भारत का प्रमुख तीर्थ स्थान है। यहा से यमुना पश्चिम वाहिनी (मुहानी) है अर्थात् बटेश्वर देव स्थल से यमुनाजी पांच कोस उल्टी पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है। यमुना किनारे एक सौ एक शिव मन्दिर हैं। मध्य मे श्री बटेश्वर नाथ महादेव का मुख्य मन्दिर है। बटेश्वर नाथजी की बडी मान्यता है। प्रतिवर्ष लाखो ही भक्तजन कालिन्दी मे स्नान कर श्री बटेश्वर नाथजी के दर्शन का लाभ प्राप्त करते हैं। कार्तिकी पूर्णिमा पर प्रतिवर्ष मेला लगता है। यह मेला कार्तिकी अमावस्या से पूर्णिमा तक चलता है। यह मेला पशु मेला होता है। इस मेले में दूर-दूर से पशु बिकने के लिए आते हैं। बटेश्वर मेला 'लक्खी मेला' के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि इस मेले मे हर जाति के लाखो ही पशु सम्मिलित होते हैं।

रेणुका क्षेत्र—आगरा नगर से सात-आठ मील दूर यमुना किनारे प्रतिष्ठित रेणुका क्षेत्र प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। यह महर्षि जमदग्नि की तपोभूमि और भगवान परशुराम की जन्मभूमि के नाम से प्रसिद्ध है। रेणुका क्षेत्र से यमुना पश्चिम-वाहिनी (पूर्व से पश्चिम को बहती है) हो गयी है। दशहरा, पूर्णिमा अथवा सूर्य-चन्द्र ग्रहण के अवसर पर दूर-दूर से आकर स्त्री-पुरुष पश्चिम वाहिनी यमुना मे स्नान करते हैं।

रेणुकाजी का मन्दिर—गौघाट पर रेणुकाजी का मन्दिर है और यहीं से यमुना पश्चिम-वाहिनी है। रेणुका मन्दिर मे एक महर्षि जमदग्नि की तथा परशुरामजी की मूर्तियां स्थापित हैं। यह पुण्य-स्थली 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' के अमर गायक भक्त-कवि सूरदास जी की तपोभूमि है, जहां महाप्रभु वल्लभाचार्यजी पधारे थे। यहा सूर कुटी के पास ही गौघाट है, जहा रेणुका जी का मन्दिर है। यहा से चार मील दूर सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास की जन्मभूमि सीही नामक ग्राम है और सोही ग्राम मे वह बांसबनी का कुआं है जिसमे सूरदास जी के गिर जाने की तथा परब्रह्म वासदेव श्रीकृष्ण भगवान द्वारा निकाले जाने की जनश्रुति है। सूर कुटी के ओर-पास छाए सघन वन को उत्तर-प्रदेश सरकार ने 'सूर वन' घोषित कर दिया है। यह स्थान अत्यन्त रमणीक और दर्शनीय तीर्थ-स्थल है। यहा पास ही कीठम झील है। ब्रज की यह सुरम्य स्थली सैलानियो के लिए बडी उपयोगी है।

बटेश्वर के बाद आगरा जिले के फीरोजाबाद कस्बे मे प्रसिद्ध जैन मन्दिर है। पृथला कुड, ताजमहल, सिकदरा, राम बाग, लाल किला, एत्मादुद्दौला, जामा मस्जिद और फतहपुर सीकरी मे अकबर के गुरु सलीम चिस्ती का मकबरा आदि अवलोकनीय हैं। सलीम चिस्ती का यहा मेला भी लगता है। एक बार सम्राट अकबर ने भक्तकवि कुभनदास जी को फतहपुर सीकरी बुलाया और उनकी खूब आव-भगत की। जब वे गोवर्धन जाने लगे, तब अकबर ने पूछा—महात्माजी, यह फतहपुर सीकरी आपको कैसी लगी। भक्त कुभनदासजी ने कहा—

> सतन कहा सीकरी सौं काम।
> आवत-जात पन्हैया टूटी, बिसरि गयो हरिनाम।
> सतन कहा सीकरी सौ काम।

ब्रज को जैनधर्म की देन

पद्मचन्द शास्त्री

□□

आस्तिक जगत, जो आत्मा मे तथा इस लोक और परलोक मे विश्वास रखता है, उसका धर्म से चोली-दामन जैसा साथ है। दूसरे शब्दों मे यदि और गहरे उतरें तो यह कह सकते हैं कि जो धर्म है वह आत्मा है और जो आत्मा है सो धर्म है। जैसे अग्नि से उष्णता को नहीं छीना जा सकता, जल से सदाकाल के लिए शीतलता को पृथक नही किया जा सकता वैसे ही आत्मा से धर्म को जुदा नही किया जा सकता। इसी सिद्धान्त के अनुसार भारतभूमि मे सदा धार्मिकता पनपती रही है। यहा विविध धर्म परस्पर समन्वय-भाव से विविध रंगो के

पुष्पों से संजोए गुलदस्ते की भांति एक ही जगह सुरभित होते रहे हैं। जैन धर्म भी उसी गुलदस्ते का एक महकता फूल है जो सदा से जन-जन को अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की महक देता रहा है। इसके तीर्थंकर कभी बिहार-उड़ीसा में, तो कभी सुदूरवर्ती दक्षिण-भारत मे और कभी उत्तराखण्ड मे कैलाश-मानसरोवर तक भ्रमण कर धर्म का आदेश देते रहे हैं। एक ओर जब प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की तपोभूमि कैलाश रही तब दूसरी ओर तीर्थंकर महावीर का विहार बिहार भूमि मे हुआ। जब २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ गिरनार-गिरि से निर्वाण प्राप्त किए, तब २३वें तीर्थंकर बिहार मे सम्मेद शिखर पर्वत से मुक्त हुए और अन्तिम केवली जम्बूस्वामी ने ब्रजभूमि मे मथुरा-चौरासी से निर्वाण प्राप्त किया। इस प्रकार जैन-धर्म के तीर्थंकरों और मुनियो ने पूरे भारत में भ्रमण किया।

जहा तक ब्रज को जैन धर्म के योगदान का प्रश्न है, जैन धर्म का ब्रज से सदाकाल का संबंध रहा है। जिसे हम आज ब्रज कहते हैं वह पहले कभी शूरसेन जनपद के नाम से प्रसिद्ध था और वहां की भाषा शौरसेनी कहलाती थी। हिन्दी भाषा के जिस रूप को आज हम ब्रजभाषा के नाम से कहते हैं वह यहां की तत्कालीन प्राचीन भाषा का प्राकृत मूल रूप नही है, अपितु वह यहां की प्राकृत मूलभाषा शौरसेनी से भिन्न परवर्ती हिन्दी भाषा का एक रूप है। फलत जब हम भाषा के रूप की दृष्टि से विचार करते हैं तब हम यही पाते हैं कि ब्रज की मूलभाषा शौरसेनी प्राकृत को जितना प्रश्रय, पालन-पोषण जैनधर्म ने दिया अन्य किसी ने वैसा नहीं दिया। जैन धर्म ने इस भाषा को अपनाया, पनपाया और प्रचारित कर सुरक्षित भी रखा। दिग्जैन आगमो के सभी मूलग्रन्थ इसी मूलभाषा—शौरसेनी प्राकृत से ओत-प्रोत हैं और आज भी उनका प्रचार-प्रसार जारी है। दैनिक पूजा-पाठो मे भी इस भाषा के शब्द, वाक्य और गाथा आज भी कर्ण-कुहरो मे मिश्री-सी घोलते हैं—जो सुनता है वह भाव-विभोर हो झूमने लगता है।

जब कागज, कलम और स्याही का आविष्कार नही हुआ था उस युग मे जैनाचार्यों ने ताडपत्रो तथा भोजपत्रो पर काटो से अकित कर इस भाषा को सुरक्षित रखा। आज भी ताडपत्रीय इन ग्रन्थो का प्रसूत-भण्डार जैन धम मे सुदूर दक्षिण प्रदेश तक सुरक्षित है। भक्तगण इन शास्त्रो को भक्ति-भाव से पूजते और आदर की दृष्टि से देखने और पढते हैं। आचार्य गुणधर का 'कसायपाहुड' भतवली का 'षट्खडागम', वीरसेन की 'धवला टीका' कुन्दकुन्द के दसणपाहुड, सुत्तपाहुड, चरित्त पाहुड, मोक्खपाहुड, समयपाहुड, रयणसार, णिव्वाणभत्ति, आचार्य शिवार्य का भगवइ-आराहणा, स्वामीकुमार की कत्तिगेयाणुवेक्खा, सिद्धसेन का 'सम्मर सुन्त' सिद्धात चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य का 'दत्व-सग्रह' आदि तथा अनेक जैनाचार्यों के प्रभूतग्रन्थ जैन शौरसेनी प्राकृत मे आज भी प्रचारित हैं। इतना ही नहीं, इम भाषा ने जैनधर्म के माध्यम से समस्त भारत मे शूरसेन जनपद अथवा ब्रज की मूलभाषा को जीवित रखा और उसे पूरे भारत मे सम्मान दिलाया। जैनाचार्य जहा भी गए, इस भाषा के साथ गए, चाहे वह भारत का उत्तरी छोर हो या दक्षिणी, पूर्वी हो या पश्चिमी—सभी मे आचार्यों ने इस भाषा मे धर्मोपदेश दिए और इस प्रकार यहा की भाषा जीती-जागती और पनपती रही। जरा, भाषा की झलक देखिए—

'वदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवय गदि पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवली भणिदं।।'

इसके सिवाय मध्यकाल मे हिन्दी-ब्रजभाषा के क्षेत्र मे जैन धर्म का जो योगदान रहा उसे भी भुलाया नही जा सकता। प्रचलित ब्रज-भाषा मे साहित्य निर्माण करने वालो मे प बनारसी दास, भैया भगवती दास, कवि दौलतराम, द्यानतराय और भूधर दास आदि बहुत से विद्वानो ने आध्यात्मिक और भक्तिपरक काव्य प्रचुर मात्रा में लिखे जो आज भी प्रचलित हैं। जैसे—

'हम तो कबहु न निज घर आए।
पर घर फिरत बहुत दिन बीते नाम अनेक धराए ।।
हम तो कबहु न

तथा—

अपनी सुधि भूलि आप आप दुख उपायो।
ज्यो शुक नभ-चाल बिसरि नलिनी लटकायो ।। आदि ।।

ये तो हुई भाषा रक्षण एव उसके प्रसारण सबधी जैन धर्म के योगदान की बात। अब लीजिए सस्कृति-पुरातत्वादि की बात—

अतीत गया और जो वर्तमान है वह भी अतीत होकर बिला जाएगा— हम नए वर्तमानो मे खडे होकर रह जाएगे और भूल जाएगे अपने को। हम क्या थे, कौन थे, कैसे थे इसका हम पता तक न रह जाएगा। आज अवतारो की, तीर्थंकरो की, महापुरुषो की कथाए मात्र शेष हैं और वे भी बदलते आयामो मे हैं। उनमे क्या तथ्य रहे इसका पता लगाने के साधन मूलभाषा के शास्त्र एव भग्नावशेष मात्र शेष हैं—उनसे ही हमें पूर्व-स्थिति की जानकारी मिल सकती है। इस सबको जैन धर्म ने सुरक्षित किया और निर्मित कराया जिससे ब्रज की झाकी समक्ष आयी।

आचार्य श्री प्रभुदयाल मीतल के अनुसार ककाली टीला, चौरासी क्षेत्र, माता का मठ, जेलटीला, सीतला घाटी, बलभद्र कुण्ड, अर्जुनपुरा आदि के उत्खननो मे पर्याप्त मात्रा मे सामग्री मिली है। आयाग-पट्ट, स्तूप, मगलचैत्य, जिनालय-जिनमन्दिर के अवशेष और तीर्थंकर मूर्तिया सभी, सग्रहालयो मे सुरक्षित हैं।

शक-कुशाण काल की जो तीर्थंकर मूर्तिया मिली हैं, उनमे २३वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ की सुन्दर मूर्ति—जिसका सिर सर्प-फणो से आच्छादित है और उन फणो पर स्वस्तिक, सराव-सपुट, श्री वत्स, त्रिरत्न, पूर्णघट एव मत्स्यादि मागलिक चिह्न अकित हैं तथा सर्वतोभद्र मूर्ति—जिसके चारो ओर चार तीर्थंकरो की आकृतिया बनी हुई हैं'। २२वे तीर्थंकर नेमिनाथ की मूर्ति, जिसके बीच मे नेमिनाथजी हैं और उनके दानो ओर दाए-बाए उपदेवताओ के रूप मे वासुदेव श्री कृष्ण एव सकर्षण बलराम की आकृतिया उत्कीर्ण हैं।

यहा यह कहना असगत न होगा कि जो नारायण श्रीकृष्ण हिन्दुओ मे अवतार माने जाते है वे जैन धर्म के भावी तीर्थंकर हैं और जैनी उन्हे उत्तमशलाका पुरुषो मे बडे आदर से स्मरण करते हैं। हमे यह भी जान लेना चाहिए कि जैन धम के २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ व नारायण श्रीकृष्ण परस्पर मे चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण के पिता श्री वसुदेव और तीर्थंकर नेमिनाथ के पिता द्वारकाधिपति श्री समुद्रविजय परस्पर में सगे भाई थे।

इसके सिवाय जैन आयाग-पट्ट, जिस पर मागलिक चिह्न तथा अन्य अलकरण बने हैं और जो ईस्वी पूर्व पहली शती का है और लखनऊ सग्रहालय मे सुरक्षित है तथा मथुरा से प्राप्त ध्यान-मुद्रा स्थित जैन-तीर्थंकर की मूर्तिया भी जैन धर्म की देन है, जो ब्रज की कला की झाकी आज भी प्रस्तुत कर रही हैं।

२३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का भी मथुरा मे विहार हुआ था। उन्ही के तीर्थ मे लगभग ७वी-८वी शती ईस्वी पूर्व एक देव निर्मित स्वर्णमयी स्तूप को ईंटो से ढक दिया गया था। डा फुहरर, स्मिथ, बोगल आदि पुरातत्वज्ञ भी इस स्तूप के अवशेषो को देखकर इसी निष्कष पर पहुचे कि यह जैन स्तूप ईसा से कम-से-कम पाच-छह सौ वष पूर्व निर्मित हुआ था।

महावीर की शिष्य परम्परा के अन्तिम केवली जम्बूस्वामी ने मथुरा के चौरासी क्षेत्र पर दुर्धर तपश्चरण किया था। उनके उपदेश से नगर के महान दस्यु-विधुर चोर ने ५०० शिष्यों के साथ चोरी का

त्याग किया और स्वयं सती बन, तपस्या करके सद्‌गति को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार जैन धर्म ने ब्रज को अनेक दिशाओं में पर्याप्त अनमोल रत्न सौंपे। इससे अधिक क्या कहा जाय कि यह जैन धर्म का ही सौभाग्य है कि उसने राजगृह निवासी श्री जम्बूकुमार को ब्रजभूमि मथुरा को परमात्मा के रूप मे—'जन-जन हिताय' सौंपा और जिन्होंने यहा से मुक्ति प्राप्त की। उनकी स्मृति-स्वरूप चौरासी-मथुरा मे निर्मित विशाल जिनमन्दिर आज भी भारत के करोड़ों मानवो को आदर्श मार्ग बन, मस्तक ऊंचा किए खड़ा है। हमारे नमन—

'महुराए अहिछित्ते वीर पास तदेव वदामि।
जम्बुमुणिंदो वदे णिव्वुइ पत्तो वि जबुवण गहणे॥'
मथुरापुर पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामी जी निर्वाण।
चरम केवली पचमकाल, ते वन्दो नित दीनदयाल॥

ब्रज के मुसलमान कवि

(प्रो) मलिक मोहम्मद

□□

मध्ययुगीन हिंदी साहित्य भक्ति-भावना से ओतप्रोत है। दक्षिण से भक्ति की जो लहर उत्तर मे आई उसने उत्तर की सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो मे एक व्यापक भक्ति आन्दोलन को जन्म दिया। डा ग्रियर्सन के शब्दो मे भक्ति भावना बिजली की चमक के समान सम्पूर्ण उत्तर भारत मे फैल गई। परिणामस्वरूप हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओ मे व्यापक मात्रा मे भक्ति साहित्य का निर्माण हुआ। विभिन्न सम्प्रदायो का जन्म हुआ और उससे प्रेरित भक्ति कवियो और सत कवियो ने विपुल मात्रा मे भक्ति काव्य की रचना की। एक ओर वृन्दावन को केन्द्र बना करके श्रीकृष्ण भक्ति भावना मे तल्लीन होकर अनगिनत कवियो ने ब्रजभाषा मे काव्य रचना की। श्रीकृष्ण की मधुर प्रेम भावना मे इतनी आसक्ति थी कि बहुत से मुसलमान कवियो ने भी कृष्ण भक्ति मे तल्लीन होकर ब्रजभाषा मे काव्य रचना की।

ब्रजभाषा मे कृष्ण भक्ति काव्य रचना करने वाले छोटे-बड़े अनेक कवियो का पता चला है। इनमे से रसखान, मीरन, रहीम, मुबारक, रसलीन, सैय्यद अब्दुल जलील बिलग्रामी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रसखान, रहीम और रसलीन ने तो बहुत ही उच्चकोटि का काव्य रचा है। रसखान के सबध मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की यह उक्ति बहुत ही प्रसिद्ध है—

इन मुसलमान कबिन पर कोटिन हिन्दू वारिये

रसखान का नाम वल्लभ सम्प्रदाय कवियों के बीच में भी लिया जाता है। कहा जाता है कि रसखान वृन्दावन आए और वहीं पर श्रीकृष्ण की लीलाओं मे तल्लीन होकर भक्तिपरक रचनाओ की सर्जना की। ब्रज माधुर्य और श्रीकृष्ण की लीलाओ ने रसखान को इतना आकृष्ट किया कि वे लिखते हैं—

मानुष हौं तो वही 'रसखानि'
बसौं ब्रज-गोकुल-गांव के ग्वारन
जो पसु हौं तौ, कहा बसु मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन।
पाहन हौं तौ, वही गिरि कौ,
जो धर्‌यौ कर छत्र पुरन्दर-धारन,
जो खग हौं तो बसेरो करौ मिलि
कालिन्दी कूल कदब की डारन।।

श्रीकृष्ण की रूप-राशि ने रसखान को इतना पागल बना दिया कि कृष्ण भावना मे आसक्त होकर कवि ने कई मार्मिक उक्तिया प्रकट की हैं—

बक बिलोकिनि हसन मुरि मधुर बैन 'रसखानि'।
मिले रसिक रसराज दोउ हरखि हिए रसखानि।।
देख्यो रूप अपार, मोहन सुदर स्याम को।
वह ब्रजराजकुमार, हिय जिय नैननि मे बस्यो।।

रसखान की दृष्टि मे प्रभु और प्रेम भिन्न नही। दोनो एक हैं, नजर चाहे अलग आए। प्रेम और प्रभु अगम हैं, अनुपम हैं। जो एक बार इनके पास आ जाते हैं वे पीछे नही फिरते। रसखान कहते हैं—

प्रेम हरी कौ रूप है, त्यौं हरि प्रेम सरूप।
एक होइ द्वै यौं लसैं, ज्यौं सूरज अरु धूप।।

कवि अब्दुर्रहीम खानखाना ने भी ब्रजभाषा मे कृष्ण भक्ति भावना पर अनेक रचनाए की हैं। यह बात बिना सकोच कही जा सकती है कि मुसलमान कवियो मे जिन्होंने कृष्ण काव्य की रचना की है, रहीम का स्थान सबसे ऊचा है।

रहीम के हृदय मे वैष्णवी श्रद्धा की परम पुनीत और प्रबल मन्दाकिनी प्रवाहित थी। उस पुण्य जल के प्रताप से उनके मन की सम्पूर्ण धार्मिक कटुता धुल-धुलकर समाप्न हो चुकी थी। जितनी दिव्यता, निष्ठा एव वैष्णवी सूझबूझ, श्रद्धा और विश्वास उनकी रचनाओ मे प्राप्त होती है वह स्पृहणीय है, श्लाघनीय है।

बालकृष्ण की छवि पर रहीम मुग्ध हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रहीम मानो मुरली मनोहर पीताम्बरधारी कमल नयन मनमोहन कृष्ण की मधुमयी कवि का छक-छक कर रसपान कर रहे हो। श्रीकृष्ण भुवनमोहन रूप की आसक्ति, उनके विशाल नेत्रो का आकर्षण रहीम की आत्मा को कुछ ऐसे झकझोर रहे हैं कि व्याकुलतापूर्ण पद पढ़ते ही बना है—

छबि आवन मोहनलाल की।
काछे काछनि, कलित मुरलि कर,
पीत पिछौरी साल की।।
बिसरत नाही सखी! मो मनतें
चितवनि नयन विशाल की।।

रहीम ने अपनी रचना 'मदनाष्टक' मे कृष्ण की मुरली के व्यापक प्रभाव, गोपियों की विह्वलता तथा कृष्ण के रूप-सौंदर्य द्वारा उद्दीप्त गोपी-प्रेम-भावना और उनकी श्रीकृष्ण से मिलने की आतुरता का बडा सुन्दर वर्णन किया है।

रसलीन का पूरा नाम सैयद गुलाम नबी था। रसलीन ने भी श्रीकृष्ण भक्ति पर कई रचनाए की हैं। रसलीन ने बहुत ही सुंदर उक्तिया दी हैं।

राधिका श्रीकृष्ण की प्यारी छवि को अपने नैनों में बसाये रखती हैं। परन्तु उन्हें यह डर लगा रहता है कि उसकी सांवरी सूरत को सदा आंखों मे रखने से कहीं उनकी गोरी देह सांवरी न हो जाय। इस भाव को रसलीन ने दर्शाया है—

प्रिय मूरति मेरी सदा, राखत दृगन बसाय।
डरपति गोरी देह यह, मत कारी ह्वै जाय॥

रसखान, रहीम और रसलीन के अलावा मीरन, मुबारक, सैयद अब्दुल जलील विलग्रामी आदि की ब्रजभाषा कविताओं मे भी कृष्ण भक्तिपरक बहुत ही अनूठी उक्तियां मिलती हैं।

कविवर आलम भी ब्रज भाषा के ऐसे मुसलमान कवि हैं, जिनकी रचनाए ब्रज माधुरी से ओत-प्रोत हैं।

ब्रज की रसोपासना और आधुनिक युग-संदर्भ

(प्रो) विजयेन्द्र स्नातक

□□

वैज्ञानिक दृष्टि और अध्यात्म

आधुनिक विश्व-मानस और ब्रज की रस-सस्कृति पर विचार करते समय सबसे पहले जो प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित होता है वह आधुनिक वैज्ञानिक युग की नवीन चेतना का है। आज का विश्व जिस विचारधारा और चिन्तन पद्धति से आन्दोलित है वह रसोपासना द्वारा विकसित रस सस्कृति के साथ सामजस्य नही रखती। आज का विश्व वह नही है जो आज से सौ वर्ष पहले था। विश्व का भौतिक स्तर पर जो परिवर्तन हुआ है उसने मानसिक स्तर पर भी मनुष्य को बदला है। वैज्ञानिकों ने जगत के असीम विस्तार को सीमाओ मे समेट कर मानव की क्रीड़ास्थली बना दिया है। मनुष्य को अपनी शक्ति पर अधिकाधिक विश्वास बढ़ा है और ईश्वरीय शक्ति के प्रति वह शंकालु बनता जा रहा है। जिसे हम ईश्वर की शक्ति और आत्मा का अस्तित्व मानते हैं, उसे भी आधुनिक युग के वैज्ञानिक अपने चाक्षुस परीक्षणों से जानने का प्रयत्न कर रहे हैं। जीवाणु

की सृष्टि का प्रयास इस दिशा मे विज्ञान को चकित करने वाला चरण है। यदि विज्ञान के माध्यम से जीव की सृष्टि का प्रयास सफल हो गया तो मानव जाति का ईश्वर की सत्ता मे परम्परागत विश्वास दोलायमान हो जाएगा। हमें ईश्वर के सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, अजर-अमर, अखड, सच्चिदानन्द रूप पर पुनर्विचार की आवश्यकता होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान युग की वैज्ञानिक उपलब्धियो के परिप्रेक्ष्य मे विश्व-मानस की स्थिति और भक्ति मार्ग मे स्वीकृत रसोपासना के बीच तालमेल बिठाने के लिए धर्म, दर्शन, भक्ति और विज्ञान को समन्वित रूप मे परखने की आवश्यकता होगी। धर्म परम्परागत आस्था पर अवलम्बित होता है, दर्शन बौद्धिक ऊहापोह से सचालित है, भक्ति का आधार उपास्य के प्रति पूज्य बुद्धि और श्रद्धा है तथा विज्ञान भौतिक उपकरणो से पदार्थ के रहस्य को चाक्षुष प्रत्यक्ष करने में विश्वास करता है। विश्व-मानस इन चारो प्रकार की दृष्टियो से बधा है। किसी एक दृष्टि से वह सचालित नही होता। किसी अखड आनन्द की कल्पना से परितुष्ट होकर रसमग्न हो जाना आज के विश्व-मानस के लिए सभव नही है।

भौतिकवादी दृष्टि

आज का विश्व-मानस भौतिकता से आकृष्ट होकर बौद्धिक तर्क और प्रत्यक्ष तत्व-ज्ञान मे विश्वास करता है। उसका सास्कृतिक दृष्टिकोण भी परिवर्तित हो गया है। आज की सस्कृति भौतिक सभ्यता के उपादानो के सग्रह के कारण परिग्रह की, पार्थिव समृद्धि की, सुख-सम्पदा को जुटाने की बन गई है। वह भौतिक विज्ञान द्वारा प्रत्येक तत्व को प्रत्यक्ष प्रमाण से जानना चाहती है। आज का विश्वमानस वैज्ञानिक दृष्टि के विकास की ओर अग्रसर है, निष्ठुर और निर्मम भाव से सत्यानुसधान की व्याकुलता आधुनिकता का लक्षण है। जो बात बुद्धि की पकड मे नही आती उसे आज का विश्वमानस मानने को उद्यत नही है। यह कैसी विडम्बना है कि हम आज बुद्धि तक सीमित हो गए हैं। बौद्धिक-विमर्श आज के विश्व-मानस की सीमा है। आज का वैज्ञानिक गोचर जगत तक जिस पारदर्शिता से पहुचता है वैसी सूक्ष्मेक्षिका से वह मनोजगत तक नही पहुच पाता। फलत धर्म, दर्शन, भक्ति, उपासना, अध्यात्म, श्रद्धा, विश्वास, परम्परा आदि को यथावत स्वीकार करने को बुद्धिजीवी वैज्ञानिक तैयार नही हैं।

मध्ययुगीन भक्तिसाधना

भारतीय अध्यात्म-चिन्तन मे भौतिकतावादी दृष्टि के लिए वह स्थान नही है जो आज के चिन्तन मे लक्षित होता है। भारतीय जीवन-दशन के मूल मे आस्तिक भावना है। आस्तिक भावना के साथ भगवान के प्रति सम्पूर्ण भाव से समर्पण है। यह समर्पण ही सान्निध्य का मार्ग है। भगवान का अनुग्रह, प्रपत्ति, कृपा और भरोसा भक्त के लिए इतना प्रबल है कि वह अपने अस्तित्व को विस्मृत कर भगवन्निष्ठ होने मे ही अपने जीवन की साथकता मानता है। ससार का भौतिक वैभव उसके लिए रजकण के सदृश तुच्छ हो जाता है और अपरिग्रह की ऐसी स्थिति आती है कि भगवान की रसमयी लीलाओ के दर्शन के सिवा भक्त की आकांक्षा में कुछ भी शेष नही रहता। इस प्रकार की भक्ति-भावना से जो सान्निध्य भक्त को सुलभ होता है वह रसानुभूति का चरम बिन्दु है। यदि हम आज के विश्व-मानस को रसानुभूति के इस परम आह्लादक बिन्दु पर देखना चाहते हैं तो भौतिकतावादी धूमिल दृष्टि के परिष्कार की सबसे पहले आवश्यकता होगी।

मध्ययुग के विश्व-मानस पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर-विश्वास के

साथ धार्मिक भावना की एक गहरी छाप उस युग में विद्यमान थी। उस युग में मनुष्य का प्रयत्न प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा स्वय अपनी चित्त-वृत्ति पर, अपने मनोवेगो पर विजय प्राप्त करने की ओर अधिक था। इसीलिए भौतिक उपादानों की दृष्टि से वह सुखी कम होने पर भी सन्तुष्ट अधिक था। लेकिन सुख का अधिष्ठान बाहर न होकर मनुष्य के भीतर, मनुष्य के मन मे होता है। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि कौपीन और करवा रखकर भी मनुष्य सुख की अनुभूति कर सकता है मध्ययुग के भक्तो और सन्तो ने आणविक शक्ति के विकास द्वारा ससार को ध्वस के कगार पर खडा करने का स्वप्न नही देखा था। उनकी दृष्टि विश्वमैत्री, करुणा, अहिंसा और सद्भाव के साथ स्व-सुख से ऊपर उठकर मानव मात्र के सुख की ओर रहती थी। आधुनिक युग की व्यस्त, सत्रस्त, सहार और विनाश की जीवनचर्या से, उसका कोई सम्बन्ध नही था।

आज के विश्व-मानस पर विचार करते समय जीवन-दर्शन और जीवन-मूल्यों का भी प्रश्न सामने आता है। प्राचीन भारत मे साधना के चार मार्ग थे—ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग। ज्ञानमार्गी के लिए तत्व-चिन्ता ही अन्तिम साध्य विषय था, कर्म मार्गी के लिए नाना प्रकार के कर्म काडों का विधान था। भक्ति मार्गी के लिए भक्ति के विविध साधन और उपाय थे, योग मार्गी शुद्ध तपस्या, यम-नियम आदि पर निर्भर रहकर जीवनयापन मे विश्वास करता था। आज ज्ञान का क्षेत्र बदल गया है, अध्यात्म को ज्ञान के लिए ग्रहण नही किया जाना अर्थात तत्व चिन्ता ब्रह्म जिज्ञासा नहीं है, पदार्थ-जिज्ञासा है। कर्मकाड का स्थान दैनन्दिन जीवन के कर्मजाल ने ले लिया है, धनोपार्जन ही कर्म रह गया है उसमें शुद्ध साधन की भी अपेक्षा नही है। भक्ति और योग के लिए आधुनिक भौतिकतावादी चिन्तन मे कोई स्थान नही है। मन्दिर और पूजा स्थल बनवाने की अपेक्षा आज प्रयोगशालाए स्थापित करने मे उसकी निष्ठा है। ईश्वर और आत्मा अर्थात् अध्यात्म चिन्तन को छोडकर आज का विश्व-मानस पदार्थ की जिज्ञासा और भूत की साधना मे सलग्न है।

पाश्चात्य चिन्तक और विश्व-मानस

विश्व-मानस को उन्नीसवीं शताब्दी से जिन पाश्चात्य विचारको ने प्रभावित किया उन्होंने धर्म और अध्यात्म परम्परा से हटकर अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किए और जिन सिद्धान्तो पर रस-सस्कृति टिकी है उसे पाश्चात्य विचारको ने अपने चिन्तन मे कोई स्थान नही दिया। फलत ईश्वर-भक्ति और ईश्वर-विश्वास को ही नवीन दार्शनिक तत्वचिन्ता मे छोड दिया गया। मैं इस सदर्भ मे विश्व के चार प्रमुख वैज्ञानिको, दार्शनिको और विचारको का उल्लेख आवश्यक समझता हू। सबसे पहले वैज्ञानिक विचारक डारविन हुए जिन्होंने सृष्टि-निर्माण की प्रक्रिया मे किसी दैवी शक्ति की सत्ता स्वीकार नही की थी। सृष्टि विकासवाद के सिद्धान्त से स्वय विकसित होती है। मनुष्य आज जिस रूप मे विकसित होकर बुद्धिजीवी-विवेकी प्राणी बना है वह भी विकास प्रक्रिया का ही परिणाम है। ईश्वर का अस्तित्व और उसकी क्रियाशीलता, विकासवाद मे कोई भूमिका नहीं रखती अत ईश्वर-विश्वास, अध विश्वास ही है। विकासवाद के इस सिद्धान्त का यूरोप मे खडन भी हुआ और समर्थन भी। अनीश्वरवादियो ने विकासवाद को यथावत न मानने पर भी ईश्वर के अस्तित्व का जमकर खडन किया। नीत्शे इसी प्रकार के अनीश्वरवादी दार्शनिक थे। इसके बाद कार्ल मार्क्स ने ईश्वरीय सत्ता, धर्म और उपासना पर परोक्ष पद्धति से प्रबल प्रहार किया। मार्क्स ने सामाजिक न्याय और सामाजिक सुख-समता के लिए अर्थ-व्यवस्था को जिम्मेवार ठहराया और सिद्ध किया कि जिस समाज मे अर्थ का वितरण समान नहीं होता वहां वैषम्य रहता है और अर्थ पर नियत्रण रखने वाले पूजीवादी लोग धर्म,

ईश्वर, चर्च और पूजा का ढकोसला खडा कर समाज का शोषण करते हैं। समाज को भ्रमित करने का यह बुर्जुआ वर्ग का प्रपच है। इस आर्थिक ढाचे की चिन्तन व्यवस्था मे से भी ईश्वर और धर्म का बहिष्कार हो गया। तीसरे चिकित्सक दार्शनिक फ्राइड हुए। उन्होने मनोविश्लेषण के साथ अवचेतन के गुह्य जगत में प्रवेश कर समस्त सृजन, ध्वस और निर्माण का दायित्व मनुष्य की दमित काम-वासना पर डालकर किसी भी दैवी शक्ति के प्रति आस्था व्यक्त नही की। मनुष्य के अवचेतन का सघर्ष, जो काम प्रेरित होता है, सृजन का कारण है। आस्तिकता की कोई आवश्यकता नही है क्योकि अवचेतन स्वय एक चेतना है जो क्रियाशील होकर सभी अच्छे-बुरे कर्मों की प्रेरिका शक्ति है। चौथे विचारक सार्त्र हुए जो महान दार्शनिक होने के साथ मनुष्य को किसी अदृश्य दैवी शक्ति से सम्पृक्त करने के पक्ष मे नही हैं। उन्होने अपने अस्तित्ववादी दर्शन से मनुष्य की सत्ता मे विश्वास व्यक्त करते हुए उसके अस्तित्व को ही मुख्य स्थान दिया और अस्तित्व के समय मनुष्य के क्रियाकलाप के लिए उसी को उत्तरदायी ठहराया। फलत ईश्वर, आत्मा, धर्म, भक्ति, उपासना आदि के लिए इनके दार्शनिक चिन्तन मे भी कोई स्थान नही है। इस प्रकार आज के विश्व-मानस को प्रभावित करने वाले उपर्युक्त पाश्चात्य चिन्तको ने रस और रसाश्रित भक्ति भावना के लिए कोई स्थान नहीं छोडा है।

आज से सौ वर्ष पहले डारविन और काल मार्क्स ने जिस प्रकार का वैज्ञानिक विकासवाद और आर्थिक साम्यवाद प्रस्तुत किया था वह परवर्ती चिन्तको द्वारा स्वीकृत नही हुआ। यौन कुठाओ को महत्व देने वाले मनोविश्लेषण शास्त्री फ्राइड ने डारविन और मार्क्स की मान्यताओ को निरस्त कर जो अवचेतनवादी आधार दिया वह भी कारगर साबित नही हो सका। उसके समकालीन युग और एडलर ने फ्राइड की मान्यताओ को एकागी और त्रुटिपूर्ण सिद्ध कर दिया। सार्त्र ने तो और भी आक्षेप लगाकर अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन की बात कही। इस रस-सस्कृति के सदर्भ मे इन पाश्चात्य विचारको की चर्चा मुझे इसलिए आवश्यक प्रतीत हुई कि विश्व-मानस को आन्दोलित करने और उसकी विचारधारा को प्रभावित करने मे इन विचारको का महत्वपूर्ण योगदान है। अन्तिम सत्य न होने पर भी परम्परागत स्वीकृत सत्य को ये चुनौती अवश्य देते हैं। सत्य को कीलित करना सहज नही है।

रस-सस्कृति का मूल

विश्व-मानम को रस-सस्कृति के सदर्भ मे देखते समय हमे यह देखना होगा कि रस-संस्कृति किस रूप मे जीवित है और उसका क्षेत्र क्या है। प्रसिद्ध विद्वान स्पेग्लर ने सस्कृति को परिवर्तनशील और क्षयी माना है। क्या रस-सस्कृति परिवर्तनशील और क्षयी कोटि की है। जिसे हम रस-सस्कृति नाम से पहचानना चाहते हैं वह वैदिक युग मे जिस रूप मे रही होगी वैसी मध्ययुग मे नही थी। जिस रस-सस्कृति की आज हम भक्ति के सदर्भ मे चर्चा करते हैं वह मध्ययुगीन भक्तो की देन है। मध्ययुगीन सगुणोपासक भक्तों ने अपनी भक्ति-साधना को माधुर्य मडित कर जिम रूप मे रसप्लावित किया वैसा पहले किसी साधक या भक्त ने नहीं किया था। इस रसभक्ति को समझने के लिए भारतीय उपासना मार्गों का सही परिप्रेक्ष्य मे निर्वचन-विश्लेषण करना होगा। भारतीय उपासना मार्गों का आकलन करते समय उनके मूल मे सन्निविष्ठ व्यापक जीवन दृष्टि को ध्यान मे रखना होगा। भारतीय मनीषी पुनर्जन्म मे विश्वास करते हुए शाश्वत जीवन मूल्यो का सधान करते हैं। इसलिए उनकी दृष्टि आधुनिकता और अद्यतन तक सीमित नही रहती। कालातीत दृष्टि से सत्या-नुसधान भारतीय मनीषा की देन है।

रस और लीला दर्शन

रसोपासना की पद्धति में रस को साध्य मानकर, आनन्द का अनन्त स्रोत मानकर ही उपास्य तत्व के रूप में स्वीकार किया जाता है। ब्रज के भक्ति सम्प्रदायों मे रस कल्पित या आरोपित न होकर भक्ति का मेरुदण्ड है। यह रस, धर्म और सम्प्रदाय की धुरी है जिसे किसी भी रूप मे छोड़ा नहीं जा सकता। तैत्तरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्द वल्ली मे जिस ब्रह्म जिज्ञासा को उठाकर 'रसोवैस' द्वारा समाधान किया गया है वही रस-आनन्द स्वरूप रस-ब्रज के भक्ति सम्प्रदायों मे आस्वाद्य बनता है। अतएव इस रस को हम साधन और साध्य दोनो रूपो मे देख सकते हैं। औपनिषदिक विचारधारा मे ब्रज चिन्तन को सर्वाधिक प्रिय ठहराकर उसका प्रियतम रूप वर्णित किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् मे 'प्रेय: पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतर यदयात्मा'—द्वारा उसकी अव्यक्त सत्ता को रसघन-विग्रह अर्थात् सर्वाधिक प्रिय रूप से प्रस्तुत किया गया है। रसोपासना का यह वैशिष्ट्य ही उसे अन्य सभी उपासना-मार्गों एवं प्रकारो से पृथक कर देता है। रसोपासना का आधार-बिन्दु तो भाव ही है। भाव विहीन व्यक्ति रसोपासना का अधिकारी नहीं है। बृन्दावन भावना की भूमि है जिसके पास मानसिक भाव सम्पदा नहीं वह इसके मर्म को नहीं समझ सकता।

न देवो विद्यते काष्ठे, न पाषाणे न मृण्मये।
देवो हि विद्यते भावे, तस्माद्भावो हि कारणम् ॥

श्रीमद्भागवत मे रसोपासना का यदि सधान करना अभीष्ट हो तो रासपचाध्यायी का अनुशीलन अपेक्षित है। रासलीला के समापन मे 'सर्वा शरत्काव्यकथा रसाश्रया' की घोषणा रस प्रकर्ष को पूरी तरह स्पष्ट कर देती है।

भक्ति रस के सम्बन्ध मे काव्यशास्त्रीय ग्रथो मे जो कुछ लिखा गया है उसकी चिन्ता न करते हुए बृन्दावन के रसोपासक भक्तो ने राधाकृष्ण की आनन्दमयी लीलाओ को रस का अधिष्ठान बताया है और उन्ही लीलाओ के माध्यम से अपनी भक्ति भावना का प्रसार किया है। जिस प्रकार एक ही सिन्धु मे नाना प्रकार की रत्नराशि, जीव जन्तु, और जल बुदबुद रहते हैं उसी प्रकार लीलार्णव मे एक ही राधाकृष्ण-प्रेम नाना रूपो और नाना भावो मे व्यक्त होता रहता है। बृन्दावन इस रस की मगलमयी स्थली है। जिस बृन्दावन को धाम कहा जाता है वही यह नित्य रस निवास करता है। जिस प्रकार शुक को वृक्ष के गहन झुरमुट मे पल्लव और डालपात की जगह केवल रसपूर्ण पका फल ही दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार रसिक भक्त को बृन्दावन के निभृत निकुज मे प्रिया प्रियतम की अहर्निश चल रही माधुर्य लीला की झाकी ही लक्षित होती है। इस युगल लीला के साक्षात्कार के लिए रसिक भक्त को सखी भाव धारण करना पड़ता है। रसिकोपासको की दृष्टि में इस नित्य लीला रस के साक्षात्कार को तुलना में ब्रह्म साक्षात्कार, मोक्ष या मुक्ति तुच्छ प्रतीत होती है। इसीलिए इस रसोपासना को सर्वोपरि ठहरा कर अन्य मार्गों से भिन्न माना गया है।

रसोपासना के सम्बन्ध मे एक बात ज्ञातव्य है। इस उपासना को एक प्रकार से गुह्य कहा जाता है। वास्तव मे यह गुह्य उपासना नही है। यह अव्याकृत भी नही है। हा, अधिकारी और अनधिकारी का प्रश्न इस मार्ग मे सदैव रहा है। सखी भाव की उपासना के मर्म को न समझ पाने वाले उपासक के लिए यह गोप्य ही है। नीरस व्यक्तियों के लिए इसे वर्जित ही कहना उचित है। इस मार्ग में नवधा भक्ति का विधान अनिवार्य नहीं है। व्रत, उपवास, तीर्थाटन आदि का पालन भी आवश्यक नहीं माना जाता। विधि-निषेध की जो मर्यादा अन्य भक्ति मार्गों में है वह भी यथावत इस मार्ग में नहीं है।

सेवी नित्य विहार के, रसिक अनन्य नरेश।
विधि निषेध क्षिति छाडि कै, मढे प्रेमनभ-देश ।।

सक्षेप मे, रसोपासना का यह भक्तिमार्ग लोकोत्तर है, चर्मचक्षुओ से इसका साक्षात्कार संभव नहीं। यह चिद्विलास है, सासारिक भोग-विलास नही। यह मर्म गोचर है, चक्षुगोचर नही। भावजगत मे प्रवेश करने पर ही इसका आस्वाद सभव होता है।

काम केलि रस और न परसत प्रेम समुद्र अपार।
मत्त मुदित सहचरि सेवत नित लता ललित आगार ।।

रस के जगत मे वही व्यक्ति प्रवेश का अधिकारी होता है जिसका मन निर्मल, स्वच्छ, निष्कपट, वासनाहीन, लौकिक कामकेलि रहित और लीलादर्शन मे सम्पूर्ण रूप से लीन होता है। आज के आधुनिक चिन्तन का मूल बुद्धि है। बुद्धि तर्काश्रित सत्य से आगे नही जाती। बुद्धि मन की अतल गहराइयो तक जाने मे समर्थ नही है। यह हमारी बौद्धिक विडम्बना ही है कि हम बुद्धि तक सीमित रहकर आत्मतत्त्व को पहचानना और पकडना चाहते हैं। रस की सूक्ष्म चेतना को समझने मे अक्षम होकर उसे प्रतिक्रियावादी, रूढ़िवादी और सकीर्ण परम्परावादी जीवन दृष्टि कहने की भूल करते हैं।

रसोन्मुखी दृष्टि

पाश्चात्य देशो का मानस आज अपने द्वारा निर्मित सुख-सुविधा के साधनो से स्वय संत्रस्त है। जीवन का रस सूख जाने से वह भौतिकता से परेशान होकर भारत जैसे धर्मप्राण देश की ओर शान्ति और सन्तोष प्राप्ति के लिए देख रहा है। सिगरेट और शराब की प्याली से उसका मन ऊब गया है। वह अपनी मशीनी सभ्यता से उत्पन्न ऊब, खीझ, उलझन, कुठा, त्रास, उद्वेग और अशान्ति को भारत के भक्ति मार्गी चिन्तन और योगमार्गी साधना से दूर करना चाहता है। दूसरे शब्दो मे वह रस की आनन्दमयी भूमिका मे आकर अपनी कुठाजनित निराशा और त्रासोद्भव विभीषिका को दूर करना चाहता है। वह भारतीय पुराकथा और भक्ति साहित्य को आह्लाद के साथ पढना चाहता है। जीवन की त्रासदी मे फसा विश्व-मानस आज यदि कहीं चैन पाता है तो वह भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन की रसमयी धारा मे ही पाता है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग और मानसिक शान्ति के लिए भक्ति मार्ग ही आज अवलम्ब बन गए हैं।

रस सस्कृति की पुनरावृत्ति

मैं अनुभव करता हू कि बीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे इतिहास की पुनरावृत्ति जिस रूप मे होगी वह इतिहास यूरोप, रूस और अमरीका का इतिहास न होकर भारत का इतिहास होगा। भारत का वह इतिहास जब मनुष्य अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर भगवन्निष्ठ होकर अपरिग्रह भाव से जीवन यापन करता था। प्रकृति पर विजय प्राप्त करना उसका लक्ष्य नही था, प्राकृतिक उपादानो के आवश्यकतानुसार उपयोग से वह सतुष्ट रहता था। प्रकृति उसकी सहचरी थी और वह प्रकृति के साथ पूरे सामजस्य के साथ व्यवहार करता था। इस भावी युग का इतिहास वैज्ञानिक उपलब्धियो पर गर्व न करके आध्यात्मिक शान्ति-साधनो पर गव करने वाला होगा। विज्ञान मनुष्य का सेवक होगा और अध्यात्म, विज्ञान का स्वामी होगा। उस समय जिस सस्कृति की पुनरावृत्ति होगी वह रागात्मिका वृत्ति से उद्वेलित रसमयी, आनन्दप्रद सस्कृति

होगी। आपाधापी और उद्वेलन की घबराहट से रहित सस्कृति मे सांस लेने वाला विश्व-मानस तब सचमुच जीवन की सार्थकता का अनुभव करेगा। हो सकता है मेरी यह कल्पना आपको युरोपिया, अयथार्थ, कल्पित सुख प्रतीत हो किन्तु जिस गति से विश्व-मानस आधुनिक युग मे विज्ञान और भौतिकतावाद की ओर अग्रसर है उसकी चरम परिणति को लक्ष्य कर मैं यह कहने का साहस कर रहा हू। पार्थिव प्रलोभन और दैहिक क्षुधा की एक सीमा होती है। उसके आगे अतृप्ति, सत्रास और विभीषिका के सिवा कुछ और नही रहता। अत विज्ञान की अंधी गली मे रास्ता न मिलने पर लौटकर विश्व-मानस को रस के देश मे आना होगा।

रस का क्षेत्र इतना व्यापक और विशाल है कि उसमे पहुच कर मानवजाति अपना खोया हुआ सुख-चैन, सतोष-आनन्द पुन प्राप्त कर सकेगी। रस की भूमिका उसकी साधनावस्था और सिद्धावस्था दोनो मे है। जो रस को सस्कृति के स्तर पर स्वीकार करना चाहते हैं उनके लिए भी इसमे स्थान है। जो रस को आनन्दावस्था के रूप मे स्वीकार करना चाहते हैं उनके लिए भी रस मे लीन होने का पूरा अवकाश है। पाश्चात्य देशो मे ऐसा विश्वास उत्पन्न हो गया था कि अतीत की सस्कृति वर्तमान से पराजित हो गई है लेकिन मेरा विश्वास है कि वह भारत मे अपनी ऊर्जा के साथ जीवित है और वर्तमान के आगे उसने घुटने नही टेके हैं।

रस-सस्कृति एक सस्कार है, एक उदात्त आस्तिक जीवनचर्या है। जब तक जीवन मे अशान्ति है, हाहाकार है, भोग-विलास की बलवती स्पृहा है तब तक इस सस्कृति का पौधा कुठा और नैराश्य के आलबाल मे नही पनप सकता। जिस दिन शान्ति, सतोष, अध्यात्म और अपरिग्रह के स्वाति नक्षत्र की रसधारा इस कुठित मन पर पडेगी उसी दिन रस-सस्कृति का पादप लहराने लगेगा। विश्व-मानस इस सस्कृति को पहचानेगा और स्वीकार कर सुखी होगा। जिस प्रकार अजलि मे रखे हुए सुगन्धपूर्ण पुष्प दोनो हाथों को सुवासित करते है वैसे ही रसोपासना का सुख देश, जाति, वर्ण और सम्प्रदाय के भेद को भूलकर जो इसे स्वीकार करेंगे उन्हे समान रूप से सुलभ होगा।

(डा) विद्यानिवास मिश्र

□□

नाहिं न रह्यो मन में ठौर

सूरदास के बारे मे एक कथा है कि तानसेन को साथ लेकर अकबर उनसे मिलने आये। वे उनका गायन सुनना चाहते थे। सुना, फिर अकबर ने कहा, "कुछ हमारे बारे मे भी गाइये", तो कहा जाता है कि सूरदास ने यह पद गाया

नाहिं न रह्यो मन मे ठौर।
नदनदन अछत कैसे, आनिये उर और ॥
चलत चितवत दिवस जागत, सयन सोवत राति।
हृदय तें वह मदन मूरति, छिन न इत उत पाति।
कहत कथा अनेक ऊधो, लोग लोभ दिखाइ।
कह करौं मन प्रेम पूरन, घट न सिंधु समाइ ॥
स्याम गात सरोज आनन, ललित मृदु मुख हास।
सूर इनके दास कारन, धरत लोचन प्यास ॥

मेरे मन मे नन्द-नन्दन के रहते हुए किसी और के लिए जगह है ही नही, मेरी लाचारी है, दिन मे, रात मे, केवल वही छवि सामने नाचती रहती है और मन ऐसा प्रेम से भरा हुआ है, जिसमें कुछ दूसरा आ ही नहीं सकता। मैं कहा से किसी दूसरे के बारे मे कुछ सोचू ? वैसे यह पद गोपी-उद्धव-सवाद प्रसग मे कहीं आया है और अकबर के साथ सूर की भेंट का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नही है। इस दन्तकथा का केवल एक अभिप्राय है और वह यह कि सूरदास का काव्य-दर्शन एक ऐसे परिपूरण भाव की स्थापना करता है जिसके आगे सारे भाव छोटे पड जाते हैं, सारे ऐश्वर्य छोटे पड जाते हैं और समस्त जगत का सौन्दर्य एक श्यामल सौन्दर्य मे समा जाता है। एक और भी अभिप्राय इससे प्रकट होता है कि सूरदास ने अपने को जिस श्रीकृष्ण से बाध रखा है वे उनके सामने वनमाली हैं, वृन्दावन ही उनका घर है, मोर का पख ही उनका मुकुट है, और लकुटि ही उनका शस्त्र है, बासुरी ही उनका अस्त्र है। उनका शौर्य, उनका पराक्रम उनके माधुर्य का पोषक है। नन्द के घर के समस्त ऐश्वर्य उनको घर के भीतर बाध कर रखने मे असमर्थ हैं। दधि-दूध की भरी-पूरी समृद्धि उन्हे सतुष्ट नही करती, वे घर-घर माखन खाने जाते हैं, बडे हो जाते हैं तो बार-बार दही लूटने जाते हैं। इस प्रकार के श्रीकृष्ण से लगाव निश्चित ही किसी ऐसे उद्देश्य से नही है जिसमे श्रीकृष्ण से कुछ आकाक्षा की जाती हो कि मिलेगा, वहा तो अपना ही लुटाने की आकाक्षा पलती है। यदि कोई आकाक्षा की जाती है तो केवल यह कि यह लगाव बना रहे, यह प्यास बनी रहे कि श्रीकृष्ण वन से गौरज मे लिपटे आ रहे हो और हम बाट जोह रहे हो कि आए, उन्हे भर आख देखें और देख न पाए, 'ऐहि बिरिया ब्रज ले वन आवते', यह आखा के सामने हर शाम झूलता रहे और 'लोचन लालच नाहिं रह' की बेबसी कभी न छोडे।

सूर के इस भाव मे निश्चय ही एक बहुत बडा नकार छिपा हुआ है, एक मौन नकार-साम्राज्य के आधिपत्य का, सामन्तो के ठाठबाट का और धनी कृषको की समृद्धि का। वे श्रीकृष्ण के परात्परब्रह्म रूप का साफल्य ही इसमे मानते है कि वे प्रेमवश छोटे होकर आए, चोर बनकर आये, छलिया बनकर आयें और निरन्तर ऐसे ही बने रहे, 'यह मन मे होत रह' कि विराट श्रीकृष्ण का किशोर रूप हम से हमारा सब कुछ छीन रहा है, हमे अपने से छीन रहा है और साथ-ही-साथ वह स्वय भी इस आकषण के व्यापार मे फसकर आकृष्ट हो रहा है, वह भी छीना जा रहा है, वह खिच रहा है, ऐसे माधुर्य के बिन्दु से जिसे उसने खेल-खेल मे भुलवाना चाहा था और वह स्वय वही भूल कर अटक जाता है—ऐसा अटक जाता है कि राजपाट मे भी अपने विराट रूप मे वह वही रहता है, केवल पुरुषोत्तम रूप मे मथुरा मे रहता है।

सूरसागर मे पुराणो स ली गयी एक कथा आती है कि जब अक्रूर बालकृष्ण को मथुरा से लेकर चले हैं तो उनके मन मे सन्देह होता है कि इतना जघन्य काम मैं कर रहा हू, इतने सुकुमार बालक को मैं कस के पास ले जा रहा हू, जाने इसकी क्या गति बनेगी। मुझे कितना पाप लगेगा। श्रीकृष्ण उनसे कहते हैं, तुम जमुना में स्नान कर लो तब तक मैं गोकुल के लोगो को समझा-बुझा कर विदा करता हू।' जब अक्रूर जमुना में गोते

लगाते हैं तो उन्हें विष्णु का शंख-चक्र-गदाधर रूप दिखता है। जब जल से बाहर सिर निकालते हैं तो रथ के पास भी वही रूप दिखता है, आश्चर्यचकित होते हैं, पर मन मे आश्वस्त भी होते हैं कि जिनको हम ले जा रहे हैं, वे पुरुषोत्तम हैं और समर्थ हैं। पर अक्रूर यह नही समझ पाते कि पुरुषोत्तम से अधिक महत्वपूर्ण रूप वह है, जो जमुना के इस पार छूटा जा रहा है। वह रूप इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसका बल, उसका पराक्रम, उसकी विराटता, उसकी व्यापकता, उसकी सर्वशक्तिमत्ता, सब कुछ केवल एक कौतुक है, एक लीला है और यह लीला भी उस मोहिनी लीला के आगे कुछ छोटी है, जो गोकुल और वृन्दावन पर छायी हुई है, जिसमें श्रीकृष्ण के तनक-तनक चरण, तनक-तनक भुज हैं, तनक बदन से वह तनक से बोल निकलते हैं—

तनक चरन अरु तनक तनक भुज, तनक बदन बोल तनक सौ बोल।
तनक कपोल, तनक सी दतियां तनक हंसनि पर लेत हैं मोल।
तनक करनि पर तनक माखन लिए, देखत तनक जाकैं सकल भुवन।
तनक सुनैं सुजस पावत परम गति, तनक कहत तासौं नंद के सुवन।
तनक रीझन पै देत सकल तन, तनक चितै चित चित के हरन।
तनकहिं तनक तनक करि गावें सूर, तनक कृपा के दीजै तनक सरन।

इस तनक की विशेषता यह है कि इसकी एक तनक छवि ही दिख जाती है तो चित अपना चित नहीं रह जाता, इस तनक छवि का तनक कीर्तन भी यदि किया जाता है तो परम गति मिलती है और इसीलिए सूर तनक कृपा की तनक शरण चाहते हैं।

इस तनक रूप मे श्रीकृष्ण के असख्य-असख्य जो व्यापार लोक मे होते हैं वे ही समस्त व्यापारो को रस प्रदान करते हैं, वे ही लौकिक जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं। श्रीकृष्ण के इस भाव की उपासना के बारे मे जो यह मान लिया गया है कि यह लोकरजक भाव की उपासना है, मेरी समझ मे बहुत बडा भ्रम है क्योकि रजक यदि इस अर्थ मे प्रयुक्त होता है कि उससे चित्त प्रसन्न होता है तो इस अर्थ मे श्रीकृष्ण का रूप रजक नही है। हा, यदि इस अथ मे प्रयुक्त होता है कि वह रागवर्द्धक है, अर्थात् मनुष्य के भीतर राग-वृत्ति का विस्तार करने वाला है, ऐसा विस्तार करने वाला जिसमे सब कुछ केवल राग बन जाता है, शरीर भी शरीर न रहकर राग हो जाता है, तब रजक कहा जा सकता है। और मनुष्य का चित्त जब इस प्रकार रजित हो जाता है तो उसे अपने आप अनायास वह सिद्धि प्राप्त हो जाती है, जिसे लोक-मंगल कहा जाता है। श्रीकृष्ण के रग मे रगे हुए रूप से अधिक मागलिक क्या होगा, विशेषकर ऐसे रगे हुए रूप मे, जिसमे सीमित मगल की बात, सीमित सुख की बात एकदम त्याग दी गयी हो, एक तरह से अपने सुख की ही बात त्याग दी गयी हो, सर्वसुख की आरभा को पाने के केवल एक चिरतन विरह का वरण किया गया हो और विरह ऐसा सजीव हो गया हो कि ऐसा प्रतीत होने लगे कि गोपी नही प्रेम कर रही है, विरह ही प्रेम कर रहा है और विरह प्रेम करता है तो शरीर-घट आच मे पक करके अमृत के रस को भरने के लिए तैयार हो जाता है। फिर अमृत-रस उसके बाहर नही जा सकता। जब विरह प्रेम करता है—

'ऊधौ विरही प्रेम करै।
ज्यो बिनु पुट पट गहत न रग को, रग न रसे परै।।
ज्यो धर दहे बीज अकुर गिरि, तो सत फरनि फरै।।
ज्यो घट अनल दहत तन अपनौ, पुनि पय पानि परै।।
ज्यों रन सूर सहै सर सन्मुख, तौ हू तरनि अरै।।
सूर गुपाल प्रेम पथ चलि करि, क्यों दुख सुखनि डरै।।

तो जैसे घट के जल जाने पर उस राख मे जो अकुर पडता है वह सौ-सौ फल फलता है, वैसे विरह मे तने पर जल को भस्म होने पर सब कुछ मिल जाता है। और ऐसे प्रेम के पथ पर चलकर दुख को सुख से डर नहीं रहता, दुख अभय हो जाता है।

सूर की प्रेम-साधना के महत्व को समझे बिना सूर के सामाजिक दर्शन की जो लोग व्याख्या इधर कुछ वर्षों से प्रस्तुत करने लगे हैं कि सूर ने एक ऐसे राज्य की स्थापना की है जो साधारण जन का राज्य है, वह गोप-गोपियो का राज्य है, वह लोक-जीवन का राज्य है, यह व्याख्या मुझे कुछ बहुत ही अधूरी सच्चाई लगती है और इसी कारण झूठी भी लगती है। दूसरी ओर कुछ लोग जो सूर के बालकृष्ण-भाव को महत्व देकर सूर को मनोविज्ञान का पडित मानने की बात करते हैं, उनके ऊपर भी मेरे मन मे कभी-कभी खीझ होती है कि इतने बडे कवि को बाल मनोविज्ञान का पडित या सामाजिक चेतना का उन्नायक मात्र बनाकर रखना कितनी छोटी-सी बात है। सूर की काव्य-चेतना इन सबका अतिक्रमण करती है। वे जब बालक की बात करते हैं तो वह बालक साधारण नही है और उसका मनोविज्ञान साधारण नही है, वह मनोविज्ञान मन के परे की बात है। जब वे लोक की बात करते हैं तो वह लोक भी साधारण नही है—वह साधना करनेवाला लोक है, जो साधना देवताओ, ऋषियो से नही सम्भव हुई और इसीलिए उन्हें जो मिलता है उसके लिए देवता और ऋषि भी तरसते हैं। देवताओ को ऋषियो को जिस रूप मे विराट सत्य का साक्षात्कार होता है, वह रूप शान्त, अनुद्वेलित और पूर्ण-कामरूप होता है। पर गोपियो को सत्य के जिस रूप का प्रतिक्षण साक्षात्कार होता है, वह रूप उद्वेलित है, चचल है, क्षुब्ध है और वह अपूर्ण-काम आकाक्षा है, मनुष्य की प्रीति का। वह अपूर्णकाम इसलिए है कि उसे कामनाओ की भूख लगी है, उसे काम की कामना है, उसे प्यास की प्यास है और उसे जीवन के भोग की भूख है। श्रीकृष्ण अपने बाल और किशोर जीवन के नाना व्यापारो के व्याज से जहा एक ओर अपनी भख, प्यास, आकुलता, भय की लीला करते हैं, वही वे इस रूप मे गोप-गोपियो की समस्त इद्रियो के भाव बने रहते हैं। उन्हे देखना, सुनना, परसना, अक मे भरना, यह सब उनका उपभोग ही तो है। श्रीकृष्ण अपने को उद्वेलित रस के रूप मे उपभोग्य बनाते हैं। सूरदास बहुत सचेत हैं। जब कभी श्रीकृष्ण के रूप से परम तृप्ति और अतृप्ति की बात करते हैं तो यह स्मरण कराना नही भूलते कि ये श्रीकृष्ण परात्पर ब्रह्म हैं, ये सब को बाधने वाले यहा बध रहे हैं, यह भय को मिटाने वाले यहा भयभीत हो रहे हैं, ये असुरो को जीतन वाले यहा हार रहे हैं, यह सबको नचाने वाले यहा नाच रहे हैं, ये सत्य के साक्षात रूप यहा छल कर रहे हैं। सत्य के छल करने का अर्थ क्या होता है, सिवाय इसके भीतर के दुराव को मिटा देना चाहिए, जो परायेपन का दुराव है उसे मिटा देना चाहिए। चोर बनकर माखन खाने का उद्देश्य परायेपन के भाव को मिटाना ही तो है। गोपी को यह अनुभव हो कि मेरी चीज मुझसे ली जा रही है, दूसरी ओर यह अनुभव हो कि लेने वाला मेरा सर्वस्व है, मेरा मेरापन है, तब वह छल, छल नही रहता, वह चोरी, चोरी नही रह जाती, वह ललक बन जाती है कि हमारे भीतर के इस चोर को दूर भगाने के लिए कोई इस प्रकार का चोर बने, मेरे भीतर क चोर का अपहरण करने वाला कोई बडा चोर आये, कोई मेरे जतन से जमाये हुए दही का आस्वादी आये, बरबस मेरे रूप के उफान को अपना बना डाले और जब मैं दही बेचने जाऊ तो वह दही बन जाए और मैं पुकार लगाऊ, 'कोई गोपाल लेगा, कोई गोपाल लेगा'—

> कोऊ माई लैहै री गोपालहिं।
> दधि को नाम स्यामसुदर रस, बिसाइ गयौ ब्रज-बालहिं।।
> मटुकी सीस फिरति ब्रज-बीथिनि, बोलनि बचन रसालहिं।
> उफनत तक चहु दिसि चितवत, चित लाग्यो नद-लालहिं।।

हंसति, रिसाति, बुलावति, बरजति, देखहु इनकी बालहिं।
सूर स्याम छिन और न भावे या विरहिनि खेलावहिं॥

वस्तु की इस प्रकार भावमय उपस्थिति से विधुदमोवित करके भाव बनाना सूर के प्यार का चरम लक्ष्य है और यह लक्ष्य उन लक्ष्यों का अतिक्रमण करता है जिनके ऊपर बहुत अनावश्यक बल दिया जाता रहा है। इस लक्ष्य को पूरे तौर से समझने के लिए सूर के काव्य की सरचना की बुनावट को समझना जरूरी है। सूर ने मुक्तक पद नहीं लिखे हैं। सूर ने लीला प्रबन्ध लिखा है। प्रबन्ध का अर्थ यह कि इसमे एक लीला के बाद दूसरी लीला का एक निश्चित क्रम है और एक लीला के भीतर भी सचारित भावो का एक निश्चित क्रम है। यहा एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। यशोदा श्रीकृष्ण को उबटन लगाना चाहती हैं और श्रीकृष्ण भागते हैं। उन्हें यशोदा पकड लेती हैं और तब श्रीकृष्ण रोने लगते हैं, लोटने लगते हैं और किसी प्रकार मानते नही। दूसरे पद मे जब वे लोट रहे हैं तो एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है, देखो सखी, कैसे हरि लोट रहे हैं। यशोदा देख रही हैं, हाथ-पैर चचल है और बार-बार यशोदा का आचल पकडते हैं, काटने दौडते हैं, किसी तरह यशोदा छुडाती है और यह विरुझाना देख-देख कर हसती हैं।

इस पद के बाद ही चन्द्र-प्रस्ताव की लीला आती है। ऐसे विरुझे हुए बालक को कैसे फुसलाया जाय। यशोदा सोचती हैं कि चाद दिखलाकर फुसलाया जा सकता है और कहती हैं, 'देखो, ऊपर चन्द्रमा है'। श्रीकृष्ण सोचते हैं कि अब इस चन्द्रमा का स्वाद लेना है, मीठा है या खट्टा और मा से कहते हैं, 'मुझे भूख लगी है, मैं चन्द्रमा खाऊगा।' अब एक विरुझना छूटा, दूसरा विरुझना शुरू हो गया। यशोदा दिखलाती हैं, देखो, देखो आसमान मे चिडिया उडी जा रही है। इसके बाद वाले पद मे यशोदा पछताती हैं, मुझसे ही गलती हुई कि मैंने चन्द्रमा दिखलाया, यह समझता ही नही है, कहती हैं, 'चन्द्रमा सबका खिलौना है, यह कहीं खाया जाता है? यही चन्द्रमा हमे रोज माखन देता है, अगर यह चन्द्रमा नही रहेगा तो तुमको सुबह-शाम माखन कहा से मिलेगा, उसे देखते रहो, हठ न करो।' परन्तु गोविन्द बडे हठी हैं। ठीक है, खिलौना है तो मैं खेलूगा, लाओ। यशोदा एक बडे बर्तन मे जल भरती हैं और कहती हैं, देखो, चन्द्रमा सामने है। श्रीकृष्ण उसे ढूढते हैं और पाते नही, फिर रोने लगते हैं और बाद वाले पद मे बात आती है कि मैं तो चन्द्र खिलौना ही लूगा, अब न मैं तुम्हारी गोद मे रहूगा, न दूध पिऊगा, न वेणी गुहाऊंगा, मैं अब तुम्हारा लडका भी नही रहूगा। यशोदा सोचती हैं कि कुछ दूसरा उपाय करना चाहिए और कहती हैं कि मैं तुम्हारे कान मे एक बात कहू, बलदेव को मत बताना, तुम्हारे लिए नयी दुलहिन लाऊगी, चन्द्रमा लेकर क्या करोगे दुलहिन चांद से भी सुन्दर है। अब श्रीकृष्ण कहते है, चलो, मैं अभी ब्याहने चलूगा, कहां है दुलहिन? और सूरदास मौके की ताक मे वहा बैठे हैं बराती बनने के लिए। यशोदा देखती हैं कि कोई उपाय काम नही करता। श्रीकृष्ण कहते हैं कि पानी के भीतर का चन्द्रमा मुझे नही चाहिए यह तो झलमलाता है, कांपता है, इसे मैं कैसे पकडू, तुम्हारा प्रेम मैंने देख लिया, अब मैं इस चक्कर मे नही पडूगा, मैं तो हाथ मे चन्द्रमा को लेना चाहता हू। यशोदा समझाती हैं। यह बेचारा इतना काप रहा है, तुम्हें देखकर डर गया है, इसने देखा कि हरि मुझे पकडना चाहते हैं, तो यह पाताल में भागना चाहता है। पर श्रीकृष्ण का विरुझना तब भी बना रहता है और विरुझे-विरुझे वे सो जाते हैं।

यह लीला बारह पदों मे वर्णित है। जो क्रम मे अभी बतला चुका हू उससे स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार की नाटकीय स्थितियां आती हैं, पर एक मुख्य स्थिति बनी रहती है, श्रीकृष्ण का विरुझाना, विरुझाते-विरुझाते सो जाना। विरुझाने से ही लीला शुरू होती है विरुझाने में ही समाप्त होती है। यही नही, जब वे सो जाते हैं तो बीच में उठते हैं और फिर मां से कहानी सुनने लगते हैं। कहानी राम की है, कहानी के बीच मे ही यशोदा को पता नहीं लगता कि श्रीकृष्ण सो गये हैं, कहानी कहती रहती हैं और जब यशोदा कहती हैं 'रावण हरण

सिया को कीनो' तो एकाएक उनकी नीद खुल पडती है और 'चाप-चाप कहि उठे सूर प्रभु, लक्ष्मन देउ जननि भ्रम भारी', अर्थात् वे राम के साथ तादात्म्य स्थापित करके क्षुब्ध हो उठते हैं", लाओ धनुष लाओ, लक्ष्मण यशोदा घबडा उठती हैं। इस रूप मे भी विरुझाना बना हुआ है। यह विरुझाना जन्मान्तरव्यापी विरुझना है। यशोदा को इससे डर लगता है, अब क्या होगा? बेचारा इतना बबक करके उठा, किसी ने उसे नजर लगा दी, शाम से ही इतना विरुझा हुआ है। सूर के लिए विरुझाना ही तीनो प्रकार के तापों का निवारण करने वाला है। इस विरुझाने मे परात्पर ब्रह्म का अनन्त मचलना उनके आनन्द रूप का उद्वेलित होना अभिव्याप्त है।

मैंने एक ही उदाहरण दिया। वैसे तो समस्त लीला का इस प्रकार का क्रम है। मैं केवल यह दिखलाना चाहता हू कि लीला-प्रबन्ध मे, लीला की भीतरी बनावट मे एक सुगति है और उसके विविध सचारियों मे अभिव्याप्त मुख्य भाव की सगति उत्तरवर्ती लीला के साथ है। भारतीय साहित्य मे लीला प्रबन्ध-काव्य का प्रारम्भ 'गीत गोविन्द' से होता है। उसमे घटना अत्याधिक सक्षिप्त है, बसन्त रास के वर्णन से काव्य शुरू होता है, ईर्ष्या, मान, उत्कठा, वचना की भूमियो मे तनता हुआ प्यार-मिलन के बिन्दु तक पहुचता है, सचारियो का गुफन प्रत्येक मन स्थिति मे अलग-अलग अष्टपदी मे किया गया है। जयदेव के 'गीत गोविन्द' का दुहरा प्रयोजन है, नृत्य प्रयोग और सगीत, अत उस काव्य का शब्द केवल सचारियो के आलम्बन का कार्य करता है, वहा शब्द इसी से बहुत सहत हैं। सूरदास ने जिस लीला प्रबन्ध की योजना अपने मन मे की, उसका विस्तार विपुल है, वह नृत्य के लिए नही है, कीतन से अधिक भाव-साधना के लिए, लीला से तादात्म्य के लिए हैं।

सूरदास के काव्य के इसके अलावा दो और प्रयोजन हैं, वह प्रयोजन है श्रीकृष्ण भाव का साधारणी-करण, साधारणीकरण इस अर्थ मे कि श्रीकृष्ण जैसा असाधारण चरित्र साधारण के लिए ग्राह्य हो जाय। दूसरा प्रयोजन है, साधारण-मे-साधारण व्यक्ति के भीतर लौकिक असाधारण अलौकिक से जुडने की क्षमता उत्पन्न करना। वे केवल दृश्य उपायो से ऐसा नही कर सकते थे। उन्हे श्रव्य रूप को इस तरह प्रस्तुत करना आवश्यक जान पडा कि वह श्रव्य एक दृश्य जाल खडा कर दे। सगीत का रूप के साथ और ऐसे रूप के साथ जो दृष्टि मे समाता नही, जोडने का सम्बन्ध सूरदास का एक अपूर्व सकल्प है। शायद ही कोई कवि सगीत मे इतना कुशल रहा हो और एक अपूर्व दृश्य ससार मे मृत्यु पर्यन्त इतना सपृक्त रहा हो। जब इन प्रयोजनो को सामने रखकर हम सूरदास के काव्य के लीला-प्रबन्ध की बनावट और बुनावट पहचानने चलते हैं तो अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि ऐसा क्यो है कि प्रत्यक पद एक स्वतत्र मुक्तक है और साथ-ही-साथ कई पद मिलकर एक लीला विशेष की सम्पूर्ण स्थिति का आकार खडा करते हैं और अन्त मे सभी लीलाए मिलकर एक विराट, मोहक, बेधक और परिपूरक व्यापार मे अन्विति पाती हैं। यह सम्भव है कि सम्पूर्ण योजना का एक चित्र रचनाकार के मन मे बना हो, पर उसके अनुसार पद समय-समय पर अलग-अलग समय पर लिखे गये हों, पर ये वैसे ही है जैसे कि किसी बडे निर्माण की आकल्पना पहले बन जाती है, और उसके अलग-अलग हिस्से आगे-पीछे बनते रहते हैं। सूरसागर के पाठ की समीक्षा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण जन्म से कुरुक्षेत्र मे राधा-कृष्ण मिलन की लीला पर्यन्त ही इस लीला प्रबन्ध काव्य की परिसमाप्ति है। श्रीमद्भागवत के कथा-क्रम के अनुसार बहुत अश जो चौपाई मे लिखे गये हैं स्पष्ट रूप से प्रक्षिप्त हैं। सूर ने कथा नहीं कही है। उन्होंने लीला का, एक सनातन लीला का रूपायन किया है। उनका काव्य इस अर्थ मे प्रबन्ध है कि एक लीला दूसरी लीला के साथ जुडी हुई है। अलग-अलग दिखती हुई भी प्रत्येक लीला एक ही आप्लावन का अंग है। वह आप्लावन माधुर्य भाव का है। इसे प्रेमाभक्ति कहें, मधुर रस कहें, महाभाव कहें, परम पुरुषार्थ कहें, ब्रह्म-सम्बन्ध कहें,

इन भिन्न-भिन्न नामों से कोई फर्क नहीं पड़ता। कथा-निर्वाह इस प्रबन्ध का उद्देश्य नहीं है, क्योंकि कथा-निर्वाह मे ऐतिहासिक घटनाक्रम होता है, वह क्रम सूरदास को अभीष्ट नहीं है। अगर ऐसा होता तो दो-ढाई वर्ष के श्रीकृष्ण गोपी को कान्त या प्रियतम के रूप में कैसे दिखते या श्रीकृष्ण के पिछले अवतार किसी-न किसी व्याज से श्रीकृष्ण में कैसे आते हैं या श्रीकृष्ण के सौन्दर्य की उपमा देते समय विराट विश्व की छवि, विराट विश्व की प्रकृति में अलग-अलग प्रतिभासित छवि उपमान क्यों बनती या श्रीकृष्ण की लीला में विराट और लघु के बीच निरन्तर आंख-मिचौली क्यों चलती? निश्चित है कि सूर के श्रीकृष्ण जन्म लेते हैं, एक वर्ष के होते हैं, दो वर्ष के होते हैं, क्रमश: बढ़ते हैं और बारह वर्ष के होते-होते वे मथुरा चले जाते हैं। पर वर्षों का हिसाब-किताब बहुत आनुषांक है। असली हिसाब-किताब तो श्रीकृष्ण के माधुर्य की उन अभिव्यक्तियों का है जो अवस्था विशेष में नये रूप ग्रहण करती रहती हैं और नया रूप ग्रहण करते हुए भी वे भाव की एकता का सूत्र नही छोड़तीं।

सूरसागर के नाम से जो संग्रह प्रचलित हैं, वे सभी श्रीमद्भागवत के स्कन्ध-क्रम पर आधारित हैं, पर ध्यान न देने पर स्पष्ट हो जाता है कि दशम स्कन्ध के अलावा शेष स्कन्धों की कथावस्तु के आधार पर रचे गये पदों की सख्या अनुपात में बहुत कम है और प्रक्षिप्त अशों को निकाल दें तो अधिकांश या तो विनय के पद हैं, जिनका श्रीमद्भागवत के क्रम में कोई स्थान नहीं या कुछ अवतार लीलाओं के पद हैं। ये पद भी मुख्य लीला-प्रबन्ध के अगभूत नही जान पडते। इस प्रकार सूरसागर के प्रचलित सस्करण का दशम स्कन्ध ही सूर का श्रीकृष्ण लीला का प्रबन्ध काव्य है। शेष स्फुट रचनायें हैं।

श्रीकृष्ण लीला की चार अवस्थाएं हैं, पहली है सौन्दर्य की धारा। श्रीकृष्ण का जन्म एक शोभा की नदी का अवतरण बनता है, यह नदी नन्द भवन मे भरपूर उमग कर ब्रज की वीथियों मे बहती है। यह चपल सौन्दर्य एक विस्मय, एक आकर्षण, एक जादू पैदा करता है, पर जादू बनकर यह छाना नही चाहता, यह आत्मयी बनना चाहता है, इसीलिए माखनचोरी की लीला का वितान करता है। ढीठ माखनचोर बनने का लक्ष्य ही है, घर मे घुसना, अन्तर्मन मे प्रवेश करना, ग्वालिन की परम प्रिय सम्पत्ति पर हाथ लगाना, एक चेतावनी देना कि कुछ भी सुरक्षित नहीं। कोई अन्धे से अन्धा सुरक्षित नहीं। श्रीकृष्ण सब जगह पहुच जाते हैं, उन्हे दूध नहीं रुचता, उन्हे दही चाहिए, माखन चाहिए, उन्हें गोपी की कला की सृष्टि चाहिए, उन्हें मानव हृदय का ताप और मन्थन से उद्भूत नया रूपान्तर चाहिए, गोरस का, अतीन्द्रिय रस का, चित्तरस का। वे माखन चुराते हैं, यशोदा बरजती हैं, इतना कुछ घर मे है, तुम बाहर क्यो जाते हो, क्यो कुल का नाम धराते हो, पर श्रीकृष्ण तो कुल का नाश करने वाले हैं, घर से बेघर करने वाले हैं ही, न उनके घर है, न घर वह रहने देत है। जो चीज बहुत जतन से छिपाकर रखी जाती है, उसी पर सबकी नजर रहती है, वे चोरी की चोरी करते हैं, वे छिपाव-दुराव नहीं रहने देते। माखन चुराते हैं, यह भी प्रयोजन है कि ग्वालिन के लिए वे परात्पर ब्रह्म न रहें, वे एक शरारती बालक बन जाएं। उनसे खीझ भी हो, उन पर रीझ भी हो, उनकी चोरी भी ललक से देखने की वस्तु बन जाय, क्योंकि उसी के बहाने उनसे मुठभेड़ होती है, उसी के बहाने यशोदा के घर उलाहना लेकर जाने का मौका मिलता है और वहां वे एकदम मासूम बने दिखते हैं, मैंने नही चुराया, सब मेरे पीछे पड़े हैं, जबर्दस्ती माखन मेरे मुंह में लगा देते हैं। यशोदा भी पहले नहीं सुनती। 'तुम सब झूठ बोलती हो।' गोपी एक दिन पकड़ ही लेती है और सबको मुक्ति देने वाले बांध दिये जाते हैं, सबका भय हरने वाले डर से कांपने लगते हैं, यह बंधना, यह डरना, लीला का नया मोड़ है। माखन-चोरी की यही परिणति है कि उलाहना देने वाली गोपी भी कहे कि यह सजा न दो। पर यशोदा को आन की पड़ी कि बस अब शिकायत नही सुनी जायेगी। उन्हें रस्सी से बांध दिया और रस्सी ऊखल मे फंसा दी, वे दामोदर हो गए।

यहीं से दूसरी अवस्था रूपासक्ति का प्रारम्भ है, अब कन्हैया गांव-घर मे नहीं रहेंगे, वृन्दावन गाय चराने ग्वालो के साथ जायेंगे। उनका रूप छा जायेगा वन मे, नदी मे, गगन मे। दामोदर अब गोपन-धर्म में बध गये, वे गोपाल बन गये। गोकुल कहा रोक सकेगा इस प्रवाह को। वे गउओ को खुले आकाश के वितान के नीचे निपट जगल मे चराने जाते है। वे इन्द्रियो को विराट विषय के साथ जोडते हैं, और फिर उन्हे समेट कर लाते है तो गउए आकाशमय, वनमय, बशीमय, कृष्णमय होकर लौटती हैं, श्रीकृष्ण उनके पीछे-पीछे उनकी धूलि सिर पर, मुह पर धारे आते है। श्रीकृष्ण गोरस चर कर ही गउओ के ऐसे पालक बनते हैं। गोपाल ही नही बनते, गोविन्द बनते हैं, गउए उनकी तलाश करती हैं, वे गउओ की तलाश करते हैं। उनके बिना वे वृन्दावन नही जाती, वे गउओ को लिए बिना वृन्दावन से नही लौटते, ये स्वय गोतीत हैं, अतीन्द्रिय हैं, पर ब्रज की गउओ के लिए ब्रज के इन्द्रियजगत के वे पालक हैं, मन हैं, एक आभ्यतर इन्द्रिय हैं। वे इन्द्रिय की इन्द्रिय हैं, गाय के बछडे हैं, आख की आंख हैं कौन-कौन हैं। श्रीकृष्ण के सम्पर्क से गऊ निरी गऊ नहीं रह जाती, ब्रह्मा जब बछडो को ग्वालो को चुरा ले जाते हैं तो श्रीकृष्ण ही बछडा और ग्वाल बन जाते हैं और श्रीकृष्ण को अपना वात्सल्य वर्ष भर देने वाली गाय गाय कहा रहेगी ! श्रीकृष्ण के दर्शन से पिन्हाने वाली इन्द्रिय इन्द्रिय कहा रहेगी, आख आख कहा रहेगी। गोपाल-लीला केवल आकर्षण की लीला नही है, यह विकर्षण की भी लीला है, यह घर छुडाने वाली लीला है। यह गहन विपिन की सघन निकुज की पुकार बनती है। श्रीकृष्ण समस्त ब्रजवासियो का गोकुल छोड देते हैं, उन्हे वृन्दावन लाते हैं, समृद्धि मे सुरक्षा नही है, सुरक्षा है वनचरी मे। तन-घर की आसक्ति मे सुरक्षा नही है, सुरक्षा है महा आसक्ति मे, जिसमे सबकी सुधि भूल जाय, सब आसक्तिया जिसके आगे न्यौछावर हो जायें। गोपाललीला के कई सोपान हैं, सख्यभाव जिसमे क्रीडा है, दाव लेना है दाव देना है, लगरई का भाव जिसमे मटकी का दही लूटना है, घडे तोडना है, खदेडना है, रास्ता रोकना है, चीर हरना है, इस 'लगरई' का एक ही प्रयोजन है गोपी को विवश करना, गोपी का अपना कुछ न रहने देना, सब सम्बन्ध तोडना, शरीर को भी पट न रहने देना, आख बना देना, कान बना देना, आख भी न रहने देना, रथ का सम्भार बना देना, रूप का सम्भार भी नही रहने देना, एक अमिट चाह बना देना। तीसरा सोपान है माधुर्य भाव, श्रीकृष्ण केवल प्रियतम है, रस रति नागर है। उनके अलावा कोई काम्य नही है, वही समस्त कामनाओ की कामना है।

लीला प्रबन्ध की तीसरी अवस्था है कामासक्ति, काम के आपूरण का भाव, परमतृप्ति भाव, महारास की रचना चादनी के उपहाव मे जमुना के नये धुले मौत वितान म की जाती है, इस रास के लिए वशी बजती है बचा-खुचा भी जो स्व है, निजता है, नष्ट हो जाती है, कुछ फिर भी बची रहती है तो श्रीकृष्ण उसे नष्ट करने के लिए अन्तर्धान हो जात हैं, यहा तक कि राधा को भी कुछ दूर साथ ले जाकर छोड देते हैं, वह विरह की पहला दीक्षा देत हैं। पहली अवस्था म रूप का ज्वार था, दूसरी म रूप के लिए आसक्ति उमडी। तीसरी अवस्था मे काम की आसक्ति जगी, ऐसे काम की जो काम को ही नष्ट कर दे। श्रीकृष्ण प्रकट होकर इस कामातीत काम की आपूर्ति करते हैं। निरवधि काम मे सावधि काम विलीन हो जाता है।

चौथी अवस्था है विरह, ऐसा दुरन्त विरह जिसमे काम भी नहीं रह जाता, केवल प्रेम रह जाता है, श्रीकृष्ण से मिलने की इच्छा उतनी उत्कट नही रहती, जितनी श्रीकृष्ण के प्यार से जुडने की। श्रीकृष्ण की स्मृति न छूटने की दुर्निवारता आ जाती है। उद्धव समझाना चाहते हैं, वह योग विधि जिससे श्रीकृष्ण ध्यान-गम्य हो जाय। गोपी कहती है कि ध्यान तो तब करें जब भीतर श्रीकृष्ण के लगाव के अलावा कोई लगाव हो। ध्यान मे मन को दूसरी वस्तुओ से खीचना होता है, यहां दूसरी वस्तु ही नही है, केवल कृष्ण है, हां दूसरी वस्तु कुछ है तो हम हैं, हमी दूसरी हो गयी हैं। श्रीकृष्ण को पाना गौण हो जाता है, मुख्य हो जाता है, श्रीकृष्ण को

अपने में समाकर अनुभव करना कि श्रीकृष्ण हमारे भीतर समा नहीं पा रहे हैं। समाये कैसे, वह तो भीतर-बाहर घूमते रहे। एक दिन गाय दुहाने गयी, वहां मेह बरसा, मेह भी तो वह ही हैं, उन्होंने अपनी कमरी ऐसे उढ़ायी जैसे मेरी देह मेरी न हो। उनकी हो। अब जोग-जुगति लिखाकर सदेश भेजते हैं, वह प्यार, वह अपनाया जाना कैसे भूले, योग के लिए पहले चित्तवृत्ति का निरोध चाहिए, चित्तवृत्ति ही तो श्याम हो गयी है, इस श्याम की प्रीति का निरोध कैसे हो ?

ऊधौ क्यों बिसरत वह नेह।
हमारे हृदय आनि नन्दनन्दन रचि-रचि कान्हीं गेह॥
एक दिवस गई गाइ दुहावन वहा जु बरस्यौ मेह।
लिए उढ़ाइ कामरी मोहन निज करि मानी देह॥
अब हमको लिखि लिखि पठवत हैं जोग जुगति तुम लेहु।
सूरदास बिरहिनि क्यों जीवें, कौन सयानप एहु॥

उद्धव जब गोपीमय होकर लौटते हैं तो श्रीकृष्ण से गोपी के उस उन्माद का वर्णन करते हैं, जिसमे प्रत्येक छवि, प्रत्येक लीला उनके लिए प्रत्यक्ष होती है, फिर यकायक छिप जाती है—

सुनहु स्याम सब ब्रज बनिता बिरह तुम्हार भई बावरी।
नाही बात और कहि आवति, छाडि जहा लगि कथा रावरी॥
कबहु कहति हरि माखन खायो, कौन बसै या कठिन गांव री।
कबहुं कहनि हरि ऊखल बांधे, घर-घर तें ले चलो दावरी॥
कबहु कहति ब्रजनाथा बन गये, जोवत मग भई दृष्टि झावरी।
कबहु कहति वा मुरली महिमा ले ले बोलत हमरो नाव री॥
कबहु कहति ब्रजनाथ साथ तै चन्द उग्यो है इहैं छांव री।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, अब वह मूरति भई सावरी॥

सुनो श्याम, वह तुम्हारे विरह मे बावली हो गयी है। उसका समस्त ससार वही तक घूम-फिरकर है जहा तक तुम थे। वह कोई दूसरी बात नही करती। कभी कहती है श्रीकृष्ण की चोरी के उत्पात से अब गाव छोडना पडेगा, कभी कहती है लाओ, कृष्ण मक्खन खाते पकड गये, कभी कहती हैं जाने कब के बन मे गये हैं दृष्टि पग जोहत-जोहत धुवां गयी है, कभी कहती है, लो मेरा ही नाम तो वशी मे टेर रहे हैं, कभी कहती है यह चन्द्र तो केवल ब्रजनाथ का साथ देने आया है, इस रास में। तुम्हारी वह गोरी मतिभोरी राधा आज विरह के ताप म सावरी हो गयी हैं।

यह प्रेमासक्ति श्रीकृष्ण की विह्वलता मे कृतार्थ होती है, जब वे कहते हैं—

ब्रज सुधि नेकहू नहिं जाइ।
जदपि मधुरापुरि मनोहर बिरद जादौ राइ॥
जो कोऊ कहि कान्ह टेरत चौंकि चितवत धाइ।
ग्वालिनी अवलोकि पाछें रहत सीस नवाइ॥

"उद्धव, ब्रज की स्मृति तनिक भी मन से नहीं जाती। यद्यपि मधुरापुरी मधुरस ही है, बहुत मनोहर, प्रतिष्ठा भी यहां यादवराज की है, पर अभी भी लगता है कोई कान्ह कहके पुकार रहा है, चौंक जाता हू, पीछे देखता हू तो लगता है मेरी ग्वालिन ने पुकारा है, उसकी ओर देखा तो वह लजा गयी, उसने सीस झुका लिया।"
श्याम मथुरा से दूर द्वारिका चले गए। गोपी ने सुना, कहा, "लो ब्रजभूमि भी छोड दी, हमारा प्यार उनसे

सफलता नहीं था, यमुना का निर्मल मीठा जल प्रवाह छोड़कर समुद्र के खारे जल को महत्व दे रहे हैं, सहज प्रेम का माधुर्य उनसे नहीं चला अब ऐश्वर्य का खारापन चख रहे हैं, अब तो रात विशेषकर शरद की रात और भी भारी हो गयी—

स्याम बिनु भई सरद निसि भारी।
हमे छाडि प्रभु गये द्वारका ब्रज की भूमि बिसारी॥
निरमल जल जमुना को छाडो सब समुद्र जल खारी॥

अब फिर श्याम को लगता है भेंट किए बिना कोई गति नहीं। उसी कुरुक्षेत्र मे जहा वे बाद मे गीता का उपदेश सुनाते हैं, सूर्यग्रहण पर समस्त परिजनो के साथ आते हैं, वहीं ब्रज भी उमड़ आया है। सूर्यग्रहण अमावस्या के दिन होता है, अमावस्या का अर्थ है चन्द्रमा का सूर्य मे समा जाना, सोमरस का बूद-बूद अग्नि मे निचुड़ जाना। कुरुक्षेत्र मे प्रेमासक्ति की पूर्णाहुति होती है। इसी के लिए जो जी रहे थे कि सम्पूर्ण रूप से अपने को नष्ट करके प्रेमवपु म अपने को नया कर लें—

जातैं हरि सौ प्रेम पुरातन बहुरि नयौं करि लीजत।

प्रेमासक्ति की असली परीक्षा होती है मिलन मे। ऐश्वर्य की पटरानी रुक्मिणी के मन मे उत्कठा होती है, ईर्ष्या नही, कि देखू मेरे पति को विह्वल करने वाली 'बालापन की जोरी' कैसी है। बडी ललक से कहती है—

हरि सौं बूझति रुकमिनि इनमे को वृषभान किशोरी।
बारक हमे दिखावहु अपने बालापन की जोरी।
जाको हेत निरन्तर लीन्हे डोलत ब्रज की खोरी।
अति आतुर ह्वै गाइ दुहावन जाते पर घर चोरी।
रचते सेज स्व कर सुमननि की नव पल्लव पुट तोरी।
बिन देखे ताके तरसे छिन बीते जुग कोरी।
सूर सोच सुख कर भरि लोचन अन्तर प्रीति न थोरी।
सिथिल गात मुख बचन फुरत नहिं ह्वै जु गई मति भोरी॥

जिसके लिए तुम तरसा करते थे, वह इन गोपियो मे कौन है। श्रीकृष्ण उस किशोर प्यार की बात सोचते हैं, आखें भर जाती हैं, कुछ कह नही पाते। बडे ही मुश्किल से दूसरी बार पूछने पर बतलाते हैं—

मनसा सुमिरन रूप ध्यान उर दृष्टि न इत उत मोरी।
वह लखि युत वृन्द मे ठाढी नील वसन तन गोरी।
सूरदास मेरो मन वाकी चितवनि नेक हर्‌यौ री।

वही राधा है जो एक टक मेरी ओर देख रही है, हृदय मे मेरा रूप है, आखो मे भी मेरा रूप है।

रुक्मिणी देखती है किशोर किशोरी मिल नही पा रहे हैं, अब वह सुख कहा—

हरि जु वै सुख बहुरि कहा।
जदपि नैन निरखति वह मूरति फिरि मन जाता तहां।
मुख मुरली सिर मौर पखौवो गर घुघचिन की हार।
आगै धैनु रेनु तन मंडित तिरछी चितवनि चारु।
राति दिवस सब सखा लिए सग हसि मिलि खेलत खात।
सूरदास प्रभु इत उत चितवत कहि न सकत कछु बात॥

वह उन्मुक्त प्यार का सुख अब फिर कहां, अब कहां फिर वह बनवारी रूप में हंसना-खेलना साथ खाना, कहां

वह तरस, कहां वह दरस, कहां वह परस ? रुक्मिणी राधा को बुला लाती है अपने शिविर मे और पूजित करती है। श्रीकृष्ण यहां एकान्त में लीन और मिलन होता है तो कैसा होता है, एक बिछुड़न होता है, राधा राधा नहीं रहती, माधव माधव नहीं रहते, माधव राधा बन जाते हैं, मारे भय के कि राधा के आगे माधव बनकर रहें तो बन्दी कहे जाएंगे सदा-सदा के लिए, मुक्ति का एक रास्ता है राधामय हो जाओ, राधा भी माधव के आगे राधा नहीं रह पातीं, उनको भय है कि कहीं आज भी राधा बनी रही तो फिर तड़पन बनी ही रहेगी, बस माधव हो जाओ—

राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव माधव राधा कीट भृ ग गति मनहु भई।
माधव राधा के सग राचे राधा माधव रग रई।

पर मिलन को प्यार करना नहीं आता, प्यार तो विरह ही करता है। जब श्रीकृष्ण शिविर से राधा बाहर आती है तो सोचती है, कैसा मिलन, कुछ भी करते तो नहीं बना, न मैं उन्हे आसन दे सकी, न अपने को न्यौछावर कर सकी, आंखो मे जल भर कर मन भर न अर्घ्य दे सकी, न मेरी अंगिया दरकी, न मैं लाज के कारण आगे बढ़ सकी। बस मुह देखते ही मैं परायी-सी हो गयी। सब बुद्धि धरी-की-धरी रह गयी। ऐसी जड़ता उपजी कि कुछ करते नहीं बना। ऐसे प्यार को मिलन मे कहा अवसर मिलता है, उसका उन्मीलन तो विरह के क्षीर सिन्धु मे होता है, क्योंकि विरह ही तो प्रेमी को भी विह्वल करता रहता है, उन्मथित करता रहता है, न सोता है, न सोने देता है, विरह जागरण है, निरन्तर जागरण है, मिलन जड़ता है।

प्रेमासक्ति इस जड़ता के पछतावे मे सब कुछ पा लेती है, यही परम मगल है। मिलन जहा कुछ कर नहीं पाता, विरह वही सफल होता है और यह विरह मिलन पाकर मिलन को कभी मन से, कभी शरीर से, कभी आंखों से अनुभव करके और तीव्र हो जाता है। तब वह प्रियतम से विरह न होकर अपने से विरह हो जाता है, वह विरह रह नही जाता। अपर्याप्त मिलन मे ही जीने वाला, तड़पने वाला व्यापार बन जाता है। सूरदास के काव्य की बनावट उसका यही आकार-प्रकार मुझे सबसे अधिक स्पष्ट दिखता है। बाल मनोविज्ञान का पाठ, निर्गुणवाद का खण्डन, श्रीकृष्ण के सर्वरक्षक रूप का प्रतिपादन, ये सभी बातें तो माधुर्य की भूमिका मात्र हैं। नन्द-यशोदा का वात्सल्य, ग्वालबालों का सख्य, बलराम का स्नेह, ये सब भी श्रीकृष्ण के मधुर व्यक्तित्व के निर्माण मे उपादान हैं, इसीलिए महत्त्व रखते हैं। पर कवि की आंखो में बस एक ललक है, 'छबीले मुरली नेकु बजाउ' वह रूप, रस और नाद को ऐसी बिन्दु पर देखता है, जिस बिन्दु पर प्रत्येक दूसरे मे रूपान्तरित हो जाता है, रूप कभी रस होता है कभी नाद, रस कभी रूप होता है, कभी नाद, नाद कभी रूप होता है, कभी रस। यह रूपान्तर जिस जगह हो, निरन्तर हो, दूसरे के लिए ठौर कहा ?

विख्यात भक्त-कवि रसखान

(डा) प्रभुदयाल मीतल

□□

प्रस्तावना—हिंदी के मुसलमान कवियो मे भक्तवर रसखान का व्यक्तित्व अत्यंत विलक्षण और उसका कृतित्व सर्वाधिक उत्कृष्ट है। उसके जीवन-वृत्तान्त की सामग्री अपर्याप्त एव विवादग्रस्त है, जिसके आधार पर उसकी प्रामाणिक जीवनी प्रस्तुत करना सभव नही है। फिर भी पुष्टिमार्गीय गद्य ग्रथ 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' और स्वय रसखान के नाम से प्रसिद्ध पद्य रचना 'प्रेम वाटिका' मे उपलब्ध सूत्रो पर आधारित उसके जीवन-वृत्त की जो रूप-रेखा बनी है, उसे अधिकाश समीक्षको ने स्वीकार कर लिया है। इसी प्रकार उसका महान कृतित्व भी काव्य-रसिको में सदा से समादृत रहा है।

हमने रसखान के जीवन-वृत्त और उसके काव्य का अनेक वर्षों तक आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया है। इसके उपरान्त हमारी धारणा है कि रसखान के महत्व को भली-भाति हृदयगम करने के लिए उसके व्यक्तित्व एव कृतित्व का पुनर्मूल्याकन करना आवश्यक है। इससे पहले आधारभूत ग्रथो पर सरसरी निगाह डालना उचित होगा।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—इस ग्रथ मे पुष्टिमार्ग के प्रवतक महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के यशस्वी पुत्र गोसाई विट्ठलनाथजी के २५२ शिष्य-सेवको की वार्ताए हैं। उनमे सख्या २४५ की वार्ता 'रसखान' से सबधित है। उससे ज्ञात होता है कि रसखान दिल्ली का मुसलमान पठान था। जब वह युवक था, तब उसकी वासनाजन्य प्रेमासक्ति एक अति रूपवान वणिक-पुत्र के प्रति हो गई थी। वह आसक्ति इतनी प्रबल थी कि लोकापवाद की तनिक भी चिंता किये बिना वह उस वणिक-पुत्र के पीछे बावला-सा बना हुआ फिरा करता था। उसकी वह दशा देखकर कतिपय वैष्णव भक्तो ने आपस मे कहा, 'इस मुसलमान युवक का ऐसा प्रगाढ़ प्रेम यदि भगवान के प्रति होता, तो इसका कल्याण हो जाता। उस वार्तालाप को रसखान ने सुन लिया था। उसने उक्त वैष्णवनो से पूछा, 'क्या वह भगवान् इस वणिक-पुत्र के समान सुन्दर एव आकर्षक है ?' उन्होंने उत्तर दिया, 'इससे अनेक गुणा अधिक है।' तभी उन्होने अपने पास छिपाकर रखा हुआ श्रीनाथजी का एक छोटा चित्र उसे दिखलाया। उस चित्र मे अकित श्रीनाथजी की अनुपम छवि को देखते ही रसखान का मन उस वणिक-पुत्र से हट गया, और वह श्रीनाथजी के प्रति आसक्त हो गया। उसने वैष्णवो से पूछा, 'यह भगवान् कहा मिलेंगे ?' उन्होंने उत्तर दिया, ब्रज के गोवधन ग्राम की गिरिराज पहाडी के मन्दिर मे।' रसखान ने उन वैष्णवो से विनयपूर्वक चित्र का ले लिया, और वह तत्काल गोवर्धन की ओर चल पडा। वहा पहुचने पर उसे गोसाईं विट्ठलनाथजी की कृपा से श्रीनाथजी के दर्शन हुए। वह कृतार्थ हो गया। उसने गोसाईजी से पुष्टि मार्ग की दीक्षा ली, और वैष्णव भक्त-कवियो के सत्सग मे रहने लगा। उसने ब्रजभाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया, और उसमे श्री कृष्ण की मधुर लीलाओ का काव्यात्मक कथन करने लगा। उसके रचे हुए छद भक्तजनों मे प्रसिद्ध हो गये।

प्रेम-वाटिका—यह रसखान के नाम से प्रसिद्ध ५३ दोहा छदो की एक छोटी रचना है। इसमें प्रेम-तत्व का अत्यन्त मनोक्त कथन किया गया है। इसके दोहा स ४८, ४९ एव ५० मे रसखान की जीवनी के कुछ सूत्र मिलते हैं। वे दोह निम्नाकित हैं—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा बंस की, ठसक छोरि रसखान ॥४८॥
प्रेम-निकेतन श्रीबन हि, आइ गोबरधन धाम।
लह्यौ सरन चित चाहिकै, जुगल सरूप ललाम ॥४६॥
तोरि मानिनी तें हियो, कोटि मोहिनी मान।
प्रेम देव की छबिहिं लखि, भये मिया रसखान ॥५०॥

'प्रेम-वाटिका' के पूर्वोक्त दोहा स ४८ मे राज्य शासन से विद्रोह होने के कारण दिल्ली नगर की जिस श्मसान-वत् स्थिति का उल्लेख किया गया है। उससे रसखान की विद्यमानता के निश्चित काल का बोध होता हे। वह 'गदर' की-सी स्थिति दिल्ली के मुगल सम्राट हुमायू को पराजित एव राज्यच्युत करने वाले पठान शासक शेरशाह की असामयिक मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारियो की गृह-कलह के कारण उत्पन्न हुई थी। रसखान उसी शाही वश का पठान था, और वह गृह-कलह एव मारकाट उसके सगे-सबधियो मे हो रही थी। उधर राज्यच्युत हुमायू के सगी-साथी मुगल सरदारो से उनका भीषण सघर्ष चल रहा था। उसके कारण शाति-प्रिय नागरिक दिल्ली को छोडकर भाग रहे थे। जिसके फलस्वरूप राजधानी श्मसान की भाति निर्जन होने लगी थी। दिल्ली की वह भीषण स्थिति इतिहास के अनुसार स १६१० (सन् १५५३ ई) मे हुई थी। उस समय रसखान की चढती जवानी थी। उसके हृदय मे मौलिक काम-वासना की तरगें उठ रही थी। उनसे उसका बीस वर्षीय युवक होना ज्ञात होना है। इस प्रकार रसखान का जन्म-काल स १५९० के लगभग निर्धारित होता है।

अपनी भावुक प्रवृत्ति और नई जवानी के कारण वह कामाध होकर किसी रूपवान वणिक-पुत्र अथवा किसी रूपवती प्रेयसी के प्रेम-पाश मे बधकर बावला-सा हो गया था। कतिपय वैष्णव भक्तो ने उसकी मोहाधता दूर की, और उसे श्रीनाथजी के प्रति आकर्षित कर गोवर्धन जाने की प्रेरणा प्रदान की। गोवर्धन मे उसने प्रेमस्वरूप श्रीकृष्ण के दर्शन किये, और वह सच्चे अर्थ मे 'रस की खान' रसखान बन गया। उसने ब्रजभाषा का गहन अध्ययन किया, और उसमे कृष्ण-लीला के सरस छदो की रचना करने लगा। गोसाईं विट्ठलनाथजी ने उसे पुष्टि मार्ग की दीक्षा दी थी।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के बाह्य साक्ष्य तथा 'प्रेम वाटिका' के अन्तर्साक्ष्य के साथ-साथ अन्य नवीनतम उल्लेखों के आधार पर रसखान के व्यक्तित्व और कृतित्व का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया जाता है—

प्रामाणिक जीवन वृत्तांत—रसखान का जन्म स १५९० वि (सन् १५३३ ई) के लगभग दिल्ली मे हुआ था। वह पठान जाति का मुसलमान था, और उसका सम्बन्ध शेरशाह सूरी के शाही वश से था। वह आरम्भ से ही भावुक प्रकृति का प्रेमी प्राणी था। उसके हृदय मे प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित थी। जब वह प्राय २० वर्ष का नवयुवक था, तब वह किसी रूपवान वणिक-पुत्र अथवा रूपवती युवती पर आसक्त हो गया था। उसकी आसक्ति लौकिक वासनाजन्य थी, जो सुयोग मिलते ही अलौकिक प्रेम मे परिवर्तित हो गई थी।

शेरशाह सूरी से हारा हुआ हुमायू प्राय १४ वर्ष तक भारत से निष्कासित होकर अफगानिस्तान एवं ईरान में भटकता फिरा था। जब शेरशाह के वशजो की आपसी फूट एव मारकाट के कारण दिल्ली का पठानी शासन दुर्बल हो गया, तब राज्य मे घोर अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी। हुमायू ने उस स्थिति का लाभ उठाकर स १६११ के आरम्भ में भारत पर आक्रमण किया, और शेरशाही वश के तत्कालीन शाह सिकन्दर सूरी को पराजित कर वह दिल्ली मे मुगल शासन की पुनर्स्थापना करने मे सफल हो गया। इस प्रकार स १६११ के मध्य काल (२३ जुलाई सन् १५५४) मे उसने अपना खोया राज्य पुन प्राप्त कर लिया था। तभी उसके साथी

मुगल सरदारो ने शेरशाह वश के पठानों को खोज-खोज कर मारने का अभियान चलाया था।

उस भीषण स्थिति मे रसखान को दिल्ली छोडना आवश्यक हो गया था। वह वहां से भागकर ब्रज में आ गया, और वेश बदल कर गोवर्धन मे रहने लगा। वहां के कृष्णोपासक ब्रजवासी जन सुलतानी शासन से पीड़ित होने के पश्चात् प्रत्येक मुसलमान से, चाहे वह किसी भी वश एव जाति का हो, शकित रहा करते थे। उधर मुगल वशीय मुसलमान पठानो के पीछे पडे हुए थे उस दुहरे सकट के कारण रसखान को बडी सावधानी के साथ ब्रज एव गोवर्धन मे रहना पडा था। उसने हिन्दू का वेश धारण कर लिया था, और वह पूरी निष्ठा के साथ हिन्दू समाज मे घुलमिल गया था। किसी को भी यह ज्ञात नहीं हो सका कि वह शाही वश का मुसलमान पठान है। उसने ब्रजभाषा एव ब्रज सस्कृति को आत्मसात कर भक्ति-काव्य की रचना करना आरम्भ किया, और उसमे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। उसकी रचना ऐसी स्वाभाविक ब्रजभाषा मे है, जितनी किसी जन्म-जात हिन्दू कवि की भी नही है।

रसखान ब्रज मे आने के पश्चात् प्राय १५ वर्ष तक हिन्दू के वेश मे रहा था। स १६२७ के पश्चात् जब गोसाईं विट्ठलनाथजी स्थायी रूप से ब्रज म निवास करने लगे थे तब उन्होंने रसखान की अनुपम भक्ति-भावना से सतुष्ट होकर उसे पुष्टिमाग मे दीक्षित किया था। उधर हुमायू के उत्तराधिकारी मुगल सम्राट अकबर की उदार धार्मिक नीति के कारण हिन्दू एव मुसलमानो मे सद्भाव कायम हो गया था। तब रसखान को छद्म वेश मे रहने की आवश्यकता नही रही थी। वह खुलेआम एक मुसलमान भक्त-कवि के रूप मे जीवन-यापन करने लगा।

रसखान ६० वष से कुछ अधिक समय तक ब्रज मे रहा था। उस कालावधि मे उसने कृष्ण-लीला सम्बन्धी अनुपम काव्य-रचना की थी। उसके निवास-स्थल तत्कालीन पुष्टिमार्गीय केन्द्र गोवर्धन एव गोकुल थे। उन धार्मिक स्थलो मे रहकर उसने श्रीनाथजी और अन्य देव स्वरूपो के चरणो मे अपने को पूर्णतया समर्पित कर दिया था। गोसाईं विट्ठलनाथजी और उनके वशजो की उस पर सदैव कृपा-दृष्टि रही थी।

अन्त मे स १६७५ के लगभग रसखान का निधन हो गया। उस समय उसकी आयु प्राय ८५ वर्ष की थी। उसका देहावसान सभवत गोकुल मे हुआ था। वहा पर ही उसका अन्तिम सस्कार किया गया था।

समाधि—गोकुल से प्राय एक किलोमीटर दूर महावन के कच्चे माग मे एक टीले पर लाल पत्थर की चौकोर बारहदरी बनी हुई है। उसका निर्माण ३० फीट के वर्गाकार चबूतरे पर हुआ है। उस छोटी एव सादा इमारत को रसखान की समाधि कहा जाता है। इसके सम्बन्ध मे सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ एव पुरातत्व वेत्ता डा कृष्णदत्त बाजपेयी ने लिखा है—

'रसखान की यह तथाकथित समाधि एक निर्जन स्थल के टीले पर बनी हुई है। इसकी कुर्सी चौपटन है, और लगभग एक गज ऊची है। इसकी लम्बाई २७ फीट के लगभग है, और चौडाई भी प्राय इतनी ही है। इसमे लाल पत्थर के १२ चौकोर खम्भे हैं। प्रत्येक खम्भा लगभग २० फीट ऊचा और डेढ फीट चौडा है। खम्भे सादे हैं, केवल नीचे की ओर कुछ बेल-बूट उत्कीर्ण हैं। खम्भो पर भारतीय स्थापत्य के ढग के सिरछज्ज लगे हैं, जिनके बीच मे कमल उत्कीण हैं। इसकी छत गोलाकार है, जिसमे भीतर की ओर कमल तथा सुराई के अलकरण उकेरे हुए हैं।'[1]

इस चारदीवारी पर कोई ऐसा चिह्न अथवा आलेख नहीं है, जिससे इसका सम्बन्ध भक्तवर रसखान से जोडा जा सके। परम्परागत मान्यता एव लोक प्रचलित अनुश्रुति स ही इसे 'रसखान की समाधि' समझा

---

१ ब्रज भारती (वर्ष ११, अक २) मे प्रकाशित लेख—'रसखान और उनकी समाधि'।

जाता है। प्राय तीन शताब्दियों से उपेक्षित पडी रहने के कारण यह जीर्ण एव क्षतिग्रस्त हो गई है। इसकी छत में दरार पड़ गई थी, जिसमे से वर्षा का जल टपका करता था। उसने सारा फर्श खराब कर दिया था।

सन् १६५६ में प्रथम बार उत्तर प्रदेश राज्य के पुरातत्व विभाग का ध्यान इसकी ओर गया था। उस समय डा कृष्णदत्त बाजपेयी पुरातत्व अधिकारी हो गये थे। उन्होंने इसका कुछ जीर्णोद्धार करा दिया था। तभी उत्तर प्रदेश शासन ने इस पर एक शिलापट लगवा दिया था। इस पर दर्शकों के परिज्ञान के लिए रसखान का सक्षिप्त जीवन-वृत्त अंकित है। शिलापट लगवाने का काल मार्च १६५७ है। इसके पश्चात् कई बार शासन के अधिकारियों ने इसका निरीक्षण कर इसके जीर्णोद्धार की बृहत् योजना बनाई, किंतु उसे कार्यान्वित नही किया जा सका है।

प्रचलित चित्र — रसखान का जो चित्र इस समय प्रचलित है, वह ढाई सौ वर्ष से अधिक पुराना नही है। इसका मूल रूप राजस्थान के किशनगढ़ की राजकीय चित्रशाला मे विद्यमान है। उक्त चित्रशाला के चित्रकारों ने विक्रम की १८वीं शती में तत्कालीन एव पूर्ववर्ती अनेक गणमान्य सतो, भक्तो एव कवियो आदि के चित्र का आलेखन किया था। उन्ही में से रसखान का यह चित्र भी है, जिसे शिवदास नामक किशनगढ़ी चित्रकार से बनवाया था। इसका आधार रसखान का कोई पूर्ववर्ती प्रामाणिक चित्र था, अथवा इसका आयोजन शिवदास ने अपनी कल्पना से ही किया था, इसका उत्तर देना बडा कठिन है। सभावना इसी बात की है कि यह चित्र शिवदास की कल्पना का ही परिणाम है। ऐसी दशा मे इसे प्रामाणिक मानना सम्भव नही है।

इसी प्रकार के विचार विद्वद्वर डा भवानी शकर याज्ञिक के भी हैं। उन्होंने लिखा है, 'इस चित्र मे चित्रित व्यक्ति की वेश-भूषा किसी भक्त, सन्त या पीर की नहीं जान पडती। कठी-माला एव तिलक तो है ही नही। सजधज पूर्ण परिधान के साथ कटि मे कटार बधी हुई है। चित्र देखने से किसी मुसलमान भद्र पुरुष, सरदार जागीरदार या दरबारी व्यक्ति का प्रतीत होता है।'[1]

रसखान के जीवन-वृत्त से ज्ञात होता है कि ब्रज में आने पर उसने अपनी मुसलमानी वेश-भूषा त्याग दी थी, और एक हिंदू वैष्णव भक्त का वेश बना लिया था। वह बाह्य एव आन्तरिक सभी प्रकार से सच्चा वैष्णव भक्त हो गया था। उसका वह रूप-स्वरूप इस चित्र मे दिखलाई नही देता है। ऐसी स्थिति मे प्रचलित चित्र प्रामाणिक होने की अपेक्षा कल्पित ही हो सकता है।

किशनगढ़ की चित्रशाला मे विद्यमान रसखान के इस तथाकथित चित्र की अनेक सादा एव रगीन अनुकृतियां तैयार की गईं, जिन्हे देश की कई चित्र-वीथियो मे प्रदर्शित किया गया है, और उसका फोटो रसखान सम्बन्धी कुछ पुस्तको मे छापा गया है। पं विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सपादित और स २०१० मे प्रकाशित 'रसखानि' ग्रथ में संभवत इसका आरभिक प्रकाशन हुआ था। उसके पश्चात् इसे अन्य ग्रथो एव पत्र-पत्रिकाओ मे छापा जाता रहा है।

उपलब्ध रचनाएं—रसखान की जो रचनाए अब तक प्राप्त हुई हैं, वे चाहे परिमाण मे अधिक नहीं हैं, किंतु सरसता एव मधुरता में बेजोड हैं। ब्रजभाषा-हिन्दी का कोई भी मुसलमान कवि उसकी समता नहीं कर सकता। प्रसाद गुण सम्पन्न स्वाभाविक ब्रजभाषा मे रची हुई रसखान की रसपूर्ण उक्तिया श्रोताओ के कानो मे अमृत-वर्षा-सी करने लगती हैं। जब हम देखते हैं कि इन उक्तियो का रचयिता कोई सुविख्यात ब्रजवासी कवि न होकर दिल्ली का एक पठान जातीय मुसलमान कवि है, तब हमारे आश्चर्य की सीमा नहीं रहती।

रसखान की भक्तिमयी ब्रजभाषा रचनाए हिंदी साहित्य की शृगार हैं, जो प्राय मुक्तक काव्य के रूप में उपलब्ध हैं। उन्हें दोहा, सवैया और घनाक्षरी छंदों मे रचा गया है। रसखान की समस्त उपलब्ध रचनाओं

1 रसखान रत्नावली, पृष्ठ २८ की पाद टिप्पणी।

का सुसंपादित संकलन डा भवानी शंकर याज्ञिक कृत 'रसखान रत्नावली' में प्रकाशित हुआ है। इनका विवरण इस प्रकार है—

(१) **प्रेम वाटिका**—यह ५३ दोहा छदो की एक छोटी काव्य-रचना है। इसमें प्रेम-तत्त्व का कथन है, जिसमे रसखान की स्वाभाविक रचना-माधुरी के दर्शन नही होते हैं। इसीलिए कुछ विद्वान् इसकी प्रामाणिकता मे सं देह करते है।

(२) **दानलीला**—यह केवल ११ छन्दो की अत्यन्त छोटी रचना है, जिसकी प्रामाणिकता भी सदिग्ध है।

(३) **मुक्तक काव्य**—इसमे ५ पद और २६८ छन्द हैं। छंदो मे अधिकांश सवैया एव घनाक्षरी हैं। रसखान का काव्य-महत्व इन्ही छदो पर आधारित है।

इस प्रकार रसखान के समस्त उपलब्ध कृतित्व का परिमाण केवल ३३७ छदादि का है। इसी के बल पर वह ब्रजभाषा भक्त कवियो की अग्रिम पक्ति मे प्रतिष्ठा प्राप्त किये हुए हैं।

ब्रज क्षेत्र के दिवगत हिन्दी-सेवी

डा प्रणवीर चौहान

□□

ब्रजभूमि भारतीय सस्कृति और साहित्य का गढ है। इस जनपद का विस्तार दक्षिण में चम्बल नदी से लेकर उत्तर मे मथुरा नगर से लगभग ५० मील दूर स्थित कुरु राज्य तक पश्चिम मे मत्स्य जनपद और उत्तर-पूर्व गगा तट तक था। वर्तमान मे मथुरा-वृन्दावन के चतुर्दिक स्थित चौरासी कोस के विस्तृत भू-भाग को ब्रजभूमि या ब्रज क्षेत्र कहा जाता है। इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति के विषय मे निम्नलिखित दोहे प्रसिद्ध हैं—

पुर दिल्ली औ' ग्वालियर, बीच ब्रजादिक देस।
पिंगल उप नायक गिरा, तिनकी मधुर बिसेस॥
इत बरहद उत सोन नद, उत सूरसैन कौ गाम।
ब्रज चौरासी कोस मे, मथुरा मडल धाम॥

'बरहद' अलीगढ जिले का एक कस्बा है और 'सोन' नद से तात्पर्य गुडगाव जिले के सुप्रसिद्ध कस्बा 'सोना' से है। 'सूरसेन गाम' आगरा जनपद की बाह तहसील मे स्थित 'बटेश्वर' नाम का तीर्थस्थल है।

प्रसिद्ध विद्वान् ग्रियर्सन ने अपने 'लिग्विस्टिक सर्वे' मे ब्रज क्षेत्र के विस्तार के विषय मे लिखा है, "यदि मथुरा को केन्द्र मानकर उक्त कथन के आधार पर ब्रज क्षेत्र का सीमाकन किया जाए तो उसमें उत्तर मे गुडगाव जनपद का पूर्वी भाग, उत्तर-पूर्व म अलीगढ, एटा, मैनपुरी, इटावा जनपद का कुछ भाग, दक्षिण मे आगरा, धौलपुर, मुरैना दक्षिण-पश्चिम मे भरतपुर और करौली के भू-भाग सम्मिलित हैं। इस प्रकार ब्रज

क्षेत्र की एक टेढ़ी पट्टी दक्षिण-पश्चिम से लेकर उत्तर-पूर्व की दिशा मे फैली हुई है।"

ब्रज क्षेत्र के इस भू-भाग मे उत्पन्न अनेक सरस्वती-पुत्रों ने महाभारत काल से लेकर मध्यावधि लौकिक संस्कृत, शौरसेनी, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रजभाषा और खड़ी बोली मे विपुल मात्रा मे साहित्य-सर्जना की है। इस क्षेत्र के हिन्दी-सेवियों की सख्या भी सहस्रों मे होगी। उन सबके विषय मे इस छोटे से निबन्ध मे लिखना न तो सम्भव ही है और न प्रामाणिक सामग्री ही उपलब्ध है।

यहां मैं ब्रजक्षेत्र के कतिपय उन सात, अल्पज्ञात तथा अज्ञात हिन्दी-सेवियो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहा हू जिन्होंने किसी-न-किसी रूप मे इस क्षेत्र मे रहकर या जन्म लेकर हिन्दी की सेवा की। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल के ब्रज क्षेत्र के जिन हिन्दी-सेवियों का वर्णन किया है उनमें सूरदास के बाद के हिन्दी लेखक हैं—

हित हरिवंश—इनका जन्म मथुरा मे स १५५६ के बाद माना जाता है। इनके द्वारा ब्रजभाषा-काव्य का खूब प्रसार हुआ। इनका रचना काल स १६०० से १६४० तक माना जाता है। इनका प्रमुख ग्रथ 'हित चौरासी' है, जिसमे ८४ पद हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने सिद्धान्त सम्बन्धी अनेक फुटकल बानी भी लिखी।

स्वामी हरिदास—स्वामी हरिदास वृन्दावन मे निंबार्क मतान्तर्गत टट्टी सम्प्रदाय के सस्थापक थे। अकबर के काल मे इनको सगीत-कला-कोविद माना जाता था। आपने अनेक पदों की रचना की जिनके चार सग्रह हैं। इनका रचना-काल स १६०० से १६१७ तक माना जाता है। इनके शिष्यों मे सगीतज्ञ तानसेन तथा बैजू का नाम प्रसिद्ध है।

ध्रुवदास—आपने वृन्दावन मे रहकर लगभग ४० ग्रथो की रचना की, जिनमे पद, दोहे, चौपाई, कवित्त, सवैया और छन्दों के द्वारा प्रेम-तत्व का वर्णन मिलता है।

कुलपति मिश्र—रीतिकालीन कवियो मे कुलपति मिश्र का प्रमुख स्थान है। ये आगरा निवासी मथुरिया चौबे थे। कविवर बिहारी आपके मामा थे। इनका रचनाकाल स १७२४ से १७४३ के मध्य माना जाता है। आपने रस रहस्य, मुक्ति तरंगिणी, नखशिख, सग्राम सार आदि ग्रथो की रचना की।

देव—महाकवि देव इटावा के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका जन्म स १७३० मे माना जाता है। इन्होंने ५२ पुस्तको की रचना की जिनमे भाव विलास, अष्टयाम, भवानी विलास, सुजान विनोद, प्रेम तरंग, राग रत्नाकर, कुशल विलास, देव चरित्र, प्रेम चन्द्रिका, जाति विलास, रस विलास, काव्य रसायन या शब्द रसायन, सुख सागर तरंग, वृक्ष विलास, पावस विलास, ब्रह्मदर्शन पचीसी, रसानन्द लहरी, प्रेम दीपिका, सुनिल विनोद, राधिका विलास, नीति शतक और नखशिख प्रेम दर्शन प्रसिद्ध हैं।

सूरति मिश्र—आगरा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका रचनाकाल विक्रम की अठारहवी शताब्दी का अन्तिम चरण माना जाता है। आपने अलंकार माला और बिहारी सतसई की 'अमर चन्द्रिका' टीका लिखी। 'कवि प्रिया' और 'रसिक प्रिया' पर भी टीकाएं लिखीं, जो ब्रजभाषा गद्य मे हैं। इनके अतिरिक्त आपने 'बैताल पचविंशति' का ब्रजभाषा गद्य मे अनुवाद किया है, साथ ही अलंकार माला, रस रत्न माला, सरस रस

ग्राहक चन्द्रिका, नखशिख, काव्य-सिद्धान्त, रस रत्नाकर आदि ग्रथों की रचना की।

अली मुहिब खां 'प्रीतम'—आप आगरा के रहने वाले थे। आपने सं १७८७ मे 'खटमल बाइसी' नाम की हास्यरस की पुस्तक लिखी। इसके अतिरिक्त इनकी कोई रचना उपलब्ध नही है।

सोमनाथ—आप भरतपुर के महाराजा बदनसिंह के पुत्र प्रतापसिंह के यहा रहते थे। आप माथुर ब्राह्मण थे। आपका रचना काल स १७६० से १८१० माना जाता है। इन्होंने 'रस पीयूष निधि' नामक एक विस्तृत ग्रथ बनाया, जिसमे पिंगल, काव्य-लक्षण, प्रयोजन, भेद, शब्द-शक्ति, ध्वनि, भाव, रस, रीति, गुण, दोष आदि सभी विषयो का निरूपण है। इसके अतिरिक्त इनके तीन प्रमुख ग्रथ 'कृष्ण लीलावती' पचाध्यायी, सुजान विलास (सिंहासन बत्तीसी पद्य मे) तथा माधव विनोद नाटक है। ये 'ससिनाथ' उपनाम से लिखते थे।

कुमार मणिभट्ट—ये गोकुल के रहने वाले थे। स १८०३ मे आपने 'रसिक रसाल' नामक रीति ग्रथ की रचना की। यह ग्रथ काफी प्रसिद्ध हुआ।

ग्वाल कवि—मथुरा निवासी ग्वाल कवि ने अपना पहला ग्रथ 'यमुना लहरी' और अन्तिम ग्रथ 'भक्त भावन' लिखा। आप ब्रजभाषा के रससिद्ध कवि थे। इनके अतिरिक्त आपने चार रीतिग्रथ रसिकानन्द (अलकार), रस रग, कृष्ण जू की नखशिख, दूषण दर्पण तथा गोपी पच्चीसी हैं। इनके कुछ ग्रथ और प्राप्त हुए हैं हमीर हठ, राधा माधव मिलन तथा राधा अष्टक। 'कवि विनोद' मे इनकी अनेक फुटकर रचनाओं का सग्रह है। इनका जन्म सन् १७८१ तथा स्वर्गवास सन् १८७१ मे हुआ।

ब्रज क्षेत्र के अन्य रीति कालीन कवियो मे मबलसिंह चौहान (इटावा), क्षत्रसिंह कायस्थ (बटेश्वर), सूदन (मथुरा), ब्रजवासीदास (वृन्दावन) आदि का नाम भी प्रमुख रूप से आता है।

आधुनिक काल मे ब्रजक्षेत्र के हिन्दी सेवियो मे निम्नलिखित लेखको का नाम विशेष रूप से लिया जाता है—

लल्लू लाल—आपका जन्म स १८२० म आगरा के एक गुजराती ब्राह्मण परिवार मे हुआ। आपने खडी बोली गद्य मे 'प्रेम सागर' लिखा। उर्दू, खडी बोली हिन्दी तथा ब्रजभाषा तीनो मे आपकी लिखी हुई पुस्तकें उपलब्ध हैं। सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, शकुन्तला नाटक तथा माधोनल आदि पुस्तके आपने उर्दू मे लिखी। इनके अतिरिक्त स १८६६ मे 'राजनीति' नाम से हितोपदेश की कहानिया जो पहले खडी बोली गद्य मे लिखी जा चुकी थी ब्रजभाषा गद्य मे लिखी। 'माधव विलास' और 'सभा विलास' नामक ब्रजभाषा पद्य के सग्रह भी इन्होने प्रकाशित किये थे। आपकी 'बिहारी सतसई' की टीका भी प्रसिद्ध है। इन्होंने एक प्रेस भी स्थापित किया, जिसमे अपनी पुस्तका के अलावा अन्य लेखको की पुस्तके भी छापा करते थे। आपका स्वर्गवास स १८८२ मे हुआ था।

बाबू तोताराम—आपका जन्म अलीगढ मे स १९०४ मे हुआ था। स्कूल की हैडमास्टरी से त्यागपत्र देकर स १९३३ मे अलीगढ मे ही प्रेस खोलकर 'भारत बन्धु' पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। आपने 'भाषा सवर्द्धिनी' नाम की एक साहित्यिक सस्था की भी स्थापना की। 'कार्तिकेतु' नाटक अग्रेजी पुस्तक का 'केटोकृतांत

नाटक' नाम से हिन्दी में किये हुए अनुवाद काफी प्रसिद्ध हुए। 'स्त्री सुबोधिनी' आपकी प्रसिद्ध पुस्तक है। जीवन-पर्यन्त हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगे रहे।

काशीनाथ खत्री—स १९०६ मे आगरा के माईथान मुहल्ले मे आपका जन्म हुआ। इन्होने मौलिक रचनाओ के साथ-साथ अनेक अंग्रेजी पुस्तकों के हिन्दी में अनुवाद किये। आपकी मृत्यु इलाहाबाद में स १९४८ मे हुई।

राधाचरण गोस्वामी—आपका जन्म स १९१५ मे वृन्दावन (मथुरा) मे हुआ तथा स्वर्गवास स १९८२ में हुआ था। आप सस्कृत के विद्वान् थे परन्तु हिन्दी के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से वृन्दावन से 'भारतेन्दु' के पत्र का प्रकाशन किया। आपके फुटकर लेखों के अलावा कई अच्छे मौलिक नाटक जैसे, सुदामा, सती चन्द्रावती तथा अमरसिंह राठौर प्रमुख हैं। आपने बगला के प्रसिद्ध उपन्यास विरजा, जाविन्नी तथा मृण्मयी का हिन्दी मे अनुवाद भी किया।

पं बंसीधर—आपने भारतवर्षीय इतिहास, जीविका परिपाटी (अर्थशास्त्र) एव जगत वृत्तात पुस्तकें लिखी। 'पुष्प वाटिका' नाम से 'गुलिस्तां' के एक अश का हिन्दी मे अनुवाद किया। हिन्दी-उर्दू के विद्वान् होने के कारण आपने हिन्दी-उर्दू का मिला-जुला एक पत्र भी निकाला था। आप आगरा के नार्मल स्कूल मे अध्यापन का कार्य करते थे।

राजा लक्ष्मणसिंह—आपका जन्म आगरा के वजीरपुरा मुहल्ले में ठाकुर रूपरामसिंह के यहा ९ अक्टूबर १८२६ को हुआ था। आगरा कालेज से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् १ जुलाई सन् १८४७ को वह पश्चिमोत्तर प्रान्त के सचिवालय म अनुवादक के रूप मे नियुक्त हुए। सन् १८५३ मे वह सदर बोर्ड के प्रधान अनुवादक बना दिए गये। सन् १८५५ मे आप इटावा के तहसीलदार नियुक्त हुए और सन् १८५६-५७ मे डिप्टी कलक्टर के पद पर पदोन्नत होकर बादा चले गए। सन् १८७७ मे इन्हे राजा की पदवी से सम्मानित किया गया। तत्पश्चात् बुलन्दशहर का कलक्टर बना दिया गया।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के उन्नायको मे राजा लक्ष्मणसिंह का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने अग्रेजी, सस्कृत तथा फारसी के अनेक ग्रथो का हिन्दी मे अनुवाद किया। आपने 'ताजीरात हिन्द' का 'दण्ड-सग्रह' नाम स अनुवाद किया। सन् १८६१ मे आपने कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का हिन्दी गद्य मे अनुवाद किया। १८८५ ई मे राजा साहब ने इसी नाटक का गद्य की टीका सहित ब्रजभाषा मे पद्यानुवाद भी किया। आपने कालिदास के 'रघुवश' का भी हिन्दी गद्य मे तथा 'मेघदूत' का पद्य मे अनुवाद किया। १७ जुलाई १८९६ को आपका स्वर्गवास हुआ।

नवनीत चौबे—चौबे जी का जन्म स १९१५ मे तथा स्वर्गवास स १९८९ मे मथुरा मे हुआ था। आप रससिद्ध कवि थे। आपके द्वारा रचित पद, कवित्त, सवैयो का संग्रह प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी, प्रेम मालिका तथा प्रेम प्रलाप आदि पुस्तको में हैं। चौबेजी का प्राचीन परिपाटी के आधुनिक कवियो मे प्रमुख स्थान है।

प श्रीधर पाठक—पाठक जी का जन्म आगरा जिले की फीरोजाबाद तहसील के जोंधरी गाव मे सं १९३३ में

हुआ था। पण्डितजी ने खड़ी बोली की कविताओं की अपेक्षा ब्रजभाषा मे अनेक सुन्दर, सरस कविताएं लिखीं। 'ऋतु सहार' का ब्रज भाषा मे काव्यानुवाद इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पाठकजी की खड़ी बोली की पहली पुस्तक 'एकातवासी योगी' लावनी या ख्याल के ढग पर लिखी गई है। 'श्रांत पथिक' (गोल्ड स्मिथ के 'ट्रेवलर' का अनुवाद) की रचना आपने रोला छद मे की। इनके अतिरिक्त आपने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनो ही मे अनेक कवित्त, सवैया और छन्दो की रचना की। आपकी मृत्यु स १६८५ मे हुई।

राजकीय जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश के मण्डलो मे जैनो की सख्या की दृष्टि से मेरठ के बाद आगरा का स्थान है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के समस्त जिलो मे आगरा जिले का दूसरा नम्बर है। किन्तु आगरा नगर मे जैनो की जितनी सख्या है, उतनी प्रदेश के अन्य किसी एक स्थान, नगर अथवा कस्बे मे नही है। मध्यकाल मे तो आगरा की शैली अर्थात् जैन विद्वानो की चर्चा गोष्ठी दूर-दूर तक विख्यात थी।

ब्रज क्षेत्र के जिन जैन कवियो, लेखको ने इस क्षेत्र मे जन्म लेकर या यहां रह कर हिन्दी साहित्य की सेवा की है उनमे प्रमुख हैं—

बनारसीदास जैन—कवि बनारसीदास जैन का जन्म आगरा मे स० १६४३ मे माघ सुदी एकादशी को हुआ था। आप शाहजहा के समकालीन थे। लगभग ३०० वर्ष पूर्व इन्होने हिन्दी निबन्ध साहित्य का शुभारम्भ किया। आपने नाटक समयसार, नाममाला, बनारसी बिलास, मोह विवेक युद्ध, माझा आदि ग्रथो की रचना की। 'अर्ध कथानक' नाम से अपनी जीवनी भी लिखी। १५ वर्ष की आयु मे इन्होने 'नवरस' नामक ग्रथ की रचना की। इसमे एक हजार दोहे, चौपाई थे।

ब्रह्म गुलाल—आपका जन्म चन्दवार (फीरोजाबाद, आगरा) के पास टापू गाव मे स १६४० के आस-पास हुआ था। उस समय जहागीर का शासन था। आपके त्रेपन क्रिया, समोसरण, मथुराबाद पचीसी, नित्य नियम पूजा, हिन्दी अष्टक आदि ८ ग्रथ प्रकाश मे आ चुके हैं।

पाण्डे जिनदास—आगरा निवासी पाण्डे जिनदास ने स १६४२ से १६७६ के काल मे रचनाए की। आपकी कृतियो मे चेतन गीत, जखडी, मालीराम, जोगी रास, मुनीश्वरो की जयमाल, धर्म रासगीत, राजुल सज्झाम, सरस्वती जयमाल, आदित्यका कथा, दोहा बावनी, प्रबोध बावनी तथा प्रबोध भावना प्रसिद्ध हैं।

त्रिभुवन चन्द्र—आप आगरा निवासी थे। आपकी कृतियो मे 'अनित्य पचाशत' और षड्द्रव्य वर्णन' दो अनदित तथा प्रस्ताविक दोहे और फुटकर कवित्त मौलिक रचनाए है।

परिमल्ल—आप ग्वालियर से आगरा आकर रहने लगे थे। 'श्रीमाल चरित्र' आपकी एक मात्र कृति ही उपलब्ध है। इस चरित ग्रथ मे २३०० चौपाई, छन्द है। इसका प्रारम्भ आपने स १६५१ मे किया था।

हीरानन्द मुकीम—आगरा में आप हीरे-जवाहरात का काम करते थे। इनके द्वारा रचित 'अध्यात्म बावनी' एक सरस, सुन्दर आध्यात्मिक कृति है।

नन्दलाल आगरा निवासी कविवर नन्दलाल की केवल तीन रचनाए यशोधरा चरित, सुदर्शन चरित तथा

गूढ़ विनोद उपलब्ध हैं। ये सभी रचनाएं चौपाई छन्द में लिखी गई हैं। आपका रचना काल सं १६६३ और सं १६७० के मध्य का है।

भैया भगवती दास—आप आगरा के रहने वाले थे। आपने 'ब्रह्म विलास' ग्रंथ की रचना की, जिसमें ६७ रचनाओं का सग्रह है।

पाण्डे हेमराज—पाण्डेजी का जन्म तो सांगानेर मे हुआ था। परन्तु आपने 'कामा' (भरतपुर) मे रहकर हिन्दी की सेवा की। अनेक भाषाओं के विद्वान् पाण्डेजी ने 'भक्तामर स्त्रोत' का पद्यानुवाद किया। प्रवचन सार, परमात्म प्रकाश, गोम्मट सार, कर्मकाण्ड, पचास्तिकाय तथा नय चक्र आदि इनकी मौलिक रचनाए हैं। अठारहवीं शताब्दी के गद्य लेखकों में आपका प्रमुख स्थान था।

जगतराम—मूल रूप से आप पानीपत के निवासी थे, परन्तु आगरा मे आकर रहने लगे थे। औरंगजेब के दरबार में आपको उच्च पद प्राप्त था। दानवीर, कवियो के आश्रयदाता जगतराम ने आगम विलास, सम्यकत्व कौमुदी, पद्म नदी पच विंशतिका, छन्द रत्नावली, पद सग्रह तथा लघु मगल आदि ग्रथो की रचना की।

इनके अतिरिक्त जगजीवन, प हीरानन्द, भट्टारक अचलकीर्ति, द्यानत राय, बुलाकी दास, बिहारीदास, भूधरदास, भवानीदास, प दौलतराम (हाथरस), मनराम (मन्नाशाह), खड़गसेन, तथा सालिवाहन आदि अनेक जैन विद्वान, कवि, लेखकों ने अपनी साहित्य-साधना से ब्रज क्षेत्र में हिन्दी को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सन् १८०० ई से अब तक अनेक हिन्दी-सेवी दिवगत हो चुके हैं। पद्मश्री आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने अपने ग्रंथ 'दिवगत हिन्दी-सेवी' ग्रथ मे जिन ज्ञात-अज्ञात हिन्दी सेवियो का सचित्र परिचय एव उनके कृतित्व का उल्लेख किया है, उनमे से ब्रज क्षेत्र के अनेक ऐसे हिन्दी सेवी प्रकाश मे आ गए हैं, जिन्हे हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने वालों ने या तो भुला दिया है या उनको तथा उनके कृतित्व को महत्वपूर्ण नहीं समझा है। उनमे से कुछ निम्नलिखित हिन्दी सेवी ऐसे हैं जिन्होंने कवि, लेखक, पत्रकार तथा पुस्तकों के प्रकाशक के रूप मे हिंदी की सेवा की है।

मदन मोहन तिवारी—आपका जन्म आगरा नगर के बल्काबस्ती मुहल्ले मे सन् १८३८ में हुआ था। आगरा के नार्मल स्कूल में आप अध्यापन कार्य करते थे। आपकी हितोपदेश मजरी, खगोल सार तथा राजनीति नामक पुस्तके प्रसिद्ध हैं। आप कवि रत्न सत्यनारायण के गुरु थे। आपका निधन सन् १९२० मे हुआ।

क्षेमकरणदास त्रिवेदी—अलीगढ़ जनपद के शाहपुर ग्राम मे श्री त्रिवेदी का जन्म ३ नवम्बर सन् १८४८ को हुआ था। आपने अथर्ववेद सहिता तथा गोपथ ब्राह्मण का हिन्दी भाष्य करके ख्याति प्राप्त की। आपने यजुर्वेदान्तर्गत 'रुद्राध्याय' का संस्कृत तथा हिन्दी मे भी अनुवाद किया था। आपका निधन १३ फरवरी १९३१ को हुआ था।

मुंशी बिन्दुमललाल वैश्य—आपका जन्म एटा जिले के कासगज नामक कस्बे में सन् १८५४ मे हुआ था। आपके द्वारा लिखित लगभग ६० पुस्तकें उपलब्ध हैं। नारायणी शिक्षा, पुराण तत्व प्रकाश, महाभारत के नायकों के

जीवन चरित आदि उल्लेखनीय हैं। आपका स्वर्गवास सन् १६३३ मे हुआ था।

किशोरी लाल गोस्वामी—आपका जन्म जनवरी सन् १८६६ मे हुआ था। वृन्दावन (मथुरा) वासी श्री गोस्वामीजी पत्रकार थे। साथ-ही-साथ उन्होंने विभिन्न विषयो से सम्बन्धित लगभग १५० पुस्तकें लिखीं। आपके मौलिक उपन्यासो मे चपला, तारा, लीलावती, रजिया बेगम, मल्लिका देवी, राजकुमारी, कुसुमकुमारी, तरुण, तपस्विनी, हृदय हारिणी, लवगता, याकूति तख्ती, कटी मूड की दो-दो बातें, कनक कुसुम, सुख शर्वरी, प्रेममयी, गुल बहार, इन्दुमती, लावण्यमयी, चन्द्रावली, चन्द्रिका, पुनर्जन्म आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। आपको सन् १६३१ मे झासी मे आयोजित अ भा हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया था। आपने लगभग ६०० निबन्ध भी विभिन्न विषयो पर लिखे। सन् १६३२ मे आपका स्वर्गवास हुआ।

ज्योति स्वरूप शर्मा—आपका जन्म अलीगढ मे सन् १८७५ मे हुआ था। आपकी प्रकाशित कृतियो मे मनो-कामना सिद्धि, अनौषधि चिकित्सा तथा मृत्यु परीक्षा प्रमुख है। अलीगढ़ मे ही रहकर आपने सारस्वत, पाली-वाल, ब्रह्मोदय तथा महेश्वर नाम की पत्रिकाओ का सम्पादन भी किया। आपका स्वर्गवास सन् १६६१ मे हुआ था।

गगा प्रसाद उपाध्याय—एटा जिले की कासगज तहसील के नदरई ग्राम मे अपका जन्म सन् १८८१ मे हुआ था। आपकी प्रमुखतम कृतियां हैं हिन्दी सेक्सपियर (छ भाग), विधवा विवाह मीमांसा, अग्रेज जाति का इतिहास भगवत कथा, शाकर भाष्यालोचन, मुक्ति से पुनरावृत्ति, उपदेश शतक, दूध का दूध पानी का पानी, आदि हैं। आपने उर्दू और अग्रेजी मे भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। आपका निधन २६ अगस्त १६६८ को हुआ था।

गोकुल चन्द दीक्षित—३० दिसम्बर १८८७ को इटावा जनपद के लखना नामक स्थान पर आपका जन्म हुआ था। अध्ययन के बाद भरतपुर राज्य के 'सार्वजनिक निर्माण विभाग' मे आपको नौकरी मिल गई। वही रह कर आप साहित्य-सेवा स्वाध्याय मे जुट गए। इसी अवधि मे आपने रियासत की ओर से प्रकाशित होने वाले 'भरतपुर गजट' का सम्पादन भी किया। आपके मौलिक एव अनूदित ग्रथो मे ब्रजेन्द्र वश भास्कर, बयाना का इतिहास, शृगार विलासिनी (टीका), वैशेषिक दर्शन (टीका), मीमासा दर्शन (टीका), भरत संजीवनी, भगवती शिक्षा समुच्चय, विदुर नीति तथा विदुर नीति की टीका आदि प्रसिद्ध हैं। केवल दसवी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त दीक्षित जी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। आपके व्यक्तिगत पुस्तकालय मे लगभग १० हजार पुस्तकें थी। आपका निधन अक्टूबर सन् १६४४ मे हुआ था।

गोकुलचन्द्र शर्मा—अलीगढ जनपद के 'हरी का नगला' नामक छोटे से गांव मे सन् १८८८ मे आपका जन्म हुआ था। अध्यापन कार्य करते हुए ही आपने आगरा विश्वविद्यालय से व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप मे एम ए पास किया। शर्माजी ने जिन काव्य-कृतियो की रचना की उनमे प्रणवीर प्रताप (खण्ड काव्य), गान्धी गौरव, तपस्वी तिलक, मानसी, अशोक वन, आदि प्रसिद्ध हैं।

बाबू गुलाबराय—आपका जन्म सन् १८८७ मे इटावा नगर मे हुआ था। दर्शनशास्त्र मे एम ए करने के

पश्चात् आप छतरपुर (बुंदेलखण्ड) के महाराजा के निजी सचिव हो गए। सन् १९१३ से १९३२ तक वहां रहने के बाद आप आगरा आ गए और साहित्य-साधना में जुट गए। सर्वप्रथम आपकी शान्ति धर्म, फिर निराशा क्यो, मैत्री धर्म, कर्तव्य शास्त्र, तर्क शास्त्र, मन की बातें तथा पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास रचनाएं प्रकाश में आयीं। मन की बातें तथा पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास रचनाएं प्रकाश मे आयीं। इसके पश्चात् काव्य के रूप, सिद्धान्त और अध्ययन, हिन्दी नाट्य विमर्श, अध्ययन और आस्वाद, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास प्रकाशित हुई। आगरा से प्रकाशित 'साहित्य-सदेश' साहित्यिक पत्रिका का भी आपने वर्षों सम्पादन किया। आपकी हिन्दी के प्रति की गयी सेवाओं के लिए आगरा विश्वविद्यालय ने आपको डी लिट् की उपाधि से विभूषित किया। १३ अप्रैल सन् १९६३ को आपका स्वर्गवास हो गया।

हरिशंकर शर्मा—आपके पिता प नाथूराम शर्मा 'शंकर' हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि थे। उन्ही के यहां १९ अगस्त १८८१ मे हरदुआगंज (अलीगढ़) में आपका जन्म हुआ था। विधिवत् किसी स्कूल मे शिक्षा न होते हुए भी आपने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी, बगला, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। प्रारम्भ में शर्माजी ने पत्रकारिता के क्षेत्र मे भारतोदय, आर्य मित्र, आर्य सन्देश, प्रभाकर, निराला, साधना, कर्मयोग, सैनिक, ज्ञान गगा तथा दैनिक दिग्विजय आदि के सम्पादक व सह सम्पादक के रूप मे अच्छी ख्याति प्राप्त की। कवि-सस्कार तो आपमे जन्मजात थे ही। आपने घास-पात, शिव सकल्प, महर्षि महिमा, कृष्ण सदेश, राम राज्य, वीरागना वैभव, आदि काव्य-कृतियो का सृजन किया। साथ ही चहचहाता चिड़िया घर, पिंजरा पोल जैसी हास्य-व्यग्यमयी गद्य-रचना भी प्रस्तुत की। इनके अतिरिक्त उर्दू साहित्य परिचय, हिन्दी साहित्य परिचय, अग्रेजी साहित्य परिचय, अभिनव हिन्दी कोष तथा हिन्दुस्तानी कोष जैसी साहित्यिक पुस्तकों की रचना की थी। आपको साहित्यिक सेवाओ के लिए डी लिट् तथा पद्मश्री उपाधियो से आपको सम्मानित किया गया था। आपका निधन ९ मार्च, १९६८ को हुआ था।

प श्रीकृष्णदत्त पालीवाल—प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एव पत्रकार प श्रीकृष्णदत्त पालीवाल का जन्म आगरा जनपद के तनौरा नामक ग्राम मे सन् १८९५ मे हुआ था। काग्रेस के प्रारम्भिक सदस्य से उ प्र सरकार के मन्त्री पद पर पहुचने के बाद भी आप साहित्य-सेवा मे अन्तिम समय तक सलग्न रहे। आपने जहा सन् १९१३-१४ मे 'पालीवाल ब्रह्मोदय' नामक पत्र का सम्पादन किया। वहा सन् १९१८ से १९२० तक प्रताप प्रेस कानपुर से प्रकाशित पत्रिका 'प्रभा' का भी देवदत्त शर्मा के नाम से सम्पादन किया था। इस नाम परिवर्तन का कारण मैनपुरी षडयन्त्र केस में भूमिगत रहकर कार्य कर रहे थे। उन्ही दिनो सन् १९२१ से १९२३ तक दैनिक तथा साप्ताहिक 'प्रताप' के भी सम्पादक रहे। सन् १९२५ मे देश की जनता मे राष्ट्रीय चेतना भरने के उद्देश्य से आपने आगरा से 'सैनिक' नामक राष्ट्रीय विचारधारा का पत्र निकाला और सन् १९३७ तक इसे नियमित रूप से प्रकाशित किया। इसी बीच सन् १९३५ मे आपने सैनिक को दैनिक 'सैनिक' के रूप मे प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया।

आपने अ भा ब्रज साहित्य मडल के अध्यक्ष के रूप मे भी हिंन्दी की सेवा की। आपके द्वारा लिखित साम्यवाद, सेवा मार्ग, अमर पुरी, सेवा धर्म और सेवा मार्ग, गीतामृत, हमारा स्वाधीनता सग्राम, किसान राज्य पचवर्षीय योजना तथा गान्धीवाद और मार्क्सवाद आदि रचनाए उल्लेखनीय हैं। आपका स्वर्गवास सन् १९६८ मे आगरा में ही हुआ था।

लाला कन्नोमल—आपका जन्म सन् १८७३ मे आगरा मे हुआ था। दार्शनिक एवं धार्मिक विषयों में रुचि होने के कारण आपने इन्ही विषयो पर अनेक ग्रथ लिखे। हिन्दी के साथ-साथ आपका अंग्रेजी पर भी समान अधिकार था। आपने हिन्दी के साथ अंग्रेजी में भी रचनाए की। हिन्दी मे प्रकाशित आपकी कृतियो मे हर्बर्ट स्पेंसर की अज्ञेय मीमासा, हर्बर्ट स्पेंसर की ज्ञेय मीमांसा, गीता दर्शन, हिन्दी प्रचार के उपयोगी साधन, संसार को भारत का सदेश, बृहिस्पत्य अर्थशास्त्र, महिला सुधार, भारतवर्ष के धुरन्धर कवि के अतिरिक्त अनेक रचनाए प्रसिद्ध है।

भगीरथ प्रसाद दीक्षित—आपका जन्म आगरा जनपद के बटेश्वर नामक तीर्थस्थल के निकट मई ग्राम मे सन् १८८४ मे हुआ था। माधुरी, सुधा, सरस्वती, गंगा, भारत, कान्यकुब्ज, नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि देश की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित आपके शोधपूर्ण लेखो के कारण हिन्दी के उच्चतम लेखकों मे आपकी गिनती होती थी। आपकी प्रकाशित पुस्तको मे शिवा बावनी, साहित्य सरोज, हिन्दी व्याकरण शिक्षा, साहित्य सुधाकर, गद्य-प्रवेशिका, हिन्दू जाति की पाचन शक्ति, कबीर काव्य-सग्रह और दीक्षित-कोष उल्लेखनीय हैं। ८ जनवरी १९७६ को आपका स्वर्गवास हुआ था।

आचार्य प्रेमशरण 'प्रणत'—आगरा जनपद के पेतीखेडा नामक ग्राम मे आपका जन्म १५ अगस्त १८९१ को हुआ था। आपके द्वारा किया गया 'कुरान शरीफ' का प्रथम हिन्दी अनुवाद काफी लोकप्रिय हुआ। आपने चाणक्य नीति, विदुर नीति तथा शुक्र नीति के हिन्दी मे अनुवाद किए। पत्रकार के रूप मे आप 'आर्यमित्र' के सहकारी सम्पादक रहे। आपका दिल्ली मे २५ अगस्त १९८० को निधन हुआ।

बदरीनाथ भट्ट—आगरा नगर के गोकुलपुरा मोहल्ले मे सन् १८९१ मे आपका जन्म हुआ था। आप उच्च-कोटि के व्यग्यकार व सफल लेखक थे। आपने हिन्दी मे चन्द्रगुप्त (नाटक), चुगी की उम्मेदवारी, दुर्गावती, तुलसीदास, कुरुवन दहन, वेणी सहार की आलोचना, वेन चरित, लबड धोधो, मिस अमरीका तथा विवाह-विज्ञापन आदि पुस्तकें लिखकर ख्याति प्राप्त की। पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी अच्छी ख्याति पाई। आपका स्वर्गवास सन् १९३४ मे हुआ था।

महेन्दुलाल गर्ग—आपका जन्म मथुरा जनपद के ग्राम सलेमपुर मे ४ अगस्त सन् १८७० को हुआ था। आपकी लिखी हुई पुस्तकों मे पृथ्वी परिक्रमा, चीन दर्पण, ध्रुव देश, सुख मार्ग, शिशु पालन, पति-पत्नी सवाद, अनन्त ज्वाला तथा तरुणो की दिनचर्या काफी लोकप्रिय हुई। इनके अतिरिक्त देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में आपके यात्रा-सस्मरण तथा अनेक लेख भी प्रकाशित हुए। सन् १९४२ मे आपका स्वर्गवास हुआ था।

उलफत सिंह चौहान 'निर्भय'—आपका जन्म २२ जून १८९९ को आगरा जनपद की ऐत्मादपुर तहसील के ग्राम हसनपुर मे जमीदार परिवार मे हुआ था। आगरा जनपद के सामाजिक एव राजनीतिक जीवन मे आपका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। मैनपुरी षडयन्त्र केस तथा अनेक राष्ट्रीय आन्दोलनो मे आपने सक्रिय रूप से भाग लिया तथा कारावास मे रहकर अनेक यातनाए सही। आप उ प्र विधान सभा के सदस्य, जिला परिषद आगरा के अध्यक्ष के साथ अनेक वर्षों तक जिला काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष एव मंत्री रहे।

एक कमठ, कुशल एव निर्भीक स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी होने के साथ-साथ आप ब्रजभाषा और हिन्दी

के श्रेष्ठ कवि भी थे। आपने किसानों की पुकार, किसानों का बिगुल, रणभेरी, चुनाव चालीसा, चीन-कमीन ने धोको दियो, आदि राष्ट्रीय रचनाओं के साथ निर्भय किसान दोहावली, नीति सतसई, अध्यात्म सतसई, सत्य हरिश्चन्द्र, शृंगार शतक, ईशोपनिषद (काव्यानुवाद) तथा निर्भय नीति-संग्रह आदि उत्कृष्ट रचनाए लिखीं। आपका स्वर्गवास १७ सितम्बर १९८० को हुआ था।

रावत चतुर्भुजदास चतुर्वेदी—आपका जन्म मैनपुरी में हुआ था। आप बी ए (आनर्स), साहित्यरत्न तथा साहित्याचार्य की उपाधियां प्राप्त कर लेखन कार्य मे जुट गये। आपने गद्य मे महाकवि सोमनाथ एक अध्ययन, भरतपुर और अतीत के चित्र नामक पुस्तको के साथ-साथ बन्धन, मगलाचरण, आत्मोल्लास, हिय हिलोर, प्रभाकर प्रभा, दुर्गा चालीसा, सरोज शतक, काव्य कुज, सुमन सवैया, चतुर्भुज-सतसई तथा आकान्ता चीन काव्य-रचनाए भी लिखीं। आपने भरतपुर मे रहकर भरतपुर संग्रहालय की स्थापना की। आपका निधन ३१ जुलाई सन् १९७६ को हुआ था।

अमरसिंह तोमर—आपका जन्म अलीगढ़ जनपद के राजनगर ग्राम मे सन् १९०३ मे हुआ था। अध्यापन कार्य में व्यस्त रहते हुए भी आप लेखन कार्य करते रहे। आपकी किसान सतसई, शिक्षक सतसई, दयानन्द-दर्शन, मुरली आदि काव्य कृतियां उपलब्ध हैं। आदर्श निबन्धावली, पिंगल पराग, गूढ़ार्थ चन्द्रिका, आदर्श अभिनय मंजरी तथा झांकी आपकी अन्य उत्कृष्ट कृतिया हैं। १ जून १९७५ को आपका निधन हुआ था।

देवीप्रसाद 'देवीद्विज'—गोकुल (मथुरा) मे आपका जन्म सन् १८९५ मे हुआ था। आपने ब्रजभाषा मे लगभग ९ हजार कवित्त, सवैया, कुडलिया तथा अष्टक लिखे थे। आपकी गोपालाष्टक, मोहाष्टक तथा गोसाईं गोकुल-नाथ चरित आदि पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। आपका स्वर्गवास ५ अगस्त सन् १९८० मे हुआ था।

अध्यापक रामरत्न—आगरा जनपद के अकोला नामक ग्राम मे आपका जन्म सन् १८८३ मे हुआ था। जीवन भर शिक्षण कार्य मे व्यस्त रहते हुए भी आपने हिन्दी व्याकरण प्रवेशिका, हिन्दी व्याकरण बोध, लोकोक्ति सग्रह, रचना-प्रबोध तथा पिंगल प्रबोध, जीवन-ज्योति तथा अयोध्याकाण्ड (रामचरितमानस) व कवितावली की टीका आदि उत्कृष्ट रचनाए लिखीं। आपका निधन सन् १९४० मे हुआ था।

हृषीकेश चतुर्वेदी—श्री चतुर्वेदी का जन्म आगरा के एक सम्पन्न परिवार मे २२ दिसम्बर सन् १९०७ को आगरा मे हुआ था। आप ब्रजभाषा, खड़ी बोली व सस्कृत के विद्वान थे। आपने गम्भीर रचनाओ के साथ-साथ कुछ हास्य व्यंग्य पूर्ण कविताए भी लिखीं। आपके प्रकाशित ग्रथो मे हृषीकेश गीतांजलि, विजया वाटिका, भंग का लोटा, छेड़-छाड़ आदि प्रसिद्ध हैं। वृद्ध नायिक, संयुक्त वर्ण विज्ञान, चित्र वैचित्र्य, श्रीकृष्ण नाम माला तथा ब्रजमाधुरी आदि रचनाए भी उल्लेखनीय हैं। आपका स्वर्गवास २३ सितम्बर सन् १९७० को आगरा मे हुआ था।

रांगेय राघव—बहुमुखी प्रतिभा के धनी डा रांगेय राघव का जन्म १७ जनवरी १९२३ को आगरा मे हुआ था। आपने १४ वर्ष की आयु से लिखना प्रारम्भ किया। पहला उपन्यास 'घरोंदे' लिखा। उनके बाद तो लिखने का

क्रम ऐसा चला कि केवल ३६ वर्ष की अल्पायु मे लगभग १५० पुस्तकों की रचना कर डाली। आपने हिन्दी साहित्य की कोई विधा ऐसी नही छोडी जिसमे न लिखा हो। आपकी कहानियो की सख्या सैकड़ों में है। लगभग ५० उपन्यास लिखे जिनमे घरोंदे, चीवर, मुर्दों का टीला, सीधासादा रास्ता, कब तक पुकारू, आखिरी आवाज के अतिरिक्त सांस्कृतिक एव साहित्यिक महापुरुषो की जीवनी पर आधारित भारती के सपूत, लोई का ताना, रत्ना की बात, देवकी का बेटा, यशोधरा जीत गई, लखना की आंखें, धूनी और धुआं, तथा मेरी भव बाधा हरो क्रमश भारतेन्दु, कबीर, तुलसी, कृष्ण, बुद्ध, विद्यापति, गोरखनाथ और बिहारी के सम्बन्ध मे आपने लिखे। आपके देवदासी, तूफानो के बीच, साम्राज्य का वैभव, जीवन के दाने, अधूरी सूरत, समुद्र के फेन, अगारे न बुझे, इसान पैदा हुआ, पाच गधे और मेरी प्रिय कहानिया कहानी सग्रह हैं। काव्य-लेखन मे भी आप पीछे न रहे और अजेय खण्डहर, पिघलते पत्थर, राह के दीपक, रूप की छाया तथा मेधावी जैसी काव्य-कृतिया हिन्दी साहित्य को प्रदान की। आप एक कुशल चित्रकार भी थे।

आपके सैक्सपियर की पुन्तको के अनुवाद, सस्कृत के ग्रथो के अनुवाद प्रसिद्ध हैं। इतिहास, समीक्षा, समाज शास्त्र आदि विषयो पर भी अनेक ग्रथ लिखे। आपको कई पुस्तको पर पुरस्कार भी मिले। केवल ३६ वर्ष की अल्पायु मे १२ सितम्बर १९६२ को आपका निधन हुआ।

इनके अतिरिक्त सर्वश्री अजान चतुर्वेदी (आगरा), चन्द्रभाल जौहरी (एटा), रामनारायण यादवेन्दु, रूपनारायण चतुर्वेदी 'निधिनेह' (आगरा) आदि ऐसे अनेक साहित्यकार हैं जिन्होने ब्रज क्षेत्र को अपनी साहित्यिक सेवाओ से गौरवशाली बनाया है।

इस क्रम मे ऊदी (इटावा) के स्व शिशुपाल सिह 'शिशु' व नगला कटीला (एटा) के स्व बलवीर सिह 'रग' को भी भुलाया नही जा सकता। श्री 'शिशु' ने वीरजा, तीन आहुतियां, यमुना, परीक्षा खण्ड काव्य, हल्दी घाटी की एक रात, अपने पथ पर, छोडो हिन्दुस्तान, दो चित्र, पूर्णिमा, नदी किनारे काव्य-ग्रथो के अतिरिक्त अनेक फुटकर रचनाए हिन्दी साहित्य को दी। कवि सम्मेलनो में उनकी दहाड सुनकर श्रोताओं का खून खौल उठता था। आपका जन्म १ सितम्बर १९११ मे तथा निधन १९६४ मे हुआ था।

श्री बलवीर सिह 'रग' अपने राष्ट्रीय गीत, भाव पूर्ण प्रेम गीत तथा गजलात्मक गीतो के लिए देश भर मे प्रसिद्ध थे। १४ नवम्बर १९१९ को जन्मे श्री बलवीर सिंह 'रग' ने अपनी प्रवेश गीत, साझ सकारे, सगम, सिंहासन तथा गध रचती छद काव्य कृतियो एव कवि-सम्मेलनो के मच द्वारा ब्रज क्षेत्र के हिन्दी-सेवियो में गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त किया है। आपका निधन ८ जून १९८४ को एटा मे हुआ।

आज भी ब्रज क्षेत्र के अनेक ऐसे हिन्दी-सेवी हैं जो ब्रज क्षेत्र मे रहकर अथवा यहा जन्म लेकर अन्य स्थानो मे रहकर अपनी साहित्य-साधना से ब्रज क्षेत्र को गौरवान्वित करने मे लगे हुए हैं।

ब्रज क्षेत्र को महाकवि सूरदास, कविरत्न, सत्यनारायण, प अमृतलाल चतुर्वेदी, डा कुलदीप आदि अनेक कवियों, लेखको, पत्रकारो तथा प्रकाशको ने हिन्दी साहित्य के भडार को भर कर हिन्दी की सेवा की है और आज भी ब्रज क्षेत्र के अनेक साहित्यकार अपनी वाणी व लेखनी द्वारा हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

ब्रज का सांस्कृतिक वैभव

गोपाल प्रसाद व्यास

□□

ब्रज के रासधारी लीला के प्रारभ मे ब्रज-भावना और रास का वातावरण बनाने के लिए सरस कठ से एक दोहा अवश्य गाया करते हैं—

ब्रज समुद्र, मथुरा कमल, वृन्दावन मकरद।
ब्रज-वनिता सब पुष्प हैं, मधुकर गोकुलचद।।

प्राचीन शब्द-कोशो में 'सस्कृति' शब्द प्राय नही मिलता। सस्कृति के अर्थ को प्रकाशित करने वाले दो शब्द इनमे पाए जाते हैं—सस्कार और सस्कृत। इनमें सस्कृति के अर्थ को प्रकट करने वाले बनाव-शृगार या किसी अनगढ़ खुरदरी वस्तु की पालिश अथवा सस्कार ही ऐसे हैं, जो अग्रेजी के शब्द 'कल्चर' की सार्थकता को द्योतित करते हैं। पश्चिमी देशो की 'कल्चर' ऐसी हो सकती है। भारतीय सस्कृति, विशेषकर ब्रज की सस्कृति के विषय मे संस्कृति की विदेशी व्याख्या मान्य नही हो सकती। किसी देश की या क्षेत्र की सस्कृति वहा के आचार-व्यवहार, कला-सगीत, मूर्ति-स्थापत्य एव नैतिक तथा आध्यात्मिक विश्वासो पर ही आधारित होती है। इसे नागरिक समीक्षको द्वारा निरूपित या यों कहे कि आरोपित सस्कारो से नही जाना जा सकता। इसकी सच्ची पहचान यहा की लोकवार्ताओ, लोकगीतो और लोक विश्वासो से ही की जा सकती है। 'ब्रज समुद्र' वाला ऊपर लिखा गया दोहा हमारी समस्त ब्रज की सही संस्कृति का सटीक उदाहरण है।

ब्रज की सस्कृति समुद्र के समान है। अनेक विचारधाराओ वाली पुण्यतोया नदिया इसमे आकर अपने को विसर्जित करती हैं। उसके गर्भ मे अनत रत्न-राशि छिपी हुई है। दोहाकार ने समुद्र मे पाए जाने वाले खारेपन और भयानक जीव-जन्तुओ को छोडकर इसमे मथुरा रूपी कमल के दर्शन किए हैं। इस कमल के मकरद से वृन्दावन मकरद महक रहा है। तात्पर्य है कि ब्रज की सस्कृति सरोज-स्वरूपा है, जिसकी सुवास दूर-दूर तक फैली हुई है। ब्रज की नारियां अर्थात् गोपिया इस रस-सागर के खिले हुए पुष्पो के समान हैं। ब्रज के नायक श्रीकृष्ण स्वय मधुकर हैं, जो कली-कली, फूल-फूल और मथुरा-कमल पर मडराते रहते हैं। सौन्दर्य-बोध का ऐसा पुष्पित, सुवासित, नैसर्गिक और सास्कृतिक चित्रण ही ब्रज-सस्कृति का पूर्ण बिम्ब माना जा सकता है। इसमे लोक भी है, कला भी है, रस भी है और अध्यात्म भी। ब्रज-सस्कृति के भव्य सौध के यही चार आधार-स्तम्भ हैं। इसी के गर्भ-मन्दिर मे लीला-ललित ललाम राधाकृष्ण की युगल छवि विराजमान है। इनके दर्शनो के लिए युगो-युगो से सारा देश उमडता रहा है और अब तो लाडली लाल की यह लीला अपनी विमल ब्रज भावना के साथ यूरोप और अमरीका के भौतिकवाद से पीड़ित जन-मानस को भी जगह-जगह पर आन्दोलित करने लगी है। वृन्दावन की भांति इग्लैंड, न्यूयार्क और वाशिंगटन मे भी काष्ठ की खडाऊ पहने पीताम्बर और तुलसी की माला धारण किए तिलकधारी गौरांग, वैष्णवो के मुख से भी 'राधे-राधे, कृष्ण-कृष्ण' के स्वर सडकों पर गूंजते हुए सुने जा सकते हैं।

क्या है यह ब्रज की सस्कृति? ऐसी क्या विशेषता है इसमे? क्या भारत की मूल संस्कृति से यह कोई भिन्न वस्तु है? इसका लिखित साक्ष्य प्राप्त करने के लिए हमे विदेशी विद्वान् टेलर, फ्रेजर, गाम्मे से अधिक श्रीमद्भागवत के दशम् स्कंध का बार-बार पाठ करना पड़ेगा। 'सूरसागर' मे निरन्तर गोते लगाने पडेंगे।

नंददास, परमानंददास आदि अष्ट सखाओ के गीत गुनगुनाने होंगे। वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु द्वारा निरूपित सिद्धान्त और सेवा-पद्धति जाननी होगी तथा इन सम्प्रदायो के मंदिरों की झांकियों के अहर्निश दर्शन करने होंगे। उपासना और सेवा की विधियो को समझना पड़ेगा। सस्कृति के मोटे-मोटे देशी-विदेशी ग्रन्थो से ब्रज की सस्कृति नही जानी जा सकती। उसे जानने के लिए ब्रज के लोक-मानस को समझना पड़ेगा। मथुरा-वृन्दावन के हिंडोरे, नदगाव-बरसाने की होली, गोवर्धन की सप्तकोसी परिक्रमा मे नाचते-गाते नर-नारियो के दर्शन करने होंगे। बिना ब्रज के फूल-डोलों, साँझियों, जिकरियों, ढोलो, आल्हा, चरकला, डडेशाही, पढ़न्त, कबड्डी, चील झपट्टा, आख मिचौनी, कुश्ती-दंगल, खयालबाजी रसियो, मल्हारो और धमारो के देखे-सुने ब्रज की संस्कृति का तत्व हाथ नही लग सकता। नाचता-गाता, खेलता-कूदता, अपनी निर्धनता मे भी साम्राज्यो को तिरस्कृत करता निराकार ब्रह्म के पाखण्ड को, ज्ञानियों के अहकार को चूर-चूर कर देने वाला ब्रज और उसकी सौन्दर्यबोधिनी दिव्य सस्कृति साहित्य से अधिक लोक मे बिखरी हुई है। सुनने से अधिक वह देखने की वस्तु है। उसका आस्वाद नैनों के माध्यम से ही किया जा सकता है। सगुण साकार का उपासक ब्रज दर्शन की वस्तु है। उसका दर्शन (शास्त्र) भी रमणीय है। उसके नायक, नायिका अर्थात् आराध्य राधा-कृष्ण और उनकी गाथाओ का आधार भी रमणीयता ही है। जैसे साहित्य मे 'रमणीयार्थं प्रतिपादक वाक्य' को काव्य कहा गया है, वैसे ही भारत की रमणीय (राधा-रमणीय) संस्कृति को ब्रज-सस्कृति कहना चाहिए।

ब्रज की सस्कृति मे दो वस्तुओं की प्रधानता है—भोग तथा राग। चाहे ब्रज का लोक-जीवन हो या ब्रज के देवता का कोई छोटे से लेकर बडे-से-बडा मदिर, वहा आपको भोग और राग की ही प्रधानता मिलेगी। ठाकुर जी की मगला (मगल-जागरण) मे माखन-मिश्री का भोग आता है। ग्वाल और श्रृगार के समय की भोग व्यवस्था मे कही दूध-मलाई की लोटी है, तो कही ठौर-मठरी और मोदक की व्यवस्था। राज-भोग तो राज-भोग है ही। ठाकुर जी जब सोकर उठते हैं तो उठते ही उन्हे कुछ चाहिए। संध्या को जब वन-चारण करके लौटते हैं तो भूख का लग आना स्वाभाविक ही है। शयन से पहले तो जमकर भोग लगना ही चाहिए। रात को बाल-कृष्ण या प्रिया-प्रीतम की नीद फिर खुल जाय तो फिर कुछ खाने-पीने को चाहिए न, इसलिए शयन के समय मे भी एक पिटारे मे कुछ मिष्ठान्न और झारी मे जल तथा पान के बीड़े रख दिए जाते हैं। भोग शब्द का अर्थ केवल भोजन तक सीमित नही है। उसमे वस्त्राभूषण भी हैं, इत्र-चदन और पुष्पहार भी हैं। गर्मियो मे खस की टट्टिया भी हैं। फूलो के बगले भी हैं। पावस मे झूले और घटाए भी हैं। शीत मे गादी-गदेले और मीठी-मीठी हलकी लौ के साथ जलने वाली अगीठिया भी। ये सब भोग राग-रागिनियो के साथ आरोगे जाते हैं। कीर्तन के ये पद ब्रज-साहित्य की अनूठी निधि हैं। भारत के सगीत को भी ब्रज-संस्कृति ने अनुपम रागात्मकता प्रदान की है। ब्रज के मदिरो मे आज भी सुरक्षित वस्त्राभूषण, भोग-राग की विधियां, श्रृगार और झांकियो के उपादान, इनमे प्रयुक्त होने वाले सार-फासे, पालने-हिंडोले, फूल-बगले के उपयोग मे आने वाले, छतरी-गुम्बज, मेहराबें और बारहदरिया तथा विविध रगों से बनने वाली साझियों के खाके और खिलौने ब्रज सस्कृति के जीवन्त नमूने हैं।

भगवान की सस्कृति वही होती है जो भक्तो की। पुजारी अपनी विधि से ही पूजा करता है। चित्र कलाकार की भावना का ही मूर्त रूप है। इसी प्रकार ब्रज के मदिरों मे पायी जाने वाली यह सांस्कृतिक विरासत कही बाहर से नही आयी वरन् ब्रजवासियो के अपने मन-मानस की ही अद्भुत भावनात्मक लहर है। एक विशेष बात यहा उल्लेखनीय है कि ब्रज की सस्कृति राजाओ की या महलों की सस्कृति नहीं है। वह राजाधिराज, 'एको देव सर्वभूतेषु गूढ़' अर्थात् आनद कद 'कृष्णस्य भगवान स्वय' की लीलामय सौंदर्यबोधिनी

संस्कृति है। भगवान् कृष्ण नृशंस राजाओं का दमन करने वाले तो थे, लेकिन सिंहासन सुलभ होने पर भी कभी राजा नहीं बने। कंस को मारकर मथुरा का राज उग्रसेन को ही दिया। द्वारकापुरी बसाकर वहा राजतंत्र नहीं, गणतंत्र की स्थापना की। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे और बाद में महाभारत में अपनी मत्रणा और पुरुषार्थ से भारत के दुर्दमनीय राजाओं को पाण्डवो से पराजित कराकर भी ब्राह्मणों के चरण धोने वाले और अर्जुन का रथ हांकने वाले ही रहे, स्वय राजा नहीं बने। लोक में परम आसक्ति व्यक्त करने पर भी वह योगिराज ही कहलाए। ब्रज के सर्वस्व बनकर भी वह वापस ब्रज नहीं लौटे। मथुरा को त्यागकर उसकी ओर पलटकर नहीं देखा। पाण्डवों को चक्रवर्ती राज्य दिलाकर भी वह उनकी राजधानी मे नहीं लौटे। जब उनके यादव अपनी यादवी पर उतर आए, तो वह अलग एक पेड़ की छांह में जा बैठे। अनासक्ति का ऐसा उदाहरण ब्रज सस्कृति में ही मिल सकता है, अन्यत्र नहीं। यह ब्रज सस्कृति की ही एक विशेषता है कि वह हमेशा राज, मद और पद से दूर रहती आयी है।

इस वृत्ति के कारण जहां वह अभाव मे भी आत्मानदी रही है, वहा युग-युग से राजनीति द्वारा तिरस्कृत, अपमानित और दलित होते हुए भी उसने अपनी निजता नहीं खोयी। दिल्ली और आगरा की राजधानी के बीच मे बसा हुआ ब्रज-प्रदेश शकों, हूणो, ईरानियों, मुगलों और अग्रेजो द्वारा ही नही, स्वशासन के पिछले सैंतीस वर्षों मे भी दलन और उपेक्षा का ही शिकार रहा है। ब्रज आज भी अभाव-ग्रस्त है। अशिक्षा के अधकार मे डूबा हुआ है। उसकी भाषा, उसका साहित्य, उसकी सस्कृति दिन-पर-दिन नष्ट होती जा रही है। वृन्दावन के मदिर और सुरम्य घाट, मथुरा की ललित कलाएं और मल्ल-विद्या, ब्रज के वन-उपवन, ताल-सरोवर, महल-मदिर, सब पूर्णत उपेक्षित हैं। जब यमुना मथुरा के घाटो से हट जाती है तो मधुपुरी भी नीरस हो जाती है। कला और सस्कृति की बात कौन करे। अभी तक तो यहां बिजली और पानी की व्यवस्था भी ठीक नहीं हुई है। रोजगार का रोना तो सभी जगह का है, लेकिन ब्रज का हाल तो यह है कि बिना धधे पानी के अधिकाश ब्रजवासी या तो भिखारी हैं अथवा लुटेरे। हमारे कथन की सत्यता को जानने के लिए आप चाहें तो उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल विख्यात विधिशास्त्री और गुजराती के मूर्धन्य साहित्यकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी के ग्रथो से उसके प्रमाण प्राप्त कर सकते हैं।

समय की इन विसगतियो और विरोधाभासों मे ब्रज की सस्कृति अभी भी अपने को कायम रखे हुए है। वह बड़े शहरो और कस्बो के पढ़े-लिखे सभ्यो के कारण नही, वरन् ब्रज-जनपद मे बसे हुए सहस्रो गांवो के सूधरे (सीधे-सादे) लोगो के कारण आज भी अक्षुण्ण बनी हुई हैं। इन्हीं को देखकर कवि ने कहा है—

'ब्रज के सहज सूधरे लोग,
गारी दै दै मिलै परस्पर
हृदय न हरष वियोग'

यह हर्ष और वियोग हृदय में न पालने वाली सस्कृति ही गीता की गायक बन सकती है। यहा की गाली भी मधुर है, क्योंकि मूल मे घृणा या कटुता न होकर रस ही होता है। इसीलिए किसी ने कहा है—'देखी स्याम मधुपुरी तिहारी। बोलन्त हेला, बचनन्त गारी।' ब्रजवासी जब बोलते हैं तो ऐसा लगता है कि किसी को पुकार रहे हैं। जब उसके वचन फुरते हैं तो ऐसा लगता है जैसे गालिया निकल रही हैं। यह मित्र-वर्ग तक ही सीमित नहीं है भगवान भी इसके अपवाद नहीं हैं। कृष्ण की भक्ति यहां सखा-रूप मे की जाती है। सखा को सब कुछ कहने का अधिकार है—'खेलन में को काको गुसैया ?' गोपियां भी उद्धव को उपालम्भ देते हुए कहती हैं—'यह मथुरा काजर की कोठरि, जे निकसे ते कारे' और 'तुम कारे सुफलक सुत कारे'। यही नहीं, ब्रज की आज की गोपियां भी अपने लोक-गीतों में कृष्ण को 'हू आपन बारे' कहकर याद करती हैं।

वृन्दावन के एक दूध विक्रेता को हम पच्चीस वर्षों से देख रहे हैं। आज भी वह एक कड़ाह ही दूध उबालता है और सिर्फ एक कूडा दही जमाता है। हाथरस के आधे से अधिक दूकानदार ऐसे हैं, जो सवेरे नौ बजे दूकान खोलते है, दोपहर को दो बजे पर्दा टांगकर सो जाते हैं और शाम को पांच बजे उठकर बगीची-अखाड़े चल देते हैं। ब्रज के साधारण समाज में आज सहस्रो लोग ऐसे हैं जो जीवन की सामान्य आवश्यकताओ को भी प्राप्त करने मे असमर्थ हैं, लेकिन न उन्हे किसी की चाकरी स्वीकार है और न चापलूसी। भजन करते हैं, मदिरो की झांकियो का आनन्द लेते हैं और फटेहाल रहकर भी कहते हैं 'मस्त रहते हैं फटेरो मे गुजर करते हैं'। ब्रज की सस्कृति ने लोगो को अभाव मे भी आनद का जीवन जीना सिखाया है। वे वर्षों दगलों की चर्चा करते हैं, रात-रात स्वाग और भगत देखते हैं। सावन मे रासलीला, क्वार मे रामलीला, मार्गशीर्ष मे श्रीमद्भागवत, फागुन मे होली की चौपाइयो और तानो में व्यस्त रहते हैं। ऐसे ब्रजवासी पतियो को तानें देती हुई भले ही उनकी पत्निया ये गाती रहे कि 'घर मे अनाज न पानी, बजाय रह्यौ हरमुनिया', लेकिन उनकी मस्ती मे फर्क नही पडता।

ब्रज की सस्कृति को हम केवल क्षेत्रीय सस्कृति नही कह सकते। यह भारत की केन्द्रीय सस्कृति है। इसने भारत के धर्म, राजनीति, समाज और ज्ञान-विज्ञान सभी को प्रभावित किया है। ब्रज-महिमा से प्रभावित होकर अकबर ने भी एक दिन माला-तिलक धारण किए थे। इसी से प्रभावित होकर आंध्र के बल्लभाचार्य और बगला से चैतन्य महाप्रभु ब्रज मे खिचे चले आए। मणिपुर मे भी यहा का रास गया है। भारत के पूर्वांचल में अब भी 'ब्रजबुलि' प्रचलित है। दक्षिण हैदराबाद का गोवर्धन मदिर, बगलौर का वृन्दावन गार्डन, पुरी मे जगन्नाथ मदिर मे कृष्ण-बलदेव और सुभद्रा की मूर्तिया, गुजरात की द्वारिकापुरी और हिमालय के श्रीकृष्ण और अर्जुन के नाम पर खडे हुए नर-नारायण के उत्तुग शृग आज भी चतुर्दिक ब्रज-सस्कृति का जय-घोष कर रहे हैं। हमारे सत्तानवे वर्षीय पिताजी कहते है कि सोवियत सघ के ताशकद क्षेत्र मे एक गोवर्धनधारी श्रीनाथजी का मदिर विद्यमान है। आज से पचास वर्ष पूर्व यहा के वैष्णव उनके दर्शन करने जाया करते थे। बाली, सुमात्रा और जावा द्वीपो मे तो पग-पग पर कृष्ण-गाथाए उकेरी हुई है।

भारत की सस्कृति मे जो भी भक्तिमय है, सगीतमय है, चित्रमय है कलामय है, उसमे ब्रज की सस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय जीवन मे और सस्कृति मे जहा भी सगुण, साकार, स्वरूप और सुरूप, ललित और दिव्य भाव पाए जाते हैं, निश्चय जानिए वह ब्रज-वसुधरा की ही देन है। भारत की राजनीति म जहा भी सनई और निष्काम भाव है और अकबर जैसे सम्राटो की सीकरी की रचना मे धर्म के उदात्त भाव की कल्पना है तथा कर्म के प्रति आस्था और फल के प्रति अनासक्ति का सवेग है, वह ब्रज-सस्कृति की महानता का ही परिचायक है। ब्रज की सस्कृति ने कभी राजा को मान्यता नही दी। वह कभी भौतिक सुखो की ओर नही दौडी। उस पर अनेक विदेशियो के आक्रमण हुए, अनेक धर्मों और सस्कृतियो ने उसे नष्ट करना चाहा, वह नष्ट नही हुई। इकबाल का यह शेर कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी' भारत के साथ-साथ ब्रज-प्रदेश और ब्रज की सस्कृति पर भी पूरी तरह लागू है। रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्ण और गुन-आगरी-नागरी राधारानी जिसके रक्षक हो और जो ब्रजवासियो के रोम-रोम और ब्रज के कण-कण मे बसे हुए हो, उसे कौन नष्ट कर सकता है। राजनीति भले ही उसे बिसार दे, लेकिन सूरदास के श्रीकृष्ण कहते हैं—
'ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाही।'

हिन्दी काव्य में ब्रज-वर्णन

रामनिवास शर्मा 'अधीर'

राष्ट्र-भाषा हिन्दी के विकास मे ब्रज भाषा का जो विशिष्ट योगदान रहा है, वह सर्वविदित है। भक्ति-काल के सूत्रपात के साथ ही हिन्दी का उत्कर्ष प्रारम्भ हो गया था। ब्रज भाषा के माध्यम से ब्रजराज आनन्द-कन्द श्रीकृष्ण चन्द्र को लक्ष्य करके जिस काव्य-धारा का उद्‌गम हुआ, उसमे न केवल हिन्दी-क्षेत्र को, वरन समग्र राष्ट्र को ही अपनी ऊर्मियों से आप्लावित कर दिया। एक ऐसा समय आया जब कि ब्रज क्षेत्र सांस्कृतिक गतिविधियो का केन्द्र बना और ब्रजभाषा भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम। ब्रज की निसर्ग-सिद्ध सुषमा ने हिन्दी के कवियों को लुभाया-रिझाया ही नहीं, अपितु सदैव के लिए अपना भक्त बना लिया। कवियो की वाणी मे ब्रज-स्तवन के स्वर निनादित होने लगे। मोक्ष-सोपान-स्वरूपा काशी के वासी भी यह कामना करने लगे—

ब्रज के लता पता मोहि कीजें। (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

उन्हे वृन्दावन-वासी खग-मृगों मे भी मुनियों का स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगा—

धनि ये मुनि बृन्दाबन-बासी।
दरसन हेतु बिहगम ह्वै रहे मूरति मधुर उपासी॥ (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

जिसने एक बार नयन भर कर ब्रज के लोकोत्तर सौन्दर्य के दर्शन कर लिए वह इसके प्रेम-पाश मे ऐसा जकड़ गया कि जन्म-जन्मान्तर के लिए इसी का हो गया। भक्त कवि रसखान तो यहा तक कह गए कि चाहे किसी भी रूप मे उनका पुनर्जन्म हो ब्रज-बसुन्धरा से उनका सम्बन्ध बना रहे —

मानुस हौं तो वही रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन।
जो खग हौं तो बसेरौ करौ, मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥
जो पसु हौं तो कहा बस मेरौ चरौं नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि कौ, जो कियौ हरि छत्र पुरन्दर धारन॥ (रसखान)

और ऐसा क्यों न हो! इस भूमि के कण-कण मे सच्चिदानन्द प्रभु का प्रेम जो समाया हुआ है। इस नेह के नगर मे जो एक बार प्रवेश कर लेता है, वह ज्ञान के गुमान को भूलकर प्रेम का पुजारी बन जाता है। यही दशा तो उद्धव की हुई थी—

गोकुल के गांव की गली मे पगु धारत ही
भूमि के प्रभाव भाव औरै भरिबे लगे।
ज्ञान-मारतण्ड के सुखाये मन मानसकौं
सरस सुहाये घनस्यामु करिबे लगे॥ (रत्नाकर)

और अन्त में ऐसा लगता है जैसे कवि उद्धव के माध्यम से अपनी ही हृदयस्थ भावना को व्यक्त कर रहा है—

छावते कुटीर कहू रम्य जमुना के तीर
गौन रौन रेती सौं कदापि करते नहीं।

होतो चित चाव जौ न रावरे चितावन को
तजि ब्रज गाव इतै पांव धरते नहीं ।। (रत्नाकर)

इस देव-दुर्लभ भूमि के प्रति इन कवियो की आसक्ति क्यों न हो, इनका इष्ट भी तो इस भूमि का भक्त है। श्रीकृष्ण असीम वैभव के बीच रहते हुए भी ब्रज को नहीं भूल पाते—

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाही।

× × ×

यह मथुरा कचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं ।। (सूरदास)

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि उनका और ब्रजवासियो का स्नेह-सम्बन्ध तो नित्य और चिरतन है —

ब्रजवासिन सौं कह्यौ, सबनते ब्रजहित मेरे।
तुमसौं मैं नहिं, दूर रहत हौं सबहिन मेरे ।। (सूरदास)

कृष्ण और ब्रज तो अभेद हैं—एकरूप हैं—

हौं ही ब्रज, वृन्दावन मोहि मे बस सदा। (देव)

इसीलिए हिन्दी कवियो ने भक्ति-विगलित चित्त से ब्रजभूमि की वन्दना की है, उसके कण-कण मे अपार्थिव सौन्दर्य के दर्शन किए हैं। इस सन्दर्भ मे हिन्दी खडी बोली के कवि भी ब्रज भाषा कवियो से पीछे नही रहे हैं। 'प्रिय-प्रवास' के 'पवन-दूतिका' प्रसग से उद्धृत वृन्दावन का यह चित्र देखिए—

थोडा आगे सरस रव का धाम सत्पुष्प वाला।
अच्छे-अच्छे बहु द्रुम लतावान सौन्दर्यशाली।
प्यारा वृन्दाविपिन मन को मुग्धकारी मिलेगा। (हरिऔध)

'हरिऔधजी' ने ब्रज के वन्य सौन्दर्य के साथ-साथ मथुरा के भव्य मन्दिरो का दर्शन भी अपनी कवि-दृष्टि से किया है—

तू होवेगी चकित लख के मेरु से मन्दिरो को।
आभा वाले कलश जिनके दूसरे अंक से हैं।। (हरिऔध)

मुख्य रूप से राम-भक्ति के रसिक तथा खडी बोली के सशक्त रचनाकार स्व राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी गद्गद् भाव से ब्रज की छटा का चित्रण किया है। प्रस्तुत है, ब्रजभाषा के माध्यम से व्यक्त उनकी भावना—

वह वृन्दावन, नन्दगाव, गोकुल, बरसानौ।
जहां स्वर्ग कौ सार अवनितल पै सरसानौ ।।
वे कालिन्दी-कूल कलित कलरव वा जल कौ।
झलकत जा मे स्याम बरस अजहू स्यामल कौ ।।
वे करीर के कुज चीर उरझावन हारे।
रहे आप बलबीर जहां सुरझावन हारे ।।

ठाकुर गोपालशरण सिंह तो अब भी ब्रज मे गोचारण करते हुए श्रीकृष्ण का दर्शन करते हैं—

आते जो यहां हैं ब्रजभूमि की छटा को देख,
नेक न अघाते होते मोद-मद-माते हैं।

जिस ओर जाते उस ओर मन-भाए दृश्य,
लोचन लुभाते और चित्त को चुराते हैं।
पर भर अपने को भूल ही वे जाते सदा,
सुखद अतीत सुधा सिन्धु में समाते हैं।
कान पड़ते हैं उन्हें आज भी कन्हैया यहां,
'मैया-मैया' टेरते हैं, गैया को चराते हैं॥

इसीलिए तो रसिक जन सब सुखों को त्यागकर भी ब्रज-वास के सुख की कामना करते हैं। ब्रज जैसा आनन्द तो स्वर्ग में भी दुर्लभ है।

जो सुख लेत सदा ब्रजवासी।
सो सुख सपनेहु नहिं पावत, जो जन हैं बैकुण्ठ-निवासी॥
ह्यां घर-घर ह्वै रह्यौ खिलौना, जगत कहत जाकौं अविनासी।
नागरिदास विश्वतें न्यारी, लगि गई हाथ, लूट सुखरासी॥ (नागरीदास)

सभी तर्थों में तीर्थराज प्रयाग की महिमा सर्व-विदित है। किन्तु राधा-कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज मे पग-पग पर प्रयाग है। कविवर बिहारी के शब्दो मे—

तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करि अनुराग।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होत प्रयाग॥

भक्त तो मुक्ति को ठुकराकर भी ब्रज वास करना चाहते हैं, भले ही यहा ब्रजवासियो की गालियां और साधु-सन्तों की जूठन ही क्यों न खानी पड़े।

दास नागरि चहत नहिं, सुख मुक्ति आदि अपारि।
सुनहु ब्रजबानी स्रवनु सौं, ब्रजवासिनु की गारि॥ (नागरीदास)

ऐसे बसिए ब्रज के बीथिन।
साधुन के पनवारे चुनि-चुनि उदर पोषिए सीथिन॥ (हरीराम व्यास)

सुकवि लाल बलबीर तो ब्रज की रज बनकर भी ब्रज-वास के स्वप्न को साकार कर लेना चाहते हैं।

जो पै रज-रेनुका बनावौ मन भावौं ये ही,
तो पै पद पकज न सीस पै धराऊ मैं॥

ब्रज-भूमि के पग पखारती यह हिन्दी काव्य-धारा भक्ति-काल से लेकर आज तक सतत प्रवाहमान रही है। आधुनिक कवि श्री दाऊदयाल गुप्त ने भी अपने अनेक काव्यों मे ब्रज का भाव-प्रवण चित्रण किया है। मात्र दो उद्धरण प्रस्तुत है—

पुन्नमई ब्रजमही, दरस लगि सुरऊ तरसैं।
सो बड़भागी मनुज, ताहि मस्तक धरि परसैं॥ (दाऊदयाल गुप्त : स्याम संदेसौ)

ललचावत हैं सुर अच्छ सबै
तब मानव की कहु काहु चलाई।
बिधि की उरही चाह यह बनी
मोह जन्म मिलै ब्रज में सुखदायी॥ (दाऊदयाल गुप्त : केशव)

हिन्दी के कवियों ने ब्रज के अनिन्द्य सौन्दर्य और उसके लोकोत्तर महात्म्य का तो वर्णन किया ही है,

उसकी वर्तमान दुर्दशा भी उनकी दृष्टि का अविषय नहीं रही है। इसी सन्दर्भ में महाकवि 'हरिऔध' की कुछ पंक्तियां उद्धृत करते हुए मैं अपनी लेखनी को विश्राम दे रहा हू—

कथन मे अब शक्ति न शेष है,
विनय करता हू बन दीन मैं।
ब्रज-विभूषण आ निज नेत्र से,
दुख-दशा निरखें ब्रज-भूमि की।।
सलिल पावन से जिस भूमि का,
सदय होकर रक्षण था किया।
अहह, आज वही ब्रज की धरा,
नयन - नीर - प्रवाह - निमग्न है।।

ब्रज में राष्ट्रीय चेतना

देवकीनन्दन विभव

□□

'ब्रज' का सही अर्थ कम लोग जानते हैं। उसका अर्थ है चलना, आगे बढ़ना। गीता मे कृष्ण ने भी ब्रज शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे किया है। 'मामेक शरणा ब्रज' अर्थात मेरे एक के शरण मे आगे बढो। परिव्राजक जो चलता ही रहे, उसके मूल मे भी 'ब्रज' शब्द है, वह ब्रज से ही बना है। भगवान महावीर की 'प्रवज्या' भी ब्रज धातु से बनी है उसका अर्थ है चलना, एक ऐसी यात्रा पर, जो बाहर की ओर नही, भीतर की ओर जाती है, सम्पूर्ण चेतना अत रूपान्तरण 'प्रवज्या' एक क्रान्ति है। क्रान्ति का अर्थ भी वही है, 'क्रमरण' कर जाना, यानी उस पार जाना। वेदो मे भी कहा है, ' चरैवेति चरैवेति।" चलते चलो, चलत चलो। चलना जीवन है, रुकना मृत्यु। पानी रुका और सडाध पैदा हुई। चेतना के बिना चलना नही होता। चेतना ही हमे आगे चलाती है। चेतना और ब्रज यानी चलना, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

मैं ब्रज मे पैदा हुआ, इस शताब्दी के प्रारम्भ मे ही। हम इस शताब्दी को राष्ट्रीय चेतना की शताब्दी कह सकते हैं। सारे ससार मे परिवर्तन की आधी चल पडी थी—नई चेतना, नया जीवन, नया उत्साह। फिर ऐसे समय चलने वाला 'ब्रज', चेतना का आदि स्थान कैसे चुप रह सकता था? उस समय गांधी-युग का प्रारम्भ नही हुआ था, 'तिलक-युग' था। ऐनी बेसेण्ट द्वारा स्थापित 'होमरूल' लीग का जोर था। तिलक का उद्घोष

"स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है" और "उसे हम लेकर रहेंगे" सुनाई पड़ने लगा था। आगरा में बरसात में यमुना मे तैराकी का मेला लगता था, तैराको की टोलियां दूर-दूर से यमुना मे तैरकर आती थी। उस समय कुछ सजी हुई नौकाए निकलती थीं। उनमे एक नौका झडियों और कपडो से सजी रहती। झडियों पर लिखा रहता था "स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है," फिर टोली बनाकर डण्डे खेलते हुए लोग निकलते थे, जिनमें मिया नजीर की कुछ लोकोक्तियो के साथ ही "स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है," के नारे लगाए जाते थे। हम स्वराज्य का पूरा अर्थ तो नहीं समझते थे, पर उत्साह से उसमे भाग लेते और बढ़-बढ़कर नारे लगाते थे।

लोकमान्य तिलक का स्वर्गवास हो गया। तिलक-युग के बाद गांधी-युग आया। अब स्वराज्य कुछ पढ़े-लिखे लोगो की बात ही नही थी, अब वह सर्व-साधारण मे प्रवेश कर रहा था। स्वराज्य के साथ खिलाफत का आन्दोलन भी आया और आया स्वदेशी का प्रचार और विदेशी कपडे की होली। लोगों ने खादी पहनना शुरू किया, चर्खा चलाना सीखा, सम्पन्नता मे पला हुआ नेहरू-परिवार भी चर्खा चलाने लगा। विदेशी कपड़े की होली ब्रज मे जगह-जगह होती थी। मैं उसमे उत्साह से भाग लेता था। सन् १९१९ मे अमृतसर में जलियांवाला हत्याकाण्ड हुआ और 'ब्रज' मे उसकी चिनगारियां पूरी तरह फैल गयी। सन् १९२१ में गाधी का असहयोग आन्दोलन ब्रज मे पूरी तरह छा गया। मथुरा में हकीम ब्रजलाल, केदारनाथ भार्गव और आगरा मे डा लक्ष्मी दत्त, खानबहादुर आलेनबी, सेठ अचल सिंह, प कालीचरन तिवारी, चौबे जयगोपाल, जगन्नाथ भाई आदि के नेतृत्व मे आन्दोलन ने अग्ररूप धारण कर लिया। ब्रज मे सैकडो लोगों ने जेल-यात्रा की। प श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल आगरा मे ही पढ़े थे, पर काम शुरू किया गणेशशकर विद्यार्थी के साथ कानपुर मे।

गाधीजी का अहिंसात्मक युद्ध एक नई विचारधारा थी। वह गांवों और देहातो तक मे फैल गई थी, पर इस समय क्रान्तिकारी युवक भी चुप नहीं थे। मैनपुरी षड्यन्त्र केस मे गेंदालाल दीक्षित, चन्द्रधर जौहरी आदि युवक गिरफ्तार किये गए। चन्द्रशेखर आजाद और सरदार भगतसिंह और उनके साथी भी इस क्षेत्र मे सक्रिय थे और आगरा मे नूरी दरवाजे मे उन्होंने एक मकान मे अपना केन्द्र बना लिया था। यद्यपि उनकी गतिविधिया सीमित और गुप्त थी, परन्तु सारे देश की भावनाए उनके साथ थी। कही-कही दोनो तरह के कार्यकर्ता एक-दूसरे से मिलकर काम करते थे।

सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन मे महिलाए भी बडी सख्या मे आगे आईं। उनका नेतृत्व माता पार्वतीदेवी, विद्यावती राठौर, विद्याधरी जौहरी आदि करती थी। विदेशी कपडे के बायकाट मे इन महिलाओं ने अच्छा काम किया। मेरी पत्नी चन्द्रावती भी इसमे भाग लेती थी। वह सन् १९४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह मे महात्मा गांधी की स्वीकृति से जेल गयी, वहा बीमार हुई और सन् १९४२ मे उसका देहान्त हो गया। पं मोतीलाल नेहरू के आदेश से आगरा मण्डल मे जो ब्रज मे ही हैं, विदेशी कपडे के बायकाट का काम मैंने अपने हाथ मे लिया और महिलाओं तथा दूसरे स्वयसेवको की सहायता से आगरा, हाथरस, अलीगढ़, मथुरा आदि स्थानो मे विदेशी कपड़े का आना ही बद नहीं कर दिया गया, अपितु लाखो रुपये का विदेशी कपड़ा सील कर दिया गया।

महिला शिविर के अतिरिक्त बच्चो ने भी बडा काम किया। उनकी बाल सभाए बड़ी सक्रिय थीं और देशद्रोही उनके 'टोडी बच्चा हाय-हाय' से बहुत घबराते थे। इन बाल-सभाओ मे सैकड़ो बच्चे काम करते थे और झण्डे लेकर इकट्ठे हो जाते थे।

मैं सन् १९२२ में अपनी शिक्षा समाप्त कर प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन मे आ गया था। प्रेम महा-

विद्यालय राजा महेन्द्रप्रताप के दान से वृन्दावन मे खुला था और ब्रज-क्षेत्र मे राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र बन गया था। उस समय हिन्दी मे बहुत कम पत्र निकलते थे और इस क्षेत्र का उस समय एकमात्र राष्ट्रीय पत्र 'प्रेम' था। मैं उसका सम्पादक बनाया गया था। प्रेम महाविद्यालय मे उस समय डा सम्पूर्णानन्द, आचार्य जुगल किशोर, आचार्य गिडवानी जैसे लोग युवको मे राष्ट्राय शिक्षा का काम करते थे। कभी-कभी वहां स्वामी श्रद्धानन्द, भाई भवानीदयाल सन्यासी, सरोजनी नायडू, श्री चिन्तामणि जैसे मनीषी भी आते थे, उनसे मेरा अच्छा परिचय हो गया था। उस समय के मथुरा के कलैक्टर मि फ्रीमेण्टल से अच्छी नोक-झोंक रहती थी। वह मेरे लेखो का उत्तर 'अमन सभा' के अखबार मे देते रहते थे।

गाधीजी इस क्षेत्र मे दो-तीन बार आये, जवाहरलाल नेहरू तो बहुत बार आये। एक बार गांधीजी दादा कृपालानी के साथ जमुना पार के एक भवन मे १३ दिन ठहरे। इससे इस क्षेत्र को एक नया जीवन प्राप्त हुआ।

सन् १९४१ और १९४२ के 'करो या मरो' आन्दोलन भी ब्रज मे बडे सफल रहे। कहा जाय तो उत्तर प्रदेश मे उसने अग्रणी स्थान प्राप्त किया। हजारो व्यक्तियो ने जेलयात्रा की। सन् १९४१ से १९४५ तक आगरा का केन्द्रीय कारागार प्रदेश के मुख्य सत्याग्रहियो का केन्द्र बन गया। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त, आचाय ध्रुवेकर, आचार्य केसकर, आदि मेरे साथ आगरा केन्द्रीय कारागार मे महीनो रहे। उस समय साहित्य-चर्चा और कवि-गोष्ठी की भी अच्छी धूम रहती थी। इससे पहले राजर्षि श्री पुरुषोत्तम दास टडन के साथ गोडा जेल मे ही एक बैरक मे महीनो साथ रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हो चुका था।

आज उन दिनो की याद करता हू तो एक धक्का-सा लगता है। उस समय मैं पारिवारिक समस्याओ से घिरा हुआ था, पर उस समय जो सुख और उत्साह मिला, वह आगे चलकर उत्तर प्रदेश सरकार मे मत्री हो जाने पर भी नही मिला। वह आनन्द कुछ और ही था।

मथुरा जनपद के पत्र और पत्रकार

(ज्यो) राधेश्याम द्विवेदी

□□

मथुरा जनपद से प्रकाशित होने वाला सर्वप्रथम पत्र 'भारतेन्दु' था। सन् १८८४ में श्री राधाचरणजी गोस्वामी ने इसको वृन्दावन से निकाला था। इसके बाद गुजराती ब्राह्मणो के संगठन के उद्देश्य से सन् १८८८ के लगभग श्री गगाराम जी पड्या ने 'गुर्जर समाचार' एव पुन गुर्जर हितकारी पत्रिका निकाली। सन् १८९५ मे प सुन्दर देव शर्मा ज्योतिर्विद ने 'विश्वकर्मा' अद्वितीय मासिक पत्र विश्वकर्मा प्रेस, मथुरा से प्रकाशित

किया। इस पत्र का उद्देश्य अपने ग्राहकों को सर्वगुण सम्पन्न बनाना था। सचमुच इसके द्वारा ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में सम्पादक ने अपनी दक्षता का अच्छा परिचय दिया।

सांस्कृतिक प्रबुद्धता और सनातन धर्म के गूढ़ रहस्यो को उद्घाटित करने की दृष्टि से सन् १८६८ मे भारत धर्म महामण्डल के तत्वावधान में निगमागम मंडली द्वारा 'निगमागम चन्द्रिका' द्विमासिक का प्रवर्तन हुआ। प ठाकुर प्रसाद शर्मा इसके व्यवस्थापक एव ज्यो बाबा श्री माधवलालजी सरक्षक थे। इस क्षेत्र मे सस्कृत भाषा में दूसरा महत्वपूर्ण पत्र 'सदर्म' मासिक सन् १६०७ मे विद्वन्मण्डल द्वारा प्रकाशित हुआ जिसके सम्पादक श्री वामनाचार्यजी शास्त्री थे। वेद-वेदांग, स्मृति, तन्त्र-दर्शन और समाज आदि सभी क्षेत्रो मे इसने सस्कृत मे विचार प्रस्तुत किए। ज्यो श्री शिवप्रकाशजी, गो लक्ष्मणाचार्यजी भट्ट, श्री बलभद्रजी शर्मा श्री भागवत श्यामाचार्यजी, पड्या अमृत रामजी आदि अनेक विद्वज्जनो ने इसके स्तम्भो को सम्भाला था। पत्र का उद्देश्य मुखपृष्ठ पर अंकित इन पक्तियो मे स्पष्ट है।

आम्नाय प्रभृति गिरा विविच्यमान सग्रहा सदसि सतां समादरेषु। स्वा ज्मपात्सपदि कृताय यत्सम स्तात् सद्वर्म स्फुटवुन्तराम शोभ ॥

राष्ट्रीय जागरण सदेश को लेकर राजा महेन्द्र प्रताप (आर्या पेशवा) ने साप्ताहिक 'प्रेम' पत्र का प्रवर्तन सन् १६०७ मे किया। हकीम ब्रजलाल वर्मन के द्वारा सम्पादित 'ब्रजवासी' साप्ताहिक का उदय सन् १६१६ मे हुआ जो ४५ वर्षों तक चलता रहा। बाद मे कुछ दिनो श्री विजय कुमार अरोडा ने भी इसका सम्पादन किया। इस क्षेत्र मे डाक्टर विश्वपाल शर्मा द्वारा सम्पादित 'सावधान' और डा मणीलाल गुप्ता द्वारा सम्पादित 'प्रकाश' श्री रामजी दासजी गुप्ता द्वारा 'मथुरा मच' साप्ताहिक भी उल्लेखनीय है।

इसी बीच श्री नारायण प्रसाद सिन्हा ने 'आनन्द प्रचारक' साप्ताहिक (जो बाद मे मथुरा गजट के रूप मे परिवर्तित हुआ) और प शकर लाल शर्मा ने 'हितकारी' निकाला।

जन जागृति, राष्ट्रीय आन्दोलन, सगठन एव विविध विचारधाराओं के प्रचार-प्रसार के लिए यहा अनेक पत्र प्रकाशित हुए। राजा महेन्द्र प्रताप ने विश्व बधुत्व के आदर्श को लेकर सन् १६२६ मे 'ससार सघ' उर्दू मे 'इत्तहाद दुनिया' एव अग्रेजी 'वर्ल्ड फैडरेशन' की स्थापना की। गोरक्षा आंदोलन के लिए ज्यो राधेश्याम द्विवेदी ने 'राष्ट्र लक्ष्मी' साप्ताहिक का सम्पादन व प्रकाशन किया। सन् १६३८ से १६४० तक मथुरा पच श्री रामजीदास गुप्त ने सम्पादन किया। श्री शान्तिचरण पिण्डारा द्वारा 'हलचल', वैद्य कृष्णदास द्वारा 'ब्रजवासी', श्री श्यामलाल अग्रवाल द्वारा 'जन सेवक', डा शिवशकर उपाध्याय द्वारा 'नया ससार', सुरेन्द्र सिंह राघव द्वारा 'सिंहनाद', श्री दाऊदयाल ब्रजेश द्वारा 'देवदूत', डा कृष्णचन्द्र पाठक द्वारा 'मजदूर', श्री दाऊदयाल गुप्त द्वारा 'पोल' और श्री प्रभुदयाल मीतल द्वारा 'आदर्श हिन्दू' का सूत्रपात विविध विचारो और आंदोलनों के रंगमच पर हुआ। 'सिंहनाद' श्री सुरेन्द्रसिंहजी राघव के सम्पादन मे निकला।

जनसघ विचारधारा के प्रचार के लिए सर्व श्री शरण बिहारी गोस्वामी, मथुरानाथ चतुर्वेदी एव बांके बिहारी माहेश्वरी ने 'देववाणी' साप्ताहिक निकाला जिसे बाद मे श्री देवीचरन शर्मा निकालते रहे।

साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एव राजनीतिक उद्बोध के लिए ज्यो राधेश्याम द्विवेदी ने सन् १६४२ से १६५८ तक 'जनार्दन' साप्ताहिक का सम्पादन और प्रकाशन किया। इसी सदर्भ मे श्री कामेश्वरनाथ जी द्वारा सम्पादित 'प्रभाकर' एव श्री बैजनाथ दानी और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी द्वारा सम्पादित 'देशबन्धु' भी उल्लेखनीय है।

मासिक आध्यात्मिक चेतना की दृष्टि से तो ब्रज का स्थान मूर्धन्य है ही। उसके अनुरूप ही यहां सन् १६३२ में 'प्रेम मासिक' नामक पारमार्थिक पत्र श्री वृन्दावन भजनाश्रम से प्रकाशित हुआ। सम्पादन आचार्य

श्री बालकृष्ण गोस्वामी एव श्री इन्द्र ब्रह्मचारी ने किया। इसके श्रीमद् भागवतांक आदि बडे सुन्दर हैं। इसके बाद 'नाम माहात्म्य' श्री दान बिहारी लाल शर्मा ने सम्पादित किया। सन् १९४३ से निंबार्क सम्प्रदाय का 'श्री सर्वेश्वर' मासिक प्रकाशित हो रहा है। इसमे भी प्रतिवर्ष बडे पठनीय और मननीय विशेषांक निकले हैं। आचार्य श्रीराम शर्माजी ने सन् १९३९ से 'अखण्ड ज्योति' का सम्पादन व प्रकाशन किया जो अब भी निकल रही है।

वल्लभ सम्प्रदाय के क्षेत्र मे श्री द्वारिकादास पारीख की 'वल्लभीय सुधा' का स्थान अप्रतिम है। सम्प्रदाय के गूढ सिद्धान्तो और साहित्य के मूल्याकन की दृष्टि से अनुसधान के क्षेत्र मे इसको प्रामाणिकता मिलना इसी बात का सकेत है। इसी क्षेत्र मे गोस्वामी ब्रजरमण लालजी महाराज ने सन् १९५९ में 'श्रीमद वल्लभ प्रकाश' द्वैमासिक की स्थापना की। इसके सम्पादन विभाग मे भी पडितेन्द्र बिहारीलाल शास्त्री, श्री गोपालचन्द्र शास्त्री एव श्री राजेन्द्र रजन थे। इसके श्री 'ब्रज यात्रांक' एव 'ब्रज गौरवांक' द्रष्टव्य हैं। गौडीय सम्प्रदाय की भागवत पत्रिका मासिक का प्रकाशन भी त्रिदडी स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदानन्द नारायण महाराज के सम्पादकत्व मे हुआ। सन् १९६४ मे श्रीकृष्ण जन्म स्थान सेवा सघ से श्री प देवधर शास्त्री ने 'श्रीकृष्ण सन्देश' का प्रकाशन किया जो बडी सजधज के साथ मासिक रूप मे प्रकाशित हो रहा है। वर्तमान सम्पादक श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र' हैं। अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज की 'चिन्तामणि' मानव सेवा सघ का 'जीवन दर्शन' तथा साधना प्रेस के साधन की भी इस क्षेत्र मे विशेष उपलब्धि है जो देश-विदेश मे लोकप्रिय है।

वैदिक व आर्य समाजी सिद्धान्तो का मासिक पत्र 'तपोभूमि' सन् १९४५ ई मे श्री ईश्वरीय प्रसाद प्रेम ने निकाला जिसका सम्पादन निरतर चल रहा है। 'श्री हरिनाम' सन् १९७१ से श्यामलालजी के सम्पादन मे निकला। हित सौरभ' सन् १९६८ मे श्री हित जीवन गोस्वामी द्वारा निकला। हाल ही मे वृन्दावन टाइम्स, सम्पादक श्यामनारायन तथा अन्य कई पत्र और निकले हैं। बाल पताका, सम्पादक रमेशचन्द्र शर्मा, लोक सेवक मच पाक्षिक, स ब्रजेन्द्र केशोरैया सर्वोदयी गाधीजो के सिद्धान्त का वैचारिक पत्र है।

साहित्य के क्षेत्र मे भी यहा से अनेक पत्रिकाए निकली। सन् १९४० मे प जवाहरलाल चतुर्वेदी के सम्पादकत्व मे अ भा ब्रज साहित्य मण्डल की मुख्य पत्रिका ब्रज भारती' का श्रीगणेश हुआ। पुन सर्वश्री सत्येन्द्रजी, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, वियोगी हरि, डा गुलाबराय, ज्यो राधेश्याम द्विवेदी, कृष्णदत्त वाजपेयी, बाबूराम पालीवाल, प्रभुदयाल मीतल, वृन्दावन दास, डा सरन बिहारी गोस्वामी आदि विविध विद्वानो द्वारा सम्पादित होकर यहा विद्वज्जनो की पठनीय पत्रिका बनी। वास्तव मे ब्रजभाषा साहित्य के अनुसधान, मौलिक सृजन एव जनपद आदोलनो की दृष्टि से इसका एक-एक अक सग्रहणीय रहा।

इसी दिशा मे भारती अनुसधान भवन से ज्यो राधेश्याम द्विवेदी के सम्पादकत्व मे 'ज्ञानदा' का प्रवर्तन हुआ। इसके सभी अक अनेक विद्वानो के मननीय विचारो और रचनाओ मे अलकृत हैं। ब्रजभाषा की पत्रिका 'ब्रजवानी' त्रैमासिक का एक वर्ष श्री विटठल शर्मा चतुर्वेदी न सम्पादन किया। वृन्दावन के हित सौरभ के सम्पादक नवनीतलाल गोस्वामी श्री हरिनाम के सम्पादक श्री श्यामलाल हकीम हैं। हास्यरस के क्षेत्र मे डा बरसाने लाल चतुर्वेदी ने 'जोकर' मासिक निकाला। ज्ञान-विज्ञान के लिए श्रीमती स्व राज्यलता गोयल ने 'न्यू स्टोप' तथा जगदीशचन्द्र गोयल न 'अखड विजय ज्योति' मासिक पत्रिका प्रकाशित की।

सगीत की दिशा मे आनन्द नाद मन्दिर के माध्यम से सन् १९५७ मे स्वामी डी आर पार्वतीकर ने 'नाद सुधा पत्रिका' निकाली। हरिदास सगीत समारोह के स्मृति रूप मे श्री के एस जैन द्वारा प्रकाशित वार्षिक स्मारिका साहित्य और सगीत दोनो क्षेत्रो मे समान महत्व रखती है। व्यापार समृद्धि के लिए श्री शर्मनलाल अग्रवाल ने 'व्यापार पत्रिका' एव सवर्द्धन के लक्ष्य से डा बी के अग्रवाल ने एक पत्रिका निकाली।

उ प्र. शिक्षक संघ का मुख पत्र 'शिक्षक' श्री श्याम बिहारी अग्रवाल के सम्पादकत्व मे श्री जगदीश शरण अग्रवाल ने प्रकाशित किया। हिन्दी प्रचार सभा का पत्र हि प्र स डा त्रिलोकीनाथ 'ब्रजवाल' द्वारा सम्पादित हुआ। और अतिरेक डा सुरेश पाण्डेय द्वारा सम्पादित हुआ। सन् १९६४ से शिक्षा जगत मे श्री राधेश्याम अग्रवाल 'शिक्षक ससार' प्रकाशित कर रहे हैं। पचायत राज के प्रचार के लिए हीरालाल आजाद ने 'पचवाणी', समाजवादी विचारधारा के लिए ओमप्रकाश तोमर ने 'ब्रज समाज' एव सहकारिता के क्षेत्र मे श्री रघुराज सिंह सिसौदिया के सम्पादकत्व में 'ब्रज सहकारिता' निकली।

कांग्रेस सगठन के लिए श्री रमेशचन्द्र गर्ग ने 'ब्रज मडल' निकाला। अन्य साप्ताहिको मे दाऊदयाल गुप्त के 'ब्रज केसरी', मोहन स्वरूप भाटिया का 'नई लहर' एव 'ब्रज दर्शन' श्री सुरेशचन्द्र भार्गव के 'उत्थान पतन' को भी विशेष लोकप्रियता मिली। इसके अतिरिक्त 'ब्रज दीप' स दाऊदयाल ब्रजेश, 'नयी उमग' स रामस्वरूप वशिष्ठ, 'हिलोर' स कला प्रकाश मित्र, 'चलो देहात' स जयती प्रसाद, 'सादाबाद ठाकुर' सम्पादक श्री एम पी शर्मा, 'ब्रज प्रदेश' एव 'सदमार्ग' स दाऊदयाल भारद्वाज, 'जगत टाइम्स' स श्री मुरारीलाल अग्रवाल, 'जमना टाइम्स' स प्रयागनाथ पत्रकार, 'मथुरा उजाला' स ब्रजेश, 'सेवा सन्देश' (साप्ताहिक) सम्पादक गिर्राज किशोर भार्गव, 'युग मण्डल' सम्पादक महेन्द्र भृग, 'विक्रमादित्य' स मोहन लाल प्रेमी, 'मनसुखा' स मोहन कुमार माहेश्वरी, 'ब्रज शक्ति' स दिनेश कुलश्रेष्ठ, 'ब्रज ज्योति' स पी एल चतुर्वेदी, ब्रजज्वाला स निरंजन प्रसाद धुरन्धर, 'ब्रज समाज' स श्री ओमप्रकाश तोमर, 'शिक्षा प्रसार' स श्री कालीचरन अग्रवाल, 'अधेरा उजाला' स श्री गोपाल रावत, 'गरीब भारत' स स्याम बिहारी द्विवेदी राया, 'दिव्य दर्शन' स देवीदास देव, 'गुरुवाणी' स डी के एस आजाद, 'वृत्तात' स प्राणनाथ अवस्थी 'ब्रज वानी' सम्पादक वैद्य कृष्ण दास, 'ब्रज वसुन्धरा' सम्पादक लाखाराम लवानिया, 'ब्रज सैनिक' सम्पादक नरेन्द्र मित्र, 'लोक वाद' सम्पादक श्री राधा रमण शर्मा, 'समाचिन' सम्पादक महावीर सिंह आर्य, 'फजिते खोर' सम्पादक रमेशचन्द्र शर्मा, 'ब्रज लोक' सम्पादक कैलाश नाथ दुबे के ये पत्र भी समय-समय पर प्रकाशित हुए तथा कुछ निकल भी रहे हैं।

मथुरा के पत्र साहित्य को यहा के जातीय पत्रो ने भी समृद्ध बनाया। 'गुर्जर हितकारी' के अतिरिक्त गुजराती ब्राह्मणो का एक और मासिक पत्र औदीच्य बन्धु भी प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक ज्यो राधेश्याम द्विवेदी थे—यह सन् १९२९ से लेकर १९४८ तक निकला। सन् १९३२ मे स्व नारायणदत्त पाठक ने चतुर्वेदी समाज की शैक्षिक उन्नति और समाज सुधार एव माथुर सस्कृति की सरक्षा के लिए 'माथुर हितैषी' निकाला। जो श्री भगवानदत्त चतुर्वेदी के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हुआ। सन् १९३७ से युगल किशोर चतुर्वेदी ने 'जागृति' भी सम्पादित की थी। प्रो जीवनलाल चतुर्वेदी का 'माथुर प्रदीप' भी इसी उद्देश्य से निकाला। गौड समाज के लिए श्री प्यारेलाल गौड ने 'गौड हितकारी' प्रकाशित किया। अग्रवाल जाति के सगठन के लिए 'अग्रनीति' और 'अनुकम्पा' भी प्रकाशित होते हैं। 'खण्डेलवाल बन्धु' मासिक श्री गिर्राजशरण खण्डेलवाल के सम्पादन मे निकल रहा है। तथा खण्डेलवाल ज्योति के सम्पादक सूरजभानजी खण्डेलवाल आर्य वैदिक धर्म के प्रचाराथ तपोभूमि श्री ईश्वरी प्रसादजी प्रेम द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित हो रहा है।

जनपद के विभिन्न विद्यालय भी अपनी उल्लेखनीय वार्षिक पत्रिकाए निकालते रहे हैं। किशोरी रमण इण्टर कालेज की 'भारती', माथुर चतुर्वेद सस्कृत महाविद्यालय से प्रकाशित एव प पुरुषोत्तम शर्माजी द्वारा सम्पादित पत्रिका भी महत्वपूर्ण है। किशोरी रमण कालेज पत्रिका, बी एस ए कालेज से ऋतम्भरा, चमेली देवी खण्डेलवाल से वसुन्धरा, चम्पा अग्रवाल से ज्योति, बी एन पोद्दार से मेधा, राजकीय इण्टर कालेज से प्रभात, कलैक्सी से कौमुदी, जवाहर से जवाहर ज्योति, सुभाष से ज्योति हस्ता, पी एम बी.

पालिटेकनीक जनरल से प्रकाश महत्वपूर्ण हैं। हाल ही में श्री ब्रजेन्द्रजी कैसोरिया द्वारा सम्पादित और प्रकाशित लोक सेवक पाक्षिक पठनीय सामग्री युक्त निकलने लगा है। आन्तरिक खगोल विज्ञान के सम्पादक नटवर नागर हैं। मानस गगा के सम्पादक महेश पाठक हैं। ब्रज गरिमा श्री विनोद चूरामणि के सम्पादकत्व मे, वृन्दावन से वृन्दावन टाइम्स श्याम प्रकाशजी के सम्पादन मे निकला। दिवाकर सन्देश के सम्पादक श्री गोपाल कृष्ण शर्मा हैं। 'निराला परशुराम' श्री बद्री प्रसाद निराला के सम्पादकत्व में, 'समाचार दर्पण', श्री मनोज शर्मा के सम्पादकत्व मे, 'हनुमान शक्ति', श्रीकादरी प्रसादजी के सम्पादकत्व में, 'मानव लोक' गौरी शकरजी के सम्पादकत्व मे, 'मथुरा गजट', राजेश शर्मा के सम्पादकत्व मे, 'सजय नीति', पूरन सिंह के सम्पादकत्व में 'कृष्णा भूमि', श्री राम गोपाल चौधरी के सम्पादकत्व मे, जैन सन्देश के सम्पादक श्री कैलाश चन्द्र जैन, भारत भक्त की सम्पादिका श्रीमती कुसुम लता शर्मा, भिडन्त के सम्पादक श्री दरियाव सिंह, वेद सूर्य के श्री महावीर सिंह आर्य, वाल्मीकि मार्ग के श्री धनीराम वाल्मीकि, अपने काटे के श्री रवीन्द्र अग्रवाल, शिव आदेश के श्री उमाशकर शर्मा, ब्रज ज्वाला के श्री निरजन प्रसाद धुरन्धर, सतयुगी भारत के श्री अशोक कुमार, बिलेवर के प गोपाल प्रसाद शर्मा, ब्रज का रखवाला के श्री सुरेन्द्र शर्मा, मथुरा लीडर के श्री मोहन सिंह निर्भय, उभरते आकडे के श्री राम शर्मा, समय वाणी के राधेश्याम भारद्वाज, प्रताप युग के कु प्रताप सिंह, उभरती लहरें के श्री नरेन्द्र कुमार रावत, स्वतन्त्र उद्गार के श्री राधा वल्लभ शर्मा, रग बिरगा भारत के श्री विनोद कुमार रावत, भौम आदेश श्री तेजपाल आजाद के सम्पादकत्व मे साप्ताहिक निकल रहे हैं। पाक्षिक पत्रो मे जे पी की याद स श्री द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी, ब्रज की रथ यात्रा स श्री सुरेन्द्र शर्मा, मथुरा केशरी स अशोक कुमार केशरी, निकल रहे हैं। मासिक पत्रो मे, प्रज्ञा अभिमान—माता भगवती देवी, ब्रज निर्देशिका—चरन सिंह जादौन, शिक्षा प्रसार—श्री काली चरन अग्रवाल, विकास डाइजेस्ट—श्री मुक्तेश्वर कुमार, त्रिमूर्ति—श्री वेद प्रकाश, अग्रनीति—श्री देवदत्त दुबे, 'आचमन'—श्री जय वल्लभ मिश्र के सपादन में निकल रहे हैं।

इन पत्रो के अतिरिक्त मथुरा मे कुछ पत्रो के सवाददाता पत्रकार सज्जन भी हैं, जिनके नाम हैं श्री अखिलेश शर्मा, श्री आनन्द मोहन वाजपेयी, श्री ललित मोहन वाजपेयी, श्री नरेन्द्रजी, श्री दाऊदयालजी शर्मा, ब्रजेश, श्री मोहन स्वरूपजी भाटिया, श्री मुरारी लालजी चतुर्वेदी, श्री कैलाश नाथजी चतुर्वेदी, श्री प्रयाग नाथजी चतुर्वेदी, श्री माता प्रसादजी, श्री आनन्द कुमार शर्मा। इस प्रकार अपनी जानकारी के अनुसार मथुरा जनपद के पत्र व पत्रकारो की जानकारी इस लेख मे दी गई है। यदि किसी पत्रकार का नाम रह गया हो तो वे क्षमा करेंगे।
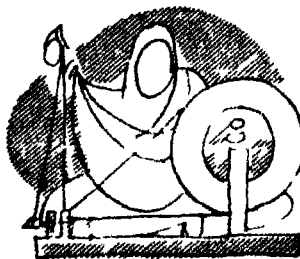
यशपालजी का जन्म जैन परिवार में हुआ है। वह जैन धर्म के प्रति गहरी आस्था रखते हैं, विशेषकर अहिंसा और अनेकान्त को तो वह बहुत ही महत्त्व देते हैं। उनकी मान्यता है कि जैनधर्म के इन सिद्धान्तों से जैन समाज या भारत की ही नहीं, सारे संसार की जटिल-से-जटिल समस्याएं भी हल हो सकती हैं।

इस खण्ड में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि की जानकारी देने वाली रचनाएं संगृहीत की गई हैं।

जैन-संस्कृति

जैनधर्म

फूलचन्द्र शास्त्री

□□

जिसे लोक मे जैनधर्म के नाम से अभिहित किया जाता है वह अपने स्वावलम्बन प्रधान दर्शन का धनी होने के कारण व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की प्राण प्रतिष्ठा करने वाला लोकोत्तर धर्म है। उसके अनुसार लोक मे जड और चेतन जितने भी (अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने वाले) पदार्थ हैं, वे सब अपने अन्वयी स्वभाव के कारण ध्रुव होकर भी अपने व्यतिरेकी स्वभाव के कारण स्वय अपनी पर्यायो के कर्ता होकर विवक्षित पर्याय से पर्यायान्तर रूप जीवन मे प्रवाहित होते रहते हैं। यह उनका अपना जीवन है। इसमे अन्य किसी का हस्तक्षेप नही है।

जैसा कि आगम से ज्ञात होता है, द्रव्य छह हैं। उनके नाम हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। सख्या की दृष्टि से जीव अनन्त हैं। पुद्गल उनसे अनन्त गुण है। पुद्गलो का मूल रूप परमाणु है। इस द्रव्य की गणना मे मुख्य रूप से परमाणु ही विवक्षित हैं। धर्म, अधर्म और आकाश ये प्रत्येक एक-एक हैं तथा काल द्रव्य अणु रूप होकर असख्यात हैं।

इन छह द्रव्यों मे जो आकाश द्रव्य है, उसके ठीक मध्य में लोकाकाश है, इस कारण आकाश द्रव्य दो भागों मे विभक्त हो गया है—लोकाकाश और अलोकाकाश। जो आकाश शेष पाच द्रव्यो का आधार है, वह लोकाकाश है तथा शेष अलोकाकाश है।

प्रश्न यह है कि जब प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने जीवन प्रवाह मे परनिरपेक्ष है तब यह जीव नामक पदार्थ अन्य के निमित्त से परतन्त्रता को स्वीकार कर क्यो तो पराधीन बनता है और पुद्गल भी परमाणु रूप अपने मूल स्वभाव को छोडकर क्यो स्वतन्त्र अवस्था धारण करता रहता है?

प्रश्न हृदयंगम करने योग्य है। समाधान यह है कि पुद्गल का तो ऐसा स्वभाव ही है। वह चाहे स्कध अवस्था में रहे और चाहे परमाणु अवस्था मे रहे, चाहे उसकी परनिरपेक्ष स्वभाव पर्याय हो और चाहे परसापेक्ष विभाव-पर्याय ही क्यों न हो, दोनों अवस्थाओ में उसमे बधने और छूटने का गुण है। जब बध अवस्था में रहता

किन्तु जब वह परपदार्थों से पूरी तरह विरक्त होकर पूर्ण स्वावलम्बन के प्रतीक स्वरूप गुरुसाक्षी-पूर्वक श्रमण-दीक्षा को स्वीकार कर ध्यान और अध्ययन के साथ आत्माराधना को ही अपना प्रधान लक्ष्य बना लेता है, तब वह पूर्ण रूप से श्रमणधर्म का अधिकारी माना जाता है। यह जैन धर्म का मूल रूप है। गृहस्थधर्म इसका अपवाद है। इसके प्रयोजन विशेष के कारण आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन भेद भले ही किए गए हो, पर हैं वे सब श्रमण (साधु) ही।

श्रमण शब्द 'समण' शब्द का सस्कृत रूप है। इससे तीन अर्थ फलित होते हैं—श्रम, सम, और शम। इससे हम जानते हैं कि श्रमण वह है, जो श्रमणोचित क्रियाओ को दूसरे की सहायता के बिना स्वय सम्पन्न करता है। श्रमण (समण) वह है, जो प्राणीमात्र मे समता परिणामो से युक्त होकर अपना जीवन-यापन करता है तथा श्रमण (समण) वह है जो राग-द्वेष का परिहार करके आत्माराधना मे तत्पर रहता है।

इसके लिए इस प्राणी को क्या करना चाहिए, इसकी क्रमबद्ध प्ररूपणा जैन साहित्य मे दृष्टिगोचर होती है। उसे सक्षेप मे 'मोक्ष मार्ग' शब्द से अभिहित करते हुए बतलाया है कि पर से भिन्न आत्मा की श्रद्धा (अनुभूति), पर से भिन्न आत्मा का ज्ञान, और पर से भिन्न आत्मा मे अवस्थिति ही, साक्षात् मोक्ष मार्ग है, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्रिक स्वरूप है। यह अज्ञान, असयम और रागद्वेष से मुक्त होने का मार्ग होने से 'मोक्ष मार्ग' शब्द द्वारा अभिहित किया गया है।

यह जीव जब इस मार्ग को अपना जीवन बना लेता है तब उसके परिणाम-स्वरूप कर्मबन्ध तो स्वय रुक ही जाता है, सचितकर्म भी आत्मा से पृथक् हो जाता है। उसके लिए अलग से पुरुषार्थ करने की आवश्यकता उसके लिए नही रह जाती। जो एकाकी आत्मा की प्राप्ति का माग है, वही अपने कर्मबन्ध से मुक्ति का मार्ग है। अपने को अपना जानकर प्राप्त करना ही पर से मुक्ति है—यह जिनागम का सार है।

परमार्थ से देखा जाये तो पर पदार्थ कभी भी अपने नही हुए, अज्ञानवश ही हमने उन्हे अपना माना है। अत अज्ञान से मुक्त होना ही जीवन का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए।

अभी तक हमने जो कुछ भी लिखा है वह अध्यात्म को मुख्य करके ही लिखा है। उसका व्यवहार पक्ष भी उतना ही प्राजल है और जो हृदयगम करने योग्य है।

आत्माश्रित भाव का नाम ही अध्यात्म है और पराश्रित भाव का नाम ही व्यवहार है। ये दोनो युगपत् होते हैं। जब यह जीव आत्मभावना की भूमिका मे एकाग्र होता है तब मुख्यता से अध्यात्म की चरितार्थता बन जाती है और जब देव-गुरु शास्त्र और व्रतादिक को आलम्बन कर प्रवृत्ति को मुख्यता देता है तब व्यवहार की उपयोगिता स्वीकार की गई है। इसके लिए देव-गुरु और शास्त्र के स्वरूप को हृदयपटल पर अकित कर लेना उपयोगी माना गया है, क्योकि देव आत्मा का प्रतिनिधि है। इसके स्वरूप की यथावत् श्रद्धा होने पर आत्मा का साक्षात्कार होना सभव माना गया है। गुरु देवत्व की प्राप्ति के मार्ग को दिखाने के लिए दीपक के समान है और शास्त्र स्व-पर का ज्ञान कराते हुए उस विधि का प्ररूपण करता है, जिस विधि को अपनाकर ससार के दलदल मे फसा हुआ यह प्राणी उससे उद्धार के मार्ग को आत्मसात् करने मे समर्थ होता है।

जैसा कि भगवान कुन्दकुन्द के वचनो से ज्ञात होता है, रत्नत्रय मे प्रथम स्थान सम्यग्दर्शन का है। उक्त तीन का आगम प्रतिपादित जो स्वरूप है, उसका तीन मूढता, छह अनायतन, आठ मद और शकादि आठ दोषरहित तथा आठ अग सहित श्रद्धान, रुचि प्रतीत करना सम्यग्दर्शन है, यह धर्म का मूल है।

देव के लक्षण मे तीन बातो की मुख्यता है। वह वीतराग होना चाहिए, सर्वज्ञ होना चाहिए और हितोपदेशी होना चाहिए। इसी प्रकार गुरु के लक्षण मे भी इन बातो की मुख्यता रहती है—उसे पचेन्द्रिय के विषयो से विरक्त होना चाहिए, लौकिक जनो के सपर्क, तथा आरभ और वस्त्रादि परिग्रह से रहित होना चाहिए तथा

है तब उसे स्कध कहते हैं और जब मुक्त अवस्था मे रहता है, तब उसे परमाणु कहते हैं।

किन्तु जीवो की चाल इससे सर्वथा भिन्न है। उनका सदा एक रूप रहने वाला मूल स्वभाव न तो बध का ही कारण है और न मुक्ति का ही कारण है। जिसे हम 'बध' और 'मोक्ष' शब्द से अभिहित करते हैं, वह उनकी अवस्था ही है। मूल स्वभाव तो जैसा पहले ससार-अवस्था मे रहता है, ठीक वही मोक्ष अवस्था मे भी बना रहता है। इससे सिद्ध हुआ कि अवस्था का नाम ही बध है और स्वयं मे कारण-विशेष के मिलने पर जब वह ससार अवस्था (बध-अवस्था) विलय को प्राप्त होकर मात्र मूल आत्मा स्वभाव-पर्याय सहित शेष रह जाता है, तो उसी का नाम मोक्ष है।

यह तो न्याय का सिद्धान्त ही है कि कारण के बिना कार्य नही होता। साथ ही यह भी नियम है कि स्वय ही वस्तु अपने व्यतिरेकी स्वभाव के कारण कार्यरूप से परिणमती है। साथ ही यह भी अकाट्य नियम है कि प्रति समय होने वाले प्रत्येक परिणयन के समय उसका कोई बाह्य निमित्त अवश्य होता है। इससे सिद्ध है कि यह ससारी जीव अनादि से स्वय ही अज्ञानी और रागीद्वेषी हो रहा है और अनादि से उसका बाह्य निमित्त कमबन्ध भी बना चला आ रहा है। जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज की सतति अनादि है उसी प्रकार जीव और कर्मबन्ध की परम्परा भी अनादि है।

किन्तु जैसे विवक्षित वृक्ष और उसके बीज का अभाव हो जाने पर उनकी परपरा नहीं चलती, उसी प्रकार ससारी जीव के अज्ञान और रागद्वेष के साथ बन्ध का अभाव हो जाने पर, उस जीव के ससार की परपरा भी नही चलती। इसी का नाम मोक्ष है।

इस प्रकार इतने विश्लेषण से हम जानते हैं कि स्वय स्वीकार की गई परावलम्बन प्रधान वृत्ति के कारण ही इस ससारी जीव के अपने जीवन मे अज्ञान, असयम और राग-द्वेष आदि दोषो का सचार होता है और इस कारण यह जीव पर पदार्थ से अपने आत्मा को युक्त करता है, पर पदार्थ नही।

इसलिए अपने मे व्यक्ति स्वातन्त्र्य की प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिए जहा अपनी बुद्धि मे मूल स्वभाव के अवलम्बनपूर्वक उसकी भावना द्वारा अज्ञान और रागद्वेषादि पर सयोगी भावो से मुक्त होना आवश्यक है, वही उनके उपजीवी परपदार्थों का क्रमश ज्ञापन करते हुए शरीरातिरिक्त बुद्धिपूर्वक स्वीकार किये गए उन सब पदार्थों से विमुक्त होना भी आवश्यक है। यह नही हो सकता कि बुद्धिपूर्वक सयोग भी बनाये रखा जाय और मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त हो जाये। सयोग का कारण अज्ञान और रागद्वेष है, इसलिए इन दोषो का परिहार करने के लिए सयोग के प्रति आस्थापूर्वक, उनका त्याग करना आवश्यक है।

तात्पर्य यह है कि जैसे स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब और धनादि पर पदार्थों को बुद्धि-पूर्वक छोडकर एकाकी हुआ जा सकता है, वैसे इस पर्याय मे रहने की आयु का अन्त हुए बिना शरीर से मुक्त होना सभव नही है। शरीर मे मूर्च्छा छोडी जाती है और वस्त्रादि बाह्य पदार्थों का बुद्धिपूर्वक त्याग किया जाता है। अत आत्माराधना का इच्छुक प्राणी शरीर मे ममत्वरूप मूर्च्छा का त्याग करता है और वस्त्र प्रमुख परपदार्थों का बुद्धि-पूर्वक त्याग करता है।

इतना अवश्य है कि जब तक अपनी पुरुषार्थहीनता के कारण परावलम्बन के प्रतीक-स्वरूप बाह्य वस्तुओ का एकदेश त्याग करता है तबतक उसे गृहस्थ कहते हैं। इसका जीवन जल मे रहते हुए भी उससे भिन्न कमल के समान होता है। कक्षा भेद से इसके अनेक भेद हैं। जिस गृहस्थ के, अन्त मे, एक लगोट मात्र परिग्रह रह जाता है, उसे ऐलक कहते हैं। यह मुनि का छोटा भाई है। मुनि के साथ वन ही इसका जीवन है। वह तप और शरीर की स्थिति का साधन जानकर मात्र आहार ग्रहण करने के लिए गाव मे गृहस्थ के घर आता है।

ज्ञान-ध्यान और तप की आराधना मे तत्पर होना चाहिए तथा देव की वाणी का नाम ही शास्त्र है। वह वीत-रागता का मार्ग प्रशस्त करने वाली होती है।

जैसे ब्राह्मण धर्म मे सध्याकर्म करना मुख्य माना गया है, उसी प्रकार जैन धर्म मे प्रतिदिन इन तीन की उपासना करना आवश्यक कृतिकर्म माना गया है। यह मुनि और श्रावक दोनो का प्रथम कृतिकर्म है।

इसके स्थान मे अधिकतर भाई-बहन शासन-देवता के नाम पर रागी-द्वेषी क्षेत्रपाल, धरणेंद्र, पद्मावती आदि की उपासना करने लगे हैं। इस समय ऐसे मुनि भी मिलेंगे, जो इस कल्पित मार्ग के प्रचार मे लगे रहते हैं। वे यह जानने मे असमर्थ है कि जो स्वय मोही और रागी-द्वेषी हैं और ससार-समुद्र को पार करने में स्वय असमर्थ हैं, वे दूसरे को कैसे तारने मे समर्थ हो सकते हैं ? लौकिक कामना की पूर्ति का होना पुरुषार्थ और भाग्याधीन है, इनकी वदना-पूजा करने से सचित पुण्यबन्ध की हानि होती है और वर्तमान में पापबन्ध का भागी होना पडता है। इसलिए जिस प्रकार अज्ञान-मूलक यह मूढ़ता छोडने योग्य है, उसी प्रकार शेष मूढ़ता और अनायतनो के विषय मे भी जान लेना चाहिए।

आठ मदो मे ज्ञानमद का प्रथम स्थान है, वर्तमान मे ज्ञान की प्राप्ति होना क्षयोपशम के अधीन है और क्षयोपशम परभाव है, इसलिए अध्यात्म मे तो इसे हेय माना ही गया है, व्यवहार मे भी वह हेय ही है, क्योकि वह प्रतिष्ठा का साधन न होकर आत्म-प्राप्ति का साधन है। उसमे जो अध्यात्म प्ररूपणा को ही मोक्ष माग मे एकान्त साधन मानकर, उसके अहकार से गर्विष्ट हुए समाज की दिशा भूल करने मे लगे रहते हैं, उनको हम किन शब्दो मे याद करें ?

दूसरा और तीसरा स्थान जातिमद और कुलमद का है। यह सब जानते हैं कि मदिर, मुनि, आर्यिका श्रावक और श्राविका ये सब धर्म के आयतन हैं, वर्तमान मे आप इनमे से किसी के पास भी चले जाइए, सर्वत्र जाति और कुल का बोलबाला दिखाई देगा। समस्त आचार्यों का तो कहना है कि जाति और कुल देह के आश्रित देखे जाते हैं और देह मे ममता का नाम ही ससार है। इसलिए जो इनके बडप्पन मानने मे अपना बडप्पन देखते हैं, वे त्रिकाल तक अनत ससार के पात्र बने रहते हैं। विवेक से देखा जाए तो शुद्धि अन्य का नाम है और छुआछूत अन्य का नाम है, वह कल्पना मात्र है। आजीविका के लिए पुराने काल मे जिन विभागो की स्थापना की गई थी, उन्होंने वर्तमान मे जन्मना जाति का स्थान ले लिया है। जिससे ससार दु ख के गर्त मे फसता चला जा रहा है। इससे धर्म के प्रचार-प्रसार मे जो बाधा पहुची है, वह कल्पनातीत है।

बहुत दिन पहले की बात है काशी विद्यापीठ बनारस मे दर्शनगोष्ठी का आयोजन हुआ था। इसमे दादा धर्माधिकारी मुख्य वक्ता थे। उन्होने जैन दर्शन की व्याख्या करते हुए कहा था कि "वर्तमान मे जैन जन्मते हैं, बनते नही।" उनकी इस टिप्पणी को सुनकर हम और पडित महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यजी हतप्रभ होकर रह गए। उनकी इस बात का हम क्या उत्तर देते ? हम दोनो के पास इसका कोई उत्तर नही था।

जब बाबा साहब डा अबेडकर भारत सरकार के कानून मत्री थे और उन्होंने अछूतो को बौद्ध बनाकर उनकी स्वतत्र समाज की स्थापना कर दी थी, ऐसे समय मे हम दोनो भाई उनके निवास स्थान पर उनसे मिलने गए। हम दोनो की उपस्थिति मे उनके लिए जब चाय बनाकर आई तब उन्होंने मात्र इसलिए हम दोनों से आग्रह नही किया कि हम दोनो उनके यहा चाय नही ले सकेगे। चर्चा के प्रसग से हम दोनो ने उनसे यह पूछा कि आपने बौद्ध धर्म की ही दीक्षा क्यों ली और दूसरो को दिलाई ? जैन धर्म मे क्या कमी थी कि जिससे न तो आपने स्वय जैन धर्म की दीक्षा ली और न दूसरो को ही इसके लिए प्रेरित किया ? उनका एक ही उत्तर था, "यद्यपि जैन धर्म जातिवाद से मुक्त है, यह हम जानते हैं, परन्तु आज का जैन जातिवाद की भवर मे फसा हुआ है। यदि हम जैन धर्म स्वीकार भी करते तो क्या आज जैन हमे अपने बराबरी का स्थान देने को

तैयार हो जाता ? हम यह अच्छी तरह से जानते हैं कि हमारा जैन बन जाने के बाद भी वही स्थान बना रहता जो हिन्दू रहते हुए बना हुआ था। हम बबई मे जहां हमारी सस्था है, वहां बौद्ध मदिर के बगल में समाज की सहायता से जैन मन्दिर बनाने को तैयार हैं। क्या आपका समाज इसे स्वीकार करेगा ?"

एक घटना मेरे जेल-जीवन की है। जेल में मेरे बीमार पड़ जाने पर मुझे अस्पताल में भेज दिया गया। वहां भोजन में दूध और दलिया मिलता था। दूध मे अरारोट जैसी कुछ वस्तु मिली रहती थी, इसलिए उसे मैं पी नहीं पाता था। दलिया मात्र ही मेरा भोजन रह गया था। इससे मैं क्षुधा से पीड़ित रहने लगा। दूध मैं अपने बगल मे साथी को दे देता था। वह नाई था। ऐसा कई दिन हुआ। अन्त मे मेरी पीड़ा जानकर उसे दूर करने का उपाय सोचकर वह किसी प्रकार अस्पताल से निकलकर किसी अधिकारी के यहा गया और सेवावृत्ति करके दो फुलका और करेला की शाक प्राप्त कर ली और आकर मेरे पास रखकर आग्रह करने लगा कि यह मैं आपके लिए लाया हू, आप नि सकोच ले लीजिए। मैं असमजस मे पड गया। सोचने लगा कि श्रम तो उसने किया है, उसके श्रम का मैं कैसे लाभ उठाऊ ? मेरे मना करने पर वह रोने लगा और कहने लगा, "आप मेरा ख्याल रखते है और मैं आपके कष्ट मे सभागी न बनू, यह कैसे हो सकता है ?" अन्त मे बटवारा करके उसे खाया और खाते हुए मैंने उससे कहा, "इस चहारदीवारी के भीतर हम दोनों भाई-भाई हैं—मनुष्य हैं। बाहर जाने पर फिर हमारा-आपका कोई रिश्ता नहीं रहेगा। हम वैश्य बन जाएगे और तुम नाई।"

जहा तक हम सोच सकते हैं, इस जातिवाद और कुलवाद ने जैन धर्म की बहुत हानि की है। यह ज्ञान-मद से भी बडा है। ज्ञानमद तो पढ़े-लिखो मे ही होना है और खासकर गद्दी पर बैठने पर तो कहना ही क्या है ? परन्तु यह जातिवाद और कुलवाद व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन मे घुसा हुआ है। हमने बहुत अवसर खोया और खोते जा रहे हैं। हम नही जानते कि हमे अपने मूलरूप मे आने का फिर कभी अवसर आएगा या नही।

हम पहले सम्यग्दर्शन के आठ अगो का उल्लेख कर आए हैं। उनमे एक स्थितिकरण अग है, इसका आशय यह है कि व्यक्ति के जीवन मे किसी प्रकार की चूक रहने पर भी केवल इस कारण उसे अपने से पृथक् नही करना चाहिए। परतु हम देखते हैं कि वर्तमान मे पूरा समाज उसकी महत्ता को भूल गया है। इस कारण हमने खोया बहुत, पाया कुछ भी नही, और अब स्थिति यह है कि कोई किसी की सुनता ही नही। आज हम जिनसे कुछ सीखने की आशा करते हैं वे हमसे भी बदतर होते जा रहे हैं। शुद्धि के नाम पर आहारादि को निमित्त कर कही किसी का बहिष्कार करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है और कही अन्य किसी का बहिष्कार करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है।

इसी तरह एक अग का नाम वात्सल्य भी है। पुराने लोगो मे इसके कुछ चिह्न दिखाई देते थे। अब कोई किसी को पूछता ही नही। परस्पर पुण्य-पाप का नाम लेकर टीका-टिप्पणी अवश्य करेंगे। पर कोई किसी की सभाल करने को तैयार नही दिखाई देता। इसके बाद भी वे अपने को परम धर्मात्मा और पुण्यात्मा मानने से नहीं हिचकिचाते। वे नही जानते कि वात्सल्य का क्या अर्थ है। यह बोहरे और पारसियो से सीखना चाहिए।

आ कुदकुद ने चारित्र के दो भेद लिखे हैं—सम्यक्त्वाचरण चारित्र और सयमाचरण चारित्र। सयमाचरण चारित्र के सबध मे हम पहले ही उल्लेख कर आए हैं। सम्यक्त्वाचरण चारित्र सयमाचरण चारित्र के पूर्व की अवस्था है। इसमे सात व्यसनो का त्याग और आठ मूल गुणो का स्वीकार करना मुख्य है। जो देव-शास्त्र-गुरु की उपासनापूर्वक उक्त व्रतो को स्वीकार कर लेता है, उसे ही सम्यक्त्वाचरण चारित्र का अधिकारी माना गया है। प्रत्येक गृहस्थ के जीवन मे इन नियमो का होना आवश्यक है। इससे प्रत्येक व्यक्ति का जीवन तो संस्कारी बनता ही है, अपने परिवार को और समाज को भी सस्कारी बनाने में सहायता मिलती है। जैसे खराद पर रखे हुए मणि मे चमक आती है, उसी प्रकार उक्त नियमो के पालन करने से व्यक्ति के

जीवन मे विशेषता परलक्षित होने लगती है। सामान्यत यह जैन जीवन है। जैन धर्म का सार भी इसे ही कहा जा सकता है। विशेषु किमधिकम्।

सन्दर्भ के लिए जैन धर्म के इन ग्रन्थो का अवलोकन कीजिए—(१) समयप्राभृत, (२) पचास्तिकाय, तत्वार्थसूत्र, द्रव्यसग्रह, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि।

जैन दर्शन

कैलाश चन्द्र शास्त्री

□□

प्रत्येक दर्शन या धर्म के प्रवर्तक की एक विशेष दृष्टि होती है, जो उसकी आधारभूत होती है। जैसे भगवान बुद्ध की अपने धर्म प्रवतन मे मध्यम प्रतिपदा दृष्टि थी और शकराचार्य की अद्वैत दृष्टि थी। जैनदर्शन के प्रवर्तक महापुरुषो की उसके मूल मे एक विशेष दृष्टि रही है। उसे ही अनेकान्तवाद कहते है। जैन दर्शन का समस्त आचार-विचार उसी के आधार पर स्थित है। इसी से जैन दशन अनेकान्तवादी दशन कहलाता है, और अनेकान्तवाद तथा जैनदर्शन शब्द परस्पर मे पर्यायवाची जैसे हो गए हैं। वस्तु सत् ही है या असत् ही है, या नित्य ही है अथवा अनित्य ही है, इस प्रकार की मान्यता को एकान्त कहते है और उसका निराकरण करके वस्तु को अपेक्षा भेद से सत्, असत्, नित्य अनित्य आदि भावना अनेकान्तवाद है।

अन्य दर्शन किसी को नित्य और किसी को अनित्य ही मानते हैं किन्तु जैनदर्शन कहता है—

आदीपमाव्योम समस्वभाव स्याद्वाद मुद्रानति भेदि वस्तु।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति वदाज्ञाद्विषना प्रलापा ॥ ५ ॥ (स्याद्वाद म)

दीपक से लेकर आकाश तक समान स्वभाव वाले हैं। ऐसा नही है कि आकाश नित्य ही हो और दीपक अनित्य ही हो। द्रव्य दृष्टि से प्रत्येक वस्तु नित्य है और पर्याय दृष्टि से अनित्य है। अत कोई भी वस्तु इस स्वभाव का अतिक्रमण नही करती, क्योकि सब पर स्याद्वाद या अनेकान्त स्वभाव की छाप लगी हुई है। अत जिन आज्ञा से द्वेष रखने वाला का ही यह प्रलाप है कि अमुक वस्तु केवल नित्य ही है और अमुक वस्तु केवल अनित्य ही है।

'स्याद्वाद' शब्द मे 'स्यात्' शब्द अनेकान्त रूप अर्थ का वाचन, अव्यय है। यह स्याद्वाद जैनदर्शन की विशेषता है। इसी से समन्त भद्र स्वामी ने कहा है—

'स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम्।' (स्वयभू १०२ श्लो)

हे जिनेन्द्र ! स्यात् शब्द केवल आपके दर्शन मे हैं, अन्य एकान्त दर्शनो मे नही है।

जैन दर्शन एक द्रव्य पदार्थ ही मानता है। उसे मानने पर दूसरे पदार्थों के मानने की आवश्यकता नही रहती। गुण और पर्याय के आधार को द्रव्य कहते हैं। ये गुण और पर्याय उस द्रव्य के ही आत्मरूप हैं। इसलिए ये किसी भी हालत मे द्रव्य से पृथक् नहीं होते। द्रव्य के परिणमन को पर्याय कहते हैं। जो बतलाता है कि द्रव्य सदा एक-सा न रहकर प्रतिक्षण बदलता रहता है। जिसके कारण द्रव्य सजातीय से मिलते हुए और विजातीय से भिन्न प्रतीत होते हैं वे गुण कहलाते हैं। ये गुण ही अनुवृत्ति और व्यावृत्ति के कारण होते हैं। इसी से जैन दर्शन मे सामान्य और विशेष को पृथक् पदार्थ मानने की आवश्यकता नही है। गुण, कर्म, समवाय, सामान्य, विशेष और अभाव ये सब द्रव्य की ही अवस्थाए है। इनमे से कोई भी स्वतन्त्र पदार्थ नही है।

वेदान्त दर्शन पर्याय को अवास्तविक और पर्याय से भिन्न द्रव्य को वास्तविक मानता है। जैन दर्शन दोनो को ही वास्तविक मानता है। इसी से वस्तु न केवल द्रव्यरूप है और न केवल पर्याय रूप है किन्तु द्रव्य पर्याय रूप है। वही प्रमाण का विषय है।

जैन दर्शन प्रमाण और नय से वस्तु की सिद्धि मानता है। स्व-पर-प्रकाशक ज्ञान ही प्रमाण है। ज्ञान आत्मस्वरूप है अत उसे आत्मा शब्द से भी कहते हैं। अनन्त धर्मात्मक वस्तु के किसी एक धर्म को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। जो नय वस्तु को केवल द्रव्य की मुख्यता से ग्रहण करता है उसे द्रव्यार्थिक नय कहते हैं और जो नय वस्तु को पर्याय की मुख्यता से ग्रहण करता है उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

यह नय भी अनेकान्तवाद की देन है। इसी से अन्य दर्शनो मे नय के दर्शन नही होते। अनेकान्तवाद के दो फलितवाद है—नयवाद और सप्तभगीवाद। अत स्याद्वाद, सप्तभगीवाद और नयवाद ये सब जैन दर्शन की विशेषताए हैं। जैनाचार्यों ने इनके निरूपण मे बडे-बडे ग्रथ लिखे हैं और अनेकान्तवाद के बल से ही अन्य दर्शनो का निराकरण किया है।

जब बादरायण जैसे सूत्रकार के अनेकान्त के खण्डन मे सूत्र और उन सूत्रो के भाष्यकारों के भाष्यो मे अनेकान्तवाद का खण्डन किया गया। तथा वसुबन्धु, दिग्नाग, धर्मकीर्ति और शान्तरक्षित जैसे बडे-बडे प्रभावशाली बौद्ध दार्शनिको ने भी अनेकान्तवाद की आलोचना की तो जैन दार्शनिको ने भी उनका सामना किया। इस सघर्ष के फलस्वरूप जहा एक ओर अनेकान्तवाद का तर्कपूर्ण विकास हुआ वहा दूसरी ओर उसका प्रभाव भी विरोधी दार्शनिको पर पडा। दक्षिण भारत मे जैनाचार्यों और मीमासक तथा वेदान्तियो के बीच मे जो विवाद हुए उसका प्रभाव मीमासा दर्शन और वेदान्त पर पडा। मीमासक कुमारिल भट्ट ने अपने मीमासा श्लोकवार्तिक मे जैनाचार्य समन्त भद्र की शैली और शब्दो मे तत्व को त्रयात्मक बतलाया है तथा रामानुजाचार्य ने शकराचार्य के मायावाद के विरुद्ध विशिष्टाद्वैत का निरूपण करके अनेकान्त दृष्टि का ही उपयोग किया है।

हम पहले लिख आए हैं कि जैन दर्शन द्रव्य को गुणपर्यायात्मक मान्यता है। उसी का विश्लेषणात्मक दूसरा लक्षण उत्पाद-व्ययध्रौव्यात्मक है। अर्थात् वस्तु प्रति समय उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और ध्रुव रहती है। इस तरह वह त्रयात्मक है इसी को सिद्ध करते हुए समन्त भद्राचार्य ने कहा है—

'न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषास्ते सहैकत्रोदयादि सत् ॥' (आप्तमीमांसा श्लो ५०)

सामान्य रूप से वस्तु न उत्पन्न होती है न नष्ट होती है, क्योंकि वस्तु की प्रत्येक दशा मे सामान्यरूप अनुस्यूत देखा जाता है अत अन्वय रूप से वस्तु ध्रुव है और विशेष रूप से नष्ट और उत्पन्न होती है। अत एक वस्तु मे उत्पाद आदि तीनों एक साथ रहते हैं, तीनों के समुदाय का ही नाम सत् है।

आगे इसे दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हुए लिखा है—

'घटमौली सुवर्णार्थी नाशोत्पाद स्थितिष्वयम्।
शोक-प्रमोद माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्॥'

(आप्तमीमांसा, श्लो ५१)

एक राजा के पास सोने का घडा है। राजपुत्री को वह घडा प्रिय है। किन्तु राजपुत्र उसको तोडकर मुकुट बनवाना चाहता है। जब घडे को तोडकर मुकुट बनता है तो पुत्री को घडे के नाश से शोक होता है, राजपुत्र को मुकुट बनता देख प्रसन्नता होती है। किन्तु राजा मध्यस्थ रहता है उसे न शोक होता है और न हर्ष, क्योंकि वह तो स्वर्णार्थी था और स्वर्ण घट और मुकुट दोनो दशाओ मे वर्तमान था। अत एक ही वस्तु को लेकर तीन व्यक्तियो के तीन प्रकार के भाव हुए वे सहेतुक हैं अत वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।

मीमासक कुमारिल ने भी समन्त भद्र के ही दृष्टान्त को उन्हीं के शब्दो मे व्यक्त करते हुए सामान्य नित्यता को स्वीकार किया है। वे लिखते हैं—

वर्धमानक भङ्गे च रुचक क्रियते यदा।
तथा पूर्वार्थिन शोक प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिन॥
हेमार्थिनस्तमाध्यस्थ्य तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम्।
नोत्पादास्थितिभङ्गानामभावे स्यान्मतित्रयम्॥
न नाशेन विना शोको नोत्पादेन विना सुखम्।
स्थित्या विना न माध्यस्थ्य तेन सामान्य नित्यता॥

(मीमांसा श्लोकवार्तिका श्लो २१-२३)

अर्थात् जब सोने के प्याले को तोडकर उसकी माला बनाई जाती है तब प्याले के अर्थी को शोक होता है। माला के अर्थी को प्रसन्नता होती है, किन्तु सुवर्ण के अर्थी को न शोक होता है न प्रसन्नता। अत वस्तु त्रयात्मक है, क्योकि उत्पाद स्थिति और विनाश के अभाव मे तीन प्रकार की बुद्धिया नही हो सकती। नाश के बिना शोक नही होता, उत्पाद के बिना सुख नही होता और स्थिति के बिना माध्यस्थ्य नही हो सकता अत सामान्य नित्यता है।

जैन दर्शन न तो सृष्टिकर्ता ईश्वर को ही मानता है और न वेदो के प्रामाण्य को ही स्वीकार करता है। इसी से उसकी गणना नास्तिक दर्शनो मे की जाती है। यद्यपि वह कट्टर आस्तिक है अत अनेकांत के साथ सृष्टिकर्ता ईश्वर और वेद के प्रामाण्य को लेकर भी ईश्वर और वेदवादी दार्शनिको से जैनो का सघर्ष होता था।

दार्शनिको मे ज्ञान की स्व-पर-प्रकाशकता भी विवाद का विषय रहा है। आचार्य कुन्दकुन्द ने ज्ञान को स्व-पर-प्रकाशक स्वीकार करते हुए जैन दर्शन मे इस चर्चा का सूत्रपात किया।

उन्होंने प्रवचन सार मे (१।४०-४१, ५४-५८) प्रत्यक्ष परोक्ष की व्याख्या देकर उन्हे युक्ति से भी सिद्ध किया है। उनका कहना है कि अन्य दार्शनिक इन्द्रियजन्य ज्ञानो को प्रत्यक्ष मानते हैं। किन्तु इन्द्रिया तो अनात्मरूप होने से परद्रव्य हैं, अतएव इन्द्रियों मे उपलब्ध वस्तु का ज्ञान प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है। जो पर के बिना आत्मा से ज्ञान होता है वही प्रत्यक्ष है।

जैन दर्शन प्रत्येक शुद्ध आत्मा अर्थात् परमात्मा को सर्वज्ञ सर्वदर्शी मानता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने प्रवचनसार मे लिखा है कि सर्वज्ञ त्रैकालिक सभी द्रव्य पर्यायो को एक साथ जानता है। किन्तु जो पर्याय अभी उत्पन्न नही हुई हैं या उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं उन्हें सवज्ञ कैसे जानता है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए उन्होंने लिखा है कि समस्त द्रव्यो की सद्भूत और असद्भूत पर्याय विशेष रूप से वर्तमानकालिक

पर्यायों की तरह स्पष्ट प्रतिभासित होती हैं। यही तो सर्वज्ञ के ज्ञान की दिव्यता है वह अनुत्पन्न और विनष्ट पर्यायों को भी जानता है (१, ३७-३९)।

दार्शनिक क्षेत्र मे सर्व प्रथम आचार्य समन्तभद्र ने अपने आप्तमीमांसा नामक प्रकरण मे सर्वज्ञ की सिद्धि मे नीचे लिखा अनुमान प्रस्थापित किया है—

सूक्ष्मान्तरितदूरार्था प्रत्यक्षा कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ सास्थिति ॥ ५ ॥

सूक्ष्म परमाणु वगैरह, अन्तरित राम रावण वगैरह, और दूरवर्ती सुमेरू वगैरह पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष है। अनुमेय होने से, जैसे अग्नि वगैरह। इस प्रकार सर्वज्ञ की सम्यक् स्थिति बनती है।

उक्त कारिका को देखकर शाबर भाष्य की नीचे लिखी पक्ति का स्मरण हो आता है—

'चोदना हि भूत भवन्त भविष्यन्त सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्टमित्येव जातीयकमर्थमवगमयितुमलम्।'

(शाबरभा १।१।२।)

इस भाष्य के सूक्ष्म व्यवहित और विप्रकृष्ट शब्द तथा उक्त कारिका के सूक्ष्म अन्तरित और दूर शब्द एकार्थक हैं। दोनो मे बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव झलकता है और ऐसा लगता है कि एक ने दूसरे के विरोध मे अपना उपपादन किया है। शबर स्वामी का समय २५० से ४०० ई तक अनुमान किया जाता है। स्वामी समन्त भद्र का भी यही समय है। विद्वान जानते हैं कि मीमासक वेद को अपौरुषेय और स्वत प्रमाण मानते हैं। उनके मतानुसार वेद भूत, वर्तमान भावि तथा सूक्ष्म व्यवहित और विप्रकृष्ट अर्थों का ज्ञान कराने मे समथ है। इसी से वह किसी को सर्वज्ञ नही मानते। किन्तु जैन अपने जिनेन्द्रदेव को सर्वज्ञ सर्वदर्शी मानते हैं। अत यदि समन्त भद्र ने शाबर भाष्य के विरोध मे सर्वज्ञ की सिद्धि की हो तो कोई अयुक्त बात नही है। शायद इसी से शाबर भाष्य के व्याख्याकार कुमारिल ने समन्तभद्र की सर्वज्ञता विषयक मान्यता को खूब आड़े हाथो लिया है। और उसका परिमार्जन अकलकदेव ने अपने न्याय विनिश्चय मे किया है।

जैन दर्शन आत्मवादी है और आत्मा को ज्ञान, दर्शन, सुख आदि गुणमय मानता है। उसमे गुण और गुणी की पृथक तथा स्वतत्र सत्ता नही है। एक द्रव्य अनन्त गुणो का अखण्ड पिण्ड है। आत्मा के स्वाभाविक गुण ससार अवस्था मे कर्मों से आवृत होने के कारण विकृत हो जाते हैं। आत्मा का स्वाभाविक ज्ञान और सुख गुण कर्मावृत होने के साथ पराधीन भी हो जाता है। जिससे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि इन्द्रियो के बिना आत्मा को ज्ञान और सुख नही हो सकता। किन्तु ऐसा नहीं है, इन्द्रियो के बिना भी स्वाभाविक ज्ञान और सुख रहते हैं। अत जैसे सोने को आग मे तपाने से सोना शुद्ध हो जाता है और उसके स्वाभाविक गुण चमक उठते हैं उसी प्रकार ध्यान रूपी अग्नि मे कर्मरूपी मल को भस्म करने से आत्मा शुद्ध हो जाती है और उसके स्वाभाविक गुण पूर्ण रूप से प्रकाशमान हो जाते हैं। आत्मा को कर्ममूल से मुक्त करके अपने शुद्ध स्वरूप मे स्थित करना ही जैनधर्म का चरम लक्ष्य है। उसी का नाम मुक्ति या मोक्ष है, प्रत्येक आत्मा उसे प्राप्त करने की शक्ति रखती है। जब आत्मा आत्मगुणघाती कर्मों को नष्ट करके पूर्ण ज्ञानी हो जाती है तब वह अन्य जीवो को मोक्ष मार्ग का उपदेश देती है। इस तरह वह वीतरागी और पूर्णज्ञानी हो जाती है। ऐसा होने से उसके कथन मे न तो अज्ञानजन्य असत्यता रहती है और न रागद्वेषजन्य असत्यता रहती है। इसी से स्वामी समन्तभद्र ने आप्त का लक्षण इस प्रकार किया है—

'आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्य नियोजन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ ५ ॥ (रत्न श्रा १)

आप्त को नियम से वीतरागी, सर्वज्ञ और आगम का उपदेश होना ही चाहिए। इनके बिना आप्तता नहीं हो

सकती। अब प्रश्न यह हो सकता है कि मात्र मोक्ष मार्ग का उपदेश देने के लिए सर्वज्ञ होना क्यो आवश्यक है? मोक्ष का सम्बन्ध आत्मा से है अत उसको केवल आत्मज्ञ होना आवश्यक है। उपनिषद मे भी 'यो आत्मविद् स सर्वविद्' लिखकर आत्मज्ञ को ही सर्वज्ञ कहा है।

इस प्रश्न का समाधान जैन आगमो मे मिलता है 'जो एक को जानता है वह सबको जानता है।' क्योकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान प्रत्येक आत्मा मे तरतमाशरूप मे पाया जाता है। अत ज्ञानरूप अशी अपने सब अशो मे व्याप्त होकर रहता है। और ज्ञान के अश अनन्त द्रव्य पर्यायो के ज्ञायक हैं। अत अनन्त द्रव्य पर्यायो के ज्ञायक स्वरूप ज्ञानाशो से परिपूर्ण ज्ञानमय आत्मा को जानना ही सबको जानना है। अत आत्मज्ञता मे से सवज्ञता फलित होती है क्योकि मुमुक्षु का प्रयत्न आत्मज्ञता के लिए होता है।

इस तरह जैन दर्शन का मुख्य लक्ष्य आत्मा की कर्मबन्धन की मुक्ति है। उसके प्रवर्तक सब जैन तीर्थंकरो ने वही लक्ष्य प्राप्त किया है।

जैन वाङ्मय के प्रमुख प्रणेता

(प्रो) खुशाल चन्द्र गोरावाला

□□

तीर्थंकर की धुन गणधर ने सुन,
अग रचे चुन ज्ञानमयी।
सो जिनवर वाणी शिव सुख दानी,
त्रिभुवन मानी पूज्य भयी ॥

आगम

कविवर द्यानतराय का यह पद जैन वाङ्मय के उद्गम, विकास और प्रसार के इतिहास को 'गागर मे सागर' करता है। दुख का मूल अज्ञान है। इस चरम तथ्य के श्रद्धानी उत्कृष्ट लोक वात्सल्यपूर्ण विशेष आत्मा अपने अज्ञान की निवृत्ति के लिए प्रशक्त त्याग और तप करते हैं। तथा ज्ञान के विरूपक तथा निरोधक 'मोह' को नष्ट करके पूण (केवल) ज्ञानी होत हैं। अर्थात् निज स्वरूप (ज्ञान लक्षणो जीव) को पाते हैं। अतएव पूर्ण-(केवल-) ज्ञान और 'आगम' (आता है) पर्यायवाची हैं। इस प्रकार दुख अर्थात् अज्ञान के सागर के पार जाने का घाट (ज्ञान) या तीर्थ बताने के कारण तीर्थंकर कहलाते हैं। और इनका ज्ञान-स्वरूप ही आगम' है।

ग्रन्थ

आतप और उद्योतमय सूर्य के समान ये तीर्थंकर भी अपने शुद्ध स्वरूप की ऊष्मा (प्रभाव) और ज्योति (ज्ञान) के द्वारा ससारी जीवों की शीतलता (जडता) और अधकार (अज्ञान) का प्रसार रोक देते हैं। तथा श्रोताओ या सभ्यो मे विशिष्ट ज्ञानी एव दीक्षित प्रमुख व्यक्ति (गणधर) तीर्थंकर के ज्ञान को विशेष रूप से समझते हैं। तथा शब्द रूप मे उसे गूथ देते हैं। ऐसे विशिष्ट व्यक्ति गणधर कहलाते हैं और इनके मुख से वचन रूप में निकला केवल ज्ञान का अश 'ग्रन्थ' कहलाता है। ये गणधर ही इसे प्रथम (कथा), चरण (चारित्र), करण (भूगोलादि) और द्रव्य (तत्वज्ञान) अनुयोगों या (आचार, सूत्र, स्थान, व्याख्या, ज्ञानधर्म उपासक दशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरौपपादिक, प्रश्न व्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद) बारह अगों मे विभाजित करके जन साधारण के लिए सुगम करते हैं।

श्रुत

केवल ज्ञान पर आश्रित ग्रन्थों का अध्ययन दीक्षित गुरुओं द्वारा अपने दीक्षित शिष्यो को मौखिक रूप से दिया जाता है। इस प्रकार गुरु-शिष्य परम्परा से सुनकर ग्रहण करने के कारण ज्ञान की 'श्रुत' सज्ञा पडती है। इस युग मे भगवान महावीर चौबीसवें तीर्थंकर थे। उनके बाद उनके दो गणधरो (गौतम और सुधर्मा) तथा जम्बू स्वामी को भी आगम (कैवल्य) हुआ किन्तु प्रवचन सभा नही हुई। अतएव भगवान का ज्ञान ही इस युग के लिए 'आगम है। जिसके आधार से लगभग पौने दो शती तक श्रुत परम्परा चली। भद्रबाहु स्वामी अन्तिम पूर्ण श्रुत केवलो अर्थात् चारो अनुयोगों या बारह अगो के ज्ञाता थे।

शास्त्र

जब अवसर्पिणी (घटती) काया के प्रभाव से शरीर, कर्म आदि के समान स्मृति (प्रतिभा) घटने लगी तो मुख्य अग दृष्टिवाद के भागो (पूर्वों) की स्मृति घटी। और घटते-घटते वीर निर्वाण की सातवी शती मे यह स्थिति आ गयी कि आचार्य गुणधर को कर्मों के राजा 'मोह' का रहस्य सुरक्षित करने के लिए 'पेज्ज दोष पाहुड' को २२३ सूत्रो मे लिपिबद्ध करना पडा। इस प्रकार वचनो मे गूथे ज्ञान के लिपिबद्ध रूप की प्रक्रिया प्रारभ हुई। और ये शास्त्र (जिन-शासन-उपदेश के त्राता होने के कारण) कहलाये।

वाचना (स्मृति)

भगवान महावीर के निर्वाण की दूसरी-तीसरी शती मे श्रमण भूमि (मगधादि) मे बारह वर्ष भीषण अकाल पडा था। निमित्त ज्ञान से इसका पूर्वाभास पाकर अतिम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी ने सघ को दक्षिण मे विहार करने के लिए कराया। तथा ये और इनका सम्राट शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य चले भी गये थे। किन्तु नगर बधू 'कोशा' की नाट्यशाला मे रहकर भी धर्मध्यानी स्थूल भद्रादि मुनि उत्तर मे ही रह गये थे। दुष्काल के कारण इन्हे परिस्थितियो से समन्वय करना पडा और 'फालक' वस्त्र, भिक्षा पात्रादि का परिग्रह इनके जीवन मे आ गया था। दुर्भिक्ष की समाप्ति पर इस बात का प्रयास किया गया कि अपवाद रूप से ग्रहीत वस्त्र-पात्रादि को छोडकर सब साधु जिन कला (दिगम्बरत्व) को ग्रहण करें और स्थविरकल्प को छोड देवें। किन्तु वस्त्र, पात्र, उपाश्रय-वास के कारण सुखशील हुए साधुओ ने विरोध किया। तब स्थूलभद्र स्वामी को यह चिन्ता हुई कि आचरण गया तो जाने दो, ज्ञान की रक्षा करो। ताकि पूर्ण जिनोपदेश सुरक्षित रहे। और मोक्षमार्ग सापवाद न हो।

इसके लिए जब सक्षम साधुओ ने अपनी-अपनी स्मृति के आधार पर जिसे, जितना दैनिक पारायण के कारण याद था वह सुनाया तो पता चला कि दुर्भिक्ष में आयी शिथिलता के कारण दृष्टिवाद का पारायण नहीं हो सका था। और वह विस्मृत हो गया है। फलत उसके एक मात्र ज्ञाता भद्रबाहु स्वामी से उसे प्राप्त करने का प्रयास किया गया जो कि अनेक कारणो से असफल रहा। इस प्रकार स्मृति या 'वाचना' के आधार पर चले आये ज्ञान को दो दुष्कालो के और झटके लगे। तथा स्कन्दिलाचार्य की देख-रेख में माथुरी और नागार्जुन की प्रमुखता मे बलभी मे वाचनाए हुई किन्तु जिनकल्प का आदर्श और स्थविरकल्प के मोह के कारण ये लिपिबद्ध न हो सकी। लगता है कि जिनकल्पियो की कठोरता और स्थविरकल्पियो की सुख-शीलता को भूतार्थ मानकर, वीर निर्वाण की दसवी शती मे आ देवर्द्धिगणि ने उत्तरोत्तर हीयमान स्मृति को देखकर बलभी मे ही 'वाचना' करके स्थविरकल्पियो मे तब तक बचे-खुचे श्रुत को लिपिबद्ध करा दिया। इस प्रकार आगम रूप से सकलित ११ अग जैन वाड्मय मे 'स्मृति' हैं। तात्पर्य यह है कि वर्तमान मे उपलब्ध जैन वाडमय मे शास्त्रो और स्मृतियो (आगमो) की ही प्रधानता है।

गुणधर

पेज्ज दोष पाहुड (कषाय प्राभृत) के कर्ता आचार्य गुणधर ने प्राकृत मे इस ग्रन्थ मे २२३ सूत्रो की रचना की थी। इसमे कर्मों के राजा और ससारभ्रमण के कारण मोहनीय कर्म के रहस्य को बताया है। इस पर नागहस्ति और आर्य मगु ने स्पष्टीकरण लिखे थे। तथा यतिवृषभ ने छह हजार श्लोक प्रमाण चूर्णि-सूत्र लिखे थे। तथा आचार्य वीरसेन-जिनसेन ने साठ हजार श्लोक प्रमाण जयधवला टीका लिखी थी। जो अब प्रकाशित हुई है। और प्राणिजगत के राग-द्वेष आदि मानसिक परिवर्तनो तथा उनसे होने वाले सुपरिणामो और कुपरिणामो को हस्तामलक करती है।

पुष्पदत भूतबलि

'श्रुत' को 'शास्त्र' रूप दिलाने का श्रेय आचार्य धरसेन को है। मगध के दुर्भिक्ष के बाद जब स्थविरकल्पियो ने मूल जिनधर्म (कल्प या दिगम्बरत्व) को जम्बू स्वामी के साथ समाप्त घोषित कर दिया और शिथिलाचार के कारण दृष्टिवाद को श्रुत केवली से न पाकर उसे लुप्त घोषित कर दिया तो गिरिनारगुफा-वासी आचाराग को आचरक तथा बारहवें अग के श्रुत परम्परा से ज्ञाता आचार्य धरसेन ने दो दीक्षित शिष्यो की परीक्षा लेकर उन्हे दृष्टिवाद को पढ़ाया। और इसे गुणधर के समान लिपिबद्ध करने की अनुमति दी।

इन दोनो मे आचार्य पुष्पदन्त ज्येष्ठ थे। इन्होंने १७७ सूत्र गाथाओ मे 'सत्प्ररूपणा' को लिखकर आचार्य भूतबलि को भेजा था। इससे प्रेरणा पाकर आचार्य भूतबलि ने ६ हजार श्लोक प्रमाण ग्रथ लिखकर जीव स्थान, खुद्दाबध, बधस्वामित्व, वेदना और मार्गणा खडो की रचना की तथा तीस हजार श्लोक प्रमाण महाबध खड की रचना की थी। इस प्रकार आचार्य गुणधर, पुष्पदत और भूतबलि ने आगम के दृष्टिवाद अग के विषय को हाथ का कगन कर दिया है।

कुन्दकुन्दाचार्य

भगवान वीर के निर्वाण की दूसरी-तीसरी शती से दशवी तक उत्तर भारत मे रहे साधु जहां दुर्भिक्षो और द्विविधाओ मे उलझे रहे वही इन शतियो मे दक्षिण गये जिनधर्मी (कल्पी) साधुओ ने स्वैराचार

विरोधिनी जैनी तपस्या का निरवद्य पालन करते हुए गुरु-शिष्य परम्परा से 'श्रुत-धारा' की रक्षा की। दक्षिणा पथ में जन्मे और सतत ज्ञान-ध्यान लीन आचार्य कुन्दकुन्द इनके अग्रणी हैं। इन्होंने गुणधराचार्य आदि का अध्ययन ही नहीं किया अपितु इनकी कृति षट्खण्डागम पर 'परिकर्म' नाम की टीका भी लिखी। और श्रुत ज्ञान को सुबोध रूप से सुरक्षित करने के लिए दश-(तीर्थंकर, सिद्ध, श्रुत, चारित्र, परमेष्ठी, योग चैत्य, शान्ति, नन्दीश्वर तथा आचार्य) भक्तिया लिखीं और अष्ट (दर्शन, सूत्र, चारित्र, बोध, भाव, मोक्ष, लिंग और शील) प्राभृतों की रचना जिनके कारण जिनकल्प का क्षयिमाण रूप उजागर हुआ। नियमसार मे साधु की जीवन-संहिता का आकलन है। पचास्तिकाय मे जीव, अजीव, आकाश, धर्म (गति का अप्रेरक साधन) और अधर्म (विपत्ति का अप्रेरक निमित्त) के शारीरिक (मैटाफिजीकल) गठन, सम्बन्ध आदि का विशद विवेचन किया है। तथा प्रवचन सार के द्वारा ज्ञान, ज्ञेय तथा चारित्र का भावात्मक या मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सुगम कर दिया है।

जनवाणी (प्राकृत) मे ही जिनका उपदेश होता था। आचार्य कुन्द कुन्द की भी भाषा यही है। और संसार के मूल तत्व (जीव-अजीव) का सूक्ष्म विवेचन करती हुई साधक को अशुभ से शुभ मे लाकर, शुद्ध स्वरूप की झांकी के सामने खडा कर देती है। इनका समयसार ऐसी ही आध्यात्मिक साधना की रचना है।

विमल

द्रव्यानुयोग की कर्कश चर्चा से थके लोगो को प्रथमानुयोग (कथा पुराण) 'कान्ता सम्मत उपदेश' देता है। वीर निर्वाण की सातवी शती ने आचार्य विमल की कृति पम्मचरिऊ (बीसवें तीर्थंकर सुव्रत के समकालीन राम का चरित्र) के द्वारा इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है। यह सबसे पुराना जैन-पुराण है। इन्होंने बाईसवें तीर्थंकर नेमि के ककेरे अग्रज कृष्ण की कथा को भी 'कण्हचरिऊ' रूप से लिखा था किन्तु यह लुप्त है।

गृद्धपिच्छ (उमा स्वामि)

ईसा की तीसरी-चौथी (वी नि ८वी) शती ने साहित्यिक (क्लासीकल) सस्कृत को अन्तिम रूप दे दिया था। और वैदिक विद्वानो की मान्यता के लिए सस्कृत भाषा मे लिखना आवश्यक हो गया था। फलत जैनाचार्यों ने भी इस लोक धर्म का पालन किया। ऐसे आचार्यों मे उमा स्वामि सर्वप्रथम हैं। इन्होने 'तत्वार्थ-सूत्र' ग्रन्थ लिखकर सात (जीव, अजीव, अस्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष) तत्वो का सुसम्बद्ध सूक्ष्म चित्रण करके ससार और मोक्ष का तथा गृहस्थ और साधु की चर्या का स्वरूप सर्व साधारण के लिए सुगम कर दिया। इनकी दूसरी कृति 'प्रथमरति' है जो साधक की चरम स्थिति, समता का ज्ञान कराती है।

समन्त भद्र

जन साधारण को भाषा के जाल मे डालकर धर्म के तत्व को गूढ़ करने वाली ब्राह्मण परम्परा का न्याय दृष्टि से भी सामना करने के लिए जैनाचार्यों ने सस्कृत मे लिखने को प्रधानता दी थी। ऐसे आचार्यों मे समन्तभद्र प्रथम हैं। इन्होने देवागम, युक्त्यानुशासन और स्वयभू स्तोत्र लिखकर भक्ति के रूप मे भगवान के विशुद्ध रूप का ऐसा चित्रण किया है जो शास्त्र और तर्क की कसौटी पर भी निरवद्य सिद्ध होता है। ये कृतिया रागी-द्वेषी देवों की पूज्यता पर प्रहार करती हुई अन्धविश्वासो का भण्डा फोडती हैं। और पर-कर्तृत्व की जड़ को खोदकर कर्म-प्रधानता या स्व-पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा करती हैं। मिथ्यामतो के निवारण के लिए समन्तभद्र स्वामी ने पूरे भारत मे शास्त्रार्थ करके सर्वोदय तीर्थ का प्रचार किया था। तथा गृहस्थ की आचार-सहिता को

सुलभ करने के लिए 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' नामक कृति की भी रचना की थी। ये टीकाकार भी थे जीवट्ठाण, आदि पांच खडों पर लिखी इनकी जीवसिद्धि टीका, तत्वार्थ सूत्र पर रचित गन्धहस्ति-भाष्य और भस्मक आदि रोगो का निवारक उत्कृष्ट 'वैद्यक शास्त्र' अब तक अप्राप्त हैं।

सिद्धसेन

समन्त भद्र की स्तुति विद्या-शैली पर चले दूसरे महान आचार्य सिद्धसेन हैं। अपने पूर्ववर्ती के समान इन्होंने भी प्राञ्जल भाषा, रचना-सौष्ठव और तर्कशैली से परिपूर्ण २२ द्वात्रिंशत्काए रची हैं। इनमे जैन तत्वो, न्याय के सिद्धान्तो, सम्यक् मत निरूपण और कथाओ का समावेश किया है। इनकी कृतिरूप से विश्रुत सन्मति-सूत्र जैन वाङ्मय का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'न्यायावतार' भी जैनन्याय की उत्तम कृति है।

वट्टिकेर

वीर निर्वाण की नौवी-दशवी शती मे जहा आचार्य स्कंदिल और नागार्जुन आचारांग आदि के सकलन मे लगे थे तभी आचार्य वट्टिकेर ने 'मूलाचार' ग्रन्थ लिखकर जिनधर्मी साधु की चर्या को सागोपांग विस्तार से लिपिबद्ध कर दिया था। इसके द्वारा व्रत, समिति, गुप्ति, चिन्तवन, ज्ञान, तप और ध्यान का स्वरूप और विधि जान करके साधु तिल-तुष मात्र से बचकर ससार, शरीर और भोग से निवृत्त होता है। तथा एक लगोटी (फालक) के रहने पर भी अपने को मुनि नही मानता है। तथा इसे अपवाद मार्ग मानकर इससे छूट कर उत्सर्ग मार्ग (जिन-कल्प) को ही मोक्ष-माग समझता है।

देवर्द्धि गणि

जैसा कि उत्थानिका मे लिखा है उस क्रम मे आचार्य देवर्द्धिगणि जैन वाङ्मय के प्रथम स्मृतिकार हैं। इनके बाबत स्पष्ट लिखा है कि "वीर निर्वाण की दशवी शती मे बारह वर्षी दुर्भिक्षो के कारण अधिकाश साधुओ की मृत्यु या विपत्ति हो जाने पर बहुभाग श्रुत के खडित होने पर भव्यो के उपकार के लिए और श्रुत भक्ति से प्रेरित होकर तथा सघ के आग्रह पर, मौत से बचे उस समय के साधुओ को बलभी मे बुलाकर उनके मुख से विस्मृति से बचे कम-बढ खडित-अखडित आगम के पारायणो को सुनकर अपने विवेक से क्रमबद्ध रूप से सकलन करके पुस्तकारूढ या लिपिबद्ध किया। इस कारण से प्रारम्भ मे गणधर-भाषित होने पर भी सकलन के बाद आगमो के कर्त्ता देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ही हुए।" इन्होने पूर्ववर्ती शास्त्रकारो के समान कही भी यह नही लिखा है कि "आगम के कर्त्ता सवज्ञ देव हैं। तदनन्तर गणधर देव और प्रतिगणधर देव हैं। तथा उनके वचनो का सार या मूल रूप से यह आगम है।"

जो भी हो, देवर्द्धिगणि का महोपकार है। क्योकि उन्होने ग्यारह (आचार, सूत्र, स्थान, समवाय, भगवती, ज्ञाताधर्म, उपासक दशा, अन्तकृत, अनुत्तरौपपातिक, प्रश्न व्याकरण और विपाक) अगो को, औपपातिक, राजप्रश्नीय, प्रज्ञापना आदि बारह उपागो को, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आवश्यक और पिण्ड-निर्युक्ति चारो मूलसूत्रो को तथा आचारदशा, कल्प, व्यवहार, निशीथ, महानिशीथ और जीव कल्प इन छह छेद-सूत्रो को लिपिबद्ध कराके भारतीय और विशेषकर जैन श्रमण सस्कृति के स्वरूप, विरूप और इतिहास की विपुल सामग्री को अमर किया है। तथा उत्तरकालीन आचार्यो को प्रकीर्णक, चूलिका-सूत्र की रचना करने का अवसर दिया है।

शिवार्य

शिवार्य, तिलोय पण्णत्ति के कर्त्ता यतिवृषभ के समकालीन थे। इनकी कृति 'आराधना' भगवती सूत्र या अंग का मूलरूप प्रतीत होता है। ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र की आराधनाओं को विशद और विस्तृत रूप से बताते हुए यह ग्रन्थ जिनधर्मी मुनि के आचरण को सांगोपांग चित्रित करता है।

पूज्यपाद

वीर निर्वाण की ११वी शती (ई ५वीं शती) ने जिन आचार्यों को जन्म दिया उनमे आचार्य देवनंदि पूज्यपाद सर्वोपरि हैं। ये मूलत वैयाकरण (जैनेन्द्र व्याकरण) थे तथा इन्होने इस पर 'न्यास' भी लिखा था। तत्त्वार्थ-सूत्र पर लिखी गयी इनकी 'सर्वार्थसिद्धि' नाम की वृत्ति इस सस्कृत सूत्र-ग्रन्थ की प्रथम और परिपूर्ण टीका है। इसमे भी जहा इनके अगाध तत्वज्ञान की छटा मिलती है वहीं इनके वैयाकरण रूप के भी दर्शन होते हैं। इष्टोपदेश, समाधि शतक और दशभक्ति भी इनकी आध्यात्मिक रचनाए हैं। अनुश्रुति है कि ये ऐसे उद्भट साधक थे कि शान्तिभक्ति की साधना के द्वारा इन्होंने अपना नेत्रदोष ठीक कर लिया था।

उत्तरकालीन आचार्यों द्वारा उल्लिखित इनके छन्दशास्त्र, वैद्यकसार सग्रह तथा जैनेन्द्र-न्यास अब तक अप्राप्त हैं।

भद्रबाहु (द्वितीय)

देवर्द्धिगणि यदि छिन्न-भिन्न आगमो को लिपिबद्ध कराने के कारण अमर हैं तो भद्रबाहु (द्वि) भी मुख्य आगमादि पर निर्युक्तियो की रचना के कारण महोपकारी हैं। इन निर्युक्तियो के बल पर ही प्रथम दो अगो का विषय सुगम हुआ है। तथा सूर्य प्रज्ञप्ति उपाग, दशवैकालिक उत्तराध्ययन-आवश्यक मूलसूत्र, व्यवहार-वृहत्कल्प-दशाश्रुतस्कन्ध छेदसूत्र तथा ऋषि-भाषित-ससक्त प्रकीर्णको का पठन-पाठन आगे चला है।

भद्रबाहु (द्वि) योग, ज्योतिष आदि मे पारगत थे। ये प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्री वराहमिहिर के अग्रज थे। और अपनी योगसिद्ध के कारण परम मान्य एव प्रतिष्ठित थे। इनकी परम्परा को ही जिनभद्र तथा जिवदास सूरि ने आगे बढाया है। विशेषावश्यक भाषा, जीत कल्प वृहत्सग्रहिणी और वृहत्समास ऐसी रचनाए हैं जिनके द्वारा सकलित आगम साहित्य का पठन-पाठन वैसा ही सरल हुआ है जैसा कि सघदास के काव्य 'वसुदेवहिण्डी' से प्रथमानुयोग हुआ था।

अकलक

स्वामी समन्त भद्र से चली जैन न्यायधारा को महानद का रूप देने का श्रेय अकलक भद्र को ही है। राजकुल मे उत्पन्न इन दोनो भाइयो ने प्रच्छन्न रूप से बौद्ध विहारो मे रहकर बौद्ध दर्शन का गूढ अध्ययन किया और अनुज (निकलक) की बलि देकर जिन शासन के प्रचार-प्रसार का बीडा उठाया था। देवागम पर लिखित इनकी 'अष्टशती'-वृत्ति ने ही भविष्य मे जैन न्याय के मुकुटमणि ग्रन्थ अष्टसहस्री का रूप लिया। पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि को वृत्ति बनाकर लिखा गया इनका भाष्य 'राजवार्तिक' अनुपम ग्रन्थ है। लघीयस्त्रय, न्याय विनिश्चय, सिद्धि विनिश्चय और प्रमाण-सग्रह इनकी मौलिक कृतिया हैं।

हरिभद्र

अकलंक भद्र के समान वीर निर्वाण की तेरहवी शती ने मौलिक, विस्तृत एव वीतराग रचनाकार हरिभद्र

सूरि को भी पाया था। बौद्धो से लोहा लेने के समान इन्होंने सकलित आगमो को सस्कृत भाषा-बद्ध किया। आवश्यक भाष्य, प्रज्ञापना आदि को इनके कारण ही व्यापक मान मिला। अनेकान्त-जयपताका, शास्त्रवार्ता समुच्चय, षड्दर्शन समुच्चयादि जहां इनको तर्क कर्कश रूप की झांकी देते हैं। वही समराइच्च कहा, धूवरिव्यानादि इनके कवित्व की सुरभि फैलाते हैं। योगबिन्दु, योगदृष्टि समुच्चयादि को पढ़ते ही इनका साधक रूप मानस पटल पर घूम जाता है।

सावयपण्णत्ति, पचवस्तु, आदि गृहस्थ की आचरण-सहिता के प्ररूपक हैं। उपदेश पद, सबोध प्रकरण, षोडसकादि मे स्थविर कल्पियो की बढ़ती सुख-शीलता और घटती जिनधर्मिता का स्पष्ट प्ररूपण है। अपनी प्रगाढ़ विद्वत्ता, निजकल्पी मान्यता और आचरण के प्रतिपादक हरिभद्र सूरि अद्भुत आचार्य हैं।

वीरसेन

'कुबलय माला' कर्त्ता उद्योतन सूरि और हरिवश-पुराणकार जिनसेनाचार्य (प्र) के बाद इनके आदर्श जिन-धर्मी शिष्य आचार्य वीरसेन जैन वाङ्मय रूपी नक्षत्र मण्डल मे सूर्य के समान हैं। आचार्य पुष्पदन्त और भूत-बलि के षट्खडागम पर रचित इनकी धवलाटीका जहा आकार मे विशाल (७२ हजार श्लोक प्रमाण) है वही सूक्ष्म विश्लेषण और गभीरता के कारण भी अभूतपूर्व है। इस सरल, सरस और ससारटीका के बल पर ही जिन वाणी का रहस्य समझा जा सकता है। इनकी शैली सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष तथा ऐतिह्य पूर्ण है। इसे देखकर ही तत्कालीन विद्वान् सर्वज्ञ के अस्तित्व मे विश्वास करते थे।

जिनसेन (द्वि)

आचार्य वीरसेन ने षट्खण्डागम के पूर्ववर्ती पेज्जदोष पाहुड पर भी जयधवला टीका प्रारभ की किन्तु आयु-कर्म आडे आया। किन्तु उनके प्रधान शिष्य जिनसेन (द्वि) ने आयुकर्म के प्रहार को निष्फल करते हुए गुरु की कृति को साठ हजार श्लोको मे पूर्ण किया। ये जैसे सिद्धान्त पारगामी थे वैसे ही कवि भी थे। इनका पार्श्वाभ्युदय एक समस्या (मेघदूत की) पूर्ति खण्ड काव्य है। किन्तु शृगार रस को प्रशम या विराग मे ढालना चमत्कारी भी है। इन्होने महापुराण लिखकर ६३ शलाका पुरुषो के साधक जीवन को चित्रित करना प्रारभ किया था। किन्तु आयुकर्म ने यहा भी प्रहार किया। और इनके प्रधान दीक्षित-शिष्य गुणभद्राचार्य ने 'उत्तर पुराण' रूप से गुरु की कृति को पूर्ण किया। गुणभद्राचार्य का आत्मानुशासन अन्तर्मुखता का प्रतीक है तथा जिनदत्त-चरित कथारूप से जीव उद्धार का आदश उपस्थित करता है। इनके समान ही शीलाक सूरि का चऊपन्न महापुरिस चरिउ भी प्रथमानुयोग का विशाल ग्रन्थ है।

विद्यानन्द

'गणितसार सग्रह' के कर्ता महावीर और प्रखर वैयाकरण पाल्यकीर्ति (शाकटायन) के बाद आचार्य विद्यानन्द ऐसे प्रकाश पुञ्ज है जिन्होने जैन वाङ्मय मे वृत्ति-भाष्य शैली को चरम उत्कर्ष तक पहुचाया है। तत्वार्थ सूत्र पर श्लोक-वार्त्तिक और अष्टशती पर 'अष्ट सहस्री' की रचना ही इन्हे प्रात स्मरणीय बनाती है। किन्तु इनकी मौलिक कृतिया भी लोकोत्तर हैं। आप्त परीक्षा, प्रमाण परीक्षा, पत्र परीक्षा, सत्य शासन परीक्षा इनके परीक्षा प्रधान रूप की द्योतक हैं। इन्होंने समन्तभद्र के युक्तानुशासन पर भी टीका की थी जो अब तक अप्राप्त है। शिरपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र इनके भक्त रूप का परिचायक है। विद्यानन्द की परम्परा मे

अभयसूरी भी हैं जिन्होंने सिद्धसेन के 'सन्मतितर्क' पर २५००० श्लोक प्रमाण तत्वबोधिनी टीका लिखकर न्यायशास्त्र भडार को भरा है।

ईसा की ९वीं शदी मे और बाद में युग ने जहां अमृतचन्द्र सूरि जैसे उद्भट टीकाकार (समयसार, प्रवचनसार, पचास्तिकाय) तथा तत्वार्थसार, पुरुषार्थ सिद्धि, अमृत कलश, लघुतत्वस्फोट आदि के मौलिक रचनाकार तथा षटखडागम को सार रूप से जीवकांड, कर्मकांड, त्रिलोकसार, लब्धिसार के प्रणेता नेमिचन्द्र सिद्धात चक्रवर्ती को देखा, वहीं इस समय ने जटासिंह भक्ति से प्रारब्ध जैन काव्य शैली का सोमदेव की यशस्तिकलक चम्पू, वादीभसिंह की गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूणामणि एव धनञ्जय के द्विसधान महाकाव्य का चरम विकास भी देखा है।

यह युग ही वह युग है जिसे परीक्षामुख सूत्रो के टीकाकार माणिक्यनन्दि, सिद्धिविनिश्चय के टीका-कार अनन्तवीर्य, प्रमेयकमलमार्तण्डकार प्रभाचन्द्र न्यायविनिश्चय के टीकाकार वादिराज लघीयस्त्रय की टीका न्यायकुमुदचन्द्र के कर्त्ता तथा शाकटायनभाष्य के आशिक लेखक आदि का उदय हुआ है।

सुभाषितरत्न सदोहकार अमितमणि, ज्ञानार्णवकार शुभचन्द्राचार्यादि ने भी इसी युग को आलोकित किया है। मल्लधारी हेमचन्द्र ऐसे अनुयोगद्वार, जीवशतकसमास, उपदेशामृतादि मौलिक कृतियो के स्रष्टा मुनिचन्द्र (हरिभद्र) आदि को साहित्यसृष्टि पर कलशाकारेव।

हेमचन्द्र

हेमचन्द्राचार्य का उदय इस सर्वशास्त्र सम्पन्न जैनसाहित्य भूमिका पर सभव हो सका था। सिद्धहेम शब्दानुशासन, अनेकार्थचिन्तामणि, देशी नाममाला, काव्यानुशासन, छन्दोनुशासन जहा इनके वैयाकरण तथा महाकविरूप के परिचायक हैं वही प्रमाणमोमासा, वीतरागस्तव, अर्हन्नीति, नाभेयनाभिद्विसन्धानादि उनके नैयायिक साधक रूप के प्रतीक हैं। त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित, परिशिष्टपर्व आदि उनको पुराणकर्ता बनाते है। प्रचलित है कि आचार्य हेमचन्द्र के उपाश्रय ८४ लेखनी सतत चालू थी। सिद्धान्त, साहित्य, व्याकरण, योग आदि समस्त विधाओ पर इनके गुरुत्व मे लेखन हुआ है। समन्तभद्र-सोमदेव के गृहस्थाचार की धारा मे इन्हाने श्रावकाचार पर भी रचना की थी।

इस युग मे जिनकल्पी गृहस्थो ने भी इन स्थविरकल्पी साधुओ से उत्साहित होकर ग्रन्थ-रचना प्रारभ की थी। क्योंकि जिनधर्मी भट्टारक भी प्रारभ मे मठ से बाहर जाते समय गेरुआ पहनते थे जैसा कि मगध के दुर्भिक्षकाल और बाद मे स्थविरकल्पी मुनि करते थे। किन्तु स्थविरकल्पी मुनियो की तरह जब भट्टारक मठ मे भी सचोल रहने लगे तो गृहस्थ विद्वानो का सकोच (विधिवत दीक्षित जिनकल्पी मुनि ही शास्त्रकार हो सकता है) समाप्त हो गया और वसुनन्दि तथा प आशाधरजी ने श्रावकाचार ही नही रचे अपितु 'अनगार-धर्मामृत' लिखकर मुनियो का शिक्षकत्व भी प्राप्त किया।

भारतीय प्राकृत और सस्कृत साहित्य की कोई भी विधा ऐसी नही है जिस पर विपुल जैन-ग्रन्थ न लिखे गए हो। किन्तु यवनो की विध्वसक नीति के कारण यह विपुल वाड्मय शास्त्रभडारो मे बद करके जिज्ञासुओ के लिए दुर्लभ कर दिया गया था। फलत नष्ट होने से बचा बहुत कुछ अब भी बद पड़ा है। और भारतीय सकीर्ण दृष्टि के कारण प्रकाश मे नही आया है। जिनधर्मी यद्यपि देव-शास्त्र-गुरु को समान रूप से मानते हैं किन्तु शास्त्र-प्रतिष्ठा (प्रकाशन-प्रचार) की अपेक्षा देव (मूर्ति) प्रतिष्ठा ऐसी बीतकाल परम्परा को ग्रसित होने के कारण, विश्व को जीव-उद्धार कला के ज्ञान से वचित किए हैं।

जैन स्थापत्य और मूर्तिकला

नीरज जैन

□□

[देश मे चतुर्दिक् बिखरे अपार अवशेषो पर छोटे से लेख में लिखना वैसे भी कठिन काम है, फिर जब भाई यशपालजी के 'अभिनन्दन-ग्रंथ' के लिए लिखने का मन किया तब यह कार्य मुझे कुछ और कठिन लगा। यह इसलिए कि यशपालजी स्वयं पुरा विद्या के अध्येता हैं। प्राचीन शिल्पावशेषों के प्रति उनके मन की ममता बहुत पुरानी है। अहार का चालीस वर्ष पूर्व स्थापित शान्तिनाथ-संग्रहालय' उनकी इस ममता का जीवन्त प्रमाण है। यशपालजी से मेरा परिचय इसी संग्रहालय के निमित्त से दो युग पूर्व हुआ था। हम दोनो की सम धर्मिता के संदर्भ मे इस आलेख को, यशपालजी के प्रति मेरी आदरांजलि के रूप मे ग्रहण किया जाये, ऐसी मेरी आकाक्षा है। लेखक]

स्थापत्य और मूर्तिकला, यही दो हमारे देश के प्राचीन इतिहास के सबसे विश्वस्त सूत्र हैं। हम इन्हें अपने अतीत का सर्वाधिक प्रामाणिक साक्ष्य कह सकते है। भारतीय स्थापत्य की विभिन्न विधाओ पर जब हम दृष्टि डालते हैं तब यह तथ्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि लगभग ढाई हजार वर्ष की इस कला-यात्रा मे जैन निर्माताओ का सदा सर्वत्र महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्थापत्य और कला की हर दिशा मे, इतिहास की हर शताब्दी मे और देश के हर हिस्से मे, जैन कलाकारो ने अपनी अनवरत सक्रियता से वह भूमिका निभाई है, जिसके बल पर देश मे सर्वत्र अनेक प्राचीन और गौरवशाली उदाहरण हमारे नाम पर दर्ज हैं।

सिन्धु-सभ्यता काल

सिन्धु-सभ्यता के हड़प्पा और मोहनजोदडो आदि स्थानो पर पाये जाने वाले कलावशेषों की गणना यदि करें तो वहा से प्राप्त जटाधारी योगी और स्कधयुक्त वृषभ की आकृतियो को सहज ही प्रथम तीर्थंकरो का प्रतीक माना जा सकता है। अनेक विद्वानो ने यह सकेत प्रस्तुत किए हैं। इस सभ्यता की चित्रलिपि का वैज्ञानिक अध्ययन जबतक प्रस्तुत नही होता। तबतक इन अवशेषो के सम्बन्ध मे निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता। क्रमिक इतिहास के साथ पूर्वापर रूप से सम्बद्ध नही होने के कारण, यदि हम इस सभ्यता की बात छोडकर चर्चा करें, तो हमारे देश मे प्रस्तर कला के प्राचीनतम अवशेष ईसा पूर्व चौथी-तीसरी शताब्दी से मिलना प्रारम्भ होते हैं। सर्वप्रथम स्तूप, उसके पश्चात गुफा मन्दिर और सपाट छतों वाले शिखरविहीन छोटे आकार के देवालय, तथा इन सबके बाद ऊचे-ऊचे शिखरो या गोपुरो से सयुक्त मन्दिर हमारे देश मे बने। वास्तुकला के विकास का यही क्रम, थोडे-बहुत अन्तर के साथ, उत्तर से दक्षिण तक पूरे देश मे, मौर्य-युग से मध्य-युग तक लगभग डेढ़ हजार वर्ष मे विकसित हुआ है।

मौर्य और शु ग-कुषाण काल

ईसा के सवा तीन सौ वर्ष पूर्व, भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के उपरान्त उत्तर भारत मे मौर्य साम्राज्य

की स्थापना हुई। उस काल में जब ओपदार पालिश से चमकाये हुए अशोक चक्र और सिंह-स्तम्भों जैसी ऐश्वर्यशाली कलाकृतियों का निर्माण हो रहा था, तब उसी के साथ जैन तीर्थंकरो की वे वस्त्राभूषणविहीन प्रतिमाएं भी निर्मित होने लगी थीं जिनके अवशेष हमे पटना, प्राचीन पाटलिपुत्र के समीप लोहानीपुर से प्राप्त हुए हैं। उसके शीघ्र पश्चात 'बाबा प्यारा मठ' या 'लोमश ऋषि की गुफा' आदि अनेक जैन गुफाओ का निर्माण प्रारम्भ हो गया। आर्यावर्त मे इन गुफाओं का तक्षण सभवत दक्षिण मे, वाकाटको द्वारा अजन्ता के तक्षण के साथ ही साथ प्रारम्भ हुआ।

जिन दिनो शुंग और कुषाण राजाओ के अधीन बौद्ध कलाकार सारनाथ, सांची, भरहुत और अरावती के स्तूपो का निर्माण कर रहे थे, उन दिनो जैन निर्माताओ की कुशल सयोजना में मथुरा के पास ककाली-टीला का प्रसिद्ध जैन स्मारक बनाया गया। अनेक मगल प्रतीको के मध्य विराजमान तीर्थंकर प्रतिमाओ से सज्जित आयागपट बनाकर, मथुरा के कलाकार ने भारत की धरती पर, आराधक के द्वारा आराध्य की आकृति को सर्वप्रथम शिलांकित करने का श्रेय प्राप्त किया।

इतिहास के उसी कालखण्ड में, ईसापूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य, कलिग मे वह प्रतापी जैन सम्राट हुआ जिसे इस देश का इतिहास 'कलिंग-चक्रवर्ती' ऐल सम्राट खारवेल के नाम से जानता है। उस युग के कलाकारो द्वारा निर्मित जैन स्थापत्य के बहुत ही शानदार अवशेष, खण्डगिरि-उदयगिरि की गुफाओ मे, पटना के आसपास और मथुरा मे प्राप्त हुए हैं। खण्डगिरि-उदयगिरि की गुफाओ का निर्माता खारवेल, अशोक की तरह प्रतापी, धार्मिक और यशस्वी सम्राट था। उसके हाथीगुम्फा अभिलेख के अनुसार, खारवेल ने अपने शासन के बारहवें वर्ष मे मगध के शक्तिशाली साम्राज्य पर आक्रमण किया। वह अपने अभियान मे सफल हुआ और उसने भगवान जिनेन्द्र की वह प्राचीन प्रतिमा वापस प्राप्त की जिसे कभी राजा नन्द उसके पूर्वजो के हाथ से छीनकर कलिग ले आया था। मगध मे भी यह प्रतिमा 'कलिंग-जिन' के नाम से प्रसिद्ध हो गई थी।

सम्राट खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख भारतीय अभिलेखो के समूह मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किसी शासक के शासनकाल का, देश, काल और समाज के सन्दर्भ मे, तिथिक्रम के साथ लिपिबद्ध किया गया, यह हमारे देश का सर्वाधिक प्राचीन ऐतिहासिक दस्तावेज है। इसके पूर्व के किसी भी शिलालेख मे शासक के नाम और उपाधियों के साथ, उसकी उपलब्धियो का ऐसा विगतवार लेखा-जोखा कही अकित नहीं मिलता। अशोक के अभिलेखो मे भी नही।

शुग-कुषाण काल मे जैन निर्माताओ ने अपने आराध्य तीर्थंकरो की एक से एक मनोज्ञ और सुन्दर मूर्तिया गढ़वाई। ककाली-टीला उस काल के कला-वैभव का सबसे बडा कोषागार सिद्ध हुआ है। तोरण पूजा वेदिका-अर्चन आदि अनेक लौकिक अभिप्रायो के साथ तीर्थंकर प्रतिमाओं की भी वहा बहुलता है। मथुरा मे जैन प्रतिमाओ के निर्माण की यह शृखला, हमे उत्तरोत्तर विकसित होती हुई, अपने सतत और अनोखे रूप मे गुप्तकाल तक दिखाई देती है। देश के अनेक भागों मे दूर-दूर तक, मथुरा के चित्तीदार, लाल बलुवा पत्थर की बनी मूर्तिया इतनी अधिक सख्या मे मिली हैं कि जैसे या तो किसी वृहत् धार्मिक अनुष्ठान-अभियान के अन्तर्गत उनका निर्माण और चतुर्दिक वितरण किया गया हो, या फिर मथुरा मे व्यापारिक उद्देश्य से निर्मित होकर ये प्रतिमाए देश के कोने-कोने तक पहुची हो।

ईसा के जन्म से पूर्व, शुग काल मे मथुरा मे जिस नयनाभिराम शिल्प की रचना हुई उसमे जैन आयागपट और कतिपय देव प्रतिमाए अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। आयागपट के मध्य मे तीर्थंकर का अंकन करके, चारो ओर नंद्यावर्त, धर्मचक्र, स्वस्तिक और मीनयुगल, कलश और लतागुल्म आदि की जो

प्रभावक प्रस्तुति मथुरा के कलाकार ने की है, अथवा उसकी सक्षम छैनी से आराध्य प्रतिमाओं पर देवत्व और वीतरागता के जो भाव साकार हुए हैं, उससे वहां के कलाकार के सौन्दर्य-बोध और भावांकन की योग्यता का परिचय मिलता है। इसी प्रकार खण्डगिरि-उदयगिरि की गुफाओ मे जो जैन कथानक उकेरे गए, उनका भी मूर्ति-शास्त्रीय महत्व कला समीक्षकों ने स्वीकार किया है। तीर्थंकरो के परिकर मे आयुध और वाहन आदि के साथ शासन देवताओ का बनाया जाना भी खण्डगिरि की अपनी विशेषता है। जैन मूर्ति-शिल्प मे शासन देवताओ का प्राचीनतम अस्तित्व सभवत यही प्राप्त होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपरोक्त यह सारा कला-कोष केवल दिगम्बर जैन निर्माताओ और कलाकारो की देन है।

मौर्यवश का सस्थापक चन्द्रगुप्त जैन धर्मानुयायी था। भारत की सीमाओ के बाहर तक, चारो दिशाओ मे बढते हुए विशाल साम्राज्य की बागडोर अपने पुत्र बिन्दुसार के हाथो मे देकर, वह यशस्वी सम्राट पचास वर्ष की सामान्य-सी आयु मे ही, दिगम्बर जैनाचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवली का शिष्य बनकर उनके साथ दक्षिण की ओर चला गया। कर्नाटक के श्रवणबेलगोल मे चन्द्रगिरि पहाडी पर चन्द्रगुप्त द्वारा दिगम्बरी मुनि दीक्षा प्राप्त करने और जैन साधना पद्धति से सल्लेखना या समाधिमरण द्वारा शरीर त्याग करने के उल्लेख अनेक अभि-लेखो और शास्त्रो मे मिलते हैं। दक्षिण भारत के प्रदेशो मे उसके पूर्व से ही जैन धर्म अवश्य प्रचलित रहा होगा। धार्मिक प्रदेशो के रूप मे कर्नाटक की कीर्ति सुनकर ही आपातकाल मे आचार्य भद्रबाहु बारह हजार दिगम्बर मुनियो का विशाल सघ लेकर वहा गए होंगे।

चन्द्रगुप्त मौर्य का पौत्र प्रसिद्ध सम्राट अशोक, बौद्ध धर्म और सस्कृति का पोषक माना जाता है। परन्तु हमारे इतिहास की उलझी गुत्थियो मे अनेक ऐसे सकेन मिलते हैं जिनके आधार पर जीवन के अतिम काल मे अशोक द्वारा जैन धर्म अगीकार किये जाने की धारणा की पुष्टि होनी है। जैन धर्म, साहित्य और कला को उसका सरक्षण प्राप्त होने के तो अनेक उल्लेख मिले हैं। अशोक के पौत्र सम्प्रति ने न केवल जैन धर्म स्वय धारण किया वरन् देश भर मे और देश के बाहर अफगानिस्तान तक उसका प्रचार भी किया। बिहार मे जो इतिहास प्रसिद्ध जैन राजे हुए उनमे श्रेणिक, बिम्बसार, अजातशत्रु, चेटक, जितशत्रु, नन्दिवर्द्धन, चन्द्रगुप्त और सम्प्रति के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुप्त काल

ईसा की चौथी-पाचवी और छठी शताब्दी, मोटे रूप मे यही तीन सौ वर्ष का कालखण्ड 'गुप्त काल' से नाम से जाना जाता है। भारत मे स्थापत्य, मूर्ति निर्माण, चित्राकन और साहित्य की रचना का जो कार्य इस काल मे हुआ, उसके बाद वैसी मौलिक और कलात्मक शैली मे वह फिर कभी नही हो सका। इसीलिए इस कालावधि को भारत का स्वर्णकाल कहा जाता है। पूर्व की भाति गुप्तकाल मे भी, इन सभी विधाओं के सृजन मे जैनो का समान योगदान रहा है। उस समय प्राय पूरे भारत मे जैन धर्म की स्थिति बहुत अच्छी रही है।

भारतीय मन्दिर कला के विकास मे, सभवत कैलाश पर्वत की ऊची चोटियों को आदर्श मानकर, शिखरयुक्त मदिर शैली का विकास एक बडी घटना थी। शिव और ऋषभदेव दोनों की तपोभूमि होने के कारण कैलाश, हिन्दू और जैन दोनो ही आराधको के लिए एक जैसा पूज्य रहा है। मदिर मे शिखर की कल्पना यदि कैलाश की चोटियो से ली गई हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उधर नागवशीय भारशिव राजाओं ने अपने हर निर्माण मे, राज्य की सीमा के प्रतीक की तरह, गगा-यमुना को सरित देवी के रूप मे अंकित करने की प्रथा चलाई। राज्य-चिह्न होने के नाते, द्वार-सज्जा के उपयुक्त कोमल और सुन्दर अभिप्राय होने के नाते, जैनों

मे उसे ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। इस प्रकार जैन पुराण अथवा साहित्य में अपना कोई स्थान न रखते हुए भी, गंगा और यमुना, लगभग दस शताब्दियों तक जैन मन्दिरो के द्वार पर सजाई जाती रही। आज देवगढ़ खजुराहो, बिलहरी और बानपुर आदि के मंदिरों के द्वार पर हमे गगा-यमुना की उत्कृष्ट प्रतिमाएं देखने को मिलती हैं। परस्पर प्रेम और सौजन्य के कारण, कलात्मक प्रतीको के आदान-प्रदान की उदारता के कारण और सह अस्तित्व की महत्वपूर्ण परम्पराओ के कारण, इन सारे सामान्य प्रतीकों को धारण करने वाले जैन मंदिरो का निर्माण गुप्तकाल मे प्रारम्भ हुआ और पूरे देश मे दीर्घकाल के लिए पनपता रहा।

उसी काल में पन्ना के पास सीरा पहाड़ी की गुफाओं मे विशाल तीर्थंकर प्रतिमाओ का निर्माण हुआ तथा उसके समीप सिद्धनाथ की उपत्यका में जटा-जूट सुदर जैन प्रतिमाए बनाई गईं। सीरा पहाडियो की मूर्तियो के इन्द्र, प्रभामण्डल, धर्मचक्र अपनी सुन्दरता और सुघड़ता के बल पर गुप्त कला के उत्तम प्रतिनिधि हैं। वहां से प्राप्त भगवान पार्श्वनाथ की फणावलि मण्डित उत्थित पद्मासन प्रतिमा, जो अब रामवन के तुलसी सग्रहालय में स्थित है, उस काल की प्राणवान कला का श्रेष्ठ उदाहरण कही जा सकती है। विदिशा के समीप उदयगिरि की गुफाओ का स्थापत्य और मूर्ति-शिल्प भी गुप्तकाल के जैन कलाकारो की देन है। विख्यात पुरा मनीषी श्री कृष्णदत्त बाजपेयी द्वारा विदिशा मे उत्खनन मे प्राप्त की गई जैन तीर्थंकरो की वे तीन प्रतिमाए तो अपना ऐतिहासिक महत्व रखती हैं जिनके अभिलेख के आधार पर महाराजाधिराज रामगुप्त की ऐतिहासिकता प्रमाणित करके गुप्त साम्राज्य की एक विलुप्त शृखला उन्होने जोड दी है। राजघाट से प्राप्त धरणेन्द्र पद्मावती सहित पार्श्वनाथ की प्रतिमा भी कला की दृष्टि से उत्कृष्ट मानी गई है। यह प्रतिमा भारत कला-भवन मे सग्रहीत है।

दक्षिण भारत की कला

उत्तर भारत की ही तरह दक्षिण भारत मे भी जैन धर्म का प्रचार-प्रसार अति प्राचीन काल से रहा है। इतिहास काल के प्रारम्भ से ही वहा भी इस धर्म के चिह्न और प्रमाण प्राप्त होने लगते हैं। हम देखते है कि तीसरी शताब्दी ईसापूर्व मे, मगध के दुर्भिक्ष के समय, जब श्रुतकेवली भद्रबाहु ने आचरण की सुरक्षा के विचार से साधुसघ को स्थानान्तरित करने का विचार किया, तब उनकी दृष्टि दक्षिण देशो की ओर ही गई। इतना भर नही वरन अपनी समाधि-साधना के लिए भी उन्हे वही स्थान उपयुक्त लगा। वे स्वय अपने शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ श्रवणबेलगोल मे रहे और उस पूरे सघ को उन्होने तमिल देशो की ओर भेज दिया। विख्यात पुराशास्त्री श्री टी एन रामचन्द्रन ने इन सब ऐतिहासिक तथ्यो का परीक्षण करके लिखा है कि—"दक्षिण मे जैन धर्म के प्रचार-प्रसार का इतिहास द्रविडो को आर्य सभ्यता का पाठ पढाने का इतिहास है।"

स्थापत्य और मूर्तियो से मिलने वाले प्रमाण भी इस स्थापना की पुष्टि करते हैं। पेठण के सातवाहन शासकों द्वारा ईसापूर्व दूसरी शताब्दी मे निर्मित अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं। पाचवी शताब्दी के आसपास तेर की उन जैन गुफाओं का तक्षण हुआ जिनमे बडे-बडे कक्ष और दीर्घाओ म विशाल जिन बिम्ब उत्कीर्ण किए गए हैं। निजाम के शासनकाल में मरम्मत के नाम पर ग्रामीण अबोध मजदूरो के द्वारा इन मूर्तियो मे कुछ विकृति आ गई है, पर अभी भी उनकी पहचान शेष है। इन गुफाओं के भीतर बावडी की सरचना इस बात का भी संकेत देती है कि वहां कभी बड़े संघों का निवास रहा है। समुचित देखभाल के अभाव मे, शताब्दियो के प्राकृतिक क्षरण के कारण, अब ये गुफाएं विनाश के कगार पर खडी हैं। यदि कोई उपाय नही किए गए तो ये महत्वपूर्ण गुफाएं इक्कीसवीं शताब्दी का सूरज देख पाएंगी, इसमे भी सदेह है।

कर्नाटक के उत्तर कनारा जिले मे, बनवासी के समीप गुनापुर में, कदम्ब राजा रविवर्मा (४८५-५१५ ई) के समय का सत्ताईस पक्तियो का अभिलेख लगभग बीस फुट ऊंचे स्तम्भ पर अंकित है। इस लेख में राजा द्वारा मन्मथनाथ का मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख है। प्रथम कामदेव बाहुबली ही इस मन्दिर के मूल नायक मन्मथनाथ थे। यह अभिलेख अनेक प्रमाणो से जैन अभिलेख सिद्ध किया गया है और बाहुबलीस्वामी की मूर्ति या मदिर का भारत भर मे यह प्राचीनतम उल्लेख ठहरता है। कदम्बों के बाद बदामी चालुक्यों के शासनकाल मे जैन धर्म बहुत फलता फूलता रहा। छठी शताब्दी मे ऐहोल मे रविकीर्ति कवि द्वारा जिनालय के निर्माण का प्रमाण मिलता है।

छठी शताब्दी मे ही दिगम्बर जैनाचार्य सिहनन्दि के आशीर्वाद से गग राजवश की स्थापना हुई। इस वश का तीसरा शासक दुर्विनीत (६०५-६५० ई) आचार्य पूज्यपादस्वामी का भक्त था। दुर्विनीत के उत्तराधिकारी पुत्र मश्कर ने जैन धर्म को अपना राज्य-धर्म घोषित कर दिया था। इस प्रकार कदम्बो के बाद भी चालुक्यो और गगो के शासन मे जैन धर्म वहा आश्रय पाता रहा। उसी काल मे ऐहोल और बदामी गुफा मन्दिरो का निर्माण हुआ, जिनमे तीर्थंकरो के साथ बाहुबली की भी तदाकार मूर्तिया उत्कीर्ण कराई गई।

मध्य काल

आठवी से तेरहवी शताब्दी का काल मुख्य रूप से मध्यकाल के नाम से जाना जाता है। यह वह काल था जब दक्षिण मे पुरी और कोणार्क से तमिल, कर्नाटक और दक्षिण-पश्चिमी महाराष्ट्र तक सैकडो अटवियो मे भारतीय तक्षको की दक्षतापूर्ण छैनी पूरे वेग से चल रही थी। मैदानो मे वे प्राय हर सक्षम पाषाण को मनोहर कलाकृतियो मे बदल देने के लिए कृत सकल्प होकर जुट गए थे। उस काल के उल्लेखनीय जैन निर्माण मे हम पट्टडकल की नारायण बस्ती, कोन्नूर का मूलत जैन परमेश्वर मन्दिर, कम्बदहल्ली की पचकूट एव नेमिनाथ बस्ती, लखुण्डी का ब्रह्म जिनालय, बेलगाम की कमल नयन बस्ती का ग्रहण कर सकते हैं। कांचीपुरम् मे तिरुपरुत्तिकुनरम् ग्राम मे जिनकाची के अवशेष और उधर जिननाथपुरम् की शान्तीश्वर बस्ती, श्रवणबेलगोल के भव्य जिनालय और गोमटस्वामी की लोकपूज्य प्रतिमा, हलेबीड, बेलूर और दारसमुद्र के शान्तिनाथ मदिर, हुमचा की पचकूट बस्ती और वारगा के जिनालय भी उन्ही शताब्दियो मे रूपायित हुए। महाराष्ट्र के अन्तर्गत ऐलोरा, चालीसगाव, नासिक तथा औरगाबाद के आसपास अनेक जैन गुफाओ का उत्खनन और चारठाणा के विशाल मानस्तम्भ का निर्माण भी उसी काल की रचना हैं।

इस प्रकार समूचे दक्षिणापथ की पुरा-सम्पदा को एक साथ देखने पर यह स्वत सिद्ध हो जाता है कि देश को इस कला वैभव से समृद्ध करने मे, अन्य धर्मावलम्बी निर्माताओ से एक कदम आगे, जैन वास्तु निर्माता और कलाकार गहन आस्था के साथ अपना सतत योगदान दे रहे थे। ये सैकडो गुफा-मन्दिर, हजारों जिनालय और उनसे कई गुनी मूर्तियों का अनुपम उपहार उन्ही निर्माताओ ने हमारे लिए छोडा है। दक्षिण मे इस धरोहर का सबसे महत्वपूर्ण, अनमोल और अनुपम रत्न है बाहुबली स्वामी का वह विशाल शिलोत्कीर्ण बिम्ब जो श्रवण-बेलगोला मे विध्यगिरि पवत पर सहस्र वर्षों से अवस्थित वीतराग निग्रन्थ साधना-पद्धति की कीर्ति-पताका फहरा रहा है। इस अद्वितीय मूर्ति के मूर्तिकार का नाम तो अभी तक हम ज्ञात नही कर पाये, परन्तु इतना हम जानते है कि गगराज्य के सेनाधिप और महामात्य, वीरमार्तण्ड चामुण्डराय ने दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण मे इस प्रतिमा का निर्माण कराया। चामुण्डराय शैशव मे अपनी सुन्दरता के कारण "गोमट" नाम से पुकारे जाते थे। उनके इसी प्यारभरे नाम पर इस प्रतिमा को "गोमटेश्वर" या "गोमटस्वामी" कहा

गया। कालान्तर में बाहुबली की प्रतिमाओं के लिए दक्षिण मे यही नाम रूढ़ हो गया। अभी कुछ समय पूर्व, फरवरी १९८१ में "गोमटेश्वर प्रतिष्ठापना सहस्राब्दि एव महामस्तकाभिषेक महोत्सव" पूरे देश ने बडे उत्साह के साथ मनाया है।

उत्तर भारत की कला-यात्रा

मध्यकाल मे उत्तर भारत मे भी वैसा ही प्रचुर निर्माण कार्य हुआ जैसा हमे दक्षिण मे मिलता है। मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और बिहार मे अपेक्षाकृत अधिक निर्माण होते रहे। एक ओर कलचुरी कलाकारो ने कुण्डलपुर, त्रिपुरी, सिंहपुर, बरायठा, बिलहरी, कारीतलाई, जसो, पतियानदाई, गुढ़, मल्हार और रतनपुर में सुन्दर जिनालय और जिन बिम्ब स्थापित किये तभी दूसरी ओर चन्देल कलाकारो के यशस्वी करों से खजुराहो, अजयगढ़, सिद्धनाथ, महोबा और आहार का परिवेश जैन मन्दिर-मूर्तियों से भर उठा। उसी समय प्रतिहार राज्याश्रित कलाकारों ने देवगढ़, बानपुर, अहार, सैरोन, दुधई, चांदपुर, जहाजपुर, और चन्देरी की अनगढ़ शिलाओं को वीतराग तीर्थंकरो की मनोज्ञ मुद्रा मे परिणत कर दिया। इसी बीच सिंहोनिया, बजरंगगढ़, नरवर, कोलारस, उज्जैन और ऊन पावागिर मे भी भारी सख्या में जैन प्रतिमाएं बनती रहीं। गोपाचल (ग्वालियर) की विस्तृत पहाडी के हर पाषाण को भगवान बनाने का जो सकल्प गुप्तकाल मे प्रारम्भ हुआ था, वह मध्यकाल मे शताब्दियों तक गतिशील रहा। दस-बारह मीटर तक ऊची खड्गासन और पद्मासन तीर्थंकर मूर्तिया इतनी बडी सख्या मे इस पहाडी मे उकेरी गईं कि आज उन सबकी गणना करना भी श्रमसाध्य साबित हो रहा है।

मध्यप्रदेश के इन अनगिनत अवशेषो में से दो चार का पृथक उल्लेख किए बिना मेरे लिए आगे बढना सम्भव नही है। कुण्डलपुर के बड़ेबाबा का गुणानुवाद मैं सर्वप्रथम करना चाहूगा। चौदह फुट ऊची पद्मासन विराजमान यह कलचुरी कलाकृति एक शिला मे उत्कीर्ण है जिसे बाद मे मन्दिर का रूप दे दिया गया ज्ञात होता है। ऋषभदेव की इस मूर्ति के सिंहासन मे गोमुख यक्ष और देवी चक्रेश्वरी की सुन्दर मूर्तियां हैं। देश की खड्गासन प्रतिमाओ मे गोमटेश्वर की तरह, पद्मासन मूर्तियो मे बडेबाबा को सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। सैरोन की मूलनायक प्रतिमा भी मनोज्ञता और मोहकता मे बेजोड-सी लगती है। यह एक मध्यम आकार की कृति है। उसी प्रकार त्रिपुरी के अवशेषो मे आदिनाथ की एक प्रतिमा है जो आजकल जबलपुर में हनुमानताल के बडे मन्दिर में पूजी जाती है। इस प्रतिमा जैसा कला-वैभव अन्यत्र कहीं देखने में नही आया। अहार के शान्तिनाथ की छवि में मनोज्ञता के साथ विशालता का समन्वय है। खजुराहो की एक नवीन वेदी पर जटाओं के अकन सहित आदिनाथ की वह प्राचीन प्रतिमा है जिसकी पीठिका पर नवग्रहों का अकन है। यह बहुत सुन्दर मूर्ति है।

उत्तर भारत के मध्ययुगीन जैन स्थापत्य के सदर्भ मे विचार करने पर खजुराहो में दसवी शताब्दी के प्रारम्भ में पाहिल श्रेष्ठि द्वारा बनवाया गया पार्श्वनाथ मन्दिर सबसे पहले याद आता है। यह मन्दिर समूचे खजुराहो का सर्वोत्कृष्ट मन्दिर माना गया है और अपने सौन्दर्य के कारण देश-विदेश में विख्यात हो गया है। मन्दिर मूलत आदिनाथ भगवान का था, परन्तु मूल प्रतिमा खण्डित हो जाने के कारण उसमें पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित हो जाने से यह नाम पड़ गया। उसी के समीप घण्टाई मन्दिर भी एक समकालीन रचना है। बारहवीं शताब्दी में बना आदिनाथ मन्दिर भी अपने ढग का अनूठा ही है। इसी प्रकार देवगढ़ में विविध प्रकार के मन्दिरों और मानस्तम्भों का समूह है। खजुराहो और देवगढ़, इन दोनों स्थानों पर हजारों जैन

प्रतिमाए और अन्य शिल्पावशेष बिखरे पडे हैं। देवगढ़ में तीन सौ से अधिक मूर्तिलेख प्राप्त हुए हैं। यहाँ शान्तिनाथ मन्दिर की दोमंजिली सरचना अलग ही प्रकार की है। कई मन्दिर तो दक्षिण की "त्रिकूट बस्तियों" की याद दिलाते हैं। देवगढ अपने मानस्तम्भो के लिए भी प्रसिद्ध है। यहां बारह प्रकार के मानस्तम्भ प्राप्त होते हैं। पास ही बानपुर मे पाणाशाह के पूर्वजो द्वारा निर्मित "चतुर्मुख-सहस्रकूट-जिनालय" अपनी निर्माणगत विशेषताओ के कारण पूरे भारत मे अद्वितीय माना गया है। कहां तक कहे, छह सात सौ वर्षों की कालावधि मे बने जिस मन्दिर का भी निरीक्षण-परीक्षण किया जाय, उसमे कुछ-न-कुछ विशेषता मिलती ही है।

राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार और पश्चिम बगाल के कलावशेषो की परिगणना पृथक से इस लेख मे नही की जा रही है। परन्तु प्राय हर शताब्दी मे इन प्रदेशो मे भी निर्माण कार्य होते रहे हैं। पश्चिम बगाल मे प्राप्त ईंट निर्मित गुप्तकालीन मन्दिर से लेकर पाल घाट, पटना, लोहानीपुर और अहिच्छत्र के अवशेषों तक और इधर राजघाट एव प्रयाग के परिवेश मे उपलब्ध अनगिनत जैन शिल्पावशेषो से लेकर राजस्थान में दिगम्बर प्रतिमाओ से खचित चित्तौड के कीर्ति-स्तम्भ और महावीर जिनालय तक, जैन स्थापत्य और मूर्तिकला के पुष्कल अस्तित्व का परिचय देने वाली विविध सामग्री प्राय हर अचल में बिखरी है।

धातु मूर्तिया

धातु मूर्तियो के सदर्भ मे भी जैन भण्डारो की समृद्धि किसी प्रकार कम नही है। पारसनाथ का किला, चौसा, अकोटा आदि के कला भण्डारो से जो महत्वपूर्ण धातु प्रतिमाए मिली हैं वे जैन कलाकारो के सक्षम प्रयासो का सबल प्रतीक हैं। दक्षिण मे श्रवणबेलगोल्वा, मूडबिद्री, हुमचा, कारकल आदि अनेक स्थानो के भण्डार विलक्षण धातु प्रतिमाओ से भरे पडे हैं। मद्रास के धातु-मूर्ति सग्रहालय "शासकीय ब्राज म्यूजियम" मे भी जैन प्रतिमाओ का महत्वपूर्ण संग्रह है। हुमचा, मूडबिद्री और श्रवणबेलगोल्वा के रत्न प्रतिमा भण्डार भी यहां उल्लेखनीय हैं। प्राय सभी प्रकार के व्यवहृत रत्नो की बनी मूर्तिया इन भण्डारो मे देखने को मिलती हैं। कास्य प्रतिमाओ की सख्या राजस्थान मे भी प्रचुर है। अष्टधातु या पीतल की कही जाने वाली ये प्रतिमाए दो-चार अगुल से लेकर दो मीटर तक की लम्बाई की प्राप्त होती हैं। इनमे तीर्थंकरो के अतिरिक्त समवशरण, चौबीसी, प्रभावली, धमचक्र, श्रुतस्कन्ध, नवदेवता, शासनदेवता, नवग्रह और दीपधारिणी या चामरधारिणी देवागना आदि अभिप्रायो का बहुविध और कलात्मक अकन उपलब्ध होता है। इनमे सलेख प्रतिमाए भी खूब मिलती हैं।

देश की पराधीनता के दिनो मे प्राचीन मनोहर वस्तुओ की जो अनमोल धरोहर विदेशो में पहुच गई, उसमे भी जैन कला के अच्छे प्रतिमान देखने मे आये हैं। लन्दन के "विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट म्यूजियम" मे तथा "ब्रिटिश म्यूजियम" मे अनेक सुन्दर जैन प्रतिमाए सकलित हैं। विदेशो के अन्य अनेक सग्रहालयो म और देश के प्राय सभी पुरातत्व सग्रहालयो में यह सामग्री प्रचुर मात्रा में एकत्रित है।

अभिलेखो की सम्पदा

पाषाणोत्कीर्ण अभिलेखो पर यदि दृष्टि डालें तो उदयपुर के सग्रहालय का वह छोटा-सा पाषाणखण्ड प्राचीनतम समझा जाता है जिस पर सवत् ७१ अकित है। ब्राह्मी लिपि के कारण इसे वीर सवत स्वीकार किया गया है। किसी बडे शिलालेख का यह अवशेष अजमेर से प्राप्त किया गया था। इसके आधार पर जैन अभिलेखों

की परम्परा पांचवी शताब्दी ईसापूर्व तक पहुंच जाती है। इसके पश्चात ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में उकेरा गया ऐल सम्राट खारवेल का "हाथीगुम्फा अभिलेख" एक और महत्वपूर्ण धरोहर के रूप मे हमारे पास है।

दक्षिण भारत में जैन शिलालेखो का भण्डार है। "शासन" के नाम से वहा इतिहास को शिलांकित कराने और उसे महत्ता देकर देवालयो में स्थापित कराने की प्रथा मध्ययुग से पूर्व ही वहा प्रचलित हो चुकी थी। कदम्ब कुल के राजा रविवर्मा के पांचवीं शताब्दी के "गुदनापुर" स्तम्भलेख की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। कर्नाटक में जैन अभिलेखो या शासनो की संख्या देश में सर्वाधिक है। अकेले श्रवणबेलगोला में छह सौ से अधिक शिलालेख हैं। आचार्य भद्रबाहु, सम्राट चन्द्रगुप्त और उनके परवर्ती गमकगुरु आचार्य समन्तभद्र का अधिकाश आख्यान हमें इन्ही अभिलेखों से प्राप्त हुआ है। वहा चन्द्रगिरि पर "महानवमी मण्डप" को देखकर जाना जा सकता है कि हमारे पूर्वजो ने इतिहास को शिलाकित करके उन अभिलेखो को मूर्तियों की तरह मण्डप में स्थापित किया। हमारे अतीत के न जाने कितने नक्षत्र उन अभिलेखो में अकित हैं। ऐतिहासिक वास्तविकताओं के अतिरिक्त ये अभिलेख साहित्य और समाजशास्त्र के भी महत्वपूर्ण प्रसग उपलब्ध कराते हैं। पाचवीं से अठारहवी शताब्दी तक सवा हजार वर्ष का इतिहास अपने आप में सजोये ये अभिलेख हमसे बहुत कुछ कहना चाहते हैं। ताम्र-पत्रो और मूर्तिलेखो का सगमरमर अलग अपनी विशेषताओ के साथ हमारे कोषागार की समृद्धि बढ़ा रहा है। इन सबका विधिवत अध्ययन करके सारी सदर्भित सामग्री जिज्ञासु जगत के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए पीढ़ियो का परिश्रम लगेगा, परन्तु तब हमारी सस्कृति की गरिमा में गौरव के अनेक नवीन अलंकरण जुड जाएगे। जिस सामग्री की चर्चा इतनी विशद हो गयी, उसका विधिवत लेखा-जोखा कितना विशद होगा यह अनुमान लगाना कठिन तो नही है।

जैन साहित्य में वर्णित जन-कल्याणकारी संस्थाएं

(डा) प्रेमसुमन जैन

□□

जैन साहित्य मे आत्महित और लोकहित इन दोनों के सबध मे पर्याप्त विवेचन है। आत्मविकास की प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक गुणों की साधना करता है। ध्यान, व्रत, ज्ञान आदि के द्वारा वह आत्मा के पुरुषार्थ को जगाता है। किन्तु उसके इन आत्महितकारी गुणों का पूर्ण विकास लोक मे ही होता है। व्यक्ति के सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास क्रमश होता है, छलांग लगाकर नही। इसलिए वह समाज मे रहते हुए पहले नैतिक गुणो की

साधना करता है, फिर आत्मिक गुणो की। लोकहित का सम्पादन करते हुए आत्महित की ओर गमन जीवन की सही प्रक्रिया है। इस बात को ध्यान में रखते हुए जैनाचार्यों ने अपने साहित्य मे समाज-निर्माण के अनेक तत्वों का समावेश किया है। निवृत्तिमूलक प्रवृत्तिमार्ग को जैन साहित्य में प्रमुखता दी गयी है।[1]

पृष्ठभूमि

समाज की सरचना मे व्यक्ति एक महत्वपूर्ण घटक है। व्यक्ति जब तक अकेला विचरण करता है तब तक वह आत्मनिष्ठ रहता है। युगल हो जाने पर वह रागतत्व से युक्त होता है। दो युगल हो तो उसमे अनुकरणात्मक और स्पर्धा से युक्त जीवन-पद्धति विकसित होती है। तीसरा युगल होते ही समाज का स्वरूप बनने लगता है। उसी के अनुसार आवश्यकताए, सुरक्षा और सद्भाव की प्रवृत्तिया विकसित हो जाती हैं। समाज के विकास की इस अवस्था का जैन साहित्य मे एक मिथक द्वारा चित्रण किया गया है। योगभूमि की युगल-व्यवस्था को समाज-व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप कहा जा सकता है।[1] प्रेमतत्व समाज का आधार-स्तम्भ है, जिसका विस्तृत विवेचन जैन साहित्य मे है।

लोकहित सम्पादन के लिए समाज मे अर्थतत्व भी आवश्यक है। समाज का भवन आर्थिक नींव पर निर्मित होता है। इसके लिए जैनाचार्यों ने षड् आवश्यक कर्मों का विधान किया है।[1] इसके मूल मे व्यक्तिगत उपलब्धि को सामूहिक बनाने की भावना रही है। जैन परम्परा मे प्रचलित कुलकर-व्यवस्था समाज की स्थापना की व्यवस्था है। आदिपुराण मे जिनसेन ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्यो को कुल की तरह व्यवस्थित कर उनकी जीवनवृत्ति का परिष्कार करने के कारण ये कुलकर कहलाते थे—

> प्रजाना जीवनोपायमननान्मनवो मता ।
> आर्याणा कुलसस्त्यायुक्ते कुलकरा इमे ॥[1]

इन कुलकरो ने निषेधात्मक, नियन्त्रणात्मक एव कल्याणात्मक कार्यों के लिए समाज को प्रेरणा दी थी। चौदह कुलकरो ने समाज को चौदह कार्यों की शिक्षा दी थी। यह घटना इस बात को सूचित करती है कि समाज विभिन्न गुणी व्यक्तियो के सामूहिक प्रयत्न से चलता है और समाज मे निर्भयता, आर्थिक स्वतन्त्रता, मैत्रीभाव तथा कल्याणकारी प्रयत्नो की नितान्त आवश्यकता है। कुलकरो एव मन्वन्तरो[1] की पौराणिक विचारधारा ने भारतीय समाज के विकास को गतिशील किया है।[1]

जैन परम्परा मे तीर्थंकरो के समवसरण की व्यवस्था का वर्णन है। इसका पौराणिक एव धार्मिक प्रभाव कुछ भी रहा हो, किन्तु इसका समाज पर भी प्रभाव पडा। तीर्थंकर जिन गुणो की प्राप्ति व्यक्तिगत प्रयत्नो के द्वारा करते हैं, उनका लाभ वे समवसरण मे सारे समाज को देते हैं। इससे व्यक्तिगत उपलब्धि का समाजीकरण का सिद्धान्त प्रतिफलित होता है।[1] धार्मिक नेता अपनी स्वानुभूति से समाज को नैतिक बनाने का प्रयत्न करता है। शिक्षक या ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान से समाज को शिक्षित बनाता है। वैभवशाली श्रेष्ठि वर्ग व्यक्तिगत पुरुषार्थ से प्राप्त समृद्धि को विभिन्न लोकहितकारी कार्यों मे व्यय कर सामाजिक जीवन को उन्नत बनाता है। इसी तरह बलशाली और क्षमाशील वर्ग समाज को सुरक्षा प्रदान करता है। प्राचीन भारतीय समाज के इस लोकहितकारी स्वरूप का चित्रण विभिन्न युगो के जैन साहित्य मे उपलब्ध है। समाज-शास्त्रियो के द्वारा उसका सामाजिक मूल्याकन यदि किया जाय तो समाज निर्माण के कई तत्व प्राप्त हो सकते हैं।

जैन साहित्य में प्राचीन परम्परा के प्रभाव से अनेक सामाजिक संस्थाओं के विवरण प्राप्त हैं। समाज की कुछ आधारभूत संस्थाएं हैं। विवाह, परिवार, जाति, वर्ण, श्रेणी आदि विभिन्न सस्थाओं के सम्बन्ध में जैन साहित्य से अच्छा प्रकाश पड़ता है। डा जगदीशचन्द्र जैन, डा नेमिचन्द्र शास्त्री आदि विद्वानों ने इस विषय में गहन अध्ययन प्रस्तुत किए हैं।[9] जैन साहित्य के कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थों का भी समाजशास्त्रीय मूल्यांकन विद्वानों ने किया है। इस साहित्य मे आधारभूत सामाजिक संस्थाओं के अतिरिक्त समाज की कुछ धार्मिक सस्थाओं का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। चतुर्विध सघ-व्यवस्था एक सामाजिक संस्था है, जिसका स्वतन्त्र अध्ययन होना चाहिए। इसी तरह देवकुल, मदिर, चैत्य, मठ, पाठशाला आदि भी सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण केन्द्र रहे हैं। इनके साथ समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध था। भारतीय समाज के विकास के अध्ययन के लिए जैन साहित्य की इस विषयक सामग्री की समीक्षा करना लाभदायक होगा।[10]

समाज की आधारभूत, धार्मिक एवं शैक्षिक सस्थाओं के अतिरिक्त समाज मे कुछ ऐसी व्यवस्थाए भी प्रचलित थी, जिन्होंने लोकहित की दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। बिना किसी भेदभाव के समाज की ये सस्थाए जन-सामान्य को लाभ पहुचाती रही हैं। इन व्यवस्थाओं को जन-कल्याणकारी सस्थाए कहा जा सकता है। जैन साहित्य मे इनके पर्याप्त उल्लेख हैं, किन्तु उनकी तरफ विद्वानो का ध्यान कम गया है। आज जन-जाति-कल्याण केन्द्र, धर्मशालाए, सहकारी-संस्थाए, वृद्ध-सरक्षण केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र, प्याऊ, जनता-भोजनालय आदि कई लोकहितकारी सस्थाए समाज मे कार्यरत हैं। प्राचीन भारतीय समाज मे भी लोकहित के ये कार्य होते थे, जिनका विवरण जैनाचार्यों ने अपने ग्रन्थो मे दिया है। पूर्वमध्ययुग के जैन साहित्य मे निम्नाकित जन-कल्याणकारी सस्थाओं का विवरण प्राप्त है —

१ प्रपा (पवा, प्याऊ)
२ सत्रागार (नि शुल्क भोजनशाला)
३ मडप (आश्रयस्थान, धर्मशाला)
४ आरोग्यशाला (औषधिदान)
५ मार्ग (यातायात सुविधा, आजीविका-दान)
६ ग्रन्थ भण्डार (ज्ञानदान, ज्ञानसुरक्षा)

प्रपा

जैन आगमो के टीका-साहित्य मे कहा गया है कि स्थलमार्ग से यात्रा करने वाले यात्री अपनी थकान मिटाने के लिए कई स्थानो मे ठहरते थे। उनमे एक स्थान प्रपा भी थी। अनुयोगद्वारचूर्णि मे प्रपा का अर्थ विश्राम-स्थल किया गया है।[11] बृहत्कल्पभाष्य मे आगमनगृह, ग्रामसभा, प्रपा और मदिर का उल्लेख है, जो पथिको के विश्राम-स्थल थे।[12] प्रपा मे पथिको के लिए पानी और नाश्ते की व्यवस्था होती थी। थकान मिटाने के लिए छायादार वृक्ष अथवा झोपड़ी आदि भी उपलब्ध होती थी। बाणभट्ट के हर्षचरित के वर्णन से ज्ञात होता है कि प्रपा वास्तव मे एक अच्छी प्याऊ थी। किसी बावडी अथवा कुए के पास पेड़ो के झुरमुट में इसे स्थापित किया जाता था, जो प्रमुख मार्ग पर विश्राम स्थल बन जाता था।[13] बाणभट्ट ने कहा है कि इन प्रपाओं मे पानी रखने की विशेष व्यवस्था होती थी। पानी के साथ लाल शक्कर भी यात्रियो को दी जाती थी।[14]

उद्योतनसूरि ने कुवलय माला में प्रपा, मंडप, सत्रागार आदि कल्याणकारी सस्थाओ को दान देने की

परम्परा का वर्णन किया है।[११] ग्रीष्म ऋतु मे प्रपाओ मे अधिक भीड़ रहती थी। वर्षा प्रारम्भ होते ही उनमें अधिक सुविधाए जुटा दी जाती थी।[१२] ये प्रपाए सामाजिक और सार्वजनिक स्थान होने के कारण सूचना-केन्द्र का भी काम देती थी। राजाज्ञा की घोषणा यही करायी जाती थी।[१३] समाज में जनता को पानी उपलब्ध कराना समृद्ध लोग अपना कर्तव्य समझते थे। कूप, तालाब, वापी और प्रपा को दान देकर सचालित करना कई लोगो का परम धर्म था।[१४] उत्तराध्ययन टीका से ज्ञात होता है कि प्रपाओ मे परिव्राजको के लिए पर्याप्त अन्नपान दिया जाने लगा था।[१५] धनपाल ने अपनी तिलकमंजरी[१६] एव सोमदेव ने अपने यशस्तिलकचम्पू[१७] मे प्रपा की व्यवस्था होने का उल्लेख किया है। लम्बी यात्रा के बीच मे प्रपा अथवा बावडी की व्यवस्था आधुनिक युग तक होती रही है। उदयपुर से चित्तौड जाने के पैदल रास्ते मे सात प्रसिद्ध बावड़ियां (प्रपा) स्थापित थी।

सत्रागार

सत्रागार भी प्रसिद्ध सडको के किनारे तथा प्रमुख स्थानो पर स्थापित होते थे। श्रेष्ठी और दानी लोगो के दान से इनका सचालन होता था। सत्रागारो मे पथिको को नि शुल्क भोजन दिया जाता था। भोजन-दान की परम्परा भारतीय समाज मे अतिप्राचीन है।[१८] बौद्ध एव जैन साधु भोजन के लिए समाज पर ही आश्रित हैं। उनको आहार-दान देना श्रावक का दैनिक नियम था।[१९] अत इस प्रकार की प्रवृत्ति समाज के अन्य व्यक्तियो के लिए प्रारम्भ हो गयी थी। इसके लिए घरेल रसोई के अतिरिक्त कई सामाजिक भोजशालाए प्रारम्भ हो गयी थी, जो राहगीरो, साधुओ एव निराश्रितो के लिए जीवनाधार थी।

प्राकृत साहित्य मे नि शुल्क भोजनशाला के लिए कई शब्दो का प्रयोग हुआ है। ज्ञाताधर्मकथा तथा निशीथ सूत्र मे ऐसी एक महानसशाला का उल्लेख है, जिसमे अनक प्रकार का भोजन साधु-सन्तो, अनाथो, भिखारियो और पथिको को बाटा जाता था।[२०] इस महानसशाला के साथ पुष्करिणी, वनखण्ड, चित्रसभा, चिकित्सा-शाला एव अलकार-सभा भी थी, जो जन-सामान्य के उपयोग के लिए थी।[२१] बृहत्कल्पभाष्य मे ऐसी भोजन व्यवस्था को सखडि और भोज्य कहा है, जो एक दिन अथवा कई दिन तक चलन वाली होती थी।[२२] पालि मे इसे सखडि कहा गया है।[२३] इस सखडि में भोजन पाने वालो की बहुत भीड लगी रहती थी। आगे चलकर सखडि एक विशेष प्रकार का दोषयुक्त उत्सव हो गया था। इसके सम्बन्ध मे डा जगदीशचन्द्र ने विशेष प्रकाश डाला है।[२४]

बुद्धस्वामि के बृहत्कथाश्लोक-सग्रह की सानुदास को कथा से ज्ञात होता है कि पाण्डय देश के मदुरा नगर के बाहर एक सत्रागार थी।[२५] वहा पर यात्रियो की सब प्रकार से सेवा की जाती थी, जिससे उनकी थकान दूर हो जाय। इस सत्रम् का सत्रपति होता था, जो व्यापारियो की समस्याओ को यथासभव दूर करने का प्रयत्न करता था। अन्य सत्रागारो से भी सत्रपति सम्बन्ध रखता था। इस सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि जैन साहित्य मे वर्णित सत्रागार मध्ययुग की सराय जैसे थे।[२६] कुवलयमाला के सन्दर्भ से स्पष्ट है कि सत्रागार मे पथिको को नि शुल्क भोजन दिया जाता था।[२७] इनका सचालन समृद्ध व्यापारी लोग करत थे।[२८] किन्तु प्रबन्धचिंतामणि स ज्ञात होता है कि सत्रागार प्रजापालक राजाओं द्वारा भी बनवाए जाते थे।[२९]

मंडप

भारतीय समाज की लोक-कल्याणकारी संस्थाओ मे मंडप का विशेष महत्व था। प्रपा से पानी की व्यवस्था हो जाती थी और सत्रागार से नि शुल्क भोजन की। किन्तु पथिक के लिए रात्रि व्यतीत करने अथवा विश्राम करने के लिए भी प्राचीन समाज ने कुछ व्यवस्थाएं की थी। दामोदर गुप्त ने अपने कुट्टनीमतम्[17] में एक राहगीर के ठहरने की समस्या का जो चित्रण किया है, वह उसकी दुर्गति का परिचायक है। राहगीर को रात्रि में अभय, सुरक्षा और विश्राम मिल सके, इसके लिए समाज ने ऐसे विश्राम-स्थलो की व्यवस्था की थी।

प्राचीन समाज में राहगीरों के लिए जो विश्राम-स्थल होते थे उन्हें ऋग्वेद मे प्रपथ कहा गया है।[18] अथर्ववेद में आवसथ शब्द का प्रयोग हुआ है।[19] डा मोतीचन्द्र ने इन विश्रामालयों का उल्लेख किया है।[20] जातक साहित्य मे इनके सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी मिलती है। वहा ऐसी धर्मशालाओं को सभा कहा गया है। राज्यो के सीमान्त पर ये सभाए बनी हुई होती थी।[21] नगर का फाटक बन्द हो जाने पर भी यात्री इन सभाओ मे रात्रि व्यतीत कर सकता था।[22] एक जातक से ज्ञात होता है कि इस प्रकार की सभा को बनवाने में न केवल पुरुषो, अपितु स्त्रियो का भी सहयोग रहता था। सभा मे यात्रियो के सोने-बैठने के लिए चौकी और पानी की व्यवस्था होती थी। छाया के लिए पेड और सुरक्षा के लिए फाटकदार चाहारदीवार होती थी।[23]

जैन साहित्य मे इन सभाओ को ग्रामसभा तथा आगमनगृह कहा गया है, जिनमे सभी तरह के यात्री ठहरते थे।[24] साध्वियो को इन आगमनगृहो मे ठहरने का निषेध था। मंदिर भी यात्रियो के ठहरने का प्रमुख स्थान था।[25] कुवलयमाला मे प्रपा के साथ मंडप को दान देने का उल्लेख है। संभवत इस समय तक प्रपा, मंडप और सत्रागार ये तीनो ही एक साथ बनने लगे थे, जिससे यात्रियो को सभी सुविधाए साथ मे मिल जाएं। बौद्ध साहित्य मे प्रयुक्त सभा शब्द और प्राकृत साहित्य का मंडप शब्द दोनों मिलकर सभा-मंडप के रूप मे प्रचलित हो गया है, जो आतिथ्य के काम आता है। उद्योतनसूरि ने अनाथमंडप का वर्णन किया है, जिसमें रोगी, विकलांग, परदेशी, व्यापारी, तीर्थयात्री, पत्रवाहक आदि लोग यात्रा के दौरान ठहरते थे।[26] अनाथ बच्चो का भी वहां ठिकाना था। ऐसे कल्याणकारी मंडपो का नाम शिवमंडप(कल्याणकारी मंडप) भी पड गया था। मरुकच्छ नगर के चौराहे पर एक शिवमंडप था, जिसमे अकेली राहगीर स्त्रियां भी ठहर सकती थी।[27] जैन साहित्य मे ऐसी धर्मशालाओं के लिए वसति शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[28]

आरोग्यशाला

सम्राट अशोक ने अपने शिलालेखों मे चिकित्सालयो की व्यवस्था का उल्लेख किया है।[29] ज्ञाताधर्मकथा में श्रेष्ठियो द्वारा चिकित्साशाला खुलवाने का उल्लेख है।[30] कुवलयमाला मे कहा गया है कि नगर के सेठ आरोग्यशालाए चलाते थे।[31] औषधिदान की जैन साहित्य मे विशेष प्रतिष्ठा थी।[32] प्राकृत साहित्य मे औषधि-विज्ञान का विस्तृत विवेचन है।[33]

सार्थ

प्राचीन भारतीय समाज मे सार्थ एक महत्वपूर्ण संस्था थी। यातायात के प्रारम्भ से लेकर मध्ययुग तक सार्थ ने भारतीय समाज को बहुत प्रभावित किया है।[11] व्यापारी समाज ने सार्थ जैसी महत्वपूर्ण व्यवस्था के द्वारा समाज के अनेक उत्साही युवकों को देशान्तर की यात्रा करायी है। उन्हें आजीविका प्रदान की है। उनमे पुरुषार्थ जगाया है। सार्थ यात्रा करने वाले साधु-सन्तों, तीर्थयात्रियो, विद्यार्थियों एव अन्य सामान्य व्यक्तियों के लिए एक बहुत बडा सहारा था। सार्थ एक तेरह से यातायात के लिए पूरे समाज का पथ-प्रदर्शक रहा है। अभय, सुरक्षा, आजीविका, पूजी, मार्गदर्शन आदि के लिए सार्थ एक निरापद सहारा था। ज्ञाताधर्मकथा, विपाकसूत्र, समराइच्चकहा, तिलकमजरी, रयणचूडरायचरिय, आरामसोहाकहा, भविसयत्तकहा[12] आदि जैन साहित्य के ग्रन्थो मे सार्थ के स्वरूप, उद्देश्य एव कार्यों के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी प्राप्त है। इस हितकारी सामाजिक सस्था का सर्वांगीण मूल्याकन अभी किया जाना शेष है। इसके अध्ययन से भारतीय समाज के स्वरूप पर नया प्रकाश पड सकता है।

ग्रन्थ-भण्डार

समाज मे जनहित के विकास के लिए कई सस्थाओ ने काम किया है। शिक्षा के क्षेत्र मे पाठशाला, गुरुकुल, उपासरे आदि महत्वपूर्ण केन्द्र थे। किन्तु ग्रन्थ-भण्डार जैसी सामाजिक सस्था ज्ञान की सुरक्षा के साथ-साथ सामाजिक उत्थान की कई प्रवृत्तियो मे अग्रणी रही है। इतिहास की दृष्टि से ग्रन्थ-भण्डारो मे समाज की कई जातियो, परिवारो, रीतिरिवाजो एव राजाओ की जीवन-पद्धति का इतिहास छिपा हुआ है। साहित्यिक दृष्टि से ये ग्रन्थ-भण्डार कई प्रवृत्तियो के जनक रहे हैं। लिपि एव लिपिकार का इतिहास ग्रन्थ-भण्डारो के अध्ययन के बिना अधूरा है। कितने ही लोगो को इन भण्डारो के माध्यम से शिक्षा प्राप्त हुई है।[13] आजीविका मिली है। अत जैन साहित्य मे जिन ग्रन्थ-भण्डारो का विवरण प्राप्त है तथा आज जो भी ग्रन्थ-भण्डार समाज मे विद्यमान है, उन सबका समाजशास्त्रीय दृष्टि से मूल्याकन किया जाना आवश्यक है।

इस प्रकार जैन साहित्य मे वर्णित इन जन-कल्याणकारी सस्थाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि जैनाचार्यों ने अपनी दार्शनिक परम्परा मे स्वीकृत दान की महिमा का कई अर्थों मे विस्तार किया है। आहार-दान की व्यापकता के अन्तर्गत समाज मे प्रपाओ और सत्रागारो की स्थापना के द्वारा जन-सामान्य की भूख-प्यास के निवारण का प्रयत्न किया गया है। मनुष्य की यायावर प्रवृत्ति का गतिशील रखा गया है। सभा, मडप, आगमनगृह आदि की व्यवस्था द्वारा राहगीरो को सुरक्षा प्रदान की गयी है। यह अभयदान का विस्तार है। आरोग्यशालाए खुलवाकर मनुष्य के तन-मन को स्वास्थ्य रखा गया है, जिसमे वह पुरुषार्थ की साधना कर सके। सार्थ की व्यवस्था उसे आर्थिक स्वतन्त्रता और आवागमन की निश्चितता प्रदान करती है। ग्रन्थ-भण्डारों का प्रवर्तन राष्ट्र की धरोहर की सुरक्षा के प्रति सजगता है। साथ ही जन-जीवन के लिए साक्षरता-अभियान भी। शास्त्रदान की भावना का इससे बढ़कर और क्या उपयोग होगा? जैन साहित्य में वर्णित इन परोपकारी सस्थाओ का सूक्ष्म अध्ययन एक ओर हमें मध्ययुगीन समाज की समृद्धि और लोक-चेतना से परिचित कराता है तो दूसरी ओर वतमान युग के लिए समाज की समृद्धि के और धार्मिक भावना के वास्तविक उपयोग के लिए पथदर्शन भी करता है।

सन्दर्भ

१ संघवी, पं. सुखलाल, जैन धर्म का प्राण, पृ ५६-५९
२ जैन, डा हीरालाल, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान
३ शास्त्री देवेन्द्र मुनि, जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप, जयपुर
४ आदि पुराण, (जिनसेन), ३/२११
५ वही ३/२१३-१७
६ भागवतपुराण, २/७/१९
७ फतेसिंह, भारतीय समाजशास्त्र—मूलाधार, पृ ११६
८ शास्त्री, नेमिचन्द्र, आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० १४०
९ जैन, जगदीशचन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ २२१-२३३
१० संगवे, विलास, ए सोशल सर्वे आफ जैन कम्युनिटी, बम्बई
११ जैन, जगदीशचन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ २६०
१२ बृहत्कल्पभाष्य, गा २४८६
१३ हर्षचरितम्, (बाणभट्ट) पृ २२७-२३०
१४ अग्रवाल वी एस , हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ १८४-८५
१५ 'सुहज्जति अत्थपडिप्पया—मडबा—सत्तायारेहिं वाणावइत्तणाई', कुवलयमाला, ३१/१४
१६ वही, १४७-२५
१७ वही, २०३ १०
१८ वही, २०५/३
१९ उत्तराध्ययनटीका, (शान्तिसूरि), १३ पृ १८८
२० तिलकमञ्जरी (धनपाल), पृ ११७
२१ 'प्रपनिवेशी सर प्रवेशे '—यश पृ २००
२२ जैन धर्म में दान—एक समीक्षात्मक अध्ययन (उपाध्याय पुष्कर मुनि), पृ० २९१-३२५
२३ वसुनन्दिश्रावकाचार, भूमिका
२४ 'एग मह महाणससाल कारावेइ—बहूण समण-माहण-अतिहिकिवण-वणीमगाणं परिभाममाणा विहरति'—ज्ञाताधर्मकथा, १३ पृ ३४४
२५ भारिल्ल, शोभाचन्द्र, ज्ञाता धर्मकथा, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, पृ ३४२-४६
२६ बृहत्कल्पभाष्य, १/३१४१-४२
२७ मज्झिमनिकाय, २/१६, पृ १३१
२८ जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ ३६४-६६
२९ बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, (बुद्धस्वामि), अ १८, श्लोक ३५५-५६
३० मजूमदार, एशियन्ट एकाउन्ट्स आफ इण्डिया एण्ड चाइना, लंदन, पृ, ८७
(झिनकू यादव, समराइच्चकहा—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ १६६ पर उद्धृत)
३१ कुवलयमाला, ५८/४
३२ जैन, प्रेम सुमन, कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, वैशाली, पृ १२५
३३ प्रबन्धचिन्तामणि, पृ १०६
३४ (क) कुट्टनीमतम्, २१८-२३०
(ख) सार्थवाह (मोतीचन्द्र), पृ २१४
३५ ऋग्वेद, १/११६/६
३६. अथर्ववेद, १४/२/६

३७ एस सी सरकार, सम आस्पेक्ट्स आफ द अर्लियस्ट सोशल लाइफ आफ इंडिया, पृ १४

३८ जातक, २/१४८

३९ धम्मपद अट्ठकथा, २/३१

४० जातक, १/२०१

४१ बृहत्कल्पभाष्य, २४८६

२२ ज्ञाताधर्मकथा, १५ अ

४३ कुवलयमाला, ५५/११/११

४४ वही ६९-२३

४५ जैन गोकुलचन्द्र, यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ २६४

४६ अशोक के शिलालेख (राजबलि पाण्डेय), द्वितीय शिलालेख ।

४७ ज्ञाताधर्मकथा, अ १३, पृ ३४४

४८ कुवलयमाला, पृ ६५ ६

४९ 'ओसहदिज्जइ रोय विणासणु।
कहविण पिच्छइ आहिपयासुणु ॥
जैन, राजाराम, रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, पृ ४८६

५० जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ ३०७-३१८

५१ मोतीचन्द्र, सार्थवाह

५२ भविसयत्तकहा (धनपाल), तृतीय संधि

५३ कासलीवाल, के सी , जैन ग्रन्थभण्डाराज् इन राजस्थान, पृ १८४-२१७

जैन धर्म में मोक्ष का स्वरूप

विनोद कुमार तिवारी

□□

जैन धर्म और दर्शन मे मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। जीव का पुद्गल से संयोग ही बंधन है और इसके विपरीत उसका पुद्गल से वियोग ही मोक्ष है। बन्धन मे पुद्गल के कण जीव की ओर आकृष्ट होने लगते हैं और इन कणो को आत्मा की ओर प्रवाहित होने से रोकने पर ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। पर सिर्फ नए पुद्गल के कणो को जीव की ओर प्रवाहित करने से ही मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। जीव में पुदगल के कुछ कण अपना घर बना चुके रहते हैं, अत ऐसे पुद्गल कणो का उन्मूलन भी मोक्ष के लिए परमा-

आवश्यक है। नये पुद्गल के कणों को जीव की ओर प्रवाहित होने से रोकने की प्रक्रिया 'संवर' कही जाती है और पहले उपस्थित कर्मों के नाश करने को 'निर्जरा' कहा जाता है। कर्म पुद्गल से छुटकारा पाने के लिए नये पुद्गल के कणों को रोककर संचित पुद्गल के कणों का नाश करना पड़ता है। जो जीव राग, द्वेष तथा मोह से रहित होकर सुख तथा दु ख में साम्य की भावना प्राप्त कर विकारों से रहित हो जाता है, उसकी आत्मा मे कर्म पुद्गलों का प्रवेश तथा उससे उत्पन्न बन्धन नहीं होते। कर्म पुद्गलो से मुक्त होने से जीव सर्वज्ञ सर्वदृश्य होकर मुक्ति का अनुभव करने लगता है। इस अवस्था में वह औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक तथा भव्यत्व भावो से भी मुक्त हो जाता है। अपनी स्वाभाविक गति के कारण वह ऊर्ध्वगति का हो जाता है और उपरलोक की सीमा पर्यन्त पहुच जाता है। आलोकाकाश मे 'धर्मास्तिकाय' के न रहने के कारण 'जीव' लोक से परे नहीं जा सकता और न पुन वहा से लौटकर वह ससार मे ही आता है। 'मुक्त जीव' परमात्मा के साथ एक नहीं हो जाता, वह 'सिद्धशिला' मे अनन्त काल के लिए वास करता है।

जैन विचारको के मतानुसार मोक्ष की प्राप्ति के लिए कुछ उपाय हैं। जबतक व्यक्ति सम्यक ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र का सहारा नही लेगा वह मोक्ष के विषय मे सोच भी नही सकता। मोक्ष मार्ग का निरूपण करते हुए 'सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्राणी मोक्ष मार्ग' कहा गया है। मोक्ष की प्राप्ति तीनो के सम्मिलित सहयोग से ही सभव है, अत इन्हें जैनधर्म के 'त्रिरत्न' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। चूकि इन तीनो के बिना मोक्ष की कल्पना तक बेकार है, अत इनकी व्याख्या अपेक्षित है।

सम्यक् दर्शन का साधारणत अर्थ यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा की भावना रखने से लिया जाता है। जहा कुछ व्यक्तियो मे यह स्वाभाविक होता है, वहीं कुछ इसे विद्योपार्जन और अभ्यास द्वारा सीखते हैं। जैन दृष्टि के अनुसार सम्यक् दर्शन ही ज्ञान एव चरित्र को उनका सम्यक् रूप प्रदान करता है। वस्तुत आत्म प्रतीति या आत्म स्वरूप की ओर उन्मुखता ही सम्यक् दर्शन है जिसके प्रकाश मे अन्य तत्वो के बोध की सार्थकता है। कोई भी व्यक्ति सम्यक् दर्शन का भागी तभी हो सकता है जबकि वह अपने आपको विभिन्न अधविश्वासो से मुक्त कर लेता है। जैनो ने सब प्रकार के अधविश्वासो के उन्मूलन का संदेश दिया है। उनके अनुसार सम्यक् दर्शन का अर्थ बौद्धिक विश्वास है। प्रख्यात जैन दार्शनिक मणिभद्र का कथन है कि जैन मत युक्तिहीन नही बल्कि युक्तिप्रधान है।

जिस ज्ञान के माध्यम से जीव और अजीव के मूल तत्वो का सविशेष ज्ञान होता है उसे सम्यक् ज्ञान कहा जाता है। जीव और अजीव के अन्तर को न समझने के फलस्वरूप बधन का प्रादुर्भाव होता है जिसे रोकने के लिए ज्ञान आवश्यक है। यह ज्ञान संशयहीन तथा दोषरहित है। सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति मे कुछ कर्म बाधक प्रतीत होते हैं अत उनका नाश भी आवश्यक है क्योंकि कर्मों के पूर्ण विनाश के पश्चात् ही सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति की आशा की जा सकती है। सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति पथप्रदर्शक के प्रति श्रद्धा और विश्वास से ही सम्भव है। जैनधर्म मे तीर्थंकर को पथप्रदर्शक कहा गया है, अत उनके प्रति श्रद्धा और आस्था का भाव रहना अति आवश्यक है।

सम्यक् चरित्र से हितकर कार्यों का आचरण और अहितकर कार्यों का वर्णन होता है। मोक्ष के लिए तीर्थंकरो के प्रति श्रद्धा और सत्य का ज्ञान ही पूर्ण नही है, वरन अपने आचरण का संयम ही परमावश्यक है। शुद्ध चरित्र से व्यक्ति के मन, वचन और कर्म पर नियत्रण होता है। सम्यक् चरित्र के पालन से ही जीव अपने कर्मों से मुक्त हो जाता है। कर्म के द्वारा ही व्यक्ति अपने दु ख और बन्धन का सामना करता है, अत कर्मों से मुक्ति पाने का अर्थ है बन्धन और दु ख से छुटकारा पाना। मोक्ष मार्ग में सबसे महत्वपूर्ण चीज सम्यक् चरित्र ही कहा जा सकता है। जैन शास्त्रियों ने सम्यक् चरित्र के पालन के लिए कई आचरणो को आवश्यक बतलाया

है, जिनमे हिंसा का त्याग, नम्र वाणी बोलना, शरीर, वाणी और मानसिक संयम की आवश्यकता, क्षमा, शौच तप, सयम, त्याग, सरलता तथा ब्रह्मचर्य का पालन, एव सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि से प्राप्त दुःख के सहन करने की योग्यता आवश्यक है। सम्यक् चरित्र के लिए पंच महाव्रत, अर्थात अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन भी परमावश्यक माना गया है।

इस प्रकार उपरोक्त कर्मों को अपनाकर मानव मोक्षानुभूति के योग्य हो जाता है। इससे कर्मों का आश्रव जीव मे बन्द हो जाता है तथा पुराने कर्मों का नाश हो जाता है। अन्तत जीव अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त करता है। मोक्ष का अर्थ सिर्फ दु खो का विनाश ही नही है, बल्कि आत्मा के अनन्त चतुष्टय —अर्थात अनन्त ज्ञान, शक्ति, दर्शन और आनन्द की प्राप्ति से भी है। जिस प्रकार बादल के हटने से आकाश मे सूर्य आलोकित हो उठता है, उसी प्रकार मोक्ष की अवस्था मे आत्मा अपनी पूर्णताओ को पुन' प्राप्त कर लेती है।

जैन संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव

(डा) कस्तूर चन्द कासलीवाल

□□

जैन सस्कृति भारतीय सम्कृति का मूलाधार है। विगत हजारो लाखो वर्षों से जैन सम्कृति ने भारतीय सस्कृति को सम्बल ही प्रदान नही किया है, अपितु उसके पोषण, सरक्षण और सवर्धन मे अपना महत्वपूर्ण योगदान भी दिया है। प्राचीन काल मे इस सस्कृति को विभिन्न नामो से जाना-पहचाना जाता रहा है। जिनमें द्रविड सस्कृति, अर्हत सस्कृति, निर्ग्रन्थ सस्कृति और श्रमन सस्कृति जैसे नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। उक्त सभी नामों का उल्लेख देश के प्राचीनतम ग्रथो मे यत्र-तत्र मिलता है। यही नहीं उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक जिस प्रकार जैन सस्कृति के प्राचीनतम अवशेष मिलते रहे हैं, उससे पता चलता है कि इस संस्कृति ने देश के जन-जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया है और उसकी विकास यात्रा मे सबसे महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अर्हत् सस्कृति के प्रस्तोत

अर्हत् सस्कृति के पुरस्कर्त्ता भगवान ऋषभदेव से लेकर महावीर तक सभी चौबीस तीर्थंकर इसी देश में पैदा हुए। सभी ने अपने प्रवचनो से लाखों-करोडो के जीवन को पावन बनाया और विश्व मे शांति, भ्रातृ-

भावना और सहअस्तित्व की भावना को दृढ़ बनाया। इन तीर्थंकरों के पूरे जीवन को भारतीय सस्कृति का प्रतीक माना जा सकता है। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने भोगभूमि काल के पश्चात् सर्वप्रथम देश-वासियों को असिमसि कृषि, शिल्प, वाणिज्य एवं विद्या को सिखलाकर जीने की कला बतलायी तथा वन्य जीवन से निकलकर नागरिक और ग्रामीण जीवन व्यतीत करने का मार्ग बतलाया। ऋषभदेव ने सर्वप्रथम अपना दूसरे परिवार में विवाह करके सामाजिक जीवन की आधार-शिला रखी तथा अपना शासन स्थापित करके शासन करने की प्रणाली का सूत्रपात किया। अपने बड़े पुत्र भरत को राज्य देकर शासन-संहिता की रचना की। यही नहीं देश का नाम भी भरत के नाम से भारतवर्ष रखा और अत मे सम्पूर्ण वैभव और साम्राज्य त्याग कर और निर्ग्रन्थ जीवन धारण करके भारतीय जीवन को एक नया मोड़ दिया। साथ ही त्याग, तपस्या और सयम का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। आरण्यक एव उपनिषद् युग मे भारतीय ऋषि मुनियों का जीवन भगवान ऋषभदेव के जीवन से पूर्ण प्रभावित था। ऋषभदेव ने भारतीय सस्कृति को एकदम वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। जिस वैज्ञानिक युग की आज हम प्रशसा करते नहीं थकते, उस युग का प्रभात काल तो भगवान ऋषभदेव के युग मे ही उदित हो गया था। उनके युग मे पूरा देश ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित धर्म का अनुयायी था। कैसा था वह स्वर्ण युग जब न किसी मे वर्ण भेद एव जातिभेद की भावना थी और न धर्म के नाम पर पृथकता की गध थी।

जैन संस्कृति के प्रथम प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव ने भारतीय सस्कृति को पल्लवित और विकसित करने के लिए स्त्री शिक्षा के महत्व तथा उसकी उपादेयता को जन-सामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया और अपनी दोनो पुत्रियो ब्राह्मी और सुन्दरी को अक्षर ज्ञान तथा अक विद्या सिखला कर एक अभिनव उदाहरण रखा। उनके समय से लिखने पढ़ने का युग प्रारम्भ हुआ तथा 'मसि (लेखनी) से आजीविका उपार्जन करने की प्रणाली का सूत्र-पात हुआ। ये सब भारतीय सस्कृति की विकास-यात्राए हैं, जिनके माध्यम से उसने वर्तमान युग मे पांव रखा है।

तीर्थंकर-परम्परा

ऋषभदेव के पश्चात देश मे तीर्थंकरो का युग आरम्भ हुआ। एक के बाद दूसरे तीर्थंकर जन्म लेते गए और भारतीय सस्कृति को जीवन दान देते रहे। तीर्थंकरों की इसी शृखला में भगवान अजितनाथ, सभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ सुपार्श्व, चन्द्रप्रभु, पुष्पदत्त, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्य, विमल नाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुथुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ एव मुनिसुव्रतनाथ हुए जिनकी सभी क्रियाए भारतीय सस्कृति की प्रतीक थी तथा जिन्होंने सभी भारतीयो को एक साथ मिल कर अपने आत्म विकास के साथ देश, धर्म और समाज के विकास मे सहयोगी बनने का पाठ पढ़ाया तथा हिंसा जनित कार्यों से सर्वथा दूर रहने का मत्र दिया।

तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ के शासन-काल से देश मे भगवान राम का जन्म हुआ, जिनके जीवन ने भारतीय जनजीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया। राम ८वे बलभद्र है जिनका पूरा जीवन ही भारतीय सस्कृति के प्रतिनिधित्व के रूप मे रहा है। क्षत्रिय होते हुए भी उन्होने हिंसा को कभी प्रश्रय नही दिया। पिता की आज्ञा पालन, भ्रातृप्रेम और शरणागत के रक्षक के रूप मे अपने जीवन को ढाल कर देश के सामने उदाहरण स्वरूप बनाया। जिनकी लका विजय ने भारतीय सस्कृति को नया रूप प्रदान किया। सती सीता का जीवन भारतीय महिलाओं के लिए आदर्श के रूप मे स्वीकार किया गया। राम का जीवन श्रमण धर्म के पूर्ण अनुरूप था तथा जीवन के अन्त मे प्रव्रज्या ग्रहण कर अन्तिम समय तक जीवन से चिपके रहने की प्रवृत्ति का विरोध किया।

नेमिनाथ पार्श्वनाथ का उदय

२२वें तीर्थंकर नेमिनाथ ने जीवदया का अनुपम उदाहरण विश्व के सामने रखा जब उन्होंने विवाह में एकत्रित पशुओ की करुण पुकार सुनकर तोरणद्वार से लौटकर वैराग्य धारण कर लिया और राजुल जैसी सुन्दर कन्या की ओर मुह मोडकर भी नहीं देखा। भगवान पार्श्वनाथ सभी भारतीयों के पूज्य रहे और पचास वर्ष के पूर्व तक महावीर से भी अधिक देश मे पार्श्वनाथ को ही जैन धर्म का प्रमुख देवता के रूप माना जाता रहा। पार्श्वनाथ ने कुमार अवस्था मे ही वैराग्य धारण कर देश मे अहिंसा को जीवन में उतारने पर सबसे अधिक जोर दिया। महात्मा बुद्ध भी सर्वप्रथम पार्श्वनाथ परम्परा मे दीक्षित होकर तपस्या में लीन रहे लेकिन जब उन्हे कठोर साधना मे सफलता नही मिली तो उन्होने मध्यम मार्ग अपनाया।

भगवान महावीर द्वारा अहिंसक संस्कृति पर जोर

भगवान महावीर जैन धर्म के चौबीसवे तथा वर्तमान युग के अन्तिम तीर्थंकर माने जाते हैं। उन्होंने देश को आचार मे अहिंसा, विचारो मे अनेकात, वाणी मे स्याद्वाद और जीवन मे अपरिग्रह को अपनाने पर जोर दिया। उनके युग मे देश मे ३६३ मत-मतानर प्रचलित थे और सभी अपने आपको सच्चा मानते हुए व्यर्थ के वाद-विवाद मे ग्रस्त रहते थे। महावीर ने अनेकात के आधार पर सत्य को जानने का मत्र दिया तथा सह अस्तित्व मे विश्वास रखने को सही मार्ग बतलाया। सभी भारतीयो ने महावीर के अहिंसा और अनेकांत मे दृढ विश्वास व्यक्त किया। यही कारण है कि भगवान महावीर के बाद देश मे आने वाले सभी धर्मों तथा जातियो का स्वागत किया गया तथा सबको आत्मसात् करने की क्षमता प्राप्त की। महावीर ने जातिबन्धन का विरोध किया तथा वर्ग भेद को समाप्त करने पर जोर दिया। भगवान महावीर ने सब जीवो से मैत्री सबध स्थापित करने तथा वैर-विरोध को समाप्त करने की आवश्यकता बतलायी।

आत्मचिंतन और तत्वचिंतन

तीर्थंकरो के आत्मचिंतन और तत्व-चिंतन का भारतीय सस्कृति पर बडा भारी प्रभाव पडा। जिस सत ने जितना अधिक आत्मचिंतन किया, आत्मा की अनन्त शक्ति को पहचाना, प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा बनने की योग्यता का दिग्दर्शन कराया, उसन उतना ही अधिक सम्मान प्राप्त किया तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया। तीर्थंकरो ने आत्मा के चरम लक्ष्य को प्राप्त किया, घोर तपस्या करके कैवल्य प्राप्त किया, सर्वज्ञ बनकर तीन काल और तीनो लोको की घटनाओ को अपने ज्ञान के माध्यम से जाना, पुनर्जन्म के सिद्धात का सही चित्र प्रस्तुत करके असख्य जनो को पाप अथवा बुरे कामो से बचने का मार्ग दिखलाया। यही कारण है कि उनकी धर्म-सभाओ मे किसी का भी प्रवेश निषिद्ध नही था। यही नही, उनके दर्शनमात्र से ही मन के सभी विकार दूर हो जाते थे। इन सबको भारतीय सस्कृति का ही रूप कहा जा सकता है।

बोलचाल की भाषा का प्रयोग

तीर्थंकरों ने अपने प्रवचन बोलचाल की भाषा में देकर जन-सामान्य का हृदय जीत लिया। साथ मे प्रादेशिक भाषाओं के महत्व को भी प्रस्तुत किया। पार्श्वनाथ और महावीर दोनों ने ही अर्धमागधी का सबसे अधिक प्रयोग किया और जन-सामान्य से उसी भाषा मे बात की। यही नहीं, महावीर के बाद होने वाले आचार्यों ने भी उसी पथ का अनुसरण किया। इससे सभी भारतीयो का मनोबल बढ़ा, आपस में सौहार्द का वातावरण तैयार हुआ। अहिंसा के सिद्धांत का भी मर्म हृदयंगम किया गया।

भगवान महावीर की अहिंसा का प्रभाव

भगवान महावीर की अहिंसा का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि अहिंसा, दया, प्राणीरक्षा जैसे कार्य भारतीय संस्कृति के प्रमुख लक्षण बन गए। अहिंसा का प्रभाव भारतीयों पर इतना अधिक पड़ा कि राजस्थान हरियाणा, उत्तरप्रदेश, गुजरात, दिल्ली जैसे प्रदेशों मे हिंसक कार्यों को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा एव मांसाहारी जातियों के साथ खानपान करना गलत कार्य समझा जाने लगा। तुलसीदास जी का—

"दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान,
तुलसी दया न छोडिए जब लग घट मे प्रान।"

जैसे दोहों को गा-गाकर याचकगण भीख मागने लगे। गावो और नगरों मे कुछ अपवाद को छोडकर पशुओं और पक्षियो का शिकार बन्द हो गया तथा जिस किसी के हाथ से यदि किसी की मृत्यु हो गई तो उसे तीर्थयात्रा अथवा गगास्नान करना आवश्यक हो गया। यह अहिंसा की सबसे बडी विजय थी। मुस्लिम परिवारों में भी राजस्थान मे मांस खाना लगभग बन्द-सा हो गया था। यदि कदाचित कोई मासाहारी होता तो उसे मांस मिलने मे बडी कठिनाई होती थी। नगरो में कबूतर खाना, मोर चुगा जैसे पक्षियो के लिए सुरक्षित स्थान बना दिए गए। मारोठ (राजस्थान) मे आज भी बकरों को मारने नहीं दिया जाता, अपितु उनको खरीद कर उन्हे अवध्य बना दिया जाता है। मोरचुगा और कबूतर खाना तो राजस्थान के पचासो गावों मे मिल जावेंगे।

वैसे सामान्य रूप से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, परिमाण इन सभी मे देश-वासियों का पूरा विश्वास था और उन्हें जीवन मे उतारने अथवा उन सिद्धान्तों पर आचरण करने का पूरा प्रयास किया जाता था। झूठ और चोरी से डरना, तथा परस्त्रियो को माता-बहन के समान समझना एक आम बात थी तथा यही भारतीय सस्कृति की पहचान मानी जाती है। पाप नही करना, बुरे काम से डरना तथा जहां तक हो सके, परहित मे अपने आपको समर्पित रखना जीवन की प्रमुख विशेषता मानी जाती रही है। धर्मशाला बनवाकर गरीब-अमीर सभी के लिए आवास-व्यवस्था ही नही, अपितु यात्री को अभयदान देना, औषधालय खुलवाकर नि:शुल्क चिकित्सा और औषधियां उपलब्ध करवाना, प्याऊ, तालाब तथा कुए खुदवाकर आम जनता को पीने के लिए जल उपलब्ध करना भारतीय सस्कृति तथा विशेषत राजस्थान वासियो की प्रमुखता रही है। यही सब भारतीय सस्कृति है, जिसके विकास मे जैन-सस्कृति का सबसे बडा योगदान रहा है।
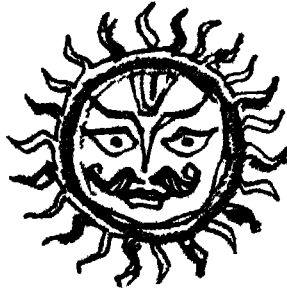
अनेकान्त के व्यावहारिक रूप पर नया प्रकाश

(डा.) दरबारीलाल कोठिया

□□

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा ण णिव्वडइ।
तस्स भुवणेक्क-गुरुणो णमो अणेगतवायस्स ॥ —आचार्य सिद्धसेन

"जिसके बिना लोक का भी व्यवहार किसी तरह नहीं चल सकता, उस लोक के अद्वितीय गुरु 'अनेकान्तवाद' को नमस्कार है।"

यह उन सन्तो की उद्घोषणा और अमृत वाणी है, जिन्होंने अपना साधनामय समूचा जीवन परमार्थ-चिन्तन और लोक-कल्याण मे लगाया है। उनकी यह उद्घोषणा काल्पनिक नही है, उनकी अपनी सम्यक् अनुभूति और केवल ज्ञान से पूत और प्रकाशित होने से यह यथार्थ है। वास्तव मे परमार्थ-विचार और लोक-व्यवहार दोनो की आधार-शिला अनेकान्तवाद है। बिना अनेकान्तवाद के न कोई विचार प्रकट किया जा सकता है और न कोई व्यवहार ही प्रवृत्त हो सकता है। समस्त विचार और समस्त व्यवहार इस अनेकान्तवाद के द्वारा ही प्राण-प्रतिष्ठा को पाये हुए है। यदि उसकी उपेक्षा कर दी जाय तो वक्तव्य वस्तु के स्वरूप को न तो ठीक तरह कह सकते हैं, न ठीक तरह समझ सकते हैं और न उसका ठीक तरह व्यवहार ही कर सकते हैं। प्रत्युत, विरोध, उलझनें, झगडे-फिसाद, रस्साकशी, वाद-विवाद आदि दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी वजह से वस्तु का यथार्थ स्वरूप निर्णीत नही हो सकता।

वस्तु का अनेकान्त स्वरूप—विश्व की तमाम चीजें अनेकान्तमय हैं। अनेकान्त का अर्थ है नाना धर्म। अनेक यानी नाना और अन्त यानी धर्म और इसलिए नानाधर्म को अनेकान्त कहते हैं। अत प्रत्येक वस्तु मे नानाधर्म पाये जाने के कारण उसे अनेकान्तमय अथवा अनेकान्तस्वरूप कहा गया है। यह अनेकान्तस्वरूपता वस्तु मे स्वय है—आरोपित या काल्पनिक नही है। एक भी वस्तु ऐसी नही है, जो सर्वथा एकान्तस्वरूप (एकधर्मात्मक) हो। उदाहरणार्थ यह लोक, जो हमारे और आपके प्रत्यक्ष गोचर है, चर और अचर अथवा जीव और अजीव इन दो द्रव्यो से युक्त है, वह सामान्य की अपेक्षा एक होता हुआ भी इन दो द्रव्यो की अपेक्षा अनेक भी है और इस तरह वह अनेकान्तमय सिद्ध है। उसके एक जीवद्रव्य को ही लें। जीवद्रव्य सामान्य की दृष्टि मे एक होकर भी चेतना, सुख, वीर्य आदि गुणों तथा मनुष्य, तिर्यच, नारकी, देव आदि पर्यायो की समष्टि रूप होने की अपेक्षा अनेक है और इस प्रकार जीवद्रव्य भी अनेकान्तस्वरूप प्रसिद्ध है। इसी तरह लोक के दूसरे अवयव अजीवद्रव्य की ओर ध्यान दे। जो शरीर सामान्य की अपेक्षा से एक है वह रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणो तथा बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि क्रमवर्ती प्रयत्नों का आधार होने से अनेक भी है। और इस तरह शरीरादि अजीवद्रव्य भी अनेकान्तात्मक सुविदित है। इस प्रकार जगत का प्रत्येक सत् अनेकधर्मात्मक—(गुणपर्यायात्मक, एकानेकात्मक, नित्यानित्यात्मक आदि) स्पष्टतया ज्ञात होता है।

और भी देखिए। जो जल प्यास को शान्त करने, खेती को पैदा करने आदि मे सहायक होने से प्राणियों का प्राण है—जीवन है, वही बाढ़ लाने, डूबकर मरने आदि मे कारण होने से उनका घातक भी है। कौन नहीं

जानता कि अग्नि कितनी संहारक है, पर वही अग्नि हमारे भोजन बनाने आदि मे परम सहायक भी है। भूखे को भोजन प्राणदायक है, पर वही भोजन अजीर्ण वाले अथवा मियादी बुखार वाले बीमार आदमी के लिए विष है। मकान, किताब, कपड़ा, सभा, संघ, देश आदि ये सब अनेकान्त ही तो हैं। अकेली ईंटों या चूने-गारे का का नाम मकान नहीं है। उनके मिलाप का नाम ही मकान है। एक-एक पन्ना किताब नहीं है, नाना पन्नों के समूह का नाम किताब है। एक-एक सूत कपड़ा नही कहलाता। ताने-बाने रूप अनेक सूतो के सयोग को कपड़ा कहते हैं। एक व्यक्ति को कोई सभा या सघ नहीं कहता। उनके समुदाय को ही समिति, सभा, सघ या दल आदि कहा जाता है। एक-एक व्यक्ति मिलकर जाति और अनेक जातिया मिलकर देश बनते हैं। जो एक व्यक्ति है, वह भी अनेक बना हुआ है। वह किसी का मित्र है, किसी का पुत्र है, किसी का पिता है, किसी का पति या स्त्री है, किसी का मामा या भानजा है, किसी का ताऊ या भतीजा है, आदि अनेक सबधो से बधा हुआ है। उसमे ये सबध काल्पनिक नहीं है, यथार्थ हैं। हाथ, पैर, आंखें, कान ये सब शरीर के अवयव ही तो हैं और उनका आधारभूत अवयवी शरीर है। इस अवयव-अवयवी स्वरूप वस्तु को ही हम सभी शरीर कहते व देखते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यह सारा ही जगत अनेकांतस्वरूप है। इस अनेकातस्वरूप को कहना या मानना अनेकान्तवाद है।

अनेकान्तस्वरूप का प्रदर्शक स्याद्वाद—भगवान महावीर और उनके पूर्ववर्ती ऋषभादि तीर्थंकरो ने वस्तु को अनेकान्तस्वरूप साक्षात्कार करके उसका उपदेश दिया और परस्पर विरोधी-अविरोधी अनन्त-धर्मात्मक वस्तु को ठीक तरह समझने-समझाने के लिए वह दृष्टि भी प्रदान की, जो विरोधादि के दूर करने मे एकदम सक्षम है। वह दृष्टि है 'स्याद्वाद' जिसे कथचित्वाद अथवा अपेक्षावाद भी कहते हैं। इस स्याद्वाद-दृष्टि से ही हम उस अनन्तधर्मा वस्तु को ठीक तरह जान सकते हैं। कौन धर्म किस अपेक्षा से वस्तु मे निहित है, इसे हम, जब तक वस्तु को स्याद्वाद-दृष्टि से नहीं देखेंगे, नही जान सकते हैं। इसके सिवा और कोई दृष्टि वस्तु के अनेकान्तस्वरूप का निर्दोष दर्शन नही करा सकती है। वस्तु जैसी है, उसका वैसा ही दर्शन कराने वाली दृष्टि अनेकान्त दृष्टि अथवा स्याद्वाद-दृष्टि ही हो सकती है, क्योंकि वस्तु स्वय अनेकान्तस्वरूप है। इसी से वस्तु के स्वरूप-विषय में "अर्थोऽनेकान्त । अनेके अन्ता धर्मा सामान्यविशेषगुणपर्याया यस्य सोऽनेकान्त " यों कहा गया है। दूसरी दृष्टियां वस्तु के एक-एक अश का दर्शन अवश्य कराती हैं। पर उस दर्शन से दर्शक को यह भ्रम और एकान्त आग्रह हो जाता है कि वस्तु इतनी मात्र ही है और नहीं है। इसका फल यह होता है कि शेष धर्मों या अशो का तिरस्कार हो जाने के कारण वस्तु का पूर्ण एव सत्य दर्शन नहीं हो पाता। स्याद्वाद-तीर्थ के प्रभावक आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने अपने स्वयम्भूस्तोत्र मे इसी बात को निम्न प्रकार प्रकट किया है

> य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षा स्वपर प्रणाशिन ।
> त एव तत्व विमलस्य ते मुने परस्परेक्षा स्वपरोपकारिण ॥

"यदि नित्यत्व, अनित्यत्व आदि परस्पर निरपेक्ष एक-एक ही धर्म वस्तु मे हो तो वे न स्वय अपने अस्तित्व को रख सकते हैं और न अन्य के। यदि वे ही परस्पर सापेक्ष हों—अन्य का तिरस्कार न करें—तो हे विमल जिन ! वे अपना भी अस्तित्व रखते हैं और अन्य धर्मों का भी। तात्पर्य यह है कि एकान्त दृष्टि तो स्वपरघातक है और अनेकान्त-दृष्टि स्वपरोपकारक है।"

इसी आशय से उन्होंने स्पष्टतया यह भी बतलाया है कि वस्तु मे एकान्तत नित्यत्व और एकान्ततः अनित्यत्व अपने अस्तित्व को क्यों नहीं रख सकते हैं ? वे कहते हैं कि "सर्वथा नित्य पदार्थ न तो उत्पन्न हो सकता है और न नाश हो सकता है, क्योंकि उसमे क्रिया और कारक की योजना सम्भव नहीं है।" इसी तरह

सर्वथा अनित्य पदार्थ भी, जो अन्वय रहित होने से प्राय असत्रूप ही है, न उत्पन्न हो सकता है और न नष्ट हो सकता है, क्योंकि उसमे भी क्रिया और कारक की योजना असम्भव है। इसी प्रकार सर्वथा असत् का उत्पाद और सत् का नाश भी सम्भव नही है, क्योकि असत् तो अन्वय शून्य है और सत् व्यतिरेक शून्य है और इन दोनो के बिना कार्यकारणभाव बनता नही "अन्वयव्यतिरेकसमधिगम्यो हि कार्यकारणभाव" यो सर्व सम्मत सिद्धान्त है। अत वस्तुतत्व "यह वही है" इस प्रकार की प्रत्यभिज्ञाप्रतीति होने से नित्य है और "यह वह नही है अन्य है," इस प्रकार का ज्ञान होने से अनित्य है और ये दोनों नित्यत्व तथा अनित्यत्व वस्तु मे विरुद्ध नही है, क्योकि वह द्रव्यरूप अन्तरग कारण की अपेक्षा से नित्य है और कालादि बहिरंग कारण तथा पर्यायरूप नैमित्तिक काय की अपेक्षा से अनित्य है। यथा—

> न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम्।
> नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तम पुद्गलभावतोऽस्ति ॥२४॥
> नित्य तदेवेदमिति प्रतीतेर्न नित्यमन्यत् प्रतिपत्तिसिद्धे।
> न तद्विरुद्ध बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ॥४३॥

आगे इसी ग्रथ मे उन्होने अर जिन के स्तवन मे और भी स्पष्टता के साथ अनेकान्तदृष्टि को सम्यक् और एकान्त दृष्टि को स्वघातक कहा है —

> अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्यय।
> तत सर्वं मृषोक्त स्यात्तदयुक्त स्वघातत ॥१८॥

"हे अर जिन! आपकी अनेकान्तदृष्टि समीचीन है—निर्दोष है, किन्तु जो एकान्तदृष्टि है वह सदोष है। अत एकान्तदृष्टि से किया गया समस्त कथन मिथ्या है, क्योकि एकान्तदृष्टि बिना अनेकान्तदृष्टि के प्रतिष्ठित नही होती और इसलिए वह अपनी ही घातक है।"

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार समुद्र के सद्भाव मे ही उसकी अनन्त बिन्दुओ की सत्ता बनती है और उसके अभाव मे उन बिन्दुओ की सत्ता नही बनती उसी प्रकार अनेकान्त रूप वस्तु के सद्भाव मे ही सर्व एकान्त दृष्टिया सिद्ध होती हैं और उसके अभाव मे एक भी दृष्टि अपने अस्तित्व को नही रख पाती। आचार्य सिद्धसेन अपनी चौथी द्वात्रिंशिका मे इसी बात को बहुत ही सुन्दर ढग मे प्रतिपादन करते हैं

> उदधाविव सर्वसिन्धव समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टय।
> न च तासु भवानुदीक्ष्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधि ॥ —(४-१५)

"जिस प्रकार समस्त नदिया समुद्र मे सम्मिलित हैं उसी तरह समस्त दृष्टियां अनेकान्त-समुद्र में मिली हैं। परन्तु उन एक-एक मे अनेकान्त दर्शन नही होता। जैसे पृथक्-पृथक् नदियो मे समुद्र नहीं दीखता।"

अत हम अपने स्वल्प ज्ञान से अनन्तधर्मा वस्तु के एक-एक अश को छूकर ही उसमें पूर्णता का अहकार "ऐसा ही है" न करें, उसमे अन्य धर्मों के सद्भाव को भी स्वीकार करें। यदि हम इस तरह पक्षाग्रह छोडकर वस्तु का दर्शन करें तो निश्चय ही हमे उसके अनेकान्तात्मक विराट् रूप का दर्शन हो सकता है। समन्तभद्र स्वामी युक्त्यनुशासन मे यही कहते हैं

एकान्तधर्माऽभिनिवेशमूला रागादयोऽहंकृतिजा जनानाम् ।
एकान्तहानाच्च स यत्तदेव स्वाभाविकत्वाच्च समं मनस्ते ॥५१॥

"एकान्त के आग्रह से एकान्ती को अहंकार हो जाता है और उस अहंकार से उसे राग, द्वेष, पक्ष आदि हो जाते हैं, जिनसे वह वस्तु का ठीक दर्शन नहीं कर पाता। पर अनेकान्ती को एकान्त का आग्रह न होने से उसे न अहंकार पैदा होता है और न उस अहंकार से रागादि को उत्पन्न होने का अवसर मिलता है और उस हालत में उसे उस अनन्तधर्मा वस्तु का सम्यग्दर्शन होता है, क्योंकि एकान्त का आग्रह न करना—दूसरे धर्मों को भी उसमे स्वीकार करना सम्यग्दृष्टि आत्मा का स्वभाव है और इस स्वभाव के कारण ही अनेकान्ती को मन में पक्ष या क्षोभ पैदा नहीं होता—वह समता को धारण किए रहता है।"

अनेकान्त दृष्टि की जो सबसे बड़ी विशेषता है वह है सब एकान्तदृष्टियो को अपनाना—उनका तिरस्कार नही करना—और इस तरह उनके अस्तित्व को स्थिर रखना। आचार्य सिद्धसेन के शब्दों मे हम इसे इस प्रकार कह सकते हैं

भद्दं मिच्छादंसणसमूहमइयस्स अमयसारस्स।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स ॥

"ये अनेकान्तमय जिनवचन मिथ्यादर्शनो (एकान्तों) के समूह रूप हैं—इसमे समस्त मिथ्यादृष्टियां (एकान्त-दृष्टिया) अपनी-अपनी अपेक्षा से विराजमान हैं और अमृतसार या अमृतस्वादु हैं। वे संविग्न-रागद्वेष-रहित तटस्थ वृत्तिवाले जीवो को सुखदायक एवं ज्ञानोत्पादक हैं। वे जगत् के लिए भद्र हो—उनका कल्याण करें।"

बन्ध, मोक्ष, आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक, पुण्य-पाप आदि की सम्यक् व्यवस्था अनेकान्त मान्यता मे ही बनती है, एकान्त मान्यता मे नही। इसीसे समन्तभद्र स्वामी को देवागम मे कहना पडा है कि—

कुशलाऽकुशलं कर्मपरलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ॥

"नित्यत्वादि किसी भी एकान्त मे पुण्य-पाप, परलोक-इहलोक आदि नही बनते हैं, क्योंकि एकान्त का अस्तित्व अनेकान्त के सद्भाव मे ही बनता है और अनेकान्त के न मानने पर उनका वह एकान्त भी स्थिर नही रहता और इस तरह वे अपने तथा दूसरे के बैरी—अकल्याणकर्ता हैं।"

इन्हीं सब बातों से आचार्य समन्तभद्र ने भगवान् वीर के शासन को जो अनेकान्त सिद्धान्त की भव्य एवं विशाल आधारशिला पर निर्मित हुआ है और जिसकी बुनियाद अत्यन्त सुदृढ़ है, 'सर्वोदय तीर्थ'—सबका कल्याण करने वाला तीर्थ कहा है

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वाऽऽपदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥६१॥ —युक्त्यनुशासन।

"हे वीर जिन ! आपका तीर्थ—शासन समस्त धर्मों—सामान्य विशेष, द्रव्य-पर्याय, विधि-निषेध, एक-अनेक, नित्यत्व-अनित्यत्व आदि से युक्त है और गौण तथा मुख्य की विवक्षा को लिए हुए है—एक धर्म मुख्य है तो दूसरा धर्म गौण हैं। किन्तु अन्य तीर्थ—शासन निरपेक्ष एक-एक नित्यत्व या अनित्यत्व आदि का

ही प्रतिपादन करने से समस्त धर्मों—उस एक-एक धर्म के अविनाभावी शेष धर्मों से शून्य हैं और उनके अभाव मे उनके अविनाभावी उस एक-एक धर्म से भी रहित हैं। अत आपका ही अनेकान्तशासनस्वरूप-तीर्थ सर्वदु खो का अन्त करने वाला है, किसी अन्य के द्वारा अन्त (नाश) न होने वाला है और सबका कल्याणकर्ता है।"

आचार्य अमृतचन्द्र के शब्दो मे हम इस 'अनेकान्त' को, जिसे 'सर्वोदयतीर्थ' कहकर उसका अचिन्त्य-माहात्म्य प्रकट किया गया है, नमस्कार करते और मंगलकामना करते हैं कि विश्व इसकी प्रकाशपूर्ण एव आह्लादजनक शीतल-छाया मे आकर सुखशान्ति एव सद्दृष्टि प्राप्त करे।

परमागमस्य बीज निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसितानां विरोधमथन नमाम्यनेकान्तम्॥
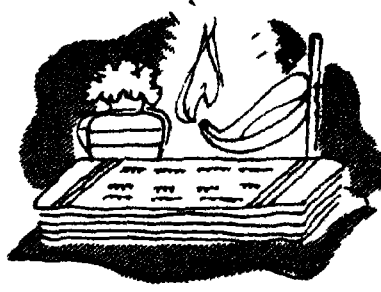
भारतीय संस्कृति

जैन धर्म ने यशपालजी को विशद दृष्टि प्रदान की है, वह भारतीय दर्शन, सस्कृति, कला आदि को भी बडा प्रेम करते है, उन्हे भरपूर सम्मान देते है। इस खण्ड की सामग्री उन्हीं भारतीय निधियो पर प्रकाश डालती है। इन पृष्ठो मे सग्रहीत रचनाए इस तथ्य को उजागर करती है कि भारतीय सस्कृति का अधिष्ठान मानवीय मूल्य है और वह सदा 'वसुधैव कुटुम्बकम' का कल्याणकारी सदेश देती रही है।

भारतीय संस्कृति

सर्वोदय

मो क गाधी

□□

मनुष्य कितनी ही भूलें करता है, पर मनुष्यों की पारस्परिक भावना—स्नेह, सहानुभूति के प्रभाव का विचार किये बिना उन्हे एक प्रकार की मशीन मानकर उनके व्यवहार के गढ़ने से बढ़कर कोई दूसरी भूल नहीं दिखाई देती। ऐसी भूल हमारे लिए लज्जाजनक कही जा सकती है। जैसे दूसरी भूलो मे ऊपर से देखने से कुछ सचाई का आभास दिखाई देता है वैसे ही लौकिक नियमो के विषय मे भी दिखाई देता है। लौकिक नियम बनाने वाले कहते हैं कि पारस्परिक स्नेह और सहानुभूति तो एक आकस्मिक वस्तु है, और इस प्रकार की भावना मनुष्य की साधारण प्रकृति की गति मे बाधा पहुचाने वाली मानी जानी चाहिए, परतु लोभ और आगे बढने की इच्छा सदा बनी रहनेवाली वृत्तियां हैं। इसलिए आकस्मिक वस्तु मे दूर रखकर मनुष्य को बटोरने की मशीन मानते हुए केवल इसी बात पर विचार करना चाहिए कि किस प्रकार के श्रम और किस तरह के लेने-देने के रोजगार से आदमी अधिक-से-अधिक धन एकत्र कर सकता है। इस तरह के विचारो के आधार पर व्यवहार की नीति निश्चित कर लेने के बाद फिर चाहे जितनी पारस्परिक स्नेह-सहानुभूति से काम लेते हुए लोक-व्यवहार चलाया जाय।

यदि पारस्परिक स्नेह-सहानुभूति का जोर लेन-देन के नियम-जैसा ही होता तो ऊपर की दलील ठीक कही जा सकती थी। मनुष्य की भावना उसके अदर का बल है और लेने-देने का कायदा एक सांसारिक नियम है। अर्थात् दोनो एक प्रकार, एक वर्ग के नही हैं। यदि एक वस्तु किसी ओर जा रही हो और उस पर एक ओर से स्थायी शक्ति, लग रही हो और दूसरी ओर से आकस्मिक शक्ति, तो हम पहले स्थायी शक्ति का अदाजा लगायंगे, बाद को आकस्मिक का। दोनों का अदाजा मिल जाने पर हम उस वस्तु की गति का निश्चय कर सकेंगे। हम ऐसा इसलिए कर सकेंगे कि आकस्मिक और स्थायी दोनों शक्तिया एक प्रकार की हैं, परतु मानव-व्यवहार मे लेन-देन स्थायी नियम की शक्ति और पारस्परिक भावनारूपी आत्मिक शक्ति दोनो भिन्न-भिन्न

प्रकार की हैं। भावना का असर दूसरे ही प्रकार का दूसरी ही तरह से पड़ता है, जिससे मनुष्य का रूप ही बदल जाता है। इसलिए वस्तु विशेष की गति पर पड़ने वाली भिन्न-भिन्न शक्तियों के असर का हिसाब जिस तरह हम साधारण जोड बाकी के नियम से लगाते हैं उस तरह भावना के प्रभाव का हिसाब नहीं लगा सकते। मनुष्य की भावना के प्रभाव की जाच-पडताल करने मे लेन-देन, खरीद-बिक्री या मांग और उत्पत्ति के नियम का ज्ञान कुछ काम नही आता।

लौकिक शास्त्र के नियम गलत हैं, यह कहने का कोई कारण नही। यदि व्यायाम-शिक्षक यह मान ले कि मनुष्य के शरीर मे केवल मास ही है, अस्थिपजर नही है और फिर नियम बनाए तो उसके नियम ठीक भले ही हो, पर वे अस्थि-पजरवाले मनुष्य के लिए लागू नही हो सकते। उसी तरह लौकिक शास्त्र के नियम ठीक होने पर भी भावना से बधे हुए मनुष्य के लिए लागू नही हो सकते। यदि कोई कसरतबाज कहे कि मनुष्य का मांस अलग कर उसकी गेंदे बनाई जा सकती हैं, उसे खीचकर उसकी डोरी बना सकते हैं, और फिर यह भी कहे कि उस मास मे पुन अस्थिपजर घुसा देने मे क्या कठिनाई है, तो हम निस्सदेह उसे पागल कहेगे, क्योकि अस्थिपजर से मास को अलग कर व्यायाम के नियम नही बनाये जा सकते। इसी तरह यदि मनुष्य की भावना को उपेक्षा करके लौकिक शास्त्र के नियम बनाये जाय तो वे उसके लिए बेकार है। फिर भी वर्तमान लौकिक व्यवहार के नियमो के रचयिता उक्त व्यायाम-शिक्षक के ही ढग पर चलाते हैं। उनके हिसाब से मनुष्य, उसका शरीर, केवल कल है और इसी धारणा के अनुसार वे नियम बनाते हैं। वे जानते हैं कि उसमे जीव है, फिर भी वे उसका विचार नही करते। इस प्रकार के नियम मनुष्य पर जिसमे जीव—आत्मा—रूह की प्रधानता है, कैसे लागू हो सकते है?

अर्थशस्त्र कोई शास्त्र नही है। जब-जब हडतालें होती है तब-तब हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि वे बेकार हैं। उस वक्त मालिक कुछ सोचते हैं और नौकर कुछ और। उस समय हम लेन-देन का एक भी नियम लागू नही कर सकते। लोग यह दिखाने के लिए खूब माथा-पच्ची करते हैं कि नौकर और मालिक दोनो का स्वाथ एक ही ओर होता है परतु इस समय मे वे कुछ नही समझते। सच तो यह है कि एक-दूसरे का सासारिक स्वार्थ—पैसे का—एक न होने पर भी एक दूसरे का विरोधी होना या बने रहना जरूरी नही है। एक घर मे रोटी के लाले पडे हैं। घर मे माता और उसके बच्चे हैं। दोनो को भूख लगी है। खाने मे दोनो के—माता और बच्चे के—स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं। माता खाती है तो बच्चे भूखो मरते हैं और बच्चे खाते हैं तो मा भूखी रह जाती है। फिर भी माता और बच्चो मे कोई विरोध नही है। माता अधिक बलवती है तो इस कारण वह रोटी के टुकडे को खुद नही खा डालती। ठीक यही बात मनुष्य के परस्पर के सबध के विषय मे भी समझनी चाहिए।

फिर भी थोडी देर के लिए मान लीजिए कि मनुष्य और पशु मे कोई अतर नही है। हमे पशुओ की तरह अपने-अपने स्वार्थ के लिए लडना ही चाहिए। तब भी यह बात नियमरूप मे नही कही जा सकती कि मालिक और नौकर के बीच सदा ही मतभेद रहना या न रहना चाहिए। अवस्था के अनुसार इस भाव मे परिवर्तन हुआ करता है। जैसे अच्छा काम होने और पूरा दाम मिलने मे तो दोनो का स्वार्थ है, परतु नफे के बटवारे की दृष्टि से देखने पर यह हो सकता है कि जहा एक का लाभ हो वहा दूसरे की हानि हो। नौकर को इतनी कम तनखाह देने मे वह सुस्त और निरुत्साह रहे, मालिक का स्वाथ नही सधता। इसी तरह कारखाना भलीभांति न चल सकता हो तो भी ऊची तनखाह मागना नौकर के स्वाथ का साधक नहीं है। जब मालिक के पास अपनी मशीन की मरम्मत करने को भी पैसे न हो तब नौकर का ऊची तनखाह मागना स्पष्टत अनुचित होगा।

इस तरह हम देखते हैं कि लेन-देन के नियम के आधार पर किसी शास्त्र की रचना नही की जा सकती। ईश्वरीय नियम ही ऐसा है कि धन की घटती-बढती के नियम पर मनुष्य का व्यवहार नही चलना चाहिए।

उसका आधार न्याय का नियम है, इसलिए मनुष्य को समय देखकर नीति या अनीति, जिससे भी बने, अपना काम निकाल लेने का विचार एकदम त्याग देना चाहिए। अमुक प्रकार से आचरण करने पर अत मे क्या फल होगा, इसे कोई भी सदा नहीं बतला सकता, परतु अमुक काम न्यायसगत है या न्यायविरुद्ध, यह तो हम प्राय सदा जान सकते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि नीति-पथ पर चलने का फल अच्छा ही होना चाहिए। हा, वह फल क्या होगा, किस तरह मिलेगा, यह हम नहीं कह सकते।

नीति-न्याय के नियम में पारस्परिक स्नेह-सहानुभूति का समावेश हो जाता है और इसी भावना पर मालिक-नौकर का संबध अवलंबित होता है। मान लीजिए, मालिक नौकरों से अधिक-से-अधिक काम लेना चाहता है। उन्हें जरा भी दम नही लेने देता, कम तनखाह देता है, दडबे-जैसी कोठरियो मे रखता है। सार यह कि वह उन्हें इतना ही देता है कि वे किसी तरह अपना प्राण शरीर मे रख सकें। कुछ लोग कह सकते हैं कि ऐसा करके वह कोई अन्याय नहीं करता। नौकर ने निश्चित तनखाह मे अपना सारा समय मालिक को दे दिया है और वह उससे काम लेता है। काम कितना कड़ा लेना चाहिए, इसकी हद वह दूसरे मालिको को देखकर निश्चित करता है। नौकर को अधिक वेतन मिले तो दूसरी नौकरी कर लेने की उसे स्वतत्रता है। इसी को लेन-देन का नियम बनाने वाले अर्थशास्त्री कहते हैं और उनका कहना है कि इस तरह कम-से-कम दाम में अधिक-से-अधिक काम लेने में मालिक को लाभ होता है और अत मे इससे नौकर को भी लाभ ही होता है।

विचार करने पर हम देखेंगे कि यह बात ठीक नही है। नौकर अगर मशीन या कल होता और उसे चलाने के लिए किसी विशेष प्रकार की शक्ति ही की आवश्यकता होती तो यह हिसाब ठीक बैठ सकता था, परतु यहा तो नौकर को सचालित करने वाली शक्ति उसकी आत्मा है। और आत्मा का बल तो अर्थशास्त्रियो के सारे नियमो पर हड़ताल फेर देता है—उन्हे गलत बना देता है। मनुष्य रूपी मशीन मे धन रूपी कोयला झोक-कर अधिक-से-अधिक काम नही लिया जा सकता। वह अच्छा काम तभी दे सकती है जब उसकी सहानुभूति जगाई जाय। नौकर और मालिक के बीच धन का नहीं, प्रीति का बधन होना चाहिए।

प्राय देखा जाता है कि जब मालिक चतुर और मुस्तैद होता है तब नौकर अधिकतर दबाव के कारण ज्यादा काम करता है। इसी तरह जब मालिक आलसी और कमजोर होता है तब नौकर का काम जितना होना चाहिए उतना नही होता। पर सच्चा नियम तो यह है कि दो समान चतुर मालिक और दो समान नौकर भी लिये जाय तो हम देखेंगे कि सहानुभूति वाले मालिक का नौकर सहानुभूति रहित मालिक के नौकर की अपेक्षा अधिक और अच्छा काम करता है।

कुछ लोग कह सकते हैं कि यह नियम ठीक नही, क्योकि स्नेह और कृपा का बदला अनेक बार उलटा ही मिलता है और नौकर सिर चढ़ जाता है, पर यह दलील ठीक नही है। जो नौकर स्नेह के बदले लापरवाही दिखाता है, सख्ती की जाय तो वह मालिक से द्वेष करने लगेगा। उदार-हृदय मालिक के साथ जो नौकर बददयानती करता है वह अन्यायी मालिक का नुकसान कर डालेगा।

सार यह है कि हर समय हर आदमी के साथ परोपकारी की दृष्टि रखने से परिणाम अच्छा ही होता है। यहां हम सहानुभूति को एक प्रकार की शक्ति मानकर ही उस पर विचार कर रहे है। स्नेह उत्तम वस्तु है, इसलिए उससे सदा काम लेना चाहिए—यह बिलकुल जुदा बात है और यहां हम उस पर विचार नही कर रहे हैं। यहां तो हमे केवल यही दिखाना है कि अर्थशास्त्र के साधारण नियमो को, जिन्हे हम अभी देख चुके हैं, स्नेही सहानुभूति रूपी शक्ति बरबाद कर देती है। यही नहीं, वह एक भिन्न प्रकार की शक्ति होने के कारण अर्थशास्त्र के अन्यान्य नियमो के साथ उसका मेल नही बैठता। वह तो उन नियमो को उठाकर अलग रख देने पर ही टिक सकती है। यदि मालिक काटे के तौल का हिसाब रखे और बदला मिलने की आशा से ही स्नेह

दिखाए तो संभव है कि उसे निराश होना पड़े। स्नेह स्नेह के लिए ही दिखाया जाना चाहिए, बदला तो बिना मांगे अपने आप ही मिल जाता है। कहते हैं जो खुद अपनी जान दे देता है वह तो उसे पा जाता है और जो उसे बचाता है वह उसे खो देता है।

सेना और सेनानायक का उदाहरण लीजिए। जो सेनानायक अर्थशास्त्र के नियमो का प्रयोग कर अपनी सेना के सिपाहियो से काम लेना चाहेगा वह निर्दिष्ट काम उनसे न ले सकेगा। इसके कितने ही दृष्टांत मिलते हैं कि जिस सेना का सरदार अपने सिपाहियो से घनिष्टता रखता है, उनके प्रति स्नेह का व्यवहार करता है, उनकी भलाई से प्रसन्न होता है, उनके सुख-दुख मे शरीक होता है, उनकी रक्षा करता है—सारांश यह कि जो उनके साथ सहानुभूति रखता है, वह उनसे चाहे जैसा कठिन काम ले सकता है। ऐतिहासिक उदाहरणों मे हम देखते हैं कि जहा सिपाही अपने सेनानायक से मुहब्बत नही रखते थे वहा युद्ध मे कहीं-कहीं ही विजय मिली है। इस तरह सेनापति और सैनिको के बीच स्नेह-सहानुभूति का बल ही वास्तविक बल है। यह बात लुटेरो के दलो मे भी पाई जाती है। डाकुओ का दल भी अपने सरदार के प्रति पूर्ण स्नेह रखता है, लेकिन मिल आदि कारखानो के मालिकों और मजदूरो मे हमे इस तरह की घनिष्टता नही दिखलाई देती। इसका एक कारण तो यह है कि इस तरह के कारखाने मे मजदूरो की तनखाह का आधार लेन-देन के, माग और प्राप्ति के नियमो पर रहता है, इसलिए मालिक और मजदूरो के बीच प्रीति के बदले अप्रीति बनी रहती है और सहानुभूति की जगह उनके सबध मे विरोध, प्रतिद्वद्विता-सी दिखाई देती है। ऐसी अवस्था मे हमे दो प्रश्नो पर विचार करना है।

पहला प्रश्न यह है कि मांग और प्राप्ति का विचार किए बिना नौकरो की तनखाह किस हद तक स्थिर की जा सकती है?

दूसरा यह कि जिस तरह पुराने परिवारो मे मालिक-नौकरो का या सेनापति और सिपाहियो का स्थायी सबध होता है, उसी तरह कारखानो मे बराबर कैसा ही समय आने पर भी नौकरी की नियत सख्या कमी-बेशी किए बिना, किस तरह रक्खी जा सकती है?

पहले प्रश्न पर विचार करें। आश्चर्य की बात है कि अर्थशास्त्री इसका उपाय नहीं निकालते कि कारखाने के मजदूरो की तनखाह की एक दर निश्चित हो जाय। फिर भी हम देखते हैं कि इग्लैंड के प्रधानमत्री का पद बोली बुलवाकर बेचा नही जाता। उस पद पर चाहे जैसा मनुष्य हो उसे वही तनखाह दी जाती है। इसी तरह जो आदमी कम-से-कम तनखाह ले उसे हम पादरी (बिशप) के पद पर नहीं बैठाते। डाक्टरो और वकीलो के साथ भी साधारणत इस तरह का सबध नही रक्खा जाता। इस प्रकार हम देखते हैं कि उक्त उदाहरण मे हम बधी उजरत ही देते हैं। इस पर कोई पूछ सकता है कि क्या अच्छे और बुरे मजदूर की उजरत एक ही होनी चाहिए? वास्तव मे होना तो यही चाहिए। इसका फल यह होगा कि जिस तरह हम सब चिकित्सको और वकीलो की फीस एक ही होने से अच्छे वकील-डाक्टरो के ही पास जाते हैं, उसी तरह सब मजदूरो की मजदूरी एक ही होने पर हम लोग अच्छे राज और बढ़ई से ही काम लेना पसद करेंगे। अच्छे कारीगर का इनाम यही है कि वह काम के लिए पसद किया जाय। इसलिए स्वाभाविक और सच्चे वेतन की दर निश्चित हो जानी चाहिए। जहा अनाडी आदमी कम तनखाह लेकर मालिक को धोखा दे सकता है वहा अत मे बुरा ही परिणाम होता है।

अब दूसरे प्रश्न पर विचार करें। वह यह है कि व्यापार की चाहे जैसी अवस्था हो, कारखाने में जितने आदमियो को आरभ मे रक्खा हो उतनो को सदा रखना ही चाहिए। जब कर्मचारियों को अनिश्चित रूप से काम मिलता है तब उन्हें ऊची तनखाह मांगनी ही पड़ती है, किन्तु यदि उन्हें किसी तरह यह विश्वास हो

जाय कि उनकी नौकरी आजीवन चलती रहेगी तो वे बहुत थोडी तनखाह में काम करेंगे। इस तरह यह स्पष्ट है कि जो मालिक अपने कर्मचारियों को स्थायी रूप से नौकर रखता है उसे अंत मे लाभ ही होता है और जो आदमी स्थायी नौकरी करते हैं उन्हें भी लाभ होता है। ऐसे कारखानों मे ज्यादा नफा नही हो सकता। वे कोई बड़ी जोखिम नहीं ले सकते। भारी प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। सिपाही सेनापति की खातिर मरने को तैयार होता है और सिपाहीगिरी साधारण मजदूरी के पेशे से ज्यादा इज्जत की चीज मानी गई है। सच पूछिए तो सिपाही का काम कत्ल करने का नहीं, बल्कि दूसरों की रक्षा करते हुए खुद कत्ल हो जाने का है। जो सिपाही बनता है वह अपनी जान अपने राज्य को सौंप देता है। यही बात हम वकील, डाक्टर और पादरी के सबध मे भी मानते हैं, इसलिए उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। वकील को अपने प्राण निकलने तक भी न्याय ही करना चाहिए। वैद्य को अनेक सकट सहकर भी अपने रोगी का उपचार करना उचित है। और पादरी-धर्मोपदेशक को चाहिए कि उस पर कुछ भी क्यो न बीते, पर अपने समुदाय वालो को ज्ञान देता और सच्चा रास्ता बताता रहे।

यदि उपर्युक्त पेशों मे ऐसा हो सकता है तो व्यापार मे क्यों नहीं हो सकता? आखिर व्यापार के साथ अनीति का नित्य का सबध मान लेने का क्या कराण है? विचार करने से दिखाई देता है कि व्यापारी सदा के लिए स्वार्थी ही मान लिया गया है। व्यापारी का काम भी जनता के लिए जरूरी है, पर हमने मान लिया है कि उसका उद्देश्य केवल अपना घर भरना है। कानून भी इसी दृष्टि से बनाये जाते है कि व्यापारी झपाटे के साथ धन बटोर सके। चाल भी ऐसी ही पड गई है कि ग्राहक कम-से-कम दाम दे और व्यापरी जहां तक हो सके अधिक मांगे और ले। लोगों ने खुद ही व्यापार मे ऐसी आदत डाली और अब उसे उसकी बेईमानी के कारण नीची निगाह से देखते हैं। इस प्रथा को बदलने की जरूरत है। यह कोई नियम नही हो गया है कि व्यापारी को अपना स्वार्थ ही साधना—धन ही बटोरना चाहिए। इस तरह के व्यापार को व्यापार न कहकर चोरी कहेंगे। जिस तरह सिपाही राज्य के सुख के लिए जान देता है उसी तरह व्यापारी को जनता के सुख के लिए धन गवा देना चाहिए, प्राण भी दे देने चाहिए। सभी राज्यो मे—

सिपाही का पेशा जनता की रक्षा करना है,
धर्मोपदेशक का, उसको शिक्षा देना है,
चिकित्सक का, उसे स्वस्थ रखना है,
वकील का उसमे न्याय का प्रचार करना है,
और व्यापारी का उसके लिए आवश्यक माल जुटाना है।

इन सब लोगो का कर्त्तव्य समय आने पर अपने प्राण भी दे देना है। अर्थात्—

पैर पीछे हटाने के बदले सिपाही को अपनी जगह पर खडे-खडे मृत्यु स्वीकार कर लेनी चाहिए।

प्लेग के समय भाग जाने के बदले चाहे खुद प्लेग का शिकार हो जाय तो भी चिकित्सक को वहा मौजूद रहकर रोगियो का इलाज करते रहना चाहिए।

सत्य की शिक्षा देने मे लोग मार डालें तो भी मरते दमतक धर्मोपदेशक को झूठ के बदले सत्य ही की शिक्षा देते रहना चाहिए।

न्याय के लिए मरना पडे तब भी वकील को इसका यत्न करना चाहिए कि न्याय ही हो।

इस प्रकार उपर्युक्त पेशे वालो के लिए मरने का उपर्युक्त समय कौन-सा है, यह प्रश्न व्यापारियो तथा दूसरे सब लोगों के लिए भी विचारणीय है। जो मनुष्य समय पर मरने को तैयार नही है, वह जीना किसे कहते हैं यह नहीं जानता। हम देख चुके हैं कि व्यापारी का काम जनता के लिए जरूरी सामान जुटाना है।

जिस तरह धर्मोपदेशक का काम तनखाह लेना नहीं, बल्कि उपदेश देना है, उसी तरह व्यापारी का काम नफा कमाना नही, बल्कि माल जुटाना है। धर्मोपदेश देने वाले को रोजी और व्यापारी को नफा तो मिल ही जाते हैं, पर दोनों मे से एक का भी काम तनखाह या नफे पर नजर रखना नही है। उन्हें तनखाह या मुनाफा मिले या न मिले फिर भी अपना काम, अपना कर्त्तव्य करते रहना ही है। यदि यह विचार ठीक हो तो व्यापारी को ऊचा दरजा मिलना चाहिए, क्योकि उसका काम बढ़िया माल तैयार करना और जिसमे जनता का लाभ हो उस प्रकार उसे जुटाना, पहुचाना है। इस काम मे जो सैकडो या हजारो आदमी उसके मातहत हों उनकी रक्षा और बीमार होने पर दवा-दारू करना भी उसका कर्त्तव्य है। यह करने के लिए धीरज, बहुत स्नेह-सहानुभूति और बहुत चतुराई चाहिए।

भिन्न-भिन्न काम करते हुए औरों की तरह व्यापारी के लिए भी जान दे देने का अवसर आए तो वह प्राण समपण कर दे। ऐसा व्यापारी चाहे उस पर कैसा ही सकट आ पडे, चाहे वह भिखारी हो जाय, पर न तो खराब माल बेचेगा और न लोगो को धोखा ही देगा। साथ ही अपने यहा काम करने वालों के साथ अत्यत स्नेह का व्यवहार करेगा। बडे कारखानो या कारोबारो मे जो नवयुवक नौकरी करते हैं उनमे से कितनों को अक्सर घरबार छोडकर दूर जाना होता है। वहा तो मालिक को ही उनके मां-बाप बनना होता है। मालिक इस विषय मे लापरवाह होता है तो बेचारे नवयुवक बिना मां-बाप के हो जाते हैं। इसलिए पद-पद पर व्यापारी या मालिक को अपने आप से यही प्रश्न करते रहना चाहिए कि "मैं जिस तरह अपने लडको को रखता हू वैसा ही बरताव नौकरो के साथ भी करता हू या नही ?"

जहाज के कप्तान के नीचे जो खलासी होते है उनमे कभी उसका लडका भी हो सकता है। सब खलासियो को लडको के समान मानना कप्तान का कर्त्तव्य है। उसी तरह व्यापारी के यहां अनेक नौकरो मे यदि उसका लडका भी हो तो काम-काज के बारे मे वह जैसा व्यवहार अपने लडके के साथ करता है वैसा ही दूसरे नौकरो के साथ भी उसे करना होगा। इसी को सच्चा अर्थशास्त्र कहना चाहिए। और जिस तरह जहाज के खतरे मे पड जाने पर कप्तान का कर्त्तव्य होता है कि वह स्वय सबके बाद जहाज से उतरे, उसी तरह अकाल इत्यादि सकटो मे व्यापारी का कर्तव्य है कि अपने आदमियो की रक्षा अपने से पहले करे। इस प्रकार के विचार सभव हैं कुछ लोगो को विचित्र मालूम हो, परतु ऐसा मालूम होना ही इस जमाने की विशेष नवीनता है, क्योकि विचार करके यह सभी देख सकते है कि सच्ची नीति तो वही हो सकती है जो अभी बतलाई गई है। जिस समाज को ऊपर उठना है उसमे दूसरे प्रकार की नीति कदापि नही चल सकती। अग्रेज जाति आज तक कायम है तो इसका कारण यह नही है कि उसने अर्थशास्त्र के नियमो का अनुसरण किया है, बल्कि यह है कि थोडे से लोगो ने उन नियमो का भग करके उपर्युक्त नैतिक नियमो का पालन किया है। इसीसे यह नीति अब तक अपना अस्तित्व कायम रख सकी है। इन नीति-नियमों को भग करने से कैसी हानिया होती हैं और किस तरह समाज को पीछे हटना पडता है, इसका विचार हम आगे चलकर करेंगे।

हम सचाई के मूल के सबध मे पहले ही कह चुके हैं। कोई अर्थशास्त्री उसका जवाब इस प्रकार दे सकता है—"यह ठीक है कि पारस्परिक स्नेह-सहानुभूति से कुछ लाभ होता है, परतु अर्थशास्त्री इस तरह के लाभ का हिसाब नही लगाते। वे जिस शास्त्र की विवेचना करते हैं वह केवल इसी बात का विचार करता है कि मालदार बनने का क्या उपाय है? यह शास्त्र गलत नही है, बल्कि अनुभव से इसके सिद्धात प्रभावकारी पाये गए हैं। जो इस शास्त्र के अनुसार चलते हैं वे निश्चय ही धनवान होते हैं और जो नहीं चलते हैं वे कगाल हो जाते हैं। यूरोप के सभी धनिको ने इसी शास्त्र के अनुसार चलकर पैसा पैदा किया है। इसके विरुद्ध दलीलें

उपस्थित करना व्यर्थ है। हरेक अनुभवी व्यक्ति जानता है कि पैसा किस तरह आता और किस तरह जाता है।"

पर यह उत्तर ठीक नहीं है। व्यापारी रुपये कमाते हैं, पर वे यह नही जान सकते कि उन्होंने सचमुच कमाया या नहीं और उससे राष्ट्र का कुछ भला हुआ है या नहीं। 'धनवान' शब्द का अर्थ भी वे अक्सर नहीं समझते। वे इस बात को नहीं जान पाते कि जहा धनवान होंगे वहां गरीब भी होंगे। कितनी ही बार वे भूल से यह मान लेते हैं कि किसी निर्दिष्ट नियम के अनुसार चलने से सभी आदमी धनी हो सकते हैं। सच पूछिए तो यह मामला कुए के रहट-जैसा है। एक के खाली होने पर दूसरा भरता है। आपके पास जो एक रुपया होता है उसका अधिकार उस पर चलता है जिसके पास उतना नही होता। अगर आपके सामने या पास वाले आदमी को आपके रुपये की गरज न हो तो आपका रुपया बेकार है। आपके रुपये की शक्ति इस बात पर अवलबित है कि आपके पडोसी को रुपये की कितनी तगी है। जहा गरीबी है वही अमीरी चल सकती है। इसका मतलब यह हुआ कि एक आदमी को धनवान होना हो तो उसे अपने पडोसियो को गरीब बनाये रखना चाहिए।

सार्वजनिक अर्थशास्त्र का अर्थ है, ठीक समय पर ठीक स्थान में आवश्यक और सुखदायक वस्तुएं उत्पन्न करना, उनकी रक्षा करना और उनका अदल-बदल करना। जो किसान ठीक समय पर फसल काटता है, जो राज ठीक-ठीक चुनाई करता है, जो बढई लकडी का काम ठीक तौर से करता है, जो स्त्री अपना रसोई घर ठीक रखती है, उन सबको सच्चा अर्थशास्त्री मानना चाहिए। यह लोग सारे राष्ट्र की सपत्ति बढाने वाले हैं। जो शास्त्र इसका उलटा है वह सार्वजनिक नहीं कहा जा सकता। उसमें तो केवल एक मनुष्य धातु इकट्ठी करता है और दूसरो को उसकी तगी मे रखकर उसका उपभोग करता है। ऐसा करने वाला यह सोचकर कि उनके खेत और ढोर वगैरह के कितने रुपये मिलेंगे, अपने को उतना ही पैसे वाला मानते हैं। वे यह नही सोचते कि उनके रुपयो का मूल्य उससे जितने खेत और पशु मिल सकें उतना ही है। साथ ही वे लोग धातु का, रुपयो का सग्रह करते हैं। वे यह भी हिसाब लगाते हैं कि उससे कितने मजदूर मिल सकेंगे। एक आदमी के पास सोना-चादी या अन्न आदि मौजूद हैं। ऐसे आदमी को नौकरो की जरूरत होगी, परन्तु यदि उसके पडोसियों से किसी को सोना-चांदी या अन्न की जरूरत न हो तो उसे नौकर मिलना कठिन होगा। अत उस मालदार को खुद अपने लिए रोटी पकानी पडेगी, खुद अपने कपडे सीने पडेंगे और खुद ही अपना खेत जोतना होगा। इस दशा मे उसके लिए उसके सोने का मूल्य उसके खेत के पीले ककडो से अधिक न होगा। उसका अन्न सड जायगा, क्योकि वह अपने पडोसी से ज्यादा तो खा न सकेगा। फल यह होगा कि उसको भी दूसरों की तरह कडी मेहनत करके ही गुजर करनी पडेगी। ऐसी अवस्था मे अधिक आदमी सोना-चादी एकत्र करना पसद न करेगे। गहराई से सोचने पर हमे मालूम होगा कि धन प्राप्त करने का अर्थ दूसरे आदमियो पर अधिकार प्राप्त करना—अपने आराम के लिए नौकर, व्यापार या कारीगर की मेहनत पर अधिकार प्राप्त करना है। और यह अधिकार पडोसियो की गरीबी जितनी कम-ज्यादा होगी उसी हिसाब से मिल सकेगा। यदि एक बढ़ई से काम लेने की इच्छा रखने वाला एक ही आदमी हो तो उसे जो मजदूरी मिलेगी वही वह ले लेगा। यदि ऐसे दो-चार आदमी हो तो उसे जहां अधिक मजदूरी मिलेगी वहा जायगा। निचोड यह निकला कि धन-वान होने का अर्थ जितने अधिक आदमियो को हो सके उतनो को अपने से ज्यादा गरीबी मे रखना है। अर्थ-शास्त्री अनेक बार यह मान लेते हैं कि इस तरह लोगो को तंगी मे रखने से राष्ट्र का लाभ होता है। सब बराबर हो जाय, यह तो हो नहीं सकता, परतु अनुचित रूप से लोगो मे गरीबी पैदा करने से जनता दु खी हो जाती है, उसका उपकार होता है। कगाली और मालदारी स्वाभाविक रूप से हो तो राष्ट्र सुखी होता है।

प्राचीन भारतीय परम्परा में त्रैत परात्पर तत्व

श्रीअरविन्द

□□

प्राचीन भारतीय परपरा मे केवल एक ही त्रैत परात्पर तत्त्व है और वह है सच्चिदानद। अथवा, तुम यदि उच्चतर गोलार्ध को परात्पर तत्त्व कहो तो वहा तीन लोक हैं सत्-लोक, चित्तलोक और आनद-लोक। अतिमानस को वहां चौथे लोक के रूप मे जोड़ा जा सकता है, क्योकि यह अन्य तीनो से निकलता है और उच्चतर गोलार्ध से सबध रखता है। भारतीय परपरा ने दो बिलकुल भिन्न शक्तियो और चेतना के बीच कोई भेद नही किया, एक तो वह है जिसे हम अधिमानस कहते हैं और दूसरा वह है जो यथार्थ अतिमानस या दिव्य विज्ञान है। और यही कारण है कि वे माया (अधिमानस-शक्ति या विद्या-अविद्या) के विषय मे विभ्रांत हो गये, और उसे ही उन्होंने चरम सृजनात्मिका शक्ति मान लिया। इस तरह अर्ध-प्रकाश मे ही आकर ठहर जाने के कारण उन्होंने रूपातर का रहस्य खो दिया—यद्यपि वैष्णव और तान्त्रिक योगो ने उसे फिर से पाने की अधवत् चेष्टा की और कभी-कभी वे सफलता की सीमा पर भी पहुंच गये थे। बाकी के लिये, मैं समझता हू कि यही बात सक्रिय दिव्य सत्य की खोज करने के प्रयास मे सबसे बडी बाधा रही है, मैं ऐसे किसी को नही जानता जिसने अधिमानस-ज्योति के अवतरित होते ही ऐसा न अनुभव किया हो कि बस यही सत्य-प्रकाश,विज्ञान-चेतना है और इसके फलस्वरूप या तो वे वही बीच मे रुक गये और आगे न जा सके अथवा उन्होने यह सिद्धात बना लिया कि यह भी महज माया या लीला है और एकमात्र करणीय कार्य है इससे परे परात्पर की किसी अचल-अटल तथा निष्क्रिय निश्चल-नीरवता मे चला जाना।

सभवत परात्पर तत्त्वों से मतलब वर्तमान अभिव्यक्ति के तीन मौलिक तत्त्व भी हो सकता है। भारतीय पद्धति मे ये हैं ईश्वर, शक्ति और जीव, अथवा सच्चिदानद, माया और जीव। परतु हमारी पद्धति मे, जो कि वर्तमान अभिव्यक्ति से परे जाने का प्रयास करती है, इन्हे अच्छी तरह स्वीकार किया जा सकता है, और चेतना के स्तरो की दृष्टि से देखा जाय तो तीन उच्चतम—आनद (जिस पर सत् और चित आधारित हैं), अतिमानस और अधिमानस को तीन परात्पर तत्त्व या लोक कहा जा सकता है। अधिमानस निम्नतर गोलार्ध की चोटी पर अवस्थित है, और यदि तुम अतिमानस तक जाना चाहो तो तुम्हे अधिमानस से होकर और उसके परे जाना होगा। अतिमानस से और भी ऊपर और उसके परे है सच्चिदानद के लोक।

तुम अधिमानस से नीचे एक खाई की बात कहते हो। परतु क्या वहा कोई खाई है—अथवा मानवीय अचेतनता के सिवा और कोई खाई है? चेतना के लोको या स्तरो की सपूर्ण श्रेणी मे कही कोई सच्ची खाई नही है, सर्वत्र ही सयोजक स्तर मिलते हैं और तुम एक-एक पग ऊपर आरोहण कर सकते हो। अधिमानस और मानव मन के बीच कितने ही अधिकाधिक ज्योतिर्मय स्तर हैं, परतु, चूंकि ये मानव-मन के लिये अतिचेतन है (निम्नतम स्तरो मे से एक या दो को छोडकर जिनका कि वह कुछ सीधा स्पर्श प्राप्त करता है), यह उन्हें श्रेष्ठतर निश्चेतना मानने की प्रवृत्ति रखता है। अतएव एक उपनिषद् ईश्वर-चेतना को 'सुषुप्ति' कहती है, क्योकि सामान्यतया मनुष्य तब तक केवल समाधि मे ही उस चेतना मे प्रवेश करता है जब तक कि वह अपनी जागृत चेतना को किसी उच्चतर स्थिति की ओर मोड देने का प्रयास नही करता।

सच पूछा जाय तो सत्ता और उसके अगों की व्यवस्था मे दो धाराए साथ-साथ कार्य कर रही हैं। एक

तो है समकेंद्रित धारा, चक्रों अथवा कोषों की एक परंपरा जिसके केंद्र में है चैत्य पुरुष, दूसरी है लंबरूप आरोहण और अवरोहण की धारा, सीढ़ियों की एक पंक्ति की जैसी, एक के ऊपर एक स्थापित कोकों की एक श्रेणी जिसके अदर मानव से परे भगवान् मे सक्रमण करने के मार्ग के महत्वपूर्ण केंद्र हैं अतिमानस-अधिमानस। इस संक्रमण का, यदि इसे साथ-ही-साथ एक रूपातर भी होना हो तो, केवल एक ही पथ है, एक ही मार्ग है। सर्वप्रथम, एक अतर्मुखी परिवर्तन होना चाहिए, अंतरतम चैत्य पुरुष को ढूढ़ निकालने के लिए और उसे सामने की ओर ले आने के लिए अंतस् मे पैठना चाहिये और-साथ-ही-साथ प्रकृति के आतर मन, आंतर प्राण और आंतर भौतिक अंश को उद्घाटित करना चाहिये। उसके बाद एक प्रकार का आरोहण होना चाहिये, ऊपर की ओर क्रमश परिवर्तन होने चाहिये और फिर निम्नतर अगो को परिवर्तित करने के लिये नीचे की ओर मुड़ना चाहिये। जब मनुष्य अतर्मुखी परिवर्तन साधित कर लेता है तो वह समूची निम्न प्रकृति को चैत्यभावापन्न बनाता है जिसमे कि वह दिव्य रूपांतर के लिये तैयार हो जाय। ऊपर की ओर जाने पर मनुष्य मानव-मन के परे चला जाता है और आरोहण की प्रत्येक अवस्था मे एक नयी चेतना मे परिवर्तन होता है तथा यह नयी चेतना सारी प्रकृति मे व्याप्त हो जाती है। इस तरह बुद्धि के परे ऊपर उठकर आलोकित उच्चतर मन मे से पार होते हुए हम सबोधि-चेतना मे चले जाते हैं और प्रत्येक वस्तु की ओर बौद्धिक क्षेत्र से नहीं अथवा यह यत्र की तरह बुद्धि के भीतर से नही, बल्कि एक महत्तर सबोधि की ऊचाई से तथा सबुद्ध सकल्प, भावना, भावावेग, संवेदन तथा भौतिक सपर्क के भीतर से ताकना आरभ करते हैं। इसी तरह, सबोधि से आगे महत्तर अधिमानसिक ऊचाई पर जाने पर एक नया परिवर्तन होता है और हम अधिमानस-चेतना से तथा अधिमानसिक विचार दृष्टि, सकल्प, भावना, सवेदन, शक्ति की क्रिया तथा सकल्प से ओतप्रोत मन, हृदय, प्राण और शरीर माध्यम से प्रत्येक वस्तु को देखते और अनुभव करते हैं। परतु अतिम परिवर्तन है अतिमानसिक, क्योंकि एक बार जब हम वहां पहुच जाते हैं—एक बार यदि प्रकृति अतिमानस भावापन्न हो जाती है, तो हम अज्ञान के परे चले जाते हैं, उसके बाद चेतना के परिवर्तन की कोई आवश्यकता नही होती, यद्यपि उससे आगे दिव्य प्रगति होती है, यहां तक कि अनत विकास की सभावना अभी रहती है।

अगर हम जगतो या स्तरो की सपूर्ण परंपरा को एक साथ देखें तो हमें वे एक महान् सबद्ध जटिल क्रिया के रूप मे दिखाई देंगे। उच्चतर लोक निम्नतर लोको पर अपना प्रभाव डालते हैं, निम्नतर उच्चतर के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं तथा अपने अदर अपने ही नियम के अधीन किसी ऐसी वस्तु को विकसित या अभिव्यक्त करते हैं जो श्रेष्ठतर शक्ति और उसकी क्रिया के अनुरूप होती है।

भौतिक जगत् ने प्राण-जगत् का दबाव मानकर प्राण को विकसित किया है, मानसिक जगत् का दबाव मानकर मन का विकास किया है। यह अब अतिमानसिक जगत् के दबाव को स्वीकार करके अतिमानस का विकास करने का प्रयास कर रहा है। अधिक ब्योरे को दृष्टि मे रखें तो उच्चतर जगतो की विशेष-विशेष शक्तियां, गतिया, क्षमताए और सत्ताए ऐसे समुचित और अनुरूप आकारो को स्थापित करने के लिए निम्नतर जगतो मे अपने-आपको फेंक सकती है जो उन्हे भौतिक जगत् के साथ युक्त कर देंगे तथा उनके कार्यों को मानो यहा उत्पन या प्रक्षिप्त कर देंगे। और यहा सृष्ट होनेवाली प्रत्येक वस्तु के, उसे सहारा देने वाले स्वय उसी के कई सूक्ष्म कोष या आकार होते हैं जो उसे बनते रहने मे मदद करते हैं तथा उसे ऊपर से कार्य करने वाली शक्तियो के साथ युक्त कर देते हैं। उदाहरणार्थ, मनुष्य के स्थूल भौतिक शरीर के अतिरिक्त और भी सूक्ष्मतर कोष या शरीर हैं जिनकी सहायता से वह पर्दे के पीछे चेतना के अतिभौतिक लोकों के साथ सीधा संबध बनाये रखता है एव उनकी शक्तियों, गतियो और सत्ताओ से प्रभावित हो सकता है। जो

कुछ भी प्राण मे घटित होता है उसके पीछे सर्वदा ही गुह्य प्राणलोक की क्रियाएं और आकृतियां विद्यमान रहती हैं। जो कुछ भी मन मे घटित होता है उससे पहले गुह्य मानसिक स्तरो पर अनुरूप गतियां और आकार विद्यमान रहते हैं। वस्तुओं का यही रूप जैसे-जैसे हम एक सक्रिय योग मे प्रगति करते जाते हैं वैसे-वैसे हमारे सामने सुस्पष्ट होता, बार-बार सामने आता तथा महत्वपूर्ण बनता जाता है।

परंतु इन सब चीजो को अत्यत कठोर और यांत्रिक अर्थ मे नहीं ग्रहण करना चाहिये। यह एक अत्यत अधिक नमनीय क्रिया है और सभावनाओ की क्रीडा से भारी है। इस चीज को अपनी द्रष्टा चेतना के अदर एक लचकीली और सूक्ष्म चातुरी तथा विवेक बुद्धि के द्वारा पकडना चाहिये। इसे अति कठोर भौतिक या यान्त्रिक सूत्र के अदर नही बाधा जा सकता। दो या तीन बातो पर जोर दिया जा सकता है जिसमें कि यह नमनीयता हमारी दृष्टि से ओझल न हो जाय।

सर्वप्रथम, प्रत्येक लोक, उससे ऊपर और नीचे के लोकों के साथ उसका संबध होने के बावजूद, अपने-आप मे एक पृथक् जगत् होता है, उसकी अपनी क्रियाए, शक्तिया, सत्ताए, नमूने, रूप होते हैं जो मानो उस लोक के और स्वय अपने खातिर, उसके अपने नियमानुसार, महान् शृखला के अन्य लोको का आपातत कोई ख्याल न रख स्वय उसकी अभिव्यक्ति के लिये अस्तित्व रखते हैं। इस तरह, यदि हम प्राणमय या सूक्ष्म-भौतिक लोक को देखे तो हम उसके महान् क्षेत्रो को (उनमे से अधिकाश को)अपने-आपमे विद्यमान देखेंगे, ऐसा लगेगा कि भौतिक जगत् के साथ उनका कोई सबध नही और न उनमे कोई ऐसी क्रिया हो रही है जो भौतिक जगत् को अभिभूत या प्रभावित करती हो, उससे भी कम भौतिक नियम के अधीन कोई अपने अनुरूप अभिव्यक्ति करती हो। अधिक-से अधिक हम कह सकते हैं कि प्राणिक, सूक्ष्म-भौतिक या किसी भी अन्य लोक मे किसी वस्तु का अस्तित्व ही अभिव्यक्ति की अनुरूप गतियो के होने की सभावना उत्पन्न करता है। परतु उस निष्क्रिय या अतर्निहित सभावना को सक्रिय शक्मित्ता मे परिवर्तित करने के लिए अथवा स्थूल सृष्टि करने के वास्तविक आवेग मे बदल देने के किसी और चीज की आवश्यकता होती है। वह कोई चीज भौतिक जगत् से उठने वाली कोई पुकार हो सकती है अर्थात् कोई शक्ति या कोई व्यक्ति भौतिक लोक मे होना चाहिये जो अतिभौतिक शक्ति या जगत् या उसके एक भाग के साथ सपर्क प्राप्त करे और उसे पार्थिव जीवन मे उतार लाने के लिये प्रेरित हो। अथवा, स्वय प्राणलोक या अन्य लोक मे एक प्रवेश हो अर्थात् एक प्राणमय सत्ता अपना कार्य पृथ्वी की ओर विस्तारित करने के लिये और अपने लिये वहा एक राज्य स्थापित करने के लिये अथवा अपने लोक मे वह जिन शक्तियो का प्रतिनिधि हो उनकी क्रीडा की व्यवस्था करने के लिये प्रेरित हो। अथवा, यह ऊपर से एक दबाव भी हो सकती है उदाहरणार्थ, कोई अतिमानसिक या मानसिक शक्ति ऊपर से अपनी रचना उत्पन्न कर रही हो और स्थूल जगत् मे अपनी आत्मसृष्टि को सक्रमित करने के माध्यम के रूप मे प्राण-स्तर पर आकारो और क्रियाओ को विकसित कर रही हो। अथवा, ऐसा भी हो सकता है कि यह सभी चीजें एक साथ कार्य करती हो और ऐसी हालत मे एक सफल सृष्टि होने की सबसे बडी सभावना उत्पन्न होती है।

द्वितीयत , परिणामस्वरूप, उसके बाद ऐसा होता है कि प्राणजगत् या किसी अन्य उच्चतर जगत् की क्रिया का एक सीमित अश ही पार्थिव जीवन के साथ सबद्ध होता है। परतु इससे भी बहुत सारी सभावनाए उत्पन्न हो जाती हैं जो, पृथ्वी जो कुछ एक समय मे अभिव्यक्त कर सकती है या अपने कम नमनीय नियमो के अधीन धारण कर सकती है उस सबसे बहुत अधिक महान होती हैं। ये सब सभावनाए ससिद्ध नही होती, कुछ तो एकदम व्यर्थ हो जाती हैं और अधिक-से-अधिक एक ऐसी भावना छोड जाती हैं जिसका कुछ अर्थ नही होता कुछ सभावनाए गभीरतापूर्वक प्रयास करती हैं और पीछे ढकेल दी जातीं तथा परास्त कर दी जाती हैं और, यदि कुछ समय के लिए कुछ करती भी हैं तो वह निरर्थक ही हो जाता है। दूसरी अपनी आधी अभिव्यक्ति

कर पाती हैं, और यही अधिकांश में सामान्य परिणाम होता है। इसका अधिकांश कारण यह होता है कि ये प्राणिक या अन्य अतिभौतिक शक्तियां संघर्षरत होती हैं और उन्हें केवल भौतिक चेतना और जड़तत्व के विरोध को ही नहीं बल्कि अपने पारस्परिक भयानक विरोध को भी जीतना होता है। कुछ संभावनाएं अपने परिणाम उत्पन्न करने मे और एक अधिक पूर्ण और सफल सृष्टि करने मे सफलता प्राप्त करती है और यदि तुम इस सृष्टि की तुलना उच्चतर लोक मे विद्यमान इसकी मूल सृष्टि से करो तो वहां उनमे बड़ी घनिष्ठ एकरूपता दिखाई देगी अथवा यहां तक कि एक प्रकार की आपातत यथार्थ अथवा अतिभौतिक से भौतिक नियम के अधीन रूपांतर प्रतीत होगी। और फिर भी वहां यथार्थता केवल बाह्यत ही होगी, अभिव्यक्ति के दूसरे सत्तत्व और दूसरे छद मे रूपांतर करने की बात ही विभेद उत्पन्न कर देती है। अब कोई दूसरी ही चीज होती है जो अभिव्यक्ति होती है और यही बात सृष्टि को मूल्यवान् बना देती है। उदाहरणार्थ भला पृथ्वी पर अतिमानसिक सृष्टि होने की क्या उपयोगिता होगी यदि वह ठीक वही चीज हो जो कि अधिमानस-लोक मे अतिमानसिक सृष्टि है? तत्वत यह है वही चीज पर फिर भी कुछ और है, ऐसी स्थितियो मे भगवान का नवीन विजयपूर्ण आत्मानुसधान है जो अन्यत्र नहीं है।

निस्सदेह, सूक्ष्म-भौतिक भौतिक के एकदम समीप है, और बहुत कुछ इसीके जैसा है। पर फिर भी उसकी अवस्थाए भिन्न है और वस्तुए अत्यधिक भिन्न हैं। जैसे सूक्ष्म-भौतिक लोक मे एक स्वतत्रता, नमनीयता तीव्रता, शक्तिशालिता, रग तथा ऐसी चीजो की विस्तारित और बहुविध क्रीडा है जिनकी कोई भी सभावना अभी इस पृथ्वी पर नही हे (वहा हजारो ऐसी चीजें हैं जो यहां नही है)। और फिर भी यहा कुछ है, भगवान की एक ऐसी सभाव्यता है जो दूसरे मे, उसकी महत्तर स्वतत्रता के बावजूद नही है, यहा एक ऐसी चीज है जो सृष्टि को अधिक कठिन बना देती है, पर अन्तिम परिणाम मे उस श्रम की सार्थकता को सिद्ध करती है।

अधिकाश चीजें भौतिक स्तर मे घटित होने से पहले प्राणिक जगत मे घटित होती हैं, परतु प्राण-जगत मे जो कुछ घटित होता है वह सब-का-सब भौतिक मे नही ससिद्ध होता, अथवा उसी रूप मे नही होता। सर्वदा ही अथवा कम-से-कम साधारण तौर पर भौतिक स्तर की भिन्न अवस्थाओ के कारण आकार, काल और परिस्थितियो मे अतर पड जाता है।

मोटे रूप मे तुमने जो कुछ देखा है वह ठीक है। अपने-आप मे प्रत्येक स्तर सत्य है पर अतिमानस के लिए केवल आंशिक सत्य है। जब ये उच्चतर सत्य भौतिक लोक मे आते हैं तो वे वहा अपने को चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हैं, पर वे उसे आंशिक रूप मे और भौतिक स्तर की अवस्थाओ के अधीन ही कर पाते हैं। एक मात्र अतिमानस ही इस कठिनाई को जीत सकता है।

स्वर्गीय जगत् शरीर से ऊपर हैं। जिनके साथ शरीर के अंगो का सादृश्य है वे हैं—सूक्ष्म-भौतिक, उच्चतर, मध्यवर्ती और निम्नतर प्राणिक और मानसिक जगत्। प्रत्येक स्तर का विभिन्न लोको के साथ, जो उससे सबधित होते हैं, संपर्क बना रहता है।

यहां इन नामो (माडूक्य उपनिषद् में आए हुए विश्व, तैजस और प्रज्ञा) का मतलब है बाह्य चेतना, आतरिक चेतना और अतिचेतना। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति शब्दों का प्रयोग इसीलिए किया गया है कि मनुष्य की सामान्य चेतना मे बाह्य ही केवल जागृत है, आतरिक सत्ता अधिकाश मे अवचेतन है और केवल स्वप्न की

स्थिति मे ही सीधे कार्य करता है जब कि उसकी क्रियाए स्वप्न और सूक्ष्म-दर्शन की चीजों की तरह अनुभूत होती हैं। अतिचेतन (अतिमानस, अधिमानस आदि) इस क्षेत्र से भी परे है और मन के लिए गंभीर निद्रा (सुषुप्ति) की तरह है।

परतु इन चीजो को तुम अतरात्मा के साथ क्यो जोड़ना चाहते हो? ये चार नाम (विश्व, तैजस, प्रज्ञा और कूटस्थ) परात्पर और वैश्व ब्रह्म या आत्मा की चार अवस्थाओ को दिये गए हैं। ये महज सत्ता और चेतना की अवस्थाए हैं—वह आत्मा जो जागृत अवस्था या स्थूल चेतना को सहारा देता है, वह आत्मा जो स्वप्नावस्था या सूक्ष्म चेतना को सहारा देता है, वह आत्मा जो गंभीर निद्रावस्था या कारण चेतना को सहारा देता है तथा वह आत्मा जो विश्वातीत चेतना मे अवस्थित है। व्यक्ति निस्सदेह भाग लेता है पर ये आत्मा की स्थितिया हैं, व्यक्तिगत आत्मा या अतरात्मा की नही।

भारतीय सस्कृति में अद्वैत का अधिष्ठान

साने गुरुजी

□□

भारतीय सस्कृति मे सवत्र अद्वैत की ध्वनि गूज रही है। भारतीय सस्कृति मे से अद्वैत की मगलकारी सुगन्ध आ रही है। हिन्दुस्तान के उत्तर मे जिस प्रकार गौरीशकर का उच्च शिखर स्थित है, उसी प्रकार यहा सस्कृति के पीछे भी उच्च और भव्य अद्वैत दर्शन है। कैलास-शिखर पर बैठकर ज्ञानमय भगवान् शकर अनादिकाल से अद्वैत का डमरू बजा रहे हैं। शिव के पास ही शक्ति रहेगी, सत्य के पास सामर्थ्य रहेगी, प्रेम के पास ही पराक्रम रहेगा। अद्वैत का अर्थ है निर्भयता। अद्वैत का सदेश ही इस ससार मे सुखसागर का निर्माण कर सकेगा। भारतीय ऋषियो ने इस महान वस्तु को पहचाना। उन्होने ससार को अद्वैत का मन्त्र दिया। इस मन्त्र के बराबर पवित्र अन्य कोई दूसरा नही है। ससार मे परायापन होने का ही मतलब है दु ख होना और समभाव होने का मतलब ही है सुख होना। सुख के लिए प्रयत्नशील मानव को अद्वैत का पल्ला पकड़े बिना कोई तरणोपाय नही है। ऋषि बड़ी उत्कट भावना से कहते हैं कि जिन-जिन के प्रति तुम्हारे मन मे परायापन अनुभव हो उन-उन के पास जाकर उन्हे प्रेम से गले लगाओ।

सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै।
ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ॥

इस महान मत्र का गूढ़ अर्थ क्या है? हमे इस मंत्र को एक ही स्थान पर नही बोलना चाहिए। इस

मंत्र का उच्चारण सब जगह होना चाहिए और इसी के अनुसार आचरण भी करना चाहिए। यह मंत्र केवल गुरु-शिष्य के लिए नहीं है। क्या ब्राह्मण ब्राह्मणेतर के साथ और ब्राह्मणेतर ब्राह्मणों के साथ परायापन रखते हैं? उन दोनों को एक स्थान पर आने दो और उन्हें यह मंत्र कहने दो। क्या स्पृश्य-अस्पृश्य एक-दूसरे से दूर हैं? उन्हें पास-पास आने दो और करने दो इस मंत्र का उच्चारण। क्या हिन्दू-मुसलमान आपस मे जानी दुश्मन हैं? उन्हे पास-पास आने दो और हाथ-में-हाथ पकड़कर इस मंत्र का उच्चारण करने दो। क्या गुजरात और महाराष्ट्र के लोग एक-दूसरे से द्वेष रखते हैं? उन्हे पास-पास आने दो और इस मंत्र का उच्चारण करने दो।

यदि हमे कोई मारता है तो दुःख होता है। यदि हमे अन्न-पानी नही मिलता तो हमारे प्राण कण्ठ मे आ जाते हैं। यदि कोई हमारा अपमान करता है तो वह हमे मृत्यु से भी अधिक दुखदायी प्रतीत होता है। यदि हमे ज्ञान प्राप्त नही होता है तो शर्म आती है। हमारे जैसा ही दूसरो को भी होता होगा। मेरे मन, बुद्धि व हृदय हैं। दूसरो के भी वे हैं। हमारी इच्छा होती है कि हमारा विकास हो। ऐसी ही इच्छा दूसरो की भी होती है। जैसा हमारा सिर ऊंचा हो, वैसा ही दूसरों का होना चाहिए। साराश वह है कि हमे सुख-दुःख का जो अनुभव होता है उसके ऊपर से दूसरो के सुख-दुःख की कल्पना करना ही एक प्रकार से अद्वैत है। जिन बातो से हमें दुःख होता है वे बातें हम दूसरो के प्रति नही करें, यही शिक्षा हमे उससे मिलती है। जिन बातो से हमे आनन्द होता है, उनसे दूसरो को भी लाभ हो, ऐसा प्रयत्न हम करें। यही बात हमे अपना अद्वैत बताता है। अद्वैत का अर्थ कोई अमूर्त कल्पना नही है। अद्वैत का अर्थ है प्रत्यक्ष व्यवहार। अद्वैत का अर्थ चर्चा नही, अद्वैत का अर्थ है अनुभूति।

ऋषि लोग केवल अद्वैत की कल्पना मे ही नही रहे, वे सारे ससार से—सारे चराचरो से—एकरूप हो गए। रुद्रसूक्त लिखनेवाला ऋषि इस बात की चिन्ता कर रहा है कि मनुष्य को किन-किन चीजो की जरूरत होगी। सारे मानवों की आवश्यकताए मानो उसे अपनी ही आवश्यकताए प्रतीत होती हैं। वह शरीर की, मन की, बुद्धि की भूख अनुभव करता है—घृत च मे, मधु च मे, गोधूमाश्च मे, सुख च मे, शयन च मे, ह्रीश्च मे, श्रीश्च मे, धीश्च मे, धिषणा च मे। मुझे घी चाहिए, मधु चाहिए, गेहू चाहिए, सुख चाहिए, ओढ़ना-बिछौना चाहिए, विनय चाहिए, सपत्ति चाहिए, धारणा चाहिए, मुझे सब चाहिए। वह ऋषि ये सब चीज अपने लिए नही मागता है। वह तो जगदाकार हो गया है। वह अपने आस-पास के सारे मानवो का विचार करता है। उसे इस बात की बेचैनी है कि ये सब चीजे मनुष्यो को कब मिलेंगी। इन सारे भाई-बहनो को पेट-भर भोजन और पहनने को तन-भर वस्त्र कब मिलेंगे, इन सबको ज्ञान का प्रकाश कब मिलेगा, इन सबको सुख-समाधान कैसे प्राप्त होगा, इसकी चिन्ता उस महर्षि को है।

समर्थ रामदास स्वामी की भी ऐसी ही एक मांग है। राष्ट्र को जिन-जिन चीजो की आवश्यकता है उन-उन चीजो की भिक्षा उन्होंने ईश्वर से उस स्तोत्र मे की है। उस स्तोत्र का उन्होंने 'पावन भिक्षा' यह सुन्दर नाम रखा है। विद्या दे, गायन दे, सगीत दे, इस प्रकार सारी मनवांछित और मगल वस्तुए उन्होंने मागी है।

रुद्रसूक्त में कवि समाज की आवश्यक वस्तुए मागता है और उन आवश्यकताओ की पूर्ति करनेवालो की वन्दना करता है। उस ऋषि को कहीं अमगल और अपवित्रता तनिक भी दिखाई नही देती। 'चर्मकारेभ्यो नमो, रथकारेभ्यो नमो, कुलालेभ्यो नमो।" 'हे, चमार, तुझे नमस्कार, हे, बढ़ई, तुझे नमस्कार, हे, कुम्हार, तुझे नमस्कार। समाज की कर्ममय पूजा करनेवाले ये सारे श्रमजीवी उस महान् ऋषि को वन्दनीय प्रतीत होते हैं। वह चमार को अस्पृश्य नही मानता, वह कुम्हार को तुच्छ नहीं समझता, वह मटकी देनेवाले की योग्यता भी समाज को जीवित विचार देनेवाले विचार-स्रष्टा जैसी ही मानता हैं। "There is nothing great or small, in the eyes of God" 'ईश्वर की दृष्टि मे समाज-सेवा का कोई भी काम उच्च या तुच्छ नहीं है।'

उन सेवा-कर्मों को करनेवाले सारे मंगल और पवित्र ही होते हैं।

लेकिन यह बात नही कि रुद्रसूक्त का ऋषि सेवा करनेवालों की ही वन्दना करता है। वह तो पतितों को भी प्रणाम करता है। मनुष्य पतित क्यो होते हैं? समाज के दोषो से ही वे पतित होते हैं? 'स्तेनानां पतये नमो।' यह ऋषि चोरो और चोरो के नायको को भी प्रणाम करता है। यह ऋषि पागल नही है। चोर आखिर चोरी क्यो करता है। धनवान के बालक के पास सैकडो खिलौने होते हैं। गरीब के बालक के पास एक भी नही होता। वह गरीब का बालक यदि एक-आध खिलौना चुरा लेता है तो उसको कोडे लगाये जाते हैं। खेत मे मर-मरकर काम करनेवाले मजदूर को जब पेट-भर खाना नही मिलता तब वह अनाज चुराता है। इसमे उसका क्या दोष? वह चोर नही है। उसे भूखो मारनेवाला समाज चोर है। ऋषि व्याकुल होकर कहता है, "अरे चोरो, तुम चोर नही हो। यदि समाज तुम्हारे साथ ठीक तरह व्यवहार करे तो तुम चोरी नही करोगे। मैं तुममे मनुष्यता देख रहा हू। मुझे तुम्हारे अन्दर दिव्यता दिखाई दे रही है। यदि तुम्हारी आत्मा का वैभव दूसरे व्यक्तियो को दिखाई न दे तो मुझ-जैसे निर्मल दृष्टिवाले को वह कैसे दिखाई नहीं देगा?"

जो समाज अद्वैत को भूल जाता है उसमे बाद मे क्रान्ति होती है। ईश्वर ससार को शिक्षा देना चाहता है। पडोसी भाई को दिन-रात श्रम करने पर भी रहने को घर व खाने को पेट-भर अन्न नही मिलता और मैं अपने विशाल बगले मे बैठकर रेडियो सुनता हू। यह भारतीय सस्कृति नही है। यह तो भारतीय संस्कृति का खून है। भूखे लोगो को देखकर दामाजी ने भडार खोल दिये थे। चोरी करने के उद्देश्य से आनेवाले व्यक्ति से एकनाथ ने कहा था—"जरा और ले जाओ।" चोरी करनेवाले व्यक्ति को देखकर हमे अपने ऊपर लज्जा आनी चाहिए। अपने समाज पर क्रोध आना चाहिए।

अद्वैत मानो एक मजाक हो गया है। पेट भरकर अद्वैत की चर्चा करने बैठते हैं। परन्तु जीवन मे अद्वैत को जानने वाले भगवान् बुद्ध शेरनी को भूखी और बीमार देखकर उसके मुह मे अपना पाव दे देते हैं। अद्वैत को अनुभव करनेवाला तुलसीदास वृक्ष काटने वाले के सामने अपनी गरदन झुका देता है और उस फलने-फूलने और छाया देनेवाले चैतन्यमय पेड को बचाना चाहता है। अद्वैत का अनुभव करनेवाला कमाल घास काटने के लिए जगल मे जाकर, चलती मन्द समीर मे डोलने लगता है और उपवन का दृश्य देखकर द्रवित हो जाता है। उसे घास यह कहता हुआ प्रतीत होता है, "मत काट रे, मत काट।" उसके हाथ से हसिया गिर पडता है। अद्वैत का अनुभव करनेवाले ऋषि के आश्रम मे शेर और बकरी एक साथ प्रेम से रहते हैं। हरिण शेर की अयाल खुजलाता है। साप नेवले का आलिंगन करता है। अद्वैत का अर्थ है उत्तरोत्तर बढनेवाला प्रेम, विश्वास के साथ विश्व को आलिंगन करनेवाला प्रेम।

लेकिन अद्वैत को जन्म देनेवाले व जीवन मे अद्वैत का अनुभव करनेवाले महान् सतो की इस भारत-भूमि मे आज अद्वैत पूरी तरह अस्त हो चुका है। हमारा कोई पास-पडोसी नही है। हमे आस-पास का विराट दु ख दिखाई नही देता है। हमारे कान बहरे हो गये हैं। आखें अधी हो गई हैं। सबको हृद्-रोग हो गया है। वेद मे एक ऋषि व्याकुल होकर कहता है—मोघमन्न विन्दते अप्रचेता सत्य ब्रवीमि वध इत् स तस्य। न अर्यमर्ण पुष्यति नो सखाय केवलाघो भवति केवलादी। सकुचित दृष्टि के मनुष्य के पास की धन-राशि व्यर्थ है। उसने अपने घर मे अनाज इकट्ठा नही किया है, बल्कि अपनी मृत्यु इकट्ठी की है। जो भाई-बहन को नहीं देता, योग्य व्यक्तियो को नही देता और अपना ही खयाल रखता है, वह केवल पाप-रूप है।

अपने आस-पास लाखो श्रमिक अन्नवस्त्र-विहीन मनुष्यो के होते हुए अपने बगलो मे कपडे के ढेर लगाना और अनाज के कोठे भरना खतरनाक है। ऋषि कहता है, "वे तुम्हे चकनाचूर करनेवाले बम हैं।" ऋषि के इस कथन का दूसरे देशो मे भी अनुभव हो रहा है। अपने देश मे भी यह अनुभव होगा।

नामदेव ने भूखे कुत्ते को घी-रोटी खिलाई। उन्हीं की सन्तान के देश में आज भूखे आदमियों की भी कोई पूछ नहीं करता। कोई अद्वैत का अभिमानी शंकराचार्य राजाओं से यह नही कहता कि—'कर कम करो।' साहूकारो से यह नही कहता कि—'ब्याज में कमी करो।' कारखानेवालों को नहीं कहता कि—"मजदूरी बढाओ और काम के घटे कम करो।" नैवेद्य पर लम्बे-लम्बे हाथ मारकर और पाद्य पूजा करवाकर घूमने-फिरनेवाले श्री शकराचार्य क्या मन मे अद्वैत लाने के लिए व्याकुल रहते हैं ? सर्वेऽत्र सुखिन सन्तु। सर्वे सन्तु निरामया। ('सब सुखी हो, सब स्वस्थ हो।') इस मन्त्र का जाप करने से सुख और स्वास्थ्य नही मिलता। मन्त्र का अर्थ हैं ध्येय। उस मन्त्र को कार्यरूप में परिणत करने के लिए मरना पडता हैं, मुसीबत उठानी पडती हैं। इस मन्त्र का जाप करते हुए भी कितने ही लोग सुखी नही हैं, कितने ही लोगों के पास दवाए नही हैं, कितने ही लोगों को गन्दे मकानो मे रहना पडता हैं, कितने ही लोगो को स्वच्छ हवा नही मिलती, साफ पानी नही मिलता, कितने ही लोगों को आरोग्य का ज्ञान नही, क्या कभी यह विचार भी मन मे आता हैं ? हमारे अधिकाश लोगो पर चारो ओर दभ ने सवारी गांठ रखी हैं। बडे बडे वचन उनकी जबान पर होते हैं, मन मे नही। जब तक धर्म को जीवन मे नही उतारते तब तक जीवन सुन्दर नही हो सकता। रोटी का टुकडा केवल जबान पर रखने से काम नहीं चलता। उसे पेट मे ले जाना पडता हैं, तभी शरीर सतेज और समर्थ होता हैं। जब महान वचन कार्य-रूप मे परिणत होंगे तभी समाज सुखी और स्वस्थ होगा।

यह सृष्टि एक प्रकार से अद्वैत की ही शिक्षा दे रही है। बादल सारा पानी दे डालते हैं, वृक्ष सारे फल दे डालते हैं, फूल सुगन्ध दे डालते हैं, नदिया पानी दे डालती हैं, सूर्य-चन्द्र प्रकाश दे डालते हैं। उसी प्रकार जो-कुछ भी है वह सबको दे डाले। सब मिलकर उसका उपयोग करें। आकाश के सारे तारे सबके लिए हैं। ईश्वर की जीवनदायिनी हवा सबके लिए हैं। लेकिन मनुष्य दीवारें खडी करके अपने स्वामित्व की जायदाद बनाने लगता हैं। जमीन सबकी हैं। सब मिलकर उसे जोतें, बोए व अनाज पैदा करें। लेकिन मनुष्य उसमे से एक अलग टुकडा करता है और कहता है कि यह मेरा टुकडा है। उसी से ही ससार मे अशान्ति पैदा होती है, द्वेष-मत्सर उत्पन्न होते हैं। स्वय को समाज मे घुला-मिला देना चाहिए। पिण्ड को ब्रह्माण्ड मे मिला देना चाहिए। व्यक्ति आखिर समाज के लिए है, पत्थर इमारत के लिए है, बूद समुद्र के लिए है। यह अद्वैत किसको दिखाई देता है ? कौन अनुभव करता है ? इस अद्वैत को जीवन मे लाना ही महान आनन्द है ?

जब तक स्वय नहीं मरते, चारो ओर फैले हुए परमेश्वर का दर्शन नही हो सकता। अपना अहकार कम करो। अपनी पूजा कम करो। जैसे-जैसे तुम्हारे 'अह' का रूप कम होता जायगा वैसे-वैसे तुम्हे परब्रह्म दीखने लगेगा। बुद्ध ने अपना निर्वाण कर दिया, अपने-आपको बुझा दिया। तभी वह चराचर को अमित प्यार दे सके।

यदि प्राणो का उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो तो वेदान्त की बातें करो। दूसरो के लिए दो पैसे नही, अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए तैयार होना ही अद्वैत की दीक्षा है। जो अपने प्राण बिछाते हैं भूतमात्र के लिए सदा। जो दूसरो के लिए अपने प्राणो के पावडे बिछाते हैं वे ही अद्वैत के अधिकारी हैं।

कहा जाता है कि शकराचार्य के अद्वैत तत्वज्ञान की सिंह-गर्जना से दूसरे सारे तत्वज्ञान भाग खडे हुए। सिंह को देखते ही स्यार-कुत्तो की कौन कहे, जबरदस्त हाथी के भी छक्के छूट जाते हैं। शकराचार्य के अद्वैत के कारण द्वैतवादी भाग छूटे, लेकिन समाज से द्वैत नहीं भागा। समाज के दभ, आलस्य, अज्ञान, रूढि, भेदभाव, ऊच-नीचपन, स्पृश्या-स्पृश्यता, विषमता, दारिद्र्य, दैन्य, दासता, निर्बलता, भय आदि नही भागे हैं। यह सब द्वैत की प्रजा है। जहा समाज मे परायापन पैदा हुआ कि ये सारे भयंकर दृश्य दिखाई देने लगते है। यदि भारती भारतीय समाज में बातों का अद्वैत दैनिक व्यवहार मे थोडा भी दिखाने के लिए कोई सच्चे मन से जुट जाना तो भारत की यह दुर्गति न होती।

स्वामी विवेकानन्द ने भी इसलिए बड़े खेद के साथ कहा था, "हिन्दू-धर्म के समान उदार तत्वों को बतानेवाला कोई दूसरा धर्म नहीं हैं और हिन्दू लोगो के समान प्रत्यक्ष आचार मे इतने अनुदार लोग भी दूसरी जगह नही मिलेंगे।"

सैकड़ो वर्षो से अद्वैत का डका बज रहा है, लेकिन अपने मठ छोड़कर जंगलों मे जगली लोगो के पास हम कभी नही गये। बुनकर, भील, गोंड आदि ऐसी जातियां हैं जिनसे अहकार के कारण हम दूर रहे। अद्वैत के ऊपर भाष्य लिखनेवाले और उसे पढ़नेवाले प्रत्यक्ष दैनिक व्यवहार मे मानो अद्वैत-शून्य दृष्टि से आचरण करते है।

अद्वैत भारतीय सस्कृति की आत्मा है। जीवन मे इस तत्व को उत्तरोत्तर अधिक अनुभव करते जाना ही भारतीय सस्कृति का विकास करना हैं। जैसे-जैसे हमारी अन्तर्बाह्य कृति मे से अद्वैत की सुगन्धि आने लगेगी वैसे-वैसे यह कहा जायगा कि हम भारतीय सस्कृति की आत्मा समझने लगे हैं। तब तक उस सस्कृति का नाम लेना उस महान ऋषि व महान सत का मजाक उड़ाना नही तो और क्या है?

मन की महिमा

(स्वामी) मुक्तानन्द परमहस

□□

महापुरुषो का, सिद्धो का कथन है—मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो। मनुष्य के सुख का, उसके दु ख का कारण मन है। मन से ही वह सुखी होता है। मन के कारण ही वह दु खी है। मन से ही बधा, और मन स ही मोक्ष प्राप्त कर लेना है। शैविज्म कहता है—

सव शक्तेर्महेशस्य विलासो हि मनोजगत्।
सयमासयमाभ्या च समार शान्तिमन्वगात्॥ (महोपनिषत् ४-८७)

सर्वशक्तिमान परमेश्वर का विलास ही यह मनोरूपी जगत है। उसके मानस का विलास है यह जगत। उसके उभयरूप दो कार्य हैं। असयम मे यह मन ससार को दिखाता है और सयम से परमात्मा को दिखाता है। कहा है

मनसैवेदमाप्तव्य। (कठ २-४-११)

यह सब कुछ मन स ही प्राप्त होता है अर्थात् सब कुछ मन की गति के अदर है। भर्तृहरि नामक एक

महान योगी हो गए। वह पहले राजा थे। नाथ संप्रदाय के गुरु गोरखनाथ से दीक्षा लेने के बाद अपनी राज-गद्दी अपने छोटे भाई को देकर तपस्या के लिए वे चले गए। वे अपने काव्य में लिखते हैं

पातालं आविशसि यासि नभो विलङ्घ्य
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस चापलेन।
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीनं
तद् ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषि येन॥ (वैराग्यशतक)

भर्तृहरि अपने मन से कहते हैं, "हे मेरे मन! हे दोस्त! तू अपनी चचलता के कारण क्षणभर मे पाताल मे प्रवेश कर देता है और दूसरे ही क्षण आकाश से उस पार चला जाता है। तेरे को दस दिशाए घूमने को छोटी पड़ती हैं। तू उनसे भी बडा है। परतु क्या तेरी दुर्दशा! हे मेरे मन! भूल से भी तू कभी उस निर्मल प्रेमस्वरूप आत्मा की याद नहीं करता। न उसके बारे मे कभी कुछ सोचता जो तेरे हृदय मे सतत मौजूद है, जिसके ज्ञान से तू भी परमानदस्वरूप हो जाता, जिसका ज्ञान होने से तू भी उसी शांति, उसी सुख को पा सकता। तू भी परमसुखी बन जाता। क्या यह तेरी दुर्दशा! तेरी यह दशा देखकर मुझे बहुत दु ख होता है। क्षणभर मे तू मरा-सा हो जाता है। मरा-सा दिखने पर भी तू तुरन्त जीवित भी हो जाता। क्षणभर मे कही हाथ से निकल जाता। देखने से भी दिखायी नही देता। एक क्षण मे नौ खड घूमकर लौट वापस आ जाता। पर पुन तुझे सामने देखने जाय तो दिखता नहीं, ऐसा तेरा विचित्र रूप है। ससार मे बहुत प्रकार के डान्सर, एक्टर, कलाकार हैं। मगर तू सबसे महान कलाकार है। सबको नचानेवाला, सब कलाकारो का मास्टर। तू नचाए नही ऐसा कोई मनुष्य नही। सबको नाचना सिखाता। रक को धन की अभिलाषा से नचाता रहता अहर्निश। 'स्व' को जलाते रहता। राजा को नचाते रहता सब भूमडल के भूपति बनाने की अभिलाषा से। क्या तेरी नाट्यकला! देवता, असुर और सब लोगों को, कीट, पशु, पक्षी लेके सब को नचाते रहता। सब को नाच सिखाते रहता। नचा-नचा के इन सबको हैरान कर देता। हे मेरे मन! हे मेरे दोस्त! तू नाचता है और तेरे नाचने से सारा ससार नाचता है। मगर एक सतजन मात्र तेरा नाचना बद कर देते। वे तेरेको अपने हाथ मे लेकर नचाते है। यह सतजन तेरे उड्डान को काट देते हैं। तेरे उड्डान को काट देने से मनुष्य का मन क्लेशरहित नि क्लेष रहता। नि क्लेश होने के बाद स्वस्थ हो जाता है। फिर उसे दु ख ही क्या! ससार मे उसके समान सुखी कौन हो सकता है। फिर उसके जैसा भाग्यशाली कौन?

हम लोग 'साऊथ फाल्सबर्ग' आश्रम मे हस लाए थे। वह उडने लगा, उडने लगा तो उसके पख काट दिए। वह शांत रहा, उडा ही नही। जिसने तेरे पख को काट कर स्थिर कर दिया, उसके समान जगत मे सुखी कौन हो सकता है? कृपालु परमेश्वर की करुणा से ही मन स्वस्थ रह सकता है। जगत मे लोग बाहर से स्वस्थ, निरोगी दिखने पर भी बहुत ही कम लोग निरोगी हैं—मानसिक रोग से। सब मन से पीडित हैं। जिसको मानस रोग की पीडा नही ऐसा भाग्यवान विरला ही है। कोई अपने व्यवसाय के घाटे मे मन मे दु खी, कोई दूसरे से पीडित होने से मन मे दु खी, कोई मृत्यु के भय से दु खी, कोई अपने मन मे सदा सोच-सोच के जलने से दु खी, कोई दुर्जनो के तीक्ष्ण, दुष्ट, वाग्बाणो से जर्जर होने से मन मे शोक करता हुआ सदा दु खी, कोई पराजय के बाद शत्रु की जयघोष से पीडित होके दु खी। जगत में कोई ऐसा देखा नही कि जो मानसिक कल्पना के कारण चिंतित न हो। एक बार गुरु नानकदेव यात्रा करने को निकले। यात्रा मे वह सब दूर गए, मगर उन्हें सच्चा सुखी कोई नहीं मिला जो मन से दु खी न हो। किसी का मन किसी दु ख से, दूसरा कोई किसी और दु ख से, किसी क्लेश से, किसी पाश से—सदा दु ख ही दु ख।

नानक मन से दुखिया यह संसार है। नानक साहब कहते है, "यह सब ससार मन से दु खी है।" परन्तु

जिसने मन को समझ लिया, मन को जान लिया, वही एक सुखी है जगत मे। जिसने ध्यान द्वारा, ज्ञान द्वारा, मन को अमन कर दिया, वही एक परमसुखी है, वही एक महासुखी जीव हो सकता है। एक मस्ताना बोलता है

मन मस्त हुआ प्रभु प्रेम मे फिर क्या रोवे।

मन के महत्व को समझो, समझने लायक है। मन के सामर्थ्य को भी समझो, समझने लायक है। मन की दशा को भी समझो, समझने जैसी है। तुम्हारे मन को तुम ही शुद्ध बना सकते हो और सुखी हो सकते हो। मन एक आत्मीय मित्र भी है और एक महाशत्रु भी है। मन मानव की महान शक्ति है। इसीलिए कहा गया है "मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो।" मनुष्य के सभी सुख, सभी दुःख का कारण मन है। मन के दृढ़तर निश्चय से, पूर्ण स्तब्धता से अतरशक्ति तुरन्त जाग उठती है। मन की चचलता ही अतरशक्ति जगाने मे रुकावट है।

आत्मन एष प्राणो जायते।
मनोऽधिकृतेनायात्यस्मिन् शरीरे॥ (प्रश्न ३-३)

उपनिषद कहता है, आत्मा से यह प्राण उत्पन्न होता है और मन के द्वारा वह शरीर मे व्याप्त होके कार्य करता रहता है।

प्राणबन्धन हि सोम्य मन। (छान्दोग्य ६-८-२)

'हे शिष्य, निश्चय ही प्राण मन के बधन मे है। प्राण और मन साथ मिलकर यह सब काम करते हैं।' प्राण श्वासोच्छवास इतना दिखने पर भी उतना ही नही, नख से शिखा तक शरीर मे सरसो के एक दाने जितनी जगह भी न छोडते हुए—शरीर का एक रोम भी न छोडते हुए, सपूर्ण शरीर मे प्राण व्याप्त है। उसके साथ-साथ मन भी व्याप्त है। मैं पहले ही कह चुका हू

सवशक्तेमहेशस्य विलासो हि मनोजगत्।

सवशक्तिमान परमेश्वर का विलास ही यह मनोरूपी जगत है। वह सारे जगत मे व्याप्त है। प्राण से यदि मन भिन्न होगा तो सुख-दुखो का बहुत उपद्रव आत्मा को नही होता।

हृदि स्थान मनसा। हृदय मन का मुख्य स्थान है। ऐसा शास्त्र मे कहा गया है। योगशास्त्र मे ऊर्ध्व और अधस् दो नाम से हृदय बताया गया है। एक हृदय है अधम्, एक ऊर्ध्व। ऐसे दो ठिकाने उसका स्थान है। मगर दोनो एक ही है। एक ही हृदय दोनो जगह काम करता है। कुछ आधुनिक सशोधको का कथन है कि मन का स्थान मस्तिष्क मे है। परन्तु योगियो का कथन है 'हृदि स्थान मनसा" हृदय मे मन का स्थान है। क्योकि ध्यान मे वे हृदय मे उसको स्थिर कर देते है। इसलिए यही उनका पक्का निश्चय है, पूर्ण अनुभव है। अनुभवयुक्त निश्चय है कि मन हृदय मे ही है। मन के आघात से हृदय मे परिणाम होता है। उपनिषद का कथन है।

मनोमयोऽय पुरुषो भा सत्यस्तस्मिन्नन्तहृ दये। (बृहदारण्यक ५-६-१)

अर्थात्, मनुष्य मनोमय है, मन जैसा सोचता है वैसा वह बनता है। मन मे जो विचार उठता है, जैसा विचार उठता है, वैसा वह है, इसलिए कि अन्तर हृदय मन का मुख्य स्थान है।

तदपि प्राणानुगमन वा।

फिर भी यह मन प्राण के आधार से चलता है। भगवद्गीता मे स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं

इद्रियाणा हि चरता यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञा वायुर्नावमिवाम्भसि॥ (२-६७)

"विषयों में चलती-फिरती इंद्रियों के पीछे जब मन चलता है तब ऐसा मन बुद्धि को इस प्रकार हर लेता है जैसे समुद्र मे चलने वाली नाव को वायु किधर से किधर बहा ले जाती है।" हमारी सब इंद्रिया मन की स्थूल शक्ति का कार्य है। मन का स्वरूप बताते हुए योगवासिष्ठ कहता है "संकल्पविकल्पात्मक मन ।" मन का यह स्वरूप है, सतत सकल्प-विकल्प करते रहना। अपने सकल्प-विकल्प से स्वय अपने-आपको अनेक रूपो में फंसाते रहना, सुखी-दुखी करते रहना, मित्र में शका लेना, स्नेह को तोडना-जोडना, ईश्वर और गुरु के प्रति शंका उठाना और उन्हे मानना न मानना आदि सब कार्य यह मन कर रहा है। जगद्गुरु शंकराचार्य के गुरु गोविंद गौडपादाचार्य अपनी 'गौडपादकारिका' मे लिखते हैं

मनोदृश्यमिद द्वैत यत्किंचित् सचराचरम् ।
मनसो ह्यमनीभावे द्वैत नैवोपलभ्यते ॥ (४२)

अर्थात्, चराचर जगत मे जो भी कुछ द्वैत भासता है, वह सब मन का ही दृश्य है। मन जब अमन हो जाता है तब द्वैत जगत मिट जाता है, वह दिखता नही। उसे फिर सर्वत्र अद्वैत जगत दिखता है। एक महात्मा कवि कहते हैं

घटि मानै बढ़ि मानै, सुभहू असुभ मानै।
नीच मानै ऊच मानै, मानै मेरो मन है ॥

कोई घटी (हानि) मानता है तो कोई बढी (वृद्धि), कोई शुभ तो कोई अशुभ, कोई उच्च मानता है तो कोई नीच, परतु जो कोई कुछ मानता है वह अपने मन से ही मानता है। इस मन को जितना हम स्थिर करेंगे, जितना स्तब्ध करेंगे उतने ही बलवान अष्टाग बन जाते हैं। जैसे एक पानी का छोटा स्रोत कही ऊपर बहता रहता है। वह बहते ही रहता। परन्तु यदि उस पर बाध बाधकर उसके प्रवाह को रोक लिया जाय तो कुछ काल मे बहुत बडा जलाशय बन जाता है। फिर उस छोटे से स्रोत से ही इतना बडा स्रोत बहने लग जाता है। मन की भी ऐसी महान शक्ति है, मगर उसका नियत्रण करना भी बहुत कठिन है। इसको ध्यान से, जप से, समझ से, इन रीतियो से, मनुष्य कुशलता से अपने स्वाधीन कर सकता है। वह जुलुम से कभी नही मानेगा। बल, जुलुम इन सबसे बढ़कर मन ताकतपूर्ण है। शास्त्र मे मन को स्वाधीन करने का एक तरीका बतलाया गया है। "वीतरागचित्तावलबनम् ।" इस मन को स्वाधीन करने के लिए वीतराग-चित्त का आलम्बन लेना बहुत सुदर है। वीत-राग-चित्त मेरे गुरुदेव भगवान नित्यानद जैसे सिद्ध महापुरुष को बोलते हैं। मैंने गणेशपुरी मे नित्यानद बाबा के सामने बहुत दूर, कम-से-कम सौ फुट दूर बैठते लगातार तीन घटे उनको ही देखते-देखते उसको (मन को) स्वाधीन बना दिया। और ध्यान से भी मन स्वाधीन हो जाता है। ध्यान से भी वीत-राग-चित्त से मन को स्वाधीन करने मे अधिक मदद मिलती है। हमारा यह प्रत्यक्ष अनुभव है। हमारा मन किसी मे किसी तरह बैठ गया तो बैठा ही रहता है, उसको वहां से हटाना बहुत मुश्किल हो जाता है। शत्रु मे बैठे या मित्र मे बैठे। शत्रु मर जाने पर भी उसके विषय मे मन मे जो बैर बैठा हुआ रहता है वह कभी नही जाता। शत्रु तो मर गया, मगर यह बैर जिंदा ही रहता है।

"जीवो ब्रह्मैव नापर ।" वेदान्त का —ब्रह्म सूत्र का यह सिद्धान्त है। यह आत्मा ही परब्रह्म, परम-चेतन—उससे वह भिन्न नही है। परन्तु ऐसा अनुभूति मे नहीं आता।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिण । (कठ १-३-४)

आत्मा, मन और इद्रियो से युक्त होने से भोक्ता कहलाती है। वस्तुत यह आत्मा भोक्ता नही है। मन द्वारा वह भोक्ता बन जाती है। मन के कारण ज्ञानेन्द्रियो से भोक्ता और कर्मेन्द्रियो से कर्ता बन जाता है। उपनिषद कहता है

मनसैवेदमाप्तव्यम् ।   (कठ २-४-११)

मनुष्य शुद्ध मन द्वारा परमात्मा को सर्वत्र देख पाता है। ' ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति' भ. गी । निर्मल ध्यान से मन तुरन्त शुद्ध हो जाता है और वह आत्मा को पा लेता है। एक क्षण भर भी अपने को निर्मल बना दो, तुरन्त तुमको खुशी की अनुभूति होगी, उसी क्षण। मन को एकाग्र करने का ध्यान एक बहुत बडी दवा है। ध्यान और आतर-सूक्ष्म चिन्तन मन को शान्त करने का अमोघ उपाय है। परन्तु यह ध्यान शेख नासिरुद्दीन के ध्यान की तरह नही होना चाहिए।

शेख नासिरुद्दीन ने ससार मे इधर-उधर खूब खाक छानी, परन्तु कहीं कुछ जमा नही। फिर उसने एक दिन पर्वत पर चढकर चट्टान पर बैठकर ध्यान करना शुरु किया। पर्वत के बाजू मे एक छोटा-सा झरना बहता था। उसका पानी पीता और मस्त ध्यान करता। शेख नासिरुद्दीन के 'ध्यान' का समाचार सर्वत्र फैल गया। लोगो को काफी कुतूहल हुआ। लोग अपने-अपने विषय के बारे मे सोचने लगे कि क्या उस पर्वत पर अपने विषय की पूर्ति के लिए कुछ अनुकूलता हो सकती है? शेख नासिरुद्दीन का समाचार पूछने और परिचय पाने के लिए लोग उत्सुक हुए। क्योकि मनुष्य का मन हमेशा अभिलाषायुक्त रहता है। एक दिन दो मुमुक्षु शेख नासिरुद्दीन के पास पर्वत के ऊपर गए। जाकर पूछा, "बाबाजी! हम सोचते हैं, आप इस पर्वत पर सारे दिन सुबह से लेकर शाम तक करते भी क्या हैं?" नासिरुद्दीन बोले, "ठीक पूछा, बच्चो! मैं सुबह उठ जाता हू। मुट्ठीभर चने खा लेता हू, थोडा पानी पी लेता हू और ध्यान मे लग जाता हू। फिर जब दुपहर आती है तब आँखें खोल देता हू। फिर मुट्ठी भर चने खा लेता हू, झरने का पानी पीता हू और ध्यान मे चले जाता हू। फिर रात आती है तो फिर मुट्ठी भर चने खाता हू, झरने का पानी पीता हू और सो जाता हू। इस तरह मैं सारा दिन ध्यान करते बैठा रहता हू और मुट्ठी भर चने खा के सो जाता हू। यही मेरा हर रोज का क्रम है। यह सुनकर वे दोनो एक साथ बोले, "वाह, वाह! गुरुजी! क्या आपका कमाल है! आपकी जय हो, जय हो। बाबाजी! जरा बताइए तो सही कि आप ध्यान कैसा और किसका करते हो।"

शेख साहब बोले, "जब मैं चने खा के आता हू और आखें बन्द करके बैठ जाता हू तो बहुत चीजो का ध्यान करता हू।"

"किन-किन चीजो का? कितनी चीजो का ध्यान करना पडता है आपको?"

नासिरुद्दीन बोले, "पहले तो मैं चाकलेट का ध्यान करता हू, फिर केक का, तदनन्तर पिस्ते का, बाद मे हाट डाग्स का। बीच-बीच मे फ्राइड चिकन का ध्यान करता हू। ऐसे किस्म-किस्म का ध्यान करते रहता हू। कभी-कभी सप्ताह मे एक या दो बार गल फ्रेंड का भी ध्यान कर लेता हू। कभी व्हिस्की, कभी बीअर, कभी वोडका का भी ध्यान कर लेता हू। फिर चने खाता हू, पानी पीता हू, ध्यान में बैठता हू, सो जाता हू ऐसा मेरा कार्यक्रम है।

ऐसा ध्यान कभी नही होना चाहिए। ऐसे ध्यान से हम आत्मा को नही पा सकते।

इन्द्रियेभ्य पर मनो मनस सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥   (कठ २-३-७)

"इन्द्रियो से मन बहुत श्रेष्ठ है। मन से भी बुद्धि उत्तम है। बुद्धि से भी बुद्धि का स्वामी जो अन्तरात्मा है वह परमश्रेष्ठ है।" मन, विषय, सकल्प आदि के कारण ज्ञान, लज्जा, कोप, भावना, द्वेष, मोह, काम आदि विकारो का आश्रय बन के रहता है, आत्मा के साथ। स्मृति, ताप आदि अनत अन्तरग अनुभव भी इन्द्रियो द्वारा मन मे ही उपजते हैं। मनुष्य को पाच ज्ञानेन्द्रियो और पाच कर्मेन्द्रियो से दशविधा समझ प्राप्त हो जाती है। परन्तु यह दशविधा समझ भी मन के आश्रय से ही होती है, मन बिना नही होती। मन की सहायता के

बिना किसी इन्द्रियों को किसी विषय के बारे में समझने की, कार्य करने की स्वतन्त्रता, योग्यता नही है। हम किसी बात के बारे मे सोचते हैं, उस विचार मे, उस सोच में हम मगन हो जाते हैं, फिर दूसरा कोई आदमी कुछ कहे तो उसकी बात हमारी समझ मे नही आती। क्योकि हमारी सोच का लक्ष्य दूसरा होता है। कान सुनते तो सुनते नहीं, आंखें देखतीं भी तो देखती नही, नाक सूंघती तो सूंघती नही। इसलिए अन्तरग समझ का भी और बहिरग समझ का भी मन ही मुख्य है। इस तरह हम सभी की यह प्रगट अनुभूति है। इसीलिए मैंने पहले ही कहा है "मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो।" मन ही मनुष्य के बंध और मोक्ष का कारण है।

चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसकोचिनी चित्तम्॥ (प्रत्यभिज्ञाहृदय-५)

मन क्या है इसकी पहचान पहले हमे कर लेनी चाहिए। पहले हमे मन को समझना चाहिए। मन के विषय मे बहुत लोग अभ्यास भी कर चुके हैं। ससार मे मानसशास्त्रज्ञो की सख्या डाक्टरो से भी अधिक होगी। इतना ही नही, हर एक मनुष्य अपने-अपने मन का अभ्यास करता ही है। यह मन क्या है? मन के तरीको को समझना बहुत जरूरी है। जिस वस्तु के बारे मे अपने को पूरा ज्ञान नही, उस वस्तु के विषय मे हम कुछ भी नही कर सकते। न उससे दोस्ती कर सकते, न उसको पकड सकते। कश्मीरी शैवमत के अनुसार यह चित्त कुछ अन्य वस्तु नही है। चितिरेवचेतनपदादवरूढा चेत्यसकोचिनी चित्तम्॥ अर्थात् आत्मा की जो यह अन्तर चेतन शक्ति है, वही चेतन शक्ति अपनी चेतनता को भूलकर पदार्थों के पीछे लगते हुए पदार्थाकार बन के रहती है। इसी का नाम मन है, और कुछ नही। इस मन का कल्पनाजाल, कल्पना साम्राज्य बहुत बडा है। परमात्मा की सृष्टि एक बार ही हुई है और उसकी परम्परा अब तक चली आयी है। उसमे कुछ बदलाव नही हुआ। परन्तु इस मन की क्षण-क्षण सृष्टि, क्षण-क्षण सृष्टि, अनन्त सृष्टि, मन की सृष्टि का कभी अन्त नही।

अपने अन्दर से मन द्वारा समझ मे आने वाली प्रत्येक समझ एक-दूसरे से भिन्न होती है। इतना ही नही, प्रत्येक समझ अपने-आप मे परिपूर्ण होती है।

भिन्न-भिन्न स्थिति की कल्पना को—विविध कल्पना को—नाना प्रकार की कल्पनाओ को शैविज्म मे विकल्प कहा है। मन का जो कल्पना जाल है उसे 'विकल्प' ऐसा बोलते हैं। हमारे अन्दर विकल्पो की अनगिनत सृष्टियो का निरन्तर उदय और अस्त होता रहता है। हमारे अन्तर हृदय मे विकल्पो की ऐसी कई सृष्टिया होती रहती हैं और उनका नाश भी होता रहता है। यह कल्पना अपने मानस क्षेत्र मे रात-दिन अनन्त सृष्टियो को जन्म देती हैं। पृथ्वी से लेकर शिव तक रहने वाली सभी समझ (ज्ञान) विकल्प ही है, निर्विकल्प नही, और भेद ज्ञान बिना विकल्पना को चालन नही, उसको चेतनता नही है। यह विकल्प 'मैं', 'मेरा', 'वो' और 'उसका' ऐसी भावना से जीता रहता है। ऐसे विकल्पो का जब लय होता है (याने कोई विकल्प नही रहता) तब उसको निर्विकल्प कहते हैं। इन विकल्पो के प्रवाह के कारण शक्ति का सकोच होके जीव बद्धावस्था को प्राप्त होता है। इस विकल्प से ही जीव, जो दिव्य था, वह मुक्तावस्था से बद्ध बन जाता है। यह विकल्प ही राग-द्वेष, सुख-दु ख आदि द्वन्द्वो का कारण बन जाता है। इस विकल्प की महान सामर्थ्य शक्ति है। यह सच को झूठ और झूठ को सच करके दिखाते हुए जीवात्मा को घुमाते रहता है। अपने मन मे उठने वाला विकल्प अपने को ही बनाते रहता है, फसाते रहता है। इस तरह इस विकल्प की महान सामर्थ्य है।

एक दिन शेख नासिरुद्दीन रास्ते से गुजर रहा था। उसे देखकर स्कूल के सभी बच्चे उसके पीछे लगे। कोई उसको पत्थर मारते, कोई उसकी पगडी खीचते, कोई उसके गधे की पूंछ पकड़ लेते। नासिरुद्दीन सोचने लगा, "अब क्या किया जाय? आखिर वे तो बच्चे ही ठहरे।" वह सोचने लगा। विकल्प ससार तो अनगिनत है। उसको तय करने में बहुत अधिक समय नही लगा। तुरन्त अन्दर से उसे एक उपाय सूझा। एक विकल्प

सूझा। वह बोला, "ऐ बच्चो, जरा ठहर जाओ। मैं एक अच्छी बात बोलता हूं।"

सभी बच्चे उपद्रव करना छोड के उसकी बात को सुनने लगे। 'बताओ, बताओ' बोले।

"सन्ता मोनिका के उस कोने मे बहुत बडा पब्लिक डिनर है, बिलकुल फ्री, बहुत भारी अच्छी चीजें बनायी हैं खाने के लिए, सब फ्री, ओपन।"

बच्चे नासिरुद्दीन को छोडकर उस तरफ भागने लगे। नासिरुद्दीन दौडते हुए बच्चो को देखता रहा और सोचता रहा और फिर वह उन बच्चो के पीछे भागने लगा। रास्ते मे किसी ने पूछा, "भाई नासिरुद्दीन ! कहा भाग रहे हो तुम ?" नासिरुद्दीन बोला, "मैं एक बहुत बडे कार्य के लिए जा रहा हू। रास्ते से मैं गुजर रहा था। इतने मे स्कूल के बच्चो ने मुझे घेर लिया, वे तरह-तरह से मुझे पीडा देने लगे। उनसे छुटकारा पाने के लिए मैं बोला, सान्ता मोनिका के दसवे रोड पर बहुत बडा डिनर है, ओपन, सब को फ्री। बच्चे मुझे छोड-कर उधर भाग गए। परन्तु मैं सोचता रहा, सोचता रहा, सोचता रहा, सोचता रहा। मेरी कल्पना मे ऐसा उतरा, अगर वह सब सच निकला तो। इसलिए मैं भी भाग रहा हू। क्योकि मैं भी बढ़िया डिनर का आनन्द उठा लू।"

मन की कल्पना अपने-आपको ही फसा देती है। कोई निश्चित रूप से कह नही सकता कि यह मन ऐसा ही है। एक विकल्प से अनन्त विकल्प जन्म लेते हैं और एक विकल्प अनेक विकल्पो का नाश भी करता है और उसी तरह अनेक विकल्पो से एक विकल्प जनमता भी है। ऐसे अनन्त विकल्पो का उदय, अस्त, सृष्टि-लय अन्दर से होते ही रहते हैं। यही मानव के सुख-दु ख का मूल कारण हैं। एक विकल्प से दूसरे का नाश और अनन्त विकल्पो का जन्म। यह विकल्प-सतान जन्तु जैसी बहुत बढ जाती है। इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं "मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो।" यही मन मनुष्य का बहुत बडा मित्र है, यही मन शत्रु के जैसा बहुत पीडा देने वाला कारण भी बन जाता है। इस तरह यह मन बहुत बडा जादूगर है। भगवद्गीता मे अर्जुन कहते है

चचल हि मन कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याह निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ (६-३४)

"हे भगवन् ! यह मन इतना चचल है, इतना प्रमादी है इतना बलवान है कि इसको वश मे करना वायु मे भी कठिन है।" हम वायु को किसी तरह पकड मे लाकर स्थिर कर सकते हैं, परन्तु मन को स्थिर करना बहुत मुश्किल है। अपने कल्पनाजाल मे फसा-फसाकर जीव को जन्म से मृत्यु तक अपने कल्पना क्षेत्र मे घुमाता रहता है। चित्त जब सकल्प-विकल्प रहित होता है तब चित्त ही चिति बन जाता है, शक्ति बन जाता है।

शैविज्म का कथन है कि वस्तुत यह जो हमारा चित्त और मन है वह परमात्मा की मनुष्य के लिए एक महान देन है, उत्तम शक्ति है।

जैसे कोई एक खाली घडा है। उस समय उस घडे के अन्दर का जो आकाश (अवकाश) परम शुद्ध होता है। उसम किसी तरह कुछ दोष, मलिनता नही होती। फिर उस घडे मे हम लोग नाना प्रकार की चीजे डाल देते हैं तो उसकी नासिरुद्दीन के ध्यान के जैसी हालत हो जाती है। फिर नाना प्रकार के चाकलेट-चाकलेट का चिन्तन करके—इस घडे के भीतर भी नाना प्रकार की वस्तुओ को डालते-डालते—ऐसी अनत अनात्म वस्तुओ से चित्त भर जाने से फिर वह मन कहलाता, नही तो मन नही, मन चिति है।

चित्तस्पन्दितमेवेद ग्राह्यग्राहकवद्द्वय।
चित्त निर्विषय नित्य असग तेन कीर्तित॥

यह शैविज्म का कथन है। ग्राह्य और ग्राहकरूप, द्वैत प्रपचरूप यह संसार मात्र चित्त का ही स्पदन

है। चित्त निर्विषय, नित्य, सगरहित हो जाने से यही चित्त परम सुखरूप, आत्मा का परम प्रेम देने वाली वस्तु हो जाता है। मानव के लिए यही चित्त परमसुखदायी बन जाता है। इसलिए चित्त को समझो।

शेख महम्मद नामक एक गरीब आदमी था। वह मजदूरी करके अपना जीवन निर्वाह करता था। एक दिन एक सेठजी ने उसको बुलाकर घी से भरा हुआ एक मिट्टी का बड़ा मटका दिया और कहा कि उस मटके को अमुक गाव के सेठजी के पास पहुचा दो, तेरे को दो रुपये मजदूरी दी जाएगी। शेख महम्मद उस मटके को सिर पर लेके चल पडा। बहुत दिनों के बाद उसको यह दो रुपये का काम मिल गया था। चलते-चलते शेख महम्मद सोचने लगा कि इन दो रुपये का क्या किया जाय? यह बहुत पुराने काल की बात है। उस समय एक रुपये मे पच्चीस मुर्गियां मिलती थीं। बस, उसने सोच लिया कि वह मुर्गिया खरीद कर पालेगा। उन मुर्गियो के सौ, दो सौ, पाँच सौ, हजार मुर्गियां होगी। फिर उन सबको बेच दूगा। उससे कई हजार रुपये मिलेंगे। उससे बकरिया खरीदूगा। बकरी का फार्म बनाऊगा। फिर मैं बहुत बडा सेठ बनूगा। फिर शादी करूगा, घर बसाऊगा। अच्छा खाना बनाने के लिए रसोइया रखूगा और यदि रसोइये ने समय पर खाना नहीं दिया तो 'ऐ' बोल कर जोर से उसे लात मारूगा। ऐसा सोचते ही उसने रसोइये को लात मारने के लिए अपना पैर उठाया, और वह धडाम से नीचे गिर गया। साथ-साथ घी का मटका भी नीचे गिर गया और टूट गया। घी पहुचा नही और दो रुपये मिले नही। न मुर्गिया खरीदी, न बकरिया। न शादी हुई, न बगला बनाया। दो हाथ सिर पर रखकर वह वापस आया। मन का ऐसा विलास है। ऐसा है हमारा मन।

इसलिए हम लोगो को मन को समझना चाहिए। इस मन से सवाद करना चाहिए। इस मन से लडाई करनी चाहिए। अगर वह इधर-उधर जाता है तो उसके पीछे लगना चाहिए। हम उसको ढीला छोडते हैं तो वह दूसरे के पीछे लग जाता है।

तुकाराम महाराज कहते हैं, "तू अकेले आपसे कहि।" वे अन्यत्र कहते हैं, "तुका म्हणे होय मनोसी सवाद।" तू अपना क्या कर रहा है। जो मन से सवाद करता, जो मन से तर्क-वितर्क करता, जो मन से बोलना सीखता, जो मन को समझा सकता, जो मन से दोस्ती करता, ऐसे व्यक्ति का मन उसका महादोस्त हो जाता है। इसी दोस्ती से हम अन्दर से परमात्मा की सत्य अनुभूति कर सकते हैं। यही मन शत्रु, यही मन मित्र, यही मन मनुष्य को ईश्वर से दूर भगाता, यही मन मनुष्य को ईश्वर से दूर भगाता, यही मन मनुष्य को ईश्वर को ईश्वर के नजदीक लाता। यही मन सर्वनाश रूप अनर्थ को जन्म देता और यही मन परमोत्कृष्ट ईश्वर-प्रेम को भी जन्म देता है। ऐसा इस मन का कार्य है।

इसलिए सोचो तो अपने मन के लिए। कुछ करने हो तो करो अपने मन के लिए। सवाद करते हो तो करो उसी के लिए। तू किधर जा रहा है? क्या कर रहा है? मन से ही मन को लेकर जो मन को स्थिर करता है, वही मनुष्य बुद्धिमान है, वही सब कुछ पा लेता है।

अणुव्रत की क्रान्तिकारी पृष्ठभूमि

(आचार्य) तुलसी

□□

संसार मे दो प्रकार के व्यक्ति है। प्रथम कोटि के व्यक्ति वे हैं, जो अन्धकार से प्रकाश की ओर जाना चाहते हैं। दूसरी कोटि मे वे व्यक्ति आते हैं, जो अन्धकार मे जीते हैं और अन्धकार मे ही जीना पसन्द करते हैं। ऐसे व्यक्तियो के जीवन मे कोई क्रान्ति घटित नही हो सकती। क्रान्ति की बात वहा पैदा होती है, जहां अन्धकार को छोड आलोक की यात्रा पर प्रयाण किया जाता है। व्यक्ति और विचार, दोनों स्तरो पर प्रयाण की सगति बैठ सकती है।

क्रान्ति दो तरह की होती है। सीधी समतल सडक पर सपाट गति की तरह एक क्रान्ति आती है और घुमावदार ऊबड-खाबड रास्तो पर कुछ झटको को महसूसते हुए दूसरी तरह की क्रान्ति आती है। सपाट गति मे कोई घटना नही होती, इसलिए उसमे कोई अप्रत्याशित परिवर्तन नहीं आता। कोई भी अघटना हमारी स्थूल आखो की पकड मे नही आ सकती। फिर भी उससे धीरे-धीरे जो परिवर्तन आता है, वह समाज की तस्वीर को ही बदल देता है। आकस्मिक रूप से किसी भी मोड पर कोई झटका लगता है, उससे एक बार तो बहुत बडा परिवर्तन-सा प्रतीत होता है। किन्तु उसके स्थायित्व के बारे मे आश्वस्ति नही मिलती। बहुत-सी क्रान्तिया इसीलिए अर्थहीन हो जाती है कि वे क्षणिक चमत्कार दिखाकर अपने प्रभाव को समाप्त कर देती हैं। कुछ घटनाए स्थायी भी हो सकती हैं, किन्तु यह सब निर्भर करता है, समकालीन परिस्थितियो और जनता की मन स्थितियो पर।

हिंसा और भ्रष्टाचार की धधकती हुई ज्वाला मानवीय मूल्यो को जिस रूप मे भस्मसात कर रही है, यह एक बडी घटना है। इसके प्रतिबिम्ब बहुत लोगो की आखो मे हैं। इसका परिणाम एकदम सामने आता है, इसलिए इसकी त्रासदी भयावह है। किन्तु अणुव्रत की चिनगारी ने अपनी पैंतीस वर्षों की सुलगती हुई जिंदगी मे चुपचाप जो काम किया है, वह किसी की दृष्टि का केन्द्र बने या नही, पर ईमानदारी का तकाजा है कि अहिंसा, शान्ति, पवित्रता और चरित्र के क्षेत्र मे नई धारा के उद्गम अणुव्रत का समुचित मूल्याकन हो और इसी दृष्टि से उसके विगत कर्तृत्व और भावी सभावनाओ पर एक तटस्थ किन्तु आलोचनात्मक अध्ययन किया जाए।

अणुव्रत एक आन्दोलन है, इसलिए यह गत्यात्मक है। अणुव्रत चरित्र निर्माण की प्रक्रिया है, इसलिए इसमे स्थितिपालकता भी है। इस आंदोलन की पृष्ठभूमि मे एक नीतिमान पीढी के निर्माण का सपना था। यह स्वप्न देखा था हमने सन् १९४९, छापर चातुर्मास मे। उस समय भारत स्वतत्र हुआ था। भारतीय लोग स्वतत्रता की खुशी मे झूम रहे थे। उस समय उनके सामने कोई लक्ष्य नही था, दिशा नही थी, महत्वाकांक्षा नही थी और साधन-सामग्री भी नही थी, जिसके द्वारा वे बेहतर जिन्दगी जीने की बात सोच सके। उस समय एक ऐसे सचेतन प्रयास की जरूरत थी, जो व्यक्ति-व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वायत्तता की अनुभूति देकर अपनी खोई हुई अस्मिता और नैतिक मूल्यो का बोध करा सके। इस दृष्टि से दूसरे लोग भी सतर्क रहे होंगे। उनके मन मे अपने देश की मिट्टी मे ऐसे बीज बोने की इच्छा जगी होगी, जो नैतिक मूल्यो की फसल उगा सके। हमारे मन मे उस समय कोई बहुत बडी कल्पना और योजना नही थी, पर एक सुचिन्तित प्रक्रिया के

आधार पर थोड़े से कार्यकर्त्ताओं के साथ सरदार शहर की धरती पर हमने अपना अभियान शुरू कर दिया।

नैतिक उन्नति का आधार है नैतिक विचार। विचार से आचार प्रभावित होता है और आचार का प्रभाव विचारों पर होता है। विचार और आचार की समन्विति ही जीवन है। किन्तु विचार जगत में उथल-पुथल मचे बिना आचरण की बात पैदा नहीं हो सकती। इसलिए अणुव्रत ने सबसे पहले विचार-क्रांति की ओर ध्यान केन्द्रित किया। अणुव्रत का एकमात्र उद्देश्य है जाति, वर्ण, वर्ग, भाषा, प्रान्त और धर्मगत सकीर्णताओ से ऊपर उठकर मानव मात्र को आत्मसयम और नैतिक मूल्यो के प्रति प्रेरित करना। जिस समय जातीयता, प्रांतीयता, वर्णव्यवस्था, भाषा आदि को लेकर सकीर्ण मनोवृत्ति वाले लोगों मे एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था, उस समय अणुव्रत ने मानवतावादी दृष्टिकोण देकर लोक जीवन में चारित्रिक मूल्यो को प्रतिष्ठा देने का सकल्प व्यक्त किया। इस सकल्प की पूर्ति के लिए अणुव्रत-यात्राओं का दौर प्रारम्भ हुआ। हमारे पास गृहस्थ कार्यकर्ता सीमित थे, इसलिए हमने अपने साधु-साध्वियों को इस दृष्टि से तैयार किया। उनकी पद-यात्रा का विस्तार हुआ। कश्मीर से कन्याकुमारी तक अणुव्रत के कार्यक्रम होने लगे। जनता ने पूरी गहमागहमी के साथ उनका स्वागत किया और अणुव्रत आदोलन भारतवर्ष मे चलने वाले नैतिक आदोलनों मे शीर्षस्थ बन गया।

वह समाज और देश सौभाग्यशाली होता है, जिसमे मानवता या नैतिकता की चर्चा होती रहती है। वे लोग भी कम सौभाग्यशाली नहीं होते, जिन्हें ऐसी चर्चा सुनने के अवसर उपलब्ध होते हैं? उन लोगो का सौभाग्य और अधिक होता है, जिनको ऐसी चर्चाओं की प्रस्तुति करने का मौका मिलता है। अणुव्रत आदोलन विशुद्ध अर्थ मे नैतिक आंदोलन है। एक दृष्टि से यह आत्मदर्शन का आदोलन है। सामाजिक सदर्भों मे यह अपराध चेतना को बदलने का आदोलन है। अणुव्रत परिणाम से अधिक प्रवृत्ति की चिंता करता है। प्रवृत्ति नहीं रहेगी तो परिणाम अपने आप समाप्त हो जाएगा। हमारे समाज या देश मे अपराध बढ़ रहे हैं, यह जितनी चिन्ता का विषय है, उससे अधिक चिन्तनीय बिन्दु यह है कि अपराध क्यो बढ़ रहे हैं। अपराध के कारणो को समझकर उनकी रोकथाम के लिए प्रयत्न हो तो नैतिक मूल्यो का अवतरण अपने आप सभव है।

कोई व्यक्ति अपने जीवन को मुड़कर देखे और चिंतन करे—मैं कैसा हू, इस एक वाक्य पर गहरी अनुप्रेक्षा करते-करते वह ईमानदारी के साथ अपनी आदतो और व्यवहारो को समझ सकता है तथा गलत आदतो एव व्यवहारो मे परिष्कार कर सकता है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् सकल्प और सम्यक् आचरण—अणुव्रत का यह त्रिसूत्री कार्यक्रम व्यक्ति के जीवन मे अकल्पित क्रान्ति ला सकता है। व्यक्तिगत और सामूहिक रूप मे अनेक लोगो ने ऐसा अनुभव किया है।

अणुव्रत ने विचार और आचार—दोनो क्षेत्रो में क्रान्ति के बीज बोये हैं। जहा-जहा वे बीज अकुरित हुए हैं, अणुव्रत के प्रति लोगो का दृष्टिकोण बदला है। वैचारिक दृष्टि से अणुव्रत की भूमिका काफी सशक्त है। हर समझदार और विवेकी व्यक्ति इसकी उपयोगिता से सहमत है। अपने आपको नास्तिक मानने वाले लोग भी अणुव्रत की नीति और आचार सहिता से प्रभावित हैं। क्योकि अणुव्रत ने युग की चुनौतियो का सामना कर समाज मे चरित्र की प्रतिष्ठा की है। अणुव्रत की आस्था व्यक्ति-निर्माण मे है। व्यक्ति जितना नैतिक और आचारनिष्ठ होगा, समाज उतना ही उन्नत, सस्कृत और समृद्ध होगा। व्यक्ति की आचार-निष्ठा और नैतिकता का जीवन्त साक्ष्य होता है उसका अपना मन और व्यवहार। यदि वह चरित्र को सर्वाधिक मूल्य देता है तो किसी भी स्थिति मे अवांछनीय तरीको से व्यवसाय नही करेगा। यदि वह चरित्र को अपना जीवन मानता है तो सत्यनिष्ठा और श्रमनिष्ठा से कतराकर अपने स्वीकृत सिद्धान्तो के साथ खिलवाड़ नहीं करेगा।

आचार के क्षेत्र मे अणुव्रत ने जो काम किया है, उसके सब आंकडो का सर्वांगीणता के साथ प्रस्तुतीकरण हो तो वह ससार की एक नई घटना हो सकती है। किन्तु अणुव्रत-कार्य का संपूर्ण आकलन न होने के कारण उसका पूरा विवरण प्राप्त करना सभव नही है। फिर भी साधारण रूप मे एक विहगावलोकन किया जाए तो कुछ निष्कर्ष इस रूप मे मिलते हैं

—मानवीय एकता का विकास।

—सहअस्तित्व की भावना का विकास।

—समाज मे सही मानदण्डो का विकास।

—साम्प्रदायिक सद्भावना का विकास।

—राष्ट्रीय चरित्र का विकास।

—धर्म के क्रान्तिकारी स्वरूप का विकास।

राष्ट्रीय चरित्र के सन्दर्भ मे तीन बाते महत्वपूर्ण हैं

—राजनैतिक बुराइया

—सामाजिक कुरूढियां

—दुर्व्यसन।

राजनीति से अलिप्त रहकर भी अणुव्रत ने राजनीति पर अपना प्रभाव छोडा है। दलबदल की नीति, स्वार्थपरता और वोटो के विक्रय पर अणुव्रत ने जितना तीखा प्रहार किया है, शायद ही किसी आन्दोलन ने किया हो। ससदीय अणुव्रत मच द्वारा आयोजित कार्यक्रम मे सासदो को जो खरी-खरी बातें सुनने को मिली उनकी पलकें झुक गईं। उस वातावरण ने वहा उपस्थित सभी सासदो को अपना आत्मनिरीक्षण करने के लिए विवश कर दिया।

सामाजिक कुरूढियो से समाज इतना जर्जर और सत्वहीन बन जाता है कि वह युग की किसी चुनौती को झेल ही नही सकता। अज्ञान और अन्ध-विश्वासो के चौखटे मे पनपने वाली न जाने ऐसी कितनी कुरूढिया हैं, जो सामाजिक विकास के आगे बाधाए बनकर खडी हो जाती है। जन्म, विवाह, मृत्यु आदि जीवन के ऐसे कौन-से प्रसग हैं, जिनसे सबधित कुरूढिया समाज की पीडा नही हैं। आर्थिक दृष्टि से बोझिल और अर्थहीन रूढ परपराओ के खिलाफ अणुव्रत के बगावती चरण आगे बढे। फलत आज भारत की धरती पर अणुव्रत से सस्कारित परिवारो मे अशिक्षा, पर्दा, मृत्युभोज, मृत्यु के प्रसग मे प्रथा रूप मे रोना, बाल विवाह, वृद्ध विवाह विधवा स्त्री की अवमानना आदि परपराए चरमराकर टूट गई हैं। दहेज और प्रदर्शन की समस्या आज भी ज्वलन्त है। अणुव्रत इस दिशा मे भी सतर्क है अणुव्रती परिवारो मे दहेज का ठहराव किसी भी स्थिति मे नहीं होता। इसके साथ-साथ सैकडो-सैकडो युवक-युवतियो ने हजारो लोगो की साक्षी से यह सकल्प स्वीकार किया है कि वे जीवनभर कुवारापन ओढकर रह सकेंगे, पर जहां दहेज की माग होगी, वहा शादी नही करेंगे।

विवाह आदि प्रसगो पर होने वाले आडम्बर और अपव्यय पर नियत्रण करने के लिए अणुव्रत भावना से प्रेरित सस्थाओ ने समाज मे जैन सस्कार विधि का प्रचलन किया। इससे आडम्बरहीन शादियों का सिलसिला शुरू हो गया। ऐसी शादिया दिन मे होती हैं, फलस्वरूप बहुत सारे अपव्ययो से सहज ही बचाव हो जाता है। इन शादियो मे न दहेज की मांग होती है और न ही होता है ठहराव। इससे समाज के मूल्यमानको मे भी तीव्रता के साथ परिवर्तन आ रहा है।

हर प्रदेश और समाज की अलग-अलग रूढ़िया होती हैं। अणुव्रत के कार्यकर्ता उनका अध्ययन कर

उनके निराकरण में संलग्न हैं। जिस दिन समाज मे किसी प्रकार की रूढ़ि नहीं रहेगी, और नये सिरे से जन्म लेने वाली रूढ़ि को पनपने का अवसर नहीं मिलेगा, वह दिन अणुव्रत के इतिहास मे विशिष्ट दिन होगा।

अणुव्रत का एक अभियान है व्यसन-मुक्ति। कुछ लोगो की दृष्टि मे मादक व नशीले पदार्थों का सेवन सांस्कृतिक उच्चता, सभ्यता और स्टैण्डर्ड लाइफ का प्रतीक है। किन्तु यह वास्तविकता नही है। ऐसे पदार्थों का सेवन करने वाले व्यक्ति अपनी उच्चता, सभ्यता और स्तर को विवादास्पद बना लेते हैं। मादक पदार्थ शरीर, मन और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव छोड़ते ही हैं, धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से भी उनके उपयोग का कोई औचित्य नहीं है। अणुव्रत ने व्यक्तिगत और सामूहिक रूप मे व्यसन-मुक्ति के लिए व्यापक अभियान चलाया। इस अभियान मे हजारो व्यक्ति शराब, सिगरेट, अफीम, जुआ आदि दुर्व्यसनो की गिरफ्त से मुक्त हुए। इससे उनको अन्य लाभों के साथ आर्थिक लाभ भी मिलता है। अतिमात्रा मे शराब, सिगरेट, अफीम आदि का सेवन करने वाले लोग जब इनको छोड़ देते हैं, तब उनके परिवार मे जो खुशी होती है, वह अनिर्वचनीय होती है।

आज के धर्म नेताओ और धार्मिक बुजुर्गों को युवापीढ़ी की धर्मनिरपेक्षता पर बड़ी चिन्ता है। उनकी दृष्टि मे यह समय का दोष है, शिक्षा का दोष है और सस्कारो का दोष है। किन्तु मैं इस स्थिति को लेकर कभी चिन्तित नही होता। मेरे अभिमत से युवापीढ़ी को धर्म से नही धर्म के नाम पर चलने वाले ढकोसलो से परहेज है। वह चरित्र का नही, रूढ क्रियाकाण्डो का विरोधी है। अणुव्रत ने धर्म को जिस रूप से व्याख्यायित और निरूपित किया है, कोई भी युवा उससे विमुख नही हो सकता। यही कारण है हमारी धर्मसभाओ मे सैकड़ो हजारो युवक, युवतियां जिज्ञासुभाव से निरन्तर उपस्थित होती हैं। अपनी चारित्रिक उज्ज्वलता के प्रति वे जागरूक भी रहते हैं। युवा पीढ़ी की शक्ति को सही दिशा मे नियोजित करने की अपेक्षा है। वास्तव मे वह एक कार्यकारी पीढ़ी है।

धर्म के क्रियाकाण्डी रूप को बदलने के लिए अणुव्रत ने धर्मक्रान्ति के पाच सूत्र दिए—

—बौद्धिकता

—प्रायोगिकता

—समाधानपरकता

—वर्तमान प्रधानता

—धर्म सद्भावना।

इन सूत्रो से धर्म के क्षेत्र मे व्याप्त चिन्तनहीनता, रूढ़ता, अन्धविश्वास, परलोक सुधार और साम्प्रदायिक कट्टरता के भाव विगलित हुए हैं। धर्म की वैज्ञानिकता और वर्तमान जीवन मे उससे प्राप्त होने वाले लाभ का अनुभव हो जाए तो कोई भी प्रबुद्ध विचारक या युवक धर्म से विमुख नही जा सकता।

अणुव्रत के सिद्धान्त बहुत ऊचे हैं, पर सकल्प करने मात्र से नो वे जीवनगत होते नही आदमी नैतिक बनना चाहता है पर परिस्थितियों का दबाव आते ही उसका मन बदल जाता है। ऐसी स्थिति मे अणुव्रत का उद्देश्य फलित नहीं हो सकता। इस समस्या को समाधान देने के लिए अणुव्रत के साथ प्रेक्षा ध्यान का कार्यक्रम जोड़ा गया। प्रेक्षा ध्यान का प्रयोग करने से ग्रथियो के स्राव बदलने लगते हैं। उस रासायनिक परिवर्तन का प्रभाव मनुष्य की आदतो पर पड़ता है। अनेक व्यक्तियो ने इस प्रयोग से अपने जीवन मे अद्भुत रूपातरण अनुभव किया है। इस दृष्टि से यह माना जा सकता है कि अणुव्रत और प्रेक्षा ध्यान एक दूसरे के पूरक हैं। अणुव्रत आंदोलन को रचनात्मक आंदोलन का रूप देने मे प्रेक्षाध्यान की अहम भूमिका रही है।

अणुव्रत का कार्यक्रम व्यापक कार्यक्रम है। इसने देश की सीमाओ से बाहर भी अपनी आवाज पहुचाई

है। इसका प्रभाव उन सब लोगों पर पड़ा है, जो वैयक्तिक और राष्ट्रीय चरित्र को उन्नत देखना चाहते हैं। अणुव्रत से प्रभावित अनेक प्रबुद्ध व्यक्ति सक्रिय रूप से इसके साथ जुड़े हैं। उन सबके आत्मीय सहयोग से ही अणुव्रत का रूप उत्तरोत्तर निखरता जा रहा है। उन लोगों में अणुव्रत प्रवक्ता यशपालजी जैन का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने वर्षों तक अखिल भारतीय अणुव्रत समिति का अध्यक्षीय दायित्व संभाला। अणुव्रत पत्र के लिए भी ये समय-समय पर लिखते रहते हैं। अणुव्रत दर्शन के ये उच्चकोटि के व्याख्याता हैं। अणुव्रत को इनकी सेवाओं से बहुत लाभ मिला है और भविष्य मे भी मिलता रहे, यही अपेक्षा है।

दृश्य से द्रष्टा की ओर यात्रा

(आचार्य) रजनीश

□□

मैं तुम्हे देखता हू तुम्हारे पार जो है, उसे भी देखता हू।

शरीर पर जो रुक जाए, वे आखें देखती ही नही हैं। शरीर कितना पारदर्शी है।

सच ही, देह कितनी ठोस क्यों न हो, उसे तो नही ही छिपा पाती है, जो कि पीछे है।

पर, आखें ही न हो, तो बात दूसरी है। फिर तो सूरज भी नही है। सब खेल आखों का हैं।

विचार और तर्क से कोई प्रकाश को नही जानता है।

वास्तविक आख की पूर्ति किसी अन्य साधन से नही हो सकती है। आख चाहिए। आत्मिक को देखने के लिए भी आख चाहिए, एक अतर्दृष्टि चाहिए।

वह है, तो सब है, अन्यथा न प्रकाश है, न प्रभु है।

और, जो दूसरे की देह के पार की सत्ता को देखना चाहे, उसे पहले अपनी पार्थिव सत्ता के अतीत मे झांकना होता है।

जहा तक मैं अपने गहरे मे देखता हू, वही तक देहे भी पारदर्शी हो जाती हैं। जितनी दूर तक मैं अपनी जडता मे चैतन्य का आविष्कार कर लेता हू, उतनी ही दूर तक समस्त जड जगत मेरे लिए चैतन्य से भर जाता है।

जो मैं हू, जगत भी वही है।

जिस दिन मैं समग्रता मे अपने चैतन्य को जान लू, उसी दिन जगत नही रह जाता है।

स्व-अज्ञान ससार है, आत्मज्ञान मोक्ष है।

यही रोज कह रहा हू, यही प्रत्येक से कह रहा हू एक बार देखो कि कौन तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है?

इस हाड-मास की देह मे कोन आच्छादित है? कौन है आबद्ध तुम्हारे इस बाह्य रूप मे?

इस क्षुद्र में कौन विराट विराजमान है।
कौन है वह चैतन्य ? क्या है यह चैतन्य ?
यह पूछे बिना, यह जाने बिना जीवन सार्थक नही है।
मैं सब-कुछ जान लूं, स्वय को छोड़कर, तो उस ज्ञान का कोई मूल्य नही है। जिस शक्ति से 'पर' जाना जाता है, वह शक्ति 'स्वयं' को भी जानने मे समर्थ है।
जो अन्य को जान सकती है, वह स्वय को कैसे नही जानेगी !
केवल दिशा परिवर्तन की बात है।
जो दीख रहा है, उससे उस पर चलना है, जो कि देख रहा है।
दृश्य से दृष्टा पर ध्यान परिवर्तन आत्मज्ञान की कुंजी है।
विचार प्रवाह मे से उस पर जागो, जो उनका भी साक्षी है।
और एक क्रांति घटित हो जाती है।
कोई अवरुद्ध झरना जैसे फूट पडा हो, ऐसे ही चैतन्य की धारा जीवन से समस्त जड़ता को बहा ले जाती है।

सुखी : इसी जीवन में

(स्वामी) अखण्डानन्द सरस्वती

□□

आइए, सुख का साक्षात्कार करें।

उससे मिलें और उसका उपभोग करें। कहा ? कब ? कैसे ?

यहीं, अभी और ऐसे।

विषय-भोग से सुख मिलेगा—यह कल्पना मन से निकाल दीजिए। उसमे बडी पराधीनता है। पराधीनता दु ख है। भोग्य वस्तु चाहे वह कुछ भी क्यो न हो, कभी मिलेगी, कभी नही, कही रहेगी, कही नही। उस भोग्य वस्तु के भोग का सामर्थ्य इन्द्रियो मे सर्वदा नही रहेगा। मन मे एक-सी रुचि भी नही होगी। अनेक अवस्थाओ में भोक्ता भी मूर्छित हो जाएगा। रोग, वियोग, शत्रु-मित्र, कर्म, प्रकृति, ईश्वर—सभी उसमे बाधक हो सकते हैं। यदि विषय-भोग मे आप सुख की स्थापना कर देंगे तो निश्चय ही आपको परावश और दु खी होना पडेगा।

दूसरी बात, आपके पास जन, धन, भवन आदिकों की सख्या कितनी है ? कही आप उनके अभिमान से फूले-फले तो नहीं फिरते हैं ? अपने सौन्दर्य-माधुर्य, शौर्य-औदार्य, विद्या-बुद्धि के सम्मुख दूसरो को दीन-हीन

समझकर उनका तिरस्कार तो नही करते हैं ? आपको पुण्यात्मापन का अभिमान है तो आप पापी का तिरस्कार कर बैठेंगे और आपका हृदय रूक्ष एव कठोर हो जाएगा। फिर वह म्लान और म्लान भी होगा। सुख रस के आस्वादन की योग्यता नही रहेगी। अभिमान पर ही चोट पड़ती है और व्यथा की उत्पत्ति होती है। अत जीवन को सुखमय बनाने की कुजी है—उत्तम से उत्तम विषय, भोग, कर्म, वृत्ति, स्थिति और अनुभव का भी अभिमान मत कीजिए।

ध्यान दीजिए, आपके मनोराज्य की दिशा कौन-सी है। वह अतीत की ओर देख-देखकर वर्तमान की श्रेष्ठता या कनिष्ठता की तुलनात्मक समीक्षा करता है ? अजी, छोडिये भी उसे। क्या रखा है उसमे ? वह तो बिछुड गया, मर गया। आपके नेत्र पीछे की ओर नही बनाये गए है। तब क्या आप भविष्य मे बहुत दूर-दूर की सोचने मे इतने मग्न हो जाते है कि वर्तमान मे कहा पाव पड रहे है ? गिरते हैं कि ठोकर लगती है ? इस पर ध्यान ही नही जाता है। महाशय ! सम्भलकर चलिये। भविष्य का भय मत कीजिये। अपने साथ भूत मत लगाइये। पीछे घूमकर मत देखिये और दूर का देखने मे मत लग जाइये। नरक, स्वर्ग, बैकुण्ठ जब प्राप्त होगा तब उनसे निपट लेगे। तृप्त होकर योजना बनाइये। दस वर्ष बाद क्या खायेंगे ? यह सोचकर आज भूखे मत रहिये। अपने मनोराज्य को अपनी ही पार्श्व-भूमि मे रखिये। वह आपके जितना निकट होगा, केवल स्थान, समय या वस्तु की दृष्टि से नही अन्तरात्मा और अर्न्तयामी की दृष्टि से, आप उतने ही सुखी होंगे।

आप बार-बार क्या दोहराते हैं ? आपके भाषण मे, सकल्प मे, चेष्टा मे, आचरण मे, व्यवहार मे, भोजन मे, आच्छादन मे, पुन-पुन किसका अभ्यास होता है ? निश्चय है कि आप अपने अभ्यस्त विषय मे रम जायेंगे। आपका सुख एक सीमित परिधि मे बन्दी हो जायेगा। आप उसके कारागार से मुक्त नही हो सकेंगे। अत सावधान रहना आवश्यक है। सतत सावधानी सुखी जीवन का रहस्य है।

हा ! अब सुनिये, काम की बात। आप अपने को अपने ही क्रिया कलापो से सम्मोहित मत कीजिये। निद्रा, आलस्य, प्रमाद या मद को सुख का कारण मन समझिये। जैसे विष या आत्महत्या शारीरिक जीवन के विरोधी हैं, वैसे ही सम्मोहन व मादक पदार्थों का सेवन बौद्ध एव सजग जीवन के विरोधी हैं। अपने को सयोग पर=पराधीनता या आकस्मिकता पर निर्भर मत होने दीजिए। स्वतन्त्र (उच्छृखल नही) और निर्मल जीवन व्यतीत कीजिये। बुद्धि का अनादर चाहे वह दूसरो को हो या अपनो, विचार की क्षमता का लोप कर देता है। सच तो यह है कि सम्पूर्ण विश्व सृष्टि मे बुद्धि एक ही है। दूसरो की बुद्धि के अनादर से अपनी बुद्धि का भी तिरस्कार हो जाता है। बुद्धि हीन जीवन जडता है। जाग्रत बुद्धि ही सच्चा जीवन है और वही सच्चा सुख भी है। बुद्धि की निर्मलता ही स्थिर सुख की जननी है। अन्य मर्त्य है, भूमा सुख है। बुद्धि-भूमा ही सुख-भूमा है। भूमा अर्थात् अनन्त, अबाधित। सुख को बुद्धि प्रसादजा (१८, ३७ गी) और बुद्धि ग्राह्य (गी ६, २१) कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि सुख का मा है—बुद्धि की निर्मलता-निर्वामनता और वही सुख को अपनी गोद मे रखती है। सुख का बुद्धि ग्राह्य होना अर्थात् देश-काल वस्तु से निरपेक्ष होना। वह अनायास है, अच्युत है, नित्यसम्बोध है।

आप सुख है। बुद्धि मे आपका प्रतिबिम्ब सुख है। सुखाकार बुद्धि सुख है। अनुकूलवेदन, वासनापूर्ति, दु खाभाव—ये सब सच्चे सुख के सकेतमात्र हैं। ये सुख के लक्षण नही, उपलक्षण हैं। 'सु' माने सुन्दर। 'ख' माने इन्द्रिय, मन, हृदयाकाश। इनकी सुन्दरता सहज है। बाह्य निमित्त से ही इनमे आगन्तुक उत्पात खडे होते हैं। आप सुख को आमन्त्रित मत कीजिये। दु ख को भगाने के लिये बल प्रयोग मत कीजिये। बुद्धि मे वासना-रूप मलिनता लगी-सी भास रही है। उसको आत्मबुद्धि के प्रकाश मे लुप्त हो जाने दीजिये। आपका जीवन सुख-समुद्र का तरगायमान रूप है। सुख सूर्य का रश्मि-पुज है। सुख वायु का सुरभि-प्रवाह है। जीवन

अर्थात् सत् की आकृति, चित् का प्रकाश और आनन्द का उल्लास। जीवन अकेला नहीं होता, ज्ञान और आनन्द के साथ उसका अविभाज्य सम्बन्ध है। आपका जीवन सुख है।

कही आप अपने को यह अवयव-विन्यास से विशिष्ट पांच भौतिक शरीर तो नही मान बैठे हैं ? यदि ऐसा है तो आप सुखी जीवन कैसे बिता सकते हैं ? इसके साथ जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि, सयोग-वियोग, ह्रास-विकास लगे ही रहते हैं। अपने को शरीर मानकर कोई भी भयमुक्त नही हो सकता है। निर्भयता की प्राप्ति के लिए आत्मा की शाश्वत सत्ता पर आस्था होना आवश्यक है। शरीर उत्पाद-विनाश का पात्र है। जीवन असीम है। यह डूबता है और उतराता है। व्यक्त से अव्यक्त और अव्यक्त से व्यक्त। स्थूल-सूक्ष्म का एक नित्य प्रवाह है। आकृति का परिवर्तन है, तरगे बदलती हैं, ज्वाला मे लहरिया हैं। परन्तु मूल तत्व एक ही है। इस पर आस्था ही धर्म का स्वरूप है। जितने धार्मिक मत-मजहब हैं उनका मूल आधार देहातिरिक्त आत्मा पर आस्था है। यह ठीक है कि इसे सबको नही समझाया जा सकता है। परन्तु आस्था के लिए पहले से विवेकी होना आवश्यक नही है। विवेक, मलिन आस्था को अथवा आस्था की मलिनता को मिटा देता है। वस्तुत आस्था ही विवेक की जननी है। आस्था परम्परा और सस्कार से भी आती है। अतएव बालक, ना-समझ एव स्मरण शक्तिहीन में भी आस्था की प्रतिष्ठा हो सकती है और रह सकती है। आप बुद्धि के द्वारा न समझ सकें तब भी आत्मा के नित्य अस्तित्व पर आस्था कीजिये। मृत्यु का भय त्याग दीजिये। अपने नित्य आत्मा के अनुरूप स्थित रहिये, काय कीजिये अथवा फल चाहिए। आपके जीवन मे धर्म प्रवेश करेगा और प्रतिष्ठित होगा। उसके लिए विवेक भी चमकेगा। निर्मलता और विवेक का प्रकाश आने पर आपका अन्तमन मुस्करायगा और आपका बाह्य जीवन भी सुखी हो जायेगा।

आपके हृदय के किसी कोने मे अन्तर्देश के सूक्ष्मतम प्रदेश मे कही जाने-अनजाने, गुप्त-सुप्त आग तो नही सुलग रही है ? तीक्ष्ण दृष्टि से अन्तरात्मा की गम्भीरता मे छू-छूकर इसे ढूढना पडेगा। क्यो ? यह द्वेष की आग है। आप किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थिति, विचार, जाति, सम्प्रदाय, शैली या सिद्धान्त के स्मरण मे जलने तो नही लगते हैं। यह जलना द्वेष की आग है। कभी-कभी भ्रमवश इसमे हित-बुद्धि हो जाती है। इस दाह रोग की चिकित्मा तब असाध्य हो जाती है। इस आग को आप अहिंसा और मैत्री की भावना से बुझा दीजिये। कर्म से, मन मे, वचन से जान-बूझकर किसी को दु ख मत पहुचाइये। हमारा सग्रह किसी को दरिद्र न बना दे। हमारा भाषण किसी के हृदय मे चुभ न जाय। हमारा भोग किसी के जीवन, यौवन और सदाचार का सहार न करे। हमारे कर्म किसी के लिए मर्मवेधी न हो, हानि-ग्लानि के हेतु न हों। दु खी से घृणा मत कीजिये। घृणा, द्वेष का पिघला हुआ रूप है। पापी को मारिये मत। हिंसा, द्वेष का विकृत रूप है। सुखी को देखकर अपने को हीन मत समझिये। यह द्वेषमूलक आत्महत्या है। पुण्यात्मा से ईर्ष्या मत कीजिये। उसके सहयोग से आप भी पुण्यात्मा बनिये। ईर्ष्या, द्वेषाग्नि की लपट है। सच तो यह है किसी से भी द्वेष करना आत्महत्या है। उसके द्वारा आप अपने को ही दु खी करते हैं। आप अहिंसा का व्रत लीजिये। यह तपस्या आपके जीवन को सुखी कर देगी।

जैसे प्रकाश यथास्थित वस्तु का दर्शन करा देता है, उम वस्तु के गुण-दोष को उत्पन्न नही करता, सटाता नही, हटाता नहीं, वैसे ही हमारी इन्द्रियो और मनोवृत्तियों के द्वारा जो वस्तुए देखी जाती हैं उन्हे भी केवल प्रकाशित ही होना चाहिये। आंख देख ले, कान सुन ले, मन क्षणभर के लिए सस्कारानुसार अनुकूल-प्रतिकूल मान ले, बुद्धि उसका रहस्य समझ ले—ये सब खिडकिया हैं, झरोखे हैं, ज्ञान-स्वरूप आत्मा या आत्मा का ज्ञान इन द्वारो से केवल झांकता है, न इनको अपने साथ सटाता है, न हटाता है। जब आप किसी भी वस्तु को अपने साथ जोड़ना चाहते हैं, तब अनजान मे ही अपने को अपूर्ण और अधूरा समझ बैठते हैं। अब या तो

आप उस वस्तु को अपने साथ सटा लीजिए, उसके रग मे रग जाइये, तब अपने आपको सुखी अनुभव करेंगे या उसके पीछे-पीछे लगे डोलिये। दोनो ही दशा मे आप अपने मे इसका अभाव अनुभव करते हैं। वह आपका अपना नहीं है। वह दूर जायेगा, देर करेगा, दूसरा बन जायेगा। आप रोयेंगे दु खी होंगे। अत सुखी जीवन का रहस्य यह है कि आप अपने को राग से बचाइये। सबको देखिये, सुनिये, सद्व्यवहार कीजिए, प्यार कीजिये, समझिये। त्याग मत कीजिये परन्तु राग भी मत कीजिये। आपका रजन दूसरा नही, आप स्वय हैं। दूसरा रजन होगा तो आप रागी हो जायेंगे, दूसरे के रग मे रग जायेंगे। अत त्याग न होने पर वैराग्य आवश्यक है। त्याग बाहरी है और वैराग्य अन्तरग, यह आगन्तुक नही है। आपके सहज स्वरूप का वृत्ति में प्रतिबिम्बन है। आप असग हैं। बुद्धि, मन और इन्द्रियां भी असग हैं। किस विचार, आसक्ति या विषय ने आपका सर्वदा साथ दिया है ? वे जाते रहे हैं और आप उनको छोडकर रहते रहे है। अपने इस स्वभाव को निर्विघ्न, निर्बाध प्रकट होने दीजिये। आप सुखी रहेंगे। आपकी जीवन शैली सबके लिए सुख का उद्गम बनेगी।

क्षणभर के लिये अपने आपका निरीक्षण, परीक्षण या समीक्षण कीजिए। आपका 'मैं' किसी विकीर्ण कण के समान सकीर्ण तो नही हो गया है ? आपका 'मैं' ज्ञान के प्रकाश को आवृत तो नही करता ? आप कब-कब, कहा-कहा, किस-किस से, कैसे-कैसे 'मैं' को जोडते हैं और कैसे-कैसे तोडते है ? आप जान मे अनजान मे अपने 'मैं', को कितना महत्व देते हैं ? अपने 'मैं' मे कितना लीन रहते हैं ? दृष्टि को उदीर्ण और विस्तीर्ण होने दीजिये। अस्मिता को—'मैं' पन को दृश्य के साथ नही, असग चेतन के साथ जोडिये। वह 'मैं' का प्रकाशक होगा तो आप समाधि की ओर बढ़ेंगे अन्तर्यामी होगा तो भक्ति भावना और शरणागति का उदय होगा।

दु ख फल है। उसके फलने की तीन डालिया है—मोह, राग और द्वेष। ये डालिया हैं अस्मिता रूप वृक्ष की, जिसका बीज मिथ्या ज्ञान है। आपको सुखी होने के लिए अस्मिता के बीज मिथ्या ज्ञान को तत्वज्ञान से नष्ट करना पडेगा। क्या आपका 'मै' शुद्ध है ? या उसमे कुछ मिलावट कर रखी है ? मिलावट ही बनावट और मलिनता है। वृत्तिज्ञान, इच्छा, द्वेष, क्षणिक सुख-दु ख, धम-अधर्म और हजारो प्रवृत्तिया अपने 'मैं' के साथ जोड कर आपने स्वय अपने आपको छिन्न-भिन्न कर लिया है। आपके 'मैं' के साथ परिच्छिन्नताए जुड गई है। यही आपको क्षण-क्षण काटती-पीटती रहती हैं। इनका आना तो आपको काटता ही है, जाना भी आपको क्षुद्र हीनता का शिकार बना देता है। आप अभावग्रस्त, सत्रस्त और अस्तप्राय हो जाते हैं। अत विवेक के द्वारा इनमे अपने आपको अलग कीजिए अथवा ऐसी सान्द्र पूर्णता मे लीन कर दीजिए कि आपकी अस्मिता स्वाहा हो जाए। त्व पदार्थ की प्रधानता से विवेक होता है। 'तत्' पदार्थ की प्रधानता से भक्ति। पहले मे श्रद्धा का स्थान अपरोक्षता लेती जाती है और दूसरे म तत् पदार्थ मे अन्य के प्रति वैराग्य। दोनो पदार्थों की एकता का बोध हो जाने पर द्वैत-भ्रान्ति का समूल उच्छेद हो जाता है। उसमे सुख-दु ख का द्वैध नही है। अखण्ड सुख अद्वितीय आनन्द है। आप इसी जीवन मे इस अनुभूति के लिए क्या प्रयत्नशील हैं ?

साधना अन्धाधुन्ध भागने-दौडने का नाम नही है। हम क्या चाहते हैं ? क्या कर सकते हैं ? उसको कितना समझते हैं। कही हम अनाधिकार आशक्य के अनुष्ठान मे तो सलग्न नही है ? कहीं ऐसा हुआ तो हमारा यह जीवन दु खी हो जाएगा। आप अपनी 'अस्मि' भावना का विश्लेषण कीजिए। आप क्या-क्या छोड सकते हैं। निश्चय ही आप अपनी अस्मि-वृत्ति को झूठ, हिंसा, चोरी, व्यभिचार, और जड वस्तुओं के साथ जोडना पसन्द नही करेंगे। क्या आपका अह चोर व्यभिचारी बनना चाहेगा ? तब आप इन्हे स्वरूपत छोड दीजिए। इनके साथ 'मैं' 'मेरा' करना आपको पसद नही है। आपमे इनको छोडने का सामर्थ्य है। इन्हें दोष रूप मे समझते है और ये कर्तव्यपूर्वक वासना की तीव्रता मे ही होते हैं तथा आपको इन्हें छोड देने का

पूर्णत अधिकार है। ऐसी अवस्था में आप एक झटके में ही उडा दीजिए। दोष में रस आता है तभी उन्हें धीरे-धीरे छोड़ने की योजना बनायी जाती है। कड़वी वस्तु थूकने में विलम्ब नहीं किया जाता। दोष दु ख है परन्तु अभ्यास-सस्कार से जनित वासना के कारण अर्थात् बार-बार उन्हे दोहराने से वे स्वादु लगने लगते हैं। उनको छोडने से आप संतुष्ट होंगे, आपको कोई कष्ट नहीं होगा। त्याग के सामर्थ्य की अभिव्यक्ति से आप अपने मे ज्ञानबल और निर्मल रस का अनुभव करेंगे। सुखी और पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिए इन दोनो की आवश्यकता है।

अच्छा, दृष्टि मे थोडी और सूक्ष्मता लाइए। चोरी, हिंसा आदि अशुभ प्रवृत्तियां जान बूझकर कर्तृत्व पूर्वक वासना वश की जाती हैं। अतएव उन्हें अनायास छोडा जा सकता है। करना-छोड़ना दोनो अपने हाथ मे हैं। परन्तु मन में काम-क्रोधादि दोषों का उदय जान बूझकर कर्तृत्वपूर्वक नहीं किया जाता है। वे आ जाते हैं, तब ज्ञात होते हैं। आने के बाद उन्हें साधना पडता है पकाना पडता है। कोई-कोई वस्तु कच्ची होने पर खट्टी और कडवी होती है परन्तु सिद्ध एव परिपक्व हो जाने पर मधुर हो जाती है। इन्हे विवेक की आग से अनावरण के ढक्कन से ढककर पकाओ। इनकी कड़वाहट जल जाएगी। इनमे भगवद्भाव की ऐसी प्रेम-माधुरी मिलाओ कि ये सर्वथा मीठे हो जायें। अपने घर मे शक्कर न हो तो दुकान से या पडोसी के घर से भी ले सकते हैं। अपने मे सद्गुण न हो तो दूसरो से प्राप्त कर लीजिए। निष्कामता की कामना कीजिए। क्रोध पर क्रोध कीजिए ? भगवान से भी लड-झगड लीजिए। काम का मुह भीतर की ओर मोड दीजिए। न आग बुझे न ढक्कन उतरे। कडवा भी मीठा हो जाएगा। काम-क्रोधादि भी परिपक्व हो जायेंगे। सुख बनाने की विद्या-कला चाहिए। छोडिए, पकाइए, गुरुजनों से मांग कर लाइये और फिर देखिए, आपके अन्त करण मे सुख का अक्षय भण्डार है।

मोह, मिथ्याज्ञान, भ्रम, अध्यास—ये सब एक ही तराजू के चट्टे-बट्टे हैं। यह है अह और इद के मिश्रण। 'यह'—'मैं' की मिलावट। 'यह' की नश्वरता—परिवर्तन, जडत्व, दु ख एव परिच्छिन्नता अपने आप पर डाल ली गई। अपनी सत्यता—नित्यता, ज्ञान,—अनुभव, सुख, आनन्द 'यह' मे घुसेड दिए गए। ऐसी खिचडी बनी जो न खाते बने न उगलते बने। इस मिश्रण का पृथक्करण आवश्यक है। फिर 'यह' अथवा परिच्छिन्न मे, अनात्मा या दृश्य मे नित्यता, चेतनता और सुख नही रहेगे। आप देखेंगे—'यह' अर्थात अपने आप मे कुछ नही है। 'यह' सत्ता की आकृतिया हैं। 'यह' चित्त की प्रतीतिया हैं। 'यह' सुख के आभास मात्र कण हैं। 'यह' और 'मैं' का मुख्य समानाधिकरण्य नहीं है, बाधा समानाधिकरण्य है। तब आपकी अस्मिता अपने आपको खो बैठेगी। 'अह' की परिच्छिन्नता बाधित हो जाएगी। 'अह' की पूर्णता निरावरण हो जाएगी। यह पूर्णता स्वतन्त्र है, स्वच्छन्द है। सत्य, ज्ञान, आनन्द एव अद्वयता के अनुभव की पृष्ठभूमि है। आइए, एक बार अपनी अस्मिता को पूर्णता की अहता कर दीजिए। अहता की पूर्णता देखिए। अस्मिता का निर्भ्रमस्वरूप यही है।

सावधान ! आप यदि पूर्णता के सम्बन्ध में स्पष्ट निश्चय नहीं रखते, उसको निरावरण करके नही देख लेते, आंख बन्द करके अह की पूर्णता की भावना करते हैं, तो केवल आंख ही बन्द नही हैं, ज्ञान के द्वार भी बन्द हैं। पहले पूर्णता का विवेक और निश्चय होना आवश्यक है। यही जगत-कारण की मीमांसा आपेक्षित होती है। पूर्णता ही जगत का उपादान है। दृश्य से पृथक् केवल द्रष्टा दृष्टि द्वारा जगत का उपादान है—यह निश्चय कर पाना थोडा कठिन है। अत परोक्षपूर्णता के प्रति श्रद्धा और रुचि का मिश्रण करके विवेक करना पडता है। इसी को भक्ति कहते हैं। इसी से अन्तस्तल मे भजनीय की पूर्णता प्रकट होती है। उपाधि मे ही विवेक और उपाधि मे ही भक्ति। द्रष्टा और भजनीय की एकता का विज्ञान वेदान्त के द्वारा प्राप्त होता है।

नेति-नेति से उपाधि का निषेध और महावाक्य से लक्षित पदार्थ की एकता का बोध। यही परम सुख है, परमानन्द है। यह अपनी आत्मा ही है। ब्रह्म ही है। गीता मे उसी को बाह्यस्पर्श या यात्रास्पर्श से विनियुक्त, अत्यन्त सुख रूप, बाह्य-सस्पर्श तथा माण्डूक्यकारिका मे अस्पर्शयोग कहा गया है। इस अस्पर्शयोग को अभय, अविरोधी, अविवाद, सर्वसुखकारी और हित रूप भी कहा है।

अब आइये, इस पर कुछ विचार करे। यह परमसुख अथवा परमानन्द सर्वसुखकारी कैसे है? सामान्य दृष्टि से तो यह अव्यवहार्य एव अलक्षण ज्ञान होता है। सच तो यह है कि इस परमानन्द की प्राप्ति के लिए हमारे जीवन मे चार अवस्थाओ के आविर्भाव की आवश्यकता होती है। (१) विषयानन्द या परिच्छिन्नानन्द से अरुचि होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए विशिष्ट रुचि उत्पन्न हो। (२) अन्त करण निष्काम, सत्यकाम, मुमुक्षा एव जिज्ञासा से सम्पन्न हो। (३) दृश्यमान अन्य पदार्थों से विवेक करके सबसे विलक्षण यथार्थ तत्त्व का ज्ञान हो। (४) अद्वय-तत्त्व का बोध होने पर अविद्या की निवृत्ति हो जाने पर भासमान सब-पदार्थ अद्वय स्वरूप ही है, इस विज्ञान का अवस्थान।

उपनिषदो मे आनन्द की मीमासा प्राप्त होती है। मनुष्य का आनन्द है यौवन, विद्या, उत्साह, आशा, दृढता, सम्पदा, समग्र पृथिवी पर ऐश्वर्य, स्वच्छन्द उपयोगाधिकार आदि। इनको दस बार शतगुणित करते-करते अन्त मे ब्रह्मानन्द का उल्लेख हुआ है। इसका अर्थ है सबसे बडा परिपूर्ण आत्यन्तिक आनन्द है ब्रह्मानन्द। बडे-बडे साधनो से जो आनन्द मिलते हैं, वे सब इसके सामने तुच्छ हैं। अत एक बुद्धिमान मनुष्य के हृदय मे उसके प्रति रुचि जागृत होनी चाहिए। उसी प्रसग मे यह बात भी कही गई है कि ये जितने प्रकार के आनन्द है वे सब एक निष्काम अर्थात शुद्धान्त करण विद्वान को स्वत बिना किसी साधन के ही प्राप्त हो जाते हैं। इसका अभिप्राय यह कि ब्रह्मानन्द विषयक रुचि के साथ ही साथ निष्कामता और विद्या की भी अपेक्षा है।

आप परमसुख चाहते है तो उसके साथ-साथ चार बातें आवश्यक हैं—(१) दुश्चरित्रता का त्याग (२) मन की शान्ति (३) लक्ष्य मे एकलीनता या निर्विषयता (४) बीच मे प्राप्त होने वाली सिद्धियो मे न अटकना। यही अन्त करण शुद्धि का स्वरूप है।

उपनिषदो मे जो पुत्र, शरीर, प्राण, मन, विज्ञान तथा आनन्द कोशो से विलक्षण, सब मे एक और सबसे न्यारे आत्मतत्त्व का व्यतिरेक की पद्धति से विवेक है और उस विविक्त आत्मा को ब्रह्म कहा गया है अथवा निषेध की प्रक्रिया से अदृश्य, अग्राह्य, अशब्द, अस्पर्श 'न पृथिवी—न जल' आदि कह कर तत्त्व का निरूपण है वह यथार्थ ज्ञान के लिए आवश्यक है। इस ज्ञान के बिना आवरण, भ्रम, अध्यास और उनके कारण अज्ञान की निवृत्ति नही हो सकती। बिना प्रमाण के भ्रम की निवृत्ति असम्भव है। भ्रम है तो उसका निवर्तक भी होना ही चाहिए, और वह है—महावाक्य प्रमाणजन्य ब्रह्मात्मैक्य-प्रमा। उसी से समूलभ्रम का उच्छेद होता है, आत्मा तो ब्रह्मस्वरूप है ही। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नही है कि भ्रम की निवृत्ति से सर्वसाधारण भास मानता अथवा प्रतीति भी निवृत्त हो जाती है। अतएव व्यतिरेक या निषेध-प्रक्रिया से ब्रह्मात्मबोध होने पर भी द्वैत भासता रहता है। आकाश का ज्ञान होने पर भी नीलिमा का भान होता है। नीलिमा यथार्थ नही होती—अतएव आकाश से भिन्न भी नही होती। ब्रह्म सच्चिदानन्द अद्वय है, अपनी आत्मा ही है। यह ठीक है परन्तु यह भासमान क्या है? वही है।

अब उपनिषदय की गभीरता मे प्रवेश कीजिये। ब्रह्मात्मा आनन्द है। इसके लिए 'व्यजानात' क्रिया-पद का प्रयोग है। इसका अर्थ विज्ञान है। ब्रह्म आनन्द एव विज्ञान स्वरूप है। यह विज्ञान क्या है? एक में अनेक को देख लेना ज्ञान है। एक सत्य है, अनेक मिथ्या है। अनेक मे एक को देखना विज्ञान है। यह शिल्प

कता भी है। एक पदार्थ से अनेक का निर्माण भी है। अनेकता और निर्माण केवल भासमान है यह दूसरी बात है। अन्वय की प्रक्रिया से प्रतीयमान अनेकता में एकता का दर्शन विज्ञान है। जब हम श्रुति मे सुनते हैं कि आनन्द से ही सब होते हुए पदार्थस्वरूप लाभ करते हैं। उसी से सत्ता-स्फूर्ति प्राप्त करके जीते हैं, उसी आनन्द की ओर चलते हैं और अन्तत उसी मे समा जाते हैं, तो स्पष्ट है कि उत्पत्ति, स्थिति, गति और मृत्यु का अधिष्ठान प्रकाशक एव उत्पादन अद्वय आनन्द ही है वह ज्ञान स्वरूप, उसमे परिणाम नही हो सकता, यह दूसरी बात है, क्योंकि एक ही पदार्थ एक ही रस प्रकाश चेतन, साक्षी और साथ ही परिणामी हो, यह सम्भव नहीं है। प्रतीत पदार्थ अपने अधिष्ठान से भिन्न नहीं होता। अधिष्ठान ही प्रकाश है अतएव प्रतीतियां बहुती-सी जान पडती हैं। प्रतीतियां जितनी भी हों, जो भी हों, हैं वे परमानन्द ही। जीवन्मुक्त महापुरुष की निर्भयता और निर्द्वन्द्वता का यही विज्ञान है।

आइए, यह व्यवहार क्या है? इस पर एक दृष्टि डालें। द्रष्टा—दृष्टि और दृश्य की त्रिपुटी है। भोक्ता-भोजन—भोग्य, कर्त्ता-करण-कर्म, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मैं—तू वह कुछ भी कह लो, है सब आनन्द ही। इसमें जनन, जीवन, मरण का कुछ अर्थ नहीं है। देखने वाला आनन्द है। आनन्द एक है, उसमे अन्वय है, न व्यतिरेक है। समझने की प्रक्रिया मे विलक्षणता है। आप अपनी ब्रह्मात्म रूप आनन्दमयी दृष्टि से जिसको देखते हैं, सुनते हैं, छूते हैं, चखते हैं, सब आनन्द है। आपका प्रत्येक पाद-विन्यास आनन्द है। प्रत्येक स्थिति-गति आनन्द है। समाधि-विक्षेप आनन्द है। जन्म-मृत्यु आनन्द है। सयोग—वियोग आनन्द हैं। सत् की आकृतिया हैं, चित्त की प्रतीतिया हैं। आनन्द के उल्लास हैं, उदय के विवर्त। सम्पूर्ण व्यवहार परमानन्द है, ब्रह्मानन्द है। 'आनन्दाद्ध्येव' श्रुति का अन्वयविषया यही तात्पर्य है। व्यतिरेक की प्रक्रिया से ज्ञान है, अन्वय की प्रक्रिया से विज्ञान है। मुझमे कुछ नही है, मैं ही सब कुछ हू, मुझमे ही सब है, सब मे 'मैं' हू—इन सब वचनो का भी निष्कर्ष यही है?

प्रश्न यह नहीं है कि हम सुखी कैसे हो? समस्या तो यह है कि हम सुखी क्यो नही हैं? इसी का समाधान बृहदारण्यक उपनिषद के अन्तर्यामि—ब्राह्मण एव मधु ब्राह्मण के आलोडन से प्राप्त होता है। पहले ब्राह्मण मे पृथिवी, जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक, आदित्य, दिशा, चन्द्र—तारा, आकाशतम, तेज, सर्वभूत, प्राण, वाक, चक्षु, श्रोत्र, मन, त्वचा, विज्ञान और रेतस—इन अधिभूत एव अध्यात्म पदार्थों का उल्लेख करके कहा गया है कि परमात्मा इनमे रहता है। इनसे अन्तरग है। ये सब उसको नहीं पहचानते। ये उसके शरीर हैं। वह इनका नियत्रण करता है। वही तुम्हारी आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। एक शाखा मे विज्ञान के स्थान पर शरीरोपाधिक जीवात्मा का नाम है। हरमात्मा सबका नियन्ता है। वह अद्रष्टा-द्रष्टा है, अश्रुत श्रोता है, अमत मन्ता है और अविज्ञात विज्ञाता है। उसके अतिरिक्त दूसरा कोई द्रष्टा नही है। उसके अतिरिक्त सब कुछ बहिरग, अज्ञानी, शरीर, नियम्य अनात्मा, मृत्युग्रस्त एव दु ख रूप है। इस प्रकार विवेक के द्वारा व्यतिरेक की पद्धति से उसकी विलक्षणता का ज्ञान होता है और वह अनेक नहीं एक है। अपनी आत्मा ही है— यह बोध होता है। इसी ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होती है।

मधुब्राह्मण मे इस प्रक्रिया से विलक्षण प्रक्रिया अपनाई गई है। वहां पृथिवी, सर्वभूत शरीरोपाधिक आत्मा, और तो क्या समग्र अध्यात्म अधिदैव और अधिभूतरूप जगत का उल्लेख करके सबको 'मधु' कहा गया है। वहां तेजोमय, अमृतमय आत्मा ही सबकी आत्मा है और वही सर्वस्वरूप ब्रह्म है। सब सबका कार्य है, सब सबका भोक्ता है। भोक्ता-भोग्य का समानाधिकरण्य है सार्वात्म्य का बोधक है। जिस आत्मा का पहले द्रष्टव्य रूप से निर्देश किया गया, नेति-नेति के द्वारा निषेधावधि बतलाया गया, वही 'ब्रह्म' सब है। मधु-विद्या का यही तत्त्व है कि आत्मा, अमृत, ब्रह्म और सर्वशब्द एक ही अर्थ के बोधक हैं। एक ही वस्तु अधिदैव

और अध्यात्म के रूप में विभक्त-सी होकर व्यवहार का विषय बन रही है। विराट भी वही, हिरण्य गर्भ भी वही। वही वस्तु अपूर्व, अनपर, अमध्य एव प्रत्यगात्मा है। इसमे व्यष्टि-समष्टि जीव का भी अन्तर्भाव है। श्री विद्यारण्यस्वामी का कहना है कि इस प्रसंग के द्वारा तत्त्वज्ञ पुरुष के सर्वात्मभाव का निरूपण है। यह सर्वात्मभाव फलरूप है। श्री सुरेश्वराचार्य ने भी इसे सर्वात्मभाव ही कहा है और सब अपना स्वरूप ही है—यह निष्कर्ष निकाला है। इसका उपसहार करते हुए मूल उपनिषद् मे कहा गया है कि यह आत्मा सम्पूर्ण भूतों का अधिपति है, सबका राजा है। जैसे रथनाभि या रथनेमि मे सब ओर समर्पित होते हैं, उसी प्रकार भूत, देवता, लोक, प्राण और जीवात्मा इसी मे समर्पित हैं। तत्त्वज्ञानी की दृष्टि से यह आत्मा ही सर्वात्मक मधु है। आत्मा से भी तत्त्वज्ञानी मे यह विशेषता है कि वह सर्वाधिपति है, राजा है और वैदुष्य से युक्त है। ये तीनो बाते अविद्योपाधिक आत्मा मे नही भासती। पधिपति का अर्थ है—स्वतन्त्रता। सबपेक्षा अधिक दीप्ति के कारण राजा है और किसी भी कर्म, भोग स्थिति आदि मे इसे अज्ञान मोह की प्राप्ति नहीं होती। अतएव अखण्ड वैदुष्टा है। यही कारण है कि वह खान-पान, विहार आदि मे भी स्वातन्त्र्य प्राप्त कर लेता है, पाप-पुण्य, से अलिप्त होता है, कर्म-भोगादि से उसका कोई वृद्धि ह्रास नही होता।

यह विद्या ही इस जीवन मे सुख-भूया और परमानन्द को जो कि अबाधित सत्य है और अपनी आत्मा ही है, व्यवहार मे निरावरण कर देती है। वेदो मे कहा है कि मधुमय पवन बह रही है। नदियो और समुद्रों मे मधु बह रहा है। लता-वृक्ष भी मधु है धूलि का एक-एक कण मधु है।

निष्कर्ष यह है कि दु ख और उसका विस्तार अज्ञान मूलक परिच्छिन्न दृष्टि से है। इसी से व्यवहार मे सकीर्णता का उदय होता है। सकीर्णता से स्व-पर दृष्टि होती है। यह भेद-भ्रान्ति दु ख की जननी है। इस भ्रान्त दृष्टिकोण को छोडकर उदीर्ण और विस्तीर्ण ब्रह्मात्म दृष्टि को प्राप्त कीजिए। आप न दु खी होगे न दूसरो को दु ख देंगे।

यह उदार दृष्टि प्रान्त को राष्ट्र से, राष्ट्र को विश्व से और विश्व को ब्रह्म से मिला देती है। इस्लाम हिन्दू और ईसाई आदि मजहब धर्म से एक होकर ब्रह्म से मिल जाते हैं। जातीयता, मानवता, जीवत्व, पूर्ण ब्रह्म से एक हो जाते हैं। भाषा ज्ञान मे समा जाती है। राजनीति, दलबन्दी से मुक्त होकर राज्य के एकत्व मे विलीन हो जानी है। सभी मत, अमत के सूचक हो जाते हैं। वर्गभेद, लिंगभेद, अपनी पृथकता खो बैठत हैं। नरक-स्वर्ग परमानन्द समुद्र के ज्वार-भाटा बन जाते हैं।

इसी जीवन मे आप सुखी हो और सबको सुखी करें' सब सुखी हो, इसके लिए इसी उदात्त दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इसी तुला की दृष्टि पर आप अपने आचरण, समाज सेवा, धर्म, अर्थोपार्जन योग शिक्षण और समय व्यवहार को तोलिए। आप देखेग कि यह समन्वयात्मक एव पूर्ण दृष्टि आपको इसी जीवन मे अभी, यही और इसी स्थिति मे सब दु खो से निर्मुक्त और परम सुखी कर रही है। सुख की स्मृति, कल्पना और आशा नि सार है। सुख एक अनुभूति है ठोस सत्य है। वह ज्ञान-विज्ञान से ही निरावरण होकर साक्षात अपरोक्ष होता है।

भारतीय दर्शन

युवाचार्य महाप्रज्ञ

□□

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। चिन्तन का विकास भूगोल, खगोल, पर्यावरण, समाज आदि के संदर्भ में हुआ है। आदिमकालीन मनुष्य ने जगत् को आश्चर्य के साथ देखा पर उसे यथार्थरूप मे जान नही सका। उसमे जिज्ञासा का भाव बराबर बना रहा। चिन्तन आगे बढ़ा। पौराणिक युग का प्रारम्भ हो गया। उस युग के मनुष्य ने आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और पर्वत को दिव्यशक्ति के रूप मे देखा और उनकी वदना की। चिन्तन का क्रम और आगे बढ़ा। मनुष्य ने देववाद के सामने अनेक प्रश्न उपस्थित कर दिए। अन्तर्दृष्टि और तर्क के द्वारा प्रत्येक तत्व का निरीक्षण और परीक्षण प्रारम्भ किया। धीमे-धीमे पौराणिक युग के आसन पर दार्शनिक युग प्रतिष्ठित हो गया। आज दार्शनिक युग के आसन पर वैज्ञानिक युग का प्रभुत्व है। वर्तमान मनुष्य सबसे अधिक प्रभावित है वैज्ञानिक पद्धति से। पर दार्शनिक पद्धति भी अनुपयोगी नही बनी है। वह सत्य की खोज मे आज भी बहुत मूल्यवान है। दर्शन और विज्ञान दोनो सत्य की खोज मे परस्पर पूरक हैं।

दर्शन के क्षेत्र में भारत, चीन और यूनान—इन तीनों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इस सहस्राब्दी मे पश्चिम मे अनेक दर्शन विकसित हुए हैं। आज पूर्वी और पश्चिमी दोनो गोलार्द्धों के दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन हो रहा है। उसका निष्कर्ष यह है कि चिन्तन और अन्तर्दर्शन देशातीत एव कालातीत होता है। भारतीय चिंतको ने जो सोचा, वह अभारतीय चिंतको ने भी सोचा है। उन्होंने अन्तर्दृष्टि से जो देखा, वह अभारतीय चिंतको ने भी देखा है। इसलिए भारतीय दर्शन और अभारतीय दर्शन के बीच भेदरेखा खीचना बहुत जटिल कार्य है। फिर भी चिंतन के इतिहास में भेद मे अभेद और अभेद मे भेद की खोज होती रही है।

भारतीय दर्शन की दिशा और मुख

ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञप्ति (ज्ञानफल) यह दर्शन का चतुष्कोण है। दार्शनिको ने इन चारो कोणो का स्पर्श किया है। पर सबने सबको समान मूल्य नही दिया है। इस स्पर्श मे भारतीय दर्शन के अवदान और उसकी मौलिकता पर संक्षिप्त-सा विमर्श प्रस्तुत है।

ज्ञेय मीमांसा

ज्ञेय स्पष्ट है। ज्ञान उसकी अपेक्षा अस्पष्ट है। ज्ञाता ज्ञान से भी अधिक अस्पष्ट है। भारतीय चिन्तको ने ज्ञेय के विषय मे बहुत सूक्ष्म विमर्श किया है। उसकी दो मुख्य धाराएं बनी—१ वस्तुवाद या यथार्थवाद। २ प्रत्ययवाद या आदर्शवाद। वस्तुवादी चेतना और पदार्थ दोनों के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। प्रत्ययवादी चेतना को वास्तविक मानते हैं और पदार्थ को मानसिक कल्पनाजनित मानते हैं। वस्तुवाद द्वैतवाद है। प्रत्ययवाद अद्वैतवाद। सांख्य, जैन, बौद्ध, नैयायिक और वैशेषिक ये द्वैतवादी दर्शन हैं।

सांख्य दर्शन के अनुसार मूल तत्व दो हैं—१ पुरुष, २ प्रकृति। पुरुष चेतन है, प्रकृति अचेतन।

जैन दर्शन में भी मूल तत्व दो हैं—१ जीव, २ अजीव। जीव चेतन है, अजीव अचेतन।

सांख्य और जैन दर्शन दोनों मे विचार-शाखाओं का विस्तार हुआ है। कालक्रम से अनेक नए-नए

विचारों ने दर्शन का पल्लवन किया है। पर वस्तुवादी दृष्टिकोण मे कोई विचार भेद नहीं हुआ। जैन दर्शन में एकात्मवाद का सिद्धान्त विकसित हुआ है। पर वह वेदांत की भांति निरपेक्ष चिन्तन नहीं है। वह सापेक्ष चिंतन है। सग्रह् नय का चिन्तन अभेद की दिशा मे चलता है। प्रत्येक आत्मा मे तुल्य चैतन्य का दर्शन होता है। इस दृष्टि से वह इस निष्कर्ष पर पहुच जाता है कि आत्मा एक है। व्यवहार नय का चिन्तन भेद की दिशा मे चलता है। उसकी दृष्टि मे प्रत्येक आत्मा स्वतत्र है। ये दोनों चिन्तन सापेक्ष हैं, इसलिए जैन दर्शन मे एकात्मवाद की निरपेक्ष स्वीकृति नही है। परम सग्रह नय का चिन्तन है कि अभेद की चरम सीमा है अस्तित्व। वेदान्त के अद्वैत मे अभेद का चरम बिन्दु है ब्रह्म। इसलिए वह चैतन्याद्वैतवाद है। चार्वाक भी अद्वैतवादी है। उसके चिन्तन मे भेद का चरम बिन्दु है भूत। इस दृष्टि से वह अचेतन्याद्वैतवादी है। सग्रह् और व्यवहार नय का चिन्तन इन दोनो दर्शनो से आगे है। सग्रह नय के अनुसार अभेद का चरम बिन्दु है अस्तित्व। अस्तित्ववाद की अवधारणा मे केवल सत्ता है, चेतन और अचेतन का भेद भी नही है। व्यवहार नय मे भेद का चरमबिन्दु परमाणु है।

बौद्ध दर्शन की मुख्य विचार-शाखाए चार हैं—१ सौत्रातिक, २ वैभाषिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक। ज्ञेय के विषय मे इनमे बहुत चिन्तनभेद है।

सौत्रातिक और वैभाषिक ये दोनो बाह्य जगत् को वास्तविक मानते हैं। इनके अनुसार ज्ञान और ज्ञेय दोनो वास्तविक हैं।

योगाचार विचार-शाखा का ज्ञेय विषयक सिद्धान्त है विज्ञानवाद। इसका चिन्तन है कि वस्तुजगत् चित्त का विकार है। उसकी कोई स्वतत्र सत्ता नही है। विज्ञान ही वास्तविक है। बुद्ध ने दो सत्यों के आधार पर तत्व निर्णय किया था। उनमे बाह्य वस्तु सवृति सत्य या काल्पनिक सत्य है, चित्त असवृति सत्य या वास्तविक सत्य है। माध्यमिक विचार-शाखा ने ज्ञेय के विषय मे शून्यवाद की स्थापना की। उसका चिंतन है कि जैसे माया (इन्द्रजाल) का कोई स्वभाव नहीं होता, वैसे ही वस्तुजगत् का कोई स्वभाव नही है, इसलिए वह नि स्वभाव है। शून्यवाद की व्याख्या भी व्यवहार सत्य और परमार्थ सत्य, इन दोनो सत्यों के आधार पर की गई। विज्ञान और वस्तु दोनो शून्य है। शून्यवाद के सिद्धान्त ने सर्वनिषेधवाद की स्थापना नही की, किन्तु निरपेक्ष सत्ता का निरसन कर उनकी सापेक्ष सत्ता का प्रतिपादन किया।

नैयायिक और वैशेषिक दोनो ही आत्मवादी दर्शन हैं। इनके मत मे चैतन्य और पदार्थ दोनो की स्वतत्र सत्ता है।

वेदात अद्वैतवादी दर्शन है। उसके अनुसार ब्रह्म ही परमार्थ सत्य है। अनादिकालीन अविद्या के कारण नाना पदार्थ की प्रतीति हो रही है। इसे मायावाद भी कहा जाता है। इस पर बौद्ध दर्शन के विज्ञानवाद और शून्यवाद का प्रभाव प्रतीत होता है। गौडपाद ने माडूक्य उपनिषद् पर माडूक्य कारिका नामक टीका लिखी और उसमे उपनिषदो तथा बौद्धो के सिद्धान्त का समन्वय किया। मायावाद के प्रवर्तक आचार्य शकर गौडपाद के शिष्य थे। इसलिए उन्होंने मायावाद की स्थापना मे विज्ञानवाद का सहारा लिया, यह अस्वाभाविक नही है।

ईश्वरवाद और ज्ञेयवाद

ज्ञेय के विषय मे दोनों धाराओ पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करना अनपेक्षित नहीं है। भारतीय दर्शन मे ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता की अपेक्षा ज्ञान के फल को अधिक मूल्य दिया गया। ब्रह्मवाद, ईश्वरवाद और निर्वाणवाद इसके साक्ष्य हैं। भगवान् महावीर को निर्वाणवादियों मे प्रधान कहा गया। महावीर और बुद्ध

दोनों श्रमण परम्परा के आचार्य थे। दोनों ने ही ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार किया था। सांख्य के प्रवर्तक आचार्य कपिल भी श्रमण परम्परा के परिव्राजक थे। वे भी मोक्षवादी थे। ईश्वर का अस्तित्व उन्हें भी मान्य नहीं था। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद भी मोक्षवादी थे। उन्होंने अदृष्टवाद की स्थापना कर ईश्वर की अपेक्षा को स्वीकार नहीं किया। नैयायिक मोक्षवादी होते हुए भी ईश्वरवादी हैं। उनके चिन्तन मे सृष्टि रचना के लिए ईश्वर का अस्तित्व अनिवार्य है। वेदांत का चिन्तन था कि यदि पदार्थ पारमार्थिक सत्य हो तो फिर मोक्ष प्राप्ति का प्रयोजन ही नहीं रहता। यह जीव ब्रह्म का ही अंश है। उसका ब्रह्म में विलय हो जाना ही मोक्ष है।

पदार्थ के संबंध से मुक्त होना, अपने चैतन्य स्वरूप में प्रतिष्ठित होना, पदार्थ को अनित्य और कुछ ने पदार्थ के संयोग को अनित्य बताकर अथवा ब्रह्म मे विलीन होना निर्वाण या मोक्ष है। इसमें मुख्य शर्त है पदार्थ के संबध से मुक्त होना।

पदार्थ यदि पारमार्थिक सत्य है तो उसके सबध से मुक्त होने की अपेक्षा क्या है? आत्मा भी पारमार्थिक सत्य है और पदार्थ भी पारमार्थिक सत्य है, तो फिर पदार्थ से विमुख होने का अर्थ क्या पारमार्थिक सत्य से विमुख होना नहीं होगा? यह प्रश्न सभी दर्शनों के सामने था। कुछ दार्शनिकों ने इस समस्या का समाधान किया। कुछ दार्शनिको को यह समाधान पर्याप्त नहीं लगा, इसलिए उन्होंने विज्ञानवाद, शून्यवाद और मायावाद के द्वारा उक्त समस्या सुलझाने का प्रयत्न किया।

सांख्यदर्शन के चिन्तन मे आत्मा कूटस्थनित्य है, प्रकृति परिणामी है। इसलिए आत्मा के साथ प्रकृति का सयोग अनित्य है।

जैन दर्शन के अनुसार आत्मा और पुद्गल दोनों परिणामी नित्य हैं। अस्तित्व की अपेक्षा दोनों अनित्य हैं। दोनों अनित्य भी हैं, इसलिए दोनों का संयोग होता है और इसीलिए दोनो का वियोग भी होता है। दोनों का सर्वथा वियोग होना ही मोक्ष है। मोक्ष होने पर भी दोनो का अस्तित्व विद्यमान रहता है। आत्मा अपने स्वरूप मे रहती है और पुद्गल अपने स्वरूप मे रहता है।

भगवान् बुद्ध ने केवल परिणामवाद का प्रतिपादन किया था। उनके अनुसार सत् नित्य नहीं हो सकता। जो सत् है, वह अनित्य है। बौद्ध दर्शन मे आत्मा की स्पष्ट स्वीकृति नही है। ज्ञान और पदार्थ की स्वीकृति है। आचार्य नागार्जुन (१०० ईसवी) ने शून्यवाद की स्थापना कर बुद्ध के क्षणिकवाद मे एक नया अध्याय जोड दिया। मैत्रेय और असंग (पांचवीं शती ई) ने विज्ञानवाद की स्थापना की। इन दोनो मे पदार्थ अवास्तविक हो गया। पर निर्वाण की मान्यता मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आचार्य शकर के मायावाद में भी मोक्ष प्रतिष्ठित है। चार्वाक को छोडकर सभी अस्तित्ववादी दर्शनो का केन्द्रविन्दु मोक्ष है। उसी की परिधि मे दर्शनो का विकास हुआ है।

आगमयुग और दर्शनयुग

दर्शनयुग से पहले आगमयुग का विकास हुआ था। आगम के प्रणेता ऋषि थे। उन्होंने तपस्या, ध्यान और आत्मचिन्तन के द्वारा सत्य का साक्षात्कार कर उसका प्रतिपादन किया था। उन सत्यो का सकलन उपनिषद्, अंग और पिटक साहित्य मे मिलता है। आजीवक आदि अनेक तीर्थों का आगम साहित्य आज अनुपलब्ध है। उपलब्ध आगम के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दर्शनयुग के आचार्यों ने आगमयुगीन सिद्धान्तों के समर्थन में तर्कवाद का विकास किया और कुछ नए सिद्धान्त भी स्थापित किए। आगमयुग साक्षात्कार या अनुभव प्रधान था। दर्शनयुग चिन्तन और तर्कप्रधान हो गया। आगमयुग मे ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञाता

और ज्ञप्ति के विषय मे अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हुए। दर्शनयुग का प्रारम्भ उनकी परीक्षा से होता है। दर्शन युग को परीक्षा या प्रमाण मीमासा का युग कहा जा सकता है। वास्तव मे दर्शन का अर्थ प्रत्यक्ष या साक्षात्कार है। किन्तु विगत दो हजार वर्षों मे जिस दर्शन का विकास हुआ है, वह प्रमाणवादी दर्शन है। इस आधार पर दर्शन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१ आगम युग का दर्शन

२ प्रमाण युग का दर्शन।

प्रमाणयुगीन दर्शन के विकास मे बौद्ध दार्शनिकों और नैयायिक दार्शनिकों का महत्वपूर्ण योगदान है। न्यायसूत्र का रचनाकाल ईसापूर्व दूसरी शती माना जाता है। ईसा की चौथी शती में वात्स्यायन ने न्यायसूत्र पर भाष्य लिखा। बौद्ध विद्वान दिंगनाग (५०० ई) ने न्यायभाष्य की तर्कपूर्ण समीक्षा की। नैयायिक विद्वान् उद्योतकर (६३५ ई) ने वात्स्यायन भाष्य पर न्यायवार्तिक लिखा, उसमे दिंगनाग द्वारा किए गए आक्षेपों का परिहार किया। बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति (६५० ई) ने न्यायबिन्दु की रचना की और न्यायवार्तिक के तर्कों का खण्डन किया। नैयायिक विद्वान् वाचस्पति मिश्र (८४० ई) ने न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका लिखी। उसमे उन्होने बौद्ध तर्कों का निरसन किया।

मीमासा दर्शन के विद्वान कुमारिल भट्ट (७००-८०० ई) ने भी दर्शन के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण कार्य किया। वैशेषिक सूत्र की रचना का समय ईसा की प्रथम शती माना जाता है। इस पर प्रशस्तपाद (५-६ शती ई) ने प्रशस्तपाद नाम का भाष्य लिखा।

जैन विद्वान सिद्धसेन (ईसा की चौथी शती) और समतभद्र (ईसा की तीसरी-चौथी शती) ने अनेकान्त वाद को नया आयाम देकर जैन दर्शन को प्रमाणवादी दर्शन की भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। हरिभद्र, विद्यानद, प्रभाकर, वादिदेव, हेमचन्द्र आदि जैन आचार्यों ने अन्य दर्शनो के अभिमत की तर्कपूर्ण समीक्षा की और स्याद्वाद के आधार पर समन्वय का प्रयत्न किया। सब दर्शनो के समन्वय दृष्टि से हरिभद्र सूरी का शास्त्रवार्ता समुच्य भारतीय दशन के साहित्य मे एक अनूठा ग्रथ है। जैन दर्शन पर अन्य दार्शनिको ने बहुत कम आक्षेप किए। धमकीर्ति, शकर, कुमारिल आदि ने सक्षिप्त समीक्षा की। पर समीक्षा की दृष्टि से वह बहुत गभीर नही है। जैन विद्वान् तर्क-प्रतितर्क के मच पर गए पर अनेकान्त के कवच के कारण वे असुरक्षित नहीं बने। भारतीय चिन्तन को सहस्ररश्मि की रश्मियो मे उनका चिन्तन समन्वित हो गया।

भारतीय चिन्तन मे ज्ञप्ति मीमासा या मोक्ष के आधार पर अहिंसा, सत्य, नैतिकता, अपरिग्रह, अनासक्ति, मैत्री आदि आध्यात्मिक तत्व विकसित हुए। उनके द्वारा काम और अर्थ पर अकुश रखने की क्षमता जागृत हुई। वर्तमान की समस्याओ के समाधान के लिए भारतीय चिन्तन के अवरुद्ध द्वार खुले, इसकी अपेक्षा अनुभव हो रही है।
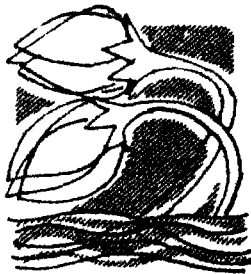
अहिंसा सार्वभौम

जैनेन्द्रकुमार

□□

आपके सवाल पर मैं क्या कहू ? अहिंसा को मैं सार्वभौम मूल्य मानता हू यानी वह परम धर्म है। हर परिस्थिति मे वह उपादेय और उपयुक्त है।

उस सम्बन्ध मे योजना मेरे पास कोई बनी-बनाई नही है। आज हर कोई व्यक्ति/या देश, अपने को असुरक्षित अनुभव करता है। सुरक्षा के लिए शस्त्र वगैरा की शरण खोजता है। ऐसे क्या अन्दर सुरक्षा का आश्वासन पहुच जाता है ? ऐसा होता तो शस्त्रों को निरन्तर बढ़वारी की जरूरत न होती। शस्त्र-निर्माण की होड मे उत्तरोतर महा सचालक अणु शस्त्रो का अम्बार सभ्य और विकसित समझे जाने वाले देशो मे बढ़ता ही न जाता ! मैं मानता हू कि हिंसा के उपकरणो के जमाव की इस प्रवृत्ति मे से भय-मुक्ति कभी मिलने वाली नहीं है। भय तो स्रोत है हिंसा भाव का, अर्थात् अहिंसा का आरम्भ निर्भयता से है। 'निर्भय हम हो कैसे ? जान पर आ बने तो भय कैसे न लगे ? अहिंसा का आरम्भ उसी मृत्यु के प्रति अभय के बिन्दु से है। मृत्यु तो अवश्यभावी है। शरीर का नाश तो एक दिन होना ही है। उसकी चिन्ता मे परिग्रह बटोरने मे क्या सार है ! मरता उतना ही जितना मर्त्य है। आत्मा तो मरती नहीं, अर्थात् इस अमर तत्त्व मे विश्वास रखने और सब भय से मुक्त होने से अहिंसा का आरम्भ मानना चाहिए। तभी सम्भव है कि हमे मारने आने वाले मे भय न हो, प्रीति हो, करुणा हो। उसमे हमे एक भूले और डरे प्राणी के दर्शन हो, यानी उसके हाथो मिला कष्ट प्रेम पूर्वक सहने की हम तैयारी रखें।

यह कष्ट सहन की तैयारी बुद्धि पूर्वक तो किसी मे हो नहीं सकती। इसके लिए आस्था चाहिए। ऐसे स्वेच्छापूर्वक तप कर यहां तक कि मर कर ही व्यक्ति अमर होता है। जिन्दगी से चिपकता है, जो पूरे तौर पर जीना नही जानता।

बुद्धि समझायेगी कि ऐसे सह लेने से आखिर होता क्या है ? लेकिन इतिहास बताता है कि ऐसे ही जो होता है, होता है। शहीद के नाम पर क्यो माथा झुकता है फिर अहिंसक शहीद की तो बात ही क्या ! ईसा अपने क्रास को खुद कधे पर ढोकर उस पर सूली पा गये, और रोमन साम्राज्य खतम हो गया, यानी स्वेच्छा से आदमी अमर मृत्यु को भेंटता है तो मानो साबित करता है कि जीने से कोई बडी चीज है, जिस पर जीवन निछावर हो तो जीवन धन्य हो जाता है। शहीद की मृत्यु उस तरह ससार को जीवन की प्रेरणा देती है। मैं समझता हू कि इस जीवन-दर्शन को, जिसमे अपने सक्षिप्त से सत्तर-अस्सी वर्ष के जीवन को ही, सब कुछ नही समझ लिया जाता, प्रत्युत जीवन की अनन्तता मे विश्वास रक्खा जाता है, मनुष्य को क्षुद्रता से उबारना है। स्वार्थ-सचय और स्वत्व-विस्तार की तृष्णा से बचाता है। इसमे उपार्जन से अधिक विसर्जन को महत्व मिलता है। य ; जीवन-दर्शन अव्यवहार्य नहीं है। मानव-मन मे गहरे में उसकी जडे हैं। मनोविज्ञान उस 'यज्ञ-धर्म' की खोज तक पहुचा ही चाहता है।

अभी तो सभ्यता जिस ओर बढ़ रही है, उसमे अपने लिए चीजो को पाने और बटोरने की होड-सी लगी है। इसमे एक को दूसरे का ख्याल नही रहता। इतना ही नहीं, लगता है कि दूसरा ही अपने स्वार्थ के मार्ग में बाधा है। ऐसे परस्पर सबध जिनसे समाज का निर्माण होता है, स्निग्ध नहीं हो पाते। उनमे ताप

और तनाव उभरता है, चिनगारियां फूटती हैं और हर दो को, एक-दूसरे से, अपने लिए खतरा होता है। यह इसीलिए कि हम उस अदृश्य और अन्तन्त को पहचान नही पाते, जिसमे कि हर दो एक है। यह अन्तर व्याप्त एकदम बुद्धि की पकड मे इसलिए नही आ पाता कि बुद्धि का व्यापार सम्भव ही द्वैत के आधार पर होता है।

इस द्वैत के आधार पर चलने वाली वैज्ञानिक बुद्धि ने बहुत कुछ चमत्कार कर दिखाया है। आज की तमाम उन्नति उसी की बदौलत है। उसकी करामात अचम्भा होता है। उसने मनुष्य को सीमा से उठाकर असीम के तट तक पहुचा दिया है। हम छोटी-छोटी इकाइयो मे रहने के आदी थे। विज्ञान ने दुनिया को छोटा और एक कर दिया है। सचरण और आवागमन इतना द्रुत हो गया है कि कोई अपने को अलग-थलग नहीं मान सकता। दुनिया सिमट गयी है और अब मानव सौर-मडल ही नही, बल्कि तमाम नक्षत्र-मडल का अपने को अतिथि सदस्य मान सकता है।

विज्ञान की इस अपूर्व उपलब्धि के प्रति कृतज्ञ होना होगा। लेकिन यह क्यों है कि अन्तरिक्ष में पहुच-कर भी मनुष्य को अन्तरिक्ष-युद्ध से बचने की भाषा मे सोचना पडता है, क्यों हैं कि विज्ञान संहार के अन्यतम शस्त्र तो युद्ध के लिए प्रस्तुत करते रहने मे योग दे सकता है, पर उस आसन्न युद्ध से बचने का कोई उपाय नहीं सुझा सकता ?

कहीं-न-कही कोई त्रुटि है। नहो, विज्ञान अपने आप मे पर्याप्त सिद्ध नहीं हो सका है। है तो वह अर्ध सत्य है। मनुष्य की समस्याए कटी नही हैं उससे, बल्कि देखा जाय तो बढ़ती गयी है। पदार्थ का उत्पादन प्रभूत, परिमाण मे होता गया है, मशीनो के उपयोग से, लेकिन दैन्य और दारिद्रय उससे मिटे नही हैं, उल्टे हैं। इस परिणाम मे यदि कोई तक-सगति नही दीखती है तो यही चिन्तक के लिए सोचने की चुनौती उपस्थित होती है।

मैं मानता हू कि ब्रह्माण्ड अखण्ड नीरन्ध्र है! कही बीच मे रन्ध्र नही है। इसी अखण्ड मे अनन्तता समायी हैं। अगर अनन्तता अखण्ड भाव से सदस्थित है तो कैसे ? जिस तत्व से यह सम्भव हुआ है उसी का नाम हैं अहिंसा। अखण्ड परब्रह्म है। अखण्ड माना जाता था कि परम अणु भी हैं किन्तु विज्ञान ने परमाणु का विच्छेद कर डाला और देखा गया कि उस विच्छेद मे से प्रलय का विच्छुरण हुआ है, अर्थात् अन्तिम ऐक्य पर जब प्रहार होता है, अभिन्न को भिन्न किया जाता है तो जो योजक तत्व था, वह लुप्त हो जाता है और वहा से घोर सघातकता का उदय होता है। विज्ञान से यही हो चला है। एक को उसने दूसरे की प्रतियोगिता मे डाल दिया है।

इसलिए आवाज उठी है, विज्ञान और अध्यात्म के योग की। बात काफी सस्ती बन गयी है। अध्यात्म पुरुष कम नही है। भारतवर्ष तो बडी सख्या मे उनका निर्यात कर रहा है। लेकिन सभ्यता की गति मे उनके कारण किसी प्रकार का मोड नही आया है, आयेगा भी नही। कारण अध्यात्म की कोई अलग विद्या नहीं है। एक हुनर के रूप मे उसका प्रदर्शन होता है तो चमत्कार जैसा उससे भले दिखाई दे जाय, मानव-हित सिद्ध नहीं होता। मानव-सबधो की भूमिका मे कोई अन्तर नही आता। ऐसा नही लगता कि शक्ति के किसी नये रूप का प्रादुर्भाव हुआ है कि जो विश्व व्यवस्थाओ मे मौलिक परिवर्तन ला सके। बौद्धिक विज्ञान के सम्मुख भक्ति की भाव विभोरता से काम नही चलता दीखता। विज्ञान जगत को ज्ञेय बना देती है। अध्यात्म अगर जगत को अज्ञेय बनाकर रह जाय तो मनुष्य की विशेष सहायता नही होती। आवश्यक है कि आत्म (सबजैक्ट) और वस्तु (ऑबजैक्ट) के बीच का पार्थक्य टूटे। दूसरे शब्दो मे 'हू' और 'है' का भेद मिटे। इस समय उन्नति जिस रूप मे उत्कर्ष पाती जा रही है, उसमे 'हू' और 'है' का भेद गहरा किया जाता है। प्रकृति के प्रति पुरुष का सम्बन्ध जैसे जय-विजय का हो। विज्ञान का गव है कि उसने प्रकृति पर जय साधी है। मनुष्य बुद्धि के

मद मे अपने को जेता अनुभव करता है। मान लेता है कि प्रकृति को उसने परास्त किया है। ऐसे इकालाजिकल इम्बैलैंस की सृष्टि होती है। प्रकृति और पुरुष में आपस में ठन आती है। प्रकर्ष के साथ प्रदूषण उत्पन्न होता जाता है। संक्षेप में, प्रकृति के साथ मनुष्य के सम्बन्धों में निरंतर वैषम्य बढ़ रहा है। इसी को अपने नित्य नैमित्तिक दैन दिन जीवन के निकट लाकर समझें तो कह सकते हैं कि घर टूट रहा है, बाजार फैल रहा है। सम्बन्धों में प्यार अब अव्यावहारिक हुआ जा रहा है। व्यवहार का माध्यम बस पैसा रह गया है। प्यार वह जो घर-परिवार को बनाये, और पैसा कि जो बाजार को फैलाए, जहा सबको अपने नफे की फिक्र है।

केवल वैज्ञानिक बुद्धि और वैज्ञानिक सभ्यता मे मनुष्य-जाति के साथ विडम्बना का ही खेल खेला जा रहा है, मानो कि पुरुष और स्त्री के बीच व्यवधान डालने को पैसा आ गया है। सब कुछ नीलाम पर चढ़ा है। विज्ञापन सबसे लाभ की, सबसे ऊची कला है।

मैं मानता हू कि अहिंसा को सबसे बडी चुनौती मुद्रा की सस्था के इस उत्तरोत्तर विकास ने उपस्थित की है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार आज प्रमुखता से शस्त्रास्त्र का व्यापार है। युद्ध उद्योग से बढ़कर आज कोई उद्योग नहीं। कहना चाहिए कि आज की सभ्यता का महायंत्र हिंसोपकरणो की सृष्टि मे निरन्तर क्रियाशील है। समझा जाने वाला अध्यात्म इस उत्पादन की प्रक्रिया को छूने तक को उद्यत नही हैं, प्रत्युत वह उसमे से अपने लिए सुविधा और सरक्षण पाने की चेष्टा में दीखता है। मैं जिसको अहिंसा के रूप में देख पाता हू, उसमें इस प्रक्रिया का निषेध है, अर्थात् अहिंसा मे मशीन मनुष्य के लिए होगी, मनुष्य मशीन के लिए नहीं। स्त्री-पुरुष एक दूसरे के लिए होंगे, पैसे के लिए नही। अर्थशास्त्र नीतिशास्त्र से अलग न हो पायेगा और न नीतिशास्त्र धर्मशास्त्र से और धर्म होगा अखण्ड चैतन्य के प्रति नमन और प्रणमन।

याद रखना होगा कि हम हैं तो द्वैत में हैं। द्वैत के पार जाना अनहुआ हो जाना है। वहां की बात की नही जा सकती। अखण्ड उपास्य ही रहेगा और वह है तमाम सत् का भाव, अर्थात् सत्य। वहा से हमको जो व्यवहार्य और प्रत्यक्ष धर्म प्राप्त होता है, वह अहिंसा है। जैसा पहले कहा है, इस अहिंसा मे अपने को उत्तरोत्तर समस्त सृष्टि के साथ एकात्म अनुभव करने की क्षमता पाते जाना होगा। इसमे व्यक्तित्व का फैलना-फूलना नही आता, ह्रस्व और लुप्त होते जाना होता है। स्वत्व और सत्ता 'अहं' को बढ़ाते हैं। अहिंसा मे अकिंचन बनना पड़ता है। जो हम रखते हैं, वह हमारी सीमा बन जाता है, बधन हो जाता है। इसलिए रखने, बटोरने, अहिंसा मे अपरिग्रह को ओर बढ़ना है। ऐसे ही बीच का वह समन्तराय कटेगा और टूटेगा, जो हमको दूसरे से अलग, उदासीन और विमुख बनाता है।

हमारे भारत देश मे परस्पर बिलगाव और अलगाव की समस्या बडी विकट बनी दीखती है। विकट से विकटतर ही होगी वह, अगर निगाह हमारी सत्ता और स्वत्व पर रहेगी। एकता उस जगह है ही नहीं। वहां तो द्वन्द्व हैं और अपने-अपने स्वत्व का आग्रह और अधिकार की चेतना है। स्वत्व-विसर्जन में धन्यता दिखाई दे, वही दृष्टि इस अलगाव की समस्या से निबट सकती है और अपरिग्रह और अकिंचन्य का निर्वाह समाज में सम्भव यदि हो सकता है तो केवल अहिंसा के सहारे।

मैं मानता हू कि वैज्ञानिक और औद्योगिक दृष्टि से परम विकसित पश्चिम अनुभव कर रहा है कि उन्नति के जो आधार दो-ढाई शताब्दी पूर्व उसने अंगीकार किये थे, वे अब थोदे पड रहे हैं। मानव-जाति का भविष्य वे संभाल नहीं सकते। बुनियादें नयी और गहरी देनी होंगी, यदि सभ्यता के सौध को टिकाना और सभालना है। अब भी युद्ध की आसन्न विभीषिका के उत्तर में वहां शान्ति आन्दोलन उदय मे आकर बल पकड़ते जा रहे हैं। किन्तु उनमें निषेध प्रधान है। निषेध से तो चलेगा नहीं। रिक्त प्रकृति को स्वीकार्य नही।

कुछ विकल्प प्रस्तुत करना होगा। विकल्प अहिंसा है, जिसका प्रयोग भारत में गांधी द्वारा राजनीति की भूमिका पर एक बड़े पैमाने पर सफलतापूर्वक हुआ और जिस पर इतिहास दंग हैं। पश्चिम के मनीषी अब भी गांधी की उस प्रक्रिया मे, प्रयोग मे युद्ध के विकल्प की सम्भावना देखते हैं। वह सम्भावना मनुष्य के अन्तःकरण या विवेक के समक्ष प्रत्यक्ष की जा सकती है। दुनिया तो राष्ट्रों मे बंटी है और राष्ट्र के सदर्भ मे गांधी जैसा व्यक्ति कोई है नही, जो इस प्रक्रिया को सफल करके दिखा सके। किन्तु मानव-जाति के मन पर वे सम्भावनाए अवश्य सार्थक रूप मे उतारी जा सकती है। एक नया सपना जाग सकता है। अहिंसा सार्वभौम के द्वारा वह कुछ किया जा सके, ऐसी मेरी भावना और कल्पना थी, अब भी है।

श्रीअरविन्द और माताजी के जीवन-दर्शन का प्रधान भाव

(डा) इन्द्रसेन

□□

१ सितम्बर को भाई यशपालजी की वर्षगाठ है। यह उनका जन्मदिन है। जन्मदिन पर आध्यात्मिक दृष्टि से व्यक्ति की आत्मा कुछ विशेष सजग हो उठती है, मानो यह देखती-भालती है कि इस जन्म का उद्देश्य पूरा हो रहा है कि नही अथवा इसे अब क्या दिशा लेनी चाहिए आदि-आदि।

यशपालजी की जयन्ती तथा सस्मरणो तथा मत्रो के सम्मान आदि की भावना बनाने से चित्त कुछ मौन, कुछ प्रसन्न, कुछ आश्चर्यमान-सा हो उठ रहा है। सस्मरणो की ओर दृष्टि जाने से आनन्द की झांकिया मिलती हैं, परन्तु पीछे की ओर जाने की इच्छा नही होती। मित्रो का सम्मान सुन्दर सद्भाव लगता है।

परन्तु दृष्टि दौड़ती है विशेष रूप से आगे की ओर और चित्त आह्लादित हो उठता है, यह कल्पना करके कि इनके साथ तो अद्भुत घनिष्ठता की सम्भावना भाग्य मे बधी दीखती है। यह घनिष्ठता एक उज्ज्वल प्रिय रूप मे स्पष्ट दिखाई देती है। उसे देखना और देखते रहना, अत्यन्त सुखद लगता है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि यह मानो अनेक वर्षों से धीरे-धीरे तैयार होती आ रही है और अब सम्भवत द्रुततर गति से विकसित होगी। इस घनिष्ठता का स्वरूप प्रस्तुत करना कठिन है, परन्तु इसमे अद्भुत गाम्भीर्य है, अद्भुत माधुर्य।

भूत के सम्बन्धो के 'सस्मरण' होते हैं और आनन्द की घड़ियों को याद करने से आनन्द मिलता ही है।

परन्तु भविष्य के सम्बन्धों की आशा, आशा ही है नही, बल्कि सजीव निश्चय-सा—यह और ही चीज है। यह तो सक्रिय रूप मे आगे के समस्त जीवन के साथ सम्बन्ध रखता है, यह कोई पुरानी सुखद और रोचक याद मात्र नही।

यशपालजी साहित्यिक व्यक्ति हैं, आदर्शवादी हैं, समाज-सेवी हैं, बड़े मिलनसार हैं, देश-विदेश की

लंबी यात्राएं की हैं, बड़े सुंदर इनके संपर्क हैं, परंतु उनमें खूब गंभीर आध्यात्मिक भाव भी है। गहरी, व्यापक भाव की सहानुभूति है, समता है, विशालता है, परम सत्य की जिज्ञासा है तथा उसका भान भी। भाई यशपाल के व्यक्तित्व का यह पक्ष मुझे विशेष प्रिय है, इसका मुझे विशेष आदर है तथा इसके विकास की विशेष जिज्ञासा है।

उनकी इस वर्षगांठ पर इसी विकास की विशेष मनोकामना करता हू। हृदय से चाहता हू कि उनका यह गभीर भाव उन्हें तथा जगत् को सहज उपलब्ध हो, इसका आनन्द, इसकी प्रेरणा सहज सरल भाव मे प्राप्त हो और जीवन सहज तृप्ति का उपभोग करे।

आज की जागतिक स्थिति बडी कष्टदायक बन रही है। देश-विदेश मे सघर्ष, वैर-विरोध प्रबल हो रहे है। आतक और भय व्यापक रूप से छाये हुए हैं। प्रेम, शाति, सद्भाव, सहनशीलता, न्याय, सत्यता मानो मानव जीवन के कुछ तत्व हैं ही नही। कैसी स्थिति है यह मानव-इतिहास की, धर्म की ग्लानि की तथा अधर्म के उभार की। यह ऐसा ही समय जचता है, जब गीता के अनुसार, धर्म के उत्थान के लिए दैवी विधि-विधान मे कुछ निर्दिष्ट होता है। श्रीअरविंद भी एक प्रसग मे कहते है कि गुह्यवेत्ताओ का यह सदा भाव रहा है कि जब अधकार घना हो जाय तो समझो कि प्रकाश अब दूर नहीं।

तीसरे महायुद्ध और सर्वनाश की आशंका आज कितनी प्रबल हो रही है। परतु यही तो आशा की परीक्षा का समय भी है। जब रात अत्यत घनी होती है ठीक तभी उषा अत्यत निकट होती है। इस समय स्थिति अधकारमय है, मानव का दम घुट रहा है, परतु ठीक यही स्थिति नई आशा निकटवर्ती उषा की भी तो याद दिला सकती है। और यदि यह हो तो हमारा भाव और ही हो जायगा।

हमारा मन-प्राण-शरीर का व्यक्तित्व तथा यह मन-प्राण-शरीर-रूपी जगत् खडमय है। यह सारी सत्ता द्वद्वात्मक है और इस समय द्वद विकट रूप मे उग्र हो रहे हैं। परंतु सत्ता अपने आप में तो एकत्वमय है और अत मे वही निर्णायक भी है। क्या हमे उस एकत्वमय सत्ता को स्मरण करके उसका यत्र बनकर उसका आह्वान यहा नही करना चाहिए? तथा क्या इससे वहा के एकत्व भाव का प्रभाव यहा कुछ बढ़ेगा नहीं और ऐसा होने से यहा के द्वद्वो पर कुछ दबाव नही पडेगा! द्वद्वात्मक जगत मे द्वद्वो की शैली का पुरुषार्थ भी करना चाहिए तथा आध्यात्मिक पुरुषार्थ भी। आतक के दबाव मे आ जाना तो स्थिति को और बिगाडना होगा। और आध्यात्मिक पुरुषार्थ से व्यक्ति तो जरूर आतक से मुक्त रहेगा।

वर्तमान समय की इस स्थिति के सदर्भ मे, यशपालजी के जन्मदिन पर, श्रीअरविंद और माताजी के जीवन-दर्शन का प्रधान भाव सक्षेप मे, सकेतात्मक रूप में, प्रस्तुत करने की इच्छा होती है। यह निम्न प्रकार है

मानव-यात्रा
(व्यष्टि में तथा समष्टि में)

अचेतनता से चेतनता की ओर
स्थूल से सूक्ष्म की ओर
शरीर से आत्म की ओर
खड-भाव से अखंड-भाव की ओर
नानात्व से एकत्व की ओर
राग-द्वेष से प्रेम की ओर

अहभाव से भगवद्-भाव की ओर
असमर्थता से शक्तिमत्ता की ओर।

मानव सत्ता का मौलिक स्वरूप
अहंभाव "मैं औरो से तथा बाकी सत्ता से अलग हू, विशेष हू, महत्वपूर्ण हू।"

परिणाम
भय, चिंता, संकीर्णता, असमर्थता, सघर्ष, अशाति।

मूल कारण
अचेतनता, महानता, वास्तविक अपने स्वरूप की तथा वास्तविक जागतिक स्वरूप की, अर्थात आत्मा और परमात्मा की।

मानव तथा पशु
पशु से मनुष्य अधिक चेतन है। मनुष्य का अह-स्वरूप पशु से अधिक प्रकाशवान तथा शक्तिशाली है।

फिर भी
मानव मे अन्तर्द्वन्द्व है, वह खण्डमय है। उसमे चिंता है, दु ख है, सकीर्णता है, असमर्थता है, अशांति है।

उपाय
चेतन भाव मे विकास, अखड भाव की प्राप्ति, व्यापक प्रेम-भाव की उपलब्धि।

साधन
वैश्य प्रकृति मे भागवत चेतना की अतिमानसिक शक्ति का अवतरण अर्थात उच्चतर चेतना के विकास की सभावना का प्रादुर्भाव तथा व्यक्तियो मे साधना द्वारा अह तथा अचेतनता का आत्यतिक उन्मूलन। ऐसे व्यक्तियो के समूहो (परिवारो, आश्रमों, नगरो) का जन्म। धर्म, सस्कृति, कला तथा अध्यात्म-विद्या मे नयी प्रेरणा, उनका नया अतिमानसिक स्वरूप और प्रभाव।

अन्तिम उपलब्धि
देव समाज का विस्तार
श्रीअरविंद के महाकाव्य 'सावित्री' के शब्दो मे वर्तमान स्थिति का पथप्रदर्शन यह है

"जब अधकार घना होकर पार्थिव जीवन का गला घोटने लगेगा तथा जब मानव का स्थूल मन ही उसका एकमात्र पथ-प्रदर्शक होगा, तब कोई चोर जैसे दबे पाव रात मे छिपकर घर मे घुस आएगा, एक अद्भुत वाणी प्रकट होने लगेगी और आत्मा उसका सहर्ष अनुसरण करेगी, एक शक्ति मन के आन्तर-कक्ष में घुस जायगी, एक अद्भुत आकर्षण तथा माधुर्य जीवन के बद किवाडो को खोल देगा, सौंदर्य प्रतिरोधी जगत् पर हावी हो जायगा, सत्य का प्रकाश अचानक प्रकृति को अधिकृत कर लेगा, भगवान् चोरी-चोरी आकर हृदय को

आनंद-विभोर कर देंगे और पृथ्वी एकदम ही दिव्य बन जायगी।"

इसी प्रसंग का माताजी का एक अनुभव है। उसके कुछ अंश ये हैं

"अब जब मैं जीवन की सब वस्तुओं को, लोगो को और इस सारे जगत् को देखती हू, वह बिलकुल वैसा ही दिखाई देता है जैसा कि वह उस चेतना (प्रकाशमयी भागवत सत्ता) से दिखाई देता है—बहुत ही क्षुद्र निस्सार, तुच्छ, नीरस और निर्जीव !.. ओह ! यह सबकुछ, सारे-का-सारा, वैसा ही है, जैसा कि यह उस चेतना से दिखाई देता है।

"जब तुम दूर से इस सब की ओर देखते हो तो यह थोड़ा प्रभावशाली प्रतीत हो सकता है, किंतु (ब्यौरे मे) प्रत्येक क्षण का, प्रत्येक घटे का, वस्तुत प्रत्येक सेकिंड का यह सब कुछ उसी ताने-बाने से बुना है, क्षुद्र, नीरस और निर्जीव, सच्चे जीवन से बिलकुल अछूता—जीवन की एक परछाईं-मात्र भ्रमपूर्ण—नि शक्त, प्रकाश रहित आनद नाम की कोई वस्तु इसमें है तो नहीं।

"जब मैं इसकी ओर देख रही थी, मैंने एकदम बहुत ऊपर, इसके कहीं ऊपर देखा एक ऐसे विशाल, मधुर प्रकाश के अतुल वैभव को देखा, जो अद्भुत सुदर था, सच्चे प्रेम से सच्ची अनुकपा से, ऊष्मा से ओत-प्रोत .शाश्वत माधुर्य, प्रकाश, सौंदर्य का सुख और सतोष तथा शाश्वत धैर्य था वह जिसमे न भूतकाल का बधन था न वस्तुओ की अशक्तता और निर्जीवता थी—अत्यन्त ही आश्चर्यजनक। यह उसका सस्कार था।

"वर्षाऋतु इस स्थिति को बहुत ही अच्छी तरह अभिव्यक्त करती है, प्रकाशमयी मधुरता का सतत अवतरण इस चौतरफे अंधकार मे।"

सारांश मे पथ-प्रदर्शन यह है कि घोर अधकार की स्थिति मे भी हम शाश्वत प्रकाश को भूलें नही। यही भाई यशपाल के जन्मदिन पर, उनके सम्मान मे प्रेमपूर्वक अर्पित है। वे फलें-फूलें तथा अपने निहित प्रकाश मे प्रकाशमान हो।

भारतीय संस्कृति : स्वरूप चिन्तन

(डा) बलदेव उपाध्याय

□□

भारतीय संस्कृति आर्यों की प्रतिभा तथा बुद्धि वैभव का विलास है। हमारी सस्कृति तथा सभ्यता के विकास मे नाना जातियों के सहयोग की घटना स्वीकार करते हुए भी हमे कहना पड़ता है कि आर्य जाति ने ही इस पुण्य-

भूमि भारतभूमि की सस्कृति का सर्वस्व सम्पादन किया है। इस सप्तसिंधु देश को ही आर्यों के मूल स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इसे आजकल के पश्चिमी इतिहास-वेत्ता भी स्वीकार करने लगे हैं कि यहीं से आर्यों ने नाना देशों मे प्रयाण कर उन्हे भी सभ्य, सुशिक्षित तथा सगठित बनाया है। महर्षि मनु की स्मृति आर्य विद्वानों की महती देन है और केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से आर्यों के कार्यकलाप का परिचय किसी भी व्यक्ति को अनायास ही मिल सकता है। मनु के वचनो की तुलना भेषज से की गई है। मनु का यह सारगर्भित कथन— एतद् देश-प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन स्व स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा। केवल कल्पना का विजृम्भण नही है अपितु ठोस ऐतिहासिक तथ्य का निदर्शन है।

आर्यों ने मानव जीवन के व्यावहारिक तथा पारमार्थिक पक्षो का मञ्जुल समन्वय उपस्थित किया है अपनी सस्कृति मे। आर्यों की दृष्टि मे सच्चा धर्म या सस्कृति वही है जो मानवों के ऐहिक कल्याण तथा पार-लौकिक मोक्ष का साधन उपस्थित करती है—यतोऽभ्युदयनि श्रेयससिद्धि स धर्म —महर्षि कणाद का यह सूत्र आर्यधर्म का सूत्रात्मक सकेत प्रस्तुत करता है। भारतवर्ष मे इहलोक तथा परलोक का गहरा सम्बन्ध है। जो सस्कृति केवल ऐहिक जीवन के भोगसाधन मे, कल्याण मे सलग्न रहती है वह एकागी है। उससे मानव समाज का वास्तविक कल्याण कथमपि सिद्ध नही हो सकता। पाश्चात्य संस्कृति के भौतिकवाद ने इस विश्व मे कितना घोर अमगल, कितना वैषम्य, कितना जन-सहार, कितना उत्पीडन उत्पन्न कर दिया है वह भला किसी अभिज्ञ पुरुष से अपरिचित है? आर्यों ने इस भव्य भारतवर्ष मे त्याग की महिमा का शखनाद फूका। मानव जीवन की भव्यता तथा सफलता की कुजी है त्याग। भोगलिप्सा को बिना सहार किये ससार में आत्यन्तिक शान्ति के साम्राज्य स्थापित नही हो सकता। मदन का ज्ञानाग्नि के द्वारा बिना भस्म किये शिव का शिवत्व आविर्भूत नही हो सकता। मदन है भौतिक भोग-लालसा का प्रतिनिधि और शिव हैं आध्यात्मिक मगल तथा चरम सौख्य शान्ति का प्रतीक। शिव की सार्थकता मदन के दहन मे है। बिना भोग का सहार किये जगत् मे वास्तविक कल्याण का उदय नही हो सकता।

यज्ञ-भावना

इसीलिए आर्य सस्कृति का मूल मन्त्र है यज्ञ की भावना। वैदिक आर्य अग्निकुण्ड मे देवताओ के उद्देश्य से अपने परम प्रियतम पदाथ का हवन करते थे, परन्तु यज्ञ केवल हवि प्रक्षेपमात्र नही है। इसकी भावना विश्व की परम शान्ति और सौख्य की सपादिका है। इसका उद्देश्य गहरा है। विश्व मे मानवो तथा देवो के बीच परस्पर कल्याण के साधन एकमात्र उपाय है यही यज्ञ। मनुष्य अपने लिए ही नही जीता है, वह जीता है समाज के लिए। व्यक्ति तथा समाज का नितान्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। आर्यसस्कृति समाज की उपेक्षा कर व्यक्ति के कल्याण का प्रासाद खडा नही करती। वह व्यक्ति तथा समाज दोनो के कल्याण पर आग्रह दिखलाती है। अत सामाजिक तथा वैयक्तिक उभय प्रकार की उन्नति के निमित्त आर्यों ने यज्ञ की संस्था का निर्माण किया है। गीता के अनुसार जो प्राणी यज्ञचक्र का अनुवर्तन नही करता, वह कथमपि इस जीवन मे सौख्य तथा साफल्य नही प्राप्त कर सकता। उपकार की, विशेष मानव कल्याण की वेदी पर क्षुद्र वैयक्तिक सौख्य के हवन की, एक दूसरे के परस्पर कल्याण की भावना का पोषण करने वाली यज्ञ-सस्था का निर्माण कर आर्यों ने न केवल भारतवर्ष मे, प्रत्युत समग्र ससार के सामने एक आदर्श उपस्थित किया है। इसके तिरस्कार का फल है विलय तथा इसके सत्कार का परिणाम है उदय।

साम्यवाद

आर्यों ने भारतवर्ष में दार्शनिक आधार पर सच्चे साम्यवाद की प्रतिष्ठा की है। साम्यवाद के पश्चिमी आदर्श को अच्छी निगाह से देखने वाले उसके विकृत रूप से, वैषम्य से, और अनर्थ से भलीभांति परिचित नहीं हैं। सच्चे साम्यवाद का उपदेशक तथा प्रचारक यदि कोई देश है, तो वह भारतवर्ष ही है। प्रत्येक प्राणी मे उसी परम पिता की प्रतिभा झलकती है। वही अन्तर्यामी बनकर भीतर से उसे नियमन किया करता है। अत दूसरे को किया गया उपकार परोपकार न होकर प्रकारान्तर से स्वोपकार ही है। साम्यवाद की यही सच्ची नींव है मानवमात्र मे एकत्व की— अद्वैत की—भावना। भागवत ने बड़े ही कड़े, परन्तु सच्चे शब्दों मे इस साम्यवाद के व्यावहारिक रूप को दिखलाया है—

> यावत् भ्रियेत जठर तावत् स्वत्व ही देहिनाम्।
> अधिक योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ (श्रीमद्भागवत ७।८)

हमारा अपनी कमाई में भी उतना ही अधिकार है, स्वत्व है, अपनापन है जितने से हमारा पेट भरता है। उससे अधिक पर जो अपना अधिकार जमाता है या मानता है वह चोर है और इसलिए वह दण्ड का भागी है। यह है समुन्नत साम्यवाद की भावना जिसे भारतवर्ष ने विश्व के सामने रखा, परन्तु नाना प्रकार के वैषम्य तथा वैमत्य के कारण विश्व ने कभी सच्चे हृदय से इसे स्वीकार नही किया और इसका घोर परिणाम है विश्व-व्यापक युद्ध तथा तज्जन्य भीषण जनसहार तथा भयानक धन-सहार। आर्य विद्वानो ने सर्वदा ही साम्य, समता, समानता की ओर ही दृष्टिपात किया और वैषम्य, भेद, भिन्नता की सदा ही निन्दा की है।

वर्ण-व्यवस्था

इन सिद्धान्तो को व्यवहार मे लाने के लिए आर्यों ने कतिपय सस्थाओ की व्यवस्था की है और इनमे सबसे श्रेष्ठ सस्था का नाम है वर्णाश्रम-सस्था। वर्ण का सम्बन्ध है सामाजिक व्यवस्था से और आश्रम का सम्बन्ध है वैयक्तिक व्यवस्था से। पहला यदि समाज का सतुलन चाहता है, तो दूसरा चाहता है व्यक्ति का क्रमिक विकास। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—ये ही चार वर्ण हैं जिनके भीतर किसी भी समाज का विभाजन किया जा सकता है और समाज के सवर्धन तथा उपबृहण के निमित्त इन चारो की उन्नति समभावेन आवश्यक होती है। मनु की वर्णव्यवस्था का प्रभाव पश्चिमी तत्व ज्ञानी प्लेटो पर भी पडा है। उन्होने अपने 'रिपब्लिक' नामक मान्य ग्रथ मे समाज का विभाजन इन वर्णों या श्रेणियों में किया है। तब हमे पारसियो की वर्णव्यवस्था को भारतीय आदर्श पर व्यवस्थित देखकर आश्चर्य करने का कोई प्रश्न नही रह जाता, क्योंकि दोनो ही आर्य धर्म की विभिन्न शाखा के अनुयायी हैं। पारसी समाज चार भागो में विभक्त है—(१) ऐर्यमना —अर्यमन या ब्राह्मण। (२) वेरेजिम (वीर्यमान) = क्षत्रिय, (३) खेतुश (क्षेत्री) = खेत का मालिक = वैश्य, (४) गोवास्त्र (गोवेशी) = गायों के बीच रहने वाला व्यक्ति अर्थात् सेवक वर्ग = शूद्र। आश्रमो की व्यवस्था ने मानव जीवन को सुदृढ़, विकसित तथा सभ्य बनाया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—ये चारों आश्रम मानवो को प्रवृत्ति मार्ग की शिक्षा देकर निवृत्ति मार्ग मे प्रतिष्ठित करते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम मानवो को शिक्षित बनाकर प्रवृत्ति के योग्य बनाता है। गृहस्थाश्रम उन्हें प्रवृत्ति में पूर्णता प्रदान करता है। इसी प्रकार वानप्रस्थ मे निवृत्ति का आरम्भ है तथा सन्यास मे उस निवृत्ति की पूर्णता है। वर्ण तथा आश्रम के परस्पर सहयोग ने भारतीय संस्कृति को विश्वजनीन बनाया तथा समाज के पारस्परिक संघर्ष का सहार कर मैत्री तथा परस्पर सहयोग की भावना को सुदृढ़ बनाया। विदेशी विधर्मी आक्रमणकारियो के भयंकर आक्रमणों के उपरान्त भी हमारे समाज के सगठन तथा अविच्छिन्नता का रहस्य

हमारी वैज्ञानिक समाज-व्यवस्था के भीतर छिपा हुआ है।

पूर्व सगठन का दार्शनिक आधार है कर्म का सिद्धान्त जो नितान्त वैज्ञानिक तथ्य के ऊपर आश्रित है। विज्ञान बतलाता है कि कोई भी भौतिक जगत् मे सम्पद्यमान कर्म अपनी प्रतिक्रिया के बिना नहीं रहता। क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्यभाविनी होती है। अत प्रत्येक कर्म का फल अवश्यमेव होता है चाहे वह वर्तमान-काल मे ही हो जाय या कालान्तर मे हो। मानवो का यह जीवन किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं है, प्रत्युत सुचिन्तित तथा पूर्व-सम्पादित कर्मों का ही परिणत फल है। शोभन कर्मों का फल शोभन होता है तथा बुरे कर्मों का फल बुरा होता है। इसी से हम अपने भाग्य के विधाता स्वयं हैं। महर्षि व्यासदेव ने इस कर्म-व्यवस्था की समता गाय के बछडे के साथ दी है। जिस प्रकार हजारो गौवों के बीच बछड़ा अपनी मां को खोज निकालता है उसी प्रकार पूर्व जन्म का किया गया कर्म अपने कर्ता का अनुगमन करता है।

जन्मान्तरवाद

कर्मवाद का यह तथ्य जन्मान्तर सिद्धान्त के ऊपर आश्रित है। हिन्दू शास्त्रों का दृढ़ विश्वास है—और इसके पोषक सैकडो उदाहरण भी वर्तमान हैं—कि वर्तमान जीवन ही हमारा प्रथम अथवा अन्तिम जीवन नही है। यह वर्तमान जीवन जीवन-मरण की अनादि तथा अनन्त शृखला मे एक साधारण कडी है। मनुष्य नाना योनियो मे जन्म लेता है और एक जन्म के अन्त हो जाने पर फिर कर्मानुसार नवीन जन्म तथा नवीन योनि प्राप्त करता है। यह शृखला अनादिकाल से चली आ रही है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इस जन्मान्तरवाद का गीता मे तथा व्यासजी ने श्रीमद्भागवत मे इस तथ्य का स्पष्टत निर्देशन किया है—

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवश।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तन त्यजते वपु॥ —भागवत १०।१।३९

स्वतन्त्रता

आर्य सस्कृति स्वतन्त्रता की भावना से ओत-प्रोत है। वह बतलाती है कि यह जीव ही शिव है। मनुष्य के भीतर ईश्वर का अविनाशी चैतन्य झलकता है। अविद्या के कारण मनुष्य अपने को सर्वत्र बन्धन मे पाता है। ज्ञान के द्वारा इस बन्धन की शृखला को छिन्न-भिन्न कर देने पर वह अपने पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है। अत आत्मा की उपलब्धि अथवा 'स्व' की अनुभूति मानव जीवन का चरम लक्ष्य है और यह वर्तमान जीवन उसी अनुभूति की साधना का एक आवश्यक साधन है। इस अनुभूति की साधना के त्रिविध मार्ग हैं—ज्ञान, कर्म तथा भक्ति। हिन्दू सस्कृति मे प्रत्येक विचार वाले या प्रवृत्ति वाले साधक के विकास का स्थान है। वह अन्य धर्मों के समान एक ही डडे से सब भेडो के पीटने का तथा एक ही मार्ग पर चलने का प्रयास कभी नही करती। आर्यों ने मानवो की प्रवृत्ति के अनुसार भी मार्गों की व्यवस्था की है। मननशील साधक ज्ञानयोग के द्वारा, रजोगुण की प्रधानता वाला व्यक्ति कर्मयोग से तथा भावुक साधक भक्तियोग की सहायता से स्वानुभूति कर जीवन का परम लाभ इसी जन्म मे, इसी भूतल पर ही प्राप्त कर सकता है। ऐसा पुरुष कहलाता है जीवन्मुक्त अथवा गीता के शब्दो में वह होता है 'स्थित-प्रज्ञ'। यह तो हुआ आध्यात्मिक पक्ष।

व्यवहार पक्ष मे भी आर्यों ने स्वतन्त्रता तथा स्वदेश का मूल्य भलीभांति आंका था। पूजा के अवसर पर पहनने योग्य वस्त्रो के वर्णन-प्रसग मे आर्यशास्त्र की उक्ति है कि वह न तो सिला हुआ हो, न किसी दोष से दुष्ट हो और वह विदेश का बना न होकर स्वदेश का बना होना चाहिए—

न स्यूतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषत ।
मूषिकोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद् विचक्षण ॥

आर्यों के अनुसार यह हमारा स्वदेश स्वर्ग से भी बढ़कर है। स्वर्ग है भोगभूमि परन्तु भारत है कर्मभूमि। स्वर्ग मे उत्पन्न जीव केवल प्राक्तन कर्मों का शोभन फल भोगता है अवश्य, परन्तु उसे अपनी उन्नति करने का अधिकार नहीं होता। आत्म—विकास की पूर्णता की साधिका यह भारतभूमि ही है। इसीलिए स्वर्ग के निवासी देवता लोग भी भारतवर्ष की भूयसी प्रशसा किया करते हैं और यहां जन्म लेने के लिए तरसते रहते हैं।

आध्यात्मिकता

किसी भी जाति या राष्ट्र की सभ्यता का मापक उसका आध्यात्मिक चिन्तन होता है। जिस जाति के आध्यात्मिक विचार तथा समीक्षण जितने ही अधिक तथा गहरे होते हैं, वह जाति सस्कृति तथा सभ्यता के इतिहास मे उतना ही अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सभ्यता का प्रथम प्रभात किस देश के गगन में सबसे पहले उदित हुआ ? इस प्रश्न की मीमासा करते समय पश्चिमी विद्वान् मिस्र देश का नाम बडे आदर तथा गौरव के साथ लेते हैं परन्तु मिस्र के दार्शनिक तथा साहित्यिक चिन्तनो पर विचार करने से हमे मौनावलम्बन ही करना पड़ता है। भौतिकवाद का अनुरागी राष्ट्र अध्यात्मचिन्तन का प्रेमी कभी नही हो सकता। मिस्र की सभ्यता भौतिकता मे सनी थी, भौतिक सुख की प्राप्ति ही उस देश के राजाओ का परम लक्ष्य थी। फलत रम्य तथा सुन्दर प्रासादों का रचयिता शिल्पी ही मिस्रीसभ्यता मे परम सम्मान का भाजन था, मनोरम कविता लिखकर हृदय की कली खिलाने वाले कवि की न वहा पूछ थी और न उन्नत तत्वज्ञान के अभ्यासी दार्शनिक की वहां प्रतिष्ठा थी। फलत अध्यात्म-चिन्तन के अभाव मे मिस्र देश की सभ्यता को हम सम्मान की दृष्टि से नही देख सकते। 'कवि' को आदर देने वाली जाति ही सभ्यता की कसौटी पर खरी उतरी है। पश्चिमी जगत् मे प्राचीन यूनानी तथा पूर्वी संसार मे चीनी तथा भारतीय जाति ही 'कवि' का गौरव समझती है और उसे सम्मान प्रदान करने मे सदा अग्रसर रहती है। इसीलिए इन जातियो का प्रभाव सभ्यता के प्रसार मे बहुत ही अधिक रहा है।

भारत की सभ्यता मे 'कवि' का आदर सदा होता रहा है और आज भी समादर का यह भाव लेशमात्र भी कम नही हुआ है। प्राचीन यूनान मे भी अध्यात्मविद्या के अनुरागी व्यक्तियो की कमी न थी, दार्शनिक भी कम न थे, परन्तु समग्र यूरोप के अध्यात्म-शिक्षण के विषय मे गुरु-स्थानीय यूनान की काली करतूतें देखकर हम भारतीयो के हृदय मे विस्मय तथा विषाद की भावना उठ खडी होती है। यूनानी लोगो ने ही मिलकर अपने देश के सबसे बडे दार्शनिक सुकरात को विष देकर मार डाला था और दूसरे बडे दार्शनिक अफलातून (प्लेटो) को उनके ही एक भक्त शिष्य ने सरे बाजार मे गुलाम बनाकर बेच डाला था। पश्चिमी जगत् की मूर्धन्य जाति का यह दुराचरण, दार्शनिकों की इतनी अवहेलना, किसे अचम्भे मे नहीं डालती ? परन्तु भारत तथा भारतीय सभ्यता से अनुप्राणित समग्र पूर्वी देशो मे दार्शनिकों का बोलबाला था, समाज के वे अग्रणी थे, राष्ट्र के वे निर्माता थे, समाज को परम कल्याण की ओर ले जाने वाले महनीय नेता थे। वेदशास्त्र का ज्ञाता सेना के संचालन तथा राज्य पर शासन करने के योग्य है। दण्डविधान तथा सब लोकों का आधिपत्य करने का अधिकारी वही है। प्लेटो भी मनु के इस कथन से प्रभावित हुए थे। उन्होंने आदर्श राष्ट्र के सचालन का भार दार्शनिक के ऊपर ही रखा था, यद्यपि 'रिपब्लिक' मे इन्होंने बडी युक्तियो से इस मत का समर्थन किया, पर वे हवाई महल ही बनाते रहे। उनका स्वप्न कभी कार्यरूप में परिणत न हो सका, वह मृगमरीचिका से बढ़कर सिद्ध न हो सका। परन्तु भारत मे राज्य का सूत्र अध्यात्मवेत्ता व्यक्तियों के हाथो में रहा करता था। राजर्षि

जनक की ओर पाठको का ध्यान आकृष्ट कर देना ही पर्याप्त होगा। इस प्रकार इस पावन भारत मे दार्शनिकों का कोरा आदर न होता था, बल्कि देश के शासन की बागडोर भी उन्हीं के हाथ में रहती थी।

प्राचीनता

हमारी सस्कृति से सामान्य परिचय रखने वाले व्यक्ति को भी इसकी पहली विशेषता प्रतीत होगी—इसकी प्राचीनता। यह कितनी प्राचीन है? इसका यथार्थ निरूपण इतिहास की विशेष छानबीन करने पर आज भी नही हो पाया। परन्तु प्राचीन स्थानों की खुदाई करने से प्राचीन काल की सभ्यता हमारे सामने अभी आई है। सिन्धु नदी की घाटी मे 'मोहन-जोदडो' तथा पजाब के 'हडप्पा' नामक स्थानोंपर खुदाई करने से अनेक अद्भुत चमत्कारी वस्तुए उपलब्ध हुई हैं। इस सभ्यता का नाम है 'सिन्धु-सभ्यता'। यह सभ्यता भी इराक तथा मिस्र की सभ्यता से प्राचीनतर है, इसके प्रमाण मिले हैं। इराक मे सभ्यता के आरम्भ करने वाली अत्यन्त प्राचीन (विक्रम पूर्व ३५०० वर्ष) सभ्य जाति का नाम है—सुमेर जाति। इतिहास बतलाता है कि ये लोग उस देश के निवासी न थे, बल्कि परदेशी थे—बाहर से आने वाले थे। सुमेर लोगों की सभ्यता भारतीय सभ्यता से इतनी मिलती है कि उन्हे पश्चिमी इतिहासज्ञ भारत निवासी बतलाते हैं—विशेषत दक्षिण भारत का। इराक की सभ्यना सिन्धु-सभ्यता से प्रभावित है। वेशभूषा, रहने के प्रकार, दोनो मे समान है। इतना ही नहीं रूसी वैज्ञानिक वाविलोव (Vavilow) का कहना है कि ससार मे गेहू की उत्पत्ति सर्वप्रथम पजाब के समीप हिन्दूकुश तथा हिमालय के बीच वाले भाग मे हुई और यही से इराक, यूरोप तथा अमेरिका सब जगह फैला। उन देशो मे जिस गेहू की खेती होती है उसका मूल स्थान पजाब है। पाश्चात्य जगत् मे घोडे से चलने वाला रथ मिलता है, परन्तु इसकी प्रथम कल्पना भारत मे ही हुई। इस प्रकार इराक तथा मिस्र की सभ्यता पर सिन्धु सभ्यता का विपुल प्रभाव पडा है। यह सभ्यता नि सदेह वैदिक है और इसके उदय का काल विक्रम पूर्व चार हजार वर्ष है। ससार के इतिहास मे इतनी प्राचीन सभ्यता दूसरी उपलब्ध ही नही हुई। अत प्राचीनता भारतीय सभ्यता की प्रथम विशिष्टता है।

मृत्युजयता

आर्य सस्कृति अमर है। अमरता उसकी दूसरी विशिष्टता है। वह प्राचीन होकर भी नवीन है—नितान्त प्राचीनता से मण्डित होने पर भी उसकी धमनियो मे रक्त का प्रसार है, नूतन स्फूर्ति का वह आगार है। वैदिक ऋषियो ने ऊषादेवी की मनोरम स्तुति के प्रसग मे उसे 'पुराणी युवति' शब्दो से वर्णित किया है। अन्य प्राचीन सस्कृति की भाति वह अपने जीवन की अन्तिम श्वास नही ले रही है, प्रत्युत उसमे भरपूर जीवन शक्ति है जो उसे आज भी जीवित, जाग्रत तथा प्रभावशाली बनाए हुए है। इसे हम आर्यसस्कृति की 'मृत्युजयता कह सकते हैं। उसे मृत्युमुख मे समेटने के अनेक अवसर आए, विकराल विपत्तिया आई, विदेशियो के प्रबल आक्रमण हुए, परन्तु तिस पर भी वह अदम्य उत्साह से खडी रही और आज भी वह उसी प्रकार से हृष्ट-पुष्ट बनी हुई है।

आर्य-राजनीति की विशेषता रही है—क्षात्रबल को ब्राह्म तेज का मञ्जल सहयोग। राष्ट्र के रक्षण का भार क्षत्रिय राजन्य पर निर्भर करता था पर उसे धर्म के शोभन राजपथ पर सचालित करने का उत्तर-दायित्व ब्राह्मण के ऊपर रहता था। इसलिए अमात्य का उन्नत पद ब्राह्मणो के लिए ही था। क्षत्रिय की थी भौतिक शक्ति और ब्राह्मण की होती थी आध्यात्मिक शक्ति। क्षत्रिय नरपति प्रभुशक्ति का प्रतिनिधि है, तो ब्राह्मण सचिव मन्त्रशक्ति का प्रतीक है। कालिदास ने इस ब्रह्म-क्षत्र योग को 'पवनाग्नि समागम' से उपमा दी है। इस मणिकाचन योग ने ही आर्यसस्कृति को मृत्युजय बनाया है। यूनान के विश्वविजयी नरेश सिकन्दर ने

विक्रम से पूर्व चतुर्थ शतक में भारत पर जो आक्रमण किया उसे ब्राह्मण कौटिल्य के बुद्धि-वैभव से सचालित राजन्य चन्द्रगुप्त ने अपने क्षात्र-पराक्रम से सर्वथा विफल बना दिया। विक्रम के समय मे भी ऐसी ही दशा थी। पराक्रमी शकों के भयंकर आक्रमण के कारण भारतीय भूमि कम्पायमान हो रही थी। उस समय विक्रमादित्य ने अपने ब्राह्मण कवि कालिदास के उपदेश से स्फूर्ति तथा उत्साह ग्रहण कर इन शको की धज्जियां उड़ा दी — उन्हें भारत-वसुन्धरा से उखाड़कर राह-राह का भिखारी बना दिया। मध्ययुग मे औरंगजेब की कूटनीति को समर्थ रामदास स्वामी की आध्यात्मिकता मन्त्रणा से छत्रपति शिवाजी ने विफल कर डाला। उनके नेतृत्व मे मराठों मे विशाल शक्ति का संचार हुआ और उन्होंने आर्यसस्कृति का सरक्षण यावनी सस्कृति के आक्रमण से इतनी सुन्दरता से सम्पन्न किया कि आज भी यह सस्कृति अपने प्रभाव से मण्डित है, जगत् में अपना प्रभाव विस्तार कर रही है।

समन्वय बुद्धि

जिस प्रकार अद्वैत-तत्व भारतीय दर्शन की बहुमूल्य सम्पत्ति है, उसी प्रकार वह भारतीय सस्कृति का भी महान् बीज है। भारतीय धर्म में समन्वय की ओर दृष्टि डालिए। उपनिषदो के अनुसार मानवजीवन के लिए दो मार्ग हैं—श्रेय तथा प्रेय, कल्याण का मार्ग तथा सासारिक सुख का मार्ग, कण्टक का मार्ग तथा पुष्प का मार्ग, निवृत्ति मार्ग तथा प्रवृत्ति मार्ग। पाश्चात्य देश मे ये दोनों मार्ग भिन्न-भिन्न हैं, इनमे किसी प्रकार का सामजस्य प्रस्तुत नही किया गया, परन्तु भगवद्‌गीता ने इन दोनो मार्गों में मजुल समन्वय प्रस्तुत कर रखा है। 'निष्काम कर्म' के सिद्धान्त मे हम दोनों पन्थों का एकत्व मिलन पाते हैं। गीता कर्म के सन्यास के पक्ष मे नही है, वह कमफल के सन्यास के पक्ष मे है। निवृत्ति कर्म-फल से होनी चाहिए, पर कर्म मे हमारी प्रवृत्ति होनी चाहिए। मनुष्य-जीवन का मूलस्रोत है—भगवान्। वही से यह जीव अपने कर्मों के अनुसार यात्रा करने के लिए प्रस्तुत हुआ है और उसका विराम भी भगवान् में है। ब्रह्मचक्र के दो अश हैं—प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग, भोग का भाग तथा त्याग का भाग। इस चक्र के प्रथमार्द्ध में जीव आदान (ग्रहण) से समृद्ध होता है। और उत्तरार्ध मे प्रदान (त्याग) से समृद्ध होता है। प्रवृत्ति मार्ग मे भगवान् के वैमुख्य रहता है और निवृत्ति मार्ग मे भगवान् के प्रति साम्मुख्य रहता है। इन दोनो का सामरस्य आर्य-सस्कृति मे है। पुरुषार्थ चार हैं— अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। वैदिक सस्कृति इन चारों के समन्वय मे ही मानवजीवन की सफलता मानती है, आशिक सेवन मे नही।

आर्य सस्कृति नितान्त उदार है, उदात्त है। अपनी उदारता के बल पर ही वह अब तक जीवित रही है और आगे भी जीवित रहेगी। आज दानवता के भीषण प्रहार के कारण मानवता छिन्न-भिन्न हो रही है। मनुष्य मनुष्य का शत्रु बना हुआ है। यदि ससार में मानवता की रक्षा हमे अभीष्ट हो, तो भारतीय सस्कृति ही हमारी पर्याप्त सहायता करेगी। इसी लक्ष्य की सूचना भारतीय सस्कृति के पुजारी अमर कवि रवीन्द्रनाथ ने बड़े ही सुन्दर शब्दो मे दी है—

हे परम परिपूर्ण प्रभातेर लागि,
हे भारत! सर्वदुःखे रह तुमि जागि।
सरल निर्मल चित्त, सकल बन्धने
आत्मारे स्वाधीन राखि, पुष्प ओ चदने।
आपनार अन्तरेर माहात्म्य-मन्दिर
सज्जित सुगन्ध करि, दुःखनम्र शिर
तार पदतले नित्य राखिया नीरवे॥

इस प्रकार भारतवर्ष के इतिहास में आध्यात्मिकता की धारा प्रवाहित करने का श्रेय आर्यों को ही है। इन्होंने वर्णाकार की भित्ति पर मानवसमाज का नियमन एव नियन्त्रण कर हमारे जीवन को पारस्परिक सघर्ष से एव घोर विप्लव से बचाया है। उन्होंने स्वार्थ तथा परमार्थ का मजुल सामजस्य प्रस्तुत कर विश्व के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया है। आजकल पश्चिमी जगत् मे 'वन वर्ल्ड' की कल्पना विश्व के ऐक्य की भावना घर करती जा रही है, परन्तु भारत ने इस मन्त्र का शखनाद सहस्रो वर्ष पूर्व किया था—

अय निज परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार-चरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

विश्वभ्रातृत्व की भावना 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का वर्तमान रूप है। अत भारतीय सस्कृति को विश्व—जनीन, मृत्युजय तथा विश्वव्यापक बनाने का श्रेय इन्हीं आर्यों को दिया जायगा जिन्होंने वेद तथा उपनिषद्, गीता तथा वेदात, रामायण तथा महाभारत का दिव्य आलोक जलाकर इस भूतल के अज्ञान के गाढ तिमिर पटल को दूर किया है। आर्य लोग सदा से परस्पर मैत्री, परस्पर एकता तथा परस्पर सौहार्द के लिए तत्पर रहते थे। उनकी दृष्टि मे मानव-मानव मे अतर नही था। उनकी उदार दृष्टि विश्व को एक मानती थी। ऋग्वेद की अन्तिम ऋचा इस भाव को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करती है—

समानी व आकूति
समाना हृदयानि व।
समानमस्तु वो मनो
यथा व सुसहासति॥

भारतीय सस्कृति के अवदान

(डा) प्रभाकर माचवे

□□

भारतीय सस्कृति एकांगी नहीं

भारतीय दृष्टि मे सस्कृति की अवधारणा केवल एक आयामी नही है। इजरायल यहूदियों की पावन भूमि है। उनकी सस्कृति स्पष्टत 'होली लैंड' से जुडी है। यहूदी, इस्लामी, ईसाई आदि सेमेटिक (सामी) मतावलबी राष्ट्र की भौगोलिक अवधारणा से अपने धर्म को जोड़े हुए हैं। 'पाक' कुरान भी है, पाकिस्तान 'पवित्र भूमि' है। वह अमुक एक नस्ल, अमुक एक पैगबर और अमुक एक किताब को मानने वाले एकेश्वर पंथियों का राष्ट्र है। वही बात कैथोलिक धर्मानुयायियों की है। वे अपने देश के राजा से अधिक पोप को मानेंगे। उन्हीं के प्रति

उनकी प्रथम निष्ठा होती है। इन धर्म-विचारों को 'एक्सक्लूजिव' (यानी हम ही हैं, अन्य सब 'काफिर', 'हीदन', 'जेंटाइल' हैं, अत- उनका धर्मपरिवर्तन कराना आवश्यक है) कहते हैं। अयातुल्ला खोमैनी साहब ईरान के सबसे बड़े धर्म-पंडित हैं। परंतु उन्हें विरोधियों को मृत्युदंड देने मे कोई हिचक नहीं होती। कट्टरपंथी, तानाशाही निजामों मे ऐसा ही होता है। ईदी अमीन और हिटलर ने भी ऐसा ही किया।

भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि, उपर्युक्त 'अन्य-नहीं' वाली दृष्टि से विपरीत, सब तरह के मतभेदो, मत-विभिन्नताओं, मतामतों का समाहार करने वाली थी, और आज भी है। यहा भारतीय के अंतर्गत मैं हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, पारसी, नास्तिक आदि सभी तरह के भारतीय नागरिको को लेता हू। हर धर्म मे एक छोटा-सा वर्ग रूढ़िग्रस्त और असहिष्णु-कट्टरपंथियो का होता है। परंतु उन अपवादों से सारी धर्मविश्वासी जनता को परिभाषित नहीं किया जा सकता। एक गोड़ से सारे हिंदू उसी मत के हैं, या कुछ हिंदुओं ने आचार्य तुलसी की 'अग्नि-परीक्षा' को लेकर उन्हें तंग किया, इसलिए सब हिंदू जैन विरोधी हैं, या कुछ नए बौद्ध हिंसा से परहेज नही करते इसलिए सब बौद्ध लडाकू होते हैं यह मानना ग़लत है। कुछ सिरफिरे सिख 'अकालिस्तान' या 'खालिस्तान' की मांग करते हैं, इसका अर्थ सभी सिख वह चाहते हैं यह तर्क सही नही है। होता क्या है कि कुछ लोग एकांतिक हो जाते हैं, इससे भारतीय सस्कृति का मूल अनेकांतवादी स्वर खडित नहीं हो जाता।

यदि भारतीय संस्कृति सर्वांगीण और सर्वसंग्राहक नही होती तो आज हमारी भूमि पर काल के परिमाण मे आदिवासी, व्रात्य, कोल-किरात-शाबर सस्कृति के आदर्श जैसे जीवित हैं, वैसे ही एक के बाद एक अनेक लहरों जैसे समूह इसके इतिहास मे अर्थ—यूनानी, बैक्ट्रियन, शक, हूण, पठान, मुगल, तुर्क, मंगोल, पोर्चुगीज, फ्रेंच, बरतानी आदि-आदि और सबने अपने सास्कृतिक सम्मिश्रण के अवशेष यहा छोडे। यूनानियो का प्रभाव गांधार बौद्धकला पर है। मुस्लिम स्थापत्य के गुंबज और मीनारें लोदी-तुग़लक-मुगल इमारतो, क़िलों, मकबरो पर है। पुर्तगालियो ने हमारी बोलचाल की भाषा मे कितने शब्द दिए। यही बात फ्रासीसी, अंग्रेज आदि भू-स्वामियों की है। ताजमहल या मुगल उद्यान, नई दिल्ली की राजधानी की कई इमारतें यह सब इस बात के साक्षी हैं कि हमारी भौतिक तथा ऐहिक जीवन पद्धति पर अनेक प्रभाव, अनेक प्रकार के घात-प्रतिघात, ऋण तथा अनुकरण के चिह्न स्पष्ट अंकित हैं।

भारतीय सस्कृति एक मिली-जुली, सह अस्तित्व वाली सस्कृति है, जिसका आधार जिसे गांधीजी 'सर्वधर्म समभाव' कहते थे, वही है।

भारतीय सस्कृति एकभाषी नहीं

वैदिक सस्कृत काल मे प्राकृतजन कौन-सी भाषाएं बोलते थे पता नहीं। ब्राह्मी लिपि से पूर्व भी मोहन-जोदडो की कोई लिपि थी (सिंधु घाटी सभ्यता की लिपि को अभी तक पूर्णत· किसी ने नही पढ़ा है)। बाद मे वैदिक सस्कृत से बाणभट्ट तक आते-आते सस्कृत के रूप बदले। दक्षिण भारत की प्राचीनतम दर्शन तमिषु मे आज की तमिष् में कितने परिवर्तन हुए, कितना आदान-प्रदान हुआ, कितने शब्दो का आयात-निर्यात हुआ? यदि यह स्थिति पुरानी भाषाओं की है, तो बाद मे यातायात के साधन अधिक तीव्र होते जाने पर मध्ययुग मे विकसित आधुनिक भारतीय भाषाए, और डिंगल, सधुक्कड़ी, मैथिली, ब्रज, राजस्थानी, अवधी, उर्दू, खड़ी बोली आदि उपभाषाओ और शैलियो से समृद्ध, मूलत शौरसेनी प्राकृत और अब हिंदी कही जाने वाली भाषा के स्थित्यतरो का क्या कहना? जैसे गंगोत्री से निकलने वाली गगा आकर हुगली तक पहुचते-पहुचते अनेक उपनदियो और धाराओं से अभिवृद्धि पाती हैं, अनेक ऊंची-नीची उपत्यकाओ और पथरीले-रेतीले मार्गों से गुजरती हुई अपना नैरंतर्य बनाए रखती है, भाषा की भी वही बात है।

उत्तर भारत की सस्कृतोत्पन्न भाषाए एक-दूसरे से अप्रभावित नही रही हैं। बल्कि अनेक कवि और लेखक द्विभाषी, त्रिभाषी, अनेकभाषी रहे हैं। सिद्ध और नाथो की भाषा मिश्रित थी। नामदेव के पद मराठी, हिंदी, पजाबी मे मिलते हैं। कई हिंदीतर भाषियों ने हिंदी को समृद्ध किया। केरल के स्वातितिरुनाल ने हिंदी पद लिखे, तमिलनाडु के सुब्रह्मण्य भारती ने एट्रेस की परीक्षा हिंदी मे दी। सब प्रातो से अनेक बहुभाषी लेखक और चिन्तक भारतीय साहित्य मे हुए। तुलसीदास ने अवधी और ब्रज-भाषा दोनो मे रचना की। प्रेमचद ने उर्दू और हिंदी मे लिखा। काकासाहेब कालेलकर गुजराती, मराठी, हिंदी, कोकणी में लिखते थे। द रा बेंद्रे कन्नड और मराठी मे। अन्नदाशंकर राय ने ओडिया और बांग्ला मे कविताए लिखी। कितने-कितने उदाहरण दें। ऐसे सैकडो-हजारो द्विभाषी लोग हैं जो साहित्य को समृद्ध कर रहे है, आज भी। और क्या आश्चर्य है कि दूसरी ओर सकीर्ण मत वाले बार-बार 'मेरे प्रदेश मे केवल मेरी भाषा', 'शेष सब परदेशी हैं' यह अलगाववादी नारे दे रहे हैं। उनका राजनैतिक सूद वसूल कर रहे हैं। इस पागलपन को क्या कहे?

भारतीय सस्कृति केवल रूढ़ि-पालक नहीं

भारतीय सस्कृति केवल इतिहास-जीवी, 'पुराना सब कुछ सोना' था, इसलिए कोई परिवर्तन हो ही नही ऐसा मानने वाली कभी नही रही। व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय, अतर्राष्ट्रीय सब स्तरो पर भारतीय सस्कृति मे एक साथ अनेकात स्वर उभरे हैं। वेद के कर्मकाड, यज्ञयग के विरोध मे उपनिषदो का अतर्मुख स्वर है, पशु-बलि और धर्म के नाम पर जीवहिंसा के विरोध मे बुद्ध और महावीर आए, जिस समय रक्तपात और रण मे शत्रुनाश ही एकमात्र वीरता माना जाता था उस समय कलिंग-विजय के बाद युद्ध कराने वाले अशोक आए। उतने प्राचीन काल मे न जाना हो तो पहले जिसे विद्रोही और समाज के लिए एक प्रश्नचिह्न माना गया, वही बाद मे समाज का एक अग हो गया। बुद्ध नौवें अवतार हो गए। अभीरवश का, यदुकुल का, कसादि (अपने मामा को ही मारने वाले) सब का मोहन बन गया। मध्य युग मे सत और भक्त कवियों ने रूढ़िवादिता की अधता और सीमित दृष्टि पर कैसे-कैसे व्यग-बाण फेंके? 'अरे इन दोउन राह न पाई', कबीर कहते रहे।

कला का साक्ष्य तो और भी मनोरजक है। स्थापत्य मे केवल सिंधु-सभ्यता के तालाब ही नही रहे, न बौद्ध या जैन शैली के गुफा चित्र और गुफाशिल्प पर उसमे मारासानी, तुर्की, ईरानी आदि कई तरह की शैलिया आकर मिली। शिल्प का सारा इतिहास रूढ़ियो से मुक्त होते रहने का इतिहास है। ऐसा नही होता तो भरहुत मे उल्लास मे दगवादक समाज कहा मे आते? कोणाक और खजुराहो पर तीसरे पुरुषार्थ की इतनी पूर्णकाम अभिव्यजना कैसे होती? चित्रकला मे बाग-अजता के भित्तिचित्रो से लगाकर मुगल-कांगडा-पहाड़ी-राजस्थानी लघुचित्रो तक कितनी वर्णाढ्य और सूक्ष्म रेखाओ का मुखर विश्व है? सगीत मे देखिए। कहा ध्रुपद और कहा खयाल गायकी? कहा रुद्र-वीणा और कहा दिलरुबा? कहां शार्ङ्गधर और कहा घरानों की गायकी के इतिहास? कहा विष्णु दिगबर और कहा रविशकर? भारतीय नृत्य मे भी इस प्रकार की नानात्व एकता की शोध दर्शनीय है भरतनाट्यम् की मुद्राए, और कथकली के अभिनय से कत्थक के चरणविन्यास और मणिपुरी का मद-मथर यूथ-लास्य। भारतीय कला-साधना इस बात का प्रामाणिक साक्ष्य है कि इसमे एक-एक प्रतिभावान कला-मनस्वी ने एक-एक नया अध्याय जोडा। कितने क्षितिज पार किए और कैसा-कैसा 'नवनवो मेषशालिनी प्रतिभा' का निरन्तर टोह का रास्ता अपनाया। कई लीकें छोड़ीं और कई जंगल काटे। कई नए 'मार्ग' निर्मित किए। समुद्र-सन्तरण चाहे शालाओं मे निषिद्ध हो, देश मे ही कितने उत्तर और दक्षिण के बीच, हिंदुस्तानी और कर्नाटक गायकी के बीच सामान्य क्षेत्र बढ़ते गए, सेतु बनते गए। पूर्व और पश्चिम ने कभी भी विरोध, देश के भीतर, नही किया लाला-बाल-पाल एक साथ राष्ट्रीय शंखनाद करते रहे। नव-

जागरण का तूर्य बजाते रहे। यहा बलिपथी एक ओर मातृ-वेदी पर अपने शीश चढ़ाते रहे, दूसरी ओर अहिंसक अवज्ञा के आंदोलन ने विदेशी तानाशाही और फौजीशाही के छक्के छुड़ा दिए।

भारतीय संस्कृति : समन्वय का दर्शन

रामकृष्ण परमहंस ने कहा है कि एक ही नदी या सरोवर तक जाने वाले अनेक मार्ग हैं। एक ही जलाशय से हर आदमी अपने-अपने पात्र के अनुसार 'जीवन' ले जाता है कोई गगरी भर, कोई कलश लेकर, कोई छोटे-से कमण्डलु भर। आरंभ से ही 'अविभक्त विभक्तेषु', 'एक सद् विप्रा बहुधा वदती' यहा का पंथो की अनेकता मे एक ही गन्तव्य का 'यह तो मारग छे शूरानु' रहा। 'राह तू राही भी तू, मंजिल भी तू' यह इकबाल की उक्ति शंकराचार्य के बिंदु और सिंधु की एकात्मकता से किस तरह भिन्न है? अनेक विरोधों का समाहार भारतीय संस्कृति मे मिलता है। एक साथ इंद्र, वरुण, सूर्य की पूजा के सूक्त हैं, तो अमूर्त 'ऋत' और 'श्रेयस्' की उपासना है। एक ओर स्थितिप्रिय विष्णु हैं, तो ताडव-प्रेमी शिव। यहां वनवास की महत्ता रामायण मे, महाभारत मे, सिद्धार्थ और महावीर के सर्वसंगपरित्याग और महाभिनिष्क्रमण मे सर्वत्र है। पर उसी के साथ गृहस्थाश्रम की महत्ता भी तिरुक्कुरल के 'कायत्तुप्पाल' से वात्स्यायन के प्रसिद्ध सूत्रग्रंथ से लगाकर सभी नीतिग्रंथो मे विशद है। ऐहिक और पारलौकिक दोनों छोरो के संगम के उत्तम उदाहरण भारतीय पुराणेतिहास, महाकाव्य और बोधकथाओ मे, नाट्य और सुभाषित-भांडारो मे मिलते हैं।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस पुरुषार्थ-चतुष्टय में किसी को भी कम या ज्यादा नही माना गया। हर धर्म-पथ मे गाधीजी कहते थे, उसका अहसास बराबर बना रहा कि मनुष्य मात्र अपूर्ण है, तो उसके बनाए धर्म भी अपूर्ण हैं। इसी विचार से हमारे यहा शैव और वैष्णव, शैवो मे भी दक्षिण भारत मे वडकलै, तगकलै, वैष्णवो मे शंकर, रामानुज, वल्लभ, माध्व के अनेक अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत और द्वैतरूप, बौद्धो मे थेरवाद, महायान और बाद मे योगाचार, माध्यमिक, विज्ञानवादी, सौतान्त्रिक, जैनियों मे श्वेतांबर-दिगबर, मंदिर मार्गी, तेरापथी आदि, मुसलमानो मे शिया, सुन्नी, सूफी, कादियानी, अहमदिया, खोजा, बोहरा वगैरह, सिखो मे निरकारी, अकाली, सहजधारी—कितने-कितने ओपोपोपपथ!

जब सनातन धर्म मे आधुनिकता लाने का विचार उठा तो ब्रह्मसमाज, आदिसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज, राधास्वामी, प्रजापति ब्रह्मकुमारी आदि अनेक मार्ग चल पडे। गाधीवाद का भी वही हाल हुआ। डा राममनोहर लोहिया ने 'मठी, सरकारी, कुजात, गांधीवाद' पुस्तिका ही लिख डाली। 'सर्वोदयी' नाम के थे—उनमे भी विनोबावादी, जयप्रकाशवादी हो ही गए। समाजवादियो, साम्यवादियो के तो उप-मतो की बात ही न कीजिए। साम्यवादियों के पाच खेमे तो आज अतर्राष्ट्रीय रूप से विद्यमान हैं रूसी, चीनी, युगोस्लावी, क्यूबावाले, और 'युरो-कम्युनिज्म' वाले। फिर त्रासकीवादी और हैं तारिक अलो का तार अलग ही झनझनाता है। पूरा आर्केस्ट्रा है। सुनते हैं नक्सलपथियो के छब्बीस नेता, छब्बीस आम्नाय। सत्तर करोड भारतवासी, सत्तर करोड देवता!

भारतीय संस्कृति का लक्ष्य : मानवतावाद

कितना ही भेदभाव हो, वेशभूषा, खानपान, बोली-ठाली, रीति-रिवाज, पूजा-अर्चा, नाम-रूप मे—फिर भी सबका एक ही लक्ष्य है कि महाभारतकार ने कहा, वही चडीदास ने कहा—'सबर उपर मानुष सत्य ताहार उपर नेई'। मनुष्य ही सत्य है, वही शिव है, वही सुदर है। वही सत्, चित् और आनंद है। इसी कारण से मनन करने वाला यह 'मनु', श्रुति और स्मृति के सहारे नही जीता, अपना रास्ता 'चल रहा मनुष्य है / यह

महान दृश्य है', से बनाता है। मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा —

मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए जिये !
मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे !

मराठी के नवयुग के निर्माता कवि कृष्णाजी केशवदास ने 'केशवसुत' लिखा—'नरेंच केला हीन किती नर' (मनुष्य ने ही मनुष्य को कितना हीन बना दिया। सर वर्ड्सवर्थ के 'what man has made of man' की ही प्रतिगूज है। ताजमहल को देखकर सुमित्रानदन पत ने लिखा—

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन।
जब विषण्ण और जीर्ण पडा हो मानव जीवन !

भगवतीचरण वर्मा ने 'भैसागाडी' मे और 'दिनकर' ने 'चाट रहे वे जूठे पत्ते' मे 'नर हो न निराश करो मन को !' दूसरी तरह पेश किया है।

भारतीय सस्कृति की विशेषता यह है कि वह मनुष्य को प्रकृति का, या जीवन्त प्राणवन्त सृष्टि का विजेता या स्वामी बनाकर नही प्रस्तुत करती। मानव जीवन के साथ-साथ गिरि-पर्वत, नद-नदी, वृक्ष-वनस्पति, वन-उपवन, सारे पचमहाभूतो को वह एकाकार बनाकर चलती है। इसलिए उसे अफसोस नही है कि मनुष्य चन्द्रमा तक क्यो नही पहुचा या अतलान्त तक पहुचने या एवरेस्ट पर चढ़ने की दौड मे वह पिछड़ गया। प्रकृति उसकी 'देवि, मा, सहचारि, प्राण' रही। प्रकृति पर 'विजय' पाने का 'पुरुष' अर्थ वह नही करता रहा।

इसी कारण से भारतीय मनीषा मे 'सबै भूमि गोपाल की' या 'मानव मानव सब हैं समान' बार-बार चिल्लाकर कहना नही पडा। सभी धर्मों मे अल्लाह और बदे मे, 'गॉड' और 'सन आफ गॉड' मे सदा अन्तर बना रहा। यहा तो 'जो प्यडे सो ब्रह्माडे'। 'स्व' और 'पर' मे भेद ही कब था ? 'घट घट गोपी, घट घट कान्ह' (दादू) 'फूटा घट, जल जलहि समाया, यह तत कथौ गियानी' (कबीर) इस धारणा के कारण गांधी ने जब अपनी प्रार्थना-पुस्तिका के लिए भजन और कविताए चुनी तो सस्कृत से उर्दू तक 'सर्वधर्म समभाव' बरता। उसमे जापानी 'नम्यो हो रेगेक्यो' भी है और अग्रेजी 'लीड काइडली लाइट' भी है।

अत भारतीय सस्कृति का मूल स्वर 'लोक-मगल' और 'सर्वजनहिताय' का स्वर है। जब 'ईशावास्य-मिद सर्वम् यत्किच जगत्यान् जगत' कह दिया, तो फिर कौन दिशा या ठौर बचा, जिधर पैर करने मे ईश्वर का अपमान हो (या न हो ?) मानव की इसी उपासना के कारण बालरूप भगवान की पूजा बढ़ी—बाल-कृष्ण, बाल सुब्रह्मण्यम्, बाल सरस्वती ! 'बालादपि सुभाषितम् ग्राह्यम'। गाधी और नेहरू को बच्चों से इसीलिए बहुत प्यार था। अब तो दुर्भाग्य यह है कि बच्चो से भी राजनीति खेली जाती है। उन्हे हिंसा के मोहरे बनाया जाता है। रवीद्रनाथ ने बच्चो के लिए 'छडा' लिखे। हमारे किस खड़ी बोली के महाकवि ने बच्चो के लिए भी उतनी तत्परता से लिखा जितना प्रौढ़ो के लिए ? मानों बच्चो के लिए लिखना एक 'सेकड रेट' काम गिन लिया गया।

मानव से पृथक् होने पर सारे कर्म-व्यापार, सारा चिंतन-भाव काष्ठवत्, यत्रवत् हो जाता है। पश्चिम के साहित्य-कला, दर्शन-विज्ञान सब पर विकृति की ऐसी ही काली छाया मंडरा रही है। स्वार्थांध शक्तियां परमाणविक युद्ध के महानाश की ओर ससार को धकेल रही हैं। तीसरी दुनिया शांतिरक्षा की एकमात्र आशा लिये हमारी ओर ताक रही है। भारतीय सस्कृति के इतिहास मे इस परस्पर सहयोग, परस्पर सहिष्णुता का बहुत लबा इतिहास रहा है। 'ॐ शाति शाति शाति' से 'अहिंसा सत्यमस्तेय' तक, जीवदया और करुणा-प्रसार के अनत आख्यान है। वृक्षो से 'चिपको' आंदोलन आज के सुदरलाल कर रहे हैं, अशोक के समय

'वनस्पतियो शांति' मंत्र लेकर अशोक के पुत्र महेंद्र और संघमित्रा श्रीलंका गए थे। यहा मूर्च्छित लक्ष्मण के लिए हनुमान पूरा पर्वत उठा ले आते हैं, और 'तुलसीदास चदन करे, तिलक करे रघुवीर'। इस संस्कृति मे चंदन और तत्सम शांति देने वाले अगुरु और धूप की महत्ता है। यह रक्त, अग्नि और मदिरा का माहात्म्य वर्णित करने वाली शक्ति-पूजक, मरण-केंद्रित सभ्यता नही है।

अंत मे, रवींद्रनाथ ने १९०३ मे लिखा था एक गीत जिसके दो छद यो हैं

कांचन-थाल नाहि आमादेर, अन्न नाहिको जुटे।
या आछे मोदेर एनेछि साजाये नवीन पर्णपुटे
समारोहे आज नाइ प्रयोजन—दीनेर ए पूजा, दीप आयोजन—
चिर दारिद्र्य करिब मोचन चरणेर धुला लुटे।
सुर दुर्लभ तोमार प्रासाद लहब पर्णपुटे।।
दाओ आमोदर अभयमंत्र, अशोकमंत्र तव।
दाओ आमोदर अमृतमंत्र, दाओ गोजीवन्नव।
ये जीवन छिल तव तपोवने, ये जीवन छिल तव राजासने,
मुक्त दीप्त से महाजीवने चित्त भरिया लव।
मृत्युतरण शकाहरण दाओ से मंत्र तव।।

(गद्य-अर्थ)

हे भारत, आज तुम्हारी सभा मे कठीका गान सुनो। तुम्हारे चरणों मे, नए हर्ष से पूजा का दान लाया हू। मोद से देह की शक्ति, मन की भक्ति, धर्म की मति, सारे प्राण लाया हू। मोद से सबसे बड़ा अर्घ्य तुम्हें दान करने के लिए लाया हू।

हम लोगो के पास कांचन-थाल नही है। अन्न नही जुटता। जो हम लोगो के पास है। नए पुर्णपुट मे सजोकर ले आए हैं। आज समारोह या धूमधाम का प्रयोजन नहीं है। यह दीन की पूजा है, वैसा ही उसका आयोजन है। तुम्हारे चरणो की धूलि लूटकर हम चिरदारिद्र्य से मुक्ति पाएगे। तुम्हारा सुर-दुर्लभ प्रासाद हमारी पर्णकुटी मे हम पा लेंगे। (स्मरणीय है मैथिलीशरण गुप्त की पक्ति 'साकेत मे 'मेरी कुटिया मे राज-महल मन भाया')

हे महातापस, तुम राजा नही हो, तुम्हीं प्राणप्रिय हो। भिक्षा-भूषण फैला रहा हू यह तुम्हारा ही उत्तरीय है। दैन्य मे तुम्हारा वह धन है, मौन मे वह गोपन रहता है, तुम्हारा मंत्र अग्निवचन है, वह मुझे दो। पर (देशी) वस्त्रालंकार फेंककर तुम्हारा ही उत्तरीय पहनूगा।

हमे अभयमंत्र दो, अपना अशोकमंत्र दो। अपना अमृतमंत्र दो, नया जीवन दो। जो जीवन तुम्हारे तपोवन में था, जो जीवन तुम्हारे राजासन मे था, वह मुक्तदीप्त महाजीवन मैं चित्त मे भर लेऊ। मृत्युतरण शंकाहरण वही अपना मंत्र दो।

भारतीय ललितकलाओं का आकलन

(प्रो) कृष्णदत्त वाजपेयी

□□

कला या ललितकला के अतर्गत साधारणतया मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य, संगीत, नाट्य और सगीत की गणना की जाती है।

भारतीय परपरा मे चारुत्व तत्व रूप या श्री को कला का प्रमुख अंग माना गया है। जिस वस्तु को देखने-सुनने से हृदय आनद और उल्लास से भर जाये, जिसमे नूतनता और भावप्रवणता हो उसे ही वास्तव मे कला-कृति कहा जा सकता है—"क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैतितदेव रूप रमणीयताया ।" सौंदर्य की यह परिभाषा युक्तिसगत है।

रूप या सौंदर्य का बाह्य पक्ष ही अलम् नही, उसके साथ शील की आवश्यकता के ऊपर भारतीय परपरा मे विशेष बल दिया गया। कालिदास ने इस भावना का सौंदर्य की मूर्त प्रतीक पार्वती के रूप मे व्यक्त किया है। शिवजी कुमारसभव (५,३६) मे पार्वती से इस प्रकार कहते हैं "यदुच्यते पार्वती पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच । तथा हि ते शीलमुदारलोचने तपस्विनामप्युपदेशतां गतम् ।" अर्थात् "हे सुदरि, हमारे यहा मानी हुई यह बात कि सौंदय पापवृत्तियो के लिए नही है, बिल्कुल ठीक है। तुम्हारा यह शील-समन्वित रूप तपस्वियो के लिए भी आदर्श की वस्तु है।"

आध्यात्मिक एकता

भारतीय कलाकारो ने कला के उक्त उद्देश्य को अपनी कृतियो मे चरितार्थ किया। यह भावना प्राय सपूर्ण भारत की प्राचीन कला मे व्याप्त मिलती है। मोहनजोदडो और हडप्पा की कलाकृतियो से लेकर पूर्व मध्यकाल तक की कला-कृतियो मे हमे सौंदर्य के साथ-साथ आध्यात्मिक गरिमा के भी दर्शन होते हैं। भारतीय कला की यह विशिष्टता मिस्र, मेसोपोटामिया, यूनान, रोम आदि की कला मे दुर्लभ है। अगो का सुगठन और बाह्य सौंदय की अधिक-से-अधिक अभिव्यक्ति कई पाश्चात्य कलाओं मे मिलती है, परतु उनमे कला की वह अत-रात्मा नही मिलती जो भारत मे उपलब्ध है। भारतीय देवमूर्तियो के निर्माण मे अगोपागो के सुचारु प्रदर्शन के साथ आध्यात्मिक गाभीर्य का समन्वय मिलता है। भगवान् विष्णु, शिव, बुद्ध या जैन तीर्थंकरो की प्रतिमाए इसका प्रमाण है। इन प्रतिमाओ मे आंगिक सौष्ठव के साथ उनके योगी रूप को भी दिखाया गया है। उनके नेत्र आधे खुले हुए (अर्द्धोन्मीलित) दिखाए जाते है और शरीर से एक दिव्य कांति-सी निकलती हुई दिखाई देती है। आनद और शाति का अद्भुत सयोग इन कलाकृतियो मे देखने को मिलता है।

लोक-जीवन और कला

भारतीय कला की दूसरी मुख्य विशेषता उसका सर्वजनीन रूप है। लोक-जीवन से भारतीय कला को कभी पृथक् नही देखा गया। विभिन्न भारतीय धर्मों और समुदायो से सबधित सहस्रो मूर्तियो का निर्माण इस देश मे ही नही विदेशो मे भी हुआ। परन्तु उन्हें जनजीवन की पहुच के बाहर नहीं बनाया गया। जहां हमारी प्राचीन कला मे पूजा की भावना व्याप्त है वहा जीवन के मनोहर एव कल्याणप्रद रूप की अभिव्यक्ति भी है।

सांची, भरहुत, सारनाथ, बोधगया, मथुरा, अमरावती आदि स्थानों मे जो कलावशेष मिले हैं उनमे लोक-जीवन की मधुर झांकी मिलती है। विविध वर्गों के स्त्री-पुरुषो का, उनके आचार-विचारो, खान-पान, परिधान तथा मनोविनोदो का जीता-जागता चित्रण भारतीय कला मे उपलब्ध है। बौद्धो और जैनो के प्राचीन स्तूपों की वेदिकाओं मे तथा कौशाम्बी, राजघाट, मथुरा, अहिच्छत्रा आदि स्थानों से प्राप्त मिट्टी की मूर्तियो मे जन-जीवन के विविध मनोरजक दृश्य मिलते हैं। इनमे नृत्य-गीत, स्नान, उद्यान-क्रीड़ा, धार्मिक और सामाजिक-उत्सव, प्रसाधन आदि के कितने ही दृश्य उत्कीर्ण हैं। इन कृतियो से प्राचीन भारत की सामाजिक दशा पर बड़ा प्रकाश पड़ा है।

प्रकृति और कला

भारतीय कला की एक अन्य विशेषता प्रकृति के साथ मानव-जीवन का तादात्म्य है। प्राचीन साहित्य की भांति भारतीय कला मे भी प्रकृति को विशिष्ट स्थान दिया गया है। चाहे हम प्राचीन मदिरो या स्तूपो को देखें या पाषाण, मिट्टी और धातु की प्रतिमाओ को अथवा अजता, बाघ आदि स्थानों की चित्रकला को, हम सर्वत्र प्रकृति का बहुमुखी रूप पायेंगे। कलाकारों ने पर्वत, वन, विविध लता-वृक्ष, सरोवर, नदी आदि तथा इन सब मे सानद विचरण करने वाले पशु-पक्षियो एव जतुओ को प्रभावोत्पादक ढग से चित्रित किया है। उदाहरणार्थ अजता के भित्ति-चित्रो मे हम मानव-जीवन के साथ साथ विविध पशुओ और पक्षियो का अकन पाते हैं। कही वे जलाशयो मे क्रीडा कर रहे हैं, कहीं वृक्षो पर चढे फलो का आस्वादन कर रहे है तो कही घने जगल मे निर्भय विचरण कर रहे हैं। सांची, भरहुत, मथुरा, अमरावती, बादामी, तजावुर, हलेबीड आदि की मूर्तियो मे भी इस प्रकार के रोचक दृश्य मिलते हैं।

अलंकरण

कला मे अलकरण की भावना भारतीय कला मे विशेष मिलती है। इसके लिए कमल, कदम्ब, चम्पा, आम्र, कदली आदि पुष्प एव फल, विविध प्रकार की लताए, पशु-पक्षी तथा जल-जतु मुख्य रूप से चुने गए। मध्य-कालीन कला मे अलकरण की मात्रा अधिक मिलती है। खजुराहो, भुवनेश्वर, कोणार्क, एलोरा, एलीफेंटा आदि स्थानो मे तथा दक्षिण के मदुरै, काची, बेलूर आदि के विशाल मदिरो मे सजावट की ओर अधिक ध्यान दिया गया। पूर्वोक्त प्राकृतिक उपकरणो के अतिरिक्त अनेक देवी-देवताओ, यक्ष-यक्षिणियो, नागों, सुपर्णों तथा अप्सराओ को भी अलकरणो के रूप मे चुना गया। उनकी बहुसख्यक प्रतिमाएं उक्त तथा अन्य स्थानो मे मिली हैं।

धार्मिक और लौकिक कथाओ को कला के माध्यम से सुगम बनाने की परिपाटी हमारे कलाकारो ने अपनाई। उन्होंने रामायण, महाभारत तथा पुराणो की कथाओ एव बौद्ध जातकादि कथाओ को अपनी कृतियो द्वारा भारत मे ही नहीं, दक्षिण एशिया तथा मध्य एव पश्चिम एशिया के कुछ भागो मे भी अमर कर दिया। एलोरा का कैलाश मदिर तथा जावा का बोरोबुदूर एव कम्बोडिया का अकोरवाट मदिर इसके ज्वलत उदाहरण हैं।

राष्ट्रीय एकता में भारतीय कला का व्यापक योग रहा है। इस देश मे तथा वृहत्तर भारत मे जिन स्तूपों, विहारों, मंदिरो और मूर्तियों का निर्माण हुआ, उन सब मे प्राय एकता की भावना ओत-प्रोत मिलती है। यद्यपि इन कलाकृतियों का निर्माण अनेक धर्मों और सप्रदायो द्वारा सपन्न हुआ और उनमें उन धर्मों और संप्रदायो की कतिपय विशेषताएं भी दृष्टव्य है, तथापि मूल रूप से उनमे एक ही

विचारधारा व्याप्त मिलती है, जिसे भारतीय आध्यात्मिक सौंदर्य के नाम से अभिहित किया जा सकता है।

ललितकलाओं मे समवाय

भारतीय कला के इतिहास मे यह विशेष रूप से दृष्टव्य है कि यहां साहित्य, वास्तु, मूर्तिकला, चित्रकला, सगीत और नाट्य कलाओ मे परस्पर प्रगाढ़ सबध रहे हैं। ललितकलाओं मे किसी एक के स्वरूप की सम्यक अवधारणा के लिए यह आवश्यक माना जाता था कि अन्य कलाओ की भी यथोचित जानकारी प्राप्त की जाये। जब हम भरत मुनि, वात्स्यायन, कालिदास या बाणभट्ट आदि के ग्रथो को पढ़ते हैं और उनके समयो की कलाओ का अवलोकन करते हैं तो यह बात स्पष्ट होती है कि विभिन्न ललितकलाओ के बीच प्रभूत अन्योन्याश्रय सबध विद्यमान था। यह बात मध्यकाल मे भी जारी रही, जबकि मंदिर, मूर्तिया, चित्रकला, सगीत और नाटक साहित्यिक धारा से समवाय स्थापित करते हुए दिखायी पडते हैं।

नाट्य-सगीत

साहित्यिक अनुश्रुति के आधार पर नाट्य-सगीत का आरभ भारत मे अति प्राचीन काल मे हुआ। बेतवा-नर्मदा-चबल आदि अनेक नदियो की घाटियो मे कुछ प्राक् ऐतिहासिक चित्र मिले हैं जिनमे विविध नृत्य-मुद्राओ मे स्त्री-पुरुषो को दिखाया गया है। अनेक चित्रो मे बशी, ढोल आदि बजाते हुए आदिम जन दिखाये गये हैं।

नाट्य के सबध मे सबसे प्राचीन उल्लेख मध्यप्रदेश के सरगुजा जिले मे अबिकापुर से लगभग ४५ किलो मीटर दक्षिण-पश्चिम स्थित रामगढ नामक स्थान के एक शैलगृह मे मिला है। यह शैलगृह पहाड की चट्टानो को काटकर एक नाट्यशाला के रूप मे बनाया गया था। जून, १९८३ मे इन पक्तियो के लेखक ने इस स्थल तथा आसपास के भूभाग का विस्तृत सर्वेक्षण किया। इस अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है कि महाकवि कालिदास के ग्रथ मेघदूत मे उल्लिखित रामगिरि यही था, जहां से सदेश-वाहक के रूप मे मेघ को दशार्ण, अवति आदि क्षेत्रो से होते हुए अलका नगरी भेजा गया। उक्त नाट्यशाला भरत द्वारा उनके "नाट्यशास्त्र" मे वर्णित नाट्यगृह से बहुत मेल खाती है। नाट्यशाला मे मच, प्रसाधन-कक्ष, तिरस्करिणी (पर्दा) लगाने का स्थान तथा दर्शको के बैठने के लिए नीचे चट्टान काट कर बनायी गयी सीढ़िया उल्लेखनीय हैं। नाट्यशाला की एक दीवार तथा छत पर मौयकालीन ब्राह्मी लिपि मे उत्कीर्ण कई लेख आज भी सुरक्षित हैं। सबसे बडा तथा स्पष्ट लेख प्राकृत मे तीन पक्तियो मे लिखा हैं, जो इस प्रकार है

> शुतनुक नाम देवदसि, ता कमयिथ
> बलनशिय शिरि देवदिनो नाम
> लुपदखो।

लेख मे सुतनुका नामक देवदासी तथा उसके प्रेमी वाराणसी-निवासी देवदत्त के नाम लिखे हैं। देवदत्त को रूपदक्ष (नाट्य कला मे प्रवीण) कहा गया है। इस तथा गुहा के अन्य लेखो से ज्ञात होता है कि उक्त नाट्यशाला में ईसवी पूर्व तीसरी-दूसरी शती मे नाट्यमचन होता था, जिसमे देवदत्त तथा सुतनुका मुख्य रूप से भाग लेते थे। "देवदासी" शब्द का यहा प्राचीनतम अभिलेखीय प्रमाण मिला है।

सगीत के युग-प्रवर्तक भरतमुनि का समय प्रथम तथा तीसरी शती के बीच माना जाता है। इनका "नाट्यशास्त्र" भारतीय सगीत के विविध अगो पर लिखा हुआ एक विस्तृत ग्रथ है। नाट्यशास्त्र के रचनाकाल से लेकर "सगीतरत्नाकर" के रचयिता शार्ङ्गदेव के समय (ई तेरहवी शती का मध्य) तक भारतीय सगीत अपने विविध रूपो मे विकसित और समृद्ध होता गया। प्राय तेरहवी शताब्दी तक हमारे संगीत के

अनेक प्राचीन रूप देखने को मिलते हैं। इसके बाद अन्य भारतीय ललितकलाओं के समान संगीत भी कई देशी तथा विदेशी तत्त्वों से प्रभावित होने लगता है और धीरे-धीरे वह रूप धारण कर लेता है जिसे हम 'आधुनिक संगीत' कहते हैं।

शासकों द्वारा प्रोत्साहन

उपर्युक्त १३०० वर्षों का समय भारतीय इतिहास मे बडे महत्त्व का है। इस काल के आरभ मे ईसा की दो शताब्दियों तक उत्तर भारत मे मध्य एशिया से आई हुई "कुषाण" नामक जाति का राज्य रहा। कुषाण वंश के शासको में विम कैडफाइसिस, कनिष्क तथा हुविष्क प्रतापी शासक हुए। ये साहित्य और कला के बडे प्रेमी थे। इन्होंने पुरुषपुर (पेशावर), तक्षशिला मथुरा आदि स्थानों मे ललितकलाओं को प्रोत्साहन दिया। इन स्थानों से सैकडो कलाकृतियां प्राप्त हुई हैं जो इन शासकों के कला-प्रेम का परिचय देती हैं। दक्षिण भारत मे कुषाणों के समकालीन सातवाहन वश का राज्य था। इस वश के नरेशो में गौतमीपुत्र सातकर्णि, हाल तथा यज्ञश्री सातकर्णि कला के सरक्षक तथा गुणियों के आश्रयदाता थे। चौथी शताब्दी के आरभ से भारत में गुप्त साम्राज्य की स्थापना हुई और वह लगभग ३०० वर्षों तक स्थायी रहा। भारतीय इतिहास मे तीन शताब्दियों का यह काल "स्वर्णयुग" के नाम से प्रख्यात है। इस काल मे देश की राजनीतिक तथा आर्थिक उन्नति के साथ-साथ सामाजिक एव कलात्मक क्षेत्रो मे भी अभूतपूर्व उन्नति हुई। गुप्त सम्राट् साहित्य, मूर्तिकला, वास्तु-कला तथा मुद्राकला के प्रेमी होने के अतिरिक्त सगीत के प्रति बहुत आकृष्ट थे। उन्होंने इस कला के सरक्षण और सवर्धन मे बडा योग दिया। समुद्रगुप्त (३३५-३७५ ई) तथा कुमारगुप्त प्रथम (४१३-४५५ ई) के ऐसे स्वर्ण सिक्के प्राप्त हुए हैं जिनमे वे वीणा बजाते हुए दिखाये गये हैं। चद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३७५-४१३ ई०) भी सगीत के बडे गुणज्ञ थे। महाकवि कालिदास उनके समकालीन थे। गुप्तवश के समकालीन दक्षिण भारत मे वाकाटक, पल्लव तथा कदब वंश थे। कलाओ के सरक्षण तथा उनके विकास की ओर इन राजवशो का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

गुप्त साम्राज्य के अन्त के बाद उत्तर भारत में हर्षवर्धन का शासन (६०६-६४७ ई० तक) रहा। यह सम्राट् साहित्य-सगीत का विशेष प्रेमी था, जिसका प्रमाण उसके द्वारा रचित 'प्रियदर्शिका', 'नागानंद' तथा 'रत्नावली' नामक नाट्य-ग्रथो से मिलता है। विविध कलाओ के उद्भट विद्वान् महाकवि बाण तथा मयूर आदिक विद्वान् हर्ष के ही दरबार में थे। हर्ष के बाद उत्तर भारत मे प्रतीहार चदेल, कलचुरि तथा गाहड्वाल वश का प्रभुत्व रहा। इन वंशों के शासको मे मिहिरभोज, महीपाल, गोविंद चन्द्र तथा जयचन्द्र के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। राजशेखर, धनपाल, श्रीहर्ष आदि विद्वान् इसी काल मे हुए। पूर्व मे पाल, सेन तथा गगवशी शासको ने ललितकलाओ को प्रोत्साहन दिया। मालवा के परमार, गुजरात एव दक्षिण भारत के चालुक्य, पल्लव, राष्ट्रकूट, चोल, होयसल तथा पांड्य वशो ने विविध ललितकलाओ की ओर ध्यान दिया। मालवा के शासक भोज परमार तथा गुजरात नृपति कुमारपाल आदि प्रख्यात कला-सरक्षक हुए। अजता की चित्रकला का अधिकांश रूप वाकाटको तथा वातापी के चालुक्य वशी शासको के काल मे निर्मित हुआ। सगीत के प्रोत्साहनकर्ता के रूप मे दक्षिण के चोल राजाओ का कार्य स्तुत्य है। इनमे राजेन्द्र तथा कुलोतुंग चोल ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उनके समय में चिदम्बरम् आदि के मंदिरो मे नृत्य के विभिन्न भाव, बडी सुदरता के साथ अकित कराये गये। उनसे हमे शास्त्रीय विवरणों के प्रत्यक्ष रूप देखकर उन्हें समझने मे सहायता प्राप्त होती है।

भारतीय संस्कृति और श्रमण परम्परा

(डा) हरीन्द्र भूषण जैन

□□

ब्राह्मण और श्रमण परम्परा

संस्कृति, मानव-व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया है। भारतीय संस्कृति मे हमे दो विभिन्न परम्पराओं के दर्शन होते है—ब्राह्मण-परम्परा और श्रमण-परम्परा। वेद से लेकर आज तक के भारतीय साहित्य मे इन दोनो परम्पराओ के साथ-साथ रहने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने यद्यपि इन दोनो परम्पराओं के सिद्धान्तों की असमानता को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से श्रमण और ब्राह्मण मे ठीक वैसा शाश्वतिक विरोध बताया है, जैसा मार्जार और मूषक मे होता है, तथापि इन दोनो मे श्रम के महत्व को लेकर समानता दिखाई देती है।

ब्राह्मण-परम्परा का मूलाधार आश्रम-व्यवस्था है। आश्रम-व्यवस्था मे श्रम की प्रतिष्ठा का द्योतक शब्द स्वय आश्रम है। आश्रम का अर्थ है जहा पूर्ण श्रम के द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास किया जाय। आश्रम शब्द की व्युत्पत्ति के सबध मे यूरोपीय विद्वान् 'विण्टरनित्स' ने लिखा है, जिस 'श्रम' धातु से 'श्रमण' शब्द बना है उसी से आश्रम शब्द भी निष्पन्न हुआ है। प्रारम्भ में 'आश्रम' शब्द शायद श्रमणो के धार्मिक कृत्य का सूचक था। इसी कारण यह शब्द धार्मिक कृत्य के स्थान का भी सूचक हुआ। 'विष्णुसहस्रनाम' मे 'विष्णु' के वाचक शब्दो मे आश्रम के साथ 'श्रमण' शब्द का प्रयोग, इस सबध मे विशेष ध्यान देने योग्य है। 'आश्रम श्रमण क्षाम सुपर्णो वायुवाहन ।'

श्रमण शब्द की व्युत्पत्ति

तप और खेद (परिश्रम) अर्थवाली 'श्रम्' धातु (श्रमु तपसि खेदे च) 'ल्यु' प्रत्यय होकर श्रमण शब्द बनता है। आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं—'श्राम्यन्तीति श्रमण तपस्यन्तीत्यर्थ' अर्थात् जो तप करता है, वह श्रमण है।

बहुत से विद्वान् श्रमण के अर्थ मे प्राकृत भाषा के 'समण' शब्द को मूल मानते हैं। उनका कहना है कि 'समण' के तीन संस्कृत रूप हैं—श्रमण, शमत और समन। अत श्रम, शम और सम में तीन तत्त्व ही श्रमण-संस्कृति के मूलाधार हैं। श्रमण की व्युत्पत्ति हम कर चुके हैं। शमन शब्द शम् धातु (शमु उपशमे) से निष्पन्न होता है, जिसका अथ है अपनी वृत्तियो को शान्त रखने वाला। समन शब्द 'सम्' उपसर्ग-पूर्वक 'अण्' धातु (अण्-प्राणने) से बनता है, जिसका अर्थ है सभी प्राणियों पर समानता का भाव रखने वाला।

स्थानाङ्गसूत्र (६) मे 'समण' की व्युत्पत्ति 'सु+मन' अर्थात् सुन्दर मन वाला, इस प्रकार की गई है। "सो समणो जइ सुमणो भावेण जइ ण होइ पावमणो," सभवत, इस व्युत्पत्ति मे, 'सुमण' शब्द मे 'उ' का लोप करके 'समण' शब्द निष्पन्न हुआ होगा।

धम्मपद (१६/१०) मे कहा गया है

> यो च समेति पापानि अणु थूलानि सब्बसो।
> समितत्ता हि पापान समणो ति पवुच्चति ॥

अर्थात् जो अणु और स्थूल पापों का पूर्णरूप से शमन करता है, वह पापों का शमन करने के कारण 'समण' है।

श्रमण का व्यक्तित्व

स्थानाङ्गसूत्र (५) मे श्रमण के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली एक गाथा है

"उरग-गिरि-जलण-सागर-नहतल-तरुगणसमो अ जो होई।
भमर-मिय-धरणि-जलरुह्-रवि-पवणसमो अ सो समणो॥"

अर्थात् श्रमण अपनी विभिन्न वृत्तियों के कारण उरग (सर्प) आदि के समान होता है

१ उरगसम—परकृत गृह मे निवास के कारण,
२ गिरिसम—कष्ट सहने में निष्कम्प रहने के कारण,
३ ज्वलन सम—तेजस्वी और तपोमय होने के कारण,
४ सागर सम—गाम्भीर्य गुण, ज्ञानादि रत्नो के आकर तथा अपनी मर्यादा न लांघने के कारण,
५ नभस्तलसम—सर्वत्र निरालम्ब होने के कारण,
६ तरुगणसम—सुख-दु ख मे विकार को प्रदर्शित न करने के कारण,
७ भ्रमरसम—अनियत वृत्ति के कारण,
८ मृगसम—ससार के भय से उद्विग्न होने के कारण,
९ धरणिसम—सब प्रकार के कष्टों को सहन करने के कारण,
१० जलरुहसम—काम-भोग द्वारा उत्पत्ति होने पर भी काम-भोग से निर्लिप्त होने के कारण, जैसे कमल अपने उत्पत्ति साधन पक और जल से निर्लिप्त होता है,
११ रविसम—बिना किसी भेद-भाव के ज्ञान का प्रकाश करने के कारण, तथा
१२ पवनसम—सर्वत्र अविरुद्ध गति से होने के कारण।

भागवत (१२ ३ १९) के अनुसार श्रमण प्राय सन्तुष्ट, करुणा और मैत्री भावना से युक्त, शान्त, दान्त, ततिक्षु, आत्मा मे रमण करने वाले और समदृष्टि होते हैं

"सन्तुष्टा करुणा मैत्रा शान्ता दान्तास्तितिक्षव ।
आत्मारामा समदृश प्रायश श्रमणा जना ॥"

धम्मपद (१९ ९) कहता है कि व्रतहीन तथा झूठ बोलने वाला व्यक्ति केवल सिर मुडा लेने से 'समण' नहीं हो जाता। जो इच्छा और लोभ से घिरा है, वह 'समण' कैसे हो सकता है?—

"न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिक भण।
इच्छालोभसमापन्नो समणो किं भविस्सति॥"

दशवैकालिक (अध्याय १) मे श्रमण की परिभाषा करते हुए लिखा है कि जो त्रस-स्थावर रूप समस्त प्राणियों में समान भाव रखते हुए श्रद्धापूर्वक तप का आचरण करता है वह श्रमण है

"य सम सर्वभूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च।
तपश्चरति श्रद्धात्मा श्रमणोऽसौ परिकीर्तित ॥"

श्रमण के प्रकार

श्वेताम्बर जैन आगमों में श्रमण के पांच प्रकार बताए गए है "निग्गंथ-सक्क-तावस-गेरुय-आजीव-पचहा

समणा"[1], अर्थात्—१ निर्ग्रन्थ, २ शाक्य, ३ तापस, ४ गैरुक और ५ आजीवक। जैन साधु निर्ग्रन्थ, बौद्धसाधु शाक्य, जटाधारी वनवासी साधु तापस, लाल वस्त्रधारी गेरुक और गोशालक के अनुयायी साधु आजीवक कहे जाते हैं।

दिगम्बर सम्प्रदाय मे श्रमण (निर्ग्रन्थ) के पांच भेद किए गए हैं १ पुलाक, २ बकुश, ३ कुशील, ४ निर्ग्रन्थ और ५ स्नातक।[2] जो उत्तर गुणों को उत्तमता से नही पालते और मूलगुणो मे भी पूर्णता को प्राप्त नही हैं वे पुलाक निर्ग्रन्थ हैं। जो व्रतों को पूरी तरह पालते हैं, किन्तु शरीर और उपकरणो को संस्कारित करते रहते हैं, वे बकुश निर्ग्रन्थ हैं। कुशील दो प्रकार के हैं १ प्रतिसेवना कुशील और २ कषाय कुशील। जिनकी परिग्रह से आसक्ति नही घटी है और जो कदाचित् उत्तर गुणो की विराधना कर लेते हैं, वे 'प्रतिसेवनाकुशील' हैं। जो अन्य कषायो पर विजय प्राप्त कर भी सज्वलन कषाय के अधीन हैं वे 'कषाय कुशील' हैं। जिन्होंने रागद्वेष का अभाव कर दिया है और जो अन्तर्मुहूर्त मे केवल ज्ञान को प्राप्त करते हैं वे निर्ग्रन्थ हैं। और जिन्होंने सर्वज्ञता को पा लिया है, वे स्नातक निर्ग्रन्थ हैं।

बौद्ध त्रिपिटक से यह प्रकट है कि बुद्ध के समय मे भारतवर्ष मे श्रमणो के ६३ सम्प्रदाय विद्यमान थे, जिनमे ६ बहुत प्रसिद्ध थे। इन प्रमुख ६ सम्प्रदायों के आचार्य थे पूरण कश्यप, मक्खलि गोशाल, अजितकेश-कम्बल, प्रक्रुध कात्यायन, निगठनाथपुत्र (महावीर) और सञ्जय वेलट्ठिपुत्र। 'दीघनिकाय' के 'सामञ्जफल-सुत्त' मे इन छहो के मतो का प्रतिपादन है।

डा वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है, "प्राचीनकाल मे गोव्रतिक, श्वाव्रतिक, दिग्व्रतिक आदि सैंकडो प्रकार के श्रमणमार्गी आचार्य थे उन्ही मे से एक निर्ग्रन्थ महावीर हुए और दूसरे बुद्ध। औरों की परम्परा लगभग नामशेष हो गई या ऐतिहासिक काल मे विशेष रूप से परिवर्तित हो गई। कपिल या जैगीषव्य श्रमण निवृत्तिमार्गी आदर्शों के मानने वाले थे।"[3]

श्रमण परम्परा

श्रमण परम्परा का उदय कब हुआ, यह कहना अति कठिन है, किन्तु हमे जब से भारतीय सस्कृति की झलक दिखाई देती है, तभी से श्रमण परम्परा के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन उल्लेखो को हम तीन भागों मे विभक्त कर सकते हैं

१ वैदिक २ बौद्ध और ३ जैन

वैदिक—वैदिक साहित्य मे श्रमण परम्परा के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं अनेक बातो मे वैदिक सस्कृति श्रमण परम्परा से प्रभावित प्रतीत होती है। इस प्रसग मे भारतीय सस्कृति के निष्णात विद्वान डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल के ये विचार महत्वपूर्ण हैं, "इन पुराणो से हमारा तात्पर्य यह बतलाना है कि भारतीय-सस्कृति मे निवृत्तिधर्मी श्रमण परम्परा और प्रवृत्ति मार्गी गृहस्थ परम्परा, दोनो बटी हुई रस्सियो की तरह एक साथ विद्यमान रही हैं, और दोनो मे बहुत कुछ आदान-प्रदान भी चलता रहा है। श्रमण परम्परा के कारण ब्राह्मण धर्म मे वानप्रस्थ और सन्यास को प्रश्रय मिला।"[4]

---

१ अभिधान राजेन्द्र 'स' ४११।

२ तत्त्वार्थ सूत्र—९ ४६।

३ प कैलाश चन्द्र शास्त्री, 'जैन साहित्य का इतिहास—पूर्व पीठिका'।
श्री वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी (प्राक्कथन) पृ १२।

४ 'जैन साहित्य का इतिहास—पूर्व पीठिका' वर्णीग्रन्थमाला, वाराणसी, प्राक्कथन, पृ १२, १३।

ऋग्वेद (१० १३५.२) में वातरशना मुनियों को मलधारी सूचित किया गया है

"मुनयो वातरशना: पिशङ्गा वसते मला"

डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार वातरशना का वही अर्थ है जो दिगम्बर का है— वायु जिनकी मेखला है अथवा दिशाएं जिनका वस्त्र है, दोनों शब्द एक ही भाव के सूचक हैं।[1] इस बात का समर्थन हमें भगवज्जिन सेनाचार्य द्वारा विरचित 'जिन सहस्त्र नाम स्तोत्र' से भी प्राप्त होता है, जहां दिग्वासा और वात रशन शब्द एक साथ जिन भगवान् के अभिधान के रूप में प्रयुक्त हुए हैं—

"दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बर.।

निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञान चक्षुरमोमुह ॥ (जिन सहस्रनामस्तो—१०१)

ऋग्वेद के दशम मण्डल के १३५वें सूक्त के कर्ता सात वातरशना मुनि हैं—"जूति-वातजूति-विप्रजूति-वृषाणाक-करिक्रत-एतश-ऋष्यश्रृग एते वातरशना मुनय।[2]

श्रीमद् भागवत में वातरशना श्रमणों को अध्यात्म-विद्याविशारद, ऋषि, शान्त, सन्यासी और अमल कहकर ऊर्ध्वगमन द्वारा उनके ब्रह्मलोक में जाने की बात कही है—

"श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदा" (१२ २ २०)

"वातरशना य ऋषय श्रमणा ऊर्ध्वमन्थित ।

ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ता सन्यासिनीऽमला ॥ (११ ६ ४७)

ऋग्वेद मे एक स्थान पर स्पष्ट रूप से श्रमण शब्द का प्रयोग हुआ है "तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अगृथिता अमृत्यव ।" (ऋग्वेद-१०।९४।११)। यहा सायण ने 'अश्रमण' का अर्थ 'श्रमणवर्जिता' किया है।

बृहदारण्यक मे कहा है "जब श्रमण और अश्रमण एवं तापस और अतापस, पुण्य से युक्त तथा पाप से रहित होता है तभी वह हृदय के शोक को दूर करता है।"

ब्रह्मोपनिषद् मे निर्वाण की व्याख्या के प्रसग में श्रमण का उल्लेख है—"यत्र लोका न लोका श्रमणो न श्रमणस्तापसो न तापस एकमेव तत्पर ब्रह्म विभाति निर्वाणम्।"[3]

"स चास्य कथयामास शबरीं धर्म चारिणीम्।

श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव ॥" (१ १-५६-५७)

शबरी, श्रीराम के निकट उपस्थित होती है। श्रीराम ने शबरी से कुशल पूछने के बहाने श्रमण धर्म की जो व्याख्या की है वह ध्यान देने योग्य है

"तामुवाच ततो राम श्रमणी धर्म चारिणीम् ॥

कच्चिजे निर्जिता विघ्ना कच्चित्ते वर्धते तप ॥

कच्चित्ते नियत कोप आहारश्च तपोधने ॥

कच्चित्ते नियमा प्राप्ता कच्चित्ते मनस सुखम् ॥

कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारु भाषिणी ॥ (वा रा ३ ७४ ७-९)

स्कन्द पुराण मे श्रमण को क्षपणक कहकर उनके महाव्रत तथा 'अहिंसा परमो धर्म' इन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।

---

१ 'जैन साहित्य का इतिहास—पूर्व पीठिका' वर्णीग्रन्थमाला, वाराणसी, प्राक्कथन, पृ १२, १३।

२. वही पृ ११।

३ ब्रह्मोपनिषद्—पृ १५१ 'ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद' निर्णय सागर, चतुर्थ संस्करण।

"ततश्चतुर्थे यामे च प्रात क्षपणकोऽद्भुत।
मुण्डी नग्नो मयूराणां पिच्छधारी महाव्रत ॥
अहिंसा परमो धर्मस्तदग्नि ज्वल्पिते कुत ।
हूयमाने यतो वह्नौ सूक्ष्मजीव वधो महान् ॥ (स्क पुराण, ५१-३५,३६,३७)

बौद्ध—बौद्धकाल मे श्रमण धर्म का इतना प्राबल्य था कि बौद्धधर्म, श्रमण धर्म की एक शाखा के रूप मे स्वीकार कर लिया गया। महात्मा बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति के पूर्व उस श्रमण धर्म का कुछ काल के लिए आश्रय लिया था जिसमे अचेलकता, ब्रह्मचर्य, केश तथा श्मश्रु का लुञ्चन, जलबिन्दु मे भी दया आदि सम्मिलित थे।

धम्मपद त्रिपिटक का एक अग है। उसमे श्रमण धर्म की बहुत सुन्दर व्याख्या की गई है। धम्मपद के अनुसार वह श्रमण है जो चाहे आगम का भाषण कम करे किन्तु तदनुसार धर्म का आचरण करता हो, राग और द्वेष से मुक्त हो, जो शान्त, दान्त, नियम तत्पर, ब्रह्मचारी और सम्पूर्ण प्राणियो के प्रति अहिंसक हो, जो दूसरो को किसी प्रकार की पीडा न पहुचाता हो, जो बाह्य प्रदर्शन मात्र के लिए श्रमणत्व स्वीकार न करता हो और जो समचर्या वाला हो। श्रमण बनने के लिए केवल सिर मुडा लेना पर्याप्त नही है। इसके लिए व्रतों का धारण तथा असत्य भाषण, इच्छाओ और लोभ का त्याग करना आवश्यक है। जो छोटे बडे सभी पापो को शान्त कर देता है, वही पापों का शमन करने के कारण श्रमण कहा गया है

"न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिक भण।
इच्छालो भसमापन्नो समणो कि भविस्सति ॥
यो च समेति पापानि अणु थूलानि सब्बसो।
समितत्ता हि पापान समणोति पवुच्चति ॥ (धम्मपद १९ ९-१०)

जैन—जैनधर्म सर्वतो भावेत श्रमण धर्म है। आचार्य कुन्द-कुन्द ने प्रवचनसार के तृतीया श्वेकार मे श्रमण धर्म का विस्तार के साथ वर्णन किया है। प्रारम्भ मे वे कहते हैं

"पडिवज्जदु सामण्ण जादि इच्छदि दु ख परिमोक्ख।" (प्रव ३ १)

अर्थात् यदि दु ख से सम्पूर्ण मुक्ति चाहते हो तो श्रमण धर्म को धारण करो।

प्रवचनसार के अनुसार श्रमण धर्म के अभिलाषी व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने कुटुम्बीजनों से श्रमण धर्म ग्रहण करने की आज्ञा ले लेनी चाहिए (३ २)। इसके पश्चात् वह गुण, रूप वय से विशिष्ट किसी आचाय के समक्ष उपस्थित होकर प्रणाम कर उनसे निवेदन करे कि—"मुझे श्रमण-पद के लिए स्वीकार कीजिए" (३ ३)। गुरु के द्वारा अगीकृत किया जाकर वह भीतर से ममत्व बुद्धि का त्याग और बाह्य मे दिगम्बर वेश को धारण करे (३ ४)। इसके पश्चात् वह सिर तथा दाढी के बालो को नोचकर हिंसादि पाच पापो से पूर्णत विरत होकर, शरीर के सम्हालने अथवा सजाने की क्रिया से भी रहित होकर श्रमण-पद को धारण करता है (३ ५-६)।

स्थानाग सूत्र मे श्रमण का अर्थ करते हुए लिखा है—"जैसे मुझे दुख प्रिय नही है, उसी प्रकार समस्त जीवो को भी दु ख प्रिय नही है, ऐसा जानकर न तो स्वय किसी जीव को मारता है न किसी अन्य को मारने की प्रेरणा करता है—इसी समत्व की भावना के कारण व्यक्ति श्रमणपद को प्राप्त करता है

"जह मम ण पिय दु ख जाणिअ एमेव सब्बजीवाणं।
ण हणइ ण हणावेइ अ सममणइ तेन सो समणो ॥" (स्था सूत्र १)

श्रमणों की एक बहुत लम्बी परम्परा है जिसका प्रारभ वेदकाल से लेकर अद्यावधि है। यह परम्परा भारतीय-सस्कृति का अभिन्न अग रही है। इस परम्परा से भारतीय सस्कृति ने धर्म के क्षेत्र में अहिंसा और दर्शन के क्षेत्र मे अनेकान्त आदि तत्वों को ग्रहण कर अपने को समृद्ध किया है।

लोक-कल्याण के लिए विनोबा के सिद्धांतों की सार्थकता

सुशीला अग्रवाल

□□

अभी रामनवमी के दिन रामायण का एक संक्षेप (जो बाबा की प्रेरणा से तैयार हुआ था) प्रकाशित हुआ है। यह संक्षेप मैं भेज रही हू। इसके मुख्य पृष्ठ पर मैंने 'सत्य प्रेम करुणा' लिख दिया है। बाबा (विनोबा) का मुख्य संदेश इसमे आ गया है और यही रामायण का सार मैंने समझा है। रामायण को संक्षिप्त रूप में पढने से यह सार अधिक गहरायी से ग्रहण होता है। यह दृष्टि संक्षेप तैयार करने के पीछे है।

सब कै ममता ताग बटोरी

मम पद मनहि बांध बरि डोरी" (पृष्ठ ८२)

भगवान की शरण मे जाने की बात इसमे कही है। सब तरफ से ममता का तागा बटोरने की बात हम सबको लागू होती है। किसी-न-किसी स्वार्थ, लोभ के वश होकर हम अन्तरात्मा के सत्य को छोड देते हैं। विरोधी प्रवाह के बीच सत्य को दृढ़ता से पकड़े रहने की हिम्मत जिसे हो, वह है सत्याग्रही, उसी के प्रकाश मे धर्म की सत्स्थापना समाज मे होती है।

तुलसीदासजी का प्रसिद्ध भजन है

"तज्यो पिता प्रहलाद विभीषण बंधु, भरत महतारी"

प्रहलाद ने गुरु से कह दिया

"मेरी पटिया पै लिख देउ रामनाम

मेरो और पढ़न सों नाही काम।"

क्या आज कोई विद्यार्थी, शिक्षक, व्यापारी, समाज सेवक, सरकारी नौकर, यह निर्भीकता से कह सकता है कि मुझे पाठशाला मे और कुछ नहीं सीखना है केवल रामनाम—सत्य—पर टिके रहना है। यदि किसी के दिल मे रामनाम की लौ लग जाए तो विद्यार्थी नौकरी वाली पढ़ाई कैसे पढ़ेगा, व्यापारी व्यापार कैसे करेगा। अफसर नौकरी कैसे करेगा।

सबकी बात जाने दीजिए, अपनी बात लें। समाज मे जो हवा बहती है, अपना घर भी उससे अछूता बचता नही। हम सब दोष जानते हुए भी अपने बच्चो को नौकरी के लिए आवश्यक शिक्षा देते हैं, पैसे के आधार से सुख-आराम का स्वार्थी जीवन जीना ही सिखाते हैं। स्वय भी पैसा अधिक से अधिक कमा कर परिवार का पोषण करते हैं। स्वार्थ और भोगवृत्ति छोड़ कर श्रमाधारित, त्याग-परायण जीवन हम कितना अपना सकते हैं। जितना अपना सकेंगे उतना हमारा जीवन ही बोलेगा, हमारे जीवन का सात्विक आनन्द फैलेगा, दोष-शुद्धि स्वय होगी।

बापू तो बता ही गए हैं कि अहिंसा की शक्ति सत्याचरण मे है। हममे जितना भय होगा उतना कम सत्य बोलेंगे। पैसे-परिवार के आधार से जहां हम सुरक्षा खोजते हैं, वहा परस्पर संबधो मे दूरी, भय, असत्याचरण, स्वाभाविक परिणाम है। भय का निवारण, आनद की, समाधान की, शांति की भक्ति-भावना से ही संभव है। 'भक्ति' यानी क्या करने का है, वह दिशा भी बाबा ने बतायी है—"भक्ति के मानी हैं अपना अहंकार छोड़ कर विराट् में लीन हो जाना। मनुष्य जितने अश में समाज से, सृष्टि से, स्रष्टा से अलग रहेगा,

उतने ही अंश मे वह दुःख का भागी रहेगा। जब वह समाज मे, सृष्टि में और ईश्वर में लीन होगा, तब वह अनंत आनद का भागी होगा।"

रामायण मे सब अलग-अलग पात्रो के द्वारा भक्तिमय जीवन जीने की दृष्टि दी है। विभीषण के रूप मे आज के जामतिक सदर्भ मे उपयोगी सत्याग्रही जीवन का चित्र ही खीचा है। विभीषण ने बधु को छोडा, सत्य को नही छोडा, सत्यस्वरूप ईश्वर की शरण मे गया। निर्भयता और शांति की लब्धि सत्य के आधार से ही हो सकती है।

प्रेम का आदर्श राम और भरत के मिलन मे दरसाया है:

परम प्रेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित अहमिति बिसराई।।

जहा अपनी स्वतत्र इच्छा नही, मन नही, वही तो प्रेम है। वनवासी भीलों के हृदय की सरलता मे,

"कामहि केवल पेम पिआरा। जानि लेउ सो जाननिहारा"

भोली अनपढ़ स्त्री शबरी के बेरो मे, केवट के बालवत अटपटे वचनो मे, सीता के हृदय मे, सर्वत्र प्रेम के चित्रो से ही रामायण गुथी हुई है। स्वार्थ नही, लोभ नहीं, केवल त्याग ही त्याग। ऐसे जीवन मे से तेज प्रकट होता है हृदय-परिवर्तन की शक्ति प्रकट होती है। हनुमान की जैसी भक्ति हो तो शक्ति स्वयमेव प्रकट होगी। हम केवल भक्ति करें, प्रेम करें।

"मैं सेवक सचराचर। रूप स्वामि भगवत।"

यह जीवन-दृष्टि रामायण से मिलती है। गांधी-विनोबा इस मार्ग पर चल कर दिशा बता गए हैं। अब चलना हमारा काम है।

करुणा तो सबको आत्म-रूप दे देती है, अपने से भिन्न ससार मे कुछ बचता नही। रामायण मे सीता करुणा का काव्य है—

"नाम पाहरू दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जत्रित, जायें प्राण केहि बाट।"

वह जगदंबिका है, जगज्जननी है। उसका जीवन स्वय के लिए है ही नहीं, जगत् के लिए है।

जगत् के कल्याणार्थ उसका जीवन अग्नि परीक्षा ही है। जीवन भर यातना-ही-यातना मिलती हैं और उन यातनाओ मे से गुजरते हुए परिशुद्ध सुवर्ण रूप, उनका जगज्जननी स्वरूप, अधिकाधिक निखरता आता है। वानर-रीछ सबकी माता बन गई हैं। रावण की कैद से मुक्त होने के बाद सीता को पालकी पर लाने लगते हैं तो वानर-रीछ को मां का दर्शन मिलने मे कठिनाई हो रही है। राम कहते हैं —

"सीतहि सखा पयादें आन,
देखहु कपि जननी की नाई।"

परिशुद्ध होते-होते सीता व्यापक तत्व राम मे समा जाती हैं, अग्निदेव को समर्पित हो जाती हैं।

अपने अतर मे हम सीता मां की करुणा विकसित करें, जैसे गांधीजी ने की, विनोबाजी ने की—सब की मां बन गए। सबको कपडा मिले, वैसे साधन की खोज की। चरखा हमारा अहिंसा का शस्त्र है। इसे छोड कर हम कैसे समाज मे अहिंसा-धर्म स्थापित देख सकेंगे।

सबको खाना मिले—श्रम साधन जमीन प्राप्त कराने के लिए बाबा ने क्या-क्या तपस्या की। बारह-चौदह साल की पदयात्रा। इससे पूर्व आश्रम मे कांचनमुक्ति, ऋषि को खेती करते हुए स्वयं उनकी कुदाल को भरत-राम भेंट की यह मूर्ति मिली, जो ब्रह्म विद्यामंदिर में हमारी सबकी भावना का मुख्य केन्द्र बनी है।

इसमें सूचित 'मैं भी' की भावना के डोरे मे हम सबका मन पिरो कर हरिचरणों में बांध दें—यही एक प्रार्थना हृदय में स्पंदित होती रहती है।

भूदान के जरिये मानव से गोरूप मे प्राणी-सृष्टि, खेती के जरिये वनस्पति-सृष्टि, समस्त सृष्टि, से उपासना कृति द्वारा एकरूप होते-होते, सत्य प्रेम-करुणा के साक्षात्कार के साथ बाबा ने देह का आवरण छोड़ दिया। उनका अंतिम संदेश था - संपूर्ण मानवता के लिए अहिंसा की दिशा मे कदम बढ़ाने के लिए 'गोहत्या बंदी।' श्री अच्युत काका के साथ इस कार्य में समर्पित सेवको की टोली को देवनार सत्याग्रह के लिए विदा देते समय बाबा का संदेश था—यह सत्याग्रह तीव्र किया जाय, सत्य-प्रेम-करुणा की मर्यादा। सत्यप्रेम करुणा के सिद्धांतो के अलावा बाबा ने कोई मर्यादा नहीं रखी है। अहिंसा धर्म मे विश्वास रखने वाले हम सबके लिए यह खुली चुनौती है।

रावण-रूप अहंकार सिर दबोचे ही रहता है। 'राम'—'राम' पुकारने के सिवा अपना कुछ वश नहीं चलता है। तुलसीदासजी की सी नम्रता 'पापियों मे शिरोमणि' अनुभव करना, यह भगवान के दरबार मे प्रवेश पाने का एकमात्र मार्ग दीख रहा है। अपने को रज-कण अनुभव करने की छटपटाहट होती रहती है। अहंकार रहते यह अनुभव कैसे आएगा ? केवल यह प्रार्थना मात्र आर्त स्वर से पुकारती रहती हू—

गिरा अर्थ जल बीचि सम।
कहियत भिन्न न भिन्न॥
बंदउं सीता राम पद।
जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

भारत का एक विश्वव्यापी प्राचीन खेल : छक्का-चपेटा

कृष्णानंद गुप्त

□□

वर्षा ऋतु मे, विशेषकर श्रावण में बुन्देलखण्ड की बालिकाएं छक्का-चपेटा या संक्षेप मे 'चपेटा' नामक एक खेल खेलती हैं, जो लाख या मिट्टी के बने चपेटों से खेला जाता है। ये करीब पौन इंच के छह-पहले (क्यूब) लाल, पीले हरे रंगे हुए होते हैं बाजार मे मिल जाते हैं अथवा घर पर ही मिट्टी के बना लिये जाते हैं। दो या दो से अधिक लड़कियां एक साथ खेल मे भाग ले सकती हैं। यदि उनकी संख्या पूरी यानी चार, छह या आठ हुई तो आपस मे 'गुइयां' बन जाती हैं। नही तो सब अपना स्वतंत्र खेल खेलती हैं। खेलने के लिए अधिकतर नौ चपेटे लिये जाते हैं। किन्तु पांच या सात से भी खेलते हैं।

खेल नाना प्रकार से खेला जाता है। जो लडकी खेल की सभी विधियों को सफलतापूर्वक पूरा कर लेती है, वह जीती हुई मानी जाती है।

खेल की सबसे पहली और सीधी विधि यह है कि एक चपेटे को लेकर ऊपर उछालते हैं और फिर जमीन पर पड़े चपेटो मे से एक या एक से अधिक चपेटो को उठाकर उछालते हुए चपेटे को झेलते हैं। इस प्रकार जमीन पर के सब चपेटे उठाते हैं।

दूसरी विधि मे पहले एक, फिर दो, फिर तीन, इस प्रकार क्रम से सब चपेटो को उछालकर उन्हें उल्टे करतल पर लेते हैं। यदि कोई चपेटा नीचे गिर गया तो चपेटे दूसरी लडकी के हाथ में चले जाते और पहली लडकी अपनी 'घाई' (पारी) खो बैठती है।

अलग-अलग विधियो के अलग-अलग नाम हैं और वे बडे विचित्र हैं, जैसे—बरी तोडना, मक्खी बिडारना, सुगरिया बेडना, गल्ल फुल्ला, मुह मूदा इत्यादि।

यह सक्षेप मे चपेटो के खेल का विवरण है। देखने मे वह बहुत साधारण है। किन्तु उसका इतिहास, उसके जीवन की कहानी, बहुत ही रोचक और विस्मय से भरी हुई है। यह एक प्राचीन खेल है। हमारे देश मे विभिन्न नामो से यह सर्वत्र खेला जाता है। कही तो, इसे चपेटो से, कही ककडो से, कही इमली के बीजों से खेला जाता है। महाराष्ट्र मे इसे सागर-गोटी नामक किसी एक पुष्पलता के बीजो से खेलते हैं। इसलिए इस खेल का नाम ही वहा 'सागर गोटी' है। मालवा मे इसे पांचे और ब्रज मे 'गुट्टी' और कही-कही 'चपेटा' भी कहते हैं। मेरठ और उसके आगे हरियाणा और पजाब मे यह पजगुट्टी या पकगुट्टडी के नाम से जाना जाता है। बगाल मे इसे 'पचगुट्टी' कहते हैं। वहा के लोक विज्ञान-शास्त्री श्री शकर सेन ने अपनी पुस्तक 'आमि बागलार मुख देखि याछि' मे एक स्थान पर (पृष्ठ २५६) इसका बडा रोचक वर्णन उपस्थित किया है। बुन्देलखण्ड मे यह खेल लडकियो तक ही सीमित है, लडके इसे नही खेलते। लडकियां भी इसे श्रावण मे ही खेलती हैं। किन्तु अन्य कई स्थानो मे यह खेल बारहो मास खेला जाता है, और लडके-लडकिया दोनो ही उसे चाव से खेलते हैं। हमने अपने एक पहाडी मित्र से जब इस खेल का जिक्र किया तो बाल्यकाल की अनेक मधुर स्मृतिया उनके हृदय मे कुलबुला उठी। उत्फुल्लित होकर बोले, "हम तो बचपन मे इसे बहुत खेले हैं और आज भी उसे खेलने को जी चाहता है।" पहाडी प्रदेश मे—नैनीताल, अल्मोडा, कुमायू आदि के जिलो मे—इसे 'दाणी' कहते हैं और वहा यह मुलायम पत्थर को घिसकर बनाई गई छह-पहली गोटो से खेला जाता है।

दक्षिण के विभिन्न स्थानों मे भी यह खेल विभिन्न रूपों और विविध प्रकार के उपकरणों को लेकर खूब खेला जाता है। खेलने की विधि मे अन्तर हो सकता है। किन्तु मूल रूप एक है। उदाहरण के लिए तमिल प्रदेश मे लडकिया ढेर सारे इमली के चिये या घुघची अपने सामने रख लेती हैं। फिर उनको मुट्ठी मे भरकर ऊपर उछालती और उल्टे करतल पर झेलने का प्रयास करती हैं। इस प्रकार जितने बीज हाथ मे आते हैं, उन्हे अलग रखकर शेष बीजों को पहले की तरह ही एक-एक करके समाप्त किया जाता है। एक-दूसरे सज्जन ने हमे बताया कि तमिल मे जो भाषा खास मद्रास और उसके दक्षिण मे प्रचलित है, वहा इस खेल को 'कल्लिगा' कहते हैं। वहां यह लोक-विश्वास भी प्रचलित है कि जो लडकी इसे नही खेलती अथवा इसे खेलना नहीं जानती वह नरकगामिनी बनती है।

तलुगु मे चपेटा के इस खेल को 'कच्च कायालु' और मलयालम मे 'कल्लकली' कहते हैं।

वात्स्यायन (ई तीसरी शताब्दी) के 'कामसूत्र' मे 'षट्पाषाण' के नाम से इस खेल का उल्लेख मिलता है। इसका मतलब यह हुआ कि आज से कम-स-कम डेढ़ हजार वर्ष पूर्व यह खेल हमारे देश मे खेला जाता था और उसे छह गोटो से खेलते थे, जैसा कि उसके नाम से प्रकट होता है। ये गोटें शायद चिकने मुलायम पत्थर को घिसकर बनाई जाती थी।

संसार के पुरातत्ववेत्ता 'नक्ल बोन्स' के अंग्रेजी नाम से इस खेल से बहुत अच्छी तरह परिचित हैं। आज से लगभग पांच सहस्र वर्ष पूर्व काबुल (बेबीलोनिया) मे यह चपेटों का—अथवा कहिए नक्ल बोन्स का खेल खूब प्रचलित था। उत्तरी सीरिया के कारशेमिश नामक स्थान की खुदाई में ऐसे प्रस्तर फलक मिले हैं, जिनमे नक्ल बोन्स के खेल के दृश्य अंकित हैं। श्री जे ए हैमर्टन के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ दी वर्ल्ड' की प्रथम जिल्द मे (पृ ५८१) इस प्रकार के एक प्रस्तर फलक की छवि देखने को मिलती है। उसमे एक ओर तो दो तरुण राजपुरुष नक्ल बोन्स खेल रहे हैं और दूसरी ओर कोई दो जने लट्टू (या भौंरा) घुमाने मे व्यस्त हैं। नक्ल बोन्स के साथ ही लट्टू के खेल के चित्र से ज्ञात होता है कि हमारे कुछ बहु-प्रचलित और लोकप्रिय खेलो का जन्म सभ्यताओं के उदय होने के बहुत पूर्व ही हो चुका होगा। /

प्राचीन ग्रीस मे यह खेल 'पेन्टालिथा' के नाम से प्रसिद्ध था। वहां इसे शायद केवल पाच ही गोटो से खेलने रहे होंगे। जैसा कि उसके पच-सख्यावाची नाम 'पेन्टालीथा' (यानी पच प्रस्तर) से स्पष्ट है। ये गोटें वहां विशेषकर भेड या बकरी के घुटनो के जोड से प्राप्त हड्डी के टुकडों से बनती थी और नक्ल बोन्स (नक्ल =घुटना, बोन्स=अस्थिखड) कहलाती थी। उनके आधार पर इस खेल का नाम भी 'गेम आफ नक्ल बोन्स' यानी नक्ल बोन्स का खेल पड गया, जो अब ससार भर मे प्रसिद्ध है। प्राचीन ग्रीस के विभिन्न स्थानों के उत्खनन मे 'नक्ल बोन्स' खेलने की हड्डी की ये गोटे प्रचुर मात्रा मे मिली हैं। दीवारो पर बने और प्रस्तर फलको पर उकेरे हुए ऐसे चित्र भी मिले हैं, जिनमे न केवल साधारण जन बल्कि ग्रीक देवी-देवता भी नक्ल बोन्स खेलते दिखाये गए हैं। मेधावी और सफल छात्रो को नक्ल बोन्स इनाम मे दिए जाते थे और वे देवताओ को भी चढ़ाये जाते थे। इन सब बातों से प्रकट होता है कि नक्ल बोन्स का यह खेल प्राचीन ग्रीस मे बहुत लोकप्रिय था। ग्रीक अभिधानकार पोलक्स ने जो कि ईसा की दूसरी शताब्दी मे हुआ, वहा इसे विशेष रूप से स्त्रियो का ही खेल बताया है और उसने खेलने की भी जो विधि दी है, वह मूल रूप मे ठीक वैसी ही है, जैसी कि आज बुन्देलखण्ड मे प्रचलित है।

ईराक मे यह खेल आज भी खूब लोकप्रिय बताया जाता है। इगलैंड मे इसे नक्ल बोन्स डिब्स, या फाईव स्टोन्स (पचगुट्टी) के नाम से वर्तमान मे भी खूब खेलते हैं। हमारे सामने सन् १८१६ की छपी 'बच्चो के खेल' (बायज गेम्स) नामक अंग्रेजी की एक पुस्तक है। उसमे नक्ल बोन्स के खेल का विस्तार से विवरण दिया गया है। आश्चर्य की बात है कि वहा खेल की विभिन्न विधियो के जो नाम दिये गए हैं, वे करीब-करीब वैसे ही हैं, जो हमे बुन्देलखड मे चपेटो के खेल के मिलते हैं।

प्रश्न उठता है कि अतीत के किस युग मे कब कहा इसका जन्म हुआ और किस प्रकार यह विश्वव्यापी बना?

प्लेटो और हेरोडोटस मे दोनो ही लेखक इस खेल को अपने देश मे बाहर से आया हुआ बताते हैं। प्लेटो के अनुसार मिश्र के देवता थ्यूस ने इस खेल को जन्म दिया और हेरोडोटस लीडिया-वासियों को उसके आविष्कार का श्रेय देता है। ऐसी दशा मे ग्रीक लोगो के सम्पर्क से यह खेल हमारे यहां आया होगा, इसका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। विद्वानो का मत है कि ईसा से दो सहस्र वर्ष पूर्व सिंधु सभ्यता का बेबीलोनिया के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संबध रहा। अत मूल रूप मे यह भारतीय खेल है, जो सिंधु-सभ्यता के सम्पर्क से भू-मध्य सागर के निकटवर्ती देशो में पहुचा और विकसित हुआ।

मोहनजोदड़ो की खुदाई में पुरातत्ववेत्ताओ को नक्ल बोन्स के खेल के कोई चिह्न नहीं मिले, इस पर आश्चर्य व्यक्त किया गया है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि सिन्धु-सभ्यता के निवासी नक्ल बोन्स के खेल से परिचित ही नहीं रहे होंगे। मोहनजोदड़ो की खुदाई में पत्थर की छह-पहली गोटें प्रचुर सख्या

मे मिली हैं। उन पर कुछ अक या अक्षर अंकित हैं जो अब तक भी पढे नही गए हैं। बहुत संभव है कि ये छह-पहले प्रस्तर-खड चपेटा या नक्ल बोन्स की तरह के किसी खेल के काम आते हों।

हमारा अनुमान है कि चपेटों के इस खेल का जन्म आदि-मानवों के किसी धार्मिक अनुष्ठान से हुआ होगा।

प्रश्न हो सकता है कि यह होगा कितना प्राचीन ? इस संबध मे कुछ कहना अत्यंत कठिन है। नृशास्त्र में हम जिसे अतीत कहते हैं, वहा किसी भी घटना को काल-निर्णय के लिए दस हजार वर्ष भी कम हैं और बीस हजार कुछ भी कम नहीं।

जो हो, इस खेल की प्राचीनता और विश्वव्यापकता से हमे यह शिक्षा तो मिलती ही है कि ऊपरी रहन-सहन और भाषाओ के व्यवहार से मनुष्य हमे भले ही एक-दूसरे से अलग जान पडे, किन्तु वह सर्वत्र एक है और एक-सी भावनाओ से बधा है।

इन खेलो के विवरणो का विधिपूर्वक संग्रह किया जाना चाहिए।

सात निषेधात्मक सूत्र

चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय

□□

महात्मा गाधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतो पर अक्सर चर्चाएं होती रहती हैं और इनके अनुसार आचरण के उपदेश दिए जाते हैं। लेकिन यह कहना गलत है कि सत्य और अहिंसा गाधीजी के 'सिद्धान्त' हैं धर्म, नीति और सदाचार के सिद्धान्त भारत के प्राचीन ऋषियो ने अपने अन्तर्ज्ञान से निश्चित कर दिए थे। ये सिद्धान्त हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह जो आदिकाल से चले आ रहे हैं और शाश्वत तथा अपरिवर्तनशील हैं। मेरी तो मान्यता है कि ससार मे जितने भी अवतार या महापुरुष हुए हैं, उनमे से किसी ने भी इन सिद्धान्तो के अलावा कोई नया सिद्धान्त प्रतिपादित नही किया। हा, सबने अपने-अपने ढग से युगधर्मानुसार इन सिद्धान्तों की व्याख्या की और किसी ने किसी एक सिद्धान्त पर बल दिया, किसी ने किसी दूसरे पर, महावीर ने अहिंसा और अपरिग्रह पर जोर दिया। बुद्ध ने अहिंसा और चार सत्यो पर जोर दिया। येसु और मोहम्मद ने जीवन की पवित्रता और सदाचार पर जोर दिया। लेकिन सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के महत्व को किसी न नहीं नकारा, बल्कि इनका समर्थन ही किया।

उपदेशो के दो रूप होते हैं—विधेयात्मक तथा निषेधात्मक। विधेयात्मक उपदेश वे होते हैं जिनमे बताया जाता है कि मनुष्यो को भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए कैसा आचरण और परस्पर व्यवहार

करने चाहिए जिसमें सब प्राणियों का हित हो। निषेधात्मक उपदेशों में बताया जाता है कि मनुष्यों को किन-किन बुराइयो से बचना चाहिए, अर्थात कौन-कौन से दुष्कर्म या पाप नहीं करने चाहिए।

महात्मा गांधी ने जहां एक ओर जीवन मे सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तो पर अमल का उपदेश दिया है, वहां दूसरी ओर उन्होंने कुछ बुराइयां भी बताई हैं और उनका निषेध किया है। एक स्थान पर उन्होंने सात बुराइयों का उल्लेख किया है और इन्हें पाप की सज्ञा दी है। पाप उस बुराई को कहते हैं, जिससे आत्मा कलुषित होती है।

ये सात बुराईयां हैं १ सिद्धान्त-विहीन राजनीति। २ श्रम-विहीन धन-सम्पत्ति। ३ अन्तरात्मा-विहीन विषय-भोग। ४ चारित्र्य-विहीन ज्ञान। ५ नैतिकता-विहीन व्यापार। ६ मानवता-विहीन विज्ञान। ७ त्याग-विहीन पूजा।

सिद्धान्त-विहीन राजनीति—राजनीति वह शास्त्र है जो शासन-व्यवस्था से सबध रखता है। इसका मूल सिद्धान्त यह है कि शासन-व्यवस्था ऐसी सुगठित, सुसगत, समन्वित तथा न्यायपूर्ण होनी चाहिए जिससे देश का, राष्ट्र का और जनता का उत्कर्ष हो, उत्थान हो और सब लोग मिल कर रहे तथा काम करें। जब शासन वर्ग अपने व्यक्तिगत या दलगत स्वार्थ के वशीभूत होकर इस सिद्धान्त की उपेक्षा करता है या उसे पांव तले रौंदता है, तब राजनीति सिद्धान्त-विहीन हो जाती है, जो देश की, राष्ट्र की और जनता की अधोगति का कारण बनती है।

श्रम-विहीन धन-सम्पत्ति—श्रम विहीन धन-सम्पत्ति वह होती है जो दूसरो के श्रम से और दूसरो का शोषण करके अर्जित की जाती है। चोर-बाजारी, मुनाफाखोरी, मिलावट, कम तोल-नाप आदि बुरे साधनों से अर्जित धन-सम्पत्ति भी इसी श्रेणी मे आती है। यह ऐसी बुराई है जो समाज मे असतोष पैदा करती है और देश की अर्थ-व्यवस्था को खोखला करती है।

अन्तरात्मा-विहीन विषय-भोग या आमोद-प्रमोद—इन्द्रियों के विषय-भोगो की तृप्ति के लिए या आमोद-प्रमोद के लिए लोग ऐसे दुष्कर्म करते हैं जो अन्तरात्मा के विरुद्ध होते हैं। केवल स्वाद के लिए मनुष्य असख्य जीवों का सहार करते हैं। मछलियों या पशु-पक्षियो का शिकार भी ऐसा ही व्यसन है। मनुष्य को सोचना चाहिए कि अपने सुख के लिए वह जो भाग-दौड या ऊधम करता है, उससे किसी को हानि तो नहीं पहुंचती। अर्थात ऐसे मामले मे उसे अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुननी चाहिए।

चारित्र्य-विहीन ज्ञान—जो ज्ञान मनुष्य को चरित्रवान नही बनाए, वह व्यर्थ होता है। जैन-दर्शन मे इसीलिए सम्यक-दर्शन के साथ सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र्य का महत्व प्रतिपादित किया गया है। चारित्र्य ही मनुष्य को ऊचा ले जाता है। चरित्रहीन मनुष्य चाहे जितना ज्ञानवान हो, कभी आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता।

नैतिकता-विहीन व्यापार—व्यापार के कुछ नियम तथा सिद्धान्त होते हैं जो नैतिकता पर आधारित होते हैं। कम से कम मुनाफा कमाना, लेन-देन में धोखा-धडी नहीं करना, उत्पादन मे या बिक्री के लिए वस्तुओ मे किसी प्रकार का गोल माल नही करना, ये व्यापारियो की नैतिक जिम्मेदारी है। जिस व्यापार मे नैतिकता नहीं होती, उसे चोरी या डाका ही कहा जा सकता है।

मानवता-विहीन विज्ञान—आधुनिक युग मे विज्ञान जिस तेजी से प्रगति कर रहा है, उसे देखते हुए कहा नहीं जा सकता कि इसका अन्त कहां होगा। एक ओर तो विज्ञान मनुष्य-जीवन की सुख-सुविधा के अनेक साधन तैयार कर रहा है, दूसरी ओर वह परमाणु-बम, रासायनिक बम आदि नर-सहारक अस्त्र-शस्त्रो का निर्माण करके मानवता को विनाश की ओर ले जा रहा है। विश्वविख्यात वैज्ञानिक आयन्स्टाइन ने इसीलिए

कहा था—धर्म के बिना विज्ञान लंगडा है। इसलिए विज्ञान को मानवता से संबद्ध करना परमावश्यक है।

त्याग-विहीन पूजा—भागवत् पुराण मे आख्यान है कि एक बार नारद को रास्ते मे एक मरणासन्न वृद्धा पडी नजर आई। उन्होने पूछा—तू कौन है और तेरी यह दशा कैसे हुई। उसने जवाब दिया—मैं भक्ति हू, और पाखडी भक्तो ने मेरी यह दशा कर दी है। नारद दौडे हुए विष्णु भगवान के पास गए और उनसे प्रार्थना की कि भक्ति नामक वृद्धा को यौवनदान दें। विष्णु ने तथास्तु कहा और वृद्धा ने सुन्दर युवती का रूप धारण कर लिया। जब नारद उससे विदा होने लगे तो उसने कहा, "ठहरो। ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे दो भाई हैं, वे भी मरणासन्न हैं, उन्हे भी पुनर्जीवित करो उनके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है।" इस दृष्टांत का निष्कर्ष यह है कि ज्ञान और वैराग्य के बिना भक्ति मुर्दे के समान है। इसी बात को गाधीजी ने सूत्र रूप मे कहा है। जब तक मन मे त्याग की भावना न हो, तब तक सारे पूजा-पाठ, व्रत-उपवास, तीर्थ-स्नान आदि कोई फल नही दे सकते। जो लोग तरह-तरह के कुकर्म और पाप करते हैं, लेकिन साथ ही घटो पूजा-पाठ मे बिताते हैं, उन्हें ढोंगी और पाखडी ही कहा जा सकता है।

तात्पर्य यह है कि गांधीजी ने जो सात बुराइया गिनाई हैं, उनसे बचा जाय तो समाज का रूप निखर जाय और सब लोग सुखी रहे।

भारतीय जीवन में लोक-शक्ति का अधिष्ठान

सिद्धराज ढड्ढा

□□

मानव-जाति सदा मोटे तौर पर दो भागो मे विभाजित रही है। एक सामान्य बहुजन समाज, जो किसी-न-किसी प्रकार की शारीरिक मेहनत से अपना जीवन चलाता है, और दूसरे वे थोडे से लोग, जो व्यवस्था के नाम पर स्वय शारीरिक मेहनत से अलग रहकर दूसरो के द्वारा उपार्जित वस्तुओ का उपभोग करते रहते हैं। यह एक सामाजिक बिडम्बना ही है कि दूसरो की मेहनत पर जीनेवाले ये लोग उन दूसरे लोगो की अपेक्षा ज्यादा सुख-सुविधा और आराम मे रहते हैं। सच कहा जाय तो होता यह है कि सत्ताधारी वर्ग उसी सत्ता का उपयोग, जो समाज ने लिखित-अलिखित रूप मे उसे समाज की सेवा के लिए दी है, अपने स्वयं के अधिकारो को और सुख-सुविधाओ को बढ़ाने में करता है। जब-जब यह अन्याय अपनी सीमा पार कर जाता है तब-तब जनता की अन्तरात्मा विद्रोह कर उठती है। पुरानी व्यवस्था को वह उलट देती है। लेकिन अक्सर होता यह है कि पुरानी व्यवस्था के जो मोटे-मोटे दोष ऊपर नजर आते हैं उन्ही मे थोडा बहुत सुधार करके नई व्यवस्था बना ली जाती है फिर, 'सत्ता बनाम जनता' के खेल का नया अध्याय शुरू हो जाता है।

कुछ हद तक सत्ता और जनता का यह द्वन्द्व स्वाभाविक है। लेकिन भारतीय चेतना ने बहुत कुशलता के साथ इस सामाजिक गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न किया है। बहुजन समाज रोजमर्रा का अपना सामान्य जीवन अपनी मेहनत से चलाता रहता है, पर सामाजिक जीवन मे ऐसे कई विशेष प्रसग या परिस्थितियां आ जाती हैं जब उनके हल के लिए सामान्य से कुछ अधिक, और सामूहिक शक्ति का इस्तेमाल करना पडता है। उदाहरण के लिए रोग, महामारी, आपसी झगडे, सघर्ष आदि। इन प्रसगों पर सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता पड़ती है। भारतीय समाज की रचना जिन्होंने की, उन पुराने लोगों ने – ऋषि-मुनि और समाज-शास्त्रियो ने—बहुत-सूझ-बूझ से काम लिया। उन्होने समाज को न केवल परस्परावलबन के सूत्र में बांधा, बल्कि अधिकाश सार्वजनिक सेवाओ को एक दूसरे के लिए त्याग करने के कर्तव्य के रूप मे, अर्थात समाज-धर्म के रूप में, प्रतिष्ठित कर दिया। उदाहरण के लिए, शिक्षा, चिकित्सा, न्याय—इन सेवाओ के लिए शुल्क नहीं लगता था। वास्तव मे भारतीय समाज की सारी रचना परस्पर सहयोग, एक-दूसरे के लिए त्याग और सेवा की भावना पर की गई थी। इसीलिए इतिहास के अनेक थपेडे खाकर भी भारतीय समाज हजारों बरसों से कायम है। दुनिया मे दो ही देश और सस्कृतियां हैं जो अनेक उतार-चढ़ाव के बावजूद अन्य सभ्यताओ की तरह समाप्त नही हुई। सर मोहम्मद इकबाल ने ठीक ही गाया था "यूनान, मिश्र, रोमा सब मिट गए जहां से", पर भारतीय सस्कृति मे ऐसी "कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी!" वह 'कुछ बात' यही समाज-धर्म की हमारी भावना है। हमारे पुराने समाज-निर्माताओ ने सामाजिक जीवन को न तो राज्य पर आश्रित रखा, न पैसे पर, बल्कि उसको स्वावलंबन और परस्पर सहयोग पर खडा किया। बुराइया और विकृतियां तो समय के साथ हर चीज में आती हैं, पर चूकि हमारी समाज-व्यवस्था को परस्पर सहयोग अर्थात लोकशक्ति का इतना सुदृढ आधार दिया गया था, इसलिए वह अभी तक टूटी नही है, जबकि अन्य अनेक सस्कृतिया काल के गाल मे समा गई।

परस्पर सहयोग के आधार और राज्यसत्ता या पैसे के आधार मे कितना अतर है, यह आज के भारतीय समाज की स्थिति को देखने से स्पष्ट हो जायगा। पश्चिम की नकल करके हमने 'कल्याणकारी राज्य' (वेल्फेयर स्टेट) की घातक कल्पना को स्वीकार कर लिया है। उसका नतीजा आज हम भुगत रहे हैं। सारा समाज या तो सरकार की ओर ताकता है या पैसे का आधार ढूढता है। इस वृत्ति ने भयंकर स्वार्थ और होड को जन्म दिया है। फलस्वरूप समाज मे परस्पर सघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष और हिंसा का बोलबाला हो गया है। ऐसी स्थिति मे जो सबसे गरीब है और सबसे कमजोर है, वही पीसा जाता है, उसी के भोग पर, उसी की बलि पर, दूसरे आगे बढ़ते हैं और इसे 'विकास' का प्रवचनात्मक नाम दिया जाता है। आज भारत की आत्मा इस मृग-मरीचिका मे फसकर कराह रही है।

हमारे प्राचीन समाज-निर्माताओ ने समाज को आन्तरिक जीवन मे तो अपने स्वय के पाव पर खडा कर दिया, लेकिन एक क्षेत्र फिर भी ऐसा बच रहा जो समाज की स्वचालित शक्ति के अलावा बाहरी शक्ति पर निर्भर रहा। वह क्षेत्र था बाहर से आनेवाले खतरो का। उसके लिए राज्य-व्यवस्था और सैनिक-शक्ति का आधार लिया गया। समाज के सुरक्षा-कवच मे जो यह छिद्र रह गया, वह कमजोरी का कारण बना रहा। इस छिद्र का फायदा उठाकर राजसत्ता लोकसत्ता पर हावी होती रही है। फिर भी लोकशक्ति या समाज-शक्ति चूकि स्वावलबी और अपने स्वयं के बल पर आधारित थी, इसलिए समय-समय पर वह विद्रोह करके राज्य-शक्ति को दबाती रही। लेकिन अग्रेज शासको ने भारतीय समाज की उस आन्तरिक शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया। भारत के आर्थिक और सामाजिक जीवन मे स्वावलबन और परस्परावलंबन के बल पर लोग जो राजकीय या प्राकृतिक विपदाओं का सामना अपने आन्तरिक और सामूहिक बल से कर लेते थे, उनको

उन्होंने अकारण 'दर-दर का भिखारी' बना दिया।

गांधी ने इस रोग को पहचान लिया था। उन्होंने भारतीय समाज को फिर से स्वावलबन और परस्परावलबन के आधार पर खडा करने का स्वप्न देखा। लेकिन वे समझ गए कि अंग्रेजी शासन उनके इस मार्ग मे रुकावट बनकर खडा हुआ है। अपने स्वार्थ के लिए उसी ने भारतीय समाज-जीवन के ताने-बाने को तोडा था। इसीलिए मूलत समाज-निर्माता होते हुए भी गांधी को पहले उस विदेशी शासन को हटाने में अपनी सारी शक्ति लगानी पडी। लेकिन गाधी ने आजादी की लड़ाई के समय ही, बल्कि उससे भी पहले, इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि केवल राजनैतिक आजादी पर्याप्त नहीं होगी, उस रुकावट के दूर होने पर असली काम तो समाज के टूटे हुए ढाचे को फिर से जोडने का होगा। गाधी ने कहा था, "आखिर स्वराज्य निर्भर करता है हमारी आन्तरिक शक्ति पर, बडी-से-बडी कठिनाइयो से जूझने की हमारी ताकत पर। सच पूछो तो वह स्वराज्य, जिसे पाने के लिए अनवरत प्रयत्न और बचाये रखने के लिए सतत जागृति नहीं चाहिए, स्वराज्य कहलाने के लायक ही नही है।" (नवजीवन, ८ दिसबर १९२७)

स्वावलम्बन और परस्परावलबन की बात को स्पष्ट करते हुए गांधी ने फिर कहा था, "आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए, हरेक गाव मे लोगो की हुकूमत या पचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हरेक गाव को अपने पावो पर खडा होना होगा, अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके, यहा तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी सुरक्षा खुद कर सके। इसका यह मतलब नही कि पडोसियो पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाय, या उनकी राजी-खुशी से दी हुई मदद न ली जाय। कल्पना यह है कि सब लोग आजाद होंगे और सब एक-दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे। ऐसा समाज अनगिनत गावो का बना होगा। उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढग का नही, बल्कि लहरो की तरह एक के बाद एक की शक्ल मे होगा। जिन्दगी मीनार की शक्ल मे नही होगी, जहा ऊपर की तग चोटी को नीचे के चौडे पाए पर खडा होना पडता है। वहा तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल मे होगी और व्यक्ति उसका मध्य बिंदु होगा। वह व्यक्ति हमेशा अपने गाव की खातिर मिटने को तैयार होगा। गाव अपने इर्द-गिर्द के गाव के लिए मिटने को तैयार होगा। सबसे बाहर का घेरा या दायरा अपनी ताकत का उपयोग भीतरवालो को कुचलने मे नही करेगा, बल्कि उन सबको ताकत देगा और उनसे ताकत पायेगा।"(हरिजन सेवक, २८ जुलाई १९४६)

यह था स्वतत्र भारत का गाधी का भव्य सपना। इस प्रकार भारतीय समाज-जीवन को गाधी फिर से अपनी आन्तरिक शक्ति, अर्थात स्वावलम्बन और परस्परावलबन की शक्ति, पर खडा करना चाहते थे, राज्य-शक्ति की बैसाखी पर नही। यह था वह लोक-शक्ति का अधिष्ठान जो, जैसा कि हम देख चुके हैं, भारतीय परम्परा का सत्व है और जिसके कारण वह आज तक कायम रहा है। आर्थिक और राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और स्वावलबन की गाधी की कल्पना मे बाहरी आक्रमण के लिए भी सेना या राज्य जैसी बाहरी शक्ति का स्थान अन्ततोगत्वा नहीं है। इसमे लोक-शक्ति की पूर्णता की भव्य कल्पना है।

हिन्दी का वैभव

यशपालजी का सम्पूर्ण जीवन साहित्य की सेवा में व्यतीत हुआ है। उन्होंने सन् १९३० से लेखन आरंभ किया था। विगत ५४ वर्षों में उन्होंने कहानियां, कविताएं, निबंध, यात्रा-वृत्तान्त आदि अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है।

प्रस्तुत खण्ड में हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधाओं में उपलब्ध साहित्य का मूल्यांकन किया गया है। यह साहित्य की वर्तमान धाराओं से अवगत कराता है।

हिन्दी का वैभव

स्वातंत्र्योत्तर युग का प्रौढ़ निबन्ध साहित्य

(प्रो) विजयेन्द्र स्नातक

द्विवेदी युग के गद्य-साहित्य का सम्यक् अध्ययन भाषा की व्याकरणसम्मत व्यवस्था, परिष्कार एव प्रौढ़ता का परिचायक है। वस्तुत एक ओर इस युग का लेखक भाषा-परिशोधन के अतिरिक्त शब्द राशि की समुचित वृद्धि मे तन्मयता से सलग्न था तो दूसरी ओर बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राय कृष्णदास, चडीप्रसाद हृदयेश आदि के सफल प्रयास से भाषा मे अभिव्यजना-शक्ति का विकास हुआ था और निबन्धों के विविध विषयो के आगमन से हिन्दी साहित्य मे अनेकानेक गद्य-शैलियां स्फुरित हुई थी। किन्तु विषयगत बौद्धिक दृष्टिकोण तथा भाषा-परिमार्जन ने जिस प्रकार इस युग की काव्य-शैली को इतिवृत्तात्मक बना दिया था उसी प्रकार गद्य की भाषा को भी शुष्कता एव नीरसता से परिव्याप्त कर दिया था। भाषा को परिमार्जित रूप देने के सराहनीय प्रयत्न के साथ साहित्यिक क्षमता को बढ़ाने के सफल प्रयास ने गद्य-शैली का जो रूप प्रस्तुत किया उससे गद्य की व्यापकता तो हुई किन्तु उसमे अपेक्षित कलात्मकता एव भावुकता का अभाव ही रहा। बढ़ते हुए विदेशी साहित्य का प्रचार, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि की श्रीवृद्धि के साथ वर्तमान युग के कवि की विचारधारा मे मननशीलता की मात्रा बढ़ी। राजनीतिक अशान्ति, सामाजिक दुरवस्था तथा आर्थिक समस्याओ के साथ काव्य मे जिस प्रकार छायावादी दृष्टिकोण आया और तदनुकूल परिवर्तित सरस एव नूतन अभिव्यजना-शैली का विकास हुआ, उसी प्रकार वर्तमान काल मे कवि-लेखकों ने गद्य-शैली मे भी भावानुकूल प्रतीक योजना तथा लाक्षणिक विधान को स्थान देकर गद्य को कलात्मक बनाया। यहां हम उनको निबन्ध-शैली की ही समीक्षा करेंगे।

बाबू गुलाबराय (सन् १८८८—१९६३)

बाबूजी के निबन्ध दो प्रकार के हैं, एक वैयक्तिक शैली के आत्मपरक और दूसरे साहित्य सम्बन्धी विषय

प्रतिपादक। साहित्य सम्बन्धी निबन्धो में सिद्धान्त और प्रयोग दोनों को आपने स्थान दिया है। 'हिन्दी नाट्य विमर्श', 'नवरस', 'सिद्धान्त और अध्ययन', 'काव्य के रूप', स्पष्टता, सरलता और स्वच्छता आपकी सैद्धान्तिक रचनाए हैं। विषयों के अनुकूल भाषा का स्वरूप बदलता रहता है। साहित्यिक व अन्य गंभीर विषयों में सयमित तत्सम शब्दो का समावेश है तथा जीवन-सम्बन्धी सामान्य विषयों मे भाषा का रूप व्यावहारिक हो जाता है। देशज शब्द तथा मुहावरे उनकी गद्य-शैली के प्राण हैं। बीच-बीच में उद्धरणों द्वारा स्वमत की पुष्टि बाबू साहब की शैलीगत विशिष्टता का दूसरा गुण है। वे शब्द अथवा उद्धरण अंग्रेजी के हों तो भी उन्हें आपत्ति नही होती। आत्मपरक शैली मे लिखे हुए बाबूजी के निबन्ध हिन्दी में बड़े सुन्दर और सरस कोटि के हैं। उनकी शैली यथार्थ मे निबन्ध की जीवित शैली है। सक्षेप मे उनकी शैली क्लिष्ट से क्लिष्ट विषय मे भी सुबोधता एव सरलता ला देती है, अत पाठको के लिए वह अत्यन्त उपयोगी है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी (सन् १९०७—१९७९)

द्विवेदीजी को सर्वाधिक सफलता आलोचक के रूप मे मिली है, यद्यपि उनका अन्वेषक एव निबन्धकार का व्यक्तित्व कम महत्वपूर्ण नही है। आलोचना मे आपने सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो प्रकार की आलोचनाए प्रस्तुत की हैं। 'साहित्य का मर्म' प्रथम प्रकार का तथा कबीर, सूर आदि के व्यक्तित्व का मूल्याकन दूसरी समीक्षा-पद्धति पर किया गया है। द्विवेदीजी के निबन्धो के अध्ययन से लेखक के सामाजिक एव सास्कृतिक इतिहास सम्बन्धी गभीर ज्ञान का पता चलता है। 'नाखून क्यो बढते हैं', 'आम फिर बौरा गए', 'ठाकुरजी की बटोर' आदि लेख हमारे कथन का समर्थन करेंगे। साहित्य और भाषा की समस्याओ को लेकर भी द्विवेदीजी ने कम नही लिखा है। 'हमारी सस्कृति और साहित्य का सम्बन्ध', 'लोक-साहित्य का अध्ययन', साहित्य मे व्यक्ति और समष्टि' गभीर विचारमूलक लेख हैं।

द्विवेदीजी की भाषा उनके व्यक्तित्व की परिचायक है। उसमे सस्कृत का सम्पूर्ण वैभव, बगला भाषा की पूरी सरसता और भावाभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता है। इसमे कही सस्कृत के—तत किम्, पदे-पदे, येन-केन प्रकारेण—पद के प्रयोगो के साथ ग्रामीण जीवन के—ठूठ, अधकचरा, सिंगार-पटार, दुमदारो से लडूरे भले आदि—प्रयोग भी बराबर मिलते है। यही नही अंग्रेजी के शुद्ध तत्सम शब्दो के साथ उर्दू के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। शैली की दृष्टि से इतिवृत्तात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक, व्यग्यात्मक शैली के अतिरिक्त वार्तालाप का रूप भी मिलता है। क्याकि द्विवेदीजी कुशल वक्ता भी हैं अत उनके निबन्धों मे वक्तृतात्मक शैली का प्रभाव भी कम नहीं है। पाठकों से आप प्राय सीधा सम्बन्ध बनाए रखते हैं।

नन्ददुलारे वाजपेयी (सन् १९०६ — १९६७)

'सूर' और 'प्रसाद' की प्रसिद्ध विवेचनात्मक आलोचनाओ के अतिरिक्त वाजपेयीजी के साहित्यिक ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी', 'आधुनिक साहित्य' आदि कृतिया निबन्ध की दृष्टि से प्रौढ रचनाए हैं। शैली की दृष्टि से आपने व्याख्यात्मक एव विवेचनात्मक पद्धति ग्रहण की है। व्याख्या के लिए उन्होंने सूत्र शैली नहीं अपनायी है। अपनी बात वे बराबर कहते चले जाते हैं। प्रभावोत्पादकता लाने के लिए विवेचनात्मक निबन्धों मे तुलनात्मक दृष्टिकोण अपना लेते हैं। यथास्थान वाजपेयीजी व्यग्य करने से भी नही चूकते। इनकी भाषा पूर्णत सयत एव विषयानुकूल गम्भीर है। वाक्यों मे विचार गुम्फित रहते हैं। आवश्यकतानुसार अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी करते हैं किन्तु सामान्यत हिन्दी का पर्याय साथ में रख देते हैं। उर्दू शब्दों का अवश्य यथाशक्ति बहिष्कार किया गया है। यों तो वाक्य रचना लघु है पर जहा भावो का प्रवाह है, वाक्य अपेक्षाकृत बड़े हो गए

हैं। यद्यपि भाव जटिल नहीं हुए हैं। वस्तुत शुक्लजी के बाद भारतीय रसवाद-सम्मत सौष्ठववादी आलोचना की स्थापना करने मे बाजपेयीजी अग्रणी हैं।

सुमित्रानन्दन पंत (सन् १९०० — १९७७)

पतजी भी प्रसादजी की भाँति मूलत कवि हैं किन्तु उनकी प्रतिभा का प्रकर्ष हमें गद्य मे भी उपलब्ध होता है। एक प्रकार से अपने काव्य की अन्तर्धारा का परिचय देने के लिए उन्हें गद्यकार भी बनना पडा। अतएव शैली और भाषा की दृष्टि से उनके गद्य में विविधता खोजनी व्यर्थ होगी। फिर भी संक्षेप मे उनकी शैली में सयम, प्रसाद-गुण तथा प्रवाह सर्वत्र मिलता है। शब्द-शिल्पी होने के नाते नूतन अभिव्यञ्जना के साथ नूतन भावों का समावेश उनकी शैली की एक और विशिष्टता है। कहीं-कहीं भावात्मकता का आधिक्य होने से पतजी भाषा को प्रसाधित करने के मोह से मुक्त नहीं हो पाए हैं।

महादेवी वर्मा (सन् १९०७)

महादेवीजी की गद्य-कृतिया 'यामा' और 'दीपशिखा' की भूमिका-रूप मे, स्मृति की रेखाए, अतीत के चलचित्र मे सस्मरण-रूप मे और बाद की सम्पादकीय टिप्पणियां, 'शृखला की कडिया' नाम से प्रकाशित हुई हैं। इन सीमित गद्य-कृतियो का भाषा और शैली की दृष्टि से अपरिमेय महत्त्व है। इनमें विवेचनात्मक, कलात्मक तथा विचारात्मक तीनो प्रकार का गद्य उपलब्ध है। विवेचनात्मक गद्य मे उनके वाक्य चिंतन की गहराई में उतर जाते हैं। भाषा की गति सयमित रहती है और विचार स्पष्ट। भाषा-गाभीर्य बना रहने के कारण भाव-गत शिथिलता लक्षित नहीं होती। चित्रण प्रधान कलात्मक गद्य का नमूना उनके रेखाचित्र हैं। और ओज प्रधान विचारात्मक अभिव्यजना 'शृखला की कडियां' मे सफलता से हुई है। इनकी अभिव्यक्ति कोमल, प्रयोग वक्रतापूर्ण, चित्रण शैली सजीव एव मार्मिक हुई है। भाव-गांभीर्य के साथ मर्यादित भाषा-प्रवाह इनकी विशिष्ट शैली का द्योतक है। अतएव महादेवीजी का गद्य-लेखकों मे विशिष्ट स्थान है।

माखनलाल चतुर्वेदी (सन् १८८९—१९६८)

श्री माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय भावना के भावुक कवि हैं। कवि होने के कारण आपके गद्य-साहित्य मे कल्पना और भावना का प्राधान्य होना स्वाभाविक है। कला और साहित्य के सम्बन्ध में आपने अपने स्फुट निबन्धो मे जो गद्य-शैली प्रस्तुत की है, वह काव्यात्मक शैली का तथा व्याख्यानात्मक शैली का आदर्श उपस्थित करती है। 'साहित्य देवता' आपकी गद्यात्मक शैली का सर्वश्रेष्ठ सग्रह कहा जा सकता है। इस पुस्तक का गद्य काव्य-कोटि का ही गद्य है। चतुर्वेदीजी ने कुछ कहानियां भी लिखी हैं। उनमे आपकी गद्य-शैली कुछ भिन्न कोटि की है। आपकी गद्य-शैली को मुख्य रूप से भावात्मक, विचारात्मक, कलात्मक तथा वक्तृतात्मक शैली में विभक्त किया जा सकता है।

जैनेन्द्रकुमार (सन् १९०५)

जैनेन्द्रकुमार का निबन्ध साहित्य चिन्तन-प्रधान, विचार-प्रधान साहित्य है। उसे हम मनन और अध्ययन का सारतत्त्व कह सकते हैं। निबन्ध संग्रहों के नाम ही उनके विषय का थोडा-बहुत आभास देते हैं। जैसे, प्रस्तुत प्रश्न, सोच-विचार, साहित्य का श्रेय और प्रेय, मन्थन आदि। जैनेन्द्रजी के विचारो मे अनेकानेक प्रश्न उलझे रहते हैं, वे उनका अपनी शैली से समाधान करते हैं, उन पर बौद्धिक चिन्तन द्वारा प्रकाश डालते हैं। अत

सारा चिन्तन-मनन आपके निबन्धों में प्रतिफलित हो उठता है। गद्य-शैली में तत्सम शब्दों का प्राधान्य होने पर भी उनकी रक्षा या प्रयोग का कोई आग्रह नहीं रहता। अभ्यासवश जैसे-जैसे शब्द सामने आते-जाते हैं जैनेन्द्रजी उन्हे पकड-पकडकर यथास्थान रखते जाते हैं। कही-कहीं तो उर्दू और बोलचाल के ऐसे सामान्य शब्दों का सुन्दर शैली मे वे प्रयोग करते हैं कि पाठक उनकी सूझ और शब्द-चयन पर मुग्ध हो जाता है। जैनेन्द्र के निबन्ध हिन्दी मे मौलिकता के सुन्दर निदर्शन हैं। उनके द्वारा स्वतंत्र गद्य शैली का प्रवर्तन हुआ है।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' (सन् १६११)

अज्ञेय जीवन के गहनतर स्तरों को साहित्य के माध्यम से समझने और व्यक्त करने वाले कलाकार हैं। उपन्यास, कहानी, कविता, निबन्ध सभी रूपों मे आपने मानव-मन की गहन गुत्थियो को खोला है। उनके गद्य मे बौद्धिक सूक्ष्मता का सुन्दर रूप दृष्टिगत होता है। सूक्ष्मतम अनुभूतियों को स्पष्ट और स्वच्छ रूप मे प्रस्तुत करने की क्षमता आपके गद्य मे है। जीवन की वे सवेदनाए जो साधारणत काव्य के सरस माध्यम से अभिव्यक्त की जाती हैं, अज्ञेयजी ने उन्हीं को गद्य से भी व्यक्त करने मे सफलता प्राप्त की है। पाश्चात्य चिन्तकों का आपकी शैली पर प्रभाव पड़ा है। अत शब्द-योजना और कही-कही वाक्य-विन्यास भी अग्रेजी के सदृश हुआ है।

डा. रघुबीरसिंह (सन् १६०८)

गद्य-शैली मे भाव प्रेरित कल्पना का अद्‌भुत सामजस्य प्रस्तुत करने वाले लेखकों मे आपका प्रमुख स्थान है। द्विवेदी युग के अन्तिम चरण मे गद्य-गीत की जो शैली प्रवर्तित हुई थी उसे इतिहास और कल्पना के अपूर्व मिश्रण द्वारा वर्तमान युग मे रघुबीरसिंह ने अलकृत करने के साथ सार्थक और आकर्षक बनाया। अतीत का वातावरण प्रस्तुत करने तथा परिस्थिति के अनुकूल हर्ष, शोक आदि मानसिक भावनाओ को जागृत करने मे आपके निबन्ध अत्यन्त सफल हुए हैं। छोटे-छोटे वाक्यो मे भावावेश की शैली का इस तरह प्रयोग हुआ है कि पाठक भी देश, काल की सीमाओ का अतिक्रमण कर उसी भाव-भूमि मे पहुच जाता है जिसका लेखक वर्णन कर रहा है। उनके गद्य मे मादकता, चचलता, स्फूर्ति और उन्माद सभी गुणों का एक साथ समावेश हुआ है।

राहुल सांकृत्यायन (सन् १८६३ — १६६३)

राहुलजी हिन्दी साहित्य को अपने गद्य द्वारा व्यापक बनाने मे सबसे अधिक सफल हुए हैं। साहित्यिक विधाओं के अतिरिक्त भाषा-विज्ञान, इतिहास, सस्कृति, यात्रा, राजनीति, दर्शन शास्त्र आदि उपयोगी विषयो पर भी आपने निबन्ध तथा पुस्तकें लिखी हैं। राहुलजी की भाषा प्राय सीधी, सरल और अपने लक्ष्य की ओर ले जाने वाली होती है। तत्सम शब्दो के साथ लघुवाक्य रचना मे आपका विश्वास है। विषय को उलझाकर पाठक को चक्कर मे डालने की आपकी प्रवृत्ति नही है।

डा नगेन्द्र (सन् १६१५)

हिन्दी साहित्य के मनस्वी आलोचकों और गद्य-शैली निर्माताओं मे डा नगेन्द्र का नाम विशेष रूप से उल्लेख-नीय है। नगेन्द्रजी रसवादी परम्परा के समर्थ आलोचक हैं। आपने अपने स्फुट निबन्धों मे साहित्य तथा साहित्यिक कृतियों के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किए हैं।

गद्य-शैली की दृष्टि से आपकी दो प्रमुख शैलियां हैं। एक शैली तो चिन्तन तथा अध्ययन प्रधान है जिसमे प्राच्य तथा पाश्चात्य साहित्य शास्त्र के सिद्धान्तो की अपनी मान्यता के अनुसार स्थापना रहती है।

इस शैली के आधार पर लिखे गए निबन्धों में आपके अध्ययन की व्यापकता और मननशील प्रतिभा के दर्शन होते हैं। दूसरी कोटि के आपके वे निबन्ध हैं जिनमें किसी विषय को रोचक बनाने के लिए आपने सलाप-शैली, स्वप्न के वातावरण की सृष्टि अथवा हास-परिहास के मनोरम दृश्य की अवतारणा की है। हिन्दी में आपके इस शैली में लिखे गए निबन्ध नवीन कोटि के हैं। गम्भीर विषयों पर इतनी सरस शैली से पहले कभी विवेचन नहीं हुआ था।

नगेन्द्रजी तत्सम शब्दों के द्वारा भावाभिव्यक्ति के समर्थक हैं। बोलचाल की चलती हुई साधारण भाषा को आपने प्रायः स्वीकार नहीं किया है। लोकोक्ति और मुहावरे आदि आपकी भाषा मे नहीं हैं। वाक्य-रचना गठित, सुदृढ़ और परिपुष्ट होती है। उपर्युक्त और अभिव्यजक शब्द-योजना इनके निबन्धों का प्राण है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी (सन् १९०६—१९६७)

शान्तिप्रिय द्विवेदी का नाम छायावाद के समर्थ आलोचकों मे मूर्धन्य है। छायावादी काव्य को उसी शैली मे विवेचित और विश्लेषित करने में जैसी सफलता इन्हें मिली वैसी किसी और समीक्षक को नही मिल सकी। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने निबन्ध, समीक्षा, संस्मरण, यात्रा-वृत्त, आत्मकथा आदि अनेक विधाओ मे लिखा और गद्य को बहुत ही अलकृत शैली मे काव्यमय बना दिया। संचारिणी, साहित्यिकी, कवि और काव्य, सामयिकी, वृन्त और विकास, धरातल, पथचिह्न, दिगम्बर, समवेत आदि सकलन इनके गद्य के सुन्दर निदर्शन हैं। इन पुस्तको मे द्विवेदीजी ने अपने अन्तर की छटपटाहट को व्यक्त करने के साथ भाषा को भावाभिव्यक्ति का सक्षम साधन बनाया है। भावुकता और अन्त प्रज्ञा से प्रेरित उनके निबन्ध छायावादी कविता के मर्मोद्घाटन मे जितने समर्थ हैं उतने ही अपने लालित्य की दृष्टि से भी मोहक हैं। द्विवेदीजी की दृष्टि मूलत साहित्य केन्द्रित है और वे किसी भी विषय का पल्लवन करते समय साहित्य-चिन्तन से दूर नही जाते। इनकी शैली को प्रभाववादी ठहराया गया है। प्रभाववादी से तात्पर्य है अपने प्रभावों का विषयवस्तु पर आक्षेप अर्थात् विषय को आत्मपरक दृष्टि से देखकर समीक्षा करना।

शान्तिप्रिय द्विवेदी की गद्य-शैली भावोच्छ्वास पूर्ण, अनुभूतिनिष्ठ, चिन्तनपूर्ण और प्रवाहपूर्ण है। विषयानुकूल भाषा में परिवर्तन करते हुए द्विवेदीजी ने अपनी शैली को नितान्त वैयक्तिक रूप दे दिया है। उनका कलाकार उनके गद्य मे सर्वत्र लक्षित होता है। भाषा तत्सम प्रधान होने पर भी एक ऐसे सहज प्रवाह मे बहती है कि पाठक उसके रस मे विभोर हो उठता है। मर्मी और सुधी आलोचक की प्रज्ञा तथा प्रतिभा के धनी शान्तिप्रिय द्विवेदी ने गद्य शैली को परिष्कृत और परिमार्जित करने मे बहुत योग दिया है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' (सन् १९०८—१९७४)

श्री दिनकर कवि के रूप मे अधिक विख्यात हैं किन्तु हिन्दी गद्य की समृद्धि मे इनका योगदान पद्य से कम नही है। इन्होंने निबध, आलोचना, सस्मरण, यात्रा वृत्तान्त, लघु कथा, विशाल प्रबन्ध आदि अनेक विधाओ मे हिन्दी गद्य को पुष्ट करने का सफल प्रयास किया है। 'संस्कृति के चार अध्याय' इनका एक विशाल शोध दृष्टि समन्वित ग्रथ है जिसमे गद्य का निखार देखा जा सकता है। मिट्टी की ओर, अर्धनारीश्वर, रेती के फूल, वेणुवन, वट-पीपल, पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण, शुद्ध कविता की खोज, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता आदि एक दर्जन से अधिक ग्रथ इन्होंने गद्य मे लिखे हैं।

इनकी गद्य शैली मे काव्य का माधुर्य और ओजस्वी वाणी का स्वर समवेत रूप से मिलता है। कुछ निबन्ध ऐसे भी हैं जिनमे विवेचन-विश्लेषण की प्रधानता के साथ अभिव्यंजना मे शास्त्रीय पदावली भी आ गयी

है। हृदय की तरलता से परिपूर्ण और बुद्धि-विवेक से समन्वित इनके निबन्धों को हिन्दी गद्य का श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है। विचार प्रधान निबन्धो मे दिनकर का चिन्तन, मनन और अध्ययन बड़े उद्दाम स्वर से बोलता है। विवेचन के समय दिनकर की भाषा गंभीर हो जाती है और खडन के समय ओज प्रधान।

दिनकर ने गद्य की विविध विधाओं को स्वीकार कर यह भी सिद्ध कर दिया कि कवि की प्रतिभा का निकष गद्य होता है। सस्मरण और लघु कथाओ मे उनका गद्य अति मसृण और लालित्यपूर्ण है। मुक्त कठ और मुक्त मन से लिखा गया उनका गद्य हिन्दी की एक अमूल्य निधि है।

विजयेन्द्र स्नातक (सन् १९१४)

हिन्दी गद्य को प्रवाहमय एव प्राजल बनाने की दिशा मे स्नातकजी का योगदान उनके प्रमुख तीन निबन्ध सग्रहो मे लक्षित होता है। उनकी निबन्ध रचनाए तीन प्रकार की हैं और तीनो मे शैलीगत वैविध्य है। आलोचनात्मक निबन्धो में शास्त्रीय दृष्टि होने पर भी शास्त्र का पिष्टपेषण नहीं है। भाषा अवश्य तत्सम प्रधान और सुगठित है किन्तु वाक्य-विन्यास जटिल नही है। व्यावहारिक समीक्षा के साथ कुछ निबन्ध शास्त्रीय समीक्षा के भी हैं, उनमे भी विषय प्रतिपादन के लिए सहज शैली ही स्वीकार की गयी है। 'समीक्षात्मक निबन्ध' शीर्षक पुस्तक मे इस प्रकार के निबन्ध हैं जो तटस्थ समीक्षा भी प्रस्तुत करते हैं और परिष्कृत गद्य शैली भी।

'चिन्तन के क्षण' मे सकलित निबन्ध ललित कोटि के समीप हैं किन्तु उनमे जिज्ञासा और समाधान का सूत्र अनुस्यूत रहता है। तथ्य निरूपण के लिए किसी बाह्य प्रमाण या उद्धरण का आश्रय न लेकर लेखक ने स्वय अपना मत और अपना अनुभव ही व्यक्त किया है। गद्य शैली मे इतनी सहजता है कि पाठक के साथ लेखक का भी तादात्म्य हो जाता है।

'विचार के क्षण', 'आलोचक रामचन्द्र शुक्ल', 'कामायनी दर्शन', 'महाकवि प्रसाद', 'सुकवि समीक्षा' आदि पुस्तको मे गद्य शैली के तीन-चार रूप उपलब्ध होते हैं। इनमे विचार-विमर्श के लिए तर्क-युक्ति समन्वित शैली को प्रमुख स्थान मिला है। हिन्दी निबन्धकारो मे विषय प्रतिपादन के लिए सरल एव स्वाभाविक गद्य का प्रयोग करने वाले लेखको मे स्नातकजी का प्रमुख स्थान है।

विद्यानिवास मिश्र (सन् १९२६)

ललित निब ध की शैली को विकसित करने वाले हिन्दी गद्य लेखको मे मिश्रजी का नाम उल्लेखनीय है। अभी तक इनके आधे दर्जन से अधिक निबन्ध-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमे भारतीय जीवन की सास्कृतिक और सामाजिक परिवेश मे अभिव्यक्ति हुई है। गद्य शैली पर सस्कृत की पदावली का प्रभाव होने पर भी मिश्रजी का ध्यान उस पाठक की ओर सतत बना रहा है जो भारत की आत्मा से जुड़ा है और जो गाव तथा नगर की सस्कृति के निकट है। 'छितवन की छाह', 'तुम चन्दन हम पानी', 'आंगन का पछी और बनजारा मन', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' आदि सकलनों मे हम हिन्दी ललित निबन्ध का सास्कृतिक स्निग्ध रूप देख सकते हैं। इन निबन्धों मे लोक-जीवन से पाठक को जोड़ने का जैसा प्रयास है वह इससे पूर्व हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्धो में ही यत्र-तत्र लक्षित हुआ था। विद्यानिवास मिश्र की शैली मे पांडित्य का बोझ नहीं है—पांडित्य का सहज रूप है। सस्कृत कवियो की सूक्तिया और सस्कृत साहित्य की श्रेष्ठ मर्म-छवियां देखनी हो तो मिश्रजी के निबन्ध पठनीय हैं। इन निबन्धो मे ललित रचना का सौष्ठव और आत्मपरक शैली से मनोभावों का विश्लेषण लेखक ने किया है।

ललित निबन्ध लेखको मे कुबेरनाथ राय, धर्मवीर भारती और शिवप्रसाद सिंह का नाम उल्लेख करने

योग्य है। कुबेरनाथ राय के ललित निबन्ध संस्कृत के संदर्भों का प्राचुर्य होने पर भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता का बोध कराने वाले हैं। 'प्रिया नीलकंठी', 'रस आखेटक', 'गन्धमादन', 'विषाद योग' आदि निबन्ध-संग्रहों मे यह स्पष्ट दिखायी देता है कि सांस्कृतिक पीठिका तो बहुत मजबूत है किन्तु वस्तु के प्रतिपादन में उन स्तरों तक लेखक पहुंचना चाहता है जहां सरसरी तौर पर नजर नहीं जाती। शिवप्रसाद सिंह ने उपन्यासों में जिस पुष्ट गद्य का प्रयोग किया है वैसा ही निबन्धों में भी है। उनके कुछ निबन्ध शास्त्रीय भी हैं किन्तु गद्य की दृष्टि से उनका इतना महत्व नहीं है जितना ललित कोटि के निबन्धो का है। ठाकुरप्रसाद सिंह ने भी हास्य-व्यंग्य के पुट से युक्त सरस निबन्ध लिखे हैं। विवेकीराय ने भी इस दिशा मे गद्य को प्राजल किया है। हिन्दी ललित निबन्ध की शैली अब धीरे-धीरे परिष्कृत होती जा रही है और नये-नये लेखक इस विधा को निखार रहे हैं।

धर्मवीर भारती (सन् १९२६) ने उपन्यास के माध्यम से गद्य का प्रयोग प्रारभ किया था किन्तु उनके तीन-चार निबन्ध-संकलन गद्य के प्राजल रूप के सुन्दर निदर्शन हैं। 'पश्यन्ती', 'ठेले पर हिमालय', 'कहनी-अकहनी' आदि के अतिरिक्त साहित्य चिन्तन से सम्बद्ध विषयों पर भी भारती के निबन्ध मिलते हैं।

हिन्दी निबन्ध साहित्य मे हास्य-व्यग्य परक लेखो का प्राय प्रभाव रहा है। द्विवेदी युग मे कुछ ऐसे निबन्ध लेखक थे जिनका सामान्य कोटि का लेखन पाठक का केवल मनोरजन ही कर सकता था। किन्तु सम-सामयिक लेखकों मे कई श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य लेखक इस क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए हैं। बेढब बनारसी के कुछ लेख हास्य के अच्छे उदाहरण हैं। उनके बाद हरिशकर परसाई, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शरद जोशी आदि ने हास्य-व्यंग्य की गद्य शैली को परिपुष्ट किया है। परसाई और त्यागी दोनों ही सामाजिक विसगतियो, राजनीतिक कुचक्रो तथा व्यक्तिगत कुण्ठाओं को उभारने के लिए व्यग्य विधा का उपयोग कर रहे हैं। व्यग्य को साहित्य की स्वतत्र विधा स्थापित करने का भी प्रयत्न जारी है। वास्तव मे व्यग्य एक ऐसी सक्षम शैली है जो अनेका-नेक विषमताओ तथा विसगतियो को उजागर करने के साथ सामाजिक न्याय की ओर संकेत करती है। लेखक अपनी मूल प्रवृत्ति मे केवल व्यग्य तक ही सीमित नहीं रहता, उसकी स्पिरिट मे एक ऐसी तरलता रहती है जो शैली के माध्यम से ही पाठक को प्रभावित करने में समर्थ होती है। गद्य शैली को समृद्ध और सक्षम करने के लिए हास्य-व्यंग्य का पुट एक आवश्यक गुण है जिसका प्रयोग सभी समर्थ शैलीकार करते हैं।

हिन्दी-आलोचना : एक सर्वेक्षण

(डा) कृष्णदत्त पालीवाल

हिन्दी में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना का व्यवस्थित विकास और चिन्तन आधुनिक काल में ही हुआ है। यहां साहित्यिक मूल्यवत्ता के प्रतिमानीकरण के प्रयास के साथ साहित्यिक परम्पराओ का विकास एव

परिष्कार प्रमुखता पाता रहा है। जीवन की भांति साहित्यिक आलोचना के मूल्य भी इतने गतिशील—परिवर्तनशील होते हैं कि सृजन चेतना के बदलाव के साथ साहित्यिक आलोचना में नये मूल्यों का उदय होता है। ऐसी स्थिति के कारण परम्परागत शास्त्रीयता और सैद्धान्तिकता के अभ्यास जड़ मूल्यों को विकसित होने वाली नयी सैद्धान्तिकता लगातार पछाड़ती चलती है। रचनात्मक साहित्यिक चेतना से कटकर जब कभी सैद्धान्तिक व्यावहारिक आलोचना-दृष्टि का उदय हुआ है—तब उसमें शास्त्रनिष्ठ जड़ता और परम्परागत गलित मानसिकता का उन्मेष होता रहा है।

आधुनिक काल मे नवजागरण की चेतना का प्रखर प्रकाश फैला। रचनाकार अपने सामाजिक दायित्व के प्रति पूरी तरह आत्म सजग हो उठा। जीवन और जगत की नवीन प्रश्नाकुलताओं और चिन्ताओं ने उसे व्यक्ति सज्ञा से ऊपर उठाकर व्यापक समाज-सज्ञा और उसके आधुनिकीकरण की ओर उन्मुख किया। उसने अपनी रचनात्मक और आलोचनात्मक प्रतिभा-शक्ति का उपयोग पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से किया। नव जागरण के प्रकाश ने कवि के साथ पाठक की चेतना और स्वभाव मे भी परिवर्तन किया। जिससे नव शिक्षित वर्ग ने ऐसे साहित्य की माग की जो समय और समाज की चेतना का वाहक हो। भारतेन्दु युग की सृजनात्मकता और आलोचनात्मकता इसी के बीच से फूटती देखी जा सकती है। भारतेन्दु-युग ने आधुनिक-बोध को बौद्धिकता, तार्किकता और सजगता से व्यक्त किया। युग के प्राणों मे नव-निर्माण तथा नवसस्कार की भावना ने इस काल के 'सब कुछ' को भीतर-बाहर से बदल दिया।

गद्य के आविर्भाव ने नयी वैचारिकता को निकास दिया। यही कारण है कि हिन्दी आलोचना का विकास आचार्य शुक्ल को नाटको की आलोचना मे दृष्टिगत हुआ। गद्य-शैली की नवीन विधाओं मे उपन्यास-कहानी-निबन्ध का भी जन्म हुआ। इन सभी नयी विधाओ के लिए परम्परागत आलोचना-मान बेकार हो गए। यहा तक हुआ कि परम्परागत मान भारतेन्दु की काव्यात्मकता और नाट्यात्मकता तक को परखने से असमर्थ सिद्ध हुए। परम्परा-बोध मे जो सैद्धान्तिक ग्रन्थ, शोध-निबन्ध, इतिहास ग्रन्थ और पुस्तक-समीक्षाए पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से प्रकाश मे आयी थी—उनका पिछड़ापन भी खटकने लगा। देखा जाए तो इस काल मे हिन्दी आलोचना के जनक प बालकृष्ण भट्ट ने श्री निवासदास के 'सयोगिता स्वयबर' की जो एक 'सच्ची समालोचना' अपने पत्र 'हिन्दी-प्रदीप' (१८८६ ई) मे की थी—वह भी गुण-दोष विवेचन से आगे न बढ़ी। इस काल मे उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी, 'प्रेमघन' ने 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका मे जो नाटक उपन्यास आदि की समीक्षाए प्रकाशित की हैं—उनका भी गुण-दोष खोजी हश्र ही हुआ। इस प्रकार भारतेन्दु युग की आलोचना गुण-दोष विवेचन की लक्ष्मण-रेखा को लाघ तक नही सकी है।

द्विवेदी-युग के प्रेरणा-स्रोत आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के आगमन से हिन्दी पत्रकारिता और आलोचना-दृष्टि को एक नवीन दिशा और दृष्टि मिली। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक बनते ही उन्होंने शास्त्रीयता से जड सैद्धान्तिकता के नायक-नायिका भेद जैसी परम्परा का डटकर विरोध किया। जून १९०१ की 'सरस्वती' मे उन्होंने 'नायिका भेद' शीर्षक प्रख्यात लेख लिखा और कहा कि 'दस वर्ष की अज्ञात यौवना से लेकर पचास वर्ष की प्रौढ़ा तक के सूक्ष्म मे सूक्ष्म' नायिका भेद करना कितनी असगत बात है। संस्कृत काव्य शास्त्र से ब्रजभाषा कविता मे आने और जोर से पनपने वाली इस परम्परा को धिक्कार कर आचार्य द्विवेदी ने पीछे धकेल दिया। यह नायिका भेद सीधे शृगार रस से जुड़ा था जिसमे गलित मानसिकता के कीड़े बहुतायत से थे। इसलिए रीतिवाद और अलकार शास्त्र मे टक्कर लेकर आचार्य द्विवेदी ने आलोचना को गतिशील सामाजिकता और सांस्कृतिक-राष्ट्रीय नवजागरण से जोड़ा। उन्होंने काव्य-जगत मे मौजूद समस्या पूर्ति की परम्परा को ललकारकर खदेड़ दिया।

द्विवेदी-युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का उदय हिन्दी आलोचना की सबसे बड़ी घटना है। आचार्य द्विवेदी की भांति शुक्लजी ने रीति विरोधी अभियान चलाया और परम्परागत-रूढ़िगत आलोचना का विरोध किया। मूलतः तो आचार्य शुक्ल नवजागरण की अन्तर्मानसिकता से ही निर्मित हुए थे पर उनमे बुद्धि की आंच बड़ी तेज थी। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य साहित्यालोचन का गम्भीर अध्ययन किया तथा हिन्दी मे मौलिक साहित्य शास्त्र की रूपरेखा को बनाते हुए उसकी सुदृढ़ नीव भी रखी। सम्पूर्ण पाश्चात्य साहित्यालोचन, विचार आन्दोलन और वाद चिन्तन ने उनकी प्रतिभा के लिए उद्दीपन-सामग्री का कार्य किया। हिन्दी आलोचना मे निर्माण की प्रबल इच्छा से प्रेरित इस आचार्य ने पश्चिम के कलावाद, भाववाद, परोक्षवाद, सौन्दर्यवाद, अध्यात्मवाद, प्रतीकवाद, रहस्यवाद आदि का विरोध किया और कहा कि काव्य, कला नही है। साथ ही यह भी कहा कि 'अध्यात्म', 'अगोचर' और 'अमूर्त' की साहित्य में कोई जरूरत नहीं है। उन्होंने भारतीय रचनात्मक साहित्य को मथकर आलोचना के नवीन मूल्य और मान कमाये तथा काव्य मे लोकधर्म, लोक-मगल और लोक-चेतना-दृष्टि को आधार दिया। इस दृष्टि का आदर्श रूप उन्होंने जायसी की भूमिका, सूर-तुलसी की भूमिका लिखकर प्रस्तुत किया। युग के आदर्शवादी-नैतिकतावादी मूल्यो से उन्होंने समस्त हिन्दी-साहित्य की आलोचनात्मक समीक्षा की और परम्परागत आलोचना का महल ही ढहाकर दम लिया। यह सब होने पर भी उनकी आलोचना-दृष्टि की सीमा यह रही कि उन्होंने जिन प्रतिमानो से 'रामचरितमानस' को देखा— उन्हीं प्रतिमानो से 'कामायनी' की परीक्षा कर डाली। और वे अपने नैतिकतावादी-काव्य-प्रतिमानो से 'कामायनी' या नयी रचनात्मकता को पूरा न्याय नही दे सके।

आचार्य शुक्ल देख रहे थे कि तुलनात्मक आलोचना का शोर मचाने वाले प पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवान दीन, प कृष्णबिहारी मिश्र जैसे आलोचक देव-बिहारी की तुलना मे ही चुक गए थे। इन आलोचको के तुलनात्मक आलोचना के मानदण्ड रीति ग्रन्थो में प्रतिपादित शास्त्रीय सिद्धान्त ही रहे। रसों, गुणो, अलकारो, छन्दो, दोषो की शास्त्रीय-पद्धति से काव्य कृतियो की ये आलोचक सफलता असफलता का निर्णय करते रहे। मिश्र-बन्धुओ ने तो यहा तक किया कि रीति-कालीन कवियो के घनाक्षरी सवैया छन्दो पर नम्बर तक दे डाले। ये भूल गए कि आलोचना गणित नही है, सामाजिक-चेतना का मूल्य-बोधक व्यापार है। सास्कृतिक सवेदनात्मक तनाव की रचना मे परख है। स्वय बाबू श्यामसुन्दर दास आलोचना मे काव्यालोचन की अभ्यास रूढ सैद्धान्तिकता से कहीं भी मुक्त न हो सके। वे काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका की शोध-रिपोर्टों को लेकर चन्दबरदाई, सूर-तुलसी, बीसलदेव रासो आदि कवि और कृतियो के ऐसे चक्कर मे पड़े कि आलोचना के राजमार्ग से ही भटक गए। बाबू श्यामसुन्दर दास और आचार्य रामचन्द्र-शुक्ल के बीच पनपनेवाला विरोध भी सैद्धान्तिक मान्यताओ से जुड़ा विरोध ही था।

आचार्य शुक्ल के बाद छायावाद के कवियो ने आलोचना के क्षेत्र मे बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। इन कवियों ने परम्परागत शास्त्रीय आलोचना के विरोध के साथ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के नैतिकतावादी-आदर्शवादी-उपयोगितावादी काव्य-प्रतिमानो के विरुद्ध भी जोरदार आवाज उठाई। कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने 'पल्लव' के 'प्रवेश' (१९२६ ई) मे आलोचना का एक नया घोषणा-पत्र साहित्य क्षेत्र मे दाखिल किया—जिसमें कथ्य और रूप के नये मूल्य-मानो के झण्डे फहराये गए। शास्त्र-रूढि से मुक्तिकामी इस कवि ने लिखा—"हिन्दी मे सत्समालोचना का बड़ा अभाव है। रस गगाधर के काव्यादर्श आदि की वीणा के तार पुराने हो गए, वे स्थायी, सचारी, व्यभिचारी आदि भावों का जो सचार अथवा व्यभिचार करवाना चाहते थे, करवा चुके। जब तक समालोचना का समयानुकूल रूपान्तर न हो, वह विश्व-भारती के आधुनिक विकसित तथा परिष्कृत स्वरों मे न अनुवादित हो जाय, तब तक हिन्दी मे सत्साहित्य की

सृष्टि भी नहीं हो सकती।" इस कथन से जाहिर है पन्तजी ने आलोचना के नये मूल्यों की मांग को हिन्दी-समीक्षा में रख दिया। पन्त जी के साथ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने 'प्रबन्ध-प्रतिमा', 'चाबुक', 'प्रबन्ध-पद्म' आदि के लेखो मे आचार्य शुक्ल और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के तमाम विचारों का खण्डन करते हुए नये समाधान सुझाये। जगह-जगह उन्होंने आचार्य शुक्ल के कबीर, छायावाद और रहस्यवाद विरोध का तार्किक जवाब दिया। द्विवेदी-युगीन नैतिकतावादी-समीक्षा के कई प्रश्नों को लेकर जयशंकर 'प्रसाद' ने 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' नामक पुस्तक के निबन्धों मे आचार्य शुक्ल की रहस्यवादी-छायावादी मान्यताओ का प्रत्याख्यान किया। आचार्य शुक्ल जी की रस-सम्बन्धी मान्यताओ का प्रसादजी ने रस शास्त्रीय-परम्परा की गहराई मे उतरकर प्रतिवाद किया। उन्होने छायावाद पर लगाये गए आचार्य शुक्ल के आरोपों का उत्तर तो दिया ही काव्य-सवेदना और अभिव्यजना से जुडे अनेक प्रश्नो पर तार्किकता से विचार किया। महादेवी ने छायावादी कवि, पन्त प्रसाद की मान्यताओं का ही साहित्यपूर्ण विवेचन दिया। उन्होने छायावाद की सांस्कृतिक भूमि को गतिशील परम्परा और सामाजिकता के साथ जोडकर बड़ा वैदुष्यपूर्ण कार्य किया।

इन छायावादी कवियो की सबसे बडी विशेषता है कि ये द्विवेदी युगीन आलोचना के विरुद्ध ही इकट्ठे नही होते हैं, बल्कि अपने-अपने ढग से मौलिक रूप मे सभी विषयो पर विचार करते हैं। एक-दूसरे के पीछे चलने की 'भेडचाल' इनमे नही है। ये तो मूल्यो और मानो को लेकर एक-दूसरे से विशिष्ट तरीके की 'अगद कूद' के विश्वासी है। निराला का काव्य-चिन्तन उनके व्यक्तित्व की आग से उबल रहा है तो प्रसादजी का काव्य-चिन्तन भारतीय सास्कृतिक-परम्परा के जीवन्त-संवेदनो से अहरह स्पन्दित है।

छायावाद के कवियो के साथ छायावादी-शैली के सहृदय-आलोचको का भी उदय हुआ। मुकुटधर पाण्डेय ने इसी दिशा मे छायावाद पर निबन्ध लिखकर प्रथम पहल की। प शान्तिप्रिय द्विवेदी ने 'छायावाद' निबन्ध मे छायावाद की सास्कृतिक-चेतना का विस्तार से विवेचन किया। फिर भी इनकी आलोचनात्मक क्षमता प्रभाववादी-आलोचना के मधुजाल मे लिपटकर पस्त हो गई। उन्होंने कवियो की अन्त प्रवृत्तियो की ठीक से पहचान भी कराई, लेकिन उनकी आलोचना को इनकी अतिशय सवेदनशीलता और कल्पना-प्रवणता ले डूबी। बेचारे जीवन भर छायावादी काव्यात्मकता के रगो से भिदा काव्यात्मक गद्य ही लिखते रहे।

छायावादी-समीक्षा के भीतर से ही आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और डा नगेन्द्र का विकास-निर्माण हुआ। यह अजीब बात है कि आचाय शुक्ल की छायावाद सम्बन्धी मान्यताओं की पहली जोरदार टकराहट उनके ही शिष्य वाजपेयीजी मे महसूस की गई। शुक्लजी की सैद्धान्तिक मान्यताओ को वाजपेयीजी ने खुली चुनौती दी और उन्हे मात्र प्रबन्ध काव्यो का रसज्ञ आलोचक सिद्ध किया। आचार्य वाजपेयी ने 'आधुनिक साहित्य' नामक पुस्तक के निबन्धो मे मुक्त मन से कहा कि आचार्य शुक्ल की बडी आलोचनात्मक सीमा उनकी प्रबन्ध दृष्टि के प्रति विशेष आग्रह है। इसीलिए वे प्रगीत काव्य-चेतना या मुक्तक काव्य-धारा के किसी भी कवि के साथ न्याय नही कर सके। ऐसी स्थिति मे वाजपेयी जी ने छायावाद के सौन्दर्य बोध को स्पष्ट करने का जोरदार यत्न किया। यह सब होने पर भी आचार्य वाजपेयी छायावाद को युग-सन्दर्भों के व्यापक परिप्रेक्ष्य मे समझा नही सके।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल की सभी मान्यताओ पर शका उठाते हुए उनका प्रतिवाद किया। कारण, शुक्लजी साहित्य-प्रवृत्तियो और परम्परा को 'प्रतिक्रिया' के रूप मे देखते रहे और आचार्य द्विवेदी-परम्परा को सहज प्रवाह और आवरण धारा के रूप मे। यही दृष्टि-भेद शुक्लजी के 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' और 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका' मे साफ दृष्टिगत होता है। आचार्य द्विवेदीजी सस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्र श और पुरानी हिन्दी की परम्पराओ को समझाने के लिए भारतीय साहित्य की प्राणधारा को समझाने

में प्रबल रहे। उन्होंने समस्त भारतीय साहित्य के आर्य-अनार्य स्रोतों को छानकर भारतीय चिन्ता धारा का स्वाभाविक विकास प्रस्तुत किया। लोक-जीवन की भूमि से द्विवेदी जी ने कबीर को जातीय-परम्परा का बड़ा विद्रोही कवि सिद्ध कर दिखाया। उन्होंने कहा "हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास मे कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा मे यह व्यक्तित्व एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है, तुलसीदास।" फिर देखा जाए तो कबीर के अस्वीकार का साहस ही आधुनिक रूप मे आचार्य द्विवेदी के रूप में अस्वीकार को लेकर उठा है। आचार्य द्विवेदी ने प्रबल तर्कों से सिद्ध किया कि भारतीय साहित्य और हिन्दी साहित्य को आर्यों से ज्यादा अनार्यों ने दिया है।

डा नगेन्द्र का पहला लेख 'छायावाद' सन् १९१५ मे प्रकाशित हुआ। तब से अब तक वे हिन्दी समीक्षा में लगातार सक्रिय हैं। शुक्लोत्तर युग की सौन्दर्यमूलक स्वच्छन्दतावादी आलोचना-दृष्टि का विकास डा नगेन्द्र के रस-सिद्धान्त चिन्तन मे हुआ है। हिन्दी काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे 'रीतिकाव्य की भूमिका', 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका', 'भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा' तथा 'काव्य-बिम्ब' नामक उनकी पुस्तकों का बडा योगदान है। उन्होंने पाश्चात्य साहित्य शास्त्र एव मनोविश्लेषण शास्त्र के गम्भीर अध्ययन से हिन्दी-आलोचना को नया मोड दिया है। वे साहित्य को आत्माभिव्यक्ति मानते हैं और कृति-पाठक-कवि के साधारणीकरण में आचार्य शुक्ल के चिन्तन को आगे बढ़ाते हुए मानते रहे हैं कि साधारणीकरण कवि की अनुभूति का होता है। डा नगेन्द्र देश-विदेश के साहित्य-सिद्धान्तो को हिन्दी मे साहित्यिक प्रकृति के अनुकूल विवेचित-विश्लेषित करने में बडे सिद्धहस्त आलोचक हैं। उन पर फ्रायड के चिन्तन का प्रभाव है, पर वे फ्रायडवादी आलोचक नहीं हैं।

यह बडी-बडी बहसो के बाद भी आज सिद्ध हो चुका है कि आचार्य शुक्ल ने हिन्दी आलोचना को एक वैज्ञानिक पद्धति दी है। इस पद्धति को आगे चलकर प विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प कृष्णशकर शुक्ल, प रामनरेश त्रिपाठी, चन्द्रबली पाण्डेय, बाबू गुलाबराय, डा विजयेन्द्र स्नातक, डा आनन्द प्रकाश दीक्षित आदि शुक्ल पद्धति के समीक्षको ने अपने-अपने ढग से आगे बढ़ाया है। शुक्लजी की दिशा मे लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधाशु' ने 'काव्य मे अभिव्यजनावाद' नामक पुस्तक लिखकर बडा गम्भीर कार्य किया है। फिर भी संवेदनात्मक क्षमता और कलात्मक पकड का पैमापन जितना आचार्य शुक्ल मे था—उतना इनमे से किसी भी आलोचक मे नहीं। इसीलिए शुक्ल स्कूल की समीक्षा एक ढाचे मे बदलकर आज चर्चा का विषय भर रह गयी है।

'छायावाद' को लेकर इस दौर में डा देवराज ने 'छायावाद का पतन' लिखकर पर्याप्त ख्याति प्राप्त की है। किन्तु यह बुनियादी रूप से बडी हल्की आलोचना पुस्तक है। स्वय छायावाद के कवि पन्त एव निराला अपनी काव्य-सीमाओ को पहचानकर छायावाद की भावभूमि से हट गए थे। साथ ही प्रगतिवादी-आन्दोलन के कवि भी छायावादी लिजलिजी भावुकता और कल्पना-उडान की खिल्ली उडाने लगे थे।

छायावाद की आंखों के सामने उसे बुरा-भला कहते हुए प्रगतिवाद और प्रगतिकामी समाजवादी या मार्क्सवादी आलोचना का उदय हुआ। इन आलोचकों ने मनोविश्लेषणवादी आलोचना दृष्टि के व्यक्तिवाद की निन्दा करते हुए सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धो को व्यापक सामाजिकता मे पेश किया। आलोचना के इस दौर मे सिद्धान्तवादी आलोचकों ने घोषित तौर पर अपने को मार्क्सवादी कहा। इस दृष्टि से शिवदानसिंह चौहान का सम्पूर्ण आलोचना कर्म द्रष्टव्य है। शिवदानसिंह चौहान की तुलना मे प्रकाशचन्द्र गुप्त थोडे उदार आलोचक हैं। उन्होंने मनोयोग से हिन्दी साहित्य की पुरानी-नयी परम्पराओ को समझा और आलोचना मे उसका समझदारी से उपयोग किया। उनके निबन्ध-सग्रह 'आधुनिक हिन्दी साहित्य . एक दृष्टि', 'हिन्दी

साहित्य की जनवादी परम्परा' और 'साहित्य-धारा' से दृष्टि की इसी व्यापकता का परिचय मिलता है। रांगेय राघव मे मार्क्सवादी समीक्षा का उथलापन देखा जा सकता है लेकिन इस समीक्षा का सम्पूर्ण तेज डा रामविलास शर्मा मे उमड़ता-निचुड़ता प्रतीत होता है। मार्क्सवादी आन्दोलन के इस विवादास्पद आलोचक ने मार्क्सवादी समीक्षा को एक नया काव्यशास्त्र दिया है। इन्होंने बड़ी अक्खड़ता से सौन्दर्यवाद, भाववाद और कलावाद का खण्डन किया। डा शर्मा ने निराला काव्य की आलोचना से आलोचना कर्म शुरू किया था और लगातार सोचते-मथते निराला की साहित्य-साधना भाग १, २, ३ के रूप मे बड़ा भारी कार्य किया है। हिन्दी तथा भारतीय भाषाओ मे इतना बड़ा और इस ढग का कोई दूसरा कार्य नहीं हुआ—विश्व मे कही हुआ है—कह नही सकता। शर्माजी कवियो मे निराला, कथाकरो मे प्रेमचन्द और आलोचको मे प रामचन्द्र शुक्ल के मर्मज्ञ आलोचक हैं। वे कोरे मार्क्सवादी आलोचक नही हैं—भारतीय साहित्य की परम्परा-धारा को समझने के लिए भवभूति-कालिदास, तुलसीदास आदि को भी समझने वाले आलोचक हैं—यह प्रमाण उनकी पुस्तक 'आस्था और सौन्दर्य' मे पग-पग पर मिलता है।

इस आलोचनात्मक दौर मे गजानन माधव मुक्तिबोध ने बड़ी प्रखर आलोचनात्मक क्षमता का परिचय दिया है। बीस वर्ष के कठिन श्रम से उन्होंने 'कामायनी एक पुनर्विचार' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। उन्होंने कहा, "भाववादी आलोचको ने प्रसादजी से भी आगे बढकर 'कामायनी' का रहस्यवादी मनोवैज्ञानिक अर्थ लगाया और उसके उपयोगी तत्वों को प्रच्छन्न कर दिया।" आलोचको ने 'कामायनी' को लेकर जिन 'गलतफहमियो' को फैलाया था—मुक्तिबोध ने उनका खण्डन किया। मुक्तिबोध ने 'नयी कविता का आत्म-सघर्ष तथा अन्य निबन्ध', 'नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' तथा 'एक साहित्यिक की डायरी' लिखकर नयी कविता को रचना-प्रक्रिया को ही नही समझाया, अपितु नयी कविता के समस्त समीक्षा शास्त्र को ही बदल दिया। उन्होने नयी कविता के उन आलोचकों की दृष्टि का खण्डन किया जो 'लघुमानव सिद्धान्त' का समर्थन करते रहे हैं। मुक्ति बोध ने नयी कविता की व्यक्तिवादी-आदर्शवादी-कलावादी और अन्तर्मुखी साहित्य-दृष्टि का डटकर विरोध किया और रचनाकार के मानवतावाद को आलोचना के केन्द्र मे खड़ा किया। उन्होंने उन प्रगतिवादियों को भी लताड लगायी जो कुत्ते के पिल्लों की तरह आख मूदकर आलोचना करते हैं। 'उर्वशी' की प्रखर आलोचना से मुक्तिबोध ने सभी को चौंकाया भर नही था—नये समीक्षको को सोचने के लिए मजबूर भी किया। उन्होने उन आलोचको को भी ललकारा जो छद्मरूपवाद का प्रचार करते हैं।

आलोचना की इसी तेजस्वी परपरा के भीतर से डा नामवरसिंह उभरते हैं। वे समाजवादी दृष्टि की प्रखरता और पश्चिमी आलोचक एफ आर लीविस की सूक्ष्म तार्किकता को लेकर हिन्दी आलोचना मे आते हैं। धीरे-धीरे होता यह है कि आजकल वे ही हिन्दी के एफ आर लीविस हैं। उनकी प्रथम महत्वपूर्ण पुस्तक 'छायावाद' (१९५४ ई) ने बड़ी ही धूम मचायी तथा छायावाद की पुरानी गलीचेदार आलोचना को उलटकर रख दिया। नामवरसिंह ने छायावादी कविता के भीतर से उसके सामाजिक सत्य को खोजा—उसे ऊपर से आरोपित नही किया। हिन्दी में सृजनात्मक मार्क्सवादी आलोचना का यह पुस्तक एक अद्भुत 'माडल' प्रस्तुत करती है। 'इतिहास और आलोचना' के निबन्धों की वैचारिक प्रखरता ने 'कविता के नये प्रतिमान' बनाने मे मदद की। 'कविता के नये प्रतिमान' पुस्तक मे जिस विचार-शैली का विकास हुआ और आलोचना के मूल्य और मानो को जिस विवेक-वयस्कता से खोजा-मथा गया वह हिन्दी आलोचना की एक बड़ी विचार-यात्रा का प्रतीक बन गयी है। डा नामवरसिंह ने नयी-पुरानी कहानी पर भी सोचा है किन्तु यह विवाद का केन्द्र अधिक बनी है—विचार स्थायित्व का कम। हाल ही मे उनकी पुस्तक 'दूसरी परम्परा की खोज' ने आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी को समझने-समझाने मे बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। नामवरसिंह का आलोचक किनमर'

प्रौढ़, गम्भीर एवं दायित्वपूर्ण बना है, यह पुस्तक उस महिमा को सामने लाती है।

मार्क्सवादी आलोचना का नया तेवर इधर की जनवादी-समीक्षा में विकसित हो रहा है। श्री चंचल चौहान की पुस्तक 'जनवादी समीक्षा नया चिन्तन नया प्रयोग' कर्णसिंह चौहान की पुस्तक 'आलोचना के नये मान' इस क्षेत्र की उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। मैनेजर पाण्डेय, सुधीश पचौरी, गंगाप्रसाद विमल की आलोचना शैली ने भी नयी पहचान बनाई हैं।

मार्क्सवादी समीक्षा का क्लासिक तेज डा रमेशकुन्तल मेघ की समीक्षा मे देखा जा सकता है। डा मेघ ने 'आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण'—'अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा', 'क्योंकि समय एक शब्द हैं' आदि अपनी पुस्तको मे सैद्धान्तिक, व्यावहारिक आलोचना के प्रकाण्ड चिन्तन को नये सदर्भों मे उजागर किया है। इधर नन्दकिशोर नवल ने भी मार्क्सवादी समीक्षा को आगे बढ़ाने की पहल की है। इस प्रकार यह प्रगतिशील आलोचना धारा रूपवादी-कलावादी रुझानो से सघर्ष करती हुई हिन्दी समीक्षा मे गतिशील है।

छायावादोत्तर समीक्षात्मक चिन्तन की दिशा को सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने उल्लेखनीय ढग से आगे बढ़ाया है। नई कविता के आस्वाद और मूल्यांकन के लिए अज्ञेयजी ने 'तारसप्तक', 'दूसरा सप्तक', 'तीसरा सप्तक' तथा 'चौथा सप्तक' की भूमिकाओ मे एकदम नये प्रश्न उठाए है। त्रिशकु' के निबन्धो में इलियट के निर्वैयक्तिकता सिद्धान्त की स्थापना की है। उनके आलोचना-चिन्तन को 'आत्मनेपद', 'सबरग कुछराग', 'लिखि-कागद कोरे', 'भवन्ती', 'अन्तरा', 'हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य', 'सवत्सर', 'अद्यतन', 'स्मृतिलेखा' आदि पुस्तको मे क्रमबद्धता और निरन्तरता से पाया जा सकता है। नयी कविता और नये साहित्य की तमाम सैद्धान्तिकता तथा व्यावहारिकता को अज्ञेयजी ने अपने नये चिन्तन से झकझोर कर नयापन और ताजगी से सम्पन्न बनाया है। हिन्दी आलोचना के विकास को इस चिन्तन ने इतना आगे बढ़ाया है कि उसमे विश्व-समीक्षा दृष्टि का स्वस्थ रूप विकसित हुआ है। परम्परा, प्रयोग, आधुनिकता आदि की व्याख्या से उन्होंने अनेक नवीन आलोचनात्मक प्रत्यय हिन्दी समीक्षा को दिए हैं। हिन्दी की नई आलोचना अज्ञेयजी के चिन्तन को केन्द्र मे रखकर ही आगे बढ़ी है। हिन्दी की प्राचीन तथा नवीन साहित्य-चेतना को परखने के नये प्रतिमान इस आलोचना दृष्टि मे सांस्कृतिक बोध के साथ विकसित हुए हैं।

हिन्दी की नयी आलोचना को विजयदेव नारायण साही के क्रांतिकारी किन्तु एकदम मौलिक चिन्तन ने बहुत दूर तक प्रभावित किया है। वे नयी कविता के सबसे धारदार सिद्धान्तकार और व्याख्याता रहे हैं। 'लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस' और 'शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट' नामक दो निबन्धो से ही साही जी ने वह ख्याति अर्जित की है—जो इस दौर के किसी भी आलोचक को नसीब नही हुई। उन्होंने अज्ञेय जी को प्रसाद जी की परम्परा से जोडते हुए परम्परा की सर्वथा मौलिक ढग से महत्व प्रतिष्ठा की है। साहीजी ने प्रथम बार नयी कविता की बहस से यह बात उठाई है कि जरूरत नयी कविता के प्रमिमान बनाने की नहीं है—बल्कि कविता के ही नये प्रतिमान निर्मित करने चाहिए। नयी कविता मे काव्यानुभूति की बनावट को साहीजी ने तार्किकता से समझाया है। साहीजी ने मध्यकालीन कविता मे भी महत्वपूर्ण चिन्तन किया है। उनका यह मूल्यवान चिन्तन 'जायसी' नामक उनकी पुस्तक मे अपनी सम्पूर्ण शिक्त से मौजूद है। जायसी तथा 'पदमावत' के सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल की मान्यताओं का खण्डन करते हुए साहीजी ने स्पष्ट किया है कि जायसी सूफी कवि नही हैं और 'पदमावत' सूफी काव्य नही है। साहीजी की यह घोषणा इतनी क्रान्तिकारी है कि वह हिन्दी-आलोचना के सभी मध्यकालीन साहित्य के चिन्तको के चिन्तन पर एक बड़ा प्रश्न चिह्न लगा देती है।

श्री लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'नयी कविता के प्रतिमान' तथा 'नये प्रतिमान पुराने निकष' लिखकर नयी

कविता की बड़ी सहानुभूतिपूर्ण व्याख्या की है। किन्तु उनके चिन्तन मे विद्यमान-लघुमानव-सिद्धान्त का जो घिनौना चेहरा उभरा है, वह काफी खतरनाक है। इसी दौर मे नयी आलोचना डा रघुवंश, डा रामस्वरूप चतुर्वेदी, रमेशचन्द्र शाह, मलयज, अशोक वाजपेयी, निर्मल वर्मा, धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर के चिन्तन से नया मोड पाती है। डा जगदीश गुप्त का रस और नई कविता से सम्बन्धित तेजोदीप्त चिन्तन भी विचारों को नए ढग से समझाता और खौलाता है। डा रामस्वरूप चतुर्वेदी ने पश्चिम की 'नयी आलोचना' के भाषावादी-चिन्तन को 'भाषा और सवेदना', 'अज्ञेय आधुनिक रचना की समस्या', 'हिन्दी नवलेखन' आदि से हिन्दी-आलोचना मे जमाना चाहा है। आलोचना के इसी रूपवादी पथ को डा रघुवंश 'साहित्य के नये परिप्रेक्ष्य' मे आगे बढ़ाते हैं और इसी को डा केदारनाथ सिंह कविता में सबसे ज्यादा ध्यान बिम्ब-विधान पर केन्द्रित कराते हुए आगे खीचते हैं। रूपवादी आलोचना के इन तमाम पथों का विरोध शमशेर बहादुर सिंह तथा श्री नेमिचन्द जैन करते हैं। नेमिचन्द जैन ने बदलते परिप्रेक्ष्य' के निबन्धो मे बडी तैयारी से रूपवादी-आलोचना-दृष्टि का खण्डन किया है। 'जनान्तिक' पुस्तक के तमाम लेख इसी रूपवाद के छल को खदेड़ते हैं और वे एक भरोसे की आलोचना सामने लाते हैं। हिन्दी मे नाट्य-समीक्षा को विकसित करने और बढ़ाने में भी नेमिचन्द्र जैन ने अद्भुत योगदान दिया है। रगकला का इतना बडा पारखी आलोचक हिन्दी में कोई दूसरा नही है—यह बात उनकी पुस्तक 'रगदर्शन' से आज साफ हो गई है।

प्रयोगशील नयी कविता के समर्थक आलोचको मे श्री धर्मवीर भारती का नाम भी स्मरणीय है। उन्होंने 'साहित्य और मानवमूल्य' तथा 'पश्यन्ती' के आलोचनात्मक निबन्धों मे नयी कविता की जोरदार तरफदारी की है। भारती ने पुरानी कविता की पुराणवादिता पर जोरदार हमला किया है तथा बडे सुलझे ढंग से नयी कविता की रचना-दृष्टि को समझाना चाहा है। लेकिन मार्क्सवादी आलोचको ने भारतीजी के इस चिन्तन पर भाववादी-रूपवादी होने के आक्षेप लगातार समूहबद्ध होकर लगाए हैं। श्री गिरिजाकुमार माथुर के 'नये सिद्धात ध्वनियो के नए अर्थ' और जगदीश गुप्त के 'सह-अनुभूति' चिन्तन ने भी काफी पाठको का ध्यान आकृष्ट किया है। किन्तु इस चिन्तन मे मौलिक होने का भ्रम ही अधिक है, मौलिकता बहुत कम है।

इधर के युवा आलोचको मे श्री रमेशचन्द्र शाह् बडी शक्ति से उभरे है। उन्होंने 'छायावाद की प्रासगिकता' नामक पुस्तक के नवीन आलोचनात्मक मुहावरे से नये युवा मन को काफी दूर तक आकृष्ट किया है। 'समानान्तर', 'जयशकर प्रसाद' तथा 'वागर्थ' नामक पुस्तको के लेखक इस आलोचक ने 'सर्जनात्मक समीक्षा' की ओर आलोचना को मोडने का प्रयास किया है।

समकालीन आलोचना परिदृश्य मे प विद्यानिवास काफी महत्वपूर्ण नाम है। अपने पाण्डित्य की सहजता से उन्होंने नयी आलोचना की कला को कमाया है। 'आधुनिक कवि अज्ञेय' नामक पुस्तक की 'भूमिका' तथा 'रीतिविज्ञान' मे मिश्र जी की समीक्षात्मक-क्षमता को चमकते पाया जा सकता है। उनके ललित निबंधो मे भी बात को मूल भारतीय स्रोतो से उठाकर नए रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

इसी दौर मे विष्णुकान्त शास्त्री, चन्द्रकान्त वान्दिवडेकर, राजकमल राय की आलोचनात्मक दृष्टि का विकास होता है। लेकिन ये आलोचक भारतीय चिन्तन के भीतर ही खप जाते हैं। इस भारतीय ढंग से खप जाने मे प्रभाकर श्रोत्रिय ने अपने को बचाया है। उनकी पुस्तक 'संवाद' कविता के नये वैचारिक सरोकारों को मुक्त ढग से उठाती है। इसी तरह परमानन्द श्रीवास्तव, डा विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, श्रीराम वर्मा ने कविता तथा कथा-साहित्य की नवीन सृजनात्मक धारा पर ढग से ध्यान केन्द्रित किया है। नयी कविता के बुनियादी सवालो से जूझते हुए डा जगदीश कुमार ने 'नयी कविता की चेतना', 'नयी कविता विलायती सन्दर्भ', 'मुक्तिबोध सकल्पात्मक कविता' तथा 'शमशेर का काव्यालोक' नामक आलोचनात्मक पुस्तकों में

नये ढंग का विचार और विश्लेषण प्रस्तुत किया है। वे कृति की आन्तरिक अन्विति तथा रचना प्रक्रिया पर मनोविश्लेषण शास्त्र की दृष्टि से विचार करते हैं और अपने निष्कर्षों को संयम और सावधानी से सामने रख देते हैं।

हिन्दी में शैली-वैज्ञानिक आलोचना का विकास डा. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव कर रहे हैं। इस दिशा मे डा. नगेन्द्र, डा सत्यदेव चौधरी आदि विद्वानों ने भी पहल की है और शैली-विज्ञान को भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना चाहा है। किन्तु शैली-वैज्ञानिक आलोचना अभी सिद्धान्त-पथ भर दे सकी है—उसकी व्यावहारिकता अभी सिद्ध नही हुई है। फिर यह आलोचना मूल्य-दृष्टि को नकार कर चलती है—जिससे इसे भारी विरोध भी सहना पड रहा है और होना भी चाहिए। इस प्रकार से यह नयी आलोचना का सरचना-त्मक रूपवाद है जिससे समीक्षा को सावधान रहना चाहिए।

इधर हिन्दी मे तुलनात्मक-साहित्य का अध्ययन चिन्तन भी दृष्टि के केन्द्र मे आया है। इस दिशा में डा इन्द्रनाथ चौधुरी ने 'तुलनात्मक साहित्य की भूमिका' नामक पुस्तक लिखकर हिन्दी मे तुलनात्मक-साहित्य के अध्ययन की दिशा मे प्रवर्तनकारी कार्य किया है। डा चौधुरी ने विस्तार से तुलनात्मक-साहित्य के अध्ययन के महत्व को प्रथम बार हिन्दी-समीक्षा मे इतने वैदुष्य के साथ समझा-समझाया है। वे अपने अध्ययन क्षेत्र मे भरतमुनि तथा ब्रेख्त की नाट्य-दृष्टि की तुलना को ला सकते हैं और दोनो के भीतर बैठकर दो देशो की सास्कृतिक परम्पराओ की दृष्टिगत समानता— असमानता को भी। यहा दिलचस्प बात यह है कि डा चौधुरी अपने विश्लेषण को एकेडेमिक रखकर भी ललित बनाते हैं और कला पारखी तार्किकता से निष्कर्षों को दुह लेते हैं। पाण्डित्य यहा बोझ नही बनता—पिघलकर पाठक मे समाता चला जाता है। मोहन राकेश के नाटक हो या प्रेमचन्द के उपन्यास उनकी तुलनात्मक साहित्य की नयी दृष्टि आरपार जाती है। हिन्दी मे तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन की सम्भावनाओ पर डा चौधुरी ने महत्वपूर्ण पहल की है और भविष्य मे इस दिशा मे काम होना भी चाहिए।

सातवें दशक की हिन्दी आलोचना मे अजित कुमार के 'कविता का जीवित ससार', कृष्णदत्त पालीवाल की पुस्तकें 'सर्वेश्वर और उनकी कविता', 'नया सृजन नया बोध', 'भवानी प्रसाद मिश्र का 'काव्य-ससार', 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का चिन्तनजगत', जगदीश चतुर्वेदी की पुस्तक 'दस्तावेज' नित्यानन्द तिवारी की आलोचनात्मक निबन्ध पुस्तक 'साहित्य बोध' डा नरेन्द्र मोहन की पुस्तक—'आधुनिकता और समकालीन रचना-सन्दर्भ', 'कविता की वैचारिक भूमिका' डा हरदयाल की पुस्तक 'समकालीन अनुभव और कविता की रचना-प्रक्रिया', 'आधुनिक बोध और विद्रोह' डा बलदेव वशी की पुस्तक—'आधुनिक हिन्दी कविता मे विचार' ने नया परिदृश्य उपस्थित कर दिया है। इन आलोचको ने रचना की आन्तरिक बुनावट और कथ्य की सामाजिक यथार्थता पर रचना-प्रक्रिया से ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया है।

नाट्य समीक्षा के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण लाल, डा. रघुवश, डा वीरेन्द्र नारायण, डा नर नारायण राव जैसे नाम उभर कर आये हैं और तमाम युवा आलोचक नाट्य-समीक्षा के क्षेत्र मे सक्रिय हो रहे हैं। कथा-साहित्य के क्षेत्र में डा विजयमोहन सिंह, डा परमानन्द श्रीवास्तव, डा चन्द्रकांत बादिवडेकर, सुरेन्द्र चौधरी के नाम उभर रहे हैं। पश्चिमी आलोचना-पद्धतियों मे मिथकीय आलोचना अस्तित्ववादी आलोचना, नव्य अरस्तूवादी आलोचना, नव्य मार्क्सवादी आलोचना नये रग-ढग से पनपने की तैयारी कर रही हैं। हजारों पश्चिमी आलोचना के शब्द-विसगति-विडम्बना, विद्रूपता, अस्वीकार, मोहभग, सत्रास, आतक, तनाव, द्वन्द्व, विरोधाभास, हेत्वाभास, मृत्युबोध, आधुनिकता-बोध, क्षणबोध, अस्तित्वबोध, कुंठा आदि का शोर सुनाई देने लगा है। इस पश्चिमी अन्धानुकरण ने हमारी अपनी आलोचना-दृष्टि को अस्पष्टता तथा मूल्यांधता में धकेल

दिया है। आचार्य शुक्ल ने जो दिशा एक कठिन समय मे हिन्दी समीक्षा को दिखाई थी—वह लगभग मलिन पड़ती जा रही है। खतरा यह बढ़ रहा है कि हिन्दी की आलोचना पश्चिमी अन्धानुकरण के चक्कर और चमत्कार की चकाचौंध मे अपनी मौलिक-समीक्षा, दृष्टि की मूल्यवान परम्परा को भी न गवा बैठे।

हिन्दी कहानी के बदलते रूप

(डा) हरदयाल

□□

हिन्दी मे आधुनिक ढग की कहानियो का प्रारम्भ कब हुआ और हिन्दी की पहली कहानी कौन-सी है, ये प्रश्न भी विवादास्पद हैं। हिन्दी कहानी के कुछ इतिहासकारो ने 'रानी केतकी की कहानी' (१८०३ ई) या 'राजा भोज का सपना' (१८८६ ई) या भारतेन्दु युग मे लिखित कथात्मक निबन्धो—राधाचरण गोस्वामी रचित 'यमलोक की यात्रा', भारतेन्दु रचित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न', 'चूसा पैगम्बर' आदि—को हिन्दी की पहली कहानिया घोषित किया है। इनकी दृष्टि की वैज्ञानिकता संदिग्ध है, क्योकि उक्त रचनाए या तो मध्यकालीन भारत—ईरानी शैली के मनोरजक किस्से हैं या निबन्ध। वे आधुनिक ढग की कहानिया नही है। हिन्दी मे आधुनिक ढग की कहानियो का लिखा जाना बीसवी शताब्दी के पहले दशक मे प्रारम्भ हुआ। 'सरस्वती' मे प्रारम्भिक वर्षों मे कुछ मौलिक कहानिया प्रकाशित हुईं जिनकी सूची आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे इस प्रकार दी है

इन्दुमती (किशोरीलाल गोस्वामी)	स १९५७
गुलबहार (,, ,,)	,, १९५९
प्लेग की चुड़ैल (मास्टर भगवानदास, मिर्जापुर)	,, १९५९
ग्यारह वर्ष का समय (रामचन्द्र शुक्ल)	,, १९६०
पडित और पडितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी)	,, १९६०
दुलाईवाली (बग महिला)	,, १९६४

इनमे से उन्होने 'मार्मिकता की दृष्टि से भावप्रधान' तीन कहानियो को विचारणीय माना—'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाईवाली'। पहली कहानी के सम्बन्ध मे उन्होने निर्णय दिया कि "यदि 'इन्दुमती' किसी बगला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है। इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय' फिर 'दुलाईवाली' का नम्बर आता है।" बाद में हिन्दी कहानी के सम्बन्ध में जो अनुसधान हुए उनसे यह सिद्ध हो गया कि 'इन्दुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है, किन्तु उस पर

शेक्सपीयर के नाटक 'टेम्पेस्ट' के कथानक की छाया है, "यहां तक कि यदि इसे भारतीय वातावरण के अनुकूल उसका रूपान्तर भी कहें तो अत्युक्ति न होगी।" इसके घटनाक्रम और पात्रों मे 'टेम्पेस्ट' के घटनाक्रम और पात्रों से बहुत साम्य है। इतना ही नहीं है बल्कि इसका वक्तव्य का विषय भी वही है जो 'टेम्पेस्ट' का है। अत इसे हिन्दी की पहली मौलिक कहानी नहीं माना जा सकता। १९६८ ई मे श्री देवीप्रसाद वर्मा ने हिन्दी की पहली मौलिक कहानी के रूप मे एक और दावा प्रस्तुत किया। उनके अनुसार हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माधवराव सप्रे रचित 'एक टोकरी भर मिट्टी' है, जो १९०१ ई के 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक पत्र में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी को भी हिन्दी की पहली मौलिक कहानी स्वीकार करने मे वही आपत्ति है जो 'इन्दुमती' को स्वीकार करने मे है। यह कहानी फिरदौसी के 'शाहनामा' की एक कथा 'नौशेरवां का इन्साफ' पर आधारित है। इसलिए हमारी दृष्टि मे रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' (१९०३ ई) हिन्दी की पहली मौलिक कहानी है।

ये हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियां थीं। कथाशिल्प की दृष्टि से इनमे कच्चापन था। रूप की दृष्टि से ये सीधी-सादी वर्णनात्मक कहानियां थीं। इनमे देश और काल दोनों का उपयोग निहायत सादा था। 'दुलाई वाली' का अन्त थोड़ा चमत्कारपूर्ण अवश्य है लेकिन आज की विकसित हिन्दी कहानी को देखते हुए यह हिन्दी कहानी के बचपन की एक भोली-भाली शरारत ही मालूम पड़ती है। लेकिन शीघ्र ही हिन्दी कहानी में विषय-वस्तु और शिल्पगत परिपक्वता और विविधता आने लगी। पहले ही दशक में वृन्दावनलाल वर्मा की कहानिया प्रकाशित हुईं। 'सरस्वती' मे १९०९ ई में उनकी एक कहानी प्रकाशित हुई 'राखीबन्द भाई'। अगले वर्ष इनकी दो और कहानिया प्रकाशित हुईं 'तातार' तथा 'एक वीर राजपूत'। ये तीनो कहानिया भी वर्णनात्मक कहानिया हैं और घटनाविकास के लिए सयोगों का उपयोग करती हैं लेकिन रामचन्द्र शुक्ल और बग-महिला की कहानियो की तुलना मे इनमे परिपक्वता अधिक है।

इस शताब्दी के दूसरे दशक मे हिन्दी के कई महत्वपूर्ण कहानीकार और हिन्दी की कई महत्वपूर्ण कहानियां प्रकाश मे आईं। 'इन्दु' पत्रिका के पहले वर्ष मे जयशकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' (१९११ ई) प्रकाशित हुई। इसी वर्ष इस पत्रिका में जी पी श्रीवास्तव की पहली हास्य कहानी छपी। १९११ ई मे 'भारत मित्र' मे गुलेरीजी की पहली कहानी 'सुखी जीवन' प्रकाशित हुई। १९१३ ई मे राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की कहानी 'कानो मे कगना' और विश्वम्भरनाथ 'जिज्जा' की 'परदेशी' नामक कहानिया 'इन्दु' मे प्रकाशित हुईं। १९१४ ई मे आचार्य चतुरसेन शास्त्री की पहली कहानी 'गृहलक्ष्मी' छपी। इसी समय विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानिया भी प्रकाशित होने लगीं। मुन्शी प्रेमचन्द की पहली कहानी 'सौत' 'सरस्वती' मे १९१५ में छपी, 'पचपरमेश्वर' और 'सज्जनता का दण्ड' १९१६ मे, 'ईश्वरीय न्याय' और 'दुर्गा का मन्दिर १९१७ मे छपीं। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की 'झलमला' १९१६ ई और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की 'सन्तू' १९१८ ई मे 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुईं। १९२० मे 'सरस्वती' मे सुदर्शन की पहली कहानी छपी। १९१५ ई मे 'सरस्वती' मे चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' प्रकाशित हुई। इस प्रकार इस दूसरे दशक मे हिन्दी कहानी ने विकास की कई मजिलें एक साथ तय कर लीं। हिन्दी कहानी मे न केवल वस्तुगत वैविध्य आया बल्कि रूपगत वैविध्य भी आया। ऐसे कहानीकार प्रकाश मे आ गए जिनकी अलग से पहचान की जा सकती थी। यद्यपि इस दशक मे लिखी जाने वाली अधिकांश कहानियां इति-वृत्तात्मक, स्थूल घटना-विस्तार, दैवी सयोगों और आकस्मिकताओ से परिपूर्ण थीं, फिर भी कुछ कहानियां ऐसी भी लिखी गयी थीं जो कहानी की इन रूपगत सीमाओं को पार कर गयी थीं।

प्रसादजी की कहानियो की केन्द्रीय वस्तु प्रेम है। प्राय तो यह शौर्याश्रित प्रेम (शिवेलरस लव) है

जिसमे प्रेम के लिए मर मिटने की प्रवृत्ति सबसे अधिक मुखर होती है। इस दृष्टि से 'गुण्डा' और 'उसने कहा था' मे आश्चर्यजनक समानता है। जिस प्रकार नन्हकू ने अपने पिता की बारी में झूला झूल रही पन्ना को नवाब के बिगडे हुए हाथी से बचाया था उसी प्रकार लहना सिंह ने अमृतसर के बाजार में भविष्य में सूबेदारनी बनने वाली लडकी को बिगडे हुए घोडे वाले टांगे के नीचे आने से बचाया था। जिस प्रकार नन्हकू सिंह ने पन्ना और उसके पुत्र की रक्षा करने के लिए अपने प्राणो की बलि चढ़ा दी उसी प्रकार लहना सिंह ने सूबेदारनी के पुत्र और पति की रक्षा करते हुए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। इससे स्पष्ट है कि दोनों कहानियों की मूल वस्तु एक है, लेकिन दोनो के शिल्प मे बहुत अन्तर है। 'गुण्डा' मूलत वर्णनात्मक कहानी है जबकि 'उसने कहा था' का शिल्प वर्णनात्मकता से बहुत आगे का शिल्प है। हिन्दी कहानी की उस प्रारम्भिक अवस्था मे 'उसने कहा था' जैसी कहानी का लिखा जाना एक आश्चर्य की बात है। इस कहानी मे सांकेतिकता गजब की है। इससे पहले की गुलेरीजी की दोनो कहानियां—'सुखी जीवन और 'बुद्धू का कांटा' हिन्दी कहानी की प्रारम्भिक अवस्था की द्योतक हैं।

प्रेमचन्द की कहानिया जिस सरलता से प्रारम्भ होती हैं, प्राय उसी सरलता से एक आदर्शवादी पुट के साथ समाप्त भी होती हैं, क्योकि प्रेमचन्द की मान्यता थी कि कहानी का मूल्य उसके घटना-विन्यास मे न होकर उसके पात्रो की मनोगति मे होता है। ''सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।'' घटनाओ को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करना हिन्दी कहानी के लिए प्रेमचन्द की सबसे बडी देन थी, लेकिन उसके कारण उनकी कहानी चमत्कार की ओर नही गयी। इसका कारण यह था कि प्रेमचन्द ने जिस मनोविज्ञान को अपनाया वह सामान्य (नॉर्मल) मनोविज्ञान था, जो हमारे दैनिक जीवन की सामान्य घटनाओ और क्रिया-कलापो मे बराबर व्यक्त होता रहता है। उनकी कहानी अन्त तक वर्णनात्मक ही रही लेकिन अन्तिम दौर मे उसकी सूक्ष्म व्यजनात्मकता बहुत अधिक बढ़ गयी, घटनात्मकता बहुत कम हो गयी और पात्रो की मनोगति प्रधान हो गयी। इस दौर की एक कहानी है 'बडे भाई साहब , जो १९३४ मे 'हस' मे प्रकाशित हुई थी। इस कहानी को बच्चे और प्रौढ दोनो एक समान पसद करते हैं लेकिन दोनो के लिए इसकी अपील अलग-अलग है।

प्रसाद और प्रेमचन्द से हिन्दी कहानी के दो परिरूप निर्मित हुए काव्यात्मक नाटकीय कहानी, और वर्णनात्मक-घटनात्मक कहानी। कुछ आलोचको का कहना है कि इन दो कथारूपो के आधार पर हिन्दी कहानी के दो स्कूल निर्मित हुए प्रसाद स्कूल और प्रेमचन्द स्कूल। आज तक जितनी कहानिया हिन्दी मे लिखी गयी है, रूप की दृष्टि से उन सबको इन्ही दो स्कूलो मे खपाया जा सकता है। एक दृष्टि से इस कथन में सचाई है, लेकिन पूर्ण सत्य नहीं है। राय कृष्णदास, विनोदशंकर व्यास और चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' को प्रसाद स्कूल का कहानीकार कहा जाता है, और विश्वम्भरनाथ 'कौशिक', सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री को प्रेमचन्द स्कूल का, लेकिन क्या प्रसाद और प्रेमचन्द तथा उनके स्कूल के कहे जाने वाले कहानीकारो की कहानियों में कोई अन्तर नही है? स्थूल स्तर पर न सही, सूक्ष्म स्तर पर अन्तर अवश्य है। ऊपरी तौर पर तो प्रेमचन्द और यशपाल की कहानिया भी एक जैसी हैं वर्णनात्मक-घटनात्मक, लेकिन दोनों मे अन्तर भी है। अन्तर कथ्य या वक्तव्य वस्तु के स्तर पर अधिक मुखर है, रूप के स्तर पर उतना नहीं। वैसे रूप के स्तर पर भी अन्तर है। प्रेमचन्द की कहानिया अधिक स्वाभाविक होती हैं लेकिन उनके गठन में शिथिलता होती है। यशपाल की कहानिया अधिक सुगठित होती हैं लेकिन उनमें प्रेमचन्द जैसी और जितनी स्वाभाविकता नहीं होती है।

प्रेमचन्द के दिनों तक कहानी का एक निश्चित रूपाकार था, यद्यपि प्रेमचन्द की ही परवर्ती कहानियों —विशेषत 'कफन' और 'पूस की एक रात' जैसी कहानियों मे—वह थोड़ा-थोड़ा टूटने लगा था। कहानी में

घटनात्मकता कम होने लगी थी और घटनाक्रम का विकास आदि, मध्य और अन्त के बिन्दुओं की अनिवार्यता की उपेक्षा करने लगा था। जैनेन्द्र ने इस निश्चित रूपाकार को बिल्कुल तोड कर रख दिया। उन्होंने 'रूपहीन रूप' की कहानियां लिखीं। उनकी कहानी कहीं से भी शुरू हो सकती है और कहीं पर भी समाप्त हो सकती है। उन्होंने रूप की अपेक्षा कथ्य को महत्व दिया। उन्होंने सिद्धान्तत माना कि "मैं तो कहानी में फॉर्म को स्थान नहीं देता—उससे मैं परेशान हू। कहानी मे फॉर्म मुख्य चीज नहीं है—क्या कहना है, मुख्य है। शरीरविज्ञान (एनाटामी) का शास्त्र जाने बिना भी लोग पिता बन जाते हैं—टेकनिक जाने बिना भी उसी तरह कहानी लिखी जा सकती है। वास्तव मे जो टेकनिक जानता है, वह कहानिया नहीं लिख सकता।" यहाँ एक-दो उदाहरणो से इस बात को समझ लेना उचित होगा कि जैनेन्द्र की कहानियो की यह रूपहीनता क्या है? जैनेन्द्र की एक कहानी है 'कहानी की कहानी'। यह कहानी जैनेन्द्र की कहानी-रचना-प्रक्रिया को समझने मे सहायक हो सकती है।

जैनेन्द्र की कहानियां अपनी सामग्री सीधे जीवन से लेती हैं, कोरी कल्पना से या पुस्तकों में से पढ़े हुए नुस्खों से नहीं लेती हैं। अत उनमें स्वाभाविकता और जीवन्तता होती है। यह चीज 'अज्ञेय', भगवती प्रसाद वाजपेयी में भी है। जैनेन्द्र मे शिल्प के प्रति एक लापरवाही है, जबकि अज्ञेय अपने शिल्प के प्रति अत्यन्त सचेत हैं। मोटे तौर पर जैनेन्द्र और अज्ञेय की कहानियो का रूप एक-दूसरे के बहुत निकट है जबकि सूक्ष्म स्तर पर उनमे बहुत अन्तर है। यह बात जैनेन्द्र की 'पत्नी' और अज्ञेय की 'गेंग्रीन' (या 'रोज') की तुलना से स्पष्ट हो जाएगी। जैनेन्द्र ने अपनी 'पत्नी' शीर्षक कहानी मे मध्यवर्गीय पत्नी के मन की कुछ प्रवृत्तिया और कुछ सामाजिक विसगतिया उभारी हैं। अज्ञेय ने अपने मन को एक ही मन स्थिति को मूर्त्त करने पर केन्द्रित किया है। और वह मन स्थिति है जीवन की एकरसता के कारण उत्पन्न ऊब, जिससे जिजीविषा ही समाप्त हो जाती है। इस मन स्थिति को उभारने के लिए, ऊब को मूर्त्त करने के लिए उन्होने सचेत भाव से घटनाओं, विवरणों, परिवेश, भाषा आदि की विविध शक्तियो का उपयोग किया है।

जैनेन्द्र ने जो कहानिया लिखी, उनमे कही-न-कही थोडा-बहुत निबन्धात्मकता भी थी। पूर्णत निबन्धात्मकता—वैचारिक निबन्धो की ओर झुकी हुई कहानियां इलाचन्द्र जोशी ने लिखी। उनकी कहानियां कहानिया नही लगती बल्कि मनोरोगियो के आचरण की मनोवैज्ञानिक व्यवस्थाएं लगती हैं। इसलिए उनकी कहानियो को 'मनोरोगियो की केस-हिस्ट्रीज' ठीक ही कहा गया है। फलत जोशीजी की कहानिया नितान्त नीरस और सपाट हो गयी हैं। उनकी कहानियो मे अनेक अश ऐसे आते हैं जिन्हे कहानियो मे से निकाल कर अलग रख दिया जाए तो यह लगेगा ही नही कि वे किसी कहानी का अश हैं बल्कि यह लगेगा कि वे मनोविश्लेषण सम्बन्धी किसी निबन्ध का या पुस्तक का अश हैं।

हिन्दी के मनोवैज्ञानिक कहानीकारो ने कहानी को घटनाहीनता की दिशा मे आगे बढाया। प्रगतिवादी कहानीकारो ने इस दिशा मे विशेष योगदान नही दिया। उन्होंने कहानी के उस रूप मे विशेष फेर-बदल नहीं किया जिसे प्रेमचन्द ने निर्मित किया था। उस कथा-रूप मे उनका योगदान यह था कि उन्होंने इसे व्यग्य का माध्यम बनाया। जैसे यशपाल ने अपनी 'पर्दा' नामक कहानी मे निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की झूठे प्रदर्शन की प्रवृत्ति का उद्‌घाटन व्यंग्य की तीखी धार के साथ किया है। कहानी का मूल ढाचा वही रहा जो प्रेमचन्द का था लेकिन व्यंग्य ने उसकी सूक्ष्म संरचना को बदल दिया।

वस्तुत हिन्दी कहानी मे रूपात्मक वैविध्य स्वातन्त्र्योत्तर काल मे बहुत अधिक आया। कहानी के रूप को लेकर जितने प्रयोग स्वातन्त्र्योत्तर काल मे किये गए उतने पहले कभी नही किये गए। अचानक छठे दशक के प्रारम्भ में कहानी साहित्यिक चर्चा-परिचर्चा का केन्द्रीय विषय बन गयी। दो कथा-आन्दोलन सामने

आए 'नयी कहानी' और 'आंचलिक कहानी'। इनमे मोटा अन्तर तो यह था कि एक का सम्बन्ध नगर के मध्य-वर्गीय जीवन से था और दूसरे का सम्बन्ध ग्रामीण जीवन से, किन्तु सूक्ष्म स्तर पर देखा जाए तो दोनों में कुछ समानताए और अनेक भिन्नताए मिलेंगी। समानता यह है कि दोनों प्रकार की कहानियो में जीवन का चित्रण मध्यवर्गीय दृष्टि से किया गया है और दोनो के नीचे प्रवाहित जीवन-दृष्टि व्यक्तिवादी है। यही कारण है कि छठे दशक की और बाद की भी हिन्दी कहानी की केन्द्रीय वस्तु मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बन्ध बन गए। मोहन राकेश की कहानी 'एक और जिन्दगी', उषा प्रियवदा की कहानी 'वापसी' तथा अमरकान्त की कहानी 'भूख' जैसी कहानिया व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बन्धो को—विशेषत यातनादायक सम्बन्धों को सामने लाती हैं। कहानीकार की दृष्टि का सम्बन्धो पर केन्द्रित होना इस बात का प्रमाण है कि सामाजिक-आर्थिक स्थितियो के परिवर्तन ने सम्बन्धो की स्थिरता को खण्डित कर दिया और सम्बन्धों मे सक्रान्ति की स्थिति उत्पन्न कर दी। सम्बन्धो मे भी केन्द्रीय सम्बन्ध स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध बना। बदली हुई स्थितियों में स्त्री अब पुरुष के पूर्णत अधीन नहीं थी। वह अब दया, रूमान, श्रद्धा आदि का विषय न रहकर प्रतिद्वन्द्विता का विषय बन गयी थी। 'नयी कहानी' और 'आचलिक कहानी' मे अन्तर इस बिन्दु पर स्थापित हुआ कि 'नयी कहानी' के केन्द्र मे व्यक्ति के द्वन्द्व को महत्व मिला जबकि 'आंचलिक कहानी' मे व्यक्ति के मन के साथ-साथ उसके परिवेश को भी समान महत्ता मिली। 'आचलिक कहानी' मे मनुष्य का अध्ययन उसके भौगोलिक परिवेश के सदर्भ मे किया गया। इस बदली हुई कथा-चेतना ने नये कहानीकार को अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी का अस्वीकार करने के लिए प्रेरित किया।

'नयी कहानी' के इस रूपगत वैविध्य मे एक चीज समान रूप से मिलती है, और वह है प्रतीको का प्रयोग। 'नयी कहानी' और 'आचलिक कहानी' मे मिथकीय प्रतीको का उपयोग प्रचुरता के साथ हुआ है। 'राजा निरबसिया' (कमलेश्वर), 'छोटे-छोटे ताजमहल' (राजेन्द्र यादव), 'तीसरी कसम ' (फणीश्वरनाथ रेणु) इत्यादि कहानियो मे पुराण, इतिहास, लोककथाओ आदि से ली गयी प्रतीक कथाओ को या तो समा-नान्तर कथाशिल्प की रचना के लिए उपयोग मे लाया गया है या मात्र प्रतीक के रूप मे। उदाहरण के लिए 'तीसरी कसम ' मे महुआ घटवारिन की लोक कथा को देखा जा सकता है। महुआ घटवारिन की कथा हीरामन और हीराबाई की कथा को प्रतीकित करती है। नया कहानीकार शिल्प के प्रति इतना सचेत था कि एक-एक उपमा, प्रकृति के एक-एक चित्र को प्रतीक के रूप मे उपयोग मे लाता था।

इस प्रकार 'नयी कहानी' और 'आचलिक कहानी' के दौर मे कहानी के रूप और शैली मे अनेक प्रयोग किये गए। कहानी के जिस परम्परागत रूप को तोडने का प्रारम्भ जैनेन्द्र ने किया था, इन दो आन्दोलनो ने उसे आगे बढ़ाया। साठोत्तर पीढ़ी के कहानीकारो ने इसे इतना आगे बढ़ा दिया कि लगने लगा कि कहानी की सारी सम्भावनाए पूरी हो गयी हैं और अब कहानी साहित्य की कोई जीवन्त विधा नहीं रह गयी है। पश्चिम मे तो कहानी के मरने की घोषणाए इस शताब्दी के प्रारम्भ मे ही की जाने लगी थीं। मई १९१७ के 'डायल' नामक पत्र मे हर्बर्ट कोरी ने एक लेख लिखा 'कहानी का बुढ़ापा' (द सिनाइलिटी आव् द शार्ट स्टोरी)। इस लेख मे उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि कहानी मे उच्चकोटि की गम्भीरता का अभाव हो गया है और कहानी आत्मचेतन हो गयी है। कई वर्ष पहले हिन्दी मे ऐसी ही बात डा रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कही थी तब उनका बडा विरोध हुआ था। 'नयी कहानी' मे ओ हेनरी जैसे आकस्मिक और चामत्कारिक अन्त का कुछ अनुसरण हुआ था और कहानियो मे कृत्रिमता आई थी। हिन्दी कहानी की चर्चा में चेखव की चर्चा भी बार-बार होती रही है। माना यह जाता है कि चेखव की कहानियो में कहानी उस अवस्था मे पहुच गयी जिसमें कहानी का कहानीपन लगभग समाप्त हो गया। चेखव की चर्चा पहले जैनेन्द्र की कहानियों के सन्दर्भ मे हुई और

फिर अमरकान्त के सन्दर्भ में। 'नयी कहानी' तक यदि हिन्दी कहानी में गतिरोध आया तो कहानीकार के अनुभव की सीमितता के कारण, शिल्प के प्रति अत्यधिक सजगता के कारण नही। 'नयी कहानी' मे भी अनुभव की सीमितता कहानी के गतिरोध में सहायक हुई।

रूप और शिल्प के स्तर पर साठोत्तर हिन्दी कहानी का एक वर्ग सीधी-सरल कहानियो का है, जिनमें यदि कोई शिल्पगत जटिलता और चमत्कार है तो एक स्तरीय प्रतीकों का। इस वर्ग में महीप सिंह, कुलभूषण, धर्मेन्द्र गुप्त, जगदीश चतुर्वेदी, मधुकर सिंह, वेद राही, हृदयेश, हिमांशु जोशी, मृदुला गर्ग, बदीउज्जमां, श्रवणकुमार, दिनेश पालीवाल आदि अनेक कहानीकारो की कहानिया आती हैं।

सारांश यह है कि साठोत्तर काल में हिन्दी कहानीकारों ने कहानी के रूप और शिल्प को लेकर बड़े साहसिक प्रयोग किये हैं। इन साहसिक प्रयोगो के कारण इस बीच सरल कथा-शिल्प में लिखी जाने वाली कहानियो की उपेक्षा हुई है, वे चर्चाकारो को फीकी लगने लगी हैं। इस प्रवृत्ति से कहानीकार प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। फलत उन कहानीकारों ने भी इस दिशा में प्रयत्न किये जिनके पास वैसी सामर्थ्य नहीं थी और जो बुरी तरह असफल हुए।

इस प्रकार हिन्दी कहानी ने अपने लगभग अस्सी वर्ष के इतिहास में रूपात्मक प्रयोगो की एक लम्बी परम्परा बनायी है। इस परम्परा में वह सरल सरचना से जटिल सरचना की ओर अग्रसर हुई है। जब-जब उसमे वस्तुगत परिवर्तन हुआ है तब-तब उस वस्तु को प्रभावशाली ढग से व्यक्त करने के लिए उसने नये रूपों और नये शिल्प को अपनाया है। विश्व कथा-साहित्य का शायद ही ऐसा कोई रूप होगा और शायद ही कोई ऐसी प्राविधि होगी जो हिन्दी कहानी के इतिहास में सुलभ न हो। हिन्दी कहानी ने अपना प्रारम्भ वस्तु-वादिता से किया किन्तु वह निरन्तर आत्मचेतन होती गयी। उसकी आत्मचेतनता इतनी बढ़ी कि वह अपनी वर्तमान अवस्था मे एकालाप तक पहुच गयी प्रतीत होती है। उसका यह विकास-क्रम बीसवीं शताब्दी के भारतीय मध्यवर्ग मे व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के तीव्रतर होने के साथ जुडा हुआ है। हिन्दी कहानी पाठको से जुड़ने-कटने तथा व्यावसायिकता और कलात्मकता के अनोखे द्वन्द्व से गुजरती रही है, फिर भी उसकी समृद्धि से इन्कार नही किया जा सकता।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काव्य

(डा) मनोहरलाल

□□

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का उदय उन्नीसवीं शताब्दी मे मध्य में माना गया है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे भारत के स्वतत्रता सग्राम मे सघर्ष का यही समय है। इसी समय के साथ हिन्दी साहित्य के

सामाजिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक जीवन-मूल्य बदले तथा उनमे स्वाधीनता तथा संघर्ष का स्वर उभरा। हिन्दी-साहित्य की रीतिकालीन प्रतिबद्धता की कड़ियां चरमराने लगी और नव जागरण का सचर्वविहित स्वर उभरने लगा। इस अवधि मे भारतेन्दु का एक युग-प्रवर्तक प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप मे उदय हुआ और उनके नाम से काव्यधारा के इस नये उन्मेष को 'भारतेन्दु युग' कहा गया। आलोचकों ने भारतेन्दु को 'राष्ट्रीयता के प्रतीक' तथा 'भारतीय नवोत्थान के अग्रदूत' कहा है। इस तरह सन् १८५० ई० से सन् १९०० ई० तक की कालावधि को 'भारतेन्दु युग' के रूप मे आलोचना का विषय बनाया जाता है।

भारतेन्दु युग मे 'पुरानी' तथा 'नयी' धारा के कवि काव्यरचना मे लगे थे। पुरानी धारा के कवि रीतिकालीन काव्य-पद्धति का अनुसरण कर रहे थे और नयी धारा वाले आधुनिकता के सामयिक सदर्भ मे सामाजिक चेतना के साथ तालमेल बिठाने मे प्रयत्नशील थे। पुरानी धारा मे गढ़वाल के 'मौलाराम' काशा के 'ब्रजराज', 'मनसुक' तथा विलासपुर (हि प्र) के 'गणेशसिंह वेदी,' असनी के 'सेवक', रीवा के 'महाराज रघुराजसिंह', काशी के 'सरदार', अयोध्या के 'रघुनाथ दास राम सनेही', लखनऊ के 'ललित किशोरी', बस्ती के 'लछिराम', गुजरात के 'गोविंद गिल्ला भाई', मथुरा के 'नवनीत चौबे', आगरा के महाराज लक्ष्मण सिंह, मेरठ के गगादास तथा पजाब के 'उमादास', 'तोषहरि', वसतसिह 'ऋतुराज', बशी पडित', 'मैन', 'दलसिंह' आदि नाम उल्लेखनीय हैं। हां, इन्ही के साथ पुरानी धारा मे कार्यरत तथा नवीन धारा की ओर उन्मुख कवियो मे आचार्य शुक्ल ने भारतेन्दु, प अम्बिकादत्त व्यास, प्रताप नारायण मिश्र, प्रेमघन, ठाकुर जगमोहन सिंह, बाबू रामकृष्ण वर्मा, लाला सीताराम, हरिऔध, श्रीधर पाठक, रत्नाकर, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, वियोगी हरि', दुलारेलाल भार्गव, नाथूराम, शकर शर्मा, लाला भगवानदीन तथा गयाप्रसाद शुक्ल सनेही का नामोल्लेख किया है।

पुरानी धारा के कवि जहा रीतिकालीन प्रवृत्तियो का काव्य मे पिष्टपेषण कर रहे थे वहा नवीन धारा की ओर उन्मुख कवियो ने प्राचीन परम्परा के निर्वाह के साथ-साथ यथार्थवाद के धरातल पर सास्कृतिक नवीन चेतना, राष्ट्रीयता, देशप्रेम और भक्ति, सामाजिक कुरीतियो का विरोध, आर्थिक शोषण के विरुद्ध शखनाद करके, पुनर्जागरण का सदेश दिया। इस दृष्टि से भारतेन्दुयुगीन समसामयिक चेतना से जुड़े कवियो —भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, ठाकुर जगमोहन सिंह, प अबिकादत्त व्यास आदि ने कविता को नया स्वर तथा नयी दिशा दी। इन कवियो को भारत की दुर्दशा ने सताया, भारत की निर्धनता तथा पिछड़ेपन ने जगाया और इसके फलस्वरूप इन कविया ने काव्यगत राजनीतिक चेतना को देशप्रेम की ओर प्रेरित किया। सक्षेप मे भारतेन्दु युग ने काव्य के आधार पर देश को नयी मानसिकता ही नही दी बल्कि देश भर मे नवीन चेतना प्रवाहित हो गई। इस युग मे कविता की भाषा रही तो ब्रज ही, पर खडी बोली का प्रस्फुटन भी होने लग गया था जो द्विवेदी युग मे विकास को पहुचा।

भारतेन्दु युग के कवियो ने साहित्य-सृजन की जिस प्रक्रिया को समसामयिक जीवन-बोध तथा चिन्तन से जोडा था उसको शुद्ध खडी बोली के माध्यम से विशेष विकास बीसवी शती के प्रथम दो दशकों में मिला। इस काल-खण्ड का विशेष प्रतिनिधित्व आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से किया और विशेष प्रेरणा दे-देकर रचनाशील साहित्यकारो को अपने समय के साथ-साथ चलना सिखाया। इस अवधि में भारतेन्दु काल तक व्याप्त रीति पद्धति के शृगार के स्थान पर राष्ट्रभक्ति, राष्ट्रप्रेम, भारतीय संस्कृति तथा समाजसुधार आदि विषयो को अपनाया गया और इन विषयो पर प्रबध तथा मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य लिखे गए। कविता का मुख्य स्वर इतिवृत्तात्मकता रहा और प्रकृति-चित्रण तथा पुरातन सस्कृति की पुन. व्याख्या के परिप्रेक्ष्य मे आदर्शवाद तथा नैतिकता को बढ़ावा दिया गया। द्विवेदीजी ने खड़ी बोली को नव

तथा पद्य दोनों की भाषा बनाया और बनवाया। भाषा का प्रौढ़ रूप विशेष परिष्कार तथा परिमार्जन से प्रस्तुत किया। राष्ट्रीयता, सुधारवृत्ति तथा नैतिकता से गुजरती हुई इस कालखण्ड की कविता जहां उपदेशात्मक है वहीं वह भारतीय संस्कृति के वर्चस्व की बोलती तस्वीर भी है। इसमें राजनीतिक शोषण पर करारे व्यंग्य हैं। शिल्प की दृष्टि से भी इस युग की कविता में नये प्रयोग हुए, विशेषकर संस्कृत के वर्णिक छंदों तथा उर्दू के बहरों को लोकप्रियता मिली।

द्विवेदी युग के कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, हरिऔध, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचरित उपाध्याय; गिरिधर शर्मा नवरत्न, लोचनप्रसाद पाण्डेय, आदि ऐसे कवि थे जिनका द्विवेदीजी के साथ विशेष तालमेल था और इन्हें द्विवेदी-मण्डल के कवि कहा गया। लेकिन इस युग की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले द्विवेदी-मण्डल के बाहर कवि भी थे जो अपने ढग की प्रभावपूर्ण कविता को विशेष स्वरूप दे रहे थे। इन कवियों में प चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, रायकृष्णदास, रामचद्रशुक्ल, रायदेवीप्रसाद पूर्ण, नाथूराम, शकर शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल स्नेही, गोपाल शरण सिंह, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय, लाला भगवानदीन, तथा सत्यनारायण कविरत्न आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध में भारत को विषम सघर्ष से गुजरना पड़ा। गांधी के असहयोग आदोलन को अग्रेजों की दमन-नीति ने नया स्वर दिया। स्वतत्रता प्राप्ति की लहर मे नया उन्मेष आया। दोनों दशक के पूर्वार्द्ध मे ही द्विवेदीजी की अतिशय इतिवृत्तात्मकता तथा नैतिकताजन्य प्रतिबधो ने छायावाद का बीज बोया और जयशकर प्रसाद, मुकुटधर पाण्डेय, निराला तथा पत आदि कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण करके रहस्य-भावनामयी कविता का सूत्रपात किया। तीसरे दशक की उठान तक हिन्दी-साहित्य की नई काव्य प्रकृति का नामकरण 'छायावाद' पं मुकुटधर पाण्डेय ने किया। उन्हें छायावाद का प्रवर्तक कवि माना जाता है।

'मैं' और 'पर' के परिप्रेक्ष्य से दर्शन और कल्पना के समन्वय मे रहस्यात्मकता को सुलझाते-सुलझाते अपने अतीत तथा वर्तमान की धारा से कट जाने वाले छायावाद को 'पलायन का काव्य' तक कहा गया। लेकिन इसे नही नकारा जा सकता कि जहां द्विवेदी युग ने हिन्दी को 'प्रिय प्रवास' तथा 'साकेत' जैसी उत्कृष्ट रचनाएं दीं वहीं छायावाद ने भी हिन्दी-साहित्य को अमर साहित्यकार तथा ऐसी अमर काव्य-कृतियां दी हैं जिनमे भारतीय सस्कृति तथा दर्शन अपनी पूरी ऊर्जा के साथ अभिव्यक्त हैं।

'छायावाद' मे काव्य का स्वर दो तरह का है—(क) रोमानी तथा कल्पनाश्रित आत्माभिव्यक्तिपरक भाव तथा (ख) राष्ट्रीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यमूलक भाव। प्रथम वर्ग के कवियो मे मुकुटधर पाण्डेय, जयशकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा तथा रामकुमार वर्मा आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन कवियों ने 'आंसू', 'कामायनी', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'अनामिका', 'वीणा, 'ग्रंथि', 'पल्लव', 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'दीपशिखा', 'अजलि', 'निशीथ' तथा 'चित्ररेखा' प्रभृति ग्रथ दिए। इस युग के दूसरे वर्ग के कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, गुरुभक्तसिंह 'भक्त', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, सियाराम शरण गुप्त, भगवती चरण वर्मा तथा रामधारी सिंह दिनकर आदि के नाम उल्लेख्य हैं। छायावाद के प्रथम वर्ग के कवि जहां अन्तर्मुखी, कुठाग्रस्त, विषादमग्न तथा विरहपीड़ित होकर भावना और कल्पना के बल पर स्वप्नलोक मे विहार करते हुए प्रकृति के सौंदर्यबोध का पल्लू पकड़कर, अमूर्त जगत् के शब्दमय छाया-चित्र प्रस्तुत करते हैं वहीं दूसरे वर्ग के कवियों में कल्पना, भावना, प्रेम तथा लावण्य के प्रति वैसा मोह होते हुए भी राष्ट्रीयता का स्वर सर्वाधिक मुखर है। इन कवियों ने देश की असंगतियों, विद्रूपताओं तथा सामाजिक वैषम्य को दूर करने के लिए जनमानस का आह्वान किया है। कारण यह है कि इस वर्ग के कवियो के पास स्वतंत्रता सेनानियों की आत्मा थी। जागरण तथा उदबोधन

छायावाद के दोनो वर्गों के कवियों मे पाया जाता है।

जो भी हो छायावाद के आधार-स्तभ—प्रसाद, निराला, पत तथा महादेवी वर्मा की अन्तर्वैयक्तिकता, रहस्यात्मकता, दर्शन तथा सवेदन ने 'गीत युग' के रूप मे हरिवशराय बच्चन (मधुशाला, निशा निमंत्रण, एकांत संगीत, मिलन यामिनी, प्रणय-पत्रिका), नरेन्द्र शर्मा (प्रवासी के गीत, पलाशवन, हंसमाला, रक्तचदन, प्यासा निर्झर), रामेश्वर शुक्ल अचल (मधूलिका, अपराजिता, किरणवेला, लाल चूनर), सुमित्राकुमारी सिनहा (विहाग, आशा पर्व, पथिनी), जानकीवल्लभ शास्त्री, शम्भूनाथ सिंह, हंसकुमार तिवारी, तथा शांति-मेहरोत्रा आदि प्रमुख कवि भी दिए हैं।

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक के उत्तरार्द्ध मे छायावाद की अतिशय रूमानी भावभूमि, अतिशय भावुकता, वैयक्तिकता, वायवीयता तथा स्वच्छदता ने निराला और पंत तक को ठोस यथार्थ की ओर मोड़-कर समाज के ठोस यथार्थ का चित्रण करने के लिए उकसाया। इस अवधि मे रूसी-क्रांति को सफलता मिली, गाधीजी के आदोलनो की विफलता ने निराशा का वातावरण बनाया, मार्क्स की विचारधारा का सामयिक सदर्भों मे उन्मेष हुआ। साथ ही १९३६ ई 'प्रगतिशील लेखक-सघ' की स्थापना ने चिंतक कवियो की सोच को बदला, नयी भूमि तथा अभिव्यक्ति के नये आयाम दिए। विचार, कटु यथार्थ तथा क्रांति काव्य-विषय बन गए। इस तरह हिन्दी काव्य मे 'प्रगतिवाद' का सूत्रपात हुआ।

प्रगतिवादी काव्य मे मुखरित स्वर हुए—कृषक, नारी, श्रमिक आदि शोषित वर्ग के प्रति सवेदना-सहानुभूति की अभिव्यक्ति, शोषको के विरुद्ध आक्रोश, वैचारिक-सामाजिक दासत्व से मुक्ति, अधविश्वासो तथा जीवन मूल्यगत रूढियो का विरोध, पूजीवाद का विरोध तथा साम्यवाद का समर्थन। इस सदर्भ मे निराला (कुकुरमुत्ता, भिक्षुक, विधवा) तथा पत (युगवाणी, ग्राम्या) ने छायावाद की भावभूमि को छोड़कर प्रगतिवाद को विशेष दिशा दी और इस काव्यधारा को विकासपथ की ओर ले जाने वालो मे नागार्जुन (युगधारा, सतरगे पखो वाली, चदना), मुक्तिबोध (चाद का मुह टेढा है), केदारनाथ अग्रवाल (फूल नही रग बोलते हैं, गुल-मेंहदी), रामविलास शर्मा (रूप तरग), शिवमगल सिंह 'सुमन' (हिल्लोल, जीवन के गान, प्रलय-सृजन), त्रिलोचन शास्त्री (धरती), भवानी प्रसाद मिश्र, नेमिचद्र जैन तथा धूमिल की गणना की जाती है।

प्रगतिवाद का कवि कल्पना-लोक का विचरण छोड़कर भौतिक जीवन की ठोस भूमि पर कार्यरत हुआ था और कालान्तर मे कवियो ने 'कला के लिए कला' को तूल देकर भाषा-शैली तथा अभिव्यजना शिल्प को लेकर नये-नये प्रयोग करने शुरू किए। कलापक्ष की नवीनता, विचक्षणता, चमत्कारपूर्ण उपमाओं तथा अप्रस्तुत-योजना से पाठक को चकित-स्तभित करने की होड लगने लगी और इस तरह भाव तथा कला दोनो ही पक्षों मे नये-नये प्रयोगो को लेकर प्रस्तुत होने वाली कविता 'प्रयोगवाद' का रूप धारण कर गई। इस कविता मे बौद्धिकता प्रधान हो गई, भाषा का प्रयोग नितांत वैयक्तिक हो गया। जीवनगत अव्यवस्था को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया, नवीनता या मौलिकता के प्रति कवि का विशेष झुकाव रहने लगा। निराशा, कुण्ठा, तथा अतिनग्न यथार्थवाद आदि प्रयोगवाद की मूल सवेदना रहे।

प्रयोगवाद का उदय अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' (१९४३) से माना जाने के कारण इसका प्रवर्तक कवि अज्ञेय को माना जाता है। इस वर्ग के कवियो मे—अज्ञेय (इत्यलम्, हरीघास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, आगन के पार द्वार, कितनी नावों मे कितनी बार), शमशेर बहादुर सिंह (कुछ कविताएं, कुछ और कविताए), बालकृष्ण गुप्त (कवि और छवि, रात बीती), भवानीप्रसाद मिश्र (गीत फरोश), वीरेन्द्रकुमार जैन, गिरिजा कुमार माथुर (नाश और निर्माण), नरेश मेहता (बनपार की सुनो), लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, कुवर नारायण, रघुवीर सहाय, भारतभूषण

अग्रवाल केदारनाथ सिंह, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास आदि चर्चित रहे हैं।

नयी कविता—प्रयोगवाद का विकसित रूप है। इस काव्यधारा के उन्नयन के प्रमुख कारण थे—स्वतन्त्रता प्राप्ति, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भ्रष्ट वातावरण से जनमानस का मोह भंग, राजनीतिक मूल्यों का विघटन, सत्ता की लगाम थामने के लिए जोड़-तोड़, पाश्चात्य नव लेखन का प्रभाव आदि। 'नयी कविता' का प्रारम्भ जगदीश गुप्त द्वारा सम्पादित 'नयी कविता—।' (१९५४) से माना गया है। इसके प्रणेता प्रयोगवादी कवि ही थे। इस कविता में 'मानव के अस्तित्व की खोज', स्वतंत्र व्यक्तित्व, सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों का विघटन, असंतोष, सन्त्रास, भय, घुटन, आशंका, अकेलापन, मृत्यु, निस्संगता, शून्यता, अराजकता तथा विद्रूपता आदि प्रवृत्तियां मुख्य रहीं। इस क्षेत्र में—जगदीश गुप्त, केदारनाथ अग्रवाल, कुंवर नारायण, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, भारतभूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, रामदरश मिश्र, सूर्यनारायण दीक्षित, श्रीकांत वर्मा, दुष्यंत कुमार, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मदन वात्स्यायन, अज्ञेय, कीर्ति चौधरी, मलयज, श्याममोहन श्रीवास्तव, नागार्जुन, केदारनाथ सिंह, श्रीकान्त वर्मा, त्रिलोचन, रघुवीर सहाय, बालकृष्ण राव, प्रभाकर माचवे, लक्ष्मीकांत वर्मा, राजेन्द्र किशोर आदि सशक्त हस्ताक्षर माने गए हैं।

सातवें दशक में नयी कविता के भावबोध को जड़ अनुभव करके उसमें आ रहे परिवर्तन का विशेष बोध हुआ। *जगदीश चतुर्वेदी ने कविता की भावभूमि में आए परिवर्तन को 'अभिनव काव्य' (प्रारंभ १९६३* ई), 'गलत कविता', 'अकविता' तथा श्रीकांत वर्मा ने 'ताजी कविता' आदि कहा। कारण, नयी कविता—"भाव बोध के स्तर पर आज नितांत समसामयिक को ग्रहण करने में असमर्थ पा रही है"—इस स्थिति को पहुंच रही थी। इस बीच 'अकविता' चर्चा का विषय बनी और इसे "अब मान्य कविता से भिन्न और विशिष्ट" कविता के रूप में पहचानने का प्रयास किया गया। इस तरह 'अकविता', 'अस्वीकृत कविता', 'एण्टी कविता' या 'एब्सर्ड कविता' या 'बीट कविता' में भदेसपन, उधार ली हुई तथाकथित आधुनिकता, असामाजिकता, घोर अश्लीलता, विद्रूपता, ग्लानि, निराशा, भूख, वितृष्णा, मृत्यु-बोध, खीझ तथा किसी सीमा तक अघोरी जीवन का ऐसा वर्णन किया गया जो कवियों के वास्तविक जीवन में यथार्थ या अनुभव-व्यवहार के स्तर पर कहीं था ही नहीं। इस कोटि के काव्य-प्रणेताओं में—जगदीश चतुर्वेदी, नरेन्द्र मोहन, राजकुमार कुंभज, बलदेव वंशी, लीलाधर जगूड़ी, इब्बार रब्बी, ममता अग्रवाल, विनय स्वदेश भारती, आदि के नाम लिये जाते हैं।

हिन्दी कविता के वर्तमान के विषय में विश्वम्भर मानव ने लिखा है—"नयी पीढ़ी के कवियों का विशेष आग्रह इस बात पर है कि हमसे यह न पूछिए कि हम क्या लिखते है अथवा क्यों लिखते हैं, बल्कि जो लिखते हैं उसी को कैसे ही समझने का प्रयास कीजिए—वे अपने ही पाठक होना पसन्द करते हैं और इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करते कि उनका काव्य प्रेषणीय है या नहीं।"
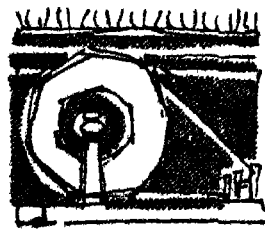
हिंदी गद्य के नए रूप

(डा) ओमप्रकाश सिंहल

□□

एक समय था जब हिन्दी साहित्य मे कविता का बोलबाला था, किन्तु आज सर्वत्र गद्य की ही दुंदुभी सुनाई देती है। गद्य साहित्य के विभिन्न रूपो ने आज कविता की धूम को काफी कम कर दिया है। अब गद्य साहित्य मे केवल परिमाण मे कविता की तुलना मे अधिक प्रकाशित हो रहा है, अपितु उसका रूप-रंग भी कविता से कहीं अधिक चटख है। गद्य साहित्य मे भी कहानी, उपन्यास, नाटक और निबन्ध का एकछत्र राज्य नही रहा है। अब तो सस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, यात्रावृत्त, पत्र, भेंटवार्ता, रिपोर्ताज आदि विधाओ ने भी अपनी एक अलग पहचान बना ली है। अतएव अब प्रत्येक पाठक के लिए कहानी जैसी पुरानी प्रतिष्ठित विधा के साथ-साथ इन नए साहित्यरूपो के ऐतिहासिक विकास से परिचित होना जरूरी हो गया है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आधुनिक युग के हिन्दी साहित्य को चार भागों में बांटा गया है— १ भारतेन्दु युग (सन् १८६८ से १९०० ई तक), २ द्विवेदी युग (सन् १९०० से १९१८ तक), ३ छायावाद युग (सन् १९१८ से १९३८ तक) तथा ४ छायावादोत्तर युग (सन् १९३८ से अब तक)।

हिन्दी गद्य की इन विभिन्न विधाओ का विकासमूलक अध्ययन भी हम सामान्यत इन्ही शीर्षकों के अतर्गत करेंगे।

सस्मरण

'स्मृ' धातु मे सम् उपसर्ग तथा ल्युट् प्रत्यय लगाकर निर्मित्त हुए सस्मरण शब्द का अर्थ है सम्यक् अर्थात् पूर्णरूपेण स्मरण। यह स्मरण व्यक्ति, घटना, दृश्य आदि किसी का भी हो सकता है किन्तु उसमे वैयक्तिक आत्मीय सम्बन्ध का होना बहुत जरूरी है। इस स्मृति के माध्यम से लेखक उन मानव गुणो को तलाशता है जो मनुष्य को जन एव यात्रिक बनने से रोकते हैं और जिन्दगी जीने के लिए एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

भारतेन्दु युग—हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाओ के समान सस्मरणो की शुरुआत भी भारतेन्दु युग से ही होती है। स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' शीर्षक से एक सुंदर संस्मरण लिखा था जो 'कविवचन सुधा' मे प्रकाशित हुआ था। हिन्दी के इस पहले सस्मरण मे लेखक के संपर्क मे आए पात्रो का प्रभावी अकन है। बालमुकुन्द गुप्त इस युग के दूसरे उल्लेखनीय संस्मरण लेखक हैं। उन्होंने अपने सस्मरण दिवगत आत्माओ के प्रति श्रद्धाजलि के रूप मे लिखे हैं।

प्रवृत्यात्मक दृष्टि से इस युग का सस्मरण साहित्य पुस्तकाकार प्रकाशित न होकर पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुआ है। सस्मरण के गुणों का बखान उनकी उल्लेखनीय विशेषता है।

द्विवेदी युग—भारतेन्दु युग की तुलना मे द्विवेदी युग का संस्मरण साहित्य अधिक समृद्ध और वैविध्यपूर्ण है, लेकिन भारतेंदु युग के समान इस युग का प्रतिनिधि संस्मरण साहित्य भी पुस्तकाकार प्रकाशित न होकर पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित हुआ है। 'सरस्वती', 'समालोचक', 'इन्दु', चांद (इलाहाबाद), चांद (लाहौर) इस युग की कतिपय उल्लेखनीय पत्रिकाएं थी। अतएव सस्मरण साहित्य का बहुलांश भी इन्हीं

पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है। इनमें भी सरस्वती में सर्वाधिक सस्मरण प्रकाशित हुए। सर्वश्री चद्रधर शर्मा गुलेरी, रामकुमार खेमका, जगत बिहारी सेठ, पाण्डुरंग खानखोजे, प्यारेलाल मिश्र, काशी प्रसाद जायसवाल, जगन्नाथ खन्ना आदि इस युग के कतिपय उल्लेखनीय रचनाकार हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी अनेक रोचक सस्मरण लिखकर एव द्विषयक साहित्य समृद्ध किया। प्रवृत्यात्मक दृष्टि से इस रूप का अधिकांश संस्मरण साहित्य प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखा गया है और उनका मुख्य लक्ष्य पश्चिम के रीतिरिवाजों तथा दर्शनीय स्थलों से परिचित कराना है।

छायावाद युग — यह युग हिंदी सस्मरण साहित्य के विकास का तीसरा महत्वपूर्ण युग है। पूर्ववर्ती युग के समान इस युग में भी पत्र-पत्रिकाओ ने ही संस्मरण साहित्य को सर्वाधिक समृद्ध किया। सरस्वती के अतिरिक्त विशाल भारत, सुधा, माधुरी, हस आदि इस युग की प्रसिद्ध पत्रिकाएं थी। इन सभी मे सस्मरण साहित्य प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुए। 'हंस' के 'प्रेमचद स्मृति' अक में प्रकाशित संस्मरण तो हिंदी साहित्य की अनमोल निधि हैं। सर्वश्री रामनारायण मिश्र, अमृतलाल चक्रवर्ती, बनारसीदास चतुर्वेदी, प पद्मसिंह शर्मा, इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा, श्रीराम शर्मा, मन्मथनाथ गुप्त आदि इस युग के उल्लेखनीय रचनाकार हैं।

छायावादोत्तर युग—सस्मरण साहित्य का सबसे समृद्ध युग छायावादोत्तर युग है। इस युग मे न केवल पत्र-पत्रिकाओं मे ही सस्मरण साहित्य प्रकाशित हुआ अपितु पुस्तकाकार रचनाए भी पर्याप्त परिमाण में प्रकाशित हुईं। अभिनन्दन तथा स्मृति-ग्रथो में भी पर्याप्त संस्मरण सकलित किए गए। विषय-वैविध्य की दृष्टि से भी इस युग का साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य को बहुत पीछे छोड गया। साहित्यकारों के अतिरिक्त चिकित्सको, खिलाडियो, फिल्मी कलाकारो, समाजसुधारको, राजनीतिज्ञों आदि सभी ने अपने-अपने सस्मरण लिखे। इस प्रकार इस युग के साहित्य को सर्वाधिक लेखकों ने समृद्ध किया। सुश्री महादेवी वर्मा ने इस दिशा मे सर्वाधिक योग दिया। उन्होंने अपने सपर्क मे आनेवाली दीन-हीन नारियो, शोषित व्यक्तियो, साहित्यकारों जीव-जन्तुओं आदि का जैसा मार्मिक प्रत्यंकन किया है वह अपने मे बेजोड है। इनके सस्मरण 'अतीत के चल-चित्र', 'स्मृति की रेखाए', {'पथ के साथी' और 'मेरा परिवार' मे सकलित हैं। सर्वश्री राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, देवेन्द्र सत्यार्थी, उपेन्द्रनाथ अश्क, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह दिनकर, हरिवशराय बच्चन, क्षेमचन्द्र सुमन आदि इस युग के कतिपय अन्य उल्लेखनीय कृतिकार हैं।

रेखाचित्र

हिन्दी में रेखाचित्र साहित्य लिखना कब से प्रारम्भ हुआ यह एक बहुत उलझा हुआ प्रश्न है। इसका कारण यह है कि बहुत समय तक संस्मरणो को ही रेखाचित्र कहा जाता रहा है। प्रेमचन्द के सुपुत्र अमृतराय ने मार्च १९३९ में 'हस' का रेखाचित्र विशेषांक निकाला था। इसके सपादकीय मे उन्होंने लिखा था, 'सच्चे और मार्मिक रेखाचित्र लिखने का युग अभी भारत में नहीं आया है।" कहने की आवश्यकता नहीं कि यह टिप्पणी रेखाचित्र साहित्य की तद्युगीन स्थिति का सही मूल्यांकन करती है, और यही कारण है कि हिन्दी रेखाचित्र साहित्य की वास्तविक शुरुआत इस विशेषाक के प्रकाशन से मानी जाती है। 'हस' के ही समान 'मधुकर' पत्रिका ने भी इस साहित्य-रूप के विकास मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इस पत्रिका का रेखाचित्र अक सन् १९४६ में इस विधा के वरिष्ठ लेखक बनारसीदास चतुर्वेदी के सपादकत्व मे प्रकाशित हुआ। इस विशेषांक की विशेषता यह थी कि इसमें सर्जनात्मक रचनाओं के साथ-साथ प्रारभ में एक सारगर्भित विकास-मूलक भूमिका भी दी गई थी।

उपर्युक्त भूमिका से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी रेखाचित्र की परंपरा बहुत पुरानी नही है। इसका विकास छायावादोत्तर युग से शुरू होता है। फिर भी इसने हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक स्थायी स्थान बना लिया है। इस साहित्य रूप को प्रतिष्ठित करने मे सर्वश्री महादेवी वर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, प श्रीराम शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, डा विजयमोहन शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, श्रीमती सत्यवती मलिक, जगदीशचद्र माथुर आदि रचनाकारों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। महादेवी वर्मा की रचनाए रेखाचित्रो की तुलना मे संस्मरणों के ही अधिक निकट बैठती हैं किन्तु उनमें चित्रोपमता का एक ऐसा गुण मिलता है जिससे उनकी रचनाओ को अधिकाश आलोचक रेखाचित्र कह देते है। चतुर्वेदी जी ने अग्रेजी के प्रसिद्ध रेखाचित्रकार ए जी गार्डनर को अपना आदर्श मानते हुए जहा एक ओर साहित्यकारो, समाजसेवियो, क्रातिकारियो आदि के मार्मिक रेखाचित्र लिखे हैं वहां दूसरी ओर समाज के उपेक्षित, शोषित एव निर्धन पात्रो पर भी हृदय-स्पर्शी रेखाचित्र लिखे हैं। पं श्रीराम शर्मा ने जगली जीव-जतुओ के स्वभाव तथा रूपाकार को अपने शब्दो मे बाधकर रख दिया है तो बेनीपुरी ने समाज के अनेक उपेक्षित पात्रो को सदा-सदा के लिए अमर कर दिया है। प्रकाशचन्द्र गुप्त नपे-तुले शब्दो एव छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हुए निर्जीव वस्तुओं एव स्थानो का प्रभावी चित्र निर्मित करने मे माहिर हैं तो जगदीशचन्द्र माथुर व्यक्ति चित्र खीचने मे अपनी समता नही रखते।

समग्रत यह कहा जा सकता है कि हिन्दी मे संस्मरण मूलक रेखाचित्र ही अधिक लिखे गए हैं तथा सर्वथा तटस्थ होकर सक्षिप्ताकार रचनाए कम रची गई हैं। अभी इस दिशा मे विकास की काफी सभावनाए हैं।

आत्मकथा

गद्य-साहित्य की अन्य विधाओ के समान आत्मकथा साहित्य के वास्तविक विकास की कहानी आधुनिक युग से शुरू होती है—यो इससे पूर्व बनारसीदास जैन विरचित 'अर्द्धकथानक' तथा गुरु गोविन्दसिंह रचित 'विचित्र नाटक' नामक पद्यात्मक रचनाओ के रूप मे यह विधा काफी पहले अपने अस्तित्व की घोषणा कर चुकी थी। गद्य मे लिखित आत्मकथा परम्परा की पहली महत्वपूर्ण कृति स्वामी दयानन्द कृत 'आत्म चरित' है।

भारतेन्दु-युग—इस युग मे अनेक साहित्यकारों ने आत्मकथात्मक रचनाए लिखी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कुछ आपबीती, कुछ जगबीती', अम्बिकादत्त व्यास ने 'निज वृत्तान्त', श्रीधर पाठक ने 'स्व-जीवनी' आदि के द्वारा इस साहित्यधारा के विकास में योग दिया। लेकिन ये सभी आत्मकथाए अत्यन्त सक्षिप्ताकार थीं। इन्हें आतमकथा कहने के स्थान पर आत्म-संस्मरण कहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इनमे तथ्य सग्रह पर बल था। जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओ को चुनकर अतर्बाह्य व्यक्तित्व का निरूपण इनमे नही मिलता। इस दृष्टि से इस युग मे स्वामी श्रद्धानन्द रचित 'कल्याण मार्ग का पथिक' ही एकमात्र उल्लेखनीय कृति ठहरती है।

द्विवेदी-युग — भारतेन्दु युग के समान इस युग मे भी आत्मकथा का सक्षिप्ताकार निबन्धात्मक रूप ही अधिक देखने को मिलता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी विरचित 'मेरी जीवन रेखा' तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखी गई 'आत्म-संस्मरण' ऐसी ही रचनाए हैं। सत्यानन्द अग्निहोत्री कृत 'मुझमें दैवी जीवन का विकास' को अवश्य एक अपवाद माना जा सकता है।

छायावाद युग—पूर्ववर्ती युगो की अपेक्षा इस युग में आत्मकथा साहित्य का अपेक्षाकृत अधिक विकास

हुआ। इस युग मे मुंशी प्रेमचंद ने हंस का 'आत्मकथा विशेषांक' प्रकाशित किया। इस अक में स्वय मुंशी प्रेमचंद के अतिरिक्त अपने समय के अन्य अनेक लेखकों जैसे सर्वश्री विनोदशकर व्यास, विश्वभर नाथ शर्मा कौशिक राधेश्याम कथावाचक आदि की आत्मकथापरक रचनाए प्रकाशित हुईं। इसके अतिरिक्त भाई परमानन्द ने 'आपबीती', श्रीरामविलास शुक्ल ने 'मैं क्रातिकारी कैसे बना', आचार्य रामदेव ने 'मेरे जीवन के कुछ पृष्ठ', व हीरानन्द शास्त्री ने 'मेरे जीवन के कुछ पृष्ठ' नामक रचनाए लिखकर इस विधा को काफी समृद्ध किया। लेकिन इस युग की सबसे महत्वपूर्ण रचनाए राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की 'आत्मकथा' तथा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस कृत 'तरुण के स्वप्न' हैं। ये दोनो अनूदित कृतियाँ हैं। महात्मा गाधी ने अपनी आत्मकथा गुजराती मे लिखी थी जिसका हिन्दी अनुवाद हरिभाऊ उपाध्याय ने किया था। यह आत्मकथा विश्व साहित्य मे एक बेजोड रचना मानी जाती है। इसका कारण यह है कि इस आत्मकथा मे महात्मा गाधी ने अपने जीवन की उन दुर्बलताओ को भी बिना दुराव-छिपाव के लिख दिया है जिन्हें लोग प्राय छिपाना चाहते हैं।

छायावादोत्तर युग—आत्मकथा साहित्य का सबसे समृद्ध युग यही युग है। इस युग में गुण और परिमाण दोनो ही दृष्टियो से इस विधा का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस युग मे अनेक राजनीतिज्ञों, समाज-सेवको, साहित्यकारो आदि की मौलिक एवं अनूदित आत्मकथाए प्रकाशित हुई हैं। राजनीतिक-सामाजिक क्षेत्रो मे काम करने वाले जिन व्यक्तियों की आत्मकथाए इस युग मे प्रकाशित हुई हैं उनमे भवानीदयाल सन्यासी, डा राजेन्द्र प्रसाद, अजितप्रसाद जैन, गंगाप्रसाद उपाध्याय, जानकीदेवी बजाज, नरदेव शास्त्री तथा क्षुल्लक गणेश प्रसाद वर्णी की आत्मकथाए उल्लेखनीय हैं। इनमे भी डा राजेन्द्रप्रसाद की 'आत्म-कथा' सबसे महत्वपूर्ण रचना है। इस रचना मे लेखक ने सीधी-सादी आडम्बरहीन भाषा मे अपने पारिवारिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक रीति-रिवाज, व्रत-उत्सव तथा ग्रामीण जीवन की जैसी मनोरम झांकी प्रस्तुत की है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन सबके साथ राजनीतिक परिदृश्य भी यथास्थान मुखरित हो उठा है।

इस युग मे जिन साहित्यकारों की आत्मकथाए प्रकाशित हुई हैं, उनमे सर्वश्री डा श्यामसुन्दर दास, वियोगी हरि, विनोद शकर व्यास, शांतिप्रिय द्विवेदी, कालिदास कपूर, देवेन्द्र सत्यार्थी, सेठ गोविन्ददास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पाण्डेय बेचैन शर्मा 'उग्र', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र माधव, वृदावन लाल वर्मा, हरिवशराय बच्चन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रोचकता की दृष्टि से बच्चन की आत्मकथा सर्वोपरि ठहरती है। यह 'क्या भूलू, क्या याद करू', 'नीड का निर्माण फिर' तथा 'बसेरे से दूर' शीर्षक से तीन भागों में प्रकाशित हुई है।

हिन्दी आत्मकथा साहित्य पर समग्र रूप से विचार करने पर यह पता चलता है कि उसमे जहां एक ओर आत्मकथाकारो के अपने कार्य-क्षेत्र का एक अत्यन्त स्पष्ट चित्र उभर कर आया है वहां दूसरी ओर पारि-वारिक व्रत-उत्सव, अन्धविश्वास, जीवन-मूल्य आदि भी अनायास मुखरित हो उठे हैं। इस प्रकार ये आत्म-कथाएं भारत का सामाजिक इतिहास लिखने के लिए महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करती हैं।

जीवनी

हिन्दी में जीवनी विषयक साहित्य के प्रारंभिक चिह्न तो सोलहवी-सत्रहवी शताब्दी की रचनाओं यथा 'पोथी सचुखंड' (जिसमें गुरु नानक की जीवनी और व्याख्या है) में खोजे जा सकते हैं किन्तु इसका क्रमिक विकास आधुनिक काल से ही दिखाई देता है।

भारतेंदु युग—गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के समान इस साहित्यधारा का पहला महत्त्वपूर्ण चरण भी यही युग है। इस युग मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त कार्तिक प्रसाद खत्री, काशीनाथ खत्री, रमाशंकर व्यास, देवी प्रसाद मुंसिफ, बालमुकुद गुप्त, अम्बिकादत्त व्यास आदि ने अनेक महत्त्वपूर्ण जीवनियां लिखीं। इस युग में देश-विदेश के इतिहास-प्रसिद्ध महापुरुषों के जीवनवृत्त लिखने पर ही अधिक बल दिया गया। शैली-शिल्प की दृष्टि से इस युग की रचनाओ मे पाठक के मन को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेने की क्षमता नही है।

द्विवेदी युग—यह युग हिन्दी जीवनी साहित्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। इस युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त सर्वश्री रामविलास सारदा, दयाराम, चिम्मनलाल वैश्य, महादेव भट्ट, पारसनाथ त्रिपाठी, शीतलाचरण वाजपेयी, ज्वालादत्त शर्मा, लक्ष्मीधर वाजपेयी, नाथूराम प्रेमी, चन्द्रशेखर पाठक, गगाप्रसाद गुप्त, सूर्यनारायण त्रिपाठी आदि अनेक लेखको ने जीवनियां लिखी। प्रवृत्यात्मक दृष्टि से इस युग मे मुख्यत चार प्रकार का जीवनी साहित्य लिखा गया—(१) आर्य समाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द तथा अन्य महापुरुषो से सम्बन्धित जीवनियां, (२) राष्ट्रीय महापुरुषों यथा लाला लाजपतराय, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय आदि से सम्बद्ध जीवनियां, (३) देश विदेश मे इतिहास-प्रसिद्ध महापुरुषो यथा पृथ्वीराज चौहान, महाराणा प्रताप, शिवाजी, गैरी बाल्डी, नेपोलियन बोनापार्ट आदि से सबधित जीवनिया तथा (४) देश की महान् महिलाओ यथा रानी भवानी, दुर्गावती, नूरजहां, झासी की रानी लक्ष्मीबाई आदि से सम्बद्ध जीवनियां। इस प्रकार इस युग मे विपुल मात्रा मे जीवनी साहित्य लिखा गया। इस युग के लेखको का लक्ष्य तद्युगीन जनता के मन मे देश-प्रेम की भावना जागृत करना था। परिणामत इन जीवनियो मे त्याग, बलिदान तथा कर्तव्य-भावना विषयक प्रकरणो को प्रमुखता मिली है।

छायावाद युग—यह युग हिन्दी जीवनी साहित्य का तीसरा मुख्य पड़ाव है। यह युग राष्ट्रीय आन्दोलन का युग था। परिणामत इस युग मे राष्ट्रीय नेताओं से सम्बद्ध जीवनिया लिखने की प्रवृत्ति अधिक बलवती रही। इसके अतिरिक्त इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषो तथा महान् महिलाओ की जीवनियां भी लिखी गईं। महात्मा गाधी इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता थे फलत उनसे सम्बद्ध जीवनिया सर्वाधिक मात्रा मे लिखी गईं। सर्वश्री नवजादिक लाल श्रीवास्तव, ईश्वर प्रसाद शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, गणेशशकर विद्यार्थी, इन्द्र विद्यावाचस्पति, गौरीशकर, हीराचन्द ओझा, मुशी प्रेमचन्द, जहूर-बक्श, मन्मथनाथ गुप्त इस युग के उल्लेखनीय रचनाकार हैं।

छायावादोत्तर युग—इस युग मे हिन्दी जीवनी साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ। इस युग में विषय-परिधि का पर्याप्त विस्तार हुआ। यही कारण है कि इस युग मे लोकप्रिय नेताओं, सतो-महात्माओ, देश-विदेश की महान् विभूतियों की ही नहीं अपितु वैज्ञानिको, खिलाडियो, साहित्यकारो आदि से सम्बद्ध जीवनियां भी प्रचुर परिमाण मे लिखी गईं। इस युग मे विभिन्न क्षेत्रो के प्रमुख व्यक्तियो के जीवन पर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखने के साथ-साथ एक ही कृति मे अनेक महान आत्माओं के जीवन-चरित लिखने की प्रवृत्ति का भी विकास हुआ। सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, राहुल साकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, डा राजेन्द्र प्रसाद, जैनेन्द्र कुमार, ऋषि जैमिनी बरुआ, शिवरानी प्रेमचद, मदनगोपाल, अमृतराय, रामविलास शर्मा, क्षेमचद्र सुमन, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश, सुमगल प्रकाश, शिवकुमार कौशिक, भारतभूषण अग्रवाल, ओमप्रकाश सिंहल आदि इस युग के उल्लेखनीय रचनाकार हैं। सर्वश्री मदनगोपाल, अमृतराय, रामविलास शर्मा तथा विष्णु प्रभाकर ने क्रमश 'कलम का मजदूर', 'कलम का सिपाही', 'निराला की साहित्य साधना'

तथा 'आवारा मसीहा' के माध्यम से जीवनी-रचना के नवीन स्थापत्य की स्थापना की। अब जीवनी तथ्यो का ब्यौरा भर नहीं रह गई है अपितु उसमें जीवन के स्पन्दन की अनुगूंज सुनाई देती है। यह तय है कि भविष्य का जीवनी साहित्य इसी दिशा की ओर अग्रसर होगा।

पत्र, इण्टरव्यू, रिपोर्ताज तथा यात्रावृत्त

(डा.) उषा सिंहल

□□

पत्र

यह कहना बहुत कठिन है कि पत्र-लेखन-कला का आरभ कब हुआ होगा किंतु इतना तय है कि पत्र लिखने की परपरा तभी शुरू हो गई होगी जब मनुष्य ने लिपि का आविष्कार किया होगा। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अत्यत प्राचीन काल मे शकुंतला ने दुष्यत को, दमयती ने नल को तथा रुक्मणी ने कृष्ण को पत्र लिखे थे। इसी प्रकार से कृष्ण भक्ति की दीवानी मीराबाई को जब परिवार वालो ने बहुत परेशान किया था तब उनके तथा गोस्वामी तुलसीदास के मध्य पत्राचार हुआ था। लेकिन इतना सब कुछ होते हुए भी हमारे देश मे पत्रों के सकलन-सपादन की परपरा बहुत प्राचीन नही है। इस प्रवृत्ति का विकास तो पश्चिमी सभ्यता के सपर्क के परिणामस्वरूप हुआ। हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाओ के समान पत्र साहित्य का श्रीगणेश भारतेदु युग से न होकर बहुत पहले से होता है। भारतेंदु युग से पहले के पत्र साहित्य को हम दो वर्गों मे बांट सकते हैं— (क) प्रशासनिक पत्र तथा (ख) व्यक्तिगत पत्र। प्रशासनिक पत्रो के अतर्गत फरमान, सनद, रुक्का आदि आते हैं। इस प्रकार के पत्रो का बहुमूल्य संग्रह डा धीरेंद्र वर्मा तथा डा लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय द्वारा 'प्राचीन हिन्दी पत्र सग्रह' मे किया गया है। डा काशीनाथ शकर केलकर द्वारा रचित 'अट्ठारहवीं सती के हिन्दी पत्र' तथा डा नारायण सिंह भाटी द्वारा संपादित पत्रिका परंपरा के भाग चौबीस मे भी ऐसे बहुत से पत्र सकलित है। डा महेंद्र प्रताप सिंह से अपनी कृति 'ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल' मे भी पर्याप्त महत्वपूर्ण पत्र संकलित किये हैं। इन्हीं ग्रंथों में राजाओं, नवाबो, कपनी के गवर्नरो आदि के द्वारा लिखे गये अनेक निजी पत्र भी संकलित हैं।

पत्र-लेखन के विकास की वास्तविक परंपरा भारतेंदु युग से ही प्रारभ होती है। इस युग मे पत्रो के स्वतंत्र संकलन तो प्रकाशित नहीं हुए किन्तु आगे चलकर जो सग्रह ग्रथ छपे उनसे पता चलता है कि इस युग में यह कला काफी समृद्ध थी। सर्वश्री दयानंद सरस्वती, भारतेंदु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र तथा राधाकृष्ण दास इस युग के प्रमुख पत्र लेखक हैं। इनके अतिरिक्त प. किशोरीलाल

गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह, माधव प्रसाद मिश्र आदि ने भी अत्यन्त प्रभावी पत्र लिखे। इस युग में सबसे अधिक पत्र महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखे जो आगे चलकर स्व महात्मा मुंशीराम द्वारा 'ऋषि दयानद का पत्र-व्यवहार' भाग-एक (१६१०), श्री चमूपति द्वारा 'ऋषि दयानद का पत्र-व्यवहार' भाग-२ (१६३५), प भगवत दत्त द्वारा 'ऋषि दयानद सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' भाग १ (१६१८) तथा भाग-२ (१६८१) शीर्षको से सकलित-प्रकाशित हुए। महर्षि दयानद सरस्वती के पत्र उनके व्यक्तित्व एव जीवन-दर्शन के प्रबल परिचायक हैं। इनसे वैदिक सस्कृति मे उनकी अपार आस्था तथा हिन्दी भाषा के प्रति अटूट प्रेम ही व्यक्त नही होता अपितु यह भी ज्ञात होता है कि वे गोरक्षा की ओर ध्यान देने वाले पहले व्यक्ति थे। इस युग के दूसरे महत्वपूर्ण लेखक भारतेंदु हरिश्चद्र पत्र-लेखन-कला की दिशा मे कितने जागरूक थे इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्होने 'प्रशस्ति-सग्रह अथवा पत्र-बोध' शीर्षक से एक स्वतत्र पुस्तिका ही लिख दी थी। अपने पत्रों के लिखने के लिए उन्होंने शनि से शुक्र तक के सातो दिनो के लिए अलग-अलग रग के कागज और उन पर उपयुक्त दोहे तैयार किये हुए थे। इससे दिन का उल्लेख किये बिना ही पाठक को यह ज्ञात हो जाता था कि वह पत्र किस दिन लिखा गया था। भारतेंदु के पत्रों से हमे उनकी रसिकता, उदारता, अध्ययन प्रियता तथा उत्कट हिन्दी प्रेम का परिचय प्राप्त होता है।

हिन्दी पत्रो के विकास का दूसरा महत्वपूर्ण सोपान द्विवेदी युग है। इस युग के प्रमुख पत्र लेखक सर्व-श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा, सैयद अमीर अली मीर, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, मैथिली-शरण गुप्त आदि हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी सरस्वती के सपादक थे। अतएव सपादक की हैसियत से उन्होंने अपने समय के सैकडो वरिष्ठ तथा नवोदित लेखको को पत्र लिखे थे। उनका पत्र-व्यवहार अत्यत नियमित था। वे रुग्णावस्था मे भी इस नियम को भग नही होने देते थे। उनके पत्र अनेकत्र सकलित हुए हैं। बैजनाथ सिंह विनोद द्वारा सपादित 'द्विवेदी युग के साहित्यकारो के कुछ पत्र' तथा 'द्विवेदी पत्रावलि' नामक पुस्तको तथा 'भारतीय साहित्य', भाषा के 'द्विवेदी स्मृति अक' सम्मेलन पत्रिका के 'पत्र विशेषाक' आदि मे उनके महत्वपूर्ण पत्र सकलित हैं। द्विवेदीजी के पत्रो से उनकी स्पष्टवादिता, निर्भीकता, कर्त्तव्यपरायणता, प्रतिभा-अन्वेषण की क्षमता, स्वाभिमान, विनम्रता, भावुकता आदि गुणो का पता लगता है। भाषा की शुद्धता के प्रति वे कितने आग्रहशील थे इसका पता भी इन पत्रो से लगता है।

द्विवेदी युग के दूसरे प्रमुख पत्र लेखक आचार्य पद्मसिंह शर्मा थे। उनके पत्रो का एक अच्छा सकलन प बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'पद्मसिंह शर्मा के पत्र' शीर्षक से किया है। उनके बहुत से पत्र 'भारतीय साहित्य' पत्रिका के विभिन्न अको मे भी प्रकाशित हुए हैं। इन पत्रो के माध्यम से तद्‌युगीन हिन्दी साहित्य की गति-विधियो तथा स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए किये जा रहे प्रयत्नों की सच्ची झाकी देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त इन पत्रो मे उनकी विनोदी प्रकृति तथा अध्ययनशील स्वभाव का पता चलता है।

सैयद अमीर अली मीर के पत्रो से उनकी साहित्य-साधना की जानकारी प्राप्त होती है। राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह के पत्रो से उनके शील सौंदर्य की झलक मिलती है तो मैथिलीशरण गुप्त के पत्रों से उनकी विनम्रता, आत्मीयता, सरलता आदि चारित्रिक गुणो का परिचय प्राप्त होता है।

समग्रत इस युग का पत्र साहित्य तद्‌युगीन हिन्दी साहित्य की गतिविधियों पर प्रकाश डालने के साथ-साथ समसामयिक भारतीय जीवन के विविध पक्षो को उजागर करता हुआ साहित्यकारों के निश्छल स्वभाव का परिचय देता है।

हिन्दी पत्र साहित्य का तीसरा महत्वपूर्ण सोपान है छायावाद युग। इस युग के पत्र साहित्य को साहित्य-कारो तथा राजनीतिज्ञो ने समान रूप से समृद्ध किया। इस दृष्टि से उल्लेखनीय साहित्यकार हैं सूर्यकांत त्रिपाठी

निराला तथा मुंशी प्रेमचन्द। निराला के काफी उल्लेखनीय पत्र, जानकीवल्लभ शास्त्री द्वारा संपादित 'निराला के पत्र', डा रामविलास शर्मा की पुस्तक 'निराला की साहित्य साधना भाग-तीन' तथा 'निराला रचनावलि खण्ड-आठ' में सकलित हैं। इन सभी ग्रथों मे सकलित पत्रों से निराला के वैयक्तिक जीवन के विभिन्न पक्षों की जानकारी तो प्राप्त होती ही है, उस युग के साहित्यिक परिवेश का चित्र भी उजागर होता है, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा पडित पद्मसिह शर्मा के समान मुशी प्रेमचन्द भी पत्रों के अविलम्ब उत्तर देने मे विश्वास रखते थे। अतएव उन्होंने अपने जीवन-काल में बेहिसाब पत्र लिखे। इस अपरिमित भण्डार का कुछ अश मदन गोपाल तथा अमृतराय द्वारा सपादित 'चिट्ठी पत्री भाग-एक तथा दो' के अतिरिक्त उग्र के 'फाइल तथा प्रोफाइल' 'प्रसाद के नाम पत्र' तथा निराला की साहित्य साधना भाग-तीन मे संकलित है। प्रकाशचन्द्र गुप्त ने हंस के अक्तूबर, १९४८ के अक मे उनके कुछ पत्र प्रकाशित कराये थे। कुछ पत्र डा इन्द्रनाथ मदान की पुस्तक 'प्रेमचन्द एक विवेचन' तथा हसराज रहबर की पुस्तक 'प्रेमचन्द जीवन कला और कृतित्व' में सकलित हैं। ये सभी संकलित पत्र यह स्पष्ट करते हैं कि प्रेमचन्द किसी प्रकार की कृत्रिमता मे विश्वास नहीं करते थे। इन पत्रों से तद्युगीन हिन्दी, उर्दू साहित्य की एक प्रामाणिक झलक भी मिलती है।

समग्रत इस युग के समृद्ध पत्र साहित्य मे समकालीन हिन्दी साहित्य तथा भारतीय इतिहास की अकृत्रिम गाथा अकित है।

हिन्दी पत्र साहित्य का सबसे समृद्ध युग छायावादोत्तर युग है। इस युग मे जहा एक ओर पूर्ववर्ती युगों के महत्वपूर्ण व्यक्तियो के पत्रो के सकलन-संपादन एव प्रकाशन पर बल रहा वहा दूसरी ओर साहित्य, राजनीति, समाजसेवा आदि विभिन्न क्षेत्रो की महान विभूतियो के पत्रो के सकलन भी प्रकाशित हुए। वृन्दावनदास द्वारा सपादित 'बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' तथा 'डा वासुदेव शरण अग्रवाल के पत्र' हरिवशराय बच्चन द्वारा सपादित 'बच्चन के नाम पत्र के सौ पत्र' तथा 'बच्चन के नाम पत्र के दो सौ पत्र', मधुरेश द्वारा सपादित 'यशपाल के पत्र', श्री रमण शाडिल्य द्वारा सपादित 'बाबू वृन्दावनदास के पत्र', डा जीवनप्रकाश जोशी द्वारा सपादित 'बच्चन पत्रो में', नेमिचद्र जैन द्वारा उनके और मुक्तिबोध के बीच हुए पत्राचार का सकलन 'पाया पत्र तुम्हारा', मुकुन्द द्विवेदी द्वारा सपादित हजारीप्रसाद द्विवेदी के पत्रो का सग्रह 'पत्र', डा विजयेंद्र स्नातक के पत्र सग्रह 'अनुभूति के क्षण', किशोरीदास वाजपेयी द्वारा सपादित 'साहित्यिको के पत्र', पाण्डेय बेचैन शर्मा उग्र के सकलन 'फाइल और प्रोफाइल', वियोगी हरि द्वारा सपादित 'बडो के प्रेरणादायक कुछ पत्र', रामनाथ सुमन द्वारा संपादित 'उत्तर प्रदेश मे गाधी जी', विनोबा भावे के पत्रों का सग्रह 'विनोबा के पत्र', डा राम मनोहर लोहिया के पत्रों का सग्रह 'उर्वशीयम्' आदि इस युग के कतिपय उल्लेखनीय पत्र-सग्रह है। इन स्वतन्त्र पत्र संग्रहो के अतिरिक्त 'वीणा' के 'नवीन स्मृति अक' तथा 'मुक्तिबोध स्मृति अक', 'साहित्य' के 'शिवपूजन स्मृति अक', 'नर्मदा' के नवीन अंक, 'सम्मेलन पत्रिका' के 'राजर्षि टण्डन स्मृति अक' तथा 'पत्र अक', 'नई धारा' के 'बेनीपुरी स्मृति अंक', 'वरदा' के 'डा वासुदेवशरण अग्रवाल स्मृति अक', 'सारिका' के 'पत्र अक' आदि में अत्यन्त अनूठी सामग्री सकलित है। साहित्य, राजनीति, समाजसेवा आदि विभिन्न क्षेत्रों की महान विभूतियो से सम्बद्ध ग्रन्थो मे भी अनेक मूल्यवान पत्र संकलित हैं। इस सारी सामग्री के अध्ययन से पाठक को समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, समसामयिक साहित्य एव जीवन से सम्बद्ध विभिन्न विषयों की अमूल्य जानकारी प्राप्त होती है। इसके साथ ही ये उसे जीवन के संघर्ष को झेलते हुए निरन्तर कर्मरत रहने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

समग्रत हिन्दी का पत्र साहित्य पाठक के लिए ज्ञान और अनुभव के एकदम अछूते ससार के द्वार खोलता है।

इण्टरव्यू

हिन्दी गद्य की भिन्न विधाओं का निरंतर विकास हो रहा है उनमें एक महत्वपूर्ण विधा इण्टरव्यू है। इसके लिए 'भेंट-वार्ता', 'साक्षात्कार', 'परिचर्चा', 'परिसंवाद' तथा 'इण्टरव्यू' शब्द भी प्रयुक्त होते हैं किंतु 'भेंटवार्ता' तथा 'इण्टरव्यू' शब्द ही सर्वाधिक प्रचलित हैं। भेंटवार्ता से अभिप्राय उस रचना से है जिसमें लेखक व्यक्ति विशेष के साथ साक्षात्कार करने के बाद किसी निश्चित प्रश्नमाला के आधार पर उसके व्यक्तित्व, कृतित्व एवं विविध विषय विषयक विचारधारा के संबंध मे प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के बाद उसे पाठकों तक लिपिबद्ध रूप मे पहुचा देता है। हिन्दी मे इस विधा का श्रीगणेश यो तो भारतेन्दु युग से ही माना जा सकता है क्योंकि उस युग मे पं राधाचरण गोस्वामी ने भारतेन्दु हरिश्चद्र से साक्षात्कार करके उनसे साहित्यिक प्रश्न पूछे थे तथा अपनी उस वार्ता को लिपिबद्ध रूप मे प्रकाशित किया था। फिर द्विवेदी युग मे हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार चद्रधर शर्मा गुलेरी ने प्रसिद्ध सगीतज्ञ श्री विष्णु दिगबर पुलस्कर से भेंट करके उसे 'समालोचक' के सितंबर, १९०५ के अंक मे 'सगीत की धुन' शीर्षक से प्रकाशित कराया था। तदनन्तर प बनारसीदास चतुर्वेदी का रत्नाकरजी से लिया गया इण्टरव्यू 'विशाल भारत' के सितबर, १९३१ के अंक में प्रकाशित हुआ। जनवरी, १९३२ के विशाल भारत मे उनका एक और इण्टरव्यू 'प्रेमचदजी के साथ दो दिन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। अगस्त, १९३३ मे हिन्दी के मूर्धन्य उपन्यासकार मुंशी प्रेमचद ने प्रसिद्ध महिला कथाकार श्रीमती उषा देवी मित्रा का इण्टव्यू पत्राचार के माध्यम से लिया था तथा कहानी और साहित्य संबधी उनके विचारों को सामान्य पाठक तक पहुचाया था। इसका उल्लेख स्वय लेखिका ने 'बकलम खुद' शीर्षक से लिखी रचना में किया है जो कैलाश कल्पित की पुस्तक साहित्य साधिकाए मे सकलित है। सन् १९३८ तथा १९३९ मे प्रभाकर माचवे ने जैनेन्द्र तथा आचार्य रामचद्र शुक्ल से इण्टरव्यू लिये थे जो क्रमश 'जैनेन्द्र के विचार' नामक पुस्तक तथा 'वीणा' के अक्तूबर, १९३९ के अक मे प्रकाशित हुए। डा सत्येन्द्र के सपादकत्व मे 'साधना' पत्रिका का मार्च-अप्रैल, १९४१ का अक 'इण्टरव्यू विशेषांक' के रूप मे प्रकाशित हुआ। इसमे तीन प्रकार के इण्टरव्यू प्रकाशित हुए—(१) विभिन्न साहित्यकारो के नाम एक निश्चित प्रश्नावली भेजकर उनसे प्राप्त हुए उत्तर के रूप मे, (२) लेखको से व्यक्तिगत सपर्क स्थापित कर प्रत्यक्ष वार्तालाप के जरिए प्राप्त सामग्री के आधार पर, (३) कल्पना के आधार पर दिवगत साहित्यकारो के इण्टरव्यू। यह नि सकोच कहा जा सकता है कि तीसरे तथा वर्ग के इण्टरव्यू वास्तविक इण्टरव्यू नही हैं, केवल साहित्यिक निबध ही हैं जबकि दूसरे वर्ग के इण्टरव्यू वास्तविक इण्टरव्यू हैं। इस दृष्टि से इस अक का सबसे अच्छा इण्टरव्यू चिरजीलाल एकाकी का 'महादेवी से भेंट' था। इस विवरण से स्पष्ट है कि अभी तक हिन्दी का इण्टरव्य साहित्य पत्रिकाओं मे ही प्रकाशित होता रहा, उनके स्वतंत्र सकलन प्रकाशित नहीं हुए। इस दिशा मे पहली कृति बेनी माधव शर्मा की 'कवि दर्शन' है जिसमें सर्वश्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्यामसुदर दास, मैथिलीशरण गुप्त, रामचद्र शुक्ल आदि से लिये गए इण्टरव्यू सकलित हैं। यद्यपि यह कृति हिंदी इण्टरव्यू साहित्य की पहली प्रकाशित कृति है किन्तु यह इस विधा की सर्वथा स्वतत्र पहचान बनाने मे समर्थ नही हुवा। यह कार्य तो डा पद्मसिंह शर्मा कमलेश की पुस्तक 'मैं इनसे मिला' भाग-एक तथा दो ने किया। सन् १९५२ मे प्रकाशित इस पुस्तक के प्रथम भाग में आठ तथा दूसरे भाग मे दस इण्टरव्यू सकलित हैं। डा कमलेश ने जहां एक ओर सम्बद्ध साहित्यकार से कुछ बंधे-बंधाए प्रश्न पूछकर उनके अतर सजोने की शैली अपनायी है वहां बातचीत करने के बाद मन पर पड़े प्रभाव को लिपिबद्ध करके उसे एक नया रूप दे दिया है। इन रचनाओं का कैन्वास भी अत्यत व्यापक है। भेंटकर्ता ने अपने को समालाप्य की रचनाओ तक ही सीमित न रखकर उसकी रुचि, प्रकृति, रहन-सहन पर भी प्रकाश डाला है जिससे पाठक को उसकी सृजन-पीठिका के बारे मे भी जानकारी प्राप्त हो सके। डा कमलेश की कृति

के प्रकाशन के बाद इस विधा ने पर्याप्त गति पकडी। सर्वश्री देवेंद्र सत्यार्थी, रामधारी सिंह दिनकर, विष्णु प्रभाकर तथा ओमप्रकाश सिहल ने क्रमश 'कला के हस्ताक्षर', 'बर पीपल', 'कुछ शब्द कुछ रेखाएं' तथा 'गद्य के नए आयाम' नाम्नी कृतियों में अन्य विषयक रचनाओं के साथ-साथ भेंट-वार्ताएं भी संकलित की। इन कृतियों मे संकलित रचनाओं पर इन रचनाकारो की अपनी लेखन-शैली का ऐसा प्रभाव है कि पाठक इन्हें पढने के बाद प्रत्यक्ष वार्तालाप का-सा आनंद पाता है। जहां कुछ साहित्यकारों ने अपनी विविध विषयक रचनाओं में भेंट-वार्ताएं भी संकलित कीं वहां दूसरी ओर इस विधा की अपनी स्वतन्त्र कृतियां भी प्रकाशित हुईं। इस दृष्टि से कैलाश कल्पित की 'साहित्य के साथी' तथा 'साहित्य साधिकाए' रणवीर रांग्रा की 'सृजन की मनोभूमि', शरद देवडा 'सात कथा लेखिकाए और कथा नायिकाए तथा एक आलोचक की नोटबुक', अज्ञेय की 'अपरोक्ष' माजदा असद की 'मेरी मुलाकातें' आदि उल्लेखनीय रचनाए हैं। इनमे डा रांग्रा का स्थान सर्वाधिक महत्व-पूर्ण है क्योंकि उन्होंने अपने पाठको को साहित्यकारो के अवचेतन की अतल गहराइयों से परिचित कराया है वहां अमृता प्रीतम ने देश-विदेश के कला व्यक्तित्वो के साथ अतरग साक्षात्कार प्रस्तुत किये हैं। इधर कुछ ऐसे ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं जिनमे किसी एक विशिष्ट साहित्यकार से लिये गए इण्टरव्यू सकलित हैं। इस दृष्टि से 'समय और हम' तथा 'समय, समस्या और सिद्धांत' उल्लेखनीय हैं। इन कृतियो मे क्रमश वीरेंद्र कुमार गुप्त तथा रामावतार ने जैनेन्द्रजी से भेंट वार्ताए लेकर साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक विषयो पर उनके विचार प्रश्नोत्तर शैली मे प्रस्तुत किये हैं। डा सुरेश सिन्हा ने 'हिन्दी कहानी और फैशन' मे उपेंद्रनाथ अश्क से कहानी पर हुई लबी चर्चा को निबद्ध किया है।

आज हिन्दी के सभी दैनिक समाचारपत्रो के रविवारीय परिशिष्टो तथा सारिका, दिनमान, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नयी धारा, सगीत, खेल-खिलाडी आदि पत्रिकाओ मे नियमित रूप से विविध विषयों पर इण्टरव्यू प्रकाशित होते हैं। सर्वश्री लक्ष्मीनारायण लाल, महीपसिंह, मनोहरलाल जोशी, कन्हैयालाल नन्दन, अमृता प्रीतम, रणवीर रांग्रा, रवीन्द्र श्रीवास्तव, शेरजग गर्ग विविध दृष्टिकोणो से इण्टरव्यू लेकर इस विधा के साहित्य को निरन्तर समृद्ध करने मे सलग्न हैं।

रिपोर्ताज

पत्रकारिता के प्रभावस्वरूप पिछले चार दशकों मे जिन साहित्य रूपो ने अपनी एक अलग पहचान स्थापित की है उनमे रिपोर्ताज का उल्लेखनीय स्थान है। जिस रचना मे वर्ण्य विषय का आंखों देखा तथा कानो सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाता है कि पाठक की हृदय-तंत्री के तार झंकृत हो उठें और वह उसे भूल न सके उसे रिपोर्ताज कहते हैं। रिपोर्ट से यह इस अर्थ मे भिन्न है कि उसमे जहा तथ्यो का लेखा-जोखा भर रहता है तथा कलात्मक अभिव्यक्ति का अभाव होता है वहा रिपोर्ताज मे तथ्यो को कलात्मक एव प्रभावोत्पादक ढग से प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी रिपोर्ताज का श्रीगणेश कबसे माना जाय और किस कृति को इस विधा की पहली रचना होने का गौरव प्रदान किया जाय यह एक विवादास्पद विषय है। इसका कारण यह है कि इस विधा को जिस समय से एक विशेष उल्लेखनीय स्थान प्राप्त होना शुरू हुआ उससे बहुत पहले समाचार पत्रो में सामयिक घटनाओं के सम्बन्ध मे मन को छू लेने वाले प्रभावी विवरण प्रकाशित होते रहे थे। यह बात दूसरी है कि उनके स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा काफी बाद मे की गई। यही कारण है कि कुछ विद्वान् जहा 'रूपाभ' के दिसम्बर, १९३८ के अंक में प्रकाशित शिवदान सिंह चौहान की रचना 'लक्ष्मी पुरा' को हिन्दी का पहला रिपोर्ताज मानते हैं, वहां कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का कहना है कि सन् १९२६ में उन्होंने गुरुकुल कांगडी के रजत जयती महोत्सव की जो सजीव रिपोर्ताज की थी, वह हिंदी का पहला रिपोर्ताज है। हिंदी में रिपोर्ताज विषयक पहली

रचना के विवाद से मुक्त होकर सोचने पर यह पता लगता है कि रांगेय राघव ही पहले लेखक हैं जिन्होंने हिन्दी रिपोर्ताज की एक अलग पहचान स्थापित की। बंगाल के अकाल पर लिखे गए और 'अदम्य जीवन' से 'विशाल भारत' मे प्रकाशित उनके रिपोर्ताजो ने अपने समय के पाठको को झकझोर कर रख दिया। उन्होंने 'मुट्ठी भर अन्न' के लिए अस्मत बेचती किसी स्त्री और अकाल के साथ पनपी पशुता का ऐसा सजीव प्रत्यांकन किया कि उनको पढ़कर प्रत्येक पाठक का मन-प्राण उद्वेलित हो उठा। शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त आदि ने भी अपने रिपोर्ताजों मे बगाल के अकाल की जीती-जागती तस्वीर अंकित की। तदनन्तर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर अनेक रिपोर्ताज प्रकाशित होने लगे। बहुत से रिपोर्ताज पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुए। रिपोर्ताजों का विषय युद्ध, दुर्भिक्ष, महामारी आदि तक सीमित न रहकर बाढ़, चुनाव, रोमांचकारी खेल आदि तक विस्तृत हो गया। हिन्दी रिपोर्ताज को इन विविध आयामो तक प्रसारित करने मे जिन लेखकों ने योग दिया, उनमे भदन्त आनन्द कौशलायन, भगवतशरण उपाध्याय, उपेन्द्रनाथ अश्क, शमशेर बहादुर सिंह, अमृत राय, राम नारायण उपाध्याय, ठाकुर प्रसाद सिंह, कामताप्रसाद सिंह, फणीश्वरनाथ 'रेणु', धर्मवीर भारती, विवेकी राय, निर्मल वर्मा, सती कुमार, कैलाश नारद, मणि मधुकर, बलराम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। समग्रत यह कहा जा सकता है कि अभी तो हिन्दी रिपोर्ताज की अपनी एक अलग पहचान बनने की शुरुआत ही हुई है, उसके पूर्ण विकास की स्थिति मे थोडी देर है।

यात्रावृत्त

हमारे देश मे यात्रा करने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है किन्तु जहां तक यात्रा-अनुभवो को लिपिबद्ध कर उन्हें सजोये रखने का सवाल है उसका इतिहास बहुत पुराना नहीं है। सच यह है कि हिन्दी यात्रावृत्त का क्रमिक इतिहास भारतेंदु युग से ही प्रारभ होता है—यो इससे पूर्व गुसाई जी कृत 'वन-यात्रा', रामसहायदास विरचित 'वन-यात्रा-परिक्रमा' आदि कतिपय ऐसे ग्रथ मिलते हैं जिनमें सुदूर तीर्थ-स्थानो की यात्रा के सकेत दिए गये हैं।

भारतेन्दु युग—यह युग हिन्दी यात्रावृत्त साहित्य का पहला महत्वपूर्ण युग है। इस युग मे जिन लेखको ने हिन्दी के यात्रावृत्त साहित्य को समृद्ध किया उनमे स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त सर्वश्री बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीमती हरदेवी, भगवानदास वर्मा, दामोदर शास्त्री, तोताराम वर्मा कल्याणचन्द्र, देवीप्रसाद खत्री, विभु मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं प्रकृत्यात्मक दृष्टि से इस युग के साहित्य को दो वर्गों मे बाट सकते हैं—(क) स्वदेश विषयक यात्रावृत्त, (ख) विदेशविषयक यात्रावृत्त। विदेशविषयक यात्रावृत्तो की तुलना मे स्वदेश विषयक यात्रावृत्त लिखने की प्रवृत्ति अधिक थी। स्वदेश विषयक यात्रावृत्तों मे भी मुख्यता तीर्थस्थानों को मिली है।

द्विवेदी युग—यदि भारतेन्दु युग में स्वदेश विषयक यात्रावृत्त अधिक परिमाण मे लिखे गए थे तो द्विवेदी युग मे विदेश विषयक यात्रावृत्त लिखने की प्रवृत्ति अधिक रही। विदेश यात्राओ का दायरा केवल विलायत तक सीमित न रहकर अमरीका तथा चीन तक बढ़ गया। ठाकुर गदाधर सिंह, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, शिवप्रसाद गुप्त तथा साधुचरण प्रसाद इस युग के सर्वाधिक उल्लेखनीय लेखक हैं। इनमे भी जो प्रतिष्ठा स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को मिली वह किसी अन्य लेखक को नहीं मिली।

छायावाद-युग—यात्रावृत्त-लेखन की दृष्टि से इस युग का साहित्य पूर्ववर्ती युगों की तुलना में अधिक समृद्ध है। द्विवेदी युग मे जहा केवल स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ही एकमात्र ऐसे लेखक थे जिन्होंने यात्रावृत्तों की रचना की और सबसे अधिक ध्यान दिया, वहा इस युग में उनके अतिरिक्त महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भी यात्रा वृत्त साहित्य को बहुत समृद्ध किया। राहुल सांकृत्यायन ने इस क्षेत्र में इतना अधिक काम किया

कि आज वे इस विधा के सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते हैं। सर्वश्री रामनारायण मिश्र, गणेशनारायण सोमानी, कन्हैयालाल मिश्र, सेठ गोविन्ददास, प्रो मनोरंजन आदि इस युग के अन्य उल्लेखनीय रचनाकार हैं। द्विवेदी-युग के समान इस युग मे भी विदेश-यात्रा विषयक रचनाओं की प्रचुरता मिलती है। इनमें भी यूरोप सम्बन्धी यात्रावृत्तों की ही अधिकता है। इसके बाद अमरीका तथा जापान विषयक यात्रावृत्त अधिक लिखे गये हैं।

छायावादोत्तर युग—परिमाण, विषय-वैविध्य तथा रचना-शिल्प की दृष्टि से हिन्दी यात्रावृत्त का सर्वाधिक समृद्ध युग यही युग है। यह स्वाभाविक भी है। यही वह युग है जिसमे हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद विश्व के दूसरे देशों के साथ भारत के राजनयिक एवम् सांस्कृतिक सम्बन्ध जुड़े। पर्यटकों के साथ-साथ राजनीतिज्ञों एवम् साहित्यकारो को भी विदेश-यात्रा के पर्याप्त अवसर मिले। विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियों के माध्यम से बहुत से लोग विदेशों मे पढ़ने गए। बहुत से लोगो ने विदेशों मे उपलब्ध आजीविका के अवसरो का लाभ उठाया। इन सबके परिणामस्वरूप यह युग यात्रावृत्त सम्बन्धी साहित्य की समृद्धि का युग बना। विदेश विषयक यात्रावृत्तों मे यो तो सभी देशों से सम्बद्ध यात्रावृत्त प्रकाशित हुए किन्तु रूस से सम्बद्ध यात्रावृत्तों की सख्या अन्य देशों की अपेक्षा कुछ अधिक ही रही है। स्वदेश विषयक यात्रावृत्तो मे लेखकों की दृष्टि कश्मीर से कन्याकुमारी तक व्याप्त रही है। लेखको ने देश के विभिन्न भू-भागो के वन्य प्रदेशो, हिमाच्छादित शृगों, कलकल निनाद करते हुए झरनो अथवा शखनाद करते हुए प्रपातो, प्रतिपल अपनी छटा बदलने वाले मेघो, चित्ताकर्षक पुष्पो से लदी क्यारियो, ऐतिहासिक स्थानो, स्मारको एवम् भग्नावशेषो का ही मार्मिक वर्णन नहीं किया है बल्कि विभिन्न अचलो मे निवास करने वाले व्यक्तियो के आचार-विचार, खान-पान, वेश-भूषा आदि के मार्मिक शब्दचित्र खीचे हैं। सर्वश्री राहुल सांकृत्यायन, सेठ गोविन्ददास, बनारसीदास चतुर्वेदी, यशपाल, भगवतशरण उपाध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश, यशपाल जैन आदि इस युग के कतिपय उल्लेखनीय रचनाकार हैं।

समग्रत यह कहा जा सकता है कि हिन्दी का यात्रावृत्त साहित्य पर्याप्त सम्पन्न एवम् वैविध्यपूर्ण है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच

(डा) हरीश नवल

□□

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के हिन्दी साहित्य मे बहुत से परिवर्तन आए। विशेष रूप से कथा-साहित्य और कविता मे नए आयाम खोजे गए। नाटक-साहित्य पर भी इसका प्रभाव पडा जिसमे सबसे बडा प्रभाव था—नाटक की पहचान रंगमंच द्वारा ही करना।

इससे पूर्व नाटक को प्राय श्रव्य या पठ्य काव्य की श्रेणी तक ही सीमित रखा गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद ही नाटक पूर्णत दृश्य-काव्य के रूप मे रगमंच के सन्दर्भ मे ही अपेक्षित जाना जाने लगा। नाटक नाटक न रहकर रगनाटक हो गया। रगकर्मी सचेत हुए और सरकारी व गैर सरकारी स्तर पर रगमच की एक नयी पहचान हिन्दी दर्शक तथा पाठक वर्ग से करायी गयी। परम्परागत और प्रयोगशील दोनो नाट्यधाराओ को सरक्षण प्राप्त हुआ और नाटक पाठ्य पुस्तको, रेडियो आदि से बाहर आया। ड्राइग रूम, स्टडी रूप से नाटक रंगशालाओ मे गया और फिर सड़क और नुक्कडो तक पहुच गया।

''नाटक की सर्जनशीलता या कलात्मक रूप तभी अपनी समग्रता मे प्रकट होते हैं जब रचना को दर्शक-समूह के समक्ष रगमच पर अभिनय करके दिखाया जाए'' यह कथन स्वातत्र्योत्तर हिन्दी रगमच के लिए सटीक बैठता है। वास्तव मे स्वातत्र्योत्तर नाट्य-साहित्य रगमच की ही यात्रा है।

इस यात्रा का आरम्भ 'पृथ्वी थियेटर' और 'इडियन पीपुल्ज थियेटर' के साथ माना जा सकता है क्योकि पारसी रगमच का जादू टूटने के बाद हिन्दी रगमच पर ये दो रगमचीय सस्थाए ही पहले अवतरित हुईं।

'पृथ्वी थियेटर' एक शुद्ध व्यावसायिक रगमच था जिसने रगकला, उत्तम अभिनय और सुथरे प्रस्तुतीकरण से एक नयी यात्रा आरम्भ की। 'पठान', 'दीवार', 'आहुति', 'कलाकार' आदि नाटको ने दर्शक को रग-दर्शक बनाया। दूसरी ओर इडियन पीपुल्ज थियेटर (जो 'इप्टा' के नाम मे अधिक जाना जाता है) साम्यवादी दल की राजनीति से प्रेरित रगमच था किन्तु आम जनता के अधिक निकट होने के और लोकरग को उपस्थित कर सकने के कारण इसने हिन्दी रगमच की बहुत सेवा की। अपार दर्शको के सम्मुख समाज को बदल डालने की, शोषण के विरुद्ध एकजुट हो जाने की अपील को इस मच ने सफलतापूर्वक सम्प्रेषित किया।

सरकारी और राजनीतिक स्तर पर स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद कई बदलाव आए जिनका असर हिन्दी नाट्य पर भी पडा। हमारा देश दूसरे देशो के सम्पर्क मे आया और सास्कृतिक आदान-प्रदान होने से अपनी कला, साहित्य आदि अतर्राष्ट्रीय परदे पर करने लगा। सास्कृतिक शिष्टमडलो के आने-जाने से भारत अपनी सास्कृतिक धरोहर को गौरवशाली ढग से सहेजने-सजोने लगा जिनमे रगमच उल्लेखनीय रहा। अन्तर्राष्ट्रीय मेलों मे भी भारत की नाट्यकला का परिचय विश्व को पुन प्राप्त हुआ।

भारतीय रगमच की विश्व को यह पहचान कई स्तरो पर देने की तीव्र आवश्यकता से अखिल भारतीय स्तर पर कन्द्रीय रग-सस्थानो के निर्माण की आवश्यकता महसूस की गयी। फलस्वरूप 'सगीत नाटक अकादमी', 'साग एड ड्रामा डिवीजन' और 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' का जन्म हुआ।

'सगीत नाटक अकादमी' सेमिनारो, उत्सवो, समारोहों आदि के आयोजन से न केवल प्रादेशिक रगकारो को ही समीप लाती है अपितु दुनिया के अन्य विकसित रगमचो से सम्पर्क भी स्थापित करती है। राष्ट्रीय नाट्य-महोत्सवो मे रगकर्मी एक-दूसरे के न केवल निकट ही आते हैं अपितु अपार प्रोत्साहन भी प्राप्त करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार-योजनाओ से निस्सदेह रगकार्य उत्साहजनक अवस्था को प्राप्त हो रहा है।

'सांग एण्ड ड्रामा डिवीजन' मुख्यत सरकारी प्रचार सस्था है जिसकी अपनी वेतनभोगी टीम है। यह टीम गीत, संगीत और नाटक के माध्यम से देश के कोने-कोने मे जाती है। साहित्यिक स्तर अधिक न होने पर भी प्रसार कार्य के कारण इसका महत्व है। सीमा पर स्थित सैनिको के मनोरजन का प्रश्न हो अथवा गांवों में जाकर परिवार-नियोजन का महत्व बताना हो या युद्ध के दिनो मे उत्साह जागृत करना हो, यह संस्था बराबर सक्रिय रहती है।

'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' का अभ्युदय इन सबसे कही अधिक महत्वपूर्ण है। रगमच वास्तव मे क्या है, इसके कितने पक्ष हैं, आयाम हैं आदि इन सबका स्तरीय विवेचन करने मे इस विद्यालय का जो योगदान है उस पर अलग से एक आलेख लिखा जा सकता है।

भारतीय रगमच की तलाश और विशेषकर हिन्दी नाट्य को एक अपूर्व ऊचाई पर पहुचाने का कार्य इस विद्यालय ने किया है। अभारतीय नाटकों मे अग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, चीनी, जापानी आदि विविध भाषाओं के अनूदित नाटको को उन्ही की रगमंच शैलियो मे प्रस्तुत करने के साथ-साथ हिंदीतर सस्कृत, कन्नड, मराठी, गुजराती, बगाली, तेलुगु आदि के नाटकीय अनुवादो को अनेक रग-शैलियो मे प्रस्तुत करने का सफल श्रेय इस विद्यालय को है।

हिन्दी नाटक को, विशेषकर नये नाटक को गम्भीर सम्बल देने का कार्य इसी महत्वपूर्ण विद्यालय को है। भारतेन्दु, प्रसाद, जगदीशचन्द्र माथुर, भारती, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल आदि कतिपय हिन्दी नाटककारों को पहली बार वास्तविक रग-दर्शन और दर्शक प्राप्त हुए।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय मे प्रशिक्षणार्थी रगमच के विभिन्न ऐसे आयामो, तत्वो का प्रशिक्षण लेते हैं जिनकी उपेक्षा होती रही थी, जैसे मंचीय प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि व्यवस्था, वस्त्रन्यास इत्यादि। आज इस विद्यालय के स्नातक इन सब तकनीको का सार्थक प्रयोग भारत भर के रगमच पर कर रहे हैं। अभिनय और निर्देशन की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण कार्य इस विद्यालय ने किया है। रग जगत मे इस विद्यालय के प्रथम निदेशक अल्काजी विशिष्ट स्थान रखते हैं, अल्काजी, रगमच और रा ना वि एक-दूसरे के पर्याय बने रहे हैं। निर्देशको और अभिनेताओ के रूप मे ओम शिवपुरी, सुधा शिवपुरी, रामगोपाल बजाज, मोहन महर्षि, एम के रैना, बसी कौल, बलराज पडित, मनोहर सिंह, सुरेखा सीकरी, उत्तरा बावकर, नसीरुद्दीन शाह आदि विद्यालय की उल्लेखनीय देन हैं।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय मे सस्कृत रगमच से लेकर आज तक का भारतीय रगमच और विदेश के डायोनिसिस थियेटर से लेकर एब्सर्ड रगमच तक के सभी पक्षो का ज्ञान दिया जाता है। लोकरगमच की परम्परा भी विद्यालय मे सुरक्षित रखी जाती है, सगीत और नृत्य पक्ष को भी अपेक्षित समझा जाता है।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी रगमच रा ना वि के कारण केवल दिल्ली तक ही सीमित नही रहा अपितु अनेक और नगर, उपनगर आज रगनगर कहलाते हैं जैसे बम्बई, कलकत्ता, इलाहाबाद, पटना, लखनऊ, कानपुर चण्डीगढ़, जयपुर, शिमला, आगरा, गोरखपुर, सागर, जबलपुर, जोधपुर आदि।

बम्बई मे 'थियेटर-यूनिट' के अन्तर्गत सत्यदेव दूबे, हटगडी दम्पति अमरीश पुरी, जब्बार पटेल, अमोल पालेकर, सुलभा देशपाडे आदि ने उल्लेखनीय रगकर्म किया है जो चलचित्र जगत तक भी पहुचा है। रगमच के ये गम्भीर कर्मी चलचित्र जगत मे भी अपनी पहचान अलग मे बना रहे हैं। बम्बई ही की सस्था 'मजमा' है जिसमे ओमपुरी और नसीरुद्दीन शाह प्रमुख हैं, भी उल्लेखनीय हैं।

कलकत्ता की 'अनामिका' सस्था के अन्तर्गत श्यामानद जालान, बद्री प्रसाद तिवारी, शिवकुमार जोशी और विष्णुकात शास्त्री इस सस्था के आधारस्तम्भों मे हैं। प्रतिभा अग्रवाल ने प्रादेशिक अन्य भाषाओं के हिन्दी अनुवाद रगजगत को दिए हैं।

इलाहाबाद मे डा लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा संस्थापित 'नाट्य केन्द्र स्कूल ड्रैमैटिक आर्ट्स' ने नए रंगमच को डा लाल के अतिरिक्त, सत्यव्रत सिन्हा जैसे रगकर्मी दिए। डा लाल ने दिल्ली में 'सवाद' की स्थापना की जिसमे दिनेश ठाकुर, दयाप्रकाश सिन्हा, वीरेन्द्रनारायण और गोपाल माथुर जैसे अभिनेता, निर्देशक हुए।

कानपुर मे प्रो सत्यमूर्ति द्वारा पहले 'एम्बेसेडर' फिर 'दर्पन' रग संस्था का निर्माण हुआ।

दिल्ली मे बेगम जैदी और हबीब तनवीर का 'नया थियेटर' लोकमच का रक्षक है। इस थियेटर ने लोक कलाकारों को पहली बार महानगरो की फैशनऐबल नाटकपसद सोसायटी के समक्ष प्रस्तुत किया है। आगरा बाजार इस थियेटर की प्रमुख प्रस्तुति है।

दिल्ली ही में आई एल दास का 'लिटिल थिएटर ग्रुप', आर जी आनन्द का 'इन्द्रप्रस्थ थियेटर', रमेश मेहता का 'थ्री आर्ट्स', ओम शिवपुरी का 'दिशान्तर' और टी पी जैन, राजेन्द्रनाथ का 'अभियान', रवि वास्वानी का 'नान-ग्रुप' हिन्दी रगमच की प्रतिष्ठा और हिन्दी रगमच को अखिल भारतीय रगमच से जोडने का महत कार्य करते रहे हैं।

इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी रगमच के विकास मे ये विकास रगसस्थाए महत्त्वपूर्ण रही हैं—'दर्पण' (अहमदाबाद), इलाहाबाद की 'इलाहाबाद आर्टिस्ट्स एसोसियेशन', 'प्रयाग रगमच', 'रगशिल्पी', कलकत्ता की — 'सगीत कला मदिर', 'चतुर्मुख', 'थिएटर वर्कशाप', 'थियेटर सेंटर', 'नांदीकार', 'बहुरूपी', 'रूपकार', लिटिल थिएटर ग्रुप और 'शौमनिक', कानपुर की—'नाट्यभारती', 'रगवाणी', 'गोरखपुर की—'रूपातर', ग्वालियर की—'आर्टिस्ट कम्बाइन' और 'कलामदिर', चडीगढ़ की—'पजाब कला अकादमी', जयपुर की—'अभिसारिका', 'कल्चरल सोसायटी आफ राजस्थान', 'राजस्थान तरुण कला परिषद्,' और 'सकेत', दिल्ली के 'कला साधना मदिर' चतुरग, 'दिल्ली आर्ट थिएटर', 'यांत्रिक', और 'रगमच'। पटना की 'अरग', 'कला निकेतन', 'कला सगम', 'चतुरग', 'बिहार आर्ट थिएटर', 'मगध आर्टिस्ट्स' और 'लोकमच'। पूना की 'प्रोग्रेसिव ड्रेमेटिक एसोसियेशन', 'महाराष्ट्रीय कलोपासक'। बडौदा की 'त्रिवेणी', 'नूतन सस्कार केन्द्र', 'बडौदा एमेच्यौर ड्रेमेटिक क्लब'। बम्बई की—'अमृत नाट्य-भारती', 'क्रिएटिव थिएटर', 'आविष्कार', 'बम्बई नाट्य-सघ', रगायन और रगभूमि। बेंगलूर की—'भारती', 'कला कुज', 'कला घोषिणी', 'प्रतिभा नाटक रग'। भुवनेश्वर की 'कला केन्द्र' और 'रूपकार थिएटर ग्रुप'। मेरठ का 'मुक्ताकाश', रायपुर का 'हस्ताक्षर', लखनऊ की—'थिएटर वर्कशाप,' 'नक्षत्र', वाराणसी की—'नाट्य-परिषद्', 'नागरी नाटक मडली', 'शारदा कला परिषद', और 'श्रीनाट्यम्', काश्मीर की 'काश्मीर भगत थिएटर', सागर की—'प्रयोग नाट्य कला सस्थान' और 'युवक कल्याण परिषद्' तथा हैदराबाद की 'नाट्य सघ रेपर्टरी ग्रुप' इत्यादि।

नाट्य-पत्रकारिता—प्राय प्रत्येक प्रतिष्ठित छोटी-बडी पत्रिका मे नाटक की रगमचीय समीक्षा अवश्य होती है, फिर भी केवल नाट्य-पत्रकारिता के रूप मे स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी रगमच कतिपय पत्र-पत्रिकाओ का योगदान रहा है जिनमे निश्चित रूप से नेमिचन्द्र जैन द्वारा सम्पादित 'नटरग' शिखर पर है। यह नाटक-प्रेमियो, शोधार्थियो, रगकर्मियो आदि के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इसमे मचित होने योग्य रग नाटकों का प्रकाशन, समीक्षा और सभी प्रकार की प्रामाणिक सूचनाए आदि प्राप्त हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त जोधपुर से सुधा राजहस द्वारा सम्पादित 'रगयोग', उदयपुर से महेन्द्र भनावत द्वारा सम्पादित 'रगायन', कलकत्ता से विमल लाठ द्वारा सम्पादित 'नाट्यवार्ता' और आत्मानद द्वारा सम्पादित 'अभिनय-सम्वाद', लखनऊ से डा अज्ञात द्वारा सम्पादित 'रगभारती', दिल्ली से आनंदगुप्त, जयदेव तनेजा द्वारा सम्पादित 'अभिनय' (नाट्य पत्र) और लखनऊ से ही सुरेश अवस्थी द्वारा सम्पादित 'छाया नट' प्रमुख रहे हैं।

इन हिंदी नाट्य-पत्र पत्रिकाओं के साथ-साथ अन्य भाषाओ के नाटक विषयक पत्र-पत्रिकाओं में भी हिन्दी रगमच पर पर्याप्त सामग्री प्रकाशित होती रहती है जिनमें अंग्रेजी की राजिदर पाल द्वारा सम्पादित 'एनेक्ट' मासिक प्रमुख है।

उपलब्धि

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर सहजता से पहुंच जाते हैं कि स्वतंत्रता के बाद हिन्दी नाट्य क्रमश विकास की ओर अग्रसर है। हिन्दी रगमच इस समय प्रादेशिक रग नाटककारो में विजय तेंदुलकर, पु ल देशपांडे (मराठी), बादल सरकार (बंगाली), गिरीश कर्नाड, आद्य रगाचार्य (कन्नड) मधुराय (गुजराती) आदि से काफी प्रभावित है। विदेशी नाटककारों मे ब्रेख्ट, मोलियर और बैकेट आदि रगमच पर अत्यधिक खेले जा रहे हैं। हिन्दी के अपने रगनाटककारों में विशेष उल्लेखनीय हैं—मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल, मुद्राराक्षस, मणि मधुकर, सुरेन्द्र वर्मा, शकर शेष, गिरिराज किशोर, ब्रजमोहन शाह, रमेश बक्षी आदि।

निर्देशकों में अल्काजी, ओम शिवपुरी, हबीब तनवीर, सत्यदेव दूबे, ब व कारन्त, श्यामनन्द जालान राजेन्द्रनाथ, बी एम शाह, बसी कौल, एम के रेना, सत्यव्रत सिन्हा, रामगोपाल बजाज, सई परांजपे आदि के नाम स्वातंत्र्योत्तर रगमच के साथ गहरे जुड़े हैं।

अभिनेताओ मे ओम शिवपुरी, अमरीश पुरी, अमोल पालेकर, मनोहर सिंह, राजेश विवेक रामगोपाल बजाज, रवि वास्वानी, पकज कपूर, रजीत कपूर, दिनेश ठाकुर, नसीरुद्दीन शाह का और अभिनेत्रियों मे सुधा शिवपुरी, सुलभा देशपाण्डे, रोहिणी हटगडी, सुरेखा सीकरी, उत्तरा बावकर, अनुया पालेकर, वीणा मेहता आदि के नाम सुपरिचित हैं।

अन्य रगकर्मियो मे जे पी दास, राबिन दास, मोहन उप्रेती, नरेन्द्र शर्मा, सुशील बनर्जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रयोग की दृष्टि से—विजय सोनी, देवेन्द्रराज अकुर आदि के नाम हिन्दी नाट्य सदर्भ से गहरे जुड़े हैं।

नाट्य-समीक्षक के रूप में नेमिचन्द्र जैन, अज्ञात, जयदेव तनेजा, जितेन्द्र कौशल, सत्येन्द्र तनेजा, महेश आनन्द आदि भी हिन्दी नाट्य को समृद्ध कर रहे हैं।

हिन्दी के मौलिक नाटककारो की कमी यदि पूरी हो जाती है तो निस्सदेह आज का हिन्दी नाटक और रंगमच दुनिया मे अपनी छाप छोडने की क्षमता रखता है।
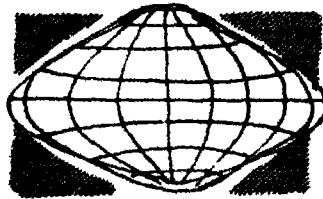
समकालीन हिन्दी उपन्यास

(डा.) रणवीर रांग्रा

□□

उपन्यास जीवन का दर्पण है। जीवन और जगत के समान वह भी उत्तरोत्तर बहुमुखी एव जटिल होता गया है। अपनी लम्बी तथा पथरीली एव चकरीली यात्रा मे हिन्दी-उपन्यास आज मानव की अपनी परिस्थितियो के साथ उसके सम्बन्ध की तथा अपने परिपार्श्व के प्रति उसके दृष्टिकोण के उत्तरोत्तर विकास की अभिव्यक्ति बन गया है।

सन् १९४७ मे देश स्वतन्त्र हुआ। आजादी मिल तो गई, पर वह पडी बहुत महगी। उसे पाने के लिए हमे उन सब उपलब्धियो की बलि देनी पडी जो हमने स्वाधीनता-सग्राम के दीर्घकालीन अनुशासन तथा तप से पाई थी। भारत की अखण्डता का स्वप्न बिखर गया। देश स्वतन्त्र होने से पहले ही खण्डित हो गया। खण्डित भारत को स्वीकार करके भी राग हम अखण्डता के अलापते रहे। हिंसा की ओर झुककर भी नारा हम अहिंसा का लगाते रहे।

सामाजिक उपन्यास

देश के विभाजन के परिणामस्वरूप अराजकता की जो भीषण आधी चली उससे साहित्यकार की, विशेषत उपन्यासकार की, अन्तर्मुखता भग हो गई और वह व्यक्ति मानस की गहराइयो से उभरकर पुन समाज मे लौट आया तथा वस्तुपरक होने लगा। इस प्रकार सामाजिक उद्देश्य को लेकर उपन्यास रचने की प्रेमचन्द की परम्परा का पुनर्जागरण हुआ। पर इस बार उपन्यासकारो का बल सामाजिक विघटन के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के बीच की खाई को पाटने पर था।

इस धारा के प्रमुख उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं भगवतीचरण वर्मा। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के वर्माजी के उल्लेखनीय उपन्यास हैं 'आखिरी दाव', 'भूले-बिसरे चित्र', 'रेखा', 'सबहि नचावत राम गोसाई।' 'आखिरी दाव' की समस्या है धन के पिशाच द्वारा उत्पन्न विकृति। सैक्स के मुक्त प्रवाह के कारण 'रेखा' इस उपन्यास मे पाठको को पकडे रखने की क्षमता तो है, पर पात्रो के चरित्र-विकास मे अनेक असगतिया रह गई हैं। 'भूले-बिसरे चित्र' वर्माजी का बृहद् उपन्यास है जिस पर उन्हे साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला है। इस उपन्यास मे चार पीढियो के चित्रण द्वारा भारतीय समाज और राजनीनि के पिछले पचास वर्ष का इतिहास प्रस्तुत हुआ है। प्रेमचद के बाद बदलते जीवन-मूल्यो को पकडने का यह पहला स्तुत्य प्रयास है, पर उपन्यास के रूप मे यह रचना पुष्ट नहीं कही जा सकती। उपन्यास मे चार पीढियो की, चार युगो की, अलग-अलग कहानी है और प्रत्येक का अलग-अलग नायक है। इसलिए उपन्यास का कथानक बिखर गया है और रचना मे अन्विति नही आई है। वर्माजी का उपन्यास 'सबहि नचावत राम गोसाई' भी 'भूले-बिसरे चित्र' की ही परम्परा मे है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने भी अपने उपन्यासो मे व्यापक सामाजिक पृष्ठभूमि को अपनाया है। प्रेम और विवाह की समस्या को उठाकर वाजपेयी जी ने मध्यवर्ग की आकाक्षाओ और कुठाओ का चित्रण किया है। यही दो समस्याए ऐसी हैं जहा व्यक्ति की समाज से सीधे टक्कर हो जाती है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के

उनके उपन्यासो में 'चलते-चलते' और 'विश्वास का बल' विशेष उल्लेखनीय हैं ।

प्रेमचद के बाद कुछ लेखक तो सेक्स-सम्बन्धी कुठाओ की खोज मे मानव-मन की अतल गहराइयो मे खो गए और कुछ समाजवादी दर्शन के आधार पर उसकी प्रत्येक समस्या का समाधान बाह्य परिवेश मे, मुख्यत आर्थिक विषमताओं में, ढूढने लगे। पर उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने अपनी रचनाओं में सेक्स और अर्थ दोनो का ताना-बाना बुनकर निम्न मध्यवर्ग की प्रकृति-विकृति का चित्रण करते हुए इस तथ्य को उभारा कि उस वर्ग का युवक किस प्रकार इन दो पाटो के बीच पिसता चला जाता है तथा उसके चरित्र का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध होकर नाना प्रकार की विकृतियो को प्राप्त होता है। 'गिरती दीवारें' मे मध्य वर्ग के युवक चेतन की जो कहानी आरम्भ हुई थी 'अश्क' के अगले दो उपन्यासो 'शहर मे घूमता आईना', 'एक नन्ही किन्दील' और बाधो न नाव इस ठाव के रूप मे आगे बढ़ी है। उनका कहना है कि यह कहानी पाच खण्डो में चलेगी।

सामाजिक उद्देश्य को लेकर लिखने वाले उपन्यासकारो मे अमृतलाल नागर का अपना स्थान है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद नागरजी के चार उपन्यास प्रकाश मे आए हैं 'बूद और समुद्र', 'शतरज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'नाच्यौ बहुत गोपाल' आदि। 'बूद और समुद्र' मे लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन को आधार बना कर व्यक्ति और समाज के सामजस्य पर बल दिया है।

'बूद' प्रतीक है व्यक्ति का और 'समुद्र' समष्टि यानी समाज का। 'बूद और समुद्र' की गणना हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासो मे की जाती है।

कवि और नाटककार के रूप मे तो उदयशकर भट्ट का स्थान अक्षुण्ण है ही, उन्होंने महत्वपूर्ण उपन्यासो की भी रचना की है। 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'डा शेफाली', 'शेष-अशेष' और लोक-परलोक' उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'सागर, लहरें और मनुष्य' भट्टजी का बहुचर्चित उपन्यास है जिसमे उन्होंने बम्बई के पास के बरसोवा गाव की कोली नामक मछुआ-जाति का सर्वांगीण चित्रण किया है।

सामाजिक उपन्यास की इस धारा मे चतुरसेन शास्त्री की भी कुछ रचनाए उल्लेखनीय हैं, यद्यपि उनकी ख्याति मुख्यत उनके ऐतिहासिक उपन्यासो के कारण ही है। ये रचनाएं हैं 'धर्मपुत्र', 'खग्रास' और गोली।' विष्णु प्रभाकर के दो उपन्यास 'निशिकात' और 'तट के बन्धन' भी उल्लेखनीय हैं। 'निशिकान्त' मे ऐसे युवक की कहानी प्रस्तुत की गई है जिसे समाज की गलघोटू जकड से मुक्त होने के लिए अपने भीतर के पुरातन सस्कारो और बाहर की सकीर्ण सामाजिकता से निरन्तर सघर्ष करना पड़ता है। इस धारा के उपर्युक्त उपन्यासकारो के अतिरिक्त रामेश्वर शुक्ल 'अचल' के उपन्यास 'उल्का' और 'मरुप्रदीप' भी उल्लेखनीय हैं।

समाजवादी उपन्यास

सामाजिक उपन्यास के अतिरिक्त हिन्दी-उपन्यास की एक और धारा है जो समाजवादी उपन्यास के नाम से प्रसिद्ध है। यह धारा साम्यवादी चेतना से अनुप्राणित उपन्यासकारो की है। इसके लेखक प्रत्येक समस्या का निदान द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मे ढूढते हैं। व्यक्ति और समाज के सघर्ष की अपेक्षा वे वर्ग-सघर्ष पर बल देते हैं। इसमे सन्देह नही कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के इन उपन्यासो मे मताग्रह उत्तरोत्तर कम हुआ है और रचनाए अपेक्षाकृत कलापूर्ण बनती गई हैं।

यशपाल इस धारा के शीर्षस्थ उपन्यासकार हैं। साहित्य की सामाजिक उपयोगिता मे उनकी गहरी आस्था है। 'मनुष्य के रूप', 'झूठा सच', 'अरी तेरी उसकी बात' आदि उनके स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के उपन्यास हैं। देश की स्वतन्त्रता, नारी-जागरण और शिक्षा के प्रसार के बावजूद उसका शोषण रुका नही,

शोषण का रूप-भर बदला है। हा, यह जरूर है कि आज नारी इतनी निरीह नहीं रही कि अपने शोषण का बदला न ले सके।

'झूठा सच' यशपाल का बृहदाकार एव महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं और दो भागों मे है। बटवारे के साथ साम्प्रदायिकता की जो भीषण आंधी चली और उसमे जो अघन्य और कुत्सित घटनाए घटी, निरीह नारी का जो अपमान और तिरस्कार हुआ, उसके फलस्वरूप मानवता पर से मानव का विश्वास उठ गया और जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण मे आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। भारतीय सस्कृति और इतिहास की इस दु खद परिणति को सबसे पहले यशपाल ने इस उपन्यास मे सांगोपांग लिया है।

नागार्जुन ने प्रेमचन्द के बाद पहली बार ऐसे पात्रो को उभारा जो कुण्ठाओं से मुक्त हैं। उनके प्रमुख उपन्यास हैं, 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे', 'दु खमोचन' 'कुमीपाक', 'रमरीतया' और 'हीरक जयती'। पर उनकी ख्याति का मूलाधार है 'बलचनमा' जिसमे उन्होंने मिथिला के आचलिक परिवेश मे वहां के मध्यवर्गीय किसानो के सघर्ष की दु ख-भरी कहानी कही है, उनके शोषक जमीं-दारो पर निर्मम प्रहार किए हैं और नई पीढी मे पूजीवादी तथा सामनवादी व्यवस्था के विरुद्ध धीरे-धीरे सुलग रही उस विद्रोहाग्नि को प्रज्ज्वलित किया है जिसके प्रथम दर्शन 'गोदान' के गोबर मे हुए थे।

साम्यवादी चेतना के उपन्यासकारो मे यशपाल और नागार्जुन के बाद रागेय राघव का नाम आता है। उनके उपन्यासो की सख्या तीस के लगभग है। जिनमे कई भरती की रचनाए हैं और कई प्रचारात्मक। इन्हे निकाल देने पर उनकी कई उल्लेखनीय रचनाए रह जाती हैं। 'घरौंदा' उनका प्रथम उपव्यास है जो कला की दृष्टि से एक पुष्ट रचना है। उसमे राजनीतिक मताग्रह का भी प्रभाव है जो परवर्ती रचनाओ मे प्रचुरता से मिलता है। इसके अलावा 'सीधा-साधा रास्ता', 'विषाद-मठ', 'हुजूर' आदि उनके सामाजिक उपन्यास हैं। 'कब तक पुकारू' की गणना आंचलिक उपन्यासो मे की जाती है, पर मूलत वह भी सामाजिक उपन्यास ही है।

इस धारा के अन्य उपन्यासकारो मे भैरवप्रसाद गुप्त की रचनाएं 'मशाल', 'गगा मैया' और 'सत्ती मैया का चौरा' उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त अमृतराय के उपन्यास 'बीज', 'नागफनी का देश' और 'हाथी के दात' भी साम्यवादी चेनना से अनुप्राणित हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के उल्लेखनीय उपन्यास हैं 'धरती की आखें', 'बया का घोंसला और साप', 'काले फूल का पौधा', 'रूपाजीवा', 'मन वृन्दावन' और 'प्रेम एक अपवित्र नदी।' उपन्यासकार के रूप मे राजेन्द्र यादव स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद ही आए हैं। उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं 'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', 'उखडे हुए लोग' तथा 'शह और मात।'

मनोवैज्ञानिक उपन्यास

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की भीषण और अनिश्चित परिस्थितियो से मनोवैज्ञानिक उपन्यास को धक्का पहुचा था। समाजव्यापी करुण क्रन्दन ने उपन्यासकार की *अन्तर्मुखता* भग करके कुछ समय के लिए उसके लेखन मे गतिरोध ला दिया था। जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासो मे एक लम्बा अन्तराल इसी गतिरोध को ध्वनित करता है।

जैनेन्द्र हिन्दी-उपन्यास मे एक पहेली के रूप मे आए थे। पाठको को घिसी-पिटी नैतिकता तक पहुचाने वाली गहरी आत्मचिन्तना की ओर उन्होंने ही प्रवृत्त किया था। 'सुनीता', 'त्याग-पत्र', 'कल्याणी' उनके स्वतन्त्रता-पूर्व के उपन्यास हैं।

जेनेन्द्र की नायिकाए अह के घेरे को तोड़ 'पर' (परपुरुष) मे खो रहने को व्यग्र रहती हैं। प्रेमी के

सामीप्य-लाभ की उनकी चिरपोषित इच्छा जब उन्हें प्रेमी की ओर झुका ले आती है और वे समर्पित होने को होती है तो उनके भीतर सदियों के जमे पातिव्रत्य के सस्कार उन्हे पति के प्रति विश्वासघात करके अपनी नजरों से गिरने नही देते और उनका समर्पण होता-होता सहसा बीच मे ही रुक जाता है। पर वे पूरी तरह पति की भी तो नहीं हो पातीं। उनके अचेतन में निरतर पातिव्रत्ये और वासना मे सघर्ष चलता रहता है।

जैनेन्द्र के परवर्ती उपन्यास हैं—'मुक्ति-बोध' और 'अनन्तर'। 'अनन्तर' मे उनके पूर्व उपन्यासो के नायक-नायिका का रोल विपर्यस्त हो गया है। उसमे विवाहेतर सम्बध पति के बढ़ते हैं, पत्नी के नहीं और उसी को लेकर दार्शनिक ऊहापोह के पश्चात् उपन्यास इस निष्कर्ष पर पहुचता है कि पति की भटकन को पत्नी अपनी उदारता से ही रोक सकती है न कि सकीर्णता से।

इलाचन्द्र जोशी अपने उपन्यासों के माध्यम से निरतर इस खोज मे रहे हैं कि 'अज्ञात चेतना के पाताल लोक मे स्थित नरक के विश्लेषण द्वारा बाह्य जीवन-तत्वों के साथ उन नारकीय, किन्तु मूल जीवन-तत्वों का समुचित सम्बन्ध स्थापित करके मानव-जगत मे किन उपायो से अपेक्षित स्वर्ग की स्थापना की जा सकती है।' स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इलाचन्द्र जोशी के ये उपन्यास प्रकाशित हुए हैं—'मुक्तिपथ', 'सुबह के भूले', 'जिप्सी', 'जहाज का पछी' और 'ऋतुचक्र'। 'मुक्तिपथ' से उनकी उपन्यास-कला ने एक स्वस्थ मोड लिया है। यहा से उन्होंने वर्षों के अपने मनोविज्ञान सम्बन्धी अध्ययन-मंथन का सामाजिक उद्देश्य से प्रयोग करना शुरू किया है।

इनका उपन्यास 'जहाज का पछी' व्यक्ति के प्रति समाज के और व्यक्ति के प्रति व्यक्ति के अत्याचार की कहानी प्रस्तुत करता है। जोशी जी के उपन्यास 'ऋतुचक्र' मे कुछ अछूती समस्याओ को गहराई से लिया गया है। उदाहरणार्थ, मनुष्य के सामूहिक अचेतन के केन्द्रीय परमाणु के विस्फोट की कल्पना, प्रौढ़ो का अनासक्तिकाम, उन्मुक्त प्रकृति के सान्निध्य मे विकास-मुक्ति। परम्परा से थोडे हटकर उसमे जन्मांतरवाद की व्याख्या भी की गई है।

अज्ञेय ने हिन्दी-उपन्यास को एक नया मोड दिया। आज के अनिश्चय, अव्यवस्था और जटिलता के युग मे एक व्यक्ति के भीतर जो अनेक बहुमुखी व्यक्तित्व उभर आए हैं और उनके कारण उसमे जो सघर्ष चल रहा है उसे मानवता के सचित अनुभव के प्रकाश मे ईमानदारी से पहचानने की कोशिश करना उनके उपन्यासो का चरम लक्ष्य है। अज्ञेय का पहला बहुचर्चित उपन्यास है 'शेखर एक जीवनी'। यह स्वतन्त्रता-पूर्व का उपन्यास है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद का उनका उपन्यास है 'नदी के द्वीप'। 'शेखर एक जीवनी' की तरह 'नदी के द्वीप' भी व्यक्ति-चरित का उपन्यास है। पर इसका विषय व्यक्ति-चरित का क्रमिक विकास दिखाना नही है, विकसित चरित्र को धीरे-धीरे उघाडना-भर है। 'शेखर एक जीवनी' के शेखर और शशि की तरह 'नदी के द्वीप' के रेखा और भुवन के भीतर भी गहरे मे सैक्स और 'कान्श्यस' मे भीषण सग्राम छिडा रहता है। अन्तर केवल इतना है कि 'शेखर एक जीवनी' के प्रधान पात्रों मे पहले कान्श्यस की सेक्स पर विजय होती है और बाद मे सैक्स की जीत ध्वनित होती है, पर 'नदी के द्वीप' मे पहले सेक्स जीतता है और बाद मे कान्श्यंस।

अज्ञेय का स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद का एक और उपन्यास है 'अपने-अपने अजनबी', जिसकी विषय-वस्तु वही है जो 'शेखर एक जीवनी' की, यानी मृत्यु से साक्षात्कार। अन्तर केवल यह है कि शेखर के सामने प्रश्न यह था कि उसके जीवन की सिद्धि क्या है अर्थात् यदि वह मर जाता है तो कुल मिलाकर उसके जीवन का अर्थ क्या हुआ, जबकि यह उपन्यास जीवन-मात्र के नक्शे मे मृत्यु-मात्र के स्थान की व्याख्या मे प्रवृत्त है।

डा. देवराज के चार उपन्यास प्रकाशित हुए हैं 'पथ की खोज', 'बाहर-भीतर', 'रोडे और पत्थर' तथा

'अजय की डायरी', जिनमे मध्यवर्ग के शिक्षित बुद्धिजीवी समाज के जीवन की करुण यथार्थता का मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित किया गया है।

इस धारा की अन्य रचनाओ मे प्रभाकर माचवे के तीन लघु उपन्यास उल्लेखनीय हैं—'परन्तु', 'द्वाभा', 'साचा' जिनमे सामाजिक वैषम्य की प्रतिक्रिया मे व्यक्ति-चेतना के अन्तर्मुखी और आत्मकेन्द्रित होकर शून्य मे खो जाने का चित्रण है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास की इस धारा मे नरेश मेहता का उपन्यास 'डूबते मस्तूल', रघुवश का 'ततुजाल', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' भारत भूषण अग्रवाल का 'लौटती लहरो की बासुरी' और निमल वर्मा का 'वे दिन' उल्लेखनीय हैं।

ऐतिहासिक उपन्यास

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास मे मुख्यत दो प्रवृत्तिया दृष्टिगोचर होती हैं। पहली है मानवतावादी दृष्टि से वर्तमान के सन्दर्भ मे अतीत का चित्रण और दूसरी है मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित होकर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सहारे प्राचीन इतिहास का विवेचन-विश्लेषण। वृन्दावनलाल वर्मा, अमृतलाल नागर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री आदि के ऐतिहासिक उपन्यास पहली प्रवृत्ति के अन्तर्गत हैं तथा राहुल साकृत्यायन, यशपाल, रागेय राघव आदि की ऐतिहासिक रचनाए दूसरी प्रवृत्ति की है।

वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासो मे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर खडे होकर वर्तमान को समझने और सुधारने की चेष्टा दिखती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वर्माजी के 'कचनार', 'अचल मेरा कोई', 'मृगनयनी', 'सोना', 'टटे काटे', 'अमरबेल', 'माधवजी सिन्धिया', 'अहिल्याबाई' आदि कई उपन्यास प्रकाश म आए हैं जिनमे अतीत के चित्रण के साथ रोमास और आदश का ताना-बाना बुना गया है। प्रारम्भिक उपन्यास 'गढ कुण्डार' और 'विराटा की पद्मिनी' के बाद 'मृगनयनी' वर्माजी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है जिसमे पन्द्रहवी शताब्दी के ग्वालियर नरेश राजा मानसिंह तोमर और उनकी रानी मृगनयनी की कहानी है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद चतुरसेन शास्त्री के कई ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाश मे आय हैं 'नरमेध', 'वैशाली की नगरवधू', 'सोमनाथ', 'आलमगीर', 'वय रक्षाम'। इन रचनाओ मे उन्होन आदर्शवादी दृष्टि से भारत के स्वर्णिम अतीत का चित्रण-विश्लेषण करके मानवता के धरातल को उठाने की चेष्टा की है। इतिहास और कला के योग स इन कृतियो मे इतिहास-रस का ऐसा सचार हुआ है कि पाठक उसमे निमज्जित हुए बिना नही रहता। उनका विशेष उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास है 'वैशाली की नगरवधू'। इसके कथानक का काल-विस्तार ६००-५०० वष ईसा-पूव है और केन्द्र है बौद्ध ग्रन्थो मे उल्लिखित वैशाली की गणिका अम्बपाली।

अमृतलाल नागर के ऐतिहासिक उपन्यास है – 'सात घूघटवाला चेहरा', 'शतरज के मोहरे' और 'सुहाग के नूपुर'। 'शतरज के मोहरे' मे अवध की नवाबी के ह्रास का चित्रण है। इसमे उस समय के राजनीतिक षड्यन्त्र, महलो के भीतर की रगीनिया, जन-साधारण का सघर्षमय जीवन, विदेशियों की धूर्तता, नवाबो की कोरी शान-बान मूर्त्त हुई है। पर नागर का विशेष उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास है 'सुहाग के नूपुर' जो कथ्य और कला दोनो की दृष्टि से एक पुष्ट रचना है। इसके कथानक की प्रेरणा लेखक को पहली शताब्दी ईसवी के तमिल कवि इलगोवन के अमर काव्य 'शिलप्पदिकारम्' से मिली है। पर अपनी सृजन-प्रतिभा से उसने इसे मौलिक और स्पृहणीय रचना बना दिया है। 'मानस का हस' नाम से नागर जी का एक बृहद् उपन्यास प्रकाशित हुआ है जिसके नायक हैं गोस्वामी तुलसीदास। तुलसीदास की प्रामाणिक जीवनी के अभाव मे लेखक ने उनकी रचनाओ के आधार पर उनके भव्य, पर काल्पनिक चरित्र का निर्माण किया है। 'खंजन नयन' के नायक सूरदास हैं।

सांस्कृतिक विकास को प्रकाश में लाने के लिए इतिहास के काल विशेष का कल्पना-प्रसूत चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा', 'चारुचन्द्रलेख' मे। उपन्यास के क्षेत्र मे ये दोनो रचनाए अनोखा प्रयोग है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' स्वतन्त्रता से पहले की रचना है, जबकि 'चारुचन्द्रलेख' की रचना स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद हुई। द्विवेदी जी के पहले उपन्यास की तरह यह भी सीधे इतिहास पर नही, बल्कि इतिहास के उन जीवन-सत्यो पर खड़ा है जिनका ज्ञान हमे उस युग के साहित्य से प्राप्त होता है।

मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित होकर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर इतिहास का विश्लेषण करने वाले प्रमुख उपन्यासकार हैं—राहुल साकृत्यायन, यशपाल, रागेय राघव आदि। राहुल सांकृत्यायन के ऐतिहासिक उपन्यास हैं 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', 'मधुर-स्वप्न' और 'विस्मृत यात्री'। इनमे भी विशेष उल्लेखनीय तो पहले दो उपन्यास ही हैं। पर स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पहले की रचनाए होने के कारण वे हमारे विवेचन से बाहर है। 'मधुर स्वप्न' मे राहुलजी ने भारत के इतिहास की परिधि को लाघकर मध्य एशिया के छठी शताब्दी के जन-जीवन के माध्यम से मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन किया है। 'विस्मृत यात्री' छठी शताब्दी के एक बौद्ध यात्री की कहानी है जो लेखक के अपने जीवन से मिलती-जुलती है। नायक नरेन्द्रयश के माध्यम से राहुल जी के सभी ऐतिहासिक उपन्यासो का मूल उद्देश्य साम्यवादी सिद्धान्तो के प्रचार द्वारा आदर्श समाज का निर्माण रहा है। सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए उन्होने अतीत के विस्मृत व्यक्तियो को उठाया है और उनके जीवन की तदनुकूल घटनाओ पर ही बल दिया है।

ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप मे यशपाल की ख्याति का आधार है उनकी समर्थ कृति 'दिव्या' परन्तु यह स्वतन्त्रता के पूर्व की है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की उनकी ऐतिहासिक कृति है 'अमिता', जो अशोक के कलिंग-विजय की ऐतिहासिक गाथा पर आधारित है। उस युग के समाज और राजनीति की प्रकृति-विकृति के विवेचन-विश्लेषण द्वारा कलिंग-विजय के लिए भयकर नर-सहार करने वाले प्रचड अशोक के हृदय-परिवर्तन की स्थिति का मनोवैज्ञानिक चित्रण इस कृति मे हुआ है। पर इस सबके बावजूद यह कृति 'दिव्या' की ऊचाइयो को नही छू पाती।

सामाजिक यथार्थ की अविच्छिन्न शृखला को देखने के उद्देश्य से रागेय राघव ने 'मुर्दों का टीला', 'प्रतिदान', 'अधेरे के जुगनू', 'राह न रुकी' आदि कई ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। पर 'मुर्दों का टीला' रागेय राघव के ऐतिहासिक उपन्यासो मे सबसे महत्वपूर्ण है। इसमे उन्होंने मोहन जोदडो युग के अज्ञात सामाजिक और सास्कृतिक जीवन की कल्पना प्रसूत झांकी प्रस्तुत की है।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास मे एक और नया प्रयोग हुआ है शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' के उपन्यास 'बहती गगा' के रूप मे। उसकी नायिका है काशी की नगरी जिसके २०० वर्ष (सन् १७५० से १९५० ई० तक) के लम्बे इतिहास का वर्णन बडी कुशलता से रोचक शैली मे किया गया है। रचनाकार का ध्यान नगरी के शरीर पर नहीं, उसकी आत्मा अर्थात् उस नगरी मे बसने वाले जनमानस के क्रमिक विकास पर रहा है। रचना समाप्त करते-करते पाठक पर इस नगरी का व्यक्तित्व, इसकी अद्भुत मस्ती, निपट निर्द्वन्द्वता, स्वातन्त्र्य प्रेम और प्राचीनतावादी दृष्टिकोण छा जाता है। इस उपन्यास का विशेष महत्व शिल्प की दृष्टि से है।

साहित्य की दृष्टि से इतिहास और पुराण को एक मान लें तो एक और सशक्त कृति का उल्लेख करना होगा जो अंजना और पवनंजय की प्रेम-कथा के एक प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित है। वह है वीरेन्द्रकुमार जैन का उपन्यास 'मुक्तिदूत' जो पवनजय के आत्मविकास और आत्मोपलब्धि की अत्यन्त करुण

कथा है। उनका उपन्यास 'अनुत्तर योगी' भगवान महावीर के जीवन पर आधारित है। इसके अतिरिक्त यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का 'सन्यासी और सुन्दरी' तथा वनकाम सुनील के 'धूलि और नर्तन', 'सामन्त-बीजगुप्त', 'इरावती' उल्लेखनीय हैं। 'सामन्त-बीजगुप्त' का कथासूत्र लेखक ने वहा से पकडा है जहां भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' का अन्त हुआ है। 'इरावती' मे लेखक ने जयशकर 'प्रसाद' की अधूरी कृति 'इरावती' को आगे बढ़कर पूरा किया है।

आंचलिक उपन्यास

आचलिक उपन्यास मे किसी विशेष प्रदेश या अचल को लेकर उसके जन-जीवन का यथार्थ एव सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया जाता है। उसमे देश, काल, प्रकृति और परिस्थिति का चित्रण पृष्ठभूमि बनकर या उपन्यास के अन्य तत्वो का पोषक बनकर साधन के रूप मे नही बल्कि साध्य के रूप मे होता है।

आचलिक उपन्यास के रूप मे फणीश्वरनाथ रेणु के दो उपन्यासो 'मैला आंचल' तथा 'परती परिकथा' को भी खूब ख्याति मिली है। 'मैला आचल' को तो कुछ लोगो ने 'गोदान' से भी श्रेष्ठ माना है। पर इस तथ्य को हिन्दी के बहुत कम पाठक जानते होगे कि रेणु ने 'मैला आचल' की रचना मे सतीनाथ भादुडी की बगकृति 'ढौडाय चरितमानस' का बडे कौशल से उपयोग किया है। रेणु पर ताराशकर की कथा-सरिता का भी पर्याप्त प्रभाव रहा है, जिससे 'मैला आचल' की औपन्यासिकता पुष्ट हुई है। कथानक में प्रवाह है, पाठक कही अटकता नही। इस उपन्यास की विशिष्टता स्थानीय बोलियो के सफल प्रयोग मे है। आचलिकता की दृष्टि मे रेणु का दूसरा उपन्यास 'परती परिकथा' अधिक ईमानदारी से लिखा गया लगता है। इसमे 'मैला आचल' के अभावो की पूर्ति की चेष्टा हुई दिखती है।

आचलिक उपन्यासो की इस परम्परा मे राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' का उपन्यास 'सूरज किरण की छांव', हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर बह चली', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए', बलभद्र ठाकुर के 'आदित्यनाथ', 'मुक्तावली' और 'नेपाल की बेटी' नामक उपन्यास भी उल्लेखनीय है। रामदरश मिश्र का उपन्यास 'जल टूटता हुआ' अपने ही ढग का एक आचलिक उपन्यास है जिसमे व्यक्ति, जाति अथवा गाव की कथा न कहकर स्वतन्त्रता के बाद के पन्द्रह वर्षों के दौरान पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाव की आर्थिक दयनीयता तथा बदलते जीवन-मूल्यो का यथार्थ चित्रण हुआ है—तिवारीपुर गाव के बनते-टूटते परिवारो की कहानी के रूप मे। इसी परम्परा मे हिमाशु जोशी का उपन्यास 'कगार की आग' भी उल्लेखनीय है।

प्रगति के पथ पर

स्वतन्त्र भारत मे नर-नारी के सम्बन्धो ने भी नया मोड लिया। विवाह धार्मिक अनुष्ठान न रहकर स्त्री-पुरुष से बराबरी के रूप मे होने वाले एक समझौते के रूप मे देखा जाने लगा। देश के विभाजन की आधी मे नारी को जो झेलना पडा था उसने उसकी आखें खोल दी थी। उसने अच्छी तरह देख लिया था कि व्यक्ति और समाज की विकृतियो का शिकार उसे ही बनना पडता है। अत अपने परिपार्श्व के प्रति अब वह सजग हो गई है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पुरुष के साथ कन्धे-से-कन्धा भिडाकर (मिलाकर नही) चलने की मांग करने लगी। सभ्यता ने उसकी स्वतन्त्रता को स्वीकारा। कानून ने उसे बराबरी का हक दिया। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा ने उसमे स्वाभिमान का भाव भरा।

गृहस्थी पर बढता हुआ आर्थिक बोझ, स्वतन्त्रता की कामना और नगर-जीवन की चकाचौंध सब मिलकर नारी को नौकरी के क्षेत्र मे ले आये। पर गृहस्थी की जिम्मेदारी उसकी ज्यों-की-त्यों बनी रही और

यह एक अतिरिक्त बोझ उस पर आ पड़ा। पहले उसका शोषण घर मे होता था, अब बाहर भी होने लगा। फिर भी अब वह उतनी निरीह न रही थी। पर जो ईमानदारी से दोनों ही दायित्व निभाना चाहती थी, वे दोनो पाटो के बीच पिसने लगी। नौकरीपेशा तथा आधुनिका नारी की समस्याओ को लेकर रजनी पनिकर, मीरा महादेवन, शशिप्रभा शास्त्री आदि अनेक लेखिकाए भी उपन्यास के क्षेत्र मे आई। इस दृष्टि से उषा प्रियवदा का उपन्यास 'पचपन खभे', 'लाल दीवारे' और 'रुक न सकोगी राधा', रजनी पनिकर का 'सोनाली दी' तथा 'बदलते रग', मीरा महादेवन का 'अपना घर' और शशिप्रभा शास्त्री का 'अमलतास' उल्लेखनीय हैं।

मूल्य विघटन के परिणामस्वरूप आज के युग मे पति-पत्नी के सम्बन्धो मे आई दरार का चित्रण करने वाले उपन्यासो मे मोहन राकेश का उपन्यास 'अधेरे बद कमरे' उल्लेखनीय है जो आधुनिक पति-पत्नी के रूप मे दो बद व्यक्तित्वो की नित्य नई और अकारण कलह की कहानी है। अपने स्फीत अह को लेकर दोनो न चाहने पर भी बार-बार एक-दूसरे से टकराते हैं और बहुधा सम्बन्ध-विच्छेद तक पहुचकर लौट आते हैं। शायद अपनी बच्ची के भविष्य का ध्यान मे रखते हुए। पर जब पति-पत्नी की नासमझी इतनी बढ़ जाए कि सन्तान के हिताहित को ताक मे रखकर वे अह की तुष्टि मे तलाक तक पहुच जाए, तब उनकी सन्तानकी जो दुर्दशा होती है इसका मार्मिक मनोवैज्ञानिक चित्रण मन्नू भडारी के उपन्यास 'आपका बटी' मे हुआ। उनका उपन्यास 'महाभोज' वोट की रणनीति पर बडा तीखा व्यग्य है।

र श केलकर का उपन्यास 'त्रिपुरसुन्दरी' कथा साहित्य के एक नये आयाम को उद्घाटित करता है। अध्यात्म और मनोविज्ञान का ताना-बाना बुनकर जिज्ञासा-भाव से व्यक्ति-मानस की अतल गहराइयो मे उतरने का हिन्दी-उपन्यास मे शायद यह पहला प्रयास है। पारिवारिक जीवन और आध्यात्मिक साधना को साथ-साथ चलाते हुए एक साधक जीवन के गूढतम रहस्यो की खोज मे कामादि मनोविकारो स जूझता जूझता अति चेतन सकेतो को ग्रहण करने लगता है। उनके नये उपन्यास 'त्रिपथा' और 'त्रिनयना' भी उल्लेखनीय है।

व्यग्यात्मक कृति के रूप मे श्रीलाल शुक्ल का बहुचर्चित उपन्यास 'राग-दरबारी' भी उल्लेखनीय है जो बदलते जीवन-मूल्यो के परिप्रेक्ष्य मे शहर के साथ लगे एक कस्बे के जन-जीवन, समाज-व्यवस्था और सरकारी अर्ध-सरकारी तन्त्र मे घुस रहे सर्वतोमुखी भ्रष्टाचार का व्यग्यात्मक शैली मे चित्रण करता है। पर इसका व्यग्य तीखा होते हुए भी उस सूक्ष्मता को नही पा सकता है जो जयशकर 'प्रसाद' के उपन्यास 'ककाल' की नस-नस मे व्याप्त है। कई स्थलो पर तो इस उपन्यास का व्यग्य फूहड़ हास्य को छूने लगता है। हसराज रहबर का उपन्यास 'किस्सा तोता पढाने का' भी अपने तीखे व्यंग्य के कारण उल्लेखनीय है जो अत्यन्त कल्पनाशील ढग से पूजीपतियो के हाथों बुद्धिजीवियो के बिक जाने की खिल्ली उडाता है।

इनके अतिरिक्त कमलेश्वर के उपन्यास 'एक सडक सत्तावन गलिया', 'डाक-बगला' और भीष्म साहनी का 'कड़ियां' भी उल्लेखनीय है। महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स', रमेश बक्षी का 'अठारह सूरज के पीछे' तथा शानी का 'काला जल' नामक उपन्यास भी उल्लेखनीय है। अविवाहिता अध्यापिका के जीवन पर आधारित मोहन चोपड़ा का 'नीड के आगे' तथा दफ्तर के गलघोटू जीवन पर आधारित बदीउज्जमा का 'फैंटेसी' शैली मे लिखा उपन्यास 'एक चूहे की मौत' भी उल्लेखनीय है, उतना अपने उपन्यासत्व के कारण नही, जितना कि विषय की नवीनता के कारण। राही मासूम रजा का उपन्यास 'आधा गाव' भारतीय मुसलमानों की समस्याओ को रेखाकित करता है।

पिछले ३५ वर्ष की सबसे बडी और क्रान्तिकारी घटना तो यह है कि जीवन जीने और भोगने के बजाय समझने और समझाने का, व्याख्या और विश्लेषण का विषय बन गया तथा अनुभूति का स्थान बौद्धिकता ने ले लिया। उपन्यास को तो जमाने की हवा बड़ी तेजी से लगती है। उपन्यास मे अनुभूति की गहनता घटी तो कथ्य

फीका पड़ने लगा। उपन्यास के लिए यह बड़े संकट का समय था, पर शीघ्र ही बौद्धिकता और शिल्प ने सहारा देकर उसे इस विकट स्थिति से उबार लिया। बौद्धिकता और शिल्प में वैसे भी चमत्कार पैदा करने की अद्भुत शक्ति है। साहित्य-सृजन ने व्यवसाय का रूप धारण किया तो चमत्कार और भी वांछनीय हो उठा। मौलिकता और फैशन के आग्रह से भी शिल्प के नये-नये प्रयोगों को बढ़ावा मिला। शिल्पगत प्रयोग जितने पिछले पच्चीस वर्ष में हुए हैं उतने शायद उपन्यास के पूरे इतिहास में भी नहीं हुए। इससे उपन्यास का रूप तो निखरा, पर उसकी अन्त सलिला सूखती गई। सन्तोष की बात है कि उपन्यास में घुस आए इस असन्तुलन का एहसास अब जोर पकड़ने लगा है जो हिन्दी-उपन्यास के उज्ज्वल भविष्य के लिए शुभ ही माना जाएगा।

परिशिष्ट

इन पृष्ठों में यशपालजी के जीवन की प्रमुख घटनाओं की तालिका दी गई है और उनके द्वारा रचित और प्रकाशित मौलिक, संकलित-संपादित तथा अनूदित पुस्तकों की सूची। कुछ लेख-मालाओं का भी नामोल्लेख कर दिया गया है जो पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुईं। सम्पूर्ण निबंधों, संस्मरणों, कविताओं, रेडियो-वार्ताओं, कहानियों आदि-आदि की संख्या इतनी अधिक है कि उनका उल्लेख करना भी संभव नहीं था। अंत में उनकी वंशावली और अभिनंदन समिति को भी सम्मिलित कर दिया गया है।

परिशिष्ट

जीवन-तालिका

□□

१९१२ — १ सितम्बर, जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के अन्तर्गत विजयगढ़ मे।

१९२१ — शिक्षारम्भ।

सुलेख और खेलकूद प्रतियोगिताओं तथा नाटको मे भाग।

१९२९ — विजयगढ़ से मिडिल की परीक्षा मे उत्तीर्ण।

१९३० — कायस्थ पाठशाला अलीगढ़ मे नवीं कक्षा मे प्रवेश।

एक सामाजिक उपन्यास की रचना, पाण्डुलिपि खो गई।

स्काउट मास्टर के रूप मे स्कूलो मे कार्य, विशेष अवसरो पर स्काउटो को बाहर ले जाना।

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण-स्थल कुशीनगर की यात्रा।

स्कूल-पत्रिका मे लेख।

१९३१ — स्काउटिंग के शिविर मे लक्ष्मणझूला के निकट निर्मल वन की यात्रा।

डी ए वी हाई स्कूल, अलीगढ़ से मैट्रिक की परीक्षा मे उत्तीर्ण।

धर्मसमाज कालेज, अलीगढ़ मे इंटर मे प्रवेश।

१९३२ — ईविंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद मे इटर के अंतिम वर्ष मे प्रवेश।

१९३३ — स्काउटिंग मे सेवा-कार्य।

प्रयाग से 'माया', 'भारत' और दिल्ली के चित्रपट आदि पत्रो मे लेखन आरम्भ।

इटर की परीक्षा मे उत्तीर्ण।

१९३३ — इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे बी ए मे प्रवेश।

यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर (यू टी सी.) मे सैनिक प्रशिक्षण।

१९३५ बी ए मे उत्तीर्ण।

१९३७ एल-एल बी मे उत्तीर्ण।

बहन श्रीप्रभा का विवाह।

दिल्ली-आगमन, स्थायी निवास।

१९३८ 'जीवन-सुधा' मासिक का सम्पादन और उसके विशेषांक 'लेखकांक' का प्रकाशन।

'निराश्रिता' उपन्यास 'जीवन-सुधा' मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित।

हिन्दी परिषद का आयोजन।

'मधुमक्खी पालन' का अनुवाद।

'सस्ता साहित्य मडल' मे कार्यारभ।

पहला कहानी-सग्रह 'नवप्रसून' प्रकाशित।

१९३९ 'हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना और सचालन।

काग्रेस के दरियागज वार्ड के सयुक्त मत्री।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी से प्रथम साक्षात्कार।

१९४० कलकत्ता, शान्तिनिकेतन तथा बबई का प्रवास।

दिल्ली से प्रस्थान। कुण्डेश्वर (टीकमगढ) मे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के साथ 'मधुकर' का सम्पादन-आरभ।

१९४२ २२ जनवरी आदर्श कुमारी के साथ दिल्ली मे विवाह।

१९४३ १० अक्तूबर—पुत्री अन्नदा का कुण्डेश्वर मे जन्म।

अहार अतिशय तीर्थ-क्षेत्र का उद्धार, 'अहार' पुस्तिका का प्रकाशन।

१९४४ प्रेमी अभिमदन ग्रन्थ की तैयारी आरभ।

बुन्देलखड के लेखको तथा लोक-साहित्य को प्रोत्साहन।

बुन्देलखड प्रात-निर्माण का आन्दोलन।

क्रान्तिकारियो की सहायता।

'स्व हेमचद्र' पुस्तक का प्रकाशन।

१९४५ ५ फरवरी—पुत्र सुधीर कुमार का कुण्डेश्वर मे जन्म।

कुछ मास के लिए दिल्ली आगमन, महात्मा भगवानदीन तथा श्री जैनेन्द्र कुमार के साथ शरीर-श्रम पर आधारित जीवन का प्रयोग।

कुण्डेश्वर मे पुन निवास।

१९४६ 'प्रेमी-अभिनदन-ग्रथ' का प्रकाशन, नागपुर मे श्री काका कालेलकर की अध्यक्षता मे समपण-समारोह।

'मैं मरूगा नही' दूसरा कहानी-सग्रह प्रकाशित।

दिल्ली वापसी, 'भारतीय साहित्य परिषद' की व्यवस्था।

साम्प्रदायिक दगो के कारण परिषद स्थगित।

'सस्ता साहित्य मडल' मे पुन कार्यारभ।

'जीवन साहित्य' मासिक के सम्पादन का श्रीगणेश।

१९४७ साम्प्रदायिक दगो मे अमन के लिए प्रयत्न।

१९४८ गांधीजी के पांच दिनों के उपवास-कालीन प्रवचनों का संग्रह ('हृदय-मंथन के पांच दिन') और प्रकाशन।
गांधी-साहित्य के विधिवत प्रकाशन की योजना।
पीलिया रोग से आक्रान्त, तीन मास की लम्बी बीमारी।

१९४९ पत्नी की गंभीर अस्वस्थता। लम्बी बीमारी के बाद स्वास्थ्य-लाभ।
प्रथम सर्वोदय सम्मेलन, राऊ में सम्मिलित, विनोबाजी से निकटता स्थापित।
गांधी-साहित्य का विधिवत प्रकाशनारंभ।

१९५० सर्वोदय-सम्मेलन मे भाग और उड़ीसा-प्रवास।
कांग्रेस के नासिक-अधिवेशन मे सम्मिलित, अजंता-एलोरा की यात्रा।

१९५१ 'गांधी डायरी' का प्रकाशन आरंभ।

१९५२ साबरमती का प्रथम प्रवास।

१९५४ बंगलोर, मैसूर, मद्रास तथा श्रीअरविन्द आश्रम, पांडिचेरी की प्रथम यात्रा, माताजी से लम्बी चर्चाए।
काश्मीर-अमरनाथ की यात्रा।

१९५५ दक्षिण भारत, उड़ीसा का प्रवास, बदरी-केदार की पैदल-यात्रा।

१९५६ दक्षिण भारत का प्रवास।

१९५७ कन्याकुमारी तथा धनुषकोटि तक सम्पूर्ण दक्षिण भारत का प्रवास, बैंगलोर मे प्रख्यात वैज्ञानिक सर सी वी रमन से भेंट।
पहली विदेश-यात्रा—अफगानिस्तान, रूस, चैकोस्लोवाकिया, स्विट्जरलैंड, इटली, फ्रांस, इंगलैंड, जर्मनी, डेनमार्क तथा फिनलैंड।

१९५८ कांग्रेस-अधिवेशन के अवसर पर असम मे गुहाटी, शिलांग, चेरा पूंजी, काजीरंगा आदि का भ्रमण।
गंगोत्री-यमुनोत्री की पैदल-यात्रा।

१९६० कुल्लू-मनाली तथा रोहतांग दर्रे का प्रवास।
द्वितीय विदेश यात्रा—बर्मा, थाईलैंड, कम्बोडिया, दक्षिण वियतनाम, सिंगापुर तथा मलाया।

१९६२ ११ जुलाई पुत्री अन्नदा का श्री कमल कुमार पाटनी के साथ जयपुर मे विवाह।

१९६३ लद्दाख मे आठ दिन।

१९६४ नेपाल-भ्रमण।
१४ जून अन्नदा के ज्येष्ट पुत्र पराग का जन्म।

१९६५ प्रवासी भारतीयो की स्थिति के निरीक्षण तथा अध्ययन के लिए अदन, सूडान, इथियोपिया, केनिया, युगांडा, तंजानिया, मलावी, दक्षिण रोडेशिया (जिम्बाब्वे), जाम्बिया, जंजीबार, मेडेगास्कर, मारीशस, फीजी, कोकोज द्वीप, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, सिंगापुर तथा थाइलैंड का प्रवास।
नेपाल की यात्रा।
काश्मीर में भ्रमण।
पुत्र सुधीर ने पिलानी से इंजीनियरिंग परीक्षा उत्तीर्ण की।

४ जून पत्नी आदर्श कुमारी की डेनमार्क-यात्रा तथा आठ मास बाद २६ दिसम्बर को वापसी।

१९६६ ३१ अगस्त सुधीर का जर्मनी को प्रस्थान।

१९६७ २४ दिसम्बर अखिल भारतीय जैन शिक्षा-परिषद के ललितपुर-अधिवेशन की अध्यक्षता।

१९६८ 'चित्र-कला सगम' के शिष्टमडल के नेता के रूप मे मास्को, ताशकद तथा समरकद की यात्रा, ताशकद मे स्व लालबहादुर शास्त्री के निधन-स्थल पर उनकी अवक्ष प्रतिमा की स्थापना।
'रूस में छियालीस दिन' पर सोवियत-लैंड-नेहरू पुरस्कार।

१९६९ १८ नवम्बर पूज्य माताजी लक्ष्मीदेवी का देहांत।
८ दिसम्बर बहनोई श्री महावीर प्रसाद का निधन।

१९७० २५ नवम्बर जैन सभा, नई दिल्ली द्वारा 'साहित्य-रत्न' की उपाधि से सम्मानित।

१९७१ २७ फरवरी बाबा मुक्तानद परमहस से सम्पर्क और उनका विशेष प्रभाव।
१८ मई विनोबाजी को पवनार मे 'विनोबा व्यक्तित्व और विचार' ग्रन्थ भेंट।
उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'साहित्य वारिधि' की उपाधि से अलकृत।
पूना, अजता, एलोरा तथा गणेशपुरी की यात्रा।
८ सितम्बर सुधीर को पुत्री चि मोनिका जयश्री जैन का टोरेंटो (कैनेडा) मे जन्म।

१९७२ २६ मई कैनेडा के लिए प्रस्थान।
३० मई पत्नी आदर्श कुमारी की कैनेडा के लिए रवानगी।
२६ मई—२८ जुलाई कैनेडा, अमरीका, सूरीनाम, गयाना तथा ट्रिनीडाड एण्ड टोबेगो का प्रवास।
२८ जुलाई सपत्नीक स्वदेश वापसी।
९ सितम्बर षष्टि-पूर्ति, प्रतिदिन डायरी के साथ एक सुभाषित लिखने का सकल्प।
१४ सितम्बर भारतीय साहित्य परिषद के वार्षिक अधिवेशन मे भाग लेने कोटा प्रवास।
२३ सितम्बर षष्टि-पूर्ति के उपलक्ष्य मे कान्स्टीट्यूशन क्लब, नई दिल्ली मे समारोह, 'समन्वयी साधु साहित्यकार' नामक हस्तलिखित ग्रन्थ तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामन्त्री श्रीजगजीवनराम द्वारा समर्पित।

१९७३ ६ जनवरी अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के स्वर्ण जयती समारोह मे भाग।
१३ फरवरी प्रात पूज्य पिता श्री श्यामलाल जैन का निधन।
४ अप्रैल 'भारतीय साहित्य परिषद' दिल्ली का अध्यक्ष निर्वाचित।
२५ जून से गोरखपुर, वाराणसी, सारनाथ, नेपाल और कबीर की पुण्य-भूमि मगहर की यात्रा।
२ अगस्त डलहौजी मे दस दिन के 'विपश्यना ध्यान-शिविर' मे भाग।
१०-२५ सितम्बर बबई तथा श्री गुरुदेव आश्रम, गणेशपुरी की यात्रा।

१९७४ ३-१७ जून नागदा, माउण्ट आबू, दिलवाडा, राणकपुर, काकरौली, एकलिंग, उदयपुर, चित्तौड, हल्दीघाटी और मदसौर का प्रवास।

१९७५ ९-१६ जनवरी नागपुर प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन मे सपत्नीक सम्मिलित।
१० फरवरी अमृतसर (स्वर्ण मदिर, जलियावाला बाग) और लुधियाना की यात्रा।
१ अप्रैल सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली का मंत्री-पद सभाला।

भगवान महावीर के पच्चीससौवें निर्वाण महोत्सव वर्ष को मनाने के लिए गठित राष्ट्रीय कमेटी प्रबंध-समिति तथा अखिल भारतीय जैन महासभा का सक्रिय सदस्य।

१३ अप्रैल मेरठ की 'वीर निर्वाण भारती' संस्था द्वारा विज्ञान भवन, नई दिल्ली में पुरस्कृत और 'विद्या-वारिधि' की उपाधि से अलंकृत।

१८ अप्रैल खतौली (उत्तर प्रदेश) के के के जैन डिग्री कालेज मे दीक्षान्त-भाषण।

२८ अप्रैल एकमात्र बहन श्रीप्रभा का मेरठ मे देहान्त।

१९७६ १ अप्रैल अन्नदा के कनिष्ठ पुत्र पल्लव का जयपुर मे जन्म।

३ जून वर्धा-प्रवास।

अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष के रूप मे मध्य प्रदेश, राजस्थान, कलकत्ता आदि का भ्रमण।

२७ अगस्त को सपत्नीक मारीशस मे आयोजित द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन मे भाग लेने के लिए प्रस्थान, ८ सितम्बर को वापसी।

३१ दिसम्बर श्वसुर बा कामता प्रसाद का भरतपुर मे देहान्त।

१९७७ १४-१५ मार्च 'साहित्याचल' कोटद्वार की गोष्ठी मे भाग, कण्वाश्रम की यात्रा, साहू जैन कालेज, नजीबाबाद मे भाषण।

२० अप्रैल वाराणसी मे उत्तर प्रदेशीय हिन्दी प्रकाशक सघ के वार्षिक अधिवेशन तथा प्रदर्शनी का उद्‌घाटन।

२५-२९ जून हैदराबाद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, साहित्य परिषद तथा राष्ट्रभाषा परिषद मे भाग।

१०-२० अक्तूबर नई दिल्ली मे 'विपश्यना ध्यान शिविर' मे सम्मिलित।

'सेतु निर्माता' पुस्तक पर दूसरी बार 'सोवियत-लैंड-नेहरू' पुरस्कार प्राप्त।

१९७८ ८-१० मार्च बिहार शरीफ़, नालन्दा, राजगृह और पटना का प्रवास। वीरायतन, राजगृह मे उपाध्याय अमरमुनि के अमृत-महोत्सव मे प्रमुख वक्ता, पटना सदाकत आश्रम मे श्री जयप्रकाश नारायण से भेंट।

१० मार्च भट्टी गाव के निकट बाबा मुक्तानद परमहस के सान्निध्य मे श्री गुरुदेव आश्रम का उद्‌घाटन, उपस्थित साधकों को सम्बोधन।

१६-२४ अप्रैल ब्रह्मदेश का प्रवास, अखिल बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रगून के वार्षिक अधिवेशन का उद्‌घाटन, महावीर-जयती मे सम्बोधन तथा अन्य अनेक सस्थाओं में भाषण।

१४ मई बाल-साथी, अनन्य मित्र, जगदीश चद्र माथुर का दिल्ली मे देहान्त।

८-१३ जून आदर्शकुमारी, जामाता कमलकुमार पाटनी, सौ अन्नदा, दौहित्र पराग और पल्लव के साथ हरिद्वार, ऋषीकेश, बदरीनाथ की यात्रा।

१२-२३ अगस्त बबई, गणेशपुरी का प्रवास, बाबा मुक्तानद को, सम्पादक के नाते, 'स्वामी मुक्तानद' अभिनदन-ग्रंथ का समर्पण, बंबई हवाई अड्डे पर बाबा को विदेश-यात्रा के लिए विदाई।

१९ दिसम्बर सास श्रीमती रुक्मिणी देवी का भरतपुर मे देहान्त।

१९७९ २ मई 'सस्ता साहित्य मण्डल' के भूतपूर्व मत्री श्री मार्तण्ड उपाध्याय का देहान्त।

१६ मई जसलोक अस्पताल बबई मे श्री जयप्रकाश नारायण से अंतिम भेंट।

२३ अप्रैल, मदर टरेसा से उनके कलकत्ता-आश्रम में भेंट और लम्बी चर्चाए।

१६-३० मई बबई, पूना, गोवा, नागदा प्रवास।

१ दिसम्बर आचार्य काका कालेलकर के अभिनंदन ग्रथ 'समन्वय के साधक' का उपराष्ट्रपति हिदायतुल्ला द्वारा विमोचन और काका साहेब को समर्पण।

१९८० २६-३० जनवरी गणेशपुरी (श्री गुरुदेव आश्रम) मे सिद्धयोग सम्मेलन की अध्यक्षता।

३१ मई अमरीका को सपत्नीक प्रस्थान।

१-७ जून स्वामी मुक्तानन्द के सान्निध्य मे श्री गुरुदेव आश्रम, साउथ फॉल्सबर्ग मे, ७ जून से ४ जुलाई टोरेंटो-निवास तथा कैनेडा-प्रवास, ४-८ जुलाई, न्यूयार्क, ६-१८ जुलाई श्री गुरुदेव आश्रम साउथ फॉल्सबर्ग मे पुन आगमन, १८ जुलाई न्यूयार्क, १९ जुलाई स्टेटन द्वीप मे मुनि सुशील कुमार के सान्निध्य मे उनके आश्रम मे।

२१ जुलाई लदन के लिए प्रस्थान, २७ जुलाई, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की यात्रा।

३० जुलाई लदन से प्रस्थान।

२० अगस्त सुधीर के ज्येष्ठ पुत्र विवेक का टोरेंटो मे जन्म।

१९८१ १८ अप्रैल 'जापान बुद्ध सघ' के निमत्रण पर विश्व शाति सम्मेलन मे गांधी-विचार-धारा तथा जैन धर्म के प्रतिनिधि के रूप मे जापान को प्रस्थान। थाईलैंड, हागकाग, जापान (टोकियो, क्योटो, ओसाका, याकोहामा, फ्यूजी पर्वत, हिरोशिमा आदि-आदि) का भ्रमण, फ्यूजीई गुरुजी का सान्निध्य, विश्व शाति सम्मेलन के अध्यक्ष-मण्डल मे सम्मिलित, विश्व शान्ति सम्मेलन को सबोधन।

१९८२ १५ फरवरी अमरीका की इटरनेशनल ट्रांसपर्सनल एसोसियेशन द्वारा बबई मे आयोजित कान्फ्रेंस मे भारतीय प्रतिनिधि के रूप मे भाग लेने बंबई को प्रस्थान।

१६-१८ फरवरी बाबा मुक्तानंद के साथ गणेशपुरी मे निवास।

१९ फरवरी कान्फ्रेंस मे 'सर्च विदिन' विषय पर ९० मिनट का भाषण।

८ अप्रैल सत्य साईबाबा से भेंट।

१ सितबर वर्षगाठ के उपलक्ष्य मे ५ पुस्तकें प्रकाशित १ प्रेरक कथाएं २ ज्ञान-कथाए ३ बोध कथाए ४ हमारी बोध कथाए ५ मुखौटे के पीछे (कहानी-सग्रह)।

बाबा मुक्तानद के काश्मीर जाते हुए पालम हवाई अड्डे पर अतिम दर्शन, बोध-कथाओं की तीन पुस्तकें भेंट, बाबा की प्रसन्नता, आशीष।

२२ सितम्बर टीकमगढ (मध्य प्रदेश) के महावीर बाल-सस्कार केन्द्र विद्यालय के भवन का शिलान्यास।

२५ सितम्बर सुधीर के कनिष्ठ पुत्र विनीत का टोरेंटो (कैनेडा) में जन्म।

२ अक्तूबर बाबा मुक्तानद की महासमाधि।

१९८३ २५ अप्रैल ग्वालियर मे महावीर जयती समारोह का उद्घाटन।

२५-२६ अप्रैल ग्वालियर जेल मे महावीर जयती का उद्घाटन, दस्यु सुन्दरी फूलन देवी तथा उसके साथियों से भेंट और वार्तालाप।

२० सितम्बर 'चाइना सोसायटी' के निमंत्रण पर 'भारत-चीन मैत्री सघ' (दिल्ली शाखा) के

प्रतिनिधि-मण्डल मे चीन के लिए प्रस्थान। २०-२२ सितम्बर थाईलैंड, २३ सितम्बर से ७ अक्तूबर चीन-भ्रमण (कैन्टन, बीजिंग, शांघाई, नानजिंग, वुसी आदि नगरों तथा देहातो का निरीक्षण)।

७-९ अक्तूबर हांगकांग।

१०-११ अक्तूबर बैंकाक (थाईलैंड)।

२८-३० अक्तूबर तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन, नई दिल्ली मे विशिष्ट अतिथि के रूप मे भाग।

१९८४ १६ फरवरी सुधीर द्वारा 'मेरे साहित्य-सृजन की प्रक्रिया', 'गाधीजी के सिद्धातो की सार्वभौमिकता' तथा 'बाबा मुक्तानद के प्रति मेरा आकर्षण क्यो' के संबध मे तीन विडियो फिल्मो का निर्माण। नागरी लिपि परिषद के नई दिल्ली में आयोजित सातवें वार्षिक अधिवेशन के द्विदिवसीय कार्यक्रमो मे सक्रिय भाग।

२१-२२ मई नई दिल्ली मे आयोजित 'परा-विद्या' सगोष्ठी मे भाग।

१० जून गाधी-दर्शन समिति द्वारा कलकत्ता मे आयोजित गोष्ठी मे 'बापूजी और बिरलाजी' विषय पर एक घटे का भाषण।

११ जून कलकत्ता के इडियन चेम्बर आफ कॉमर्स में स्व घनश्यामदास बिरला की प्रथम पुण्य-तिथि पर आयोजित श्रद्धाजलि सभा की अध्यक्षता।

२६ जून टीकमगढ़ के महावीर बाल-सस्कार केन्द्र विद्यालय भवन के उद्घाटन-समारोह की अध्यक्षता।

१ सितम्बर बहत्तरवा वर्ष समाप्त, तिहत्तरवें वर्ष मे प्रवेश।
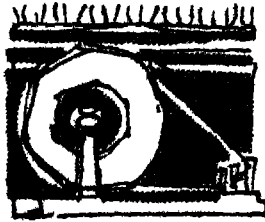
ग्रंथ-सूची

पुस्तक का नाम	प्रकाशन-तिथि	विषय	प्रकाशक
मौलिक			
१ निराश्रिता	१९३८	उपन्यास	'जीवन सुधा' दिल्ली मे धारावाहिक प्रकाशित
२ नव प्रसून	१९३८	कहानी-सग्रह	एस चांद एण्ड क , दिल्ली
३ मैं मरूंगा नहीं	१९५१	कहानी-संग्रह	हिन्दी ग्रथ रत्नाकर, बबई
४ जय अमरनाथ	१९५५	यात्रा-वृत्तान्त	सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली
५ तीर्थंकर महावीर	१९५७	जीवनी	,, ,,
६ सिंहासन बतीसी (भाग १)	१९५७	कहानियां	,, ,,
७ सिंहासन बतीसी (भाग २)	१९५७	कहानियां	,, ,,
८ उत्तराखण्ड के पथ पर	१९५७	यात्रा-वृत्तान्त	,, ,,
९ कोणार्क	१९५७	यात्रा-वृत्तान्त	,, ,,
१० अमरनाथ	१९५८	यात्रा-वृत्तान्त	,, ,,
११ बैताल पच्चीसी (भाग १)	१९६०	कहानिया	,, ,,
१२ ,, (भाग २)	१९६०	कहानियां	,, ,,
१३ रूस मे छियालीस दिन (सोवियत-लैंड-नेहरू पुरस्कार १९६८)	१९६०	यात्रा-वृत्तान्त	,, ,,
१४ जगन्नाथपुरी	१९६०	यात्रा-वृत्तान्त	,, ,,
१५ एक थी चिडिया	१९६०	कहानियां	,, ,,

१६. सेवा करे सो मेवा पाये	१९६०	कहानियां	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
१७ अजंता-एलोरा	१९६१	यात्रा-वृत्तान्त	,, ,,
१८ गोमुख	१९६१	यात्रा-वृत्तान्त	,, ,,
१९ हारिये न हिम्मत (केन्द्रीय सरकार द्वारा पुरस्कृत)	१९६१	जीवन-निर्माण संबंधी	,, ,,
२० सच्ची दौलत	१९६३	जीवन-निर्माण संबंधी	,, ,,
२१ अहिंसा की कहानी	१९६५	अहिंसा के विकास का विवेचन	,, ,,
२२ पड़ोसी देशों मे (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)	१९६५	यात्रा-वृत्तान्त	,, ,,
२३ दिव्य जीवन की झांकियां	१९६५	कथा, कहानियां तथा संस्मरण	,, ,,
२४ साबरमती का संत	१९६६	गांधीजी की जीवनी	हिन्द पाकेट बुक्स
२५ सबजन एक समान	१९७२	रेडियो रूपक	सर्व सेवा संघ प्रकाशन
२६ सेतु निर्माता (दूसरी बार सोवियत-लैंड-नेहरू पुरस्कार)	१९७५	विशिष्ट व्यक्तियों के संस्मरण	सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
२७ राष्ट्र की विभूतियां (रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय के बी ए के पाठ्यक्रम मे निर्धारित)	१९७७	संस्मरण	रस भारती, मुरादाबाद
२८ आलोक की रेखाए (आगरा विश्वविद्यालय के बी ए के पाठ्यक्रम मे)	१९७७	संस्मरण	सरन ब्रादर्स, आगरा
२९ दायरे और इसान	१९७७	कहानियां	आलेख प्रकाशन, शाहदरा
३० जीवन-ज्योति कथाए	१९७८	कथा-कहानिया	पराग प्रकाशन, दिल्ली
३१ मुखौटे के पीछे	१९८२	कहानियां	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
३२ प्रेरक कथाए	१९८२	बोध कथाए	सुबोध प्रकाशन, नई दिल्ली
३३ ज्ञान कथाए	१९८२	बोधक कथाए	,,
३४ बोध कथाए	१९८२	बोधक कथाए	,,
३५ हमारी बोधकथाएं	१९८२	बोधक कथाएं	,,

सम्पादित ग्रथ (अभिनन्दन-स्मृति-ग्रथ)

१ प्रेमी अभिनंदन ग्रन्थ (नाथूराम प्रेमी)	१९४६	प्रेमी अभिनदन समिति, टीकमगढ़
२ राजेन्द्रबाबू : व्यक्तित्व दर्शन (डा राजेन्द्र प्रसाद)	१९६३	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
३ नेहरू व्यक्तित्व और विचार (पं जवाहरलाल नेहरू)	१९६५	
४. संस्कृति के परिव्राजक (काका कालेलकर)	१९६५	,, ,,
५. गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (महात्मा गांधी)	१९६६	,, ,,
६. गांधी : संस्मरण और विचार ,,	१९६७	,, ,,

७ समन्वयी साधक (हरिभाऊ उपाध्याय)	१९६९	अभिनंदन समिति
८ प्रेरक साधक (बनारसीदास चतुर्वेदी)	१९७०	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
९ विनोबा . व्यक्तित्व और विचार (विनोबा भावे)	१९७१	,, ,,
१० विनय और विवेक (हसराज गुप्त)	१९७२	अभिनंदन समिति, नई दिल्ली
११ समर्पण और साधना (जानकी देवी बजाज)	१९७३	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
१२ कमल नयन बजाज व्यक्तित्व और विचार (स्व कमल नयन बजाज)	१९७७	,, ,,
१३ स्वामी मुक्तानद (स्वामी मुक्तानद परमहस)	१९७८	गुरुदेव आश्रम, गणेशपुरी
१४ श्रीमन्नारायण व्यक्तित्व और विचार (स्व श्रीमन्नारायण)	१९७९	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
१५ समन्वय के साधक (काका कालेलकर)	१९७९	अभिनदन समिति, नई दिल्ली

अनुवाद

१ हिन्दुस्तान की समस्याए (जवाहरलाल नेहरू के समस्यामूलक निबन्ध)	१९३९	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
२ राजनीति से दूर (जवाहरलाल नेहरू के ललित निबन्ध)	१९५०	,, ,,
३ विराट (स्टीफन ज्विग के उपन्यास)	१९५६	,, ,,
४ जिन्दगी दांव पर (स्टीफन ज्विग के उपन्यास)	१९६४	,, ,,
५ गांधी चिन्तन (गांधीजी के विचार-प्रधान प्रवचन)	१९७०	,, ,,
६ जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय (खण्ड ३) (जवाहरलाल नेहरू के लेख, भाषण, वक्तव्य, पत्र आदि)	१९७४	,, ,,
७ जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय (खण्ड ४) (जवाहरलाल नेहरू के भाषण, वक्तव्य, पत्र आदि)	१९८१	,, ,,

सकलित और सम्पादित पुस्तकें

१ अहार (विख्यात जैन-तीर्थ से सबधित लेखो का सग्रह).	१९४३	मधुकर कार्यालय टीकमगढ़
२ स्व हेमचन्द्र (सस्मरण-सग्रह)	१९४४	हिन्दी ग्रथ रत्नाकर, बंबई
३ सन् बयालीस का शहीद रमेश (सस्मरण-सग्रह)	१९४९	स्मृति समिति, नई दिल्ली
४ गांधी की कहानी (जीवनी, लुई फिशर)	१९५४	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
५ भारत विभाजन की कहानी (एलन के जॉनसन)	१९५४	,, ,,
६ समाज विकास माला (नव साक्षरों के लिए १७४ पुस्तकें)	१९५३-१९६३	,, ,,
७ गांधी हिन्दी दर्शन (संकलन)	१७७०	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नई दिल्ली
८ दिव्य ज्योति (माताजी लक्ष्मीदेवी सबधित संस्मरण)	१९७०	दिव्य प्रकाशन, नई दिल्ली

९. सचित्र बाल-साहित्य (बालोपयोगी)	१९५८-१९८४	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
१०. सुबोध साहित्य माला (किशोरोपयोगी)	१९७८-१९८४	,, ,,

समाज-विकास-माला

१ बदरीनाथ	१९५३	३१ बाजीप्रभु देशपाण्डे	१९५५
२ जंगल की सैर	१९५३	३२ तिरुवल्लुवर	१९५५
३ भीष्म पितामह	१९५३	३३ कस्तूरबा गांधी	१९५५
४. शिव और दधीचि	१९५३	३४ शहद की खेती	१९५५
५ विनोबा और भूदान	१९५३	३५ कावेरी	१९५५
६ कबीर के बोल	१९५४	३६ तेल की कहानी	१९५५
७ गांधीजी का विद्यार्थी जीवन	१९५४	३७ हम सुखी कैसे रहें ?	१९५५
८ गयाजी	१९५४	३८ गो-सेवा क्यों ?	१९५५
९ गौतम बुद्ध	१९५४	३९ कैलास-मानसरोवर	१९५५
१० निषाद और शबरी	१९५४	४० अच्छा किया या बुरा ?	१९५५
११ गांव सुखी हम सुखी	१९५४	४१ नरसी मेहता	१९५५
१२ कितनी जमीन	१९५४	४२ पण्ढरपुर	१९५५
१३ ऐसे थे सरदार	१९५४	४३ ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती	१९५५
१४ चैतन्य महाप्रभु	१९५४	४४ संत ज्ञानेश्वर	१९५६
१५ कहावतों की कहानियां	१९५४	४५ धरती की कहानी	१९५६
१६ सरल व्यायाम	१९५४	४६ राजा भोज	१९५६
१७ द्वारका	१९५४	४७ ईश्वर का मंदिर	१९५६
१८ बापू की बातें	१९५४	४८ गांधीजी का संसार-प्रवेश	१९५६
१९ बाहुबली और नेमिनाथ	१९५४	४९ ये थे नेताजी	१९५६
२० तन्दुरुस्ती हजार नियामत	१९५४	५० तीर्थराज प्रयाग	१९५६
२१ बीमारी कैसे दूर करें ?	१९५४	५१ रामेश्वरम्	१९५६
२२ माटी की मूरत जागी	१९५४	५२ कंजों का विलाप	१९५६
२३ गिरधर की कुंडलियां	१९५४	५३ रामकृष्ण परमहंस	१९५६
२४ रहीम के दोहे	१९५५	५४ समर्थ रामदास	१९५६
२५ गीता-प्रवेशिका	१९५५	५५ मीरा के पद	१९५६
२६ तुलसी-मानस-मोती	१९५५	५६. मिलजुलकर काम करो	१९५६
२७ दादू की वाणी	१९५५	५७ काला पानी	१९५६
२८ नजीर की नज्में	२९५५	५८ पाव भर आटा	१९५६
२९. संत तुकाराम	१९५५	५९ सवेरे की रोशनी	१९५७
३० हजरत उमर	१९५५	६० भगवान के प्यारे	१९५७

६१ हारूं-अल-रशीद	१९५७	९७. गोरा बादल	१९५९
६२ तीर्थंकर महावीर	१९५७	९८ पाटलिपुत्र	१९५९
६३ हमारे पड़ोसी	१९५७	९९ महर्षि अगस्त्य	१९५९
६४ आकाश की बातें	१९५७	१०० दानवीर कर्ण	१९५९
६५ सच्चा तीरथ	१९५७	१०१ शेखसादी	१९५९
६६ हाजिर-जवाबी	१९५७	१०२ गोदावरी	१९५९
६७ सिंहासन-बत्तीसी (भाग १)	१९५७	१०३ कुम्हार की बेटी	१९५९
६८ सिंहासन-बत्तीसी (भाग २)	१९५७	१०४ नर्मदा	१९५९
६९ नेहरूजी का विद्यार्थी जीवन	१९५७	१०५ शंकराचार्य	१९५९
७० मूरखराज	१९५७	१०६ अमरनाथ	१९५९
७१ नाना फड़नवीस	१९९७	१०७ महारानी अहिल्याबाई	१९५९
७२ गुरु नानक	१९५७	१०८ पढ़ेंगे-लिखेंगे	१९५९
७३ हमारा संविधान	१९५७	१०९ कोणार्क	१९५९
७४ राजेन्द्र बाबू का बचपन	१९५७	११० मगू भैया	१९५९
७५ परमहंस की कहानिया	१९५७	१११ संत नामदेव	१९६०
७६ सोने का कंगन	१९५७	११२ सेवामूर्ति ठक्कर बापा	१९६०
७७ झांसी की रानी	१९५७	११३ वन-सम्पदा	१९६०
७८ हुआ सवेरा	१९५७	११४ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	१९६०
७९ बीरबल की बातें	१९५७	११५ जगन्नाथपुरी	१९६०
८० मन के जीते जीत	१९५७	११६ गुरुवायूर	१९६०
८१ मुरब्बी	१९५७	११७ झलकारी	१९६०
८२ हरिद्वार	१९५७	११८ हमारे पशु-पक्षी	१९६०
८३ सागर की सैर	१९५७	११९ लल्लेश्वरी	१९६०
८४ आनबान के रखवारे	१९५७	१२० समय का मोल	१९६०
८५ महामना मालवीय	१९५७	१२१ देवता	१९६०
८६ भर्तृहरि	१९५७	१२२ बंगाल का बीरबल	१९६०
८७ देवताओं का प्यारा	१९५७	१२३ शंकरदेव	१९६०
८८ देश यो आगे बढ़ेगा	१९५७	१२४ विनोबा के पावन प्रसंग	१९६०
८९ हमारे मुस्लिम संत	१९५७	१२५ सती अनुसूया	१९६०
९० नन्हा अबाबील	१९५९	१२६ बेताल पच्चीसी (भाग १)	१९६०
९१ स्वामी विवेकानंद	१९५९	१२७ बेताल पच्चीसी (भाग २)	१९६०
९२ आप भला जग भला	१९५९	१२८ रामानुजाचार्य	१९६०
९३ नासिक	१९५९	१२९. यमुना की कहानी	१९६०
९४ सूर के पद	१९५९	१३० भरत	१९६०
९५ संत वेमन्ना	१९५९	१३१ बाल गंगाधर तिलक	१९६१
९६ आराम हराम है	१९५९	१३२ लाल किला	१९६१

सुबोध साहित्य माला (किशोरो के लिए)

लेख-मालाएं

१ दक्षिण के अंचल में (यात्राएं) नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली में प्रकाशित

२ यूरोप की परिक्रमा ,, ,,

३. लद्दाख में आठ दिन ,, ,,

४ सागर के पार ,, ,,

५ कालजयी विभूतियां (संस्मरण) विभिन्न पत्रों में

  १ आध्यात्मिक ,,

  २ राजनैतिक ,,

  ३ साहित्यिक ,,

  ४ रचनात्मक ,,

  ५ विदेशी ,,

६ गंगा-यमुना के उद्गम पर (यात्रा-वृत्तान्त) आरोग्य, गोरखपुर

सम्पादित पत्र-पत्रिकाएं सम्पादन

१ मिलन, इलाहाबाद	(मासिक)	१९३५-३६
२ जीवन सुधा, दिल्ली	(मासिक)	१९३८-३९
३ मधुकर, कुण्डेश्वर	(मासिक)	१९४०-४६
४ जीवन साहित्य, नई दिल्ली	(मासिक)	१९४६-सम्प्रति
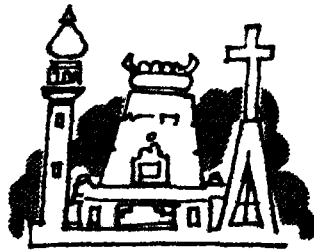
ब्रजलाल
जैन
वंश वृक्ष
१ सितम्बर १९८४

श्री यशपाल जैन अभिनंदन-ग्रंथ समारोह समिति

डा लक्ष्मीमल्ल सिंघवी	अध्यक्ष
प बनारसीदास चतुर्वेदी	प्रधान सम्पादक
श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'	सम्पादक
श्री वीरेन्द्र प्रभाकर	संयोजक

श्री अभिमन्यु भुवालका	श्रीमती कमला सिंघवी
,, अमरनाथ	डा कर्णसिंह
,, अरविन्द कुमार	श्री कृष्ण कुमार बिडला
श्रीमती अरुणा डालमिया	,, काशिनाथ त्रिवेदी
साहू अशोक जैन	,, काशी प्रसाद खेडिया
श्री अशोक जैन	,, श्रीकिशन सेठ
,, अशोक वाजपेयी	,, कुमारिल स्वामी
,, अश्विनी कुमार कानोडिया	,, कुलानन्द भारतीय
,, अक्षयकुमार जैन	श्री कृष्णचन्द्र पत
श्रीमती आदर्श कुमारी जैन	,, केयूर भूषण
डा आशा शिरोमणि	कुमारी कौशल्या माथुर
श्रीमती आशारानी व्होरा	श्री गगाशरण सिंह
डा ओदोलेन स्मेकल	,, गिरधरदास कोठारी
डा ओमप्रकाश	,, गोस्वामी गिरिधारीलाल
श्री ओमप्रकाश जैन	,, गिरीश भगवत प्रसाद पटेल
,, ओमप्रकाश सराफ	,, गोपाल प्रसाद व्यास
श्रीमती इन्दु जैन	,, गोविन्द प्रसाद खण्डेलवाल
डा इन्द्रसेन	,, एस पी गौविल
डा उदयभानु सिंह	,, गौरीशकर शर्मा
डा उमाशंकर जोशी	प्रो गुरु शरण
श्री कन्हैयालाल नंदन	श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
,, कन्हैयालाल मलिक	,, चन्दू लाल चन्द्राकर
श्रीमती कमला रत्नम	,, चिरंजीत

श्रीजगजीवनराम
,, जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी
,, जगप्रवेश चन्द्र
,, जयप्रकाश अग्रवाल
,, जयप्रकाश भारती
,, जवाहिरलाल जैन
,, जैनेन्द्रकुमार
,, ताराचन्द खण्डेलवाल
आचार्यश्री तुलसी
श्री तूलिकी
,, दत्तात्रेय तिवारी
,, दयानद वर्मा
डा दागमार मार्कोवा
श्री दीनानाथ मल्होत्रा
,, दीपचन्द नाहटा
,, दुर्गाप्रसाद मंडेलिया
,, देवकीनन्दन 'विभव'
,, देवराज 'दिनेश'
,, देवेन्द्र सत्यार्थी
डा दौलतसिंह कोठारी
श्री धर्मवीर
डा धर्मवीर भारती
,, धर्मानद केसरवानी
, नगेन्द्र
श्री नन्दलाल टाटिया
,, वी आर नन्दा
श्रीमती नामगिरी
कुमारी निर्मला देशपाण्डे
,, निर्मला माथुर
श्री गो प. नेने
डा पवनकुमार जैन
,, प्रभाकर माचवे
,, प्रभुदयाल मीतल
श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका
,, पुरुषोत्तम गोयल
,, पूर्णचन्द्र जैन

श्री प्रेमचन्द जैन
,, बच्चूप्रसाद सिंह
,, बसंत कुमार बिड़ला
,, बसंत साठे
,, बांके बिहारी भटनागर
,, बुधमल शामसुखा
डा पी ए बारान्निकोव
श्री बालकृष्ण गुप्त
,, बालस्वरूप राही
डा. बाहुबली कुमार जैन
श्री बिरधीचन्द्र चौधरी
,, भवरमल सिंघी
,, भक्तदर्शन
,, एच० के० एल० भगत
,, भगवती प्रसाद खेतान
डा भरतसिंह उपाध्याय
,, भरतराम
श्री भवानी प्रसाद मिश्र
,, भीखूराम जैन
डा मंडन मिश्र
श्री मन्मथनाथ गुप्त
श्रीमती मदालसा नारायण
श्री मधुकर राव चौधरी
,, महातम सिंह
,, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ
,, महेश्वर दयाल
डा माजदा असद
श्री माधव प्रसाद गोयन्का
,, मांगीलाल सेठिया
,, मुकुट बिहारी वर्मा
,, मुरलीधर दिनोदिया
,, मुरलीधर डालमिया
,, मोहनलाल कठोतिया
श्रीमती [illegible]
श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी
,, योगिराज [illegible]

श्री रतनलाल जोशी
,, रत्नाकर पाण्डे
,, रमानाथ अवस्थी
साहू रमेशचन्द्र जैन
श्री रवीन्द्र केलेकर
,, रत्नत्रयधारी जैन
श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन
श्री राजेन्द्र माथुर
,, राजेन्द्र यादव
,, राजेन्द्र शकर भट्ट
,, राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह
,, राधाकृष्ण कनोडिया
,, जे राधाकृष्णन
, रामकृष्ण बजाज
डा रामनाथ पोद्दार
मेजर रामप्रसाद पोद्दार
श्री रामनाथ पसरीचा
,, रामनिवास जाजू
,, रामाशकर मिश्र
,, रामेश बेदी
,, रामेश्वर नेवटिया
श्रीमती ललिता शास्त्री
श्री लक्ष्मीचद्र जैन
,, लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला
,, लक्ष्मीनिवास बिडला
,, वात्स्यायन
डा विजयेन्द्र स्नातक
श्री विट्ठलदास मोदी
प विनयचन्द्र मौद्गल्य
श्री विनोद मिश्र
,, विपिनचद्र रस्तोगी
,, वियोगी हरि
,, विष्णु प्रभाकर
,, विश्वनाथ
,, विश्वनाथ जालान
श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह
,, वीरेन्द्र कुमार जैन
श्रीमती सत्यवती मल्लिक

श्री मो सत्यनारायण
,, सत्यनारायण गोयन्का
,, सतीश कुमार जैन
सुश्री सरोजिनी नानावटी
श्री सिद्धराज ढड्ढा
प्रो सिद्धेश्वर प्रसाद
श्री सुखपाल गुप्ता
स्वामी सुन्दरानन्द
श्रीमती सुभद्रा
श्री सुभाष जैन
,, सुमगल प्रकाश
,, सुरेश राम
,, सोमदत्त बखोरी
,, सोमेश पुरी
,, शकरस्वरूप शर्मा
वैद्य शान्तिप्रसाद जैन
श्री शरत पाड्या
,, श्यामसुन्दर गग
डा शिवा दुआ
श्रीमती शिवानी
, शीला झुनझुनवाला
श्री शुभकरण धसानी
,, शुभकरण सुराणा
,, शेखर अग्रवाल
,, शोभालाल गुप्त
,, हनुमानमल पेडीवाल
,, हरिकृष्ण शास्त्री
,, हरिशकर 'आदेश'
,, हितशरण शर्मा
,, हिमांशु जोशी
,, त्रिलोकीनाथ खन्ना
,, त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी
श्रीमती ज्ञानवती दरबार
श्री ज्ञानचद्र चौधरी
श्री श्रीपाद जोशी
,, श्रेणिक क लालभाई
साहू श्रेयास प्रसाद जैन

८३१ + १२ = ८४३ □ निष्काम साधक